महाकवि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास प्रणीत

श्रीरामचरितमानस

भावार्थबोधिनी हिन्दी टीका

श्रीतुलसीपीठ संस्करण

टीकाकार एवं सम्पादक

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

जय श्रीसीताराम

महाकवि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास प्रणीत

श्रीरामचरितमानस

भावार्थबोधिनी हिन्दी टीका

श्रीतुलसीपीठ संस्करण

सम्पादक

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय कविकुलरत्न वाचस्पति

श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज

जीवनपर्यन्त कुलाधिपति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट

प्रकाशक

अन्ताराष्ट्रिय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट, उ०प्र०, भारत

प्रकाशक

अन्ताराष्ट्रिय श्रीरामचरितमानस अनुसन्धान केन्द्र
जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उत्तर प्रदेश) - २१०२०४
दूरभाष - ०५१९८-२२४४१३, ०७६७०-२६५४७८

तृतीय आवृत्ति

इक्कीस सौ प्रतियाँ

प्रकाशन तिथि

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा, विक्रम संवत् २०६५

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. अन्ताराष्ट्रिय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र
जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ०प्र०) - २१०२०४

२. श्रीतुलसीपीठ, आमोदबन, पो० नयागाँव, चित्रकूट
जनपद - सतना (म०प्र०) - ४८५३३१

न्यौछावर

२५०.०० (दो सौ पचास रुपये मात्र)

मुद्रक

नागरी प्रेस
९१/१८३ अलोपी बाग, इलाहाबाद
दूरभाष - ०५३२-२५०२९३४, ९४१५२३९९५८, ९३३५११०७३८

।। नमो राघवाय ।।

टीकाकार का पुरोवाक्

भगवान श्री सीताराम जी की प्रेरणा से

इस प्रकार अनेक प्राचीन प्रतियों के आधार पर लगभग दस हजार नौ सौ (१०,९००) वृत्तों में प्राप्त और श्रीसीताराम जी की कृपा, श्रीहनुमानजी की अनुकम्पा एवं स्वयं की गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी के श्रीचरणों के प्रति आस्था तथा अपनी सारस्वतसाधना के आलोक में परम प्रमाणिकता और विश्वसनियता के साथ सम्पादित यह श्रीरामचरितमानसजी का तुलसीपीठ संस्करण यद्यपि मूल गुटका के रूप में जनता जनार्दन के श्रीकरकमलों में समर्पित हो रहा था, इसी बीच इस संस्करण की पाण्डुलिपि देखकर ही स्वयं मेरे अंतर में विराजमान श्रीसीतारामजी, मेरे जीवन सर्वस्व बालक रूप श्रीरामजी, वसिष्ठानन्दवर्धन श्रीराघव सरकार, अन्जनान्दवर्धन श्रीहनुमानजी महाराज, मेरी अग्रजा श्रीराघव सरकार और आप सबकी 'बुआजी' डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा मेरे स्नेहभाजन श्री रमापति मिश्र वित्ताधिकारी एवं मेरे स्नेहभाजन डॉ० प्रो० रामदेव प्रसाद सिंह कुलपति, जे०आर०एच०यू०, मेरे वात्सल्यभाजन डा० अवनीशचन्द्र मिश्र, कुलसचिव, जे०आर०एच०यू० और मेरे बड़े ही अन्तरंग परिकर आयुष्मान् अशोक बत्रा, राजीवनयन लोथरा तथा मेरे श्रीमानसपरम्परा के सुयोग्य विद्यार्थी एवं श्रीराममंत्रपरम्परा के निष्ठावान् शिष्य मेरे अत्यंत वात्सल्यभाजन डा० ब्रजेश दीक्षित मानसमृगेन्द्र तथा मेरे श्रीमानस परम्परा के विद्यार्थी ब्राह्मण कर्मनिष्ठ डा० रामाधार शर्मा, मानस सारभौम आदि श्रीमानसजी पर एक भावार्थपरक सारस्वत व्याख्या लिखने का मुझसे बारम्बार सविनय अनुरोध करने लगे थे और मुझे भी श्रीमानसजी पर एक स्वस्थ भावार्थपरक संक्षिप्त व्याख्या की अनिवार्य आवश्यकता अनुभूत होने लगी थी, क्योंकि यह एक विडम्बनापूर्ण संयोग ही कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग से लेकर अद्यावधि खड़ी बोली हिन्दी के इस विकासोन्मुख स्वर्णिम अध्याय में भी किसी सारस्वत साहित्यसेवी द्वारा श्रीरामचरितमानस की अपेक्षित सारस्वत समर्चा नहीं की जा सकी।

इस साठ वर्षीय स्वतंत्र भारत के युग में भी कदाचित् सारस्वतों पर से मैकाले की शिक्षा तथा पाश्चात्य कुलाचार्य की कृष्णछाया नहीं दूर हो पाई। प्रतिभायें University कहे जानेवाले आधुनिक विश्वविद्यालयों में पिंजड़निबद्ध सारिका की भाँति स्वार्थपरक राजनैतिक पर्यावरण में सिमटकर रह गई हैं। प्रत्येक सारस्वत प्रायशः सरस्वती कमलिनी को तथाकथित धर्मनिरपेक्षता रूप हिमानी से परित्राण नहीं दिला पाया और वह दो नावों पर चढ़े हुये जलयात्री की भाँति वाम और दक्षिण विचारधाराओं में बँट गया। वर्तमान के इस आधुनिक परिवेश में श्रीराम–कृष्णजी की चर्चा करना भी तथाकथित पढ़े–लिखे लोगों की दृष्टि में प्रज्ञापराध भाषीत होने लगा। तथाकथित प्रगतिशीलवाद के चक्रवात ने मानवमूल्यों की कल्पवल्ली को झकझोर दिया। भारतीय संस्कृति वैदेशिक सभ्यता के मारजारीय चंगुल में फँसकर त्राहिमाम की गुहार लगाने लगी। कोई भी विश्वविद्यालयों में नियुक्त प्रोफेसर श्रीरामचरितमानस जी पर इसलिए लिखने का साहस नहीं जुटा पाया कि कदाचित उसे धार्मिक न समझ लिया जाए। भले ही वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे

मनीषी ने पद्मावत पर संजीवनी व्याख्या लिखकर समाज में स्वयं को धर्मनिरपेक्ष प्रस्तुत करने में सफलता पाई हो, परन्तु क्या धार्मिकता को लोकापवाद के भय से श्रीरामचरितमानसजी से दूर रहकर उन्होंने स्वयं की सरस्वती को राजमरालिका के सौभाग्य से वंचित नहीं कर दिया ? आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल ने कुछ किया भी तो उन्हें प्रगतिशिलों द्वारा ब्राह्मणवाद के लांछन से लांछित किया गया। सम्प्रति विश्वविद्यालयों में इतने प्रपंच आ गये हैं कि उनसे उबर पाना आज के आचार्य, उपाचार्य तथा प्रवक्ताओं के लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

यद्यपि श्रीमानस जी पर पचासों टीकायें लिखी गईं, परन्तु वे अल्पशिक्षित लोगों द्वारा या व्यासपद्धति के लोगों द्वारा लिखी जाने के कारण श्रीमानसजी के शब्दों के उचित अर्थ समझने एवं समझाने में उतनी सफल नहीं हो पाईं जितनी अपेक्षा थी। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि श्रीमानसजी के रचनाकाल के चार सौ तैंतीस वर्षों के बीतने के पश्चात् भी श्रीमानसजी का भावार्थ भी ठीक–ठीक जनता के सामने नहीं आ सका, क्योंकि इन पर सारस्वतों द्वारा मन से कोई प्रयास नहीं किया गया, लोग इस ग्रन्थ को छूने से बचते रहे। मानसपीयूष, मानसगूढ़ार्थ चन्द्रिका, सिद्धान्ततिलक, बालबोधिनी, संजीवनी, विजया, रामेश्वरभट्टीय, गीताप्रेस आदि टीकाओं के लेखक संस्कृत में श्रम नहीं करने के कारण और अवधी भाषा की प्रकृति तथा उसके संस्कारों से सर्वथा अपरिचित होने के कारण गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी के मन्तव्य को अपेक्षित न्याय नहीं दे पाये। अतएव श्रीसीताराम जी की कृपा से समग्र तुलसीसाहित्य का कण्ठस्थकर्ता और अध्येता होने के साथ विश्वविद्यालयी सारस्वतपरम्परा से पूर्णतः परिचित मैं श्री मानस जी की एक व्यवस्थित सारस्वत व्याख्या प्रणीत करने का साहस जुटा पाया।

यह कटु सत्य है कि स्वातंत्र्योत्तर काल सारस्वती प्रतिभा के लिये दुष्काल ही सिद्ध हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् उसके सुख में उन्मत्त होकर हम अपने करणीयों की उपेक्षा कर बैठे, किन्तु साठ वर्षों में निन्यानवे प्रतिशत विसर्ग और एक प्रतिशत सर्ग देखने में आया। धर्म और संस्कृति को अस्पृश्य मान लिया गया। परम्परा और मूल्यों को ढोंग और पोंगापंथी समझकर पण्डितम्मन्यों द्वारा उनका परिहास किया गया, इसलिए स्वातंत्र्योत्तर काल में कारयित्री प्रतिभा के दर्शनों के लिये जिज्ञासुओं की आँखें तरस गईं। इस विशंकट संकट के समय में यह मेरा एक प्रयास मात्र है इसमें मैं कितना सफल रहूँगा यह तो भविष्य बतायेगा तथापि मैंने विनम्रता के साथ अपने निरुपाधिकनिष्ठा और शास्त्रीय परिश्रम में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं बरता है। भागवत् की भावार्थबोधिनी के रचयिता की भाँति मैं भी आत्मविश्वास के साथ कह रहा हूँ कि श्रीमानसजी की भावार्थदीपिका में मैंने कुछ भी अशास्त्रीय नहीं लिखा है यह प्रयास अवश्य किया कि जनता को इस टीका के माध्यम से श्रीमानस का मूलार्थ तो समझा ही दिया जाए।

भावार्थबोधिनी में मैंने संस्कृत टीकाओं की भाँति पदों के अन्वय के अनुसार ही अर्थ उद्घाटित किया है। पहले की अपेक्षा इस समय हिन्दी समृद्ध हुई है, अब उर्दू शब्दों की प्रयोगबहुलता का युग जा चुका है, मनुष्य का मानस स्वस्थ हो गया है अतः वह सतत् खिचड़ी खाने में ही रुचि नहीं रखता उसे तो शुद्ध दाल–भात चाहिए, इसलिए हिन्दी से संस्कृत शब्दों का समन्वय तो स्वभाविक है। इसी अवधारणा से आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार–पत्रों तथा पत्रिकाओं में संस्कृतगर्भित हिन्दी भाषा का विशुद्ध स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा है मेरी व्याख्या में इसका भी बहुत बल मिला है। जहाँ कहीं पदों के एक से अधिक

अर्थों की विवक्षा हुई है वहाँ मैंने 'अथवा' शब्द का प्रयोग किया है शब्दों को खण्डशः समझाने के लिये 'अर्थात' शब्द का संकेत और कोष्टकों का भी संकेत किया गया है।

अवधक्षेत्र में जन्म के सौभाग्य ने भी श्रीमानसजी को समझने और समझाने में मेरी प्रचुर सहायता की है। शब्द योजना और भावार्थ विधान में स्वयं को संतुष्ट करने के लिये मैंने कभी–कभी गीताप्रेस की टीका और मानसपीयूष अवश्य देखा है, पर उनसे कुछ चुराया नहीं है केवल यथार्थ का समर्थन माँगा है। जैसाकि सर्वविदित् है कि गोस्वामी जी की भाषा ग्राम्य भाषा है गँवारू नहीं। वे परिष्कृत अवधी भाषा के प्रयोग शिल्पी रहे हैं उन्हें कृष्णा गौ का दूध पिलाना अभिष्ट है, परन्तु जैसे–तैसे जूठे और बिना मन के बनाये हुये पात्र में नहीं वह एक ऐसे मृन्मय पात्र में श्याम गौ का दूध परोसना चाहते हैं जिस पर स्वर्णपात्र भी ईर्ष्या करता है अब तक जिस पात्र में कालकूट विष, मदिरा और आमिष परोसा जाता था जिससे वह पात्र भी लांछित होता था, उसी पात्र में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने तुलसीदल पधराकर एक ऐसा कालजयी अमृत परोसा जिससे वह पात्र धन्य हो गया और उस सुधा को पीकर मानवजाति धन्य हो गई तथा इस ग्रन्थ का स्पर्श करके मेरी सरस्वती पावन हुईं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्पूर्णाधिकार सम्पन्न अपने प्रकार के अद्वितीय जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, (उ०प्र०) का जीवनपर्यन्त कुलाधिपति होकर भी मैं तथाकथित सारस्वतों द्वारा थोपी गई अस्पृश्यता से नहीं डरा और बड़ी ही निष्ठा और तत्परता के साथ थोड़े ही समय में श्रीमानस भावार्थबोधिनी टीका सम्पन्न की, क्योंकि मैं पत्रकारों की कृपा से सामान्य जनता के मनद्वार पर ढकेली हुई धर्मनिरपेक्षतारूपी चुड़ैल से नहीं डरता। कदाचित् सारस्वत बन्धु 'धर्म' शब्द का वास्तविक अर्थ समझ लेते तो वे भी नहीं डरते। वस्तुतः भारतीय वाङ्मय में धर्म शब्द कर्तव्य के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है न कि पूजा पद्धति के अर्थ में। Secularism का अर्थ भी धर्मनिरपेक्षता न होकर पंथनिरपेक्षता होता है। सिद्धान्तों को पंथविशेष की अपेक्षा नहीं होती क्योंकि वे सार्वभौम होते हैं, परन्तु उन्हें भी उस धर्म की अपेक्षा अवश्य होती है जिसका अर्थ है कर्तव्य। कहीं–कहीं शब्दों का यथार्थ समझने और समझाने के लिये मैंने पाणिनी व्याकरण के सूत्रों की सहायता ली है, इसके लिये मुझे यावत् जवीन महर्षि पाणिनी की कृतज्ञता का बोध रहेगा।

इस व्याख्या को लिखने में जितनी अनमुक्तता और निश्चिंतता की आवश्यकता थी वह सब उपलब्ध करायीं श्रीराघवसरकर और आप सबकी 'बुआजी' डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा जी ने जो जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ०प्र० के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति मुझ भावार्थबोधिनी लेखक की सचिव और अग्रजा हैं उनका मैं आजीवन कृतज्ञ रहूँगा। मैं प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के पूर्व विभागाध्यक्ष तथा जे०आर०एच०यू० के अन्तर्राष्ट्रीय श्रीरामचरितमानस अनुशंधान केन्द्र के पूर्व मानद निदेशक हिन्दी साहित्य के मनीषियों में मूर्धन्य अपने परम स्नेही डा० स्वर्गीय सत्यप्रकाश मिश्र जी को कभी नहीं भूलूँगा जिनकी शुभेच्छा तथा सद्भावना से मैं यह कार्य कर पाया। मैं अपने वात्सल्य भाजन शिष्य आयुष्मान प्रसून तिवारी तथा सतीश कुमार गौतम को शुभाशीष देता हूँ, इनमें से एक अर्थात् प्रसून ने सेवा से और सतीश गौतम ने लिपि संशोधन से मुझे इस कार्य में अत्यन्त परितुष्ट किया। इसके अलावा मैं श्री अरविंद पाण्डेय व श्री शरद अग्रवाल का आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य के मुद्रण में अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया।

अन्ततः मैं श्रीरामचरितमानसजी की भावार्थबोधिनी व्याख्या को अपने परमाराध्य कविकुलगुरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज के श्रीचरणकमलों में समर्पित कर रहा हूँ और विश्वास करता हूँ कि भावार्थबोधिनी की हिन्दी व्याख्या के साथ श्रीरामचरितमानस का यह तुलसीपीठ संस्करण सम्पूर्ण मानवजाति को अवश्य संस्कृत करेगा।

तुलसीपीठसंस्करणं मानसस्य मयाकृतम्।
भावार्थबोधिनी युक्तं संस्वयान्मानसानिनः।।

।।इति मंगलामाशास्ते।।

।।श्री परमात्मने नमः।।

राघवीयो जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जीवन पर्यन्त कुलाधिपति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०)

विवाह पंचमी विक्रमी संवत २०६४

* * * * *

।। नमो राघवाय ।।

भूमिका

--

सीतारामयशोमृतामललसत्कीलाललालित्यभृत्
भास्वद्भारतसंस्कृतिच्छविमयं प्रेमैकसारं शुचि।
सोपानैर्मुनिभिः श्रितं कविवरैः संसेवितं हंसकैः
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं वर्वर्ति भूमावधि।।
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति।।

परिपूर्णतम परात्परपरब्रह्म परमेश्वर परमात्मा पुराणपुरुषोत्तम परतत्त्व परापराविद्याप्रतिपाद्य भगवान श्री सीतारामजी ने ही अपने सनातननिश्वासभूत भ्रमप्रमादविप्रलिप्साकरणापाटवादि पुरुषदोषरहित सनातन वेद के निगूढतत्त्वों की भूतार्थ व्याख्या प्रस्तुत करने हेतु अपने अंशांश पद्मयोनि ब्रह्मा जी को परमप्रत्युत्पन्न परमर्षि प्राचेतस वाल्मीकि के रूप में पुनश्च, कराल कलिकाल के कुमतिकरवाल से विलुलित, मानवीय मूल्यों से अपरिचित मानवजाति को वैदिकमार्ग पर प्रतिष्ठित करने के लिये उन्हीं महर्षि वाल्मीकि को एक ही साथ सम्पूर्ण सनातन वैदिक भारतीय वाङ्मय का भाष्य करने हेतु कविताभामिनीविलास हुलसीहृदयहुलास गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के रूप में अपनी त्रिकालाबाधित वाङ्मयप्रतिभा प्रत्युत्पन्न संवित्शक्ति के साथ भारतवसुन्धरा पर समवतीर्ण किया।

हम जैसे अनादिकालीन वासनामलीमस कदाचारकलुषित कलिकालकदर्थित बद्धजीवों को वेदवेदान्तसारसर्वस्व परमपुरुषार्थ त्रैवर्गापवर्गातीत परमपुनीत श्रीसीतारामप्रेमपीयूष समुपलब्ध कराते हुये नवनीत कोमल सन्तहृदय सर्वभूतकरुणावशंवद परमप्रियम्वद गोस्वामी तुलसीदासजी के श्रीरामनामसुधासंधुक्षित निर्मल, निष्कलुष, निष्कलङ्क, निष्कम्प, निरुपद्रव, निर्लेप मनोव्योम में विक्रमी सम्वत् १६३१ की श्रीचैत्र रामनवमी के दिन जिस श्रीरामचरितमानसरूप त्रिकालजयी जयादित्य का प्रकाश हुआ, उसकी भास्वती प्रभा अनन्तवर्षपर्यन्त मोहनिशानिमीलित मानवताकमलिनी को विकसित करती रहेगी। आज से ४३३ वर्ष पूर्व हुलसीहर्षवर्द्धन गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज द्वारा उन्हीं के शब्दों में भाषाभनिति भनितिभदेस गिराग्राम्य अर्थात् अवधी भाषा में गाया हुआ निरवधि परमपुरुषार्थावधि श्रीरामभक्तिसुधासमुल्लसित श्रीरामचरितमानस आज भी उतना ही प्रासंगिक, उपयोगी, उपादेय तथा औपयिक है जितना उस समय रहा होगा अथवा उससे भी अधिक। क्योंकि ज्यों–ज्यों तापमान अधिकतर होता जाता है त्यों–त्यों रिगोतुङ्गतरङ्गा भगवती गंगाजी की निसर्गसिद्ध शीतलता की उपयोगिता अधिकाधिक होने लगती है। यह आविद्वत्पामरसिद्ध सिद्धान्त है।

प्रभु श्रीसीताराम जी के अप्रतिम कृपापात्र, क्रान्तद्रष्टा, मनीषिमौलिमणि, महाकवि महनीयकीर्ति हुलसीहर्षवर्धन प्रभु के निष्कलुष स्वान्त:सुख ने सम्पूर्ण वैश्विक सनातन सुख को समाहित कर लिया था। इसलिए उन्होंने अपने मानस के सातों सोपानों में सात्विक सनातन सुखप्राप्ति के उन सिद्धान्तों की सर्वसुलभ तथा सर्वबोधगम्य मनोहर व्याख्या प्रस्तुत की, जिन्हें बहुत पूर्व में ही भारतीय चिन्तन के मूर्धन्यमनीषी कपिल, पतञ्जलि, कणाद, गौतम, जैमिनी, बादरायण, तथा देवर्षि नारद ने सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा, वेदान्त तथा भक्तिदर्शन के व्याज से अतिसूक्ष्मरूप में कह दिया था। अहो! आजन्म ब्रह्मचारी, कोटिकोटि परब्रह्म परमहंस परिव्राजकों के भी पूज्यचरण विरक्तचूडामणि श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज के उदात्तमानस की कोटि–कोटि सिन्धुओं जैसी गम्भीरता तथा अरबों व्योममण्डलों की व्यापकता ने मानवमात्र के मानस में उपजने वाली किंवा, प्राणिमात्र के मानस में प्रतिबिम्बित होने वाली उन छोटी–बड़ी सभी समस्याओं के समाधान के ऐसे अमोघ सूत्र ढूँढ़ निकाले जिनका लोहा मानने के लिए विवश हो गया है आज का समस्त प्राच्य–प्रतीच्य बौद्धिक वर्ग।

इसीलिए तो गोस्वामी तुलसीदासजी के श्रीरामचरितमानस ने एक ओर जहाँ ज्ञानदीपक प्रकरण से "सोऽहमस्मि" जैसे वेदान्त की दुरूह ग्रन्थग्रन्थियाँ सुलझाईं, वहीं दूसरी ओर **"कृषी निरावहिं चतुर किसाना"** कहकर छोटी से छोटी ग्रामीण समस्याओं की समाधानात्मक सरल रीतियाँ भी सुझाईं। यदि गोस्वामीजी के मानस ने उत्तरकाण्ड में मानसरोगों का निदान प्रस्तुत किया तो वह **"जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा"** जैसी निर्बल पक्ष की समस्या से भी अनभिज्ञ न रहा।

श्रीरामचरितमानस में मानव जीवन के सभी उतार–चढ़ाव अन्तरंग तथा बहिरंग रीति से उन्मुक्त रूप में तरंगायित हुये, जो राजमहल से झोपड़ी पर्यन्त सदैव देखे और सुने जाते रहे हैं। **"श्रीरामचरितमानस मानवमानसदर्पण है"** यह उक्ति अतिरंजना नहीं प्रत्युत शाश्वत सत्य है, इसलिए दिवानिशि यन्त्रवत् चलनेवाले अविरामगति से संसरणशील इस भौतिकवादी युग में भी उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणीध्रुवपर्यन्त इस सभ्य मानवजाति का श्रीरामचरितमानस ही सम्बल बना हुआ है। **"मंगल भवन अमंगलहारी"** आज भुवनमंगल का संदेश दे रही है। अतएव आज सभी पुस्तकों की अपेक्षा श्रीरामचरितमानस की सर्वाधिक माँग बढ़ी है और सबसे अधिक मानसजी की प्रतियाँ ही लोगों के उपयोग में आ रही हैं। लगभग अरबों की संख्या में श्रीरामचरितमानस पुस्तकाकार होकर लोगों की जिजीविषा का पथप्रदर्शन कर रहा है। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीय श्रीरामचरितमानस से ही प्रेरणा लेकर वैदिक हिन्दू धर्म पर अपनी निष्ठा रखे हुए हैं। मारीशस, सूरिनाम, गयाना, सिंगापुर, मलेशिया, वियतनाम, फिजी, स्विटजरलैण्ड, हालैण्ड आदि विदेशों में आज भी श्रीरामचरितमानस परम्पराबद्ध रूप से संगीतशैली में गाया जाता है। लगभग पच्चीस सौ राष्ट्रीय, प्रान्तीय, क्षेत्रिय तथा आंचलिक भाषाओं में श्रीरामचरितमानस के अनुवाद उपलब्ध हैं जो एक कीर्तिमान है। किं बहुणा, आज श्रीरामचरितमानस से ही हिन्दी भाषा को पहचाना एवं जाना जाता है। साहित्यिक जन जहाँ अपनी जिज्ञासा की शान्ति करते हैं तो आध्यात्मिक जन वही मानससुधा पी–पीकर अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझा लेते हैं।

श्रीरामचरितमानस पर अद्यावधि शताधिक टीकाएं लिखी जा चुकी हैं और इसी मानसकल्पवृक्ष की छाया में भक्तिसहित चर्तुवर्ग की प्राप्ति कर रहे हैं सहस्राधिक व्यासबन्धु। राजमहल से लेकर चौपालों तक

अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार व्याख्यायित होती हुई यह मानसी गंगा चार शतकों से मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ कोटि–कोटि जनमानसों को पावन करती आ रही है।

तुलसीगिरिसम्भूता रामसागरसंगमा।
एषा श्रीमानसीगंगा पुनाति भुवनत्रयम्।।

कहना न होगा कि भगवान वेद की भाँति श्रीरामचरितमानस का स्वरूप विश्वतोमुख है। इससे प्रत्येक वैदिक सिद्धान्तानुगामी अपने–अपने सिद्धान्तों की पोषक समुचित सामग्री प्राप्त करके जन्मजन्मान्तरों के लिये श्रीमानसजी का आधमर्ण्य स्वीकार कर लेता है। वेदान्त के अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, अचिन्त्याभेद तथा द्वैत ये छहों वाद भी इसी मानस महारत्नाकर को अपना उपजीव्य मानते हैं। यद्यपि मानसजी का मुख्य प्रतिपाद्य श्रीसीताराम विशिष्टाद्वैतवाद ही है, जो जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान् का प्रतिपाद्य दर्शन है, क्योंकि श्रीरामचरितमानस के रचयिता अभिनव वाल्मीकि महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भी जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान् के नाती चेला अर्थात् प्रशिष्य ही तो हैं। यह सर्वविदित है कि, जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी के चतुर्थ शिष्य नरहरिदास अर्थात् नरहर्यानन्दाचार्य जी महाराज के अनन्य कृपापात्र हैं गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज। व्यासपरम्परा में भी श्रीरामचरितमानस ने कई पद्धतियों को जन्म दिया। संगतिवाद, युक्तिवाद, स्वरवाद, प्रतीकवाद एवं पदार्थवाद जैसे सिद्धान्त श्रीरामचरितमानस के ही तरलतरंग परिणाम हैं। कतिपय व्यास महानुभाव तो श्रीरामचतिमानस की एक–एक पंक्ति पर महीनों–महीनों पर्यन्त अपने प्रवचन प्रस्तुत करते रहते हैं। **''उठे राम सुनि प्रेम अधीरा''** मानस २.२४०.८ पर प्रस्तुत संपादकीय के लेखक मुझ अकिंचन जीव के ही १२१ घंटे प्रवचन हुए। इस कराल कलिकाल में श्रीसीतारामभक्त महानुभावों के लिए तो श्रीरामचरितमानस ही एकमात्र ध्येय, ज्ञेय, गेय तथा साधनसर्वस्व बन गया है। यहाँ इस भ्रम को निरस्त करना मैं अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ और अनुसन्धित्सु तथा सुधीपाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी समझता हूँ। सामान्यत: लोग दो–दो पंक्तियों को एक चौपाई मानते आये हैं परन्तु विचार करने से यह मान्यता भ्रमपूर्ण और अशास्त्रीय ही सिद्ध होती है। यदि दो–दो पंक्तियों को मिलाकर चौपाई कहा जायेगा तो **हनुमान चालीसा** ही सिद्ध नहीं हो सकेगा क्योंकि उसमें चालीस ही पंक्तियाँ हैं जिन्हें जोड़ने पर चौपाईयों की संख्या मात्र बीस हो पाती है। इस दृष्टि से इसे ''हनुमान बीसा'' क्यों नहीं कहा गया? जबकि तुलसीदासजी ने ''हनुमान चालीसा'' ही कहा है–

जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा।

पद्मावत काव्य की समीक्षा लिखते हुए आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल ने भी यही कहा है कि जायसी ने प्रत्येक सात चौपाई अर्थात् सात पंक्तियों के पश्चात् एक दोहा रखा है। वस्तुत: चौपाई हिन्दी का एक मात्रिक वृत्त है वार्णिक नहीं, यहाँ चौपाई का तात्पर्य चार यतियों वाले वृत्त से है। चौपाई की प्रत्येक आठवीं मात्रा पर एक यति होती है। जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि जी को बत्तीस अक्षरों वाला अनुष्टुप् सिद्ध है, उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी को बत्तीस मात्राओं वाली चौपाई सिद्ध है।

इसे संयोग ही कहें कि १४ जनवरी १९५० ई० को जन्म लेकर और जन्म के दो महीने पश्चात् ही अपने भौतिक नेत्रों को सदा–सदा के लिए विदाई देकर भी मैं जो कुछ भी हूँ, उस सबके लिए एकमात्र

श्रेय है श्रीरामचरितमानसजी को। अपनी आठ वर्ष की बाल्यावस्था में पूर्वाश्रम के पूज्य पितामह स्वर्गीय पण्डित सूर्यबली मिश्र जी की कृपा से साठ दिनों में ही सम्पूर्ण मानसजी को कण्ठस्थ करके १४ जनवरी १९५७ ई० अर्थात् अपने आठवें जन्मदिवस पर जब सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसजी का मैंने प्रथम मौखिक पाठ किया, उसी दिन से मेरा जीवन क्रमशः सरस, प्रसन्न, अभावमुक्त, अन्तःकरण से स्वावलम्बी, प्रत्युत्पन्न एवं श्रीरामपरायण होने लगा। तब से अब तक के इस जीवन खण्ड काल में मैंने आँखों के बन्द होने पर भी श्रीरामचरितमानसजी की चार हजार से अधिक मौखिक आवृत्तियाँ कर ली हैं। जबकि शास्त्र की आज्ञानुसार कोई भी सद्ग्रन्थ सौ आवृत्तियों के पश्चात् ही स्वयमेव अपना निगूढ अर्थ बताने लगता है–

शतमावर्तितो ग्रन्थः स्वयमर्थं प्रयच्छति।

इसलिए श्रीरामचरितमानसजी के पौर्वापर्य, पाठपरम्परा, भाषा, भाव, शैली कथासिद्धान्तों के प्रति मैं पूर्णतया विश्वस्त एवं आश्वस्त हूँ। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए की एक ओर जहाँ भगवान श्रीसीतारामजी ने समस्त जीवों, विशेष रूप से हम जैसे श्रीसीतारामोपासक श्रीरामानन्दी, श्रीवैष्णव जीवों पर कृपा करके श्रीरामचरितमानस जैसा परमात्मविग्रहरूप परमपावन ग्रन्थरत्न प्रदान किया वहीं श्रीमानसजी की सरलता के कारण उनमें सहस्राधिक पाठान्तर, अपपाठ, तथा अशुद्ध पाठ दृष्टिगोचर होने लगे हैं। "**कतहुँ सुधायिहुँ ते बड़ दोषू**" पंक्ति अक्षरशः यहाँ चरितार्थ हो रही है।

यहाँ तक की एक–एक चौपाई में पाँच–पाँच, छह–छह अशुद्धियाँ दिखाई पड़ती हैं, निरर्थक अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु, अनावश्यक उकार आदि अपपाठों की तो गिनती ही नहीं की जा सकती। श्रीरामचरितमानसजी का लगभग दस हजार पंक्तियों का छोटा–सा कलेवर उनमें लगभग तीन हजार अशुद्धियाँ, यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? उदाहरणार्थः दो–चार पंक्तियाँ देखिए–

प्रेमु प्रमोदु बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई।। मानस, १.३५५.४

यहाँ एक ही पंक्ति में पाँच बार उकार के प्रयोग का क्या औचित्य हो सकता है ? यह प्रश्न अद्यावधि अनुत्तरित ही है। गोस्वामीजी ने तुक मिलाने की दृष्टि से कहीं–कहीं पद के अन्त में कर्तृवाचक शब्दों को उकारान्त प्रयोग किया है। यथा–

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू।। मानस, १.११७.७

कहीं प्रभु पर दशरथ–कौसल्या आदि के वात्सल्य को सूचित करने के लिए राम शब्द का उकारान्त प्रयोग हुआ है। यथा–

बन्दउँ बालरूप सोइ रामू।

परन्तु सामान्यरूप से कर्तृवाचक शब्द के अन्त में उकार प्रयोग का औचित्य समझ में नहीं आता। यथा–

जो सहससीसु अहीसु महीधरु लखनु सचराचर धनी। मानस, २.१२६.९

सुधी पाठक ही समझ सकते हैं यहाँ के उकारान्त प्रयोग के औचित्य को। सौभाग्य से मेरा भी जन्म अवधीभाषाप्रधान उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में हुआ। चूँकि श्री अवध के अंचल में श्रीराम जी का

प्राकट्य हुआ और अवधी में श्रीरामचरितमानस जी की रचना हुई इसी उपासना सम्बन्ध के कारण मैं त्रिदण्डी सन्यासी एक विशिष्ट सम्प्रदाय का जगद्गुरु, धर्माचार्य, विरक्त साधु, रामानन्दी श्रीवैष्णव होकर भी जन्मस्थाननिरपेक्षता परम्परा क्रम नहीं निभा पाया और अब भी अपनी तथा श्री राम जी की जन्मभूमि की मातृभाषा अवधी में बोलने में अपना सौभाग्य मानता हूँ। मुझे प्रतीत होता रहता है कि इसी अवधी में भगवान श्रीराम जी अपने जन्म नगर निवासियों से सम्भाषण करते ही होंगे। अतएव अवधी भाषा की प्रकृति उसके व्याकरण सम्बन्धी नियम तथा अवधी की आंचलिक परम्पराओं के सम्बन्ध में अवध क्षेत्र में जन्में लोगों से अधिक इतर लोग कैसे जान सकेंगे?

हम बहुत विश्वास के साथ कहना चाहते हैं कि अवधी भाषा के प्रयोगों की प्रामाणिकता के प्रति हम इसलिए और लोगों की अपेक्षा अधिक आश्वस्त हैं, क्योंकि हम अवधक्षेत्र में जन्मे, वहीं पले, वहीं पढ़े-लिखे और सौभाग्य से जिस आध्यात्मिक उपासना से सम्बन्ध जुड़ा उसकी प्रकृति भी अवधी ही है-

हम सन पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे।। (मानस, २.२७४.७)

मैं जन्मना सरयूपारीण वसिष्ठ गोत्रिय ब्राह्मण हूँ तथा कर्मणा बालरूप श्री राम जी का उपासक। अतः मेरे रक्त के कण-कण में अवधी भाषा का ही संस्कारसिद्ध प्रवाह एवं प्रभाव है। मैंने कहीं भी अवधीभाषा में कर्तृपद के साथ उकार को जुड़ते न तो देखा और न ही सुना, जैसा कि दुर्भाग्य से श्रीरामचरितमानसजी की प्रचलित प्रतियों में उपलब्ध हो रहा है। यथा-

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। (मानस, २.७९.८)
रामु चले बन प्रान न जाहीं। (मानस, २.८१.६)

इसी प्रकार अवधी में उकार को कर्म का चिह्न सूचित करते हमने कभी नहीं देखा जबकि प्रचलित मानस प्रति में दिखायी पड़ रहा है। यथा-

सजि बन साज समाजु सबु। (मानस, २.७९)
रामु लखनु सिय आनि देखाऊ। (मानस, २.८२.२)
नाइ सिरु रथ अति बेग बनाइ। (मानस, २.८२)
करि बिनती रथ रामु चढ़ाए। (मानस, २.८३.१)
चलत रामु लखि अवध अनाथा। (मानस, २.८३.३)

कहाँ तक कहा जाए प्रचलित प्रति के सम्पादकपुङ्गव ने जिस अयोध्याकाण्ड को सबसे शुद्ध प्रमाणित किया उसी तीन हजार पदों वाले अयोध्याकाण्ड में कम से कम दो हजार पाठगत अशुद्धियाँ हैं। जैसे प्रचलित प्रति के अयोध्याकाण्ड में उकार की बहुलता है, उसी प्रकार अनावश्यक अनुनासिकों की प्रचुरता भी है, जिनका अवधी भाषा में न तो कोई औचित्य है और न ही इनकी कोई अर्थबोधक भूमिका ही। यथा-

जब तें राम ब्याहि घर आए। (मानस, २.१.१)

यहाँ 'ते' स्वयं विभक्तिवाचक है, फिर अनुनासिक की क्या आवश्यकता ?

राजसभाँ रघुराज बिराजा। (मानस, २.२.१)

यहाँ सप्तमी विभक्ति लुप्त है, उसके लिए चन्द्रबिन्दु का प्रयोग सर्वथा अनुचित एवं अव्यावहारिक है। कोई भी भाषाविज्ञान अनुनासिकों को विभक्तियों का वाचक या द्योतक मानने के लिए कभी भी तैयार नहीं है "**उपस्थितस्य गतिश्चिन्तनीया**" इसलिए समीचीन नहीं होगा, क्योंकि अन्य पुरानी प्रामाणिक प्रतियों में उकार और अनुनासिकों का चन्द्रग्रहण नहीं लगा है। गोस्वामी जी ने अपनी कविता को सर्वसुलभ और सर्वबोधगम्य बनाने के लिए ही ऐसी सरल भाषा में लिखा, जिसका अनपढ़ भी सरलता से उच्चारण कर सके। अपने इसी मन्तव्य को स्पष्ट करते हुये गोस्वामीपाद ने बालकाण्ड के तेरहवें दोहे में सुस्पष्ट शब्दों में आज्ञा दी कि कीर्ति, कविता और विभूति वही श्रेष्ठ मानी जाती है जो गङ्गा जी के समान सभी के लिए कल्याणकारिणीं हो। जो कविता सरल हो तथा कीर्ति निर्मल हो उसी का सुजान लोग आदर करते हैं और वही कविता कविता है, जिसे सुनकर स्वाभाविक बैर भूलकर शत्रु भी प्रशंसा करे। यथा–

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।। (मानस, १.१४.९)
सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान।। (मानस, १.१४, क)

यहाँ तो अनुनासिक और उकार का ऐसा भयंकर आडम्बर प्रस्तुत हुआ है, जिससे सामान्य व्यक्ति श्रीरामचरितमानस को इनके अनुसार शुद्ध–शुद्ध पढ़ भी नहीं सकता, कण्ठस्थ करने या समझने की बात तो कोसों दूर रही। कदाचित् प्रचलित प्रतियों के संपादकों के द्वारा श्रीतुलसीदासजी का भी जायसीकरण का कुत्सित प्रयास किया गया है यह सर्वथा अनुचित है। श्रीतुलसीदासजी महाराज जायसी का अनुसरण करें यह अनिवार्य नहीं है। महापुरूष किसी के अनुगन्ता नहीं होते। हिन्दी में एक सूक्ति है–

लीक-लीक तीनों चलें कायर, क्रूर कपूत।
लीक छाँड़ि तीनों चलें सायर, सिंह सपूत।।

गोस्वामीपाद की मान्यता के अनुसार "**गिरा ग्राम्य सियराम जस**" इस खण्ड में प्रयुक्त ग्राम्य गिरा की एक परिभाषा है। उसी ग्राम्य गिरा को गोस्वामीजी ने स्वीकार किया है जिसमें अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव तथा संस्कारयुक्त भाषा की प्रतीति हो। यथा–

अरथ अनूप सुभाव सुभाषा। (मानस १.३७.६)

श्रीतुलसीदासजी के आराध्य श्रीरामजी मर्यादा पुराषोत्तम् हैं, वैसी ही उनकी मर्यादामयी संस्कारसम्पन्न तथा श्रुतिमनोहर भाषा भी है। गोस्वामीजी ग्राम्य गिरा लिखते हैं, किन्तु गँवारी गिरा नहीं लिखते हैं। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ग्राम निवासी संस्कारशून्य एवं असभ्य भाषा का ही व्यवहार करें। ग्राम में भी शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों के लोग रहते हैं। गोस्वामी जी की दृष्टि में आदर्शवादी, सुसंस्कृत, समृद्ध भारत राष्ट्र की परिकल्पना थी। अतएव, तदनुरूप ही उनका वक्तव्य भी था। कोई भी सुधी अमृत को दूषित पात्र में नहीं परोसता है। पात्र से ही भोजन की गुणवत्ता परिलक्षित होती है।

अतएव, श्रीरामचरितमानस में सर्वत्र आंचलिक, असंस्कृत एवं ठेठ शब्दों के प्रयोग की कोई बाध्यता नहीं थी। गोस्वामी जी महाराज का श्रीरामचरिमानस एक ही साथ साहित्यिकों का तथा धर्मपरायण लोगों का भी मार्गदर्शन एवं सम्बल है। अतः सम्पादन में भी मेरे द्वारा दोनों परम्पराओं के समन्वय से पाठ का

निश्चय किया गया है। इसी प्रकार एक 'न्ह' की समस्या है जबकि गोस्वामी जी ने स्वयं इसका प्रयोग नहीं किया है। यथा–

पुनि चरननि मेले सुत चारी। (मानस, १.२०७.५)

इसी आधार पर हमने अपनी सम्पादित प्रति में प्रायश: नकार के साथ जुड़े हकार को हटा ही दिया है, क्योंकि यह प्रयोग ब्रजभाषा का है, जहाँ नकार से विभक्तियों का काम चलाया जाता है, वहाँ भी 'न्ह' संयुक्ताक्षर का प्रयोग नहीं मिलता।

प्रचलित प्रति में तो मानो 'तुम' शब्द को निष्कासित ही कर दिया गया है, उसके स्थान पर मनगढ़न्त रूप से 'तुम्ह' शब्द को प्रतिष्ठित किया गया है। यथा–

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। (मानस, १.१०८.७)
तुम्ह अपराध जोगु नहीं ताता। (मानस, २.४३.३)
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं।
तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं।। (मानस, २.२९१.३)
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। (मानस, ३.६.६)
कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी। (मानस, ३.६.९)
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। (मानस, ४.१.७)
तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई। (मानस, ४.२१.७)
जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया। (मानस, ५.४६.८)
ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे। (मानस, ५.४९.१)
तात तासु तुम्ह प्रान अधारा। (मानस, ६.६१.१४)
राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात। (मानस, ७.२)

इसी प्रकार 'तुम्हहि' शब्द भी अनुपयुक्त ही है। यथा–

भजी तुम्हहि सब देव बिहाई। (मानस, ३.६.७)
पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा। (मानस, २.१२९.६)

'तुम' शब्द का प्रयोग प्रायश: बुन्देलखण्ड के बाँदा क्षेत्र में होता है। मैं विगत् तीस वर्षों से चित्रकूट में निवास करने के कारण बाँदा की भाषा एवं बाँदा की भाषाभाषियों के सम्पर्क में हूँ, वहाँ मैंने कभी भी 'तुम्ह' शब्द का प्रयोग नहीं सुना। प्रचलित प्रतियों के सम्पादकों के मन में यह कहाँ से आया यह तो भगवान ही जाने। अवधी भाषा तथा अन्य भाषाओं में भी कर्तृवाच्य में क्रिया कर्त्ता की अनुगामिनी होती है। यह परम्परा संस्कृत व्याकरण से ही सर्वत्र ली गई है। जबकि प्रचलित प्रतियों में इस नियम का सर्वथा उल्लंघन किया गया है। यथा–

दीन्हि अशीश। (मानस, २.१०६)
आशिश दीन्हि राम प्रिय जाना। (मानस, ५.१७.२)

इसी प्रकार 'जिन्हहिं' 'जिन्ह कर' 'जिन्ह' के इत्यादि स्थलों में शुद्धि का प्रदर्शन करते हुये 'न्ह' संयुक्ताक्षर रखा गया है, जबकि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अन्य ग्रन्थों में तथा मानसजी में भी इस नियम को नहीं माना है। यथा–

राम कृपा अतुलित बल तिनहि। (मानस, ५.५५.२)

जहाँ तक अपभ्रंश का प्रश्न है वहाँ मेरा यही अनुरोध है कि, गोस्वामीपाद जायसी की भाँति अत्यत गँवारू अवधी शब्दों के पक्षधर नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज वैदिक सनातन संस्कृति के उद्गाता तथा सनातन धर्म के व्याख्याता हैं, उन्हें ग्राम्य अवधी स्वीकृत है गँवारू नहीं।

गिराग्राम्य सियराम जस। (मानस, १.१०)

तात्पर्य यह है कि, तुलसीदासजी महाराज ग्राम्य शब्द का प्रयोग करके स्वयं को परिष्कृत अवधी के प्रयोग में रुचिमान सूचित करते हैं, जो 'इदमित्थं' कहि जाइ न सोई, 'पश्यामि राममनामयम्', 'एवमस्तु इति भइ नभ बानी' जैसे परिष्कृत शब्दों के प्रयोग से स्वयं को कृतकार्य मानता हो, वह 'ह्रदउ' 'अचिरिजु' जैसे अत्यन्त गँवारू शब्दों का प्रयोग कैसे करेगा?

इसी प्रकार तालव्य 'श' के सम्बन्ध में भी तुलसीदासजी का मत बहुत सुस्पष्ट है। गोस्वामी जी को उसी स्थान पर तालव्य 'श' के स्थान पर दन्त्य 'स' करना अभीष्ट है जहाँ किसी आपत्तिजनक अर्थ की सम्भावना नहीं हो, जैसे 'सोभा', परन्तु जहाँ तालव्य शकार के स्थान पर दन्त्य सकार के प्रयोग से अमर्यादित अर्थ के बोध की सम्भावना हो वहाँ श्री तुलसीदासजी कभी भी दन्त्य सकार का प्रयोग नहीं करेंगे, यथा–

'शंकर' यहाँ तालव्य शकार के प्रयोग से शंकर का अर्थ शिव होगा तथा दन्त्य सकार का प्रयोग करने से 'संकर' का अर्थ वर्णसंकर हो जायेगा। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए। अब हम कतिपय शब्द सम्बन्धी अपपाठों पर विचार करेंगे।

मानस (१.२.०५) की प्रचलित प्रति में 'साधु चरित सुभ चरित कपासू' पाठ है, इसके विपरीत सभी प्राचीन एवं नवीन प्रतियों में **'साधु चरित शुभ सरिस कपासू'** पाठ मिलता है, हमने भी वही पाठ स्वीकारा है। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के प्रथम मंगलाचरण में 'यस्याङ्के' और द्वितीय मंगलाचरण में **'तथा न मम्ले'** पाठ यद्यपि प्रचलित प्रति एवं राजापुर की पोथी में विद्यमान है, परन्तु इस पाठ में हमें बहुत–सी विसंगतियाँ प्रतीत होती हैं। 'अंक' शब्द का अर्थ गोद है 'यस्याङ्के' शब्द का अर्थ है जिनकी गोद में। यद्यपि शिव जी की गोद में पार्वती जी का विराजमान होना कोई अस्वभाविक नहीं है, तथापि अयोध्याकाण्ड की परिस्थिति एवं ग्रन्थकार की मर्यादापूर्ण प्रस्तुति की दृष्टि से यहाँ यह पाठ पूर्णतया अस्वाभाविक है जबकि अन्य पुस्तकों में इसके विपरीत 'वामाङ्के' पाठ उपलब्ध होता है। यह पाठ गोस्वामी जी के स्वभाव के अनुकूल तथा अयोध्याकाण्ड की परिस्थिति के अनुरूप पूर्ण समीचीन बन पड़ती है। भगवती पार्वतीजी भगवान श्री शिवजी के वामभाग में विराजती हैं और यही नहीं शिवजी ने उन्हें अपना वाम अंग ही बना लिया है। यह तथ्य पुराण प्रसिद्ध है और गोस्वामी जी भी इस मान्यता से सहमत हैं। यथा–

किय भूषन तियभूषन ती को। (मानस, १.१९.७)

सदा शम्भु अरधंग निवासिनी। (मानस, १.९७.३)
वाम अंग अंगना। (कवितावली, ७.१५१)
आवामावामार्द्धे। (नैषध, १३.८५)

आगे चलकर श्री सीताजी के लिए भी गोस्वामी जी इसी शैली का प्रयोग करते हैं। यथा–

सीतासमारोपित वामभागम्।

'यस्याङ्के' शब्द से श्रीउमामहेश्वर का शृंगार पक्ष सुस्पष्ट होता है, जबकि तुलसीदासजी महाराज पार्वती–परमेश्वर के शृंगारवर्णन के पक्ष में नहीं हैं।

जगत मात पितु शम्भु भवानी। तेहिं शृंगार न कहहुँ बखानी। (मानस, १.१०३.४)

शृंगार की दशा में ही पत्नी पति की गोद में बैठती है जबकि वैदिक कार्यों में वामभाग में। अतः हमने भी यहाँ 'यस्याङ्के' के स्थान पर 'वामाङ्गे' को स्वपाठ मान लिया है।

'म्लै' धातु परस्मैपदी है। 'ग्लैम्लै धातुक्षये' लिट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'म्लै' धातु का 'मम्लौ' रूप ही बनता है 'मम्ले' प्रयोग सर्वथा अनुचित अशास्त्रीय और असाधु है। अतः अन्य प्रतियों की भाँति हमनें भी अपनी प्रति में 'मम्लौ' पाठ को ही स्वीकारा है। मानस (४.२६.८९) प्रचलित पाठ की घोर आपत्तियों के कारण अन्य पुस्तकों के अनुरोध से हमने उन्हीं का सम्मत पाठ ले लिया है। प्रचलित प्रति में उपलब्ध पाठ के अनुसार दोनों पंक्तियों में तुक का विरोध और मात्रा की व्यस्तता सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, यथा–

छन एक सोच मगन होइ रहे।
पुनि अस बचन कहत सब भए। (मानस, ४.२७.८)

यहाँ 'रहे' और 'भए' में तुक की घोर विषमता किसी से भी अज्ञात नहीं है, सबको समझ में आ जाती है। अतः अन्य पुस्तकों के अनुरोध से हमने भी 'रहे' के स्थान पर 'गए' पाठ मान लिया है।

''**हम सीता की सुधि लीन्हे बिना।**'' (मानस, ४.२७.९) के स्थान पर हमने अन्य पुस्तकों के अनुरोध से ''**हम सीता कै शोध बिहीना**'' पाठ स्वीकार कर लिया है। सुन्दरकाण्ड के प्रथम मंगलाचरण में सभी प्राचीन एवं मानसपीयूष जैसे आकर ग्रन्थ के अनुरोध से हमनें भी 'निर्वाण' के स्थान पर 'गीर्वाण' पाठ को स्वीकारा है और इसी पाठ के तृतीय मंगलाचरण में 'हेम' के स्थान पर 'स्वर्ण' तथा 'प्रियभक्तं' के स्थान पर 'वरदूतं' पाठ को प्रामाणिकता की कोटि में रखा है। इसी काण्ड के चौवालीसवें दोहे का प्रचलित प्रति वाले 'अंगद हनू समेत' पाठ को भी हमारी बुद्धि ने नहीं स्वीकार किया। यद्यपि इसके समर्थन में पीयूषकार ने भी बहुत पक्ष दिए हैं, तथापि हम तुलसीदासजी जैसे अनन्य हनुमदुपासक के श्रीमुख से उनके इष्टदेव के प्रति सामान्य परिकरों की भाँति नाम के अर्द्धांश काअशिष्ट प्रयोग करना उचित नहीं मानते। अतः अन्य प्रमाणिक पुस्तकों के अनुरोध से हमने भी 'कृपा निकेत' के स्थान पर 'कृपा निधान' तथा अंगद हनू समेत के स्थान पर 'अंगदादि हनुमान' पाठ को ही अपनी सम्पादि प्रति में स्वीकार किया है। इसी प्रकार इसी काण्ड के ५४वें दोहे के उत्तरार्द्ध को भी प्राचीन प्रतियों के अनुसार ''**दधिमुख केहरि कुमुद गव**'' शब्द खण्ड से युक्त मैंने स्वीकार किया है। प्रचलित प्रति में प्रयुक्त ''**निसठ सठ**''

नाम में वानरों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। मानस, ५.५६,ख. को तो हमने सभी प्राचीन प्रतियों के आधार पर प्रचलित प्रति से पूर्णरूपेण परिवर्तित कर दिया है।

षष्ठ सोपान तो अपपाठों से ही प्रारम्भ होता है, **'निशिचर निकर निवासपुरी'** लंका के नाम पर श्रीरामचरितमानस के काण्ड का नामकरण सम्भव ही नहीं है। भला खलनायक के नाम पर नायक के यशोगान का शीर्षक कैसे हो सकता है? इसलिए हमनें प्रचलित प्रति में प्राप्त 'लंकाकाण्ड' शीर्षक के स्थान पर 'युद्धकाण्ड' शीर्षक ही प्रामाणिक माना है, जो कोदौराम की प्रति तथा अन्य प्रामाणिक पुस्तकों से अनुमोदित है। मानस, (६.३२.५) में प्रचलित प्रति में ***''भूतल परेउ मुकुट अति सुन्दर''*** पाठ माना है, जो सर्वथा सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि तुलसीदासजी ने भगवान श्रीरामजी के पक्ष में प्रयुक्त होने वाले लीला परिकरों को ही 'अति सुन्दर' शब्द से विशेषित किया है। यथा–

अतिसुन्दर दीन्हे जनवासा। (मानस, १.३०५.६)
रामनाम अंकित अति सुन्दर। (मानस, ५.१३.१)
लागे कहन कथा अति सुन्दर। (मानस, ५.३३.३)

फिर यह अति सुन्दर शब्द रावणपक्षीय परिकरों के लिए गोस्वामीजी द्वारा कैसे प्रयुक्त किया जा सकेगा ? अतएव हमनें कोदौराम प्रति तथा अन्य प्रतियों के अनुमोदन से "गिरत दशानन उठेउ सँभारी"। भूतल परे मुकुट षट चारी।।" यह परिवर्तित पाठ ही अपनी सम्पादित प्रति में ले लिया है।

सुन्दरकाण्ड में प्रयुक्त श्रीसीताजी के कथन के अनुसार रावण मायाबल से श्रीरामजी की मुद्रिका का भी निर्माण नहीं कर सकता–

माया ते अस रची न जाई। (मानस, ५.१३.३)

तो फिर उसके द्वारा मायाबल से श्रीरामजी की रचना कैसे सम्भव है ? जबकि प्रचलित प्रति के पाठ के अनुसार रावण ने माया से भगवान श्रीरामजी की भी रचना कर दी। यथा–

देखि कपिन्ह निशाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसल धनी।।
बहु राम लछमन देखि मरकट भालु मन अति अपडरे।।
(मानस, ६.९०.८-९)

यद्यपि इसके समर्थन में पीयूषकार ने महाभारत के वनपर्व की श्रीरामकथा का उद्धरण देते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि महाभारत की श्रीरामकथा में रावण द्वारा माया से भी श्रीरामजी के निर्माण का प्रसंग मिल जाता है, परन्तु यह पक्ष तुलसीदासजी को अभीष्ट नहीं है। यदि ऐसा होता तब वे श्रीसीताजी से इसके विरुद्ध वाक्य क्यों कहलवाते **''माया ते अस रची न जाई।''**

गोस्वामी जी की दृष्टि में कोई भी उनके आराध्य भगवान् श्रीरामजी की रचना कर ही नहीं सकता। इस सिद्धान्त के पोषण में महाकवि श्रीतुलसीदासजी महाराज ने अयोध्याकाण्ड की वनपथ–कथा के प्रसंग में ग्रामवधुओं से एक रोचक उत्प्रेक्षा भी करा डाली,

इन्हहिं देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावइ लागा।। (मानस, २.१२०.५)
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं ईर्ष्या बन आनि दुराए।। (मानस, २.१२०.६)

अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी के रूपमाधुरी को देखकर ब्रह्माजी के मन में बहुत अनुराग हुआ और वे इनकी उपमा के योग्य उपमानों की रचना करने लगे, जब बहुत श्रम करने पर भी श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी के उपमान नहीं बना पाए तब उसी ईर्ष्या के कारण ब्रह्माजी ने ही इन तीनों को वन भिजवा दिया।

निष्कर्षत: श्रीतुलसीदासजी के श्रीराम मायातीत होने से किसी के द्वारा मायाबल से बनाए नहीं जा सकते। जबकि प्रचलित प्रति में रावण द्वारा मायाबल से श्रीरामजी का निर्माण वर्णित हुआ। अतएव हमनें कोदौराम की प्रति तथा अन्य प्रतियों में छपे हुए पाठ को ही प्रामाणिक माना और प्रचलित पाठ को निरस्त किया।

यहाँ दो चौपाई तथा उनके पश्चात् आनेवाले छन्द के प्रथम चरण का हमनें प्राचीन प्रतियों के आधार पर पाठ परिवर्तन किया है। यथा–

सब काहू मानी करि साँची।
बहु अंगद लछिमन कपि धनी।।
बहु बालिसुत अंगद कपीश बिलोकि मरकट अपडरे।

प्रचलित प्रति में मानस (६.१०१) का भी पाठ अनुचित है। जहाँ श्रीतुलसीदासजी को मक्खी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जबकि मक्खी श्रीतुलसीदासजी के ही द्वारा अन्यत्र खल के मन का उपमान बनी है–

परहित घृत जिनके मन माखी। (मानस, १.४.४)

यहाँ की प्रस्तुति देखिए–

जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास।

अतएव प्रचलित प्रति का यह पाठ निरस्त करके हमने यहाँ कोदौराम प्रति तथा और सभी प्राचीन अर्वाचीन प्रतियों में मुद्रित पाठ को ही प्रसन्नतापूर्वक अपनी सम्पादित प्रति में ले लिया है। यथा–

कहे तासु गुनगन कछुक, जड़मति तुलसीदास।
निज पौरुष अनुरूप जिमि, मशक उड़ाहिं अकास।। (मानस, ६.१०१ क.)

गोस्वामी जी ने इस प्रकार की उपमा अन्यत्र भी दी है–

तुमहि आदि खग मशक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता।। (मानस, ७.९१.५)

इसी प्रकार मानस (६.३२) तथा मानस (६.६० क.) के पश्चात् प्रचलित प्रति में स्वकल्पित दोहे बना दिए गए हैं, जबकि इसके अतिरिक्त सभी प्राचीन–अर्वाचीन प्रतियों में दो–दो चौपाईयाँ उपलब्ध हैं, यथा–

प्रचलित प्रति– **उहाँ सकोपि दसानन, सब सन कहत रिसाइ।**
धरहु कपिहिं धरि मारहु, सुनि अंगद मुसकाइ।। (मानस, ६.३२ख.)
संशोधित प्रति– **उहाँ कहत दशकन्ध रिसाई। धरि मारउ कपि भाजि न जाई।।**
प्रचलित प्रति– **तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।**

अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत।। (मानस, ६.६०क.)

संशोधित प्रति- तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहों राम बान की नाईं।।
भरत हरषि तब आयसु दयऊ। पद सिर नाइ चलत कपि भयऊ।।

उत्तरकाण्ड की गरुड़ गीता प्रसंग में प्रचलित प्रति के पाठानुसार भुशुण्डीजी के यहाँ श्रीरामकथा श्रवणार्थ वृद्ध–वृद्ध पक्षियों का आना ही प्रतिपादित किया गया है। यथा–

बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। (मानस, ७.६२.४)

इस प्रतिपादन से तो श्रीरामकथा के श्रवण में युवकों एवं बालकों का अधिकार ही निरस्त हो जाएगा, जबकि गोस्वामी जी के अनुसार बालक, युवक, वृद्ध सभी श्रीरामकथा के अधिकारी हैं। निश्चित ही प्रचलित प्रति के पाठ के प्रति लिपिकर्त्ता से कोई प्रमाद हुआ है। श्रीरामेश्वर भट्ट की प्रति में हमनें 'बृद्ध बृद्ध' के स्थान पर 'वृन्द वृन्द' पाठ देखा है और उसी को गोस्वामी जी का मूल पाठ मानकर अपनी प्रति में भी स्वीकार किया है– **''बृन्द बृन्द बिहंग तहँ आए।''** (मानस, ७.६२.४)

यहाँ लेख विस्तार भय से कतिपय प्रसंग ही दिखाए गए हैं । कतिपय स्थलों पर हमने प्रचलित पाठ का आमूलचूल परिवर्तन भी किया है तथा प्रचलित प्रति में मुद्रित न होने पर भी श्रीरामकथा का आवश्यक अंग तथा प्रसंग सिद्धान्त महाकवि की भावना के अनुकूल जानकर तीन छन्द, दो दोहे तथा बाईस चौपाईयाँ आदरपूर्वक अपनी प्रति में स्वीकारी है, जो कोदौराम की प्रति तथा अन्य प्रतियों में भी सादर संगृहीत हैं। इसी प्रकार–

करउ अनुग्रह अस जियजानी। (मानस, १.१४.१२)
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। (मानस, २.२०.४)
कह गुरु बादि छोभ छल छाडू। (मानस, २.२१८.१)

सभी प्राचीन तथा नवीन प्रतियों में मुद्रित हैं। न जाने क्यों इन्हें प्रचलित प्रति में क्यों नहीं लिया गया है, परन्तु हमने अपनी प्रति में इन्हें भी सादर संगृहीत कर लिया है। प्राय: मानस पीयूष प्रचलित प्रति की वकालत करता हुआ–सा दिखता है, परन्तु प्रचलित प्रति के कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ पीयूष ने भी उसका साथ छोड़ दिया है। यथा–मानस, १.३४४.१, १.१९९.५, ५.३५.९ और ६.१११.९ इत्यादि। कहीं–कहीं तो प्रचलित प्रति की हठधर्मिता बहुत खुलकर सामने आ गई हैं। जैसे– मानस, १.२६०.७ "प्रभुतन चितए प्रेमतन ठाना।" मानस, १.२९६.६ "तदपि प्रीत की प्रीत सुहाई।" मानस, १.१७५.७ "परम तुम्हार राम कर जानिहि।" मानस, ५.५४ "दधिमुख केहरि निशठ शठ" जबकि इनके विरुद्ध अन्य प्रतियों में शुद्ध पाठ निम्न रूप से छपे हैं–

(क) प्रभुतन चितइ प्रेम पन ठाना।
(ख) तदपि प्रीति की रीति सुहाई।
(ग) मरम तुम्हार राम करि जानहिं।
(घ) दधिमुख केहरि कुमुद गव।
(ङ) सब रूप सदा सब होइ न जो।

एक ऐसा भी स्थल है जहाँ सत्य की रक्षा के लिए मुझे प्रायशः प्राचीन और नवीन प्रचलित प्रतियों की भी अनदेखी करके नौ चौपाईयाँ तथा दो दोहे साहसिक निर्णय करते हुए अपनी प्रति में रखना पड़ा है जिन्हें, ज्वालाप्रसाद, रामेश्वर भट्ट, कपूरथला प्रति एवं और भी अनगिनत प्राचीन प्रतियों में सादर संगृहीत किया गया है और मेरे पूज्य पितामह जी ने भी जिस प्रति से मुझे मानसजी कण्ठस्थ कराया था उसमें भी ये संगृहीत थे। यह प्रसंग है अरण्यकाण्ड के सीताहरण का जिसमें 'लक्ष्मण रेखा' तथा 'रावणभिक्षाटन' प्रकरण को प्रचलित प्रतियों में नहीं संगृहीत किया गया है। 'लक्ष्मण रेखा' प्रकरण तो इतना प्रसिद्ध हो चुका है कि प्रायः सम्पूर्ण भारतीय जनमानस एवं विश्व के ९० प्रतिशत पढ़े-लिखे लोगों की जीभ पर बैठ सा गया है। भारत में तो लक्ष्मण रेखा एक लोकोक्ति सी बन गई है। सामान्यतया लोग कहते सुने जाते हैं कि "लक्ष्मण रेखा नहीं लाँघनी चाहिए"। संस्कृत में हनुमन्नाटक आदि रामायण साहित्य, हिन्दी में रामचन्द्रिका आदि लोक साहित्य के साथ श्रीरामचरितमानस की मन्दोदरी भी लक्ष्मण रेखा की चर्चा से वंचित नहीं रही। "रामानुज लघु रेख खिंचाई।" (मानस, ६.३६.२.) इसी प्रकार यतिवेषधारी रावण का भिक्षाटन भी बहुत प्रसिद्ध प्रकरण है। अतः इन दोनों प्रसंगों की चौपाईयों को हमने पूर्व निर्दिष्ट प्रतियों के आधार पर ज्यों का त्यों अपनी प्रति में संगृहीत कर लिया है। इसी प्रकार अनेकशः स्थलों में प्रचलित पाठगत आपत्तियों को निराकृत करते हुए भिन्न-भिन्न प्रतियों से गोस्वामी जी के सिद्धान्तानुकूल पाठों को हमने संग्रह मात्र किया है, अपने मन से कुछ भी जोड़ा या तोड़ा नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी की ही कृपा से मेरी मृतप्राय जीवनयात्रा 'स्वर्णयात्रा' बनी और वह उन्हीं की कृपा से 'हीरकयात्रा' एवं 'अमृतयात्रा' की भी तैयारी में है। इसलिए मैं अनन्त जन्मों के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी का ऋणी हूँ। मेरा रोम-रोम प्रतिक्षण उनकी कृतज्ञता का बोध करता है। मेरा प्रत्येक श्वास गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज की कृपा-कादम्बिनी की शीतलछाया में ही चल रहा है। सत्य तो यह है कि मैंने अब तक गोस्वामी तुलसीदासजी का ही नमक खाया है, अभी भी खा रहा हूँ, और भविष्य में भी खाता एवं खिलाता रहूँगा। गोस्वामी तुलसीदासजी के कालजयी महाकाव्य श्रीरामचरितमानस भगवान् ने मेरी जीवन कर्मनाशा को जीवनजाह्नवी बनाया। मैं एकमुख से उनके कितने उपकार कहूँ, उपकार, अनन्त उपकार, असंख्य उपकार, अगणित उपकार, अपरिमित उपकार। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि मैंने श्रीरामचरितमानसजी के अब तक चार हजार से ऊपर मौखिक पाठ किये। क्योंकि मुझे मानसजी कण्ठस्थ किये हुए पचास वर्ष हो चुके हैं, इसलिए उनके पौर्वापर्यविचार में श्रीसीतारामजी की कृपा से प्रायशः मैं निःसन्दिग्ध तथा विश्वस्त एवं आश्वस्त हूँ। मुझे श्रीरामचरितमानसजी के प्रति भगवान् वेद की भाँति ही अपूर्व श्रद्धा है। मैं भगवान् वेद के ही समान श्रीरामचरितमानसजी के प्रत्येक अक्षर को भूतार्थ परमप्रामाणिक अप्रामाण्यज्ञानानाशकन्दित, त्रिकालाबाधित, सत्यस्वरूप स्वतः प्रमाण, श्रीरामजी का विग्रह ही मानता हूँ और वस्तुतः यही विश्वग्रन्थशेखर श्रीरामचरितमानस भगवान **"भारतीय राष्ट्रग्रन्थ"** होने की पूर्ण पात्रता रखते हैं। इनका सम्पादन करके और आम जन तक इनके सामान्य अर्थ को पहुँचा कर मैं मानस भगवान् के चरण में केवल विवेक पुष्पांजलि ही प्रस्तुत कर रहा हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजी को भावांजलि समर्पित करने के लिए ही श्रीचित्रकूट में मैंने श्रीतुलसीपीठ की प्रतिष्ठापना की। अतः यह सम्पादन भी **"श्रीतुलसीपीठ संस्करण"** के नाम से जाना जाएगा। जिसे हजार आँख वाले भी करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे उसी

कार्य को बन्द आँखो वाला मैं खेल–खेल में सानन्द सम्पन्न कर रहा हूँ। यह तो केवल मेरे परमाराध्य कौसल्याक्रोडवर्ती शिशु वेषधारी सरकार श्रीराघवजू की ही कृपाकटाक्ष का प्रभाव है।

मैं उन्मुक्त भाव से अवनतकन्धर होकर उन सभी मानसजी के प्राचीन एवं नवीन प्रतियों के प्रति भूरि–भूरि आभार स्वीकार करता हूँ, जिनसे मुझे इस सम्पादन में सत्क्रियात्मक या प्रतिक्रियात्मक सहयोग मिला।

मैं धन्यवाद निवेदित कर रहा हूँ मानस पीयूष, मानसगूढ़ार्थचन्द्रिका मानसमयंक, विनायकी, विजया, बालबोधिनी, ज्वालाप्रसादीय, रामेश्वरभट्टीय, गीताप्रेस आदि मानसजी की सभी प्रामाणिक टीकाओं एवं टीकाकारों के प्रति जिनके सद्‌विचार सम्बल से मैं इस दुर्गम पथ को पार कर सका।

''हम तो हमारे राघव जू के राघव जू हमारे हैं''

मैं निःसंकोच मन से सादर कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ अपनी बड़ी बहन, श्रीराघव एवं राघवपरिवार की 'बुआ जी' जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग शिक्षण संस्थान, चित्रकूट, उ०प्र० की महासचिव, जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट, उ०प्र० के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति की सचिव डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा जी के प्रति, जिनके अनिर्वचनीय सहयोग के कारण ही इस शताब्दी का यह गुरुतम कार्य मैं सानन्द सम्पन्न कर पाया। वस्तुतः मेरी जीवन–जाह्नवी के साथ यह रविनन्दिनी न होती तो कदाचित् यह सारस्वत प्रयाग भी न होता। मैं अपने सहयोगी श्रीदुर्गाप्रसाद द्विवेदी, वित्ताधिकारी, जे०आर०एच०यू० के प्रति बहुत आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस सम्पादन–कार्य में मुझे अमूल्य समय एवं सुझाव दिए। मैं प्रो० योगेशचन्द्र दुबे, संस्कृत विभागाध्यक्ष, जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय को अनेक आशीर्वाद देता हूँ जिन्होंने अत्यन्त श्रमपूर्वक इस ग्रन्थ में वर्तनी संशोधन का कार्य सम्पन्न कियाा। मैं प्रो० सत्यप्रकाश मिश्र, हिन्दी विभागाध्यक्ष, प्रयाग विश्वविद्यालय को निज सौहार्दभाजन को अनेक साधुवाद प्रदान करता हूँ जिन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार करके मेरे विश्वविद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र के मानद निदेशक पद को अलंकृत करके तथा इस संस्करण का प्रकाशकीय लिखकर अपनी सरस्वती को पवित्र किया तथा सुधी पाठकजनों को अनुगृहीत किया।

इस प्रकार श्रीतुलसीपीठ संस्करण का यह प्रामाणिक भावार्थबोधिनी टीका मानस पाठकों के लिए तथा श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ करनेवालों के लिए परम उपादेय होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

इक्कीसवीं शताब्दी का यह भावार्थबोधिनी टीका का तुलसीपीठ संस्करण सूर्य, जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट, (उ०प्र०) रूप उदयाचल से ही प्रकाशित हो रहा है, जिसे निहारकर मैं जीवनपर्यन्त कश्यप जैसे परमानन्द की अनुभूति करता रहूँगा।

रामभद्र आचारज द्वारा शुभ सम्पादित।
भिन्न भिन्न संशोधन विविध प्रतिन प्रतिपादित।।
तुलसीदास भनित वर सीतारामविमल जस।
रामचरितमानस मंगलमय भगतिसुधारस।।
अमितकाल जावत लसौ भारतीय संस्कृतिभरन।

गिरिधर सम्पादित बिसद तुलसीपीठ शुभ संस्करण।।

अन्ततः यह साहित्यिक प्रसूनांजलि मैं अपने भगवान गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज के ही कर कमलों में सादर समर्पित कर रहा हूँ।

यावद् राजति राजराजमुकुटालंकारहीरो हरिः
श्रीरामः सह सीतया सभगवान सौमित्रिसंसेवितः।
यावत्तिष्ठति मारुतिहरिकथापीयूषपानव्रती
तावद्रामचरित्रमानसमिदं श्री चित्रकूटेऽवतु।।

।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

इति मंगलमाशास्ते।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी डॉ० रामभद्राचार्य
जीवनपर्यन्त कुलाधिपति,
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, (उ० प्र०)

!!श्रीमद्राघवो विजयते!!

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
की

जीवन जाह्नवी

अनादिकाल से प्राणिमात्र के ऐहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले सनातनधर्म की जगद्गुरुपरम्परा में ऐसे विरले महापुरुष इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं, जिन्होंने अपने दिव्यज्ञान, शाश्वतचिन्तन एवं महनीय तप के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सफल मार्गदर्शन किया है। सौभाग्य से इसी अक्षुण्ण परम्परा में धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, समस्ततुलसीसाहित्यकण्ठस्थीकृत, श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज का शुभनाम बहुत श्रद्धा और गर्व से लिया जाता है। सनातन धर्म के क्षेत्र में शास्त्रीय समाधान एवं राष्ट्रदेव के आराधन में सन्तों का योगदान प्रस्तुत करने वाले दुर्लभ महापुरुषों में पूज्यपाद जगद्गुरुजी की गणना सम्मानपूर्वक की जाती है।

आविर्भाव– उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में शांडी खुर्द नामक ग्राम में १४ जनवरी १९५० ई० को मकर संक्रान्ति की प्रथमप्रहरीय रात्रि वेला में वशिष्ठगोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्रवंश में पूज्य माता श्रीमती शची देवी एवं पूज्य पिता पं० राजदेव मिश्र के घर एक अलौकिक दिव्यशक्ति का आविर्भाव हुआ। पूज्य पितामह पं० सूर्यबली मिश्र जी ने इस अद्भुत बालक का नाम 'गिरिधर मिश्र' रखा।

ईश्वरेच्छा बलीयसी– जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर ने बालक गिरिधर के हितार्थ सांसारिक प्रपंचों से दूर रखने के लिए कुछ और ही सोच रखा था। अतः जन्म के दो मास पश्चात् ही बालक के कोमल नेत्रों को रोहे रूपी राहु ने सदा–सदा के लिए ग्रस लिया। यह घटना पारिवारिक सदस्यों के लिए तो हृदयविदारक बनी, किन्तु बालक गिरिधर और सम्पूर्ण मानवमात्र के लिए वरदान सिद्ध हुई। बाह्यचक्षु बन्द होने के साथ ही दिव्यज्ञान के अन्तर्चक्षु खुल गये। तभी से इस बालक को निरन्तर परमात्मतत्त्व के चिन्तन और मनन के अतिरिक्त अन्य कोई सांसारिक प्रपंच लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सका।

प्रारम्भिक शिक्षा– बालक गिरिधर को अन्तर्मुखता का उदय होते ही दिव्य मेधाशक्ति तथा विलक्षण स्मरणशक्ति के बल पर कठिनतम श्लोक, आदि अनेक दुर्लभ विधाएँ एक बार सुनकर ही कण्ठस्थ हो जाती थीं। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही इस "गौरवटु" ने सम्पूर्ण गीताजी तथा आठ वर्ष की अवस्था में पूज्य पितामह पं० सूर्यबली मिश्र जी के प्रयास से श्रीरामचरितमानसजी क्रमबद्ध–पंक्तिसंख्या सहित कण्ठस्थ करके मानो यज्ञोपवीत संस्कार कराने की पात्रता स्वयं अर्जित कर ली। इस दिव्यप्रतिभा से समन्वित स्मरणशक्ति के फलस्वरूप शनैः–शनैः संस्कृत व्याकरण के मूर्धन्य ग्रन्थ, श्रीमद्भागवतमहापुराण, अनेक उपनिषद तथा पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के सम्पूर्णग्रन्थ धाराप्रवाह शैली में कण्ठस्थ हो गये। तदनन्तर श्रीअवधजानकीघाट के प्रवर्तक श्री १००८ श्रीरामबल्लभाशरणजी महाराज के परम कृपापात्र पं० ईश्वरदासजी महाराज ने बालक गिरिधर को

श्रीराममन्त्र की दीक्षा दी। आगे चलकर यही बालक गिरिधर युगपुरुष की कोटि में आकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के नाम से प्रख्यात हुए।

उच्च शिक्षा- वैष्णवोचित परम्परा की दीक्षाग्रहण करने के पश्चात् स्थानीय आदर्श गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष तक पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप उच्च शिक्षा हेतु वाराणसी गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किये। इसी कालखण्ड में अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में व्याकरण-सांख्य- न्याय-वेदान्त-श्लोकान्त्याक्षरी और समस्यापूर्ति की असाधारण ज्ञान के फलस्वरूप प्रथम पाँच पुरस्कार प्राप्त किये। उल्लेखनीय है कि पूज्य आचार्यचरणों ने अभिनवपाणिनि, व्याकरण-विभागाध्यक्ष पूज्य पं० श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी जी (वाराणसी) से व्याकरण की भाष्यान्त शिक्षा प्राप्त की। इतना ही नहीं इसी विश्वविद्यालय से "अध्यात्मरामायणे अपाणिनीय प्रयोगानां विमर्शः" विषय पर अनुसन्धान करके विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) तथा "अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्धबोधसमीक्षणम्" विषय पर शिक्षा जगत् की सर्वोच्च उपाधि "वाचस्पति" (डी.लिट्) प्राप्त की।

जगद्गुरु एवं धर्मचक्रवर्ती उपाधि- सन् १९८७ ई० में पूज्यपाद आचार्यश्री ने अपने इष्टदेव भगवान श्रीराघवेन्द्र सरकार की विहारस्थली एवं कर्मभूमि श्रीचित्रकूटधाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। तभी से सन्त महात्माओं एवं मनीषियों के द्वारा आप "श्रीतुलसीपीठाधीश्वर" के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसी क्रम में २४ जून १९८८ को काशी नगरी में तथा १ अगस्त १९९५ ई० को दिगम्बर अखाड़ा अयोध्या में अनेक सन्त, महन्त, विद्वान एवं श्रीवैष्णवों द्वारा आपको "जगद्गुरुरामानन्दाचार्य" के पद पर विधिवत् अभिषिक्त किया गया। उपाधियों के इसी क्रम में १९९८ में हरिद्वार के महाकुम्भ के पावनपर्व पर पूज्यपाद जगद्गुरु जी को विश्वधर्मसंसद द्वारा "धर्मचक्रवर्ती" के सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया गया पश्चात् २००१ ई० में भाउराव देवरस पुरस्कार, लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली द्वारा २००२ ई० में महामहोपाध्याय, सन् २००३ ई० में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा महर्षि बादरायण पुरस्कार तथा दिवालीबेन मेहता पुरस्कार, २००५ ई० में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा २००६ ई० में रामकृष्णजयदयाल डालमिया फाउण्डेशन द्वारा श्रीवाणीअलंकरण पुरस्कार प्राप्त हुये। सत्य भी है- **क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे**।

श्रीरामभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति के विलक्षण उद्गाता- विगत् पाँच दशकों से पूज्यपाद जगद्गुरुजी सम्पूर्ण भारत तथा विश्व के अनेक देशों में श्रीरामकथा की मन्दाकिनी, श्रीकृष्णकथा की कालिन्दी तथा अन्य वैदिकग्रन्थों की सरस्वती से हिन्दु जनमानस के अभ्युदय एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। पूज्यपाद जगद्गुरु जी आज भी अपने दिव्य प्रवचनों के माध्यम से भारत के वर्तमान धर्मविहीन स्वरूप से दुःखी होकर भारत राष्ट्र को आदर्श रामराज्य युक्त देखने के लिए आशान्वित रहते हैं। यही कारण है कि "श्रीराम ही राष्ट्र हैं एवं राष्ट्र ही श्रीराम हैं" का शंखनाद पूज्यपाद जगद्गुरुजी के प्रवचनों में सदैव गुंजता रहता है। भारत में ही नहीं अपितुविदेशों में भी पूज्यपाद जगद्गुरुजी भारतीय आर्षग्रन्थों में वर्णित सनातनधर्म सिद्धान्तों की तथा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीरामजी के उदात्त आदर्शों की विलक्षण व्याख्याओं से प्रवासी भारतीयों के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्यनिष्ठा जागृत करने में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं।

अनुपम कृतित्व- अत्यधिक प्रसन्नता का विषय यह भी है कि पूज्यपाद जगद्गुरुजी के व्यक्तित्व के साथ-साथ कृतित्व भी इतना विलक्षण एवं गम्भीर है कि समस्त विद्वानों के लिए औषध और जिज्ञासु साधकों के लिए पाथेय सिद्ध होता है। पूज्यआचार्यश्री ने संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, उड़िया, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अनेक भाषाओं में आशुकविता के माध्यम से श्रीरामकथा, श्रीकृष्णकथा एवं अनेक दुर्लभ पौराणिक प्रसंगों को सुन्दर एवं सरस शैली में छन्दोबद्ध किया है।

उल्लेखनीय है कि जगद्गुरु जी की पराऋतम्भरा प्रज्ञा से अब तक ७५ पुस्तकें प्रकाशित हैं। जिनमें प्रमुख हैं-

(क) महाकाव्य

१. भार्गवराघवीयम् (संस्कृतमहाकाव्य), प्रकाशक- जगद्गुरुरामभद्राचार्य विकलांगविश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०)
२. अरून्धतीमहाकाव्य (हिन्दी महाकाव्य), प्रकाशक- श्रीराघवसाहित्य प्रकाशननिधि, राजकोट (गुजरात)

(ख) खण्डकाव्य -

१. आजादचन्द्रशेखरचरितम् (संस्कृतकाव्य), प्रकाशक- श्रीतुलसीपीठसेवान्यास आमोदवन, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)
२. लघुरघुबरम् (संस्कृतकाव्य), प्रकाशक- श्रीतुलसीपीठसेवान्यास आमोदवन, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)
३. सरयूलहरी (संस्कृतकाव्य), प्रकाशक- श्रीतुलसीपीठसेवान्यास आमोदवन, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)
५. काका विदुर (हिन्दी काव्य), प्रकाशक - श्रीगीताज्ञानमन्दिर, राजकोट (गुजरात)
६. माँ शबरी (हिन्दीखण्डकाव्य), प्रकाशक- गिरिधरकोशलेन्द्र समिति दरभंगा (बिहार)

(ग) नाटककाव्य

१. श्रीराघवाभ्युदयम् एकांकीनाटक (संस्कृत), प्रकाशक- श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)
२. उत्साह (हिन्दीनाटक), प्रकाशक- श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)

(घ) पत्रकाव्य

१. कुब्जापत्रम् (संस्कृतपत्रकाव्य), प्रकाशक- जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०)

(ङ.) गीतकाव्य

१. राघवगीतगुंजन (हिन्दीगीतकाव्य), प्रकाशक- श्रीराघवसाहित्य प्रकाशननिधि, राजकोट (गुजरात)
२. भक्तिगीतसुधा (हिन्दीगीतकाव्य), प्रकाशक- श्रीराघवसाहित्य प्रकाशननिधि, राजकोट (गुजरात)

(च) शतककाव्य -

१. श्रीरामभक्तिसर्वस्वम् (शतककाव्य एवं स्त्रोत्रकाव्य), प्रकाशक- त्रिवेणीधाम पो०-साईबाड जयपुर(राजस्थान)
२. आर्याशतकम् (संस्कृत- अप्रकाशित)
३. चण्डीशतकम् (संस्कृत- अप्रकाशित)
४. राघवेन्द्रशतकम् (संस्कृत- अप्रकाशित)
५. गणपतिशतकम् (संस्कृत- अप्रकाशित)
६. श्रीराघवचरणचिन्हशतकम् (संस्कृत - अप्रकाशित)

(छ) स्तोत्रकाव्य -

१. श्रीगंगामहिम्नः स्त्रोतम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक– श्रीराघवसाहित्य प्रकाशननिधि राजकोट (गुजरात)
२. श्रीजानकीकृपाकटाक्षस्तोत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक– श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)
३. श्रीरामबल्लभास्त्रोतम्, (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक– श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)
४. श्रीचित्रकूटविहार्याष्टकम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक– श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)
५. भक्तिसारसर्वत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक– श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)
६. श्रीराघवभावदर्शनम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य), प्रकाशक –श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)

दर्शन एवं भाष्यग्रन्थ

प्रकाशक– श्रीतुलसीपीठसेवान्यास, चित्रकूट (म०प्र०)

१. श्रीरामस्तवराजस्तोत्र श्रीराघवकृपाभाष्यम्
२. ब्रह्मसूत्रेषु श्रीराघवकृपाभाष्यम् (संस्कृतग्रन्थ)
३. श्रीमद्भगवद्गीतासु श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
४. कठोपनिषदि श्रीराघवाकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
५. केनोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
६. माण्डूक्योपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
७. ईशावास्योपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम्(भाष्यग्रन्थ)
८. प्रश्नोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
९. तैत्तरीयोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
१०. ऐतरेयोपनिषदि (भाष्यग्रन्थ)
११. श्वेतश्वतरोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
१२. छान्दोग्योपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
१३. वृहदारण्यकोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ)
१४. श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु श्रीराघवकृपाभाष्यम् (भाष्यग्रन्थ), प्रकाशक– श्रीराघवसाहित्यप्रकाशननिधि राजकोट (गुजरात)
१५. श्रीगीतातात्पर्य (दार्शनिकहिन्दीग्रन्थ), प्रकाशक– श्रीराघवसाहित्यप्रकाशननिधि (गुजरात)

शोधग्रन्थ : १. अध्यात्मरामायणे अपाणनीयप्रयोगाणाम विमर्शः
२. पाणिनीयाष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रम् शाब्दबोध समीक्षणम्

पूज्यपाद जगद्गुरुजी द्वारा प्रणीत संस्कृत–हिन्दी के ऐसे और अनेक ग्रन्थों से जहाँ एक ओर धर्मप्राण जनता को लोकोत्तर आनन्दाब्धि में अवगाहन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर संस्कृत और सस्कृति के अनेक अनुसन्धित्सुओं को तत्त्व एवं शास्त्रचिन्तन की गम्भीर व समुचित दिशा भी प्राप्त होती है। जनता के साथ–साथ शासकवर्ग भी पूज्यपाद जगद्गुरुजी के इस अनुपम कृतित्व से उपकृत है। सन् १९९६ ई० में तत्कालीन

महामहिम राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा **'अरुन्धती महाकाव्य'** का विमोचन सम्पन्न हुआ।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा १९९८ में ऐतिहासिक एवं विशालकाय ग्रन्थ **प्रस्थानत्रयीभाष्य** तथा अक्टूबर २००२ ई० में २१ वीं शताब्दी के प्रथम संस्कृतमहाकाव्य **श्रीभार्गवराघवीयम्** का लोकार्पण उल्लेखनीय है। इन भव्य समारोहों में महामहिम राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री दोनों ने ही पूज्यपाद जगद्गुरुजी के प्रति सम्पूर्ण राष्ट्र की ओर से एवं व्यक्तिगत रूप से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की है।

अविकल विकलांग सेवा– उल्लेखनीय है कि पूज्य जगद्गुरु जी ने विकलांगता के कालकूट को स्वयं पिया है उससे अन्य विकलांग बहिन–भाईयों को बचाने के लिए इन्होंने विश्व के प्रथम "जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)" की जुलाई २००१ ई० में स्थापना की है। उत्तरप्रदेश शासन ने इन्हीं को इस विश्वविद्यालय का जीवनपर्यन्त कुलाधिपति नियुक्त किया है। सभी प्रकार के विकलांगों को पूर्ण शिक्षित बनाने के लिए तथा उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण दिलाने के लिए इस विश्वविद्यालय में निःशुल्क सेवा का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। विकलांगों को आत्मनिर्भर देखने का स्वप्न संजोने वाले पूज्य जगद्गुरुजी का यह उद्घोष कितना मार्मिक है–

मानवता ही मेरा मन्दिर, मैं हूँ इसका एक पुजारी।
हैं विकलांग महेश्वर मेरे, मैं हूँ इनका कृपाभिखारी।।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व के असाधारण ज्योतिपुंज, लोकोत्तर प्रतिभा के धनी, प्रगाढ़ पाण्डित्य के निदर्शन, सरस एवं सरल व्यक्तित्व के साक्षातस्वरूप, आर्षपरम्परा के दुर्लभ विभूतियों की मणिमाला में सुमेरू की भाँति महत्वपूर्ण व्यक्तिव के रूप में प्रख्यात पूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज मानवमात्र का कल्याण साधन करके जहाँ अपने जगद्गुरुत्व के प्रति जागरूक हैं वहीं भारतराष्ट्र को पुनः जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिए मन, वाणी और कर्म से पूर्णतया समर्पित भी हैं।

राजदेवात्मजो विप्रो वाशिष्ठश्च श्शचीभवः।
गीताभ्राता गिरिधरो रामभद्रो जगद्गुरुः।।

इति निवेदयते
डॉ० कुमारी गीता देवी मिश्रा

नमो राघवाय

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं वर्वर्ति भूमावधि।।

श्रीरामचरितमानस के प्रणेता महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी

का

प्रामाणिक संक्षिप्त जीवनवृत्त

--

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथामेतां भाषाबद्धां करिष्यति।।

भविष्योत्तर पुराण– प्रतिसर्ग पर्व, ४.२०

भविष्योत्तर पुराण में सम्पूर्ण श्रीरामकथा कहकर भगवान भूतभावन शंकर जी, भगवती पार्वती जी से कहते हैं, हे पार्वती जी! जब वाल्मीकीय रामायण के श्रवणार्थ अपने पास बारम्बार आए हुए श्रीहनुमानजी का महर्षि वाल्मीकिजी ने वानरजाति को श्रीरामकथा में अनाधिकारी कहकर अपमान किया और उसकी प्रतिक्रिया में श्रीहनुमानजी महाराज ने वाल्मीकीय रामायण से कोटि गुणित सुन्दर 'महानाटक' नाम से नाट्यशैली में श्रीरामकथा प्रस्तुत की, यथा– महानाटकनिपुणकोटिकपिकुलतिलकगानगुणगर्वगन्धर्वजेता। –विनयपत्रिका। वाल्मीकि जी के अनुनय–विनय करने पर निरभिमान श्रीहनुमान जी ने शिला पर लिखित सम्पूर्ण श्रीरामकथापटल को समुद्र में फेंक दिया, जिसके कतिपय अंश आज भी उपलब्ध होते हैं। उसी समय श्रीअंजनानन्दवर्द्धन हनुमान जी ने वाल्मीकि जी को तुलसीदास जी के रूप में सामान्य ग्राम्यभाषा में श्रीरामकथा गाने का निर्देश दिया कि वे ही (महर्षि वाल्मीकि) आगामी कराल कलिकाल में तुलसीदास के रूप में अवतीर्ण होंगे और हिन्दी भाषा में सम्पूर्ण शतकोटि रामायणात्मक श्रीरामचरित का गान करेंगे। भगवान श्री शिवजी की इस भविष्यवाणी के अनुसार स्वयं महर्षि वाल्मीकि श्रवणशुक्ल सप्तमी विक्रमी संवत् १५५४ में श्रीचित्रकूट तथा प्रयाग के मध्यवर्ती श्रीयमुना तट पर बसे हुए राजापुर नामक ग्राम में पराशर गोत्रीय परसोना के दूबे ब्राह्मणश्रेष्ठ पण्डित आत्माराम दूबे की धर्मपत्नी पूज्य माता हुलसीजी के गर्भ से तुलसीदास के रूप में प्रकट हुए, यथा–

पन्द्रह सौ चौवन बिसै कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरे शरीर।।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात' लोकोक्ति आज अक्षरशः चरितार्थ हुई। जन्म के समय ही तुलसीदास जी पाँच वर्ष के बालक के समान हृष्टपुष्ट थे। वे जन्म लेकर रोये नहीं, जन्मते ही उनके मुख से 'राम' निकला उसी समय भगवान श्रीराम जी ने आकाशवाणी करके

उस अद्भुत बालक का नाम 'रामबोला' रखा। जैसा कि, गोस्वामी जी स्वयं विनयपत्रिका में कहते हैं–

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।

विनयपत्रिका, ७६

उस नवजात बालक पर प्रभु की अलौकिक कृपा देखकर तथा स्वयं श्रीराघवेन्द्र सरकार से नवजात बालक का रामबोला नाम सुनकर प्रसन्नता एवं विस्मय से भरे देवता आकाश में बधावे बजाने लगे, इससे घबराये हुए दूरदर्शिताशून्य आत्माराम दूबे ने बालक को दूर फिंकवा दिया। इस विडम्बना की चर्चा करते हुए स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी चीखकर कहते हैं–

जायो कुलमंगन बधावनो बजायो सुनि।
भयो परिताप पाप जननी-जनक को।।

कवितावली, ७.७३

अर्थात् नवजात बालक की अलौकिक घटनाओं ने माता को परिताप तथा पिता को पाप से समाकुल कर दिया, जिसके कारण वे दोनों की छत्रछाया से दूर हो गए। वे कहते हैं–

मातु पिता जग जाइ तज्यो।
बिधि हूँ न लिखी कछु भाल भलाई।।

कवितावली, ७.५६

विनयपत्रिका के अन्तिम आठ पदों में तो महाकवि ने बार–बार अपनी दीनता और व्यथा का वर्णन किया है। बालक के प्रति पति के असहिष्णु व्यवहार की आशंका से माता हुलसी ने उसे मुनिया नामक एक दासी के साथ उसी के पीहर हरिपुर भिजवाकर स्वयं भी हरिपुर का मार्ग पकड़ लिया, अर्थात् नश्वर शरीर छोड़ दिया। अतः हरिपुर का गोस्वामी जी अपने साहित्य में बार–बार स्मरण करते हैं–

हरिपुर गयेउ परम बड़भागी।

मानस, ४.२७.८

सुखी हरिपुर बसत होत परीक्षितहिं पछताव।

विनयपत्रिका, २२०

माँ हुलसी बालक के प्रति वात्सल्यवती थीं, इसीलिए तुलसीदास जी ने मानस– १.३१.१२ में माँ के वात्सल्य का स्मरण करके उन्हें भावांजलि दे दी–

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।

दूसरी ओर महाकवि ने आत्माराम का कहीं नाम भी नहीं लिया। केवल इतना ही कहकर संतोष कर लिया कि–

तन तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात पिताहू।

विनयपत्रिका, २७५

संयोगवशात् यह तुलसीतरु मुनिया दासी मालिनी का भी सिंचन चिरकाल तक नहीं पा सका और उसे प्रभु के सहारे छोड़कर वह भी साकेतवासिनी हो गयी। अब तो भगवती पार्वती जी ही बालक रामबोला का लालन–पालन करने लगीं। गोस्वामी तुलसीदास जी बार–बार इस घटना पर कृतज्ञताबोध करते हैं।

गुरु पितु मातु महेश भवानी।

मानस, १.१५.३

मेरे गुरु मातु पितु शंकर भवानियै।

कवितावली, ७

पाँच वर्ष के अनन्तर रामबोला के जीवन में एक ऐतिहासिक नाटकीय मोड़ आया। हरिपुर के बाहर वृक्षों के नीचे अनाथवत् जीवन बिता रहे बालक रामबोला के पास शिवजी की प्रेरणा से जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी के द्वादश प्रमुख शिष्यों में चतुर्थ सुयोग्य शिष्य सनकादिकों के समवेत अवतार श्री नरहरिदास (श्री नरहर्यानन्द जी महाराज) स्वयं दर्शन देने पधारे और बोले– बालक! तेरा क्या नाम है?

बालक ने उत्तर दिया– रामबोला। क्यों बालक ? गुरुदेव ने पूछा।

बालक– क्योंकि जन्म के समय मेरे मुख से रामनाम निकला था।

गुरुदेव– यह नाम किसने रखा ?

बालक– स्वयं श्रीरामजी ने।

गुरुदेव– तू क्या काम करता है ?

बालक– कभी दो–चार बार ''राम–राम'' कह लेता हूँ।

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम
काम यहै नाम द्वै हों कबहुँ कहत हौं।

विनयपत्रिका, ७६.१

गुरुदेव– क्या करोगे ?

बालक– आपका चेला बनूँगा।

गुरुदेव– तुम्हारे परिवार में कोई है ?

बालक– कोई नहीं।

गुरुदेव– विवाहादि?

बालक– कोई इच्छा नहीं।

बस, अब तो कृपा कादम्बिनी बरस पड़ी बालक रामबोला पर और श्रीनरहरिदास जी महाराज ने बालक रामबोला का व्रतबन्ध संस्कार करके उन्हें गायत्री दीक्षा तथा पंचसंस्कारपूर्वक श्रीरामानन्दीय परम्परा में विरक्त श्रीवैष्णव दीक्षा दे दी और रामबोला के स्थान पर "तुलसीदास" यह साम्प्रदायिक श्रीवैष्णव साधूचित नाम रख दिया। अब तो उनका वेष भगवान का सब सन्तों तथा सद्गुरु महाराज का दिया हुआ एक सुन्दर सा नाम तुलसीदास समस्त दिग्दिगन्त में विख्यात हो गया।

तुलसी तुलसी सब कहैं, तुलसी बन की घास।
कृपा भई रघुनाथ की, तुलसी तुलसीदास।।

तुलसीदोहाशतक, ९८

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम भजत भे तुलसी तुलसीदास।।

बरबैरामायण, ७.१०

जो सुमिरत भए भाँग ते तुलसी तुलसीदास।

मानस, १.२६

गोस्वामी जी ने अपनी विरक्त दीक्षा की घटना को बड़े ही नाटकीय पद्धति से विनयपत्रिका में प्रस्तुत किया है–

बूझ्यो ज्यों ही 'कह्यौं' मैं हूँ चेरा ह्वैहौं रावरो जू
मेरो कोउ कहूँ नहिं चरन गहत हौं।
मींज्यो गुरु पीठि अपनाइ बोलि बाँह गहि
सेवक सुखद बाँको बिरुद बहत हौं।
लोग कहें पोच, सो न सोच न संकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जात पाँत न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति ताते मुदित रहत हौं।।

विनयपत्रिका, ७६

“ब्याह न बरेखी जात पाँत न चहत हौं।” –(विनयपत्रिका, ७६) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज का यह वचन ही इस तथ्य को पूर्णतया स्पष्ट कर रहा है कि न तो तुलसीदासजी का विवाह हुआ था और न ही उनका रत्नावली नामक किसी महिला से कोई लेना–देना था। अभिनव वाल्मीकि तुलसीदासजी महाराज बाल्यकालीन साधु थे। कतिपय शास्त्रसाहित्यानभिज्ञ पण्डितम्मन्यों की कृपा ने तुलसीदासजी जैसे श्रीवैष्णवरत्न के साथ रत्नावली की घटना जोड़ दी। ‘हनुमानबाहुक’ में भी गोस्वामीजी स्वयं को बाल्यकालीन साधु ही कहते हैं–

बालपने सूधमन रामसनमुख भयो
रामनाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।

हनुमानबाहुक, ४०

जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी के चतुर्थ कृपापात्र श्री नरहर्यानन्द (नरहरिदास) जी की विरक्त दीक्षा ने अब तो इस जंगम तुलसीतरु में श्रीरामभक्ति सुरभि उद्बुद्ध कर दी तथा सद्गुरुदेव श्रीनरहरिदासजी अभिनव शिष्य अभिनव वाल्मीकि तुलसीदास जी को अपने साथ सूकर क्षेत्र ले गये एवं सनकादि के रूप में महर्षि याज्ञवल्क्यजी से प्राप्त पारम्परिक शिवभाषित श्रीरामचरितमानस कथा श्रीतुलसीदासजी को बार–बार सुनायी। गोस्वामीजी इस तथ्य की स्पष्टता में स्वयं अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं–

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत।।

मानस, १.३० क.

अर्थात् उसी परम्परा प्राप्त श्रीरामकथा को सूकर क्षेत्र में मैंने अर्थात् तुलसीदास ने सुनी परन्तु बाल्यावस्था के कारण मैं अचेत उसे नहीं समझ पाया, फिर भी उन्होंने बारम्बार समझायी, वही कथा मैं भाषाबद्ध कर रहा हूँ। अपने गुरुदेव का नाम भी तुलसीदासजी ने आलंकारिक मुद्रा में स्मरण किया।

बन्दउँ गुरुपद कंज कृपासिन्धु नररूप हरि।

सो०, मानस, १.५

गुरुदेव की कृपा से ही तुलसीदासजी ने समस्त पुराण निगमागमों को सहजतः अध्ययन कर लिया। प्रेत की कृपा से उन्हें काशी कर्णघण्टा में श्रीहनुमानजी महाराज के दिव्य दर्शन हुए और संकटमोचन स्थल तक आते–आते गोस्वामी जी को हनुमानजी का पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया। वहीं पश्चिमाभिमुख हनुमानजी ने एक हाथ अपनी छाती पर रखकर दूसरे श्रीहस्तकमल

से दक्षिण की ओर संकेत करते हुए श्रीरामजी के दर्शन के लिए चित्रकूट जाने की आज्ञा दी। प्रेत पर कृतज्ञभाव रखते हुए गोस्वामीजी मानसजी के आरम्भ में उसकी भी वन्दना करते हैं।

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गन्धर्व।
बन्दउँ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व।।

मानस, १.७

श्रीहनुमानजी की आज्ञा से गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज श्रीचित्रकूट पधारे और वहाँ निरन्तर श्रीरामनाम की जप साधना करने लगे। एक दिन श्रीकामदगिरि की परिक्रमा मार्ग में अपने सद्गुरुदेव श्रीनरहरि गुफा के पास अपने ही द्वारा लगाए हुए पीपल वृक्ष के नीचे खड़े तुलसीदासजी ने उस वृक्ष से थोड़ी दूर बाँयीं ओर से आते हुए मृगया वेष में विराजमान हरितपरिधान से सुसज्जित अलौकिक घोड़ों पर विराजमान अश्वारोहणकुशल दो श्याम गौर राजकुमारों को निर्निमेष नयनों से निहारा। इस झाँकी ने यद्यपि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी को सौन्दर्यसागर में डुबो दिया, परन्तु वे प्रभु श्रीरामलक्ष्मणजी को पहचान नहीं पाए। पुनः जब श्रीहनुमानजी ने मिलकर उनके समक्ष पधारे श्रीरामलक्ष्मणजी का परिचय दिया तब तो गोस्वामीजी बहुत दुःखी हुए। श्रीहनुमानजी का आश्वासन पाकर तुलसीदासजी ने पुनः श्रीरामनाम जप साधना प्रारम्भ की। विक्रम सम्वत् १६२० की माघ कृष्ण अमावस्या अर्थात् मौनी अमावस्या के परम पावन पर्व पर श्रीचित्रकूट के रामघाट पर बनी अपनी कुटिया में विराजमान मलयचन्दन उतारते हुए श्रीतुलसीदासजी के समक्ष श्रीरामलक्ष्मण दो बालकों के रुप में उपस्थित हुए और कहा– "ए बाबा! हमें भी तो चन्दन दो।" इन भुवनसुन्दर बालकों को देखकर श्रीतुलसीदासजी महाराज ठगे से रह गए और भगवान श्रीरामजी अपने मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाकर तुलसीदासजी के भी मस्तक पर मलयगिरि चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र करने लगे तब श्रीहनुमानजी ने सोचा कहीं यह बाबा फिर न ठगा जाए और प्रभु को न पहचान पाए अतः अञ्जनानन्दवर्धन प्रभु श्रीहनुमन्तलाल जी सुन्दर तोते का वेष बनाकर कुटी के निकटस्थ आम की डाल पर बैठकर प्रभु के परिचय से ओतप्रोत यह दोहा बोले–

चित्रकूट के घाट पर भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें तिलक देत रघुबीर।।

आज भी सामान्य तोते 'चित्रकूटी दूध रोटी' ही पहले बोलते हैं। अब क्या था समझ गए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज प्रभु आगमन को और पहचान गए हुलसीहर्षवर्धन प्रभु अपने परमाराध्य परमप्रिय परमपुरुष परमसुन्दर नीलजलधरश्याम लक्ष्मणाभिराम भगवान श्रीरामजी

को। गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका के उत्तरार्द्ध में इस घटना का स्पष्ट संकेत करते हुए कृतज्ञता ज्ञापन किया–

तुलसी तोकौ कृपाल जो कियौ कोसलपाल।
चित्रकूट के चरित चेत चित करि सो।

विनयपत्रिका, २६४

अब तो प्रभु श्रीरामजी ने ही इस जंगमतुलसी की सुगन्धि दिग्दिगन्त में बिखेरने का निर्णय ले लिया और भगवान भूतभावन शंकरजी ने चैत्रशुक्ल सप्तमी विक्रम सम्वत् १६३१ की रात में स्वप्न में ही श्रीतुलसीदासजी महाराज को लोकभाषा में श्रीरामगाथा लिखने की प्रेरणा दी। जिसका उल्लेख करते हुए गोस्वामी जी स्वयं कहते हैं–

सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर जौ हरगौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ।।

मानस, १.१५

काशी में भगवान श्रीशंकरजी का आदेश पाकर तुलसीदासजी महाराज श्रीअवध पधारे और चैत्रामनवमी के मध्याह्नवर्ती अभिजित मुहूर्त में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के हृदयाकाश में श्रीरामचरितमानस का प्रकाश हुआ–

सम्वत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।।
नौमी भौम वार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।

मानस, १.३४.४५.

श्रीअवध, श्रीकाशी तथा श्रीचित्रकूट में निवास करके महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने सप्त प्रबन्धात्मक इस महाकाव्य श्रीरामचरितमानसजी की रचना सम्पन्न कर ली। हुलसीनन्दन श्रीवाल्मीकि नवावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज की सहजसमाधि लब्ध महादेव भाषा ने अपनी लोकप्रियता से सम्पूर्ण विश्व की मानवजाति को मन्त्रमुग्ध कर लिया और एक ही साथ महर्षियों की तपस्या, आचार्यों की वरिवस्या तथा कविवर्यों की नमस्या रूप त्रिवेणी से मण्डित होकर यह मानसप्रयाग सारस्वतों के लिए जंगम तीर्थराज बन गया। श्रीरामचरितमानसजी की इतनी ख्याति बढ़ी कि जिससे खल स्वभाववाले मानी पंडितों को अकारण ईर्ष्या होनी स्वभाविक थी और उन्होंने श्रीकाशी में इस प्रकार का बवण्डर भी खड़ा किया कि तुलसीदास ने ग्राम्य भाषा में श्रीरामकथा लिखकर देवभाषा संस्कृत का अपमान किया, परन्तु सत्य तो सत्य ही रहता है और वैसा ही हुआ। इस यथार्थ की परीक्षा के लिए श्रीकाशी के भगवान श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर में सभी ग्रन्थों के ऊपर श्रीरामचरितमानसजी की

पोथी रख दी गई और पट बन्द कर दिया गया। जब दूसरे दिन प्रातःकाल पट खुला तब श्रीरामचरितमानसजी की पोथी सभी ग्रन्थों के नीचे दिखाई दी जिसके मुख्य पृष्ठ पर **सत्यं शिवं सुन्दरम्** लिखकर भगवान श्रीविश्वनाथजी ने स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। इस दृश्य ने भगवद्विमुख विद्याभिमानियों के मुख काले किये एवं सभी ने एक मत से यह तथ्य स्वीकार किया कि यदि संस्कृत भाषा देवभाषा है तो श्रीगोस्वामितुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानसजी की भाषा महादेवभाषा है। क्योंकि संस्कृत में उद्भट विद्वान होकर भी गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने महादेवजी की आज्ञा से श्रीरामचरितमानसजी को लोकभाषा में लिखा। जब श्रीरामचरितमानसजी को काशी के तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान अद्वैतसिद्धिकार श्री मधुसूदन सरस्वती ने देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने मानस और मानसकार की प्रशस्ति में एक बड़ा ही अद्भुत श्लोक लिखा–

आनन्दकानने कश्चिद् जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषितः।।

अर्थात् इस आनन्दमय श्रीकाशी में श्री गोस्वामी तुलसीदासजी एक अपूर्व जंगम अर्थात् चलते–फिरते श्रीतुलसीवृक्ष ही हैं जिनकी कवितारूपी मंजरी पर निरन्तर श्रीरामजी भ्रमर बनकर मँडराते रहते हैं, इसलिए उनकी कविता मंजरी सर्वदैव श्रीरामरूपभ्रमर से समलंकृत रहती है। तात्पर्य यह है कि जैसे– श्रीतुलसीमंजरी को भ्रमर नही छोड़ता उसी प्रकार श्रीतुलसीदासजी की कविता को भगवान श्रीरामजी भी कभी नहीं छोड़ते उनका इससे स्वाद्य–स्वादक–भाव सम्बन्ध है। श्रीरामचरितमानसजी के सम्बन्ध में एक चमत्कारिक ऐतिह्य (घटना) प्रसिद्ध है। गोस्वामी जी जिन दिनों श्रीकाशी में विराजते थे और तत्कालीन श्रीकाशी नरेश पर उनकी कृपा भी थी उसी समय एक विचित्र घटना घटी। श्रीकाशी नरेश की द्रविड़ नरेश से परम मित्रता थी और इन दोनों में एक ऐसी सन्धि हो गई थी कि वे अपने होनेवाले विषमलिंग सन्ततियों में वैवाहिक सम्बन्ध करेंगे अर्थात् यदि द्रविड़ नरेश के यहाँ प्रथम पुत्र आता है तो उसका श्रीकाशी नरेश की प्रथम होनेवाली पुत्री से सम्बन्ध होगा। यदि इसके विपरीत श्रीकाशी नरेश को प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा तो वह द्रविड़ नरेश की पुत्री का पति बनेगा, परन्तु संयोग से दोनों नरेशों के यहाँ प्रथम बार पुत्रियों का ही जन्म हुआ, किन्तु काशी नरेश ने असत्य का अवलम्ब लेकर अपनी पुत्री को पुत्र के रूप में ही प्रस्तुत किया। फलतः दोनों की सन्धि के अनुसार श्रीकाशी नरेश के पुत्र के साथ द्रविड़ राजपुत्री का विवाह निश्चित हो गया।

गुप्तचरों से वास्तविकता का समाचार मिलने पर द्रविड़ नरेश ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रीकाशी नरेश पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया, अनन्तर श्रीकाशी नरेश भयभीत होकर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की शरण में आए तब गोस्वामी जी ने–

मन्त्र महा मनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।

मानस, १.३२.९.

पंक्ति से श्रीमानसजी के प्रत्येक दोहे को संपुटित करके श्रीरामचरितमानसजी का नवाहपारायण कराया और हो गया चमत्कार, श्रीकाशी नरेश की पुत्री पुत्ररूप में परिणित हो गई। फिर उसका द्रविड़राजपुत्री के साथ महोत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ, इस ऐतिहासिक सत्य घटना से श्रीमानस जी के प्रति लोगों की आस्था जगी, अद्यावधि जग रही है और भविष्य में भी जगती रहेगी।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के जीवन का प्रत्येक क्षण श्रीसीतारामजी के श्रीचरणारविन्दों से जुड़ा रहा और उनका मनोमिलिन्द उसी परमप्रेमपीयूष मकरन्द को पी–पीकर सतत मत्त होता रहा। श्रीमानसजी के अतिरिक्त उनके मुख से कवितावली, हनुमानबाहुक, वृहद्बरवैरामायण, लघुबरवैरामायण, जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, दोहावली, वैराग्यसंदीपनी, तुलसीदोहाशतक, हनुमानचालीसा, गीतावली रामायण, कृष्णगीतावली तथा विनयपत्रिका जैसे अनुपमेय काव्यरत्न भी प्रस्तुत हुए। इस प्रकार १२६ वर्ष पर्यन्त वैदिक साहित्योद्यान का यह मनोहर माली सम्वत् सोलह सौ अस्सी श्रावण शुक्ल तृतीया शनिवार को वाराणसी के असी घाट पर अन्तिम बार बोला–

रामचन्द्र गुण बरनि के भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए बेगहि तुलसी सोन।।

भावुक भक्तों ने जब बाबा जी के लम्बे आध्यात्मिक जीवन के अनुभवसारसर्वस्व के परिप्रेक्ष्य में अपने इति–कर्त्तव्यता की जिज्ञासा की तब श्रीचित्रकूटी बाबा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी बोले–

अलप तो अवधि तामें जीव बहु सोच पोच
करिबे को बहुत है कहा कहा कीजिए।
ग्रन्थन को अन्त नाहिं काव्य की कला अनन्त
राग है रसीलो रस कहाँ कहाँ पीजिए।
वेदन को पार न पुरानन को भेद बहु
वाणी है अनेक चित कहाँ कहाँ दीजिए।
लाखन में एक बात तुलसी बताए जात
जन्म जो सुधारा चाहो रामनाम लीजिए।

बस मौन हो गया श्रीरामकथा का अन्तिम उद्गाता।

सम्वत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला तीज शनि तुलसी तज्यौ शरीर।।

वस्तुतः हुलसीहर्षवर्द्धन कलिपावनावतार श्रीरामकथा के अनुपम एवं अन्तिम उद्गाता सांस्कृतिक क्रान्ति के सफल पुरोधा कविकुलपरमगुरु अभिनववाल्मीकि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के जीवनवृत्त का वर्णन मुझ जैसे जीव के लिए उतना ही दुष्कर है जितना सामान्य पिपीलिका के लिए निरवधि महासागर का थाह लगाना। मैंने गोस्वामी जी की ही कृपा से अपने अन्तःकरण में भासित उन पूज्यचरणों की जीवनकथा जाह्नवी में मात्र अपनी वाणी को ही स्नान कराने का प्रयास किया है।

तुलसी वैह तुलसी सुरभिः सुरभिः समा।
तुलसीदाससदृशस्तुलसीदास एव हि।।

श्रीराघवः शन्तनोतु
।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।
इति मंगलमाशास्ते

राघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य
जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, उ०प्र०।

।। श्रीमद्राघवो विजयते।।

धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर कविकुलरत्न जगद्गुरु
रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा विचरित

श्रीरामचरितमानसजी की आरती।

आरती श्रीमन्मानस की, रामसिय कीर्ति सुधा रस की।

जो शंकर हिय में प्रगटानी।
भुशुण्डी मन में हुलसानी।
लसी मुनि याज्ञवल्क्य बानी।
श्रीतुलसीदास, कहें सहुलास, सुकवित विलास।
नदी रघुनाथ विमल जय की। आरती------

बिरति बर भक्ति ज्ञान दाता।
सुखद पर लोक लोक त्राता।
पढ़त मन मधुकर हरषाता।
सप्त सोपान, भक्ति पन्थान, सुवेद पुरान।
शास्त्र इतिहास समंजस की। आरति-----

सोरठा दोहा चौपाई।
छन्द रचना अति मन भाई।
विरचि वर तुलसिदास गाई।
गायें नरनार, होत भवपार, मिटे दुःख भार।
हरे मन कटुता कर्कश की। आरती-----

ललित यह राम कथा गंगा।
सुनत भव भीति होत भंगा।
बसहु हिय हनुमत श्रीरंगा
राम को रूप, ग्रन्थ को भूप, हरै तम कूप।
जिवन धर "गिरिधर" सर्बस की। आरति----

।। नमो राघवाय ।।

* * * * *

श्रीहनुमते नमः
श्री हनुमान चालीसा
दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनऊँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि।।
बुद्धि हीन तनु जानिकै सुमिरौं पवन कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहि हरहु कलेश बिकार।।

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुर सागर। जय कपीश तिहुँ लोक उजागर।।
राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा।।
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी।।
कंचन बरन बिराज सुबेषा। कानन कुंडल कुंचित केशा।।
हाथ बज्र और ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ छाजै।।
शङ्कर सुवन केशरीनंदन। तेज प्रताप महा जग बंदन।।
विद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन-सीता मन बसिया।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा।।
भीम रूप धरि असुर सँहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे।।
लाय संजीवनि लखन जियाये। श्री रघुबीर हरषि उर लाये।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहिं सम भाई।।
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनिशा। नारद शारद सहित अहीशा।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सकै कहाँ ते।।
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा।।
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना। लंकेश्वर भए सब जग जाना।।
जुग सहस्त्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं।।

दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते।।
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।
सब सुख लहैं तुम्हारी शरना। तुम रक्षक काहू को डर ना।।
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनौं लोक हाँक ते काँपै।।
भूत पिशाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै।।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतन हनुमत बीरा।।
संकट ते हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।।
सब पर राम राय सिरताजा। तिन के काज सकल तुम साजा।।
और मनोरथ जो कोउ लावै। तासु अमित जीवन फल पावै।।
चारों युग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा।।
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे।।
अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहउ रघुपति के दासा।।
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै।।
अंत काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जन्म हरिभक्त कहाई।।
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई।।
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।
जय जय जय हनुमान गोसाई। कृपा करहु गुरु देव की नाई।।
यह शत बार पाठ कर जोई। छूटै बंदि महा सुख सोई।।
जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा।।
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।।

दोहा

पवन तनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप।।

सियाबर रामचन्द्र की जय,
पवनसुत हनुमानजी की जय,
गोस्वामी तुलसीदास की जय

* * * * *

प्रसंगानुक्रमणिका

प्रथम सोपान बालकाण्ड

द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्ड

तृतीय सोपान अरण्यकाण्ड

चतुर्थ सोपान किष्किन्धाकाण्ड

सप्तम सोपान उत्तरकारण्ड

परिशिष्ट

* * * * *

नवाहपारायण के विश्राम स्थान

मासपारायण के विश्राम स्थान

।।श्रीराघवः शंतनोतु।।

।।श्री सीताराम।।

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामौ विजयेते

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

श्रीः

भावार्थबोधिनी टीका

प्रथम सोपान

बालकाण्ड

मङ्गलाचरण

अयोध्यासौभाग्यं भविकमथभाग्यं भवभृताम्
समंचत्सौन्दर्यं विगलितकदर्यं कलगिरम्
तमालाभं लाभं निचितमिह मूर्तं मनुभुवाम्
जनारामं रामं मनसि कलये राघवशिशुम्।।१।।

मन्दाकिनीपुण्यतटेविहारी सौमित्रिसीतार्चितपादपद्मः।
भग्नत्रिकूटः श्रितचित्रकूटः श्रीराघवो मंगलमातनोतु।।२।।

श्रीरामपादाम्बुजचञ्चरीकं समुल्लसन्मानसपुण्डरीकम् ।
चण्डाट्टहासार्दितकालकालं वन्दामहे वानरवारणेन्द्रम्।।३।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्द्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति।।४।।

सीतारामगुणालवालकलितः श्रीराम नामोन्मिषद्
बीजो भक्तिसुवारिवर्धिततनुः काण्डैर्युतः सप्तभिः।
शाखावेदवसून्नतः सदयुतैः पर्णैः खयुग्मग्रहैः
श्रीमद्रामचरित्रमानसमयः कल्याणकल्पद्रुमः।।५।।

हिन्दीभाषां समाश्रृत्य मानसस्य पदं प्रति।
इहान्वयमुखेनैव भाषे भावार्थबोधिनीम्।।६।।

मानसे सुमहाकाव्यपुङ्गवे तुलसीगवे।
टीके टीकां रामभद्राचार्यो भावार्थबोधिनीम्।। ७।।

श्लोक

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।१।।

भा०– महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी अपनी कालजयी रचना श्रीरामचरितमानस महाकाव्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए श्रुतिसम्मत एवं शिष्टों द्वारा अनुमोदित ग्रन्थ की मङ्गलाचरण परम्परा का पालन करते हुए श्री मानस जी के बालकाण्ड के प्रथम श्लोक का मङ्गलाचरण करते हैं– “मैं (गोस्वामी तुलसीदास) वर्णों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों तथा नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, आशीर्वादात्मक मंगलों को करनेवाली भगवती सरस्वती तथा वर्णों (ब्राह्मणादि चारों वर्णों), अर्थों अर्थात् सभी प्रकार के प्रयोजनों, रसों अर्थात् आनन्दों तथा जीवन के समस्त छन्दों, गीतों आदि मंगलों अर्थात् सभी प्रकार के मांगलिक कार्यों के सम्पादक श्रीगणपति तथा इसी प्रकार की योग्यताओं से सम्पन्न वाणी (भगवती श्री सीता जी), विनायक अर्थात् विशिष्ट नायक (धीरोदात्त नायक) भगवान् श्रीराम जी को तथा वाणी के विशेष नियन्ता श्रीराम नाम के दोनों अक्षर ‘रेफ’ और ‘मकार’ को वन्दन करता हूँ।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।२।।

भा०– मैं (तुलसीदास) श्रद्धा और विश्वास रूप तथा इन दोनों को बोधित करनेवाले श्रीपार्वती जी एवं भगवान् श्रीशिव जी को वन्दन करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में विराजमान परमात्मा श्रीराम जी को नहीं देखते अर्थात् श्रद्धा–विश्वासरूप श्रीपार्वती जी एवं श्रीशिव जी की कृपा के बिना प्रभु श्रीराम जी का साक्षात्कार नहीं कर पाते।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।३।।

भा०– मैं ज्ञान के आश्रय और ज्ञानरूप अविनाशी शिवस्वरूप गुरुदेव की नित्य वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होकर टेढ़ा चन्द्रमा (द्वितीया का) भी सर्वत्र वन्दित और सम्मानित होता है अर्थात् जैसे श्रीशिव जी के आश्रय होकर शुक्ल द्वितीया का टेढ़ा चन्द्रमा सर्वत्र सम्मानित होता है, उसी प्रकार गुरुदेव की कृपा प्राप्तकर सभी गुणों से हीन कुटिल शिष्य भी सर्वत्र सम्मान पाता है।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।।४।।

भा०– श्रीसीताराम जी के गुण–समूहरूप पवित्र वन में सहज रूप से विहार करनेवाले श्रुतिसम्मत पवित्र विज्ञान से सम्पन्न कवियों के ईश्वर महर्षि वाल्मीकि तथा कपियों अर्थात् वानरों के ईश्वर श्रीहनुमान् जी को मैं वन्दन करता हूँ।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।५।।

भा०– ब्रह्मा जी, विष्णु जी एवं शिव जी को निमित्त बनाकर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति (पालन) तथा संहार कराने वाली, भगवान् श्रीराम जी द्वारा शरणागतों के जन्मक्लेश हरण करानेवाली, स्वयं सभी का श्रेयोविधान अर्थात् कल्याण करनेवाली भगवान् श्रीराम की प्रियतमा धर्मपत्नी श्रीसीता जी को मैं प्रणत हो रहा हूँ।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यसत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादः प्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामख्यमीशं हरिम्।।६।।

भा०- सम्पूर्ण चराचर जगत् तथा ब्रह्मा जी आदि देवता और असुर जिन परमेश्वर की माया के वश में होकर वर्त्तन करते हैं। रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सत्य जगत भी जिनकी सत्ता से ही प्रकाशित होता हुआ प्रतीति में आता है, संसार–सागर से पार होने के इच्छुक साधक जनों के लिए जिनका श्रीचरण एकमात्र जहाज है, उन्हीं सम्पूर्ण कारणों से परे तथा उत्पत्ति, पालन, प्रलय के निमित्तकारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर से भी श्रेष्ठ, अभिधावृत्ति से श्रीराम नाम से प्रसिद्ध, सर्वपापहारी, श्रीहरि, परम प्रभु भगवान् श्रीराम को मैं वन्दन करता हूँ।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।७।।

भा०- जिस रामायण में भगवान् शिव के द्वारा नाना पुराणों, वेदों, उपवेदों तथा तन्त्रों एवं स्मृतियों से सम्मत और कहीं अन्यतः अर्थात् काव्यों, नाटकों एवं अन्यान्य आर्षसंहिताओं से सम्मत श्रीरामचरित कहा गया है, उसी मधुर शिव जी द्वारा रचित मानसरामायण को अपने 'स्व' अर्थात् आत्मा, आत्मीयजन, समस्त मानव जाति तथा अपने जीवनधन भगवान् श्रीराम जी के अन्तःकरण के सुख के लिए कवि तुलसीदास (मुझ से अभिन्न) श्रीरघुनाथ जी की गाथा की भाषा अर्थात् अवधी भाषा में निबद्ध करके आदरपूर्वक विस्तृत करता है।

सो०- जेहिं सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभगुन सदन।।१।।

भा०- जिनको स्मरण करने मात्र से सभी कार्यों की सिद्धि हो जाती है, वे ही बुद्धि के राशि, कल्याणकारी गुणों के धाम, श्रेष्ठ हाथी के मुखवाले, शिव जी के गणों के नायक अर्थात् श्रीगणपति गणेश जी अनुग्रह अर्थात् कृपा करें, जिससे मैं निर्विघ्न श्रीरामचरितमानस रच सकूँ।

सो०- मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।।२।।

भा०- जिनकी कृपा से मूक अर्थात् गूँगा वाचाल अर्थात् सुन्दर वाणी से अलंकृत हो जाता है और पंगु ऊँचे कठिन पर्वत पर चढ़ जाता है, वे ही सम्पूर्ण कलियुग के मलों अर्थात् दोषों को भस्म कर देनेवाले दयालु भगवान् सूर्यनारायण मुझ पर द्रवित हो जायें, जिससे मैं भी दिव्यवाणी से सम्पन्न होकर श्रीरघुनाथ जी के गुण गा सकूँ और मेरी पंगुबुद्धि भी वेदपुराणरूप कठिन पर्वतों पर स्वयं चढ़कर उनमें छिपी हुई श्रीरामकथा की खानों का पता लगाकर श्रीरामभक्तिमणि को ढूँढ़ सके।

सो०- नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर शयन।।३।।

भा०- जो नीले कमल के समान श्यामवर्ण हैं, जिनके नेत्र नवीन कमल के समान लाल हैं, जो निरन्तर क्षीरसागर में शयन करते हैं, वे ही वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर में विराजनेवाले भगवान् विष्णु मुझ तुलसीदास के हृदय को धाम अर्थात् श्रीसीताराम जी का निवासस्थान मंदिर बना दें, जिससे मैं अपने हृदय के मंदिर में प्रभु श्रीसीताराम जी को विराजमान करा सकूँ।

सो०- कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दनमयन।।४।।

भा०- जिनका शरीर कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमा के समान सुगन्धपूर्ण और गौर है, जो पार्वती जी के रमण (पति) तथा करुणा के गृहस्वरूप हैं, जिन्हें दीनजनों पर स्नेह है, वे कामदेव को नष्ट करनेवाले अर्द्धनारीनटेश्वर भगवान् शिव मानस-रचना के लिए कृतसंकल्प मुझ तुलसीदास पर कृपा करें ।

सो०- बंदउँ गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूपहरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रबिकर निकर।।५।।

भा०- मैं उन्हीं श्रीगुरुदेव के श्रीचरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के सागर तथा मनुष्य के रूप में वर्तमान स्वयं भगवान् राम और सूर्य के समान हैं तथा महामोहरूप अंधकार-पुंज को नष्ट करने के लिए जिनके वचन ही सूर्यकिरणों के समूह हैं।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू।।

भा०- मैं श्रीगुरुदेव के श्रीचरणकमल की धूलरूप पराग का वन्दन करता हूँ, जो सुन्दर रुचिरूप सुगन्ध तथा अनुपम अनुरागरूप मकरंद से पूर्ण है। वह अमृत की मूलिका (संजीवनी बूटी) से युक्त ऐसा सुन्दर चूर्ण है, जो सभी सांसारिक रोगों के परिवार का नाशक है ।

सुकृति शंभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किये तिलक गुनगन बस करनी।।

भा०- श्रीगुरुदेव की जो चरणधूलि सत्कर्मरूप श्रीशङ्कर के शरीर की निर्मल विभूति है, जो मधुर मंगलों और प्रसन्नताओं को जन्म देनेवाली है, जो सेवकों के सुन्दर मनरूप दर्पण के विषयरूप मल को हरनेवाली है, जो तिलक करने मात्र से सद्‌गुण-समूहों को साधक के वश में कर देती है, उसी गुरुचरण-धूलि का मैं वन्दन करता हूँ।

श्रीगुरुपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।

भा०- मैं श्रीगुरुदेव के श्रीचरण के नखरूप मणिगणों की ज्योति का स्मरण करता हूँ, जिसके स्मरणमात्र से हृदय में दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जाती है, जिसका सुन्दर प्रकाश मोहरूप अंधकार को नष्ट कर देता है और अशु अर्थात् प्राणों को प्रकाशित कर देता है। जिसके हृदय में गुरुदेव के श्रीचरणों की नखमणि-ज्योति आ जाती है उसके भाग्य बड़े हो जाते हैं अर्थात् वह सौभाग्यशाली बन जाता है।

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भवरजनी के।।

भा०- उस साधक के हृदय के (ज्ञान, वैराग्यरूप) निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार-रात्रि के दोष (अन्धकार) और दु:ख मिट जाते हैं।

सूझहिं रामचरित मनिमानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

दो०- जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान।।१।।

भा०- जहाँ भी जिस खान में गुप्त और प्रकट श्रीरामचरित्ररूप मणि और माणिक्य विद्यमान हैं, वे सब उस साधक के ज्ञान और वैराग्यरूप हृदय के नेत्रों से सूझ जाते हैं अर्थात् स्वयं दृष्टिगोचर हो जाते हैं। जैसे चतुर

साधक और सिद्धजन नेत्र में सुअंजन अर्थात् सिद्धांजन लगाकर खेल–खेल में ही पर्वतों, वनों तथा पृथ्वीतल के नीचे छिपे हुए निधान अर्थात् सोना, चाँदी, मणियों तथा मुद्राओं के खजाने को देख लेते हैं।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन।।

भा०– वही श्रीगुरुदेव की कोमल माधुर्य तथा सौन्दर्य से युक्त श्रीचरणधूलि नेत्र के दोषों को नष्ट करनेवाली ज्ञान–वैराग्यरूप आँखों का अमृतांजन है ।

तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव मोचन।।

भा०– उसी श्रीगुरुचरणधूलि अमृतांजन के द्वारा विवेकनेत्र को निर्मल बनाकर मैं (तुलसीदास) भवबन्धन से छुड़ानेवाले श्रीरामचरित्र का वर्णन करता हूँ।

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संशय सब हरना।।

भा०– सर्वप्रथम, मोह से उत्पन्न सभी संशयों को हरण करनेवाले पृथ्वी के देवता सात्विक ब्राह्मणों के चरणों का मैं वंदन करता हूँ ।

सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।।

भा०– मैं समस्त सद्‌गुणों की खानि सुजन अर्थात् सन्तसमाज को प्रेमपूर्वक सुन्दर वाणी में प्रणाम करता हूँ।

साधु चरित शुभ सरिस कपासू। निरस बिशद गुनमय फल जासू।।

भा०– साधुओं का शुभचरित्र कपास के समान है, जिसका फल नीरस होने पर भी स्वच्छ एवं गुणों से युक्त है अर्थात् जैसे कपास का फल नीरस होने पर भी श्वेत होता है और उसकी रूई से सुन्दर वस्त्र बन जाते हैं, उसी प्रकार सन्तों का जीवनचरित्र, विषय–आसक्ति से दूर रहकर भी समस्त संसार का आदर्श बन जाता है ।

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

भा०– जो कष्ट सहकर भी दूसरों के छिद्रों अर्थात् दोषों को ढँकता है, जिसने जगत् में वन्दन करनेयोग्य यश पाया अर्थात् जैसे कपास स्वयं वस्त्र बनकर दूसरों के अदर्शनीय अंगों को ढँकता है, उसी प्रकार सन्तजन भी अनेक यातनायें सहकर दूसरों के दोषों को ढँक देते हैं ।

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।।

भा०– मैं उसी सन्तसमाज को वन्दन करता हूँ, जो सन्तसमाज प्रसन्नता और मंगलस्वरूप है तथा जो जगत् का चलता–फिरता तीर्थराज प्रयाग है ।

रामभगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्मबिचार प्रचारा।।
बिधिनिषेधमय कलिमलहरनी। करमकथा रबिनंदिनि बरनी।।
हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल बेनी।।
बट बिश्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा।।

भा०– जिस सन्तसमाज में श्रीराम जी की भक्ति ही गंगा जी की धारा है, जहाँ ब्रह्मविचार अर्थात् वेदान्त का प्रचार ही गुप्तसलिला सरस्वती हैं। (पौराणिक तथ्य के आधार पर सरस्वती श्रीप्रयाग के सरस्वती कूप में रहती हुई भी जल को छिपाये रहती हैं, कभी–कभी किसी साधक को उनके दर्शन हो जाते हैं।) विधि और निषेध से युक्त कही गयी कर्मकथा ही जहाँ कलियुग के मलों को हरनेवाली यमुना जी हैं। (करणीय कर्मों की आज्ञा विधि कहलाती है तथा अकरणीय कर्मों को न करने की आज्ञा निषेध कहलाती है।) श्रीहरि महाविष्णु श्रीराम जी, हर (शङ्कर जी) की कथा ही जहाँ त्रिवेणी के समान विराजती है, जो सुनने मात्र से समस्त प्रसन्नताओं तथा मंगलों

को दे देती है। जहाँ अपने वैदिक अर्थात सनातन धर्म पर दृढ़ विश्वास ही अक्षयवट है और श्रेष्ठकर्म ही तीर्थराज प्रयाग के समाज अर्थात् परिकर हैं।

सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा।।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।

भा०- यह साधु समाजरूप जंगम प्रयाग सभी के लिए सभी दिनों और सब देशों में सुलभ है। यह आदर तथा प्रेमपूर्वक सेवन करने से सभी क्लेशों को नष्ट कर डालता है। यह सन्त समाजरूप तीर्थराज प्रयाग अकथनीय और अलौकिक है। यह शीघ्र ही फल दे देता है और इसका प्रभाव प्रकट अर्थात् प्रत्यक्ष है।

दो०- सुनि समुझहिं जन मुदितमन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।।२।।

भा०- जो सज्जन इस साधु समाजरूप प्रयाग को सुनकर समझते हैं और अतिप्रेम से इसमें आशीर्षस्नान करते हैं वे अपने शरीर के रहते हुए ही अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष इन चारों फलों को प्राप्त कर लेते हैं। अथवा, जो सज्जन इसे सुनकर समझते हैं वे ही प्रसन्न मन से प्रेमपूर्वक इसमें मज्जन करते हैं (सन्त समाजरूप प्रयाग का श्रवण और मनन ही इसमें गोते लगाना है) और उन्हें इसी जीवन में चारों पुरुषार्थों का फलरूप प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है।

मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला।।

भा०- सन्त समाजरूप प्रयाग में मज्जन का फल तत्काल दिखायी पड़ जाता है इसमें मज्जन करने से कौवा कोयल और बगुला हंस बन जाता है।

सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई।।

भा०- इसे सुनकर कोई आश्चर्य नहीं करे क्योंकि सत्संगति की महिमा किसी से छिपी नहीं है ।

बालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।।

भा०- महर्षि वाल्मीकि, देवर्षि नारद और ब्रह्मर्षि अगत्स्य जी ने अपनी–अपनी उत्पत्ति अपने–अपने मुख से कही है।

जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना।।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।

भा०- जलचर अर्थात् जल में रहनेवाले जीव, थलचर अर्थात् पृथ्वी पर रहनेवाले पशु, मनुष्य आदि और नभचर अर्थात् आकाश में उड़नेवाले पक्षी आदि इस संसार में जो भी जड़–चेतन जीव हैं, उनमें जिस समय जिसने जिस स्थान पर बुद्धि, कीर्ति, गति, सम्पत्ति और भलाई अर्थात् शिष्टता प्राप्त की है, वह सब सत्संग का प्रभाव ही समझिये। लोक और वेद में इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।
सतसंगति मुद मंगलमूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।
शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई।।
बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं।।

भा०- बिना सत्संग के विवेक नहीं होता और भगवान् श्रीराम की कृपा के बिना वह सत्संग सुलभ नहीं हो पाता। सन्त की संगति प्रसन्नता और मंगल की मूल है, उसकी सिद्धि अर्थात् प्राप्ति फल है और सभी साधन पुष्प हैं। शठ भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, क्योंकि पारस यानी स्पार्श मणि का स्पर्श करके कुधातु अर्थात् लोहा भी सुहावनी धातु अर्थात् सोना बन जाता है। संयोगवश सज्जन भी कुसंगति में पड़ जाते हैं, उस समय वे अपने गुणों का उसी प्रकार अनुसरण करते हैं, जैसे सर्प मणि का अनुसरण करता है अर्थात् सन्तों पर कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ता है।

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।।
सो मो सन कहि जात न कैसे। शाकबनिक मनिगनगुन जैसे।।

भा०- ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी, कवि, वेदज्ञजन और सरस्वती जी अथवा इन सबकी वाणी सन्तजन की जिस महिमा को कहने में संकोच अनुभव करती है, वह मुझसे (तुलसीदास से) उसी प्रकार नहीं कही जा सकती है, जैसे सब्जी बेचनेवाले व्यापारी के द्वारा मणियों के गुण नहीं कहे जा सकते।

दो०- बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहीं कोउ।
अंजलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ।।३(क)।।

भा०- जिस प्रकार अञ्जली में रखा हुआ सुगन्धित पुष्प अपने तोड़नेवाले तथा अपने रखनेवाले इन दोनों हाथों को समान मात्रा में सुगन्धित करता है, उसी प्रकार जिनका कोई भी हितैषी तथा शत्रु नहीं है ऐसे समानचित्तवाले सन्तजन का मैं वन्दन करता हूँ।

दो०- संत सरलचित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु।।३(ख)।।

भा०- हे सन्तजन! आप सरल चित्तवाले एवं जगत् के हितैषी हैं, अतः आप मेरा सुन्दर भाव और स्नेह जानकर मुझ बालक की विनती सुनकर और कृपा करके मुझे प्रभु श्रीराम जी के श्रीचरणों की भक्ति दीजिये।

बहुरि बंदि खलगन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।

भा०- अब सत्यभाव से दुष्टगणों की वन्दना की जाती है, जो बिना प्रयोजन के ही दाहिने अर्थात् अनुकूल लोगों के प्रति भी बायें अर्थात् प्रतिकूल रहते हैं ।

परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे।।

भा०- दूसरों के हित की हानि ही जिनके लिए लाभ है, दूसरों को उजड़ने में जिनको हर्ष होता है और दूसरों को बसने में जिन्हें विषाद हो जाता है अर्थात् जो दुःखी हो जाते हैं।

हरिहरजस राकेश राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।।

भा०- जो विष्णु जी एवं शिव जी के यशरूप पूर्णमासी के चन्द्र के लिए राहु के समान हैं अर्थात् जैसे पूर्णचन्द्र का राहु ग्रसन करता है, उसी प्रकार खलगण भगवान् विष्णु जी और शङ्कर जी के सुयश को भी ग्रसने का प्रयास करते हैं, जो दूसरों के अकाज अर्थात् कार्य को नष्ट करने के लिए सहस्रबाहु के समान वीर बन जाते हैं यानी हजारों हाथों से दूसरे के कार्य को नष्ट करने में तत्पर होते हैं।

जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन के मन माखी।।
तेज कृशानु रोष महिषेशा। अघ अवगुन धन धनिक धनेशा।।

भा०– जो दूसरों के दोषों को हजारों आँखों से देखते हैं, जिनके मन दूसरों के भलाईरूप घी के लिए मक्खी के समान हो जाते हैं अर्थात् जैसे मक्खी घी में पड़ कर स्वयं नष्ट होकर भी उसे दूषित करती है, उसी प्रकार दुष्टजन दूसरे के कल्याणों को स्वयं नष्ट होकर भी नष्ट करने का प्रयास करते हैं। जो तेज में अग्नि के समान अर्थात् दूसरे को जलाने के लिए अग्नि के समान होते हैं और जो क्रोध में महिषासुर अथवा यमराज के समान हैं, जो पाप और अवगुण रूप धन के कुबेर के समान धनी होते हैं अर्थात् जैसे कुबेर सम्पूर्ण धन के धनाध्यक्ष हैं, उसी प्रकार खलगण पाप और अवगुणरूप धन के संरक्षक और अध्यक्ष होते हैं।

उदय केतु सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके।।

भा०– दुष्टजन का अभ्युदय केतु अर्थात् पुच्छल तारा और नौवें ग्रह केतु के समान सभी के लिए अशुभ होता है। अत: ये कुम्भकर्ण के समान सोते हुए ही अच्छे लगते हैं अर्थात् दुष्ट सक्रिय होकर संसार में पुच्छल तारे की भूमिका निभाते हैं, अत: इनकी निष्क्रियता ही भली है।

पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।।

भा०– जो दुष्टजन दूसरों की हानि के लिए उसी प्रकार अपना शरीर भी छोड़ देते हैं, जैसे बर्फ और ओले सुन्दर फसल को नष्ट करके स्वयं भी गलकर नष्ट हो जाते हैं ।

बंदउँ खल जस शेष सरोषा। सहसबदन बरनइ पर दोषा।।

भा०– मैं दुष्टजनों का शेषनारायण के समान वन्दन करता हूँ, जो दूसरे के दोषों का एक हजार मुखों से क्रोधपूर्वक वर्णन करते हैं अर्थात् जैसे शेष, भगवान् के गुणगणों को एक हजार मुखों से कहते हैं, उसी प्रकार खल दूसरों के दोषों को सहस्रमुख से कहते हैं ।

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दश काना।।

भा०– फिर मैं खल को उन महाराज पृथु के समान प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने भगवत्कथा श्रवण करने के लिए दस हजार कान माँगे थे, क्योंकि खल भी दूसरों के पापों को दस हजार कानों से सुनते हैं।

बहुरि शक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही।।
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन पर दोष निहारा।।

भा०– मैं दुष्टों को इन्द्र के समान समझकर उनसे विनती करता हूँ, जिसे निरन्तर सुरानीक हित है अर्थात् सुरा यानी मदिरा नीक अर्थात् भली प्रकार से प्रिय है। इधर इन्द्र को सुरानीक देवताओं की अनीक अर्थात् सेना हित अर्थात् सदैव प्रिय है। (यहाँ श्लेष अलंकार का प्रयोग है)। जिसे वचनवज्र अर्थात् वज्र के समान कठोर वचन निरन्तर प्रिय होता है और जो इन्द्र के समान दूसरों के दोषों को एक हजार नेत्रों से निहारता है ।

दो०– उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानिजुग जोरि जन, बिनती करइ सप्रीति।।४।।

भा०– खल अर्थात् दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्ति, उदासीन अर्थात् तटस्थ, शत्रु और मित्र किसी का भी हित सुनकर जल–भुन उठते हैं अर्थात् वे किसी की भी भलाई से संतुष्ट नहीं होते। खलों की ऐसी रीति जानकर यह जन अर्थात् तुलसीदास हृदय में श्रीराम के प्रति प्रेम रखते हुए भी दुष्टों से दोनों हाथ जोड़कर विनती करता है, जिससे वे मुझ तुलसीदास के भगवत्–भजन में बाधा नहीं डालें।

मैं अपनी दिशि कीन्ह निहोरा। तिन निज ओर न लाउब भोरा।।
पायस पलियहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।।

भा०- मैंने अपनी ओर से निहोरा कर दिया (बारह पंक्तियों में खलों का वन्दन कर लिया), परन्तु वे अर्थात् खलगण अपनी ओर से भोर नहीं लायेंगे अर्थात् असावधानी नहीं बरतेंगे अपने स्वभाववश मेरा अहित करने का प्रयास करेंगे ही। भले ही खीर पिलाकर अतिप्रेम से कौवे का पालन किया जाये तो भी क्या कौवे कभी भी निरामिष हो सकते हैं, अर्थात् मांस खाना छोड़ सकते हैं? अर्थात् नहीं, क्योंकि मांसाहार कौवे की प्रवृत्ति है। इसी प्रकार दूसरों का अहित करना दुष्टों की प्रकृति है।

बंदउँ संत असंतन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।।

भा०- मैं सन्तों और असन्तों दोनों के चरणों का वन्दन करता हूँ। ये दोनों ही दुःख देनेवाले होते हैं, परन्तु दोनों के दुःख देने में कुछ अन्तर का वर्णन किया गया है। एक (सन्त) बिछुड़ते समय अर्थात् वियोगकाल में प्राण हर लेते हैं, तथा एक (दुष्टजन) मिलते समय ही दारुण दुःख देते हैं, अर्थात् सन्तों का वियोग दुखद होता है और असन्तों (दुष्टजनों) का संयोग।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।

भा०- दोनों सन्त और असन्त कमल और जोंक के समान एक ही साथ संसार में उत्पन्न होते हैं, परन्तु इनके गुण इन्हें अलग कर देते हैं। अथवा, ये अपने गुणों से अलग हो जाते हैं अर्थात् सन्त कमल के अनुसार दर्शन और स्पर्श से सुख देते हैं और असन्त जोंक की भाँति स्पर्शमात्र से लोगों का खून पी लेते हैं। साधु और असाधु, सुधा अर्थात् अमृत तथा सुरा अर्थात् मदिरा के समान होते हैं। इन दोनों का संसाररूप अगाध सागर ही एक पिता है अर्थात् जैसे एक ही क्षीरसागर से जन्म लेकर भी अमृत और मदिरा में विषमता दिखती है, उसी प्रकार एक ही संसार से उत्पन्न होकर भी सन्त और असन्त अपने गुणों से स्पष्टतया भिन्न दिख जाते हैं।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।।

भा०- भले और बुरे व्यक्ति अपने–अपने कर्म के अनुसार संसार में सुयश और अपयश की संपत्ति प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् भले प्राणी को उसके कर्म के अनुसार सुयश मिल जाता है और बुरे व्यक्ति को उसके कर्म के फलस्वरूप अपयश प्राप्त हो जाता है।

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू।।
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।।

भा०- अमृत, चन्द्रमा, गंगा जी तथा सन्त इनके विकल्प में विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी कर्मनाशा और व्याध अर्थात् बहेलिया इन दोनों वर्गों के गुणों और अवगुणों को सभी लोग जानते हैं, पर जिसे जो भाता है उसके लिए वही अच्छा है, जैसे कुछ लोग अमृत आदि के पक्षधर बन जाते हैं और कुछ लोग विष आदि के प्रशंसक होते हैं।

दो०- भलो भलाई पै लहइ, लहइ निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच।।५।।

भा०- फिर भी भला प्राणी भलाई ही प्राप्त करता है तथा निम्न श्रेणी का व्यक्ति नीचता को ही प्राप्त करता है। अमृत की अमरता के कारण प्रशंसा की जाती है और विष की मृत्यु के पक्ष से प्रशंसा होती है अर्थात् सभी के न तो सभी प्रशंसक होते हैं और न ही निन्दक।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।।
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।

भा०- दुष्टों के पापों और अवगुणों की तथा सन्तों के दिव्य गुणों की गाथाओं के दोनों प्रकार दो अपार और अगाध महासागर हैं अर्थात् दुष्टों के पापों और दोषों की कोई सीमा नहीं है और सन्तों के गुणों की भी कोई थाह नहीं है। इनके गुण और दोष इसलिए कहे गये जिससे साधारण लोग भी इनका अन्तर समझ सकें क्योंकि बिना परिचय के स्वीकार या त्याग संभव नहीं हो पाता ।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए।।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।।

भा०- यद्यपि भले और बुरे इन दोनों वर्गों के प्राणियों को उन्हीं के कर्मों के अनुसार ब्रह्मा जी ने उत्पन्न किया है, फिर भी वेदों ने गुणों और दोषों की गणना करके इन्हें पृथक्-पृथक् कर दिया है, जिससे भले-बुरे की पहचान हो सके। चारों वेद, दोनों इतिहास (रामायण और महाभारत) तथा पुराण (१८ पुराण और १८ उप-पुराण) यह सभी कहते हैं कि, ब्रह्मा जी का रचा हुआ प्रपंच गुणों और अवगुणों से सना हुआ है अर्थात् जैसे दाल में चावल मिला दिया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा जी ने गुणों और दोषों को एक में मिला कर सृष्टि की रचना की है।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू।।
माया ब्रह्म जीव जगदीशा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा।।
काशी मग सुरसरि क्रमनाशा। मरु मालव महिदेव गवाशा।।
स्वर्ग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा।।

भा०- जैसे दुःख-सुख, पाप-पुण्य, साधु-असाधु, सुन्दर जाति-बुरी जाति, दैत्य-देवता, ऊँचा-नीचा, अमृत-विष, सुन्दर जीवन-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-जगदीश्वर अर्थात् परमात्मा, लक्ष्मी-दरिद्रता, दरिद्र-राजा, काशी-मगध, गंगा जी-कर्मनाशा, मरुभूमि-मालव प्रदेश, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, हीनवर्ग का राग, और वैराग्य इस प्रकार गुणों और दोषों का पूर्ण रूप से विभाग करना निगमों अर्थात् वेदों के लिए भी पूर्णतः अगम अर्थात् कठिन ही है, यह तो लोगों को समझने के लिए वेदों ने कतिपय गुणों और दोषों की चर्चा की है।

दो०- जड़ चेतन गुन दोषमय, बिश्व कीन्ह करतार।।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।६।।

भा०- ब्रह्मा जी ने जड़ चेतनात्मक इस संसार को गुणों और दोषों से मिलाकर बनाया है, इसमें से सन्तरूप हंस दोषरूप जल को छोड़कर गुणरूप दूध को ग्रहण कर लेते हैं, जैसे मिले हुए दूध और जल में से हंस दोनों को अलग कर दूध लेकर जल छोड़ देता है उसी प्रकार गुण-दोषात्मक इस संसार में सन्तजन दोनों की पहचान कर दोष छोड़कर गुण ग्रहण कर लेते हैं।

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मन राता।।

भा०- यद्यपि विधाता अर्थात् परमात्मा जब किसी को इस प्रकार का विवेक देते हैं तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में रम जाता है, परन्तु ऐसा विरले लोगों के साथ होता है।

काल स्वभाव करम बरियाईं। भलेउ प्रकृति बश चूक भलाईं।।
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जस देहीं।।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन स्वभाव अभंगू।।

भा०- कभी–कभी भला व्यक्ति भी माया के वश होकर काल, स्वभाव और कर्मों की प्रबलता के कारण भलाई से चूक जाता है, अर्थात् कदाचित् भला व्यक्ति भी बुरा बन जाता है, उसे भगवान् के भक्तजन जिस प्रकार से सुधार लेते हैं उसके दु:ख और दोषों को नष्ट करके निर्मल यश दे देते हैं, उसी प्रकार कभी–कभी भले लोगों को प्राप्त करके खल भी भले लोगों के साथ भलाई कर लेते हैं, परन्तु उनका कभी न नष्ट होने वाला मलिन स्वभाव नहीं नष्ट होता अर्थात् भले लोग ही अच्छी संगति से सुधरते हैं, दुष्ट नहीं।

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजियहिं तेऊ।।
उघरहिं अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।।

भा०- संसार में जो वंचक अर्थात् ठग लोग भी हैं, वे भी सुन्दर वेष देखकर अर्थात् वेश के प्रताप से लोगों द्वारा पूजे जाते हैं, परन्तु अन्तत: वे उघर जाते हैं अर्थात् उनकी पोल खुल जाती है। वे अन्त में अपनी वास्तविकता में आ जाते हैं, फिर उनका निर्वाह नहीं होता जैसे सुन्दर वेश बनाने पर भी कालनेमि, रावण और राहु के साथ हुआ था।

किएहुँ कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।।

भा०- कुवेश धारण करने पर भी जगत् में साधुओं का सम्मान होता है जैसे भालू और वानर का वेश बना लेने पर भी जाम्बवान् जी और श्रीहनुमान् जी का सम्मान हुआ। तात्पर्य यह है कि सन्त और असन्त वेश से नहीं उद्देश्य से सम्मानित या अपमानित होते हैं।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू।।
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जलसंगा।।
साधु असाधु सदन शुक सारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी।।
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई।।
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता।।

भा०- लोक और वेदों में यह तथ्य प्रसिद्ध है और सभी को ज्ञात भी है कि, बुरी संगति से हानि और अच्छी संगति से लाभ होता है, जैसे सामान्य धूलि पवन की अच्छी संगति पाकर आकाश पर चढ़ जाती है और वही धूलि नीच अर्थात् निम्नगामी जल की संगति पाकर कीचड़ में मिल जाती है। पक्षी कोटि के तोता और मैना साधु की संगति पाकर उनके घर में राम का स्मरण करते हुए राम–राम रटते हैं और वही असन्त के घर जाकर उनकी संगति के प्रभाव से लोगों को गिन–गिन कर गालियाँ देते हैं। धूआँ दीवार की कुसंगति पाकर कालिख बन जाता है और वही सुन्दर स्याही बनकर पुराण लिखने के उपयोग में आता है।

दो०- ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग।।७(क)।।
सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह।
शशि पोषक शोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह।।७(ख)।।

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पदकमल, सदा जोरि जुगपानि।।७(ग)।।

देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब।।७(घ)।।

भा०- ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र कुयोग पाकर कुवस्तु अर्थात् बुरी वस्तु बन जाते हैं और सुयोग पाकर अर्थात् सुन्दर उपकरणों का साथ पाकर अच्छी वस्तु बन जाते हैं, इनको तो संसार में सूक्ष्मदृष्टिवाले लोग ही देख पाते हैं। यद्यपि महीने के दोनों शुक्ल और कृष्ण पक्षों में प्रकाश और अंधकार समान होते हैं। फिर भी ब्रह्मा जी ने नाम का भेद किया है अर्थात् एक को शुक्ल पक्ष और दूसरे को कृष्ण पक्ष कहा है। एक को चन्द्रमा का पोषक और एक को उसका शोषक समझकर संसार ने भी एक को यश और एक को अपयश दिया। संसार में जितने भी जड़ और चेतन जीव हैं, सभी को श्रीराममय अर्थात् श्रीराम से आया हुआ तथा उन्हीं से उत्पन्न जानकर, सभी के चरणकमल की मैं सदैव वन्दना करता हूँ। (राममय शब्द और आगे आनेवाले सीयराममय शब्द में मयट् प्रत्यय "तत् आगतः" पा०सू० ४-३-७४ सूत्र से हुआ है।) देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितृगण, गंधर्व, किन्नर, राक्षस इन सभी वर्गों के प्राणियों को श्रीराम से उत्पन्न जानकर ही (उनका) मैं वन्दन करता हूँ। अब आप सभी चिद्वर्ग के लोग मुझ पर कृपा कीजिये ।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी।।

भा०- मैं अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज इन चार खानों तथा बीस लाख स्थावर, नौ लाख जल जन्तु, ग्यारह लाख कीड़े-मकोड़े, दस लाख पक्षी, तीस लाख पशु एवं चार लाख वानरों के योनियों में वर्तमान जल-थल और आकाश में निवास करनेवाले जीवों से युक्त सम्पूर्ण चित् जगत् को नारी-नर की दृष्टि से सीयराममय अर्थात् श्रीसीताराम जी से जन्मा हुआ जानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

जानि कृपा करि किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू।।

भा०- आप लोग मुझे सेवक जानकर और मुझ पर कृपा करके सभी चार खान चौरासी लाख योनियों के चित् जीववर्ग छल-छोड़कर मुझ पर दया कीजिये।

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। ताते बिनय करउँ सब पाहीं।।

भा०- मुझको अपने बुद्धि के बल पर विश्वास नहीं है इसलिए मैं सब से विनय करता हूँ।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ।।

भा०- मैं रघुकुल के स्वामी श्रीराम के गुणों की गाथा की रचना करना चाहता हूँ। मेरी छोटी सी बुद्धि इस सागर जैसे चरित्र में अवगाहन करना चाहती है। अथवा मेरी बुद्धि छोटी है और चरित्र अगाध है। मुझे उपाय का एक भी अंग अर्थात् प्रकार नहीं सूझ रहा है, सूक्ष्मता से भी नहीं समझ में आ रहा है, क्योंकि मन बुद्धि का तो दरिद्र है और उसका मनोरथ राजा है। अथवा मेरा मन और बुद्धि दोनों ही दरिद्र और मनोरथ राजा है। वह इन्हें आज्ञा देता रहता है, पर ये उसकी आज्ञापालन में असमर्थ हो रहे हैं।

मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी।।

भा०- मेरी बुद्धि अत्यन्त निम्नश्रेणी की छोटी है और रुचि बहुत ही ऊँची है, उसे चाहिये तो अमृत, पर संसार में छाछ अर्थात् मट्ठा भी उपलब्ध नहीं हो रहा है।

छमिहैं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहैं बाल बचन मन लाई।।
जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।।

भा०- सज्जन लोग मेरी ढिठाई अर्थात् धृष्टता को क्षमा करेंगे और मुझ बालक के बचन मन लगाकर सुनेंगे। जैसे यदि बालक तोतली बात कहता है तो पिता–माता प्रसन्न मन से उसे सुनते हैं, उसी प्रकार मुझ तुलसीदास की तोतली बात भगवद्भक्त मातायें और श्री वैष्णव पितृतुल्य सन्त मन लगाकर सुनेंगे ।

हँसिहैं कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषन भूषनधारी।।
निजकबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।।
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बरपुरुष बहुत जग नाहीं।।

भा०- जो दूसरों के दोषों को आभूषणों के समान अपने मन में धारण करते हैं ऐसे दुष्ट–कुटिल (टेढ़ी प्रकृति वाले) एवं बुरे विचार के लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे। भला अपनी रचना किसको अच्छी नहीं लगती, चाहे वह सुन्दर रस से परिपूर्ण हो अथवा अत्यन्त फीकी, परन्तु जो दूसरों की कविता सुनकर प्रसन्न होते हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुष इस संसार में अधिक नहीं हुआ करते।

जग बहु नर सर सरिसम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।।
सज्जन सकृत सिंधुसम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।।

भा०- हे भाई! संसार में बहुत से प्राणी तालाब और नदी के समान हैं, जो अपनी उपलब्धिरूप जल को पाकर बढ़ जाते हैं। समुद्र के समान तो कोई एक सज्जन हुआ करते हैं, जो पूर्ण चन्द्रमारूप दूसरों को बढ़ते देखकर प्रसन्न होते हैं।

दो०- भाग छोट अभिलाष बड़, करउँ एक बिस्वास।
पैहैं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहैं उपहास।।८।।

भा०- मेरा भाग्य छोटा है, परन्तु इच्छा बहुत बड़ी है। एक विश्वास करता हूँ कि, मेरी रचना सुनकर सभी सन्तजन सुख पायेंगे और दुष्ट लोग इसका उपहास करेंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।।
हंसहिं बक गादुर चातकहीं। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकहीं।।

भा०- दुष्टों के परिहास से मेरा हित ही होगा, क्योंकि कौवे तो कोयल को कठोर कहते ही हैं, बगुले हंस की हँसी उड़ाते ही हैं तथा चमगादड़ पपीहे की हँसी करते ही हैं, उसी प्रकार निर्मल वार्ता का मलिन मनवाले दुष्टजन परिहास करते ही हैं।

कबित रसिक न रामपद नेहू। तिन कहँ सुखद हासरस एहू।।
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।।

भा०- जो कविता के रसिक नहीं हैं और जिनके मन में प्रभु श्रीराम के चरणों में प्रेम नहीं है, उनके लिए भक्तिरस प्रधान मेरी रचना पर किया हुआ यह हास्यरस सुखप्रद होगा, क्योंकि नवों रसों में हास्य भी तो एक रस है। मेरी कविता संस्कृत में नहीं अवधी भाषा में लिखी गई है और मेरी बुद्धि भी बहुत भोली है, इसलिए मेरी कविता हँसी के योग्य ही है, अतः इस पर हँसने में किसी का कोई दोष नहीं है।

प्रभुपदप्रीति न सामुझि नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागिहि फीकी।।
हरिहरपदरति मति न कुतरकी। तिन कहँ मधुर कथा रघुबर की।।
रामभगति भूषित जिय जानी। सुनिहैं सुजन सराहि सुबानी।।

भा०- जिनके मन में प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में भक्ति नहीं है और जिनकी समझ अच्छी नहीं है, उन्हे यह कथा सुनकर फीकी लगेगी। जिनके मन में प्रभु श्रीराम और उनके अनन्य सेवक भगवान् शङ्कर के चरणों में भक्ति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क से युक्त नहीं है, उनको मेरे द्वारा कही हुई रघुवर श्रीराम की कथा मधुर लगेगी। इस कथा को हृदय में श्रीराम की भक्ति से सुशोभित समझकर सज्जन लोग सुन्दर वाणी में सराह कर सुनेंगे।

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्याहीनू।।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।।
भावभेद रसभेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।

भा०- मैं कवि भी नहीं हूँ और वचन में चतुर भी नहीं हूँ। मैं सभी काव्य–कलाओं और सभी विद्याओं से हीन हूँ। अक्षर, उनके अर्थ, अनेक शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा अनेक प्रकार के छन्द और अनेक प्रकार के प्रबन्धों के विधान, भावों के अपारभेद और रसों की अनेक विधायें इस प्रकार कविता के अनेक प्रकार के दोष और गुण काव्यशास्त्र में देखे जाते हैं, उनमें से एक भी कविता का विवेक मेरे पास नहीं है, यह मैं कोरे अर्थात् सादे कागज़ पर लिखकर सत्य की शपथ करके प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ।

दो०- भनिति मोरि सब गुन रहित, बिश्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहैं सुमति, जिन के बिमल बिबेक।।९।।

भा०- मेरी कविता सभी गुणों से रहित है परन्तु इसमें विश्व प्रसिद्ध एक गुण है जिनके पास विमल विवेक होगा वे सुन्दर बुद्धिवाले सज्जन उसी गुण का विचार करके मेरी कविता सुनेंगे।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।।
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहिं जपत पुरारी।।

भा०- मेरी इस कविता में अत्यन्त पावन पुराणों और वेदों का सार, सभी मंगलों का गृह और अमंगलों का हरण करनेवाला रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम का वह उदार रामनाम वर्णित है, जिसे पार्वती जी के सहित त्रिपुर के शत्रु शिव जी स्वयं जपते रहते हैं।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।।

भा०- सुन्दर कवि द्वारा रची हुई जो भी बिचित्र कविता है, वह भी श्रीराम नाम के बिना नहीं शोभित होती है, जैसे सब प्रकार से सँवारी हुई श्रेष्ठमहिला वस्त्र के बिना नहीं शोभित होती है, क्योंकि कविता–वनिता का रामनाम ही दुकूल वस्त्र है।

सब गुन रहित कुकबिकृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।।

भा०- जो सभी काव्य-गुणों से रहित और काव्यशास्त्र से अनभिज्ञ कवि की वाणी है उसको भी श्रीराम नाम के यश से अंकित समझकर पंडितजन आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योंकि सन्तजन भ्रमर के समान गुणग्राही होते हैं, जो बाहरी चाकचिक्य (तड़क-भड़क) से नहीं, आन्तरिक गुणों से प्रभावित होते हैं।

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।।
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पन पावा।।

भा०- यद्यपि मेरी कविता में तथाकथित एक भी कविता का रस अर्थात् आनन्द नहीं है, किन्तु इसमें श्रीराम का प्रताप प्रकट रूप से वर्णित हुआ है। मेरे मन को वही विश्वास आया है कि, सुन्दर संगति से भला किसने बड़प्पन नहीं पाया ?

धूमउ तजइ सहज करुवाई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई।।
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।।

भा०- धूआँ भी अगर की संगति पाकर स्वाभाविक कटुता को छोड़ देता है और अगर की सुगंध से बासित होकर पूरे स्थान को सुगंधमय बना देता है । यद्यपि मेरी कविता भद्दी (गँवई) है पर इसमे श्रीराम की गुणगाथा रूप श्रेष्ठ वस्तु का वर्णन हुआ है, क्योंकि श्रीरामकथा सम्पूर्ण जगत् का मंगल कर देती है।

छं०- मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मनभावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।।

भा०- मुझ तुलसीदास द्वारा कविता में बद्ध की गयी श्रीरघुनाथ जी की कथा मंगलों को करनेवाली और कलियुग के मलों को हरनेवाली है। मेरी कवितारूप नदी की गति पवित्र जलवाली देवनदी गंगा जी के गति के समान टेढ़ी है। प्रभु भगवान् श्रीराम के सुयश का साथ पाकर मेरी कविता भली और सज्जनों के लिए मनभावनी हो जायेगी, क्योंकि श्मशान की राख भी शिव जी के अंग का संग पाकर स्मरण करनेवालों के लिए स्मरण में सुहावनी और समान्यजन के लिए पवित्र हो गयी है।

दो०- प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग।।१०(क)।।
श्याम सुरभि पय बिशद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान।।१०(ख)।।

भा०- मेरी कविता श्रीराम जी के यश के सम्पर्क के कारण सभी को अत्यन्त प्रिय लगेगी। भला मलय के सम्पर्क के कारण क्या कोई चन्दन की लकड़ी का विचार करता है ? प्रत्युत् उसकी वन्दना ही की जाती है। जिस प्रकार श्यामा गाय का दूध अत्यन्त स्वच्छ, शुद्ध और गुणकारी होता है और सभी उस का पान करते हैं, उसी प्रकार ग्राम्यवाणी में मेरे द्वारा कहे हुए श्रीसीताराम के यश को सुजान लोग गायेंगे और सुनेंगे।

मनि मानिक मुकता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई।।
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।।

भा०- मणि, माणिक्य और गजमुक्ता की जैसी प्राकृतिक छवि है, वह उनके जन्मस्थान (सर्प, पर्वत और हाथी का सिर) पर उस प्रकार नहीं शोभित होती है जैसे वे सभी राजा, राजमुकुट तथा युवती के शरीर को प्राप्तकर शोभा की अधिकता को प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार विद्वान् लोग कहते हैं कि सुन्दर कवियों की कवितायें अन्यत्र उत्पन्न होती हैं और अन्यत्र छवि को प्राप्त होती हैं, अर्थात् कविता कभी भी अपने जन्म–स्थान पर उत्कर्ष को नहीं प्राप्त करती है। तात्पर्य यह है कि, जैसे मणि सर्प से उत्पन्न होकर भी वहाँ उतना उत्कर्ष नहीं प्राप्त करता जितना राजा के कण्ठ को प्राप्त करके, उसी प्रकार ओजगुण सम्पन्न कविता, रचयिता के पास नहीं प्रत्युत् ओजस्वभाव सम्पन्न काव्यरसिक पाठक के पास उत्कर्ष को प्राप्त होती है। इसी प्रकार माणिक्यधर्मी कविता माधुर्य गुण सम्पन्न होकर भी अपने निर्माता कवि के पास उतनी उत्कृष्ट नहीं हो पाती जितनी कि राजमुकुट रूप मधुर काव्यरसिक के पास शोभा को प्राप्त करती है। वैसे ही प्रसाद गुण सम्पन्न गजमुक्ताधर्मिणी कविता हाथी के समान रचयिता के पास वह सौन्दर्य नहीं प्राप्त कर पाती जितना कि युवतीधर्मिणी काव्यरसिक के प्रसन्नबुद्धि के पास जाकर सुन्दरता को प्राप्त होती है। यहाँ कविता का सौन्दर्य रस की अनुभूति से सम्बद्ध है, क्योंकि कविता कर्त्ता को नहीं प्रत्युत् रसिक को आनन्द देती है।

भगति हेतु बिधिभवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।।
राम चरित सर बिनु अन्हवाए। सो श्रम जाइ न कोटि उपाए।।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी।।

भा०- भक्तकवि के भक्ति के कारण उसके स्मरण करते ही ब्रह्मा जी का भवन छोड़कर सरस्वती जी कवि के पास दौड़ी आती हैं। श्रीरामचरितरूप सरोवर में सरस्वती जी को स्नान कराये बिना सरस्वती जी का ब्रह्मा जी के भवन से कवि के पास तक आने में जो श्रम हुआ, वह अन्य करोड़ों उपायों से नहीं जा सकता, ऐसा अपने हृदय में विचार कर वेदज्ञ विद्वान् कविगण कलिमल को हरनेवाले हरि श्रीराम जी के यश का ही गान करते हैं जिससे सरस्वती जी का श्रम चला जाये।

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।।

भा०- प्राकृत जनों का गुणगान करने से सरस्वती जी सिर पीटकर पछताने लगती हैं कि मैं क्यों इसके बुलाने पर आयी।

हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।
जौ बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकता मनि चारू।।
दो०- जुगुति बेधि पुनि पोहियहिं, रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, शोभा अति अनुराग।।११।।

भा०- काव्यरस के मर्मज्ञ लोग कहते हैं कि, कवि का विशाल हृदय ही समुद्र होता है, उसमें बुद्धि सीप और सरस्वती जी स्वाति नक्षत्र के समान होती हैं। ऐसी परिस्थिति में जब विचाररूप श्रेष्ठजल बरसता है और सरस्वती रूप स्वाति के संयोग से जब बरसते हुए विचार–जल का बिन्दु बुद्धिरूप सीप में पड़ता है, उसी समय कविता रूप सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न हो जाती है। युक्ति रूप सूई से बेधकर उसे श्रीरामचरित्रूप सुन्दर धागे में पिरोया जाता है और उसे सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में पहनते हैं। वहाँ आध्यात्मिक शोभा और अत्यन्त अनुराग उपस्थित होता है अथवा, अत्यन्त अनुराग ही वहाँ की शोभा हो जाता है।

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला।।
चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।।
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।।
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमधुज धंधक धोरी।।

भा०- जो लोग इस कराल कलिकाल में जन्म लेते हैं, जिनका वेश तो हंस जैसा परन्तु कर्म कौवे जैसा है, जो वैदिकमार्ग को छोड़कर कुपथ मार्ग पर चलते हैं, जिनका शरीर कपटमय है और जो स्वयं कलियुग के मलों के पात्र हैं, जो श्रीराम जी के भक्त कहलाकर वंचक अर्थात् लोगों को ठगते फिरते हैं, जो कंचन अर्थात् स्वर्ण, क्रोध और काम के सेवक हैं, जो धींग अर्थात् अकर्मण्य धर्म की झूठी ध्वजा फहरानेवाले श्रीराम नाम के व्यापारी और इन सभी दुर्गुणों के धुरी हैं, उनमें सबसे प्रथम मैंने स्वयं को रखा है।

जौ अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।।
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महँ जानिहैं सयाने।।
समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।।
एतेहु पर करिहैं जे शंका। मोहि ते अधिक ते जड़मति रंका।।

भा०- यदि मैं अपने सभी अवगुणों को कहूँ तो कथा बढ़ जायेगी और मैं पार नहीं पाऊँगा। इसलिए मैंने अपने बहुत थोड़े दोष कहे हैं। चतुर लोग थोड़े में ही जान जायेंगे। मेरी अनेक प्रकार की विनती सुनकर, कोई भी मेरी कथा सुनकर मुझे दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शंका करेंगे, वे मुझसे भी अधिक जड़ और बुद्धि के दरिद्र हैं।

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।।

भा०- मैं कवि भी नहीं हूँ और न हीं स्वयं को चतुर कहलाता हूँ, मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् श्रीराम के गुण गा रहा हूँ।

कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरतसंसारा।।
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।।
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई।।

भा०- कहाँ भगवान् श्रीराम के अपार चरित्र और कहाँ संसार के विषयों में फँसी हुई मेरी बुद्धि। जिस वायु से सुमेरु जैसे बड़े-बड़े पर्वत उड़ जाते हैं भला कहिये, वहाँ रूई किस श्रेणी में है? श्रीराम की प्रभुता को अमित समझते हुए, कथा कहते हुए मन अत्यन्त कतरा रहा है ।

दो०- सारद शेष महेश बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान।।१२।।

भा०- सरस्वती जी, शेष जी, शिव जी, ब्रह्मा जी, तंत्र, वेद और पुराण 'नेति-नेति' (इतना नहीं-इतना नहीं) इस प्रकार कह कर जिन श्रीराम का निरन्तर गुणगान करते रहते हैं ।

चौ०- सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई।।
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा।।

भा०- ये सभी भगवान् की प्रभुता को उसी प्रकार अकथनीय जानते हैं, फिर भी कोई बिना कहे नहीं रह पाया। वहाँ वेद ने इस प्रकार कारण रखा है, जिसमें अनेक प्रकार से भजन का प्रभाव कहा गया है अर्थात् यद्यपि भगवान् की प्रभुता को कोई भी पूर्ण रूप से नहीं कहता, फिर भी इसके बहाने भगवान् का भजन किया जा सकता है अर्थात् कथा कहने के बहाने से भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम का चिन्तन होता है, जिससे साधक का परमकल्याण हो जाता है।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा।।
ब्यापक बिश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।

भा०- भगवान् श्रीराम एक अर्थात् समानता और आधिक्य से रहित हैं, उनमें कोई चेष्टा नहीं है, वे प्राकृत रूप और नाम से रहित हैं, वे अजन्मा, सच्चिदानंद तथा परमधाम अर्थात् परमज्योतिस्वरूप हैं, प्रभु सर्वव्यापक, विश्वरूप तथा ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य नामक छहों माहात्म्यों से निरन्तर सम्पन्न हैं, उन्होंने ही अलौकिक शरीर धारण करके अनेक चरित्र किये हैं।

सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपालु प्रनत अनुरागी।।
जेहिं जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू।।
गई बहोर गरीब निवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू।।

भा०- उनका वह चरित्र केवल भक्तों के हित के लिए है, क्योंकि परमात्मा परमकृपालु और शरणागतों के प्रति अनुराग करनेवाले हैं, जिन्हें अपने भक्त पर ममता और अत्यन्त वात्सल्य है, जिन्होंने एक बार करुणा करके फिर अपराध करने पर भी क्रोध नहीं किया। प्रभु श्रीराम गयी हुई वस्तु को लौटानेवाले, गरीबनिवाज अर्थात् दीनजनों को अलौकिक उपहार से सम्मानित करनेवाले, अतिसरल, असीम बल से युक्त, सबके स्वामी तथा रघुकुल के राजा और जीवमात्र के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहनेवाले हैं।

बुध बरनहिं हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा।।
मुनिन प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।।

भा०- बुध अर्थात् (पण्डित जन) ऐसा समझकर ही श्रीहरि का यश वर्णन करते हैं और इसी बिधि से अपनी वाणी को पवित्र और सफल बनाते हैं। मैं तुलसीदास भी उसी बल के आधार पर (भगवद् यश गाने से वाणी पवित्र होगी और भजन बढ़ेगा) इसी उद्देश्य से श्रीराम के चरणों में मस्तक नवाकर श्रीराम जी की दिव्य गुणगाथा कहूँगा। हे भाई ! इसी उद्देश्य से वाल्मीकि, अगस्त्य, लोमश, अग्निवेश, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास आदि मुनियों ने पहले ही श्रीहरि प्रभु श्रीराम की कीर्ति का गान किया है, उसी मार्ग से चलना मेरे लिए सुगम होगा।

दो०- अति अपार जे सरित बर, जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं।।१३।।

भा०- जो अत्यन्त अपार नदियाँ हैं, उनमें यदि कोई राजा सेतु बना देता है तो उन पर चढ़कर बहुत छोटी चीटियाँ भी बिना श्रम के पार चली जाती हैं, उसी प्रकार महर्षियों ने श्रीरामकथा रूप सरिताओं पर राजा की भाँति सौ करोड़ से अधिक सेतु बाँध दिये हैं, अतः उन्हीं के सहारे चींटी की भाँति छोटी बुद्धिवाला मैं (तुलसीदास) बिना श्रम के पार पा लूँगा और सौ करोड़ रामायण के सारांश रूप को सरल अवधी भाषा में मानस रामायण की रचना कर सकूँगा।

एहि प्रकार बल मनहि दृढ़ाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई।।
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन सादर हरि सुजस बखाना।।
चरनकमल बंदउँ तिन केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे।।

भा०- मन में इस प्रकार का बल दृढ़ करके मैं सुहावनी श्रीराम कथा कहूँगा। व्यास आदि अनेक श्रेष्ठकवि जिन्होंने आदरपूर्वक पापहारी श्रीराम के सुयश का बखान किया है, उनके चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ। आप सभी मेरे मनोरथों को पूर्ण कीजिये जिससे मैं भी श्रीराम के सुयश का वर्णन कर सकूँ।

कलि के कबिन करउँ परनामा। जिन बरने रघुपति गुन ग्रामा।।

भा०- मैं कलियुग के भी उन कवियों (जैसे कालिदास, कुमारदास, जयदेव, मुरारि मिश्र, भवभूति, राजशेखर आदि) को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्रीरघुपति राम जी के गुणों के समूहों का वर्णन किया है।

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।।
भए जे अहहिं जे होइहैं आगे। प्रनवउँ सबहिं कपट छल त्यागे।।

भा०- जो संस्कृत भाषा के अतिरिक्त तमिल, कन्नड़, तेलगू, उड़िया, बंग, मैथिली, अवधी, ब्रज, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, खड़ी हिन्दी आदि भाषाओं के परम चतुर कवि हैं और जिन्होंने हिन्दी भाषा में प्रभु श्रीराम के चरित्रों का बखान किया है, जो हो चुके हैं, जो हैं और जो भविष्य में होंगे उन सभी श्रीरामचरित् के कविश्रेष्ठों को मैं कपट और छल छोड़कर प्रणाम करता हूँ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू।।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं।।

भा०- हे कविश्रेष्ठों, आप सब प्रसन्न हों और मुझे यह वरदान दें कि जिससे सन्तों के समाज में मेरी कविता का सम्मान हो, क्योंकि सन्त श्रीरामयश से समन्वित कविता का ही सम्मान करते हैं और वह आप भगवदीय कवियों के वरदान से ही सम्भव हो सकेगी। जिस प्रबंधकाव्य का श्रीरामानुरागी विद्वान् सन्तजन समादर नहीं करते, श्रीराम भक्तिशास्त्र से अनभिज्ञ कवि वह श्रम निरर्थक ही करते हैं, क्योंकि भगवत् प्रेमरहित प्रबंधकाव्य की रचना का श्रम व्यर्थ ही हो जाता है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा।।
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सियनि सुहावनि टाट पटोरे।।
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहिं अनुहरै सुबानी।।

भा०- वही कीर्ति, वही कविता, वही संपत्ति श्रेष्ठ है, जो गंगा जी के समान सभी के लिए कल्याणकारिणी हो, परन्तु श्री राम जी की कीर्ति अत्यन्त श्रेष्ठ और मेरी कविता, लोकभाषा में होने से बड़ी भद्दी है यही मेरे लिए असमंजस और असौविध्य है अर्थात् श्रीराम जी की कीर्ति से मेरी कविता का कोई मेल नहीं बैठ पा रहा है। आप कवि-पुंगवों की कृपा से मेरे लिए वह भी सुलभ हो सकता है, क्योंकि टाट पर भी रेशम की सिलाई सुहावनी लगती है अर्थात् मेरी टाट के समान अतितुच्छ कविता पर श्रीराम जी की कीर्ति रेशमी तागे की सिलाई के समान बड़ी ही सुहावनी लगेगी।

दो०- सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान।।१४(क)।।
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मतिबल अति थोर।
करहु कृपा हरिजस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोर।।१४(ख)।।
कबि कोबिद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल।।१४(ग)।।

भा०- जो कविता प्रसादगुण से सम्पन्न अतिसरल हो और उसके द्वारा कही हुई जो कीर्ति अत्यन्त बिमल होती है, उसी का सुजान लोग आदर करते हैं जिसे सुनकर शत्रु अपना स्वभाविक बैर भूलकर प्रशंसा करने लगते हैं। वह कविता निर्मलबुद्धि के बिना सम्भव नहीं हो सकती। मुझमें बुद्धि का बल बहुत थोड़ा है। आप लोग कृपा कीजिये, जिससे मैं श्रीहरि का यश कह सकूँ। मैं बार-बार निहोरा अर्थात् आपकी मनुहार कर रहा हूँ। श्रीराम जी

के चरित्ररूप मानस सरोवर के सुन्दर राजहंस रूप हे विद्वान् कवियों! मुझ बालक तुलसीदास का विनय सुनकर और मेरी भगवद् यश कहने की सुंदर रुचि देखकर आप लोग मुझ पर कृपालु हो जाइये।

सो०- बंदउँ मुनिपद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोषरहित दूषन सहित।।१४(घ)

भा०- मैं उन मुनि मननशील महर्षि वाल्मीकि के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने ऐसे विचित्र विरोधाभासों से युक्त रामायण का निर्माण किया जो खर नामक राक्षस के पराक्रम से युक्त होकर भी अत्यन्त कोमल और मधुर है और दूषण सहित अर्थात दूषण राक्षस की चर्चा से युक्त होकर भी दोष रहित है। अर्थात् दूषण भी जिसमें दोष नहीं ला सका और खर की उपस्थिति से भी जो कठोर नहीं बन सका।

बंदउँ चारिउ बेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिनहिं न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुबर बिशद जस।।१४(ङ)।।

भा०- भवसागर के जहाज के समान मैं ऋक्, यजुष, साम, अथर्वण इन चारों वेदों का वंदन कर रहा हूँ, जिन्हें श्रीराम जी के स्वच्छ–निष्कलंक यश का वर्णन करने में स्वप्न में भी श्रम और आलस्य का आभास नहीं होता।

बंदउँ बिधि पद रेनु, भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा शशि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी।।१४(च)

भा०- मैं ब्रह्मा जी के चरणों की रेणु को वंदन करता हूँ, जिन्होंने इस संसार को सागर जैसा बनाया, जहाँ अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु के समान सन्त तथा विष एवं मदिरा के समान खल उत्पन्न हुए।

दो०- बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि।।१४(छ)।।

भा०- मैं देवता, ब्राह्मण, पंडितजन एवं नवोंग्रहों के चरणों का वन्दन करके, हाथ जोड़कर कह रहा हूँ कि, आप सब प्रसन्न होकर मेरे मधुर मनोरथ को पूर्ण कीजिये।

पुनि बंदउँ सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।।
मज्जन पान पापहर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।।

भा०- फिर मैं सरस्वती जी एवं गंगा जी का एक साथ वन्दन कर रहा हूँ, क्योंकि दोनों में ही दो–दो चरित्र पवित्र और मनोहर हैं अर्थात् गंगा जी स्नान और पान से जीव के पाप को हर लेती हैं और सरस्वती जी कहने और सुनने से अविवेक हर लेती हैं।

गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के।।
कलि बिलोकि जगहित हर गिरिजा। शाबर मंत्रजाल जिन सिरिजा।।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।।
सो महेश मोहि पर अनुकूला। करउँ कथा मुद मंगल मूला।।
सुमिरि शिवा शिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ।।

भा०- मैं गुरु, पिता और माता के समान पूज्य दीनबंधु, निरंतर दान देनेवाले शिव जी और पार्वती जी को प्रणाम करता हूँ, जो शिव जी श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम के सेवक, स्वामी, और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास के सब प्रकार से निष्कपट हितैषी हैं। कलियुग को देखकर जगत् के कल्याण के लिए जिन शिव–पार्वती ने 'शाबर'

मंत्रजाल की रचना की, जिसमें अक्षरों का कोई मेल नहीं है, और न ही उसका कोई विशेष अर्थ है और न ही जप। फिर भी भगवान् शङ्कर के प्रताप से उसका प्रभाव प्रकट है। वे ही शिव जी मुझ पर प्रसन्न हैं और मैं प्रसन्नता और मंगल की मूलरूपा श्रीरामकथा को काव्यबद्ध कर रहा हूँ। पार्वती जी एवं शिवजी को स्मरण करके उमा महेश्वर का प्रसाद पाकर चित्त में आनन्द के साथ मैं श्रीरामचरित् का वर्णन कर रहा हूँ।

भनिति मोर शिवकृपा बिभाती। शशि समाज मिलि मनहुँ सुराती।।

भा०- भगवान् शिव जी की कृपा से मेरी कविता सज्जन समाजरूप चन्द्रमा को प्राप्त करके सुन्दर शुक्लपक्ष की रात की भाँति सुशोभित होगी।

जे एहि कथहिं सनेह समेता। कहिहैं सुनिहैं समुझि सचेता।।
होइहैं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी।।

भा०- जो लोग इस कथा को श्रीराम के स्नेह से युक्त होकर कहेंगे और सुनेंगे तथा स्वस्थ चित्तवृत्ति के साथ समझेंगे वे श्रीराम जी के श्रीचरण के अनुरागी हो जायेंगे और कलियुग के मलों से दूर होकर सुमंगलों के भागी बनेंगे।

दो०- सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ।।१५।।

भा०- यदि स्वप्न में भी मुझ पर भगवान् शिव जी और भगवती पार्वती जी का सत्य प्रसाद है, तो फिर जो मैंने अपने अवधी भाषा में रची हुयी कविता का प्रभाव कहा है, वह सत्य हो।

बंदउँ अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।।

भा०- मैं अत्यन्त पावनी श्रीअवधपुरी तथा कलियुग के पाप को नष्ट करनेवाली श्रीसरयू नदी को वंदन करता हूँ ।

प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन पर प्रभुहिं न थोरी।।
तिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिशोक बनाइ बसाए।।

भा०- फिर मैं अयोध्यापुर के नर–नारियों को प्रणाम करता हूँ जिन पर भगवान् श्रीराम की थोड़ी नहीं अर्थात् बहुत ममता है। जिस अयोध्या की निवासिनी, दासीकोटि की नारी तथा अपनी निंदा करनेवाली मंथरा के पापसमूह को प्रभु ने नष्ट कर दिया। उसे इस लोक में निश्चिन्त किया और साकेतलोक में सुन्दर भवन बनाकर निवास दिया।

बंदउँ कौसल्या दिशि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।।
प्रगटेउ जहँ रघुपति शशि चारू। बिश्व सुखद खल कमल तुषारू।।

भा०- मैं भगवती कौसल्यारूप पूर्व दिशा की वंदना करता हूँ, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत् में मची अर्थात् व्याप्त होकर पूजित हुई। जिन कौसल्यारूप पूर्व दिशा में विश्व को सुख देनेवाले, खलरूप कमल को नष्ट करने के लिए तुषार अर्थात् बर्फरूप, श्रीरामरूप चन्द्रमा प्रकट हुए अर्थात् जैसे पूर्व दिशा में पूर्णचन्द्र का उदय होता है, उसी प्रकार कौसल्या के सम्मुख श्रीरामचन्द्र जी प्रकट हुए ।

विशेष– जैसे कि मेरे द्वारा प्रणीत "राघव भाव दर्शन" नामक पुस्तक का एक शिखरिणी छन्द इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है–

अनापीतोऽपीत द्युभिरनभिभूतोऽमृत तृषा
अनाक्लिष्टः क्लेशैरनपहृत रोचिर्गुरुगृहैः।

अनाश्लिष्ट : सृष्ट्या स्मर शरकरस्यांक रहितो
दिवाकौ कौसल्या हरि हरिति पूर्णो हरिरभूत।।

भावानुवाद : स्वर्ग प्राप्त करके भी देवगण जिसकी कलायें नहीं पी सके, तथा अमृत का पिपासु राहु जिसे कभी भी ग्रस नहीं सका, जो कभी भी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश जैसे पाँचों क्लेशों से क्लिष्ट नहीं हुआ और गुरु पत्नी के द्वारा जिसके तेज का हरण नहीं किया गया, प्रत्युत् आर्शीवादों से वर्धन ही किया गया, जो कामदेव के बाणों की सृष्टि से प्रभावित नहीं हुआ और जिसमें कभी भी किसी प्रकार का कलंक नहीं लगा, ऐसा श्रीरामरुप पूर्ण चन्द्रमा कौसल्या रुप पूर्ण दिशा में चैत्र रामनवमी के मध्याह्न में पृथ्वी पर प्रकट हुआ। भाव यह है कि साधारण चन्द्रमा की अपेक्षा श्रीरामचन्द्र जी में बहुत विलक्षणतायें हैं। सामान्य चन्द्रमा की कलायें कृष्णपक्ष में देवताओं द्वारा पी ली जाती हैं, और अमावस्या के दिन सूर्य से उसे कलाएँ प्राप्त होती हैं, पर श्रीरामचन्द्र जी की कलाओं का पान देवता नहीं कर सकते। इन्हें कैकेयी का कुकृत्य राहु नहीं ग्रस पाया, चन्द्रमा क्षयी है, पर श्रीरामचन्द्र जी सभी क्लेशों से मुक्त परमेश्वर हैं। चन्द्रमा गुरु पत्नी गमन से तेजोहीन है, परन्तु श्रीरामचन्द्र जी अरुन्धती जी के आर्शीवाद से परम तेजस्वी हैं। चन्द्रमा कामुक है और भगवान् श्रीराम निष्काम हैं। चन्द्रमा सकलंक है, तथा भगवान् श्रीराम अकलंक हैं। ऐसे अलौकिक श्रीराघवरुप पूर्ण चन्द्र का कौसल्यारूपिणी पूर्व दिशा में पृथ्वी पर प्राकट्य हुआ।

पद्यानुवाद :

स्वर्गहुँ पहुँचि सुर जाकी कला पी न सके
कबहुँ न नीच राहु, जाहि ग्रस पायो है।
क्लेशित न भयो जो, कबहुँ पंच क्लेशहु ते
गुरु तियहुँ न जा को सुजस नसायो है।
भयो न प्रभावित कबहुँ काम बाण ते जो
कबहुँ न नीच राहु, जाहि ग्रस पायो है।
क्लेशित न भयो जो, कबहुँ पंच क्लेशहु ते
गुरु तियहुँ न जाको सुजस नसायो है।
भयो न प्रभावित कबहुँ काम बाण ते
कबहुँ कलंक जाहि परसि न पायो है।
गिरिधर भनै कौसिला सु प्राची दिशि मही
दिवस में राम पूर्ण चन्द्र प्रगटायो है।।

दशरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी।।
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी।।
जिनहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।।

भा०– सभी रानियों के सहित महाराज दशरथ को पुण्य और सुन्दर मंगल की मूर्ति मानकर मैं तुलसीदास कर्म, मन और वाणी से प्रणाम करता हूँ। मुझे अपने पुत्र श्रीराम जी का सेवक जानकर आप सब मुझ पर कृपा करेंगे। जिन महाराज दशरथ एवं उनकी महारानियों की, सम्पूर्ण महिमाओं की सीमा भगवान् श्रीराम जी के पिता–माता के रूप में विशिष्ट रचना करके ब्रह्मा जी भी बड़े हो गये अर्थात् श्रीराम जी के भी पितामह का पद प्राप्त कर लिया।

सो०- बंदउँ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहिं राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।।१६।।

भा०- मैं श्री अवध के महाराज दशरथ जी की वंदना करता हूँ जिन्हें श्रीराम के चरणों में यथार्थ प्रेम है, जिन्होंने दीनों पर दया करने वाले श्रीराम के बिछुड़ते ही अपने प्रिय शरीर का तृण के समान त्याग कर दिया।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहु।।
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई।।

भा०- मैं परिजनों (परिवार) के सहित विदेहराज जनक जी को प्रणाम करता हूँ जिन्हें श्रीराम जी के श्री चरणों में गूढ़ प्रेम है, जिन्होंने उस श्रीरामप्रेम को योग और भोग के सम्पुट में छिपा कर रखा और उसे श्रीराम जी के दर्शन करते ही प्रकट कर दिया अर्थात् साधारण लोगों की दृष्टि में जनक जी भोगी थे और विशिष्ट लोगों की दृष्टि में जनक जी योगी थे। वस्तुतः वे थे श्रीराम जी के वियोगी।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम चरन पंकज मन जासू। लुब्ध मधुप इव तजइ न पासू।।

भा०- मैं श्रीराम जी के भ्राताओं में सर्वप्रथम श्रीभरत जी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिन श्रीभरत जी के नियमों–व्रतों का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिनका मन श्रीराम जी के श्रीचरणकमल में निरंतर रहता है, वह मकरंद के लोभी भ्रमर की भाँति प्रभु के श्रीचरण का सानिध्य नहीं छोड़ता।

बंदउँ लछिमन पद जल जाता। शीतल सुभग भगत सुखदाता।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।।
शेष सहस्र शीष जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय दारन।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर।।

भा०- मैं शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देनेवाले श्रीलक्ष्मण जी के चरणकमलों का वंदन करता हूँ जिनका यश श्रीराम की निर्मल कीर्ति रूप बिमल पताका का दण्ड अर्थात् ध्वज बना जो संसार के कारण स्वरूप अर्थात् विराट् सहस्रसिरों वाले शेष अर्थात् अविनाशी तत्त्व होकर भी पृथ्वी का भय नष्ट करने के लिए रघुकुल में श्रीराम जी के छोटे भाई बनकर अवतीर्ण हुए। वे ही सुमित्रा जी के ज्येष्ठपुत्र कृपा के सागर गुणों की खानि श्रीलक्ष्मण जी मुझ पर निरन्तर अनुकूल रहें।

रिपुसूदन पद कमल नमामी। शूर सुशील भरत अनुगामी।।

भा०- बाहरी और भीतरी शत्रुओं के संग्राम में एकमात्र शूरता से सम्पन्न वीर, सुन्दर स्वभाव वाले तथा निरन्तर श्रीभरत जी का अनुगमन करने वाले श्रीशत्रुघ्न जी के चरणकमलों को मैं नमन करता हूँ।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना।।

सो०- प्रनवउँ पवनकुमार, खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर।।१७।।

भा०- मैं महावीर श्रीहनुमान् जी की प्रार्थना कर रहा हूँ, जिनके यश को स्वयं भगवान् श्रीराम जी ने ब्याख्यान करके कहा। दुष्ट रूप वन को जलाने के लिए अग्नि के समान, ज्ञान के घनीभूत विग्रह अथवा ज्ञान के मेघ पवनपुत्र श्रीहनुमान् जी को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके हृदयरूप भवन में भगवान् श्रीराम जी धनुष–बाण धारण करके निवास करते हैं ।

कपिपति ऋक्ष निशाचर राजा। अंगदादि जे कीश समाजा।।
बंदउँ सब के चरन सुहाए। अधम शरीर राम जिन पाये।।

भा०- वानरराज सुग्रीव, ऋक्षराज जाम्बवान्, राक्षसराज विभीषण और अंगद आदि जो अठारह पद्म यूथपतियों में विभक्त वानरों का समाज है, उन सभी के सुन्दर चरणों की मैं वंदना करता हूँ, जिन वानरों ने अधम पशु शरीर में भी श्रीराम जी को प्राप्त कर लिया।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते।।
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे।।

भा०- पक्षी, मृग, देवता, मनुष्य और राक्षस समेत जितने भी श्रीराम जी के चरणों के उपासक हैं उन सब के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ, जो बिना कामना के श्रीराम जी के सेवक बन गये हैं।

शुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिग्यान बिशारद।।
प्रनवउँ सबहिं धरनि धरि शीशा। करहु कृपा जन जानि मुनीशा।।

भा०- शुकाचार्य, सनकादि (सनक, सनंदन, सनातन, सनतकुमार) एवं भक्तप्रवर मुनि नारद तथा और भी जो विज्ञान में निपुण मुनिवर हैं, उन सबको मैं पृथ्वी पर मस्तक नवा कर प्रणाम कर रहा हूँ। हे मुनीश्वरों! आप सब मुझे अपना सेवक अथवा पारिवारिक जानकर कृपा करें ।

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुना निधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।

भा०- जो जनकराज की पुत्री, सम्पूर्ण जगत् की माता तथा जनक जी के गोत्र में प्रकट हुईं, जो करुणानिधान श्रीराम जी को अत्यन्त प्रिय हैं उन श्रीसीता जी के दोनों चरणकमलों को मैं मना रहा हूँ अर्थात् सम्मानपूर्वक उनकी पूजा कर रहा हूँ, जिनकी कृपा से मैं निर्मल बुद्धि प्राप्त कर रहा हूँ, जिससे श्री रामकथा कहने का मेरे मन में संकल्प उठा।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक।।
राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक।।

भा०- फिर मैं मन, वचन और कर्म से सब प्रकार से समर्थ रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम जी के श्रीचरणकमलों की वंदना करता हूँ, जिन भगवान् श्रीराम जी के नेत्र लालकमल के समान हैं, जो निरंतर धनुष–बाण धारण किये रहते हैं, जो भक्तों की विपत्ति को नष्ट करते हैं और सुख प्रदान करते हैं।

दो०- गिरा अरथ जल बीचि सम, देखियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।१८।।

भा०- जो वाणी तथा अर्थ के समान, जल एवं तरंग के समान भिन्न दिखते हुए भी एक दूसरे से अभिन्न हैं, जिन्हें खिन्न अर्थात् दीन–दुःखी विकलांग जन परमप्रिय हैं, ऐसे श्रीसीताराम जी रूप परब्रह्म पद को मैं वन्दन करता हूँ।

बंदउँ राम नाम रघुबर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को।।
बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।

भा०- मैं (तुलसीदास) रघुवर अर्थात् रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम जी के रामनाम की वंदना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्र इन तीनों के कारण हैं अर्थात् 'र' से अग्नि 'आ' से सूर्य और 'म' से चन्द्रमा का उद्‌भव होता है। कृशानु में 'र', भानु में 'आ', दिनकर में 'म' क्रमश: राम नाम के तीन अक्षरों से पूर्व के तीनों शब्द सिद्ध हो जाते हैं। श्रीराम नाम ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करमय है। यह वेद के प्राणरूप प्रणव के समान है, यह निर्गुण और उपमारहित होते हुए भी समस्त सद्‌गुणों के खजाने के समान है।

महामंत्र जोइ जपत महेशू। काशी मुकुति हेतु उपदेशू।।
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।।

भा०- ईश्वर शङ्कर जी जिस राम नाम रूप महामंत्र को जपते हैं और काशी में जिस राम नाम का मुक्ति के लिए सामान्य जन को उपदेश करते हैं, जिसकी महिमा शिव गणों के राजा श्रीगणेश जी जानते हैं, जो राम नाम के प्रभाव से ही देवताओं में सर्वप्रथम पूजे जाते हैं।

विशेष- पौराणिक कथा के अनुसार जब यह निश्चय किया गया कि, जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा कर लौट आयेगा वही प्रथम पूज्य होगा तब गणेश जी ने राम नाम लिखकर उसी की परिक्रमा कर त्रिदेवों को प्रणाम किया और सर्वप्रथम पूज्य बन बैठे।

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू।।

भा०- आदिकवि महर्षि वाल्मीकि जी श्रीराम नाम का प्रताप जानते हैं वे राम नाम का उल्टा अर्थात् मरा–मरा जप कर ही शुद्ध हो गये (**मरा मरा मरा चैव मरेति जप सर्वदा**–भविष्योत्तर पुराण।)

सहस नाम सम सुनि शिवबानी। जपि जेईं पिय संग भवानी।।

भा०- शिव जी की वाणी से अनेक सहस्रनामों के समान सुनकर, जिस राम नाम को अपने प्राण प्रिय शिव जी के साथ जपकर पार्वती जी ने भगवान् शङ्कर जी के साथ प्रसाद पाया ।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को।।
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को।।

भा०- भगवान् शङ्कर जी, पार्वती जी के हृदय में राम नाम का दिव्य प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुए और स्त्री–भूषण पार्वती जी को अपने अंग का आभूषण बना लिया, अर्थात् रामनाम के प्रभाव से ही पार्वती जी ने शिव जी का अर्द्धांग प्राप्त कर लिया। शिव जी राम नाम का प्रभाव भली–भाँति जानते हैं। राम नाम ने शिव जी को काल कूट का अमृतफल दे दिया अथवा राम नाम के प्रभाव से ही विष ने भी शिव जी को अमृत का फल दिया।

दो०- बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास।।१९।।

भा०- श्रीराम जी की भक्ति वर्षा–ऋतु के समान है और भगवद्‌भक्त सुन्दर धान (जड़हन) के समान हैं। तुलसीदास कहते हैं कि, राम नाम के दोनों अक्षर 'रकार' और 'मकार' सावन–भादो के समान हैं।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जनजिय जोऊ।।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू।।

भा०- ये दोनों 'रकार' और 'मकार' अक्षर बड़े ही मधुर तथा मनोहर हैं और यही सभी वर्णों के नेत्र रूप हैं। भगवद्भक्तों! इन्हें हृदय के नेत्र से देखो। ये स्मरण करने में सुखदायक और सभी के लिए सुलभ हैं, इनको जपने से लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह हो जाता है।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के।।
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती।।

भा०- ये कहने, सुनने और समझने में अत्यन्त सुंदर लगते हैं और मुझ तुलसीदास को तो राम नाम के दोनों अक्षर श्रीराम जी तथा श्रीलक्ष्मण जी के समान प्रिय हैं। वर्णों की दृष्टि से वर्णन करने में तो प्रीति अलग हो जाती है, अर्थात् 'र' का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है और 'म' का ओष्ठ परन्तु इन दोनों में पृथक्ता होते हुए भी राम नाम के दोनों अक्षर वर्णधर्म की सीमा से ऊपर उठकर ब्रह्म और जीव के समान परस्पर स्वाभाविक मित्र हैं।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक विशेष जन त्राता।।
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन।।

भा०- ये नर और नारायण के समान श्रेष्ठ सगे भाई-भाई हैं। ये जगत् के पालक और विशेष रूप से भक्तों के रक्षक हैं। राम नाम के दोनों वर्ण भक्तिरूपिणी सौभाग्यवती महिला के दो कर्णालंकार हैं। जगत् के हित के लिए ये दोनों अक्षर निर्मल चन्द्र और सूर्य हैं।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ शेष सम धर बसुधा के।।
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से।।

भा०- ये राम नाम के दोनों अक्षर सुगति रूपिणी सुधा अर्थात् अमृत के स्वाद और संतोष हैं। ये ही दोनों अक्षर कच्छप और शेष नारायण के समान पृथ्वी को धारण करनेवाले हैं। ये ही 'रकार' और 'मकार' भक्तों के मधुर मनरूप कमल के दो भौंरे हैं। राम नाम के दोनों अक्षर जिह्वारूप यशोदा जी के लिए कृष्ण और बलराम हैं।

दो०- एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ।।२०।।

भा०- तुलसीदास जी कहते हैं कि देखो, श्रीरघुनाथ जी के राम नाम के 'रकार' और 'मकार' नामक दोनों वर्ण सभी वर्णों के ऊपर 'रकार' अर्थात् छत्र के रूप में और 'मकार' अर्थात् मुकुटमणि के रूप में विराज रहे हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी।।
नाम रूप दुइ ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

भा०- समझने में तो राम नाम और उसके अर्थ रूप भगवान् श्रीराम जी एक समान हैं, परन्तु इनकी प्रीति स्वामी और सेवक जैसी है अर्थात् नाम स्वामी और नामी सेवक है, पर नाम और रूप ये दोनों ईश्वर की उपाधियाँ हैं, जो अकथनीय, आदिरहित तथा सुन्दर समझनेवाली शक्ति द्वारा ही साध्य हैं।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहैं साधू।।
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना।।

भा०- कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह कहना अपराध होगा। इनके गुणों का भेद सुनकर साधुजन स्वयं समझ जायेंगे। नाम के अधीन ही रूप देखे जा सकते हैं, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता।

रूप बिशेष नाम बिनु जाने। कर तल गत न परहिं पहिचाने।।
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिशेषे।।

भा०- नाम को जाने बिना हथेली में रहने पर भी रूप विशेष पहचाना नहीं जा सकता परन्तु रूप को बिना देखे भी नाम का स्मरण करने से रूप विशेष स्नेह के साथ हृदय में आ जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी।।
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी।।

भा०- नाम, रूप की गति और कथा ये दोनों ही अकथनीय हैं यह समझने में तो सुखद है पर कही नहीं जा सकती। निर्गुण और सगुण के बीच राम नाम ही सुन्दर साक्षी है, यह दोनों को समझानेवाला चतुर दुभाषिया है।

दो०- राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौ चाहसि उजियार।।२१।।

भा०- हे तुलसीदास! यदि भीतर और बाहर अत्यन्त प्रकाश चाहते हो, तो अपनी जिह्वा के द्वाररूप देहरी पर राम नामरूप मणिदीप को स्थापित कर लो।

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।

भा०- ब्रह्मा जी के प्रपंच से दूर रहनेवाले वैराग्यवान् योगीजन भी अपनी जिह्वा से राम नाम का जप करके जग जाते हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और अकथनीय सांसारिक रोगों से रहित, प्राकृतिक नाम रूप से दूर, अनुपम ब्रह्मसुख का भी ज्ञानीजन राम नाम के जप के बल से अनुभव कर लेते हैं।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।।
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए।।
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।

भा०- जो जिज्ञासु जन परमात्मा की गूढ़ अर्थात् परमेश्वर के गोपनीय रहस्य को जानना चाहते हैं, वे भी अपनी जिह्वा से राम नाम का जप करके उसे जान लेते हैं। जो साधक लय लगाकर अर्थात् नाम जप में मनोवृत्ति को लीन करके राम नाम का जप करते हैं वे अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ती, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व आदि सिद्धियों को प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं। अत्यन्त आर्तजन राम नाम का जप करते हैं तो उनके बुरे संकट नष्ट हो जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। (इस प्रकार राम नाम जप से ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त इन चारों भक्तों का लाभ होता है।)

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।
चहु चतुरन कहँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहिं बिशेष पियारा।।

भा०- संसार में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी ये चार प्रकार के रामभक्त हैं। ये चारों ही सुकृती, निष्पाप और उदार हैं। आर्त अर्थ और काम की सिद्धि के लिए भगवान् का भजन करते हैं, जिज्ञासु धर्म और मोक्ष की सिद्धि के लिए, अर्थार्थी अर्थ सिद्धि के लिए तथा ज्ञानी तत्त्वज्ञान द्वारा आत्मा की मुक्ति के लिए अथवा ज्ञान प्राप्त होने पर भी भजन का आनन्द लेने के लिए भगवान् का भजन करते हैं। इन चारों चतुर श्रीरामभक्तों का नाम ही आधार है (जैसा चौपाई के पूर्वार्द्ध में कहा जा चुका है।) इन सभी भक्तों में ज्ञानी प्रभु श्रीराम को विशेष प्रिय हैं क्योंकि वे परमेश्वर की नि:स्वार्थ भक्ति करते हैं।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिशेष नहिं आन उपाऊ।।

भा०- चारों युगों और चारों वेदों में श्रीराम नाम का ही प्रभाव है, कलियुग में तो विशेषकर, क्योंकि इसमें श्रीराम नाम जप के अतिरिक्त मुक्ति और भक्ति का कोई उपाय ही नहीं हैं ।

दो०- सकल कामनाहीन जे, राम भगतिरस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिनहुँ किए मन मीन।।२२।।

भा०- जो लोग सभी कामनाओं से रहित होकर एकमात्र श्रीराम भक्तिरस में लीन रहते हैं, ऐसे निष्किंचन जन भी श्रीराम नाम के प्रेम रूप सरोवर में अपने मन को मछली बनाकर मग्न किये रहते हैं अर्थात् अपने मन को राम नाम से एक भी क्षण अलग नहीं करते।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते। किए जेहिं जुग निज बस निज बूते।।

भा०- निर्गुण और सगुण ये दोनों ब्रह्म के स्वरूप हैं, दोनों ही अकथनीय, अगाध, आदिरहित और उपमा से रहित हैं। मेरे (तुलसीदास) के मत में श्रीराम नाम निर्गुण और सगुण दोनों ही ब्रह्मस्वरूपों से बड़ा है, जैसे श्रीराम नाम ने निर्गुण तथा सगुण दोनों ब्रह्मस्वरूपों को अपने ही बल से अपने वश में कर रखा है।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।।

भा०- सज्जन लोग इस कथन के आधार पर मुझ सेवक तुलसीदास की प्रौढ़ि अर्थात् गर्वोक्ति न समझें, मैं तो अपने मन की प्रतीति (विश्वास), प्रीति तथा रुचि कह रहा हूँ।

एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।
उभय अगम जुग सुगम नाम ते। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते।।

भा०- दोनों ब्रह्मस्वरूप अग्नि के समान हैं, जैसे एक अग्नि अरणी नामक लकड़ी में छिपा रहता है और एक अग्नि स्पष्ट रूप में दिख पड़ता है। इन्हीं दो अग्नियों के समान निर्गुण, सगुण दोनों ब्रह्म का विवेचन समझना चाहिए अर्थात् निर्गुण ब्रह्म लकड़ी में छिपे अग्नि के समान और सगुण ब्रह्म प्रत्यक्ष अग्नि के समान हैं। दोनों ही (निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण ब्रह्म) अगम हैं, परन्तु श्रीराम नाम से दोनों ही सुगम हो जाते हैं, इसलिए मैंने श्रीराम नाम को निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम से भी बड़ा कहा है।

ब्यापक एक ब्रह्म अबिनाशी। सत चेतन घन आनँद राशी।।
अस प्रभु ह्रदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।
नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।।

भा०- निर्गुण ब्रह्म सर्वव्यापक, अद्वितीय, नाशरहित तथा सत्य और चेतना का घनीभूत विग्रह एवं आनन्द की राशि है। ऐसे सर्वसमर्थ, निर्विकार, निर्गुण ब्रह्म को अन्तर्यामी रूप में प्रत्येक प्राणी के ह्रदय में रहते हुए भी सम्पूर्ण जीव–जगत् दीन और दुःखी है। निर्गुण ब्रह्म ह्रदय में रहते हुए भी जीव के उन तापों को नहीं दूर कर पाता, क्योंकि वह सोता रहता है, परन्तु वह निष्क्रिय ब्रह्म भी श्रीराम नाम के निरूपण अर्थात् माहात्म्य ज्ञान तथा जतन अर्थात् जपरूप यत्न से उसी प्रकार प्रकट हो जाता है, जैसे निरूपण और रक्षण के माध्यम से रत्न से उसका मूल्य प्रकट हो जाता है।

विशेष- कितना भी मूल्यवान हीरा तब तक अपना उचित मूल्य नहीं दे पाता, जब तक जौहरी के द्वारा उसे जानकर उसकी रक्षा नहीं की जाती, क्योंकि सामान्य व्यक्ति पत्थर का टुकड़ा जान उसे फेंक सकता है।

दो०- निरगुन ते एहि भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ राम ते, निज बिचार अनुसार।।२३।।

भा०- इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से श्रीराम नाम का अपार प्रभाव बड़ा है। अब मैं अपने विचार के अनुसार श्रीराम नाम को श्रीराम से भी बड़ा कह रहा हूँ।

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।।
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा।।

भा०- श्रीराम ने भक्तों के लिए मनुष्य शरीर धारण किया और कष्ट सहकर देवताओं तथा सन्तों को सुखी किया, किन्तु श्रीराम नाम को तो प्रेमपूर्वक जपने मात्र से भक्तजन अनायास ही हर्ष और मंगल के निवास स्थान बन जाते हैं ।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।

भा०- श्रीराम ने तो एकमात्र तपस्वी गौतम जी की पत्नी अहिल्या जी का उद्धार किया, किन्तु श्रीराम नाम ने तो करोड़ों खलों की कुबुद्धियों को सुधारा।

ऋषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सैन सुत कीन्ह बिबाकी।।
सहित दोष दुख दास दुराशा। दलइ नाम जिमि रबि निशि नाशा।।

भा०- श्रीराम ने महर्षि विश्वामित्र के हित के लिए सुकेतु नामक यक्ष की पुत्री ताटका को उसके पुत्रों और उनकी सेना सहित युद्ध में समाप्त किया, परन्तु श्रीराम नाम तो आज भी अपने भक्तों के दोष, दुःख और दुराशा को उसी प्रकार नष्ट करता आ रहा है, जैसे सूर्यनारायण रात्रि को नष्ट कर दिया करते हैं ।

भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू।।

भा०- श्रीराम ने स्वयं भगवान् शङ्कर जी के धनुष को तोड़ा परन्तु श्रीराम नाम का प्रताप ही भव अर्थात् संसार के भय को नष्ट कर देता है, वहाँ श्रीराम नाम को कुछ भी नहीं करना पड़ता।

दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन।।
निशिचर निकर दले रघुनंदन। नाम सकल कलि कलुष निकंदन।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने दंडक वन को शुक्राचार्य अथवा महर्षि गौतम के शाप से मुक्त करके उसे सुहावना अर्थात् हरा–भरा बनाया। श्रीराम नाम ने तो अनेक भक्तों के मन को पवित्र कर दिया। रघुनन्दन श्रीराम ने तो खर, दूषण, त्रिशिरा सहित चौदह हजार राक्षसों का वध किया, परन्तु श्रीराम नाम तो कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता रहता है।

दो०- शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ।।२४।।

भा०- श्रीराम जी ने तो शबरी और जटायु जैसे सुन्दर सेवकों को सुगति दी, परन्तु श्रीराम नाम ने तो असंख्य कभी न सुधरनेवाले दुष्टों का उद्धार कर दिया। श्रीराम नाम की गुणगाथायें वेदों मे प्रसिद्ध हैं।

राम सुकंठ बिभीषण दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ।।
नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक बेद बर बिरद बिराजे।।

भा०- श्रीराम ने सुग्रीव और विभीषण इन दो भक्तों को अपने शरण में रखा यह बात सभी लोग जानते हैं, परन्तु श्रीराम नाम ने तो अनेक दीनजनों को निवाजा अर्थात् सम्मानित किया। श्रीराम नाम के श्रेष्ठ यश लोकों और चारों वेदों में विराज रहे हैं।

राम भालु कपि कटक बटोरा। सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा।।
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं।।

भा०– श्रीराम ने भालुओं और वानरों की सेना को इकट्ठा किया और समुद्र में सेतु बाँधने के लिए थोड़ा नहीं अर्थात् बहुत श्रम किया। पहले मंत्रणा की, फिर तीन दिनपर्यन्त समुद्र के तट पर अनशन करके उससे मार्ग माँगा, फिर इस नीति के असफल हो जाने पर श्रीलक्ष्मण के पक्ष का अनुसरण करते हुए आग्नेय बाण का संधान करके समुद्र को प्रताड़ित किया। फिर नल, नील की सहायता से अनेक वृक्षों और पर्वतों को दूर–दूर से मँगाकर सागर में तैराया, फिर श्रीराम नाम की कृपा से सभी को एकदूसरे से जोड़ा परन्तु श्रीराम नाम के तो उच्चारण मात्र से अनेक भवसागर सूख जाते हैं। हे सज्जनो! मन में विचार तो करो।

राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा।।
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी।।
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती।।
फिरत सनेह मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।।

भा०– श्रीराम ने युद्ध में कुल सहित रावण का वध किया और श्रीसीता जी के साथ अपने पुर श्रीअवध को पधारे। श्रीराम जी राजा बने अयोध्या उनकी राजधानी बनी। उनके गुण देवता, श्रेष्ठ मुनिगण और सरस्वती जी गा रही हैं, परन्तु सेवकजन प्रेमपूर्वक श्रीराम नाम का स्मरण करके श्रम के बिना अत्यन्त प्रबल मोह के दल को जीतकर, स्नेह में मग्न होकर, अपने अर्थात् आत्मानन्द के साथ निश्चिन्त भ्रमण करते रहते हैं। श्रीराम नाम के प्रसाद से स्वप्न में भी उन्हें किसी प्रकार का शोक नहीं होता।

दो०– ब्रह्म राम ते नाम बड़, बर दायक बर दानि।
रामचरित शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि।।२५।।

भा०– श्रीराम नाम, ब्रह्म अर्थात् निर्गुण ब्रह्म से तथा श्रीराम अर्थात् सगुण ब्रह्म से भी बड़ा है और यह वरदान देनेवालों को भी वरदान देने वाला है, इसलिए वरदानी देवताओं के भी वरदानी देवता भगवान् शिव जी ने सौ करोड़ रामायणों में से श्रीराम नाम के दो अक्षरों को ही बाँटने की प्रक्रिया के पारिश्रमिक के रूप में इसकी श्रेष्ठता को जानकर ले लिया था।

विशेष– एक सौ करोड़ रामायणों का तीनों लोकों में विभाग करते समय प्रत्येक को तैंतीस करोड़, तैंतीस लाख, तैंतीस हजार तीन सौ दस का बँटवारा करके शिव जी ने यही श्रीराम नाम के दो अक्षर पारिश्रमिक के रूप में ले लिया।

नाम प्रसाद शंभु अबिनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।

भा०– श्रीराम नाम के प्रसाद से ही शिव जी कालकूट पी कर भी अविनाशी बन गये और मुण्डमाला श्मशान की विभूति, विष, सर्प आदि अमंगलों का साज स्वीकारते हुए भी मंगलों की राशि हो गये। शुकाचार्य, सनकादि एवं अन्य सिद्धमुनि और योगीजन श्रीराम नाम के प्रसाद से ही ब्रह्मसुख–भोग के अधिकारी बन गये।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू।।
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।।

भा०– देवर्षि नारद जी ने श्रीराम नाम का प्रताप जान लिया है। संसार को श्रीहरि विष्णु जी प्रिय हैं और विष्णु जी को शिव जी प्रिय हैं, परन्तु श्रीराम नाम के प्रताप से नारद जी, हरि (विष्णु जी) एवं हर (शिव जी) इन दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपते ही प्रभु ने कृपा प्रसाद प्रकट किया और प्रह्लाद भक्तों के शिरोमणि बन गये,

अथवा श्रीराम नाम के जपते ही प्रभु ने प्रह्लाद को अपना प्रसादस्वरूप बना दिया और दैत्य–कुल में जन्म लेकर भी प्रह्लाद भक्त शिरोमणि बन बैठे।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बश करि राखे रामू।।

भा०– ध्रुव ने विमाता सुरुचि के द्वारा अपमानित होकर, ग्लानि के साथ श्रीहरि का नाम जप किया तथा अचल और उपमारहित स्थान अर्थात् ध्रुवलोक प्राप्त कर लिया, जिसकी परिक्रमा सूर्यनारायण भी एक वर्ष में कर पाते हैं। पवित्र श्रीराम नाम का स्मरण करके श्रीहनुमान ने श्रीराम को ही अपने वश में कर रखा है।

अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुक्त हरि नाम प्रभाऊ।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।।

भा०– अत्यन्त अपवित्र अजामिल, गजेन्द्र और गणिका जैसे भी श्रीराम नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। मैं श्रीराम नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, श्रीराम भी अपने श्रीराम नाम के गुण नहीं गा सकते।

दो०– नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते, तुलसी तुलसीदास।।२६।।

भा०– श्रीरघुनाथ का श्रीराम नाम सम्पूर्ण कल्याणों का निवास स्थान, इस कलियुग का कल्पवृक्ष है, जिसका स्मरण करते ही भांग–वृक्ष के समान निम्नकोटि का मैं तुलसीदास आज तुलसी–वृक्ष के समान सबका पूजनीय और प्रभु श्रीराम जी का प्रिय बन गया। स्वयं मधुसूदन सरस्वती जी ने भी कहा–

आनन्दकानने कश्चित् जंगमस्तुलसी तरुः।
कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषितः।।

अर्थात् आनन्द–वन, इस काशी में एक ऐसा अपूर्व तुलसीदासरूप तुलसी का वृक्ष है, जिसकी कविता ही मंजरी है और जो श्रीरामरूप भ्रमर से सुशोभित रहता है अर्थात् तुलसीदास की कविता–मंजरी पर भौंरे के समान श्रीराम मंडराते रहते हैं।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिशोका।।

भा०– कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर तथा कलियुग इन चारों युगों में; भूत, वर्तमान, और भविष्यत् इन तीनों कालों में; आकाश, पाताल और मर्त्यलोक इन तीनों लोकों में श्रीराम नाम का जप करने से ही जीव शोकरहित होता रहा है और होगा।

बेद पुरान संत मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू।।
ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे।।
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।।
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत शमन सकल जग जाला।।

भा०– चारों वेद, अठारहों पुराण और सभी वैदिक सन्तों का यही मत है कि, श्रीराम का प्रेम ही सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल है। प्रथम् अर्थात् कृतयुग में ध्यान से, दूसरे अर्थात् त्रेतायुग में विधिपूर्वक किये हुए यज्ञ से तथा द्वापर में पूजा से प्रभु प्रसन्न होते हैं, परन्तु कलिकाल तो एकमात्र सभी मलों अर्थात् दोषों का मूल है और स्वयं भी मलों से व्याप्त है। यह पाप का महासागर जिसमें लोगों के मन मछली के समान मग्न होते रहते हैं अर्थात् इस

कलिकाल में कोई भी हरि–परितोषण व्रत नहीं किये जा सकते। इस कराल काल में तो श्रीराम नाम ही एक ऐसा कल्प वृक्ष है, जिसके स्मरण मात्र से सम्पूर्ण जगत् का जाल नष्ट हो जाता है।

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता।।
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।।

भा०– श्रीराम नाम इस कराल कलिकाल में मनोवांछित फल देनेवाला है, यह परलोक में हितैषी और लोक में पिता–माता के समान पालन करनेवाला है। इस कलिकाल में कर्म, उपासना और ज्ञान संभव ही नहीं है। इसमें तो श्रीराम नाम ही एकमात्र जीव का अवलम्बन है। कपट के निवासस्थान कलिकाल रूप कालनेमि को नष्ट करने के लिए श्रीराम नाम ही सुन्दर बुद्धि सम्पन्न समर्थ श्री हनुमान हैं ।

दो०– राम नाम नरकेसरी, कनक कशिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल।।२७।।

भा०– श्रीराम नाम श्रीनृसिंह भगवान् हैं, कलिकाल हिरण्यकशिपु है और जापकजन प्रह्लाद हैं अर्थात् जैसे प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए खम्भे से प्रकट होकर श्रीनृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल विदीर्ण करके देवताओं का कष्ट दूर कर भक्त पह्लाद का पालन किया था, उसी प्रकार श्रीराम नाम महाराज नृसिंह भगवान् के समान जीभरूप खम्भे से बैखरी वाणी में प्रकट होकर कलिकाल के प्रभाव को समाप्त करके सद्‌गुण रूप देवताओं के कष्टों का निवारण करके जापक प्रह्लाद की रक्षा करेंगे ।

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ।।
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहिं माथा।।

भा०– भाव, कुभाव और क्रोध तथा आलस्य में भी श्रीराम नाम को जपने से दसों दिशाओं में मंगल होता है। उसी श्रीराम नाम का स्मरण करके श्रीरघुनाथ को मस्तक नवाकर मैं श्रीराम जी के गुणमयी गाथा का वर्णन कर रहा हूँ।

मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती।।
राम सुस्वामि कुसेवक मोसे। निज दिशि देखि दयानिधि पोसे।।

भा०– वे ही प्रभु श्रीराम जी मेरी सब प्रकार से सुधार लेंगे, जिनकी कृपा से कृपा भी नहीं तृप्त होती अर्थात् सामान्य कृपा को श्रीरघुनाथ के कृपा की निरन्तर ललक रह जाती है। श्रीराम, दया के सागर एवं उच्चकोटि के स्वामी हैं, इसलिए मुझ जैसे कुसेवकों को भी अपनी ओर अर्थात् अपनी शरण में आया देखकर उन्होंने पाला पोसा।

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती।।
गनी गरीब ग्रामनर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर।।
सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहिं सराहत सब नर नारी।।
साधु सुजान सुशील नृपाला। ईश अंश भव परम कृपाला।।
सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी। भनिति भगति मति गति पहिचानी।।

भा०– लोक और वेद में भी यही सुन्दर स्वामी की रीति है कि, वे विनय सुनकर ही प्रीति को पहचानते हैं। धनाढ्य लोग, दीनजन, गँवार और चतुर, पंडित, मूर्ख, मलीनजन और उत्कृष्ट लोग, सुकवि तथा कुकवि (अभद्र

रचना करनेवाले) इस प्रकार सभी नर, नारी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशंसा करते हैं। ईश्वर के अंश से उत्पन्न प्रेमी, कृपालु, सात्विक आचरण करनेवाले, चतुर, सुन्दर स्वभाववाले राजागण सब की बातें सुनकर कविता, भक्ति और बुद्धि के गति को पहचानकर सब का सम्मान करते हैं।

यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ।।
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते।।

भा०- यह तो साधारण राजा का स्वभाव होता है, परन्तु कोसल जनपद के राजा श्रीराम तो जाननेवालों के शिरोमणि अर्थात् सर्वज्ञ हैं। प्रभु श्रीराम निसोते अर्थात् अविच्छिन्न स्नेह से ही रीझ जाते हैं। संसार में मुझ जैसा कौन मलीन बुद्धि और मूर्ख होगा जो राजाधिराज श्रीराम की समुचित प्रशंसा कर सके।

दो०- शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहैं राम कृपालु।
उपल किए जलयान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु।।२८(क)।।

भा०- जिन प्रभु श्रीराम ने पत्थर को जल का यान बना लिया और वानर-भालू जैसे अव्यवस्थित बुद्धिवाले पशुओं को सुंदर बुद्धिसम्पन्न अपने मंत्री बनाये, ऐसे कृपालु प्रभु श्रीराम मुझ तुलसीदास जैसे शठसेवक की भी प्रीति एवं रूचि की रक्षा करेंगे।

दो०- हौंहु कहावत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास।।२८(ख)

भा०- मैं भी स्वयं को श्रीराम जी का सेवक कहलवाता हूँ और सब लोग मुझे श्रीराम जी का सेवक कहते हैं, प्रभु श्रीराम जी यह उपहास सहन कर रहे हैं। कहाँ सीतापति श्रीराम जी जैसा स्वामी और कहाँ मुझ तुलसीदास जैसा अत्यन्त साधारण सेवक।

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सिकोरी।।
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें।।
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही।।

भा०- मेरी बहुत बड़ी ढिठाई मेरा बहुत बड़ा दोष है। मेरे इस पाप को सुनकर, नरक ने भी नाक सिकोड़ लिया अर्थात् नरक में भी मेरे पाप का प्रायश्चित नहीं है। इस अपने द्वारा कल्पित किये हुए डर को समझ-समझ कर मुझे बहुत भय लग रहा है, परन्तु श्रीराम जी ने स्वप्न में भी उसका स्मरण नहीं किया, प्रत्युत् मेरे सम्बन्ध में सुनकर और देखकर सुन्दर चिन्तन के चक्षु से निरीक्षण करके स्वामी श्रीराम ने मेरी भक्ति और मेरी बुद्धि की सराहना की।

कहत नसाइ होइ हिय नीकी। रीझत राम जानि जन जी की।।
रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति शत बार हिए की।।

भा०- बात कहने से बिगड़ती है और हृदय में रखने से अच्छी होती है। मैं भले ही लोगों के समक्ष अपने को अच्छा कहूँ, पर हृदय से तो अपने को साधनहीन और पापी स्वीकारता ही हूँ। भगवान् राम भी प्राणी के हृदय की वास्तविकता जानकर ही रीझते हैं। प्रभु श्रीराम के मन में भक्त के चूक करने की बात नहीं रहती वे तो हृदय की ही परिस्थितियों का सैकड़ो बार स्मरण करते हैं।

जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली।।
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।।
ते भरतहिं भेंटत सनमाने। राजसभा रघुबीर बखाने।।

भा०– जिस ईश्वरापमानरूप पाप के कारण श्रीराम ने बालि को ब्याध की भाँति निर्दय होकर मारा, सुग्रीव ने भी फिर वही कुचाल की अर्थात् जैसे तारा के कहने पर भी बालि श्रीराम को नहीं समझ सका और सुग्रीव से भिड़ गया, उसी प्रकार श्रीराम से मिलकर भी बालि वध के पश्चात् सुग्रीव इतने प्रमादी हो गये कि, चार महीने तक प्रभु का कोई समाचार नहीं लिया, फिर भी सुग्रीव को प्रभु ने क्षमा किया। विभीषण की भी वही करतूत थी अर्थात् प्रभु को जानते हुए भी रावणवध के पश्चात् विभीषण भाई के मोह में फँसे और रावण के प्रति विलाप करने लगे। पुनः श्रीलक्ष्मण के समझाने पर सामान्य स्थिति में आये, परन्तु श्रीराम ने स्वप्न में भी सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत का चिन्तन नहीं किया, क्योंकि वे दोनों श्रीराम जी के शरणागत थे। वनवास से लौटकर श्रीभरत जी से मिलते समय प्रभु ने इन्हीं दोनों सुग्रीव और विभीषण का भरत जी से परिचय कराकर सम्मान किया और अपने प्रथम राजसभा में पुरजनों और परिजनों के समक्ष इन दोनों की प्रशंसा की।

दो०- प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब शीलनिधान।।२९(क)।।

भा०– प्रभु श्रीराम वृक्ष के नीचे अर्थात् धर्मरूप कल्पवृक्ष की छाया में हैं और वानर डाल पर अर्थात् आश्रय की अनिश्चय दशा में कहाँ राजाधिराज मर्यादा पुरुषोत्तम परब्रह्म परमेश्वर और कहाँ डाल पर कूद–फाँद करनेवाला चंचल प्रवृत्ति का अव्यवस्थित वानर, उनको भी श्रीराघव सरकार ने अपने समान बना लिया अर्थात् मित्र का पद देकर उन्हें राजकीय सम्मान दिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि "हे तुलसीदास के मन! तुम्हीं बताओ श्रीराम जी के समान शील के निधान स्वामी कहीं हैं? अर्थात् कहीं भी नहीं।

राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक।।२९(ख)।।

भा०– गोस्वामी तुलसीदास जी प्रभु श्रीराम से कार्पण्य भरे शब्दों में प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु श्रीराम! आपश्री की "निकाई" अर्थात् सरलतापूर्वक उदारता सभी के लिए अच्छी है। आपका स्वभाव किसी के लिए बुरा है ही नहीं। यदि आपकी मत प्रकृति सदैव सत्य है तो मुझ तुलसीदास का भी भला ही होगा।

दो०- एहि बिधि निज गुन दोष कहि, सबहिं बहुरि सिर नाइ।
बरनउँ रघुबर बिशद जस, सुनि कलि कलुष नसाइ।।२९(ग)।।

भा०– इस प्रकार अपने गुण–दोष को कह कर फिर सभी को बार–बार प्रणाम करके, मैं रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम के निर्मल यश का वर्णन करने जा रहा हूँ। इसे सुनकर कलियुग का पाप नष्ट हो जायेगा ।

जाग्यबल्क्य जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई।।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी।।

भा०– जो सुहावनी श्रीराम कथा श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि ने मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज को सुनायी थी, मैं वही श्रीयाज्ञवल्क्य और श्रीभरद्वाज संवाद का बखान व्याख्यानपूर्वक कहूँगा सभी सन्तजन मन में सुख मान कर इसे सुनें।

शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।।
सोइ शिव काग भुशुंडिहिं दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।।
तेहि सन जाग्यबल्क्य पुनि पावा। तिन पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।
ते श्रोता बक्ता सम शीला । समदरशी जानहिं हरि लीला।।
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना।।
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना।।

भा०- भगवान् शङ्कर ने इस सुहावने श्रीरामचरित की रचना की, फिर कृपा करके उन्होंने भगवती पार्वती जी को सुनाया। उसी श्रीरामचरित को शिव जी ने काकभुशुण्डि जी को दिया, क्योंकि उन्हें शिव जी ने श्रीराम जी का भक्त और मानस का अधिकारी वक्ता पहचान लिया था। उन्हीं काकभुशुण्डि जी से याज्ञवल्क्य जी ने यह श्रीरामचरित पाया और उन्होंने इसे मुनि भरद्वाज को गाकर सुनाया। वे दोनों श्रोता और वक्ता (भरद्वाज जी और याज्ञवल्क्य जी) समान स्वभाववाले हैं, जो सर्वत्र समरूप से श्रीराम जी के दर्शन करते हैं और भू–भारहारी श्रीराम की लीलाओं को जानते हैं। वे श्रोता और वक्ता (भरद्वाज और याज्ञवल्क्य जी) अपने अबाधित ज्ञान से तीनों कालों (भूत, वर्तमान् और भविष्यत्) की घटनाओं को अपने हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति जान लेते हैं। उसी परम्परा में और भी जो श्रीरामभक्त हैं, वे भी इस श्रीरामचरित्मानस को अनेक प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं। (यहाँ संकेत यह है कि, फिर भरद्वाज से सनकादि को श्रीरामचरितमानस प्राप्त हुआ और वे ही सनकादि इस कलिकाल में जगद्गुरु श्रीमद्आद्यरामानन्दाचार्य के चतुर्थ शिष्य नरहर्यानन्द जी के रूप में अवतीर्ण हुए, उन्हीं से श्रीरामचरितमानस सूकर क्षेत्र में श्री तुलसीदास जी को प्राप्त हुआ।)

दो०- मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।।३०(क)।।

भा०- फिर मैंने (तुलसीदास) वही कथा सूकर क्षेत्र में अपने गुरुदेव श्री श्री १००८ श्री नरहर्यानन्द जी (श्रीनरहरिदास स्वामी जी) से सुनी। बाल्यावस्था में उस प्रकार से नहीं समझी, क्योंकि मैं तब बहुत अचेत था अर्थात् चिन्तनशक्ति से शून्य था, इसलिए जैसी गुरुदेव ने कही वैसी नहीं समझी ।

दो०- श्रोता बक्ता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित बिमूढ़।।३०(ख)।।

भा०- श्रीराम की कथा बहुत गूढ़ होती है, उसके लिए श्रोता और वक्ता दोनों ही ज्ञान के निधान होने चाहिए। उतनी कठिन कथा को कलियुग के मलों से ग्रस्त अत्यन्त मूढ मैं कैसे समझ पाता?

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।
भाषा बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।।

भा०- फिर भी मेरे गुरुदेव ने बार–बार यह कथा कही, तब मेरी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ पड़ी। उसी गुरु परम्परा प्राप्त श्रीरामकथा को मैं अवधी भाषा में सोरठा, चौपाई, दोहा, छन्द आदि अठारह वृत्तों में बद्ध करके कहूँगा, जिससे मेरे मन को दिव्यज्ञान और संतोष हो।

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे। तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे।।

भा०- मेरे पास जैसा कुछ बुद्धि और विवेक का बल है, उसी प्रकार मैं हरि अर्थात् श्रीराम जी तथा श्री हनुमान जी एवं गुरुदेव श्री नरहरिदास की प्रेरणा से कहूँगा। (यहाँ हरि शब्द श्रीराम, श्री हनुमान जी और श्री गुरुदेव का वाचक है, क्योंकि हरि का अर्थ वानर भी होता है।)

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी।।

भा०- मैं अपने संदेह और मोहभ्रम को हरने वाली तथा संसाररूप नदी की नावरूप अलौकिक श्रीरामकथा का लेखन कर रहा हूँ।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि।।
रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी।।

भा०- श्रीराम कथा बुद्धजनों को विश्राम देनेवाली तथा सभी प्राणियों को आनन्द देने वाली और कलियुग के मलों और पापों को नष्ट करनेवाली है, इसलिए श्रीरामकथा कलियुगरूप सर्प के लिए भरनी अर्थात् मयूरी है, तात्पर्यत: जैसे मोरनी सर्प को खा जाती है, उसी प्रकार श्रीरामकथा कलियुग के प्रभाव को नष्ट कर देती है। फिर यह विवेकरूप अग्नि के लिए अरणी नामक लकड़ी है, जैसे अरणी से अग्नि प्रकट होता है, उसी प्रकार श्रीरामकथा से विवेक प्रकट होता है।

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि।।

भा०- श्रीराम कथा कलियुग की कामधेनु गौ है और वह सन्त के लिए सुहावनी संजीवनी बूटी है, वही श्रीराम कथा इस पृथ्वीलोक में अमृत की नदी है। यह भय को नष्ट करनेवाली और भ्रम रूप मेंढक के लिए सर्पिणी है।

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि।।
संत समाज पयोधि रमा सी। विश्व भार भर अचल छमा सी।।
जम गन मुँह मसि जग जुमना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी।।
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास हित हिय हुलसी सी।।
शिवप्रिय मेकल शैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी।।
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी।।

भा०- श्रीराम कथा असुरों की सेना रूप नरक–यातना को नष्ट करनेवाली सन्तरूप देवताओं की हितैषिणी साक्षात् पर्वतपुत्री पार्वती के समान है, और यह सन्त–समाजरूप क्षीरसागर से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के समान है और विश्व का भार धारण करने के लिए न चलायमान् होनेवाली पृथ्वी के समान है। यह श्रीराम कथा यमगणों के मुख में कालिख लगाने के लिए, संसार में यमुना जी के समान है, जीवों की मुक्ति के लिए यह मानो काशी है। श्रीरामकथा पवित्र तुलसी के समान श्रीराम को प्रिय है और तुलसीदास के लिए हृदय में प्रेम से सम्पन्न माता हुलसी के समान है। श्रीरामकथा भगवान् शङ्कर को मेकल पर्वतपुत्री नर्मदा के समान प्रिय है और यह सम्पूर्ण सिद्धियों, सुखों तथा सम्पत्तियों की राशि है। श्रेष्ठ गुण–रूप देवगणों के लिए यह माता अदिति के समान है, श्रीरामकथा श्रीराम जी की प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा है ।

दो०- रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु।।३१।।

भा०- तुलसीदास जी कहते हैं कि, श्रीरामकथा सुन्दर चित्त रूप चित्रकूट में बहनेवाली मंदाकिनी नदी है, जिसके सुभग अर्थात् अलौकिक श्रीराम के स्नेह–वन में श्रीसीताराम जी का विहार हो रहा है। अथवा श्रीराम कथा मंदाकिनी नदी है और सुन्दर चित्र चित्रकूट। तुलसीदास जी कहते हैं कि, पवित्र स्नेह ही श्रीसीताराम जी का विहार–स्थल और श्रीरामकथा मंदाकिनी के तट पर विराजमान वन है।

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।।
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के।।

भा०- श्रीरामचन्द्र का चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है, जो अपने श्रोता और वक्ता दोनों के मनोरथों को पूर्ण करता है। यह सन्त की सुन्दर बुद्धि का सुन्दर शृंगार है। प्रभु श्रीराम के गुणों के समूह जगत् के मंगलस्वरूप हैं। ये मुमुक्षुओं को मुक्ति, अर्थार्थियों को धन, जिज्ञासुओं को धर्म तथा आर्तों को धाम अर्थात् आश्रय देने वाले हैं।

सदगुरु ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के।।
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के।।

भा०- श्रीराम के गुणग्राम ज्ञान, वैराग्य और योग के सद्गुरु हैं और संसाररूप भयंकर रोग को नष्ट करने के लिए ये देववैद्य अश्विनीकुमार हैं। ये ही श्रीसीताराम प्रेम के जन्मदाता (माता–पिता) हैं। श्रीरामचरित सम्पूर्ण व्रतों, धर्मों, नियमों के बीज अर्थात् कारण है।

शमन पाप संताप शोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के।।
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के।।
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि शावक जन मन बन के।।

भा०- ये पाप, संताप (दैविक, दैहिक, भौतिक कष्ट) और शोक का नाश करने वाले हैं। ये परलोक और लोक के प्रियपालक हैं। ये विचार रूप राजा के मंत्री और सैनिक हैं। ये अपार लोभ महासागर के लिए कुंभज अर्थात् अगस्त्य के समान हैं। श्रीरामचरित काम, क्रोध तथा कलियुग के मल रूप हाथियों के समूह को नष्ट करने के लिए भक्तों के मनरूप वन में निवास करने वाले सिंह के शावकों के समान है।

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।।
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक शालि पाल जलधर से।।
अभिमत दानि देवतरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से।।
सुकबि शरद नभ मन उडुगन से। रामभगत जन जीवन धन से।।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से।।
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से।।

भा०- श्रीरामचरित त्रिपुर के शत्रु शिव जी के पूज्य तथा बहुत प्रिय अतिथि हैं। श्रीरामचरित दरिद्रता रूप दावानल को बुझानेवाले अभीष्ट कामनाओं के दाता मेघ हैं। श्रीरामचरित विषय रूप सर्प को नियन्त्रित करने वाले महामंत्र और मणि हैं। ये मस्तक पर लिखे हुए कठिन कुअंक अर्थात् प्रतिकूल ब्रह्मलेख को भी मिटानेवाले हैं। श्रीरामचरित मोहरूप अंधकार का हरण करनेवाले सूर्य–किरण के समान है। ये सेवक रूप धान को पालने वाले मेघ हैं। श्रीरामचरित कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित कामनाओं को देनेवाले हैं। ये ही सेवा करने में अतिसुलभ और भगवान् विष्णु जी तथा शङ्कर जी के समान सुख देनेवाले हैं। श्रीरामचरित श्रेष्ठ कवियों के मनरूप शरदकालीन आकाश के तारागणों के समान हैं। ये ही श्रीराम–भक्तों के जीवनधन के समान हैं। श्रीरामचरित सम्पूर्ण सत्कर्मों के फलस्वरूप और अनन्त भोगों के समान हैं। यही संसार के हितैषी निष्कपट साधु लोगों के समान हैं। श्रीरामचरित सेवकों के मन रूप मानस सरोवर में विहार करने वाले हंसों के समान हैं और श्रीराम जी के चरित्र श्री गंगा जी के लहरों की माला के समान पवित्र हैं।

दो०- कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड।।३२(क)।।

भा०- जिस प्रकार प्रचंड अर्थात् प्रज्वलित अग्नि ईंधन को जला देता है, उसी प्रकार श्रीराम जी के गुणग्राम, कुमार्ग, कुत्सित तर्क, काल की कुचाल, कपट, दंभ तथा पाखंड को भस्म करनेवाले हैं।

दो०- रामचरित राकेश कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिशेष बड़ लाहु।।३२(ख)।।

भा०- श्रीराम जी के चरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी के लिए सुखद हैं। सन्तजनरूप कुमुद पुष्प और चित्तरूप चकोर के लिए तो श्रीरामचरित से विशेष हित और बहुत लाभ है।

कीन्ह प्रश्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि शङ्कर कहा बखानी।।
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई।।

भा०- जिस प्रकार से भवानी अर्थात् भगवती पार्वती जी ने शिव जी से प्रश्न किये और शङ्कर जी ने जिस विधि से उनके प्रश्नों का व्याख्यान सहित उत्तर दिया, मैं विचित्र कथा–प्रबन्ध की रचना करके वह सब हेतु सोरठा, चौपाई, दोहा और छन्द में गा कर कहूँगा।

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करै सुनि सोई।।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी।।

भा०- जिसने मानस रामायण की यह कथा पहले नहीं सुनी हो वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे, अर्थात् यह कथा प्रथम सुनने वाला कहीं ऐसा न सोच बैठे कि यह कथा वाल्मीकि रामायण से भिन्न होने के कारण अप्रमाणित है। जो ज्ञानीजन इस अलौकिक कथा को सुनते हैं वह यह जान कर आश्चर्य नहीं करते।

रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन के मन माहीं।।
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन शत कोटि अपारा।।

भा०- उनके मन में इस प्रकार का विश्वास रहता है कि, संसार में श्रीराम जी के चरित्र की कोई सीमा नहीं है। श्रीराम जी के अवतार अनेक प्रकार के हैं और वाल्मीकि जी द्वारा सौ करोड़ रामायण बनायी गयीं उनके अतिरिक्त अन्य मुनियों द्वारा भी अनेक रामायण बनायी गयी हैं।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीशन गाए।।
करिय न संशय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी।।

भा०- पुराणों की दृष्टि से कल्पभेद के कारण प्रकट हुए अनेक प्रकार के सुहावने श्रीरामचरित्र को मुनियों ने गाया है। ऐसा विचार हृदय में लाकर संशय न कीजिये और प्रभु के चरणों में प्रेम मानकर आदरपूर्वक यह कथा सुनिये।

दो०- राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरज न मानिहैं, जिन के बिमल बिचार।।३३।।

भा०- श्रीराम जी अनन्त हैं, उनके गुण भी अन्तरहित हैं, उनकी कथाओं का विस्तार असीम है। जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नहीं करेंगे।

एहि बिधि सब संशय करि दूरी। सिर धरि गुरु पद पंकज धूरी।।
पुनि सबहीं बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी।।

भा०- इस प्रकार सभी के संशयों को दूर करके श्रीगुरुदेव के चरणकमल की धूलि सिर पर धारण करके फिर सभी से हाथ जोड़कर विनय कर लेता हूँ, जिससे मानसकथा कहने में दोष न लगे।

सादर शिवहिं नाइ अब माथा। बरनउँ बिशद राम गुन गाथा।।
संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि शीसा।।

भा०- मैं तुलसीदास अब आदरपूर्वक शिव जी को मस्तक नवाकर निर्मल श्रीरामकथा का वर्णन करता हूँ। विक्रमी संवत् १६३१ के प्रारम्भ में हरि श्रीराम जी के तथा हरि अर्थात् वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमान जी के एवं हरि

अर्थात् श्रीगुरुदेव नरहरिदास के श्रीचरणों को मस्तक पर धारण करके, मैं तुलसीदास अवधी भाषा में श्रीरामकथा को कह रहा हूँ।

नौमी भौम बार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल इहाँ चलि आवहिं।।
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा।।
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना।।

भा०- विक्रम संवत् १६३१ के चैत्र शुक्ल नवमी, मंगलवार के दिन श्री अवधपुरी में मेरे हृदय में यह चरित्र प्रकाशित हुआ, श्रुति जिस दिन को श्रीराम जन्मदिन के रूप में गाती है और जिस दिन सम्पूर्ण तीर्थ यहाँ अर्थात् श्रीअवधपुरी में पैदल चलकर आ जाते हैं। असुर (देवताओं के विरोधी दैत्यजन), नाग (सर्पजन), पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता, ये सब जिस श्रीरामनवमी के दिन श्रीअयोध्या में आकर रघुनायक श्रीरामलला की सेवा करते हैं। चतुर श्रीवैष्णव भक्तजन श्रीराम जी के जन्ममहोत्सवों की रचना करते हैं और अनेक पदावलियों अर्थात् बधाई गीतों द्वारा श्रीराम जी की मधुरकीर्ति का गान करते हैं।

दो०- मज्जहिं सज्जन बृंद बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर श्याम शरीर।।३४।।

भा०- जिस श्रीरामनवमी के दिन प्रात:काल से ही अनेक सज्जनों के समूह पवित्र श्रीसरयू–जल में मज्जन करते हैं अर्थात् गोते लगाते हैं और हृदय में श्रीरामलला के सुन्दर श्यामल शरीर का ध्यान धारण करके श्रीराम नाम का जप करते हैं।

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना।।
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ शारदा बिमलमति।।

भा०- वेद और पुराण यह कहते हैं कि, दर्शन, आचमन, स्नान और जलपान से श्रीसरयू मइया प्राणी के सारे पापों को हर लेती हैं। श्रीसरयू मइया सभी नदियों में पवित्र हैं और इनकी महिमा अत्यन्त असीम है। इसे निर्मल मतिवाली श्रीसरस्वती जी भी नहीं कह सकतीं।

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि।।
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा।।

भा०- सुहावनी श्रीअयोध्यापुरी श्रीराम के दिव्य साकेत को प्रदान करनेवाली सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध और अत्यन्त पवित्र हैं। संसार में अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, और जरायुज इन चारों खानों में जो भी असंख्य जीव हैं, वे श्रीअवध में शरीर छोड़ने पर फिर संसार में नहीं आते अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं।

सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी।।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा।।

भा०- इस श्रीअवधपुरी को सब प्रकार से मनोहारिणीं सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाली सभी मंगलों की खान समझकर, मैंने (तुलसीदास) विक्रम संवत् १६३१ की चैत्र शुक्ल, रामनवमी, मंगलवार के दिन उस निर्मल श्रीरामकथा को प्रारम्भ किया है, जिसे सुनते ही काम, मद, दम्भ आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत स्रवन पाइय बिश्रामा।।
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ एहिं सर परई।।

भा०– इस कथाप्रबन्ध का श्रीरामचरितमानस् नाम है, जिसे श्रवणेन्द्री से सुनने मात्र से मनुष्य विश्राम पा जाता है अथवा जिसे सुनने से श्रवणेन्द्री स्वयं विश्राम पा जाती हैं। श्रीरामचरितमानस सुनकर कानों को दूसरी कथा का श्रवण भाता ही नहीं और मानस में ही उसका विश्राम हो जाता है। यह मनरूप हाथी संसार के वन में भटकता हुआ विषयों की अग्नि में जल रहा है, यदि वह इस श्रीरामचरितमानस सरोवर में पड़ जाता है तब सुखी हो जाता है।

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ शंभु सुहावन पावन।।
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।।

भा०– मुनियों को भानेवाले सुन्दर और पावन इस श्रीरामचरितमानस की भगवान् शङ्कर जी ने रचना की है। यह तीनों प्रकार के दोष अर्थात् शारीरिक, मानसिक और वाचिक दोष, दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों तथा दरिद्रता को नष्ट कर डालता है और कलियुग के कुचाल तथा सम्पूर्ण पापों और मलों को समाप्त कर देता है।

रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमय शिवा सन भाखा।।
ताते रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर।।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई।।

भा०– इस मानस रामायण को रचकर महेश अर्थात् महान् ईश्वर भगवान् शङ्कर जी ने अपने मन में रख लिया था। फिर सुन्दर अर्थात् अनुकूल समय पाकर कैलाश पर्वत पर शिवा अर्थात् कल्याणमयी पार्वती जी से कहा, इसलिए हृदय में विचार करके प्रसन्न होकर दुःखों को हरनेवाले हर श्रीशङ्कर जी ने इस प्रबन्ध का नाम रामचरितमानस रखा, जिसका शाब्दिक अर्थ है, मन से रचकर, मन में रखा हुआ रामचरित अर्थात् रामायण (रामचरित रामायण का पर्यायवाची शब्द है मनसा रचितं मनसि चरितं इति मानसं अथवा मानसं यत् रामचरितं तद् रामचरित मानसं बाहुलक ग्रहणात् विशेषणस्यापि पर प्रयोगः) उसी सुखदायिनी कथा को मैं कह रहा हूँ, हे सन्तजन! इसे मन लगाकर आदरपूर्वक सुनिये।

दो०– जस मानस जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा बृषकेतु।।३५।।

भा०– यह मानस जिस प्रकार का है, यह जिस प्रकार से प्रकट हुआ, इसका जगत् में जिस कारण से प्रचार हुआ अब मैं वह सब प्रसंग पार्वती जी और वृषभध्वज भगवान् शङ्कर जी को स्मरण करके कह रहा हूँ।

* मासपारायण, पहला विश्राम *

शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी।।
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी।।

भा०– शिव जी के प्रसाद से हृदय में कविता के अनुकूल सुन्दर बुद्धि उल्लसित हो चुकी है और अब तुलसीदास नामक कवि (मैं) अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामचरितमानस की रचना कर रहा है। सन्तजन! आप लोग स्वस्थ चित्त से सुनकर इसे सुधार लीजिये।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू।।
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।।

भा०– सुन्दर अर्थात् भगवत् प्रेमयुक्त बुद्धि ही भूमि है, अगाध गंभीर हृदय ही स्थल है तथा वेद और पुराण सागर हैं एवं सन्तजन बादल हैं, वे ही वेद, पुराणरूप सागर से मीठा मनोहर, मंगल करने वाला, श्रीराम सुयश रूप श्रेष्ठजल सुमति भूमि के अगाध हृदय स्थल में बरसते हैं।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुशीतलताई।।

भा०- सन्तजन जो सगुण लीला का व्याख्यान करके वर्णन करते हैं, वही इस श्रीराम के यशरूप जल की स्वच्छता है, जो संसार के मल को नष्ट कर देती है। जो अनिर्वचनीय प्रेमाभक्ति है, वही श्रीराम के यश रूप जल की मधुरता और सुख देनेवाली शीतलता है अर्थात् अलकनन्दा जैसी शीतलता नहीं है, प्रत्युत् वह हरिद्वार की गंगा जैसी शीतलता है, क्योंकि अलकनन्दा की शीतलता शरीर पर थोड़ा सा भी जल डालने पर कँपा डालती है और हरिद्वार की गंगा जी की शीतलता गर्मी में स्नान काल में बहुत सुखद होती है।

सो जल सुकृत शालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई।।

भा०-वह श्रीराम के यशरूप जल, सत्कर्मरूप धान की खेती के लिए बहुत लाभप्रद होता है और वही श्रीराम जी के भक्तजनों का जीवन अर्थात् जीने का आधार है।

मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद शीत रुचि चारु चिराना।।

भा०- शीघ्र धारणाशक्ति से सम्पन्न मेधा कही जानेवाली बुद्धिरूप भूमि में गया हुआ वह सुहावना जल इकट्ठा होकर श्रवणमार्ग से चला और सुन्दर अगाध मानस अर्थात् हृदयरूप सुन्दर स्थल में भर गया और स्थिर हो गया। उसकी शीतलता भी सुखद हुई। उसमें रुचि अर्थात् स्वाद और तृप्ति सुन्दर हो गयी। वह चिरकालीन हो गया इससे निर्मल हो गया।

दो०- सुठि सुन्दर संबाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि।।३६।।

भा०- बुद्धि के द्वारा विचार कर मैंने जो चार संवादों की रचना की, वे ही इस पवित्र सुन्दर श्रीरामचरितरूप मानस सरोवर के मनोरम चार घाट हैं। (यहाँ चार संवाद ही चार घाटों से उपमित हुए हैं, जैसे सरोवर की उत्तर दिशा में काकभुशुण्डि–गरुड़ संवाद = पनघट = भक्तिघाट, पूर्व दिशा में शिव–पार्वती संवाद = राजघाट = ज्ञानघाट, दक्षिण दिशा में याज्ञवाल्क्य–भरद्वाज संवाद = पंचायती घाट = कर्मघाट, पश्चिम दिशा में तुलसीदास–सन्त संवाद = गौ घाट = प्रपत्ति घाट)।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।

भा०- इसके बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड नामवाले सात प्रबन्ध ही सुन्दर सात सोपान अर्थात् श्रीरामचरितमानस सरोवर की सात सीढ़ियाँ हैं। इन्हें ज्ञान के नेत्र से देखते ही मन प्रसन्नता से पूर्ण होकर इनका सम्मान करने लगता है। प्राकृतिक गुणों से रहित और सभी बाधाओं से रहित श्रीराम की महिमा का वर्णन ही इस मानस–जल की श्रेष्ठता और गंभीरता (गहरापन) है।

राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीपि सुहाई।।

भा०- इस मानस सरोवर में विराजमान अमृत के समान जीवनदायी एवं मधुर श्रीसीताराम जी के यश रूप जल में उपमा आदि अलंकारों का विधान मन को रमाने वाले तरंगों का विलास है (यहाँ उपमा सभी अलंकारों का उपलक्षण है।) और घनी पुरइन (कमल–दण्ड के पत्ते) ही सुन्दर ९३८८ चौपाइयाँ हैं, इसमें कविता की युक्तियाँ ही मनोहर मुक्तामणियों को उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं।

छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।

भा०- इसमें ४७ श्लोक, २०८ छन्द, ८७ सोरठे, ११७२ सुन्दर दोहे इन्हीं का समूह बहुरंगे अर्थात् श्वेत, पीत, नील और अरुण रंगवाले कमलों का समूह शोभित हो रहा है। जो इन पाँच प्रकार के वृत्तों का उपमारहित वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ है और जो मानस रामायण के सुन्दर-सुन्दर भाव हैं तथा जो इसकी संस्कृत गर्भित परिष्कृत अवधी भाषा है, वही यहाँ पराग, मकरंद और सुगंध है। यहाँ छन्द शब्द श्लोक का भी उपलक्षण है।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला।।
धुनि अवरेव कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती।।

भा०- इसमें सत्कर्मों तथा रचयिता कवि एवं वक्ताओं तथा श्रोताओं के पुण्यों का पुंज ही सौन्दर्य और माधुर्य से मिश्रित भौंरों की पंक्तियाँ हैं। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सम्बन्धी विचार ही इस मानस-सरोवर के परमहंस, कलहंस और राजहंस नामक तीन प्रकार के हंस हैं। ध्वनि, वक्रोक्ति, कविता के अनेक अलंकरण प्रसाद और माधुर्य नामक गुण; लाटी, पाञ्चाली, गौड़ी वैदर्भी नामक रीतियाँ ही इस मानस-सरोवर की अनेक प्रकार की मछलियाँ हैं।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।

भा०- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तथा सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य और सालोक्य नामक चारों मुक्तियाँ, विचारपूर्वक ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान, विज्ञान, संसार की नश्वरता का ज्ञान, नवरस अर्थात् वीर, करुण, शान्त, भयानक, रौद्र, वीभत्स, अद्‌भुत, शृंगार तथा हास अथवा नव यानी भक्ति, वत्सल तथा प्रेयो रस इन नवीन रसों जप, तप, योग, वैराग्य, ये सभी साहित्यिक एवं आध्यात्मिक विषयों के वर्णन इस श्रीरामचरितमानस रूप सुन्दर सरोवर के जलचर हैं।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहग समाना।।
संतसभा चहुँ दिशि अमराई। श्रद्धा ऋतु बसंत सम गाई।।

भा०- जो श्रेष्ठ सत्पुरुषों और साधुजनों के गुणगण गाये गये हैं, ये ही इस श्रीरामचरितमानस सरोवर में जल पक्षियों के समान हैं। सन्तों की सभा ही इस मानस-सरोवर के चारों ओर की अमराई अर्थात् आम की वाटिका (आम्रपाली) है। श्रोता और वक्ता की वैदिक वाङ्‌मय और प्रभु श्रीराम जी के प्रति आस्थारूपिणि श्रद्धा ही वसंतऋतु के समान गायी गयी है।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया द्रुम लता बिताना।।
संयम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना।।

भा०- अनेक प्रकार की नवधा, दशधा, एकादशधा, साध्या, साधना, अनपायनी, अविरल, निर्भरा तथा प्रेमा आदि नामों से किये गये भक्ति के निरूपण, क्षमा तथा दया के वर्णन मानस सरोवर के तट पर लगे हुए वृक्षों की लताओं के बितान हैं। संयम और नियम इस सरोवर के पास लगे वृक्षों के फूल हैं, ज्ञान ही फल है तथा वेदों में विख्यात प्रभु श्रीराम की प्रेमलक्षणाभक्ति ही श्रीरामचरितमानस के तटवर्ती वृक्षों में लगे ज्ञान रूप फल का रस है।

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ शुक पिक बहुबरन बिहंगा।।

भा०- और भी जो मानस रामायण में अनेक अवतार कथा–प्रसंग कहे गये हैं, वे ही इस मानस सरोवर के पास आनेवाले तोता, कोयल आदि अनेक प्रकार के बाहरी पक्षी हैं।

दो०- पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु।।३७।।

भा०- मानस रामायण की कथा में जो वक्ता और श्रोता को अधिक, मध्यम और सामान्य प्रकार के रोमांच होते हैं, वे ही इस सरोवर की वाटिका (उद्यान), बाग और वन हैं। कथा में जो वक्ता और श्रोता की सुख की अनुभूति है, वही इस सरोवर में पक्षियों का विहार है। वक्ता और श्रोता के सुन्दर मन ही माली हैं, जो अश्रुपात के बहाने सुन्दर नेत्र से स्नेहजल द्वारा इस सरोवर के तटवर्ती वाटिकाओं, बागों और वनों को सींचते रहते हैं।

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।।
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी।।

भा०- जो लोग इस श्रीरामचरितमानस को सँभाल कर गाते हैं अर्थात् उपक्रमोपसंहार के साथ शास्त्रीय परम्परा के अनुसार इस चरित्र का गान करते हैं अथवा जो स्वयं के चरित्र को सँभाल कर इसे गाते हैं वे ही कुशल श्रीवैष्णव वक्ता इस श्रीरामचरितमानस रूप सरोवर के चतुर रक्षक हैं। जो नर–नारी आदरपूर्वक इस मानस रामायण का सदैव श्रवण करते हैं, वे ही देवतुल्य पुरुष और स्त्री इस श्रेष्ठ देवसरोवर के अधिकारी हैं।

अति खल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा।।
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना।।
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे।।

भा०- जो अत्यन्त विषयी खल प्रकृति के लोग हैं, वे ही बगुले और कौवे हैं। वे अभागे बगुले और कौवे रूप विषयी दुष्टजन उस मानस–सरोवर के निकट नहीं आ पाते। घोंघे, मेंढक और शैवाल (जल में जमा हुआ कचड़े से परिपूर्ण घास) के समान अनेक लौकिक आनन्द से युक्त विषय की कथा यहाँ नहीं है, इसलिए बेचारे कामान्ध कौवे और बगुले इस मानस–सरोवर के पास आते–आते हृदय में हार जाते हैं।

आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई।।

भा०- इस मानस सरोवर के पास आने में बड़ी कठिनता है। प्रभु श्रीराम जी की कृपा के बिना तो यहाँ आया ही नहीं जा सकता।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन के बचन बाघ हरि ब्याला।।
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम शैल बिशाला।।
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना।।

भा०- बुरे लोगों का कठिन कुसंग ही भयंकर कुमार्ग है। कुसंगियों के श्रीराम विरोधी वचन ही मार्ग में कष्ट देने वाले बाघ, सिंह और सर्प हैं। जो गृह के नाना प्रकार के जंजाल से भरे कार्य हैं, वे ही इस मानस सरोवर के पास आने में बाधक बनने वाले अनेक बड़े–बड़े दुर्गम पर्वत हैं। मोह, मद और मान बहुत भयंकर वन हैं और वेद–विरोधी कुत्सित तर्क ही भयानक नदियाँ हैं, जिन्हें पार करना बड़ा कठिन है।

दो०- जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ।।३८।।

भा०- जो लोग श्रद्धा (आस्था) रूप सम्बल अर्थात् पाथेय (रास्ते का खर्च) से रहित हैं, जिनको सन्तों का साथ नहीं है और जिन्हें रघुकुल के नाथ श्रीरामचंद्र जी प्रिय नहीं हैं, उनके लिए मानस-सरोवर बहुत अगम्य है अर्थात् वे इसके पास फटक भी नहीं सकते।

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई।।
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा।।

भा०- फिर जो कोई कष्ट करके वहाँ चला भी जाता है तो उसे जाते ही नींद रूप ठंड हो जाती है और हृदय में भयंकर जड़तारूप शीत लग जाता है, इसलिए वह अभागा मानस-सरोवर के पास जाकर भी स्नान नहीं कर पाता अर्थात् कथा सुनने जाकर भी तुरन्त सो जाता है।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना।।
जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा।।

भा०- उससे नींद रूप ठंड के कारण मानस रामायणरूप मानस-सरोवर में श्रवण, मज्जनरूप स्नान और पान नहीं किया जाता तथा अभिमान के साथ वह लौट आता है। फिर जो कोई पूछने आता है तो उसे वह मानस सरोवर की निंदा करके समझा देता है। यह नहीं कहता कि मुझे नींद रूप ठंड लग गई थी, इसलिए मैं सरोवर में स्नान नहीं कर पाया। वह तो लोगों से यही कहता है कि मानस सरोवर कोई तालाब नहीं वह एक साधारण सी तलैया है।

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही।।
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई।।

भा०- जिसको भगवान् श्रीराम अपनी सुन्दर कृपादृष्टि से निहार लेते हैं उसे पूर्व के ग्यारह पंक्तियों में कहे हुए ये सभी विघ्न नहीं व्यापते अर्थात् प्रभावित नहीं कर पाते। वही आदरपूर्वक इस सरोवर में मज्जन करता है और अत्यन्त भयंकर दैहिक, दैविक तथा भौतिक इन तीनों अग्नियों से नहीं जलता।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन के राम चरन भल भाऊ।।
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई।।

भा०- वे मनुष्य इस मानस रामायणरूप मानस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते जिनका भगवान् श्रीराम जी के चरणों में सुन्दर भाव है। हे भाई! जो इस मानस सरोवर में स्नान करना चाहता हो, वह मन लगाकर सत्संग करे।

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।।
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू।।

भा०- इस प्रकार वर्णित आध्यात्मिक मानस-सरोवर को मानस-नेत्र से देखकर और उसमें स्नान करके कवि (मुझ तुलसीदास) की बुद्धि बिमल हो गयी है। हृदय में आनंद व उत्साह उत्पन्न हो गया है, उसमें प्रेम और प्रमोद अर्थात् मनचाही इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न आनंद का प्रवाह उमड़ कर चल पड़ा है।

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।।

भा०- उसी श्रीरामचरितमानसरूप मानस-सरोवर से श्रीराम जी के विमल यशरूप जल को भर कर नदी के समान सुन्दर कविता चल पड़ी है।

सरजू नाम सुमंगलमूला। लोक बेद मत मंजुल कूला।।
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि।।

भा०- वह श्रीसरयू नाम से प्रसिद्ध है और वह सुन्दर कल्याणों की मूल अर्थात् कारण है। लोकमत और वेदमत ही उसके सुन्दर दो तट हैं । सुन्दर मानस रामायणरूप मानस–सरोवर से निकली हुई मेरी कविता रूप सरयू नदी बड़ी ही पवित्र है, वह कलिकाल के मलरूप तृणों और वृक्षों को जड़ से उखाड़ कर फेंक देती है।

दो०- श्रोता त्रिबिध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल।।३९।।

भा०- उस कविता रूप सरयू के दोनों तटों पर विषयी, साधक, सिद्ध अथवा साधारण, मध्यम और उत्तम, तीनों प्रकार के श्रोता समाज ग्राम, नगर और पुर के समान हैं। सन्तों की सभा ही उस सरयू के तीर पर बसी हुई सम्पूर्ण सुमंगलों की मूल, उपमारहित श्रीअयोध्यापुरी है।

रामभगति सुरसरितहिं जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई।।
सानुज राम समर जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।।

भा०- वह सुन्दर कीर्ति कवितारूप सरयू जी श्रीरामभक्तिरूप गंगा जी से जाकर मिल गयी। अनुज लक्ष्मण जी के साथ प्रभु श्रीराम जी का पवित्र करनेवाला, विश्वामित्र जी के यज्ञ–रक्षा के समय का, खर–दूषण के वध के समय का, लंका के समरांगण का युद्ध, यशरूप महानद सोनभद्र उस सरयू–गंगा संगम से जाकर मिल गया।

जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा।।
त्रिबिध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम स्वरूप सिंधु समुहानी।।

भा०- इन दोनों सरयू और सोनभद्र के बीच वैराग्य और विचारों के साथ श्रीरामभक्तिरूप गंगा की धारा सुशोभित हो रही है। इस प्रकार तीनों तापों को त्रस्त करने वाली त्रिमुहानी अर्थात् भगवत्कीर्ति कवितारूप सरयू, श्रीराम के सामरिक यशरूप सोनभद्र तथा श्रीरामभक्ति रूप गंगा जी की समन्वितधारा त्रिमुहानी श्रीराम स्वरूप महासागर से मिलने के लिए उसके सम्मुख हो चुकी है अर्थात् उसमें समाहित होती जा रही है।

मानस मूल मिली सुरसरिहीं। सुनत सुजन मन पावन करिहीं।।
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा।।

भा०- मेरी कवितारूप सरयू का मूल है श्रीरामचरितरूप मानस और यह मिली है श्रीरामभक्ति गंगा जी से। यह सुनने मात्र से ही सज्जनों के मन को पवित्र कर देगी। बीच–बीच में जो अनेक विभागों की अन्तर्कथायें कही गयी हैं, वही मानो श्रीरामरूप सरयू तट के तटवर्ती वन और बगीचे हैं।

उमा महेश बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती।।
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई।।

भा०- पार्वती जी और शिव जी के विवाह में जो बाराती भूत–प्रेतों का वर्णन किया गया है, वे ही इस सरयू नदी के अनेक प्रकार के मकर, घड़ियाल महामत्स्य आदि जल, जन्तु हैं। श्रीराम जी, भरत जी, लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी के जन्मकालीन आनन्द एवं बधाई का वर्णन ही इस नदी की भँवर और लहरों का सौन्दर्य है।

दो०- बालचरित चहु बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग।।४०।।

भा०- चारों भाइयों के बालचरित्र ही बहुत से रंगोंवाले अनेक कमल हैं। महाराज दशरथ, कौसल्या आदि महारानियों और उनके परिजनों के पुण्य ही यहाँ भ्रमर और जल के पक्षी हैं।

विशेष- श्रीराम का बालचरित्र नीलकमल, श्रीभरत का पीतकमल, श्रीलक्ष्मण का रक्तकमल और श्रीशत्रुघ्न का श्वेतकमल है।

चौ०- सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई।।
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुशल उतर सबिबेका।।
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई।।

भा०- जो सीता जी के स्वयंवर की सुहावनी कथा यहाँ वर्णनीय है, वही इस सुहावनी कविता सरयू की छाई हुई छवि है। इस प्रसंग में अनेक चतुर प्रश्न ही इस नदी की नाव हैं और विवेकपूर्वक दिये हुए उत्तर ही इस नदी के कुशल केवट हैं। प्रश्नोत्तरों के क्रम को सुनकर, जो परस्पर अनुकथन (विचार-विमर्श) होता है, वही इस नदी में पथिकों का समाज सुशोभित हो रहा है।

घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी।।

भा०- परशुराम जी का क्रोध ही इस नदी की तीव्रधारा है और श्रीराम की श्रेष्ठ वाणी ही यहाँ सुन्दर बाँधे हुए घाट हैं।

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो शुभ उमग सुखद सब काहू।।
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं।।

भा०- जो छोटे भाइयों के सहित भगवान् श्रीराम के विवाह का उत्साह वर्णित होगा, वही कल्याणकारी उमंग सबके लिए सुखद होगा अर्थात् श्रीराम के विवाह का उत्साह ही इस नदी का उफान है। इसे कहते, सुनते, जो लोग मन में प्रसन्न होते हैं और शरीर से रोमांचित हो जाते हैं, वे ही सुकृतजन प्रसन्नतापूर्वक इस बढ़ी हुई नदी में स्नान करते हैं।

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरेउ समाजा।।
काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी।।

भा०- श्रीराम के राजतिलक के लिए श्रीअयोध्या में जो मंगल सजाये गये मानो वे ही स्नानार्थ पर्व का योग प्राप्त करके स्नानार्थियों के समूह रूप में जुड़ गये। उसमें कैकेयी की कुमति ही इस नदी की काई है जिसके फलस्वरूप अयोध्या में भयंकर विपत्ति आ पड़ी।

दो०- शमन अमित उतपात सब, भरतचरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बक काग।।४१।।

भा०- उसमें असंख्य सभी उत्पातों को नष्ट करनेवाला भरत जी का चरित्र ही जपयज्ञ है। कलियुग के मल तथा खलों के पापों और अवगुणों का कथन, यही इसके जल के मलरूप बगुले और कौवे हैं।

विशेष- जब पर्वकाल में नदी में काई आ जाती है, तब शकुनशास्त्र के अनुसार कोई-न-कोई अशुभ संम्भावित हो जाता है। फिर उसे शान्त करने के लिए जप, यज्ञ का आयोजन होता है। यहाँ कैकेयी की कुमति ने काई की भूमिका निभाई और उससे उपस्थित होनेवाली विपत्ति के नाश में भरत जी के चरित्र की अहम् भूमिका थी।

कीरति सरित छहू रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी।।
हिम हिमशैलसुता शिव ब्याहू। शिशिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।।
बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय ऋतुराजू।।
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू।।

बरषा घोर निशाचर रारी। सुरकुल शालि सुमंगलकारी।।
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिशद सुखद सोइ शरद सुहाई।।

भा०– यह अत्यन्त पवित्र श्रीराम की कीर्तिरूपी श्रीसरयू नदी, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् इन छहों ऋतुओं के समय में सुहावनी बनी रहती है। यहाँ हिमालयराज की पुत्री पार्वती जी और शिव जी का विवाह ही हेमन्त ऋतु है और प्रभु श्रीराम के जन्म का उत्साहपूर्ण महोत्सव ही सुखदायी शिशिर ऋतु है। जो श्रीराम के विवाह–समाज का वर्णन है, वही प्रसन्नता और मंगलमय वसन्त ऋतु है। दुस्सह श्रीराम का वनगमन ही ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथायें ही प्रचण्ड धूप और गर्म पवन है। घोर राक्षसों का युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूप धान की खेती के लिए सुन्दर मंगल करने वाला सिद्ध हुआ। जो श्रीरामराज्य का सुख, प्रभु श्रीराम का विनय और बड़प्पन है, वही स्वच्छ, सुखदायक और सुहावनी शरद ऋतु है।

सती सिरोमनि सिय गुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा।।
भरत स्वभाव सुशीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई।।

भा०– सतीशिरोमणि सीता जी की जो दिव्य गुणगाथा है, वही इस अनुपमेय जल की निर्मलतारूप गुण है। जो श्रीभरत का स्वभाव निरन्तर एकरस रहता है तथा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की शीतलता है।

दो०– अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की, जल माधुरी सुबास।।४२।।

भा०– परस्पर प्रीतिपूर्वक एक–दूसरे को निहारना, बात करना, मिलना और परस्पर हास–परिहास करना, इस प्रकार चारों भाइयों का भला भायप अर्थात् भ्रातृ प्रेम ही इस जल की मधुरता और सुगंध है।

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी।।

भा०– मेरी आर्ति, विनय और दैन्यभाव यही इस अत्यन्त ललित सुन्दर जल की बहुत बड़ी लघुता अर्थात् हल्कापन है क्योंकि जल का हल्का होना ही उसका बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है। भारी जल पाचनक्रिया को प्रभावित करता है अत: मेरी आर्ति पूर्ण विनय से भरी दीनता लघु होने पर भी लालित्य की भूमिका निभायेगी।

अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमल हारी।।

भा०– यह जल बहुत अद्‌भुत है, श्रवणमात्र से यह गुणकारी है। यह आशारूप प्यास एवं मन के मल को हर लेता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी।।
भव श्रम शोषक तोषक तोषा। शमन दुरित दुख दारिद दोषा।।

भा०– यह जल, श्रीराम जी के सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है तथा कलियुग के सम्पूर्ण पाप और ग्लानियों को हर लेता है। यह संसार के श्रम को सुखा डालता है तथा संतोष को भी संतुष्ट करता है। यह दुर्भाग्य, दु:ख और दोषों को नष्ट कर डालता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन।।
सादर मज्जन पान किए ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते।।

भा०– यह काम, क्रोध, मद, मोह को नष्ट करनेवाला और निर्मल विवेक तथा वैराग्य को बढ़ाने वाला है। इसमें आदरपूर्वक मज्जन और पान करने से हृदय से पाप और कष्ट नष्ट हो जाते हैं।

जिन ऐहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए।।
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहैं मृग जिमि जीव दुखारी।।

भा०- जिन लोगों ने इस जल से अपने मन को नहीं धोया उन कायरों को कलिकाल ने नष्ट कर दिया। ये प्यासे जीव संसार सूर्य की किरणों में मिले सुखरूप जल को देखकर मृग की भाँति प्यासे और दु:खी होकर इधर–उधर भटकते रहेंगे।

दो०- मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी शङ्करहिं, कह कबि कथा सुहाइ।।४३(क)।।

भा०- इस प्रकार से अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुन्दर जल के गुणों की गणना करके, इसमें अपने मन को स्नान कराके, भवानी अर्थात् भगवती पार्वती जी और शङ्कर जी को स्मरण करके मैं कवि (तुलसीदास) सुन्दर कथा कह रहा हूँ।

दो०- अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संबाद।।४३(ख)।।

भा०- अब रघुकुल के स्वामी श्रीराम के चरणकमल को हृदय में स्थापित करके, उनका प्रसाद पाकर मैं तुलसीदास, दोनों मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज और याज्ञवल्क्य जी के मिलन का सुन्दर संवाद कह रहा हूँ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहिं राम पद अति अनुरागा।।
तापस शम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।।

भा०- मुनि भरद्वाज जी प्रयाग में निवास करते हैं, उन्हें श्रीराम जी के चरणों में अत्यन्त अनुराग है। वे तपस्वी, शम, दम तथा दया के निधान हैं। वे परमार्थ पथ (मोक्ष) के उत्कृष्ट ज्ञाता हैं।

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई।।
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं । सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं।।
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अछय बट हरषहिं गाता।।
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन।।

भा०- जब माघ मास में सूर्यनारायण मकर राशि में विराजमान होते हैं, तब सभी लोग कल्पवास के लिए प्रयाग में आते हैं। देव, दानव, मनुष्य और सभी किन्नरों की श्रेणियाँ आदरपूर्वक त्रिवेणी में गोते लगाती हैं। सभी लोग बारहों माधव के चरणकमल की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श करके सबके अंग रोमांचित हो जाते हैं। उसी प्रयाग में मुनि भरद्वाज जी का बड़ा ही पावन रमणीय और मुनियों के मन को भानेवाला आश्रम है।

तहाँ होइ मुनि ऋषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा।।

भा०- उसी भरद्वाज आश्रम में मुनियों और ऋषियों का समाज इकट्ठा होता है। जो तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने जाते हैं, वे प्रात:काल उत्साह के साथ श्रीत्रिवेणी में स्नान करते हैं और परस्पर भगवान् की गुणगाथाओं का वर्णन करते हैं।

दो०- ब्रह्म निरूपन धरम बिधि, बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान बिराग।।४४।।

भा०- मुनिगण वेदान्त की दृष्टि से ब्रह्म निरूपण तथा पूर्वमीमांसा की पद्धति से धर्म की विधि एवं सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय की सरणी से तत्त्वों का विभाग–वर्णन और अंगिरा, शाण्डिल्य एवं नारद के सूत्रों के अनुसार ज्ञान, वैराग्य सहित भगवान् की भक्ति का कथन करते हैं।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं।।
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।।

भा०- इस प्रकार मुनिगण माघ मासपर्यन्त स्नान करते हैं और फिर सभी महर्षि अपने–अपने आश्रम को चले जाते हैं। प्रत्येक वर्ष इसी प्रकार अत्यन्त आनन्द होता है। मकर स्नान करके मुनिबृन्द चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीश आश्रमनि सिधाए।।
जाग्यबल्क्य मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।।

भा०- एक बार महर्षिगणों ने सम्पूर्ण मकर राशिपर्यन्त श्रीप्रयाग जी में त्रिवेणी स्नान किया और अपने–अपने आश्रम को लौट गये, किन्तु परमविवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को महर्षि भरद्वाज ने चरण पकड़ कर अनुरोधपूर्वक अपने आश्रम में रख लिया अर्थात् उन्हें जाने नहीं दिया।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।।
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी।।

भा०- भरद्वाज जी ने आदरपूर्वक याज्ञवल्क्य जी के चरणकमल का प्रक्षालन किया और उन्हें अत्यन्त पवित्र आसन पर विराजमान कराया। पूजा करके, मुनि याज्ञवल्क्य जी के सुयश का बखान करके, भरद्वाज अत्यन्त पावन–कोमल वाणी बोले।

नाथ एक संशय बड़ मोरे। करगत बेदतत्व सब तोरे।।
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा।।

भा०- हे नाथ! मेरे मन में एक बहुत बड़ा संशय है, सम्पूर्ण वेद के तत्त्व आपको हस्तगत् हैं अर्थात् आप सब कुछ जानते हैं। वह संशय कहने में मुझे बहुत भय और लज्जा लग रही है, यदि नहीं कह रहा हूँ तो बहुत बड़ा अकाज अर्थात् कार्यों की हानि हो रही है। अतः भय और लज्जा होने पर भी संशय कहना आवश्यक जान पड़ रहा है।

दो०- संत कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुरु सन किये दुराव।।४५।।

भा०- हे प्रभो! सन्त इस प्रकार की नीति कहते हैं और यही वेद, पुराण और मुनिगण गाते हैं कि, सद्गुरु के समक्ष छिपाव करने पर निर्मल विवेक उत्पन्न नहीं होता।

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू।।

भा०- ऐसा विचार कर मैं अपने मोह को प्रकट कर रहा हूँ। हे नाथ! मुझ सेवक पर दया करते हुए मेरे मोह को हर लीजिये।

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा।।
संतत जपत शंभु अबिनाशी। शिव भगवान् ग्यान गुन राशी।।
आकर चारि जीव जग अहहीं। काशी मरत परम पद लहहीं।।
सोपि राम महिमा मुनिराया। शिव उपदेश करत करि दाया।।

भा०- सन्तों, पुराणों और उपनिषदों ने श्रीराम नाम का असीम प्रभाव गाया है। कल्याण को उत्पन्न करने वाले, ज्ञान और गुणों की राशि भगवान् शिव जी इसी नाम को निरंतर जपते रहते हैं। चारों खानों में संसार में जो भी जीव हैं, वे काशी में मर कर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। वह भी श्रीराम नाम की महिमा ही है। हे मुनिश्रेष्ठ! स्वयं भगवान् शिव जी जीवों पर दया करके मृत्यु के समय उनके दाहिने कान में जाकर श्रीराम नाम का ही उपदेश करते हैं। (मरणकाल में उपदेश किये हुए श्रीराम नाम के प्रभाव से काशी में मरने वाला प्रत्येक प्राणी मुक्त हो जाता है।)

राम कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही।।

भा०- हे कृपानिधि याज्ञवल्क्य जी! वे प्रभु श्रीराम कौन हैं ? मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप मुझे समझाकर कहिये।

एक राम अवधेश कुमारा। तिन कर चरित बिदित संसारा।।
नारि बिरह दुख सहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा।।

भा०- एक राम तो अवधनरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं। उनका चरित्र संसार में विदित है। उन्होंने अपनी पत्नी सीता जी के विरह का अपार दुःख सहा। उन्हें क्रोध आया और उन्होंने युद्ध में रावण को मार डाला।

दो०- प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम, कहहु बिबेक बिचारि।।४६।।

भा०- हे प्रभो! क्या वे ही श्रीराम हैं या और कोई, जिन्हें भगवान् शङ्कर जी जपते रहते हैं? आप सत्य के निवास स्थान और सब कुछ जाननेवाले हैं, इसलिए विवेक से विचार कर कहिये कि शिव जी के आराध्य श्रीराम कौन हैं, दशरथ पुत्र या और कोई ?

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।।

भा०- हे नाथ! मेरा बहुत बड़ा मोह जिस प्रकार मिट सके वही कथा विस्तार करके कहिये।

जाग्यबल्क्य बोले मुसुकाई। तुमहिं बिदित रघुपति प्रभुताई।।
रामभगत तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी।।
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।।

भा०- याज्ञवल्क्य मुनि भरद्वाज मुनि से मुस्कुरा कर बोले, "हे महर्षि! तुम्हें श्रीराम जी की प्रभुता ज्ञात है। तुम मन, कर्म और वाणी से श्रीराम जी के भक्त हो। मैंने तुम्हारी चतुरता जान ली है। तुम श्रीराम के गोपनीय गुणों को सुनना चाहते हो। तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो अत्यन्त मूढ़ हो।

तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई।।
महामोह महिषेश बिशाला। राम कथा कालिका कराला।।
रामकथा शशि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना।।

भा०- हे तात (प्रिय) भरद्वाज! आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीराम की सुहावनी कथा कह रहा हूँ। बहुत बड़ा मोह ही महिषासुर राक्षस है, उसे नष्ट करने के लिए श्रीराम की कथा भयंकर कालिका देवी है। श्रीराम कथा चन्द्रमा के किरण के समान है, सन्त रूप चकोर जन जिसका पान करते रहते हैं।

ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी।।

दो०- कहउँ सो मति अनुहारि अब, उमा शंभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि बिषाद।।४७।।

भा०- इसी प्रकार का संशय भगवती पार्वती जी ने किया था, तब महादेव शङ्कर ने व्याख्यान के साथ श्रीराम–कथा कही थी। हे महर्षे! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही पार्वती–शिव संवाद कह रहा हूँ। वह जिस समय, जिस कारण और जहाँ सम्पन्न हुआ था, वह सब सुनो, तुम्हारा मोह से उत्पन्न विषाद अर्थात् दुःख मिट जायेगा।

एक बार त्रेता जुग माहीं। शंभु गए कुंभज रिषि पाहीं।।
संग सती जगजननि भवानी। पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी।।

भा०- एक बार त्रेता युग में भगवान् शङ्कर अगस्त्य जी के पास गये। शिव जी के साथ जगत् की माता शिव जी की धर्मपत्नी सती जी भी थीं। सारे संसार का ईश्वर जानकर ऋषि अगस्त्य जी ने सती जी के सहित शिव जी की पूजा की अर्थात् सम्मान किया।

रामकथा मुनिवर्य बखानी। सुनी महेश परम सुख मानी।।
ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही शंभु अधिकारी पाई।।

भा०- मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ने श्रीरामकथा कही और मन में परमसुख मानकर भगवान् शिव ने वह कथा सुनी। सती जी ने वह कथा नहीं सुनी। ब्रह्मर्षि अगस्त्य जी ने शिव जी से सुहावनी श्रीरामभक्ति पूछी अर्थात् श्रीराम जी के भक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किये और अगस्त्य जी को अधिकारी जानकर शिव जी ने उत्तर के रूप में श्रीरामभक्ति का वर्णन किया।

कहत सुनत रघुपति गुनगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा।।
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दक्षकुमारी।।

भा०- इस प्रकार, श्रीराम जी के गुणों की गाथा को कहते–सुनते कैलाश पर्वत के ईश्वर भगवान् शङ्कर, अगस्त्य जी के आश्रम में कुछ दिन रह गये । त्रिपुर के शत्रु भगवान् शङ्कर मुनि अगस्त्य जी से विदा माँगकर अपने भवन अर्थात् दक्षिण में त्र्यम्बकेश्वर की ओर चल पड़े, उनके साथ दक्ष की पुत्री सती जी भी थीं।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंश लीन्ह अवतारा।।
पिता बचन तजि राज उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी।।

भा०- उसी समय (शिव जी के कथाश्रवण के समय) पृथ्वी के भार को नष्ट करने के लिए, श्रीहरि पापहारी प्रभु श्रीराम जी ने रघुवंश में अवतार ले लिया था। पिता दशरथ जी के कैकेयी को दिये हुए वचन की रक्षा करते हुए अविनाशी श्रीराम जी उदासीन भाव से श्रीअवध का राज छोड़कर दण्डक वन में विचरण कर रहे थे।

दो०- हृदय बिचारत जात हर, केहिं बिधि दरसन होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गए जान सब कोइ।।४८(क)।।

भा०- शिव जी मार्ग में जाते–जाते मन में विचार कर रहे थे कि, प्रभु श्रीराम जी के दर्शन किस विधि से हो सकते हैं। प्रभु श्रीराम गुप्तरूप में अपना ऐश्वर्य छिपाकर अवतीर्ण हुए हैं। यदि मैं सीधे–सीधे उनके पास चला जाऊँगा तो सभी लोग जान जायेंगे कि, ये तो शिव जी के भी आराध्य प्रभु श्रीराम हैं।

सो०- शङ्कर उर अति छोभ, सती न जानहिं मरम सोइ।
तुलसी दरशन लोभ, मन डर लोचन लालची।।४८(ख)

भा०- शङ्कर जी के मन में बहुत क्षोभ है, सती जी वह मर्म नहीं जान पा रही हैं। कवि तुलसीदास जी कहते हैं कि, शिव जी के मन में तुलसी अर्थात् तुरीय श्रीराम 'ल' अर्थात् लक्ष्मण तथा 'सी' अर्थात् सीता जी के दर्शनों का लोभ है। शिव जी के मन में प्रभु की गोपनीयता भंग का डर है, पर उनके नेत्र श्रीराम जी के दर्शनों के लालची हो गये हैं।

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साचा।।
जौ नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचार न बनत बनावा।।

भा०- रावण ने ब्रह्मा जी से मनुष्य के हाथ अपना मरण माँगा है। प्रभु श्रीराम ब्रह्मा जी के वचन को सत्य करना चाह रहे हैं, अत: रावण वध करने के लिए ही प्रभु मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए हैं। यदि प्रभु के पास नहीं जाता हूँ, तो मन में दर्शन नहीं करने का पश्चात ताप बना रहेगा। शिव जी विचार कर रहे हैं, पर कोई समाधान नहीं बन पा रहा है अर्थात् प्रभु के दर्शनों की कोई अनुकूल परिस्थिति नहीं बन रही है।

एहि बिधि भए सोचबस ईशा। तेही समय जाइ दसशीशा।।
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सो कपट कुरंगा।।
करि छल मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाव तस बिदित न तेही।।

भा०- इस प्रकार दर्शन की समस्या नहीं हल होने से सर्वसमर्थ शङ्कर जी भी सोच के वश हो गये। उसी समय दस शिरवाले रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया, वह मारीच तुरन्त कपटी मृग बन गया और मूढ रावण ने छल करके विदेहराज–पुत्री और विगत देह अर्थात् श्रीसीता जी की परछाँई से बनी हुई माया निर्मित सीता का हरण कर लिया, क्योंकि रावण को प्रभु श्रीराम का वैसा प्रभाव ज्ञात नहीं था।

मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रम देखि नयन जल छाए।।
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई।।
कबहूँ जोग बियोग न जाके। देखा प्रगट बिरह दुख ताके।।

भा०- कपट मृग मारीच का वध करके पृथ्वी का भार हरण करनेवाले हरि प्रभु श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ आश्रम में आये, तो सीता जी के बिना आश्रम को देखकर उनके नेत्र जल से पूर्ण हो गये। रघुकुल के राजा अथवा सभी प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजने वाले प्रभु श्रीराम मनुष्य की भाँति सीता जी के विरह से व्याकुल जैसे लगने लगे हैं और दोनों भ्राता श्रीराम–लक्ष्मण, सीता जी को खोजते हुए वन–वन में फिर रहे हैं। जिनके जीवन में संयोग–वियोग कभी संभव नहीं है, उन्हीं का विरह दु:ख आज प्रत्यक्ष रूप में देखा जा रहा है।

दो०- अति बिचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बश, हृदय धरहिं कछु आन।।४९।।

भा०- रघुपति श्रीराम का चरित्र अत्यन्त विचित्र है उसे परमचतुर लोग ही जान पाते हैं। जो मन्दबुद्धि के लोग होते हैं वे विकृतमोह के वशीभूत होकर हृदय में कुछ दूसरा ही धारण कर लेते हैं अर्थात् प्रभु के साधारण व्यवहार को देखकर उन्हें साधारण मनुष्य मानने की भूल कर बैठते हैं।

शंभु समय तेहि रामहिं देखा। उपजा हिय अति हरष बिशेषा।।
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी।।

भा०- उसी समय कल्याणों के दाता शिव जी ने भगवान् श्रीराम के दर्शन कर लिए। शिव जी के हृदय में अतिविशेष हर्ष हुआ, क्योंकि गोपनीयता भी बची रही और दर्शन भी हो गये। छवि के सागर प्रभु श्रीराम को

भरनयन निहारकर अथवा प्रेमपूर्वक निहारते हुए छवि के महासागर को अपने नेत्रों में भरकर प्रतिकूल समय जानकर शिव जी ने कोई परिचय नहीं किया ।

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।
चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता।।

भा०- हे सत् चित् आनन्दस्वरूप! हे जगत् को पवित्र करनेवाले! हे मनोज अर्थात् काम आदि विकारों को नष्ट करने वाले राघव सरकार! आप की जय हो! जय हो! इस प्रकार पाँचों मुखों से पाँच बार जय कहकर शिव जी चल पड़े। कृपा के धाम शिव जी, सती जी के साथ चले जा रहे हैं, परन्तु पुनः-पुनः वे रोमांचित हो उठते हैं अर्थात् श्रीराम दर्शन-जनित आनन्द सँभाल नहीं पा रहे हैं।

सती सो दशा शंभु कै देखी। उर उपजा संदेह बिशेषी।।
शङ्कर जगतबंद्य जगदीशा। सुर नर मुनि सब नावत शीशा।।
तिन नृपसुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा।।
भये मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी।।

भा०- सती जी ने भगवान् शङ्कर की वह दशा देखी, तो उनके हृदय में विशेष प्रकार का संदेह उत्पन्न हो गया। सती जी विचार करने लगीं कि भगवान् शङ्कर जगत् वंदनीय और सारे संसार के ईश्वर हैं। सभी देवता, मनुष्य और मुनि उन्हें शीश नवाते हैं, ऐसे प्रभु शङ्कर ने भी सत्-चित्-आनन्द परधाम कहकर विरही राजकुमार को प्रणाम कर लिया। उसकी छवि देखकर इतने मग्न हो गये कि अब भी हृदय में वह प्रीति नहीं समा पा रही है।

दो०- ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद।।५०।।

भा०- जो ब्रह्म हैं तथा जो सर्वव्यापक रजोगुण से रहित और अजन्मा हैं, जिनमें किसी प्रकार की कला और कोई चेष्टा नहीं है, जिनमें अपने-पराये का भेद नहीं है, जिन्हें वेद भी नहीं जानते, क्या वह ब्रह्म शरीर धारण करके मनुष्य बन सकते हैं?

बिष्णु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।।
खोजत सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी।।

भा०- देवताओं के लिए जो विष्णु जी मनुष्य शरीर धारण करते हैं, वे भी शिव जी के समान सर्वज्ञ हैं, परन्तु क्या वे ज्ञान के भवन, असुरों के शत्रु लक्ष्मीपति विष्णु जी आज मनुष्यों की भाँति स्त्री को ढूँढ रहे हैं अर्थात् क्या सर्वज्ञ को अपनी पत्नी का पता नहीं चल रहा है ?

शंभुगिरा पुनि मृषा न होई। शिव सर्बग्य जान सब कोई।।
अस संशय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा।।

भा०- फिर भगवान् शङ्कर की वाणी असत्य नहीं हो सकती। यह सभी लोग जानते हैं कि, शिव जी सर्वज्ञ हैं। यदि ये राजकुमार ब्रह्म नहीं होते तो इन्हें शिव जी सच्चिदानन्द क्यों कहते? जो असत्य अर्थात् झूठे मृग के पीछे दौड़ रहा है, वह सत् कैसे? जो अपनी पत्नी का पता भी नहीं लगा पा रहा है वह चित् कैसे? जो विरह में रो रहा है, वह आनन्द कैसे? जो निर्दोष हिरण की हत्या करने में तत्पर है वह जग पावन कैसे? तथा जो विरही है, वह मनोज नशावन अर्थात् काम का नाशक कैसे हो सकता है? इस प्रकार, सती जी के मन में अपार संशय हो गया। उनके हृदय में प्रबोध अर्थात् ज्ञान का प्रसार नहीं हो पा रहा था।

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी।।
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संशय अस न धरिय मन काऊ।।

भा०- यद्यपि 'भव' अर्थात् शिव जी की पत्नी सती जी ने अपना संशय प्रकट नहीं कहा, परन्तु अन्तर का नियमन करनेवाले शिव जी ने सब जान लिया और बोले–हे सती! सुनो, तुम्हारा नारी का स्वभाव है अर्थात् तुम कोमल और भावुक स्वभाव की हो, इस प्रकार का संशय मन में कभी नहीं धारण करना चाहिए।

जासु कथा कुंभज ऋषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहिं सुनाई।।
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।।

भा०- महर्षि कुम्भज ने जिनकी कथा गायी और मैंने जिनकी भक्ति मुनि अगस्त्य जी को सुनायी, धीर मुनिजन जिनकी सदैव सेवा करते रहते हैं, वे ही त्याग–वीरता, दया–वीरता, विद्या–वीरता, पराक्रम–वीरता और धर्म–वीरता से उपलक्षित रघुवीर प्रभु श्रीराम मेरे इष्टदेव हैं।

छ०- मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहिं ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।।
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी।।

भा०- हे सती! मुनिजन, धीर बुद्धिवाले योगीजन, सिद्धजन निर्मल मन से जिनका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। वेद, पुराण और आगम 'नेति–नेति' कह कर जिनकी कीर्ति का गान करते हैं, वे ही सर्वव्यापक, भुवन समूहों के स्वामी, मायापति, रघुकुल के मणि, परब्रह्म श्रीराम जी अपने तंत्र अर्थात् वैदिकमार्ग के निमित्त अपने भक्तों के लिए अवतीर्ण हुए हैं।

सो०- लाग न उर उपदेश, जदपि कहेउ शिव बार बहु।
बोले बिहसि महेश, हरिमाया बल जानि जिय।।५१।।

भा०- यद्यपि शिव जी ने बार–बार समझाकर कहा, फिर भी उनका उपदेश सती जी के हृदय में नहीं लगा अर्थात् सती जी को नहीं प्रभावित कर पाया। अनन्तर हृदय में भगवान् श्रीराम जी की माया के बल को जानकर महेश महादेव जी विशेष रूप से हँसकर बोले अर्थात् हृदय में चिढ़े और बाहर से हँसकर बोले–

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीक्षा लेहू।।
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम ऐहउ मोहि पाहीं।।
जैसे जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतन बिबेक बिचारी।।

भा०- शिव जी ने कहा–हे सती! यदि तुम्हारे मन में अत्यन्त सन्देह हो गया है, तो फिर इसके समाधान के लिए जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती? तब तक मैं बटवृक्ष की छाया में बैठा हूँ, जब तक तुम परीक्षा लेकर मेरे पास आओगी। जिस प्रकार तुम्हारा बड़ा मोह–भ्रम मिट जाये विवेकपूर्वक विचार कर वही यत्न करना।

चलीं सती शिव आयसु पाई। करहिं बिचार करौं का माई।।

भा०- शिव जी से आज्ञा पाकर सती जी चलीं, वे हृदय में विचार करने लगीं, अरे माँ! मैं क्या करूँ?

इहाँ शंभु अस मन अनुमाना। दक्षसुता कहँ नहिं कल्याना।।
मोरेहु कहे न संशय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं।।
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै शाखा।।
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा।।

भा०- इधर शिव जी ने मन में इस प्रकार अनुमान किया कि, अब दक्षपुत्री सती के लिए कल्याण नहीं है। मेरे कहने से भी सती जी के संशय नहीं जा रहे हैं, अब तो विधि अर्थात् ब्रह्मा जी इनसे विपरीत हो चुके हैं और अब भलाई नहीं है। अब तो वही होगा जो सती के लिए श्रीराम ने रच कर रखा है। इसमें कौन तर्क करके नाना प्रकार के विचारों की शाखा बढ़ाये, ऐसा कहकर शिव जी श्रीरघुनाथ जी का श्रीराम नाम जपने लगे और सती जी वहाँ गयीं जहाँ सुख के धाम श्रीराम जी, लक्ष्मण जी के सहित सीता जी को ढूँढ़ रहे थे।

दो०- पुनि पुनि हृदय बिचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहिं, जेहिं आवत नरभूप।। ५२।।

भा०- पुनः–पुनः हृदय में विचार करके सीता जी का रूप धारण करके, सती जी उसी मार्ग में आगे होकर चलीं, जिस मार्ग से मनुष्यों के राजा श्रीराम चले आ रहे थे।

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदय बिशेषा।।
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा।।

भा०- लक्ष्मण जी ने देख लिया कि हृदय में विशेष भ्रम के कारण आज 'उ' अर्थात् शिव जी की 'मा' अर्थात् शक्ति तात्पर्यतः शिव जी की शक्ति सती जी ने ही सीता जी का वेश बना लिया है। श्रीलक्ष्मण जी चकित हो गये, अत्यन्त गंभीर होने के कारण वह कुछ भी नहीं बोल सक रहे थे, क्योंकि धीरबुद्धिवाले कुमार लक्ष्मण प्रभु श्रीराम का प्रभाव जानते थे।

सती कपट जानेउ सुरस्वामी। सबदरशी सब अंतरजामी।।
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य राम भगवाना।।

भा०- सब कुछ देखनेवाले और सभी के अन्तर्यामी, देवताओं के स्वामी श्रीराम ने सती जी के कपट को जान लिया। जिनके स्मरणमात्र से अज्ञान मिट जाता है, ऐसे भगवान् श्रीराम सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानते हैं, उनसे छिपा क्या है?

सती कीन्ह चह तहउँ दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ।।
निज माया बल हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी।।

भा०- वहाँ भी अर्थात् छहों ऐश्वर्यों से सम्पन्न सर्वज्ञाता भगवान् श्रीराम के समक्ष भी सती जी ने छिपाव करना चाहा, प्राकृत नारी के स्वभाव का प्रभाव तो देखिये। हृदय में अपने माया के बल की प्रशंसा करके श्रीराम जी हँसकर कोमल वाणी में बोले–

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।।
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने हाथ जोड़कर सती जी को प्रणाम किया और पिताश्री दशरथ जी के सहित अपना नाम लिया अर्थात् मैं श्रीदशरथ का पुत्र राम हूँ, यह कहकर अपना परिचय दिया। फिर, बोले–भगवान् वृषभध्वज शिव जी कहाँ हैं? आप इस निर्जन वन में अकेली किस कारण घूम रही हैं?

दो०- राम बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोच।
सती सभीत महेश पहँ, चलीं हृदय बड़ सोच।। ५३।।

भा०- श्रीराम जी के कोमल और गूढ़वचन सुनकर उनके हृदय में अत्यन्त संकोच हुआ। सती जी भयभीत होकर शिव जी के पास चल पड़ीं। उस समय उनके हृदय में बहुत बड़ा शोक था।

मैं शङ्कर कर कहा न माना। निज अग्यान राम पर आना।।
जाइ उतर अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा।।

भा०- मैंने भगवान् शङ्कर का कहा नहीं माना और भगवान् श्रीराम पर अपना अज्ञान ले आयी अर्थात् प्रभु के प्रति अपना संशय प्रकट किया। अब जाकर शिव जी को क्या उत्तर दूँगी ? यह सोचकर उनके हृदय में अत्यन्त भयंकर ताप उत्पन्न हो गया।

जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रगटि जनावा।।
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता।।

भा०- श्रीराम जी ने जान लिया कि, सती जी को दुःख हुआ है। अतः अपने प्रभाव को कुछ प्रकट करके उन्हें ज्ञान कराया। मार्ग में जाते हुए सती जी ने एक कौतुक देखा; उनके आगे श्री अर्थात् जनकनंदिनी सीता जी एवं भ्राता लक्ष्मण जी के साथ भगवान् श्रीराम थे।

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा।।
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रबीना।।
देखे शिव बिधि बिष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका।।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा।।

भा०- फिर पीछे मुड़कर देखा तो लक्ष्मण जी एवं सीता जी के साथ सुन्दर वेश धारण किये हुए श्रीराम जी को देखा। सती जी जहाँ निहारती हैं, वहीं प्रभु श्रीराम बैठे हुए उन्हें दिखते हैं। उनकी कुशलसिद्ध एवं मुनिश्रेष्ठ सेवा कर रहे होते हैं। सती जी ने असीम प्रभाव वाले एक से एक बढ़कर अनेक शङ्कर जी, अनेक ब्रह्मा जी और असंख्य विष्णु जी ही देखे। वे प्रभु श्रीराम जी के चरण की वंदना करते हुए उनकी सेवा कर रहे थे। सभी देवताओं को सती जी ने अनेक वेशों में देखा।

दो०- सती बिधात्री इंदिरा, देखीं अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तनु अनुरुप।। ५४।।

भा०- सती जी ने स्वयं असीम सतियों, असीम ब्रह्माणियों एवं अनेक उपमारहित लक्ष्मियों को देखा। जिन-जिन वेशों में ब्रह्मादि देवता थे देवियाँ भी उन्हीं-उन्हीं के अनुरूप शरीर धारण किये हुए थीं।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। शक्तिन सहित सकल सुर तेते।।
जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा।।

भा०- सती जी ने जहाँ-तहाँ जितनी मात्रा में श्रीराम जी को देखा उतनी ही मात्रा में अपने-अपने शक्तियों के साथ सभी देवताओं को भी देखा जो श्रीसीताराम जी की सेवा कर रहे थे। संसार के जो भी जड़-चेतन जीव हैं, उन सबको अनेक प्रकार से सती जी ने वहाँ देखा।

पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा।।
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे।।
सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भईं सभीता।।

भा०- अनेक वेश धारण किये हुए सभी देवता भगवान् श्रीसीताराम जी की पूजा कर रहे हैं, पर सती जी ने श्रीराम का दूसरा रूप नहीं देखा। उन्होंने बहुत से श्रीसीता जी के सहित श्रीराम के दर्शन किये, परन्तु उनके रूप अनेक नहीं थे। वही श्रीराम, वही श्री लक्ष्मण, वही भगवती श्रीसीता जी अनन्त संख्याओं में दिखे। उन्हें देखकर सती जी बहुत भयभीत हो गयीं।

हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठीं मग माहीं।।
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दक्षकुमारी।।
पुनि पुनि नाइ राम पद शीशा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीशा।।

भा०– उनके शरीर में कम्पन हो उठा शरीर की कोई सुधि नहीं थी। सती जी मार्ग में आँख मूँदकर बैठ गईं। फिर जब आँख खोलकर देखा तो दक्षपुत्री सती जी को वहाँ कुछ भी नहीं दिखा। पुनः–पुनः श्रीराम जी के चरणचिन्हों में मस्तक नवाकर सती जी वहाँ चलीं जहाँ गिरीश पर्वत पर शयन करनेवाले भगवान् शिव जी विराज रहे थे।

दो०– गईं समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात।
लीन्ह परीक्षा कवनि बिधि, कहहु सत्य सब बात।। ५५।।

भा०– सती जी शिव जी के समीप गयीं, तब महान् ईश्वर भगवान् शङ्कर ने हँसकर उनसे कुशल समाचार पूछा “कहो सती! किस विधि से परीक्षा ली, सब बातें सत्य बताओ।”

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बश शिव सन कीन्ह दुराऊ।।
कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं।।

भा०– सती जी ने श्रीराम के प्रभाव को समझकर भय के वश में होकर शिव जी से छिपाव किया और बोलीं “हे गोसाईं अर्थात् हे प्रभु, इन्द्रियों के स्वामी शिव जी! मैंने श्रीराम जी की कुछ भी परीक्षा नहीं ली, आप ही के समान उन्हें प्रणाम कर लिया।

जो तुम कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई।।
तब शङ्कर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना।।
बहुरि राममायहिं सिर नावा। प्रेरि सतिहिं जेहिं झूँठ कहावा।।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत शंभु सुजाना।।

भा०– आप ने जो कहा वह असत्य नहीं हो सकता, मेरे मन में वही अत्यन्त विश्वास है। तब शङ्कर भगवान् ने ध्यान करके देखा तो सती जी ने जो किया था उसे और उस समय प्रस्तुत श्रीराम जी के सभी चरित्रों को जान लिया अर्थात् शिव जी ध्यान की महिमा से सती जी के कुकृत्य और श्रीराम जी के सुकृत्य से परिचित हो गये। फिर शिव जी ने श्रीराम की माया को शीश नवाकर प्रणाम किया, जिस श्रीराममाया ने प्रेरित करके सती जी से झूठ बुलवा दिया। चतुर शङ्कर जी अपने हृदय में भगवान् श्रीराम की इच्छा और बलवती भवितव्यता पर विचार कर रहे हैं।

सती कीन्ह सीता कर बेषा। शिव उर भयउ बिषाद बिशेषा।।
जौ अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथ होइ अनीती।।

भा०– सती जी ने सीता जी का वेश धारण कर लिया है, यह जानकर शिव जी के हृदय में विशेष प्रकार का कष्ट हुआ। वे विचार करने लगे यदि अब सती जी से दाम्पत्यमूलक प्रेम करूँगा तो भक्ति का पथ मिट जायेगा और अनीति हो जायेगी ।

दो०– परम प्रेम नहिं जाइ तजि, किए प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेश कछु, हृदय अधिक संताप।। ५६।।

भा०– परमप्रेम अर्थात् दाम्पत्यप्रेम छोड़ा नहीं जाता और प्रेम करने से बहुत बड़ा पाप होगा। महान् ईश्वर शिव जी प्रकट करके कुछ नहीं कह रहे हैं, परन्तु उनके हृदय में बहुत बड़ा संताप है।

तब शङ्कर प्रभु पद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा।।
एहिं तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं।।

भा०- तब भगवान् शङ्कर ने प्रभु श्रीराम के चरणों में अथवा दण्डक वन में अंकित भगवान् के चरणचिह्नों में मस्तक नवाकर प्रणाम किया। श्रीराम का स्मरण करते–करते शिव जी के हृदय में इस प्रकार का विचार आया कि, सती जी के इस शरीर से मुझे भेंट अर्थात् आलिंगन स्वीकार्य नहीं होगा। शिव जी ने अपने मन में यह संकल्प कर लिया।

अस बिचारि शङ्कर मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा।।
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भगति दृढाई।।

भा०- ऐसा विचार करके धीरबुद्धिवाले भगवान् शङ्कर मन से सती जी का त्याग करके श्रीराम का स्मरण करते हुए अपने भवन अर्थात् कैलाश पर्वत पर निर्मित आश्रम की ओर चल पड़े। उनके चलते ही सुहावनी आकाशवाणी हुई, हे महेश! आप की जय हो! आप ने श्रीरामभक्ति भली प्रकार से दृढ़ कर ली है।

अस पन तुम बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना।।
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा शिवहिं समेत सकोचा।।

भा०- हे श्रीरामभक्त! हे सर्वसमर्थ! हे प्रशस्त छहों माहात्म्यों से सम्पन्न सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम के भक्त शिव जी, आप के बिना ऐसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है। आकाशवाणी सुनकर सती जी के हृदय में शोक हुआ और उन्होंने शिव जी से संकोच के सहित पूछा–

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला।।
जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।।

भा०- हे सत्य के निवासस्थान! हे प्रभो! हे दीनों पर दया करनेवाले! हे कृपालु शिव जी! बताइये, आप ने कौन–सा पण कर लिया है ? यद्यपि सती जी ने शिव जी से बहुत प्रकार से पूछा, फिर भी त्रिपुर के शत्रु शिव जी ने अपने पण के सम्बन्ध में सती जी से कुछ नहीं कहा।

दो०- सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपट मैं शंभु सन, नारि सहज जड़ अग्य।। ५७(क)।।

भा०- सती जी ने हृदय में यह अनुमान कर लिया कि, सर्वज्ञ शिव जी ने सब कुछ जान लिया है। स्वभावतः जड़ ज्ञानशून्य मैं साधारण नारी भगवान् शिव जी से कपट कर बैठी।

सो०- जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही।।५७(ख)

भा०- देखो तो प्रीति की रीति कितनी भली होती है, दूध से मिलकर जल भी दूध के समान मूल्य से बिकता है। वहीं कपट की खटाई पड़ने मात्र से जब जल दूध से अलग हो जाता है तब दूध का स्वाद भी चला जाता है।

हृदय सोच समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी।।
कृपासिंधु शिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा।।

भा०- अपनी करनी को समझ सती जी के हृदय में अत्यन्त सोच है, उनकी चिन्ता असीम है, जिसका वर्णन नही किया जा सकता। उन्होंने समझ लिया कि शिव जी अगाध कृपा के सागर हैं इसलिए उन्होंने मेरा अपराध प्रकट नहीं कहा।

शङ्कर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी।।
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।।

भा०- शङ्कर जी के रुख को देखकर सती जी ने समझ लिया कि प्रभु ने मुझे छोड़ दिया है। ऐसा समझकर वे हृदय में अकुला गईं। अपना पाप समझकर सती से कुछ कहा नहीं जा रहा है। उनका हृदय कुम्हार के आँवे कि भाँति अत्यन्त सुलग कर तप रहा है।

सतिहिं ससोच जानि बृषकेतू। कही कथा सुन्दर सुखहेतू।।
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिश्वनाथ पहुँचे कैलासा।।

भा०- वृषभध्वज शङ्कर जी ने सती जी को शोकयुक्त जानकर उनके सुख के लिए सुन्दर–सुन्दर कथायें कहीं। मार्ग में अनेक इतिहासों का वर्णन करते हुए भगवान् विश्वनाथ जी कैलाश पहुँच गये।

तहँ पुनि शंभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन।।
शङ्कर सहज स्वरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।

भा०- फिर वहाँ पर शिव जी अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके पद्मासन लगाकर वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। भगवान् शिव ने सहजस्वरूप अर्थात् सेवक–सेव्य भाव का चिन्तन किया और उन्हें अखण्ड–अपार समाधि लग गयी। अथवा, शिव जी ने श्रीराम जी के ही ऐश्वर्यमय सहजस्वरूप का चिन्तन किया जिससे वे असम्प्रज्ञात समाधि में लीन हो गये।

दो०- सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मन माहिं।
मरम न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं।।५८।।

भा०- शिव जी के समाधि में चले जाने के पश्चात् सती जी कैलाश में निवास कर रही हैं। उनके मन में अत्यन्त शोक है, कोई भी कुछ मर्म नहीं जान रहा है, सती जी के दिन युग के समान बीत रहे हैं।

नित नव सोच सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा।।
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचन मृषा करि जाना।।
सो फल मोहिं बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा।।
अब बिधि अस बूझिय नहिं तोही। शङ्कर बिमुख जियावसि मोही।।

भा०- सती जी के हृदय में शोक का भार नित्य नया होता जा रहा है। वे मन ही मन विचार कर रही हैं कि मैं इस दुःख–सागर से पार कब जाऊँगी? मैंने जो रघुपति श्रीराम जी का अपमान किया और अपने पति शङ्कर जी के वचन को झूठ जाना, विधाता ने मुझे वही फल दिया है, जो कुछ उचित था वही किया है, परन्तु हे विधाता! तुम्हें अब ऐसा नहीं करना चाहिए जो कि, तुम शिव जी से विमुख करके भी मुझे जिला रहे हो।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महँ रामहिं सुमिरि सयानी।।
जौ प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जस गावा।।
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी।।
जौ मोरे शिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रत एहू।।

भा०- सती जी से कुछ कहा नहीं जाता है हृदय में अत्यन्त ग्लानि है। चतुर सती जी ने मन में श्रीराम का स्मरण किया और बोलीं– ''यदि प्रभु श्रीराम दीनों के दयालु और आर्ति को हरण करनेवाले कहे जाते हैं, जिनका वेदों ने यश गाया है तो मैं उन्हीं प्रभु से हाथ जोड़कर विनय कर रही हूँ कि, यह मेरा शरीर शीघ्र ही छूट जाये। यदि मन में शिव जी के चरण में मेरा स्नेह है तो मन, कर्म तथा वाणी का यही सत्य व्रत है।''

दो०- तौ समदरसी सुनिय प्रभु, करहु सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जेहिं बिनहिं श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ।। ५९।।

भा०- तो हे समदर्शी प्रभु सुनिये! आप वही उपाय शीघ्र कीजिये जिससे बिना श्रम के मेरी मृत्यु हो जाये और दुस्सह विपत्ति चली जाये ।

एहि बिधि दुखित प्रजेशकुमारी। अकथनीय दारुन दुख भारी।।
बीते संबत सहस सतासी। तजी समाधि शंभु अबिनासी।।

भा०- इस प्रकार प्रजापति दक्ष की पुत्री सती जी शिव जी की समाधि की अवधि तक दु:खी रहीं। उनका विशाल दारुण दु:ख कहने योग्य नहीं है। सत्तासी हजार वर्ष बीतने के पश्चात् नाशरहित शिव जी ने अपनी समाधि छोड़ी।

राम नाम शिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे।।
जाइ शंभु पद बंदन कीन्हा। सनमुख शङ्कर आसन दीन्हा।।

भा०- शिव जी श्रीराम नाम का स्मरण करने लगे। सती जी जान गयीं जगत् के पति शिव जी अब समाधि से जाग गये हैं, उन्होंने समीप जाकर शिव जी के चरणों का वन्दन किया और शङ्कर जी ने उन्हें अपने सन्मुख आसन दिया।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दक्ष प्रजेश भए तेहि काला।।
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दक्षहिं कीन्ह प्रजापति नायक।।

भा०- शिव जी, भगवान् श्रीराम की रसमयी कथा कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति बने। ब्रह्मा जी ने उन्हें सब लायक देखा तब उन्होंने दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया ।

बड़ अधिकार दक्ष जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा।।
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।

भा०- जब दक्ष बड़ा अधिकार पाये तब उनके हृदय में अभिमान आ गया, क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा नहीं जन्मा, जिसे प्रभुता पाकर मद नहीं हुआ हो।

दो०- दक्ष लिए मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग।। ६०।।

भा०- दक्ष जी ने सभी मुनियों को बुलाया और बहुत बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ में भाग पाते हैं, उन सभी देवों को दक्ष ने आदरपूर्वक निमंत्रित किया।

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन समेत चले सुर सर्बा।।
बिष्णु बिरंचि महेश बिहाई। चले सकल सुर यान बनाई।।

भा०- किन्नर, नाग, सिद्ध, गंधर्व और सभी देवता अपनी-अपनी बहुओं के सहित दक्ष के यज्ञ के लिए चल पड़े ब्रह्मा जी, विष्णु जी और शिव जी को छोड़कर सभी देवता विमानों को व्यवस्थित करके दक्ष के यज्ञ में प्रस्थान किये।

सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना।।
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना। सुनत स्रवन छूटहिं मुनि ध्याना।।

भा०- सती जी ने देखा आकाश में अनेक प्रकार के विमान चले जा रहे हैं, देवताओं की सुन्दरियाँ इतना सुन्दर गान कर रही हैं कि, जिसे कान से सुनकर मुनियों का भी ध्यान छूट रहा है।

पूँछेउ तब शिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी।।
जौ महेश मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं।।

भा०- जब सती जी ने पूछा तब शिव जी ने दक्ष के यज्ञ की बात कही। पिता का यज्ञ सुनकर सती जी कुछ प्रसन्न हुईं। वे मन में सोचने लगीं, यदि महेश्वर शिव जी मुझे आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी बहाने पिताश्री के यहाँ जाकर रह लूँ।

पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी।।
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी।।

भा०- पति के परित्याग का हृदय में बहुत बड़ा दुःख है, परन्तु अपना अपराध विचार कर सती जी कुछ नहीं कहतीं। सती जी भय, संकोच और प्रेम-रस से सानी हुई मनोहर वाणी बोलीं ।

दो०- पिता भवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ।
तौं मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ।।६१।।

भा०- हे कृपा के घर शिव जी! मेरे पिता के भवन में सुन्दर उत्सव हो रहा है, यदि प्रभु की आज्ञा हो तो मैं उसे आदरपूर्वक देखने जाऊँ।

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा।।
दक्ष सकल निज सुता बोलाई। हमरे बैर तुमहुँ बिसराई।।

भा०- शिव जी बोले-हे सती! तुमने बहुत अच्छा कहा। यह प्रस्ताव मेरे भी मन को बहुत अच्छा लगा, परन्तु यहाँ अनुचित यह है कि, दक्ष जी ने निमंत्रण नहीं भेजा है। दक्ष ने अपनी सभी पुत्रियों को बुला लिया, किन्तु हमारे वैर के कारण वे तुम्हें भी भूल गये।

ब्रह्मसभा हम सन दुख माना। तेहि ते अजहुँ करहिं अपमाना।।
जौ बिनु बोले जाहु भवानी। रहइ न शील सनेह न कानी।।
जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिनु बोलेहुँ न सँदेहा।।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गए कल्यान न होई।।

भा०- ब्रह्मा जी की सभा में दक्ष ने मुझसे दुःख मान लिया था। उस कारण वे आज भी अपमान करते रहते हैं। हे भवानी! यदि बिना बुलाये जाती हो तो शील, स्नेह और प्रतिष्ठापूर्ण संकोच कुछ भी नहीं रह जायेगा। यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरुजन के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं है, फिर भी यदि कोई विरोध मान रहा हो, तो वहाँ जाने से कल्याण नहीं होता।

भाँति अनेक शंभु समुझावा। भावी बश न ग्यान उर आवा।।
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाए। नहिं भलि बात हमारे भाए।।

भा०- शिव जी ने अनेक प्रकार से सती जी को समझाया, परन्तु भवितव्यता के कारण उनके हृदय में यह ज्ञान नहीं आया। शिव जी ने कहा–यदि तुम बिना बुलाये जा रही हो तो यह बात हमें किंचित् भी नहीं भा रही है।

दो०- कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दक्षकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि।। ६२।।

भा०- शिव जी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, दक्षपुत्री सती जी अनेक यत्नों के करने पर भी नहीं रुकना चाह रही थीं, तब साथ में मुख्य गणों को दिया और त्रिपुर दैत्य के शत्रु शिव जी ने सती जी को विदा कर दिया।

पिता भवन जब गईं भवानी। दक्ष त्रास काहु न सनमानी।।
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिली बहुत मुसुकाता।।

भा०- जब सती जी पिता दक्ष के भवन में गयीं तब दक्ष के त्रास के कारण किसी ने भी उनका सम्मान नहीं किया, भले ही सती जी की माता प्रसूति जी उनसे आदरपूर्वक मिलीं। उनकी पन्द्रहों बहनें बहुत मुस्कुराते हुए उनसे मिलीं।

दक्ष न कछु पूछी कुशलाता। सतिहिं बिलोकि जरे सब गाता।।
सती जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख शंभु कर भागा।।

भा०- दक्ष ने कोई कुशल समाचार नहीं पूछा और सती जी को देखकर उनके सभी अंग क्रोध से जल–भुन उठे। सती जी ने जाकर दक्ष का समस्त यज्ञ देखा वहाँ कहीं भी शिव जी का भाग नहीं देखा।

तब चित चढ़ेउ जो शङ्कर कहेऊ। प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ।।
पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा।।

भा०- तब वही पक्ष सती जी के चित्त में चढ़ गया जो शिव जी ने कहा था। अपने प्रभु का अपमान समझकर सती जी का हृदय जल गया। पिछले दुःख इस प्रकार हृदय में नहीं व्याप्त हुए थे, जिस प्रकार यह परिताप हृदय में उपस्थित हुआ।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब ते कठिन जाति अपमाना।।
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा।।

भा०- यद्यपि संसार में अनेक प्रकार के भयंकर दुःख हैं, पर जाति द्वारा किया हुआ अपमान सबसे कठिन होता है। यह समझकर सती जी को अत्यन्त क्रोध हुआ। माता प्रसूति ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया।

दो०- शिव अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोलीं बचन सक्रोध।।६३।।

भा०- शिव जी का अपमान सहा नहीं जा रहा था, हृदय में प्रबोध अर्थात् ज्ञान नहीं हो रहा था। हठपूर्वक सम्पूर्ण सभा को रोककर सती जी क्रोध पूर्वक बोलीं–

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन शङ्कर निंदा।।
सो फल तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू।।

भा०- हे सभासदों, सम्पूर्ण श्रेष्ठ मुनियों! सुनो, जिन लोगों ने शिव जी की निन्दा कही या सुनी है, सब लोग उसका फल प्राप्त करेंगे और मेरे पिता भी भली–भाँति पछतायेंगे।

संत शंभु श्रीपति अपबादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा।।
काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूँदि न त चलिय पराई।।

भा०- सन्तों, शिव जी और भगवान् श्रीपति अर्थात् भगवान् श्रीराम जी का अपबाद अर्थात् अपमान जहाँ सुना जाये वहाँ ऐसी मर्यादा है कि, यदि वश चले तो उस निन्दक की जीभ काट लेनी चाहिए नहीं तो कान मूँदकर उस स्थल से भाग चलना चाहिए।

जगदातमा महेश पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।।
पिता मंदमति निंदत तेही। दक्ष शुक्र संभव यह देही।।

भा०- त्रिपुर के शत्रु महेश भगवान् शिव समष्टि रूप से सारे संसार की आत्मा हैं। वे सारे संसार के पिता और सब के हितकारी भी हैं। मेरे मंदमति पिता उनकी भी निन्दा करते हैं। यह शरीर भी उसी शिव निन्दक दक्ष के शुक्र से उत्पन्न हुआ है ।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू।।
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा।।

भा०- हृदय में चन्द्रशेखर वृषभध्वज शिव जी को धारण करके, इसी कारण से तुरन्त मैं इस शरीर को छोड़ दूँगी। इतना कहकर सती जी ने योगाग्नि से शरीर को भस्म कर दिया। सम्पूर्ण यज्ञस्थल में हाहाकार मच गया।

दो०- सती मरन सुनि शंभु गन, लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीश।।६४।।

भा०- सती जी का मरण देखकर शिव जी के गण यज्ञ को नष्ट करने लगे, यज्ञ का विध्वंस होता देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगु ने उसकी रक्षा कर ली।

समाचार सब शङ्कर पाए। बीरभद्र करि कोप पठाए।।
जग्य बिधंस जाइ तिन कीन्हा। सकल सुरन बिधिवत फल दीन्हा।।

भा०- जब शङ्कर जी ने सब समाचार पाया तब उन्होंने क्रोध करके अपने प्रमुख गण वीरभद्र को भेजा। उन्होंने जाकर यज्ञ का विध्वंस कर दिया और सभी देवताओं को विधिवत् फल दिया।

भइ जगबिदित दक्ष गति सोई। जसि कछु शंभु बिमुख कै होई।।
यह इतिहास सकल जग जाना। ताते मैं संक्षेप बखाना।।

भा०- संसार में विदित है कि दक्ष की वही गति हुई जो कुछ शिवविमुख की होनी चाहिए। इस इतिहास को सारा संसार जानता है, इसलिए मैंने इसे संक्षेप में ही कहा है।

सती मरत हरि सन बर माँगा। जनम जनम शिव पद अनुरागा।।
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई।।

भा०- सती जी ने मरते समय श्रीहरि से जन्म–जन्म में शिव जी के चरण में अनुरागरूप वर माँगा था। इसी कारण वे पर्वतराज हिमाचल के घर में जाकर पार्वती जी अर्थात् पर्वत की पुत्री का शरीर पाकर जन्मीं।

जब ते उमा शैल गृह जाई। सकल सिद्धि संपति तहँ छाई।।
जहँ तहँ मुनिन सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे।।

भा०- जब से पार्वती जी हिमाचल के घर में जन्म ली हैं, तभी से वहाँ सम्पूर्ण सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयी हैं। जहाँ–तहाँ मुनियों ने सुन्दर आश्रम बनाये और हिमाचल पर्वत ने उन सबको उचित निवास दिया।

दो०- सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुन्दर शैल पर, मनि आकर बहु भाँति।। ६५।।

भा०- नाना प्रकार के नवीन वृक्षगण निरन्तर पुष्पों और फलों से लदे रहने लगे। सुन्दर हिमालय पर्वत पर अनेक प्रकार के मणियों की खानें प्रकट हो गयीं।

सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।।
सहज बैर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा।।
सोह शैल गिरिजा गृह आए। जिमि जन रामभगति के पाए।।
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जस जासू।।

भा०- जब से पार्वती जी ने जन्म लिया है, हिमालय की सभी नदियाँ पवित्र जल बह रही हैं। पशु, पक्षी और भौंरे सभी सुखी रह रहे हैं, जीवों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया है और सभीलोग पर्वत पर अनुरागपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं। पार्वती जी के आने से हिमाचल पर्वत उसी प्रकार शोभित हो रहा है, जैसे श्रीवैष्णवजन श्रीरामभक्ति पाकर शोभित होते हैं। जिस हिमाचल का यश ब्रह्मादि गा रहे हैं, उसके घर में नित्य नवीन मांगलिक उत्सव हो रहे हैं।

नारद समाचार सब पाए। कौतुक हिमगिरि गेह सिधाए।।
शैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा।।

भा०- सब समाचार नारद जी ने पा लिया और कौतूहलवश हिमाचल पर्वत के घर पधारे। पर्वतराज हिमाचल ने नारद जी का बहुत आदर किया। उनके चरण–पखार कर उन्हें श्रेष्ठ आसन दिया।

नारि सहित मुनि पद सिर नावा। चरन सलिल सब भवन सिंचावा।।
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना।।

भा०- हिमाचलराज ने अपनी पत्नी मैना सहित देवर्षि नारद के चरणों में शीश नवाया और नारद जी के चरण का जल सम्पूर्ण घर में छिड़ककर पर्वत ने अपने सौभाग्य का बहुत वर्णन किया और पुत्री पार्वती जी को बुलाकर नारद मुनि के चरणों में डाल दिया।

दो०- त्रिकालग्य सर्बग्य तुम, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय बिचारि।।६६।।

भा०- हिमाचलराज बोले, हे मुनिश्रेष्ठ नारद! आप भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल को जानते हैं। आप सर्वज्ञ हैं, आपकी जल, थल, आकाश, मर्त्यलोक, देवलोक और दानवलोक आदि सभी चौदहों भुवनों में गति है अर्थात् आप सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं। अतएव, हृदय में विचार करके मेरी पुत्री के दोष और गुण कहिये।

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारी सकल गुन खानी।।
सुंदरि सहज सुशील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी।।

भा०- महर्षि नारद जी ने हँसकर गोपनीय और कोमल वाणी में कहा, ''तुम्हारी पुत्री सभी गुणों की खान, सुन्दर स्वभाव और चरित्रवाली तथा चतुर है। इसके उमा, अम्बिका, भवानी इत्यादि प्रसिद्ध नाम हैं। इसका नाम उमा है, क्योंकि यह 'उ' अर्थात् शिव जी की 'मा' अर्थात् शक्ति है। यह सारे संसार की कृपालु माता है, ये भव अर्थात् शिव जी की स्त्री अर्थात् अनादिकालीन धर्मपत्नी हैं। (उः शिवस्य मा शक्तिः उमा। अनुकम्पिता अम्बा अम्बिका। भवस्य शिवस्य स्त्री भवानी।)

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहिं पियारी।।
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि ते जस पैहैं पितु माता।।

भा०- यह प्रथम अवस्था प्राप्त तुम्हारी बेटी सभी लक्षणों से सम्पन्न है। ये निरंतर अपने प्रियतम पति को प्रिय होगी। इसका सौभाग्य सदैव अचल रहेगा। इसके कारण इसके पिता-माता यश पायेंगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।।
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा।।

भा०- यह कन्या सम्पूर्ण जगत् में पूज्य होगी। इसकी सेवा से सेवक को कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। संसार में स्त्रियाँ इसके नाम का स्मरण करके पातिव्रत रूप खड्गधारा पर चढ़कर कुशलता से पातिव्रत-धर्म का निर्वाह कर लेंगी।

शैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी।।
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना।।

दो०- जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख।। ६७।।

भा०- हे पर्वतराज! तुम्हारी पुत्री सुलक्षणा है। अब उसे सुनो, जो इसके दो-चार अवगुण हैं। गुणों से रहित, मान से शून्य, माता और पिता से हीन, उदासीन अर्थात् सभी से तटस्थ, सम्पूर्ण संशयों से युक्त, क्षीण अर्थात् निराकार प्रकृति का, योगी, जटाधारी, कामनाओं से रहित मनवाला, वस्त्रहीन, मंगलरहित वेशवाला इस प्रकार बारह अवगुणों से सम्पन्न वर इसे मिलेगा। इसको प्राप्त करके वे अवगुण चौबीस होंगे। इसलिए दो-चार अर्थात् चौबीस अवगुणों से युक्त वर इसे प्राप्त होगा। इसके हाथ में इसी प्रकार की रेखा पड़ी है।

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहिं उमा हरषानी।।
नारदहूँ यह भेद न जाना। दशा एक समुझब बिलगाना।।

भा०- मुनि की वाणी को सुनकर और हृदय में उसे सत्य जानकर हिमाचलराज और मैना को दुःख हुआ तथा पार्वती जी प्रसन्न हो गयीं। नारद जी भी यह अन्तर नहीं समझ पाये, क्योंकि पर्वतदम्पति और पार्वती जी की दशा तो समान थी, परन्तु दोनों ओर का समझना अलग-अलग था अर्थात् पर्वतदम्पति इन बारह विशेषताओं को शिव जी के दुर्गुण के रूप में देखकर रोमांचित थे और पार्वती जी इन्हें शिव जी के उच्च गुणों के रूप में देखकर पुलकित थीं।

विशेष : (१) पर्वत दम्पत्ति की दृष्टि में "अगुण" शब्द का अर्थ था सभी सद्गुणों से रहित और अनुचित गुणों से सम्पन्न, परन्तु पार्वती जी "अगुण" शब्द से शिवजी को प्राकृत सत्व-रजस् और तमस् से रहित निर्गुण ब्रह्म समझ रही थीं। (२) हिमालय और मैना "अमान" शब्द से पार्वती के भावी वर को सम्मान रहित समझाने लगे थे इधर पार्वती जी ने "मान" शब्द का अहंकार अर्थ समझकर अपने पति को अहंकार रहित समझा। एक ओर "मान" शब्द का पूजा और दूसरी ओर अहंकार अर्थ लिया गया। (३) (४) "मातु पितुहीना" हिमालय दम्पत्ति ने माता और पिता से हीनता का अर्थ अज्ञात कुल समझ लिया। इधर पार्वती जी ने इस विशेषण से अपने पति में परमेश्वरता का भाव लिया, क्योंकि परमेश्वर ही समस्त प्राणिमात्र के माता पिता हैं "त्वमेव माता च पिता त्वमेव"। (५) "उदासीन" हिमालय-मैना की दृष्टि में उदासीनता, गृहस्थाश्रम का त्याग और भिक्षुचर्या थी इससे वे दुःखी हुये, परन्तु पार्वती "उदासीनता" शब्द का सभी द्वन्द्वों में समभाव अर्थ समझकर सुखी हुईं। (६) "सब संशय" हिमालय दम्पत्ति ने पार्वती के भावी वर में सभी के संशयों का स्थान समझकर एक संदिग्ध व्यक्तित्व माना, परंतु पार्वती जी ने ब्रह्मतत्व को दुर्बोध समझकर, समस्त प्राणियों के सन्देहास्पद मानकर, अपने पति को

जिज्ञासा का विषय समझा। (७) "छीना" हिमालय और मैना ने 'छीन' शब्द से पार्वती के भावी वर में दरिद्रता और अभावों की कल्पना कर ली। परन्तु पार्वती जी ने अपने वर में सभी दु:खों के अभाव और निराकारता की कल्पना कर ली। (८) "जोगी" पर्वत दम्पत्ति ने योगी शब्द से पार्वती के वर में गृहत्याग की कल्पना कर ली और पार्वती जी ने समाधिनिष्ठता की भावना की। (९) "जटिल" जटिल से पर्वतदम्पत्ति ने अपने जवाई में असभ्यता की कल्पना की पर पार्वती जी ने अपने वर में साक्षात् शिव के दर्शन किये। (१०) "अकाम" अकाम शब्द से पर्वतदम्पत्ति ने अपने जामाता में क्लीबता की आशंका कर ली। उधर पार्वती जी ने अपने वर में प्राकृत कामनाओं का अभाव समझकर सुख का अनुभव किया। (११) "नगन" नग्न शब्द से जहाँ हिमालय मैना ने पार्वती के पति में मर्यादा शून्यता का बोध किया, वहीं पार्वती जी ने "नग्न" शब्द से दिगम्बर शिवजी की प्राप्ति का निश्चय कर के हर्ष प्राप्त किया। (१२) "अमंगल वेष" अमंगल वेष सुनकर हिमालय और मैना को उनके भावी जामाता में वेष की भयंकरता तथा सभी शुभों के अभावों का बोध करके दु:ख हुआ, वहीं पार्वती जी को अपने वर में वेष निरपेक्ष्य, परम सन्त, परम साधु सदाशिव की भावना करके शिवजी की प्राप्ति का दृढ़ निश्चय हो गया और गिरिजा बहुत प्रसन्न हुईं। दोनों ओर के समझने भर का फेर था।

सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक शरीर भरे जल नैना।।

भा०- सम्पूर्ण सखियाँ, पार्वती जी, हिमाचलराज और मैना माता के शरीर पुलकित हो रहे थे और इन सबके आँखों में अश्रुजल भरे थे।

होइ न मृषा देवरिषि भाखा। उमा सो बचन हृदय धरि राखा।।
उपजेउ शिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू।।
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखि उछँग बैठी पुनि जाई।।

भा०- देवर्षि नारद जी की वाणी झूठी नहीं हो सकती, अत: पार्वती जी ने उस अर्थात् वर प्राप्ति की भविष्यवाणी वाले वचन को अपने हृदय में धारण कर रखा। देवर्षि द्वारा कही हुई बारहों विशेषताओं का गूढ़ार्थ समझकर उन्हें शिव जी में समाहित जानकर पार्वती जी के मन में शिव जी के चरणकमलों के प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया। शिव जी का मिलना कठिन है, ऐसा समझकर मन में संदेह भी हुआ। कुअवसर जानकर शिव विषयक प्रीति को मन में छिपाकर फिर पार्वती जी सखी की गोद में जाकर बैठ गयीं।

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी।।
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ।।

भा०- देवर्षि की वाणी झूठी नहीं हो सकती, ऐसा निश्चय करके हिमाचलराज, मैना माता और चतुर सखियाँ शोक कर रही हैं कि, पार्वती के लिए इस प्रकार का वर उचित नहीं होगा। हृदय में धैर्य धारण करके पर्वतराज हिमाचल कहते हैं, हे स्वामी! कहिये इस समस्या के समाधान के लिए कौन सा उपाय किया जाय?

दो०- कह मुनीश हिमवंत सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार।।६८।।

भा०- मुनियों के ईश्वर नारद जी बोले, हे हिमाचलराज! सुनो, विधाता ने जो मस्तक पर लिख दिया है, उसे देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकता अर्थात् पार्वती जी को तो यही वर मिलेगा।

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौ दैव सहाई।।
जस बर मैं बरनेउँ तुम पाहीं। मिलिहि उमहिं तस संशय नाहीं।।

भा०- फिर भी मैं एक उपाय कहता हूँ, यदि ईश्वर सहायता करें तो वह सफल हो सकता है। तुम्हारे पास जैसे वर का मैंने वर्णन किया है, उसी प्रकार का वर पार्वती जी को मिलेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब शिव पहँ मैं अनुमाने।।
जौ बिबाह शङ्कर सन होई। दोषउ गुन सम कह सब कोई।।

भा०- मैंने वर के जिन–जिन दोषों की चर्चा की है, वे सभी दोष शिव जी के पास हैं, ऐसा मैंने अनुमान–प्रमाण से निश्चय कर लिया है। यदि पार्वती जी का विवाह शङ्कर जी के साथ हो जाये, तो दोष भी गुण के समान हो जायेंगे, ऐसा सभी कहते हैं।

जौ अहि सेज शयन हरि करहीं। बुध कछु तिन कर दोष न धरहीं।।
भानु कृशानु सर्ब रस खाहीं। तिन कहँ मंद कहत कोउ नाहीं।।
शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।।
समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं।।

भा०- जो भगवान् विष्णु जी, सर्पराज शेष की शैया पर शयन करते हैं, तो भी विद्वान् लोग उनका किसी प्रकार का दोष अपने मन में धारण नहीं करते। सूर्यनारायण और अग्नि सभी रसों का भक्षण करते हैं, अर्थात् सर्वभक्षी हैं, फिर भी उन दोनों को कोई भी मंद अर्थात् निकृष्ट नहीं कहता। गंगा जी शुभ और अशुभ सभी प्रकार के जल को अपनी तरंगों में धारण करती हैं, फिर भी देवनदी गंगा जी को कोई भी अपवित्र नहीं कहता, क्योंकि विष्णु जी, सूर्य, अग्नि और गंगा जी के समान समर्थ के लिए कुछ भी दोषावह नहीं होता, इनको पाकर तो दोष भी गुण हो जाता है। सौभाग्य से पूर्वोक्त चारों समर्थ, शिव जी में विराजते हैं। विष्णु जी हृदय में, सूर्य और चन्द्र नेत्रों में, तथा गंगा जी सिर पर। अतः शिव जी चार–चार समर्थों के आश्रय होने के कारण परमसमर्थ हैं।

दो०- जौ अस हिसिषा करहिं नर, जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महँ, जीव कि ईश समान।। ६९।।

भा०- जो जड़ स्वभाव वाले, विवेक के अहंकार से युक्त लोग अस हिसिषा अर्थात् असहिष्णुता करते हैं या करेंगे तो वे एक–एक कल्पपर्यन्त के लिए नर्क में पड़ते हैं तथा पड़े रहेंगे। क्या कभी जीव ईश्वर के समान हो सकता है?

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना।।
सुरसरि मिले सो पावन जैसे। ईश अनीशहि अंतर तैसे।।

भा०- गंगा जी के जल से बनायी हुई जानकर भी उस वारुणी अर्थात् मदिरा को सन्त कभी पान नहीं करते, परन्तु वही वारुणी गंगा जी में मिलकर जिस प्रकार पावन हो जाती है, ईश्वर और अनीश्वर में उसी प्रकार का अन्तर है अर्थात् असमर्थ अच्छी वस्तु को भी बुरी बना देता है और समर्थ बुरी वस्तु को भी अच्छा बना देता है, जैसे मदिरा अपने से मिली हुई गंगाजल को भी मदिरा बना कर अपवित्र बना देती है और गंगा जी स्वयं में मिली हुई वारुणी को भी पवित्र कर देती है, क्योंकि गंगा जी समर्थ हैं और वारुणी असमर्थ है।

शंभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाह सब बिधि कल्याना।।
दुराराध्य पै अहहिं महेशू। आशुतोष पुनि किए कलेशू।।

भा०- शङ्कर जी स्वभाव से समर्थ तथा भगवान् अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः प्रशस्त भगों अर्थात् माहात्म्यों से युक्त हैं, इसलिए यदि शिव जी के साथ पार्वती जी का विवाह हो जाये तो इसमें सब

प्रकार का कल्याण ही है। यद्यपि शिव जी दुराराध्य हैं, परन्तु क्लेश करने पर वे आशुतोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

विशेष- मानसकाव्य में श्रीराम और शिव जी इन दोनों को भगवान् कहा है, जैसे श्रीराम के लिए- ***सोइ सरबग्य राम भगवाना।*** मानस, १.५३.४ शिव जी के लिए- ***शंभु सहज समरथ भगवाना।*** मानस, १.७०.३ इन दोनों में अन्तर यही है कि ऐश्वर्यादि शिव जी में प्रशस्त रूप में रहते हैं और श्रीराम में प्रशस्त और नित्ययोग इन दोनों रूप में क्योंकि मतुप प्रत्यय प्रशंसा तथा नित्ययोग में भी होता है। श्रीराम की भगवत्ता नित्य है, वह उनसे अलग नहीं हो सकती और शिव जी की भगवत्ता प्रशंसामूलक है वह कदाचित् उनसे अलग भी हो सकती है।

जौ तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ शिव तजि दूसर नाहीं।।

भा०- यदि तुम्हारी पुत्री तप करे तो त्रिपुर के शत्रु शिव जी भवितव्यता को भी मिटा सकेंगे, क्योंकि वे देव नही महादेव हैं। यद्यपि संसार में अनेक वर हैं, परन्तु इस पर्वतपुत्री के लिए शिव जी को छोड़कर दूसरा नहीं है।

बर दायक प्रनतारित भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन।।
इच्छित फल बिनु शिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे।।

भा०- वर देनेवाले, चरणों में नत हुए भक्तों की आर्ति को दूर करनेवाले, कृपा के सागर और सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले ऐसे शिव जी की आराधना किये बिना करोड़ों योगजपों को करने पर भी इच्छानुसार मनोवांछित फल नहीं प्राप्त होता।

दो०- अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहिं दीन्ह अशीश।
होइहि यहि कल्यान अब, संशय तजहु गिरीश।। ७०।।

भा०- ऐसा कहकर श्रीहरि भगवान् श्रीराम का स्मरण करके नारद जी ने पार्वती जी को आशीर्वाद दिया और हिमाचलराज से बोले, हे पर्वतराज! अब इसका कल्याण होगा तुम संशय छोड़ दो।

* मासपारायण, दूसरा विश्राम *

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ।।

भा०- ऐसा कहकर देवर्षि नारद जी ब्रह्मलोक चले गये। हे भरद्वाज! अगला चरित्र जैसा हुआ वह अब सुनो।

पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना।।
जौ घर बर कुल होइ अनूपा। करिय बिबाह सुता अनुरूपा।।
न त कन्या बरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रानपियारी।।
जौ न मिलिहि बर गिरिजहिं जोगू। गिरि जड़ सहज कहहिं सब लोगू।।
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू।।

भा०- अपने पति हिमाचलराज को अकेले में पाकर, पर्वतों की महारानी मैना माता ने कहा, हे स्वामी! मैंने देवर्षि नारद जी के वचन नहीं समझे अर्थात् पार्वती का विवाह शिव जी से ही होगा, ये मेरी समझ में नहीं आया। यदि घर, वर और कुल ये तीनों अनुपम तथा पुत्री के अनुरूप हों तभी विवाह करना चाहिए, नहीं तो भले ही कन्या कुआँरी रह जाये पर घर, वर, कुल की अनुरूपता के बिना विवाह नहीं करना चाहिए। हे पतिदेव! उमा

मुझे मेरे प्राणों के समान प्रिय है। यदि पार्वती के योग्य वर नहीं मिला तो सब लोग आप जैसे पर्वतराज को स्वभावतः जड़ ही कहेंगे अर्थात् आपकी देवात्मा, लोगों के सामने प्रमाणित नहीं हो सकेगी। हे पतिदेव! उस पक्ष पर विचार करके पार्वती का वैसा ही विवाह कीजियेगा जिससे फिर हृदय में जलन न हो।

अस कहि परी चरन धरि शीशा। बोले सहित सनेह गिरीशा।।
बरु पावक प्रगटै शशि माहीं। नारद बचन अन्यथा नाहीं।।

भा०- मैना ऐसा कहकर हिमाचल के चरणों में मस्तक रखकर दण्ड-प्रणाम की मुद्रा में पृथ्वी पर पड़ गयी। पर्वतराज प्रेम सहित बोले, भले ही चन्द्रमा में अग्नि प्रकट हो जाये फिर भी नारद जी का वचन अन्यथा अर्थात् सत्य से भिन्न प्रकार का नहीं हो सकता।

दो०- प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहिं जेहिं निरमयउ, सोइ करिहैं कल्यान।।७१।।

भा०- हे प्रिये! सभी शोक छोड़ दीजिये, श्रीभगवान् अर्थात् सीता जी के सहित षड़ैश्वर्य सम्पन्न प्रभु श्रीराम का स्मरण कीजिये, जिन्होंने पार्वती को निर्मित किया है, वे ही भगवान् श्रीराम उसका कल्याण करेंगे।

अब जो तुमहिं सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावन देहू।।
करै सो तप जेहिं मिलहिं महेशू। आन उपाय न मिटिहि कलेशू।।

भा०- अब यदि आपको पुत्री पार्वती से प्रेम है, तो उसे जाकर यही शिक्षा दीजिये कि, वह तप करे जिससे महेश्वर शङ्कर भगवान् पार्वती को मिल जायें। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से पार्वती का कष्ट नहीं मिटेगा।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतु।।
अस बिचारि तुम तजहु अशंका। सबहि भाँति शङ्कर अकलंका।।

भा०- नारद जी के वचन सगर्भ अर्थात् गोपनीय मर्मों से युक्त और सहेतु यानी विशेष कारण से युक्त हैं। वृषभध्वज शिव जी सभी सद्गुणों के समुद्र और सुन्दर हैं, ऐसा विचार करके आप सभी आशंकाओं को छोड़ दीजिये। वे शङ्कर जी सभी प्रकार से निष्कलंक हैं, क्योंकि नारद जी ने जिन-जिन अवगुणों की चर्चा की वे सब शिव जी के पास जाकर सद्गुण बन चुके हैं। जैसे अगुण अर्थात् प्राकृत, सत्त्व, रजस और तमस गुणों से रहित, अमान अर्थात् सम्मान की इच्छा नही करने वाले, मातु-पितु हीन अर्थात् स्वयं सबके माता-पिता, उदासीन अर्थात् सभी शत्रुओं और मित्रों की संकीर्णताओं से दूर, सब संशय अर्थात् सभी संशय जहाँ समाप्त हो जाते हैं, क्षीण अर्थात् पाप को क्षीण करनेवाले, योगी प्रपत्तियोग से युक्त, जटिल अर्थात् भगवान् की चरणोदक रूप गंगा जी के विश्राम करने के लिए जटा धारण करनेवाले, अकाम मन अर्थात् अपने मन में श्रीराम को धारण करने से सांसारिक कामनाओं से रहित, नग्न अर्थात् सर्वांग पवित्र होने के कारण सांसारिक आवरण से रहित, अमंगल वेश अर्थात् मंगल भवन श्रीराम को हृदय में धारण करने के कारण बाह्य आडम्बर से दूर, ऐसे शिव जी सब प्रकार से निष्कलंक हैं।

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं।।
उमहिं बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी।।

भा०- इस प्रकार अपने पति गिरिराज हिमाचल के वचन सुनकर, मन में प्रसन्न होकर, माता मैना तुरन्त उठकर गिरिराज पुत्री पार्वती जी के पास चली गयीं। उमा जी को निहारकर आँखों में आँसू भर कर मैना माता ने प्रेमपूर्वक पुत्री को गोद में बैठा लिया।

बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई।।
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी।।

भा०– मैंना बार–बार पार्वती को हृदय से लगा रहीं हैं। उनका कंठ गद्‌गद होकर भर आता है, उनसे कुछ भी कहा नहीं जा रहा है। जगत् की माता, सब कुछ जाननेवाली, भव अर्थात् शङ्कर जी की नित्य पत्नी पार्वती जी माता मैना को सुख देनेवाली कोमल वाणी में बोलीं–

दो०– सुनहु मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुन्दर गौर सुबिप्रवर, अस उपदेशेउ मोहि।।७२।।

भा०– हे माता जी! मैंने ऐसा सपना देखा है, वह आपको सुना रही हूँ। एक सुन्दर गोरे श्रेष्ठ वैदिक ब्राह्मण ने स्वप्न में मुझे इस प्रकार उपदेश दिया–

करहु जाइ तप शैल कुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी।।
मातु पितहिं पुनि यह मत भावा। तप सुखप्रद दुख दोष नसावा।।

भा०– हे पर्वतपुत्री पार्वती! वन में जाकर तप कीजिये, जो नारद जी ने विचार कर कहा है, वह सत्य है। आपके माता–पिता को भी यह मत भा गया है अर्थात् दोनों ने आपके लिए तप करने के लिए आग्रह करने का ही निश्चय किया है, क्योंकि तप सुख प्रदान करने वाला तथा दु:खों और दोषों को नष्ट करनेवाला है।

तपबल रचइ प्रपंच बिधाता। तपबल बिष्णु सकल जग त्राता।।
तपबल शंभु करहिं संघारा। तपबल शेष धरइ महिभारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहु जाइ तप अस जिय जानी।।

भा०– तप के बल से ही ब्रह्मा जी इस पंचभूतात्मक जगत् की रचना करते हैं। तप के बल से ही विष्णु जी सारे संसार का पालन करते हैं। तप के बल से ही शङ्कर जी इस जगत् का संहार करते हैं अर्थात् बिखरे हुए संसार को समेटकर प्रभु श्रीराम जी के चरणों में विश्राम करा देते हैं। तप के बल से ही शेषनारायण पृथ्वी का भार धारण करते हैं। हे भवानी! अर्थात् कल्याणमय शङ्कर जी की शाश्वत पत्नी पार्वती जी! यह सम्पूर्ण सृष्टि तप के आधार पर चल रही है।ऐसा हृदय में जानकर वन में जाकर तप कीजिये।

सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहिं हँकारी।।
मातु पितहिं बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई।।

भा०– पार्वती जी के मुख से स्वप्न की बात सुनकर माता मैना विस्मित अर्थात् आश्चर्यचकित हो गयीं। उन्होंने पर्वतराज हिमाचल को बुलाकर यह स्वप्न सुनाया। फिर माता–पिता को बहुत प्रकार से समझाकर प्रसन्न होकर पार्वती जी तप के लिए चल पड़ीं।

प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता।।

दो०– बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहिं पाइ।।७३।।

भा०– प्रिय परिवार, पिता हिमाचल और माता मैना सभी लोग व्याकुल हो गये। किसी के मुख से बात नहीं निकल रही थी। तब वेदसिरा नामक मुनि ने आकर सब को समझाकर पार्वती जी की महिमा का वर्णन किया और पार्वती जी के लोकोत्तर महत्व को सुनकर प्रबोध अर्थात् आश्वासन पाकर वे लोग धैर्य धारण किये रहे ।

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना।।
अति सुकुमारि न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू।।

भा०- हृदय में प्राणपति भगवान् शङ्कर जी के चरणों को धारण करके पार्वती जी वन में जाकर तपस्या करने लगीं। पार्वती जी अत्यन्त सुकुमारी थीं, उनका शरीर तप के योग्य नहीं था, उन्होंने अपने नित्यपति शङ्कर भगवान् के चरणों को स्मरण करके सभी भोग छोड़ दिये।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मन लागा।।
संबत सहस मूल फल खाए। शाक खाइ शत बरष गवाँए।।

भा०- पार्वती जी के हृदय में शङ्कर जी के प्रति नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा। वे अपने शरीर को भूल गयीं, उनका मन तपस्या में लग गया। पार्वती जी ने एक सहस्र वर्ष तक मूल-फल खाये। शाक खाकर सौ वर्ष व्यतीत किये।

कछु दिन भोजन बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा।।
बेल पात महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई।।
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहिं नाम तब भयउ अपरना।।

भा०- कुछ दिन तो जल और वायु ही पार्वती जी का भोजन रहा। कुछ दिन उन्होंने इन्हें भी छोड़ कठिन उपवास किया। पृथ्वी पर जो सूखे बेल के पत्ते पड़े रहते थे, उन्हें पार्वती जी ने तीन हजार वर्षों तक खाया, फिर जब सूखे बेल के पत्ते भी छोड़ दिये तब उमा जी का नाम अपर्णा पड़ गया।

देखि उमहिं तप खीन शरीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा।।

दो०- भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलिहैं त्रिपुरारि।।७४।।

भा०- पार्वती जी को तपस्या से क्षीण शरीरवाली देखकर आकाश में परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम जी की गम्भीर वाणी हुई। प्रभु श्रीराम बोले, हे पार्वती! सुनिये, अब आपके सभी मनोरथ सफल हो चुके हैं। आप सभी असहनीय क्लेशों को छोड़ दीजिये। अब त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी आप को मिलेंगे।

अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी।।
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत शुचि जानी।।
आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं।।
मिलहिं तुमहिं जब सप्त रिषीशा। जानेहु तब प्रमान बागीशा।।

भा०- श्रीराम जी की गम्भीर आकाशवाणी की व्याख्या करते हुए, पार्वती जी को समझाकर ब्रह्मा जी ने कहा, हे भवानी! अनेक धीर मुनि, ज्ञानी इस सृष्टि में हुए, पर प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि ऐसा तप किसी ने नहीं किया। अब सदैव सत्य और निरन्तर पवित्र समझकर परब्रह्म परमात्मा श्रीराम जी की श्रेष्ठवाणी को हृदय में धारण कर लो। जब भी तुम्हारे पिता हिमाचल तुम्हें बुलाने आयें तभी हठ छोड़ घर चली जाना। जब तुम्हें सात श्रेष्ठ मुनिगण (विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ तथा कश्यप) आकर दर्शन दें, उसी समय तुम प्रभु की वाणी को प्रमाणित समझ लेना।

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी।।
उमा चरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु शंभु कर चरित सुहावा।।

भा०– तब श्रीराम जी की आकाशवाणी को ब्रह्मा जी द्वारा व्याख्यायित सुनकर पार्वती जी का शरीर रोमांचित हो उठा और गिरिजा जी प्रसन्न हुईं। याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, मैंने पार्वती जी का सुन्दर चरित्र गाया, अब शिव जी का सुहावना चरित्र सुनो।

जब ते सती जाइ तनु त्यागा। तब ते शिव मन भयउ बिरागा।।
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।।

भा०– जब श्रीसती जी ने दक्ष के यज्ञ में जाकर अपने शरीर का त्याग किया, तभी से शिव जी के मन में वैराग्य हो गया। वे सदैव रघुनाथ (प्रभु श्रीराम जी) का दो अक्षरों वाला श्रीराम नाम जपते हैं और जहाँ–तहाँ जाकर श्रीराम जी के गुणसमूहों का गान करते हैं।

दो०– चिदानंद सुखधाम शिव, बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम।।७५।।

भा०– चित् और आनन्दस्वरूप सुख के निवास स्थान शङ्कर जी मोह, मद और काम से रहित होकर सम्पूर्ण लोकों को आनन्द देनेवाले, भूमि का भार हरण करनेवाले प्रभु श्रीराम जी को अपने हृदय में धारण करके पृथ्वी पर विचरण करते हैं। अथवा, मोह, मद, काम से रहित हुए शिव जी अपने हृदय में चिदानन्दस्वरूप सुख के धाम, सम्पूर्ण लोकों को अभीष्ट रूप से रमानेवाले श्रीहरि भगवान् श्रीराम जी को धारण करके पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

कतहुँ मुनिन उपदेशहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना।।
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।।

भा०– शिव जी कहीं मुनियों को सेवक–सेव्य भाव, सम्बन्ध ज्ञान का उपदेश करते हैं और कहीं श्रीराम जी के गुणों का व्याख्यान करते हैं। यद्यपि शिव जी कामनारहित और ऐश्वर्यादि प्रशस्त छहों माहात्म्य से युक्त और सुजान हैं, फिर भी अपनी भक्ता सती जी के वियोग से कभी–कभी दुःखी हो जाते हैं।

एहि बिधि गयउ काल बहु बीती। नित नइ होइ राम पद प्रीती।।
नेम प्रेम शङ्कर कर देखा। अबिचल हृदय भगति कै रेखा।।
प्रगटे राम कृतग्य कृपाला। रूप शील निधि तेज बिशाला।।

भा०– इस प्रकार बहुत समय बीत गया। शिव जी के मन में श्रीराम जी के श्रीचरण के प्रति निरन्तर नयी प्रीति होती जा रही है। शिव जी के नियम, प्रेम तथा उनके हृदय में भक्ति की न चलायमान होने वाली रेखा, श्रीराम जी ने देखी। कृत्य को समझने वाले परमकृपालु, रूप और शील के समुद्र, विशाल तेज से सम्पन्न भगवान् श्रीराम जी, शिव जी के समक्ष प्रकट हुए।

बहु प्रकार शङ्करहिं सराहा। तुम बिनु अस ब्रत को निरबाहा।।
बहुबिधि राम शिवहिं समुझावा। पारबती कर जन्म सुनावा।।
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी।।

भा०– श्रीरघुनाथ जी ने शङ्कर जी को बहुत प्रकार से सराहा और कहा कि, आपके बिना इस प्रकार के कठोर व्रत का कौन निर्वाह कर सकता है? भगवान् श्रीराम जी ने शिव जी को अनेक विधि से समझाया तथा उन्हें पार्वती जी का जन्म–प्रसंग भी सुनाया। पार्वती जी की अत्यन्त पवित्र तपस्यारूप कृति का कृपा के सागर श्रीराघव सरकार ने विस्तार के साथ वर्णन किया।

दो०- अब बिनती मम सुनहु शिव, जौ मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु शैलजहिं, यह मोहि माँगे देहु।।७६।।

भा०- श्रीराघवेन्द्र सरकार बोले, हे शिव जी! अब मेरी प्रार्थना सुनिये, यदि आपको मुझ पर निजनेह अर्थात् आत्मीयप्रेम है, तो हिमालयराज के भवन में जाकर पार्वती जी के साथ विवाह कीजिए। यह मुझे माँगने पर दीजिए अर्थात् आज मैं औढ़रदानी से भीख माँग रहा हूँ।

कह शिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।।
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।।

भा०- शिव जी ने कहा, यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, फिर भी स्वामी के आदेशात्मक वचन मिटाये भी तो नहीं जा सकते। हे नाथ! आपका आदेश सिर पर धारण करके पालन करें यह हमारा अर्थात् समस्त चिद्वर्ग का परमधर्म है।

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिय शुभ जानी।।
तुम सब भाँति परम हितकारी। आग्या सिर पर नाथ तुम्हारी।।

भा०- माता, पिता, गुरु और स्वामी की वाणी को कल्याणमय जानकर बिना विचारे ही पालन करना चाहिए। आप तो सब प्रकार से परमहितैषी हैं। हे स्वामी! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर अर्थात् आप जो कहेंगे, वह मैं करूँगा।

प्रभु तोषेउ सुनि शङ्कर बचना। भगति बिबेक धर्म जुत रचना।।
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ।।

भा०- भक्ति, विवेक और धर्म से युक्त वाक्यरचना से सम्पन्न शिव जी के वचनों को सुनकर प्रभु श्रीराम संतुष्ट हो गये और बोले, हे हर! हे संसार के संहारकर्त्ता शिव! आपकी प्रतिज्ञा रह गयी अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आपने दक्षपुत्री के शरीर में सती जी का स्पर्श नहीं किया। अब वह बात हृदय में रखिये जो हमने कही है अर्थात् दक्षपुत्री सती जी ही मेरे वर प्रसाद से हिमाचलराज के यहाँ प्रकट होकर उग्र तपस्या करके प्रथम शरीर के पाप का प्रायश्चित कर चुकी हैं, आप जाकर उनसे विवाह कीजिए।

अंतरधान भए अस भाखी। शङ्कर सोइ मूरति उर राखी।।

भा०- ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम अन्तर्धान हो गये अर्थात् शिव जी की आँखों से ओझल हो गये। शङ्कर जी ने प्रभु श्रीराम जी की उसी मूर्ति को अपने हृदय में धारण कर लिया।

तबहिं सप्तऋषि शिव पहँ आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए।।

दो०- पारबती पहँ जाइ तुम, प्रेम परीक्षा लेहु।
गिरिहिं प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु।।७७।।

भा०- उसी समय अर्थात् श्रीराम के अन्तर्धान होते ही विश्वामित्र आदि सातों ऋषि शिव जी के पास आये। प्रभु अर्थात् समर्थ शिव जी अत्यन्त सुन्दर वचन बोले, हे ऋषियों! आप पार्वती जी के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा ले लीजिये। हिमाचल को प्रेरित करके पार्वती जी को वन से घर भेज दीजिये। उनका संदेह दूर कर दीजिये अर्थात् मैं पार्वती जी के साथ विवाह करूँगा, प्रक्रिया में विलम्ब हो सकता है।

तब ऋषि तुरत गौरि पहँ गयऊ। देखि दशा मन बिसमय भयऊ।।
ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी।।

भा०- तब सप्तर्षि तुरन्त पार्वती जी के पास गये। उनकी स्थिति देखकर सप्तर्षियों के मन में बहुत आश्चर्य हुआ। ऋषियों ने वहाँ पार्वती जी को किस प्रकार देखा, जैसे तपस्या ने ही रूप धारण कर लिया हो ।

बोले मुनि सुनु शैलकुमारी। करहु कवन कारन तप भारी।।
केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मरम किन कहहू।।

भा०- सातों ऋषि बोले, हे पर्वतराज पुत्री! सुनिये, आप किस कारण इतना बड़ा तप कर रही हैं ? आप किसकी आराधना कर रही हैं? आप क्या चाह रही हैं? हमसे अपना सत्यमर्म क्यों नहीं कह रही हैं?

सुनत रिषिन के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी।।
कहत मरम मन अति सकुचाई। हँसिहउ सुनि हमारि जड़ताई।।

भा०- ऋषियों के वचन सुनकर शिव जी में विवाह के पूर्व पतिभाव रखने वाली भव अर्थात् शिव जी की सम्बन्धिनी स्त्री पार्वती जी रहस्यपूर्ण मनोहर वाणी बोलीं–ऋषियों! मर्म कहने में मन अत्यन्त सकुचा रहा है, क्योंकि आप लोग हमारी जड़ता सुनकर हँसेंगे।

मन हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा।।
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना।।
देखहु मुनि अबिबेक हमारा। चाहिय सदा शिवहिं भरतारा।।

भा०- हे महर्षियों! मन तो अब हठ में तत्पर हो गया है अर्थात् किसी की सीख सुनना नहीं चाहता, वह जल पर मिट्टी की दीवार उठाना चाहता है। उसने नारद के कथन को ही सत्य जान लिया है। पंखों के बिना भी मैं उड़ना चाहती हूँ अर्थात् दुराराध्य शङ्कर जी को प्रसन्न करना चाहती हूँ, अकाम शिव जी की कामिनी बनना चाहती हूँ। हे मुनियों! मेरा अविवेक तो देखो, मैं सदाशिव को ही पति रूप में चाह रही हूँ।

विशेष- मंगल के समय अपने लिए एकवचन का प्रयोग शास्त्र में निषिद्ध है, अतएव भगवान् शिव के साथ अपने विवाह को परममंगलमय मानती हुई पार्वती जी अपने लिए बहुवचन का प्रयोग कर रहीं हैं।

दो०- सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरि संभव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह।।७८।।

भा०- पार्वती जी का वचन सुनकर सप्तर्षि ठहाका लगाकर हँस पड़े और बोले, पार्वती! तुम्हारा शरीर तो पर्वत से ही उत्पन्न हुआ है अर्थात् पत्थर के समान तुम भी विवेकशून्य हो गयी हो। अरे, भला बताओ तो नारद का उपदेश सुनकर किसका घर बसा है?

दक्षसुतन उपदेसेनि जाई। तिन फिरि भवन न देखा आई।।
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककशिपु कर पुनि अस हाला।।

भा०- नारद ने जाकर दक्ष जी के दस हजार पुत्रों को उपदेश दिया, उन लोगों ने आकर फिर अपना घर नहीं देखा अर्थात् बाबा बन गये, फिर उन्होंने चित्रकेतु राजा का घर नष्ट किया, फिर हिरण्यकशिपु का भी वही हाल हुआ। इस प्रकार नारद ने तो तीन घर चौपट किये, अब तुम्हारे घर की बारी है।

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा।।

भा०- जो नर या नारी, नारद की शिक्षा सुनते हैं वे घर–बार छोड़कर अवश्य भिखारी बन जाते हैं। नारद मन से कपटी हैं, केवल उनके शरीर पर सन्त के चिह्न हैं। वे सभी को अपने समान भिखारी कर देना चाहते हैं।

तेहि के बचन मानि बिश्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा।।

भा०- उन नारद के वचन पर विश्वास मानकर तुम स्वाभाव से उदासीन पति चाह रही हो।

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।।
कहहु कवन सुख अस बर पाए। भल भूलिहु ठग के बौराए।।

भा०- जो गुणरहित, निर्लज्ज, कुत्सित वेशवाला, मुण्डों की माला धारण करनेवाला, कुल से रहित, गृह से शून्य, दिशाओं को वस्त्र बनाकर कोई वस्त्र नहीं पहननेवाला, अपने अंग में सर्पों को लपेटे हुए हो, भला बताओ, ऐसे विचित्र वर को पाकर तुझे कौन–सा सुख मिलेगा? पार्वती! तुम भली अर्थात् उच्चकुल की कन्या होकर भी उस ठग नारद के द्वारा पागल बनाने के कारण उनके बहकावे में आकर भूल चुकी हो।

पंच कहे शिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएनि ताही।।

दो०- अब सुख सोवत सोच नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ की नारि खटाहिं।।७९।।

भा०- पंच अर्थात् लोगों के कहने पर शिव जी ने सती के साथ विवाह किया, फिर उसका त्याग करके मरवा डाला। अब वे सुख की नींद सो रहे हैं। शिव जी भीख माँगकर खाते हैं। भला बताओ तो, स्वभाव से अकेले रहनेवाले के घर में क्या कभी नारियाँ सुख से रह सकती हैं अर्थात् जिसे अकेला रहना ही भाता है, वह गृहिणी को कैसे सँभाल सकेगा?

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम कहँ बर नीक बिचारा।।
अति सुन्दर शुचि सुखद सुशीला। गावहिं बेद जासु जस लीला।।
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी।।
अस बर तुमहि मिलाउब आनी। सुनत बिहँसि कह बचन भवानी।।

भा०- पार्वती! आज भी हमारा कहा मान लीजिये, हमने आप के लिए एक भला वर विचारा है। जैसे हमनें शिव जी में आठ दुर्गुण गिनाये हैं, उसी प्रकार अपने द्वारा प्रस्तावित वर में आठ सद्‌गुण गिना रहें हैं। वह अत्यन्त सुन्दर, पवित्र, सुख देनेवाला, सुन्दर स्वभाव और चरित्रवाला, वेद जिसकी यशलीला गाते हैं, सभी दोषों से रहित, सभी गुणों की राशि, लक्ष्मी जी के पति तथा बैकुण्ठपुर के निवासी हैं। ऐसे विष्णु जी नामक वर को लाकर हम तुमसे मिलवायेंगे उनके लिए तुम्हें तपस्या नहीं करनी पड़ेगी। ऋषियों का वचन सुनकर पार्वती जी हँस कर बोलीं–

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा।।
कनकउ पुनि पषान ते होई। जारेहुँ सहज न परिहर सोई।।

भा०- आप लोगों ने सत्य कहा है, यह शरीर पर्वत से ही उत्पन्न हुआ है, इसका हठ नहीं छूटेगा, भले यह शरीर छूट जाये, फिर सोना भी तो पत्थर से उत्पन्न होता है, वह अग्नि द्वारा जलाये जाने पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ।।
गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

भा०- नारद जी के वचनों को तो मैं नहीं छोड़ूँगी, घर बसे या उजड़े मैं नहीं डरती। जिसको गुरुदेव के वचनों पर विश्वास नहीं होता उसके लिए स्वप्न में भी सुख और सिद्धियाँ सुगम नहीं होतीं।

दो०- महादेव अवगुन भवन, बिष्णु सकल गुन धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन, ताहि ताहि सन काम।।८०।।

भा०- भले ही आप लोगों की मान्यता के अनुसार महादेव जी अवगुणों के निवास स्थान हैं और विष्णु जी सभी गुणों के धाम हैं, परन्तु जिसका मन जिसके साथ रम जाता है, उसका तो उसी के साथ काम अर्थात् प्रयोजन रहता है। अथवा, उसकी कामना उसी से सिद्ध होती है।

जौ तुम मिलतेहु प्रथम मुनीशा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि शीशा।।
अब मैं जन्म शंभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा।।

भा०- हे मुनिश्वरों! यदि आप लोग मुझे प्रथम में मिल गये होते, तो मैं आप लोगों की शिक्षा माथे मानकर सुनती। अब तो मैं शिव जी के लिए अपना जन्म ही हार चुकी हूँ, उनके गुणों और दोषों पर कौन विचार करने जाये?

जौ तुम्हरे हठ हृदय बिशेषी। रहि न जाइ बिनु किए बरेषी।।
तौ कौतुकियन आलस नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं।।

भा०- यदि आप लोगों के हृदय में विशेष हठ है और बरेषी अर्थात् वर देखी यानी विवाह निश्चित कराये बिना रहा नहीं जा रहा है, तो कौतुक करने वालों या देखने वालों के मन में आलस्य नहीं होता, वे तो अनेक विवाह लगाते और बिगाड़ते हैं। संसार में अनेक वर और कन्यायें हैं, आप शिव जी और हमारे पीछे ही क्यों पड़े हैं?

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ शंभु न त रहउँ कुआँरी।।
तजउँ न नारद कर उपदेशू। आपु कहहिं शत बार महेशू।।
मैं पा परउँ कहइ जगदम्बा। तुम गृह गवनहु भयउ बिलंबा।।

भा०- मेरी करोड़ों जन्म के लिए यही हठपूर्वक प्रतिज्ञा है कि, या तो शङ्कर जी के साथ विवाह करूँगी अन्यथा कुमारी अर्थात् अविवाहित ही रह जाऊँगी। मैं देवर्षि नारद जी का उपदेश नहीं छोड़ूँगी भले ही स्वयं शङ्कर जी आकर सौ बार मुझसे कहें अर्थात् जिन शङ्कर जी के लिए मैं तपस्या कर रही हूँ, वह भी नारद जी का उपदेश छोड़ने का अनुरोध मुझसे करें तो भी मैं नहीं मानूँगी तो आप लोगों की क्या बात। जगदम्बा कहती हैं कि, हे सप्तर्षियो! मैं आपके पाँव पड़ती हूँ। आप अपने–अपने घरों को चले जाइये, विलम्ब हो गया है। आप लोगों की गृहिणियाँ आप लोगों की प्रतीक्षा करती होंगी।

देखि प्रेम बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी।।

दो०- तुम माया भगवान् शिव, सकल जगत पितु मात।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि पुलकित गात।।८१।

भा०- पार्वती जी का प्रेम देखकर सातों ज्ञानी मुनि बोले, हे जगत् की माता! हे शिव जी की नित्य गृहिणी भवानी! पार्वती! आप की जय हो, आप की जय हो। आप महामाया हैं शिव जी ऐश्वर्यादि माहात्म्यों से युक्त महेश्वर हैं, आप दोनों के सम्बन्ध नित्य हैं। आप समस्त जगत् के माता–पिता हैं। यह कह कर पार्वती जी के चरणों में मस्तक नवाकर सप्तर्षि शिव जी के पास चल पड़े। उनके शरीर बार–बार रोमांचित हो रहे थे।

जाइ मुनिन हिमवंत पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए।।

भा०- सप्तर्षियों ने जाकर हिमाचल को पार्वती जी के पास भेजा और हिमाचलराज प्रार्थना करके पार्वती जी को वन से घर ले आये।

बहुरि सप्तरिषि शिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई।।
भए मगन शिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तऋषि गवने गेहा।।

भा०- फिर सप्तर्षियों ने शिव जी के पास जाकर पार्वती जी की सम्पूर्ण कथा उन्हें सुना दी। पार्वती जी का स्नेह सुनते ही शिव जी उनके प्रेम में मग्न हो गये और सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने-अपने आश्रम को चले गये।

मन थिर करि तब शंभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।।

भा०- तब मन को स्थिर करके सुन्दर ज्ञानसम्पन्न शिव जी रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम का ध्यान करने लगे।

तारक असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिशाला।।
तेहि सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते।।
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई।।
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे।।

भा०- फिर उसी समय तारकासुर नाम का दैत्य उत्पन्न हो गया। जिसकी भुजाओं का प्रताप, बल और तेज बहुत विशाल था। उस तारकासुर ने सभी लोकों और लोकपालों को जीत लिया। देवता सुख और सम्पत्ति से रहित हो गये। वह अजर और अमर था इसलिए जीता नहीं जा सकता था। देवता अनेक युद्ध करके तारकासुर से हार गये। तब ब्रह्मा जी के सामने पुकार की, ब्रह्मा जी ने सभी देवताओं को दु:खी देखा।

दो०- सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुज निधन तब होइ।
शंभु शुक्र संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ।। ८२।।

भा०- ब्रह्मा जी ने सभी देवताओं को समझा कर कहा, इस दैत्य का मरण तभी होगा जब शङ्कर भगवान् के वीर्य से उत्पन्न पुत्र हो और इसे युद्ध में वह जीते।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करिहि सहाई।।
सती जो तजी दक्ष मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा।।
तेहि तप कीन्ह शंभु पति लागी। शिव समाधि बैठे सब त्यागी।।

भा०- मेरा कहा सुनकर तुम सब उपाय करो। वह उपाय सफल होगा। ईश्वर श्रीराम जी सहायता करेंगे। जो सती जी दक्ष के यज्ञ में शरीर छोड़ चुकी थीं, वे ही जाकर हिमाचल की गृहिणी मैना के गर्भ से जन्मी हैं। उन्होंने शङ्कर जी को ही अपना पति बनाने के लिए तपस्या की है और शिव जी सब कुछ छोड़ समाधि में बैठ गये हैं।

जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी।।

भा०- यद्यपि यहाँ बहुत बड़ा असमंजस्य है, क्योंकि शिव जी समाधि में हैं। उनके विवाह के बिना उनसे पुत्र संभव नहीं है, फिर भी हमारी एक बात सुनो।

पठवहु काम जाइ शिव पाहीं। करै छोभ शङ्कर मन माहीं।।
तब हम जाइ शिवहिं सिर नाई। करवाउब बिबाह बरियाँई।।

भा०- तुम सब प्रार्थना करके कामदेव को भेजो, वह शिव जी के पास जाकर शङ्कर जी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे और शिव जी समाधि से अलग हो जायें, तब हम जाकर शिव जी को मस्तक नवाकर हठपूर्वक विवाह (शिव-पार्वती विवाह) करवा देंगे।

एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहैं सब कोई।।
अस्तुति सुरन कीन्ह अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू।।

दो०- सुरन कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
शंभु बिरोध न कुशल मोहि, बिहँसि कहेउ अस मार।।८३।।

भा०- इस प्रकार से देवताओं का भलेहिं अर्थात् भलाई के साथ हित होगा। तात्पर्य यह है कि, इस में काम की मृत्यु भी हो सकती है। "यह मत बड़ा सुन्दर है" ऐसा सभी देवता कह रहे थे। देवताओं ने अत्यन्त प्रेम से स्तुति की और पाँच बाणवाला झष अर्थात् मछली की पताका से युक्त कामदेव, देवताओं के समक्ष प्रकट हो गया। देवताओं ने अपनी सम्पूर्ण विपत्ति कामदेव से कही, सुनकर काम ने अपने मन में विचार किया और हँसकर इस प्रकार कहा कि, शङ्कर जी के विरोध में मेरे लिए कुशल नहीं है।

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा।।
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रशंसहिं तेही।।
अस कहि चलेउ सबहिं सिर नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई।।
चलत मार अस हृदय बिचारा। शिव बिरोध ध्रुब मरन हमारा।।

भा०- फिर भी मैं आप लोगों का कार्य करूँगा, क्योंकि श्रुति उपकार को ही परमधर्म कहती हैं। दूसरों के हित के लिए जो शरीर छोड़ते हैं सन्त निरन्तर उसकी प्रशंसा करते हैं। ऐसा कह कर सभी देवताओं को प्रणाम करके हाथ में पुष्प का धनुष लेकर वसन्त आदि सहायकों को साथ लेकर कामदेव शिव जी के पास चल पड़े। चलते हुए कामदेव ने ऐसा हृदय में विचार किया कि, शिव जी के विरोध में हमारा मरण निश्चित ही है।

तब आपन प्रभाव बिस्तारा। निज बश कीन्ह सकल संसारा।।
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महँ मिटे सकल श्रुति सेतू।।

भा०- तब उसने अपने प्रभाव का विस्तार किया और सारे संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय वारिचर अर्थात् जल में रहनेवाले मछली को पताका बनानेवाला कामदेव क्रुद्ध हुआ। उसी समय क्षण भर में सभी वैदिक मर्यादाओं की सेतु मिट गये।

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना।।
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटक सब भागा।।

भा०- ब्रह्मचर्य व्रत, अनेक संयम, धैर्य, धर्म, ब्रह्मज्ञान और जगत् की क्षणभंगुरता का विकृतपूर्वक ज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य, आदि सम्पूर्ण विवेक का सैन्यबल भयभीत होकर भाग चला।

छं०- भागेउ बिबेक सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन महँ जाइ तेहि अवसर दुरे।
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनु शर धरा।।

भा०- सहायकों के सहित विवेक भाग खड़ा हुआ। उसके सैनिक समरभूमि में मुड़े अर्थात् पीठ दिखा गये। उस समय वे सभी वीर सद्ग्रन्थ रूप पर्वत कन्दराओं में जाकर छिप गये। हे भगवान! क्या होने वाला है? कौन रक्षक है? इस प्रकार संसार में खलबली मच गयी। वह कौन दो सिरोंवाला है, जिसके लिए रतिपति काम ने क्रुद्ध होकर हाथ में धनुष-बाण धारण किया है।

दो०- जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बश काम।।८४।।

भा०- संसार में जो भी जड़-चेतन नारी-पुरुष, ऐसे नामवाले जीवन्त प्राणी थे, वे सभी अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश में हो गये।

सब के हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु शाखा।।
नदी उमगि अंबुधि कहँ धाई। संगम करहिं तलाव तलाई।।

भा०- सब के हृदय में काम सम्बन्धी अभिलाषा जग गई। लताओं को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं, नदियाँ उफनती हुई समुद्र की ओर दौड़ पड़ीं। तालाब और तलैया संगम करने लगीं।

जहँ असि दशा जड़न कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी।।
पशु पक्षी नभ जल थलचारी। भए कामबश समय बिसारी।।

भा०- जहाँ जड़ों की इस प्रकार की दशा कही गयी है, तो फिर चेतनों की करनी कौन कह सकता है? जल, थल और आकाश में विचरण करने वाले पशु, पक्षी सभी समय की मर्यादा को भूलकर काम के वश में हो गये।

मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निशि दिन नहिं अवलोकहिं कोका।।

भा०- काम से अन्धे होकर सभी लोग व्याकुल हो गये। अब चकवे रात या दिन नहीं देख रहे हैं।

देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिशाच भूत बेताला।।
इन कै दशा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।।
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबश भए बियोगी।।

भा०- देवता, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और वैताल इन सब को निरन्तर काम के चेले जानकर इनकी दशा को मैंने बखान कर नहीं कहा है। जो भी सिद्ध, विरक्त, महर्षि और योगी थे, वे भी काम के वश में वियोगी बन गये।

छं०- भय कामबश जोगीश तापस पामरन की को कहे।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयम्।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयम्।

भा०- योगियों के ईश्वर और तपस्वी भी काम के वश में हो गये, पामरों की बात कौन कहे? जो जड़-चेतन संसार को ब्रह्ममय देख रहे थे, वे उसी चराचर को अब नारिमय देखने लगे। नारियाँ जगत् को पुरुषमय देख रही थीं और पुरुष संसार को नारिमय देख रहे थे। इस प्रकार कामदेव के द्वारा किया हुआ यह कौतुक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर दो दण्ड तक रहा।

सो०- धरे न काहू धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ।।८५।।

भा०- किसी ने धैर्य धारण नहीं किया, सब के मन को मन में उत्पन्न होने वाले कामदेव ने हर लिया। जिनको श्रीराम जी ने रख लिया, वे ही उस समय बच पाये।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम शंभु पहँ गयऊ।।

भा०- दो घड़ी में यह कौतुक हो गया जब तक कामदेव शङ्कर भगवान् के पास गया।

शिवहिं बिलोकि सशंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सब संसारू।।
भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गए मतवारे।।

भा०- शिव जी को देखकर कामदेव सशंकित हो उठा और संसार अपनी स्थिति में हो गया। संसार के सभी जीव उसी प्रकार सुखी हो गये, जैसे मद के उतर जाने पर मतवाला हाथी सुखी हो जाता है।

रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना।।
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई।।

भा०- रुद्र को देखकर कामदेव ने भय माना क्योंकि भगवान् शङ्कर का प्रदर्शन कठिन है और उनके यहाँ जाना बहुत कठिन है, क्योंकि वे भगवान् हैं। लौटने में उसे लज्जा लग रही थी, कुछ किया नहीं जा रहा था। कामदेव ने मन में मरण का निश्चय करके उपाय की रचना की।

प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा।।
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिशा बिभागा।।
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा।।

भा०- उसने तुरन्त ऋतुराज वसन्त को प्रकट किया और पुष्पों से लदी हुई सुन्दर वृक्षों की पंक्तियाँ सुशोभित होने लगीं। वन, उपवन, बावलियाँ, तालाब ये सब दिशाओं के विभाग बहुत सुन्दर लग रहे थे। जहाँ–तहाँ मानो अनुराग ही उमंगित हो रहा था। ये सब देखकर मरे हुए मन में भी काम जाग्रत हो रहा था।

छं०- जागेउ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
शीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही।।
बिकसे सरनि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक शुक सरस रव करि गान नाचहिं अपसरा।।

भा०- मरे हुए मनों में भी काम जग गया, वन की सुन्दरता नहीं कही जा रही थी। कामरूप अग्नि का सच्चा मित्र वायु शीतल, सुरभित और मन्द–मन्द चल रहा था। तालाबों में बहुरंगे कमल विकसित हो गये और भ्रमरों के समूह गुंजार कर रहे थे। सुन्दर हंस, तोते, कोयल सुन्दर स्वर में बोल रहे थे और अप्सरायें सुन्दर गान कर नाच रही थीं।

दो०- सकल कला करि कोटि बिधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदय निकेत।।८६।।

भा०- इस प्रकार, करोड़ों प्रकार से अपनी सम्पूर्ण कलाओं को प्रस्तुत करके भी हृदय निवासी कामदेव अपनी सेना के सहित हार गया और शिव जी की अचल समाधि नहीं डिगी, तब कामदेव क्रुद्ध हो गया।

देखि रसाल बिटप बर शाखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा।।
सुमन चाप निज शर संधाने। अति रिसि ताकि स्रवन लगि ताने।।
छाड़ेसि बिषम बिशिख उर लागे। छूटि समाधि शंभु तब जागे।।

भा०- आम्रविटप की सुन्दर शाखा देखकर मन में क्रुद्ध हुआ काम उसी पर चढ़ गया। अपने पुष्प के धनुष पर पाँचों बाणों का संधान किया, अत्यन्त क्रोध से शिव जी की ओर तीखी दृष्टि से निहारकर धनुष (प्रत्यंचा) को कान तक खींचा और पाँच बाण छोड़े जो शिव जी के हृदय में लगे, उनकी समाधि छूट गयी तब शिव जी जग गये।

भयउ ईश मन छोभ बिशेषी। नयन उघारि सकल दिशि देखी।।

भा०- शिव जी के मन में विशेष प्रकार का क्षोभ हुआ, उन्होंने आँखें खोलकर सभी दिशाओं में देखा।

सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका।।
तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।

भा०- आम के पल्लव के ऊपर बैठे हुए कामदेव को शिव जी ने देखा। उनके मन में क्रोध उत्पन्न हुआ। तीनों लोक काँप उठे, तब शिव जी ने तीसरा नेत्र खोला। उसे देखते ही काम जल कर खाक हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी।।
समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी।।

भा०- जगत् में बहुत बड़ा हाहाकार हुआ, देवता डरे और दैत्य प्रसन्न हुए। काम का सुख सोचकर भोगी लोग शोक करने लगे और साधक तथा योगी निष्कंटक हो गये।

छं०- जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति शङ्कर पहँ गई।।
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आशुतोष कृपालु शिव अबला निरखि बोले सही।।

भा०- योगी लोग निष्कंटक हो गये। पति की मृत्यु सुनते ही रति मूर्च्छित हो गयी। वह रोती बहुत प्रकार से प्रलाप करती तथा विलाप करती हुई शङ्कर भगवान् के पास गयी। अत्यन्त प्रेमपूर्वक विविध प्रकार से प्रार्थना करके हाथ जोड़कर शिव जी के सामने उपस्थित रही। सर्वसमर्थ, कृपालु, शीघ्र संतुष्ट होनेवाले आशुतोष शङ्कर जी अबला रति को देखकर सत्य वाणी बोले–

दो०- अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनंग।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहिं पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंग।।८७।।

भा०- हे रति! आज से तुम्हारे पति का नाम अनंग होगा। वह बिना शरीर के ही सब में व्याप्त होगा। फिर तुम अपना मिलन प्रसंग सुनो।

जब जदुबंश कृष्ण अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा।।
कृष्ण तनय होइहि पति तोरा। बचन अन्यथा होइ न मोरा।।

भा०- जब यदुवंश में महाभूमिभार को हरने के लिए भगवान् कृष्ण का अवतार होगा, तब तुम्हारे पति कामदेव ही कृष्ण भगवान् के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में अवतरित होंगे और तुम फिर उन्हें पति के रूप में प्राप्त कर लोगी। मेरे वचन अन्यथा नहीं हुआ करते।

रति गवनी सुनि शङ्कर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी।।
देवन समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए।।
सब सुर बिष्णु बिरंचि समेता। गए जहाँ शिव कृपानिकेता।।
पृथक पृथक तिन कीन्ह प्रशंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा।।

भा०- शङ्कर भगवान् की वाणी सुनकर रति चली गई। याज्ञवल्क्य जी, भरद्वाज जी से कहते हैं कि, अब मैं तुम्हें दूसरी कथा सुनाता हूँ। देवताओं ने सब समाचार पाया तब ब्रह्मादि बैकुण्ठ गये। विष्णु जी और ब्रह्मा जी के साथ सभी देवता वहाँ गये, जहाँ कृपा के गृह भगवान् शङ्कर जी विराज रहे थे। उन देवताओं ने अलग-अलग शिव जी की प्रशंसा की और चन्द्रमा को आभूषण बनानेवाले शिव जी प्रसन्न हो गये।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू।।
कह बिधि तुम प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बश बिनवउँ स्वामी।।

भा०– कृपा के सागर, वृष अर्थात् धर्म रूप बैल के चिह्न से चिह्नित पताकावाले शिव जी बोले–कहो, मरणधर्म से रहित देवगणों किस कारण यहाँ आये हो? ब्रह्मा जी ने कहा, हे प्रभो! आप तो अन्तर्यामी हैं, हे स्वामी ! फिर भी मैं भक्ति के वश होकर आप से प्रार्थना कर रहा हूँ, क्योंकि भक्ति में ऐश्वर्यादि का ध्यान नहीं रहता।

दो०- सकल सुरन के हृदय अस, शङ्कर परम उछाह।
निज नयननि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाह।।८८।।

भा०– हे नाथ! सभी देवताओं के हृदय में इस प्रकार का परम उत्साह है, वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं।

यह उत्सव देखिय भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन।।

भा०– हे कामदेव के मद को नष्ट करनेवाले शिव जी! जिससे हम सब यह उत्सव नेत्र भर देख सकें, वही कुछ कीजिये अर्थात् विवाह स्वीकार कर लीजिये।

काम जारि रति कहँ बर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा।।
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ।।

भा०– आप ने काम को भस्म करके रति को वरदान दे दिया है। कृपासागर यह बहुत अच्छा किया। हे नाथ! समर्थ स्वामीजनों का यह जन्मजात स्वभाव होता है, वे पहले कष्ट देकर फिर कृपा करते हैं।

पारबती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा।।

भा०– पार्वती जी ने अपार तप किया है, अब आप उन्हें अंगीकार कर लीजिये।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुख मानी।।
तब देवन दुंदभी बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं।।

भा०– ब्रह्मा जी की प्रार्थना सुनकर, प्रभु श्रीराम जी की वाणी समझकर सुख मानकर शिव जी ने कहा, "ऐसा ही हो।" तब देवताओं ने पुष्पों की वर्षा करके देवताओं के स्वामी शिव जी की जय हो! जय हो! इस प्रकार जय–जयकार करके नगारे बजाये।

अवसर जानि सप्तऋषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए।।
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी।।

भा०– अवसर जानकर वहाँ सप्तर्षि आये, तुरन्त ही ब्रह्मा जी ने उन्हें शिव जी के विवाह की स्वीकृति समाचार देने के लिए पर्वतराज के भवन भेज दिया। सप्तर्षि पहले वहाँ गये जहाँ पार्वती जी विराज रही थीं। वे छल से मिश्रित वचन बोले–

दो०- कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ काम महेश।।८९।।

भा०– हे पार्वती जी! उस समय आपने नारद जी के उपदेश के कारण हमारा कहा नहीं सुना, अब तो आपकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी, क्योंकि महेश्वर शिव जी ने कामदेव को भस्म कर दिया है। अब शिव जी से कैसे विवाह करेंगी?

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी।।
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि शंभु रहे सबिकारा।।
हमरे जान सदा शिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।।

भा०- यह सुनकर पार्वती जी मुस्कुराकर बोलीं, हे विज्ञान सम्पन्न मुनीश्वरो! आप ने उचित ही कहा है। आप लोगों के संज्ञान में शिव जी ने अब काम को भस्म कर दिया है। अब तक भगवान् शङ्कर जी विकारयुक्त रहे। मेरी समझ में तो शिव जी सदैव के जोगी हैं। वे अजन्मा, अनवद्य अर्थात् निन्दाओं से रहित, अकार अर्थात् कामवसना से मुक्त और अभोगी अर्थात् संसार के भोगों से बहुत दूर हैं।

जौ मैं शिव सेई अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी।।
तौ हमार पन सुनहु मुनीशा। करिहैं सत्य कृपानिधि ईशा।।

भा०- यदि मैंने ऐसा समझकर पवित्र, प्रेमपूर्वक कर्म, मन और वचन से शिव जी की सेवा की होगी तो हे मुनिश्रेष्ठो! कृपानिधान भगवान् श्रीराम जी हमारी प्रतिज्ञा सत्य करेंगे।

तुम जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेक तुम्हारा।।
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गए समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेश की नाई।।

भा०- आप लोगों ने जो यह कहा कि, शङ्कर भगवान् ने काम को जला डाला है, यह आप लोगों का बहुत बड़ा अविवेक है, क्योंकि ऊष्णता अग्नि का सहज स्वभाव है, बर्फ उसके निकट कभी नहीं जाता। वह समीप जाकर अवश्य नष्ट हो जाता है, यही कामदेव और शिव जी की स्थिति है।

दो०- हिय हरषे मुनि बचन सुनि, देखि प्रीति बिश्वास।
चले भवानिहिं नाइ सिर, गए हिमाचल पास।।९०।।

भा०- इस प्रकार, पार्वती जी की प्रीति तथा विश्वास देखकर और उमा जी के शिवविषयक निष्ठापूर्ण वचन सुनकर सप्तर्षि हृदय में प्रसन्न हुए। पार्वती जी को प्रणाम करके चले और हिमालय के पास गये ।

सब प्रसंग गिरिपतिहिं सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा।।
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुख माना।।

भा०- पर्वतराज हिमाचल को सप्तर्षियों ने सभी प्रसंग सुनाया। काम का दहन सुनकर पर्वतराज बहुत दुःखी हुए, फिर सप्तर्षियों ने रति के वरदान का समाचार सुनाया। यह सुनकर हिमाचल बहुत प्रसन्न हुए।

हृदय बिचारि शंभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई।।
सुदिन सुनखत सुघरी शुचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई।।

भा०- पर्वतराज हिमाचल ने शिव जी की प्रभुता को हृदय में विचारकर आदरपूर्वक श्रेष्ठमुनियों को बुलाया। सुन्दर दिन, सुन्दर घड़ी और सुन्दर नक्षत्र को सूक्ष्मता से दिखवाकर शीघ्र ही वेदविधि के अनुसार विवाह का लग्न रखा गया अर्थात् निश्चित कर दिया।

पत्री सप्तऋषिन सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही।।
जाइ बिधिहिं तिन दीन्ह सो पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती।।

भा०- उस लग्नपत्रिका को हिमाचलराज ने सप्तर्षि को दी और चरण पकड़ कर प्रार्थना की। सप्तर्षियों ने जाकर ब्रह्मा जी को वह पत्रिका दी, जिसको बाँचते समय ब्रह्मा जी के हृदय में प्रीति समा नहीं रही थी।

लगन बाचि अज सबहिं सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई।।
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलश दसहुँ दिशि साजे।।

भा०– ब्रह्मा जी ने लग्नपत्रिका बाँचकर सभी को सुनायी। मुनि और देवताओं के समूह प्रसन्न हुए। पुष्पों की वृष्टि होने लगी, आकाश में बाजे बज उठे, दसों दिशाओं में मांगलिक शकुन सजाये गये।

दो०– लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुखद, करहिं अपसरा गान।।९१।।

भा०– सभी देवता, अनेक प्रकार के वाहन तथा विमान सजाने लगे। सबको मंगल शकुन हो रहे हैं और अप्सरायें सुन्दर गान कर रहीं हैं।

शिवहिं शंभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा।।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।।
शशि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।
गरल कंठ उर नर सिर माला। अशिव बेष शिव धाम कृपाला।।

भा०– शङ्कर जी के गण, शिव जी का शृंगार कर रहे हैं। उन्होंने उनकी जटा का मुकुट बनाया और सर्प से मौर को सँवारा, कुंडल, कंकण और किंकिनी के रूप में भी शिव जी ने सर्प को ही धारण किया। शरीर में विभूति और मृगचर्म को ही धोती के रूप धारण किया। मस्तक पर चन्द्रमा और सिर पर सुन्दर गंगा जी विराजे, तीन नेत्र और सर्प ही यज्ञोपवीत बने। कंठ में विष और हृदय पर मनुष्यों के सिर की माला धारण किया। उनका वेश तो अकल्याणमय अर्थात् भयंकर हैं, पर स्वयं शङ्कर जी सभी कल्याणों के भवन और कृपालु हैं।

कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।।
देखि शिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।।

भा०– उनके हाथ में त्रिशूल और डमरू विराजमान हुआ। वे नन्दी बैल पर आरूढ़ होकर चले, बाजे बज रहे थे। शङ्कर जी को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ मुस्कुराती हैं और कहती हैं, "ऐसे वर के योग्य संसार में कोई दुल्हन नहीं है।"

बिष्णु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता।।
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा।।

भा०– विष्णु जी और ब्रह्मादि सभी देवताओं के समूह अपने–अपने वाहनों पर चढ़कर शिव जी की बारात चले। देवताओं का समाज तो सब प्रकार से अनुपम था, परन्तु बारात दूल्हा के अनुरूप नहीं थी अर्थात् देवताओं की बारात सजी–धजी थी और शिव जी सभी आडम्बरों से दूर अपने सहज वेश में थे।

दो०– बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज।।९२।।

भा०– सभी दिग्पालों को बुलाकर विष्णु जी ने इस प्रकार कहा, हे देवताओं ! अपने–अपने समाज के सहित सभी लोग अलग–अलग होकर चलिए। अपने लोग शिव जी के साथ नहीं चलेंगे।

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहउ पर पुर जाई।।
बिष्णु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने।।

भा०- हे भाईयों! यह बारात वर के अनुरूप नहीं है, इनके साथ चलकर दूसरे के नगर में अपनी हँसी ही कराओगे। विष्णु जी के वचन सुनकर देवता मुस्कुराये और अपनी-अपनी सेना के सहित शिव जी से अलग हो गये।

मनहीं मन महेश मुसुकाहीं। हरि के ब्यंग बचन नहिं जाहीं।।
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहिं प्रेरि सकल गन टेरे।।

भा०- शिव जी मन-ही-मन मुस्कुरा रहे थे कि, विष्णु के व्यंग्यवचन कभी छूटेंगे नहीं अर्थात् देवताओं को अलग करने के बहाने श्रीहरि मेरे बारात में मेरे विकलांग भूतगणों को भी अवसर देना चाहते हैं। यदि देवता मेरे साथ होंगे तो विकृत अंग वाले मेरे भूतगणों को मेरे बारात में जाने का कैसे अवसर मिलेगा। इस प्रकार अपने प्रिय विष्णु भगवान् के अत्यन्त प्रियवचनों को सुनकर, शिव जी ने भृंगी नामक गण को प्रेरणा देकर अपनी बारात में चलने के लिए सभी गणों को बुला लिया।

शिव अनुशासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज शीश तिन नाए।।
नाना बाहन नाना बेषा। बिहँसे शिव समाज निज देखा।।

भा०- शिव जी का आदेश सुनकर सभी भूतगण उनके पास आ गये और उन्होंने अपने स्वामी शिव जी के चरणकमलों में सिर नवाया। अनेक वाहनों और अनेक वेशों में अपने समाज को देखकर शिव जी हँसे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना।।

भा०- शिव जी के समाज में कोई बिना मुख के था तो किसी को बहुत मुख थे, कोई बिना पाँव-हाथ के था तो किसी को बहुत पाँव-हाथ थे, किसी के पास बहुत से नेत्र थे तो कोई बिना नेत्र का था, कोई अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, मोटा-ताजा था तो कोई बहुत दुबला-पतला था।

छं०- तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे।।
खर स्वान सुअर शृँगाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिशाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै।।

भा०- वहाँ कोई दुबले शरीरवाला तो कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र वेशवाला तो कोई अपवित्र वेश धारण किये है। सभी के पास भयंकर अलंकार हैं। सब के हाथ में खोपड़ी है और सभी के शरीर ताजे खून से भरे (सने) हुए हैं। गधा, कुत्ता, सुअर और गीदड़ के मुखवाले गणों के अनगिनत वेशों का कौन वर्णन कर सकता है? बहुत प्रकार के भूत, प्रेत, पिशाच और योगिनियों के समूहों का वर्णन करते नहीं बनता है।

सो०- नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि।।९३।।

भा०- परमतरंग में रहनेवाले अर्थात् संसार के व्यवहारों की अनदेखी करके अपनी ही धुन में मग्न रहनेवाले भूतगण नाच रहे हैं और गीत गा रहे हैं। वे देखने में अत्यन्त विपरीत हैं और विविध प्रकार की भाषायें और वचन बोलते हैं।

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता।।

भा०– जिस प्रकार का दूल्हा है, उसी प्रकार की अब बारात बन गयी है अर्थात् जैसे बाह्यदृष्टि से दूल्हे की भूमिका निभा रहे शिव जी भयंकर वेश में हैं, उसी प्रकार भयानक वेशवालों की बारात भी बन गई है। मार्ग में जाते हुए अनेक कौतुक हो रहें हैं।

इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना।।
शैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिशाल नहिं बरनि सिराहीं।।
बन सागर नद नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवत पठावा।।

भा०– इधर हिमाचल ने अत्यन्त विचित्र बितान अर्थात् मण्डप की रचना करायी है, उनका बखान संभव नही है। इस संसार में जहाँ तक छोटे–बड़े अनेक पर्वत हैं, जिनका वर्णन करते–करते समाप्त नहीं हो सकता उन्हें, वन, सागर, छोटी–छोटी नदियाँ तथा तालाबों सभी को हिमाचल पर्वत ने बेटी के विवाह में आमंत्रण भेजा। (यहाँ पर्वत, वन आदि के अभिमानी देवताओं को आमंत्रण भेजे गये।)

कामरूप सुंदर तन धारी। सकल समाज सहित बर नारी।।
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा।।

भा०– पर्वत आदि के अभिमानी देवता स्वेच्छानुसार सुन्दर शरीर धारण करके अपने समाज तथा श्रेष्ठ पत्नियों के सहित हिमाचल के भवन गये और इनकी पत्नियाँ स्नेह के साथ विवाह के मंगलगीत गा रही हैं।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोग तहँ तहँ सब छाए।।
पुर शोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई।।

भा०– आमंत्रित लोगों के आने के पूर्व ही हिमाचल ने बहुत से अस्थायी भवनों को सजाकर बनवाया था, उन्हीं भवनों में योग्यतानुसार जहाँ–तहाँ सभी आमंत्रित अतिथिगण शोभा पा रहे थे। नगर की सुहावनी शोभा देखकर ब्रह्मा जी की शिल्प–कुशलता भी छोटी लग रही थी।

छं०– लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुर शोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभगता सक को कही।।
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं।।

भा०– नगर की वास्तविक शोभा देखकर ब्रह्मा जी की निपुणता भी छोटी लग रही थी। वन, बाग, कुँए, तालाब और नदियों की सुन्दरता कौन कह सकता था? प्रत्येक घर में अनेक मंगल वंदनवार, पताका और ध्वज सुशोभित हो रहे थे। सभी स्त्री और पुरुष सुन्दर और चतुर थे, उनकी छवि देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो रहे थे।

दो०– जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
ऋद्धि सिद्धि संपति सकल, नित नूतन अधिकाइ।।९४।।

भा०– जिस नगर में जगत् की माता अवतार ले चुकी हों, उस पुर का वर्णन कैसे किया जाये? वहाँ ऋद्धि–सिद्धि और संपत्ति सभी नित्य–नयी होकर अधिक होती जा रही थीं।

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभर शोभा अधिकाई।।
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना।।

भा०-बारात नगर के निकट आयी सुनकर पुर में हलचल और शोभा की अधिकता हो गयी। अनेक प्रकार के उपहारों का बनाव करके और अनेक वाहनों को सजाकर अगवान लोग आदरपूर्वक बारात की अगवानी लेने चले।

हिय हरषे सुर सैन निहारी। हरिहिं देखि अति भए सुखारी।।
शिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे।।

भा०- अगवान लोग देवताओं की सेना निहारकर हृदय में हर्षित हुए और भगवान् विष्णु को देखकर तो वे बहुत सुखी हुए, परन्तु जब शिव जी और उनके भूतगणों के समाज को देखने लगे तो अगवान लोग विशेष प्रकार से भयभीत होकर भाग चले और उनके सभी वाहन भी भाग खड़े हुए।

धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने।।
गए भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता।।

भा०- बड़े (वयस्क) लोग धैर्य-धारण करके वहाँ रुके, परन्तु सभी बालक अपने प्राण लेकर अपने घरों को भाग गये। घरों में गये हुए बालकों से दूल्हा के सम्बन्ध में पिता-माता पूछ रहे थे और बालक भय से काँपते शरीर से उत्तर दे रहे थे।

कहिय काह कहि जाइ न बाता। जम कै धारि किधौं बरियाता।।
बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा।।

भा०- क्या कहें बात कही नहीं जाती है, यह यमराज की सेना है अथवा बारात? दूल्हा पागल है और वह बैल पर बैठा है, उसके पास अलंकार के रूप में सर्प, मुण्डमाला और मृतकों की राख है।

छं०- तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिशाच जोगिन बिकट मुख रजनीचरा।।
जो जियत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाह घर घर बात असि लरिकन कही।।

भा०- दूल्हा के शरीर में राख लिपटी हुई है सर्प और मुण्डमाला उसके आभूषण हैं, वह वस्त्रहीन और जटाधारी तथा अत्यन्त भयंकर है। उसके साथ बारात में आये भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ तथा भयंकर रूप वाले राक्षस हैं। जो बारात देखते-देखते जीवित रहेगा उसी का बहुत बड़ा पुण्य है और वही पार्वती जी का विवाह देखेगा। इस प्रकार की बात घर-घर में बच्चों ने कही।

दो०- समुझि महेश समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहिं।।९५।।

भा०- भगवान् शंकर जी का समाज समझकर सभी माता-पिता मुस्कुराते हैं। उन्होंने बालकों को अनेक प्रकार से समझाया और कहा, बच्चो! निर्भय हो जाओ किसी प्रकार का डर नहीं है।

लै अगवान बरातहिं आए। दिए सबहिं जनवास सुहाए।।
मैना शुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी।।

भा०- अगवान लोग बारात को लिवा कर आये और सबको सुन्दर जनवासा दिया। (बारात के ठहरने के स्थान को उत्तर भारत में जनवास कहते हैं, जो जन्यवास का तद्भव रूप है, संस्कृत में बारात को जन्य कहते हैं)

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहिं हरषानी।।

भा०– सासू मैना ने मंगलमय आरती सजायी उनके साथ सौभाग्यवती नारियाँ सुन्दर मंगलगीत गा रहीं थीं। मैना के सुन्दर हाथ में स्वर्ण का थाल सुशोभित हो रहा था। वे प्रसन्न होकर हर अर्थात् सीमाओं से रहित भगवान् शङ्कर की परिछन–विधि सम्पन्न करने को चलीं।

बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा। अबलन उर भय भयउ बिशेषा।।
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेश जहाँ जनवासा।।

भा०– जब मैना आदि महिलाओं ने रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलानेवाले शिव जी का भयंकर वेश देखा तब, अबला अर्थात् निर्बलप्रकृतिवाली महिलाओं के हृदय में विशेष प्रकार का भय उत्पन्न हो गया। वे अत्यन्त भय के कारण वहाँ से भागकर अपने भवन में प्रवेश कर गयीं और महेश्वर शङ्कर भी परिछन कराये बिना ही जहाँ जनवास था वहाँ चले गये।

मैना हृदय भयउ दुख भारी। लीन्ही बोलि गिरीशकुमारी।।
अधिक सनेह गोद बैठारी। श्याम सरोज नयन भरे बारी।।

भा०– मैना के हृदय में बहुत दुःख हुआ, उन्होंने गिरिराजपुत्री पार्वती जी को निकट बुलाया अत्यन्त स्नेह के साथ माँ ने बेटी पार्वती को अपनी गोद में बैठा लिया। मैना के नीले कमल जैसे नेत्र जल अर्थात् आँसूओं से भर गये।

जेहिं बिधि तुमहिं रूप अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा।।
छं०– कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहिं तुमहिं सुंदरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई।।
तुम सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत बिबाह न हौं करौं।।

भा०– मैना बोलीं, जिस विधाता ने तुम्हें इस प्रकार का सुन्दर रूप दिया, उसी जड़ विधाता ब्रह्मा ने तुम्हारे वर को बावला क्यों बनाया? जिस विधाता ने तुम्हें ऐसी सुन्दरता दी उसने तुम्हारे लिए बावले वर की रचना क्यों की? जो फल कल्पवृक्ष में चाहिए था, वह काँटोंवाले बबूल के वृक्ष में बरबस अर्थात् न चाहते हुए भी लग रहा है। मैं तुम्हारे साथ पर्वत से गिर सकती हूँ, अग्नि में जल सकती हूँ और समुद्र में डूब कर मर सकती हूँ, भले ही हमारा घर उजड़ जाये, संसार में अपयश हो, पर जीते जी मैं अपनी बेटी का बावले वर के साथ विवाह नहीं करूँगी।

दो०– भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलाप रोदति बदति, सुता सनेह सँभारि।।९६।।

भा०– गिरिराज हिमाचल की पत्नी को दुःखित देखकर सभी महिलायें व्याकुल हो गयीं और मैना पुत्री पार्वती के स्नेह का स्मरण करके विलाप करते हुए रोने–बिलखने लगीं।

नारद कर मैं काह बिगारा। भवन मोर जिन बसत उजारा।।
अस उपदेश उमहिं जिन दीन्हा। बौरे बरहिं लागि तप कीन्हा।।
साचेहुँ उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया।।
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव की पीरा।।

भा०– मैना बोलीं, अरे! मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने बसते हुए मेरे घर को उजाड़ दिया? जिन्होंने पार्वती को इस प्रकार का उपदेश दिया कि, उसने बावले वर के लिए तपस्या की? सच ही उन नारद जी के मन

में न तो पुत्रादि की ममता है और न ही किसी प्रकार की दया। वे तटस्थ रहनेवाले हैं, उनके पास धन, घर और पत्नी नहीं है, वे दूसरों का घर नष्ट करनेवाले हैं। उन्हें लज्जा और डर नहीं है। भला बाँझ प्रसव की पीड़ा क्या समझे?

जननिहिं बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदुबानी।।
अस बिचारि सोचहु मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता।।

भा०- मैना माँ को व्याकुल देखकर, पार्वती जी विवेक से युक्त कोमल वाणी बोलीं, हे माता! ऐसा विचार करके शोक मत कीजिये। जो विधाता रच देते हैं वह टलता नहीं है।

करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोष लगाइय काहू।।
तुम सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका।।

भा०- हे माताश्री! यदि मेरे कर्म में बावला पति लिखा है, तो किसी को क्यों दोष लगाया जा रहा है? क्या आपसे ब्रह्मा जी के लिखे अंक मिट जायेंगे? माता जी आप बिना प्रयोजन का कलंक मत लीजिये।

छं०- जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं।।
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहिं लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं।।

भा०- हे माँ! कलंक मत लीजिये, करुणा अर्थात् शोक छोड़ दीजिये, उसका यह समय नहीं है, यह तो मंगलगान का समय है। मेरे मस्तक पर जो भी दुःख-सुख लिखा होगा, मैं जहाँ जाऊँगी उसे वहीं पाऊँगी अर्थात् स्थान के परिवर्तन से परिणाम में परिवर्तन नहीं होता। पार्वती जी के इस प्रकार के विनीत और कोमल वचन सुनकर सभी स्त्रियाँ शोक कर रही हैं। विधाता को बहुत प्रकार से दोष लगाकर नेत्रों से अश्रुपात कर रही हैं।

दो०- तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत।।९७।।

भा०- इसी अवसर पर समाचार सुनकर पर्वतराज हिमाचल नारद जी के साथ और सप्तर्षियों को भी अपने साथ लेकर तुरन्त अपने भवन में गये ।

तब नारद सबहीं समुझावा। पूरब कथाप्रसंग सुनावा।।
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी।।
अजा अनादिशक्ति अबिनासिनि। सदा शंभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।

भा०- तब नारद जी ने सबको समझाया और पूर्व की कथा-प्रसंग सुनाया। मैना को सम्बोधित करते हुए नारद जी ने कहा, हे मैना ! मेरी सत्यवाणी सुनो, तुम्हारी पुत्री जगत् की माता और 'भव' अर्थात् शिव जी की नित्यपत्नी हैं। यह 'अजा' अर्थात् माया हैं, इनकी शक्ति अनादि है, इनका कभी नाश नहीं होता, ये निरन्तर भगवान् शङ्कर जी के अर्द्धांग अर्थात् श्रेष्ठ वामांग में निवास करती हैं। ये ही संसार का उद्भव, पालन और प्रलय करने वाली हैं। लीला के लिए अपनी इच्छा से सती जी, पार्वती जी आदि रूप धारण कर लेती हैं।

जनमीं प्रथम दक्ष गृह जाई। नाम सती सुंदर तनु पाई।।
तहँहुँ सती शङ्करहिं बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं।।

भा०– इन्होंने प्रथम मनवन्तर में जाकर दक्ष की पत्नी प्रसूति के गर्भ में जन्म लिया था। तब इनका नाम सती था, इन्होंने बहुत सुन्दर शरीर प्राप्त किया था। वहाँ भी सती जी, शङ्कर भगवान् के साथ ब्याही गयी थीं। यह कथा सारे संसार में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत शिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा।।
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेष सीय कर लीन्हा।।

भा०– एक बार शिव जी के साथ आती हुईं सती जी ने मार्ग में रघुकुलरूप कमल के सूर्य भगवान् श्रीराम को सीता जी को ढूँढते हुए देखा। सती जी के मन में मोह हो गया। उन्होंने शिव जी का कहा नहीं किया अर्थात् भगवान् श्रीराम पर संशय कर लिया, भ्रम के कारण उन्होंने सीता जी का वेश धारण कर लिया।

छं०– सिय बेष सती जो कीन्ह तेहिं अपराध शङ्कर परिहरी।
हर बिरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी।।
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तप किया।
अस जानि संशय तजहु गिरिजा सर्बदा शङ्कर प्रिया।।

भा०– सती जी ने जो सीता जी का वेश धारण किया, उसी अपराध से शिव जी ने उनका परित्याग कर दिया। फिर शङ्कर जी के विरह के कारण पिता के यज्ञस्थल में जाकर सती जी योगाग्नि से भस्म हो गयीं। अब उन्होंने ही तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति शङ्कर जी के लिए दारुण तपस्या की है। हे मैना! ऐसा जानकर संदेह छोड़ दो। पार्वती जी सदैव भगवान् शङ्कर जी की प्रिय पत्नी हैं।

दो०– सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद।
छन महँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संबाद।। ९८।।

भा०– तब नारद जी के वचन सुनकर सभी का दुःख मिट गया और क्षण भर में ही सम्पूर्ण नगर के घर–घर में यह नारद–मैना संवाद व्याप्त हो गया अर्थात् फैल गया।

तब मयना हिमवंत अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे।।
नारि पुरुष शिशु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने।।
लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना।।

भा०– तब मैना और हिमाचल आनन्दित हुए और उन्होंने बार–बार पार्वती जी के चरणों का वन्दन किया। नारी, पुरुष, बालक, युवक, वृद्ध सभी नगर के लोग बहुत प्रसन्न हुए। पुर में मंगलगान होने लगे, सभी ने अनेक स्वर्णकलश सजाये।

भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपशास्त्र जस कछु ब्यवहारा।।
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी।।

भा०– पाकशास्त्र में जैसा कुछ व्यवहार वर्णित है, उसके अनुसार अनेक प्रकार की जेवनार हुई अर्थात् अनेक प्रकार के भोजन बनाये गये। जिस भवन में माता पार्वती जी रह रही थीं, वहाँ की जेवनार अर्थात् व्यंजन–व्यवस्था कैसे कही जा सकती है?

सादर बोले सकल बराती। बिष्णु बिरंचि देव सब जाती।।
बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा।।

भा०– विष्णु जी, ब्रह्मादि सभी जातियों के बराती देवताओं को भोजन कराने के लिए आदरपूर्वक बुलाया गया। भोजन करने वालों की अनेक पंक्तियाँ बैठीं और चतुर भोजन बनाने वाले विविध प्रकार के भोजन को परोसने लगे।

विशेष– रुद्र, आदित्य, वसु, सिद्ध, साध्य, विश्वदेव, मरुत् आदि देवताओं की अनेक जातियाँ होती हैं।

नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगी देन गारी मृदु बानी।।

भा०– समूहबद्ध नारियाँ देवताओं को भोजन करते देखकर, कोमल वाणी में गारी के गीत गाने लगीं।

छं०– गारी मधुर सुर देहिं सुंदरि ब्यंग बचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचु पावहीं।।
जेवँत जो बढ़्यो अनंद सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो।।

भा०– सुंदरियाँ मधुरस्वर में गीत गाती हुई गारी दे रही हैं और व्यंग्यवचन सुना रही हैं। देवता अत्यन्त विलम्ब करते हुए धीरे–धीरे भोजन कर रहे हैं और विनोद सुनकर सुख पा रहे हैं। भोजन करते समय जो आनन्द बढ़ा वह करोड़ों मुखों से नहीं कहा जा सकता। बारातियों को आचमन कराके, ताम्बूल दिया गया। जिसका जहाँ निवास था वहाँ सभी चले गये।

दो०– बहुरि मुनिन हिमवंत कहँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर, पठए देव बोलाइ।।९९।।

भा०– फिर सप्तर्षियों ने गिरिराज हिमाचल को विवाह का मुहूर्त सुनाया विवाह का समय देखकर हिमाचल ने सभी देवताओं को बुला भेजा।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहिं जथोचित आसन दीन्हे।।
बेदी बेद बिधान सँवारी। शुभग सुमंगल गावहिं नारी।।

भा०– आदरपूर्वक हिमाचल ने सभी देवताओं को बुला लिया और सबको यथायोग्य आसन दिये। वेद–विधान के अनुसार सुन्दर विवाह की वेदिका सँवारी गयी। सौभाग्यवती नारियाँ सुन्दर मंगलगीत गाने लगीं।

सिंघासन अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा।।
बैठे शिव बिप्रन सिर नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई।।

भा०– वहाँ अत्यन्त दिव्य–सुन्दर ब्रह्मा जी के द्वारा बनाया गया सिंहासन स्थापित किया गया। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसी आसन पर ब्राह्मणों को प्रणाम करके तथा हृदय में अपने प्रभु श्रीराम जी को स्मरण करके शिव जी बैठे (विराजमान हुए)।

बहुरि मुनीशन उमा बोलाईं। करि श्रृंगार सखी लै आईं।।
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है।।

भा०– फिर श्रेष्ठमुनियों ने विवाहार्थ पार्वती जी को मण्डप में बुलाया और उनका श्रृंगार करके सखियाँ उन्हें ले आयीं। पार्वती जी का रूप देखकर सभी देवता मोहित हो रहे थे, संसार में ऐसा कौन कवि है, जो उनके छवि का वर्णन कर सके?

जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन मनहिं मन कीन्ह प्रनामा।।
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी।।

भा०- पार्वती जी को जगत् की माता और भगवान् शङ्कर जी की पत्नी जानकर देवताओं ने मन–ही–मन प्रणाम किया। पार्वती जी सुन्दरता की मर्यादा हैं अर्थात् उनसे अधिक सृष्टपदार्थ में कहीं सुन्दरता नहीं हो सकती। पार्वती जी का वर्णन करोड़ों मुख से भी संभव नहीं है।

छं०- कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि शोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति शेष शारद मंदमति तुलसी कहा।।
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप शिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मन मधुकर तहाँ।।

भा०- जगत् जननी पार्वती जी की शोभा अत्यन्त श्रेष्ठ है। उनका वर्णन करोड़ों मुखों से भी नहीं करते बन सकता, उसे वेद, शेष और शारदा भी कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। मंदबुद्धि तुलसीदास उसे कैसे कह सकता है? छवि की खानि माता पार्वती वहाँ गयीं, जहाँ मध्यमण्डप में शिव जी विराज रहे थे। संकोच के कारण पार्वती जी शिव जी को देख नहीं सक रही थीं, परन्तु उनका मन–भ्रमर तो उन्हीं प्राणपति शिव जी के चरणकमल में था।

दो०- मुनि अनुशासन गनपतिहिं, पूजेउ शंभु भवानि।
कोउ सुनि संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि।।१००।।

भा०- सप्तर्षियों की आज्ञा से शिव जी एवं पार्वती जी ने गणपति जी की पूजा की। इसे सुनकर और हृदय में देवताओं को अनादि अर्थात् आदि से रहित जानकर कोई संशय नहीं करे। तात्पर्य यह है कि, सृष्टि के आदि में ही गणपति महाराज का आविर्भाव हो चुका था, उन्होंने तो पार्वती जी के यहाँ केवल फिर से अवतार लिया था। जैसे श्रीदशरथ जी के घर में रामावतार के पहले भी प्रह्लाद् जी ने श्रीरामनाम का जप किया था। **“राम नाम जपतां कुतोऽभयं।”** (नृसिंह पुराण–प्रह्लाद वाक्य)।

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन सो सब करवाई।।
गहि गिरीश कुश कन्या पानी। भवहिं समरपी जानि भवानी।।

भा०- वेदों ने विवाह की जैसी विधि बतायी है, महर्षियों ने वह सब सम्पन्न करवाया। पर्वतराज हिमाचल ने कुश और कन्या के हाथ को अपने हाथ में लेकर पार्वती जी को भवानी अर्थात् शिव जी की पत्नी जानकर उन्हें ‘भव’ अर्थात् शिव जी को सौंप दिया।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेशा। हिय हरषे तब सकल सुरेशा।।
बेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय शङ्कर सुर करहीं।।

भा०- जब शिव जी ने पार्वती जी का पाणिग्रहण किया तब सभी श्रेष्ठ देवतागण हृदय में प्रसन्न हुए। श्रेष्ठ मुनिजन वैदिकमंत्र का उच्चारण कर रहे हैं और देवतागण शङ्कर जी की जय हो! जय हो! जय हो! इस प्रकार जय–जयकार कर रहे हैं।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमन बृष्टि नभ भइ बिधि नाना।।
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू।।

भा०- अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे हैं, आकाश से अनेक प्रकार की पुष्प-वृष्टि हुई। शिव जी-पार्वती जी का विवाह हुआ, इस उत्सव का उत्साह सम्पूर्ण लोकों में भर गया।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा।।
अन्न कनकभाजन भरि याना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।।

भा०- पर्वतराज हिमाचल ने सेविका, सेवक, घोड़े, रथ, हाथी, गौ, वस्त्र, मणियाँ और भिन्न-भिन्न विभाग की वस्तुएँ स्वर्ण और सोने के पात्र में अन्न, अनेक विमान, इस प्रकार इतने दहेज दिये जो कहे नहीं जा सकते।

छं०- दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम शङ्कर चरन पंकज गहि रह्यो।।
शिव कृपासागर ससुर कर परितोष सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम परिपूरन हियो।।

भा०- पर्वतराज हिमाचल ने बहुत प्रकार से दहेज दिया और हाथ जोड़कर कहा, हे शिव जी! आप पूर्णकाम हैं अर्थात् आपकी सभी इच्छाएँ प्रभु श्रीराम जी ने पूर्ण कर दी है, मैं आपको क्या दूँ? यह कहकर हिमाचल शिव जी के चरणकमल को पकड़ कर स्थिर रह गये। कृपा के सागर शिव जी ने अपने ससुर हिमाचल का सब प्रकार से परितोष किया अर्थात् उन्हें संतुष्ट किया। पुनः मैना माता ने शिव जी के चरणकमल को पकड़ लिया, उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो उठा।

दो०- नाथ उमा मम प्रान सम, गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बर देहु।।१०१।।

भा०- मैना बोली, हे नाथ ! उमा मेरे प्राण के समान है। उसे आप अपने घर की दासी बनाइये। अब सभी अपराधों को क्षमा कीजिये, प्रसन्न होकर वरदान दीजिये।

बहु बिधि शंभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिर नाई।।
जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्हीं।।

भा०- शङ्कर भगवान् ने सासू माँ को बहुत प्रकार से समझाया। फिर शिव जी के चरणों में सिर नवाकर मैना विवाह-मण्डप से अपने भवन चली गयीं। माता ने पार्वती जी को बुला लिया, गोद में लेकर सुन्दर शिक्षा दी।

करेहु सदा शङ्कर पद पूजा। नारिधरम पति देव न दूजा।।
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्ह कुमारी।।

भा०- हे पार्वती! सदैव शङ्कर भगवान् के चरणों की पूजा करना, क्योंकि नारी के लिए पति ही देवता है, उसका और दूसरा धर्म नहीं होता है। यह वचन कहते-कहते मैना के नेत्र जल से भर गये और फिर उन्होंने अपनी बेटी को हृदय से लगा लिया।

कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।
भइ अति प्रेम बिकल महतारी। धीरज कीन्ह कुसमय बिचारी।।

भा०- विधाता ने संसार में नारी की रचना क्यों की? पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। (इसी पंक्ति से गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम नारी स्वतंत्रता के लिय सामूहिक क्रांति का श्रीगणेश किया।) माता प्रेम में अत्यन्त विकल हो उठीं, कुसमय जानकर फिर मन में धैर्य धारण किया।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना।।
सब नारिन मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननी उर पुनि लपटानी।।

भा०– मैना पार्वती जी से बार–बार मिल रही हैं। उन्हें देवी समझकर उनके चरण पकडकर बार–बार पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं, उनके उस पूजनीय प्रेम का कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सक रहा है। अन्य सभी नारियों से मिलकर सब के गले लगकर अंत में पार्वती जी जाकर फिर माता के हृदय से लिपट गयीं।

छं०– जननिहिं बहुरि मिलि चली उचित अशीष सब काहू दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लै शिव पहँ गईं।।
जाचक सकल संतोषि शङ्कर उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले।।

भा०– फिर माता जी को मिलकर पार्वती जी चल पड़ीं। सभी वृद्ध महिलाओं ने पार्वती जी को उचित आशीर्वाद दिया। पार्वती जी लौट–लौटकर माता के शरीर को ही निहारती थीं। तब विजयादि सखियाँ उन्हें शिव जी के पास ले गयीं। अपने पाये हुए दहेज के धन से सभी याचकों को संतुष्ट करके भगवान् शङ्कर जी, पार्वती जी के साथ अपने भवन कैलाश को चले। सभी देवतागण पुष्प–वृष्टि करके प्रसन्न हुए और आकाश में सुंदर नगारे बजे।

दो०– चले संग हिमवंत तब, पहुँचावन अतिहेतु।
बिबिध भाँति परितोष करि, बिदा कीन्ह बृषकेतु।।१०२।।

भा०– तब अत्यन्त प्रेम से पर्वतराज हिमाचल शिव–पार्वती को पहुँचाने के लिए उनके साथ ही चल पड़े। अनेक प्रकार से परितोष अर्थात् आश्वासनों से संतुष्ट करके वृषभध्वज भगवान् शङ्कर ने अपने ससुर हिमाचल को विदा किया।

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल शैल सर लिए बोलाई।।
आदर दान बिनय बहुमाना। सब करि बिदा कीन्ह हिमवाना।।

भा०– पर्वतराज हिमाचल तुरन्त भवन आये और सभी पर्वतों, तालाबों आदि जड़वस्तु के अभिमानी देवताओं को बुला लिया। हिमाचल ने आदर, दान, प्रार्थना और सम्मान करके सब को विदा किया।

जबहिं शंभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए।।
जगत मातु पितु शंभु भवानी। तेहिं श्रृंगार न कहउँ बखानी।।

भा०– जब शिव जी कैलाश आये तब सभी देवता अपने–अपने लोक को चले गये। पार्वती जी एवं शिव जी जगत के माता–पिता हैं, इसलिए उनका सम्प्रयोग श्रृंगार, मैं बखान कर नहीं कह रहा हूँ।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन समेत बसहिं कैलासा।।
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ।।

भा०– बाह्यदृष्टि से पार्वती जी और शिव जी अनेक प्रकार से भोग–विलास कर रहे हैं और अपने गणों के सहित कैलाश पर निवास कर रहे हैं। शिव जी एवं पार्वती जी का विहार नित्य–नूतन होता गया, इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

तब जनमेउ षडबदन कुमारा। तारक असुर समर जेहिं मारा।।
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षडमुख जनम सकल जग जाना।।

भा०– इसके अनन्तर छः मुखवाले कुमार स्वामी कार्तिकेय जी का जन्म हुआ, जिन्होंने युद्ध में तारकासुर का वध किया। कार्तिकेय जी का जन्म आगमों, वेदों और पुराणों में प्रसिद्ध है, इसे सारा संसार जानता है।

छं०– जग जान षडमुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संक्षेपहिं कहा।।
यह उमा शंभु बिबाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुख पावहीं।।

भा०– षडानन कार्तिकेय जी का जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ को संसार जानता है, इसलिए मैंने शङ्कर जी के पुत्र कार्तिकेय जी का चरित्र संक्षेप में कह दिया। यह पार्वती–शङ्कर का विवाह जो नर–नारी कल्याण कार्यों में, विवाह के समय और मांगलिक प्रसंगों में कहेंगे और गायेंगे वे सदैव सुख पायेंगे।

दो०– चरित सिंधु गिरिजा रमन, बेद न पावहिं पार।
बरनै तुलसीदास किमि, अति मतिमंद गँवार।।१०३।।

भा०– पार्वती जी के पति भगवान् शिव जी चरित्रों के समुद्र हैं, वेद भी उनका पार नहीं पाते, फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि वाला गँवार तुलसीदास उनका वर्णन कैसे कर सकता है?

शंभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा।।
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयन नीर रोमावलि ठाढ़ी।।

भा०– रसपूर्ण और सुहावना शिवचरित्र सुनकर भरद्वाज मुनि ने बहुत सुख पाया अर्थात् असीम आनन्द की अनुभूति की। श्रीरामकथा पर उनके मन में बहुत लालसा बढ़ गयी। उनकी आँखों में आँसू भर आये, रोमावलियाँ खड़ी हो गयीं, अर्थात् शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोम खड़े होकर प्रभु श्रीराम जी का अभिनन्दन करने लगे।

प्रेम बिबश मुख आव न बानी। दशा देखि हरषे मुनि ग्यानी।।
अहो धन्य तव जन्म मुनीशा। तुमहि प्रान सम प्रिय गौरीशा।।

भा०– भरद्वाज जी प्रेम में मग्न हो गये, उनके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी–मुनि याज्ञवल्क्य जी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, अहो! हे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज! आप का जन्म धन्य है, क्योंकि गौरीपति शिव जी आपको प्राण के समान प्रिय हैं।

शिव पद कमल जिनहि रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहुँ न सोहाहीं।।
बिनु छल बिश्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।।

भा०– जिनको शिव जी के चरणकमलों में भक्ति नहीं है, वे श्रीराम जी को सपने में भी नहीं भाते। विश्वनाथ के चरणों में छलशून्य प्रेम, यही श्रीराम के भक्ति का लक्षण है।

शिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी।।
पन कर रघुपति भगति दृढ़ाई। को शिव सम रामहिं प्रिय भाई।।

भा०– हे भरद्वाज! शिव जी के समान श्रीराम जी की मर्यादा–व्रत को धारण करनेवाला और कौन होगा, जिन्होंने चरित्रहीनता रूप पाप के बिना भी सती जैसी नारी का त्याग कर दिया और प्रतिज्ञा करके श्रीराम जी की भक्ति को दृढ़ किया? हे भाई! भला शिव जी के समान और कौन श्रीराम जी को प्रिय हो सकता है?

दो०– प्रथमहिं मैं कहि शिव चरित, बूझा मरम तुम्हार।
शुचि सेवक तुम राम के, रहित समस्त बिकार।।१०४।।

भा०– कथा के प्रारम्भ में ही शिवचरित्र कहकर मैंने आपका मर्म समझ लिया है। आप सभी विकारों से रहित तथा श्रीराम जी के पवित्र सेवक हैं।

मैं जाना तुम्हार गुन शीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला।।
सुनु मुनि आज समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुख मन मोरे।।

भा०– मैंने आपके गुण और स्वभाव को जान लिया है। अब मैं श्रीराम जी की लीला कह रहा हूँ सुनिये, हे मुनि! सुनो आज तुम्हारे समागम से मेरे मन में जितना सुख हुआ है, वह मुझसे कहा नहीं जा रहा है।

राम चरित अति अमित मुनीशा। कहि न सकहिं शत कोटि अहीशा।।
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी।।

भा०– हे मुनिराज भरद्वाज! श्रीराम जी के चरित्र अत्यन्त असीम है, इन्हें अरबों शेषनारायण भी नहीं कह सकते, फिर भी वाणी के स्वामी, धनुषपाणी, श्रीराम जी को स्मरण करके यथाश्रुत अर्थात् जिस प्रकार मैंने काकभुशुण्डि जी से सुना है, उसी प्रकार बखान कर कह रहा हूँ। (याज्ञवल्क्य जी ने काकभुसुण्डि जी से ही श्रीरामचरितमानस प्राप्त किया है, यथा– **तेहिं सन जाग्यबल्क्य पुनि पावा।** (मानस, १.३०.५)

शारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी।।
जेहिं पर कृपा करहिं जन जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी।।

भा०– सरस्वती जी लकड़ी से बनी हुई नारी अर्थात् कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी सबके स्वामी श्रीराम जी सूत्रधार अर्थात् उस कठपुतली को नचानेवाले हैं। अपना भक्त जानकर जिस पर भी प्रभु श्रीराम जी कृपा कर देते हैं, वे कवि अपने हृदय रूप आँगन में वाणीरूप कठपुतली को नचाते हैं।

प्रनवउँ सोइ कृपालु रघुनाथा। बरनउँ बिशद तासु गुन गाथा।।
परम रम्य गिरिवर कैलासू। सदा जहाँ शिव उमा निवासू।।

भा०– उन्हीं कृपालु रघुनाथ जी को मैं प्रणाम करता हूँ। उन्ही श्रीराघवेन्द्र सरकार की निर्मल गुणगाथा का वर्णन करता हूँ। पर्वतों में श्रेष्ठ कैलाश बहुत रमणीय हैं जहाँ सदैव शिव जी एवं पार्वती जी का निवास अर्थात् नियतवास है।

दो०– सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं शिव सुखकंद।।१०५।।

भा०– सिद्ध, जिनका तप ही धन है ऐसे तपस्वी, योगिजन, देवता, किन्नर तथा मुनियों के समूह, इनके अतिरिक्त अन्य सभी सुकृति साधू–सन्त, उस कैलाश पर्वत पर वास करते हैं और सभी सुख के मेघस्वरूप शिव जी की सेवा करते हैं।

* मासपारायण, तीसरा विश्राम *

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं।।

भा०– जो विष्णु जी एवं शिव जी के विमुख हैं, जिन्हें वैदिक सनातनधर्म पर प्रेम नहीं है, वे लोग उस कैलाश पर्वत पर स्वप्न में भी नहीं जा सकते।

तेहि गिरि पर बट बिटप बिशाला। नित नूतन सुंदर सब काला।।
त्रिबिध समीर सुशीतल छाया। शिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया।।

भा०- उसी कैलाश पर निरन्तर नया, सभी कालों में सुन्दर लगनेवाला एक विशाल वटवृक्ष है। शीतल, मन्द, सुगन्ध नामक तीन प्रकार की वायु के कारण उस वटवृक्ष की छाया सुखद और शीतल बनी रहती है। उसे वेदों ने शिव–विश्राम विटप (शिव जी को विश्राम देनेवाला वृक्ष) की संज्ञा देकर गाया है।

एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ।।
निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं शंभु कृपाला।।

भा०- सबके स्वामी और सहज समर्थ शिव जी एक बार उस वट वृक्ष के नीचे गये। उस वृक्ष को देखकर शिव जी के मन में अत्यन्त सुख हुआ। उस भगवत् भजन सुख के परिणामस्वरूप, अपने हाथ से हाथियों के शत्रु बाघ का चर्म बिछाकर, कृपालु शङ्कर जी सहज ही बिना कुछ सोचे विचारे वहाँ बैठ गये।

कुंद इंदु दर गौर शरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा।।
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना।।
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आनन शरद चंद्र छबि हारी।।
दो०- जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिशाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल।।१०६।।

भा०- शिव जी का शरीर कुन्द–पुष्प के समान सुगंधित और श्वेत चन्द्रमा के समान मधुर, आकर्षक, प्रकाशमान तथा शंख के समान श्वेत और चिकना था। उनकी भुजाएँ लम्बी थीं और वे मुनिवस्त्र को परिधान रूप में पहने हुए थे। उनके चरण नवीन लालकमल के समान थे। उनके चरणों के नख की ज्योति भक्तों के हृदय के अंधकार को हरण कर रही थी। त्रिपुर के शत्रु शिव जी सर्प और भस्म को आभूषण रूप में धारण किये थे। उनका मुख शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा के छवि को भी चुरा रहा था। उनके सिर पर जटा का मुकुट था और देवनदी गंगा जी लहरा रही थीं। कमल के जैसे उनके विशाल नेत्र थे। वे नीलकण्ठ, लावण्य अर्थात् आकर्षक सौन्दर्य के सागर थे। शिव जी के मस्तक पर शुक्ल पक्ष की द्वितीया के बाल चन्द्रमा सुशोभित हो रहे थे।

बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे शरीर शांतरस जैसे।।
पारबती भल अवसर जानी। गईं शंभु पहँ मातु भवानी।।

भा०- कामदेव के शत्रु भगवान् शिव जी वटवृक्ष के नीचे व्याघ्र के चर्म के आसन पर बैठे कैसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे शान्तरस ने ही शरीर धारण कर लिया हो। भला अर्थात् अनुकूल अवसर जानकर भवानी अर्थात् शिव जी की पत्नी माता पार्वती जी भगवान् शङ्कर जी के पास गयीं।

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। बाम भाग आसन हर दीन्हा।।
बैठीं शिव समीप हरषाई। पूरब जन्म कथा चित आई।।

भा०- प्रिया को आयी हुई समझकर, शिव जी ने उनका बहुत आदर किया और श्रीरामकथा कहकर संसार का क्लेश हरण करने वाले शिव जी ने पार्वती जी को बायें भाग में आसन दिया। पार्वती जी प्रसन्न होकर शिव जी के अत्यन्त समीप वामभाग में जाकर बैठ गयीं, उनके चित्त में पूर्वजन्म की कथा आ गयी।

पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोलीं प्रिय बानी।।
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह शैलकुमारी।।

भा०– अपने पति शिव जी के हृदय में स्वयं के प्रति अत्यन्त प्रेम का अनुमान करके उमा जी विनम्रतापूर्वक हँसकर प्रिय लगनेवाली वाणी बोलीं। जो कथा सम्पूर्ण लोकों का हित करती है, उसी श्रीरामकथा को पर्वतपुत्री पार्वती जी शिव जी से पूछना चाहीं।

बिश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी।।
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा।।

भा०– पार्वती जी बोलीं, हे विश्वनाथ! हे मेरे नाथ, त्रिपुर के शत्रु शिव जी! आपकी महिमा तीनों लोकों में विदित है। जड़, चेतन, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

दो०- प्रभु समरथ सर्बग्य शिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम।।१०७।।

भा०– हे शिव जी! आप सबके स्वामी हैं। कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ, सम्पूर्ण कलाओं और गुणों के मंदिर तथा योग, ज्ञान और वैराग्य के समुद्र हैं। आप का शिव यह दो अक्षरों का नाम प्रणत भक्तों के लिए कल्पवृक्ष है।

जौ मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी।।
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना।।

भा०– हे सुख के राशि महादेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझको अपनी सत्यसेविका जानते हैं, तो हे प्रभो! अनेक प्रकार से श्रीरघुनाथ जी की कथा कहकर आप मेरा अज्ञान हर लीजिये।

जासु भवन सुरतरु तर होई। सह कि दरिद्र जनित दुख सोई।।
शशिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी।।

भा०– जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो तो क्या वह दरिद्रता से जनित दुःख को सहन करता है अर्थात् नहीं, उसको तो कल्पवृक्ष का लाभ मिलता ही मिलता है। हे बालचन्द्र को आभूषण बनाने वाले, मेरे स्वामी शिव जी! ऐसा अपने हृदय में विचार करके आप मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को हर लीजिये।

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी।।
शेष शारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना।।

भा०– हे स्वामी! जो परमार्थवादी, ब्रह्मज्ञानी मुनिजन हैं, वे श्रीराम को आदिरहित ब्रह्म कहते हैं। शेष, सरस्वती, वेद और पुराण ये सभी रघुपति अर्थात् सगुणब्रह्म श्रीराम का गुणगान करते हैं।

तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती।।
राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई।।

भा०– हे कामदेव के शत्रु शिव जी! फिर आप भी आदरपूर्वक दिन–रात राम–राम रटते, जपते रहते हैं। वह राम क्या वही अवधनरेश के पुत्र हैं, जो मेरे पूर्वअवतार में सीता जी के वियोग में विकल दिख रहे थे? अथवा, कोई अनिर्वचनीय, अजन्मा, निर्गुण, अलच्छगति वाले हैं अर्थात् कौन हैं, वे राम, जिन्हें मुनि ब्रह्म कहते हैं, शेष आदि जिनका यश गाते हैं और आप दिन रात राम–राम रट कर जिन्हें जपते हैं?

दो०- जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि।।१०८।।

भा०– यदि सबके आराध्य श्रीराम, राजा दशरथ के पुत्र हैं, तो वे ब्रह्म कैसे? यदि दशरथराज–पुत्र होकर भी श्रीराम ब्रह्म हैं, तो फिर नारी के विरह में उनकी बुद्धि कैसी भोली हो गयी? उनका विरहीचरित्र देखकर और आप से लोकोत्तर महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रमित हो रही है।

जौ अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।।
अग्य जानि रिसि उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू।।

भा०– यदि श्रीराम कोई चेष्टा से रहित, व्यापक और सर्वसमर्थ विलक्षण तत्त्व हों तो, हे नाथ! वह भी मुझे समझाकर कहिये। मुझे ज्ञानशून्य अथवा मूर्ख जानकर, हृदय में क्रोध धारण मत कीजिये, जिस प्रकार मेरा मोह मिटे वही कीजिये।

मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुमहिं सुनाई।।
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भाँति हम पावा।।

भा०– मैंने सती शरीर से वन में श्रीराम जी की प्रभुता देखी थी। भय से अत्यन्त व्याकुल होने के कारण आपको नहीं सुनाया, फिर भी मलिन मन होने के कारण उस समय मेरे मन को ज्ञान नहीं आया। उसका फल हमने भली–भाँति पा लिया अर्थात् आप के द्वारा त्यागी गयी, विरह की व्यथा सही, पिता के यहाँ अपना अपमान सहा, योगाग्नि से वह शरीर भस्म किया तथा उग्र तपस्या की, यह सब मेरे अपराधों का ही तो मुझे दण्ड मिला।

अजहूँ कछु संशय मन मोरे। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे।।
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा।।

भा०– अब भी मेरे मन में कुछ संशय है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो ! उस समय आपने मुझे बहुत प्रकार से समझाया था, हे नाथ! वह समझकर क्रोध मत कीजिये।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं।।
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा।।

भा०– इस समय पहले जैसा विकृत मोह नहीं है, मन में श्रीरामकथा पर रुचि है। हे सर्पों के राजा शेष को आभूषण बनाकर धारण करने वाले! हे देवताओं के स्वामी शिव जी ! आप श्रीराम के पवित्र गुणों की गाथा कहिये।

दो०– बंदउँ पद धरि धरनि सिर, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिशद जस, श्रुति सिद्धांत निचोरि।।१०९।।

भा०– पृथ्वी पर मस्तक रखकर, मैं आप के चरणों की वन्दना करती हूँ। हाथ जोड़कर आपसे विनय करती हूँ। आप वेदों के सिद्धान्तों को निचोड़कर श्रीराम के स्वच्छ यश का वर्णन कीजिये।

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी।।
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं।।
अति आरत पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया।।

भा०– यद्यपि प्राकृत नारी इन गूढ़सिद्धान्तों की अधिकारिणीं नहीं होती, फिर भी मैं मन, कर्म, वचन से आपकी दासी हूँ, कोई साधारण नारी नहीं हूँ। सन्तजन जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़तत्व को भी नहीं छिपाते। हे देवताओं के स्वामी तथा देवताओं के धनस्वरूप शिव जी ! मैं अत्यन्त आर्त होकर पूछ रही हूँ। आप कृपा करके रघुकुल के स्वामी सगुणब्रह्म श्रीराम की कथा कहिये।

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी।।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा।।
कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन काही।।
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा।।
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु शङ्कर शुभशीला।।

भा०– पहले तो विचार कर वह कारण कहिये, जिस कारण से निर्गुणब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया। हे प्रभो! फिर श्रीराम का अवतार कहिये, फिर आप भगवान् श्रीराम का उदार बालचरित्र कहिये। जिस प्रकार श्रीराम ने सीता जी से विवाह किया, श्रीराम ने अपना राज्य छोड़ा उसमें किसका दोष था? हे नाथ! भगवान् श्रीराम ने वन में निवास करके जो अपार चरित्र किये वह कहिये। श्रीराम ने रावण को कैसे मारा? हे शुभस्वभाव वाले शङ्कर जी! राजसिंहासन पर बैठकर भगवान् श्रीराम ने जो बहुत सी लीलायें की, वह सब कहिये।

दो०– बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंशमनि, किमि गवने निज धाम।। ११०।।

भा०– हे करुणा के भवन शिव जी! बहुरि अर्थात् कथाप्रसंग से पीछे मुड़कर वह सुनाइये जो श्रीराम ने बहुत बड़ा आश्चर्य का कार्य किया। रावणवध के पश्चात् एक ही पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अठारह पद्म यूथपतियों से संचालित असंख्य वानरी प्रजा के साथ रघुवंशमणि भगवान् श्रीराम अपने श्रीअवध धाम को कैसे गये?

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी।।
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा।।

भा०– हे प्रभो! जिसके विशिष्टज्ञान में ज्ञानी–मुनि मग्न हैं, उन विशिष्टाद्वैत प्रतिपाद्य परमतत्त्व को आप बखान कर कहिये। फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य को विभाग सहित बखान करके समझाइये।

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका।।
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयालु राखहु जनि गोई।।

भा०– हे अत्यन्त निर्मल विवेकवाले, मेरे नाथ शिव जी! ऐसे अनेक श्रीराम रहस्यों का वर्णन कीजिये। हे दयालु प्रभो! जो मैंने न पूछा हो वह भी छिपाकर मत रखिये।

तुम त्रिभुवन गुरु बेद बखाना। आन जीव पामर का जाना।।

भा०– सोलह प्रश्न करके पार्वती जी विनयपूर्वक कहने लगीं, हे भोलेनाथ! आप तीनों लोकों के गुरु हैं, ऐसा वेद कहते हैं, अन्य साधारण पामरजीव आपको क्या जानें ?

प्रश्न उमा के सहज सुहाये। छल बिहीन सुनि शिव मन भाये।।
हर हिय रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए।।
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा।।

भा०– इस प्रकार पार्वती जी के छल से रहित स्वभावतः सुन्दर सोलह प्रश्न सुनकर शिव जी बहुत प्रसन्न हुए। हर अर्थात् पापहारी शिव जी के हृदय में सभी श्रीरामचरित आ गये। उनका शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा। उनके नेत्र में आँसू भर आये। श्रीरघुनाथ जी का रूप उनके हृदय में आ गया। उन्हें परम आनन्द की अनुभूति हुई और शिव जी ने असीम सुख प्राप्त किया।

दो०- मगन ध्यानरस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेश तब, हरषित बरनै लीन्ह।। १११।।

भा०-शिव जी प्रभु श्रीराम के ध्यानरस में दो दण्डपर्यन्त मग्न रहे, फिर मन को बाहर किया तब महान् ईश अर्थात् सबका ईशन् करनेवाले शिव जी प्रसन्न होकर श्रीराम के चरित्रों का वर्णन वाणी में करना स्वीकार किया।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।।
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।।

भा०- जिस प्रकार रस्सी को पहचाने बिना असत्य सर्प भी सत्य प्रतीत होता है, उसी प्रकार जिन परमात्मा श्रीराम को जाने बिना संसार के असत्य सम्बन्ध भी सत्य लगते हैं, जिन प्रभु श्रीराम को जान लेने से जगत् उसी प्रकार खो जाता है, जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम चला जाता है।

विशेष- यहाँ 'असत्य' शब्द का अर्थ परिवर्तनशील है, मिथ्या नहीं। यहाँ 'हेराई' शब्द का प्रयोग करके गोस्वामी जी ने जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्यसम्मत विशिष्टाद्वैतवादानुमोदित सत्ख्यातिवाद का अनुमोदन किया है।

बंदउ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू।।
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी।।

भा०- जिनका श्रीरामनाम जपने से सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती है, बालरूप में विराजमान उन्हीं श्रीराम का मैं वन्दन करता हूँ। जो सभी मंगलों के भवन हैं और सभी अमंगलों को हरने वाले हैं, चक्रवर्ती महाराज दशरथ के आँगन में विहार करनेवाले, वे ही बालकरूप भगवान् श्रीराम द्रवित हो जायें। (अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व आदि सभी सिद्धियाँ श्रीरामनाम जप से ही साधक को सुलभ हो जाती हैं।)

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी।।
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम समान नहिं कोउ उपकारी।।
पूँछिहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जस पावनि गंगा।।
तुम रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हेहु प्रश्न जगत हित लागी।।

भा०- त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी, भगवान् श्रीराम जी को प्रणाम करके प्रसन्न होकर अमृत के समान मधुर वाणी का उच्चारण करते हुए बोले, हे पर्वतराज पुत्री पार्वती! तुम धन्य हो! धन्य हो ! तुम्हारे समान जगत् का कोई उपकारी नहीं है। तुमने समस्त लोकों को ही पवित्र करनेवाली गंगा जी के समान श्रीरामकथा के सोलह प्रसंग पूछे हैं। तुम श्रीराम के चरणों में अनुराग रखती हो। तुमने जगत् के हित के लिए प्रश्न किये हैं।

दो०- राम कृपा ते पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
शोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं।।११२।।

भा०- हे पार्वती! मेरे विचार से श्रीराम की कृपा के कारण स्वप्न में भी तुम्हारे मन में शोक, मोह, संदेह और भ्रम आदि कुछ भी नहीं है अर्थात् इष्टदेवता श्रीराम से तुम्हारा वियोग नहीं है। यद्यपि तुम्हें शोक नहीं है, तुम स्वयं ज्ञानमयी हो यद्यपि तुममें मोह नहीं है, तुम स्वयं सर्वज्ञ हो, इसलिए तुम्हें संदेह नहीं है। तुम्हारा ज्ञान प्रभु की कृपा से अज्ञान द्वारा आवृत नहीं होता, इसलिए तुम्हारे मन में भ्रम भी नहीं है।

तदपि अशंका किन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई।।
जिन हरि कथा सुनी नहिं काना। स्रवन रंध्र अहिभवन समाना।।

भा०– फिर भी तुमने वही अशंका अर्थात् अकार के वाच्य श्रीराम जी के विषय में शंका की है, जिसके सम्बन्ध में कहने और सुनने से सबका हित होगा। (अकारः रामचन्द्रः तत् सम्बन्धे शंका अशंका।)

नयनन संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा।।
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला।।
जिन हरिभगति हृदय नहिं आनी। जीवत शव समान तेइ प्रानी।।
जो नहिं करइ रामगुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना।।
कुलिश कठोर निठुर सो छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती।।

भा०– जिन कानों ने श्रीहरि भगवान् की कथा नहीं सुनी है, उन कानों के छिद्र साँप के बिल के समान हैं। जिन नेत्रों ने सन्तों के दर्शन नहीं किया, उन नेत्रों को मोरपंख के नेत्र के समान निरर्थक समझना चाहिए। जो भगवान् और गुरुदेव के श्रीचरणों के मूल में नहीं नमित् हुआ, वे सिर तुमरी (कड़वी लौकी) के समान हैं अर्थात् उनका कोई उपयोग नहीं है। जिन्होंने अपने हृदय में श्रीरामभक्ति को लाकर स्थापित नहीं किया, वे प्राणी जीते हुए भी मृतक के समान हैं। जो जिह्वा श्रीराम का गुणगान नहीं करती, वह मेंढ़क के जीभ के समान है। वह निष्ठुर छाती वज्र से भी कठोर है, जो प्रभु श्रीराम के चरित्र को सुनकर नहीं प्रसन्न होती।

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहन शीला।।

भा०– हे पार्वती! अब श्रीराम की वह लीला सुनो, जो सुर अर्थात् देवताओं और दैवी सम्पत्तिवालों के लिए हितैषिणीं है तथा दैत्यों और आसुरी सम्पत्तिवालों को सहज ही विमोहित कर देती है।

दो०– रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख दानि।
संतसमाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि।।११३।।

भा०– श्रीराम की कथा कामधेनु के समान ही सेवन करने मात्र से सभी सुखों को प्रदान करनेवाली होती है। सन्तों का समाज सम्पूर्ण देवलोक है, ऐसा जानकर श्रीरामकथा को कौन नहीं सुनेगा?

रामकथा सुंदर कर तारी। संशय बिहग उड़ावनहारी।।
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।।

भा०– श्रीरामकथा अत्यन्त सुन्दर हाथ की ताली है, जो संशयरूप पक्षी को उड़ानेवाली है अर्थात् जैसे ताली बजाने से पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार श्रीरामकथा से संशय समाप्त हो जाता है।

विशेष– दोनों हाथों को मिलाने से ताली बजती है, इसी प्रकार लोकमत तथा वेदमत के समन्वय से श्रीराम कथा प्रस्तुत होती है।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए।।
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना।।
तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी।।

भा०– भगवान् श्रीराम के नाम, गुण, सुहावने चरित्र, उनके जन्म तथा प्रभु के अलौकिक कर्म अनगिनत हैं, इस प्रकार वेदों ने गाया है। जैसे भगवान् श्रीराम का अन्त नहीं है, वे अनन्त हैं, उसी प्रकार श्रीरामकथा, उनकी कीर्ति

और अनेक–अनेक प्रकार के गुण भी अनन्त हैं। हे पार्वती! फिर भी जैसे मैंने हंस के वेश में नित्य पर्वत पर जाकर काकभुशुण्डि जी के मुख से श्रीरामकथा सुनी है और जैसी मेरी बुद्धि है, इन दोनों श्रुति और मति के अनुसार श्रीरामकथा पर तुम्हारी प्रीति देखकर मैं श्रीहरिकथा कहूँगा।

उमा प्रश्न तव सहज सुहाये। सुखद संत सम्मत मोहि भाये।।
एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहिहु भवानी।।
तुम जो कहा राम कोउ आना। जेहिं श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना।।

भा०– हे पार्वती! आप के सोलहों प्रश्न स्वभाव से सुहावने और सुखदायक हैं। यह सन्तों से सम्मत हैं, इसलिए सभी मुझे भाये अर्थात् अच्छे लगे, परन्तु एक बात मुझे नहीं अच्छी लगी। हे पार्वती! यद्यपि तुमने वह मोह के वश होकर कही। तुमने जो कहा कि, जिन्हें वेद गाते हैं और मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं वे श्रीराम दशरथपुत्र श्रीराम से कोई अतिरिक्त तत्त्व है।

दो०– कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखंडी हरि पद बिमुख, जानहिं झूँठ न साँच।। ११४।।

भा०– इस प्रकार, वे ही अधमकोटि के जीव कहते हैं, जो मोहरूप पिशाच के द्वारा खाये गये हैं, जो पाखण्डी हैं, जो भगवान् के चरणों से विमुख हैं, जो झूठ और सत्य का अन्तर नहीं जानते।

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी।।
लंपट कपटी कुटिल बिशेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी।।

भा०– जो अज्ञानी, वेद को न जाननेवाले, ज्ञान–वैराग्य रूप नेत्रों से रहित तथा भाग्यहीन हैं, जिनके मनरूप दर्पण पर विषय की काई लगी हुई है, जो लंपट अर्थात् विषयभोगों में आसक्त हैं, जो कपटी और विशेष कुटिल हैं, जिन्होंने सन्तों की सभा का स्वप्न में भी दर्शन नहीं किया है।

कहहिं ते बेद असम्मत बानी। जिनहिं न सूझ लाभ नहिं हानी।।
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना।।

भा०– जिन्हें लाभ और हानि कुछ भी नहीं समझ पड़ता वे ही इस प्रकार वेदों से असम्मत वाणी बोलते हैं। तात्पर्य यह है कि, वेद के अनुसार दशरथपुत्र श्रीराम ही परब्रह्म श्रीराम हैं। जिनका मनरूप दर्पण मलिन हैं और जो ज्ञान–वैराग्यरूप नेत्र से विहीन हैं, वे भवनरूप धन के दरिद्र साधारण लोग श्रीरामरूप के दर्शन कैसे कर सकते हैं ?

जिन के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका।।
हरिमाया बश जगत भ्रमाहीं। तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं।।

भा०–जिन्हें निर्गुण और सगुण का विवेक नहीं है, वे अपने मन से कल्पित अनेक प्रकार के सिद्धान्त शून्य वचन बोलकर जल्पना करते रहते हैं। वे प्रभु की माया के वश होकर संसार में भटकते रहते हैं। उन्हें कहने में कुछ भी अघटित नहीं है अर्थात् वे सब कुछ कह सकते हैं, उन्हें कौन रोक सकता है?

बातुल भूत बिबश मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।।
जिन कृत महामोह मद पाना। तिन कर कहा करिय नहिं काना।।

भा०- जो सन्निपात से ग्रसित होते हैं, जिन पर भूत–प्रेतों का आवेश रहता है और जो मदिरा पीकर उन्मत्त अर्थात् बावले हो जाते हैं, वे विचारपूर्वक वाणी नहीं बोलते। जिन्होंने महामोहरूप मदिरा का पान कर लिया है, उनके कथन को कान में नहीं लाना चाहिए अर्थात् उनकी बात नहीं सुननी चाहिए, क्योंकि उसका कोई अर्थ नहीं होता।

सो०- अस निज हृदय बिचारि, तजहु संशय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रबि कर बचन मम।।११५।।

भा०- हे पार्वती! अपने हृदय में इस प्रकार विचार करके संशय छोड़ दो। प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों का भजन करो। भ्रमरूप अंधकार को नष्ट करने के लिए उदयकालीन सूर्य की किरणों के समान मेरे वचन सुनो।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बश सगुन सो होई।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।

भा०- मुनि, पुराण, विद्वान् तथा चारों वेद यही तथ्य गाकर कहते हैं कि, सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है। जो प्रभु परमेश्वर श्रीराम निर्गुण, अरूप, अलक्ष्य, और अज हैं, वे ही भक्त के प्रेम के वश होकर सगुण, रूपवान, सबके लिए दृश्य और जन्मवान हो जाते हैं। जो गुणों से रहित हैं, वे किस प्रकार से सगुण हैं, जैसे जल, बर्फ और ओले अलग नहीं है। वही जलतत्त्व पिघलकर जल बन जाता है और तापमान के शून्य डिग्री पर चले जाने पर घनीभूत होकर छोटे–छोटे टुकड़ों में ओला बन जाता है और बर्फ का पहाड़ भी बन जाता है।

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा।।
राम सच्चिदानंद दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा।।
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना।।

भा०- जिन श्रीरघुनाथ जी का श्रीराम नाम भ्रमरूप अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य है, उनके लिए विमोह के प्रसंग कैसे कहे जा सकते हैं अर्थात् वे श्रीराम नाम के वाच्य नामी प्रभु कैसे मोह से ग्रस्त हो सकते हैं? सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीराम जी शाश्वत सूर्य हैं। वहाँ मोहरूप रात्रि का लव–लेशमात्र भी नहीं है अर्थात् जैसे सूर्य के समक्ष रात्रि का छोटा सा भी अंश टिक नहीं सकता, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम के समक्ष मोह का लघुत्तम अंश भी नहीं रह सकता। भगवान् श्रीराम स्वभावतः प्रकाश रूप हैं, फिर वहाँ विज्ञान के प्रभात नहीं रह सकता अर्थात् जहाँ निरन्तर मध्याह्न ही हो, वहाँ कैसा प्रातःकाल?

राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेश पुराना।।

भा०- हर्ष, दुःख, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार और अभिमान ये जीव के धर्म हैं, ईश्वर के नहीं। सारा संसार जानता है कि, श्रीराम जी सर्वव्यापक, परमानन्दस्वरूप, सबसे परे और परमकारण ब्रह्मा, विष्णु, शिव के भी ईश्वर, पुराणपुरुष, परब्रह्म, परमात्मा हैं।

दो०- पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि शिव नायउ माथ।।११६।।

भा०- जो प्रसिद्ध पुरुष अर्थात् क्षर प्रकृति और अक्षर जीवात्मा से भी उत्तम हैं, वे जो प्रकाश के खजाने प्रकट अर्थात् माया के आवरण से दूर हैं, जो परावर अर्थात् ब्रह्मादि से लेकर चींटीपर्यन्त पर अवर जीवों के नाथ हैं, वही रघुकुल के मणि दशरथनन्दन श्रीराम मेरे स्वामी हैं, ऐसा कहकर शिव जी ने मस्तक नवाकर श्रीराम को प्रणाम किया।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी।।

भा०– अज्ञानीजन अपने भ्रम तो समझते नहीं, वे जड़ प्राणी प्रभु श्रीराम पर ही मोह का आरोपण करते हैं।

जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।।
चितव जो लोचन अंगुलि लाए। प्रगट जुगल शशि तेहि के भाए।।

भा०– जिस प्रकार, आकाश में मेघों के समूह को देखकर कुत्सित विचारवाले लोग कहते हैं कि, बादलों ने सूर्य को ढँक लिया है। जो लोग अपने आँखों में उँगली लगाकर देखते हैं, उनकी दृष्टि में चन्द्रमा दो प्रतीत होते हैं, जबकि वह भेद उँगली के कारण होता है न कि, वह चन्द्रमा का स्वाभाविक भेद है।

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।

भा०– हे पार्वती! श्रीराम जी के विषय में मोह की वही स्थिति है, जैसे आकाश में धूल और धुँये की शोभा होती है अर्थात् जैसे आकाश में रहकर भी धुँआ और धूल आकाश के किसी अंश को नही ढँक पाते, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम के प्रति आरोपित हुए मोह, उनके ऐश्वर्य को लांछित नहीं कर पाते।

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता।।
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।

भा०– पाँचों विषय, दस बाह्यकरण और चार अन्तःकरण इन चौदहों के चौदह देवता तथा जीवात्मा, ये सभी एक से चेतनावान् हैं अर्थात् जीवात्मा से चेतना मिली है चौदहों देवताओं को और इन देवताओं से चेतना मिली है चार अन्तःकरण और दस इन्द्रियों को और उनसे चेतना प्राप्त होती है चौदहों करणों के चौदहों विषयों को, परन्तु जीवात्मा को भी भगवान् श्रीराम से चेतना मिली है, इसलिए वे सब के परमप्रकाशक हैं। वे ही अनादि श्रीराम अनादि श्रीअयोध्या के अनादि राजा हैं।

विशेष– श्रवण, नेत्र, रसना, घ्राण, त्वक्, हस्त, चरण, पायु, उपस्थ, वाक् ये दस इन्द्रियाँ हैं, इन्हें बाह्यकरण भी कहते हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये चार अन्तःकरण हैं। इनमें श्रवण, नेत्र, रसना, घ्राण और त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हस्त, चरण, पायु, उपस्थ और वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। सांख्य की दृष्टि से मन उभयात्मक है और वेदान्त की दृष्टि से यह अन्तःकरण ही है, इन्द्रियाँ नहीं। चौदहों करणों के चौदह विषय भी हैं, जैसे श्रवण इन्द्रियाँ श्रोत का शब्द, नेत्र का रूप, रसना का रस, घ्राण का सुगन्ध, त्वक् का स्पर्श, हस्त का ग्रहण, पाद का गमन, पायु का मलत्याग, उपस्थ का आनन्द और उत्सर्ग, वाणी का वक्तव्य, मन का संकल्प, बुद्धि का व्यवसाय, अहंकार का अभिमान, तथा चित्त का चिन्तन। इनके चौदह देवता भी निम्न प्रकार के हैं–

श्रवण के दिशा, नेत्र के सूर्य, रसना के वरुण, घ्राण के अश्विनीकुमार, त्वक् के वायु, हस्त के इन्द्र, पाद के उपेन्द्र, पायु के मृत्यु, उपस्थ के प्रजापति, वाक् के अग्नि, मन के चन्द्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, अहंकार के शिव, चित्त के महान् अर्थात् विष्णु, इस प्रकार जीवात्मा से लेकर विषयपर्यन्त सभी की चेतना एक-दूसरे के आधीन है, केवल भगवान् श्रीराम की चेतना पराधीन नही स्वतःसिद्ध स्वाधीन है।

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू।।
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।।

भा०– यह चिदचिदात्मक् जगत् प्रकाश्य है और भगवान् श्रीराम उसके प्रकाशक हैं। वे माया के अधिपति तथा ज्ञान एवं कल्याण गुणगणों के धाम हैं। जिनकी सत्यता से मोह की सहायता करनेवाली यह जड़ माया भी सत्य की भाँति भासती है।

दो०– रजत सीपि महँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।११७।।

भा०– जिस प्रकार सीप में रजत अर्थात् चाँदी का आभास होता है और जैसे सूर्यनारायण की किरणों में जल का आभास होता है, अथवा जैसे जल में सूर्यनारायण की किरणों का आभास होता है, उसी प्रकार परमात्मा की सत्यता से परमात्मा में ही इस मायिक प्रपंच का भान हो रहा है। यद्यपि वह तीनों कालों में मृषा अर्थात् परिवर्तनशील है, परन्तु इस भ्रम को कोई टाल नहीं सकता अर्थात् इसे तो भगवान् की कृपा ही समाप्त कर पाती है।

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।।
जौ सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई।।
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई।।

भा०– इस प्रकार यह जगत् श्रीहरि भगवान् श्रीराम के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य अर्थात् परिवर्तनशील है, फिर भी दुःख देता रहता है। अथवा भगवान् के आश्रित रहनेवाला यह जगत् असत्य अर्थात् क्षणभंगुर दुःख दे रहा है। यदि स्वप्न में कोई किसी का सिर काट लेता है, तो सिर कटने का दुःख बिना जागे दूर नहीं हो पाता। हे पार्वती! जिन परमात्मा की कृपा से वह स्वप्नजनित भ्रम मिट जाता है, वह कृपालु भगवान् रघुकुल के राजा दशरथनन्दन श्रीराम ही हैं।

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।

भा०– जिन परमात्मा श्रीरामजी का कोई भी आदि और अन्त नहीं पा सकता, अपनी बुद्धि के अनुमान के अनुसार अर्थात् बुद्धि के अनुकूल ज्ञान के अनुसार वेदों ने इस प्रकार गाया है–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास अशेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

भा०– परमात्मा श्रीराम, चरणों की सहायता के बिना भी चल सकते हैं, कर्णेन्द्रियों के प्रयोग के बिना भी सुन लेते हैं, हाथ के हलन–चलन के बिना भी अनेक प्रकार के कार्य कर लेते हैं, मुख की क्रिया से रहित होकर भी सम्पूर्ण रसों का भोग कर लेते हैं, वाणी के प्रयोग के बिना भी बोल लेते हैं, वे बहुत बड़े योगी हैं, तनु अर्थात् त्वगेन्द्रिय (चर्मेन्द्रिय) के बिना भी सब का स्पर्श कर लेते हैं। नेत्र के उन्मिलन के बिना भी सबको देख लेते हैं, नासिका के बिना भी सब प्रकार के वास अर्थात् सुगन्ध को ग्रहण कर लेते हैं, इस प्रकार जिनकी करनी सब प्रकार से अलौकिक है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन न होकर स्वयं सभी इन्द्रियों का स्वामी है, जिनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

विशेष– इस प्रकरण से भगवान् के निराकारवाद का आरोप नहीं करना चाहिए, इसका इतना ही तात्पर्य है कि, भगवान् हम लोगों की भाँति इन्द्रियों के पराधीन नहीं हैं प्रत्युत् इन्द्रियाँ भगवान् के आधीन हैं। उनकी एक–एक

इन्द्रियों में सभी इन्द्रियों की वृत्तियाँ रहती हैं। वस्तुतः भगवान् की इन्द्रियाँ भगवान् की आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं प्रत्युत् भक्तों की भावना पूर्ति के लिए होती हैं।

दो०- जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान।।११८।।

भा०- वेद और विद्वान्, जिन प्रभु श्रीराम को इस प्रकार गाते हैं और जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं, वे ही अयोध्यापति, महाराज दशरथ जी के पुत्र श्रीराम भक्तों के हितकारी भक्तवत्सल भगवान् हैं।

काशी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिशोकी।।
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी।।

भा०- हे पार्वती! काशी में मरते हुए जीवों को देखकर, जिनके नाम के बल से मैं उन्हें शोकरहित कर देता हूँ, वे ही चर, अचर के स्वामी सब के हृदय के अन्तर्यामी रघुकुल के श्रेष्ठ दशरथनन्दन श्रीराम मेरे प्रभु हैं।

बिबशहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

भा०- विवशता में भी जिन प्रभु श्रीराम का नाम जो रटते हैं अर्थात् उच्चारण कर लेते हैं, वे अनेक जन्मों के अपने ही द्वारा किये हुए पाप को जला डालते हैं। जो लोग आदरपूर्वक स्मरण करते हैं वे लोग इस भवसागर को गौ के खुर के समान छोटा बनाकर उसे बिना प्रयास पार कर लेते हैं।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी।।
अस संशय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं।।

भा०- हे भवानी ! वही श्रीराम परमात्मा हैं, उनके प्रति इस प्रकार का भ्रम और उस भ्रम से युक्त यह वाणी अत्यन्त अविहित अर्थात् श्रुतियों और स्मृतियों में विहित नहीं, प्रत्युत् निषिद्ध है। हे पार्वती! प्रभु श्रीराम के प्रति इस प्रकार का संशय मन में लाते ही ज्ञान, वैराग्य आदि सभी श्रेष्ठगुण चले जाते हैं।

सुनि शिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना।।
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती।।

भा०- इस प्रकार भ्रम को नष्ट करनेवाले शिव जी के वचनों को सुनकर पार्वती जी के मन से सभी कुतर्कों की सृष्टि मिट गयी। उन्हें श्रीराम के प्रति प्रीति और विश्वास हो गया। उनकी भयंकर असंभावना अर्थात् प्रभु श्रीराम के प्रति विपरीत भावना समाप्त हो गयी।

दो०- पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम रस सानि।। ११९।।

भा०- बारम्बार भगवान् शिव के श्रीचरणकमलों को पकड़कर कमल के समान दोनों हाथों को जोड़कर मानो प्रेमरस से मिश्रित करके पार्वती जी श्रेष्ठवचन बोलीं–

शशि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह शरदातप भारी।।
तुम कृपालु सब संशय हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ।।

भा०- हे शशांकमौले! चन्द्रमा की किरणों के समान आपकी वाणी सुनकर मेरा विशाल मोहरूप शरद्कालीन आतप मिट गया अर्थात् समाप्त हो गया है। जैसे शरद्कालीन पूर्णिमा के चन्द्र की किरणों से शरद्ऋतु के सूर्य

की गर्मी समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार आप की वाणी से मेरा मोह समाप्त हो गया। हे कृपालु! आप ने मेरे सम्पूर्ण संशय हरण कर लिए। अब मुझे श्रीराम जी का परात्परस्वरूप ज्ञात हो गया है अर्थात् मैं यह समझ चुकी हूँ कि, दशरथनन्दन श्रीराम ही परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम हैं।

नाथ कृपा अब गयउ बिषादा। सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा।।
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी।।
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौ मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू।।

भा०- हे नाथ! आपकी कृपा से मेरा दु:ख समाप्त हो गया है। मैं आपके चरणों के प्रसाद से अब सुखी हो गई हूँ। यद्यपि मैं स्वभाव से जड़ अज्ञानग्रस्त महिला हूँ, फिर भी मुझे अपनी सेविका जानकर यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो हे प्रभो! मैंने जो प्रथम प्रश्न किये थे, उन्हीं के उत्तर दीजिये। मेरे सोलह प्रश्नों में से उत्तरार्द्ध के चार प्रश्नों का समाधान हो गया है। पूर्व के बारह प्रश्न अभी अवशेष हैं, उनमें से सर्वप्रथम अवतारवाद के प्रश्न का आप कृपया समाधान करें।

राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी।।
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहू बृषकेतू।।

भा०- हे वृषकेतु अर्थात् वृषभध्वज भगवान् शिव! जो श्रीराम वेदान्तवेद्य परब्रह्म हैं, जो चिन्मय अर्थात् ज्ञानस्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण प्रपंच से रहित और सभी के हृदयरूप भवन में निवास करनेवाले हैं, उन श्रीराम ने किस कारण मनुष्य रूप धारण किया ? हे नाथ! इस प्रश्न का उत्तर मुझे समझाकर कहिये।

उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता।।

दो०- हिय हरषे कामारि तब, शङ्कर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहिं प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान।।१२०।।

भा०- पार्वती जी के परमविनीत अर्थात् विनम्रतापूर्ण वचनों को सुनकर तथा उनके मुख से श्रीरामकथा पर पवित्र प्रीति को सुनकर, कामदेव के शत्रु, स्वभावतः ज्ञान से सम्पन्न भगवान् शङ्कर तब हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् बहुत प्रकार से पार्वती जी की प्रशंसा करके कृपा के निधान अर्थात् कोषस्वरूप शिव जी बोले–

* नवाहपारायण पहला बिश्राम *

सो०- सुनु शुभ कथा भवानि, रामचरितमानस बिमल।
कहा भुशुंडि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड़।।१२०(क)।।

भा०- हे भवानी पार्वती जी! अब भगवान् श्रीराम की कल्याणकारिणी कथा सुनो। यह निर्मल श्रीरामचरितमानस यद्यपि रचा मैंने, परन्तु व्याख्यान करके चौरासी प्रसंगों में काकभुशुण्डि जी ने इसे कहा और पक्षियों के राजा गरुड़ ने इसे सुना।

सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परमसुंदर अनघ।।१२०(ख)।।

भा०- वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार से सम्पन्न हुआ, वह मैं आगे अर्थात् सप्तम सोपान उत्तरकाण्ड में कहूँगा, अभी तो पूजनीय, सुन्दर तथा निष्पाप प्रभु श्रीराम के अवतार का चरित्र सुनो।

हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहउँ उमा सादर सुनहु।।१२०(ग)।।

भा०– हे पार्वती! भगवान् श्रीराम के गुण और नामों का कोई पार नहीं है। उनकी कथायें अनगिनत हैं और उनके रूप, देश, काल तथा वस्तुओं की सीमा से परे हैं। मैं (शिव) अपनी बुद्धि के अनुसार, प्रभु श्रीराम की नाम, रूप, लीला–धामात्मक कथा कह रहा हूँ, इसे आप आदरपूर्वक सुनिये।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिशद निगमागम गाए।।
हरि अवतार हेतु जेहिं होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।

भा०– हे पर्वतराजपुत्री पार्वती! सुनिये, प्रभु के सुहावने चरित्र बड़े ही निर्मल और अनेक हैं। ये निगमों अर्थात् चारों वेद तथा आगमों अर्थात् वेदों से अतिरिक्त सभी पौरुषेय आर्षग्रन्थों ने गाये हैं। श्रीराम का अवतार जिस कारण से हुआ है वह यही है, वह इसी प्रकार से है, ऐसा उसे किसी के द्वारा कहा नहीं जा सकता।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहु सयानी।।
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना।।
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही।।

भा०– हे चतुर पार्वती! सुनिये, मेरा तो ऐसा मत है कि श्रीराम जी बुद्धि, मन और वाणी से अतर्क्य हैं अर्थात् उन्हें तर्क से नहीं जाना जा सकता है, फिर भी हे सुमुखी (श्रीरामविषयक प्रश्न करने के कारण सुन्दर मुखवाली)! सन्त, मुनि, चारों वेद, अठारहों पुराण और अठारहों उपपुराण अपने बुद्धि के अनुमान के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं और मुझे जैसा कारण समझ पड़ रहा है, वैसा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

दो०– असुर मारि थापहिं सुरन, राखहिं निज श्रुतिसेतु।
जग बिस्तारहिं बिशद जस, रामजन्म कर हेतु।।१२१।।

भा०– जब–जब वैदिक अर्थात सनातनधर्म की हानि होने लगती है और नीच अभिमानी असुर अर्थात् देवविरोधी आसुरीप्रकृति के प्राणी बढ़ने लगते हैं, ऐसी अनीति करते हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता तथा जब ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी ये सभी दुःखी होते हैं, तब–तब कृपा के सागर प्रभु भगवान् श्रीराम अनेक प्रकार के शरीर धारण करके सज्जनों की पीड़ा को दूर करते हैं। असुरों को मारकर प्रभु श्रीराम, देवताओं को उनके स्थान पर स्थापित करते हैं और अपने वेद के सेतु की रक्षा करते हैं तथा संसार में निर्मल यश का विस्तार करते हैं, यही है श्रीरामजन्म का सामान्य हेतु।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं।।

भा०– उसी यश को गाकर भक्त भवसागर से पार हो जाते हैं। कृपा के समुद्र प्रभु श्रीराम अपने भक्तों के लिए ही अवतार लेते हैं।

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक ते एका।।
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी।।

भा०– श्रीरामचन्द्र जी के जन्म के अनेक हेतु अर्थात् कारण हैं, जो एक से बढ़कर एक तथा अत्यन्त बिचित्र हैं। हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी, मुझ शङ्कर की नित्यपत्नी पार्वती! मैं एक–दो जन्मों को अथवा, एक–दो अर्थात् तीन जन्मों का बखान कर कह रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो।

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ।।
बिप्र स्राप ते दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन पाई।।

भा०– सभी लोग जानते हैं, बैकुण्ठविहारी भगवान् विष्णु के जय और विजय नामक दो द्वारपाल बहुत प्रिय हैं। इन दोनों भ्राताओं ने ब्राह्मण अर्थात् सनकादिकों के श्राप से तमोगुणी असुर अर्थात् दैत्य का शरीर प्राप्त कर लिया।

कनककशिपु अरु हाटक लोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन।।
बिजयी समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता।।
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा।।

भा०– ये जगत् में विदित तथा युद्ध में इन्द्र के भी मद को नष्ट करनेवाले हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम से प्रसिद्ध हुए। दोनों भ्राता विजयी और युद्ध में प्रसिद्ध वीर थे। भगवान् नारायण ने वराह अर्थात् सूकरावतार धारण करके एक अर्थात् छोटे भाई हिरण्याक्ष को मार डाला, फिर नरसिंह अवतार धारण करके भगवान् ने दूसरे अर्थात् बड़े भाई हिरण्यकशिपु का वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद के यश का विस्तार कर दिया।

दो०– भये निशाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर बिजयी जग जान।।१२२।।

भा०– यह बात जगत् जानता है कि, वे ही हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु पुलस्त्य–वंश में जाकर विश्रवा और कैकसी के गर्भ से दो घोर राक्षस के रूप में उत्पन्न हुए। उसमें हिरण्याक्ष कुंभकर्ण नाम से और हिरण्यकशिपु रावण नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे श्रेष्ठ भट् थे, दोनों ही (कुंभकर्ण, रावण) देवविजेता थे। केवल महावीर हनुमान जी ही उनकी अपेक्षा अधिक बलशाली थे, अन्यथा जीववर्ग में कोई भी रावण, कुंभकर्ण से अधिक बलशाली न था।

मुक्त न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना।।
एक बार तिन के हित लागी। धरेउ शरीर भगत अनुरागी।।
कश्यप अदिति तहाँ पितु माता। दशरथ कौसल्या बिख्याता।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पबित्र किए संसारा।।

भा०– भगवान् के द्वारा वध करने पर भी वे दोनों भाई मुक्त नहीं हुए, क्योंकि सनकादि के द्वारा दिये हुए शाप की प्रामाणिकता के अनुसार इन्हें तीन जन्मपर्यन्त आसुरी शरीर प्राप्त करना था, इसलिए जय–विजय प्रथम जन्म में हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नाम से दैत्यकुल में उत्पन्न हुए। द्वितीय जन्म में रावण–कुंभकर्ण नाम से राक्षसकुल में उत्पन्न हुए और तृतीय जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्त्र नाम प्राप्त कर भगवत् विरोधी राजकुल में जन्म लिए। एकबार भक्तों के अनुरागी प्रभु श्रीराम इन्हीं जय–विजय के हित के लिए मानव शरीर धारण किये थे। उस अवतार में कश्यप और अदिति ही प्रभु श्रीराम के प्रसिद्ध पिता–माता दशरथ–कौसल्या हुए थे अर्थात् प्रजापति कश्यप दशरथ बने थे और अदिति जी ने कौसल्या अवतार लिया था। इस प्रकार एक कल्प में जय–विजय उद्धार के लिए ही श्रीरामावतार हुआ था और भगवान् ने संसार में पवित्र चरित्र किये थे।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे।।
शंभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा।।
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी।।

भा०– एक कल्प में युद्ध में जालन्धर के सामने पराजित हुए देवताओं को दु:खी देखकर, शिव जी ने जालन्धर से अपार संग्राम किया था, परन्तु महाबलशाली दैत्य जालन्धर शिव जी के मारने से भी नहीं मर रहा था, क्योंकि असुरराज जालन्धर की पत्नी वृन्दा परम सती थी। उसी के बल से जालन्धर को त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी भी नहीं जीत पा रहे थे।

दो०– छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब, स्राप कोप करि दीन्ह।।१२३।।

तासु स्राप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपालु भगवाना।।
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ।।

भा०– सर्वसमर्थ प्रभु ने छल करके वृन्दा के व्रत को टाला अर्थात् नष्ट नहीं किया, किन्तु स्थानान्तरित कर दिया। अब तक जो वृन्दा जालन्धर जैसे अत्याचारी, बहुगामी, अधर्मी, क्रूर जीव में पतिबुद्धि से उसके लिए व्रत करती रही अब उस वृन्दा की पतिबुद्धि प्राणिमात्र के प्राणपति भगवान् में हो गई। जब वृन्दा ने यह मर्म जान लिया, तब उसने क्रोध करके भगवान् को शाप दे दिया। कौतुकों के सागर, परम कृपालु, ऐश्वर्यादि माहात्म्यों से युक्त, भगवान् ने वृन्दा के शाप को प्रमाणित किया। वहाँ जालन्धर रावण बना और भगवान् श्रीराम ने उसे मार कर परमपद दे दिया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा।।
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी।।

भा०– एक जन्म का यही कारण है, जिसके लिए भगवान् श्रीराम ने मनुष्यरूप धारण किया। याज्ञवल्क्य जी ने भरद्वाज जी को सावधान करते हुए कहा कि हे मननशील मुनि! सुनिये, प्रत्येक अवतार में सम्पन्न हुई प्रभु श्रीराम की अनेक कथाओं का कवियों ने अनेक रामायणों, चम्पुओं, नाटकों, गद्यकाव्यों और महाकाव्यों द्वारा वर्णन किया है।

नारद स्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा।।
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्णु भगत पुनि ग्यानी।।
कारन कवन स्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा।।
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी।।

भा०– एक बार प्रभु श्रीराम के प्रमुख अंशावतार भगवान् विष्णु जी को देवर्षि नारद जी ने शाप दिया था, उसी कारण एक कल्प में श्रीरामावतार हुआ था। यह वाणी सुनकर पर्वतराजपुत्री पार्वती जी चकित हो गईं और बोलीं, नारद जी भगवान् विष्णु के भक्त हैं, उसमें भी ज्ञानीभक्त हैं। वह कौन–सा कारण था, जिससे देवर्षि नारद जी ने भगवान् को शाप दे दिया। लक्ष्मी जी के पति भगवान् विष्णु ने कौन–सा अपराध कर दिया था? हे त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी! मुझे यह प्रसंग सुनाइये क्योंकि यह बहुत बड़ा आश्चर्य मुनियों के मन को भी मोहित कर देता है।

दो०- बोले बिहँसि महेश तब, ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहिं जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहिं छन होइ।।१२४(क)।।

भा०- तब हँसकर महान् ईश्वर शिवजी ने कहा, भगवान् की लीलाक्रम में स्वतंत्ररूप से कोई भी ज्ञानी या मूर्ख नहीं होता। भगवान् श्रीराम जब जिसके साथ जैसा करते हैं उसी क्षण वह उसी प्रकार का हो जाता है।

सो०- कहउँ राम गुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद।।१२४(ख)।।

भा०- हे भरद्वाज जी! अब मैं श्रीराम के गुणों की गाथायें कह रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये। रघुनाथ जी भवबन्धनों को नष्ट करनेवाले हैं। तुलसीदास के मत के अनुसार मान और मद छोड़ 'तु' अर्थात् तुरीय तत्त्व श्रीराम 'ल' अर्थात् लक्ष्मण जी 'सी' अर्थात् सीता जी का भजन करिये।

विशेष- यहाँ तुलसी शब्द में श्लेष है, प्रथम अर्थ के अनुसार तुलसी महाकवि तुलसीदास का वाचक है और द्वितीय अर्थ के अनुसार नामग्रहण में नाम के एक देश की वाचकता के सिद्धान्त से तुलसी शब्द क्रमशः 'तु' अर्थात् तुरीयतत्त्व श्रीराम 'ल' अर्थात् लक्ष्मण और 'सी' अक्षर से श्रीसीता का वाचक होगा।

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि।।
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवऋषि मन अति भावा।।

भा०- हिमाचल पर्वत में एक अत्यन्त पवित्र गुफा है, जिसके समीप अतिपवित्र सुहावनी गंगा जी अलकनन्दा नाम से बहती हैं। वहाँ एक सुहावना परमपवित्र आश्रम भी है, वह देवर्षि नारद के मन में देखते ही बहुत भा गया।

निरखि शैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा।।
सुमिरत हरिहिं स्राप गति बाँधी। सहज बिमल मन लागि समाधी।।

भा०- पर्वत तथा वहाँ बहनेवाली अलकनन्दा गंगा जी एवं बदरी वन के विचित्र विभाग को देखकर नारद जी के मन में लक्ष्मीपति भगवान् के चरणों के प्रति अनुराग अर्थात् अनुपम प्रेम उमड़ गया। नारद जी ने भगवान् का स्मरण करते-करते दक्ष जी के शाप की गति को बाँध दिया अर्थात् दो दण्ड की स्थिरता का प्रतिबन्ध समाप्त हो गया। नारद जी स्थिर हो गये, उनके स्वभावतः निर्मल मन में समाधि लग गई और वे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में स्थिर बैठ गये।

मुनि गति देखि सुरेश डेराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना।।
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू।।

भा०- नारद मुनि की यह अलौकिक समाधि अवस्था तथा उनकी अतार्किक उपलब्धि देखकर, देवताओं के राजा इन्द्र डर गये। कामदेव को बुलाकर उनका सम्मान किया और कहा, हे कामदेव! तुम मेरे लिए सहायकों के साथ देवर्षि नारद के पास जाओ। जलचर अर्थात् मछली को ही पताका के चिह्न-रूप में धारण करनेवाले कामदेव हृदय में प्रसन्न होकर चल पड़े।

शुनासीर मन महँ अति त्रासा। चहत देवऋषि मम पुर बासा।।
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहिं डेराहीं।।

भा०– शुनासीर अर्थात् जिनके आगे चलने वाले देवता सुन्दर हैं तथा शुन पद के वाच्य सूर्य और सीर अर्थात् वायु जिनके सहायक हैं, ऐसे शुनासीर इन्द्र देवता के मन में अत्यन्त भय हुआ। इन्द्र ने विचार किया कि, देवर्षि नारद मेरे पुर अर्थात् अमरावती में निवास करना चाहते हैं और इस समाधि के द्वारा मेरे इन्द्र पद को भी जीतना चाहते हैं। तुलसीदास जी, सन्तों को सावधान करते हुए कहते हैं और याज्ञवल्क्य जी, भरद्वाज जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, इस संसार में जो कामी और विषयों के लोलुप होते हैं, वे कुटिल प्रवृत्तिवाले कौवे की भाँति सब से डरते रहते हैं।

दो०– सूख हाड़ लै भाग शठ, श्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज।।१२५।।

भा०– जिस प्रकार, सिंह को देखकर दुष्ट कुत्ता सूखी हड्डी लेकर भाग चला हो और वह जड़बुद्धि सोच रहा हो कि, कहीं यह सिंह मेरी सूखी हड्डी को छीन न ले, उसी प्रकार इन्द्र को कोई लज्जा नहीं है। भला क्या गजेन्द्र के गण्डस्थल को विदीर्ण करके उससे निकलते हुए ताजे रक्त को पीने वाला सिंह, कुत्ते की सूखी हड्डी पर आसक्त हो सकेगा? भला क्या अपनी तपस्या से योग–सिद्धियों के प्राप्तकर्त्ता नारद जी अनेक दुर्गुणों से भरे इन्द्र पद पर आसक्त हो सकेंगे?

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ।।
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा।।

भा०– जब कामदेव नारद जी के पास उस आश्रम में गये, तब उन्होंने अपनी माया से वसन्त का निर्माण कर दिया। वहाँ बहुरंगे अनेक प्रकार के वृक्ष पुष्पों से युक्त हो गये, कोकिलायें बोलने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे।

चली सुहावनी त्रिबिध बयारी। काम कृशानु बढ़ावनिहारी।।
रंभादिक सुरनारि नबीना। सकल असमशर कला प्रबीना।।
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा।।

भा०– कामरूप अग्नि को बढ़ानेवाली सुहावनी शीतल, मन्द, सुगन्ध बयार चलने लगी। असमशर अर्थात् विषम संख्या के पाँच बाणों को धारण करनेवाले कामदेव की सभी कलाओं में प्रवीण नयी नवेली अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्थावाली रम्भा आदि देव–वधुयें नाना प्रकार के तालों के तरंगों से युक्त दिव्यगान करने लगीं और पानी–पतंग अर्थात् जल के पक्षीस्वरूप गेंदों से बहुत प्रकार से खेलने लगीं।

देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना।।
काम कला कछु मुनिहिं न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी।।
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू।।

भा०– अपने सहायकों को देखकर काम बहुत प्रसन्न हुआ, फिर उसने नाना प्रकार के प्रपंच किये। काम की कोई भी कला महर्षि को कुछ भी नहीं व्यापी अर्थात् रंचमात्र भी नहीं प्रभावित कर सकी। पापी कामदेव अपने ही किये हुए अपराध से उत्पन्न भय से भयभीत हो गया। भला बताओ, रमा के पति सर्वसमर्थ भगवान् ही जिसके बहुत बड़े रक्षक हों, उसकी सीमा को भी कोई दबा सकता है।

दो०– सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन।।१२६।।

भा०– तब डरे हुये काम ने मन में हार मानकर, सहायकों के सहित अत्यन्त आर्त वचन कहकर, देवर्षि नारद जी के चरण पकड़ लिए।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा।।
नाइ चरन सिर आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई।।

भा०– नारद जी के मन में कुछ भी क्रोध नहीं हुआ, उन्होंने प्रियवचन कहकर कामदेव को आश्वासन दिया। तब देवर्षि के चरणों में सिर नवाकर उनसे आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों के सहित देवलोक चला गया।

मुनि सुशीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी।।
सुनि सब के मन अचरज आवा। मुनिहिं प्रशंसि हरिहिं सिर नावा।।

भा०– इन्द्र की सभा में जाकर कामदेव ने मुनि की सुशीलता और अपने सभी कर्त्तवों का वर्णन किया। यह सुनकर सबके मन में बहुत आश्चर्य हुआ और इन्द्र के सहित सभी सभासदों ने देवर्षि नारद जी की प्रशंसा करके श्रीहरि को प्रणाम किया।

तब नारद गवने शिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं।।
मार चरित शङ्करहिं सुनाए। अति प्रिय जानि महेश सिखाए।।

भा०–तब नारद जी शिव जी के पास प्रस्थान किये। उन्होंने काम को जीता था, उनके मन में अहंकार था। देवर्षि नारद जी ने शिव जी को काम का चरित्र सुनाया। नारद जी को अपना अत्यन्त प्रिय जानकर महेश्वर शिव जी ने उन्हें शिक्षा दी।

बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही।।
तिमि जनि हरिहिं सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहुँ।।

भा०– हे देवर्षि! तुमसे बारम्बार विनती करता हूँ, जिस प्रकार तुमने मुझे यह कथा सुनायी, इस प्रकार कभी भी भगवान् नारायण को मत सुनाना। प्रसंग के चलने पर भी उसी समय उसको छिपा लेना।

दो०- शंभु दीन्ह उपदेश हित, नहिं नारदहिं सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान।।१२७।।

भा०– शिव जी ने हितोपदेश दिया, पर वह नारद जी को नहीं भाया। हे भरद्वाज जी! यह कौतुक सुनिये, श्रीहरि की इच्छा ही सबसे बलवती होती है।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई।।
शंभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए।।

भा०– हे भरद्वाज जी! प्रभु श्रीराम जो करना चाहते हैं, वही हो जाता है। दूसरे प्रकार से प्रभु श्रीराम के समान ऐसा कोई भी नहीं करा सकता। अथवा, भगवान् श्रीराम जो करना चाहते हैं वही होता है, ऐसा कोई भी नहीं है, जो श्रीराम के इच्छा के विरुद्ध कर सके। भगवान् शङ्कर के वचन नारद जी को नहीं अच्छे लगे। तब वे ब्रह्मा जी के लोक में चले गये।

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना।।
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा।।

भा०- एक बार अपने हाथ में श्रेष्ठ वीणा लेकर भगवान् के गुणगान में कुशल मुनियों के स्वामी नारद जी क्षीरसागर को प्रस्थान किये। जहाँ श्रुतियों के मस्तकस्वरूप अर्थात् महातात्पर्यरूप अथवा सभी श्रुतियाँ जिनके मस्तक पर आदरणीय रूप में विराजती हैं और जो स्वयं भी श्रुतियों के पति होने के कारण उनके मस्तक पर विराजते हैं, ऐसे श्री जी के जो निवासस्थान हैं अर्थात् श्रीवत्सलाञ्छन रूप में श्री जी जिनके वक्षस्थल में निवास करती हैं, ऐसे शेषशैयाशायी भगवान् नारायण जहाँ निवास करते हैं।

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहिं समेता।।
बोले बिहँसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया।।

भा०- मुनि को आते देखकर लक्ष्मी जी के निवासस्थान भगवान् अपने आसन से उठकर, उनसे प्रसन्नतापूर्वक मिले और ऋषि के सहित आसन पर बैठ गये। चेतनों, जड़ों के स्वामी अर्थात् चिद्वर्ग और अचिद्वर्ग के शेषी भगवान् नारायण हँसकर बोले, हे देवर्षि ! आपने बहुत दिनों के पश्चात् दया की है।

काम चरित नारद सब भाखे। जद्यपि प्रथम बरजि शिव राखे।।
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया।।

भा०- नारद जी ने सम्पूर्ण कामचरित्र कह सुनाया। यद्यपि उन्हें पहले ही शिव जी ने ऐसा करने से रोक रखा था। रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की माया अत्यन्त प्रचण्ड अर्थात् बहुत भयंकर और बहुत ही बलशालिनी है, संसार में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे यह नहीं मोहित कर देती?

दो०- रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहिं, मोह मार मद मान।।१२८।।

भा०- मुख को रूखा करके अर्थात् अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए भगवान् नारायण नारद जी से कोमल वाणी में बोले, देवर्षि ! आपके तो स्मरणमात्र से मोह, काम मद, मान आदि विकार स्वयं मिट जाते हैं अर्थात् आपको इन्हें जीतने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाके।।
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुमहिं कि करइ मनोभव पीरा।।

भा०- हे मुनि ! सुनो, मोह तो उसके हृदय में होता है, जिसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य नहीं होते। तुम ब्रह्मचर्यव्रत में तल्लीन हो और तुम्हारी बुद्धि भी धीर है अर्थात् विकारों के रहने पर भी विकृत नहीं होती। भला तुम्हें कामदेव कैसे पीड़ा दे सकता है?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।।

भा०- नारद जी ने अभिमान के सहित उत्तर देते हुए कहा, हे भगवान ! यह सब आप ही की कृपा है।

करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।।
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी।।

भा०- करुणासागर भगवान् ने मन में विचार कर देख लिया कि, नारद के हृदय में विशाल गर्व का वृक्ष अंकुरित हो गया है अर्थात् उग गया है, उसे मैं शीघ्र ही उखाड़ डालूँगा, क्योंकि सेवक का हित करना ही मेरी प्रतिज्ञा है।

मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करब मैं सोई।।
तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई।।
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।।

भा०- जिससे नारद मुनि का कल्याण हो और मेरा भी कौतुक हो जाये अर्थात् मेरी भी नारद के शाप के माध्यम से एक कल्प की अवतारलीला सम्पन्न हो जाये, मैं वही उपाय अवश्य करूँगा। तब नारद जी भगवान् के चरणों में मस्तक नवाकर चल पड़े, उनके हृदय में उस समय बहुत अहंकार था। तब श्री जी के पति भगवान् ने अपनी माया को प्रेरित कर दिया। हे पार्वती! अब उस विष्णुमाया की कठिन करतूत सुनो।

दो०- बिरचेउ मग महँ नगर तेहिं, शत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर ते अधिक, रचना बिबिध प्रकार।। १२९।।

भा०- उस विष्णुमाया ने नारद जी के मार्ग में ही सौ योजन विस्तार वाला एक ऐसा नगर बना दिया, जिसमें बैकुण्ठपुर से भी अधिक अनेक प्रकार की कृतियाँ थीं ।

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी।।
तेहिं पुर बसइ शीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा।।
शत सुरेश सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा।।

भा०- उस नगर में सुन्दर पुरुष–स्त्री निवास करते थे मानो बहुत से कामदेव एवं रति ने ही शरीर धारण कर लिए हों। उस पुर में अनगिनत घोड़े, हाथी, सेना और समाज के साथ शीलनिधि नामक राजा निवास करते थे। जो रूप, शील, गुण तथा नीति के निवासस्थान थे और उनका वैभव तथा विलास असंख्य इन्द्रों के समान था।

बिश्वमोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी।।
सोइ हरिमाया सब गुन खानी। शोभा तासु कि जाइ बखानी।।

भा०- उन शीलनिधि की कुमारी अर्थात् पुत्री विश्व को भी मोहित कर रही थी अथवा विश्वमोहिनी उसका नाम था। जिसके रूप को देखकर स्वयं लक्ष्मी जी भी मोहित हो जाती थीं। वही भगवान् विष्णु जी की साक्षात् माया थी। वह सभी गुणों की खान थी। उसकी शोभा का कैसे वर्णन किया जाये?

करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला।।
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन सब पूछत भयऊ।।
सुनि सब चरित भूप गृह आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए।।

भा०- वे महाराज अपनी बालिका का स्वयंवर आयोजित कर रहे थे। वहाँ पर अनगिनत राजा आये हुए थे। कौतुकप्रिय मुनि नारद जी उस नगर में गये। तब सभी पुरवासियों से पूछा, सम्पूर्ण चरित्र सुनकर वे शीलनिधि महाराज के भवन में आये। महाराज शीलनिधि ने नारद जी की पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया।

दो०- आनि देखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदय बिचारि।।१३०।।

भा०- शीलनिधि राजा ने राजकुमारी को लाकर नारद मुनि को दिखाया और बोले, हे नाथ! हृदय में विचार करके इसके सभी गुण–दोषों को कहिये।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी।।
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने।।

भा०- विश्वमोहिनी का रूप देखकर नारद मुनि अपना वैराग्य भूल गये। कन्या को बड़ी देर तक निहारते रहे। उसके लक्षण को देखकर नारद जी भी भुला गये अर्थात् कन्या पर लुब्ध हो गये। अपने हृदय के हर्ष को उन्होंने छिपाया और प्रकट करके उसका व्याख्यान नहीं किया।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई।।
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ शीलनिधि कन्या जाही।।

भा०- जो इस कन्या का वरण करेगा वह अमर अर्थात् देवता होगा। उसे युद्ध में कोई नहीं जीत सकेगा। शीलनिधि की कन्या जिसका वरण करेगी उसकी सभी चेतन, जड़, जीव जगत् के लोग सेवा करेंगे।

विशेष- माया के वश में होने के कारण नारद जी पूर्वोक्त गुणों को कन्या के वरण की महिमा से मान रहे थे अर्थात् इस कन्या के वरण के पश्चात् इसके पति में ये सब गुण आयेंगे, जबकि वास्तविकता इससे भिन्न है। वस्तुतः जो देव होगा और जो अजेय तथा सम्पूर्ण चराचर का सेव्य होगा यह कन्या उसी को वरण करेगी।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाखे।।
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं।।

भा०- नारद जी ने राजकुमारी के सभी लक्षणों को विचारकर अपने हृदय में छिपाकर रख लिया। राजा शीलनिधि से कुछ लक्षण बनाकर असत्य कह दिया। महाराज के पास पुत्री को सुलक्षणी कहकर नारद वहाँ से चल पड़े। उनके मन में शोक था।

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।।
जप तप कछु न होइ एहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला।।

भा०- नारद जी सोचने लगे कि, ब्रह्मलोक जाकर मैं विचारकर वही यत्न करूँ जिस प्रकार राजकुमारी स्वयंवर में मेरा वरण कर ले। इस समय जप, तप कुछ भी नहीं हो सकता। हे विधाता! यह बाला अर्थात् स्वयंवरा राजकुमारी मुझे किस प्रकार से मिल सकती है?

दो०- एहि अवसर चाहिय परम, शोभा रूप बिशाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल।।१३१।।

भा०- इस अवसर पर तो मुझे उत्कृष्ट शोभा और बहुत बड़ा रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी रीझ जाये। तब मेरे गले में जयमाला डाल दे।

हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई।।
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ।।

भा०- नारद जी मन में विचार करने लगे कि, मैं भगवान् से ही सुन्दरता माँग लूँ। फिर सोचा, हे भाई! श्रीहरि तो बैकुण्ठ में रहते हैं, वहाँ जाते–जाते बहुत विलम्ब हो जायेगा। भगवान् के समान मेरे लिए कोई दूसरा हितैषी नहीं है, इस अवसर पर वे ही भगवान् विष्णु मेरे सहायक हो जायें।

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला।।
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काज हिये हरषाने।।

भा०- उस समय नारद जी ने बहुत प्रकार से भगवान् की प्रार्थना की। कृपालु और कौतुकरसिक प्रभु नारद जी के सामने प्रकट हो गये। प्रभु को देखकर नारद जी के नेत्र शीतल हो गये। अब तो मेरा कार्य अर्थात् विवाह हो जायेगा, यह विचार कर नारद जी हृदय में बहुत प्रसन्न हुए।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा हरि होहु सहाई।।
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं। आन भाँति नहिं पावौं ओही।।

भा०– नारद जी ने अत्यन्त आर्त होकर सम्पूर्ण कथा भगवान् विष्णु को सुनायी और कहा, हे श्रीहरि! अब आप मुझ पर कृपा कीजिये, हे प्रभो! आप, अपना रूप मुझे दे दीजिये, अन्य दूसरे प्रकार से मैं ओही अर्थात् उस राजकुमारी को नहीं प्राप्त कर सकता।

जेहि बिधि होइ नाथ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा।।
निज माया बल देखि बिशाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला।।

भा०– हे नाथ! जिस प्रकार से मेरा हित हो आप वह शीघ्र कीजिये। मैं आपका दास हूँ। नारद जी पर अपनी विशाल माया का अर्थात् बहुत बड़ा बल देखकर दीनों पर दया करनेवाले भगवान् हृदय में हँसकर बोले–

दो०– जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार।।१३२।।

भा०– हे नारद! सुनो, जिस प्रकार तुम्हारा परमहित होगा मैं वही करूँगा, दूसरा कुछ नहीं। मेरा वचन झूठा नहीं होता।

कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।।
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ।।

भा०– हे योगीमुनि! सुनो, रोग से व्याकुल रोगी जब कुपथ्य माँगता है, तो वैद्यराज आतुर को कुपथ्य नहीं देते अर्थात् रोगी की माँग अनसुनी कर देते हैं। मैंने इसी प्रकार से तुम्हारे हित का निर्णय किया है। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये अर्थात् मुनि की आँखों से ओझल हो गये।

माया बिबश भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा।।
गवने तुरत तहाँ ऋषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई।।

भा०– भगवान् की माया के विवश होने के कारण नारद मुनि किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उनकी बुद्धि में सोचने की शक्ति नहीं रही, इसी कारण उन्होंने श्रीहरि की निर्णयपूर्ण गूढ़ वाणी नहीं समझी, जबकि भगवान् ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि, माया का वरण तुम्हारे लिए कुपथ्य है और तुम काम, क्रोध, लोभरूप वात, कफ, पित्त के सन्निपात से ग्रस्त हो। ऋषियों के राजा नारद जी शीघ्र वहाँ गये जहाँ स्वयंवर के लिए रंगभूमि बनायी गयी थी।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा।।
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहिं बरिहि न भोरे।।

भा०– सभी राजा अनेक प्रकार के शृंगार करके अपने–अपने परिवार एवं समाज के साथ सभा द्वारा निर्दिष्ट अपने–अपने आसन पर बैठे थे। नारद मुनि के मन में बहुत प्रसन्नता थी। वे विचार कर रहे थे कि, मेरे पास अत्यन्त सुन्दर रूप है, राजकुमारी मुझे छोड़कर अन्य को भूलकर भी वरण नहीं करेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना।।
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा।।

भा०– कृपा के निधान भगवान् ने मुनि का कल्याण करने के कारण उन्हें ऐसा कुरूप अर्थात् भयंकर रूप दिया था, जो व्याख्यान करके कहा नहीं जा सकता। प्रभु के उस चरित्र को कोई भी नहीं देख पाया और मुनि को नारद जानकर ही सब ने प्रणाम किया।

दो०– रहे तहाँ दुइ रुद्र गन, ते जानहिं सब भेउ।
बिप्र बेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ।।१३३।।

भा०- वहाँ अर्थात् स्वयंवर की रंगभूमि में दो रुद्रगण उपस्थित थे। वे भगवान् का सारा भेद जानते थे। रुद्रगण ब्राह्मण का वेश धारण करके सब कुछ देखते हुए घूम रहे थे, क्योंकि वे भी परमकौतुकी थे अर्थात् उन्हें भी इस प्रकार की अशोभनीय घटनाओं में आनन्द मिलता था।

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई।।
तहँ बैठे महेश गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ।।

भा०- हृदय में रूप के अहंकार की अधिकता से युक्त होकर देवर्षि नारद जी स्वयंवर-स्थल के जिस राजसमाज में बैठे थे, उसी समाज में शिव जी के दोनों गण भी बैठे थे। वे ब्राह्मण के वेश में थे, अतः उनकी गति अर्थात् ज्ञान की स्थिति कोई नहीं देख रहा था।

करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई।।
रीझिहिं राजकुअँरि छबि देखी। इनहिं बरिहि हरि जानि बिशेषी।।

भा०- दोनों रुद्रगण नारद जी को सुना-सुना कर उनकी कूटि अर्थात् परिहास कर रहे थे। श्रीहरि ने नारद जी को बड़ी भली सुन्दरता दी है, इनकी छवि देखकर राजकुमारी अवश्य रीझ जायेंगी और इन्हें हरि अर्थात् नारायण जानकर विशेष रूप से वरण कर लेंगी। अथवा इन्हें विशेष प्रकार का हरि (वानर) जानकर बरिहि अर्थात् क्रोध से जल-भुन जायेंगी।

मुनिहिं मोह मन हाथ पराए। हँसहिं शंभु गन अति सचु पाए।।
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रमसानी।।

भा०- मुनि को मोह है और उनका मन पराये हाथ अर्थात् विष्णु-माया के हाथ में है, अपने पास नहीं है। ऐसी स्थिति देखकर रुद्रगण अत्यन्त सुखी होकर बहुत चुपके से हँस रहे थे। यद्यपि मुनि नारद उनकी अटपटी वाणी सुनते हैं फिर भी उन्हें कुछ भी समझ नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी बुद्धि भ्रम में सनी हुई है।

काहु न लखा सो चरित बिशेषा। सो स्वरूप नृपकन्या देखा।।
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही।।

भा०- किसी ने भी प्रभु के उस विशेष चरित्र को नहीं देखा। नारद जी के उस वास्तविक रूप को राजकन्या ने देख लिया। वानर के मुखवाले एक भयंकर प्राणी को देखते ही राजकुमारी के हृदय में बहुत क्रोध हुआ।

दो०- सखी संग लै कुअँरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल।।१३४।।

भा०- तब सखियों को साथ लेकर राजकुमारी राजहंसिनी के समान स्वयंवर-स्थल में चल पड़ी। वह सभी राजाओं को देखती घूम रही थी। उसके करकमल में जयमाला विराजमान थी।

जेहि दिशि बैठे नारद फूली। सो दिशि तेहिं न बिलोकी भूली।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दशा हर गन मुसुकाहीं।।

भा०- जिस दिशा में नारद जी रूप के अहंकार में फूल कर बैठे थे, उस दिशा को उस राजकुमारी ने भूल कर भी नहीं देखा। मुनि नारद बार-बार उत्सुक होते और अकुलाते हैं, उनकी इस विस्मयपूर्ण दशा को देखकर दोनों रुद्रगण मुस्कुराते हैं।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला।।
दुलहिनि लै गे लक्ष्मिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा।।

मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।।
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई।।

भा०– परमकृपालु भगवान् राजा का वेश धारण करके वहाँ गये, राजकुमारी ने प्रसन्न होकर श्रीहरि के गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मी जी के निवासस्थान भगवान् विष्णु मायारूप दुल्हन को स्वयंवर में जीतकर ले गये। सम्पूर्ण राजसमाज निराश हो गया। नारद जी अत्यन्त व्याकुल हो गये, मोह ने उनकी बुद्धि को नष्ट कर दिया था। वे ऐसे व्याकुल हो रहे थे मानो उनकी गाँठ में बँधी मणि छूटकर गिर गयी हो। तब दोनों रुद्रगण मुस्कुराकर बोले, अरे बाबा! जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखो।

अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी।।
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिनहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा।।

भा०– ऐसा कहकर, अत्यन्त भय से युक्त होकर, दोनों रुद्रगण भागे। नारद जी ने जल में निहारकर उसमें प्रतिबिम्बित अपना मुख देखा और अपना बन्दर का वेश देखकर, नारद जी का क्रोध बहुत बढ़ गया। देवर्षि ने रुद्रगणों को बहुत कठिन शाप दिया।

दो०– होहु निशाचर जाइ तुम, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ।।१३५।।

भा०– दोनों कपटयुक्त और पापात्मक रुद्रगणों! यहाँ से जाकर राक्षस बनो। मेरा परिहास किया उसका फल लो, फिर और किसी मुनि का परिहास कर लेना।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा।।
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं।।

भा०– नारद जी ने जब फिर जल में देखा, तब अपना रूप प्राप्त कर लिया अर्थात् रुद्रगणों के शाप के पश्चात् नारद जी का बन्दर का मुख भी समाप्त हो गया और उन्हें अपना पूर्व का रूप मिल गया, फिर भी उनके हृदय में संतोष नहीं हुआ। उनके मन में अत्यन्त क्रोध था, उनके ओष्ठ फड़क रहे थे। वे शीघ्र लक्ष्मीपति भगवान् के पास चले।

दैहउँ स्राप की मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई।।
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी।।

भा०– नारद जी ने मन में निश्चय किया कि, यदि विष्णु आज मुझे मिल गये तो उन्हें शाप दे दूँगा, यदि नहीं मिले तो जाकर मर जाऊँगा। विष्णु ने सारे संसार में मेरी हँसी करा डाली। संयोग से बैकुण्ठ के बीच मार्ग में ही दैत्यों के शत्रु भगवान् विष्णु, नारद जी को मिल गये। उनके साथ में लक्ष्मी जी और वही स्वयंवर में जीतकर लायी हुई राजकुमारी थी।

बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं।।
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बश न रहा मन बोधा।।

भा०– देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु मधुर वचन बोले अर्थात् नारद से पूछा, हे मुनि! व्याकुल अथवा बावले व्यक्ति की भाँति कहाँ चले जा रहे हो? विष्णु जी का वचन सुनते ही नारद जी के मन में अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हो गया। माया के वश में होने से उनके मन में कुछ भी ज्ञान नहीं रहा, नारद आक्रोश में बोले–

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिशेषी।।
मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायहु। सुरन प्रेरि बिष पान करायहु।।

भा०- हे विष्णु! तुम दूसरे की सम्पत्ति नहीं देख सकते हो, तुम्हारे मन में विशेष रूप से ईर्ष्या और कपट है। समुद्रमन्थन के समय तुमने रुद्रदेव को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके शिव जी को विषपान करा दिया।

दो०- असुर सुरा बिष शङ्करहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट ब्यवहारु।।१३६।।

भा०- दैत्यों के लिए मदिरा, शिव जी के लिए विष और स्वंय के लिए सुन्दर लक्ष्मी और कौस्तुभमणि की व्यवस्था की। तुम स्वार्थ के साधक और कुटिल हो। तुम्हारा व्यवहार निरन्तर कपटपूर्ण रहता है।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिं करहु तुम सोई।।
भलेहि मंद मंदहिं भल करहू। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू।।

भा०- तुम परमस्वतंत्र हो, तुम्हारे सिर पर कोई शासक नहीं है। तुम्हारे मन को जो भाता है, तुम वही कर डालते हो। तुम भले को बुरा और बुरे को भला कर डालते हो। तुम अपने मन में शोक और हर्ष कुछ भी नहीं धारण करते।

डहकि डहकि परचेहु सब काहू। अति अशंक मन सदा उछाहू।।
करम शुभाशुभ तुमहिं न बाधा। अब लगि तुमहिं न काहू साधा।।

भा०- तुम सब को ठगते–ठगते अब इस क्रिया से परिचित हो गये हो, तुम्हारा मन अत्यन्त निर्भीक है, तुम्हें सदा उत्साह बना रहता है। शुभ और अशुभ कर्म तुम्हें बाधित नहीं करते, अब तक किसी ने तुम्हें पहचान कर दण्डित नहीं किया।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा।।
बंचेहु मोहि जवन धरि देहा। सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा।।

भा०- अब तुमने अच्छे घर में बायन अर्थात् अनुबन्ध का धन दिया है। तुम अपने किये का फल पाओगे। जो शरीर धारण करके तुमने मुझे ठगा, तुम वही शरीर धारण करो, मेरा यह शाप है।

कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी। करिहैं कीस सहाय तुम्हारी।।
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी।।

भा०- तुमने मेरी आकृति वानर जैसी की, वे ही वानर तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मेरा बहुत बड़ा अपकार किया है। अतः तुम भी नारी के विरह में दुःखी होगे।

दो०- स्राप शीष धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्ह।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्ह।।१३७।।

भा०- नारद जी के शाप को सिर पर धारण करके, हृदय में प्रसन्न होकर, श्रीहरि ने नारद जी से बहुत विनती की और कृपा के सागर भगवान् विष्णु ने अपनी माया की प्रबलता को नारद पर से खींच ली।

विशेष- इस प्रसंग में यह ध्यान रखना होगा कि, भले ही देवर्षि नारद जी ने माया के आवेश में भगवान् के प्रति विरुद्ध वाक्य कहे, परन्तु उनका यथार्थ बहुत ही विलक्षण है। जैसे नारद जी ने कहा, तुम परसम्पदा नहीं देख

सकते, इसका तात्पर्य यह है कि तुम 'पर' अर्थात् भगवत् भक्तों के शत्रुओं की सम्पदा नहीं देख सकते। नारद जी ने भगवान् को ईर्ष्यालु और कपटी कहा, इसका तात्पर्य यह है कि, जिनको आप के प्रति ईर्ष्या और कपट है, वे कभी सम्पत्तिवान् नहीं हो सकते। इस दृष्टि से उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा कि जिनको आप के प्रति विशेष ईर्ष्या और कपट होता है ऐसे आसुरी सम्पत्ति वालों कि सम्पत्ति आप देख ही न ही सकते क्योंकि वे आपकी दृष्टि के पहले ही आप के प्रति कपट भाव रखने के पाप से नष्ट हो जाते हैं। नारद जी समुद्रमंथन के प्रकरण में जहाँ अभिधार्थ में भगवान् को स्वार्थी और शिव जी के प्रति अन्यायकर्त्ता कह रहे हैं, वहाँ काकूवक्रोक्ति से समाधान कर लेना चाहिए अर्थात् क्या आपने समुद्रमंथन के समय रुद्र को बावला बनाकर विषपान कराया था? अर्थात् नहीं। उन्होंने जगत् की रक्षा के लिए श्रीराम नाम का जप करते हुए स्वयं विषपान किया था। क्या आपने स्वयं लक्ष्मी जी और कौस्तुभमणि चाहा था? नहीं, लक्ष्मी जी ने स्वयं भगवान् को वरण किया था और कौस्तुभमणि भगवान् को देवतओं ने उपहार में दिया था। भगवान् स्वार्थसाधकों के प्रति कुटिल हो जाते हैं। अथवा स्वार्थसाधक भगवान् की दृष्टि में कुटिल होते हैं, 'स्वार्थ साधकः कुटिलः यस्य' यहाँ बहुव्रीहि समास समझना चाहिए 'सदा अकपट ब्यवहारू' अर्थात् भगवान् का व्यवहार निरन्तर कपट से रहित ही होता है। नारद जी ने भगवान् पर यह आरोप लगाया कि, वे भले को मन्द और मन्द को भला कर डालते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, जिनको ज्ञान का अहं होता है, वे भगवान् के समक्ष मन्द हो जाते हैं और मन्दबुद्धि होकर भी जो भगवान् की शरण में जाते हैं, वे भले बन जाते हैं। विषाद और हर्ष से रहित होना तो परमात्मा का स्वभाव है। वह परमस्वतंत्र हैं, उन पर किसी का शासन नहीं है। 'डहकि डहकि परिचेहु सब काहू' यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि, जिस पर भी भगवान् कृपा करना चाहते हैं, उसे भौतिक चकाचौंध से दूर रखकर अपने भजन में लीन कर लेते हैं। उन्हें किसी प्रकार की शंका नहीं रहती, भक्तों के कष्टहरण में उन्हें सदा उत्साह रहता है। भगवान् को शुभाशुभ कर्म नहीं बाँध सकते, क्योंकि वे विधि और निषेध से दूर हैं। अथवा प्रभु अनासक्तभाव से कर्म करते रहते हैं, इसलिए उनमें कर्म का लेप नहीं होता 'न कर्म लिप्यते नरे'–(इ०उ० २)। भगवान् असाध्य हैं, अतः उन्हें कौन साध सकता है? बायन अर्थात् अनुबन्ध तो भगवान् का गुण ही है। भगवान् किसी का अहित नहीं करते, अतः उन्हें अशुभ फल मिल ही नहीं सकते। इस प्रकार भगवान् के प्रति विरुद्ध प्रतीत होनेवाले वचनों की बुद्धिमता से अनुकूल संगति लगा लेना ही इस चरित्र को सम्भालकर गाना है।

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।।
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना।।

भा०– जब श्रीहरि ने नारद जी पर व्यापी हुई माया को उनसे बहुत दूर फेंक दिया, तब वहाँ न लक्ष्मी जी रहीं, न राजकुमारी विश्वमोहिनी। एकमात्र अवशेष रहे भगवान् विष्णु और तब नारद मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरि के चरण पकड़ लिए और बोले, हे शरणागतों की आर्ति को दूर करनेवाले प्रभु! मेरी रक्षा कीजिये।

मृषा होउ मम स्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला।।
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।।

भा०– हे कृपालु! मेरा शाप झूठा हो जाये, दीनों पर दया करनेवाले भगवान् ने कहा, नहीं ऐसा नही होगा। आपके शाप का पालन करना मेरी इच्छा है, अथवा आपने मेरी इच्छा से ही मुझे शाप दिया है। तब नारद जी ने कहा, मैंने आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहे हैं, उनसे उत्पन्न हुए मेरे पाप कैसे मिटेंगे?

जपहु जाइ शङ्कर शत नामा। होइहि हृदय तुरत बिश्रामा।।
कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे।।

भा०– तब भगवान् विष्णु जी ने कहा कि, यहाँ से हिमाचल पर्वत पर जाकर शिव जी के शतनामस्तोत्र का जप करो, हृदय में तुरन्त विश्राम हो जायेगा अर्थात् तुम्हारे मन को शान्ति मिल जायेगी और तुम्हारी सारी थकान दूर हो जायेगी। शिव जी के समान मुझे कोई भी प्रिय नहीं है, इस विश्वास को कभी भूलकर भी नहीं छोड़ना।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुमहिं माया नियराई।।

भा०– हे देवर्षि! जिस पर शिव जी कृपा नहीं करते वह मेरी भक्ति नहीं पाता, ऐसा सिद्धान्त हृदय में धारण करके बैकुण्ठ से जाकर पृथ्वी पर भ्रमण करो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आयेगी।

दो०– बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले, करत राम गुन गान।।१३८।।

भा०– तब बहुत प्रकार से मुनि को समझाकर, सर्वसमर्थ भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये अर्थात् अदृश्य हो गये। नारद जी श्रीराम का गुणगान करते हुए सत्यलोक को चल पड़े।

हर गन मुनिहिं जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिशेषी।।
अति सभीत नारद पहँ आए। गहि पद आरत बचन सुनाए।।

भा०– रुद्रगणों ने नारद जी को सत्यलोक के मार्ग में जाते हुए देखा, उनका मोह नष्ट हो चुका था, उनके मन में विशेष प्रकार का हर्ष था। रुद्रगण अत्यन्त भयभीत होकर नारद जी के पास आये, उनके चरणों को पकड़कर उन्हें आर्त अर्थात् व्याकुलता से भरे वचन सुनाये।

हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया।।
स्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला।।

भा०– रुद्रगण बोले, हे मुनिराज! हम दोनों रुद्रदेव के गण हैं, ब्राह्मण नहीं हैं। हमने बहुत बड़ा अपराध किया, उसका फल आप से पा लिया। अब हमारा शापानुग्रह कीजिये अर्थात् शाप के प्रभाव को कम कीजिये और शाप की मुक्ति का उपाय बताइये। तब दीनों पर दया करनेवाले नारद जी बोले–

निशिचर जाइ होहु तुम दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ।।
भुजबल बिश्व जितब तुम जहिया। धरिहैं बिष्णु मनुज तनु तहिया।।

भा०– रुद्रगण, तुम दोनों जाकर अब राक्षस हो जाओ, तुम्हारे पास बहुत बड़ा धन और विशाल तेज तथा बल भी हो। जब तुम दोनों (रावण, कुंभकरण) अपनी भुजाओं के बल से सम्पूर्ण संसार को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु अर्थात सर्वव्यापक परमात्मा मनुष्य शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहौ मुक्त न पुनि संसारा।।
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निशाचर कालहि पाई।।

भा०– श्रीहरि के हाथ से युद्ध में तुम्हारा मरण होगा तुम मुक्त हो जाओगे, फिर संसार में नही आओगे। तत्पश्चात् दोनों रुद्रगण मुनि के चरणों में मस्तक नवाकर चल पड़े और समय पाकर राक्षस रूप में जन्म लिए अर्थात् रावण और कुंभकर्ण बने।

दो०– एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुररंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुवि भार।।१३९।।

भा०– देवताओं को आनन्द देनेवाले, सन्तजनों को सुख देनेवाले, पृथ्वी का भार हरनेवाले, सर्वसमर्थ, पापहारी, भगवान् ने एक कल्प में इसी कारण अवतार लिया था।

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे।।

भा०– इसी प्रकार प्रभु के अनेक सुन्दर, सुखद, आश्चर्यमय जन्म तथा कर्म होते रहते हैं।

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं।।
तब तब कथा मुनीशन गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई।।
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरज सयाने।।
हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता।।
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए।।

भा०– प्रत्येक कल्प में प्रभु श्रीराम अवतार लेते हैं और वे अनेक प्रकार के सुन्दर चरित्र करते हैं। तब–तब अर्थात् उन–उन कल्पों में अत्यन्त पवित्र प्रबन्ध बनाकर प्रत्येक कल्प की कथा अनेक रामायणों के माध्यम से श्रेष्ठमुनियों ने गायी है। उन्होंने अनेक उपमारहित प्रसंगों के व्याख्यान किये हैं। चतुरजन कथा की विविधता सुनकर भी आश्चर्य नहीं करते। श्रीहरि भगवान् श्रीराम अनन्त हैं और उनकी कथाएँ भी अनन्त हैं। अनन्त श्रीराम की अनन्त कथाओं को सभी सन्तगण बहुत प्रकार से कहते और सुनते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के सुहावने चरित्र करोड़ों कल्प पर्यन्त नहीं गाये जा सकते।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनि ग्यानी।।
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी।।

भा०– हे पार्वती ! यह प्रसंग अर्थात् नारद–मोह प्रसंग मैंने तुम्हें सुनाया। भगवान् की माया से ज्ञानीजन भी मोहित हो जाते हैं। भगवान् सर्वसमर्थ, अनेक कौतुक करने वाले, शरणागतों के हितकारी और सभी दु:खों को हरने वाले हैं।

दो०– सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहिं न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं, भजिय महामाया पतिहिं।।१४०।।

भा०– देवता, मनुष्य, और मुनियों में ऐसा कोई भी नहीं है, जिसको भगवान् की प्रबलमाया नहीं मोहित कर लेती हो। मन में ऐसा विचार करके महामाया के पति अर्थात् सीतापति भगवान् श्रीराम का भजन करना चाहिए।

* मासपारायण चौथा विश्राम *

अपर हेतु सुनु शैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी।।
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा।।
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बंधु समेत धरे मुनिबेषा।।
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती शरीर रहिहु बौरानी।।
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी।।

भा०– हे पर्वतपुत्री पार्वती ! अब श्रीराम–जन्म का दूसरा हेतु सुनो। इस आश्चर्यमय कथा को मैं विस्तार से कह रहा हूँ, जिस कारण से अजन्मा, निर्गुण, प्राकृतरूपरहित परब्रह्म साकेतविहारी भगवान् श्रीराम भी अयोध्या के राजा राम हो गये। जिन प्रभु को तुमने छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित मुनिवेश धारण किये हुए सीता जी की

खोज में वन–वन भटकते देखा। हे पार्वती! जिनके चरित्र को देखकर तुम सती शरीर में बावली हो गई थी। अब भी तुम्हारी वह भ्रम की छाया नहीं मिट रही है, भ्रम रूप रोग को हरने वाले उन्हीं प्रभु श्रीराम के चरित्र को अब सुनो।

लीला कीन्ह जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा।।

भा०– उस अवतार में प्रभु श्रीराम ने जो लीलाएँ की वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

भरद्वाज सुनि शङ्कर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी।।
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू।।

भा०– याज्ञवल्क्य जी, भरद्वाज जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, हे भरद्वाज! सुनिये, इस प्रकार शिव जी की वाणी सुनकर पार्वती जी संकोच करके प्रेमपूर्वक मुस्कुरायीं। फिर वृषभध्वज भगवान शिव जी वह वर्णन करने लगे, जिस कारण से साकेतविहारी भगवान् श्रीराम का परात्पर श्रीरामावतार हुआ था।

विशेष– यहाँ यह स्मरण रहे कि, पूर्व के बीस दोहों में शिव जी ने जिन तीन जन्मों की चर्चा की है, वे ही विष्णु जी के श्रीरामावतार कहे जा सकते हैं। अब बारह दोहों में जिस अवतार की चर्चा की जा रही है, वह साकेतविहारी महाविष्णु परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम का ही श्रीरामावतार है। ऐसे श्रीअवध और श्रीकाशी की मानसपरम्परा के व्याख्याता आचार्यों का मानना है। वस्तुतः गोस्वामी जी के आराध्य विष्णु जी के अवतार राम जी नहीं प्रत्युत् साकेतविहारी श्रीराम से अभिन्न अवधविहारी श्रीराम हैं। हाँ, श्रीराम ही अवतारी और अवतार दोनों हैं अर्थात् इन्ही में वैष्णव अवतारों का भी प्रवेश है, जिनके कुछ चरित्र समय–समय पर प्रकट होते रहते हैं, क्योंकि भगवान् विष्णु भगवान् श्रीराम के परम अन्तरंगतम् अंश हैं।

दो०– सो मैं तुम सन कहउँ सब, सुनु मुनीश मन लाइ।
राम कथा कलि मल हरनि, मंगल करनि सुहाइ।।१४१।।

भा०– वही समस्त चरित्र मैं तुमसे कह रहा हूँ। हे मुनीश्वर! कलियुग के मलों को हरनेवाली सब प्रकार के मंगल करनेवाली, सुहावनी श्रीरामकथा मन लगाकर सुनो।

स्वायम्भुव मनु अरु शतरूपा। जिन ते भइ नरसृष्टि अनूपा।।
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन कै लीका।।

भा०–श्वेत वराहकल्प के प्रथम मनवन्तर में ब्रह्मा जी के मानसपुत्र स्वायम्भुव मनु प्रथम मनु हुए, शतरूपा उनकी धर्मपत्नी थी। जिनसे मनुष्य की यह अनुपम सृष्टि हुई। आज भी वेद जिन मनु, शतरूपा की मर्यादा का गान करते हैं। वे मनुदम्पति धर्माचरण में बहुत ही नीक अर्थात् कुशल और निपुण थे। (यन् मनुर्वदत् तद्भेसजं अर्थात् जो मनु ने कहा, वही प्राणि मात्र की ओषधि बन गयी।)

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू।।
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रशंसहिं जाही।।

भा०– उन मनु के प्रथम पुत्र राजा उत्तानपाद थे। जिनके पुत्र परमभगवद् भक्त ध्रुव जी हुए। मनु जी के छोटे और प्रिय पुत्र थे प्रियव्रत जिनकी वेद और पुराण प्रशंसा करते हैं।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी।।
आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला।।
सांख्य शास्त्र जिन प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना।।

भा०- पुनः उन स्वायम्भुव मनु की देवहूति एक ऐसी पुत्री थी, जो कर्दम मुनि की प्रिय पत्नी हुई अर्थात् जिन्हें कर्दम जी ने अपनी तपस्या से प्रसन्न कर वरदान देने पधारे हुए भगवान् से मुख्य वर प्रसाद रूप में प्राप्त किया था। जिन देवहूति ने सर्वसमर्थ, दीनों पर दया करनेवाले, कृपालु आदिदेव भगवान् नारायण के अंशस्वरूप कपिल जी को अपने गर्भ में धारण किया था। तत्व–विचार में कुशल ऐश्वर्यादि छहों माहात्म्य से नित्यसम्पन्न जिन भगवान् कपिल जी ने आसुरी आदि आचार्यों को लुप्त हुए संख्यशास्त्र को प्रकट करके उपदेश दिया था।

तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला।।

दो०- होइ न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरिभगति बिनु।।१४२।।

भा०- उन्हीं स्वयाम्भुव मनु जी ने बहुत कालपर्यन्त अर्थात् इकहत्तर चतुर्युगपर्यन्त राज किया था तथा सब प्रकार से भगवान् की आज्ञा का प्रीतिपूर्वक पालन किया। विषयों से वैराग्य नहीं हो रहा था, भवन में रहते–रहते गृहस्थाश्रम में ही चौथापन (बुढ़ापा) आ गया। हृदय में बहुत दुःख हुआ, अरे! उन भगवान् के भक्ति के बिना यह जन्म अर्थात् जीवन चला गया। (**न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्ण वर्तमेव भूय एवाभि वर्धते।।** अर्थात् कामनाओं के उपभोग से कभी कामनाओं कि शान्ति नहीं होती, वह तो घृत से प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्षण–प्रतिक्षण बढ़ती जाती है।)

बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।।
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता।।
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हिय हरषि चलेउ मनु राजा।।

भा०- तब स्वायम्भुव मनु जी ने जम्बूद्वीप का राज्य न चाहने पर भी हठपूर्वक अपने प्रथम पुत्र उत्तानपाद को दे दिया और स्वयं नारी अर्थात् श्रेष्ठनर मनु की सहचारिणी शतरूपा जी के साथ तपस्या करने हेतु वन के लिए प्रस्थान किया। सभी तीर्थों में श्रेष्ठ अत्यन्त पुनीत, साधकों को सिद्धि देनेवाला नैमिषारण्य नाम का तीर्थ विख्यात है। वहाँ मुनियों और सिद्धों के समाज निवास करते हैं। राजा मनु हृदय में प्रसन्न होकर वहीं अर्थात् नैमिषारण्य को चल पड़े।

पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरे शरीरा।।
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा।।

भा०- मार्ग में जाते हुए धीरबुद्धिवाले, मनु–शतरूपा शरीर धारण किये हुए ज्ञान और भक्ति के समान सुशोभित हो रहे थे। वे गोमती के तट पर जा पहुँचे और मनु दम्पति ने प्रसन्न होकर निर्मल जल में स्नान किया।

आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपऋषि जानी।।
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन सकल सादर करवाए।।

भा०- राजर्षि मनु जी को धर्म का धुरन्धर जानकर सिद्ध, मुनि और ज्ञानी उनसे मिलने आये। जहाँ–जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियों ने आदरपूर्वक मनु दम्पति को सभी तीर्थ करवा दिये।

कृश शरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना।।

दो०- द्वादश अक्षर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग।।१४३।।

भा०– मनु और शतरूपा का शरीर दुर्बल हो चुका था। वे मुनिपट अर्थात् मुनियों द्वारा पहने जानेवाले वल्कल वस्त्र पहनते थे और सन्तों की सभा में निरन्तर पुराण–कथा सुनते थे। मनु–शतरूपा श्रेष्ठ बारह अक्षरोंवाले श्रीसीताराम के युगलमंत्र का प्रेमपूर्वक जप करने लगे। सबको आच्छादन करने वाले और सर्वत्र प्रकाशमान् वासुदेव भगवान् श्रीसीताराम जी के श्रीचरणकमल में मनु दम्पति का मन अत्यन्त लग गया।

करहिं अहार शाक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा।।
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अहार मूल फल त्यागे।।

भा०– मनु दम्पति शाक, फल और कन्दमूल का आहार करते थे तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म भगवान् श्रीराम का स्मरण करते थे। फिर श्रीहरि भगवान् श्रीराम के दर्शन के लिए मनु–शतरूपा तप करने लगे। वे कन्दमूल और फल छोड़कर केवल जल पी कर रहने लगे।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।।
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहिं चिंतहिं परमारथबादी।।
नेति नेति जेहिं बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा।।
शंभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना।।

भा०– मनु–शतरूपा के हृदय में यह अभिलाषा निरन्तर होती रहती थी कि, हम उन परमप्रभु, परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम को अपने नयनों से निहारें, जो प्राकृत गुणों से रहित, अखण्ड, अन्त और आदि से रहित हैं, जिन्हें परमार्थवादी अर्थात् मुमुक्षुजन अपने चिन्तन का विषय बनाते हैं। 'नेति–नेति' कहकर वेदों ने जिनका निरूपण किया, जो अपने ही आनन्द में लीन रहते हैं, अथवा निज जनों को आनन्दित करते रहते हैं, जिनके यहाँ कोई क्षणभंगुर उपाधि नहीं है, जो उपमारहित हैं, जिनके अंश से अनेक शिव जी, ब्रह्मा जी और भगवान् विष्णु उत्पन्न होते रहते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहहीं। भगत हेतु लीलातनु गहहीं।।
जौ यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।।

भा०– ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट प्रभु सर्व, सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम सेवकों के वश में हैं और भक्तों के लिए ही लीलाविग्रहों को धारण करते हैं, यदि वेदों द्वारा कहा हुआ यह वचन सत्य है, तो हम दोनों की भी अभिलाषा पूर्ण होगी।

दो०– एहि बिधि बीते बरष षट, सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार।।१४४।।

भा०– इस प्रकार चिन्तन के साथ तपस्या करते हुए, जलमात्र का आहार करके मनु दम्पति छः हजार वर्षपर्यन्त स्थिर रहे, फिर वायु पीकर ही वे सात हजार वर्ष तक रहे।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ।।
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा।।
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहि चलहिं चलाए।।
अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा।।

भा०– दस हजार वर्ष के लिए मनु दम्पति ने वायु भी छोड़ दिया और दोनों एक पद पर खड़े रहे। मनु–शतरूपा का अपार तप देखकर ब्रह्मा जी, विष्णु जी और शङ्कर जी मनु दम्पति के पास बहुत बार आये तथा "वरदान

माँगो" इस प्रकार कहकर, तीनों देवताओं ने मनु दम्पति को बहुत प्रकार से प्रलोभित किया, परन्तु अत्यन्त धीर मनु–शतरूपा तीनों देवताओं के प्रलोभन से चलायमान नहीं हो सके। उनका शरीर अस्थिमात्र रह गया अर्थात् नरकंकाल ही शेष रहा फिर भी उनके मन में थोड़ी सी भी पीड़ा नहीं थी।

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी।।
माँगु माँगु बर भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी।।

भा०– सब कुछ जानने वाले साकेत विहारी प्रभु भगवान् श्रीराम ने तपस्वी राजा मनु जी और तपस्विनी महारानी शतरूपा जी को अनन्य गतिवाले अपने सेवक जाने और तब अत्यन्त गम्भीर कृपारूप अमृत से सनी हुई आकाशवाणी हुई, 'वरदान माँगो! वरदान माँगो'!

मृतक जियावनि गिरा सुहाई। स्रवन रंध्र होइ उर जब आई।।
हृष्टपुष्ट तन भय सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए।।

भा०– मृतकों को जिलानेवाली प्रभु श्रीराम की सुहावनी वाणी जब कानों के छिद्रों से प्रविष्ट होकर मनु दम्पति के हृदय में आयी, तब उनके शरीर सुहावने, हृष्ट और पुष्ट हो गये मानो अभी–अभी घर से आये हैं।

दो०– स्रवन सुधासम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात।।१४५।।

भा०– प्रभु श्रीराम की अमृत के समान मधुर वाणी अपने कानों से सुनकर रोमांच से प्रफुल्लित हुए शरीर वाले मनु–शतरूपा जी दण्डवत् करके बोले, प्रेम उनके हृदय में नहीं समा रहा था।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरिहर बंदित पद रेनू।।
सेवत सुलभ सकल सुख दायक। प्रनतपाल सचराचर नायक।।

भा०– हे सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनुस्वरूप श्रीराम! सुनिये, ब्रह्मा जी, विष्णु जी और शिव जी भी आपकी चरणधूलि की वन्दना करते हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सभी सुखों को देनेवाले हैं, आप शरणागतों के पालक और चर–अचर सभी के नायक अर्थात् स्वामी हैं।

जौ अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू।।
जो स्वरूप बश शिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुशुण्डि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रशंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन।।

भा०– हे अनाथों के हितैषी प्रभु! यदि आपको हम पर प्रेम है, तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि, आप का जो स्वरूप शिव जी के मन में निवास करता है, जिसके लिए मुनिजन यत्न करते रहते हैं, जो काकभुशुण्डि जी के मनरूप मानस–सरोवर का हंस है। सगुण और निर्गुण के रूप में जिसकी वेदों ने प्रशंसा की है, हम उसी स्वरूप को नेत्र भर देखें। हे शरणागतों के कष्ट को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम! आप ऐसी ही कृपा कीजिये।

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे।।
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिश्वबास प्रगटे भगवाना।।

भा०– कोमल, विनम्र एवं प्रेमरस से पगे हुए मनु दम्पति के वचन भगवान् को बहुत प्रिय लगे तब भक्तवत्सल, सर्वसमर्थ, कृपा के कोष, सम्पूर्ण विश्व में निवास करने वाले तथा सम्पूर्ण विश्व के निवासस्थान साकेताधिपति भगवान् श्रीराम प्रकट हो गये।

दो०- नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम।।१४६।।

भा०- नीले कमल, नीली मरकतमणि एवं नीले वर्षाकालीन बादल के समान प्रभु श्रीराम के श्यामल श्रीविग्रह की शोभा को निहारकर करोड़ों-अरबों कामदेव लज्जित हो रहे थे।

शरद मयंक बदन छबि सीवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ।।
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा।।

भा०-शरद्काल के निष्कलंक पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख, सम्पूर्ण छवियों की सीमा बन चुका था। भगवान् के कपोल, ठोड़ी बहुत सुन्दर थे। शंख के समान उनका कण्ठ था। प्रभु के होठ लाल तथा दाँत और नासिका बहुत सुन्दर थे। भगवान् श्रीराम का मन्द हास चन्द्रमा की किरणों के समूहों की निन्दा कर रहा था।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की।।
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी।।

भा०- नवीन कमल के समान भगवान् के नेत्रों की छवि बहुत ही रमणीय थी, उनकी ललित चितवन जीवात्मा को भी भा रही थी। भगवान् की भौंहे कामदेव के धनुष की शोभा को चुरा रही थीं। प्रभु के विशाल मस्तक पटल पर लगा हुआ ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक दिव्यकान्ति को उत्पन्न कर रहा था।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केश जनु मधुप समाजा।।
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला।।

भा०- प्रभु के कानों में मकर अर्थात् मछली के आकार के दो कुण्डल सुशोभित हो रहे थे। प्रभु के सिर पर स्वर्ण का मुकुट शोभायमान हो रहा था। भगवान् के घुँघराले केश ऐसे लग रहे थे मानो भौंरों का समूह हो। उनके हृदय पर श्रीवत्स चिह्न और श्रीचरणकमलपर्यन्त लटकने वाली तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात तथा कमल-पुष्पों से बनी वनमाला थी। हीरे का हार तथा मणियों के जाल से युक्त आभूषण सुशोभित हो रहे थे।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ।।
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर शर कोदंडा।।

भा०- सिंह के समान स्कन्ध पर सुन्दर जनेऊ सुशोभित था। जो बाहुओं में विभूषण थे वे भी बहुत सुन्दर थे। भगवान् श्रीराम की सुन्दर भुजाएँ हाथी के सूँड़ के समान थीं। उनके कटि-प्रदेश में तरकस तथा श्रीहस्त में बाण, धनुष विराजमान थे।

दो०- तड़ित बिनिंदक पीत पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छबि छीनि।।१४७।।

भा०- प्रभु श्रीराम के कटितट पर विराजमान पीताम्बर बिजली की भी विशेष निन्दा कर रहा था अर्थात् विद्युत से भी अधिक प्रकाशमान था। भगवान् के उदर पर श्रेष्ठ तीन रेखायें थीं। प्रभु की सुन्दर नाभि मानो यमुना जी की भँवर की शोभा को भी छीन ले रही थी।

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहि जिन माहीं।।

भा०- भगवान् के लालकमल के समान सुन्दर चरणों का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिनमें मुनिजन के मन रूप भौंरें निवास करते हैं।

बाम भाग शोभति अनुकूला। आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला।।
जासु अंश उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई।।

भा०– प्रभु के वामभाग में सदैव अनुकूल रहनेवाली आदिशक्ति शोभा की खानिस्वरूप, संसार की मूल कारणस्वरूप सीता जी निरन्तर अनुकूलता के साथ सुशोभित हो रही थीं। जिनके अंश से सभी गुणों की खानि असंख्य पार्वती जी, लक्ष्मी जी तथा सरस्वती जी उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके भृकुटि–विलासमात्र से यह चराचर जगत् उत्पन्न होता है, वही भगवती सीता जी भगवान् श्रीराम के वाम भाग में सुशोभित हो रहीं थीं।

छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी।।
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा।।

भा०– इस प्रकार से छवि के सागर श्रीहरि अर्थात् सीता जी की पीलीकान्ति से मिलकर जिनका नीला विग्रह हरा हो गया था, ऐसे सीताभिराम श्रीराम के रूप को देखकर मनु दम्पति अपने नेत्रों के वस्त्र अर्थात् पलकों को गिरने से रोककर एकटक देखते रहे। वे सादर प्रभु के अनुपम रूप को निहार रहे थे और प्रभु के दर्शन करते हुए वे (मनु–शतरूपा) तृप्ति अर्थात् सन्तोष नहीं मान रहे थे।

हरष बिबश तन दशा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी।।
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा।।

भा०– हर्ष के वश में होने से उन्हें अपने शरीर की दशा भूल गयी और प्रभु के चरणों को हाथों से पकड़कर मनु–शतरूपा दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रभु श्रीराम ने अपने करकमल का मनु–शतरूपा के सिर पर स्पर्श किया और करुणा के पुंज श्रीराम ने पृथ्वी पर पड़े हुए मनु–शतरूपा को तुरन्त उठाया।

विशेष– यहाँ गहि पद पानी वाक्यखण्ड का प्रयोग बहुत ही भावनापूर्ण और साभिप्राय है। मनु दम्पति ने सोचा कि, कदाचित् हमारी शरीर की विस्मृति का लाभ उठाकर प्रभु चले न जायें, इसीलिए अपने दोनों हाथों से प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ लिया।

दो०– बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि।।१४८।।

भा०– फिर कृपा के खजाने भगवान् श्रीराम बोले, हे राजन्! मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और महादानी का अनुमान करके तुम वही वरदान माँगो जो तुम्हारे मन को भा रहा हो।

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदु बानी।।
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे।।

भा०– प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर धैर्य धारण करके, मनु जी कोमल वाणी में बोले, हे नाथ! आपके श्रीचरणकमलों को देखकर ही अब हमारी सभी इच्छाएँ पूरी हो गयीं।

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।।
तुमहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं।।

भा०– फिर भी मन में एक बहुत बड़ी लालसा है, वह सुगम भी है और अगम भी है, इसलिए वह कही नहीं जा रही है। वह देने में आपके लिए सुगम है, परन्तु अपनी कृपणता के कारण मुझे अत्यन्त अगम अर्थात् कठिन लग रही है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति माँगत सकुचाई।।
तासु प्रभाव जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संशय होई।।

भा०- जैसे दरिद्र व्यक्ति कल्पवृक्ष को प्राप्त करके बहुत-सी सम्पत्ति माँगने में संकोच करता है, क्योंकि कल्पवृक्ष का प्रभाव वह दरिद्र नहीं जानता, उसी प्रकार मेरे मन में संशय हो रहा है।

सो तुम जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी।।
सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।।

भा०- हे अन्तर्यामी! आप वह जानते हैं, हे स्वामी! आप मेरे मनोरथ पूर्ण कर दीजिये। भगवान् श्रीराम ने कहा, हे राजन्! संकोच छोड़कर मुझको मुझसे माँग लो। तुम्हारे लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है अर्थात् मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ।

दो०- दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाव।।
चाहउँ तुमहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव।।१४९।।

भा०- हे दानियों के शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ मैं अपने सत्यभाव कह रहा हूँ, मैं आप के समान पुत्र चाहता हूँ, अथवा मैं आपको भी चाहता हूँ और आप के समान पुत्र भी। प्रभु के सामने कैसा छिपाव?

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले।।
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई।।

भा०- मनु जी की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणा के सागर भगवान् श्रीराम 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कह कर फिर बोले, हे राजन्! अपने समान मैं कहाँ जाकर खोजूँ? मैं स्वयं आप की पत्नी के गर्भ में आकर आपका पुत्र बनूँगा।

शतरूपहिं बिलोकि कर जोरे। देबि माँगु बर जो रुचि तोरे।।
जो बर नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा।।

भा०- शतरूपा को हाथ जोड़े हुए देखकर भगवान् श्रीराम ने कहा, हे देवी! आपकी जो रुचि हो वह वरदान माँग लीजिये। अथवा, शतरूपा को देखकर प्रभु ने हाथ जोड़ लिए और बोले, हे देवी! यदि आप की रुचि हो तो आप देवी अर्थात् सीता जी को ही अपनी पुत्रवधू के रूप में माँग लीजिये। शतरूपा जी ने कहा, हे नाथ! चतुर महाराज मनु ने आप से जो वरदान माँगें हैं, वही मुझे बहुत प्रिय लगे हैं, अर्थात् यदि आप पुत्ररूप में हमारे यहाँ आयेंगे तब पुत्रवधू के रूप में सीता जी स्वयं आ जायेंगी।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुमहिं सोहाई।।
तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी।।
अस समुझत मन संशय होई। कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई।।

भा०- हे प्रभु! परन्तु मुझसे एक सुन्दर धृष्टता हो रही है। हे भक्तों के हितैषी भगवान्! यद्यपि वह ढिठाई आप को अच्छी लग रही है। आप ब्रह्मादि देवताओं के पिता अर्थात् उत्पन्न करनेवाले हैं। आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी, सबके हृदय के अन्तर्यामी तथा परब्रह्म हैं, फिर भी आप मेरे गर्भ में आकर हम दोनों के पुत्र बनेंगे ऐसा समझने में मन को संदेह तो हो रहा है, परन्तु आप ने जो कहा वह प्रमाण है, अर्थात् यदि आप ने हमारे यहाँ पुत्र रूप में आने का वचन दे दिया तो वह सत्य होगा।

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।।

दो०- सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु।।१५०।।

भा०- हे प्रभु! आप भगवान् हैं (षडैश्वर्य सम्पन्न हैं) इसलिए आप से यह छः वरदान माँगती हूँ कि, हे नाथ! जो आप के निजी भक्त हैं, वे आप से जो सुख पाते हैं और जो गति प्राप्त करते हैं, हे प्रभु! आप कृपा करके हम मनु दम्पति मनु और शतरुपा को वही सुख, वही गति, वही भक्ति, अपने चरणों में वही स्नेह, वही विवेक और वही रहनि अर्थात् व्यवहार दे दीजिये।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बच रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना।।
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संशय नाहीं।।
मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे।।

भा०-शतरूपा जी के कोमल और गम्भीर वचन की रचना सुनकर कृपा के सागर भगवान् कोमल वाणी में बोले, हे माँ! आपके मन में जो कुछ भी रुचि है वह सब मैंने दे दिया, इसमें कोई संशय नहीं है। हे माता जी! मेरी कृपा से आपका यह अलौकिक विवेक कभी नहीं मिटेगा।

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी।।
सुत बिषयिक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना।।

भा०- फिर मनु जी ने श्रीराम जी के चरणों की वन्दना करके कहा, हे प्रभु! मेरी एक और विनती है कि, आपके चरणों में मेरी पुत्र विषयक रति हो अर्थात् मैं वत्सलरस की मान्यता के अनुसार आपकी उपासना करूँ। मुझे कोई बहुत बड़ा मूर्ख क्यों न कहे अर्थात् भले ही मैं लोगों की दृष्टि में बहुत–बड़ा मूर्ख रहूँ, परन्तु जैसे मणि के बिना सर्प नहीं रह सकता है, जैसे जल के बिना मछली नहीं रह सकती है, उसी प्रकार मेरा यह जीवन आप के ही अधीन रहे।

अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ।।
अब तुम मम अनुशासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी।।

भा०- ऐसा वरदान माँगकर मनु जी प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ स्थिर रह गये। करुणासागर भगवान् ने एवमस्तु कहकर फिर कहा, हे मनु जी! अब आप मेरी आज्ञा मानकर माता शतरुपा के साथ इस लोक से जाकर इन्द्र की राजधानी अमरावती में निवास कीजिये।

सो०- तहँ करि भोग बिशाल, तात गए कछु काल पुनि।
होइहउ अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत।।१५१।

भा०- हे पिताश्री ! उस अमरावती पुरी में देव–दुर्लभ सुखभोग करके, फिर आप विशाल अयोध्या के चक्रवर्ती महाराज होंगे, तब मैं आपका पुत्र होऊँगा।

इच्छामय नरबेष सवाँरे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे।।
अंशन सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।

भा०- मैं अपने तथा अपने भक्तजनों की इच्छा के अनुरूप सुन्दर मनुष्य वेश बनाकर आप के भवन में प्रकट होऊँगा। हे पिताश्री! अपने तीनों अंशों ब्रह्मा जी, विष्णु जी एवं शङ्कर जी के साथ अथवा, अपने तीनों अंशों

बैकुण्ठ, क्षीरसागर और श्वेतद्वीप निवासी विष्णुओं के साथ सुन्दर मनुष्य शरीर धारण करके भक्तों को सुख देनेवाले सुन्दर चरित्र करूँगा, अर्थात् मुझ राम की सेवा के लिए क्षीरसागरविहारी विष्णु भरत, बैकुण्ठ–विहारी विष्णु लक्ष्मण, और श्वेतद्वीपविहारी विष्णु शत्रुघ्न के रूप में जन्म लेंगे।

विशेष– क्षीराधीशस्तु भरतो बैकुण्ठेशस्तुलक्ष्मणः, श्वेतद्वीपेशशत्रुघ्नो रामसेवार्थमागताः।

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहैं ममता मद त्यागी।।
आदिशक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहिं मोरि यह माया।।

भा०–जिन चरित्रों को आदरपूर्वक सुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता और मद छोड़ संसार–सागर से तर जायेंगे। जिन आदिशक्ति सीता जी ने ब्रह्मा जी के माध्यम से जगत् को बनाकर उत्पन्न किया वह मेरी माया आह्लादिनीशक्ति भी मिथिलांचल में जनकराज की पुत्री के रूप में पृथ्वी से अवतार लेंगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा।।
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना।।

भा०– मैं आप की अभिलाषा को पूर्ण करूँगा। हमारी प्रतिज्ञा सत्य है! सत्य है! सत्य है! कृपा के निधान भगवान् श्रीराम मनु जी को बार–बार इस प्रकार आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये।

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला।।
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा।।

भा०– भक्तों पर कृपालु भगवान् श्रीराम को हृदय में धारण करके मनु और शतरूपा कुछ समय तक नैमिषारण्य के उसी आश्रम में निवास किये। समय पाकर अर्थात् शरीर का प्रारब्ध क्षीण हो जाने पर, बिना प्रयास के पांचभौतिक शरीर को छोड़कर मनु–शतरूपा ने स्वर्ग जाकर अमरावती में निवास किया।

दो०– यह इतिहास पुनीत अति, उमहिं कहेउ बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु।।१५२।।

भा०– हे भरद्वाज जी! यह अत्यन्त पवित्र इतिहास शिव जी ने पार्वती जी से कहा, फिर दूसरा श्रीरामजन्म का हेतु सुनो।

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति शंभु बखानी।।
बिश्व बिदित एक कैकय देशू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेशू।।
धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप शील बलवाना।।
तेहि के भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा।।
राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही।।
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा।।

भा०– याज्ञवल्क्य जी, भरद्वाज जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, हे भरद्वाज मुनि! अब वह पुनीत और पुरानी कथा सुनो, जिसे पार्वती जी के प्रति शिव जी ने कही थी। विश्व में प्रसिद्ध कैकय नाम का एक देश है, जिसमें सत्यकेतु नाम का राजा निवास करता था। वह धर्म–धुरन्धर तथा नीति का निधान था। वह तेज, प्रताप और शील–गुणों से युक्त तथा बलवान भी था। उस सत्यकेतु के दो वीरपुत्र उत्पन्न हुए जो, सब गुणों के धाम और युद्ध में अत्यन्त धीर थे। महाराजा का जो ज्येष्ठपुत्र था, उसका प्रतापभानु इस प्रकार का सार्थक नाम था। सत्यकेतु के दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था, जो अतुलनीय भुजबलवाला और संग्राम में अटल था।

भाइहिं भाइहिं परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती।।
जेठे सुतहिं राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गमन बन कीन्हा।।

भा०- भाई–भाई में परस्पर समन्वय था और सम्पूर्ण दोषों और छल से रहित प्रेम था। महाराज ने बड़े पुत्र को राज्य दिया और स्वयं प्रभु की प्राप्ति के लिए वन चले गये।

दो०- जब प्रतापरबि भयउ नृप, फिरी दोहाई देश।
प्रजा पाल अति बेदबिधि, कतहुँ नाहिं अघ लेश।।१५३।।

भा०- जब प्रतापभानु राजा बने तो देश में उनकी दुहाई फिर गई। वे वेदविधि के अनुसार प्रजा का पालन करते थे और उनके राज्य में कहीं भी पाप का लेश भी नहीं था।

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि शुक्र समाना।।
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा।।
सैन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा।।

भा०- महाराज का हित करनेवाला धर्मरुचि नामक मंत्री बहुत चतुर और नीति में शुक्र के समान था। मंत्री ज्ञानवृद्ध था तथा छोटा भाई अत्यन्त बलशाली और वीर था। राजा स्वयं प्रताप का समूह रूप तथा युद्ध में धीर था, उसके पास अपार चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें असीम योद्धा थे, जो समर में बहुत ही लड़ाकू थे।

सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना।।
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई।।

भा०- अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और युद्ध के लिए गहगहे अर्थात् ऊँचे स्वर से नगारे बज उठे। दिग्विजय के लिए महाराज ने सेना सजायी। सुन्दर मुहूर्त निकालकर नगारे बजाकर वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा।

जहँ तहँ परी अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरियाईं।।
सप्त दीप भुजबल बश कीन्हे। लै लै दण्ड छाड़ि नृप दीन्हे।।
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला।।

भा०- जहाँ–तहाँ अनेक युद्ध आन पड़े, प्रतापभानु ने सभी राजाओं को बलपूर्वक जीता और जम्बूद्वीप, लक्षद्वीप, कुशद्वीप, सातद्वीप, क्रंचद्वीप, शालमणिद्वीप तथा पुष्करद्वीप इन सातों द्वीपों को अपने भुजबल के वश में कर लिया। सब राजाओं से दण्ड लेकर उन्हें छोड़ दिया। उस समय सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर प्रतापभानु एकमात्र राजा था।

दो०- स्वबश बिश्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रबेश।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समय नरेश।।१५४।।

भा०- अपने बाहु के बल से सम्पूर्ण विश्व को अपने वश में करके प्रतापभानु ने अपने पुर में प्रवेश किया। वह समयानुसार अर्थ, धर्म, काम आदि सुखों का भोग करता था।

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई।।
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरम शील सुंदर नर नारी।।

भा०- प्रतापभानु का बल पाकर सुहावनी पृथ्वी कामधेनु के समान हो गयी। उसकी प्रजा सभी दुःखों से रहित और सुखी थी। वहाँ सभी नर–नारी स्वभाव से धार्मिक और सुन्दर थे ।

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती।।
गुरु सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा।।

भा०- प्रतापभानु का मन्त्री धर्मरुचि भगवान् के चरणों में प्रीति रखता था और वह राजा के हित के लिए ही उसे निरन्तर नीति सिखाता रहता था। राजा सदैव गुरु, देवता, सन्त, पितृगण और ब्राह्मण इन सबकी सेवा करता था।

भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने।।
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ शास्त्र बर बेद पुराना।।

भा०- वेदों में जो राजा के धर्म कहे गये हैं, प्रतापभानु उन सबका आदरपूर्वक सुख मानकर पालन करता था। वह प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता था और वेद, पुराण तथा श्रेष्ठ ग्रन्थ सुनता था।

नाना बापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा।।
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथनि बिचित्र बनाए।।

भा०- प्रतापभानु ने सभी तीर्थों में अनेक प्रकार की बावलियाँ, कुँए, तालाब, पुष्पवाटिका, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणशाला तथा सुन्दर–सुन्दर देवताओं के मंदिर विचित्र प्रकार से बनवाये।

दो०- जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग।।१५५।।

भा०- जहाँ तक पुराणों और वेदों ने कहा है, उन सभी यज्ञों में से प्रत्येक को राजा ने करोड़ों बार अनुरागपूर्वक किया।

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना।।
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी।।

भा०- प्रतापभानु विवेकी और बहुत चतुर था, उसके हृदय में कुछ फल का अनुसन्धान नहीं हुआ था अर्थात् वह सभी वैदिक अनुष्ठान कर्त्तव्यबुद्धि से करता था। ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो भी धर्माचरण करता था, उसे भगवान् वासुदेव को समर्पित कर देता था।

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा।।
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ।।

भा०- एक बार आखेट का सम्पूर्ण उपकरण सजाकर श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर राजा प्रतापभानु विन्ध्याचल के गम्भीर वन में गया और वहाँ उसने बहुत से पवित्र मृगों को मारा।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ शशिहिं ग्रसि राहू।।
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहु क्रोध बश उगिलत नाहीं।।
कोल कराल दशन छबि गाई। तनु बिशाल पीवर अधिकाई।।
घुरघुरात हय आरौ पाए। चकित बिलोकत कान उठाए।।

भा०- वन में भ्रमण करते हुए राजा ने एक सुअर को देखा। उसके बहुत बड़े दाँत थे, जो मुख बन्द करने पर भी पूरे बन्द न होने के कारण बाहर से दिखते थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो, चन्द्रमा को ग्रसकर राहु वन में छिप गया है। चन्द्रमा आकार में बड़ा होने के कारण राहु के मुख में नहीं समाता, मानो क्रोध के वश में होकर राहु उसे

उगल नहीं रहा हो। इस प्रकार भयंकर सुअर के दाँत की छवि कही, उसका शरीर विशाल और बहुत ही मोटा था। घोड़े का संकेत पाकर वह घुरघुरा रहा था और चकित होकर अपने कान उठाकर देख रहा था।

दो०- नील महीधर शिखर सम, देखि बिशाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाहु।।१५६।।

भा०- नील पर्वत के समान शरीरवाले सुअर को देखकर, घोड़े को कोड़े से मार कर राजा ने सुअर को ललकारा, अब तेरा निर्वहन नहीं होगा और ऐसा कह कर शीघ्रता से चला।

आवत देखि अधिक रय बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी।।
तुरत कीन्ह नृप शर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना।।

भा०- अधिक वेग से घोड़े को अपने पास आते देखकर, सुअर वायु कि गति से भाग चला। राजा ने तुरन्त धनुष पर बाण को सन्धान किया, पर सुअर बाण को देखते ही पृथ्वी से चिपक गया, जिससे राजा का निशाना व्यर्थ गया।

तकि तकि तीर महीश चलावा। करि छल सुअर शरीर बचावा।।
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिसि बश भूप चलेउ सँग लागा।।

भा०- राजा प्रतापभानु ताक–ताक कर अर्थात् सूक्ष्मता से साध–साध कर बाण चलाता रहा और मायावी सुअर छल करके प्रतापभानु के बाणों से अपना शरीर बचाता रहा। इस प्रकार मृग अर्थात् शिकारी का लक्ष्य–पशु प्रकट होते छिपते भागता रहा और क्रोध के वश में होकर प्रतापभानु उसके साथ लग गया।

गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू।।
अति अकेल बन बिपुल कलेशू। तदपि न मृग मग तजइ नरेशू।।

भा०- वह वराह बहुत दूर घने जंगल में गया, जहाँ हाथी–घोड़े जैसे बड़े पशुओं का निर्वाह सम्भव नहीं था। राजा अत्यन्त अकेला पड़ गया था, वहाँ उसे अत्यन्त क्लेश हो रहा था, फिर भी वह अपने लक्ष्य मृग का मार्ग नहीं छोड़ रहा था।

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गंभीरा।।
अगम देखि नृप अति पछताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई।।

भा०- कोल अर्थात् सुअर प्रतापभानु को अत्यन्त धैर्यवान देखकर भाग कर पर्वत की गहरी गुफा में प्रवेश कर गया। उसे अगम्य देखकर मन में बहुत पछताता हुआ राजा लौटा और महान् वन में वह अपना मार्ग भूल पड़ा।

दो०- खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत।।१५७।।

भा०- श्रम के कारण खिन्न, भूखा–प्यासा प्रतापभानु राजा घोड़े के सहित व्याकुल होकर नदी, तालाब खोजता रहा। वह जल के बिना चेतनाशून्य हो गया।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा।।
जासु देश नृप लीन्ह छड़ाई। समर सैन तजि गयउ पराई।।
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी।।
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी।।

भा०– वन में भटकते हुए प्रतापभानु ने एक आश्रम देखा वहाँ एक राजा कपटमुनि के वेश में निवास कर रहा था। प्रतापभानु राजा ने जिसका देश उससे छीन लिया था, और वह राजा युद्ध में अपनी सेना छोड़कर भाग गया था। प्रतापभानु का समय जानकर और अपने समय को अत्यन्त विपरीत अनुमानित कर वह अपने घर लौटकर नहीं गया। उसके मन में बहुत ग्लानि थी और पराजित हुए अभिमानी राजा ने प्रतापभानु से मेल–जोल भी नहीं किया।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस के साजा।।
तासु समीप गमन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा।।

भा०– क्रोध को अपने हृदय में मारकर वह पराजित राजा तपस्वी का साज–सजाकर दरिद्र की भाँति वन में आश्रम बनाकर रह रहा था। प्रतापभानु ने उसी के समीप गमन किया अर्थात् गया। उस कपटी राजा ने यह तो प्रतापभानु है, इस प्रकार स्मरण करके राजा प्रतापभानु को पहचान लिया।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना।।
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा।।

भा०– प्यासे राजा ने अपने शत्रु को नहीं पहचाना। उसका सुन्दर तपस्वी वेश देखकर उसे महान् मुनि जाना। प्रतापभानु ने घोड़े से उतरकर उस कपटीमुनि को प्रणाम किया। परमचतुर होने के कारण कपटीमुनि ने अपना नाम नहीं बताया, अथवा परमचतुर राजा ने प्रणाम करते समय अपना नाम नहीं बताया।

दो०– भूपति तृषित बिलोकि तेहिं, सरबर दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ।।१५८।।

भा०– राजा को प्यासा देखकर कपटीमुनि ने उसे श्रेष्ठ तालाब दिखा दिया। राजा प्रतापभानु ने घोड़े सहित प्रसन्न होकर वहाँ स्नान और जलपान किया।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ।।
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी।।

भा०– तालाब में स्नान और जलपान से राजा प्रतापभानु के सब प्रकार के श्रम समाप्त हो गये अर्थात् सारी थकान उतर गयी। राजा सुखी हो गया, कपटीमुनि राजा को अपने आश्रम ले गया। उसे बैठने के लिए आसन दिया तथा सूर्यनारायण को अस्त हुआ जानकर फिर वह तपस्वी कोमल वाणी में बोला।

को तुम कस बन फिरहु अकेले। सुंदर जुबा जीव परहेले।।
चक्रबर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे।।

भा०– तुम कौन हो और सुन्दर युवक होकर अपने प्राणों पर खेलते हुए अकेले वन में कैसे घूम रहे हो? तुम्हारे चक्रवर्ती के लक्षण देखते ही मुझे दया लग गयी।

नाम प्रतापभानु अवनीशा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीशा।।
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखउँ पद आई।।
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा।।

भा०– हे मुनीश्वर! सुनिये, प्रतापभानु नाम के एक राजा हैं, उनका मैं मंत्री हूँ। आखेट में भ्रमण करते हुए मैं मार्ग भूल गया, बहुत भाग्य से आपके चरणों के दर्शन कर रहा हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! हमारे लिए तो आपके दर्शन भी दुर्लभ हैं। मैं जान रहा हूँ कि, अब कुछ भला होनेवाला है।

कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा।।

दो०- निशा घोर गंभीर बन, पंथ न सूझ सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम, जाएहु होत बिहान।।१५९(क)।।

भा०- कपटीमुनि ने कहा, हे तात! अर्थात् हे प्रिय, अब अँधेरा हो गया है। यहाँ से तुम्हारा नगर सत्तर योजन दूर है। यह घोर अँधेरी रात है और वन बहुत ही घोर अर्थात् घना है। हे सुजान! अभी मार्ग नहीं सूझ रहा है। तुम ऐसा जानकर आज यहीं रुक जाओ, प्रात:काल होते ही चले जाना।

दो०- तुलसी जसि भवितब्यता, तैसी मिलइ सहाइ।।
आप न आवइ ताहि पहँ, ताहि तहाँ लै जाइ।।१५९(ख)।।

भा०- तुलसीदास जी कहते हैं कि, जैसी भवितव्यता होती है, उसी प्रकार की वहाँ सहायता भी मिल जाती है। वह भावी अनर्थवाले व्यक्ति के पास स्वयं नहीं आती दु:ख के पात्र को दु:ख के पास स्वयं ले जाती है। जैसे की कपटीमुनि प्रतापभानु के पास नहीं आया, प्रत्युत् प्रतापभानु को ही भवितव्यता कपटीमुनि के पास ले गई।

भलेहिं नाथ आयसु धरि शीशा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीशा।।
नृप बहु भाँति प्रशंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही।।

भा०- हे नाथ ! बहुत ही अच्छा है, इस प्रकार कपटीमुनि की आज्ञा शिरोधार्य करके प्रतापभानु वृक्ष में घोड़े को बाँधकर कपटीमुनि के पास बैठ गया। राजा ने कपटीमुनि की प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना करके अपने भाग्य की सराहना की।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सोहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई।।
मोहि मुनीश सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी।।

भा०- फिर प्रतापभानु कोमल सुहावनी वाणी बोला, हे प्रभु! आप को पिता जानकर मैं धृष्टता कर रहा हूँ। हे मुनिराज! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम बखान कर बताइये।

तेहि न जान नृप नृपहिं सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना।।
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा।।
समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती।।
सरल बचन नृप के सुनि काना। बैर सँभारि हृदय हरषाना।।

भा०- राजा प्रतापभानु उसे नहीं जान सका पर कपटीमुनि ने राजा को पहचान लिया। राजा प्रतापभानु मित्र–प्रकृति का शुद्ध था और कपटीमुनि कपट में निपुण था। एक तो वह प्रतापभानु का शत्रु, दूसरे वह क्षत्रिय और तीसरे राजा। वह छल–बल से अपना कार्य सिद्ध करना चाहता था। अपने राज्य–सुख को स्मरण करके प्रतापभानु का शत्रु अत्यन्त दु:खी था, उसका हृदय कुम्हार के आँवे की भाँति सुलग रहा था। राजा के सरल वचन को कान से सुनकर कपटीमुनि पूर्व–वैर का स्मरण करके हृदय में प्रसन्न हुआ।

दो०- कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत।।१६०।।

भा०- कपटीमुनि कपट के जल में डूबोकर युक्ति के साथ कोमल वाणी बोला, मेरा नाम भिखारी है, क्योंकि अब मैं धनहीन और गृह से भी हीन हूँ।

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम सारिखे गलित अभिमाना।।
सदा अपनपौ रहहिं दुराए। सब बिधि कुशल कुबेष बनाए।।

भा०– राजा प्रतापभानु ने कहा कि, जो लोग विज्ञान के निधान अर्थात् ब्रह्मवेत्ता महापुरुष होते हैं, वे आप के ही समान अभिमान को नष्ट किये रहते हैं। वे निरन्तर सबप्रकार से कुशल होते हुए भी कुवेश अर्थात् प्रतिकूल वेश बनाये हुए अपने स्वरूप को छिपाये रहते हैं।

तेहि ते कहहिं संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।।
तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि शिवहि संदेहा।।

भा०– इसी कारण सन्त और वेद पुकार कर कहते हैं कि, जो लोग परम अकिंचन अर्थात् पुत्रैषणा, वितैषणा और लोकैषणा से रहित होते हैं, वे ही सन्तजन भगवान् को प्रिय होते हैं। वस्तुतः आप जैसे लोग निर्धन, भिक्षुक और बिना घर के हों इस विषय पर ब्रह्मा जी और शिव जी को भी संदेह हो जाता है। अथवा, आप लोगों को निर्धन, भिखारी और गृहशून्य देखकर यह संदेह होता है कि, आप कहीं ब्रह्मा या शिव जी तो नहीं हैं।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिय अब स्वामी।।

भा०–आप जो हैं वह हैं, मैं आपके चरणों को नमन करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिये।

सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिश्वास बिशेषी।।
सब प्रकार राजहिं अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई।।

भा०– राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने विषय में विशेष विश्वास देखकर, सब प्रकार से राजा प्रतापभानु को अपने वश में करके अधिक स्नेह का दिखावा करके कपटीमुनि बोला–

सुनु सतिभाव कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला।।
दो०- अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु।।१६१(क)

भा०– हे राजा! सुनो, मैं सत्यभाव से कह रहा हूँ। यहाँ मुझे निवास करते हुए बहुत समय बीत गये। अब तक मुझे कोई नहीं मिला अर्थात् मैं जनसम्पर्क से दूर रहा। मैं भी किसी के सामने अपने को प्रकट नहीं करता, क्योंकि लोक का सम्मान अग्नि के समान है जो तपस्या रूप वन को भस्मसात् कर देता है।

विशेष– 'अभिमानं सुरापानं गौरवं घोर रौरवं प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्' अर्थात् अभिमान मदिरापान के समान है गौरव अर्थात् बड़े का बोध रौरव नरक के समान दुःखदायी है और प्रतिष्ठा सुअर के मल के समान है, इन तीनों का बोध छोड़कर साधक सुखी हो जाता है।

सो०- तुलसी देखि सुबेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहिं पेखु, बचन सुधासम अशन अहि।।१६१(ख)।।

भा०– तुलसीदास जी कहते हैं कि, सुन्दर वेश देखकर मोह से ग्रस्त लोग ही भुलावे में आते हैं, चतुर लोग बहकावे में नही आते। सुन्दर मोर को देखो, उसकी वाणी तो अमृत के समान है किन्तु उसका भोजन है भयंकर विषवाला साँप ।

ताते गुपुत रहउ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं।।
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु कवन सिधि लोक रिझाए।।

भा०– इसलिए मैं संसार में गुप्त रहता हूँ, क्योंकि श्रीहरि को छोड़कर मेरा किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। प्रभु बिन जनाये ही सब कुछ जान लेते हैं, भला बताओ, लोक को रिझाने से कौन–सी सिद्धि मिल सकती है?

तुम शुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे।।
अब जौ तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही।।

भा०– तुम पवित्र सुन्दर बुद्धिवाले और मुझे परमप्रिय हो, मुझ पर तुम्हें प्रीति और विश्वास है। अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ, तो मुझे अत्यन्त भयंकर दोष लगेगा।

जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहिं उपज बिश्वासा।।
देखा स्वबश कर्म मन बानी। तब बोला तापस बक ध्यानी।।

भा०– जैसे–जैसे तापसमुनि उदासभाव से बोल रहा था, वैसे–वैसे प्रतापभानु को उस पर विश्वास होता जाता था। जब कपटीमुनि ने प्रतापभानु को मनसा, वाचा, कर्मणा अपने वश में देख लिया तब बगुले के समान ध्यान का आडम्बर करनेवाला अवसरवादी कपटी तपस्वी मुनि बोला–

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर नाई।।
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी।।

भा०– हे भाई! मेरा नाम एकतनु है। यह सुनकर फिर सिर नवाकर राजा बोला, मुझको अपना अत्यन्त सेवक जानकर आप इस नाम का अर्थ बखान कर कहिये।

दो०– आदिसृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि।।१६२।।

भा०– जब प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई तभी मेरी भी उत्पत्ति हो गयी थी। इसी कारण मेरा एकतनु नाम है, क्योंकि मैंने फिर शरीर धारण नहीं किया।

जनि आचरज करहु मन माहीं। सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं।।
तपबल ते जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्णु भए परित्राता।।
तपबल शंभु करहिं संघारा। तप ते अगम न कछु संसारा।।

भा०– मेरे विषय में इस प्रकार सुनकर कोई आश्चर्य मत करो पुत्र। इस संसार में तपस्या से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तप के बल से ही ब्रह्मा जी संसार की रचना करते हैं, तप के बल से ही विष्णु जी संसार के रक्षक बन सके हैं, शिव जी तप के बल से ही संहार करते हैं। संसार में तप से कुछ भी अगम नहीं है।

भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा।।
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका।।
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी।।

भा०– यह सुनकर प्रतापभानु के मन में अत्यन्त प्रेम हुआ और वह कपटीमुनि पुरानी कथा कहने लगा। वह कर्म और धर्म के अनेक इतिहास तथा वैराग्य और ज्ञान का निरूपण करने लगा। अनेक आश्चर्यों वाली उत्पत्ति, पालन और प्रलय की कहानियाँ उसने व्याख्यान करके कही।

सुनि महीप तापस बश भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ।।
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही।।

भा०- यह सुनकर प्रतापभानु राजा तपस्वी के वश में हो गया और वह तब अपना नाम कहने के लिए जिह्वा पर शब्द लाया। तपस्वी ने कहा, राजन्! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुमने मुझसे कपट किया फिर भी मुझे बहुत अच्छा लगा।

सो०- सुनु महीश असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव।।१६३।।

भा०- हे राजन्! ऐसी राजनीति है कि, राजा जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी इसी चतुरता का विचार करके तुम पर मुझे अत्यन्त प्रेम है।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेशा। सत्यकेतु तव पिता नरेशा।।
गुरु प्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा।।

भा०- हे राजन्! तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और सत्यकेतु तुम्हारे पिता हैं। हे राजा! हम अपने गुरुदेव के प्रसाद से सब जानते हैं, परन्तु अपने कार्य की बहुत बड़ी हानि समझकर नहीं कहते हैं।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई।।
उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा निज पूछे तोरे।।

भा०- तुम्हारी स्वाभाविक सरलता, प्रेम, विश्वास और नीति की निपुणता देखकर मेरे मन में अत्यन्त ममता उमड़ पड़ी। तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा कह रहा हूँ।

अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं। माँगु जो भूप भाव मन माहीं।।
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्ह बिधि नाना।।

भा०- हे राजन्! अब मैं प्रसन्न हूँ, कोई संशय नहीं है, जो तुम्हें मन में अच्छा लगे, वह मुझसे माँग लो। कपटीमुनि के सुन्दर वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और कपटीमुनि के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनय किया।

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे।।
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ अशोकी।।

भा०- हे कृपासागर मुनि! यद्यपि आपके दर्शन से ही मेरे लिए चारों पदार्थ हस्तगत् हैं, फिर भी प्रभु को प्रसन्न देखकर अगम वरदान माँग कर मैं शोकरहित हो जाना चाहता हूँ।

दो०- जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कलप शत होउ।।१६४।।

भा०-हे मुनिवर! मेरा शरीर वृद्धावस्था और मरण से रहित हो जाये। मुझे युद्ध में कोई न जीत सके और इस पृथ्वी पर मेरा सौ कल्पपर्यन्त एकछत्र शत्रुहीन अकंटक राज्य हो जाये।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ।।
कालउ तुअ पद नाइहि शीशा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीशा।।

भा०- तपस्वी ने कहा, राजन्! ऐसा ही हो, पर एक कठिन कारण है, उसे भी सुनो, हे राजन्! ब्राह्मणकुल छोड़कर काल भी तुम्हारे चरण में सिर नवायेगा।

तपबल बिप्र सदा बरियारा। तिन के कोप न कोउ रखवारा।।
जौ बिप्रन बश करहु नरेशा। तौ तुअ बश बिधि बिष्णु महेशा।।

भा०- तपस्या के बल से ही ब्राह्मण सदैव बलिष्ठ रहते हैं। उन ब्राह्मणों के क्रोध से तुम्हारा कोई बचाने वाला नहीं हो सकेगा। यदि ब्राह्मणों को वश में कर लो, तब तो ब्रह्मा जी, विष्णु जी और शिव जी भी तुम्हारे वश में हो जायेंगे।

चल न ब्रह्मकुल सन बरियाई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई।।
बिप्र स्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नाश नहिं कवनेहुँ काला।।

भा०- मैं दोनो भुजायें उठाकर प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचन कह रहा हूँ कि, ब्राह्मणकुल के समक्ष बाहुबल नहीं चलता उन्हें तो विनम्रता से ही वश में करना होता है। हे राजा! सुनो, ब्राह्मण के शाप के बिना तुम्हारा किसी भी काल में नाश नहीं होगा।

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू।।
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहँ सर्ब काल कल्याना।।

भा०- कपटीमुनि के वचन सुनकर प्रतापभानु हर्षित हो उठा। हे नाथ! अब तो मेरा विनाश होगा ही नहीं, हे कृपानिधान प्रभु ! आप के प्रसाद से सभी कालों में मेरा कल्याण ही कल्याण है।

दो०- एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु त हमहिं न खोरि।।१६५।।

भा०- कुटिल हृदय का कपटमुनि 'एवमस्तु' कहकर, फिर बोला, हे राजन्! मेरा मिलना और अपना मार्ग भूलना तुमने किसी से कहा तो मुझे दोष मत देना अर्थात् यदि यह प्रसंग तुम किसी को कहते हो तो मेरा दोष न होगा।

ताते मैं तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा।।
छठें स्रवन यह परत कहानी। नाश तुम्हार सत्य मम बानी।।

भा०- हे राजा! इसलिए मैं तुम्हे रोक रहा हूँ कि, यह कथा कहने से तुम्हारी बहुत हानि हो जायेगी। छठे कान में इस कथा के पड़ने से तुम्हारा नाश होगा, यह मेरी वाणी सत्य है।

यह प्रगटे अथवा द्विज स्रापा। नाश तोर सुनु भानुप्रतापा।।
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौ हरि हर कोपहिं मन माहीं।।

भा०- हे प्रतापभानु! सुनो, मेरे मिलने और अपने भूल जाने के प्रसंग को प्रकट करने से अथवा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश होगा। और किसी उपाय से तुम्हारा मरण नहीं हो सकता। यदि ब्रह्मा जी और शङ्कर जी भी मन में क्रोध कर लें तो भी नहीं।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा।।
राखइ गुरु जौ कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

भा०- हे नाथ! आप सत्य कह रहे हैं, राजा ने कपटीमुनि का चरण पकड़कर कहा। भला बताइये, ब्राह्मणों और गुरुजनों के क्रोध से कौन बचा सकता है? यदि ब्रह्मा कुपित हो जायें तो गुरुदेव बचा लेते हैं, परन्तु गुरुदेव के कुपित हो जाने पर संसार में कोई भी रक्षा नहीं कर पाता।

जौ न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नाश नहिं सोच हमारे।।
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव स्राप अति घोरा।।

भा०- यदि मैं आप के कथनानुसार नही चलूँगा तो नाश हो जाये, मुझे कोई चिन्ता नहीं, परन्तु हे प्रभु ! एक ही डर से मेरा मन डर रहा है, ब्राह्मण का शाप बहुत भयंकर होता है।

दो०- होहिं बिप्र बश कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउँ कोउ।।१६६।।

भा०- ब्राह्मण किस प्रकार से वश में हो सकते हैं, यह मुझे कृपा करके बताइये। हे दीनों के दयालु मुनि! आप को छोड़कर मैं किसी को अपना हितैषी नहीं देख रहा हूँ।

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं।।
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई।।

भा०- कपटीमुनि ने कहा, हे राजन्! सुनो, संसार में अनेक यत्न हैं, परन्तु यह सब कष्टसाध्य हैं, फिर भी वे सफल होंगे या नहीं इसका कोई निश्चय नहीं है। एक उपाय अत्यन्त सुगम है, परन्तु वहाँ भी एक कठिनता है।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई।।
आजु लगे अरु जब ते भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ।।
जौ न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू।।

भा०- राजन्! वह युक्ति मेरे अधीन है और तुम्हारे नगर में मेरा जाना हो नहीं सकता। आज तक मैं जब से जन्मा हूँ किसी के गृह या गाँव में नहीं गया हूँ। यदि नहीं जाता हूँ तो बहुत बड़ी हानि हो जाती है, आज यह बहुत बड़ा असमंजस्य बन गया।

सुनि महीश बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी।।
बड़े सनेह लघुन पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं।।
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू।।

भा०- कपटीमुनि के असमन्जस भरे वचन सुनकर प्रतापभानु कोमल वाणी में बोला, नाथ! वेदों ने ऐसी नीति कही है कि, बड़े लोग अपने से छोटों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुँए को और पर्वत तिनके को धारण करके ढोता है और अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करता है। पृथ्वी अपने सिर पर निरन्तर धूलि को धारण करती है।

दो०- अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल।।१६७।।

भा०- इतना कह कर राजा ने कपटीमुनि के चरण को पकड़ लिया और बोला, हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिये। हे सज्जनों और दीनों पर दया करने वाले! मेरे लिए कष्ट सह लीजिये।

जानि नृपहिं आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना।।
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही।।
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा।।

भा०- राजा को अपने अधीन जानकर कपट में कुशल मुनि बोला, हे राजा! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। मुझको जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मैं तेरा कार्य अवश्य करूँगा तुम मन, शरीर और वचन से मेरे भक्त हो।

जोग जुगुति जप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ।।
जौ नरेश मैं करौं रसोई। तुम परुसहु मोहि जान न कोई।।
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई।।
पुनि तिन के गृह जेवँइ जोऊ। तव बश होइ भूप सुनु सोऊ।।

भा०- योग, युक्ति, जप तथा मंत्र का प्रभाव तभी फलीभूत होता है, जब उसका छिपाव किया जाता है। हे राजन्! यदि मैं रसोई करूँ और तुम परोसो तथा मुझे कोई नहीं जाने तो वह अन्न का जो-जो भोजन करेगा वह-वह तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा। हे राजन्! सुनो, फिर उनके घर में जो भी भोजन कर लेगा वह भी तुम्हारे वश में हो जायेगा।

जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू।।

दो०- नित नूतन द्विज सहस शत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहिं करब जेवनार।।१६८।।

भा०- राजन्! घर जाकर इसी उपाय की रचना करो। एक वर्षपर्यन्त के लिए संकल्प कर नित्य नये-नये परिवार के सहित एक-एक लाख ब्राह्मणों का वरण करना। मैं तुम्हारे संकल्प के लिए दिन में ही रसोई कर दिया करूँगा।

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहैं सकल बिप्र बश तोरे।।
करिहैं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजहिं बश देवा।।

भा०- हे राजन्! इस प्रकार बहुत ही थोड़े कष्ट में सभी ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे और ब्राह्मण तुम्हारे हवनों और यज्ञों में सेवा करेंगे। उसी प्रसंग से सहज ही में अर्थात् सरलता से देवता भी तुम्हारे वश में हो जायेंगे।

और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहि बेष न आउब काऊ।।
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया।।

भा०- हे राजन्! तुमको मैं एक और भी लखाऊ अर्थात् पहचान बता रहा हूँ, मैं अपने इस वेश में कभी नहीं आऊँगा। मैं तो अपनी माया करके तुम्हारे पुरोहित को चुरा लाऊँगा अथवा अपहरण कर लाऊँगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परमाना।।
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा। सब बिधि तोर सवाँरब काजा।।

भा०- तुम्हारे उस पुरोहित को तपस्या के बल से अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्षपर्यन्त रखूँगा। हे राजा! सुनो, मैं तुम्हारे पुरोहित का वेश धारण करके तेरा कार्य सब प्रकार से सँवार दूँगा।

गइ निशि बहुत शयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे।।
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहिं निकेता।।

भा०- हे राजा! बहुत रात बीत गयी है, अब तुम शयन करो। मेरी तुम्हारी भेंट आज के तीसरे दिन होगी। मैं तपस्या के बल से तुमको घोड़े के समेत सोते-सोते ही तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।

दो०- मैं आउब सोइ बेष धरि, पहिचानेहु तब मोहु।
जब एकांत बोलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि।।१६९।।

भा०- मैं वही अर्थात् तुम्हारे पुरोहित का वेश धारण करके आऊँगा। तुम मुझे तब पहचानना जब मैं तुम्हें एकान्त में बुलाकर सम्पूर्ण कथा सुना दूँगा।

शयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी।।
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई।।

भा०– कपटीमुनि की आज्ञा मानकर राजा प्रतापभानु ने शयन किया और छल से ज्ञानी बना हुआ कपटी राजा आसन पर जाकर बैठ गया। राजा प्रतापभानु श्रमित अर्थात् बहुत थक गया था, उसे अत्यन्त अर्थात् प्रगाढ़ निद्रा आ गयी। परन्तु कपटी राजा कैसे सोता? उसे तो प्रतापभानु से प्रतिशोध लेने के लिए अत्यन्त शोक था।

कालकेतु निशिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहिं भुलावा।।
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा।।
तेहि के शत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई।।
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे।।

भा०– वहाँ कालकेतु नामक राक्षस आया, जिसने सुअर का वेश बना कर राजा को भुला दिया था। वह कालकेतु तपस्वी राजा का परममित्र था। वह अत्यन्त बड़े–बड़े कपट के उपाय जानता था। उस कालकेतु के सौ बेटे और दस भाई थे, जो अत्यन्त खलप्रकृति के अजेय अर्थात् किसी से भी न जीते जानेवाले तथा देवताओं को दुःख देनेवाले थे। ब्राह्मणों, सन्तों और देवताओं को दुःखी देखकर राजा प्रतापभानु ने दिग्विजय के प्रारम्भिक दिनों में ही कालकेतु के सौ पुत्रों और दसों भ्राताओं को मार डाला था।

तेहिं खल पाछिल बैर सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा।।
जेहिं रिपु छय सोइ रचेसि उपाऊ। भावी बश न जान कछु राऊ।।

भा०– उस खल कालकेतु ने अपने पिछले वैर का स्मरण किया और तपस्वी राजा से मिलकर गोपनीय उपाय का विचार किया। जिससे शत्रु का विनाश हो, कालकेतु ने वही उपाय रच दिया। भवितव्यता के वश में होने के कारण प्रतापभानु राजा कुछ भी नहीं जान पाया।

दो०– रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि शशिहिं, सिर अवशेषित राहु।।१७०।।

भा०– अकेला होते हुए भी शत्रु तेजस्वी होता है। उसे कभी छोटा समझकर उपेक्षित नहीं करना चाहिये। आज भी मात्र–सिर रूप में बचा हुआ राहु, सूर्य और चन्द्रमा को दुःख देता रहता है।

तापस नृप निज सखहिं निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी।।
मित्रहिं कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई।।

भा०– अपने मित्र कालकेतु को देखकर तापस राजा बहुत प्रसन्न हुआ और अपने आसन पर से उठकर हर्षित होकर उससे मिला। उसने अपने मित्र कालकेतु को राजा प्रतापभानु को बहकाने और उसे ब्राह्मण वशीकरण–निमित्त भोजन–यज्ञ के लिए उकसाने की सभी कथा कह सुनायी। राक्षस कालकेतु सुख पाकर बोला–

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेशा। जौ तुम कीन्ह मोर उपदेशा।।
परिहरि सोच रहहु तुम सोई। बिनु औषध बियाधि बिधि खोई।।

भा०– हे राजा! सुनो, अब मैंने प्रतापभानु राजा को साध लिया अर्थात् इसे समाप्त कर लूँगा। यदि तुमने मेरे उपदेश का पालन किया है, तो तुम चिन्ता छोड़ सुख की नींद सोये रहो, विधाता ने ओषधि के बिना ही ब्याधि को समाप्त कर दिया।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई।।
तापस नृपहिं बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी।।

भा०–कुल के सहित शत्रु प्रतापभानु को जड़ से उखाड़ फेंक कर, मैं चौथे दिन तुमसे आकर मिलूँगा। इस प्रकार, तपस्वी राजा को बहुत आश्वासन देकर महान् कपटी, अत्यन्त क्रोधी कालकेतु वहाँ से चल पड़ा।

भानुप्रतापहिं बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता।।
नृपहिं नारि पहँ शयन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई।।

भा०– कालकेतु ने एक क्षण में ही घोड़े सहित प्रतापभानु को उसके घर पहुँचा दिया। राजा को उसके पत्नी के पास शयन कराके, उसके घोड़े को कालकेतु ने घुड़साल में बनाकर बाँध दिया।

दो०– राजा के उपरोहितहिं, हरि लै गयउ बहोरि।।
लै राखेसि गिरि खोहि महँ, माया करि मति भोरि।।१७१।।

भा०– राजा के पुरोहित को फिर कालकेतु चुरा ले गया और माया से बुद्धि को भ्रमित करके उसे लाकर पर्वत की गुफा में फेंक दिया।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा।।
जागेउ नृप अनुभये बिहाना। देखि भवन अति अचरज माना।।

भा०– स्वयं पुरोहित का वेश बनाकर कालकेतु राक्षस पुरोहित के ही सुन्दर सेज पर सो गया। इधर प्रतापभानु प्रात:काल का अनुभव करके जगा अथवा, प्रात:काल होने पर प्रतापभानु जगा। उसने स्वयं को अपने भवन में देखकर अत्यन्त आश्चर्य माना।

मुनि महिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी।।
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं।।

भा०– मन में मिले हुए मुनि की महिमा का अनुमान करके प्रतापभानु धीरे से उठा, जिससे रानी भी नहीं जान पायी और घुड़साल में बँधे हुए अपने उसी घोड़े पर चढ़कर वन को चला गया। नगर के किसी भी नर या नारी ने राजा का आना या जाना नहीं देखा।

गए जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा।।
उपरोहितहिं देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा।।

भा०– दिन के दोपहर बीत जाने पर अर्थात् मध्याह्न में राजा अपने नगर में लौट आया। राजा के वन से सकुशल लौट आने पर घर–घर में उत्सव होने लगे और बधाइयाँ बजने लगी। जब राजा ने अपने पुरोहित को देखा तो उसी कार्य का स्मरण करके चकित होकर उसे देखने लगा।

जुग सम नृपहिं गए दिन तीनी। कपटीमुनि पद रहि मति लीनी।।
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहिं मते सब कहि समुझावा।।

भा०– प्रतापभानु के तीन दिन, तीन युग के समान बीते। उसकी बुद्धि कपटीमुनि के चरण में लीन रही थी। निर्धारित समय जानकर पुरोहित आया और एकान्त में बुलाकर राजा को अपने सब मन्तव्य कहकर समझा दिया।

दो०– नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम बश रहा न चेत।
बरे तुरत शत सहस बर, बिप्र कुटुंब समेत।।१७२।।

भा०– गुरु को पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ। भ्रमवशात् उसके मन में चेतना नहीं रही और तुरन्त उसने सपरिवार एक लाख ब्राह्मणों का वरण कर लिया।

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई।।
मायामय तेहिं कीन्ह रसोई। ब्यंजन बहु गनि सकइ न कोई।।
बिबिध मृगन कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्र माँस खल साँधा।।

भा०–कपटी पुरोहित ने वह जेवनार बनाया, जो छहों रस और चारों विधान से युक्त था, जिस प्रकार वेदों ने गाया है। उसने कपटमय रसोई बनायी। राक्षसी माया से बने हुए बहुत से व्यंजनों को कौन गिन सकता है? उस दुष्ट ने अनेक प्रकार के मृगों का मांस पकाया, जो ब्राह्मणो के लिए अभक्षित है और उसमें भी ब्राह्मण का मांस डालकर मिला दिया जो सर्वथा असह्य हो गया, क्योंकि मृग–मांस तो कदाचित् कोई अवैष्णव पंच मकार सेवी वाममार्गी खा भी ले, परन्तु नर–मांस, उसमें भी ब्राह्मण मांस तो कोई भी मनुष्य नहीं खा सकता।

भोजन कहँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए।।
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकाशबानी तेहि काला।।

भा०– भोजन के लिए सभी ब्राह्मणों को प्रतापभानु राजा ने बुलाया। उनके चरण धोकर उन्हें आदरपूर्वक सात्विक आसनों पर बैठाया। जब राजा प्रतापभानु भोजन परोसने लगा, उसी समय कालकेतु द्वारा की हुई आकाशवाणी हुई।

बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू।।
भयउ रसोई भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिश्वासू।।

भा०– "हे ब्राह्मण समूह! उठ–उठ कर घर चले जाओ, बहुत बड़ी धर्म की हानि हो गई है। यह अन्न मत खाओ, इस रसोई में अन्य मांसों के साथ ब्राह्मण मांस की भी रसोई हुई है।" आकाशवाणी का विश्वास मान कर सभी ब्राह्मण भोजन छोड़कर उठ गये।

भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बश न आव मुख बानी।।

भा०– राजा प्रतापभानु व्याकुल हो गया, उसकी बुद्धि मोह के भुलावे में आ गयी। होनहार के वश में होने से राजा के मुख से कुछ भी वाणी नहीं निकल रही थी जिससे वह अपनी स्पष्टता दे सकता।

दो०– बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निशाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार।।१७३।।

भा०– तब सभी एक लाख ब्राह्मण क्रोध करके बोले, कुछ भी विचार नहीं किया। कहने लगे, हे मूर्ख राजा! तू परिवार सहित राक्षसियों के गर्भ में जाकर राक्षस हो।

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई।।
ईश्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा।।

भा०– हे नीच क्षत्रिय! तुमने तो धर्मभ्रष्ट करके नष्ट करने के लिए ही परिवार सहित ब्राह्मणों को बुलाया था। ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की, तू परिवार सहित नष्ट हो जायेगा।

संबत मध्य नाश तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ।।
नृप सुनि स्राप बिकल अति त्रासा। भइ बहोरि बर गिरा अकासा।।

भा०- एक वर्ष के बीच ही तेरा नाश हो जाये। तेरे कुल में जलांजलि देनेवाला भी कोई न रहेगा। ब्राह्मणों का यह सामूहिक शाप सुनकर राजा विकल हुआ, उसके शरीर में भय व्याप्त हो गया। फिर आकाश से श्रेष्ठवाणी अर्थात् देवताओं की वाणी हुई।

बिप्रहु स्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा।।
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी।।

भा०- हे ब्राह्मणों! आप लोगों ने विचार करके शाप नहीं दिया। यहाँ राजा प्रतापभानु ने कुछ भी अपराध नहीं किया था। आकाशवाणी सुनकर सभी ब्राह्मण चकित हो गये। जहाँ भोजनों की खानि अर्थात् भण्डार था वहाँ प्रतापभानु राजा गया।

तहँ न अशन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा।।
सब प्रसंग महिसुरन सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई।।

भा०-वहाँ न तो भोजन था और न ही भोजन बनानेवाला पुरोहित ब्राह्मण। राजा लौट आया उसके मन में अपार शोक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणों को अपने भूल जाने, कपटमुनि के मिलने और उसके द्वारा प्रेरित आयोजन के सब प्रसंगों को सुनाकर, व्याकुल होकर भयभीत राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो०- भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किए अन्यथा होइ नहिं, बिप्रस्राप अति घोर।।१७४।।

भा०- हे राजन्! यद्यपि तुम्हारा कोई दोष नहीं है, फिर भी भवितव्यता नहीं मिटती, जो होना होता है वह होकर ही रहता है। ब्राह्मणों का शाप अत्यन्त भयंकर है, वह झूठा करने से भी झूठा नहीं होगा।

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन पाए।।
सोचहिं दूषन दैवहिं देहीं। बिरचत हंस काग किए जेहीं।।

भा०- ऐसा कहकर सभी ब्राह्मण चले गये। नगर के लोगों ने यह समाचार पाया। सभी शोक कर रहे थे और दैव को दोष दे रहे थे, जिस दैव ने हंस बनाते-बनाते कौवा बना दिया।

उपरोहितहिं भवन पहुँचाई। असुर तापसहिं खबरि जनाई।।
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए।।

भा०- पुरोहित को अपने भवन पहुँचाकर, कालकेतु राक्षस ने तपस्वी राजा को समाचार दिया। उस दुष्ट राजा ने जहाँ-तहाँ पत्र भेज दिये और अपनी-अपनी सेनाएँ सजाकर पूर्व में पराजित हुए सभी राजाओं ने धावा बोलते हुए प्रतापभानु पर आक्रमण कर दिया।

घेरेनि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई।।
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी।।

भा०- राजाओं ने नगारे बजाकर प्रतापभानु का नगर घेर लिया। नित्य अनेक प्रकार की लड़ाई होने लगी। सभी वीर करनी करके लड़कर जूझ गये अर्थात् युद्ध में मारे गये। छोटे भाई अरिमर्दन सहित प्रतापभानु राजा भी पृथ्वी पर पड़ गये, अर्थात् मारे गये।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्र स्राप किमि होइ असाँचा।।
रिपुहिं जीति नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जस पाई।।

भा०- सत्यकेतु के कुल में कोई भी नहीं बचा। ब्राह्मणों का शाप असत्य कैसे हो सकता है? आये हुए राजा पूर्वशत्रु प्रतापभानु को युद्ध में जीतकर अपने अनुसार नया नगर बसाकर विजययश पाकर अपने–अपने नगर को लौट गये।

दो०- भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्यालसम दाम।।१७५।।

भा०- याज्ञवल्क्य जी कहते हैं, हे भरद्वाज! सुनो, जब जिसके लिए विधाता वाम अर्थात् प्रतिकूल हो जाते हैं, उसके लिए धूलि भी सुमेरु पर्वत बन जाती है। जन्म देनेवाला पिता यमराज बनकर उसके प्राण ले लेता है और रस्सी सर्प बनकर उसे डँसने लगती है।

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निशाचर सहित समाजा।।
दश सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा।।

भा०- हे भरद्वाज मुनि! सुनिये, वही प्रतापभानु राजा समय पाकर अपने समाज सहित राक्षस हुआ। उसके पास दस सिर और बीस दण्ड के समान भुजाएँ थीं। वह वीरों में श्रेष्ठ, वंदनीय तथा रावण नाम से विख्यात हुआ।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा।।
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू।।
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्णुभगत बिग्यान निधाना।।
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निशाचर घोर घनेरे।।

भा०- प्रतापभानु का छोटा भाई अरिमर्दन, रावण का छोटा भाई बल का निवासस्थान कुंभकर्ण हुआ। प्रतापभानु का जो मन्त्री था, जिसकी धर्म में रुचि थी वह रावण का छोटा सौतेला भाई हुआ, जिसको जगत् विभीषण नाम से जानता है। जो महाविष्णु श्रीराम का परमभक्त और विशिष्टज्ञान का निधान था। जो भी प्रतापभानु के पुत्र और सेवक थे वे सब अत्यन्त भयंकर राक्षस बने।

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका।।
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिश्व परितापी।।

भा०-वे स्वेच्छानुसार रूप बनानेवाले अनेक प्रकार के खल अर्थात् दुष्ट प्रकृति के थे। वे सब बड़े ही कुटिल, भयानक, विवेकशून्य, कृपा से रहित अर्थात् निर्दयी, हिंसक और पापी थे। विश्व को दुःख देनेवाले उन राक्षसों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०- उपजे जदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्राप बश, भए सकल अघरूप।।१७६।।

भा०- यद्यपि वे सब–के–सब पवित्र निर्मल और अनुपम पुलस्त्यकुल में उत्पन्न हुए थे, फिर भी ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पापस्वरूप हुए।

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई।।
गयउ निकट तप देखि बिधाता। माँगहुँ बर प्रसन्न मैं ताता।।
करि बिनती पद गहि दशशीशा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीशा।।
हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।।

भा०– रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण इन तीनों भाइयों ने विविध प्रकार के तप किये। इनका तप बहुत उग्र था, उसका वर्णन सम्भव नहीं है। रावण का तप देखकर ब्रह्मा जी उसके पास आये और बोले, बेटे! मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँग लो। रावण प्रार्थना करके और ब्रह्मा जी के चरण को पकड़कर बोला, हे जगदीश्वर! सुनिये, वानर जाति और वैवश्वत् मनु के वंश में उत्पन्न दो बालकों को छोड़कर हम किसी के हाथ से न मरें।

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा।।

भा०– शिव जी पार्वती जी से कहते हैं, "ऐसा ही हो, तुमने बहुत–बड़ा तप किया है," ऐसा कहकर मैंने अर्थात् शिव तथा ब्रह्मा ने मिलकर रावण को वरदान दिया।

विशेष– ब्रह्मा जी ने वानर और मनुष्यों को छोड़ सभी से अबधत्व का वरदान दिया और शिव जी ने दस सिरों की अनेकता तथा संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति दे दी और उन्हीं की कृपा से रावण को लंका नगरी भी प्राप्त हुई, जिसकी चर्चा आगे की जायेगी।

पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ।।
जौ एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू।।
शारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षट केरी।।

भा०– फिर वरदान देने में समर्थ ब्रह्मा जी, कुंभकर्ण के पास गये। उसे देखकर ब्रह्मा जी के मन में बहुत आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा जी सोचने लगे यदि यह दुष्ट नित्य आहार अर्थात् भोजन करेगा तब तो सारा संसार उजाड़ हो जायेगा अर्थात् कुछ ही दिनों में कुंभकर्ण सम्पूर्ण संसार को खा जायेगा। तब ब्रह्मा जी ने सरस्वती जी को प्रेरित करके उस कुंभकर्ण की बुद्धि फेर दी। उसने छः महीने की निद्रा माँग ली अर्थात् माँगना चाहिये इन्द्रासन माँग लिया निद्रासन।

दो०– गएउ बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र बर माँगु।
तेहिं माँगेउ भगवंत पद, कमल अमल अनुरागु।।१७७।।

भा०– फिर ब्रह्मा जी, विभीषण के पास गये और बोले, पुत्र! वरदान माँग लो। उन्होंने (विभीषण) भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में निर्मल प्रेम माँगा।

तिनहिं देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए।।

भा०– इस प्रकार उन्हें अर्थात् रावण, कुंभकर्ण और विभीषण को वरदान देकर ब्रह्मा जी सत्यलोक चले गये। वे अर्थात् रावण, कुंभकर्ण, विभीषण भी मनोनुकूल वरदान पाकर अपने घर लौट आये।

मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा।।
सोइ मय दीन्ह रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति रानी।।
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बियाहेसि जाई।।

भा०– मय दानव की बेटी जो बहुत ही सुन्दर और नारियों में रत्न थी तथा जिसका नाम मंदोदरी था, उसको मय दानव ने लाकर रावण को दे दिया। वही भविष्य में राक्षसों के स्वामी रावण की पटरानी बनेगी। रावण सुन्दर पत्नी प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुआ। फिर उसने अपने दोनों छोटे भाइयों का भी दैत्यलोक और गंधर्वलोक में जाकर विवाह किया, अर्थात् कुंभकर्ण का विवाह वृत्रज्वाला नामक दैत्यकन्या से किया और विभीषण का विवाह सरमा नामक गंधर्वकन्या से किया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी।।
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा।।

भा०- दक्षिण समुद्र के बीच में ब्रह्मा जी के द्वारा निर्मित अत्यन्त विशाल और साधारण लोगों के लिए दुर्गम एक त्रिकूट नाम का पर्वत था। फिर उसी को मय दानव ने सजाया और उसमें स्वर्ण तथा मणियों से जटित असंख्य भवन बनाये।

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि शक्रनिवासा।।
तिन ते अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका।।

भा०- जिस प्रकार, नागकुल की निवासनगरी पाताललोक की भोगावती है और जैसे इन्द्र की निवासपुरी स्वर्गलोक की अमरावती है। उन दोनों से भी अधिक रमणीय अत्यन्त सुन्दर वह दुर्ग बना, उसका जगत् में प्रसिद्ध लंका नाम पड़ा।

दो०- खाईं सिंधु गंभीर अति, चारिहुँ दिशि फिरि आव।
कनक कोट मनिखचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव।।१७८(क)
हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
शूर प्रतापी अतुलबल, दल समेत बश सोइ।।१७८(ख)

भा०- उस नगरी के चारों ओर स्वयं समुद्र ही खाई बनकर घिर आया था। उसका किला स्वर्ण से निर्मित, मणियों से जटित और सुदृढ़ था। उसकी शिल्पकला वर्णनीय नहीं थी अर्थात् अवर्णनीय थी। भगवान् श्रीराम की प्रेरणा से जिस कल्प में जो भी राक्षसपति रावण के रूप में अवतरित होता है, वह वीर, प्रतापी, अतुलनीय बल से युक्त तथा सेना सहित इसी लंका में निवास करता है अर्थात् जैसे राम जी की अयोध्यापुरी शाश्वत है, उसी प्रकार उनके प्रतिपक्षी रावण की लंकापुरी भी शाश्वत है।

रहे तहाँ निशिचर भट भारे। ते सब सुरन समर संघारे।।
अब तहँ रहहिं शक्र के प्रेरे। रक्षक कोटि जक्षपति केरे।।

भा०- पार्वती जी से शिव जी कहते हैं कि, प्रारम्भ में उस नगरी में माली, सुमाली, माल्यवान के नेतृत्व में अनेक बड़े राक्षस भट निवास किया करते थे। उन सबको देवताओं ने युद्ध में मार डाला था। अब अर्थात् वैवश्वत मन्वन्तर में इन्द्र की प्रेरणा और इच्छा से प्रेरित हुए यक्षराज कुबेर एक करोड़ रक्षकों के साथ उस लंकापुरी में रहते हैं।

दशमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई।।
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जक्ष जीव लै गए पराई।।

भा०- कहीं से अर्थात् माता कैकसी से इस प्रकार का समाचार पाकर, रावण ने सेना सजाकर, त्रिकूट जाकर लंका गढ़ को घेर लिया। रावण के सैनिक भटों को अत्यन्त भयंकर तथा उसकी सेना को अपनी अपेक्षा बड़ी देखकर कुबेर के सैनिक यक्ष अपने प्राण लेकर वहाँ से भाग गये।

फिरि सब नगर दशानान देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिशेषा।।
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहाँ रावन रजधानी।।

भा०- इसके पश्चात् नगर में प्रवेश करके दस मुखोंवाले रावण ने घूम-घूम कर दसों दिशा में दृष्टि डालकर सम्पूर्ण लंका नगरी का निरीक्षण किया। रावण का समस्त शोक चला गया और उसे विशेष सुख हुआ। लंकापुरी

को स्वभाव से सुन्दर और साधारण प्राणियों के लिए अत्यन्त अगम्य अनुमान करके वहाँ रावण ने अपनी राजधानी बनायी।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।।

एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक यान जीति लै आवा।।

भा०- जो जिसके योग्य था उसी प्रकार घरों का आबंटन कर दिया और रावण ने सभी राक्षसों को सुखी कर दिया। एक बार रावण ने कुबेर पर धावा बोला और उनसे जीतकर पुष्पक विमान ले आया।

दो०- कौतुकहीं कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल, चला बहुत सुख पाइ।।१७९।।

भा०- फिर खेल–खेल में ही जाकर रावण ने कैलाश पर्वत उठा लिया, मानो वह कैलाशरूप बटखरे पर अपने बाहुबल को तौलकर असीम सुख पाकर चल पड़ा हो।

सुख संपति सुत सैन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई।।
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।।

भा०- रावण का सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, गण, विजय, प्रताप, बल, बुद्धि तथा बड़प्पन अर्थात् गौरव यह सब नित्य नये होकर उसी प्रकार बढ़ते जा रहे थे, जैसे प्रत्येक लाभ के अनन्तर प्राणी का लोभ अधिक होता जाता है।

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहँ नहिं प्रतिभट जग जाता।।
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा।।

भा०- रावण का अत्यन्त बलशाली कुंभकर्ण जैसा छोटा भाई था, जिसका प्रतिद्वन्द्वी योद्धा संसार में नहीं जन्मा, क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी होनेवाले थे भगवान् श्रीराम, जो संसार में जन्में नहीं थे, प्रत्युत् कौसल्या जी के यहाँ प्रकट हुए थे। वह (कुंभकर्ण) मदिरापान करता और छः महीने के लिए सो जाता था। उसके जगते ही तीनों लोको में भय फैल जाता था।

जौ दिन प्रति अहार कर सोई। बिश्व बेगि सब चौपट होई।।
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अधिक न कोउ बलवाना।।

भा०- यदि वह प्रतिदिन आहार करता तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट हो जाता। कुंभकरर्ण युद्ध में इतना धीर अर्थात् अविचल था कि, उसका बखान नहीं किया जा सकता। कोई संसारी प्राणी, न तो कुंभकर्ण के समान और न ही उससे अधिक बलवान था अर्थात् संसार के सभी बलशाली कुंभकर्ण की अपेक्षा न्यून थे।

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू।।
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई।।

भा०- मेघनाद रावण का ज्येष्ठपुत्र था, जिसकी वीरों में सर्वप्रथम मर्यादा थी। युद्ध में कोई भी मेघनाद के सन्मुख नहीं होता था। नित्य ही देवलोक से देवताओं का पलायन हुआ करता थ।

दो०- कुमुख अकंपन कुलिशरद, धूम्रकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय।।१८०।।

भा०– कुंभकर्ण और मेघनाद के अतिरिक्त रावण के पास दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदंत, धूम्रकेतु और अतिकाय ऐसे अनेक योद्धा थे, जो एक–एक करके अर्थात् अकेले ही सम्पूर्ण जगत् को जीतने में समर्थ थे।

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया।।

भा०– वे सभी मनचाहा रूप धारण करने में समर्थ थे, और सभी माया जानते थे, जिनके पास स्वप्न में भी धर्म और दया नहीं थी।

दशमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा।।
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निशाचर जाती।।
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी।।

भा०– एक बार दस मुखवाला रावण सभा में बैठकर सीमा से रहित अपने परिवार को देख रहा था। उसकी लाखों की संख्या में पुत्रों का समूह, स्वजन, अपने परिजन अर्थात् पारिवारिक लोग तथा अनेक पोते थे। उसकी स्वयं की सम्बन्धिनी राक्षस जाति को कौन गिन पायेगा? अपनी इस विशाल सेना को देखकर स्वभाव से अभिमानी रावण क्रोध और अहंकार से मिश्रित करके वचन बोला–

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा।।
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई।।

भा०– सभी राक्षसों के यूथों! सुनो, देवताओं के समूह हमारे शत्रु हैं। वे सन्मुख युद्ध नहीं करते, शत्रु अर्थात् हम सबको अधिक बलवान देखकर भाग जाते हैं।

तिन कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई।।
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा।।

भा०– उन देवताओं का मरण एक प्रकार से हो सकता है, मैं समझाकर कह रहा हूँ, अब उसे सुनो। ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन, श्राद्ध इन सब में जाकर तुम बाधा डालो।

दो०– छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहैं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ, भली भाँति अपनाइ।।१८१।।

भा०– भूख से क्षीण अर्थात् दुर्बल हुए बल से रहित देवता, सहज में ही आकर मुझसे मेल–मिलाप कर लेंगे अथवा, अनायास ही वे मेरे पकड़ में आ जायेंगे। तब मैं भली प्रकार से उन्हें अपनाकर अर्थात् अपने वश में करके या तो मार डालूँगा या छोड़ दूँगा, पर वे रहेंगे मेरे अधीन ही।

मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बल बयर बढ़ावा।।
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन के लरिबे कर अभिमाना।।
तिनहिं जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुशासन काँधी।।

भा०– फिर रावण ने अपने बड़े बेटे मेघनाद को बुलाया उसे शिक्षा दी और उसके बल और वैर को बढ़ाया अर्थात् देवताओं के विरुद्ध बातें करके, उनकी निर्बलता का वर्णन करके, रावण ने मेघनाद के सोये हुए बल को जगाया और भूले हुए वैर को प्रोत्साहित किया, और बोला, बेटे! जो देवता युद्ध में अविचल रहते हैं, जो बलवान अर्थात् प्रशंसनीय बलवाले हैं, जिनके पास लड़ने का अभिमान है, उन सब देवताओं को युद्ध में जीतकर बन्दी बना लाओ। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को कँधे पर स्वीकारा अर्थात् इन्द्रादि बड़े–बड़े वीर देवताओं को युद्ध में जीतकर बन्दी बना लाया।

एहि बिधि सबहीं आग्या दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही।।
चलत दशानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी।।

भा०– इस प्रकार रावण ने मेघनाद के अतिरिक्त अन्य सभी योद्धाओं को भी अनेक आज्ञाएँ दीं तथा स्वयं भी हाथ में गदा लिए हुए देवलोक पर आक्रमण करने के लिए पैदल ही चल पड़ा। रावण के चलने पर पृथ्वी हिलने लगती थी और उसकी गर्जना करते ही देवताओं की नारियाँ गर्भस्राव कर देती थीं।

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तके मेरु गिरि खोहा।।
दिगपालन के लोक सुहाए। सूने सकल दशानन पाए।।

भा०– रावण को क्रोध करके अपने लोक में आक्रमण के लिए आते हुए जब सुना, तब देवताओं ने सुमेरु पर्वत की कन्दराओं को ताका अर्थात् सुमेरु की गुफाओं में जाकर छिप गये। दस मुखवाले रावण ने दसों दिग्पालों के सभी सुन्दर लोकों को उनसे सूना ही पाया।

पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन गारि पचारी।।
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।।

भा०– बार–बार भारी सिंहनाद करके ललकार कर रावण देवताओं को गालियाँ दे रहा था। वह युद्ध के मद में मतवाला होकर अपने प्रतिद्वन्द्वी वीर को खोजता हुआ जगत् में दौड़ रहा था। वह कहीं अपने समान योद्धा पा नहीं सका अथवा युद्ध में रावण जगत् में दौड़ता फिर रहा था। वह खोजता हुआ भी अपने प्रतिद्वन्द्वी वीर को कहीं भी नहीं पा सका।

रबि शशि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी।।
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा।।

भा०– सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण देवता, धनाध्यक्ष कुबेर, अग्नि, काल, यम, आदि जो भी अधिकारी देवगण थे, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग इन सभी के मार्ग को रोककर, रावण हठात् युद्ध का उपक्रम करता था। अथवा, सूर्यादि अधिकारी और किन्नर आदि विशिष्ट प्राणियों के मार्ग पर रावण हठात् लग जाता था अर्थात् इन्हें पीड़ित करता और युद्ध के लिए विवश कर देता था। ये शान्ति से अपने मार्ग को भी नहीं जा पाते थे।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दशमुख बशबर्ती नर नारी।।
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता।।

भा०– इस ब्रह्मसृष्टि में जहाँ तक शरीरधारी पुरुष–स्त्री रहते थे, वे सब रावण के वश में रहते थे। वे सब भयभीत होकर रावण की आज्ञा का पालन करते थे और नित्य सभा में आकर विनम्र होकर रावण के चरणों में नमन करते थे।

दो०– भुजबल बिश्व बश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र।।१८२(क)।।

भा०– राजाओं के मुकुटमणि रावण ने सम्पूर्ण विश्व को अपनी भुजाओं के बल से अपने वश में करके किसी को भी स्वतंत्र नहीं रखा। वह अपनी ही मंत्रणा के अनुसार राज करता था अर्थात् स्वेच्छाचारी होने के कारण मंत्रियों की भी मंत्रणा नहीं मानता था।

दो०– देव जक्ष गंधर्व नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरी निज बाहुबल, बहु सुंदरि बर नारि।।१८२(ख)।।

भा०- गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की बहुत–सी सुन्दर अविवाहित प्रथम अवस्थावाली कुमारियों को तथा बहुत सी विवाहित परायी नारियों को अपने बाहुबल से जीतकर रावण ने बलात् हरण और वरण किया।

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ।।
प्रथमहिं जिन कहँ आयसु दीन्हा। तिन कर चरित सुनहु जो कीन्हा।।

भा०- इन्द्रजीत 'मेघनाद' से रावण ने जो कहा था, वह सब मानो मेघनाद पहले ही कर चुका था अर्थात् रावण की दिग्विजय–यात्रा के पहले ही मेघनाद ने इन्द्रादि देवताओं को बन्दी बना लिया था। सर्वप्रथम रावण ने जिनको आज्ञा दी थी, उन राक्षसों का चरित्र सुनो, जो उन्होंने किया।

देखत भीमरूप सब पापी। निशिचर निकर देव परितापी।।
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।।

भा०- वे सभी राक्षस समूह देखने में भयंकर रूपवाले, पाप के निवासस्थान और देवताओं को कष्ट देते थे। देवविरोधी राक्षस समूह माया करके नाना रूप धारण करते और उपद्रव करते थे।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।।
जेहिं जेहिं देश धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।

भा०- जिस विधि से वैदिक–सनातन धर्म की जड़ उखड़ सके राक्षसलोक वे सभी वेदविरुद्ध आचरण करते थे। राक्षसगण, जिस–जिस देश में ब्राह्मण और गौ पाते उस नगर, गाँव और पुर में आग लगा देते थे।

शुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई।।
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिय न बेद पुराना।।

भा०- रावण के राज्य में कहीं भी कल्याणकारी आचरण नहीं होता था। कोई भी देवता, ब्राह्मण और गुरुदेव को नहीं मानता था। उस समय भगवान् की भक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान आदि नहीं होता था और स्वप्न में भी वेद, पुराण नहीं सुने जाते थे।

छं०- जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनइ दशशीसा।
आपुन उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा।।
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देश निकासइ जो कह बेद पुराना।।

भा०- जप, योग, वैराग्य, तप और यज्ञ में दिये जा रहे देवताओं के भाग के निमित्त उच्चरित मन्त्रों को जब रावण अपने कानों से सुनता तो वह स्वयं उठकर दौड़ पड़ता और कुछ भी सामग्री रहने नहीं पाती थी। क्रोध, खीस अर्थात् उद्विग्न होकर रावण सब कुछ लेकर नष्ट कर डालता था। इस प्रकार संसार में भ्रष्टाचार हो चुका था। धर्म कान से भी नहीं सुनायी पड़ता था। जो वेद, पुराण वाचन करता उसे रावण बहुत प्रकार से डराता, धमकाता और देश से निकाल देता था।

सो०- बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन के पापहि कवनि मिति।।१८३।।

भा०- भयंकर राक्षस जो कर रहे थे, उस अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। उन राक्षसों की हिंसा पर बहुत प्रीति थी। उनके पाप की क्या सीमा कही जाये?

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन सन करवावहिं सेवा।।

भा०– खल प्रकृति के बहुत से चोर और जुआरी बढ़ रहे थे, जो दूसरों के धन और दूसरों की स्त्रियों के प्रति लम्पट थे, वे माता–पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधु, श्रीवैष्णवों से अपनी सेवा करवाते थे।

जिन के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निशिचर सम प्रानी।।

भा०– हे पार्वती! जिनके ऐसे आचरण हों उन प्राणियों को राक्षसों के समान ही जानना।

अतिशय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुव एक पर द्रोही।।

भा०– धर्म की अत्यन्त ग्लानि अर्थात् दु:ख देखकर अत्यन्त भयभीत हुई पृथ्वी अकुला गयीं और वह बोलीं पर्वत, नदी और समुद्र का भार मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है जैसा कि, एक ही परद्रोही रावण ने मुझे भार से बोझिल बना दिया।

सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता।।
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू ते कछु काज न होई।।

भा०– सम्पूर्ण धर्मों को पृथ्वी विपरीत देख रही थीं, पर रावण से भयभीत होने के कारण वह कुछ भी नहीं कह सक रही थीं। हृदय में विचार करके, गौ का रूप धारण करके पृथ्वी वहाँ गयीं जहाँ सभी देवता और मुनि थे। पृथ्वी ने अपना कष्ट रोकर सुनाया। किसी से भी कुछ कार्य नहीं हो पा रहा था।

दो०– सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय शोका।।
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोरउ कछु न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनाशी हमरेउ तोर सहाई।।

भा०– सभी देवता, मुनि, गंधर्व मिलकर ब्रह्मा जी के लोक गये। उनके साथ गौ का शरीर धारण की हुई भय और शोक से अत्यन्त व्याकुल बिचारी अर्थात् निरीह पृथ्वी भी थी। ब्रह्मा जी ने सब जान लिया, मन में अनुमान किया कि, मेरी कुछ नहीं बसाती है अर्थात् वश नहीं चल रहा है। हे पृथ्वी माता! जिनकी तू दासी है, वे अविनाशी श्रीराम हमारे और तुम्हारे सभी के सहायक हैं।

सो०– धरनि धरहु मन धीर, कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहिं दारुन बिपति।।१८४।।

भा०– ब्रह्मा जी ने कहा, हे पृथ्वी माँ! आप धैर्य धारण कीजिये, भूभारहारि, श्रीहरि भगवान् श्रीराम का स्मरण कीजिये। सर्वसमर्थ प्रभु सेवक की पीड़ा जानते हैं। प्रभु श्रीराम हम लोगों की असहनीय विपत्ति को नष्ट कर देंगे।

* मासपारायण, पाँचवाँ विश्राम *

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा।।
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।

भा०–सभा में बैठे हुए सभी देवता यह विचार कर रहे हैं कि प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ साकेताधिपति भगवान् श्रीराम को कहाँ पायें, जिनसे पुकार करें अर्थात् अपनी आर्ति और पीड़ा कहें? कोई बैकुण्ठ पुर जाने के लिए कहता अर्थात् सम्मति देता था तो कोई देवता कह रहा था कि, वे प्रभु क्षीरसागर में निवास करते हैं।

जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती।।
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।।

भा०– जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है प्रभु उसी रीति से वहाँ सदैव प्रकट रहते हैं। शिव जी कहते हैं, हे पार्वती! मैं भी देवताओं की उस सभा में था अर्थात् अध्यक्षता कर रहा था। अवसर पाकर सभी देवताओं द्वारा अपने–अपने मत व्यक्त करके शान्त हो जाने पर, मैंने सबसे महत्त्वपूर्ण वचन कहा।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।।
देश काल दिशि बिदिशिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।

भा०– श्रीहरि भगवान् श्रीराम सर्वत्र समान रूप से व्यापक हैं। अथवा, श्रीहरि व्यापक भी हैं और सर्वत्र समाये हुए अर्थात् व्याप्त भी हैं। वे प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, इस रहस्य को मैंने जान लिया है। देवताओं! भला बताओ, देश, काल दिशायें और दिशाओं के मध्य भाग में वह स्थल कहाँ और कौन है जहाँ प्रभु श्रीराम नहीं हैं?

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना।।

भा०– प्रभु भगवान् श्रीराम अग–जगमय अर्थात् जड़–चेतन स्वरूप हैं। अथवा, स्थावर और जंगम जीवजगत् कर्म, फल, भोग के लिए उन्हीं प्रभु के पास से आया है। (यहाँ आगत अर्थ में पंचम्यांत अग–जगमय शब्द से तत आगतः अर्थ में "मयट् च" पा०सू० ४–३–८२ इस पाणिनीय सूत्र द्वारा मयट् प्रत्यय हुआ है।) वे सब से रहित अर्थात् सब से परे हैं, वे विरागी हैं अर्थात् सामान्य जगत् से वे विगत राग हैं और भक्तजनों से उन्हें विशिष्ट राग है। वे अग्नि के समान प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, इसलिए यहाँ बैठे–बैठे प्रेम से प्रभु को बुलाओ, वे प्रकट हो जायेंगे। मेरा यह वचन सभी देवताओं के मन ने मान लिया अर्थात् सब ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। साधु! साधु! (बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !) कहकर ब्रह्मा जी ने इसकी प्रशंसा की।

दो०– सुनि बिरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मतिधीर।।१८५।।

भा०– मेरा वचन सुनकर ब्रह्मा जी मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके शरीर में रोमांच हो आया और उनके आठों नेत्रों से जल बहने लगे। बुद्धि के धीर भागवत् धर्म के वे प्रथम् आचार्य ब्रह्मा जी सभी देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं हाथ जोड़कर सावधान होकर, साकेतविहारी प्रभु भगवान् श्रीराम की चारों मुखों से स्तुति करने लगे।

छं०– जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता।।
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।।

भा०– हे देवताओं के नायक, भक्तों को सुख देनेवाले, शरणागतों के पालक, गौ एवं ब्राह्मणों का हित करनेवाले भगवान् श्रीराम! आपकी जय हो! जय हो! हे असुरों के शत्रु! हे सिन्धुसुता अर्थात् क्षीरसागर की पुत्री लक्ष्मी के प्रियतम भगवान् विष्णु को भी सुख देनेवाले! आपकी जय हो। (**सिन्धुसुता लक्ष्मी तस्याः प्रियः पतिः विष्णुः तस्य कम् सुखं तनोति इति सिंधुसुता प्रिय कन्ता।**) जो देवता एवं पृथ्वी का पालन करने वाले हैं, जिनकी अद्‌भुत लीला का रहस्य कोई नहीं जानता, जो स्वभावतः कृपालु और दीनों पर दया करनेवाले हैं वे ही आप (प्रभु श्रीराम) हम देवताओं पर अनुग्रह करें।

छं०– जय जय अबिनाशी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा।।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निशि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा।।

भा०– हे अविनाशी! अर्थात् तीनों कालों में नाशरहित तथा तीनों कालों में भक्तजनों के लिए अन्तर्यामी रूप में सभी प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाले सर्वव्यापक, परमानन्द, सर्वत्र गमनशील, इन्द्रियों से परे, पवित्र चरित्रवाले, माया से रहित, मुक्ति और भुक्ति के प्रदाता प्रभु श्रीराम, आपकी जय हो ! जय हो ! जिन आपश्री के लिए मोह से रहित वैराग्यवान् मुनिजन अत्यन्त अनुराग से पूर्ण होकर रात–दिन ध्यान करते रहते हैं और जिन आपश्री के समस्त कल्याणमय गुणों का गान करते रहते हैं, ऐसे हे सच्चिदानन्द भगवान् श्रीराम! आपकी जय हो!

छं०– जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा।।
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी शरन सकल सुर जूथा।।

भा०– जिन आपश्री ने देवता, मनुष्य और तिर्यक् नामवाली तीनों प्रकार की सृष्टि को किसी दूसरे को संग में सहायक लिए बिना अपने ही संकल्प से उत्पन्न किया, फिर उसे सुन्दर शरीर आदि उपकरणों से युक्त करके बनाया, अर्थात् सजाया, वे ही अघारी अर्थात् पाप और पापियों के शत्रु आप भगवान् श्रीराम, हम सब नित्य, मुक्त, बद्धजीवों की चिन्ता करें। हम आपकी भक्ति तथा पूजा नहीं जानते हैं। जो आपश्री संसार के भय को नष्ट करनेवाले, मुनिजन के मनों का रंजन करने वाले और विपत्ति के समूहों का नाश करनेवाले हैं, मन, वाणी, कर्म से वाणी की चतुरता को छोड़कर सम्पूर्ण देवताओं के समूह उन्हीं आपश्री के शरण में हैं।

छं०– शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहिं दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना।।
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुख पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा।।

भा०– जिन आपश्री को सरस्वती, वेद, शेष और सम्पूर्ण ऋषिगण इनमें से कोई नहीं जानता। वेद पुकार कर कहते हैं कि, जिन आप श्रीराम को दीनजन प्रिय हैं वे ही आप (श्रीसीता सहित भगवान् श्रीराम) हम जीवों पर द्रवित हो जायें। हे नाथ! आप भवसागर का मंथन करनेवाले मन्दर के समान सब प्रकार से सुन्दर दिव्य कल्याण गुणगणों के मंदिर तथा सुख के पुंज अर्थात् एकीकृत की हुई राशि हैं। रावण के भय से परम आतुर मुनि, सिद्ध और सभी देवता आप के श्रीचरण कमल में नमन कर रहे हैं।

विशेष– यहाँ ब्रह्मा जी ने चारों मुख से चार चौपाया छन्द में स्तुति की है।

दो०– जानि सभय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ, हरनि शोक संदेह।।१८६।।

भा०– देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर तथा ब्रह्मा जी के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर, शोक और सन्देह को हरण करनेवाली, आकाशस्वरूप, परब्रह्म श्रीराम की गम्भीर आकाशवाणी हुई।

विशेष– यहाँ श्लेष अलंकार के प्रभाव से 'गगन' शब्द आकाश और परमात्मा श्रीराम का भी वाचक है। 'आकाशस्तल्लिंगात्।' ब्रह्मसूत्र–१.१.२४ में ब्रह्म को भी आकाश कहा गया है।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा।।
अंशन सहित मनुज अवतारा। लैहउँ दिनकर बंश उदारा।।

भा०– आकाशवाणी में भगवान् श्रीराम बोले, हे मुनियों! हे सिद्धों, हे समर्थ देवताओं! मत डरो, तुम्हारे लिए ही मैं नरवेश धारण करूँगा अर्थात् द्विभुज, धनुर्बाणधारी, सीतापति, श्रीराम होकर मैं कौसल्या के गर्भ में प्रवेश करूँगा और छोटे बालक के रूप में लोगों के समक्ष उपस्थित होऊँगा। (नित्य किशोर होकर भी छोटा राजकुमार बनना ही नर–वेश है) अपने अंशों अर्थात् क्षीरसागरशायी विष्णु, बैकुण्ठविहारी विष्णु तथा भूमा विष्णु के साथ मैं उदार सूर्यवंश में मनुष्य अवतार लूँगा अर्थात् मैं साकेताधिपति द्विभुज, धनुर्बाणधारी नित्य पन्द्रह वर्ष की अवस्था में दिखनेवाले भगवान् श्रीराम इसी रूप में, इसी नाम से दशरथ जी का ज्येष्ठ राजकुमार बनूँगा। मेरे तीनों अंश क्षीरसागरविहारी, बैकुण्ठविहारी तथा भूमा नाम के तीनों विष्णु क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न होंगे। इस कल्प में मेरे पिता–माता, मनु–शतरूपा ही होंगे। यही मुख्य अवतार होगा, इसमें तीनों वैष्णव श्रीरामावतारों का भी समय–समय पर आवेश दिखेगा।

कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब बर दीन्हा।।
ते दशरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा।।

भा०– पूर्वकाल में कश्यप और अदिति ने बहुत बड़ा तप किया था। उनको मैंने पूर्व में वरदान दिया था कि, तुम दोनों का पुत्र बनूँगा। वे कोसलपुरी अयोध्या में दशरथ–कौसल्या के रूप में राजा–रानी होंगे।

तिन के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम शक्ति समेत अवतरिहउँ।।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।।

भा०– उन्हीं रघुकुल तिलक महाराज दशरथ जी के भवन में तथा उनके गृह अर्थात् ज्येष्ठपत्नी कौसल्या जी के समीप, मैं स्वयं चार रूप बनाकर लोकलीला में चारों भाई अर्थात् चतुष्पद् विभूति से अवतार लूँगा। नारद जी के सभी वचनों को सत्य करूँगा। परमशक्ति सीता जी के सहित अवतार लूँगा। पृथ्वी के सम्पूर्ण भार को हर लूँगा। हे देवताओं के समुदाय! अब तुम सब निर्भय हो जाओ।

विशेष– (क) यहाँ धरिहउँ नरबेशा।
(ख) मनुज अवतारा लैहउँ।
(ग) अवतरिहउँ जाई।
(घ) परम शक्ति समेत अवतरिहउँ।

इन चार वाक्यखण्डों में चार बार अवतार की प्रतिज्ञा करके, प्रभु चार कल्प के अवतारों की सूचना दे रहे हैं, जिनमें पूर्व का अवतार मुख्य और पश्चात् के सूचित तीन अवतार गौण हैं। उन सबका मुख्य अवतार में समावेश है। अन्तर इतना ही है कि, मनु–शतरूपा को वरदान देनेवाले परात्पर परब्रह्म साकेताधिपति सभी के अंशी भगवान् श्रीराम की ही कथा मानस में मुख्यतः वर्णित होगी। शेष तीन अवतारों की कथाएँ स्थल विशेष पर बहुत न्यून अंशों में प्रदर्शित की जायेंगी।

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना।
तब ब्रह्मा धरनिहिं समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा।।

भा०– आकाश में की गयी परब्रह्म परमात्मा श्रीराम की वाणी अपने कानों से सुनकर हृदय में प्रसन्न हुए देवता तुरन्त लौट आये। तब ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को समझाया। वे निर्भय हो गईं उनके हृदय में प्रभु के प्रति विश्वास हो आया।

दो०– निज लोकहिं बिरंचि गे, देवन इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महँ, हरि पद सेवहु जाइ।।१८७।।

भा०– हे देवताओं! पृथ्वी पर वानर शरीर धारण करके स्वर्गलोक से भारत भूमि पर जाकर, वहाँ प्रकट होने वाले भू–भारहारी श्रीहरि भगवान् श्रीराम की सेवा करो। इस प्रकार देवताओं को सिखाकर ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहँ बिश्रामा।।
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा।।
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन पाहीं।।
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा।।
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी।।

भा०– मन में प्रभु के आश्वासन से विश्राम पाकर पृथ्वी सहित सभी देवता अपने–अपने धाम को चले गये। ब्रह्मा जी ने जो कुछ आज्ञा दी थी, देवता उसे स्वीकार कर प्रसन्न हुए और विलम्ब नहीं किया। इस भारत भूमि में देवताओं ने वन में विचरण करने वाले वानर–भालुओं का शरीर धारण किया। उनके पास अतुलनीय बल और प्रताप था। वे सभी वीर वानर–भालु, पर्वत, वृक्ष और अपने नाखूनों को शस्त्र बनाकर धीरबुद्धि से भगवान् का मार्ग निहारते रहते थे अर्थात् प्रभु की बाट जोहने लगे। जहाँ–तहाँ पर्वतों और वनों में अपनी सुन्दर सेना की रचना करके और वन प्रान्तरों को पूर्णरूप से भरकर वानर–भालू रह रहे थे।

यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा।।
अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहिं दशरथ नाऊँ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति शारंगपानी।।

भा०– शिव जी कहते हैं कि, हे पार्वती ! यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा, अब वह सुनो, जिसे बीच में ही छोड़ रखा था। प्रभु श्रीराम के वरदानानुसार प्रथम मन्वन्तर के अधिपति स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नी शतरूपा के साथ रघुकुल में महाराज अज की धर्मपत्नी इन्दुमति के गर्भ से जन्म लेकर रघुकुल के मणि और अयोध्यापुरी के चक्रवर्ती शासक बने। उनका वेद प्रसिद्ध दशरथ नाम था। वे धर्म की धुरी को धारण करनेवाले गुणनिधि तथा ज्ञानी थे। उनके हृदय में शारंग धनुषधारी भगवान् श्रीराम की भक्ति थी और बुद्धि भी उन्हीं पर समर्पित थी।

दो०- कौसल्यादिक नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल बिनीत।।१८८।।

भा०- उनकी कौसल्यादिक सात सौ महारानियाँ उन्हें बहुत प्रिय, सभी आचरणों में पवित्र, पति के अनुकूल, श्रीहरि के चरणकमलों में दृढ़ प्रेमवाली और विनम्र थीं।

विशेष- शतरूपा यहाँ कौसल्या हुई थीं और उन्हीं शतरूपा ने अपने और सात सौ दो नारियों का रूप बनाया जो महाराज दशरथ की गौण पटरानियाँ बनीं। इस प्रकार कौसल्या जी मुख्य और सात सौ दो गौण, कुल रानियों की संख्या थी सात सौ तीन।

एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।।
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिशाला।।
निज दुख सुख सब गुरुहिं सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ।।

भा०- एक बार (साठ हजार वर्ष बीतने पर) चक्रवर्ती महाराज दशरथ के मन में ग्लानि हुई अर्थात् उनकी प्रसन्नता समाप्त हो गयी और अभाव की अनुभूति हुई। वे सोचने लगे कि, मेरे पुत्र नहीं है। पृथ्वी का पालन करने वाले महाराज दशरथ तुरन्त गुरुदेव वसिष्ठ जी के गृह अर्थात् आश्रम को गये। उनके चरणों से लिपटकर विनय करके अपना विशाल दुःख और सभी प्रजाओं का सुख गुरुदेव को कह सुनाया। तब वसिष्ठ जी ने महाराज को बहुत प्रकार से समझाया।

धरहु धीर होइहैं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी।।

भा०- हे राजन्! धैर्य धारण कीजिये। आप के चार पुत्र होंगे, वे आकाश, पाताल, मर्त्यलोक में प्रसिद्ध तथा अपने भक्तों के भय को हरनेवाले होंगे।

शृंगी रिषिहिं बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम शुभ जग्य करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे।।

भा०- वसिष्ठ जी ने शृंगी अर्थात् जिनके मस्तक पर हिरण के जैसी सींग थी ऐसे ऋष्य शृंग नामक ऋषि को बुलाया और उन्हीं से पुत्र की कामना के लिए कल्याणकारी पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। ऋषि शृंगी ने भक्ति सहित मन से आहुतियाँ दीं तब हाथ में चरु (पायस, खीर) लिए हुए अग्निदेव स्वयं प्रकट हो गये।

जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा।।
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई।।

भा०- अग्निदेव महाराज दशरथ को सम्बोधित करते हुए बोले, हे राजन्! वसिष्ठ जी ने जो कुछ हृदय में विचार किया था, तुम्हारा वह सब कार्य सिद्ध होगा। हे राजन्! यह मेरे द्वारा दिया हुआ हवि यानी खीर विभाग करके अपनी तीन सवर्ण पत्नियों में जिसकी जैसी योग्यता हो, उसी प्रकार जाकर बाँट दो।

दो०- तब अदृश्य भए पावक, सकल सभहिं समुझाइ।
परमानंद मगन नृप, हरष न हृदय समाइ।।१८९।।

भा०- इसके पश्चात् सम्पूर्ण सभा को समझाकर अग्निदेव अदृश्य अर्थात् सबकी आँखों से ओझल हो गये। अग्निदेव द्वारा दिये हुए हविष्यान्न को पाकर महाराज दशरथ परमानन्द में मग्न हो गये। उनके हृदय में हर्ष समा नहीं रहा था।

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं।।
अर्ध भाग कौसल्यहिं दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।
कैकयी कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।
कौसल्या कैकेयी हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि।।

भा०- उसी समय महाराज दशरथ जी ने अपनी सवर्णा प्रिय कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा नामक तीनों महारानियों को यज्ञशाला में बुला लिया। महाराज की आज्ञा से कौसल्यादि महारानियाँ पत्नीशाला से यज्ञशाला पैदल चलकर आयीं। महाराज ने हवि का आधा भाग कौसल्या जी को दे दिया, फिर आधे के दो भाग हुए। महाराज ने आधे का प्रथम अर्थात् पूर्ण का चौथा भाग कैकेयी को दे दिया, जो चौथा भाग अवशिष्ट था फिर उसके भी दो भाग हो गये महाराज ने उन दोनों भागों को कौसल्या जी एवं कैकेयी के हाथ में रखकर मन प्रसन्न करके सुमित्रा जी को दे दिया अर्थात् सुमित्रा जी को दोनों महारानियों से सम्मानित कराया।

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी।।
जा दिन ते हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए।।

भा०- इस विधि से अर्थात् हविष्य–प्रदान मात्र से बुलायी हुईं सभी महारानियाँ हर्षित हृदय से गर्भाधान संस्कार द्वारा गर्भवती हुईं। उनके हृदय में बहुत बड़ा सुख हुआ। तात्पर्य यह है कि, हविष्य के अर्द्ध भाग से कौसल्या जी के गर्भ में परब्रह्म तुरीय परमेश्वर श्रीराम पधारे, हविष्य के चतुर्थ भाग से कैकेयी जी के गर्भ में प्राज्ञ ईश्वर भरतजी पधारे और हविष्य के अष्टम–अष्टम भागों से सुमित्रा जी के गर्भ में क्रमशः विराट्रूप लक्ष्मण जी और हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न जी पधारे। जब से श्रीहरि साकेताधीश भगवान् श्रीराम अपने तीनों अंश (विष्णुओं) के साथ गर्भ में आये तब से सम्पूर्ण लोकों में सुख तथा सम्पत्ति छा गयी।

मंदिर महँ सब राजहिं रानी। शोभा शील तेज की खानी।।
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ।।

भा०- शोभा, शील और तेज की खानिरूप सभी तीनों रानियाँ राजमंदिर में सुशोभित हो रही थीं। (कौसल्या जी शोभा की, कैकेयी जी शील की और सुमित्रा जी तेज की खानि थीं।) इस प्रकार पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार–क्रियाओं से उत्पन्न सुख से युक्त कुछ काल बीता अर्थात् बारह मासपर्यन्त प्रभु गर्भ में विराजे। जिस समय प्रभु को प्रकट होना है, वह प्रभव संवत्सर, चैत्र शुक्ल नवमी मध्याह्न का समय उपस्थित हो गया।

दो०- जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरषजुत, राम जनम सुखमूल।।१९०।।

भा०- योग, लग्न, ग्रह, दिन और तिथि ये सभी अनुकूल हो गयीं। सुख के मूल कारण श्रीरामजन्म के समय चेतन तथा जड़, चिद्वर्ग तथा अचिद्वर्ग प्रसन्नता से युक्त हो गया।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। शुक्ल पक्ष अभिजित हरि प्रीता।।
मध्य दिवस अति शीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।

भा०- उस समय पवित्र मधुमास अर्थात् चैत्र का महीना, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, हरि प्रीता अर्थात् श्रीराम जिस पर प्रसन्न रहते हैं, ऐसा पुनर्वसु नक्षत्र तथा अभिजित मुहूर्त था। दिन का मध्य जिसमें न बहुत ठंड थी और न ही बहुत कड़ी धूप, सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देनेवाला मध्याह्न का पवित्र समय था।

शीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ।।
बन कुसुमित गिरि गन मनियारा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा।।

भा०– शीतल, मंद और सुगंध वायु बह रहा था, देवता हर्षित थे, सन्तों के मन में चाव अर्थात् उत्साह था, वन पुष्पों से लदे थे, पर्वतों के समूह मणियों से युक्त हो गये थे, सभी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना।।
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा।।

भा०– जब ब्रह्मा जी ने सो अवसर अर्थात् प्रभु के प्राकट्य का समय जाना तब उनकी प्रेरणा से सभी देवता विमानों को सजाकर उन पर आरूढ़ होकर देवलोक से श्रीअयोध्यापुरी को चल पड़े। श्रीअवध का निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया था और वहाँ गन्धर्वों के समूह प्रभु के दिव्यगुण गा रहे थे।

बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी।।
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा।।

भा०– देवता सुन्दर पुष्पांजलि सजाकर सुमन अर्थात् प्रसन्न मन से, सुमनवृष्टि कर रहे थे। आकाश में गहगहे एवं देव–दुन्दुभियाँ अपने आप बज उठीं। नाग, मुनि और देवगण स्तुति (गर्भ–स्तुति) कर रहे थे और बहुत प्रकार से भगवान् के चरणों में अपनी–अपनी सेवाएँ समर्पित कर रहे थे।

दो०– सुर समूह बिनती करि, पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक बिश्राम।।१९१।।

भा०– देवताओं के समूह बिनती अर्थात् प्रभु की गर्भ–स्तुति करके अपने–अपने धाम को पहुँचे। उसी समय सम्पूर्ण लोकों के विश्रामस्थानस्वरूप जगन्निवास अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के निवासस्थान तथा सम्पूर्ण जगत् में निवास करनेवाले सर्वसमर्थ प्रभु भगवान् श्रीराम, महाराज दशरथ जी के राजभवन में माता कौसल्या जी के समक्ष द्विभुज रूप से किशोर अवस्था में धनुष–बाण के साथ प्रकट हो गये।

छं०–भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिशाला शोभासिंधु खरारी।।
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।।
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उदर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

भा०- अहैतुकी कृपा करनेवाले दीनों पर दया करनेवाले कौसल्या जी का हित करनेवाले प्रभु श्रीराम प्रकट हुए। उनके मुनियों के मन को हरनेवाले आश्चर्यजनक रूप को निहार कर, माता कौसल्या प्रसन्न हो गयीं। प्रभु का शरीर, नेत्रों को आनन्द देनेवाले, नीले बादल के समान था। उनकी दोनों भुजाओं पर प्रभु के निजी शस्त्र, धनुष–बाण विराज रहे थे। प्रभु के श्रीविग्रह पर कुण्डल, कंकन, किंकिणि, हार, नूपुर आदि आभूषण विराज रहे थे। भगवान् श्रीराम के वक्षस्थल पर तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल के पुष्पों से गुँथी हुई कण्ठ से लेकर चरणपर्यन्त लटकती हुई वनमाला सुशोभित थी। भगवान् के नेत्र विशाल थे। खर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम शोभा के महासागर रूप में प्रकट हुए। कौसल्या जी दोनों हाथ जोड़कर कहने लगीं, हे अनन्त! अर्थात् अन्त से रहित परब्रह्म श्रीराम! मैं आपकी स्तुति किस प्रकार से करूँ। वेद और पुराण आप को माया तथा उसके गुणों, ज्ञान से परे और मानरहित कहते हैं। जो आपश्री करुणारूप और सुख के समुद्र हैं तथा सभी कल्याणकारी गुणगणों के आगार अर्थात् भवन हैं, जिन आपश्री को वेद तथा सन्त गाते हैं, वे ही भक्तों के अनुरागी आप साकेतबिहारिणी सीता जी के पति साकेताधीश भगवान् श्रीराम मेरे हित के लिए ही प्रकट हुए हैं। वेद कहते हैं कि, जिनकी एक–एक रोम में माया से निर्मित ब्रह्माण्डों के समूह विराजते हैं, वे ही प्रभु मुझ कौसल्या के उदर अर्थात् पेट के गर्भाशय में निवास किये यह सुनकर धीरों की भी बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती अर्थात् उन्हें भी आश्चर्य हो सकता है। माता जी के मन में जब ज्ञान उत्पन्न हुआ और प्रभु के प्रति ऐश्वर्यभाव आ गया तब भगवान् श्रीराम मुस्कुराये। वे बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं, जो माताश्री के ऐश्वर्यभाव में सम्भव नहीं है, इसलिए भगवान् श्रीराम ने मनु–शतरूपा की तपस्या एवं उन्हें अपने द्वारा दिये हुए वरदान की सुहावनी कथा कहकर माता कौसल्या को समझाया। जिस प्रकार कौसल्या माता प्रभु के विषय में सुतप्रेम अर्थात् वात्सल्य–भाव प्राप्त कर सकेंगी, अब वह मति अर्थात् भगवान् के प्रति ऐश्वर्यबुद्धि डिग गयी तथा प्रभु के प्रति पुत्रविषयक प्रेम से भावित माता कौसल्या जीं बोली, हे पुत्र! यह रूप अर्थात् किशोरावस्था का रूप छोड़ दीजिये। जिसमें आपका स्वभाव अत्यन्त प्रिय होगा ऐसी शिशुलीला कीजिये अर्थात् नन्हें–मुन्ने छोटे से नवजात बालक बन जाइये, यही सुख परम अनूप अर्थात् पूजनीय एवं उपमा से रहित है। सुजान अर्थात् माता जी का अभिप्राय समझने वाले, देवताओं के भी राजाधिराज भगवान् श्रीराम ने माता जी के यह वचन सुनकर छोटे से बालक रूप में अवतीर्ण होकर रुदन प्रारम्भ किया अर्थात् कहाँऽऽ–कहाँऽऽ कर रोने लगे। तुलसीदास जी फलश्रुति कहते हुए आज्ञा करते हैं कि, आज भी यह अवतार चरित्र जो गाते हैं, वे हरिपद पा जाते हैं अर्थात् वे भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों की सेवा प्राप्त कर लेते हैं और वे संसाररूप कूप में नहीं पड़ते।

दो०- बिप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।१९२।।

भा०- ब्राह्मणों, गौओं, देवताओं तथा सन्तों का हित करने के लिए माया के गुणों और इन्द्रियों से परे होते हुए भी, प्रभु श्रीराम ने अपने तथा अपने भक्तजनों की इच्छा से छोटा–सा बालरूप बनाकर मनुष्य का अवतार अथवा मनुवंश में जन्म लेकर श्रीरामावतार ले लिया।

सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी।।
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुर बासी।।

भा०-परमप्रिय वाणी में शिशुरूप राम जी का रुदन सुनकर सभी रानियाँ प्रसन्नतायुक्त आश्चर्य से युक्त होकर, कौसल्या जी के भवन में चलकर गयीं। प्रसन्न हुईं दासियाँ जहाँ–तहाँ दौड़ पड़ीं सम्पूर्ण अवधवासी आनन्द में मग्न हो गये।

दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना।।
परम प्रेम मन पुलक शरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।।

भा०- पुत्र का जन्म स्वयं अपने कानों से सुनकर महाराज दशरथ मानो ब्रह्मानन्द में समा गये अर्थात् लीन हो गये। मन में परमप्रेम उमड़ आया, शरीर पुलकित हो उठा। वे उठकर राजभवन में जाना चाहते थे, परन्तु बुद्धि उनको धीर अर्थात् स्थिर कर रही थी कि, अभी राजभवन में जाना उचित नहीं होगा अर्थात् गुरुदेव के साथ ही पुत्र को निहारना धर्मसंगत होगा।

जाकर नाम सुनत शुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।।
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा।।

भा०- जिनका नाम सुनते ही शुभ हो जाता है, वही साकेतबिहारी भगवान् श्रीराम मेरे गृह में बालक बनकर आये हैं, ऐसा सोचते ही राजा दशरथ जी का मन परमानन्द से पूर्ण हो गया और स्वयं उन्होंने बजनियों को बुलाकर कहा, बाजे बजाओ।

गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृप द्वारा।।
अनुपम बालक देखेनि जाई। रूप राशि गुन कहि न सिराई।।

भा०- गुरुदेव वसिष्ठ जी के लिए महाराज का बुलावा गया, अथवा स्वयं महाराज गुरुदेव वसिष्ठ जी के पास उन्हें बुलाने के लिए गये और वसिष्ठ जी, वामदेव आदि अन्य ब्राह्मणों के साथ राजभवन में पधारे। उपमारहित उन बालक परमेश्वर को जाकर वसिष्ठ जी ने देखा, अथवा वसिष्ठ जी ने ऐसा उपमारहित बालक देखा, जिसके 'बाल' अर्थात् रोम–रोम में 'क' अर्थात् अनेक ब्रह्माण्ड विराज रहे थे, ब्रह्मा जी भी जिसके 'बाल' अर्थात् पुत्र हैं, जिसके अलक अर्थात् केश वक्र अर्थात् घुँघराले हैं, जो बालों अर्थात् बाल–स्वभाव वालों को 'क' अर्थात् अपने पास बुला लेता है, उस अनुपम बालक को महाराज दशरथ जी के साथ वसिष्ठ जी ने देखा। वह रूप की राशि था और उसके गुण कहने में समाप्त नहीं हो रहे थे।

दो०- तब नंदीमुख श्राद्ध करि, जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन कहँ दीन्ह।।१९३।।

भा०- तब राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सम्पूर्ण जातकर्म का विधान सम्पन्न किया और ब्राह्मणों को स्वर्ण, गौ, वस्त्र तथा मणियाँ दीं।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा।।
सुमनबृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब कोई।।

भा०- नगर में ध्वजा, पताका और तोरण छा गये। जिस प्रकार श्रीअवध को सजाया गया था, वह कहा नहीं जा सकता। आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही थी और सभी ब्रह्मानन्द में मग्न थे।

बृंद बृंद मिलि चलीं लुगाई। सहज सिंगार किए उठि धाई।।
कनक कलश मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा।।

भा०- समूह–समूह में मिलकर श्रीअवध की सुहागिनियाँ चल पड़ीं वे स्वभावत: शृंगार किये हुए उठकर दौड़ीं वे स्वर्ण से भरे कलश और मंगलों से भरे थालों को लेकर गाती हुई महाराज के द्वार में प्रवेश कर रही थीं।

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार शिशु चरननि परहीं।।
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक।।

भा०– श्रीअवध की सौभाग्यवती नारियाँ आरती करके निछावर करती और बार–बार शिशुरूप राघव के चरणों में पड़ जाती हैं। मागध (वंश प्रशंसक), सूत (पौराणिक गायक), बन्दिजन और प्रस्ताव के अनुकूल उक्तियाँ कहनेवाले अन्य गायकजन, रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम के पवित्र गुणों को गा रहे हैं।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू।।
मृगमद चंदन कुंकुम सींचा। मची सकल बीथिन बिच कीचा।।

भा०– सभी लोगों ने सर्वस्व दान दे दिया, जिसने पाया उसने भी नहीं रखा। अन्ततः वह फिर राजभवन में आ गया। सभी गलियों को कस्तूरी, कुंकुम और चंदन के द्रव से सींचा गया इसलिए गलियों में कीचड़ हो गया।

दो०– गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर नारि नर बृंद।।१९४।।

भा०– श्रीअयोध्या के प्रत्येक घर में बधावा बज रहा था, क्योंकि सुषमा अर्थात् परमपूजनीय शोभा के मेघस्वरूप भगवान् श्रीराम श्रीअवध में प्रकट हो गये थे। नगर के नारी और पुरुष जहाँ–तहाँ प्रसन्न थे।

चौ०– कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भइ ओऊ।।
वह सुख संपति समय समाजा । कहि न सकहिं शारद अहिराजा।।

भा०– कैकय–राजपुत्री कैकेयी तथा सुमित्रा इन दोनों महारानियों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया अर्थात् कैकेयी जी ने एक पुत्र और सुमित्रा जी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती जी और सर्पों के राजा शेष जी भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहिं मिलन आई जनु राती।।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी।।

भा०– अवधपुरी इस प्रकार से शोभित हो रही थी मानो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी से मिलने रात्रि आयी हो, वह मानो सूर्यनारायण को देखकर मन में सकुचा गयी हो फिर भी अनुमानतः संध्या तो बन ही गयी।

अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।।
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलश सो इंदु उदारा।।

भा०– अगर की धूप ही मानो संध्या की अँधियारी है अर्थात् अंधेरापन है। अबीर उड़ रहे हैं मानो वही संध्या की लालिमा है, मंदिर में जड़े मणियों के समूह ही मानो तारागणों का समूह है। महाराज के भवन का कलश मानो सुन्दर पूर्ण चन्द्रमा है।

भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय सुख सानी।।
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेहि जात न जाना।।

भा०– राजभवन में अत्यन्त कोमल वाणी में हो रहे वेदध्वनि मानो सन्ध्याकालीन सुख से सनी हुई पक्षियों की कलरव ध्वनि हो, यह कौतुक देखकर सूर्यनारायण मानो भुला गये। महीने भर के दिनों को उन्होंने जाते नहीं जाना अर्थात् श्रीरामजन्म के समय रामनवमी का एक दिन एक महीने के दिनों के बराबर अर्थात् सात सौ बीस घण्टों का हो गया और सूर्यनारायण को इसका संज्ञान ही नहीं हो पाया, इसलिए वे एक महीनेपर्यन्त अस्ताचल को गये ही नहीं, श्रीरामजन्मोत्सव देखते रहे।

दो०– मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ, निशा कवन बिधि होइ।।१९५।।

भा०- एक महीने के दिन का एक दिन हो गया और कोई भी यह मर्म नहीं जान रहा है। रथ के सहित सूर्यनारायण श्रीअवध के आकाश में स्थिर हो गये, तो रात्रि किस प्रकार से हो, क्योंकि वह तो सूर्यनारायण के अस्त होने पर ही सम्भव है।

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना।।
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा।।

भा०- यह रहस्य किसी ने भी नहीं जाना। सात सौ बीस घण्टों के पश्चात् सूर्यनारायण भगवान् श्रीराम का गुणगान करते अस्ताचल को चल पड़े। भगवान् श्रीराम का जन्ममहोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने–अपने भाग्य का वर्णन करते हुए अपने–अपने घरों को चले।

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी।।
काकभुशुण्डि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ।।
परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन फिरहिं मगन मन भूले।।
यह शुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई।।

भा०-हे पार्वती! आप की बुद्धि अत्यन्त धीर हो चुकी है, इसलिए मैं अपनी एक अन्य चोरी कह रहा हूँ अर्थात् आपसे छिपाकर मनुष्यरूप धारण करके साथ में काकभुशुण्डि जी को लेकर हम दोनों परमानन्द, प्रेम और सुख में फूले हुए मग्न मनवाले भूले–भूले अयोध्या की गलियों में भटकते–फिरते थे। हमें कोई नहीं जान पाता था। पर यह सब चरित्र वही जान जाता है, जिस पर श्रीराम की कृपा हो जाती है अर्थात् श्रीराम की कृपा से इस गोपनीय चरित्र को भी तुलसीदास जी ने मानस में निबद्ध कर दिया।

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।।
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाबिधि चीरा।।

भा०- इस अवसर पर जो जिस प्रकार से आया, जिसे जो मन में भाया राजा ने उसे वह दे दिया। हाथी, घोड़े स्वर्ण, गौ, हीरे और नाना प्रकार के वस्त्र महाराज दशरथ ने दान में दिये।

दो०- मन संतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहिं अशीश।
सकल तनय चिर जीवहु, तुलसिदास के ईश।।१९६।।

भा०- सबके मन सन्तुष्ट हो गये। लोग जहाँ–तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे और बोल रहे थे कि, तुलसीदास के ईश्वर आराध्यरूप महाराज के सभी पुत्र चिरंजीवी हों।

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती।।
नामकरन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।।

भा०- इस प्रकार से कुछ दिन अर्थात् ग्यारह दिन बीत गये। दिन और रात जाते हुए नहीं जान पड़ते थे। बारहवें दिन नामकरण का अवसर जानकर महाराज ने ज्ञानीमुनि वसिष्ठ जी को बुला भेजा।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा।।
इन के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।।

भा०- पूजा करके महाराज दशरथ जी ने इस प्रकार कहा, हे मननशील गुरुदेव! आप ने जो विचार कर रखा हो, बालकों का वही नाम रख दीजिये। (मुनि वसिष्ठ जी ने कहा–) हे महाराज! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप कहूँगा।

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

भा०– वसिष्ठ जी ने कहा, हे राजन्! जो आनन्द के सागर, सुखों की राशि हैं और जो उस आनन्द के एक बूँद से ही स्वर्गलोक, मर्त्यलोक तथा पाताललोक इन तीन लोकों को आनन्दित करते रहते हैं। जो सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देनेवाले हैं, वही सुखों के आश्रय प्रभु 'श्रीराम' इस नाम से प्रसिद्ध होंगे अर्थात् सब में रमण करने और सब में रमण कराने के कारण बड़े राजकुमार का नाम राम होगा।

बिश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।
जाके सुमिरन ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन बेद प्रकाशा।।

भा०– जो विश्व का भरण–पोषण करते हैं, उनका नाम 'भरत' इस प्रकार होगा, जिनके स्मरणमात्र से शत्रुओं का नाश हो जाता है, उनका वेद में प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम होगा।

दो०- लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बशिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार।।१९७।।

भा०– जो शुभलक्षणों के धाम, श्रीराम के प्रिय, सारे संसार के आधार और अत्यन्त उदार हैं, गुरु वसिष्ठ जी ने उन्हीं सुमित्रा जी के बड़े पुत्र का नाम 'लक्ष्मण' रखा।

विशेष– यद्यपि लक्ष्मण जी, शत्रुघ्न जी से बड़े हैं, फिर भी दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर तुलसीदास जी ने लक्ष्मण का नाम अन्त में रखा। तुरीय होने के कारण श्रीराम का नाम प्रथम, प्राज्ञ होने से भरत का नाम द्वितीय, हिरण्यगर्भ होने से शत्रुघ्न का नाम तृतीय और विराट् होने से लक्ष्मण जी का नाम चतुर्थ में रखा गया। श्रीरामतापनीयोपनिषद् के अनुसार भी अर्द्धमात्रात्मक श्रीराम का नाम प्रथम, मकरात्मक भरत का नाम द्वितीय, उकारात्मक शत्रुघ्न का नाम तृतीय और अकारात्मक लक्ष्मण जी का नाम चतुर्थ में रख गया।

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी।।
मुनि धन जन सरबस शिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना।।

भा०– गुरुदेव ने हृदय में विचार कर चारों बालकों का नाम रखा। अथवा श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नाम के अर्थ को हृदय में विचारकर चारों राजकुमारों को ही गुरु वसिष्ठ जी ने हृदय में धारण कर लिया और बोले, हे महाराज! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व ओंकार ही हैं, अर्थात् लक्ष्मण जी अकार के अर्थ हैं, शत्रुघ्न जी उकार के, भरत जी मकार के तथा श्रीराम अर्द्धमात्रा के अर्थ हैं। अब बाललीला का उपक्रम करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि, जो प्रभु मुनियों के धन, भक्तजनों के सर्वस्व तथा शिव जी के प्राण हैं उन्हीं प्रभु श्रीराम ने बाल–क्रीड़ा के रस में सुख मान लिया है अर्थात् स्वयं बाललीला में आनन्द ले रहे हैं, साथ ही मुनियों, भक्तों और शिव जी को भी आनन्द दे रहे हैं।

बारेहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी।।
भरत शत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई।।

भा०– बाल्यावस्था से ही अपना हितैषी और स्वामी जानकर लक्ष्मण जी ने श्रीराम के चरणों में रति अर्थात् भक्ति मान ली है। श्रीभरत और श्रीशत्रुघ्न इन दोनों भाइयों ने स्वामी और सेवक जैसी परस्पर प्रीति बढ़ा ली है।

श्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी।।
चारिउ शील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा।।

भा०–श्याम और गौरवर्णवाली सुन्दर दोनों जोड़ियों श्रीराम–लक्ष्मण तथा भरत–शत्रुघ्न की छवि, माताएँ तिनका तोड़कर देखती हैं। यद्यपि चारों भाई शील, रूप और गुणों के भवन हैं, फिर भी सुख के सागर श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से अधिक हैं।

हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना।।

भा०– प्रभु के हृदय में अनुग्रहरूप चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है। जिसकी किरणें प्रभु की मनोहारिणीं हँसी से सूचित हो रही हैं। कभी गोद में लेकर, कभी श्रेष्ठ पालने पर पौढ़ाकर 'प्रिय ललना' कहकर माता कौसल्या प्रभु श्रीराम को दुलारतीं हैं।

दो०- ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बश, कौसल्या के गोद।।१९८।।

भा०– जो प्रभु व्यापक, ब्रह्म, निरंजन अर्थात् कर्म के लेख से रहित तथा प्राकृत हेयगुणों से शून्य, विनोदरहित और अजन्मा हैं। वे ही प्रभु श्रीराम कौसल्या जी की प्रेमाभक्ति के वश में होकर उनकी गोद में विराज रहे हैं।

काम कोटि छबि श्याम शरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा।।
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलनि बैठे जनु मोती।।

भा०– करोड़ों कामदेव की छवि से युक्त नीले कमल और वर्षाकालीन गम्भीर बादल के समान प्रभु का श्यामल शरीर है। अथवा, करोड़ों कामदेवों को भी जिनसे सुन्दरता मिली है, ऐसे श्यामल शरीरवाले प्रभु श्रीराम, कौसल्या की गोद में संलग्न नीली साड़ी पर बैठकर इस प्रकार विराज रहे हैं, जैसे नीले कमल पर गम्भीर वर्षाकालीन बादल विराजमान हो। प्रभु के चरण कमल के समान हैं। उनकी नखों की ज्योति ऐसी प्रतीत होती है, मानो दस कमल के दलों पर दस मोती बैठे हुए हों।

रेख कुलिश ध्वज अंकुश सोहै। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहै।।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा।।

भा०– प्रभु के चरण में रेखा आकार वाले वज्र, ध्वज और अंकुश बहुत सुन्दर शोभायमान हो रहे हैं। नूपुर की ध्वनि सुनकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं। प्रभु के कटि–तट पर किंकिणी और उनके उदर पर तीन रेखायें विराजमान हैं। उनकी नाभि गम्भीर है उसे वही जान सकता है, जिसने देखा हो।

भुज बिशाल भूषन जुत भूरी। हिय हरि नख अति शोभा रूरी।।
उर मनिहार पदिक की शोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा।।

भा०– अनेक आभूषणों से युक्त प्रभु की भुजाएँ विशाल अर्थात् बड़ी और आजानु (घुटने से नीचे तक) हैं। हृदय पर बघनखा की शोभा बहुत ही अद्भुत और प्यारी है। हृदय पर मणियों की माला और हीरे के हार की शोभा है। प्रभु के हृदय पर दृष्टिदोष वारन के लिए माता कौसल्या द्वारा आदरातिशय से स्थापित कराये हुए वसिष्ठ जी के चरणचिह्न को देखकर तो मन लुब्ध हो जाता है।

विशेष– विष्णु भगवान् राम के अंश हैं। **शम्भु बिरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना।।** मानस १.१४५.६। इसलिए विष्णु के वक्ष का भृगु–चरणचिह्न, उनके अंशी भगवान् श्रीराम के वक्ष पर नहीं आ सकता, क्योंकि अंशी के गुण अंश में जाते हैं, न कि अंश के अंशी में, जैसे समुद्र का गुण लहर में जा सकता है, पर लहर का गुण समुद्र में नहीं जा सकता है।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई।।
दुइ दुइ दशन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे।।

भा०- प्रभु के कण्ठ शंख के समान हैं, उनकी चिबुक अर्थात् ठोढ़ी बहुत सुहावनी है। प्रभु के मुख पर असीम कामदेवों की छवि छायी हुई है। दो-दो दतुलियाँ, लाल अधर (होठ), नासिका और भाल पर लगी हुई तिलक का वर्णन कौन कर सकता है ?

सुन्दर स्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला।।
नील कमल दोउ नयन बिशाला। बिकट भृकुटि लटकनि बर भाला।।

भा०-प्रभु श्रीराम के कान बड़े ही सुन्दर हैं और उनके कुछ उभरे हुए कपोल बड़े ही सुन्दर और मनमोहक हैं। उनकी तोतली बोली अत्यन्त प्रिय और मधुर है। नीले कमल के समान प्रभु के विशाल दो नेत्र, टेढ़ी भौंहें और मस्तक पर लटकती हुई घुँघराली लटों की लटकन श्रेष्ठता के साथ सुशोभित हो रही है।

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।।
पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई।।
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा।।

भा०-प्रभु के गभुआरे अर्थात् गर्भ के केश बड़े ही चिक्कन और घुँघराले हैं, जिन्हें माता जी ने बहुत प्रकार से सजाकर बनाया है। उनके शरीर पर पीली झगुलिया पहनायी हुई है और उनके चरण और हाथ के बल से चलना मुझे बहुत भाता है। भगवान् श्रीराम के रूप को वेद और शेष भी नहीं कह सकते। उसको तो वही जान सकता है, जिसने स्वप्न में भी उसे देखा हो।

दो०- सुख संदोह मोहपर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बश, कर शिशुचरित पुनीत।।१९९।।

भा०- जो सुख के घनीभूत, मोह से परे, ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं, वही प्रभु श्रीराम, राजदम्पति दशरथ और कौसल्या के परमप्रेम के वश में होकर पवित्र शिशुचरित्र कर रहे हैं।

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन सुखदाता।।
जिन रघुनाथ चरन रति मानी। तिन की यह गति प्रगट भवानी।।

भा०-इस प्रकार से जगत् के पिता-माता भगवान् श्रीराम कोसलपुरवासियों को सुख देनेवाले हो गये अर्थात् सुख देने लगे। हे पार्वती! जिन्होंने श्रीरघुनाथ के चरणों में रति अर्थात् भक्ति मान ली है, उनकी यह गति प्रत्यक्ष है अर्थात् उन्हें प्रभु की बाललीला के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

रघुपति बिमुख जतन करि कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी।।
जीव चराचर बश कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे।।

भा०- श्रीराम से विमुख होकर करोड़ों यत्न करके भी भवबन्धन को कौन छोड़ सकता है? जो माया, चर-अचर अर्थात् जड़-चेतन जीवों को वश में करके रखती है, वह माया भी प्रभु के समक्ष भयभीत होकर कुछ कहती है।

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही।।
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई।।

भा०- उस माया को भी जो प्रभु भौंहों के संकेत से नचाते रहते हैं, भला बताओ ऐसे प्रभु को छोड़कर किसे भजना चाहिए? मन, कर्म और वचन से चतुरता छोड़कर भजन करने से रघुकुल के राजा श्रीराम कृपा करेंगे ही।

एहि बिधि शिशुबिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन सुख दीन्हा।।
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै।।

भा०- इस प्रकार, प्रभु ने शिशुलीला की और सम्पूर्ण नगरवासियों को सुख दिया। माता कौसल्या कभी गोद में लेकर हलरातीं अर्थात् श्रीराघव को उछालती हैं और कभी पालने पर पौढ़ाकर झुलाती हैं।

दो०- प्रेम मगन कौसल्या, निशि दिन जात न जान।
सुत सनेह बश माता, बालचरित कर गान।।२००।।

भा०-प्रेम में मग्न माता कौसल्या जी रात और दिन जाते हुए नहीं जान पाती हैं। पुत्र के प्रेम के वश में होकर माता प्रभु के बालचरित्र का गान किया करती हैं।

एक बार जननी अन्हवाए। करि शृंगार पलना पौढ़ाए।।
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना।।

भा०-एक बार माता कौसल्या ने प्रभु को नहलाया और श्रीरामलला का शृंगार करके उन्हें पालने पर पौढ़ा दिया। अपने कुल के इष्टदेव भगवान् रंगनाथ की पूजा करने के लिए माता कौसल्या ने पकवान बनाया।

करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा।।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई।।

भा०- पूजा करके माता कौसल्या ने रंगनाथ जी को नैवेद्य अर्पित किया और पट बन्द करके, जहाँ पकवान बनाया गया था। वहाँ चली गयीं। वहाँ से लौटकर माता मंदिर में आईं तो वहाँ जाकर पुत्र श्रीरामलला को ही भोजन करते हुए देखा।

गइ जननी शिशु पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता।।
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई।।
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिशेषा।।
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।।

भा०- भयभीत होकर माता बालक के पास गयीं तो वहाँ पालने पर श्रीरामलला को सोते हुए देखा, फिर मंदिर में आकर उन्हीं अपने पुत्र रामलला को भोजन करते देखा। उनके हृदय में कम्पन हो गया, मन में धैर्य नहीं हो रहा था। यहाँ (मंदिर में) वहाँ (पालने पर) कौसल्या जी ने एक ही बालक श्रीराम को दो शरीरों में देखा। वह विचार करने लगीं कि, यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या कुछ और विशेष है। एक ही बालक दो स्थानों पर दो अलग–अलग क्रियाएँ करता हुआ कैसे दिख रहा है? माँ को व्याकुल देखकर प्रभु ने मधुर मुस्कान के साथ हँस दिया।

दो०- देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।।२०१।।

भा०- अपनी माता को प्रभु ने वह अपना अद्भुत और अखण्ड रूप दिखाया जिसके एक–एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लग रहे थे।

अगनित रबि शशि शिव चतुरानन। बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।।

भा०- कौसल्या जी ने प्रभु में अनेक सूर्य, अनेक चन्द्रमा, अनेक शङ्कर, अनेक विष्णु, अनेक ब्रह्मा, बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव आदि देखते हुए, वह भी देखा जो किसी ने सुना नहीं था।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी।।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।।

भा०- कौसल्या जी ने सब प्रकार से कठोर अत्यन्त भयभीत प्रभु के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हुई उस माया को भी देखा। उन्होंने प्रभु के शरीर में विराजमान उस जीवात्मतत्त्व को भी देखा, जिसे यह माया नचाती है और उस भक्ति को भी देखा जो जीव को माया के बन्धन से छुड़ाती है।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिर नावा।।
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि शिशुरूप खरारी।।

भा०- माता का शरीर पुलकित हो उठा, उनके मुख से वचन नहीं निकल रहे थे। कौसल्या जी ने नेत्र बन्द करके प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया, माता को आश्चर्य से युक्त देखकर खर के शत्रु श्रीरघुनाथ फिर बाल रूप में हो गये।

अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना।।
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई।।

भा०- माता से स्तुति की नहीं जा रही थी, उन्होंने अपने मन में भय माना अर्थात् वे डर गयीं। कौसल्या जी विचार करने लगीं, अरे! जगत् के पिता प्रभु श्रीराम को मैंने पुत्र करके जाना। श्रीहरि ने माँ को बहुत प्रकार से समझाया और बोले, हे माँ! सुनो, यह प्रसंग कहीं भी मत कहना।

दो०- बार बार कौसल्या, बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि।।२०२।।

भा०-कौसल्या जी बारम्बार हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि, हे प्रभो! अब आपकी यह माया मुझे कभी नहीं व्यापे अर्थात् कभी भी मुझको नहीं प्रभावित करे।

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन कहँ दीन्हा।।
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई।।

भा०- श्रीहरि ने बहुत प्रकार के बालचरित्र किये और अपने दासों को भी अत्यन्त आनन्द दिया। कुछ समय बीतने पर परिजनों को सुख देनेवाले सभी भाई श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न बड़े हो गये, अर्थात् तीन वर्ष के हो गये।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन पुनि दछिना बहु पाई।।
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा।।

भा०- गुरुदेव ने तब जाकर चूड़ाकर्म की विधि सम्पन्न की अर्थात् वहाँ नाई को मुण्डन नहीं करना पड़ा। प्रभु के संकल्पमात्र से घुँघराले केश अपने आप अदृश्य हो गये और सुन्दर शिखा की विधि सम्पन्न हुई। फिर ब्राह्मणों ने बहुत सी दक्षिणा पायी। चारों सुकुमार राजकुमार अत्यन्त सुन्दर अपारचरित्र करते महाराज के आँगन में विचरते थे।

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।।

भा०– जो मन, कर्म और वाणी के भी परे हैं, वही प्रभु श्रीराम तीनों छोटे भाइयों के साथ महाराज दशरथ जी के आँगन में विचरण कर रहे हैं।

भोजन करत बुलावत राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा।।
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई।।
निगम नेति शिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा।।
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए।।

भा०– भोजन करते समय महाराज दशरथ जी, श्रीरामलला को बुलाते हैं, परन्तु प्रभु बाल–समाज को छोड़कर नहीं आते। कौसल्या जी जब राघव जी को बुलाने जाती हैं, तब वे ठुमक–ठुमक कर अर्थात् रुक–रुक कर फिर भाग चलते हैं। जिन्हें वेदों ने 'नेति–नेति' कहा और शिव जी जिनका अन्त नहीं पाये, उन्हीं श्रीराम को हठपूर्वक पकड़ने के लिए माता कौसल्या जी दौड़ पड़ीं। स्वयं धूल से सने हुए और माता को भी धूल से भर कर श्रीरामलला, दशरथ जी के पास आ गये। महाराज ने ठहाके से हँसकर प्रभु को गोद में बिठा लिया।

दो०- भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ।।२०३।।

भा०– भोजन करते समय चंचल चित्तवाले रामलला जी अवसर पाकर अपने मुख में दही–भात लगाये हुए किलकारी करते हुए इधर–उधर को भाग चले, जिससे मुख से गिरे हुए दही–भात को काकभुशुण्डि जी प्राप्त कर सकें।

बालचरित अति सरल सुहाए। शारद शेष शंभु श्रुति गाए।।
जिन कर मन इन सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता।।

भा०– अत्यन्त सुन्दर और सरल प्रभु के बालचरित्र सरस्वती, शेष, शिव जी तथा वेदों ने भी गाया। जिनका मन दशरथ जी के इन चारों पुत्रों पर नहीं अनुरक्त हुआ उनको विधाता ने ठग लिया और उन्हीं को अगले जन्म में विधाता ने जनवंचित किया अर्थात् निःसंतान कर दिया।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।।
गुरुगृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई।।

भा०– जब सभी भ्राता कुमार अर्थात् पाँच वर्ष की अवस्था पूर्ण कर चुके, तब गुरु वसिष्ठ, पिता दशरथ, माता कौसल्या, माता कैकेयी, माता सुमित्रा जी ने उन्हें जनेऊ दिया अर्थात् चारों भाइयों का उपनयन संस्कार हुआ। रघुराई अर्थात् रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम तीनों भाइयों के साथ गुरुदेव वसिष्ठ जी के घर पढ़ने गये। थोड़े ही समय में सभी विद्याएँ उनके पास आ गईं।

विशेष– 'बलकामस्तु क्षत्रियं षष्ठे वर्षे' अर्थात् ब्रह्मवर्चस्वी बनाने के लिए ब्राह्मणपुत्र का जनेऊ पाँचवें वर्ष में करना चाहिए और बलवान बनाने के लिए क्षत्रियपुत्र का जनेऊ छठे वर्ष में करना चाहिए। इसी नियम के अनुसार कुमार अर्थात् पाँच वर्ष के होने पर ही श्रीराम का यज्ञोपवीत छठें वर्ष हुआ।

जाकी सहज श्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।
बिद्या बिनय निपुन गुन शीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला।।

भा०– चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्वास हैं, वे प्रभु पढ़ रहे हैं, यह उनका बहुत बड़ा कौतुक है अर्थात् यही अपूर्व बाललीला है। विद्या और विनय में निपुण दिव्यगुणों और स्वभाव से युक्त श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न खेल में भी सम्पूर्ण राजलीलाओं को ही खेलते हैं, अर्थात् खेल में भी राम जी को राजा और भरत जी को युवराज बनाकर, राजा राम की लीला का अभिनय करते हैं।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा।।
जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।।

भा०– प्रभु के करतल अर्थात् हथेली में बाण और धनुष अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं। भगवान् का रूप देखकर चर और अचर सभी मोहित हो जाते हैं। जिन गलियों में सभी चारों भ्राता विहार करते हैं, वहाँ के सभी पुरुष और स्त्रियाँ उनके दर्शन के लिए इकट्ठे हो जाते हैं।

दो०– कोसलपुर बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत, सब कहँ राम कृपाल।।२०४।।

भा०– अयोध्यापुरवासी नर, नारी, बूढ़े और बालक सभी को कृपालु श्रीराम प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते हैं।

चौ०– बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी।।

भा०– भगवान् श्रीराम साथ में तीनों भाइयों और मित्रों को बुला लेते हैं। प्रतिदिन वन में मृगया खेलते हैं अर्थात् मृगों का आखेट करते हैं। मन में पवित्र जानकर अथवा, पवित्र करने के लिए ही मृगों को मारते हैं और प्रतिदिन महाराज दशरथ जी को ले जाकर दिखाते हैं।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।।
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता आग्या अनुसरहीं।।

भा०– जो मृग श्रीराम के बाणों से मारे गये हैं, वे शरीर छोड़कर सुरलोक अर्थात् दिव्य साकेतलोक को पधार गये। श्रीराघव छोटे भाइयों एवं मित्रों के साथ भोजन करते हैं और माता–पिता की आज्ञा का पालन करते हैं।

जेहिं बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहँहिं अनुजन समुझाई।।

भा०– जिस प्रकार श्रीअवधपुर के लोग सुखी हो जाते हैं कृपा के सागर भगवान् श्रीराम वही संयोग अर्थात् वही परिस्थिति उपस्थित करते हैं। प्रभु मन लगाकर गुरुदेव से वेद–पुराण सुनते हैं और स्वयं भरत आदि छोटे भाइयों को समझाकर कहते हैं, अर्थात् शास्त्रीय परम्परा के अनुसार श्रीराम छोटे भाइयों का पाठ लगवाते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।

भा०– श्रीरघुनाथ प्रातःकाल अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में उठकर माता–पिता एवं गुरुदेव को मस्तक नवाकर प्रणाम करते हैं। पिताश्री से आज्ञा माँगकर पुर के सभी राजकाज करते हैं। उनका यह चरित्र देखकर महाराज मन में अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

दो०- ब्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप।।२०५।।

भा०- जो प्रभु श्रीराम, सर्वव्यापक, अव्यक्त कलाओंवाले, सांसारिक चेष्टाओं से रहित, अजन्मा, गुणातीत तथा प्राकृत नाम और प्राकृत रूपों से रहित हैं, वे ही भगवान् श्रीराम भक्तों के लिए नाना प्रकार के बालचरित्र कर रहें हैं।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई।।
बिश्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी।।

भा०- शिव जी पार्वती जी को, काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी को, याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को, एवं तुलसीदास जी सन्तसमाज को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, मैंने (शिव, भुशुण्डि, याज्ञवल्क्य और तुलसीदास) यह सब चरित्र गा कर कहा। आप (पार्वती जी, गरुड़ जी भरद्वाज जी और सन्तजन) अब अगली कथा मन लगाकर सुनिये। ज्ञानी महर्षि विश्वामित्र जी वन में शुभ आश्रम अर्थात् भगवान् वामन द्वारा सेवित होने से सिद्धाश्रम को शुभ अर्थात् कल्याणमय जानकर वहीं निवास करते थे।

तहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं।।
देखत जग्य निशाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं।।

भा०- मुनि विश्वामित्र जी वहाँ (सिद्धाश्रम) में जप, यज्ञ और योगाभ्यास करते थे तथा मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ को देखते ही राक्षस लोग दौड़ पड़ते थे। वे बहुत उपद्रव अर्थात् उत्पात करते थे। जिससे विश्वामित्र जी सहित सभी मुनिजन बहुत दु:खी हो जाते थे।

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निशिचर पापी।।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।।

भा०- राजा गाधि के पुत्र ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी के मन में चिन्ता व्याप्त हो गयी। वे सोचने लगे कि, पृथ्वी का भार हरण करनेवाले, श्रीहरि के बिना पापी राक्षस नहीं मर सकते। तब मुनियों में श्रेष्ठ विश्वामित्र जी ने मन में विचार किया कि, पृथ्वी का भार हरनेवाले प्रभु श्रीराम श्रीअवध में अवतार ले चुके हैं।

एहि मिस देखौं प्रभु पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई।।
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना।।

भा०- इसी बहाने श्रीअवध में जाकर मैं प्रभु श्रीराम के चरणों के दर्शन करूँ और प्रार्थना करके दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को अपने आश्रम में ले आऊँ। जो ज्ञान, वैराग्य तथा सभी सद्‌गुणों के अयन अर्थात् निवास स्थान हैं, उन्हीं प्रभु श्रीराम को मैं भर आँख निहारूँगा।

दो०- बहुबिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरजू सलिल, गए भूप दरबार।।२०६।।

भा०- बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए विश्वामित्र जी को मनोरथ अर्थात् मन के रथ से श्रीअवध जाते विलम्ब न लगा। वे श्रीसरयू जल में स्नान करके राजद्वार पर गये।

विशेष- यहाँ मनोरथ शब्द में श्लेष अलंकार है, इसका प्रथम अर्थ है 'सुन्दर कल्पना' और दूसरा अर्थ है 'मन रूप रथ'।

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा।।
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेनि आनी।।

भा०– जब महाराज दशरथ जी ने मुनि विश्वामित्र जी का आगमन सुना, तब वे ब्राह्मणसमाज को साथ लेकर विश्वामित्र जी से मिलने अर्थात् अगवानी करने गये। दण्डवत् करके मुनि विश्वामित्र जी को सम्मानित करके महाराज ने उन्हें अपने आसन पर ले जाकर बैठा दिया।

चरन पखारि कीन्ह अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा।।
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने विश्वामित्र जी का चरण–प्रक्षालन करके, उनकी अत्यन्त पूजा की अर्थात् सोडषोपचार तथा महाराजोपचार पूजा की और बोले, 'आज मेरे समान कोई दूसरा धन्य नहीं है।' चक्रवर्ती जी ने महर्षि को विविध प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोश्य भोजन कराया और श्रेष्ठमुनि ने हृदय में अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया तथा मन में विचार करने लगे कि, अब तो सारी प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। थोड़ी ही देर में प्रभु श्रीराम के चरणों के दर्शन हो जायेंगे।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी।।
भए मगन देखत मुख शोभा। जनु चकोर पूरन शशि लोभा।।

भा०– फिर श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नामक चारों पुत्रों को महाराज ने विश्वामित्र जी के चरणों में डाल दिया। श्रीराम को देखकर विश्वामित्र जी अपनी देह भूल गये। वे प्रभु के मुख की शोभा को देखकर ऐसे मग्न हुए जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा पर चकोर लुब्ध हो जाता है।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेउ काऊ।।
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा।।

भा०– तब महाराज दशरथ जी मन में प्रसन्न होकर यह वचन बोले, हे मुनि! आपने ऐसी कृपा पहले कभी नहीं की। आप का आगमन किस कारण से हुआ है? आप कहें, मैं उसे करने में विलम्ब नहीं लगाऊँगा।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचर बध मैं होब सनाथा।।

भा०– तब विश्वामित्र जी बोले–हे राजन्! असुरों के समूह मुझे सताते हैं। हे मनुष्यों के पालक महाराज! मैं आपसे प्राणिमात्र के रक्षक श्रीराम की याचना करने आया हूँ। आप छोटे भइया लक्ष्मण के साथ, रघुनाथ जी को मुझे दे दीजिये। उनके द्वारा राक्षसों का वध होगा और मैं सनाथ हो जाऊँगा।

दो०– देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस नृप तुम कहँ, इन कहँ अति कल्याण।।२०७।।

भा०– हे राजन्! मन में प्रसन्न होकर दोनों प्राणप्रिय राजकुमारों को मुझे दे दीजिये और अज्ञानजनित मोह छोड़ दीजिये। हे राजन्! आप के लिए धर्म और सुयश होगा और इनका अत्यन्त कल्याण होगा। अथवा, अद्वितीय विवाह हो जायेगा (तमिल भाषा में विवाह को भी कल्याण कहते हैं।)

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुम्हिलानी।।
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।।

भा०- विश्वामित्र जी की अत्यन्त अप्रिय वाणी सुनकर महाराज दशरथ जी के हृदय में कम्पन उत्पन्न हो गया और उनके मुख की शोभा कुम्हला गयी। वे बोले, हे महर्षि! हम ने चौथेपन में चार पुत्र पाये, आपने विचार कर वचन नहीं कहा।

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा। सर्बस देउँ आजु सहरोषा।।
देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं।।

भा०- महाराज ने कहा, हे महर्षि! आप श्रीराम के विकल्प में, पृथ्वी, गौ, धन, कोष, सब कुछ सहर्ष माँगिये, मैं प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ दे सकता हूँ। हे मुनीश्वर! जीवात्मा को देह और प्राण से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं होता, मैं अपने शरीर और प्राण भी क्षण में दे सकता हूँ।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं।।
कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा।।

भा०- हे स्वामी! सभी पुत्र मुझे प्राण के समान प्रिय हैं, परन्तु श्रीराम को मुझसे देते नहीं बनता है। अथवा, राम मुझसे देते नहीं बनते। भला कहाँ अत्यन्त भयंकर और कठोर राक्षस और कहाँ परम किशोर अर्थात् बारहवें वर्ष में प्रवेश किये हुए मेरे राम, लक्ष्मण दोनों पुत्र। बहुत असंगति है राक्षसों और मेरे पुत्रों के बीच।

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी।।
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नाश कहँ पावा।।

भा०- प्रेम–रस में भींगी हुई महाराज दशरथ जी की वाणी सुनकर, ज्ञानीमुनि विश्वामित्र जी ने अपने हृदय में बहुत हर्ष माना अर्थात् बहुत प्रसन्न हुए। तब वसिष्ठ जी ने चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी को बहुत प्रकार से समझाया और महाराज दशरथ जी सन्देह नाश को प्राप्त कर गये अर्थात् महाराज का संदेह दूर हो गया और श्रीराम में उनकी भगवत्‌बुद्धि हो गयी।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए।।
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।

भा०- महाराज ने अत्यन्त आदर से श्रीराम–लक्ष्मण दोनों पुत्रों को बुलाया, उन्हें हृदय से लगाकर बहुत प्रकार से शिक्षा दी और विश्वामित्र जी से बोले, हे नाथ! दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं और आप मेरे पिता हैं, दूसरा कोई नहीं। फलतः जैसे पिता अपने पुत्र के प्राणों की रक्षा करता है, उसी प्रकार आप मेरे प्राण समान दोनों पुत्रों की रक्षा कीजियेगा।

दो०- सौंपे भूप रिषिहिं सुत, बहुबिधि देइ अशीश ।
जननी भवन गए प्रभु, चले नाइ पद शीश।।२०८(क)।।

भा०-बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर महाराज दशरथ जी ने दोनों पुत्र (श्रीराम–लक्ष्मण) को विश्वामित्र जी को सौंप दिये। प्रभु श्रीराम, माता कौसल्या जी के भवन में गये और उनके चरणों में मस्तक नवाकर चल पड़े।

सो०- पुरुषसिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल बिश्व कारन करन।।२०८(ख)।।

भा०- पुरुषों में सिंह के समान पराक्रमी, कृपा के सागर, धीर बुद्धिवाले, सम्पूर्ण संसार के कारणरूप, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के भी कारण अर्थात् परमकारण, दोनों वीर श्रीराम एवं लक्ष्मण जी मुनि विश्वामित्र जी का भयहरण करने के लिए प्रसन्न होकर विश्वामित्र जी के साथ चल पड़े।

अरुन नयन उर बाहु बिशाला। नील जलज तनु श्याम तमाला।।
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा।।

भा०- भगवान् श्रीराम के नेत्र लाल एवं हृदय तथा भुजाएँ विशाल हैं। उनका शरीर नीले कमल और तमाल के समान श्यामवर्ण है। वे कटि–तट पर पीताम्बर और तरकस कस कर बाँधे हुए हैं। उनके दोनों हाथों में सुन्दर धनुष और बाण हैं।

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। बिश्वामित्र महानिधि पाई।।
प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना। मोहि नित पिता तजेउ भगवाना।।

भा०- श्यामल और गोरे सुन्दर दोनों भाइयों को विश्वामित्र जी ने महानिधि नील और पद्म के रूप में प्राप्त कर लिया । विश्वामित्र जी मन में विचार करने लगे, मैं जान गया प्रभु श्रीराम ब्रह्मण्यदेव हैं अर्थात् वे हम ब्राह्मणों को देवता के समान मानते हैं, इसलिए तो भगवान् श्रीराम ने मेरे लिए अपने परमस्नेही पिताश्री को भी छोड़ दिया।

चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।

भा०- मार्ग में जाते हुए, मुनि विश्वामित्र जी ने प्रभु को ताटका राक्षसी को दिखा दिया। श्रीराम के समक्ष अपने विषय में विश्वामित्र द्वारा कहे जाते हुए वचनों को सुनकर, ताटका क्रोध करके दौड़ी और उसने श्रीराम–लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया। श्रीहरि ने एक ही बाण में ताटका के प्राणों का हरण कर लिया और उसे दीन अर्थात् सब साधनों से हीन असहाय राक्षसी जानकर प्रभु ने अपने परमपद परमधाम साकेत दिया। अथवा, अपने पद अर्थात् चरणों में ताटका को निवास दिया। सब के देखते–देखते ताटका की जीवनज्योति भगवान् श्रीराम के चरणों में विलीन हो गयी।

तब ऋषि निज नाथहिं जिय चीन्ही। बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्ही।।
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा।।

भा०- तब मन्त्रद्रष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी ने हृदय में अपने नाथ को पहचान लिया अर्थात् श्रीराम को अपना, इष्टदेव, ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी श्रेष्ठ परब्रह्म परमात्मा के रूप में पहचान लिया और विद्याओं के निधि अर्थात् समस्त विद्याओं के महासागर श्रीराम को बला, अतिबला नामक दो विद्याएँ प्रदान की, जिनसे भूख–प्यास नहीं लगती एवं शरीर में अतुलनीय बल आ जाता है तथा तेज प्रकाशित हो जाता है।

विशेष- ताटका के वध से प्रभु ने विश्वामित्र जी की अविद्या समाप्त कर दी और विद्याएँ लेकर उन्हें विद्याभिमान से मुक्त कर दिया, जिससे वे अमृतरूप मोक्ष के अधिकारी हो गये और चरितार्थ हो गयी उपनिषद्। **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।**

दो०- आयुध सर्ब समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन, दीन्ह भगत हित जानि।।२०९।।

भा०- सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों को प्रभु के करमल में समर्पित करके श्रीराम–लक्ष्मण को अपने आश्रम (सिद्धाश्रम) में ले आकर विश्वामित्र जी ने भक्तों का हितकारी जानकर श्रीराघवेन्द्र सरकार को कंद, मूल, फल ही भोजन के रूप में दिया और प्रभु ने उसे स्वीकार किया।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम जाई।।
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी।।

भा०- रात्रि बीतने के पश्चात् संध्यादि नित्यकर्मों के अनन्तर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने मुनि विश्वामित्रजी से कहा, आप निर्भय होकर यज्ञशाला में जाकर यज्ञ प्रारम्भ कीजिये। मुनियों के समूह होम अर्थात् आहुति–प्रधान यज्ञ करने लगे। स्वयं प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण जी के साथ यज्ञ की रक्षा छः दिनपर्यन्त करते रहे। **अनिद्रं षडहोंरात्रं तपोवनमरक्षताम्।।** *(वाल्मिकी रामायण–१३०५)*

सुनि मारीच निशाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। शत जोजन गा सागर पारा।।

भा०- मुनियों का स्वाहाकार सुनकर मुनियों से द्रोह करने वाला क्रोधी राक्षस मारीच सहायकों को लेकर दौड़ा अर्थात् यज्ञस्थल पर धावा बोल दिया। भगवान् श्रीराम ने बिना फल के बाण से उसे अर्थात् मारीच को मारा और वह सौ योजन सागर के पार जा गिरा।

विशेष- जनश्रुति यह है कि, भगवान् श्रीराम ने पश्चिमी बिहार के बक्सर में स्थित सिद्धाश्रम से मारीच को फेंका और वह समुद्र पार अफ्रीका के टापू में गिरा, जिसे पहले मारीचशीष कहते थे, अब उसका अपभ्रंश मॉरीशस हो गया है।

पावक शर सुबाहु पुनि जारा। अनुज निशाचर कटक सँघारा।।
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी।।

भा०- फिर भगवान् श्रीराम ने आग्नेय बाण से सुबाहु नामक राक्षस को मारकर भस्म कर दिया। शेष राक्षस–सेना का छोटे भइया लक्ष्मण जी ने संहार किया। इस प्रकार युद्ध में देवविरोधी राक्षसों को मारकर श्रीराघव सरकार ने ब्राह्मणों को निर्भय किया। विश्वामित्र जी का यज्ञ सम्पन्न हो गया। देव और मुनियों के समूह श्रीराम–लक्ष्मणजी की स्तुति करने लगे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह बिप्रन पर दाया।।
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना।।

भा०- फिर रघुराज श्रीरामचन्द्र, ब्राह्मणों पर दया करते हुए कुछ दिनों तक वहीं अर्थात् सिद्धाश्रम में निवास किये। प्रभु की भक्ति प्राप्ति के लिए ब्राह्मणों ने पुराणों की बहुत सी कथायें भगवान् के सामने कही। यद्यपि प्रभु श्रीराम सब कुछ जानते हैं।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई।।
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा।।

भा०- जब प्रभु श्रीराम ने अवध जाने के लिए विश्वामित्र जी से आज्ञा माँगी तब कौशिक जी ने आदरपूर्वक समझाकर कहा, प्रभु श्रीमिथिला चलकर और भी एक चरित्र देखा जाये। अथवा, श्रीमिथिला में आप का एक और चरित्र देखा जाना है। मिथिला में धनुषयज्ञ का आयोजन सुनकर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम प्रसन्न होकर मुनि विश्वामित्र जी के साथ श्रीमिथिला के लिए चल दिये।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछा मुनिहिं शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिशेषी।।

भा०- श्रीरघुनाथ ने मिथिला के मार्ग में एक आश्रम देखा वहाँ पशु, पक्षी, मृग, मनुष्यादि बड़े जीव, कीड़े-मकोड़े आदि छोटे प्राणी भी नहीं थे। प्रभु श्रीराम ने उस आश्रम में नारी के आकार की एक पाषाण की शिला देखी और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी से पूछा। विश्वामित्र जी ने उसकी सम्पूर्ण विशेषकथा श्रीराघव से कह सुनायी।

दो०- गौतम नारी स्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहती, कृपा करहु रघुबीर।।२१०।।

भा०- कथा कहकर विश्वामित्र जी बोले, हे धीर! अर्थात् परमधैर्यवान रघुवीर अर्थात् त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर, पराक्रमवीर तथा धर्मवीर इन पाँचों के उपलक्षणस्वरूप रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम यह गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, गौतम जी के शाप के कारण पत्थर का शरीर धारण करके आपश्री के चरणकमल की परागस्वरूप धूलि चाह रही हैं। प्रभु इन पर कृपा कीजिये और इन्हें चरणकमल की धूलि प्रदान कर दीजिये।

छं०- परसत पद पावन शोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिशय बड़भागी चरनन लागी जुगल नयन जलधार बही।।

भा०- शोक को नष्ट करनेवाले पवित्र प्रभु श्रीराम जी के चरण का स्पर्श होते ही तापसमूह को सहन करनेवाली अहल्या तपस्या के हस्ताक्षर के समान सत्यतः तपस्या की राशि जैसे प्रकट हो गयीं। उनका पाषाण शिला का शरीर अदृश्य हो गया। अपने स्वरूप में आई हुयी ऋषिपत्नी अहल्या, भक्तों के सुखदाता रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम को देखते ही उनके सम्मुख होकर दोनों हाथ जोड़कर खड़ी रहीं। अहल्या प्रभु के प्रति उत्पन्न हुए अत्यन्त प्रेम के कारण अधीर हो गयीं अर्थात् धैर्य खो बैठीं उनका शरीर रोमांचित हो गया। उनके मुख से कोई वाक्य कहे नहीं जा रहे थे। अतिशय बड़भागिनीं अहल्या जी प्रभु के चरणों से लिपट गईं। उनके दोनों नेत्रों से जल अर्थात् अश्रु की धारा बह चली। अथवा, युगल अर्थात् अहल्या एवं गौतम के नेत्रों से अश्रु की धारा बह चली। अथवा अपने चरणों में लिपटी हुयी देखकर युगल श्रीराम एवं लक्ष्मण जी के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई।।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि शरनहिं आई।।

भा०- फिर अहल्या जी ने मन में धैर्य धारण किया। उन्होंने सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम को पहचान लिया और रघुपति श्रीराघवेन्द्र सरकार की कृपा से अहल्या जी ने प्रभु की भक्ति प्राप्त कर ली। उन्होंने अत्यन्त निर्मल वाणी में प्रभु की स्तुति करना प्रारम्भ किया, हे वेदान्त-ज्ञान द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य, रघुराज श्रीराम! आपकी जय-हो। प्रभु मैं अपवित्र नारी हूँ और आप जगत् को पवित्र करनेवाले, रावण के शत्रु और भक्तों के सुखदायक, शरणागतों को संसार के भ्रम से छुड़ानेवाले लालकमल के समान विशिष्ट नेत्रोंवाले हैं। हे भगवन्! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, मैं आपके शरण में आई हूँ।

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ शङ्कर जाना।।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद पदुम परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।

भा०– हे नाथ! मुनि गौतम जी ने जो मुझे शाप दिया वह बहुत अच्छा किया। उसे तो मैं आप का परम अनुग्रह मानती हूँ। इसी कारण, मैं संसार के भव को नष्ट करने वाले आप श्रीहरि के भर नेत्र दर्शन कर रही हूँ। शिव जी ने भी यही लाभ जाना है अर्थात् जैसे नारायण की इच्छा से शिव जी ने विषपान करके द्वितीया के चन्द्र को प्राप्त कर लिया था, उसी प्रकार मैंने भी अपने पतिपरमेश्वर के शापरूप विष पीकर उस चन्द्रमा से भी करोड़ों गुणा सुन्दर निष्कलंक श्रीरामचन्द्र को प्राप्त कर लिया। हे प्रभु! मेरी एक विनती है, मैं बुद्धि की बहुत भोली हूँ, आपसे दूसरा वरदान नहीं माँग रही हूँ, मेरा मनरूप भ्रमर आप के चरणकमल के पराग के प्रेमरूप मकरन्द का पान करता रहे।

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी।
सोई पद पंकज जेहिं पूजत अज मम सिर धरेउ कृपालु हरि।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बर पावा गइ पतिलोक अनंद भरी।।

भा०– जिन श्रीचरणों से प्रकट हुई गंगा जी परमपवित्र हो गयीं और उन्हें शिव जी ने अपने सिर पर धारण किया। ब्रह्मा जी भी जिनकी पूजा करते हैं, वही श्रीचरणकमल कृपालु हरि अर्थात् पापहरण करनेवाले आप श्रीराघव ने मेरे सिर पर रखा। इस प्रकार, श्रीराम के चरणों में बार–बार दण्डवत् प्रणाम करके गौतम जी की पत्नी अहल्या गौतम जी के साथ चलीं। जो उन्हें मन में अत्यन्त भाया, वही वरदान और उसी प्रकार के नवीन अवस्था से सम्पन्न गौतमरूप दूल्हा को पाया। आनन्द से पूर्ण होकर अहल्या अपने पति के लोक चली गईं।

दो०– अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित कृपाल।
तुलसिदास शठ ताहि भजु, छाड़ि कपट जंजाल।।२११।।

भा०–इस प्रकार सर्वसमर्थ, दीनों के बन्धु, सभी पापों का हरण करनेवाले, अकारण कृपा करनेवाले, भगवान् श्रीराम हैं। तुलसीदास कहते हैं कि, हे शठ मन! सभी कपटों और जंजालों को छोड़ उन्हीं भगवान् श्रीराघव सरकार का भजन कर।

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा।।
अनुज सहित प्रभु कीन्ह प्रनामा। बहु प्रकार सुख पायउ रामा।।

भा०– अहल्या उद्धार के पश्चात् भगवान् श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण वहाँ चले, जहाँ जगत् को पवित्र करनेवाली गंगा जी थीं। प्रभु ने लक्ष्मण जी के सहित गंगा जी को प्रणाम किया और सबको रमानेवाले भगवान् श्रीराम ने बहुत प्रकार से सुख पाया।

गाधिसुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।
तब प्रभु रिषिन समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन पाए।।

भा०– गाधि के पुत्र विश्वामित्र जी ने श्रीराम–लक्ष्मण को वह कथा सुनाई जिस प्रकार गंगा जी पृथ्वी पर आईं थीं। तब प्रभु श्रीराम ने ऋषियों के साथ गंगा जी में स्नान किया और गंगातटवासी तीर्थपुरोहित ब्राह्मणों ने अनेक दान पाये।

हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर नियराया।।
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिशेषी।।

भा०– मुनि–समूह की सहायता करनेवाले प्रभु श्रीराम प्रसन्न होकर चले। विदेहराज का नगर शीघ्र ही निकट आ गया। अथवा, प्रभु श्रीराम ही जनकपुर के निकट आ गये। जब छोटे भाई लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने नगर की सुन्दरता देखी तब वे बहुत प्रसन्न हुए।

बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना।।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा।।
बरन बरन बिकसे जल जाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता।।

भा०– विदेहनगर में अनेक बावलियाँ, अनेक कुँए, अनेक सरोवर तथा कमला, विमला आदि सुन्दर नदियाँ हैं। उनका जल अमृत के समान तथा सीढ़ियाँ मणियों से जटित हैं। मकरन्दरस से मतवाले भ्रमर मधुर गुंजार कर रहे हैं। अनेक प्रकार के पक्षी कोमल कलरव करते हुए बोल रहे हैं। अनेक प्रकार के (श्वेत, नील, पीत और अरुण) कमल खिले हुए हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनों प्रकार का वायु सदैव (सभी ऋतुओं में) सभी को सुख देता है।

दो०– सुमन बाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास।।२१२।।

भा०– अनेक पक्षियों के निवासस्थानरूप पुष्पवाटिका, बगीचे और वन फूलते–फलते और सुन्दर पल्लवों से युक्त होते नगर के चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं।

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई।।
चारु बजार बिचित्र अँबारी। मनिमय जनु बिधि स्वकर सँवारी।।

भा०–नगर की सुन्दरता का वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है वहीं लुभा जाता है। मिथिला के बाजार बड़े सुन्दर हैं और वहाँ के अम्बारे अर्थात् छज्जे मणियों से युक्त हैं, मानो विधाता ने अपने हाथ से उन्हें बनाया है।

धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना।।
चौहट सुन्दर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई।।

भा०– सभी बनिकजन कुबेर के समान धनाढ्य हैं और वे विक्रयकेन्द्रों में अनेक वस्तुएँ लेकर बैठे हैं। वहाँ के चौराहे बहुत ही सुन्दर हैं और मिथिला की गलियाँ सदैव अर्गजा आदि सुगंधित द्रवों से सिंची रहती हैं।

मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे।।
पुर नर नारि सुभग शुचि संता। धरमशील ग्यानी गुनवंता।।

भा०– सभी नगरवासियों के भवन, देवमन्दिर के समान मंगलमय हैं, मानो वे कामदेवरूप शिल्पी के द्वारा चित्रित किये गये हैं। जनकपुर के सभी नर–नारी सुन्दर, पवित्र, सन्त स्वभाव के, धार्मिक, ज्ञानी (ब्रह्मज्ञानी) और सद्‌गुणों से सम्पन्न हैं।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू।।
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन शोभा जनु रोकी।।

भा०– जहाँ महाराज जनक का राजभवन है, वह बहुत ही सुन्दर है। देवता भी जनकराज के विलास को देखकर आश्चर्य से थकित रह जाते हैं। नगर के परकोटे को देखकर चित्त चकित हो जाता है, मानो उसने सम्पूर्ण लोकों की शोभा को अपने पास ही रोक रखा है।

दो०- धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन, शोभा किमि कहि जाति।।२१३।।

भा०- धवल अर्थात् पत्थरों से बने हुए और चूने से लिप्त श्वेत भवनों में लगे हुए मणि तथा स्वर्ण से सुशोभित और सुन्दर प्रकार से बनाये हुए अनेक प्रकार के वस्त्रों के परदे हैं। सीता जी के निवास सुन्दर सदन की शोभा कैसे कही जा सकती है? (सीता जी के भवन का नाम सुन्दर सदन था।)

सुभग द्वार सब कुलिश कपाटा। भीर भूप नट मागध भाटा।।
बनी बिशाल बाजि गज शाला। हय गज रथ संकुल सब काला।।

भा०- सभी द्वार सुन्दर हैं, जिनमें हीरे की किवाड़ें लगी हैं। वहाँ सामन्त, राजाओं, नटों, मागधों अर्थात् वंश प्रशंसकों और भाटों की भीड़ लगी रहती है। विशाल अश्वशाला और गजशालाएँ बनी हुई हैं, जो सभी कालों में घोड़ों, हाथियों, रथों से भरपूर रहा करती हैं।

शूर सचिव सैनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे।।
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा।।

भा०- वहाँ बहुत से योद्धा, भट, मन्त्रीगण और सेनापति हैं। राजभवन के समान ही सभी के भवन हैं। मिथिलानगर के बाहर तालाबों और नदियों के समीप जहाँ–तहाँ सीता जी के स्वयंवर के निमित्त आये हुए, बहुत से राजागण उतरे हुए हैं।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई।।
कौशिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना।।

भा०- सभी आवासीय सुविधाओं से युक्त एवं सब प्रकार से सुहावनी एक अनूप अर्थात् दोनों ओर जलाशयों से युक्त अँवराई (आम के बगीचे) देखकर विश्वामित्र जी ने कहा, हे चतुर रघुवीर! (रघुकुल में वीर श्रीराम) मेरे मन का तो ऐसा मानना है कि, यहाँ रुक लिया जाये।

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिबृंद समेता।।
बिश्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए।।

भा०- नाथ! अच्छी बात है, ऐसा कहकर कृपा के आश्रय स्थान भगवान् श्रीराम मुनिवृन्दों के सहित वहाँ उतरे अर्थात् रुक गये। महामुनि विश्वामित्र जी मिथिलानगर में पधारे हैं, ऐसा समाचार मिथिला के शासक शिरध्वज जनक जी ने पाया।

दो०- संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर बर गुरु ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहिं, मुदित राउ एहि भाँति।।२१४।।

भा०- साथ में पवित्र मन्त्रीगण, अनेक योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरुजन और अपनी जाति के राजवंशियों को लेकर इस प्रकार प्रसन्न होकर राजा जनक जी मुनियों के राजा विश्वामित्र जी से मिलने अर्थात् अगवानी लेने के लिए चले।

कीन्ह प्रणाम धरनि धरि माथा। दीन्ह अशीष मुदित मुनिनाथा।।
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे।।

भा०- पृथ्वी पर मस्तक रखकर मिथिलाधिराज जनक जी ने विश्वामित्र जी को प्रणाम किया। प्रसन्न होकर मुनियों के स्वामी विश्वामित्र जी ने जनक जी को आशीर्वाद दिया। जनक जी ने विश्वामित्र जी के साथ पधारे

सभी ब्राह्मणवृन्दों को आदर सहित वन्दन किया। अपना बहुत बड़ा भाग्य जानकर राजा जनक जी आनन्दित हो गये।

कुशल प्रश्न कहि बारहिं बारा। बिश्वामित्र नृपहिं बैठारा।।
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई।।

भा०– बारम्बार जनक जी द्वारा पूछे हुए कुशल प्रश्नों का उत्तर देकर विश्वामित्र जी ने जनक जी को बिठा लिया। उसी अवसर पर दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण आ गये, जो जनक जी के आने के समय विश्वामित्र जी के पास नहीं थे, क्योंकि वे गुरुदेव की पूजा की व्यवस्था के लिए पुष्पवाटिका देखने चले गये थे।

श्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिश्वचित चोरा।।
उठे सकल जब रघुपति आए। बिश्वामित्र निकट बैठाए।।

भा०– वे दोनों भाई श्यामल और गौर वर्णवाले, कोमल अवस्थावाले किशोर, अर्थात् बारह वर्ष में भी लगभग साढ़े पाँच महीने कम थे। वे सब के नेत्रों को सुख देनेवाले और विश्व के चित्त को चुरानेवाले थे। जब रघुकुल के पालक भगवान् श्रीराम वहाँ आये, तब अगवानी लेने आये हुए सभी राजा, मन्त्री, योद्धा, ब्राह्मण, गुरु और जनक परिवार के अन्य क्षत्रियजन अपने आप ही उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्र जी ने श्रीराम–लक्ष्मण को अपने पास बिठा लिया।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता।।
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिशेषी।।

भा०– जनक जी के साथ आये हुए सभी लोग, दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को देखकर सुखी हो गये। सब के विमल नेत्रों में जल अर्थात् आँसू थे और सब के शरीर में रोमांच था। दोनों भाइयों की श्यामल–गौर और मनोहर मूर्ति देखकर विदेहराजा जनक जी विशेष विदेह हो गये, अर्थात् उनके शरीर की सुधि–बुधि जाती रही। उनका भौतिक देहज्ञान भी समाप्त हो गया तथा उनमें विशिष्ट देहज्ञान अर्थात् सेवक–सेव्यभाव का बोध आ गया।

दो०– प्रेम मगन मन जानि नृप, करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिर, गदगद गिरा गभीर।।२१५।।

भा०– अपने मन को प्रेम में मग्न जानकर, विवेक का अवलम्बन लेकर धैर्य–धारण करके, मुनि विश्वामित्र जी के चरणों में सिर नवाकर, राजा जनक जी गदगद् अर्थात् प्रेम के कारण स्वरभंग के साथ, गम्भीर अर्थों वाली वाणी बोले।

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा।।

भा०– हे नाथ! कहिये, ये सुन्दर दोनों बालक मुनिकुल के तिलक अर्थात् कोई मुनिकुमार हैं, या राजकुलों के पालन करनेवाले कोई चक्रवर्ती कुमार हैं। अथवा, जिस ब्रह्म को वेदों ने 'नेति–नेति' कहकर गाया है, क्या वही परब्रह्म, दो वेश धारण करके (राम–लक्ष्मण के रूप में अथवा सीताराम के रूप में) सगुण–साकार रूप में आ गया है?

सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद्र चकोरा।।
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ।।

भा०- जो मेरा मन स्वभाव से विरागरूप अर्थात् संसार के राग (लगाव) से रहित स्वरूप वाला है, वह इन्हें देखकर इनमें इस प्रकार स्थगित अर्थात् सभी संकल्पों को छोड़कर स्थिर हो रहा है, जैसे चन्द्रमा में चकोर रम जाता है। इसलिए, हे प्रभु! मैं सत्यभाव से पूछ रहा हूँ, आप कहिए, छिपाव मत कीजिये।

इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा।।

भा०- इनको देखते ही मेरा मन अत्यन्त अनुराग से युक्त हो गया है और वह हठात् ब्रह्मसुख को छोड़ रहा है अर्थात् इनमें मुझको ब्रह्मसुख की अपेक्षा अधिक आनन्द की अनुभूति हो रही है। इसका क्या कारण है? क्या ब्रह्म ने अवतार ले लिया है? क्या निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गये हैं? क्या यहाँ देह और देही में भेद नहीं है? क्या इन दोनों राजकुमारों का शरीर मायामय और असत्य नहीं है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका।।

भा०- विश्वामित्र जी ने हँसकर कहा, राजन्! तुमने बहुत अच्छा कहा। तुम्हारे वचन अर्थात् अनुमानगर्भित प्रश्न असत्य हो ही नहीं सकते। ये राजवंशी हैं। यही सगुण साकार ब्रह्म हैं। रामानन्द की अपेक्षा ब्रह्मानन्द त्याज्य है। यहाँ देह और देही में भेद नहीं है। ये माया सबलित ब्रह्म नहीं प्रत्युत् परब्रह्म हैं। ये हेयगुणों से दूर होकर निर्गुण होते हुए सभी कल्याणगुणों के आश्रय होने के कारण सगुण भी हैं।

ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी।।
रघुकुलमनि दशरथ के जाए। मम हित लागि नरेश पठाए।।

भा०- जहाँ तक इस त्रिलोक में प्राणी रहते हैं, ये अर्थात् प्रभु श्रीराम सब के प्रिय हैं। इसलिए सभी जीवात्माओं के भी प्रेमास्पद परमात्मा यही हैं। विश्वामित्र जी की वाणी सुनकर श्रीराम मन में मुस्कुरा रहे हैं। उनकी मुखमुद्रा गम्भीर है। विश्वामित्र जी ने कहा, ये रघुकुल के मणि हैं, अर्थात् श्रीराम अज के पुत्र महाराज दशरथ के ज्येष्ठ और श्रीलक्ष्मण महाराज दशरथ के तृतीय राजकुमार हैं। इनको महाराज ने मेरे हित के लिए यज्ञ के रक्षार्थ मेरे साथ भेजा है।

दो०- राम लखन दोउ बंधुबर, रूप शील बल धाम।
मख राखेउ सब साखि जग, जिते असुर संग्राम।।२१६।।

भा०- ये रूप, शील और बल के निवासस्थान श्रीराम और श्रीलक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भ्राता हैं। जो कि क्रमशः तुम्हारी सीता और उर्मिला नामक दो पुत्रियों के वर के रूप में भी प्रस्तुत हो सकते हैं। सारा संसार साक्षी है, इन्हीं दोनों भ्राताओं ने मेरे यज्ञ की रक्षा की है और युद्ध में मारीच, सुबाहु जैसे अजेय देवविरोधी राक्षसों को जीता है।

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ।।
सुन्दर श्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता।।
इन की प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि।।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।।

भा०- राजा जनक जी ने कहा, हे मुनिवर! आपके श्रीचरणों के दर्शन करके मैं अपने पुण्य के प्रभाव को कह नहीं सक रहा हूँ। श्यामल और गौर ये दोनों भ्राता श्रीराम और श्रीलक्ष्मण आनन्द को भी आनन्द देनेवाले हैं। इन दोनों भाइयों की पारस्परिक प्रीति बहुत ही पवित्र है, वह कही नहीं जा सकती। वह अत्यन्त सुहावनी और मन को भानेवाली है। जनक जी ने प्रसन्न होकर कहा, हे नाथ! सुनिये, श्रीराम–लक्ष्मण का परस्पर प्रेम तो ब्रह्म और जीव के समान स्वाभाविक है। मुझे लगता है कि, श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं और श्रीलक्ष्मण जीवाचार्य विराट् ब्रह्म हैं।

पुनि पुनि प्रभुहिं चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू।।
मुनिहिं प्रशंसि नाइ पद शीशा। चलेउ लिवाइ नगर अवनीशा।।

भा०– मनुष्यों के राजा जनक जी, प्रभु श्रीराम को बार–बार निहार रहे हैं। उनके अंग रोमांचित हो रहे हैं और हृदय में अत्यन्त उत्साह है। मुनि विश्वामित्र जी की प्रशंसा करके, उनके चरणों में मस्तक नवाकर पृथ्वी के स्वामी राजा जनक जी श्रीराम–लक्ष्मण और मुनियों के सहित विश्वामित्र जी को अपने नगर में लिवा ले चले।

सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लै दीन्ह भुआला।।
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई।।

भा०– जो सभी कालों में सुखद और सुन्दर सदन नाम से विख्यात था तथा जो सीता जी का निवासस्थान था, सीता जी से लेकर राजा जनक जी ने, विश्वामित्र जी को वही निवास दिया। क्योंकि वह किसी गृहस्थ का निवासस्थान नहीं होने के कारण ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और उनके सभी ब्रह्मचारी शिष्यों के लिए अनुकूल था। विश्वामित्र जी की पूजा और उनकी बहुत प्रकार से सेवा करके मुनि से जाने की आज्ञा लेकर जनक जी अपने भवन को चले गये।

दो०– ऋषय संग रघुबंशमनि, करि भोजन बिश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जाम।।२१७।।

भा०– ऋषि विश्वामित्र जी के साथ मध्याह्न का भोजन और विश्राम करके प्रभु श्रीराम भ्राता लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र जी के पास आकर बैठ गये। उस समय दिन एक प्रहर अर्थात् तीन घंटे शेष था।

लखन हृदय लालसा बिशेषी। जाइ जनकपुर आइय देखी।।
प्रभु भय बहुरि मुनिहिं सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं।।

भा०– लक्ष्मण जी के हृदय में यह विशेष लालसा है कि, जाकर जनकपुर देख आना चाहिए। उन्हें प्रभु श्रीराम का भय है, फिर विश्वामित्र जी से सकुचाते हैं। प्रकट कुछ नहीं कह रहें हैं, मन में मुस्कुरा रहे हैं।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी।।
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुशासन पाई।।

भा०– श्रीराम ने छोटे भैया लक्ष्मण जी के मन की अवस्था जान ली। उनके हृदय में भक्तवत्सलता हुलस पड़ी, अर्थात् आज उसे आश्रित दोष को समाप्त करने का अवसर मिलेगा, क्योंकि श्रीलक्ष्मण, श्रीराम के अतिरिक्त जनकपुर देखने की इच्छा कर रहें हैं। इस दोष का समापन भक्तवत्सलता का मुख्य कार्य होगा। इसलिए उसको प्रसन्नता हो रही है। परमविनम्र श्रीराम संकुचित होकर और थोड़ा सा मुस्कुराकर गुरुदेव की आज्ञा पाकर बोले–

नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सँकोच डर प्रगट न कहहीं।।
जौ राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं।।

भा०– हे नाथ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं। वे प्रभु के संकोच और डर के कारण प्रकट अर्थात् स्पष्टरूप से नहीं कह रहे हैं। यदि मैं आपश्री से आदेश पा जाऊँ तो लक्ष्मण को जनकपुर दिखाकर तुरन्त ले आऊँ।

सुनि मुनीश कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम राखहु नीती।।
धरम सेतु पालक तुम ताता। प्रेम बिबश सेवक सुखदाता।।

भा०– श्रीराम के वचन सुनकर मुनियों के राजा विश्वामित्र जी ने प्रेमपूर्वक कहा, हे श्रीराम! भला आप वेद की मर्यादा क्यों नहीं रखेंगे, क्योंकि हे तात्! आप धर्मसेतु के पालक, प्रेम के विवश तथा सेवकों को सुख देनेवाले हैं।

दो०- जाइ देखि आवहु नगर, सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुन्दर बदन देखाइ।।२१८।।

भा०- सुख के कोषस्वरूप दोनों भाई (श्रीराम-लक्ष्मण) जाकर नगर देख आओ। अपने सुन्दर मुख दिखाकर सभी मिथिलावासियों के नेत्रों को सुफल कर दो अर्थात् उन्हें नेत्रों का सुन्दर फल दे दो।

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुखदाता।।
बालकबृंद देखि अति शोभा। लगे संग लोचन मन लोभा।।

भा०- संसार के नेत्रों को सुख देनेवाले दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र जी के चरणकमलों की वन्दना करके जनकनगर देखने चल पड़े। नगर के बालकों के समूह ने श्रीराम, लक्ष्मण की अक्षयशोभा देखी। वे दोनों भाइयों के साथ लग गये। उनके मन और नेत्र प्रभु के रूप पर लुब्ध हो गये।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप शर सोहत हाथा।।
तनु अनुहरति सुचंदन खोरी। श्यामल गौर मनोहर जोरी।।

भा०- प्रभु के कटि-प्रदेश पर पीताम्बर, फेटा और तरकस बँधा है। उनके श्रीहस्त में सुन्दर धनुष और बाण शोभित हैं। श्याम और गौर दोनों भाई (श्रीराम-लक्ष्मण) की जोड़ी के श्याम-गौर विग्रहों का उन पर लगी हुई सुन्दर चन्दन की खोरी अनुसरण कर रही है अर्थात् प्रभु के शरीर पर लगी हुई चन्दन की खोरी श्याम दिखती है और लक्ष्मण जी के शरीर पर लगी हुई चन्दन की खोरी श्वेत।

केहरि कंधर बाहु बिशाला। उर अति रुचिर नागमनि माला।।
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन।।

भा०- दोनों भाइयों के स्कन्ध सिंह के समान हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं, उनके वक्ष पर नागमणि अर्थात् गजमुक्ता की माला बहुत सुन्दर लग रही है। उनके सुन्दर और लालकमल के समान नेत्र हैं। उनके मुखचन्द्र आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों तापों के नाशक हैं।

कानन कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहिं चोरि जनु लेहीं।।
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाँकी।।

भा०- उनके कानों में स्वर्ण के बने हुए कर्णफूल सुन्दरता प्रदान कर रहे हैं। ये देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते हैं। दोनों भाइयों की चितवन सुन्दर तथा भौहें श्रेष्ठ और टेढ़ी हैं। उनके उर्ध्वपुण्ड्र तिलक की रेखा ने मानो शोभा को ही चाँकी अर्थात् इकट्ठी करके रख लिया है। अथवा, प्रभु के ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक की रेखा मानो चन्द्रमा की शोभा है।

दो०- रुचिर चौतनीं सुभग सिर, मेचक कुंचित केश।
नख शिख सुन्दर बंधु दोउ, शोभा सकल सुदेश।।२१९।।

भा०- उनके सुन्दर सिर पर सुन्दर टोपी विराज रही है। केश काले और घुँघराले हैं। दोनों भाई चरण के नख से शिखापर्यन्त सुन्दर हैं, उनके सभी सुदेश अर्थात् सुन्दर अंगों पर दिव्यशोभा है।

देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुरवासिन पाए।।
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी।।
निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।।

भा०- दो राजकुमार नगर देखने आये हैं, यह समाचार जनकपुरवासियों ने प्राप्त किया। वे सब घरों और घर के कार्यों को छोड़कर वैसे ही दौड़े मानो निधि लूटने के लिए दरिद्रजन दौड़ रहे हों। स्वभाव से सुन्दर दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण को निहारकर नेत्रों का फल पाकर मिथिलानगर के सभी निवासी सुखी हो रहे हैं।

जुबती भवन झरोखनि लागी। निरखहिं राम रूप अनुरागी।।
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन कोटि काम छबि जीती।।

भा०- मिथिला की युवतियाँ अपने–अपने घरों के झरोखों अर्थात् खिड़कियों पर लगकर अनुराग से युक्त होकर श्रीराम जी का रूप निरख रही हैं और परस्पर प्रेमपूर्वक वचन कहती हैं, सखियों! इन्होंने तो करोड़ों कामदेवों की छवि को जीत लिया है।

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। शोभा असि कहुँ सुनियत नाहीं।।
बिष्णु चारि भुज बिध मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी।।
अपर देव अस कोउ न आही। यह छबि सखि पटतरिये जाही।।

भा०- देवता, मनुष्य, असुर अर्थात् दैत्य, नाग और मुनियों में ऐसी शोभा कहीं भी नहीं सुनी जाती है। विष्णु चार भुजावाले हैं अर्थात् स्वाभाविकता से अधिक हैं, ब्रह्मा के चार मुख हैं, जो स्वाभाविकता से तीन गुना अधिक है। त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी बड़ी ही भयंकर वेशवाले और पाँच मुखवाले हैं (शिव जी के पाँच मुखों के नाम अधोलिखित हैं– सद्योजात्, अघोर, वामदेव, तत्पुरुष तथा ईशान।)। यहाँ तो सब कुछ अस्वाभाविक है। हे सखी! विष्णु जी, ब्रह्मा जी और शिव जी को छोड़कर दूसरा कोई देवता इस प्रकार नहीं हैं, जिससे यह छवि उपमित की जा सके।

दो०- बय किशोर सुषमा सदन, श्याम गौर सुखधाम।
अंग अंग पर वारियहिं, कोटि कोटि शत काम।।२२०।।

भा०- ये दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण वय में किशोर अर्थात् प्रथम किशोरावस्था में साढ़े ग्यारह वर्ष के दिखते हैं। ये सुषमा अर्थात् परमशोभा के मंदिर हैं। साँवरे और गोरे सुख के निवासस्थान श्रीराम, लक्ष्मण के एक–एक अंग पर करोड़ों–अरबों कामदेवों को वार देना चाहिए।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी।।

भा०- अणिमा नाम की सिद्धि बोली, कहो सखी! ऐसा कौन शरीरधारी है, जो श्रीराम–लक्ष्मण का यह रूप देखकर न मोहित हो जाये?

कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।।
ए दोउ नृप दशरथ के ढोटा। बाल मरालनि के कल जोटा।।
मुनि कौशिक मख के रखवारे। जिन रन अजय निशाचर मारे।।

भा०- कोई सखी अर्थात् गरिमा नाम की सिद्धि प्रेमपूर्वक कोमल वाणी में बोली, हे चतुर सखी! जो मैंने सुनी है, वह सुनो, ये बाल राजहंसों के सुन्दर जोड़े स्वरूप दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण महाराज दशरथ के किशोर पुत्र हैं। ये विश्वामित्र जी के यज्ञ के रक्षक हैं, जिन्होंने युद्ध में अजेय राक्षसों को मारा है।

श्यामगात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन।।
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नाम राम धनु सायक पानी।।

भा०- जो श्यामल शरीर, सुन्दर कमल जैसे नेत्रोंवाले हैं, जिन्होनें मारीच और सुबाहु के मद को नष्ट किया है अर्थात् मारीच को सौ योजन समुद्र के पार फेंक दिया है तथा सुबाहु को आग्नेय बाण से भस्म कर दिया है। जिनके हाथ में धनुष और बाण है, वे रमणीय कुमार समस्त सुख की खानि तथा चक्रवर्ती दशरथ जी की बड़ी पटरानी कौसल्या जी के पुत्र हैं अर्थात् उन्हें कौसल्या जी ने गर्भ में धारण किया और उनका नाम श्रीराम है।

गौर किशोर बेष बर काछे। कर शर चाप राम के पाछे।।
लछिमन नाम राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता।।

भा०- जो गौर वर्ण के किशोर हैं, जिनका बड़ा सुन्दर वेश और जो दृढ़ता से फेटा बाँधे हैं, जिनके हाथ में धनुष और बाण है, जो श्रीराम जी के पीछे–पीछे चल रहे हैं, वह लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध और श्रीराम के प्रिय छोटे भाई हैं। हे सखी! सुनो, उनकी माता का नाम सुमित्रा है।

दो०- बिप्रकाज करि बंधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि।।२२१।।

भा०- ब्राह्मण विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षारूप कार्य करके मार्ग में मुनिपत्नी अहल्या का उद्धार करके दोनों भाई धनुषयज्ञ देखने को श्रीमिथिला में पधारे हैं। यह सुनकर सभी मिथिलानी महिलाएँ प्रसन्न हो गईं।

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोग्य जानकिहिं यह बर अहई।।
जौ सखि इनहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू।।

भा०- श्रीराम की छवि देखकर कोई एक अर्थात् महिमा नामक सिद्धि कहने लगी, हे सखी! ये अर्थात् साँवले राजकुमार, जानकी जी के योग्य हैं। यदि मनुष्यों के ईश्वर जनक जी इस साँवले राजकुमार को देख लेते तो प्रतिज्ञा छोड़कर हठपूर्वक इनसे श्रीसीता का विवाह कर देते।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने।।
सखि परंतु पन राउ न तजई। बिधि बश हठि अबिबेकहिं भजई।।

भा०- कोई अर्थात् लघिमा नामक सिद्धि कहने लगी, सखी! इनको जनक जी ने पहचान लिया है। मुनि विश्वामित्र जी के सहित आदरपूर्वक इनका सम्मान किया है। अर्थात् इन्हें अपने नगर ले आकर सुन्दरसदन में निवास दिया है। फिर भी राजा जनक जी अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ रहे हैं। विधाता की किसी विशेष योजना के वश में होने के कारण महाराज हठ करके अविवेक का ही भजन कर रहे हैं।

कोउ कह जौ भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिय उचित फलदाता।।
तौ जानकिहिं मिलिहिं बर एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू।।

भा०- कोई अर्थात् प्राप्ति नामक सिद्धि कहने लगी, यदि ब्रह्मा जी भले हैं और सुना तो जाता है कि, वे सभी को उचित फल देते हैं, तब तो जानकी जी को यही (श्याम राजकुमार) वर मिलेंगे। सखी यहाँ कोई सन्देह नहीं है।

जौ बिधि बश अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू।।
सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते।।

भा०- यदि सौभाग्यवश यह संयोग बन जाये तो सब लोग कृतकृत्य हो जायेंगे। हे सखी! हमारे मन में तो इस कारण अत्यन्त उतावलापन है कि, विवाह होने पर कभी तो ये यहाँ ससुराल के नाते आयेंगे ही।

दो०- नाहिं त हम कहँ सुनहु सखि, इन कर दरशन दूरि।
यह संघट तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि।।२२२।।

भा०- हे सखी! सुनो नहीं तो अर्थात् विवाह नहीं होने पर हमारे लिए इन श्रीराम–लक्ष्मण के दर्शन बहुत दूर है। यह संयोग तभी बन सकता है, जब हम लोगों के पूर्वकाल में किये हुए बहुत से पुण्य हों, जिनकी सहायता से या तो जनक जी प्रतिज्ञा में ढील दें अथवा श्रीराम ही शिवधनुष तोड़ दें।

बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहिं बिबाह अति हित सबही का।।

भा०- तब अपर अर्थात् प्राकाम्य नामक सिद्धि बोली, हे सखी! तुमने बहुत अच्छा कहा है। इस श्रीसीतारामविवाह से सभी का बहुत भला होगा।

कोउ कह शङ्कर चाप कठोरा। ए श्यामल मृदुगात किशोरा।।
सब असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी।।

भा०- कोई अर्थात् ईशित्व नामक सिद्धि कहने लगी, हे चतुर सखी! शिव जी का धनुष अत्यन्त कठोर है और ये श्यामलकिशोर कोमल शरीर के हैं। यहाँ सब कुछ असमंजस है, अर्थात् बिना मेल का है। शिवधनुष कठोरता की सीमा है और श्रीराम कोमलता की पराकाष्ठा हैं। यह सुनकर अपर अर्थात् दूसरी वशित्व नामक सिद्धि कोमल वाणी में कहने लगी–

सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाव देखत लघु अहहीं।।
परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी।।
सो कि रहहिं बिनु शिवधनु तोड़े। यह प्रतीति परिहरिय न भोरे।।
जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं श्यामल बर रचेउ विचारी।।
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी।।

भा०- हे सखी! कोई–कोई ऐसा कहते हैं कि, इनका प्रभाव बहुत बड़ा है। भले ही ये देखने में छोटे हैं। जिनके चरणकमल की धूलि का स्पर्श करके बहुत बड़ा पाप करनेवाली अहल्या भी तर गईं, क्या वे श्रीराम, शिवधनुष तोड़े बिना रह सकेंगे? यह विश्वास भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिए। जिन ब्रह्मा जी ने सीता जी को सँवार कर रचा है अर्थात् बहुत सुन्दर सजाकर बनाया है, उन्होंने ही विचार कर सीता जी के लिए साँवले वर की रचना की है। उसके वचन सुनकर सभी सखियाँ हृदय में प्रसन्न हुईं और 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कोमल वाणी में कहने लगीं।

दो०- हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानंद।।२२३।।

भा०- सुन्दर मुखों और सुन्दर नेत्रोंवाली सखियों के समूह हृदय में प्रसन्न होते हैं और सुन्दर मन से सुमन अर्थात् पुष्पों की वृष्टि करते हैं। अथवा समूहबद्ध सुमुखियाँ और सुलोचनियाँ हृदय में प्रसन्न हो रही हैं और प्रभु पर सुमनों (पुष्पों) के बहाने अपने सुन्दर मनों की ही वर्षा कर रही हैं। जहाँ–जहाँ दोनों भ्राता जाते हैं वहाँ–वहाँ परमानन्द हो जाता है।

पुर पूरब दिशि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई।।
अति बिस्तार चारु गच ढ़ारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी।।

भा०- नगर के पूर्व दिशा में दोनों भ्राता श्रीराम–लक्ष्मण गये, जहाँ धनुषयज्ञ के लिए भूमि बनायी गयी थी अर्थात् यज्ञभूमि की रचना की गयी थी। वहाँ अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में सुन्दर फर्श ढाली गयी थी और निर्मल तथा सुन्दर यज्ञवेदिका भी बनायी गयी थी।

चहुँ दिशि कंचन मंच बिशाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला।।
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा।।
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई।।

भा०- चारों ओर विशाल स्वर्ण के मंच बनाये गये थे, जहाँ सीता जी के स्वयंवर में आये हुए सभी राजा बैठेंगे। उसके पीछे निकट ही चारों ओर और भी मंचों के समूह का विलास अर्थात् सौन्दर्य था। वह मंच मण्डली कुछ ऊँची और सब प्रकार से सुन्दर थी, जहाँ जाकर नगर के लोग स्वयंवर देखने के लिए बैठेंगे।

तिन के निकट बिशाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए।।
जहँ बैठी देखहिं सब नारी। जथा जोग निज कुल अनुहारी।।

भा०- उन मंचों के निकट ही विशाल, सुन्दर तथा बहुत प्रकार के श्वेत–पक्के भवन बनाये गये थे। अपने कुल तथा योग्यता के अनुसार जहाँ बैठकर सभी मिथिलापुर की नारियाँ स्वयंवर की कार्यवाही देखा करेंगी।

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना।।

भा०- पुर के बालक कोमल वचन कहकर प्रभु को आदरपूर्वक रंगभूमि की रचना दिखा रहे हैं।

दो०- सब शिशु एहि मिस प्रेमबश, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात।।२२४।।

भा०- सभी बालक प्रेम के वश होकर इसी बहाने प्रभु के कोमल शरीर का स्पर्श करके और दोनों भ्राताओं को देख–देखकर शरीर से पुलकित और हृदय में प्रसन्न होते हैं।

शिशु सब राम प्रेमबश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने।।
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने सभी बालकों को प्रेम के वश में जाना और प्रसन्नता सहित रंगभूमि के भवनों की प्रशंसा की। अथवा, अपने घर का परिचय दिया कि, हम श्रीअवध के राजकुमार हैं। बालक अपने–अपने रुचि के अनुसार प्रभु को अपने पास बुलाते हैं और दोनों भाई स्नेह सहित उनके पास चले जाते हैं।

राम देखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना।।

भा०- मीठे और मनोहर वचन कह–कह कर श्रीराम छोटे भैया लक्ष्मण को रंगभूमि की रचना दिखा रहे हैं।

लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुशासन माया।।
भगत हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखशाला।।

भा०- जिनका अनुशासन पाकर उनकी माया क्षण भर के लव मात्र में अनेक ब्रह्माण्डों के समूहों को रच डालती है, वे ही दीनों पर दया करनेवाले प्रभु श्रीराम अपने भक्त लक्ष्मण के तथा स्वभक्त मिथिला के बालकों के आनन्द के लिए चकित होकर धनुर्यज्ञशाला का निरीक्षण कर रहे हैं।

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंब त्रास मन माहीं।।
जासु त्रास डर कहँ डर होई। भजन प्रभाव देखावत सोई।।
कहिं बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरियाँईं।।

भा०- यह कौतुक देखकर श्रीराम-लक्ष्मण गुरुदेव विश्वामित्र जी के पास चले। विलम्ब हुआ जानकर श्रीराम के मन में गुरुदेव विश्वामित्र जी का डर है। जिनके त्रास से डर को भी डर हो जाता है, वही प्रभु श्रीराम भजन का प्रभाव दिखा रहे हैं अर्थात् विश्वामित्र जी से डर रहे हैं। कोमल और सुहावनी बातें कह-कहकर प्रभु ने मिथिला के बालकों को हठपूर्वक विदा किया।

दो०- सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ।।२२५।।

भा०- भयभीत, प्रेमयुक्त, अत्यन्त विनीत, दोनों भ्राता (श्रीराम-लक्ष्मण) विलम्ब होने के कारण संकोच सहित गुरुदेव के चरणकमलों में मस्तक नवाकर आज्ञा पाकर बैठ गये।

* मासपारायण, छठा विश्राम *

निशि प्रबेश मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्या बंदन कीन्हा।।
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।।

भा०- रात्रि के प्रवेश होते ही मुनि विश्वामित्र जी ने सन्ध्योपासन की आज्ञा दी और श्रीराम-लक्ष्मण सहित सभी ब्रह्मचारी शिष्यों ने विश्वामित्र जी के नेतृत्व में सन्ध्यावन्दन किया। इतिहास-पुराण की सुन्दर कथायें कहते हुए दो प्रहर रात बीत गयी।

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई।।
जिन के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी।।
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।।

भा०- तब मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी ने शयन किया और दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्र जी के चरण दबाने लगे। जिनके चरणकमलों के लिए विरागी सन्तजन अनेक जप, योग करते हैं। वे ही दोनों भाई मानो प्रेम द्वारा जीत लिए गये हैं और प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेव श्रीविश्वामित्र जी के चरणकमलों को धीरे-धीरे पलोट रहे हैं अर्थात् दबा रहे हैं।

बार बार मुनि आग्या दीन्ही। रघुबर जाइ शयन तब कीन्ही।।
चापत चरन लखन उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए।।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढे धरि उर पद जलजाता।।

भा०- मुनि विश्वामित्र जी ने बार-बार आज्ञा दी, तब रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम ने जाकर शयन किया। श्रीलक्ष्मण प्रभु के चरणों को हृदय से लगाकर भय से युक्त होकर प्रेमपूर्वक अत्यन्त सुख पाते हुए चुपचाप धीरे-धीरे दबा रहे हैं। बार-बार प्रभु श्रीराम ने कहा, हे भैया! सो जाओ। तब हृदय में प्रभु के चरणों का ध्यान करके और अपनी छाती पर प्रभु के चरणकमल को रखकर अर्थात् अपने वक्षस्थल को ही प्रभु के चरणों की तकिया बनाकर लक्ष्मण जी पौढ़ गये अर्थात् लेट गये परन्तु उन्हें नींद नहीं आयी।

दो०- उठे लखन निशि बिगत सुनि, अरुनशिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहिं जगतपति, जागे राम सुजान।।२२६।।

भा०- रात्रि के समाप्त होने पर लालशिखा वाले मुर्गे की कुकड़ू...कू धुनि अपने कानों से सुनकर लक्ष्मण जी उठ गये। गुरुदेव के जागरण के प्रथम ही सेवा में चतुर श्रीराम भी जग गये।

विशेष- यहाँ से दस दोहेपर्यन्त पुष्पवाटिका का वर्णन करके गोस्वामी जी ने एक ही साथ साहित्य तथा वेदान्त इन दोनों विधाओं की सैद्धान्तिक पराकाष्ठा का निदर्शन कराया है। जैसे आद्यशङ्कराचार्य ने दस उपनिषदों के व्याख्यान में अद्वैतमत का प्रतिपादन किया और दस श्लोकी से निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत की प्रतिष्ठा की, उसी प्रकार फुलवारी के दस दोहे के माध्यम से अभिनववाल्मीकि गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीसीताराम विशिष्टाद्वैत मत के प्रतिष्ठापना में विद्वद् विमृग्य विरूद प्राप्त किया।

सकल शौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहिं सिर नाए।।
समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।।

भा०- दोनों भाइयों ने (श्रीराम-लक्ष्मण ने) प्रेमपूर्वक सम्पूर्ण पवित्रता के विधानों का सम्पादन करके जाकर कमला नदी में स्नान किया। वेदविहित नित्यकर्म, सन्ध्यावन्दन सम्पन्न करके गुरुदेव विश्वामित्र जी को सिर नवा कर प्रणाम किया। गुरुदेव की पूजा का, नरलीला-रंगमंच पर सीता जी से प्रथम मिलन का, मिथिला के अचर वृक्षों के उद्धार का, स्वयंवर के पूर्वविधेय पार्वती-पूजन के हेतु पुष्पवाटिका में सीता जी के आगमन का, श्रीलक्ष्मण तथा श्रीसीता की सखियों के युगलरूप-दर्शन के सौभाग्य का, भक्त-भगवान्, शक्ति-शक्तिमान, प्रकृति-पुरुष, माया-महेश्वर तथा प्रत्यगात्मा एवं परमात्मा के समागम का समय जानकर गुरुदेव विश्वामित्र जी का आदेश पाकर, दोनों भाई प्रत्यगात्मा रूप श्रीलक्ष्मण तथा परमात्मारूप श्रीराम पुष्प लेने के लिए चल पड़े।

भूप बाग बर देखेउ जाई। जहँ बसंत ऋतु रहइ लोभाई।।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुररूख लजाए।।

भा०- श्रीराम-लक्ष्मण ने जाकर जनक जी का श्रेष्ठ बाग देखा, जहाँ लुब्ध होकर वसन्तऋतु निरन्तर रहता है। अथवा, जहाँ वसंतऋतु लुभाया रहता है। वहाँ बहुरंगी श्रेष्ठ लताओं के वितानों से युक्त अनेक मनोहर वृक्ष लगे हैं, जो नवीन पल्लवों, फलों और पुष्पों से शोभायमान हैं, जिन्होंने अपने पल्लव, फल, पुष्प की संपत्ति से कल्पवृक्ष को रूखा अर्थात् रसहीन बनाकर लज्जित कर दिया है।

चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नचत कल मोरा।।
मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा।।
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा।।

भा०- वहाँ चातक, कोयल, तोते, चकोर बोल रहे हैं और मयूर मधुर गति से नाच रहें हैं। बाग के मध्य में सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी सीढ़ियाँ मणियों से जटित तथा विविध आश्चर्यमय कला से बनायी गयी है। उस तालाब का जल निर्मल है। वहाँ बहुरंगे अर्थात् नीले, पीले, श्वेत और रक्त कमल खिले हैं। जल के पक्षी बोल रहे हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं।

दो०- बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत।।२२७।।

भा०- इस बाग और सरोवर को देखकर प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण जी के सहित प्रसन्न हुए। यह आराम अर्थात् वाटिका अत्यन्त सुन्दर है, जो समस्त चराचर को रमानेवाले सुखस्वरूप श्रीराम को भी सुख दे रही है।

चहुँ दिशि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।।

भा०– भगवान् श्रीराम चारों ओर अर्थात् आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी एवं ज्ञानीभक्तों की ओर अथवा, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था की ओर अथवा, ऋग्, यजुष, साम, अथर्वन् नामक चार वेदों की ओर अथवा, ज्ञान, कर्म, उपासना, शरणागति इन चार साधनापथों की ओर अथवा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की ओर अथवा सीता जी की पुत्री, बहूरानी, युवरानी तथा महारानी इन चार रूपों की ओर अथवा, उत्पत्ति, पालन, प्रलयकारिणीं, क्लेशहारिणीं, सर्वश्रेयष्करी, श्रीराम–प्रियतमा इन सीता जी की चार दशाओं की ओर अथवा, समन्वय, विरोध, परिहार, साधन तथा फल इन चार दार्शनिक विधाओं की ओर अथवा चातक, कोयल, तोते एवं चकोर नामक अपने स्वागत् में बोलनेवाले चार पक्षियों की ओर अथवा, नित्य, नैमित्यिक, प्रायश्चित तथा उपासना नामक चारों वैदिक कर्मों की ओर अथवा, नाम, रूप, लीला, धाम इन चार वर्णों से युक्त चतुर्विध रामायण के कथा–प्रसंगों की ओर अथवा, जय–विजय, जलन्धर, नारदमोह तथा मनु–शतरूपा की तपस्या के क्रम से सम्पन्न होने वाले चार कल्पों के अवतारचरित्रों की ओर अथवा, दशरथ, जनक, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र इन चार पितृकल्प महाविभूतियों की ओर अथवा कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सुनयना इन चार माताओं की ओर अथवा अयोध्या में संस्कारलीला, मिथिला में शृंगारलीला, चित्रकूट में विहारलीला तथा लंका में संहारलीला की चार मनोहर छायाओं की ओर देखकर तथा मालीगणों से अथवा, माँ अर्थात आदिशक्ति जगत् माता सीता जी के आलीगण अर्थात् सखी गणों से पूछकर मुदित मन से श्रीराम, तुलसीदल और पुष्प चुनने लगे।

विशेष– माँ + आलीगण = मालीगण। पुष्पवाटिका में कोई पुरुष नहीं जा सकता था, इसलिए भगवान् श्रीराम ने माँ सीता के आलीगण अर्थात् सखी गणों से ही फूल लेने की अनुमति माँगी और प्रसन्नता से तुलसीदल और पुष्प लेने लगे।

तेहिं अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।।
संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी।।

भा०– उसी अवसर पर माता सुनयना जी द्वारा स्वयंवर के पूर्व करणीय पार्वती पूजा के हेतु भेजी हुई सीता जी भी वहाँ अर्थात् पुष्पवाटिका में आईं, जहाँ श्रीराम जी प्रसन्नतापूर्वक तुलसीदल और पुष्प ले रहे थे। उन भगवती सीता जी के साथ सभी सुन्दर तथा चतुर सखियाँ हैं, जो सुन्दर वाणी में स्वयंवरोचित् मंगलगीत गा रही हैं।

सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा।।
मज्जन करि सर सखिन समेता। गईं मुदित मन गौरि निकेता।।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर मांगा।।

भा०– उस सरोवर के समीप पार्वती जी का मंदिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे देखकर मन मोहित हो जाता है। भगवती सीता जी उस तालाब में अपनी सभी सखियों के साथ स्नान करके प्रसन्न मन से गौरी जी के मंदिर में गईं। जनकनंदिनी जी ने अधिक अनुराग के साथ गिरिजा जी की पूजा की तथा उनसे अपने अनुरूप अर्थात् अपने रूप के योग्य सुन्दर वर (दूल्हा) माँगा।

एक सखी सिय संग बिहाई। गयी रही देखन फुलवाई।।
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबश सीता पहँ आई।।

भा०– 'अकार' अर्थात् विष्णुजी को भी 'क' अर्थात् आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीराम की सखी अर्थात् सखा शिवजी की पत्नी तात्पर्यत: विष्णु जी को भी आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीराम के सखा शिवजी की धर्मपत्नी पार्वतीजी सखी वेश में सीता जी के साथ रहती थीं। उस समय वे सीताजी का साथ छोड़कर पुष्पवाटिका देखने गयी हुई थीं अर्थात् सीताजी के पूजन के समय पार्वतीजी अपने मंदिर में उपस्थित नहीं थीं। इसलिए, वरदान

माँगने पर भी मंदिर में से "एवमस्तु" शब्द सुनायी नहीं पड़ा। उन्हीं सखी वेशधारिणी एक सखी (श्रीराम जी के सखा शिव जी की स्त्री) पार्वती जी ने पुष्पवाटिका में जाकर पुष्प लेते हुए दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को देखा और वह प्रेम के विवश होकर सीता जी के पास (पार्वती जी के मंदिर) में आ गईं।

दो०- तासु दशा देखी सखिन, पुलक गात जल नैन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन।।२२८।।

भा०- सखियों ने उस एक सखी की दशा देखी, उसके अंग रोमांचित थे और आँखों में प्रेम से उमड़ा हुआ अश्रुजल। सभी सखियाँ उससे कोमल वाणी में पूछने लगीं कि तुम अपने हर्ष का कारण बताओ।

देखन बाग कुअँर दोउ आए। बय किशोर सब भाँति सुहाए।।
श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।

भा०- वह एक सखी बोली, सखियों! जनक जी का बाग देखने के लिए किशोर अवस्थावाले सब प्रकार से सुन्दर साँवले और गोरे दो राजकुमार आये हैं। उनकी कैसे प्रशंसा करूँ? क्योंकि जो वाणी बोल सकती है उसके पास नेत्र नहीं है अर्थात् उसने प्रभु को देखा नहीं, जिन नेत्रों ने उन्हें देखा है उनके पास वाणी नहीं है अर्थात् वे बोल नहीं सकते। भाव यह है कि, उनका वर्णन तो वही कर सकता है जिसमें एक साथ दर्शन और वचन का समन्वय हो। कदाचित् वाणी के पास नेत्र होते अथवा नेत्र के पास वाणी होती तो ही उनका वर्णन संभव होता।

सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी।।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।।

भा०- उस सखी का वचन सुनकर और उन्हें देखने के लिए सीता जी के मन में अत्यन्त उत्कंठा अर्थात् उत्सुकता जानकर सभी चतुर सखियाँ प्रसन्न हुईं। एक सखी कहने लगीं, हे सखियों! ये दोनों वही राजकुमार हैं, जो कल मुनि विश्वामित्र जी के साथ आये हुए सुने गये।

जिन निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखियहिं देखन जोगू।।

भा०-जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डालकर (जादू चलाकर) नगर के सभी पुरुषों और स्त्रियों को अपने वश में कर लिया तथा अपने वश में किये हुए मिथिला के सभी नरों को नारी बना दिया। सभी लोग जहाँ–तहाँ उन दोनों राजकुमारों की छवि का वर्णन कर रहे हैं। उनके दर्शन अवश्य करने चाहिए, वे देखने योग्य अर्थात् दर्शनीय हैं।

तासु बचन अति सियहिं सोहाने। दरश लागि लोचन अकुलाने।।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।।

भा०- उस सखी के वचन सीता जी को बहुत प्रिय लगे और श्रीराम के दर्शनों के लिए जानकी जी के नेत्र अकुलाने अर्थात् तलफलाने लगे। सीता जी अपनी उसी प्यारी एक सखी को आगे करके फुलवारी की ओर चलीं। श्रीराम के प्रति सीता जी की पुरातन अर्थात् साकेतलोक की प्रीति को कोई नहीं देख रहा था।

दो०- सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिशि, जनु शिशु मृगी सभीत।।२२९।।

भा०- नारद जी के वचन का स्मरण करके सीता जी के मन में पुनीत अर्थात् श्रीराम के प्रति पतिविषयक प्रीति उत्पन्न हो गयी। भयभीत हुई बालहरिणीं की भाँति वे सभी दिशाओं में चकित होकर देख रही थीं।

विशेष : स्वयंवर की घटना से कतिपय मासपूर्व दुधमति के तट पर विराजमान भगवती सीताजी के दर्शनों के लिए देवर्षि नारद पधारे थे। उस समय देवर्षि ने भगवती सीता जी को यह अभिज्ञान निर्दिष्ट किया था कि जिस पुरुषपुंगव की सुंदरता का वर्णन सुनकर आपके मन में उसे देखने की उत्कंठा जग जाये आप उसी को अपने पति के रुप में वरण कर लीजियेगा । वे होंगे स्वयंपुराण पुरुषोत्तम भगवानराम और उन्हीं के द्वारा स्वयंवर में शिव धर्नुभंग भी होगा। सीता जी को नारद जी के उसी वचन का स्मरण करके प्रभु श्रीराम के प्रति दाम्पत्य प्रेम उद्‌बुद्ध हो गया।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिश्व बिजय कहँ कीन्ही।।

भा०– सीता जी के श्रीहस्तकमलों में विराजमान कंकणों तथा उनके कटि पर विराजमान किंकिणी (करधनी) एवं जानकी जी के श्रीचरणों में शोभित नूपुरों की धुनि सुनकर हृदय में विचार करके भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी से कह रहे हैं, लक्ष्मण! मानो मदन अर्थात् मदादि विकारों से रहित मेरे भजनानन्द अथवा मेरे प्रेम ने ऋग्वेद रूप कंकण, यजुर्वेदरूप किंकिणी और सामवेदरूप नूपुर के माध्यम से दुंदुभी बजाई है और विश्वविजय की इच्छा की है, क्योंकि काम ने पुष्प का बाण लेकर विश्वविजय करके उसे नष्टप्राय कर डाला। अब श्रीरामप्रेम विश्व को निकृष्ट काम से मुक्ति दिलाकर, उसे जीतकर, भगवत्–प्राप्ति–सुधा से उसे अमर बनाना चाहता है। (यहाँ मदन शब्द का अर्थ है काम को नष्ट करने वाला, यथा– **मदं नाशयति इति मदनः अथवा मदं नाशं नयति इति मदनः**)

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख शशि भे नयन चकोरा।।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।।

भा०– लक्ष्मण जी से इस प्रकार कहकर, भगवान् श्रीराम ने जिस ओर से कंकण, किंकिणी, नूपुर का स्वर आ रहा था उसी ओर पीछे मुड़कर देखा, तो सीता जी के मुखचन्द्र के श्रीराम के नेत्र चकोर बन गये। अर्थात् जैसे चकोर चन्द्रमा को अपलक निहारता है, उसी प्रकार, सीता जी के मुख को भगवान् श्रीराम के नेत्र अपलक निहारने लगे और श्रीमुख–माधुरी सुधा का पान करने लगे। प्रभु श्रीराम के सुन्दर और विमल नेत्र अचंचल हो गये अर्थात् पलक गिराने की चंचलता छोड़कर टकटकी लगाकर श्रीमुख पर टिक गये। मानो विदेहवंश के प्रथमपुरुष निमि अपने कुल की बेटी सीता जी तथा रघुकुल के आयुष्मान् श्रीराम के दाम्पत्य–मूलक पूर्वरागप्रसंग में अपनी उपस्थिति को मर्यादा विरुद्ध मानकर तथा प्रिया, प्रियतम के मधुरमिलन को ऐकान्तिक लाभ देने के लिए श्रीराम के नेत्र के अंचलरूप पलकों को छोड़कर चले गये।

देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिश्व कहँ प्रगटि देखाई।।
सुंदरता कहँ सुन्दर करई। छबिगृह दीपशिखा जनु बरई।।

भा०– सीता जी की शोभा देखकर सुखस्वरूप श्रीराम ने भी सुख पाया। वे हृदय से सीता जी की सुन्दरता की प्रशंसा कर रहे हैं। मुख से वचन नहीं आ रहा है अर्थात् अनिर्वचनीय प्रेम ने प्रभु को भी निर्वचन करने से रोक दिया है। प्रभु श्रीराम स्वगत् कह रहे हैं, मानो ब्रह्मा जी ने सीता जी के माध्यम से अपनी सम्पूर्ण रचना की चतुरता को ही विशिष्ट रूप से रचकर संसार को प्रत्यक्ष दिखा दिया है कि, अब कला का भी आकार देखो। सीता जी सुन्दरता को भी सुन्दर बना रही हैं और स्वयं छविरूप भवन में दीपक की शिखा अर्थात् लौ की भाँति जाज्वल्यमान हो रही हैं।

सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी।।

भा०– सामान्य कवि लोग प्राकृत भोगमयी नारियों के प्रति प्रयोग कर–कर के सभी उपमाएँ जूठी अर्थात् उच्छिष्ट कर चुके हैं, अत: अब मैं विदेहनन्दिनी सीता जी को किस नये उपमान से उपमित करूँ।

विशेष– यहाँ गोस्वामी जी ने जायसी आदि प्रकृत नारिलंपट कवियों पर सीधा प्रहार किया है।

दो०– सिय शोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दशा बिचारि।
बोले शुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि।।२३०।।

भा०– सीता जी की शोभा का हृदय में वर्णन करके और अपने प्रेमदशा का विचार करके, समय का अनुसरण करते हुए प्रभु श्रीराम पवित्र मन से छोटे भैया लक्ष्मण के समक्ष आगे आनेवाली आठ पंक्तियों में यह महावाक्य स्वरूप वचन बोले–

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई।।
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकाश फिरत फुलवाई।।

भा०– हे भैया लक्ष्मण! यह वही जनकपुत्री सीता जी हैं, जिनके कारण धनुषयज्ञ तथा उसके आधार पर स्वयंवर हो रहा है। स्वयंवर के पूर्व प्रभात में इन्हें पार्वती जी की पूजा करने के लिए सखियाँ ले आयी हैं। यह प्रकाश करते हुए पुष्पवाटिका में भ्रमण कर रही हैं।

जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन लोभा।।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं शुभद अंग सुनु भ्राता।।

भा०– हे भाई लक्ष्मण! सुनो, जिन जनकनन्दिनी की अलौकिक अर्थात् इस लोक से विलक्षण शोभा को देखकर स्वभाव से पवित्र मेरा मन भी लुब्ध अर्थात् इन्हें प्राप्त करने के लिए लालची हो गया है। वह सब कारण ब्रह्माजी जानते हैं। मेरे शुभदायक दक्षिण अंग फड़क रहे हैं।

रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरइ न काऊ।।
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी।।

भा०– रघुवंशियों का यह जन्मजात स्वभाव है कि, उनका मन कुपन्थ अर्थात् वेद द्वारा निषिद्ध पन्थ पर अपना पाँव कभी नहीं रखता। मुझे अपने मन पर अत्यन्त विश्वास है, जिसने सपने में भी परायी नारी को नहीं हेरा अर्थात् मानसिक दृष्टि से भी नहीं देखा।

जिन कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मन डीठी।।
मंगन लहहिं न जिन कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं।।

भा०– हे भाई लक्ष्मण! शत्रुगण युद्ध में जिनके पास से पीठ नहीं पाते अर्थात् जो शत्रुगणों से हार कर कभी पीठ नहीं दिखाता, परायी नारियाँ जिनके मन और दृष्टि को भी नहीं प्राप्त कर पातीं और माँगनेवाले भिक्षुक जिनके यहाँ नकरात्मक शब्द नहीं प्राप्त करते अर्थात् जो कभी भीख माँगनेवाले को बिना कुछ दिये नहीं लौटाते, ऐसे श्रेष्ठ पुरुष इस संसार में बहुत थोड़े हैं।

दो०– करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि, करइ मधुप इव पान।।२३१।।

भा०– श्रीराम छोटे भैया लक्ष्मण जी से वार्ता कर रहे हैं। उनका मन सीता जी के रूप पर लोभायित है। वह तो सीता जी के मुखकमल की छविरूप मकरंद का भ्रमर की भाँति पान कर रहा है।

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। कहँ गए नृपकिशोर मन चिंता।।
जहँ बिलोक मृग शावक नैनी। जनु तहँ बरष कमल सित श्रेनी।।

भा०– सीता जी चकित होकर चारों ओर निहार रही हैं कि किशोर राजकुमार कहाँ चले गये? जनकनन्दिनी जी के मन में चिन्ता होने लगी। बालमृग के समान नेत्रवाली सीता जी जिस ओर देखती हैं, मानो वे वहाँ श्वेत कमलों की पंक्तियों की वर्षा करती हैं।

लता ओट तब सखिन लखाए। श्यामल गौर किशोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।

भा०– तब सखियों ने साँवले और गोरे सुहावने राजकिशोरों को लता की ओट अर्थात् आड़ में दिखाया। श्रीराम के रूप को देखकर सीता जी के ललचाये हुए नेत्र भी हर्षित हुए मानो उन्होंने अपने निधि को पहचान लिया हो।

थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकनहूँ परिहरीं निमेषे।।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी।।

भा०– श्रीराम की छवि को देखकर सीता जी के नयन थके अर्थात् पुतली ने चलना छोड़ दिया और उनके पलकों ने भी निमेष अर्थात् गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण सीता जी को शरीर की सुधि भोरी हो गयी अर्थात् उन्हें देह का भान भूल गया। मानो शरद् के पूर्ण चन्द्र को चकोरी निहार रही हो।

लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।
जब सिय सखिन प्रेमबश जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।।

भा०– चतुर सीता जी ने नेत्र के मार्ग से श्रीरामचन्द्र को हृदय में लाकर पलकों का किवाड़ बन्द कर लिया। जब सखियों ने सीता जी को प्रेम के वश में जाना तो वे कुछ कह नहीं सक पा रही थीं, मन में सकुचा गईं।

दो०- लताभवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ।।२३२।।

भा०– उसी अवसर पर दोनों भाई, लताओं के झुरमुटरूप भवन से निकलकर सीता जी एवं सखियों के सामने प्रकट हुए, मानो वर्षाकालीन बादल के पटल अर्थात् परदे को अलग करके दो विमल चन्द्रमा ही निकल पड़े हों।

शोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात शरीरा।।
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के।।

भा०– अब सखियाँ युगलगीत प्रस्तुत करते हुए कह रही हैं कि, नीले और पीले कमल के शरीर वाले दोनों भाई, श्रीराम–लक्ष्मण शोभा की सीमा तथा बहुत सुन्दर हैं। उनके सिर पर मयूर–पिच्छ (मोर का पंख) बहुत सुन्दर लग रहा है। उसके बीच–बीच में फूलों की कली के गुच्छे शोभित हो रहे हैं।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। स्रवन सुभग भूषन छबि छाए।।
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।।

भा०– इन दोनों भाइयों के मस्तक पर तिलक और श्रम के कारण उत्पन्न हुए पसीने की बूँदें सुहावनी लग रही हैं। इनके सुन्दर कानों में विराजमान कुण्डलों पर तो छवि ही छायी हुई है। इनकी भौंहें टेढ़ी तथा बाल घुँघराले हैं। नवीन कमल के समान नेत्र रतनारे हैं अर्थात् कोने में कुछ लालिमा लिए हुए हैं।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मन मोला।।
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।।

भा०– इनकी ठोढ़ी नासिका और कपोल बहुत सुन्दर हैं। इनके हास की शोभा तो मन को ही क्रय कर ले रही है। इनके मुख की छवि मुझसे नहीं कही जा रही है, जिसे देखकर बहुत से काम लज्जित हो जाते हैं।

उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा।।
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुअँर सखी सुठि लोना।।

भा०– इनके हृदय पर मणियों की माला तथा शंख के समान कण्ठ बहुत सुन्दर हैं। इनकी भुजायें कामदेव के हस्तिसावक के सूँढ़ के समान सुन्दर तथा बल की पराकाष्ठा है। हे सखी! पुष्पों से भरा हुआ दोना बायें हाथ में लिए हुए, साँवले राजकुमार बहुत सुन्दर हैं।

विशेष–"कलभः करिसावकः" हाथी के बच्चे को संस्कृत में कलभ कहते हैं।

दो०– केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा शील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहिं, बिसरा सखिन अपान।।२३३।।

भा०– सिंह के समान कटि प्रदेश पर पीताम्बर धारण किये हुए परमशोभा तथा शील अर्थात् सुन्दर स्वभाव और सद्वृत्त के खजानेस्वरूप सूर्यकुल के अलंकार भगवान् श्रीराम को देखकर सखियों को अपान अर्थात् अपने शरीर का व्यवहार भूल गया।

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी।।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिशोर देखि किन लेहू।।

भा०– धैर्य धारण करके एक चतुर सखी हाथ पकड़ सीता जी से बोली, राजकुमारी जी! पार्वती जी का ध्यान पीछे कर लीजियेगा, लता के भवन से प्रकट हुए राजकिशोर को क्यों नहीं देख लेतीं?

सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे।।
नख शिख देखि राम कै शोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा।।

भा०– तब सीता जी ने संकोचपूर्वक दोनों नेत्रों को खोला और अपने समक्ष रघुकुल के सिंह के समान पराक्रमी श्रीराम को निहारा। नख से शिखापर्यन्त श्रीराम की शोभा देखकर पिता की प्रतिज्ञा का स्मरण करके सीता जी के मन में बहुत क्षोभ हुआ कि, इतने कोमल श्रीहस्त से राघव जी कैसे धनुष तोड़ेंगे।

परबश सखिन लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता।।
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली।।

भा०– जब सखियों ने सीता जी को परवश अर्थात् परमात्मा श्रीराम के वश में देखा और परमेश्वर श्रीराम को सीता जी के वश में देखा तब सभी भयभीत होकर बोलीं, विलम्ब हो गया अर्थात् शीघ्र राजभवन चल देना चाहिये। अथवा विलम्ब हो गया यह श्रीसीताराम का मिलाप पहले ही हो जाना चाहिये था। कल इसी समय हम लोग फिर आयेंगे। अथवा, हे सीते! अभी चलिए, इसी समय कल फिर आ जाइयेगा। अथवा, हे राघव! अब तो

हमलोग जा रहीं हैं, इसी समय कल आप फिर आ जाइयेगा। अथवा, आज जितना विलम्ब हो रहा है होने दो, क्या कल यह समय फिर आयेगा? ऐसा कहकर एक आली अर्थात् एक सखी मन में विशेष रूप से हँसीं।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंब मातु भय मानी।।
धरि बड़ि धीर राम उर आनी। फिरी अपनपउ पितुबश जानी।।

भा०- एक सखी की इस गम्भीर वाणी को सुनकर सीता जी संकुचित हो गईं। विलम्ब हो गया, उन्होंने अपने मन में माता सुनयना का भय माना। बहुता बड़ा धैर्य धारण करके श्रीराम को अपने हृदय में पधराकर अपने तथा अपने मनोरथों को पिता के अधीन समझकर, सीता जी पुष्पवाटिका से भवन की ओर लौटीं।

दो०- देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि।।२३४।।

भा०- सीता जी मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने से बारम्बार पुष्पवाटिका की ओर लौट आती हैं और वहाँ रघुवीर श्रीराम जी की छवि देखकर उनकी प्रीति थोड़ी नहीं बढ़ती अर्थात् बहुत बढ़ जाती है। यही यहाँ अवहित्था संचारीभाव का उदाहरण है।

जानि कठिन शिवचाप बिसूरति। चली राखि उर श्यामल मूरति।।
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह शोभा गुन खानी।।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही।।

भा०- शिव जी के धनुष को कठिन जानकर चिन्ता करती हुईं सीता जी, हृदय में श्रीराम की श्याममूर्ति रखकर गिरिजा मन्दिर की ओर चलीं। सुख, स्नेह, शोभा और दिव्यगुणों की खानि प्रभु श्रीराम ने इन चारों की खानि सीताजी को जब जाते देखा, तब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने परमप्रेम अर्थात् दाम्पत्य–प्रेम को ही कोमल स्याही बनायी और उससे अपने सुन्दर चित्तभित्ति (दीवार) पर सीता जी को चित्रित कर लिया।

गयी भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली करजोरी।।

भा०- सीता जी फिर भवानी अर्थात् भव की स्त्री पार्वती जी के मंदिर में गयीं। पार्वती जी के चरणों की वन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं–

जय जय जय गिरिराज किशोरी। जय महेश मुख चंद्र चकोरी।।
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता।।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।।
भव भव विभव पराभव कारिनि। बिश्व बिमोहनि स्वबश बिहारिनि।।

भा०- हे पर्वतराज की किशोरी पुत्री! आपकी जय हो! जय हो! जय हो! हे महेश! अर्थात् महान् ईश्वर शिव जी के मुखरूप चन्द्र की चकोरी! आप की जय हो! हे हाथी के मुखवाले गणेश और छः मुखोंवाले कार्तिकेय की माता! हे जगत् को जन्म देनेवाली, बिजली के समान प्रकाशमान् शरीरवाली भगवती, आप की जय हो! आप का आदि, मध्य और अन्त नहीं है। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। आप संसार के जन्म, वैभवयुक्त पालन और पराभव अर्थात् संहार करनेवाली हैं। आप विश्व को मोहित करनेवाली तथा अपने वश में किये हुये शिवजी के साथ विहार करनेवाली हैं।

दो०- पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस शारदा शेष।।२३५।।

भा०– हे माता जी! पतिव्रता सुन्दर नारियों में आपकी प्रथम रेखा है अर्थात् आप सर्वप्रथम सती शिरोमणि हैं। आप की असीम महिमा को सहस्रों सरस्वती और शेष नहीं कह सकते।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनि त्रिपुरारि पियारी।।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।

भा०– हे वर देने वाली! हे त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी की प्रिय पत्नी पार्वती जी! आपकी सेवा करने से सेवक को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवी! आपके चरणकमल की पूजा करके देवता, मनुष्य, मुनि सब सुखी हो जाते हैं।

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के।।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही।।

भा०– आप मेरा मनोरथ अच्छी प्रकार जानती हैं, क्योंकि आप सदा सबके हृदय रूप नगर में निवास करती हैं। इसी कारण, मैंने उसे प्रकट नहीं किया। इतना कहकर सीता जी ने पार्वती जी के चरण पकड़ लिए।

बिनय प्रेमबश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।।
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोलि गौरि हरष हिय भरेऊ।।

भा०– पार्वती जी, सीता जी के विनय और प्रेम के वश में हो गईं। उन्होंने सीता जी को माला पहनानी चाही, परन्तु पार्वती जी के हाथों से माला भी गिर पड़ी, मानो कदाचित् उन्हें ऐसा लगा हो कि, सीता जी के हृदय में श्रीराम जी का निवास है, यदि मेरी माला सीता जी के गले में पड़ेगी तो श्रीराम जी के कण्ठ में भी चली जायेगी। पूर्वावतार में सीता जी का वेश बनाने के कारण शिव जी ने मुझे त्यागा था। इस बार यदि अपराध हुआ तब तो जन्म–जन्मान्तर के लिए शिव जी मुझे त्याग देंगे। इस भय से पार्वती जी के हाथ से माला गिर पड़ी। उनकी इस चतुरता पर सीता जी के हृदय में विराजमान श्रीराम की मूर्ति मुस्कुरा पड़ी। सीता जी ने आदरपूर्वक पार्वती जी की माला–प्रसाद को सिर पर धारण कर लिया। हृदय में हर्ष से पूर्ण होकर पार्वती जी बोलीं–

सुनु सिय सत्य अशीष हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।।
नारद बचन सदा शुचि साँचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राँचा।।

भा०– हे सीता जी! हमारी सत्य आशीष सुनिये। आपकी मनःकामना पूर्ण होगी। नारद जी का वचन पवित्र है और वह निरन्तर सत्य होता है। आपको वही वर (श्रीराम) मिलेंगे, जिन पर आपका मन रच गया है अर्थात् लुभा गया है अथवा तल्लीन हो गया है।

छं०– मन जाहिं राँचेउ मिलिहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो।
करुना निधान सुजान शील सनेह जानत रावरो।।
एहि भाँति गौरि अशीष सुनि सिय सहित हिय हरषीं अलीं।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं।।

भा०– जिन पर आपका मन अनुरक्त है, आपको वे ही स्वभाव से सुन्दर, करुणा के निधान, दिव्यज्ञान से सम्पन्न, आपके शील और स्नेह को जाननेवाले, साँवले श्रीराम ही वर रूप में मिलेंगे। इस प्रकार, पार्वती जी का आशीर्वाद सुनकर सीता जी के सहित सखियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। तुलसीदास जी कहते हैं कि, तुलसी माता एवं पार्वती माता जी का बार–बार पूजन करके प्रसन्न मन से सखियों सहित सीता जी राजमन्दिर चली गईं।

दो०- जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरष न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल, बाम अंग फरकन लगे।।२३६।।

भा०- पार्वती जी को अनुकूल जानकर सीता जी के हृदय में जैसा हर्ष हुआ उसे कहा नहीं जा सकता। मधुर मंगलों के मूल कारण रूप सीता जी के वाम अंग फड़कने लगे।

हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।।
राम कहा सब कौशिक पाहीं। सरल स्वभाव छुआ छल नाहीं।।

भा०- इधर श्रीराम, सीता जी के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहे हैं। फिर श्रीराम–लक्ष्मण दोनों भाई पुष्प और दल लेकर गुरु विश्वामित्र जी के पास गमन किये। श्रीराम ने विश्वामित्र जी से पुष्पवाटिका की सम्पूर्ण घटना कह सुनायी, क्योंकि उनका स्वभाव बहुत ही सरल है। जिसे छल कभी स्पर्श ही नहीं कर पाया।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि अशीष दुहु भाइन दीन्ही।।
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। राम लखन सुनि भए सुखारे।।

भा०- सुमन अर्थात् श्रीराम के सुन्दर मन तथा पुष्प पाकर मुनि विश्वामित्र जी ने देवपूजा की। फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि, तुम दोनों के मनोरथ सुन्दर फलवाले हों अर्थात् श्रीराम को सीता जी बहू रूप में प्राप्त हों तथा वही सीताजी, श्रीलक्ष्मण को भाभी–माँ के रूप में दर्शन दें। यह सुनकर श्रीराम–लक्ष्मण सुखी हुए।

करि भोजन मुनिवर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी।।
बिगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई।।

भा०- मध्याह्न भोजन करके, विज्ञानी अर्थात् सेवक–सेव्यभाव के विशिष्टज्ञान से सम्पन्न मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी, कुछ पुराण की कथा कहने लगे। दिन के समाप्त होने पर गुरुदेव की अनुमति पाकर, दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण सायंकालीन तृतीय सन्ध्या सम्पन्न करने चले।

प्राची दिशि शशि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।

भा०- सन्ध्या सम्पन्न करने के पश्चात् पूर्वाभिमुख चलते हुए भगवान् श्रीराम ने पूर्व दिशा में उदित हुए सुहावने चन्द्रमा को सीता जी के मुख के समान देखकर सुख प्राप्त किया। अर्थात् सामान्य रूप से चन्द्रमा को सीता जी के मुख का उपमान जानकर प्रभु प्रसन्न हुए। फिर दूसरे ही क्षण श्रीराम ने अपने मन में विचार किया कि, चन्द्रमा सीता जी के मुख के समान नहीं है, क्योंकि वह हिमकर अर्थात् बर्फ को उत्पन्न करनेवाला है और बर्फ कमल का शत्रु है, जबकि सीता जी के मुख में कमलत्व और चन्द्रत्व ये दोनों विरुद्ध गुण एक साथ रहते हैं।

दो०- जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रंक।।२३७।।

भा०- जिसका जन्म समुद्र में हुआ, फिर जिसका भाई विष है, जो दिन में मलिन रहता है तथा कलंक से पूर्ण है, ऐसा बिचारा कलाओं से क्षीण होने के कारण दरिद्र चन्द्रमा, सीता जी के मुख की समता को कैसे प्राप्त कर सकता है?

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।।
कोक शोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।

भा०- भगवान् श्रीराम चन्द्रमा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, चन्द्रमा! तुम घटते और बढ़ते हो, तुम विरहिणियों को दुःख देते हो और अपनी संधि में पाकर अर्थात् पूर्णिमा और प्रतिपदा की संधि में पाकर तुम्हे राहु ग्रस लेता है। तुम चकवे-चकवी को परस्पर वियोग का शोक देते हो और कमल के तुम द्रोही हो। हे चन्द्रमा! तुममें बहुत से अवगुण हैं, जबकि सीता जी के मुख में कोई अवगुण नहीं है।

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।।
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुरु पहँ चले निशा बड़ि जानी।।

भा०- हे चन्द्रमा! तुम्हें उपमान बनाकर सीता जी के मुख की उपमा देने से अत्यन्त अनुचित कर्म करने के कारण बहुत ही दोष होगा, क्योंकि अन्य उपमानों में एक-आध दोष होता है, जबकि तुम्हारे तो मैंने बारह दोष गिनाये। इस प्रकार, चन्द्रमा के बहाने से सीता जी के मुख की प्रशंसा करके श्रीरामजी, बहुत रात्रि जानकर गुरुदेव के पास चले आये।

विशेष- इस प्रसंग में व्यतिरेक तथा ब्याजस्तुति अलंकार की छटा बहुत ही रमणीय बन पड़ी है।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा।।
बिगत निशा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे।।

भा०- मुनि विश्वामित्र के चरण कमल में प्रणाम करके, आज्ञा पाकर, प्रभु श्रीराम ने विश्राम किया। रात्रि के समाप्त होने पर रघुकुल के नायक प्रभु श्रीराम जगे और पूर्व से ही जाग्रत अवस्था में देखकर, अपने प्रिय भाई लक्ष्मण कुमार से इस प्रकार कहने लगे-

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता।।
बोले लखन जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी।।

भा०- हे भैया! देखो, कमल-चकवे एवं सम्पूर्ण संसार को सुख देनेवाले अरुण अर्थात् सूर्यनारायण के सारथी गरुड़ के छोटे भाई अरुणदेव उदित हो चुके हैं। अब शीघ्र ही सूर्योदय हो जायेगा। लक्ष्मण जी दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव की सूचना देनेवाली कोमल वाणी में बोले-

दो०- अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडुगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन।।२३८।।

भा०- हे प्रभु! अरुण के उदित होने से कुमुद-पुष्प संकुचित हो गये हैं। तारागणों की ज्योति मलिन अर्थात् धूमिल पड़ गयी है। जिस प्रकार आपका आगमन सुनकर सीता जी के स्वयंवर में आये हुए सम्पूर्ण राजा शारीरिक और मानसिक बलों से हीन हो चुके हैं।

नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी।।

भा०- सभी राजा रूप नक्षत्र प्रकाश तो कर रहे हैं, पर वे धनुषरूप अन्धकार को नहीं टाल सकते अर्थात् नहीं दूर कर सकते। तात्पर्य यह है कि, जैसे नक्षत्रों के प्रकाश से अन्धकार का नाश नहीं होता, उसी प्रकार स्वयंवर में आये हुए राजाओं के शक्ति प्रयोग से धनुष का भंग संभव ही नहीं है। इसके लिए तो आप श्रीराघव रूप सूर्योदय की आवश्यकता है।

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निशा अवसाना।।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहैं टूटे धनुष सुखारे।।

भा०– हे भगवन्! जैसे रात्रि का अन्त होने पर कमल, चकवे, भ्रमर एवं अनेक पक्षी प्रसन्न हो रहे हैं। उसी प्रकार आप के आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी ये सभी प्रकार के भक्त धनुष के टूटने पर सुखी हो जायेंगे।

विशेष– यहाँ आर्तभक्त कमल का, जिज्ञासुभक्त चकवा का, अर्थार्थीभक्त भ्रमर का और ज्ञानीभक्त पक्षी का उपमेय समझना चाहिये।

उयउ भानु बिनु श्रम तम नाशा। दुरे नखत जग तेज प्रकाशा।।
रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन दिखाया।।

भा०– सूर्यनारायण के उदित होने से श्रम के बिना ही अन्धकार का नाश हो गया, तारागण छिप गये और जगत् में तेज तथा प्रकाश फैल गया। सूर्यनारायण ने अपने उदय के बहाने से सभी राजाओं को आप प्रभु श्रीराम का प्रभाव दिखला दिया है।

तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी।।

भा०– हे प्रभु! वस्तुतः यह धनुष तोड़ने की परम्परा आप के भुजबल की महिमा के उद्घाटन के रूप में प्रकट हुई है, अर्थात् जैसे किसी शुभकार्य के प्रारम्भ को उद्घाटन कहते हैं, उसी प्रकार यह धनुर्भंग, सीता जी के स्वयंवर के साथ आपके बाहुबल की महिमा का उद्घाटन समारोह है। अथवा, जैसे सूर्यनारायण का उदय उदयाचल पर्वत पर होता है, उसी प्रकार धनुर्भंग की परिपाटी ही आपके भुजबल की महिमा रूप सूर्यनारायण के उदय के लिए उदयाचल की घाटी के रूप में प्रकट हुई है।

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ शुचि सहज पुनीत नहाने।।
नित्यक्रिया करि गुरु पहँ आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए।।

भा०– अपने भाई लक्ष्मण जी का वचन सुनकर प्रभु श्रीराम मुस्कुराये। स्वभावतः पवित्र होते हुए भी लोक लीला में दसविध स्नानक्रिया से पवित्र होकर प्रभु ने स्नान किया। नित्यक्रिया अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन करके गुरुदेव विश्वामित्र जी के पास आये और स्वयं सुभग अर्थात् सुन्दर ऐश्वर्यादि छह माहात्म्यों से युक्त परमसौभाग्यशाली प्रभु ने विश्वामित्र जी के सुन्दर चरणकमलों में सिर नवाया।

शतानंद तब जनक बोलाए। कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाए।।
जनक बिनय तिन आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई।।

भा०– तब जनक जी ने अपने पुरोहित शतानन्द जी को बुलाया और उन्हें तुरन्त मुनि विश्वामित्र जी के पास भेज दिया। उन्होंने (शतानन्द जी ने) विश्वामित्र जी को जनक जी की प्रार्थना सुनायी और प्रसन्न हुए दोनों भाई, श्रीराम–लक्ष्मण को अपने पास बुला लिया। अथवा, जनक जी का रंगभूमि में आमंत्रण का समाचार सुनकर विश्वामित्र जी प्रसन्न हुए और उन्होंने रंगभूमि में चलने के लिए उद्यत होने के संकेतार्थ दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को अपने पास बुला लिया।

दो०– शतानंद पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बोलाइ।।२३९।।

भा०– शतानन्द जी के चरणों की वन्दना करके, प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण गुरुदेव विश्वामित्र जी के पास जाकर बैठ गये। तब विश्वामित्र जी ने कहा कि, हे तात! अब रंगभूमि में चला जाये, शतानन्द जी के माध्यम से जनक जी ने हमें बुला भेजा है।

सीय स्वयंबर देखिय जाई। ईश काहि धौं देइ बड़ाई।।
लखन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।।

भा०– सीता जी का स्वयंवर चलकर देखा जाये, देखते हैं भगवान् शङ्कर किस को बड़ाई देना चाहते हैं अर्थात् शिव जी का धनुष तोड़कर कौन सीता जी को वरण का सौभाग्य प्राप्त करेगा? लक्ष्मण जी ने कहा, नाथ! आज वही यश का पात्र बनेगा, जिस पर आपश्री (विश्वामित्रजी) की कृपा होगी।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्ह अशीष सबहिं सुख मानी।।
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुष मखशाला।।

भा०– लक्ष्मण जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर, विश्वामित्र जी सहित सभी मुनि प्रसन्न हो गये और सभी ने मन में प्रसन्न होकर लक्ष्मण जी एवं प्रभु श्रीराम को आशीर्वाद दिया अर्थात् मुनियों ने लक्ष्मण जी से कहा, *"तव भ्राता विजयी भूयात्।"* अर्थात् तुम्हारे भैया विजयी हों और श्रीराम से कहा– *"राघव विजयी भव।"* अर्थात् हे राघव सरकार! आप विजयी हों। फिर कृपालु श्रीराम और लक्ष्मण मुनिबृन्दों सहित धनुषयज्ञ देखने चले।

रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन पाई।।
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी।।

भा०– रंगभूमि में दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण आ गये हैं, ऐसा समाचार सभी मिथिलावासियों ने पाया। तब बालक, युवक और वृद्ध नर–नारी घर के सभी कार्यों को भूलकर श्रीराम–लक्ष्मण के दर्शनार्थ रंगभूमि को चल पड़े।

देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिए हँकारी।।
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू।।

भा०– जनक जी ने देखा, यहाँ बहुत भीड़ हो गयी है। तब उन्होंने पवित्र सेवकों को बुला लिया और कहा, "सभी लोगों के पास तुरन्त जाओ और सभी को बैठने के लिए उचित आसन दो, जिससे शान्तिपूर्वक स्वयंवर की कार्यवाही प्रारम्भ हो सके।"

दो०– कहि मृदु बचन बिनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि।।२४०।।

भा०– उन जनक जी के सेवकों ने सभी पुरुष और महिलाओं को अपने–अपने स्थल के अनुसार अर्थात् पूज्यों के प्रति शिष्ट शब्दों में, समवयस्कों को मध्यम अर्थात् मित्रोचित् शब्दों में, कोलाहल करने वाले असुर–प्रकृति के राजा के परिकरों को नीच अर्थात् तर्जना (डाँटने, धमकाने वाले शब्दों में) और छोटे–छोटे बालकों को लघु अर्थात् हल्के शब्दों में कोमल वचन कहकर बैठाया।

राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तनु छाए।।
गुन सागर नागर बर बीरा। सुन्दर श्यामल गौर शरीरा।।
राज समाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे।।

भा०– उसी अवसर पर (सभी नर–नारियों के बैठ जाने पर) श्रीअवध के राजकुमार श्रीराम–लक्ष्मण रंगभूमि में आये, मानो उनके शरीर पर मनोहरता ही छाई हुई थी। सभी सद्गुणों के सागर, चतुर, श्रेष्ठ वीर, सुन्दर, श्याम–गौर शरीरवाले श्रीराम–लक्ष्मण, सुन्दर राजसमाज में उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे तारागणों के मध्य में दो पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हों।

जिन के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखि तिन तैसी।।

भा०– जिनके मन में जैसी भावना थी, उन्होंने प्रभु श्रीराम–लक्ष्मण की मूर्ति उसी प्रकार, से देखी।

विशेष– यहाँ वीर रस, भयानक रस, रौद्र रस, अद्‌भुत रस, शृंगार रस, वीभत्स रस, हास रस, प्रेयो रस, करुण रस, वत्सल रस, शान्त रस और भक्ति रस के संस्कारों से भावुक नर–नारियों ने क्रमशः इन्हीं रसों की मूर्ति के रूप में प्रभु श्रीराम–लक्ष्मण के दर्शन किये।

देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रस धरे शरीरा।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।।

भा०– महारणधीर अर्थात् युद्ध में कुशल राजा, भगवान् श्रीराम–लक्ष्मण को ऐसे देख रहे थे, मानो वीर रस ने ही दो शरीर धारण कर लिए हों। कुटिल राजा, भगवान् श्रीराम को निहारकर डरे, मानो उनके सामने अत्यन्त भयानक रस की मूर्ति उपस्थित हो।

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन प्रभु प्रगट कालसम देखा।।
पुरबासिन देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई।।

भा०– छल से राजा के वेश में आये हुए, जो असुर रंगभूमि में स्थित थे, उन्होंने भगवान् श्रीराम को प्रत्यक्ष काल के समान रौद्र रस रूप में देखा। जनकपुरवासियों ने दोनों भाइयों (श्रीराम–लक्ष्मण) को नेत्रों को आनन्द देनेवाले पुरुषों के अलंकारस्वरूप अद्‌भुत रस के रूप में देखा।

दो०– नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप।।२४१।।

भा०– हृदय में प्रसन्न होकर मिथिलानी नारियाँ अपनी–अपनी रुचि के अनुरूप प्रभु को इस प्रकार देख रही हैं, मानो शृंगार रस ही पूजनीय उपमारहित मूर्ति को धारण करके सुशोभित हो रहा हो।

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।।

भा०– विद्वानों को प्रभु श्रीराम बहुत से मुख, हाथ, चरण, नेत्र और सिरों से युक्त विराट रूप में ही वीभत्स रस स्वरूप दिखे। राजा जनक जी के जाति के लोग प्रभु को किस प्रकार देख रहे हैं, जैसे सगे, सम्बन्धी और अपने मित्र प्रिय लगते हैं अर्थात् उन्होंने प्रभु को हास रस और प्रेयो रस के रूप में देखा।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। शिशु सम प्रीति न जाति बखानी।।
जोगिन परम तत्त्वमय भासा। शांत शुद्ध सम सहज प्रकासा।।
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता।।

भा०– जनक जी के सहित सुनयना आदि रानियाँ प्रभु को करुण रस और वत्सल रस के रूप में देख रही हैं। उन्हें प्रभु के प्रति छोटे बालक जैसी प्रीति है, जो बखानी नहीं जा सकती। योगीजनों को प्रभु परमतत्त्वमय (चिद्–अचिद् विशिष्टाद्वैत परब्रह्म) शुद्ध, स्वाभाविक प्रकाश से सम्पन्न, समदर्शी, शान्तस्वरूप में भाषित हो रहे हैं अर्थात् योगीजन भगवान् को शान्त रस में देख रहे हैं। श्रीरामभक्तों ने दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को सभी सुखों को देनेवाले इष्टदेव के समान भक्ति रस में देखा।

रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह मुख नहिं कथनीया।।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ।।

भा०– सीता जी जिस भाव से प्रभु को निहार रही हैं, वह स्नेह–मुख से कथनीय नहीं है अर्थात् कथन के योग्य नहीं है, क्योंकि सीता जी भी उस आनन्द को अपने हृदय में अनुभव–मात्र कर रही हैं। वह भी कह नहीं सकती तो कोई कवि किस प्रकार से कह सकता है ?

जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ।।

भा०– जिसके मन में जिस प्रकार का जैसा भाव था, उसने कोसलराज भगवान् श्रीराम को उसी प्रकार से देखा।

दो०– राजत राज समाज महँ, कोसलराज किशोर।
सुन्दर श्यामल गौर तनु, बिश्व बिलोचन चोर।।२४२।।

भा०– कोसलराज दशरथ जी के दोनों किशोर पुत्र श्रीराम–लक्ष्मण रंगभूमि में आकर राजसमाज में विराज रहे हैं। उनके श्यामल और गौर शरीर बहुत सुन्दर हैं और वे विश्व के नेत्रों को चुरा रहे हैं। अथवा, सुन्दर श्याम–गौर शरीरवाले, विश्व के विमल नेत्रों को चुरानेवाले, कोसलराज दशरथ जी के दोनों किशोर पुत्र, सीता स्वयंवर में स्थित राजसमाज में देदीप्यमान हो रहे हैं।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ।।
शरद चंद्र निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के।।

भा०– दोनों मूर्तियाँ (श्रीराम–लक्ष्मण) स्वभाव से ही मनोहर अर्थात् सुन्दर हैं, यदि उनकी करोड़ों कामदेव से भी उपमा दी जाये तो भी छोटी हो जायेगी। उन दोनों भाइयों के श्रीमुख शरद्काल के चन्द्रमा की भी निन्दा करनेवाले और बड़े सुन्दर हैं। उनके कमल जैसे नेत्र जीवात्मा को ही भा जाते हैं।

चितवनि चारु मार मन हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी।।

भा०– उनकी सुन्दर चितवन कामदेव के भी मन को हर लेती है। वह हृदय को भाती है, वर्णित नहीं की जा सकती।

कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला।।

भा०– उनके कपोल बड़े सुन्दर हैं, कानों के कुण्डल चंचल हो रहे हैं, उनकी ठोढ़ी और अधर (होंठ) बड़े सुन्दर हैं और उनकी बोली कोमल और मधुर है।

कुमुदबंधु कर निंदक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा।।
भाल बिशाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।।

भा०– उनका हास कुमुदपुष्प के बंधु अर्थात् चन्द्रमा के किरणों की भी निन्दा करते हैं अर्थात् चन्द्रकिरण से भी सुन्दर हैं। उनकी भौंहे टेढ़ी और नासिका मन को हरने वाली है। दोनों भ्राता के विशाल मस्तक पर विशाल उर्ध्वपुण्ड्र की तीन–तीन रेखायें दूर से ही झलकती हैं अर्थात् प्रकाश के साथ दिख जाती हैं। उनके काले घुँघराले बालों को देखकर, भौंरों की पंक्तियाँ भी लज्जित हो जाती है।

पीत चौतनीं सिरन सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई।।
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सींवाँ।।

भा०– उनके सिरों पर पीली टोपी शोभा दे रही है और बीच–बीच में पुष्पों की कलियाँ सजाई गयी हैं। रेखाओं के कारण सुन्दर कण्ठ शंख के समान सुडौल और चिक्कन हैं, मानो वह तीनों लोक की परमशोभा की सीमा है।

दो०- कुंजर मनि कंठा कलित, उरनि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि, बल निधि बाहु बिशाल।।२४३।।

भा०- उनके कण्ठ में गजमुक्ता का सुन्दर कण्ठहार है। उनके वक्षों पर नवीन तुलसी की माला विराज रही है। उनके स्कन्ध श्रेष्ठ बैल के कन्धे के समान हैं। उनकी ठवनि (चलने की एक प्रक्रिया) सिंह के समान है तथा उनके बाहु बल के सागर और विशाल हैं।

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर शर धनुष बाम बर काँधे।।
पीत जग्य उपवीत सुहाए। नख शिख मंजु महाछबि छाए।।

भा०- उन्होंने अपने कटि प्रदेश में तरकस और पीताम्बर बाँध रखे हैं। उनके हाथ में बाण और बायें स्कन्ध पर श्रेष्ठ धनुष है। उनके बाम स्कन्ध पर ही सुहावने पीले यज्ञोपवीत हैं। वे नख से शिखापर्यन्त मंजु अर्थात् माधुर्य मिश्रित सौन्दर्यवान हैं और उन पर महती छवि छा रही है अर्थात् अद्‌भुत सुन्दरता सुशोभित है।

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे।।
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई।।

भा०- श्रीराम–लक्ष्मण को देखकर सभी लोग सुखी हो गये। उनके नेत्र एकटक स्थिर हो गये। उनकी पुतलियों ने भी चंचलता छोड़ दी अर्थात् चलना छोड़ दिया। राजा जनक जी दोनों भ्राताओं को देखकर प्रसन्न हुए। तब जाकर उन्होंने मुनि विश्वामित्र जी के चरणकमल को पकड़ लिया।

करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहिं देखाई।।
जहँ जहँ जाहिं कुअँर वर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ।।

भा०- जनक जी ने प्रार्थना करके अपनी सब कथा सुनायी और सम्पूर्ण रंगभूमि मुनि विश्वामित्र जी को दिखायी। श्रेष्ठ दोनों राजकुमार जहाँ–जहाँ जाते हैं वहाँ–वहाँ सभी लोग चकित होकर उन्हें देखने लगते हैं।

निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिशेषा।।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ।।

भा०- अपने–अपने रुझान के अनुसार सब लोगों ने श्रीराम को देखा किसी ने भी कुछ विशेष मर्म नहीं जाना। रंगभूमि की रचना बहुत अच्छी है, इस प्रकार मुनि विश्वामित्र जी ने राजा जनक जी से कहा। राजा जनक जी ने प्रसन्न होकर महान् सुख प्राप्त किया।

दो०- सब मंचन ते मंच एक, सुन्दर बिशद बिशाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल।।२४४।।

भा०- सभी मंचों से एक मंच बड़ा सुन्दर, स्वच्छ और विशाल था। उसी मंच पर महाराज जनक जी ने मुनि विश्वामित्र जी के सहित श्रीराम–लक्ष्मण को बिठाया (विराजमान कराया)।

* नवाहपरायण, दूसरा विश्राम *

प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेश उदय भए तारे।।
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं।।

भा०– प्रभु श्रीराम को देखकर, सीता स्वयंवर में आये हुए सभी राजा हृदय से हार गये, मानो चन्द्रमा के उदय से तारे मलिन हो गये हों। सब के मन में ऐसा विश्वास हो गया कि, श्रीराम ही शिव जी का धनुष तोड़ेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है।

बिनु भंजेहुँ भव धनुष बिशाला। मेलिहि सीय राम उर माला।।
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गवाँई।।

भा०– राजा परस्पर कहने लगे, भाई! विशाल शिवधनुष को तोड़े बिना भी सीताजी, श्रीराम के गले में जयमाला डाल देंगी, ऐसा विचार करके जय, प्रताप, बल और तेज को समाप्त करके अपने–अपने घर चले जाओ।

बिहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी।।
तोरेहुँ धनुष ब्याह अवगाहा। बिनु तोरे को कुअँरि बियाहा।।

भा०– यह वाणी सुनकर अन्य राजा हँसे, जो अविवेक के कारण अन्धे और अभिमानी हो चुके थे। वे बोले, धनुष के तोड़ने पर भी विवाह अवगाह है अर्थात् विवाहरूप महासागर थहाने में कठिन है, तो बिना धनुष तोड़े राजकुमारी का विवाह कौन कर सकेगा?

विशेष– यहाँ अवगाह का शुद्धरूप अविगाध है और विवाह शब्द का उपमान है। सागर उसका प्रयोग न होने के कारण लुप्तोपमाना उपमा अलंकार है।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ।।
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमशील हरिभगत सयाने।।

भा०– एकबार काल भी क्यों न हो सीता जी के लिए, हम उसे भी युद्ध में जीत लेंगे। यह सुनकर, अन्य धार्मिक, श्रीरामभक्त, चतुर, राजा मुस्कुराये जो 'अ' अर्थात् श्रीराम को ही वर अर्थात् सीता जी का वर और श्रेष्ठ समझते थे।

सो०– सीय बियाहब राम, गरब दूरि करि नृपन को।
जीति को सक संग्राम, दशरथ के रन बाँकुरे।।२४५।।

भा०– राजाओं का गर्व दूर करके भगवान् श्रीराम ही सीता जी को ब्याहेंगे दशरथ जी के रण बाँकुरे अर्थात् युद्ध में कुशल श्रीराम–लक्ष्मण को संग्राम में कौन जीत सकता है?

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकनि कि भूख बुताई।।
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता।।
जगत पिता रघुपतिहिं बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी।।

भा०– राजाओं गाल बजाकर निरर्थक मत मरो। क्या मन के लड्डुओं से भूख मर सकती है? अर्थात् अर्थहीन मनोरथों से लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती। हमारी परमपवित्र शिक्षा सुनकर, हृदय में सीता जी को जगत् की माता समझो और श्रीराम को जगत् का पिता समझकर इन दोनों की छवि को भर आँख से निहार लो।

सुन्दर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु शंभु उर बासी।।
सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई।।

भा०– ये दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण सुन्दर, सुख देनेवाले, सभी सद्‌गुणों की राशि तथा भगवान् शङ्कर के हृदय में निवास करनेवाले हैं। अपने समीपवर्ती अमृत का सागर छोड़कर झूठा मृगजल देखकर उसके लिए क्यों दौड़ मर रहे हो?

करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फल पावा।।
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।।

भा०– जिसको जो अच्छा लगे वही जाकर करो, हमने तो आज जन्म का फल पा लिया। ऐसा कहकर, भले राजा प्रभु के प्रेम से भर गये और दोनों भाइयों के उपमारहित रूप को देखने लगे।

देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना।।

भा०– देवता विमानों पर चढ़कर आकाश से सीता स्वयंवर का दृश्य देख रहे हैं। वे पुष्प वृष्टि कर रहे हैं तथा मधुर गीत भी गा रहे हैं।

दो०– जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदरि सकल, सादर चलीं लिवाइ।।२४६।।

भा०– तब सुन्दर अवसर जानकर, जनक जी ने सीता जी को बुला भेजा। सुन्दर सम्पूर्ण सीता जी की सखियाँ, उन्हें आदरपूर्वक रंगभूमि की ओर लिवा ले चलीं।

सिय शोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी।।
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं।।

भा०– जगत की माता रूप और गुणों की खानि भगवती सीता जी की शोभा बखानी नहीं जाती। मुझे सभी उपमायें छोटी लग रही हैं, क्योंकि ये साधारण विलासिनी नारियों के अंगों में अनुरक्त हो चुकी हैं अर्थात् उनका साधारण ग्राम्य–नारियों के लिए उपयोग हो चुका है।

सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई।।
जौ पटतरिय तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया।।

भा०– उन्हीं उपमाओं को देकर सीता जी का वर्णन करके कुत्सितकवि कहलाकर कौन अपयश ले? यदि सीता जी को सामान्य स्त्री के समान उपमित किया जाये, तो बताओ संसार में ऐसी सुन्दर युवती कहाँ है?

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि बैदेही।।

भा०– सरस्वती जी मुखर अर्थात् बहुत बोलती हैं, पार्वती जी का सर्वांग सौन्दर्य नहीं है, क्योंकि उनका आधा ही शरीर स्त्री का है, अपने पति को शरीररहित जानकर रति बहुत दुखित रहती हैं। भला बताइये, विष और मदिरा जिनके प्रिय भाई और बहन हों, ऐसी लक्ष्मी के समान विदेह–राजपुत्री सीता जी कैसे हो सकती हैं?

जौ छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।।
शोभा रजु मंदर शृंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू।।

भा०– यदि छविरूप अमृत का क्षीरसागर हो और उसमें परमपूज्य रूप से ही निर्मित अपूर्व कच्छप भगवान् हों, उसको (अमृत के क्षीरसागर को) शोभा की रस्सी से बँधे हुए शृंगाररूप मंदराचल द्वारा कामदेव अपने कर कमलों से मथें।

दो०- एहि बिधि उपजे लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि संकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल।।२४७।।

भा०- यदि इस विधा से सुन्दरता और सुख के मूलकारण लक्ष्मी प्रकट हों तो भी उसे कवि संकोच के सहित सीता जी के समान कह सकता है। (यहाँ उदात्त अलंकार की बड़ी ही मनोहारिणी छटा है।)

चलीं संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी।।
सोह नवल तनु सुंदरि सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।।

भा०- मनोहर वाणी में गीत–गाती हुई चतुर सखियाँ सीता जी को साथ लेकर चलीं। जगत् की माता सीता जी के नवीन श्रीविग्रह पर सुन्दर साड़ी सुशोभित थी और उनकी महती छवि अतुलनीय थी अर्थात् किसी से उनकी तुलना नहीं की जा सकती।

भूषन सकल सुदेश सुहाए। अंग अंग रचि सखिन बनाए।।
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।

भा०- भगवती जी के सुन्दर अवयवों में सभी आभूषण सुहावने लग रहे थे जिन्हें सखियों ने अंग–अंग में रच–रच कर सजाया था। जब सीता जी ने रंगभूमि में अपने चरण रखे, तब उनके रूप को देखकर सभी नर–नारी मोहित हो गये।

विशेष- चूँकि सीता जी परब्रह्मस्वरूप हैं, इसलिए वे नर और नारी दोनों की परिस्थितयों से ऊपर हैं। अत: *मोह न नारि, नारि के रूपा।* मानस, ७.११६.२ का सिद्धान्त यहाँ प्रभावी नहीं होगा और दूसरी बात यह है कि, यहाँ मोह शब्द का अर्थ प्रेमाकुल होना है और उत्तरकाण्ड के प्रकरण में मोह का अर्थ है, वासनामूलक आकर्षण, इसलिए सीता जी के रूप पर मिथिला के नरों के मोहित होने पर भी आपत्ति नहीं है।

हरषि सुरन दुंदुभी बजाईं। बरषि प्रसून अपसरा गाईं।।
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितये सकल भुआला।।

भा०- देवताओं ने प्रसन्न होकर दुंदुभी अर्थात् नगारे बजाये। पुष्पों की वर्षा करके अप्सराओं ने गीत गाये। सीता जी के करकमलों में जयमाला सुशोभित थी। सभी राजाओं ने सीता जी को सहसा आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा।

सीय चकित चित रामहिं चाहा। भए मोहबश सब नरनाहा।।
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई।।

भा०- सीता जी ने भी चकित चित्त से श्रीराम जी को देखा। सभी राजा मोहवश हो गये। सीता जी ने मुनि विश्वामित्र जी के समीप बैठे हुए श्रीराम–लक्ष्मण को देखा। निधि पाकर सीता जी के नेत्र आकुल होकर श्रीराम जी में लग गये।

दो०- गुरुजन लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि।
लगी बिलोकन सखिन तन, रघुबीरहिं उर आनि।।२४८।।

भा०- गुरुजनों की लज्जा और बहुत बड़ा समाज देखकर सीता जी संकुचित हो गईं। रघुकुल के वीर श्रीराम को अपने हृदय में लाकर सीता जी सखियों के शरीर की ओर देखने लगीं।

राम रूप अरु सिय छबि देखी। नर नारिन परिहरीं निमेषी।।
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं।।

भा०– श्रीराम का रूप एवं सीता जी की छवि देखकर पुरुषों और महिलाओं ने पलक गिराना छोड़ दिया। सभी लोग शोक कर रहे हैं, जनक जी को कहने में सकुचाते हैं, अपने मन में विधाता से प्रार्थना करते हैं।

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहु सुहाई।।
बिनु बिचार पन तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू।।

भा०– हे विधाता! राजा जनक की जड़ता को हर लीजिये। उन्हें हमारी जैसी सुहावनी बुद्धि दीजिये। महाराज कोई विचार किये बिना प्रतिज्ञा को छोड़कर सीता जी का विवाह श्रीराम के साथ कर दें।

जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू।।
एहिं लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू।।

भा०– इस विवाह को संसार भला ही कहेगा। अथवा, इस कार्य से प्रसन्न होकर संसार जनक जी को भला कहेगा, क्योंकि श्रीराम–सीता की जोड़ी सब को भा रही है। हठ करके तो अन्ततोगत्वा हृदय में जलन ही होगी। सभी लोग इसी लालसा में मग्न हैं कि, साँवला राजकुमार जानकी जी के योग्य वर है।

तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरुदावली कहत चलि आए।।
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाँट हिय हरष न थोड़ा।।

भा०– तब जनक जी ने बंदीजनों को बुलाया, वे विरुदावली का पाठ करते हुए जनक जी के पास चले आये। राजा ने कहा, स्वयंवर में जाकर मेरी प्रतिज्ञा की घोषणा करो। भाट मन में प्रसन्न होकर चले अथवा उनके मन में थोड़ा भी हर्ष नहीं था, क्योंकि मिथिलावासियों के साथ बंदीजन भी इसी पक्ष में थे कि जनक जी को प्रतिज्ञा छोड़कर श्रीसीतारामविवाह सम्पन्न कर देना चाहिये। धनुर्भंग की प्रतिज्ञा से तो श्रीराम–सीता की सौन्दर्य का अनादर ही होगा।

दो०– बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिशाल।।२४९।।

भा०– बन्दीजन श्रेष्ठ वचन बोले, हे सभी पृथ्वी के पालक राजाओं! हम अपनी दोनों विशाल भुजाओं को उठा कर जनक जी का विशाल पण कह रहे हैं।

नृप भुजबल बिधु शिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू।।
रावन बान महाभट भारे। देखि शरासन गवँहिं सिधारे।।

भा०– यह सब लोगों को ज्ञात है कि, अत्यन्त गरुअ (भारी) और कठोर शिव जी का धनुष राजाओं के भुजबलरूप चन्द्रमा के लिए राहु के समान है अर्थात् जैसे राहु, चन्द्रमा को ग्रस लेता है, उसी प्रकार स्पर्श–मात्र से शिवधनुष सब राजाओं के बल को खा जाता है। इस धनुष को देखकर रावण और बाणासुर जैसे बड़े महान् योद्धा चुपके से चले गये।

सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा।।
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही।।

भा०– उसी शिव जी के कठिन धनुष को आज इस राजसमाज में जिसने भी तोड़ दिया, उसी को सीता जी विचार किये बिना तीनों लोक के विजय के सहित वरण कर लेंगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिशय मन माखे।।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन सिर नाई।।

भा०– बन्दीजन के मुख से प्रतिज्ञा सुनकर, स्वयंवर में आये हुए सभी राजा विश्वविजय, यश और जानकी जी को पाने के लिए इच्छुक हो उठे। स्वयं को भट माननेवाले राजागण तो मन में बहुत कुपित हो गये। कटि प्रदेश में फेटा बाँधकर आतुर होकर उठे और अपने–अपने इष्टदेवों को प्रणाम करके धनुष तोड़ने के लिए चल पड़े।

तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहिं। उठई न कोटि भाँति बल करहीं।।
जिन के कछु बिचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं।।

भा०– राजा लोग कुपित होकर बार–बार कड़ी दृष्टि से देखकर, शिव जी के धनुष को पकड़ते हैं। वह नहीं उठता, करोड़ों प्रकार से बल करते हैं। जिनके मन में किसी प्रकार का श्रीसीताराम जी के प्रति परमेश्वरभाव का विचार आता है, वे राजा धनुष के पास नहीं जाते। उन्हें ज्ञान है कि, शिव जी का धनुष उनसे नहीं टूटेगा, व्यर्थ की हँसी होगी और उपासना भी नष्ट हो जायेगी।

दो०– तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ।।२५०।।

भा०– मोह से युक्त राजा, क्रोध करके शिवधनुष पकड़ते हैं, वह नहीं उठता, राजा लज्जित होकर लौट जाते हैं। मानो वीरों के भुजाओं का बल पाकर धनुष क्षण–प्रतिक्षण अधिक से अधिक गरुअ (भारी) होता जाता है।

भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।।
डगइ न शंभु शरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।।

भा०– दस हजार राजा एक ही बार धनुष उठाने लगे अर्थात् स्वयंवर के अंतिम दिन राजसभा में आये हुए सभी दस हजार राजाओं ने एक साथ मिलकर धनुष उठाने का प्रयास किया, परन्तु वह टालने से भी नहीं टलता अर्थात् अपना स्थान नहीं छोड़ता। शिव जी का धनुष किस प्रकार से नहीं डिगता, जैसे कामियों के वचनों को सुनने से पतिव्रता सती नारी का मन नहीं चलायमान होता।

सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग सन्यासी।।
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी।।
श्रीहत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा।।

भा०– सभी राजा उपहास के योग्य हो गये, जैसे वैराग्य से रहित सन्यासी परिहास का पात्र बन जाता है। सभी राजागण कीर्ति, विजय और बहुत बड़ी वीरता को धनुष के हाथ हठात् हारकर लौट चले। हृदय में हार कर सभी राजा श्रीहत् हो गये अर्थात् शोभा से रहित हो गये। अथवा श्रीहत् अर्थात् श्रीजी के द्वारा हत् हो गये (मार डाले गये)। सभी अपने–अपने समाज में जाकर बैठ गये।

नृपन बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने।।
दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पन ठाना।।
देव दनुज धरि मनुज शरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा।।

भा०– राजा जनक जी अकुला गये और मानो क्रोध में सने हुए वचन बोले, "मैंने जो प्रतिज्ञा की उसे सुनकर द्वीप–द्वीप से अर्थात् सातों द्वीपों से अनेक राजा आये। अनेक वीर और युद्ध में कुशल देवता तथा दैत्य भी मनुष्य शरीर धारण करके इस सीता स्वयंवर में आये।"

दो०- कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।।२५१।।

भा०- मानो मन को हरनेवाली सुन्दर पुत्री और बहुत बड़ी विजय तथा अत्यन्त कमनीय अर्थात् सब की कामना का विषय बनी हुई कीर्ति को पाने वाले और शिवधनुष तोड़ने वाले को विधाता ने नहीं बनाया।

कहहु काहु यह लाभ न भावा। काहुँ न शङ्कर चाप चढ़ावा।।
रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई।।

भा०- कहो, यह लाभ किसको नहीं भाता अर्थात् सभी सीताजी, विजयलक्ष्मी और अपूर्वकीर्ति के लोभी हो सकते हैं, परन्तु किसी ने भी शिव जी के धनुष पर डोरी नहीं चढ़ाई। अरे भाइयों! धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना और तोड़ना तो बहुत दूर रहा, कोई इसे तिल भर भूमि से भी नहीं छुड़ा पाया अर्थात, कोई इस धनुष से पृथ्वी को तिल भर भी नहीं अलग कर पाया।

अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।

भा०- अब कोई भी अपने को वीर–भट माननेवाला माख अर्थात् क्रोध न करे। मैंने इस पृथ्वी को वीरों से विहीन जान लिया है। हे राजाओं! आशा छोड़ दो, मैं धनुष तोड़े बिना सीता जी का किसी से विवाह नहीं करूँगा। सभी अपने–अपने घर चले जाओ। विधाता ने मुझ विदेह की पुत्री जानकी जी का विवाह नहीं लिखा है।

सुकृत जाइ जौ पन परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ।।
जौ जनतेउँ बिनु भट भूबि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई।।

भा०- यदि प्रतिज्ञा छोड़ दूँ, तो पुण्य चला जायेगा। बेटी कुमारी रह जाये, मैं क्या कर सकता हूँ? हे भाई! यदि मैं जानता की पृथ्वी वीरों से विहीन हो गयी है, तो प्रतिज्ञा करके हँसी का पात्र अथवा हँसी का हेतु नहीं बनता।

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहिं भए दुखारी।।
माखे लखन कुटिल भइँ भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें।।

भा०- जनक जी का वचन सुनकर और जनकनन्दिनी सीता जी को देखकर, सभी नर–नारी दुःखी हो गये। लक्ष्मण जी कुपित हो गये, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, उनके रदपट अर्थात् दाँतों के वस्त्र ओठ फड़कने लगे, नेत्र क्रोध से युक्त हो गये।

दो०- कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान।।२५२।।

भा०- वे रघुकुल के वीर श्रीराम के डर से कुछ कह नहीं रहे थे। जनक जी के वचन लक्ष्मण जी को बाण के समान लग गये। श्रीराम के चरणकमल में मस्तक नवाकर लक्ष्मण जी प्रमाणभूत वाणी बोले–

रघुबंशिन महँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई।।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी।।

भा०- जिस समाज में कोई भी रघुवंशी होता है, उस समाज में पृथ्वी वीरों से विहीन हो गयी है ऐसा कोई नहीं कहता, जैसा कि, रघुकुल में मणि के समान श्रेष्ठ परमवीर श्रीराम को इस सभा में विद्यमान जानकर भी राजा जनकजी ने अनुचित वाणी कही है।

विशेष– यहाँ विद्यमान शब्द से लक्ष्मण जी जनक जी की नैयायिकता पर संदेह कर रहे हैं, जैसे एक भी घट के विद्यमान रहने पर कोई भी *घटाभाववद् भूतलम्* नहीं कह सकता, उसी प्रकार श्रीराम की विद्यमानता में जनक जी का वीर विहीन मही मैं जानी कथन अत्यन्त आपत्तिजनक, अमर्यादित और अशास्त्रीय है।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ स्वभाव न कछु अभिमानू।।
जौ तुम्हार अनुशासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।।

भा०– हे सूर्यकुलरूप कमल के सूर्य राघवेन्द्र! सुनिये, मैं स्वभाव कह रहा हूँ, कोई गर्व नहीं। यदि मैं आपका आदेश पा जाऊँ, तो इस ब्रह्माण्ड को गेंद की भाँति उठा लूँ।

काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी।।
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।।

भा०– मैं उस ब्रह्माण्ड को कच्चे घड़े के समान फोड़ डालूँ, मैं सुमेरु पर्वत को मूली के समान तोड़ सकता हूँ। हे भगवन्! आप के प्रताप की महिमा से मेरे लिए बिचारा पुराना पिनाक धनुष क्या है ?

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन शत प्रमान लै धावौं।।

भा०– हे नाथ! ऐसा जानकर, आदेश हो तो मैं कौतुक करूँ और उसे भी आप देखिये की कमल के नाल के समान धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाऊँ और सौ योजन तक उसे लेकर दौड़ूँ।

दो०– तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ।।२५३।।

भा०– हे नाथ! आप के प्रताप के बल से मैं उस धनुष को बरसाती छत्ते के दंड के समान तोड़ सकता हूँ। यदि ऐसा नहीं कर सकूँ, तो आप के चरण की शपथ करके कहता हूँ कि, फिर अपने हाथ में धनुष नहीं धारण करूँगा।

लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।।
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने।।

भा०– जब लक्ष्मण जी क्रोध करके वचन बोले तब पृथ्वी डगमगा गयी अर्थात् भूकम्प आ गया और दिग्गज अर्थात् दिशाओं के हाथी भी डोल गये। सम्पूर्ण लोक में भय व्याप्त हो गया, सभी राजा डर गये, सीता जी के हृदय में हर्ष हुआ और जनक जी संकुचित हो गये।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं।।

भा०– गुरु विश्वामित्रजी, रघुकुल के स्वामी श्रीराम तथा अन्य सभी मुनिजन, लक्ष्मण के पराक्रमपूर्ण वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके शरीर में बार–बार रोमांच होता था।

सैनहि रघुपति लखन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे।।

भा०– श्रीरघुनाथ ने आँख के संकेत से लक्ष्मण जी को क्रोध के आवेश से रोका और प्रेम के साथ अपने निकट बिठा लिया।

बिश्वामित्र समय शुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी।।
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा।।

भा०– सुन्दर समय जानकर विश्वामित्र जी अत्यन्त स्नेहपूर्ण वाणी बोले, हे राम! अर्थात् राष्ट्र के मंगल ('रा' अर्थात् राष्ट्र 'म' अर्थात् मंगल) और सबको रमाने वाले राघव उठिये, शिव जी का धनुष तोड़िये। हे तात्! अर्थात् परमप्रेमास्पद, धनुर्भंग से जनक जी का कष्ट मिटा दीजिये।

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हरष बिषाद न कछु उर आवा।।
ठाढ़ भए उठि सहज सुहाए। ठवनि जुबा मृगराज लजाए।।

भा०– गुरुदेव विश्वामित्र जी का आदेशात्मक वचन सुनकर, प्रभु श्रीराम ने उनके चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम के हृदय में सीता जी की प्राप्ति का हर्ष तथा अपने प्रिय शिव जी के धनुष तोड़ने का विषाद इनमें से कुछ भी नहीं हुआ। स्वभाव से सुन्दर प्रभु श्रीराम उठकर मंच पर खड़े हो गये। वह अपनी ठवनि अर्थात् चलने की प्रक्रिया से युवक सिंह को भी लज्जित कर रहे थे।

दो०– उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।।२५४।।

भा०– जब मंच रूप उदयाचल पर श्रीराम रूप बालसूर्य उदित हुए तब सन्तरूप कमल विकसित हो गये (खिल गये) और सब के नेत्र रूप भ्रमर प्रसन्न हो गये।

नृपन केरि आशा निशि नाशी। बचन लखत अवली न प्रकाशी।।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।।

भा०– श्रीराम रूप बालसूर्य के उदित होते ही राजाओं की आशा रूप रात्रि नष्ट हो गयी और दुष्ट राजाओं की वचन नक्षत्रावली भी प्रकाशित नहीं हुई अर्थात् जैसे सूर्य के उदित होने पर रात्रि नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार राजाओं की सीता जी की प्राप्ति की आशा समाप्त हो गयी और जैसे सूर्योदय होने पर तारागण छिप जाते हैं, उसी प्रकार जब श्रीराम धनुष तोड़ने के लिए मंच पर खड़े हुए तब दुष्ट राजा के वचन भी समाप्त हो गये। सभी चुपचाप यह दृश्य देखने लगे। अहंकारी राजारूप कुमुदपुष्प संकुचित होकर सिकुड़ गये और कपटी राजारूप उल्लू छिप गये।

भए बिशोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।।
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन सन आयसु मांगा।।

भा०– मुनि और देवता रूप चकवे शोक से रहित हो गये। वे पुष्पों की वर्षा करके प्रभु के प्रति अपनी सेवायें प्रकट करने लगे। अनुरागपूर्वक गुरुदेव के चरणों की वन्दना करके श्रीराम ने मुनियों से धनुष तोड़ने की आज्ञा माँगी।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी।।
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तनु भए सुखारी।।

भा०– सारे संसार के स्वामी श्रीराम मतवाले मधुर श्रेष्ठ हाथी की चाल से अपनी स्वभाविक गति से चल पड़े। शिवधनुष तोड़ने के लिए भगवान् श्रीराम के चलते ही सभी नर–नारी शरीर में रोमांच से पूर्ण होकर सुखी हो गये।

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौ कछु पुन्य प्रभाव हमारे।।
तौ शिवधनुष मृनाल कि नाईं। तोरहुँ राम गणेश गोसाईं।।

भा०– रंगभूमि में बैठे सभी नर–नारियों ने पितरों और देवताओं को वन्दन करके अपने पूर्व में किये हुए सत्कर्मों का स्मरण किया और प्रार्थना करने लगे, "हे स्वामी गणेश जी यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो तो श्रीराम, शिवधनुष को कमल के दंड की भाँति तोड़ डालें।

दो०– रामहि प्रेम समेत लखि, सखिन समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बश, बचन कहइ बिलखाइ।।२५५।।

भा०– श्रीराम को प्रेम के सहित निहार कर सखियों को अपने समीप बुलाकर प्रभु पर वात्सल्यभाव से युक्त प्रेम के वश होकर, सीता जी की माता सुनयना जी विलख कर (दु:खी होकर) वचन कहने लगीं।

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे।।
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ए बालक अस हठ भल नाहीं।।

भा०– सखी! जो लोग भी मेरे हितैषी कहलाते हैं, वे सभी केवल खेल देखने वाले हैं। कोई भी महाराज के पास समझाकर नहीं कहता कि, यह (श्रीराम) बालक हैं। इनके लिए इस प्रकार का अर्थात् शिवधनुष तोड़ने का हठ अच्छा नहीं है।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।।
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं।।

भा०– जिस शिवधनुष को रावण और बाणासुर ने छुआ नहीं और स्वयंवर में आये हुए सभी राजा दर्प अर्थात् अभिमान करके जिससे हार गये, महाराज वही धनुष श्रीअवध के ग्यारह वर्षीय राजकुमार के हाथ में दे रहे हैं। क्या कहीं बालहंस अर्थात् हंस के शावक मंदराचल ग्रहण कर सकते हैं, अर्थात् उसे उठा सकते हैं? मंदराचल को उठाने के लिए तो कच्छप भगवान् की पीठ समर्थ है, अथवा गरुड़।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाइ न जानी।।
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी।।

भा०– हे सखी! महाराज की सम्पूर्ण चतुरता समाप्त हो चुकी है। विधाता की गति कुछ भी जानी नहीं जाती। अर्थात् वे क्या समझकर ऐसी व्यवस्था कर रहे होंगे, यह हम जैसे साधारण लोग नहीं जान पाते। चतुर सखी कोमल वाणी में बोली, हे महारानी जी! तेजस्वियों को छोटा करके नहीं गिनना चाहिये अर्थात् उनका आकार भले छोटा हो परन्तु प्रभाव बहुत बड़ा होता है।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु आपारा। सोषेउ सुजस सकल संसारा।।
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।।

भा०– देखिये, कहाँ छोटे से (चौरासी अंगुल के) महर्षि कुम्भज और कहाँ अपार अनेक हाथ गहरा सागर, फिर भी कुम्भज अर्थात् अगस्त्य जी ने उसे तीन आचमनों में सोख लिया। उनका सुयश सारे संसार में व्याप्त हो गया। सूर्यनारायण का मण्डल देखने में छोटा लगता है, परन्तु उन्हीं सूर्य का उदय होने से तीनों लोक का अन्धकार भाग जाता है।

दो०- मंत्र परम लघु जासु बश, बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहँ, बश कर अंकुश खर्ब।।२५६।।

भा०- जिसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता हैं, वह 'राम' यह महामंत्र भी तो बहुत छोटा है। अत्यन्त मतवाले विशाल हाथी को छोटा–सा अंकुश (बर्छी) वश में कर लेता है।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बश कीन्हे।।
देबि तजिय संशय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी।।

भा०- कामदेव ने अत्यन्त सामान्य कोमल पुष्प के धनुष–बाण लेकर सम्पूर्ण लोकों को अपने वश में कर लिया है। हे देवी! ऐसा जानकर संशय छोड़ दें, क्योंकि जिन पाँच तेजस्वियों की मैंने चर्चा की है, वे सब श्रीराम जी की विभूतियाँ हैं। यदि धनुष सागर के समान अपार है तो उस के लिए श्रीराम अगस्त्य मुनि हैं, उसे सोख लेंगे। यदि धनुष त्रिलोकी का अन्धकार है, तो उसके लिए श्रीराम बालसूर्यमण्डल हैं। यदि धनुष सर्वदेवमय हैं, तो श्रीराम इस द्वैक्षर महामंत्र के अर्थ हैं। यदि धनुष मतवाला हाथी है, तो श्रीराम अंकुश अर्थात् बर्छी हैं, उसे नियंत्रित कर लेंगे। यदि धनुष सम्पूर्ण संसार का समष्टिरूप है तो श्रीराम पुष्पधन्वा कामदेव हैं, इसलिए हे महारानी! सुनिये, श्रीराम जी धनुष तोड़ेंगे ही।

सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद बाढ़ि अति प्रीति।।
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही।।

भा०- सखी के वचन सुनकर सुनयना जी के मन में प्रभु श्रीराम की सर्वश्रेष्ठ तेजस्विता के प्रति विश्वास हो गया। उनका दु:ख मिट गया और हृदय में श्रीराम जी के प्रति भक्तिमूलक प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी। इसके पश्चात् शिव जी का धनुष तोड़ने के लिए मंच से नीचे आते हुए श्रीराम जी को देखकर, विदेहनन्दिनी सीता जी भयभीत हृदय से जिस किसी देवता से प्रार्थना करने लगीं।

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेश भवानी।।
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई।।

भा०- सीता जी व्याकुल होकर मन ही मन शिव जी एवं पार्वती जी को मनाने लगीं और बोलीं, हे शिव जी और पार्वतीजी! आप प्रसन्न हो जायें, मेरे द्वारा की हुई अपनी सेवा को तथा श्रीराम के प्रति अपने सेवकभाव को सफल कर दें। हमारा हित करके धनुष का भारीपन हर लें, अर्थात् उसे बहुत हल्का कर दें।

गननायक बरदायक देवा। आजु लगे किन्हिउँ तुअ सेवा।।
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी।।

भा०- हे देवताओं को भी वर देनेवाले भूतगणों और विघ्नगणों के भी नियन्ता श्री गणपति! आज के लिए ही मैंने तुम्हारी सेवा की है। मेरी बारम्बार विनती सुनकर धनुष की गुरुता अर्थात् भारीपन को बहुत थोड़ा बना दो।

दो०- देखि देखि रघुबीर तनु, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली शरीर।।२५७।।

भा०- रघुकुल के वीर श्रीराम के श्रीविग्रह को देख–देखकर धैर्य धारण करके श्रीसीता जी देवताओं को मना रही है अर्थात् विनय कर रही हैं। उनके निर्मल नेत्र प्रेम के अश्रु से भरे हैं एवं उनका शरीर रोमांच से युक्त है।

नीके निरखि नयन भरि शोभा। पितु पन सुमिरि बहुरि मन छोभा।।
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।।

भा०– नेत्र भर श्रीराम जी की शोभा को भलीभाँति निहार कर पिताश्री की प्रतिज्ञा का स्मरण कर फिर सीता जी का मन क्षुब्ध हो गया। सीता जी पश्चाताप की मुद्रा में बोलीं, अहह...खेद है। पिताश्री ने भयंकर प्रतिज्ञा कर ली है, वे लाभ और हानि कुछ भी नहीं समझ पा रहे हैं।

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई।।
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा। कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा।।

भा०– मन्त्रीगण भयभीत हैं पिताश्री को कोई भी शिक्षा नहीं दे रहा है। विद्वानों के समाज में बहुत बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ वज्र से अधिक काठोर शिवधनुष और कहाँ कोमल अंगवाले श्यामल किशोर प्रभु श्रीराम, यह कितनी विसंगति है।

बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कत बेधिय हीरा।।
सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि शंभुचाप गति तोरी।।

भा०– हे विधता! मैं हृदय में किस प्रकार धैर्य धारण करूँ। शिरीष के फूल से हीरा कैसे बेधा जा सकता है? इस समय सम्पूर्ण सभा की बुद्धि भोरी अर्थात् भ्रष्ट हो गयी है। हे शिवधनुष! मुझे तुम्हारा ही आश्रय है अर्थात् तुम स्वयं हल्के हो जाओ तो काम बन जाये।

निज जड़ता लोगन पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहिं निहारी।।
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग शत सम जाहीं।।

भा०– अपनी जटता को इन मिथिला के लोगों पर डालकर रघुवंश के पालक श्रीराम को सूक्ष्मता से देखकर उनकी भुजा की शक्ति के अनुसार हल्के हो जाओ अर्थात् श्रीरघुनाथ जितना भार उठा सकें तुम उतने ही भार से युक्त हो जाओ। सीता जी के मन में अत्यन्त दु:ख है, उनके लव निमेष अर्थात् क्षणों के भाग, सैकड़ों युगों के समान बीत रहे हैं।

दो०– प्रभुहिं चितव पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल।।२५८।।

भा०– सीता जी पहले प्रभु श्रीराम को देखती हैं फिर पृथ्वी को। उनके चंचल नेत्र भी सुन्दर लग रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डल रूप बाल्टी में कामदेव की दो मछली खेल रही हों।

विशेष– यहाँ सीता जी का मुखमण्डल चन्द्रमा है और वही बाल्टी है। अश्रुबिन्दु ही जल है और इधर–उधर दृष्टि डालने वाले सीता जी के दोनों नेत्र ही कामदेव की दो मछली हैं।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।।
लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना।।

भा०– सीता जी ने वाणीरूप भ्रमरी को मुखरूप कमल में रोक लिया है। वे लज्जारूप रात्रि को देखकर उसे प्रकट नहीं कर रही थीं। अथवा, वाणीरूप भ्रमरी को सीता जी के मुखरूप कमल ने ही रोक रखा है। वह लज्जारूप रात्रि को देखकर उस वाणीरूप भ्रमरवधू को प्रकट नहीं कर रहा है। सीता जी के नेत्रों के अश्रुबिन्दु नेत्रों के कोनों में रह गये हैं, जैसे बहुत बड़े कृपण का स्वर्ण उसकी पेटिका में छिपा हुआ होता है।

सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी।।
तन मन बचन मोर पन साँचा। रघुपति पद सरोज मन राँचा।।
तौ भगवान् सकल उर बासी। करिहैं मोहि रघुबर की दासी।।

भा०– अपनी बहुत बड़ी व्याकुलता जानकर भगवती सीता जी संकुचित हो गईं और धैर्य धारण करके अपने हृदय में दृढ़ विश्वास को ले आईं। उन्होंने स्वगत् कहा, यदि शरीर, मन तथा वचन से मेरी प्रतिज्ञा सत्य है और मेरा मन श्रीराम के चरणकमल में अनुरक्त है, तो सबके हृदय में निवास करनेवाले साकेताधिपति भगवान् श्रीराम मुझे रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम की दासी बनायेंगे ही।

जेहि के जेहिं पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।।

भा०– जिसको जिस पर सत्य स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है अर्थात् यदि मेरा प्रभु श्रीराम पर सत्य स्नेह होगा, तो वे मुझे मिलेंगे ही इसमें मुझे किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिये और मेरे स्नेह की सत्यता के आधार पर रघुनाथजी, शिवधनुष तोड़ेंगे ही।

प्रभु तन चितइ प्रेम पन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना।।
सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे।।

भा०– सीता जी ने प्रभु श्रीराम के शरीर को देखकर अपनी प्रेमपूर्ण प्रतिज्ञा को दृढ़ कर लिया। कृपा के कोश श्रीरामचन्द्र ने सब जान लिया। प्रभु श्रीराम ने सीता जी को निहारकर धनुष को किस प्रकार से देखा, जैसे गरुड़ छोटे से सर्प (सपोले) को देखते है।

दो०– लखन लखेउ रघुबंशमनि, ताकेउ हर को दंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मांड।।२५९।।

भा०– लक्ष्मण जी ने देख लिया कि, रघुवंश के रत्न श्रीरामचन्द्र ने शिव जी के धनुष को ताका अर्थात् तोड़ने की दृष्टि से देखा है। तब लक्ष्मणजी, भूकम्प की आशंका से ब्रह्माण्ड को अपने चरणों से दबाकर रोमांचित शरीर से पृथ्वी के धारण में नियुक्त परिकरों से यह वचन बोले–

दिशिकुंजरहुँ कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।।
राम चहहिं शङ्कर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।।

भा०– हे दिशाओं के हाथियों! हे कच्छप! हे शेष! हे वराह भगवान! आप सब धैर्य धारण करके पृथ्वी को धारण कीजिये, वह डगमगा न उठे। श्रीराम, शिव जी का धनुष तोड़ना चाहते हैं। सब लोग मेरा आदेश सुनकर सजग अर्थात् सावधान हो जाइये।

विशेष– इन्हीं पंक्तियों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि, लक्ष्मण जी शेषनाग के अवतार नहीं प्रत्युत् उनके अवतारी बैकुण्ठविहारी विष्णु हैं और उनके भी अंशी हैं परब्रह्म श्रीराम। जहाँ–जहाँ मानस में अहीषादि शब्द आये हैं वहाँ अहि अर्थात् शेषनाग का ईश्वर अर्थ ही समझना होगा।

चाप समीप राम जब आए। नर नारिन सुर सुकृत मनाए।।

भा०– जब भगवान् श्रीराम, शिवधनुष के पास आ गये। तब मिथिला के पुरुष और महिलाओं ने देवताओं और पुण्यों का स्मरण किया। अथवा, सुन्दर कर्मवाले देवताओं से प्रार्थना की।

विशेष- यहाँ सुकृति शब्द बहुव्रीहि से समस्त होकर सुर शब्द का विशेषण हुआ है। *शोभनानि कृतानि एषां ते सुकृताः।*

सब कर संशय अरु अग्यानू। मंद महीपन कर अभिमानू।।
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिवरन केरि कदराई।।
सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन कर दारुन दुख दावा।।
शंभुचाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई।।
राम बाहुबल सिंधु अपारा। चहत पार नहिं कोउ कनहारा।।

भा०- सभी का संशय और अज्ञान, मंदबुद्धि वाले राजाओं का अहंकार, परशुराम जी के गर्व की गुरुता (भारीपन), देवताओं, मनुष्यों और मुनियों की व्याकुलता, सीता जी का शोक, जनक जी का पश्चाताप, सुनयना आदि रानियों का असहनीय दावाग्नि के समान दुःख, ये सभी आठों मानसिक दुर्बलभाव अपना समाज बनाकर शिव जी के धनुष रूप बहुत बड़े जलपोत अर्थात् पानी के जहाज को प्राप्त करके जाकर चढ़ गये। ये सभी शिवधनुष रूप जहाज के द्वारा श्रीराम के बाहुबल रूप अपार सागर का पार पाना चाह रहे थे, परन्तु वहाँ कोई कर्णधार अर्थात् उस जहाज को खेनेवाला नहीं था। तात्पर्य यह है कि कुछ ही क्षणों में इन आठ संशयादि यात्री-समाजों के साथ शिवधनुष रूप जलपोत श्रीराम के भुजबल रूप सागर में डूबने ही वाला है, क्योंकि खेवैया के बिना जहाज का सागर में डूबना अवश्यम्भावी है।

दो०- राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिशेषि।।२६०।।

भा०- श्रीराम ने सभी लोगों को देखा और उन्हें चित्र में लिखे हुए के समान स्तब्ध देखकर फिर कृपायतन (कृपा के आश्रय) प्रभु ने सीता जी को निहारा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना।

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही।।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा तड़ागा।।
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने।।

भा०- प्रभु ने सीता जी को बहुत व्याकुल देखा। उनके लिए एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहे थे। प्रभु ने विचार किया कि पानी के बिना प्यासा यदि अपने शरीर को छोड़ ही देता है, तो उसके मरने पर अमृत का सरोवर क्या कर लेगा? अर्थात् उसके पूर्व की तलफलाहट के क्षण को सुख के क्षण में तो नहीं परिवर्तन कर सकेगा। इसी प्रकार, जब कृषि सूख ही गयी तो फिर वर्षा की क्या उपयोगिता? अतः समय चूक जाने पर पछताने से क्या लाभ?

अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिशेषी।।

भा०- ऐसा मन में जानकर भगवान् श्रीराम ने जानकी जी को देखा और सीता जी की विशेष प्रीति देखकर प्रभु पुलकित हो उठे।

गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने मन ही मन गुरुदेव विश्वामित्रजी, गुरु वशिष्ठ जी तथा त्रिभुवन गुरु शिव जी को प्रणाम किया। अतिलाघव अर्थात् अत्यन्त शीघ्रता से शिव जी के धनुष को उठा लिया। प्रभु ने जब शिवधनुष को लिया,

तब वह बिजली के समान चमक उठा, फिर धनुष आकाशमण्डल के समान मण्डलाकृति अर्थात् गोलाकार हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहुँ न लखा देख सब ठाढ़े।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।

भा०- धनुष को लेते, चढ़ाते तथा शीघ्रता और दृढ़ता से खींचते हुए प्रभु श्रीराम को किसी ने नहीं देखा, जबकि सभी लोग खड़े होकर देख रहे थे। इधर प्रभु श्रीराम ने जिस क्षण में धनुष को उठाया प्रत्यंचा चढ़ाई और खींचा उसी क्षण में श्रीराम ने खेलते-खेलते धनुष को मध्य भाग से तोड़ा अर्थात् चारों क्रियायें एक ही क्षण में सम्पन्न कर ली। धनुष के कठोर और भयंकर ध्वनि से चौदहों भुवन भर गये।

छं०- भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं।।

भा०- धनुर्भंग का कठोर और भयंकर शब्द चौदहों भुवन में भर गया। सूर्यनारायण के घोड़े अपने दक्षिण मार्ग को छोड़कर उत्तर मार्ग की ओर चल पड़े और समय से पूर्व सूर्यनारायण उत्तरायण में चले गये। दिशाओं के हाथी चिक्कार करने लगे। पृथ्वी हिलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमले अर्थात् हिलने-डुलने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि, सभी देवता, दैत्य और मुनिजन कान में हाथ की ऊंगली डाले हुए व्याकुल होकर विचार करने लगे। श्रीराम ने धनुष तोड़ा है ऐसा निश्चय करके, जय हो! जय हो! वचन का उच्चारण करने लगे।

सो०- शङ्कर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल।
बूड़ सो सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बश।।२६१।।

भा०- शिव जी का धनुष जहाज अर्थात् जलपोत के समान है, श्रीराम का भुजबल ही महासागर है। वह सम्पूर्ण समाज डूब गया। जो मोह के वश में होकर पहले ही उस जहाज पर चढ़ा था अर्थात् जो पहले मोहवश संशयादि आठ यात्रियों का समाज शिव जी के धनुषरूप जहाज पर चढ़ा था, वह श्रीराम की भुजाओं के बल रूप महासागर में जहाज के सहित डूब गया। भाव यह है कि, शिवधनुष को ही आश्रय मानकर सामान्य नर-नारियों ने संशय और अज्ञान किया था कि, श्रीराम शिवधनुष नहीं तोड़ सकेंगे, मूर्ख राजाओं ने अहंकार किया कि, शिवधनुष उनसे टूट जायेगा और परशुराम जी की गर्व-गरुता यह थी कि, मेरे अतिरिक्त और कोई शिवधनुष उठा ही नहीं सकता। देवताओं और मुनियों की भयपूर्ण व्याकुलता यह थी कि, यदि रावण ने शिवधनुष तोड़ा तब बड़ा अनर्थ हो जायेगा। प्रभु की सुकुमारता को लेकर सीता जी की चिन्ता, जनक जी का पश्चात ताप और सुनयना आदि महारानियों को दुःख था। इन आठों मानसिक यात्रियों का अवलम्बन था शिवधनुष रूप जलपोत। जब वही (शिव धनुष रूप जलपोत) श्रीराम के भुजबल रूप सागर में डूबा तब यह सब भी डूब गये। तात्पर्य यह है कि, शिवधनुष के टूटते ही सभी का संशय और अज्ञान नष्ट हुआ। राजाओं का अभिमान चूर हो गया। परशुराम जी का गर्व भंग हुआ। देवता और मुनियों की कातरता समाप्त हुई, सीता जी का शोक, जनक जी का पश्चात ताप और सुनयना आदि रानियों का दुःख मिट गया। यहाँ रूपक अलंकार का अद्भुत प्रयोग है।

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने धनुष तोड़कर उसके दोनों खण्डों को पृथ्वी पर फेंक दिया। यह देखकर सभी लोग बहुत सुखी हो गये।

कौशिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन।।
रामरूप राकेश निहारी। बढ़त बीचि पुलकावली भारी।।

भा०- प्रेम रूप अगाध सुन्दर जल से युक्त विश्वामित्र जी रूप सागर में श्रीरामरूप पूर्णिमा के चन्द्र को निहारकर विशाल रोमांच रूप तरंगें बढ़ गईं, अर्थात् विश्वामित्र जी ही अगाध समुद्र हैं, प्रेम ही वहाँ जल है, श्रीराम पूर्ण चन्द्रमा हैं और विश्वामित्र जी के शरीर का रोमांच ही समुद्र की लहरें हैं। जैसे जल से भरे हुए सागर में पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर ज्वार आता है और सागर में बड़ी लहरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार आज शिवधनुष तोड़ते हुए पूर्णचन्द्र के समान श्रीराम को निहार कर विश्वामित्र जी के शरीर में अत्यधिक रोमांच हो रहा है, अर्थात् प्रेम से उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना।।
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा। प्रभुहिं प्रशंसहिं देहिं अशीशा।।
बरषहिं सुमन रंग बहुमाला। गावहिं किन्नर गीत रसाला।।
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी।।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम शंभुधनु भारी।।

भा०- आकाश में गहगहे अर्थात् मिलित रूप में नगारे बिना किसी के बजाये ही अपने आप बज उठे। देवताओं की पत्नियाँ वैवाहिक मंगलगीत गा कर नाचने लगीं। ब्रह्मादि देवता कपिल आदि सिद्धगण, भृगु आदि महर्षिगण प्रभु की प्रशंसा करते हुए आशीष अर्थात् शुभकामनायें अर्पित करने लगे। वे बहुरंगें पुष्पों की मालाओं का वर्षण करने लगे और किन्नरगण मधुर गीत गाने लगे। सम्पूर्ण भुवनों में जय–जय वाणी ही भर रही थी और धनुषभंग की ध्वनि जानी ही नहीं जा रही थी अर्थात् लोगों के जय–जयकार शब्द ने धनुष टूटने के शब्द को सब के मन से भुलवा दिया। जहाँ–तहाँ मिथिलापुर के नर–नारी प्रसन्न होकर परस्पर कहने लगे कि, श्रीराम जी ने आज विशाल शिवधनुष तोड़ दिया।

दो०- बंदी मागध सूतगन, बिरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय धन मनि चीर।।२६२।।

भा०- धीरबुद्धि वाले बन्दी, समय के अनुसार यश गाने वाले मागध, राजा के वंश प्रशंसक और सूतजन अर्थात् पौराणिक जन, श्रीराम की गद्य–पद्यमयी स्तुति बोलने लगे। मिथिलापुर के सभी लोग हाथी, घोड़े धन, मणि और वस्त्र न्यौछावर कर रहे हैं।

विशेष- गद्यपद्यमयी राज्ञः स्तुतिर्विरुदमुच्यते अर्थात् गद्य और पद्य से युक्त राजा की स्तुति को विरुद कहते हैं।

झाँझ मृदंग शंख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई।।
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन मंगल गाए।।

भा०- झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल तथा सुहावने नगारे आदि बहुत से बाजे बज उठे और जहाँ तहाँ सौभाग्यवती नारियाँ मंगल गाने लगीं।

सखिन सहित हरषी सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी।।
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई।।

भा०– सखियों के सहित सुनयना आदि रानियाँ प्रसन्न हो उठीं, मानो सूखती हुई धान की खेती में पानी पड़ गया हो। राजा जनक जी ने भी शिव धनुर्भंग के अनन्तर चिन्ता छोड़ सुख प्राप्त किया, जैसे उन्होंने तैरते–तैरते थक कर अगाध सागर की थाह पा ली हो।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे।।
सीय सुखहिं बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती।।

भा०– धनुष के टूटने पर सभी राजा श्रीहत अर्थात् शोभा से हीन हो गये, जैसे दिन में दीपक छवि से रहित हो जाते हैं। सीता जी के सुख का वर्णन किस प्रकार से किया जाये? वे उतनी ही प्रसन्न हुईं, मानो स्वाति का जल पाकर चातकी प्रसन्न हो गयी हो।

रामहिं लखन बिलोकत कैसे। शशिहिं चकोर किशोरक जैसे।।
शतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहँ कीन्हा।।

भा०– श्रीराम को लक्ष्मण जी किस प्रकार से देख रहे हैं, जैसे चन्द्रमा को चकोर का शावक देखता है। तब शतानन्द जी ने सीता जी को श्रीराम को जयमाला पहनाने का आदेश दिया और सीता जी ने श्रीराम जी के पास गमन किया।

दो०– संग सखी सुंदरि चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुषमा अंग अपार।।२६३।।

भा०– उनके साथ में सभी सुन्दर सखियाँ दिव्यमंगलगीत गा रहीं हैं। सीता जी बालहंसिनी की चाल से श्रीराम के पास चलीं, उनके अंगों में अपार शोभा थी।

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी। छबिगन मध्य महाछबि जैसी।।
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिश्व बिजय शोभा जेहिं छाई।।

भा०– सखियों के बीच में सीता जी किस प्रकार शोभित हो रहीं हैं, जैसे छवियों के समूह के बीच में महाछवि हो। सीता जी के कर कमलों में जयमाला सुशोभित हो रही है, जिस पर विश्वविजय की शोभा छाई हुई है।

तन सँकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू।।
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।।

भा०– सीता जी के शरीर में संकोच और मन में परमउत्साह है। संकोच और उत्साह के सम्पुट में छिपा हुआ सीता जी का प्रेम (रत्न) किसी को भी नहीं दिख पड़ रहा है। सीता जी ने समीप जाकर श्रीराम जी की छवि देखी राजकुमारी मानो चित्र में लिखी हुई सी स्थिर रह गईं।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबश पहिराइ न जाई।।

भा०– सीता जी को स्थिर देखकर चतुर सखी ने समझाकर कहा, हे सीते! यह सुहावनी जयमाला श्रीराम को पहना दीजिये। सीता जी ने यह सुनते ही दोनों हाथों से जयमाला उठाई, प्रेम के विवश होने के कारण सीता जी से प्रभु को माला पहनायी नहीं जा रही है। उन्हें यह भय है कि, जयमाला पर मंडरा रहा भौंरा प्रभु को कहीं काट न ले। अथवा, जयमाला के पुष्पों का प्रभु को आघात नहीं लग जाये। अथवा, जयमाला पहनाने के पश्चात् प्रभु की शोभा का वियोग हो जायेगा।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। शशिहिं सभीत देत जयमाला।।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।।

भा०– मानो दण्ड के सहित सुशोभित हो रहे दो कमल भयभीत होकर चन्द्रमा को जयमाला अर्पित कर रहें हों। यह छवि देखकर सखियाँ गीत गा रही हैं। सीता जी ने श्रीराम के गले में जयमाला पहना दी।

दो०– रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुदगन।।२६४।।

भा०– रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम के वक्षस्थल पर विराजमान जयमाला देखकर देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। सभी राजा उसी प्रकार संकुचित हो गये, जैसे सूर्यनारायण को देखकर कुमुदों के समूह संकुचित हो जाते हैं।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे।।
सुर किन्नर नर नाग मुनीशा। जय जय जय कहि देहिं अशीशा।।

भा०– नगर और आकाश में मंगल वाद्य बज उठे। खल प्रकृति के लोग मलिन हो गये और साधु स्वभाव वाले लोग देदीप्यमान हो उठे। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और श्रेष्ठ मुनिगण जय हो! जय हो! जय हो! कहकर आशीर्वाद और शुभकामनायें देने लगे।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटी। बार बार कुसुमाञ्जलि छूटी।।
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरुदावलि उच्चरहीं।।

भा०– देवताओं की पत्नियाँ नाचने और गाने लगीं। आकाश से बार–बार पुष्पाञ्जलियों की वर्षा हुई। जहाँ–तहाँ ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे और बंदीजन विरुदावली का उच्चारण करने लगे।

महि पाताल नाक जस ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा।।
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी।।

भा०– पृथ्वी, पाताल और देवलोक में यह यश व्याप्त हो गया कि, श्रीराम जी ने धनुष को तोड़ा और सीता जी ने स्वयंवर में श्रीराम जी का वरण कर लिया। मिथिलापुर के सभी नर–नारी आरती करने लगे और अपना धन भूलकर न्यौछावर देने लगे।

सोहति सीय राम कै जोरी। छबि श्रृंगार मनहुँ एक ठौरी।।
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता।।

भा०– श्रीसीता जी एवं श्रीराम जी की जोड़ी सुशोभित हो रही है, मानो छवि और श्रृंगार एक स्थान पर एक दूसरे से सम्मानित हुए हैं। सखियाँ कहती हैं कि, हे सीते! प्रभु श्रीराम के चरण पकड़ लीजिए, पर अत्यन्त भयभीत होने के कारण सीता जी श्रीराम के चरणों का स्पर्श नहीं करती हैं।

दो०– गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंशमनि, प्रीति अलौकिक जानि।।२६५।।

भा०–महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या की गति का स्मरण करके सीता जी अपने हाथों से श्रीराम जी के चरणों का स्पर्श नहीं कर रही हैं। उन्हें यह भय हुआ कि, कहीं मेरे कंकण में लगे हुए मणि इनके चरणों के स्पर्श से नारी बन गये तो निरर्थक सौतनों का संकट होगा और उनको यह भी डर लगा कि, इनके चरणों का स्पर्श करके

अहल्या जी तपोलोक चली गईं और प्रभु के चरणकमलों से दूर हो गईं, कदाचित् इनका स्पर्श करके मैं प्रभु से दूर हो जाऊँगी तो बहुत अनर्थ होगा। इसलिए वियोग की अपेक्षा चरणों का स्पर्श नहीं करना ही श्रेयस्कर है। सीता जी के इस अलौकिक प्रेम को देखकर रघुवंश के मणि श्रीराम मन में मुस्कुराये।

* मासपारायण, सातवाँ विश्राम *

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे।।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे।।

भा०– तब सीता जी को देखकर स्वयंवर में आये हुए राजा उन्हें पाने के लिए इच्छुक हो उठे। क्रूर, कपूत अर्थात् कुत्सित संस्कारो से जन्मे हुए कुपुत्र, मोहग्रस्त राजागण, मन में कुपित हो उठे। वे भाग्यहीन अपने आसनों से उठकर युद्ध का कवच पहन कर जहाँ–तहाँ गाल बजाने लगे अर्थात् अनाप–शनाप बकने लगे।

लेहु छुड़ाई सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।।
तोरे धनुष चाड़ नहीं सरई। जीवत हमहिं कुअँरि को बरई।।

भा०– (कोई कहता है–) हम में से कोई सीता को राम के हाथ से छीन लो। अथवा सखियों के संरक्षण से अलग करके हरण कर लो। दोनों राजपुत्रों को पकड़ कर बाँध लो। धनुष तोड़ने से कोई कार्य नहीं बनता। हमारे जीते जी राजकुमारी का वरण कौन कर सकता है ?

जो बिदेह कछु करैं सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई।।

भा०– यदि राजा जनक कुछ सहायता करें तो उन्हें भी युद्ध में दोनों भाइयों के सहित जीत लो।

साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहि लाज लजानी।।
बल प्रताप बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई।।
सोइ शूरता की अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई।।

भा०– साधु राजा, दुष्ट राजाओं के वचन सुनकर बोले कि, इस निर्लज्ज राजसमाज को देखकर तो लज्जा भी लज्जित हो उठी है। तुम्हारा बल, प्रताप, तुम्हारी वीरता और बड़ाई तथा तुम्हारी नाक भी पिनाक धनुष के साथ चली गयी। क्या वह शूरता अभी कहीं से प्राप्त की है, जो धनुष तोड़ते समय नहीं थी ? इसी प्रकार की बुद्धि पर तो विधाता ने तुम सब के मुख पर काली स्याही लगा दी है।

दो०– देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इरिषा मद मोहु।
लखन रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु।।२६६।।

भा०– सब लोग ईर्ष्या, मद और मोह छोड़कर भर आँख श्रीराम के दर्शन करो। लक्ष्मण जी के क्रोध को प्रबल अग्नि समझकर उसके पतंगे मत बनो अर्थात् लक्ष्मण जी के क्रोधाग्नि में पंखे की भाँति मत जल जाओ।

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि शश चहै नाग अरि भागू।।
जिमि चह कुशल अकारन कोही। सुख संपदा चहै शिवद्रोही।।
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता की कामी लहई।।
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा।।

भा०– जिस प्रकार विनता के पुत्र गरुड़ का भोग कौआ चाहे, जैसे हाथियों के शत्रु सिंह के अंश की खरगोश इच्छा करे, जैसे बिना कारण के क्रोध करनेवाला कुशल चाहता हो, जैसे शिव जी का द्रोही सुख सम्पत्ति की

इच्छा करता हो, जैसे लोभी और विषयों का लोलुप कीर्ति की अभिलाषा करता हो। क्या किसी समय कामी निष्कलंकता को प्राप्त कर सकता है ? जैसे प्रभु श्रीराम के चरण से विमुख परमगति अर्थात् मोक्ष की आकांक्षा करता हो। हे राजाओं! सीता जी के प्रति तुम्हारा लालच उसी प्रकार असंगत और असंभव है।

विशेष– अर्थात् सीता जी को प्राप्त करने के लिए गरुड़ सिंह, क्रोधविजेता, शिवप्रिय, निर्लोभ, अलोलुप, निष्काम एवं श्रीवैष्णव–वृत्तिवाले महापुरुष की विशेषताओं की अपेक्षा है। इनमें से तुम लोगों के पास एक भी नहीं है, फिर किस आधार पर तुम सीता जी के लिए लालायित हो रहे हो? पूर्वोक्त छहों विशेषतायें एकमात्र प्रभु श्रीराम में ही हैं, क्योंकि इन विशेषताओं का सम्बन्ध, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य से है और ये छहों एकमात्र प्रभु श्रीराम में नित्य और निरन्तर विराजते हैं। इसी कारण अब से कुछ देर पहले आए लक्ष्मण जी प्रभु श्रीराम को भगवान् का सम्बोधन दे चुके हैं। यथा– *तव प्रताप महिमा भगवाना। –मानस, १.२५३.६।*

कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लिवाई गईं जहँ रानी।।
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेह बरनत मन माहीं।।

भा०– राजाओं का कोलाहल सुनकर सीता जी डर गईं। जहाँ रानियाँ थीं वहाँ सखियाँ उन्हें लिवा गईं। श्रीराम मन में सीता जी के स्नेह का वर्णन करते हुए स्वभावतः अर्थात् राजाओं के प्रति कोई भी प्रतिक्रिया किये बिना ही गुरु विश्वामित्र जी के पास चले गये।

रानिन सहित सोचबस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया।।
भूपबचन सुनि इत उत तकहीं। लखन राम डर बोलि न सकहीं।।

भा०– राजाओं के इस व्यवहार से सुनयना आदि रानियाँ तथा भगवती सीता जी चिन्ता के वश हो गईं और सोचने लगीं की इस समय विधाता को क्या करना उचित है? अथवा सभी पर अनुशासन करनेवाले विधि को श्रीराम से इस समय क्या कराना चाहिये? दुष्ट राजाओं से युद्ध अथवा गुरु विश्वामित्र जी की सेवा? राजाओं के वचन सुनकर लक्ष्मण जी इधर उधर कड़ी दृष्टि से देखते हैं, परन्तु श्रीराम जी के डर से कुछ बोल नहीं सक रहे हैं।

दो०– अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंघकिशोरहिं चोप।।२६७।।

भा०– लक्ष्मण जी भौंहें टेढ़ी करके लाल नेत्रों से क्रोधपूर्वक दुष्ट राजाओं को देख रहे हैं, मानो मतवाले हाथियों के झुण्ड को देखकर किशोर अर्थात् युवावस्था के निकट पहुँचे हुए सिंह के बच्चे को उत्साह हो गया हो।

खरभर देखि बिकल पुर नारी। सब मिलि देहिं महीपन गारी।।

भा०– नगर में खलबली देखकर मिथिलापुर की नारियाँ व्याकुल हो उठीं और सभी मिलकर दुष्ट राजाओं को गालियाँ देने लगीं।

तेहि अवसर सुनि शिव धनुभंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।।

भा०– उसी अवसर पर शिव धनुर्भंग का समाचार सुनकर भृगुकुल रूप कमल के पतंगा अर्थात् अपराह्न के सूर्य परशुराम जी आकाशमार्ग से मिथिलापुर की रंगभूमि में आये। उन्हें देखकर सभी राजा उसी प्रकार संकुचित होकर सिकुड़ गये, जैसे बाज पक्षी के झपटने पर छोटे लावा पक्षी छिप गये हों।

गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिशाल त्रिपुंड्र बिराजा।।
शीश जटा शशिबदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।।
बृषभ कंध उर बाहु बिशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला।।
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु शर कर कुठार कल काँधे।।

भा०– उनके गौर शरीर पर भस्म भली प्रकार शोभित हो रही थी। विशाल मस्तक पर त्रिपुंड्र विराजमान था। उनके सिर पर जटा और चन्द्र के समान मुख सुन्दर था, जो क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया था। उनकी भौंहे टेढ़ी और नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे, जो स्वभाव से निहारते हुए मानो क्रुद्ध हो रहे थे। बैल के समान उनका कंधा, हृदय और भुजायें विशाल, सुन्दर यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष की माला और सुन्दर मृगछाला भी उत्तरीय के रूप में विराजमान थी। उन्होंने अपने कटि प्रदेश में मुनिवस्त्र तथा दो तरकस बाँध रखे थे, उनके हाथ में बाण तथा धनुष और उनके स्कन्ध पर सुन्दर फरसा विराजमान था।

दो०– शांत बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ स्वरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप।।२६८।।

भा०– उनका वेश शान्त था, परन्तु कार्य बहुत कठिन थे। उनका यह विरुद्ध व्यक्तित्वों से सम्पन्न स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो मुनि का वेश धारण करके वीररस ही जहाँ सम्पूर्ण राजा हैं, वहाँ आ गया हो।

देखत भृगुपति बेष कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला।।
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा।।

भा०– भृगुकुल के स्वामी परशुराम जी के इस भयंकर वेश को देखकर सभी राजा भय से व्याकुल होकर उठ खड़े हुए। सभी राजा अपने पिताओं के समेत अपना–अपना नाम लेकर परशुराम जी को दण्डवत प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी।।

भा०– परशुरामजी, जिसको अपना प्रेमी तथा हितैषी और समर्थक जानकर सुन्दर भाव से भी देख लेते हैं, तो वह समझता है, मानो उसकी आयु समाप्त हो गयी हो।

जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा।।
आशिष दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी।।

भा०– फिर जनक जी ने आकर परशुराम जी को मस्तक नवाया और सीता जी को बुलाकर मुनि को प्रणाम कराया। परशुराम जी ने सीता जी को अखण्ड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। सखियाँ प्रसन्न हो गईं और सीता जी को चतुर सहेलियाँ अपने समाज में लेकर चलीं गयीं।

बिश्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई।।
राम लखन दशरथ के ढोटा। दीन्ह अशीष देखि भल जोटा।।

भा०– फिर विश्वामित्र जी आकर परशुराम जी से मिले। परशुराम जी के पिता जमदग्नि के मामा होने के कारण विश्वामित्र जी ने अपनी बहन के दौहित्र परशुराम जी को प्रणाम नहीं किया। मिलकर कुशल समाचार पूछ लिया और अहंकार की अतिशयता के कारण परशुराम जी ने भी विश्वामित्र जी को प्रणाम नहीं किया। तब विश्वामित्र जी ने दशरथ जी के किशोर पुत्र दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को परशुराम जी के चरणकमलों में डाल दिया। सुन्दर जोड़ी देखकर परशुराम जी ने भी श्रीराम–लक्ष्मण जी को अत्यन्त आयुष का आशीर्वाद दिया।

रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन।।

भा०– श्रीराम जी को निहारते हुए परशुराम जी के नेत्र अनेक कामदेव के मद को नष्ट करनेवाले प्रभु श्रीराम के अपार रूप सागर में स्थगित हो गये अर्थात् स्थिर हो गये।

दो०– बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोप शरीर।।२६९।।

भा०– फिर परशुराम जी जनक जी को सामने देखकर जान–बूझकर अंजान जैसे पूछ रहे हैं, कहो राजन्! इतनी भीड़ कैसी? प्रश्न करते–करते परशुराम जी के शरीर में क्रोध व्याप्त हो गया।

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए।।
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे।।

भा०– जिस कारण सम्पूर्ण राजा मिथिला नगर में आये थे, वह सब समाचार कह कर जनक जी ने सुनाया। जनक जी के वचन सुनकर परशुराम जी ने पीछे मुड़कर दूसरे स्थान पर निहारा तो उन्होंने पृथ्वी पर फेंके हुए शिव जी के धनुष के दो टुकड़े देखे।

अति रिसि बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केहिं तोरा।।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू।।

भा०– परशुराम जी अत्यन्त क्रोध से कठोर वचन बोले, अरे जनक! किस जड़ ने इस जड़ धनुष को तोड़ा। हे मूर्ख! शिव जी के धनुष को तोड़नेवाले को शीघ्र दिखा दे नहीं तो आज जहाँ तक तेरे राज्य की सीमा है, वहाँ तक की पृथ्वी को उलट दूँगा।

अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।।
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी।।

भा०– अत्यन्त डर के कारण जनकजी, परशुराम जी को उत्तर नहीं दे रहे हैं। कुटिल प्रकृति के राजा मन में बहुत प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग तथा मिथिलापुर के सभी नर–नारी चिन्ता कर रहे हैं। सबके मन में परशुराम जी का बहुत बड़ा भय है।

मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी।।
भृगुपति कर स्वभाव सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता।।

भा०– सीता जी की माता सुनयना जी मन में अत्यन्त पश्चात्ताप कर रही हैं। अब तो विधाता ने बनी हुई बात बिगाड़ दी अर्थात् सब कुछ अनुकूल करके प्रतिकूल कर डाला। परशुराम जी का स्वभाव सुनकर सीता जी के लिए आधा क्षण कल्प के समान बीत रहा था।

दो०- सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर।।२७०।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने सभी को भयभीत देखा। सीता जी को विशेष डरी हुई जानकर श्रीजी से नित्य समन्वित रघुकुल के वीर श्रीराघवसरकार बोले। उस समय प्रभु के हृदय में कुछ भी हर्ष या विषाद नहीं था।

नाथ शंभुधनु भंजनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।।
आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।।

भा०- हे नाथ! शिव जी का धनुष तोड़नेवाला कोई एक प्रधान आपका दास ही होगा। क्या आज्ञा है, आप मुझसे क्यों नहीं कहते? प्रभु का यह वचन सुनकर स्वभाव से क्रोधी मुनि परशुराम जी क्रुद्ध होते हुए बोले–

सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई।।
सुनहु राम जेहिं शिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहैं सब राजा।।

भा०- परशुराम जी बोले, हे राघव ! सेवक वह है, जो सेवा करता है। शत्रु के जैसा आचरण करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये। हे राम! सुनो, जिसने शिव जी का धनुष तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। वह (शिव धनुष तोड़ने वाला) राजसमाज छोड़कर स्वयं अलग हो जाये अथवा, यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन करना चाहते हो तो, इस राजसमाज से शिवधनुष तोड़नेवाले को अलग कर दो। यदि वह अलग नहीं होता, तो राजसमाज ही बिहाई अर्थात् उसे छोड़कर अलग हो जाये नहीं तो सभी राजा मारे जायेंगे।

सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने।।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिसि कीन्ह गोसाईं।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू।।

भा०- मुनि परशुराम जी के वचन सुनकर लक्ष्मण जी मुस्कुराये और सभी राजाओं का अपमान करनेवाले परशुराम जी से बोले, हे स्वामी! लड़कपन में हमनें धनुर्विद्या का अभ्यास करते समय बहुत से छोटे धनुषों को तोड़ा है। तब आपने कभी भी ऐसा क्रोध नहीं किया था। इस धनुष पर किस कारण आपको ममता है? यह सुनकर भृगुकुल के पताका स्वरूप परशुराम जी क्रुद्ध होकर बोले–

दो०- रे नृप बालक कालबश, बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार।।२७१।।

भा०- हे काल के वश में हुआ राजा का बालक! तुझे बोलते समय सँभार अर्थात् मर्यादाओं का ज्ञान नहीं रह रहा है। क्या सारे संसार में प्रसिद्ध त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी का धनुष, साधारण छोटी–छोटी धनुहियों के समान है अर्थात् हिमालय के तत्व से बने हुए जिस धनुष से छुटे हुए विष्णुरूप बाण ने शिव जी द्वारा त्रिपुरासुर को नष्ट कर डाला, उस पूजनीय धनुष की तुलना तू साधारण बालकों की खेलनेवाली धनुहियों से कर रहा है।

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।।
का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।।

भा०- लक्ष्मण जी ने हँस कर कहा, हे देव! सुनिये, मेरे संज्ञान में तो सभी धनुष समान हैं। उस पुराने पिनाक धनुष के तोड़ने से क्या हानि, लाभ अर्थात् आपकी क्या हानि हुई और श्रीराम को क्या लाभ हुआ? श्रीराम ने तो उस धनुष को नये के धोखे में देखा।

छुअत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू।।

भा०- वह धनुष प्रभु के स्पर्श करते ही अपने आप टूट गया अर्थात् शिवधनुष इतना पुराना हो चुका था कि, वह हमारे राघव जी के हाथ का हल्का स्पर्श भी नहीं सह पाया। उसमें रघुकुल के स्वामी श्रीराघवसरकार का कोई दोष नहीं है। हे वेदशास्त्रों का मनन करनेवाले मुनि! आप अकारण क्यों क्रोध कर रहे हैं ?

बोले चितइ परशु की ओरा। रे शठ सुनेहि स्वभाव न मोरा।।
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही।।

भा०- तब परशुराम जी अपने फरसे की ओर देखते हुए लक्ष्मण जी से बोले, अरे शठ! क्या तुमने मेरा स्वभाव नहीं सुना है? मैं तुझे बालक बोलकर अर्थात् बाल्यावस्था का जानकर नहीं मार रहा हूँ। अरे जड़! क्या तू मुझे मुनि मात्र जानता है?

बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिश्व बिदित छत्रियकुल द्रोही।।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्हीं। बिपुल बार महिदेवन दीन्हीं।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परशु बिलोकु महीपकुमारा।।

भा०- मैं संसार में प्रसिद्ध बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी, अत्यन्त क्रोधी और क्षत्रिय कुल का द्रोही हूँ अथवा क्षत्रिय कुल मेरा द्रोही रहा है। मैंने अपनी भुजाओं के बल से अनेक बार इस पृथ्वी को ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियों से हीन किया और अनेक बार उसे ब्राह्मणों को दान में दिया है। हे राजकुमार! सहस्रबाहु की एक हजार भुजाओं को काटने वाले मेरे इस फरसे को तो देख।

दो०- मातु पितहिं जनि सोचबश, करसि महीप किशोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परशु मोर अति घोर।।२७२।।

भा०- हे राजा दशरथ के किशोर पुत्र लक्ष्मण! अपने माता-पिता को शोकवश मत कर, क्योंकि मेरा अत्यन्त भयंकर फरसा गर्भों के बालकों को भी नष्ट करने वाला है।

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीश महा भटमानी।।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।

भा०- लक्ष्मण जी हँसकर कोमल वाणी में बोले, अहो! आश्चर्य है, हे मुनियों में श्रेष्ठ! आप अपने को बहुत बड़ा वीर मानते हैं। आप मुझे बारम्बार फरसा दिखा रहे हैं और अपनी फूँक से पहाड़ को भी उड़ाना चाहते हैं अर्थात् जो पर्वत बड़े-बड़े झंझावातों से नहीं उड़ते उस को आप अपने मुख के पवन से उड़ाना चाहते हैं।

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।।
देखि कुठार शरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना।।

भा०- यहाँ कोई छोटी सी कद्दू की बतिया (नवजात फल) नहीं है, जो तर्जनी अंगुली देखकर मर जाती है। आपके फरसे, धनुष और बाण तथा आपको भी अभिमान के सहित देखकर उसी के उत्तर में मैंने कुछ कहा।

विशेष- जनश्रुति यह है कि, कद्दू का दो-चार दिनों का फल तर्जनी अंगुली के दिखाने से मर जाता है।

भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिसि रोकी।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई।।

भा०- आप का भृगुकुल समझकर और आपके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत देखकर आप जो कुछ कह रहे हैं और जो कहेंगे वह सब मैं अपने क्रोध को रोक कर सह रहा हूँ और सहूँगा, क्योंकि देवता, ब्राह्मण, भगवान् के भक्त श्रीवैष्णव तथा गौ इन पर हमारे कुल में कोई सुराई अर्थात् सुरता नहीं दिखाई जाती।

बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे।।
कोटि कुलिश सम बचन तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।।

भा०- आप लोगों को मारने से पाप होगा और आप से हारने पर अपयश होगा, इसलिए आप के मारते हुए भी हम आप के चरण पर ही पड़ते हैं। हे भगवन! आपका वचन ही करोड़ों वज्रों के समान अमोघ और कठोर है, फिर आप धनुष, बाण और फरसे को निरर्थक ही धारण कर रहे हैं, अर्थात् अपने वचनों से ही प्रबल से प्रबल व्यक्ति को आहत या हत् कर सकते हैं, फिर इन शस्त्रों की क्या आवश्यकता?

दो०- जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंशमनि, बोले गिरा गभीर।।२७३।।

भा०- यदि फरसे और धनुष–बाण को देखकर, मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो तो, हे धैर्यवान् पूजनीय मुनिवर! आप क्षमा करें। यह सुनकर भृगुवंश के रत्न परशुराम जी क्रोध करके गम्भीर वचन अर्थात् गम्भीर अर्थोंवाली वाणी में बोले–

कौशिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल काल बश निजकुलघालक।।
भानु बंश राकेश कलंकू। निपट निरंकुश अबुध अशंकू।।
काल कवल होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं।।

भा०- हे विश्वामित्रजी! सुनिये, यह बालक अर्थात् लक्ष्मण, मन्दबुद्धिवाला, टेढ़ी प्रवृत्तिवाला, मृत्यु के वश तथा अपने कुल का नाशक है। यह सूर्यवंशरूप चन्द्र का कलंक है। यह अत्यन्त निरंकुश अर्थात् अनुशासन से रहित मूर्ख और निर्भीक है। यह क्षण भर में काल का ग्रास हो जायेगा। मैं पुकार कर अर्थात् जोर–जोर से ऊँचे स्वर में सुना कर कह रहा हूँ, फिर मेरा कोई दोष न होगा।

तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा।।

भा०- यदि आप इसको बचाना चाहते हैं तो, मेरे प्रताप, बल और क्रोध कहकर इसे मना कर दीजिये।

लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुमहि अछत को बरनै पारा।।
अपने मुँह तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।

भा०- लक्ष्मण जी ने कहा, हे मुनि परशुरामजी! आपका सुयश आपके रहते और कौन कह सकता है? आप ने अपने मुख से अपनी की हुई करनी को अनेक बार अनेक प्रकार से कहा है।

नहिं संतोष त पुनि कछु कहहू। जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू।।
बीरब्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा।।

भा०- यदि आपको संतोष नहीं हो रहा हो तो पुनः कुछ कहिये, अपने क्रोध रोककर असहनीय दुःख मत सहिये। आप वीरव्रती अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी, धीर अर्थात् विकारों के कारण के रहने पर भी न विकृत होनेवाले और अक्षोभ अर्थात् इन्द्रियों की चंचलता से रहित हैं। आप गाली देते हुए शोभा को नहीं पा रहे हैं। आपकी शोभा तो आशीर्वाद देने में है।

दो०- शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलापु।।२७४।।

भा०-शूरवीर लोग युद्ध में करनी अर्थात् रणकौशल करते हैं, परन्तु स्वयं कह कर उसे प्रकट नहीं करते। इसके विपरीत कायर लोग शत्रु को युद्धभूमि में पाकर प्रलाप करते हैं अर्थात् निरर्थक वाणी का प्रयोग करते हैं।

तुम तौ काल हाँकि जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा।।
सुनत लखन के बचन कठोरा। परशु सुधारि धरे कर घोरा।।

भा०- मानो आप काल को तो, पशु के समान हाँककर लाये हैं अर्थात् उसे रस्सी से बाँधकर घसीट लाये हैं, इसलिए इस काल पशु को बार–बार मेरे लिए बुला रहे हैं। लक्ष्मण जी के इस कठोर वचन को सुनकर परशुराम जी ने घोर फरसे को सुधार कर स्कंध के ऊपर से अपने हाथ में ले लिया।

अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुबादी बालक बधजोगू।।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनिहार भा साँचा।।

भा०- हे लोगों! अब मुझे दोष मत देना। कटु बोलनेवाला यह बालक बध के योग्य है। बालक जानकर इसे मैंने बहुत बचाया, परन्तु यह सत्य ही मरणहार अर्थात् मरने योग्य बन गया है। अथवा, मरण (मृत्यु) ही इसका हार बन गयी है।

विशेष- *मरणं हार: यस्य स मरणहार:* अर्थात् मृत्यु ही जिसका हार बन गयी हो वह मरणहार है।

कौशिक कहा छमिय अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू।।
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।।
उतर देत छाड़उँ बिनु मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे।।
न तु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उरिन होतेउँ श्रम थोरे।।

भा०- विश्वामित्र जी ने कहा, अपराध क्षमा कीजिये। साधुजन बालकों के गुण और दोष को नहीं गिनते। परशुराम जी ने कहा, मेरा फरसा कठोर है और मैं करुणा रहित और क्रोधी हूँ तथा मेरे आगे अपराध करने वाला गुरुद्रोही, मुझे उत्तर दे रहा है, फिर भी मैं आपके शील के कारण इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, नहीं तो इसे हठपूर्वक कठोर फरसे से काट कर थोड़े से ही श्रम में (गुरुद्रोही को) दण्ड देकर गुरुदेव से उऋण हो जाता।

दो०- गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरिअरइ सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहूँ न बूझ अबूझ।।२७५।।

भा०- विश्वामित्र जी ने हृदय में हँसकर कहा, मुनि परशुराम जी को हरियाली ही सूझ रही है और हरि अर्थात् भगवान् अरई अर्थात् शत्रुरूप से दिख रहे हैं। जिन प्रभु श्रीराम ने अजगव नामक शिव जी के धनुष को गन्ने के समान तोड़ डाला, उन प्रभु को अब भी यह अबोध परशुराम जी नहीं पहचान पा रहे हैं।

विशेष- *पिनाकोऽजगवं धनु:* अर्थात् जिस धनुष को श्रीराम ने तोड़ा उसके पिनाक और अजगव ये दो नाम थे।

कहेउ लखन मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा।।
माता पितहिं उऋन भए नीके। गुरु ऋन रहा सोच बड़ जीके।।
सो जनु हमरेहिं माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा।।
अब आनिय ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।।

भा०- लक्ष्मण जी ने कहा, हे मुनि परशुरामजी! आपके स्वभाव और चरित्र को कौन नहीं जानता? वह तो संसार में विदित ही है। लक्ष्मण जी काकुवक्रोक्ति में कहने लगे। भगवन्! आप माता और पिता से पूर्ण रूप में उऋण हो ही गये। आपके लिए गुरु का ही ऋण शेष रहा, इसलिए आपके मन को बहुत शोक है। वह ऋण मानो मेरे ही मस्तक के निमित्त लिया था। बहुत दिन बीत गये इसका बहुत बड़ा ब्याज (चक्रवृद्धि) बढ़ गया है। अब आप व्यवहरिया अर्थात् ऋण देनेवाला महाजन को बुला लाइये। मैं थैली (पैसों के सिक्कों की झोली) खोल कर तुरन्त ऋण देकर चुकता कर दूँ।

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा।।
भृगुवर परशु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही।।

भा०- लक्ष्मण जी के कटु वचन सुनकर, उन्हें मारने के लिए परशुराम जी ने फरसे को सुधार लिया। सम्पूर्ण सभा हाय! हाय! कहकर चिल्लाने लगी। लक्ष्मण जी बोले हे राजाओं के द्रोही परशुरामजी! आप मुझे फरसा दिखाते हैं। मैं ब्राह्मण विचार करके आपको बचा रहा हूँ।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े।।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखन निवारे।।

भा०- आप को कभी युद्ध में गम्भीर योद्धा नहीं मिला है। ब्राह्मण देवता! आप अपने घर के ही बड़े हैं अर्थात् अपनी माता और तीन भाइयों के समक्ष वीरता का प्रदर्शन करके आप बड़े हो गये। लक्ष्मण जी द्वारा इस प्रतिज्ञा के करते ही, यह वचन अनुचित है, लक्ष्मण जी को इतना कठोर वचन नहीं बोलना चाहिये ऐसा कहकर सब लोग चिल्लाने लगे, फिर प्रभु श्रीराम ने संकेत से लक्ष्मण जी को रोका।

दो०- लखन उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृशानु।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल भानु।।२७६।।

भा०- आहुति के समान लक्ष्मण जी के उत्तरों से परशुराम जी के क्रोधरूप अग्नि को बढ़ते देखकर रघुकुल के सूर्य भगवान् श्रीराम जल के समान वाणी बोले। जिससे परशुराम जी का क्रोधरूप अग्नि थोड़ा शान्त हो जाये।

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिय न कोहू।।
जौ पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तौ कि बराबरी करत अयाना।।

भा०- हे नाथ! बालक पर वात्सल्यपूर्ण स्नेह कीजिये। शुद्ध दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध मत कीजिये। यदि यह आपका कुछ भी प्रभाव जानता, तो यह अनजान आपकी बराबरी कैसे करता अर्थात् आपके सामने उत्तर कैसे देता?

जौ लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।।
करिय कृपा शिशु सेवक जानी। तुम सम शील धीर मुनि ग्यानी।।

भा०- यदि बालक कुछ अनुचित करता भी है तो गुरु, पिता, माता मन में अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। आप लक्ष्मण को बालसेवक जानकर कृपा कीजिये। आप स्वभाव से शमप्रधान अर्थात् शान्तिप्रिय, धीर अर्थात् विकाररहित और ज्ञानीमुनि हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने।।
हँसत देखि नख शिख रिसि ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी।।

भा०- श्रीराम जी का वचन सुनकर परशुराम जी कुछ शीतल अर्थात् शान्त हुए, फिर लक्ष्मण जी कुछ कह कर मुस्कुराये। लक्ष्मण जी को हँसते देखकर परशुराम जी का क्रोध उनके चरणों के नख से शिखापर्यन्त व्याप्त हो गया। वे बोले, हे राम! तेरा भ्राता तो बहुत पापी है।

गौर शरीर श्याम मन माहीं। कालकूट मुख पयमुख नाहीं।।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीच मीच सम देख न मोही।।

भा०- इसका शरीर तो गोरा है, पर मन से काला है। यह कालकूट अर्थात् विषमुहाँ है, दुधमुहाँ नहीं। यह स्वभाव से टेढ़ा है, तुम्हारा अनुगमन नहीं करता यह निकृष्ट बालक मुझे मृत्यु के समान नहीं देखता।

दो०- लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बश जन अनुचित करहिं, चरहिं बिश्व प्रतिकूल।।२७७।।

भा०- लक्ष्मण जी ने हँसकर कहा, हे मुनि! सुनिये, यह क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश होकर लोग अनुचित कार्य करते हैं और संसार के प्रतिकूल आचरण करते हैं।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया।।
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिय होइहिं पाँय पिराने।।

भा०- हे मुनियों के राजा परशुरामजी! मैं आपका अनुगामी सेवक हूँ, क्रोध छोड़ अब दया कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से तो नहीं जुड़ेगा। आप बैठ जायें, आपके चरण दुःख रहे होंगे।

जौ अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई।।
बोलत लखनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं।।

भा०- यदि यह धनुष आपको बहुत प्रिय है तो एक उपाय करना चाहिये, किसी बड़े गुणी अर्थात् बढ़ई को बुलवा कर इसे जुड़वा लेना चाहिये। लक्ष्मण जी के बोलते समय जनक जी बहुत डरते हैं और उनसे कहते हैं कि, आप चुप रहें, इतना अनुचित उत्तर अच्छा नहीं है।

थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट अति भारी।।
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिसि तन जरइ होइ बल हानी।।

भा०- मिथिलापुर के नर–नारी थर–थर काँप रहें हैं। मन में कहते हैं, छोटे राजकुमार तो बहुत खोटे हैं अर्थात् क्रोधी मुनि को चिढ़ा कर बहुत अनर्थ करा रहे हैं। परशुराम जी का शरीर लक्ष्मण जी की निर्भीक वाणी सुन–सुनकर क्रोध से जला जा रहा है अर्थात् उनके शरीर में क्रोध की ज्वाला उठ रही है और उनके बल की हानि होती जा रही है। भाव यह है कि लक्ष्मण जी के निर्भीक वचनों से परशुराम जी का क्रोध बढ़ रहा है और बल घट रहा है।

बोले रामहिं देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा।।
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिषरस भरा कनक घट जैसे।।

भा०- परशुराम जी श्रीराम जी को निहोरा अर्थात् उनके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए बोले, हे राघव! मैं, तुम्हारा छोटा भाई है ऐसा विचार करके इस लक्ष्मण को बचाता जा रहा हूँ। यह मन से मलिन और शरीर से सुन्दर किस प्रकार से है, जैसे विष के द्रव से भरा हुआ सुवर्ण का घड़ा अर्थात् इसका शरीर तो सुवर्ण के घड़े के समान है, पर मन विषाक्त है।

दो०- सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम।।२७८।।

भा०- परशुराम जी का यह वचन सुनकर लक्ष्मण जी फिर ठहाका लगाकर हँसे। तब श्रीराम ने लक्ष्मण जी को फटकार भरी कड़ी दृष्टि से देखा, जिससे लक्ष्मण जी संकुचित होकर प्रतिकूल वाणी छोड़ गुरुदेव विश्वामित्र जी के पास चले गये।

अति बिनीत मृदु शीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी।।
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिं काना।।

भा०- भगवान् श्रीराम दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र, शीतल और कोमल वाणी बोले, हे नाथ! सुनिये, आप स्वभावतः सुजान अर्थात् सुन्दर ज्ञान से सम्पन्न हैं। इस बालक का वचन अपने कानों का विषय मत बनाइये, अर्थात् अनसुनी कर दीजिये। (एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दीजिये।)

बर्रै बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत बिदूषहिं काऊ।।
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।।
कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं।।
कहिय बेगि जेहि बिधि रिसि जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई।।

भा०- बर्रै (काटने वाला मधुमक्खी की जाति का एक कीड़ा) और बालक ये दोनों एक ही प्रकृति के होते हैं। सन्त कभी भी इन्हें छेड़ते नहीं। उस बालक लक्ष्मण ने कुछ भी कार्य नहीं बिगाड़ा है। हे नाथ! आप का अपराधी तो मैं हूँ अर्थात् शिवधनुष मैंने तोड़ा है। आप दास की ही भाँति मुझ पर कृपा, क्रोध, वध (मृत्यु) की व्यवस्था अथवा बंध (बाँधने) का विधान कुछ भी करिये। हे मुनियों के नायक स्वामी! आप शीघ्र कहिये, जिस विधि से आपका क्रोध जाये, मैं वही उपाय करूँ।

कह मुनि राम जाइ रिसि कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।।
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तव मैं काह कोप करि कीन्हा।।

भा०-परशुराम जी ने कहा, हे राम! मेरा क्रोध कैसे जायेगा? इस समय भी तुम्हारा छोटा भाई अनुचित दृष्टि से ही देख रहा है। इसके गले पर फरसा नहीं दिया अर्थात् इसका गला फरसे से नहीं काटा, तब मैंने क्रोध करके किया ही क्या? अर्थात् मेरे क्रोध का कोई परिणाम ही नहीं निकला। उल्टे क्रोधी-क्रोधी कह कर मेरी निन्दा ही की गयी।

दो०- गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परशु अछत देखउँ जियत, बैरी भूपकिशोर।।२७९।।

भा०- जिस फरसे की भयंकर गति अर्थात् कीर्ति सुनकर राजपत्नियाँ गर्भपात कर देती हों उसी अपने फरसे के रहते हुए भी मैं अपने शत्रु किशोर राजपुत्र को जीवित देख रहा हूँ।

बहइ न हाथ दहइ रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती।।
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ।।

भा०- मेरे हाथ आगे नहीं बढ़ रहे हैं, मेरी छाती क्रोध से जली जा रही है। राजाओं को मारने वाला मेरा यह फरसा कुण्ठित हो गया है अर्थात् इसमें धार नहीं रही। विधाता प्रतिकूल हो गये, मेरा स्वभाव फिर गया अर्थात् उग्र से कोमल बन गया। मेरे हृदय में कब और क्यों कृपा अर्थात् आज कृपा का न तो समय है और न ही कोई कारण, फिर भी मुझमें आज कृपाण के स्थान पर कृपा आ गयी।

आजु दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहँसि सिर नावा।।
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला।।
जौ पै कृपा जरै मुनि गाता। क्रोध भए तनु राख बिधाता।।

भा०– आज दया ने मुझे असहनीय दुःख सहन कराया है। यह सुनकर सुमित्रा जी के पुत्र लक्ष्मण जी ने ठहाके से हँसकर, सिर नवाकर कहा, मुनिवर! आपकी कृपा रूप बयार आपकी मूर्ति के ही अनुकूल है। आप बचन बोल रहे हैं तो मानो फूल झड़ रहे हैं अर्थात् जैसे वायु के झकोरे से हिलते हुए वृक्ष से फूलझड़ी होती है, उसी प्रकार आपकी कृपा के प्रभाव से आपकी मूर्ति भी आपके मुख को माध्यम बनाकर वचनों की फूलझड़ी कर रही है। यदि कृपा के होने पर आपका शरीर जल रहा है, तो हे मुनि! क्रोध के होने पर तो आपके शरीर को विधाता ही रखें।

देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू।।
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा।।

भा०– परशुराम जी ने जनक जी को सम्बोधित करते हुए कहा, हे राजा जनक! देखो, यह बालक हठी है और यह जड़बुद्धि यमपुरी में अपना घर बनाना चाहता है। इसे शीघ्र मेरी आँखों से ओझल क्यों नहीं कर देते? यह राजकिशोर देखने में छोटा, पर बहुत खोटा है।

बिहँसे लखन कहा मुनि पाहीं। मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।।

भा०– लक्ष्मण जी हँसे और परशुराम जी से कहा, हे मुनिवर! आँख मूँद लीजिये, आँख मूँदने पर कहीं भी कोई नहीं दीख पड़ता क्योंकि मैं विराट् हूँ, आप से पृथक् हो ही नहीं सकूँगा।

दो०– परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शंभु शरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध।।२८०।।

भा०– तब परशुरामजी, भगवान् श्रीराम के प्रति क्रोधपूर्वक वचन बोले। अरे शठ! शिव जी का धनुष तोड़कर मेरा प्रबोध करता है अर्थात् मुझे सान्त्वना दे रहा है।

बंधु कहइ कटु सम्मत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे।।
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ु कहाउब रामा।।

भा०– तेरी ही सम्मति से तेरा छोटा भाई कटु वचन कहता जा रहा है और तू हाथ जोड़कर छलपूर्ण विनय कर रहा है। संग्राम में मेरा परितोष कर अर्थात् मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करके अपने पराक्रम से मुझे संतुष्ट कर, नहीं तो स्वयं को राम कहलाना छोड़ दे। (अर्थात् राम का वाच्य परब्रह्म ही मुझे युद्ध में संतुष्ट कर सकता है।)

छल तजि करहि समर शिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही।।
भृगुपति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए।।

भा०– हे शिवद्रोही! तू छल छोड़कर मुझसे द्वन्द्व युद्ध कर, नहीं तो तुझे तेरे छोटे भाई के साथ मार डालूँगा। परशुराम जी फरसा उठाकर बक रहे हैं अर्थात् मर्यादारहित वाक्य बोल रहे हैं और सिर नवाये हुए प्रभु श्रीराम मन में मुस्कुरा रहे हैं।

गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।।
टेढ़ जानि शंका सब काहू। बक्र चंद्रमहिं ग्रसइ न राहू।।

भा०– श्रीराम जी विचार कर रहे हैं कि, देखिये, इनके क्षत्रियदमन बलरूप गुण को, अपने वचनचातुर्य से लक्ष्मण ने नष्ट किया। फिर भी परशुराम जी मुझ पर क्रोध कर रहे हैं। कहीं–कहीं सरलता से भी बहुत दोष हो जाता है। लोक में भी टेढ़ा जानकर सभी को भय लगता है। राहु भी टेढ़े चन्द्रमा को नहीं ग्रसता।

विशेष:- *गुणं क्षत्रिय दमनोचित पराक्रमं बलं हन्ति इति गुणहः।* अर्थात् लक्ष्मण जी ने अपने निर्भीक वचनों से परशुराम जी में क्रोध का संचार किया, जिससे परशुराम जी का बल समाप्त हो गया। यथा– *भृगुपति सुनि सुनि निरभय वाणी। रिसि तन जरइ होइ बल हानी।।* मानस, १.२७८.६। अतः यहाँ *'गुनह'* शब्द फारसी भाषा का अपराध वाचक नहीं मानना चाहिये।

राम कहेउ रिसि तजिय मुनीशा। कर कुठार आगे यह शीशा।।
जेहिं रिसि जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानिय आपन अनुगामी।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा, हे मुनियों के ईश्वर परशुरामजी! आप क्रोध छोड़ दीजिये। आपके हाथ में फरसा और आपके ही समक्ष मेरा यह सिर, आपको कहीं दूर नहीं जाना है। हे स्वामी! जिस प्रकार से आप का क्रोध जा रहा हो, आप वही कीजिये। आपको मुझे अपना अनुगमन करनेवाला सेवक ही मानना चाहिये।

दो०- प्रभुहिं सेवकहिं समर कस, तजहु बिप्रवर रोष।
बेष बिलोकि कहेसि कछु, बालकहूँ नहिं दोष।।२८१।।

भा०– स्वामी और सेवक के बीच युद्ध कैसा? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! क्रोध छोड़ दीजिये, आप को क्षत्रियोचित् परिवेष में देखकर लक्ष्मण ने कुछ कह दिया। बालक लक्ष्मण का भी कोई दोष नहीं है।

देखि कुठार बान धनु धारी। भइ लरिकहिं रिसि बीर बिचारी।।
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा। बंश स्वभाव उतर तेहिं दीन्हा।।

भा०– आपको फरसा, बाण और धनुष धारण किये हुए देखकर और वीर विचार करके बालक को क्रोध हो गया होगा। वह आपका नाम जानता था, परन्तु उसने आपको पहचाना नहीं था। क्षत्रियवंश के स्वभाव के कारण आपके अनुचित वाक्यों का उसने प्रत्युत्तर दे दिया।

जौ तुम औतेहु मुनि की नाईं। पदरज सिर शिशु धरत गोसाईं।।
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय बिप्र उर कृपा घनेरी।।

भा०– हे स्वामी! यदि आप मुनि की भाँति आये होते तो यह बालक आपके चरणधूलि को सिर पर धारण करता। अज्ञान की इस चूक अर्थात् त्रुटि को क्षमा कीजिये। ब्राह्मण के हृदय में तो बहुत अधिक कृपा होनी चाहिये।

हमहिं तुमहिं सरबरि कसि नाथा। कहहु त कहाँ चरन कहँ माथा।।
राम मात्र लघु नाम हमारा। परशुसहित बड़ नाम तुम्हारा।।

भा०– हे नाथ! हमारी, आपकी क्या तुलना और हमारा आपका क्या वाद–विवाद? भला बताइये तो, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक अर्थात् मैं आपके चरण का सेवक हूँ और आप मस्तक के समान सब के पूज्य। सबसे छोटे की सबसे बड़े के साथ क्या तुलना? राम ('रा', 'म') यह दो अक्षर का सब से छोटा मेरा नाम और आपका तो परशु के साथ बहुत बड़ा पाँच अक्षरों का परशुराम नाम है। अतः परशुराम से राम की क्या तुलना और परशुराम को राम से क्या ईर्ष्या?

देव एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे।।
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे।।

भा०- हे देव! मेरे पास तो धनुष ही एकमात्र गुण है और आपके पास तो अत्यन्त पवित्र यज्ञोपवीत के शम, दम, तप, शौच, क्षान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये नौ गुण हैं। हम सब प्रकार से आप से हारे हुए हैं। हे ब्राह्मणदेव! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिये।

दो०- बार बार मुनि बिप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हँसि, तहूँ बंधु सम बाम।।२८२।।

भा०- इस प्रकार (परशुराम) को श्रीराम भगवान् ने बार-बार मुनि और विप्रवर कहा, तब भृगुवंश के स्वामी क्रोधपूर्वक बोले, तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है।

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही।।
चाप स्रुवा शर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृशानू।।
समिध सैन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पशु आई।।
मैं एहिं परशु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जग कोटिन कीन्हे।।

भा०- क्या तू मुझे केवल ब्राह्मण करके ही समझता है। मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, वह तुझे सुना रहा हूँ। मेरे धनुष को स्त्रुवा और उससे छूटने वाले बाणों को आहुति समझ। मेरा क्रोध अत्यन्त भयंकर अग्नि है। राजाओं की सुहावनी चतुरंगिणी सेनायें ही समिधा बनीं और बड़े-बड़े मूर्धाभिषिक्त पृथ्वीपति राजे-महाराजे ही बलि-पशु बने। मैंने इसी फरसे से काटकर बलि दिये और संसार में करोड़ों समरयज्ञ कर डाला।

मोर प्रभाव बिदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे।।
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा।।

भा०- मेरा प्रभाव तुझे विदित नहीं है, इसलिए ब्राह्मण के धोखे से मेरा अपमान करके तू बोलता रहा। धनुष तोड़ा तो तेरा बहुत गर्व बढ़ गया। तुझे अहंकार इतना है, मानो संसार को जीत कर खड़ा हुआ है।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी।।
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने कहा, वेद, शास्त्रों के तत्त्व को समझने वाले मननशील मुनि! आप विचार करके कहें, आपका क्रोध बहुत बड़ा है और हमारी भूल बहुत छोटी है। बहुत पुराना शिव जी का पिनाक धनुष मेरे स्पर्श करते ही टूट गया। मैंने उसमें कोई श्रम नहीं किया तो फिर मैं किस कारण अभिमान करूँ।

दो०- जौ हम निदरहिं बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय बश नावहिं माथ।।२८३।।

भा०- हे भृगुकुल के स्वामी परशुरामजी! सुनिये, यदि हम ब्राह्मण जानकर आप का अपमान करते हों तो हम सत्यप्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, इस संसार में ऐसा कौन सा सुन्दर वीर है, जिसे हम भयवश सिर नवायेंगे?

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना।।
जौ रन हमहिं पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ।।
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहिं पामर आना।।

कहउँ स्वभाव न कुलहिं प्रशंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।।
बिप्रवंश कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहिं डेराई।।

भा०– देवता, दैत्य, राजा और अनेक प्रकार के वीर इनमें कोई समान बलवाले हों अथवा, अधिक बलवान हों, जो भी हमें युद्ध में ललकारेगा उससे हम सुखपूर्वक युद्ध करेंगे। काल भी क्यों न हो क्षत्रिय शरीर धारण करके जो युद्ध में डरा, उस क्षत्रियाधम ने अपने कुल में कलंक ला दिया। मैं स्वभाव कहता हूँ, कुल की प्रशंसा नहीं करता हूँ। रघुवंशी लोग युद्ध में काल से भी नहीं डरते, फिर भी हम आप से डर रहे हैं और आपको प्रणाम कर रहे हैं। अत: ब्राह्मण जानकर हम आपका अपमान कर रहे हैं, यह आपका पूर्ण भ्रम है। ब्राह्मणवंश की ऐसी प्रभुता है कि, जो आपसे डरता है, वह सर्वत्र अभय हो जाता है। अथवा, जो अभय अर्थात् परमात्मा भी है, वह भी आप से डरता है।

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परशुधर मति के।।

भा०– इस प्रकार रघु अर्थात् सम्पूर्ण जीवजगत् मात्र के पति अर्थात् पालक भगवान् श्रीराम के कोमल किन्तु गोपनीय रहस्यों से भरे पिछले छः पंक्तियों में कहे हुए षडैश्वर्यबोधक वचन सुनकर परशुधर अर्थात् फरसा धारण करनेवाले परशुराम जी की बुद्धि के मोह के परदे खुल गये।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।।
देत चाप आपुहिं चढ़ि गयऊ। परशुराम मन बिसमय भयऊ।।

भा०– परशुराम जी बोले, हे राम (योगियों के रमण स्थान) सच्चिदानन्द, परब्रह्म परमात्मा आप लक्ष्मीपति विष्णु जी का यह धनुष मुझसे लीजिये इसे खींचिये और इस पर प्रत्यंचा चढ़ा दीजिए जिससे मेरा संदेह मिट जाये। यह कहकर प्रभु श्रीराम के हाथ में वैष्णव धनुष देते ही वह स्वयं चढ़ गया। परशुराम जी के मन में बहुत आश्चर्य हुआ।

दो०– जाना राम प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम अमात।।२८४।।

भा०– तब परशुराम जी ने भगवान् श्रीराम का प्रभाव जान लिया, उनका शरीर रोमांच से प्रफुल्लित हो गया, उनके हृदय में प्रेम नहीं समा रहा था। वे हाथ जोड़कर प्रभु श्रीराम से यह वचन बोले–

जय रघु बंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू।।
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी।।
बिनय शील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय शरीर छबि कोटि अनंगा।।
करौं काह मुख एक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हंसा।।
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता।।
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू।।

भा०– परशुराम जी बोले, हे रघुवंशरूप कमल के सूर्य! आपकी जय हो। हे अत्यन्त घने दैत्यरूप वन को जलाने के लिए अग्नि रूप प्रभो! आपकी जय हो। हे देवता, ब्राह्मण और गौओं के हितकारी! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम को हरनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। हे विनम्रता, शील, करुणा आदि गुणगणों के सागर और वचन रचना में अत्यन्त कुशल परमेश्वर! आपकी जय हो। हे सेवकों को सुख देनेवाले, हे सर्वांग

सुन्दर, हे करोड़ों कामदेवों के समान छवि से युक्त शरीर वाले परमात्मा! आपकी जय हो। मैं एक मुख से आपकी कैसे प्रशंसा करूँ? हे शिव जी के मन रूप मानस सरोवर के हंस! आपकी जय हो। मैंने आपको न जानकर, बहुत अनुचित कहा। हे क्षमा के मंदिर दोनों भ्राता श्रीराम–लक्ष्मण! आप मुझे क्षमा कीजिये। हे रघुकुल के पताकास्वरूप श्रीराम! आपकी जय हो। इस प्रकार नौ बार जय कहकर भृगुकुल के स्वामी परशुराम जी तपस्या के लिए वन को चले गये।

अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने।।

भा०– अपने ही भय से कुटिल राजा डर गये और वे कायर लोग जहाँ–तहाँ चुपके–चुपके भाग गये।

दो०– देवन दीन्हीं दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटेउ मोह भय शूल।।२८५।।

भा०– देवताओं ने नगारे बजाये और प्रभु श्रीराम पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। मिथिलापुर के सभी नर–नारी प्रसन्न हुए उनके मोह, भय और कष्ट मिट गये।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे।।
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिलबयनी।।

भा०– मिथिला में अत्यन्त घने मंगलवाद्य बजने लगे। सभी ने सुन्दर मंगल सजाये। यूथ–यूथ में मिलकर सुन्दर मुखोंवाली, सुन्दर नेत्रोंवाली, कोकिल के सामन बोलनेवाली मैथिलानियाँ मंगलगीत गाने लगीं।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जनम दरिद्र मनहुँ निधि पाई।।
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोरकुमारी।।

भा०– जनक जी के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो जन्मजात दरिद्र ने निधि प्राप्त कर ली हो। परशुराम जी का त्रास नष्ट हुआ, सीता जी सुखी हुईं, मानो चन्द्रमा के उदय होने पर चकोर की कुमारी प्रसन्न हो गयी हो।

जनक कीन्ह कौशिकहिं प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा।।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाई।।

भा०– जनक जी ने विश्वामित्र जी को प्रणाम किया और कहा कि, हे प्रभु! आपके प्रसाद से ही राम जी ने धनुष तोड़ा, अथवा, आपकी प्रसन्नता के लिए प्रभु श्रीराम ने धनुष तोड़ा अर्थात् शिवधनुष तो प्रभु श्रीराम के संकल्पमात्र से टूट गया होता और सीता जी तो उनकी शाश्वत धर्मपत्नी हैं ही, पर प्रभु ने धनुर्भंग–लीला आपकी प्रसन्नता के लिए की। हे स्वामी! दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण ने आज मुझे कृतकृत्य कर दिया, क्योंकि परशुराम मदभंग–प्रसंग से मुझे धनुष के क्षरत्व का, श्रीलक्ष्मण के अक्षरत्व का और श्रीराम के पुरुषोत्तमत्त्व का ज्ञान हो गया। अत: मैं कृतकृत्य हो गया। अब मेरे लिए जो उचित कर्त्तव्य हो आप वह कहें।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाह चाप आधीना।।
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू।।

भा०– मुनि विश्वामित्र जी ने कहा, हे चतुर नरेश जनकजी! सुनिये, आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार सीता जी का विवाह धनुष के आधीन था। धनुष के टूटते ही भगवती सीता जी का भगवान् श्रीराम से विवाह हो गया। यह तथ्य देवताओं, मुनियों और नागों को ज्ञात हो चुका है, फिर भी श्रीसीताराम नरलीला कर रहे हैं, अतएव, नरलोक के सुख के लिए वैदिक विवाहविधि होनी ही चाहिये।

दो०- तदपि जाइ तुम करहु अब, जथा बंश ब्यवहार।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुरु, बेदबिदित आचार।।२८६।।

भा०-फिर भी यहाँ से जाकर तुम, ब्राह्मणों, कुल के वृद्धों, अपने कुलगुरु याज्ञवल्क्यजी, और शतानन्द जी से पूछकर, जिस प्रकार तुम्हारे वंश का व्यवहार हो और जिस प्रकार वेदों में विदित ब्राह्मविवाह का आचार अर्थात् पद्धति हो वह सब करो।

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहिं बोलाई।।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला।।

भा०- तुम यहाँ से जाकर श्रीअवध के लिए दूत भेजो। वे चक्रवर्ती महाराज दशरथ को (वरयात्रा के विधान के अनुसार) बुला लायें। महाराज जनक जी ने प्रसन्न होकर कहा, हे कृपालु! बहुत अच्छा अर्थात् आपका सुझाव बहुत उचित है। यह कहकर, उसी समय विश्वामित्र जी के सामने ही, सत्यव्रत आदि दूतों को बुलाकर विश्वामित्र जी के हाथों लग्न पत्रिका लिखवाकर, दोनों के संयुक्त हस्ताक्षर से युक्त पत्रिका देकर महाराज जनक जी ने दूत श्रीअवध भेज दिये।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबनि सादर सिर नाए।।
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगर सवाँरहु चारिहुँ पासा।।

भा०- फिर जनक जी ने सभी महाजनों (निर्माणकुशल शिल्पियों) को बुलाया और सब ने आदरपूर्वक सिर नवाकर महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने आज्ञा दी, नगर और इसके चारों ओर वर्तमान बाजार, मार्ग, राजभवन तथा देवालयों को व्यवस्थित करके सजाओ।

हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए।।
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई।।

भा०- वे प्रसन्नतापूर्वक चले और अपने-अपने घर आये, फिर उन्होंने परिचारकों (अनुबंधकर्त्ताओं) को बुला भेजा और उनसे कहा, तुम लोग विशिष्ट चित्रोंवाले सुन्दर-सुन्दर वितानों (मण्डपों) को रच-रच कर बनाओ। वे सेवक भी महाजनों के वचनों को सिर पर धारण करके सुख पाकर चल पड़े।

पठए बोलि गुनी तिन नाना। जे बितान बिधि कुशल सुजाना।।
बिधिहि बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।।

भा०- उन लोगों ने भी अनेक शिल्पियों को बुला भेजा, जो मण्डप बनाने की विधि में चतुर और निपुण थे। उन्होंने ब्रह्मा जी की वन्दना करके निर्माण का कार्य आरम्भ किया और स्वर्ण के केले के खम्भे बनाये।

दो०- हरित मनिन के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल।।२८७।।

भा०- उन्होंने हरी-हरी मणियों (पन्ना) के पत्ते और फल बनाये। पद्मराग मणि के पीले-पीले पुष्प बनाये उनकी अत्यन्त विचित्र रचना देखकर वहाँ ब्रह्मा जी का मन भी भूल जाता था।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हें।।
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई।।
तेहि के रचि पचि बन्ध बनाए। बिच बिच मुक्ता दाम सुहाए।।

मानिक मरकत कुलिश पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा।।
किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा।।
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिए सब ठाढ़ीं।।
चौके भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं।।

दो०- सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि।।२८८।।

भा०- उन्होंने हरितमणि अर्थात् पन्ना से, सीधे और गाँठों के सहित सुन्दर सभी बाँस के वृक्ष बनाये, जो पहचान में ही नहीं आते थे कि, कृत्रिम हैं या स्वाभाविक। उन्होंने स्वर्ण की नागबेलि अर्थात् पान की लतायें बनायी, जो सुहावनी और सुन्दर पत्तों से युक्त होने के कारण पहचान में ही नहीं आती थी कि, वे वास्तविक हैं या अवास्तविक। उन्हीं के बीच–बीच में पच्चीकारी करके बन्ध बनाये और मध्य–मध्य में मुक्ता के, मोतियों की झालरें भी बनायी। लाल माणिक्य, नील मरकत, श्वेत हीरे और पीले पुखराज के कोणों को चीरकर पच्चीकारी के साथ लाल, नीले, पीले और श्वेत कमल बनाये। उनमें उन्होंने बहुत से भ्रमर और पक्षी भी बनाये, जो वायु के साथ मिलकर गुन्जार करते और बोलते थे। खम्भों में शिल्पियों ने देवताओं की प्रतिमायें गढ़ कर निकालीं। वे सभी (मूर्तियाँ) मंगलद्रव्य लिए खड़ी थीं। अनेक प्रकार की परमसुन्दर गजमुक्ताओं से पूर कर चौकें बनायी गयी थीं। मरकतमणि को कुरेद कर, उन्होंने बहुत सुन्दर आम के पल्लव भी बनाये। वहाँ रेशम की डोर में सुवर्ण के बौर (आम के फूल) और मरकतमणि के घवर (आम के फलों के झब्बे अर्थात् वृन्त) सुशोभित हो रहे थे।

रचे रुचिर बर बंदनवारे। मनहुँ मनोभव फंद सँवारे।।
मंगल कलश अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए।।

भा०- अनेक प्रकार के सुन्दर वंदनवार बनाये गये थे। मानो कामदेव ने लोगों को फँसाने के लिए अपने फन्दे सँवारे हों। अनेक प्रकार के मंगलकलश और सुहावनी ध्वजायें, पताकायें, सुन्दर वस्त्रों के परदे और झालरें तथा चामर भी सुशोभित थे।

दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना।।
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही।।

भा०- अनेक मणिमय दीपक भी बनाये गये और विचित्र मण्डपों का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस मण्डप में दुल्हन (विवाहोन्मुखी) सीता जी विराजेंगी उसका वर्णन कर सके ऐसी बुद्धि किस कवि के पास है?

दूलह राम रूप गुन सागर। सो बितान तिहुँ लोक उजागर।।
जनक भवन कै शोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी।।

भा०- जिस मण्डप में रूप और गुणों के सागर श्रीराम दूल्हा (वर) रूप में विराजमान होंगे, वह मण्डप तो तीनों लोकों में उजागर हो रहा है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ रूप में सुशोभित हो रहा है। महाराज जनक के भवन की जैसी शोभा थी, उसी प्रकार की शोभा जनकपुर के प्रत्येक गृह में दिख पड़ती थी।

जेहिं तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगै भुवन दस चारी।।
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा।।

भा०- उस समय (श्रीसीताराम विवाह के पूर्व) जिसने भी जनकपुर का निरीक्षण किया, उसको चौदहों भुवन जनकपुर की अपेक्षा छोटे ही लगे। सामान्य कोटि की प्रजा के घर में अथवा, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी के घर में जो संपत्ति शोभित हो रही थी उसे देखकर देवताओं के राजा इन्द्र भी मोहित हो जाते थे।

दो०- बसइ नगर जेहिं लक्ष्मि करि, कपट नारि बर बेष।
तेहि पुर की शोभा कहत, सकुचहिं शारद शेष।।२८९।।

भा०- जिस नगर में माया से श्रेष्ठ नारी का वेश बनाकर श्रीसीतारूपिणीं महालक्ष्मी विराजती हों अथवा, जिस नगर में भगवती आदिशक्ति श्रीसीता की सेवा करने के लिए वैकुण्ठ, क्षीरसागर और श्वेत द्वीप की लक्ष्मी जी ही माया से श्रेष्ठ नारी अर्थात् राजकुमारी का वेश बनाकर उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति के रूप में विराजती हैं, उस जनकपुर की शोभा कहने में सरस्वती जी और शेष भी संकुचित हो जाते हैं।

पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन।।
भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दशरथ नृप सुनि लिए बोलाई।।

भा०- सत्यव्रत आदि जनक जी के दूत, पवित्र श्रीरामपुर (श्रीअवध धाम) पहुँच गये। नगर को सुन्दर देखकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने चक्रवर्ती जी के राजद्वार पर जाकर प्रतिहारों द्वारा महाराज को अपने आने का समाचार दिया। महाराज ने सुनते ही जनकराज के दूतों को अपने पास बुला लिया।

करि प्रनाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।।
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती।।

भा०- जनक जी के दूतों ने प्रणाम करके, चक्रवर्ती जी को जनकराज की पत्रिका दी। महाराज ने प्रसन्न होकर सिंहासन से उठकर स्वयं पत्रिका ले ली। पत्रिका का वाचन करते हुए महाराज दशरथ जी के आँखों में आँसू आ गये। उनका शरीर रोमांचित हुआ और हृदय भर आया।

राम लखन उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी।।
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची।।

भा०- उनके हृदय में श्रीराम-लक्ष्मण और हाथ में श्रेष्ठ पत्रिका थी, इन दोनों के समागम से महाराज थोड़ी देर तक स्तब्ध रहे। पत्रिका में लिखे ताटका, मारीच, सुबाहु के आक्रमण, अहल्याश्रम का निरीक्षण, शिवधनुष की कठोरता, परशुराम के क्रोध जैसे खट्टे अर्थात् कटु समाचार पुनः राक्षसों पर विजय, अहल्योद्धार, शिव-धनुर्भंग, सीता-जयमाल समर्पण और परशुराम पराजय जैसे मीठे समाचारों को भी महाराज नहीं कह सके। फिर धैर्य धारण करके महाराज ने स्वयं पत्रिका का वाचन किया। सब बातें सत्य सुनकर राजसभा बहुत प्रसन्न हुई।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरत सहित लघु भाई।।
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते पाती आई।।

भा०- सरयू तट पर खेलते हुए, वहीं पर जनकराज की पत्रिका के आने का समाचार पाकर, छोटे भैया शत्रुघ्न के साथ भरत जी राजसभा में आ गये। अत्यन्त प्रेम से संकोच करके दशरथ जी से पूछने लगे, हे पिताश्री! यह पत्रिका कहाँ से आई है?

दो०- कुशल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहिं देश।
सुनि सनेह साने बचन, बाँची बहुरि नरेश।।२९०।।

भा०- पिता श्री बताईये, हमारे प्राण प्रिय दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण कुशल से किस देश में रह रहे हैं? इस प्रकार, भरत जी के प्रेम से सने हुए वचन सुनकर महाराज ने जनक जी की पत्रिका का फिर वाचन किया।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता।।
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिशेषी।।

भा०– पत्रिका सुनकर दोनों भाई श्रीभरत और श्रीशत्रुघ्न रोमांचित हो उठे। उनका अत्यधिक स्नेह उनके शरीर में नहीं समा रहा था। श्रीभरत की प्रभु श्रीराम पर पवित्र प्रीति देखकर सम्पूर्ण राजसभा ने विशेष सुख प्राप्त किया।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे।।
भैया कहहु कुशल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे।।

भा०–तब महाराज दशरथ जी ने दूतों को अपने निकट बैठा लिया और मधुर तथा सुन्दर वचन बोले, भैया! पहले अपना कुशल सुनाओ और यह बताओ कि, तुमने मेरे दोनों बालकों को सकुशल अपनी आँखों से निहारा है?

श्यामल गौर धरे धनु भाथा। बय किशोर कौशिक मुनि साथा।।
पहिचानहु तुम कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबश पुनि पुनि कह राऊ।।

भा०– वे श्यामल और गोरे वर्ण के हैं, धनुष और तरकस धारण करते हैं, उनकी किशोरावस्था है और वे ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी के साथ हैं। यदि तुम उन्हें पहचानते हो तो उनके स्वभाव का वर्णन करो, क्योंकि प्रभु श्रीराम के स्वभाव के जैसा स्वभाव त्रिलोक में किसी का नहीं है। इस प्रकार, प्रेम के विवश होकर महाराज ने बार–बार पूछा।

जा दिन ते मुनि गए लिवाई। तब ते आजु साँचि सुधि पाई।।
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने।।

भा०– जब से श्री विश्वामित्र जी मेरे पुत्रों को लेकर गये हैं, तब से आज ही मैंने सत्य समाचार पाया है। बताओ, जनक जी ने मेरे राघव जी को कैसे जाना? महाराज के प्रिय वचन सुनकर जनक जी के दूत मुस्कुरा पड़े।

दो०– सुनहु महीपति मुकुट मनि, तुम सम धन्य न कोउ।
राम लखन जिनके तनय, बिश्व बिभूषन दोउ।।२९१।।

भा०– हे राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती महाराज! सुनिये, आप के समान कोई भी प्राणी धन्य नहीं है। विश्व के आभूषणस्वरूप श्रीराम–लक्ष्मण जिन आप के दोनों पुत्र हैं।

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष सिंघ तिहुँ पुर उजियारे।।

भा०– महाराज पुरुषों में सिंह के समान तीनों लोक में प्रकाशमान आप के दोनों पुत्र श्रीराम–लक्ष्मण पूछने योग्य नहीं हैं।

जिन के जस प्रताप के आगे। शशि मलीन रबि शीतल लागे।।
तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हें। देखिय रबि कि दीप कर लीन्हें।।

भा०– जिनके यश और प्रताप के सामने चन्द्रमा मलिन और सूर्यनारायण शीतल लगने लगते हैं। हे नाथ! उनके लिए आप कहते हैं कि, उन्हें तुमने कैसे पहचाना? क्या हाथ में दीपक लेकर सूर्यनारायण को देखा जाता है? अर्थात् उनको देखने के लिए किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती।

सीय स्वयंबर भूप अनेका। सिमटे सुभट एक ते एका।।
शंभु शरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा।।

तीनि लोक महँ जे भटमानी। सब कै शक्ति शंभु धनु भानी।।
सकइ उठाइ शरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू।।
जेहि कौतुक शिव शैल उठावा। सोउ तेहि सभा पराभव पावा।।

भा०– सीता जी के स्वयंवर में अनेक राजा एक से एक सुन्दर भट योद्धा सिमट कर आये थे अर्थात् इकट्ठे हुए थे। शिव जी का धनुष कोई हिला भी नहीं सका और सभी बलवान वीर हार गये। तीनों लोक में जो भी भट माने जानेवाले अर्थात अपने को वीर मानने वाले योद्धा थे, शिव जी के धनुष ने सबकी शक्ति नष्ट कर दी। जो बाणासुर सुमेरु पर्वत को भी उठा सकता है, वह भी हृदय में हार कर शिवधनुष की परिक्रमा करके लौट गया। जिस रावण ने खेल–खेल में शिव जी के पर्वत कैलाश को उठा लिया था, उस रावण ने भी उस सीता स्वयंवर में पराभव अर्थात् अपमानजनक पराजय पायी।

दो०– तहाँ राम रघुबंश मनि, सुनिय महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकजनाल।।२९२।।

भा०– हे महाराज चक्रवर्तीजी! सुनिये, उस सीता–स्वयंवरसभा में रघुवंश के मणि श्रीराम ने शिवधनुष को बिना प्रयास के उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी कमल दण्ड को तोड़ डालता है।

सुनि सरोष भृगुनायक आए। बहुत भाँति तिन आँखि देखाए।।
देखि राम बल निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गमन बन कीन्हा।।

भा०– धनुर्भंग सुनकर परशुराम जी क्रोध करके उस सभा में आये और उन्होंने बहुत प्रकार से आँखें दिखायीं अर्थात् क्रोध प्रकट किया। फिर श्रीराम का बल देखकर उन्हें वैष्णवधनुष दिया और श्रीराम के कर कमल में उसे अपने आप ही चढ़ते देख कर श्रीराम की परीक्षा करके परशुराम जी ने उन्हें अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार से विनय करके वन के लिए प्रस्थान किया।

राजन राम अतुलबल जैसे। तेज निधान लखन पुनि तैसे।।
कंपहिं भूप बिलोकत जाके। जिमि गज हरि किशोर के ताके।।

भा०– हे राजन्! जिस प्रकार, श्रीराम अतुलनीय बलवाले हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण जी भी तेज के निधान अर्थात् कोष हैं। जिनके देखने से राजा उसी प्रकार कंपित हो जाते हैं, जैसे सिंह के बच्चे द्वारा कड़ी दृष्टि से देखने पर हाथी काँप जाते हैं।

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ।।

भा०– हे देव! आपके दोनों बालकों को देखकर अब कोई भी आँख के नीचे नहीं आता अर्थात् वे दोनों अद्वितीय हैं।

दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी।।
सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन देन निछावरि लागे।।
कहि अनीति ते मूँदेउ काना। धरम बिचारि सबहिं सुख माना।।

भा०– प्रेम–प्रताप और वीररस से पगी हुई जनकराज के दूतों की वचन रचना महाराज को बहुत प्रिय लगी। सभा सहित चक्रवर्ती महाराज प्रेम में मग्न हो गये और दूतों को न्यौछावर देने लगे, परन्तु दूतों ने अनीति कह कर अपने कान मूँद लिए अर्थात् दशरथ जी से कहा कि, सीता जी जैसे जनक जी की बेटी हैं, वैसे हमारी भी। श्रीअयोध्या सीता जी की ससुराल है, यहाँ हम देने के लिए आये हैं लेने के लिए नहीं, यहाँ से कुछ भी लेना

अनीति है। इस प्रकार की बात हम सुनना भी नहीं चाहते। इसलिए हम अपने कान बन्द कर रहे हैं। दूतों के इस धर्म का विचार करके सभी सभासद बहुत प्रसन्न हुए।

दो०- तब उठि भूप बशिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बोलाइ।।२९३।।

भा०- तब सिंहासन से उठकर महाराज ने जाकर वसिष्ठ जी को पत्रिका दी और दूतों को बुलाकर गुरुदेव को आदरपूर्वक सम्पूर्ण कथा सुनायी।

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई। पुन्य पुरुष कहँ महि सुख छाई।।
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए। धरमशील पहँ जाहिं सुहाए।।

भा०- सम्पूर्ण समाचार सुनकर के अत्यन्त सुख पाकर गुरुदेव वसिष्ठ जी बोले, पवित्र पुरुषों के लिए पृथ्वी सुखों से छायी रहती है। जैसे गंगा आदि सभी नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं, यद्यपि उसे कोई कामना नहीं होती, उसी प्रकार सभी सुख और संपत्तियाँ धर्मात्मा के पास बिना बुलाये ही चली जाती हैं।

तुम गुरु बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देबी।।
सुकृती तुम समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं।।

भा०- जैसे आप गुरु, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के सेवक हैं, उसी प्रकार कौसल्या देवी भी पवित्र हैं। हे राजन्! आपके समान पुण्यात्मा इस संसार में न हुआ, न है और न हीं कोई होगा।

तुम ते अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके।।
बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी।।
तुम कहँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना।।

भा०- हे राजन्! तुम्हारे समान बड़ा पुण्य किसका हो सकता है, जिनके श्रीराम जैसे पुत्र हों? आप के चारों श्रेष्ठ पुत्र वीर, विनम्र, धर्मव्रत धारण करने वाले गुणों के समुद्र हैं। आपके लिए सभी कालों में कल्याण ही कल्याण है। अब नगारे बजाकर बारात की तैयारी करो।

दो०- चलहु बेगि सुनि गुरु बचन, भलेहिं नाथ सिर नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन बास देवाइ।।२९४।।

भा०- जल्दी श्रीमिथिला चलो, गुरुदेव के ऐसे वचन सुनकर "ठीक है गुरुदेव, जैसी आज्ञा" कहकर, प्रणाम करके दूतों को निवास दिलवाकर, महाराज राजभवन चले गये।

राजा सब रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई।।
सुनि संदेश सकल हरषानी। अपर कथा सब भूप बखानी।।

भा०- महाराज ने सम्पूर्ण सात सौ रानियों के रनिवास को बुला लिया और स्वयं जनक जी की पत्रिका का वाचन करके सुनाया। संदेश सुनकर सभी रानियाँ प्रसन्न हुईं। अन्य सभी कथायें भी महाराज ने बखान कर सुनायी।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ शिखिनि सुनि बारिद बानी।।
मुदित अशीष देहिं गुरु नारी। अति आनंद मगन महतारी।।
लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती।।

भा०– प्रेम से प्रफुल्लित होकर रानियाँ इस प्रकार शोभित हो रही हैं, मानो वर्षाकालीन बादल की वाणी (गर्जना) सुनकर मयूरी प्रसन्न हो रही हो। गुरुपत्नी अरुंधती जी प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रहीं हैं। सभी मातायें आनन्द में अतिमग्न हैं। सभी रानियाँ परस्पर अत्यन्त प्रिय पत्रिका ले लेती हैं। उसे हृदय से लगाकर अपनी छाती को शीतल करती हैं अर्थात् पत्रिका के अक्षरों में रानियों को अक्षर परब्रह्म की अनुभूति हो रही है।

राम लखन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूपबर बरनी।।
मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन तब महिदेव बोलाए।।
दिए दान आनंद समेता। चले बिप्रवर आशिष देता।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने श्रीराम–लक्ष्मण की कीर्ति और उनके कर्मों का बारम्बार वर्णन किया और यह सब मुनि विश्वामित्र जी का प्रसाद है, ऐसा कहकर महाराज दशरथ जी दरबार में चले गये। तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और आनन्द के साथ उन्हें अनेक दान दिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण दान प्राप्त करके आशीर्वाद देते हुए राजभवन से चल पड़े।

सो०– जाचक लिए हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिर जीवहुँ सुत चारि, चक्रबर्ति दशरत्थ के।।२९५।।

भा०– महारानियों ने याचकों को बुला लिया और करोड़ों प्रकार से न्यौछावर दिया। याचकों ने कहा, चक्रवर्ती महाराज के चारों पुत्र (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) चिरंजीवी हों।

कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना।।
समाचार सब लोगन पाए। लागे घर घर होन बधाए।।

भा०– महाराज के चारों पुत्र चिरंजीवी हों, इस प्रकार कहकर, नाना प्रकार के वस्त्र पहने हुए याचकजन चल पड़े। सभी लोगों ने श्रीसीताराम–विवाह का समाचार पाया और श्रीअवध के घर–घर में बधावे अर्थात् उत्सव होने लगे।

भुवन चारि दस भरेउ उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिबाहू।।
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे।।
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि।।
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई।।

भा०– जनकनन्दिनी श्रीजानकी एवं रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के विवाह के उत्साह से चौदहों भुवन परिपूर्ण हो गये। श्रीराम के विवाह का शुभ समाचार सुनकर, अवध के लोग प्रेम में भर गये। वे मार्ग, घर तथा गलियों को सजाने लगे। यद्यपि श्रीअयोध्या भगवान, श्रीराम की पुरी, प्रचुर मंगलों से युक्त और सातों पुरियों में सभी से अत्यन्त पवित्र है, फिर भी यह तो सुहावनी प्रीति की रीति है, सबने मांगलिक रचनायें बनायीं।

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू।।
कनक कलश तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला।।
दो०– मंगलमय निज निज भवन, लोगन रचे बनाइ।।
बीथी सींचीं चतुरसम, चौके चारू पुराइ।।२९६।।

भा०– ध्वजा, पताका, सुन्दर वस्त्र और सुन्दर चामरों से अयोध्या का बाजार अत्यन्त विचित्र प्रकारों से ढँक दिया गया। स्वर्ण के कलश, तोरण, मणियों की झालरें, हल्दी, दूर्बा, दही, अक्षत, और सुन्दर मालायें ये सभी

मंगलमय पदार्थ लोगों ने अपने–अपने घरों में बना कर रखे। सभी गलियाँ कुमकुम, चंदन, केशर और अर्गजा इन के समान मात्रा से बने हुए चार द्रवों से सींची और सुन्दर चौके पुरायी गईं अर्थात् रची गयी।

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि।।
बिधुबदनी मृग शावक लोचनि। निज स्वरूप रति मान बिमोचनि।।
गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी।।

भा०– जहाँ–तहाँ अनेक समूहों में मिलकर सोलहों शृंगार करके, विद्युत के समान प्रकाश वाली सभी चन्द्रमुखियाँ तथा बालमृग के समान नेत्रोंवाली, अपने स्वरूप से काम की पत्नी रति के अहंकार को नष्ट करनेवाली, श्रीअवध की सुहावनी महिलायें कोमल वाणी में मंगलगीत गाने लगीं। उनके मधुर स्वर से कोकिलायें भी लज्जित हो गईं।

भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिश्वबिमोहन रचेउ बिताना।।
मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना।।

भा०– महाराज दशरथ का भवन कैसे बखाना जाये? वहाँ विश्व को विशेष रूप से मोहित करनेवाले मण्डप बनाये गये थे। वहाँ नाना प्रकार के सुन्दर मांगलिक द्रव्य सुशोभित थे और अनेक नगारे बज रहे थे।

कतहुँ बिरुद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं।।
गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नाम राम अरु सीता।।
बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा।।

भा०– कहीं बंदीजन विरुदावली का उच्चारण कर रहे हैं, कहीं ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे हैं। श्रीअवध की सुन्दरियाँ, श्रीराम और श्रीसीता का नाम लेकर विवाह के मांगलिक गीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है, उसके लिए महाराज दशरथ का भवन भी बहुत छोटा पड़ रहा है, मानो श्री अवध का उत्साह महाराज के भवन की सीमा को पार करके उमड़ कर चारों ओर चल पड़ा हो।

दो०– शोभा दशरथ भवन कइ, को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर शीश मनि, राम लीन्ह अवतार।।२९७।।

भा०– महाराज दशरथ के भवन की शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है? जिस घर में सम्पूर्ण देवताओं के शिरोमणि परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम अवतार लिए हैं।

भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई।।
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता।।

भा०–फिर महाराज ने भरत जी को बुला लिया और कहा, जाकर हाथी, घोड़े और रथों को सजवाओ और रघुवीर श्रीराम के बारात के लिए शीघ्र चलो। यह सुनकर दोनों भाई भरत जी और शत्रुघ्न जी रोमान्च से पूर्ण हो गये।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए।।
रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे।।

भा०– भरत जी ने सभी साहनियों अर्थात् अश्वपालकों को बुलाया और घोड़ों को सजाने की आज्ञा दी। वे (अश्वशालाओं के अध्यक्ष) प्रसन्न होकर उठ कर दौड़े। उन्होंने अनेक प्रकार के सुन्दर जीनों को रचकर घोड़े को सजाये। वे बहुरंगे श्रेष्ठ घोड़े सुशोभित हो रहे थे।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।।
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने।।

भा०– वे सभी घोड़े बड़े सुन्दर और चंचल क्रियाकलापों वाले थे। वे पृथ्वी पर इस प्रकार चरण रखते थे, जैसे वह जलता हुआ लोहा हो अर्थात् जैसे कोई जलते हुए लोहे पर बहुत देर तक पाँव नहीं टिका सकता, उसी प्रकार वे पृथ्वी पर जल्दी–जल्दी पाँव रखते और उठा लेते थे। वे घोड़े नाना जातियों के थे, जो बखाने नहीं जा सकते। मानो वायु का भी निरादर करके वे आकाश में उड़ना चाहते हों।

तिन सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा।।
सब सुन्दर सब भूषनधारी। कर शर चाप तून कटि भारी।।

भा०– उन्हीं घोड़ों पर भरत जी की समान अवस्थावाले सभी छैल अर्थात् नयी अवस्थावाले, चाकचिक्य प्रिय, सभी महाराज दशरथ के अधीनस्थ राजाओं के पुत्र सवार हुए। सभी सुन्दर थे, सभी ने आभूषण धारण किया था, सभी के हाथ में धनुष–बाण तथा कटि प्रदेश में विशाल तरकस बँधे थे।

दो०– छरे छबीले छयल सब, शूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रबीन।।२९८।।

भा०– सभी छरहरे अर्थात् गठीले शरीरवाले, सुन्दर सजे–धजे वीर ,चतुर और नयी अवस्थावाले, चटक–मटकवाले राजकुमार हैं। प्रत्येक अश्वारोही के साथ दो–दो पदचर पदाति (पैदल सैनिक) नियुक्त हैं, जो तलवार चलाने की कला में कुशल हैं।

बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े।।
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना।।

भा०– कठिन युद्धों में विरुदावली को धारण करनेवाले ऐसे वीर सैनिक, निकलकर नगर के बाहर खड़े हुए। वे नाना प्रकार की चालों में कुशल चतुर घोड़ों को फेर रहे हैं अर्थात् उन्हें चलने का अभ्यास करा रहे हैं। वे तथा उनके घोड़े ढोल तथा नगाड़ों की धुन सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

रथ सारथिन बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए।।
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु यान शोभा अप हरहीं।।

भा०– सारथियों ने भी ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणों को लाकर बहुत से विलक्षण चित्रों वाले रथों को सजाया। उनमें सुन्दर चामर धारण कर रहे हैं और अनेक किंकिणियाँ छन–छन की ध्वनि कर रही हैं। वे रथ सूर्यनारायण की रथ की शोभा का अपहरण कर रहे हैं।

श्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन रथन सारथिन जोते।।
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिनहिं बिलोकत मुनि मन मोहे।।

भा०– अयोध्या में जो श्यामकर्ण जाति के असंख्य घोड़े उपलब्ध थे, उन्हीं को जनकपुर जानेवाले उन रथों में सारथियों ने जोत दिया। वे श्यामकर्ण घोड़े अनेक प्रकार से सजे हुए सुशोभित हो रहे थे। जिन्हें देखते ही मुनियों के मन भी मोहित हो जाते थे।

जे जल चलहिं थलहिं की नाई। टाप न बूड़ बेग अधिकाई।।
अस्त्र शस्त्र सब साज बनाई। रथी सारथिन लिए बोलाई।।

भा०– जो श्यामकर्ण घोड़े जल में भी स्थल की भाँति चलते थे और अपनी वेग की अधिकता के कारण उनका टाप (नाल से लगा हुआ चरण) पानी में नहीं डूबता था। रथों में सब प्रकार से अस्त्र–शस्त्रों को सजाकर सारथियों ने रथियों को बुला लिया।

दो०- चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सबहिं, जो जेहि कारज जात।।२९९।।

भा०– रथों पर चढ़–चढ़कर नगर के बाहर रथियों की बारात इकट्ठी होने लगी। जो जिस कार्य के लिए जाता उन सबको, सुन्दर मांगलिक शकुन होते थे।

चौ०: कलित करिवरनि परीं अँबारी। कहि न जाहिं जेहिं भाँति सँवारी।।
चले मत्त गज घटा बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी।।

भा०– हाथियों पर सुन्दर हौदें सजायी गईं। वे जिस प्रकार सँवारी गयी थीं, उन्हें कहा नहीं जा सकता। चलते हुए मतवाले हाथियों की कतारें सुशोभित हो रही थीं, मानो श्रावण मास के सुन्दर मेघों की पंक्तियाँ चल रही हों।

बाहन अपर अनेक बिधाना। शिबिका सुभग सुखासन याना।।
तिन चढ़ि चले बिप्रवर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा।।

भा०– और भी अनेक प्रकार के वाहन, सुन्दर पालकियाँ और बैठने में सुखद अनेक विमान भी सजाये गये। उन पर चढ़कर ब्राह्मणवृन्द बारात के लिए चल पड़े, मानो वेद के छन्दों ने ही शरीर धारण कर लिए हों।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले यान चढ़ि जो जेहि लायक।।
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती।।

भा०– मागध (वंश प्रशंसक), सूत (पौराणिक गायक), बंदी (भाट) आदि गुणों के गायक, चारण, जो जिनके योग्य थे, वे सब उन वाहनों पर चढ़कर, श्रीराम के बारात में चल पड़े। बेसर अर्थात् अश्वतर (खच्चर), ऊँट और बहुत जातियों के बैल अनेक प्रकार की वस्तुयें पीठ पर धारण किये हुए चल पड़े।

कोटिन काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा।।
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साज समाज बनाई।।

भा०– करोड़ों काँवर में अनेक वस्तुयें जिन्हें कौन वर्णन कर सकता है, लेकर कँहार अर्थात् स्कन्ध भार (कंधों पर भार ढोने वाले सेवक) काँवर उठा–उठा कर चल पड़े। अपने–अपने समाज की सज्जा सजाकर सभी सेवकों के समूह चल पड़े।

दो०- सब के उर निर्भर हरष, पूरित पुलक शरीर।
कबहिं देखिबै नयन भरि, राम लखन दोउ बीर।।३००।।

भा०– सब के हृदय में निर्भर अर्थात् अपार हर्ष है। सभी के शरीर रोमांच से पूर्ण हैं। सभी यही मनोरथ कर रहे हैं कि, दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को हम आँख भर कब देखेंगे?

* मासपरायण, आठवाँ विश्राम *

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा।।
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निसाना। निज पराव कछु सुनिय न काना।।

भा०- हाथी गरज रहे हैं, उनकी घंटों की घनघोर ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथों के चलने की ध्वनि और घोड़ों की हिनहिनाहट हो रही है। बादलों को तिरस्कृत करके नगारे द्रुत ताल में धमाके से बज रहे हैं। अपना या पराया कुछ भी शब्द कान से सुनायी नहीं पड़ रहा है।

महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पषान पबारे।।
चढ़ी अटारिन देखहिं नारी। लिए आरती मंगल थारी।।

भा०-महाराज के द्वार पर बहुत भीड़ है, फेंके हुए पत्थर भी उस भीड़ के धक्का-मुक्की में टूट-टूट कर धूल होते जा रहे हैं। सुहागन नारियाँ थाल में मंगल आरती ली हुईं अट्टालिकाओं पर चढ़ी हुईं बारात की शोभा देख रही हैं।

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंद न जाइ बखाना।।
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी।।

भा०- श्रीअवध की नारियाँ नाना प्रकार के मंगल (चढ़ावे) के गीत गा रही हैं। वह अतिशय आनन्द बखाना नहीं जा सकता। तब सुमंत्र जी ने दो रथ सजाये और उनमें सूर्यनारायण के घोड़ों को भी निंदित करनेवाले सुन्दर घोड़े जोते।

विशेष- सुमंत्र, महाराज के व्यक्तिगत सारथी, अर्थशास्त्री और आठवें मंत्री भी थे।

दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने। नहिं शारद पहँ जाहिं बखाने।।
राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा।।

भा०- दोनों सुन्दर रथ सुमंत्र जी महाराज दशरथ के पास ले आये, जो सरस्वती जी के द्वारा भी बखाने नहीं जा सकते थे। एक रथ (जो महाराज के लिए लाया गया था) राजसमाज के अनुरूप सजाया गया था और दूसरा रथ वसिष्ठ जी के लिए था वह अत्यन्त तेजोमय सुशोभित हो रहा था अर्थात् वह श्रोत्रिय ब्राह्मणोचित् संध्यावंदन के पंचपात्र कुश, समिधा, अग्निहोत्र के उपकरणों और अग्नि से युक्त था।

दो०- तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ, हरषि चढ़ाइ नरेश।
आपु चढेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गणेश।।३०१।।

भा०- उसी तेजोमय द्वितीय रथ पर महर्षि वसिष्ठ जी को प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ कराके, महाराज स्वयं शिवजी, गुरुदेव, गौरी एवं गणेश को स्मरण करके अपने राजोचित् रथ पर चढ़े।

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर गुरु संग पुरंदर जैसे।।
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ।।
सुमिरि राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति शंख बजाई।।

भा०- वसिष्ठ जी सहित महाराज किस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे वृहस्पति के साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं। महाराज कुल की रीति और वेदविधि करके सब प्रकार के साज से युक्त बारातियों को देखकर, श्रीराम का स्मरण करके, गुरुदेव वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर, राजकीय शंख बजाकर मिथिलापुर के लिए चल पड़े।

हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता।।
भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे।।

भा०– बारात देखकर देवता प्रसन्न हुए और शुभमंगल देनेवाले पुष्पों की वर्षा करने लगे। कोलाहल होने लगा, हाथी और घोड़े गरजने लगे, आकाश और बारात में बाजे बजने लगे।

सुर नर नारि सुमंगल गाई। सरस राग बाजहिं सहनाई।।
घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं।।
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुशल कल गान सुजाना।।

भा०– देवियाँ और अवध की नारियाँ मंगलगीत गा उठीं। सुन्दर रसयुक्त मंगलराग में शहनाईयाँ बजने लगी। घंटा और छोटी घंटी की ध्वनि का वर्णन किया नहीं जा सकता। खेलने वाले अनेक प्रकार के व्यायाम से युक्त खेल कर रहे हैं और पताकायें फहरा रहे हैं। हास्य में कुशल और सुन्दर गान में चतुर विदूषकगण नाना प्रकार के विनोद भरे खेल कर रहे हैं।

दो०– तुरग नचावहिं कुअँर बर, अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बँधान।।३०२।।

भा०– मृदंगों और नगाड़ों को सुनकर श्रेष्ठ राजकुमार घोड़ों को नचा रहे हैं। घोड़े ताल बंधों से विचलित नहीं हो रहे हैं और चतुर नर्तकगण घोड़ों का नृत्य चकित होकर देख रहे हैं।

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुन्दर शुभदाता।।

भा०– जिस प्रकार से श्रीराम की बारात बन पड़ी है उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है। मंगल देनेवाले सुन्दर शकुन हो रहे हैं। उनमें से यहाँ बारह शकुनों का वर्णन किया जा रहा है।

चारा चाष बाम दिशि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब काहू पावा।।
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी।।
लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख शिशुहिं पियावा।।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्ह देखाई।।
छेमकरी कह छेम बिशेषी। श्यामा बाम सुतरु पर देखी।।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।।

भा०– (१) चाष अर्थात् नीलकंठ बारात के बायीं ओर चारा अर्थात् अपने खाने की वस्तु ले रहे हैं, मानो वह सभी मंगलों को कह दे रहे हैं। (२) दाहिनी ओर सुन्दर हरे–भरे खेत में सुन्दर कौआ, भुशुण्डि महाराज के रूप में विराजमान हैं। (३) सभी लोगों ने नकुल अर्थात् नेवले का दर्शन पाया। (४) अनुकूलता के साथ अर्थात् धूल नहीं उड़ाता हुआ शीतल मंद सुगंध वायु बह रहा है। (५) जल पूर्ण घड़े और छोटे बालक को गोद में लेकर सौभाग्यवती महिला बारात के सन्मुख आईं। (६) लोमड़ी ने बार–बार अपना स्वरूप दिखाया। (७) कामधेनु बारात के सन्मुख बछड़े को दूध पिलाती हुई दिखी। (८) हिरणों की पंक्ति बारात के दाहिने ओर से आई, मानो उसने मंगलों के समूहों के दर्शन करा दिये। (९) छेमकरी अर्थात् लाल रंग की चील विशेष कल्याण कह रही थी। (१०) बारात के बायीं ओर सुन्दर वृक्ष अर्थात् आम्रवृक्ष पर श्यामा अर्थात् कोयल चिड़िया दिखी। (११)

बारात के सामने दही और मछली आयी। (१२) हाथ में पुस्तक लिए हुए दो कुशल वेदपाठी ब्राह्मण ब्रह्मचारी दिखे।

विशेष- इन बारह शकुनों से भगवान् श्रीराम जी के चरित्र में बारह कल्याण के प्रसंग उपस्थित हुए। यथा– सकुशल विवाह–सम्पादन, सुखपूर्वक चित्रकूटनिवास, जयन्तनिग्रह, विराध–वध, शूर्पणखा विरूपीकरण, खर–दूषण–त्रिशिरा वध, मारीच–वध, हनुमान मिलन, बालि–वध, सेतुबन्ध, लंका विजय और राज्य प्राप्ति।

दो०- मंगलमय कल्यानमय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार।।३०३।।

भा०- मानो सत्य होने के लिए ही सभी मंगलमय, प्रचुर कल्याणों से युक्त, मनोवांछित फल देने वाले बारहों शकुन एक साथ उपस्थित हो गये।

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाके।।
राम सरिस बर दुलहिनि सीता। समधी दशरथ जनक पुनीता।।
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे।।

भा०- जिन दशरथ जी के सगुण–साकार ब्रह्म श्रीराम जैसे सुन्दर पुत्र हैं, उनके लिए तो सभी मंगल शकुन सुगम ही हैं। जिसमें श्रीराम जैसा वर, श्रीसीता जैसी वधू और दशरथ–जनक जैसे पवित्र समधी हों ऐसा विवाह सुनकर, सभी शकुन बारात के सामने नाच उठे। उन्होंने विचार किया कि, ब्रह्मा जी ने अब हमें सत्य बना दिया अर्थात् भगवान् श्रीराम को तो बारह सफलतायें मिलेंगी ही, चाहे हम उपस्थित रहें या न रहें, परन्तु इस विवाह में हमें उपस्थित करके विधाता ने हमें सत्य कर दिया।

एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना।।
आवत जानि भानुकुल केतू। सरितनि जनक बँधाए सेतू।।
बीच बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए।।
अशन शयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए।।
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन मंदिर भूले।।

भा०- इस प्रकार शकुनों और मंगलों के साथ श्रीराम की बारात ने श्रीअवध से श्रीमिथिला के लिए प्रस्थान किया। वहाँ हाथी, घोड़े गरज रहे हैं और नगारे बज रहे हैं। सूर्यकुल के पताका स्वरूप दशरथ जी को आते हुए जानकर, जनक जी ने मार्ग में पड़ने वाली नदियों में सेतु (पुल) बंधवा दिया। बीच–बीच में निवास के लिए सुन्दर विश्राम स्थल बनवाये गये, उनमें इन्द्रपुर के समान सभी सम्पत्तियाँ छा रही थीं। वहाँ सभी बाराती, भोजन, शैय्या, सुहावने सुन्दर वस्त्र, अपने–अपने मन के अनुकूल प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार, निरन्तर नवीन अपने अनुकूल, सुख के साधनों को देखकर, सभी बाराती अपने घरों को भूल गये अर्थात् मिथिला के मार्ग में ही उन्हें इतनी सुविधायें मिली कि, वे वहीं रमने लगे।

दो०- आवत जानिबरात बर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरँग, लेन चले अगवान।।३०४।।

भा०- श्रेष्ठ बारात को आती जानकर गहगहे अर्थात् प्रसन्नता भरे ऊँचे स्वर वाले नगाड़ों के वाद्य को सुनकर, मिथिला के अगवान लोग हाथी, रथ, पैदल और घोड़ों को सजाकर बारात की अगवानी लेने चले।

कनक कलश भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।।
भरे सुधासम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने।।
फल अनेक बर बस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई।।

भा०– स्वर्ण के कलश और परात तथा थालों में भर कर, अनेक प्रकार के सुन्दर पात्र, जिनमें अवर्णनीय अमृत के समान स्वाद वाले सभी पकवान भरे हुए थे। अनेक फल और सुन्दर–सुन्दर वस्तुयें, दशरथ जी को भेंट देने के लिए राजा जनक जी ने प्रसन्न होकर अगवानों के साथ भेजा।

भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु बिधि याना।।
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए।।
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा।।

भा०– पृथ्वी के पालक महाराज जनक जी ने अनेक आभूषण, वस्त्र, सुन्दर मणियाँ, पक्षी (तोता, मैना आदि), मृग (कृष्णसार आदि), हाथी, घोड़े बहुत प्रकार के वाहन, अनेक प्रकार के मांगलिक शकुन और सुगंधित पदार्थ भेजे। दही और चिउरे का अपार उपहार काँवरों में भर–भर कर कहाँर (स्कंधभार सेवक) लेकर चले।

अगवानन जब दीख बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।।
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन हने निसाना।।

भा०– जनकपुर के अगवानों ने जब श्री अवध की अपूर्व बारात देखी तब उनके हृदय में आनन्द उमड़ आया और शरीर रोमांच से भर गये। उधर बारातियों ने अगवानों के साथ उपहार की साज–सज्जायें देखकर प्रसन्न होकर नगारे बजाये।

दो०– हरषि परसपर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल।।३०५।।

भा०– अगवानों और बारात में से कुछ लोग प्रसन्न होकर परस्पर मिलने के लिए, पंक्ति तोड़कर चल पड़े मानो अपनी–अपनी मर्यादायें छोड़कर, दो आनन्द के सागर परस्पर मिल रहे हों।

बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं।।
बस्तु सकल राखी नृप आगे। बिनय कीन्ह तिन अति अनुरागे।।
प्रेम समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस जाचकनि दीन्हा।।
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लिवाई।।

भा०– पुष्प की वर्षा करके देवताओं की सुन्दरियाँ मंगल गीत गा रही हैं और देवता प्रसन्न होकर नगारे बजा रहे हैं। अगवानों ने महाराज जनक द्वारा भेजी हुई सभी वस्तुयें, महाराज दशरथ जी के समक्ष उपस्थित कर दीं और उन अगवानों ने जनक जी की भेंट स्वीकारने के लिए अत्यन्त अनुराग से पूर्ण होकर चक्रवर्ती जी से प्रार्थना की। अवध नरेश ने प्रेम के साथ जनक जी की सब वस्तुयें स्वीकर कर लीं। प्रसन्नता से पुरस्कार वितरित हुए और वे याचकों को दे दिये गये। अगवान लोगों ने बारात की पूजा, सम्मान और प्रशंसा करके उन्हें जनवास के लिए ले चले।

विशेष– बारात के विश्रामस्थान को जन्यवास अर्थात् जनवास कहते हैं, संस्कृत में बारात को जन्या तथा जन कहते हैं। इसी के अपभ्रंश रूप में गुजराती भाषा में बारात को जान कहा जाता है।

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धन मद परिहरहीं।।
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा।।

भा०– विचित्र वस्त्रों के पाँवड़े (अतिथियों के चरणों के नीचे बिछाये जाने वाले वस्त्र) पड़ रहे हैं अर्थात् बिछाये जा रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धन का मद छोड़ देते हैं। मैथिल अगवानों ने बारात को बहुत सुन्दर जनवास (विश्राम स्थान) दिया जहाँ सभी बारातियों के लिए सब प्रकार की सुविधायें थी।

जानी सिय बारात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई।।
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।

भा०– सीता जी ने यह जान लिया की जनकपुर में श्रीअवध से बारात आ गयी है, तब उन्होंने कुछ अपनी महिमा को प्रकट करके सूचित कर दिया। हृदय में स्मरण करके सीता जी ने सभी अणिमादि आठों सिद्धियों को बुला लिया तथा उन्हें चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी के आतिथ्य–सत्कार करने के लिए जनवासे में भेज दिया।

दो०– सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिए संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग बिलास।।३०६।।

भा०– सभी सिद्धियाँ, भगवती सीता जी का आदेश सुनकर, इन्द्रलोक की सभी संपत्तियाँ सुख के सभी साधन और सभी दिव्य भोग–विलासों के साधनों को लिए हुए, जहाँ चक्रवर्ती दशरथ जी के बारात को जनवास दिया गया था वहाँ गईं और प्रत्येक बारातियों के अनुकूल भवन बनाकर क्षण भर में स्वर्ग के सभी सुख उपस्थित कर दिये।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुरसुख सकल सुलभ सब भाँती।।
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना।।

भा०– अपने–अपने निवासस्थान में सब प्रकार से सभी स्वर्गलोक के सुखों को सुलभ देखकर भी किसी ने कुछ भी विभव का भेद नहीं जाना और सभी बाराती जनक जी की प्रशंसा करने लगे, अर्थात् सभी ने यह वैभव जनक जी का ही माना।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी।।

भा०– रघुकुल का उन्नयन करने वाले भगवान् श्रीराम सीता जी की महिमा जान गये और इस स्वागत का कारण समझकर प्रभु हृदय में बहुत प्रसन्न हुए।

पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंद अमाई।।
सकुचनि कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालच मन माहीं।।

भा०– पिता श्रीदशरथ का आगमन सुनते ही दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण के हृदय में अतिशय होने के कारण आनन्द समा नहीं रहा है। प्रभु संकोच के कारण गुरुदेव के समक्ष कुछ कह नहीं सक रहे हैं, परन्तु दोनों भाई के मन में पिताश्री के दर्शन करने का लोभ है।

बिश्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष बिशेषी।।
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए।।
चले जहाँ दशरथ जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पियासे।।

भा०- विश्वामित्र जी ने श्रीराम–लक्षमण की बहुत बड़ी विनम्रता देखी, तब उनके हृदय में विशेष संतोष उत्पन्न हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया। विश्वामित्र जी के अंग–अंग रोमांचित हो उठे और उनके अंबक अर्थात् नेत्र प्रेमाश्रु से पूर्ण हो गये। विश्वामित्र जी दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को लेकर वहाँ चले जहाँ जनवास में महाराज दशरथ जी विराज रहे थे, मानो प्यासे लोग सरोवर देखकर उसकी ओर बढ़ रहे हों, अर्थात् विश्वामित्र जी उतनी ही आतुरता से दशरथ जी के पास जा रहे हैं, जैसे प्यासा सरोवर के पास जाता है।

दो०- भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महँ, चले थाह सी लेत।।३०७।।

भा०- जिस समय महाराज दशरथ जी ने विश्वामित्र जी को अपने दोनों पुत्रों सहित अपने पास आते देखा, वे प्रसन्न होकर आसन से उठ गये और सुख के समुद्र में थाह लेते हुए से चल पड़े।

मुनिहिं दंडवत कीन्ह महीशा। बार बार पद रज धरि शीशा।।
कौशिक राउ लिए उर लाई। कहि आशिष पूछी कुशलाई।।

भा०- पृथ्वी के ईश्वर, राजा दशरथ जी ने चरणधूलि को मस्तक पर लगा कर मुनि विश्वामित्र को बार–बार दण्डवत् प्रणाम किया। विश्वामित्र जी ने महाराज दशरथ को अपने हृदय से लगा लिया और आशीर्वचन कह कर उनका कुशल समाचार पूछा।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई।।
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे।।

भा०- फिर दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को दण्डवत् करते हुए देखकर नरेश दशरथ जी के हृदय में सुख समा नहीं रहा था। उन्होंने दोनों पुत्रों को हृदय से लगाकर पुत्र वियोग से उत्पन्न असहनीय दुःख को मिटा दिया, मानो मृतक शरीर, अन्तर–बाह्य दोनों प्राणों से मिला हो।

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन नाए। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाए।।
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई। मन भावती आशिषें पाई।।

भा०- फिर श्रीराम–लक्ष्मण ने वसिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने प्रेम और प्रसन्नता से युक्त होकर दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों के समूहों को वंदन किया और उनसे मन को भाने वाले आशीर्वाद पाये।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा।।
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता।।

भा०- शत्रुघ्न जी के साथ भरत जी ने भगवान् श्रीराम को प्रणाम किया। श्रीराम ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। दोनों भ्राता श्रीभरत और श्रीशत्रुघ्न को देखकर श्रीलक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए और प्रेम से परिपूर्ण शरीर होकर मिले अर्थात् भरत जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए शत्रुघ्न जी को हृदय से लगाया।

दो०- पुरजन परिजन जातिजन, जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहिं प्रभु, परम कृपालु बिनीत।।३०८।।

भा०- अवधपुरवासी, परिवार के लोग, रघुवंश जाति के अन्य क्षत्रियजन, याचकजन, सुमंत्र आदि आठों मंत्री और अभिनन्दन आदि मित्र, इन सबको परमकृपालु विनम्र श्रीराम–लक्ष्मण विधि के अनुसार मिले अर्थात् बड़ों को प्रणाम किया, छोटों को आशीर्वाद दिया और समवयस्कों को गले से लगा लिया।

रामहिं देखि बरात जुड़ानी। प्रीति की रीति न जाति बखानी।।
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी।।

भा०- श्रीराम को देखकर सम्पूर्ण बारात शीतल हो गयी। अवधवासियों की प्रीति की रीति बखानी नहीं जाती है। महाराज दशरथ जी के समीप चारों पुत्र ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ने शरीर धारण कर लिया हो।

विशेष- यहाँ शत्रुघ्न जी अर्थ, लक्ष्मण जी धर्म, भरत जी काम और भगवान् श्रीराम को मोक्ष समझना चाहिये। यहाँ तथा दोहा क्रमांक ३२५ में उपमान के रूप में आया हुआ काम, स्त्री–पुरुष संयोगात्मक मिथुनधर्मी नहीं है, प्रत्युत् परमात्मा श्रीराम के श्रीचरणकमल के कैंकर्य की अभिलाषा ही काम है। वही पुरुष का प्राप्य है, मिथुनधर्मी काम तो प्राणी की सहजवृत्ति है। वह तो सूकर, कुक्कुर को भी सुलभ है, उसकी धर्मादि पुरुषार्थों के साथ गिनती नहीं की जा सकती और न ही की गयी है।

सुतन समेत दशरथहिं देखी। मुदित नगर नर नारि बिशेषी।।
सुमन बरषि सुर हनहिं निसाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना।।

भा०- चारों पुत्रों के सहित महाराज दशरथ जी को देखकर मिथिलानगर के नर–नारी विशेष प्रसन्न हुए। देवता पुष्पों की वर्षा करके नगारे बजा रहे हैं और स्वर्ग की नर्तकियाँ अर्थात् अप्सरायें मंगलगीत गाकर नाच रही हैं।

शतानंद अरु बिप्र सचिवगन। मागध सूत बिदुष बंदीजन।।
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना।।

भा०- बारात के सहित महाराज दशरथ ने शतानन्दजी, अन्य ब्राह्मण, जनक जी के मंत्रीगण, मिथिलापुर के मागध, सूत और विद्वान् बंदीजनों का सम्मान किया। महाराज दशरथ जी का आदेश पाकर, अगवानी लेने आये हुए अगवान लोग मिथिलापुर को लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई।।
ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निशि बिधि सन कहहीं।।

भा०- बारात विवाहमुहूर्त से पहले आई तथा सर्वप्रथम यह बारात मुहूर्त के अनुसार मिथिला में पधारी, इसलिए मिथिलापुर में अत्यन्त आनन्द हो रहा है। मिथिलापुर के नर–नारी ब्रह्मानन्द का अनुभव कर रहे हैं और विधाता से प्रार्थना करते हैं कि, ये दिन–रात और बढ़ जायें २४ घण्टों में भी न समाप्त हों, प्रत्युत् एक–एक दिन–रात अनगिनत घण्टों के हो जायें।

दो०- राम सीय शोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज।।३०९।।

भा०- जहाँ–तहाँ पुरुषों और महिलाओं के समाज मिलकर, अथवा, पुरुष–पुरुष से मिलकर और महिलायें–महिलाओं से मिलकर इस प्रकार कह रहे हैं कि, जैसे श्रीराम एवं श्रीसीता दोनों शोभा की सीमा हैं, उसी प्रकार दशरथ जी और जनक जी सुकृत अर्थात् सत्कर्मों की सीमा हैं।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दशरथ सुकृत राम धरि देही।।
इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे।।

भा०– सीताजी, जनक जी के पुण्यों की मूर्ति हैं और श्रीराम शरीरधारी दशरथ जी के सुपुत्र। इन दोनों (जनक जी और दशरथ जी) के समान किसी ने भी शिव जी की आराधना नहीं की और न ही किसी ने इनके समान पुण्यों का फल प्राप्त किया।

इन सम कोउ न भयेउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं।।
हम सब सकल सुकृत के रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी।।
जिन जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिशेषी।।
पुनि देखब रघुबीर बिबाहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू।।

भा०– महाराज जनक जी एवं महाराज दशरथ जी के समान संसार में न तो कोई हुआ, न है और न ही कहीं होनेवाला है। हम सभी सम्पूर्ण सुकृतों की राशि हैं, क्योंकि हम संसार में जन्म लेकर भी जनकपुर के वासी हुए, जिन्होंने श्रीसीताराम की युगलछवि रंगभूमि में जयमाला समर्पण के समय देखी। उन हम मिथिलावासियों के समान और कौन विशिष्ट सत्कर्म वाले हो सकते हैं? फिर हम श्रीसीता के साथ सम्पन्न होनेवाले श्रीराम का विवाह भी देखेंगे और भली प्रकार से नेत्रों का लाभ लेंगे।

कहहिं परसपर कोकिल बयनी। एहि बिबाह बड़ लाभ सुनयनी।।
बड़े भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई।।

भा०– कोकिल के समान बोलनेवाली सुन्दर नयनों वाली मिथिलानियाँ परस्पर कहने लगीं, हे सुनयनी (सुन्दर नेत्रों वाली सखियों)! इस विवाह से बहुत बड़ा लाभ होगा। हमारे बहुत बड़े भाग्य से विधाता ने बात बनायी। दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण हमारे नेत्रों के अतिथि (पाहुने) होंगे अर्थात् श्रीराम, सीता जी के पति होंगे और श्रीलक्ष्मण, उर्मिला जी के दूल्हा होंगे।

दो०– बारहिं बार सनेह बश, जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहैं बंधु दोउ, कोटि काम कमनीय।।३१०।।

भा०– पुत्री प्रेम के वश में होकर जनक जी बारम्बार सीता जी को मिथिला बुलायेंगे, तब करोड़ों कामदेव से भी अधिक सुन्दर और करोड़ों कामों के भी प्राप्ति की इच्छा के विषय दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण, सीता जी को लिवा जाने के लिए मिथिला आयेंगे।

बिबिध भाँति होइहिं पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई।।
तब तब राम लखनहिं निहारी। होइहैं सब पुर लोग सुखारी।।

भा०– हे माँ! यहाँ श्रीराम–लक्ष्मण की अनेक प्रकार से पहुनाई (आतिथ्य– सत्कार) होगी, ऐसी ससुराल किस को नहीं प्रिय होगी ? तब–तब श्रीराम–लक्ष्मण जी को देखकर सभी मिथिला के नर–नारी सुखी हो जायेंगे।

सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा।।
श्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए।।

भा०– हे सखी! जैसी श्रीराम–लक्ष्मण की जोड़ी है, उसी प्रकार महाराज दशरथ जी के संग भी दो राजकुमार आये हैं। वे भी साँवले और गोरे तथा सब अंगों से सुन्दर हैं, जो देखकर आये हैं, वे ऐसा कहते हैं।

कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे।।
भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी।।

भा०– एक ने कहा, मैंने तो आज ही देखा है, मानो ब्रह्मा जी ने उन चारों राजकुमारों को अपने हाथ से सजाकर बनाया है। श्रीभरत, श्रीराम के ही समान हैं। कोई भी नर–नारी सहसा इनका भेद नहीं देख सकते।

लखन शत्रुसूदन एकरूपा। नख शिख ते सब अंग अनूपा।।
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं।।

भा०– श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न समान रूप के हैं। नख से शिखापर्यन्त इनके सभी अंग उपमारहित और सुन्दर हैं। ये मन को भाते हैं, मुख से वर्णन नहीं किये जा सकते। इन चारों भाइयों की उपमा के लिए तीनों लोकों में कोई उपमान नहीं है।

छं०: उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या शील शोभा सिंधु इन से एइ अहैं।।
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहिं बिनय सुनावहीं।
ब्याहियहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं।।

भा०– तुलसीदास जी कहते हैं कि, कवि और कोविद अर्थात् वेदज्ञ विद्वान् कहते हैं कि, कहीं भी कोई भी इनका उपमान नहीं है। बल, विद्या, विनय और शील (स्वभाव और सदवृत्ति) तथा शोभा के सागर इन चारों भाइयों के समान ये ही हैं। यही यहाँ अनन्वय है। सभी मिथिलापुर की नारियाँ आँचल फैलाकर ब्रह्मा जी को सुनाकर विनती करती हैं कि, हे परमेश्वर! ये चारों भाई (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) इसी जनकपुर में श्रीसीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति के साथ विवाहित हों और हम मिथिलानियाँ सुन्दर मंगलगीत गायें।

सो०– कहहिं परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।।३११।।

भा०– नेत्रों में अश्रु भरकर रोमांचित शरीर वाली सभी मिथिलानियाँ परस्पर कह रही हैं, हे सखी! भगवान् शिव जी सब कुछ सम्पन्न करेंगे, क्योंकि दोनों महाराज जनक जी और दशरथ जी पुण्यों के सागर हैं।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं।।

भा०– इसी प्रकार सब लोग मनोरथ कर रहे हैं और बार–बार उमड़ रहे आनन्द से अपने हृदय को भर रहे हैं।

जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन सुख पाए।।
कहत राम जस बिशद बिशाला। निज निज भवन गए महिपाला।।

भा०– जो राजा, सीता जी के स्वयंवर में आये थे, वे सभी भाइयों को देखकर बहुत सुखी हुए और सभी राजा, श्रीराम के निर्मल और विशाल यश का वर्णन करते हुए अपने–अपने घरों को लौट गये।

गए बीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती।।

भा०– इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, सभी मिथिला के लोग और सभी बाराती बहुत प्रसन्न थे।

मंगल मूल लगन दिन आवा। हिम ऋतु अगहन मास सुहावा।।

भा०– हेमन्त ऋतु, अगहन अर्थात् मार्गशीर्ष मास के कारण सुहावना, सभी मंगलों का मूल, विवाह का मुहूर्त दिन आ गया।

विशेष- इस दोहे की यह पाँचवी पंक्ति है, इससे पंचमी सूचित हुई, सुहावा से शुक्ल पक्ष सूचित हुआ। मंगल शब्द के श्लेष के कारण मंगलों का मूल मंगल दिन, हेमन्त ऋतु और अगहन मास की सूचना ग्रन्थकार ने शब्दतः दी है। इस प्रकार, इसी पंक्ति से हेमन्त ऋतु, मार्गशीर्ष मास, शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि तथा मंगल दिन, श्रीराम का वैवाहिक मुहूर्त दिन है, यह सब सूचित हो गया।

ग्रह तिथि नखत जोग बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।।
पठै दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन जोई।।
सुनी सकल लोगन यह बाता। कहहिं जोतिषी अपर बिधाता।।

भा०- ग्रह, तिथि, नक्षत्र के योग और श्रेष्ठ दिन के अनुसार मुहूर्त का शोधन करके, ब्रह्मा जी ने विचार किया और लग्नपत्रिका लिखकर, नारद जी से श्रीसीता–राम विवाह के लिए वही मुहूर्त भेजा, जिसको महाराज जनक जी के ज्योतिषियों ने भी गणित–ज्योतिष के आधार पर गिन अर्थात् शोध रखा था। सभी मिथिला के लोगों ने यह बात सुनी कि, मिथिला के ज्योतिषियों के मुहूर्त का समर्थन ब्रह्मा जी ने भी किया, तब वे कहने लगे ज्योतिषी भी दूसरे ब्रह्मा जी ही हैं।

दो०- धेनुधूलि बेला बिमल, सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल।।३१२।।

भा०- सम्पूर्ण सुमंगलों की मूल गोधूलि बेला को ही ब्राह्मणों ने वैवाहिक शकुन के अनुकूल जानकर बताया।

उपरोहितहिं कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारन काहा।।
शतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए।।

भा०- मिथिला नरेश ने अपने पुरोहित से कहा, अब विलम्ब का क्या कारण है ? तब शतानन्द जी ने मंत्रियों को बुलाया और वे सभी मंत्री सम्पूर्ण मांगलिक द्रव्यों को सजा कर ले आये।

शंख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलश सगुन शुभ साजे।।
सुभग सुवासिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता।।

भा०- बहुत से शंख, नगाड़े और ढोल बजने लगे। मंगलकलश और कल्याणमय शकुनों को सजाया गया। सुन्दर सौभाग्यवती मिथिलानियाँ गीत गाने लगीं और पवित्र ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे।

लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती।।
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिनहिं सुरराजू।।

भा०- इस प्रकार, शतानन्द जी आदरपूर्वक अवधनरेश दशरथ जी को विवाहार्थ बुलाने चले, जहाँ जनवास में बाराती थे, वहाँ गये। कोसल जनपद के स्वामी महाराज दशरथ जी के समाज को देखकर जनकराज के पुरोहित और मंत्रियों को दशरथ जी की अपेक्षा देवताओं के राजा इन्द्र बहुत छोटे लगे।

भयेउ समय अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसाननि घाऊ।।
गुरुहिं पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा।।

भा०- अब समय हो गया है विवाह के लिए श्रीजनकपुर के द्वार पर पधारा जाये। शतानन्द जी का यह वचन सुनकर नगारों पर चोटें पड़ीं अर्थात् ऊँची ध्वनि से नगारे बज उठे। गुरुदेव से आज्ञा लेकर, कुलविधि अर्थात् रघुवंश की परम्परा के अनुसार, गोदान आदि करके अपने साथ मुनियों और सन्तों का समाज लेकर, दशरथ जी जनवास से जनकद्वार चले।

दो०- भाग्य बिभव अवधेश कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख, जानि जनम निज बादि।।३१३।।

भा०- अवध नरेश दशरथ जी के सौभाग्य की संपत्ति को देखकर, अपने जन्म को व्यर्थ जानकर ब्रह्मादि देवता और सहस्रमुखों वाले शेष जी सराहना करने लगे।

सुरन सुमंगल अवसर जाना। बरषहिं सुमन बजाई निसाना।।
शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमाननि नाना जूथा।।
प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिबाहू।।

भा०- देवताओं ने प्रभु के विवाह का सुन्दर मांगलिक अवसर जाना और वे नगारे बजाकर पुष्पों की वृष्टि करने लगे। शिवजी, ब्रह्मादि और अनेक यूथों में विभक्त देवताओं के समूह, प्रेम के कराण रोमांचित शरीर होकर, हृदय में उत्साह से युक्त होकर प्रभु श्रीराम का विवाह देखने के लिए विमानों पर चढ़कर चल पड़े।

देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे।।
चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना।।
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुशील सुजाना।।
तिनहिं देखि सब सुर सुरनारी। भए नखत जनु बिधु उजियारी।।

भा०- जनकपुर देखकर देवता अनुरक्त हुए। सभी को मिथिला की अपेक्षा अपने–अपने लोक छोटे लगने लगे। देवता चकित होकर, विचित्र अर्थात् विविध आश्चर्यों वाले अनेक मण्डपों को देख रहे हैं। वहाँ सभी रचनायें अलौकिक अर्थात् इस लोक से विलक्षण हैं। मिथिला नगर के सभी नर–नारी रूप के कोष, सुन्दर, धार्मिक, सुन्दर स्वभाव वाले और चतुर हैं। उन्हें देखकर सभी देव और देवियाँ उसी प्रकार फीके पड़ गये, जैसे चन्द्रमा के उजाले में तारा गण हो जाते हैं।

बिधिहिं भयउ आचरज बिशेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी।।

भा०- ब्रह्मा जी को विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने मिथिला में कहीं भी कुछ भी अपनी कृति (रचना) नहीं देखी।

दो०- शिव समुझाए देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिबाहु।।३१४।।

भा०- शिव जी ने ब्रह्मा जी के सहित सभी देवातओं को समझाया, हे देवताओं! आश्चर्य में मत भूलो। धैर्य धारण करके हृदय में श्रीसीता एवं श्रीरघुवीर के विवाह पर विचार करो अर्थात् यहाँ अपनी कृति का चिन्तन मत करो। यह विवाह तो तुम्हारे बाप के बाप का है।

जिन कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय राम कहेउ कामारी।।

भा०- काम के शत्रु शिव जी ने कहा जिनका नाम लेते ही सभी अमंगलों के मूल नष्ट हो जाते हैं और संसार में चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष हस्तगत् हो जाते हैं, वही श्रीसीता–राम यहाँ दुल्हन–दूल्हा बने हैं।

एहि बिधि शंभु सुरन समुझावा। पुनि आगे बर बसह चलावा।।
देवन देखे दशरथ जाता। महामोद मन पुलकित गाता।।

भा०- इस प्रकार शिव जी ने देवताओं को समझाया और फिर सब से आगे श्रेष्ठ बैल नन्दी को चलाया। देवताओं ने दशरथ जी को जनकराज के द्वार पर जाते देखा। दशरथ जी के मन में बहुत बड़ी प्रसन्नता थी और उनके सभी अंग रोमांचित थे।

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा।।
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी।।

भा०- महाराज दशरथ जी के साथ सन्तों का समाज और ब्राह्मण लोग हैं, मानो सभी लौकिक और पारलौकिक सुख शरीर धारण करके चक्रवर्ती जी की सेवा कर रहे हैं। अवधनरेश के साथ चारों सुन्दर पुत्र सुशोभित हैं, मानो सभी मोक्षों (सारुप्य, सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य) ने शरीर धारण कर लिया हो।

विशेष- यहाँ भगवान् श्रीराम को सारुप्य से, श्रीभरत को सायुज्य से, श्रीलक्ष्मण को सामीप्य से और श्रीशत्रुघ्न को सालोक्य से उपमित किया गया है।

मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन भइ प्रीति न थोरी।।
पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे। नृपहिं सराहि सुमन तिन बरषे।।

भा०- मरकत मणि और स्वर्ण के समान श्रेष्ठ दो जोड़ियों (राम–लक्ष्मण और भरत–शत्रुघ्न) को देखकर, देवताओं के हृदय में बहुत ही प्रीति अर्थात् अनुरक्ति हुई। फिर भगवान् श्रीराम को देखकर देवता हृदय में प्रसन्न हुए और राजा दशरथ जी की सराहना करते हुए उन्होंने पुष्पों की वर्षा की।

दो०- रामरूप नखशिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि।।३१५।।

भा०- नख से शिखापर्यन्त सुन्दर भगवान् श्रीराम के रूप को बार–बार देखकर पार्वती जी के सहित श्रीशिव जी शरीर से रोमांचित और नेत्रों में अश्रुजल भर रहे थे।

केकिकंठ दुति श्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा।।
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल मय सब भाँति सुहाए।।

भा०- प्रभु श्रीराम के श्यामल अंग मोर के कण्ठ की शोभा के समान शोभा से युक्त हैं। सुन्दर पीले रंग का उनका वस्त्र, विद्युत की भी निन्दा करता है। सब प्रकार से सुन्दर मंगलमय अनेक प्रकार के विवाहकालिक आभूषण सजाये हुए हैं।

शरद बिमल बिधु बदन सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन।।
सकल अलौकिक सुन्दरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई।।

भा०- भगवान् श्रीराम का सुहावना मुख, शरद्काल के निर्मल चन्द्रमा के समान है। उनके नेत्र नवीन अर्थात् प्रातःकालीन राजीव यानी लाल कमल को भी लज्जित कर रहे हैं। उनकी सम्पूर्ण सुन्दरता अलौकिक है, वह कही नहीं जा सकती है। वह तो मन से मन को ही भाती है।

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा।।
राजकुअँर बर बाजि देखावहिं। बंश प्रशंसक बिरुद सुनावहिं।।

भा०- साथ जाते हुए चंचल घोड़ों को नचाते हुए प्रभु श्रीराम के सुन्दर तीनों भ्राता श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रभु श्रीराम के साथ बहुत सुन्दर लग रहे हैं। राजकुमार अपने श्रेष्ठ घोड़ों को दिखाते हैं अर्थात् एक–दूसरे को अपने–अपने घोड़े की चाल दिखाते हैं। वंशों की प्रशंसा करने वाले बंदीजन उनका सुयश सुनाते हैं।

जेहि तुरंग पर राम बिराजे। गति बिलोकि खगनायक लाजे।।
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेष जनु काम बनावा।।

भा०– जिस घोड़े पर प्रभु श्रीराम विराज रहे हैं उसकी गति (चाल) देखकर पक्षीराज गरुड़ भी लज्जित हो रहे हैं। वह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि वह सब प्रकार से सुन्दर है, मानो कामदेव ने ही घोड़े का वेश बना लिया हो।

छं०: जनु बाजि बेष बनाइ मनसिज राम हित अति सोहई।
आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई।।
जगमगत जीन जड़ाव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे।।

भा०– मानो भगवान् श्रीराम के लिए स्वयं घोड़े का वेश धारण करके कामदेव अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से वह घोड़ा सम्पूर्ण घोड़ों को मोहित कर रहा है। उसके जीन में जड़े हुए रत्नों की ज्योति जगमगा रही है। उसकी किंकिणी अर्थात् करधनी में लगे हुए रत्न और सुन्दर लगाम को देखकर देवता, मनुष्य, मुनि, सब ठग से गये अर्थात् मानो, उसने ठगहारी करके सब के मन को लूट लिया है।

दो०– प्रभु मनसहिं लयलीन मन, चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उडुगन तड़ित घन, जनु बर बरहि नचाव।।३१६।।

भा०– प्रभु की इच्छा से लयलीन हुए अर्थात् मिले हुए मनवाला घोड़ा चलता हुआ बहुत छवि प्राप्त कर रहा है, मानो तारागणों और विद्युत से सुशोभित बादल, श्रेष्ठ मोर को नचा रहा हो। तात्पर्य यह है कि, उस अश्व ने अपने मन को प्रभु की इच्छा से मिला लिया और प्रभु के संकेत के बिना भी उनकी इच्छा से वह नाचता है। इस पर गोस्वामी जी ने उत्प्रेक्षा की मानो तारागणों और विद्युत से सुशोभित बादल, मयूर को नचा रहा हो। यहाँ बादल हैं भगवान् श्रीराम, नक्षत्रगण हैं उनके वैवाहिक आभूषण, बिजली है पीताम्बर और मयूर है, घोड़ा।

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि शारदउ न बरनै पारा।।
शङ्कर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदश अति प्रिय लागे।।
हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।।
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने।।
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू।।

भा०– जिस श्रेष्ठ घोड़े पर भगवान् श्रीराम आरूढ़ हैं उसका सरस्वती जी भी वर्णन नहीं कर सकतीं। शङ्करजी, भगवान् श्रीराम के रूप पर अनुरक्त हुए तब उन्हें पन्द्रह नेत्र बहुत प्रिय लगे। जब श्री हरि (विष्णु) ने प्रेमपूर्वक श्रीराम जी को निहारा तब लक्ष्मी जी के सहित लक्ष्मीपति नारायण भी भगवान् श्रीराम के रूप पर मोहित हो गये। श्रीराम की छवि देखकर ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए, परन्तु अपने आठ ही नेत्र जानकर पश्चात्ताप करने लगे। देव सेनापति कार्तिकेय जी के मन में बहुत उत्साह है, क्योंकि उन्हें ब्रह्मा जी की अपेक्षा डेढ़ गुणा अधिक नेत्र लाभ मिल रहा है अर्थात् कार्तिकेय जी बारह नेत्रों से भगवान् श्रीराम को देख रहे हैं, जो आठ का डेढ़ गुना है।

रामहिं चितव सुरेश सुजाना। गौतम स्राप परम हित माना।।
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।।

भा०– चतुर इन्द्र, भगवान् श्रीराम को एक हजार नेत्रों से देखने लगे। उन्होंने अपने लिए दिये हुए गौतम मुनि के शाप को परमकल्याणकारी माना। सभी देवतागण इन्द्र को सिहाने लगे अर्थात् ईर्ष्या के साथ प्रशंसा करने लगे

और बोले, आज इन्द्र के समान कोई भी सौभाग्यशाली नहीं है, क्योंकि वे सबसे अधिक एक हजार नेत्रों से प्रभु के सौन्दर्य को देख रहे हैं।

विशेष– यहाँ तात्पर्य यह है कि, अहल्या के साथ छल करने पर गौतम ऋषि ने इन्द्र को एक हजार गुप्तांगों से युक्त होने का शाप दिया था और इन्द्र की प्रार्थना करने पर कहा कि, जब तुम भगवान् श्रीराम को दूल्हा रूप में देखोगे तब ये सभी गुप्तांग, नेत्र बन जायेंगे।

मुदित देवगन रामहिं देखी। नृपसमाज दुहुँ हरष बिशेषी।।

भा०– श्रीराम को देखकर देवगण भी प्रसन्न हैं और दोनों राजसमाज श्रीअवध और श्रीमिथिला में अत्यन्त विशेष हर्ष है।

छं०– अति हरष राजसमाज दुहुँ दिशि दुंदुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी।।
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुवासिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं।।

भा०– दोनों राजसमाजों को बहुत हर्ष है और नगारे बज रहे हैं। हे रघुकुलमणि श्रीराम! आप की जय हो! जय हो! जय हो! ऐसा कहकर देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। इस प्रकार, बारात को आते जानकर जनक जी के द्वार पर बहुत से बाजे बजने लगे और सीता जी की माता सुनयना सुहागिन महिलाओं को बुलाकर परिछन करने के लिए मंगल साज सजाने लगीं।

दो०– सजि आरती अनेक बिधि, मंगल कलश सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन, गजगामिनि बर नारि।।३१७।।

भा०– अनेक प्रकार से आरती सजाकर मांगलिक कलशों को सँवार कर हाथी की चाल चलने वाली सुनयना आदि श्रेष्ठ पूज्य–महिलायें प्रसन्न होती हुईं परिछन करने के लिए चल पड़ीं।

बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तनु छबि रति मद मोचनि।।
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे शरीरा।।
सकल सुमंगल अंग बनाए। करहिं गान कलकंठि लजाए।।
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं।।
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा।।

भा०– भगवान् श्रीराम की सासू माँ सुनयना जी एवं उनकी सहयोगिनीं सभी उन्हीं की समवयस्क महिलायें चन्द्रमा के समान मुखवाली हैं। वे सभी हरिण के समान नेत्रवाली हैं और सभी महिलायें अपनी शरीर की कान्ति से कामपत्नी रति के मद को नष्ट करनेवाली हैं। सभी ने बहुत प्रकार की बहुरंगी साड़ियाँ पहन रखी है और सभी ने आभूषणों से अपने शरीर को सजा रखा है। सभी महिलायें अपने अंगों में सुन्दर मंगल सजा रखे हैं। वे कोकिलाओं को लज्जित करती हुई सुन्दर मंगलगान कर रही हैं। उनके कंकण, किंकिणि (करधनी) और नूपुर बज रहे हैं। उनकी चाल देखकर कामदेव के हाथी भी लज्जित हो जाते हैं। अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे हैं। आकाश और नगर में सुन्दर मंगलाचार हो रहे हैं।

शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी।।
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई।।
करहिं गान कल मंगल बानी। हरष बिबश सब काहुँ न जानी।।

भा०– शची (इन्द्राणी), शारदा, लक्ष्मी और पार्वती आदि जो स्वभाव से चतुर देवपत्नियाँ थीं। वे सब माया से श्रेष्ठ महिलाओं का वेश बनाकर जनक जी के रनिवास में जाकर मिल गईं। वे सुन्दर मंगलमय वाणी में गान करने लगीं। सभी रानियाँ हर्ष के विवश हैं, किसी ने इनको नहीं पहचाना।

छं०– को जान केहि आनंद बश सब ब्रह्म बर परिछन चलीं।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर शोभा भलीं।।
आनंदकंद बिलोकि दूलह सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं।।

भा०– आनन्द के वश में होने से किस को कौन जानती ? सभी महिलायें परब्रह्मरूप वर का परिछन करने चल पड़ी हैं। सुन्दर गान और मधुर नगारे की धुन हो रही है। देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। यह शोभा बहुत श्रेष्ठ है। आनन्द रूप जल के मेघस्वरूप श्रीराम को ही दूल्हा देखकर सभी जनक जी की रानियाँ हृदय में प्रसन्न हो गईं। उनके कमल जैसे नेत्रों में जल उमड़ पड़ा और उनके सुन्दर अंगों में पुलकावलि छा गयी।

दो०– जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम बर बेष।
सो न सकहिं कहि कलप शत, सहस शारदा शेष।।३१८।।

भा०– सीता जी की माता सुनयना जी के मन में भगवान् श्रीराम का दूल्हा वेश देखकर जो सुख हुआ वह सुख सहस्रों शारदा और शेष सैकड़ों कल्पपर्यन्त भी नहीं कह सकते।

नयन नीर हठि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी।।
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू।।

भा०– मंगल का अवसर जानकर, नेत्रों के आँसुओं को रोककर रानी सुनयना जी प्रसन्न होकर श्रीराम का परिछन करने लगीं। उन्होंने वेदों में विहित कर्मों, कुल के आचारों तथा व्यवहारों को भलीभाँति सम्पन्न किया।

पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना।।
करि आरती अरघ तिन दीन्हा। राम गमन मंडप तब कीन्हा।।

भा०– पंच शब्दों की धुन अर्थात् जयध्वनि, मंगलध्वनि, वेदध्वनि, बंदीध्वनि और नगाड़ों की ध्वनि हो रही है तथा मंगलगान गाये जा रहे हैं और अनेक प्रकार के वस्त्रों के पाँवरे पड़ रहे हैं। रानियों ने आरती करके अर्घ दिया और श्रीराम ने द्वार से मण्डप की ओर गमन किया।

दशरथ सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे।।
समय समय सुर बरषहिं फूला। शांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला।।

भा०– समाज के सहित महाराज दशरथ सुशोभित हो रहे हैं। उनका वैभव देखकर लोकपति भी लज्जित हो रहे हैं। समय–समय पर देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं और अनुकूल ब्राह्मण शान्तिपाठ कर रहे हैं।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनइ न कोई।।
एहि बिधि राम मंडपहिं आए। अरघ देइ आसन बैठाए।।

भा०- आकाश और नगर में कोलाहल हो रहा है। अपना और पराया कोई कुछ भी (शब्द) नहीं सुन रहा है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम मण्डप में आये, उन्हें अर्घ देकर आसन पर बैठाया गया।

छं०- बैठारि आसन आरती करि निरखि बर सुख पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि बारहिं नारि मंगल गावहीं।।
ब्रह्मादि सुरवर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं।।

भा०- प्रभु को आसन पर बैठाकर, आरती करके, वर रूप में विराजमान श्रीराम को देखकर लोग सुख पा रहे हैं तथा महिलायें, मणि, वस्त्र और अनेक आभूषणों की न्यौछावर कर रही हैं एवं मंगल गा रही हैं। ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण का वेश बना कर विवाह मंगल देख रहे हैं और रघुकुलरूप कमल के सूर्य भगवान् श्रीराम को देखकर अपने जीवन को सुफल अर्थात् सुन्दर फल से युक्त समझ रहे हैं।

दो०- नाऊ बारी भाँट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित अशीषहिं नाइ सिर, हरष न हृदय समाइ।।३१९।।

भा०- नाई, बारी (पान देनेवाला) भाट, नट (नर्तक) ये सभी श्रीराम की न्यौछावर पाकर, सिर नवाकर प्रसन्नता से आशीर्वाद दे रहे हैं। इनके हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है।

मिले जनक दशरथ अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती।।
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे।।

भा०- लौकिक और वैदिक सभी परम्पराओं को सम्पन्न करके अत्यन्त प्रसन्नता से जनक जी और दशरथ जी एक–दूसरे से मिले (सामध का लोकाचार सम्पन्न किया)। दोनों महाराज मिलते समय बहुत सुशोभित हो रहे हैं। उनकी उपमा खोज–खोज कर कविगण लज्जित हो उठे।

लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन सम एइ उपमा उर आनी।।
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जस गावन लागे।।

भा०- कहीं भी इनकी उपमा प्राप्त नहीं की और हृदय में हार मान लिए। इनके समान यही हैं, अन्त में यही उपमा हृदय में निश्चित की। सामध अर्थात् समधियों का मिलन देखकर, देवता प्रेम में मग्न हुए और पुष्पों की वर्षा करके दोनों का यश गाने लगे।

जग बिरंचि उपजावा जब ते। देखे सुने ब्याह बहु तब ते।।
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू।।

भा०- जब से ब्रह्मा जी ने जगत् को उत्पन्न किया है, तब से हम देवताओं ने बहुत से विवाह देखे और बहुत से विवाह सुने हैं। उनमें सज्जा और समाज सब प्रकार से समान थे, परन्तु हमने समान समधी तो आज ही देखे, अर्थात् *यथा नाम तथा गुणः।*

देव गिरा सुनि सुन्दर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिशि माची।।
देत पाँवड़े अरघ सुहाए। सादर जनक मंडपहिं ल्याए।।

भा०- देवताओं की सुन्दर और सत्यवाणी सुनकर, दोनों राजसमाजों में अलौकिक प्रीति फैल गयी। पाँवड़े और सुन्दर अर्घ देते हुए जनक जी आदरपूर्वक दशरथ जी को मण्डप में ले आये।

छं०- मंडप बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंघासन धरे।।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आशिष लही।
कौशिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही।।

भा०- मण्डप की विचित्र रचना और सुन्दरता देखते ही मुनियों के मन भी अपहृत हो गये। चतुर जनक जी ने सभी बारातियों के लिए अपने हाथ से ले आकर सिंहासन रखे। कुल के इष्टदेवता के समान वसिष्ठ जी की पूजा की उनसे विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्र जी की पूजा करते समय जनक जी के मन में जो परमप्रीति हुई उसकी रीति तो कही नहीं जा सकती।

दो०- बामदेव आदिक ऋषय, पूजे मुदित महीश।
दिए दिब्य आसन सबहिं, सब सन लही अशीश।।३२०।।

भा०- वामदेव आदि ऋषियों की महाराज जनक ने प्रसन्न होकर पूजा की, सबको दिव्य अर्थात् स्वर्गोचित आसन दिये और सभी से आशीर्वाद प्राप्त किये।

बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईश सम भाव न दूजा।।
कीन्ह जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई।।

भा०- फिर ईश्वर के समान जानकर महाराज दशरथ जी की जनक जी ने पूजा की। उनके मन में कोई दूसरा भाव नहीं था। महाराज ने अपने भाग्य के वैभव की अधिकता कहकर हाथ जोड़कर विनय और प्रशंसा की।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती।।
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू।।

भा०- महाराज जनक जी ने सभी बारातियों की अपने समधी महाराज दशरथ जी के समान ही आदरपूर्वक सब प्रकार से पूजा की और सबको उचित आसन दिये। एक मुख से मैं जनक जी का उत्साह कैसे कहूँ ?

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी।।
बिधि हरि हर दिशिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ।।
कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए।।
पूजे जनक देव सब जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने।।

भा०- दान, सम्मान, प्रार्थना और श्रेष्ठवाणी से जनक जी ने सम्पूर्ण बारात का सम्मान किया। ब्रह्माजी, विष्णुजी, शिवजी, दिग्पाल, सूर्यनारायण और भी जो देवता भगवान् श्रीराम के प्रभाव को जानते हैं, वे कपट से ब्राह्मण का वेश बनाकर अत्यन्त सुख पाते हुए कौतुक देख रहे हैं। उन सबको देवता के समान जानकर जनक जी ने पूजा की और बिना पहचाने ही उन्हें सुन्दर आसन दिया।

छं०- पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंद बिलोकि दूलह उभय दिशि आनँदमई।।
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि शील स्वभाव प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए।।

भा०- वहाँ कौन किसे पहचानता और कौन किसे जानता? सभी को अपनी सुधि भूल गयी। आनन्दकन्द श्रीराम को दूलह रूप में देखकर दोनों दिशाओं में अर्थात् मिथिला और अवध के समाज में आनन्द ही आनन्द हो गया।

चतुर प्रभु श्रीराम ने देवताओं को देखा तथा पहचान लिया और उनकी पूजा की एवं उन्हें मानसिक आसन दिया। प्रभु श्रीराम के सुन्दर चरित्र और स्वभाव को देखकर देवता मन में प्रसन्न हो गये।

दो०- रामचंद्र मुख चंद्र छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर।।३२१।।

भा०- सभी के नेत्ररूप सुन्दर चकोर श्रीरामचन्द्र के मुखरूप चन्द्र की अमृत रूप छवि का पान कर रहे हैं। सबके मन में प्रेम और प्रमोद अर्थात् इष्टलाभ से उत्पन्न हर्ष थोड़ा नहीं है अर्थात् बहुत है।

समय बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर शतानंद सुनि आए।।
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई।।

भा०- विवाह का समय देखकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी ने जनक जी के पुरोहित शतानन्द जी को बुला लिया। वसिष्ठ जी का आदेश सुनकर शतानन्द जी आदरपूर्वक उनके पास आये। वसिष्ठ जी ने कहा, अब राजकुमारी को शीघ्र ले आइये। मुनि का आदेश पाकर शतानन्द जी प्रसन्न होकर जनक जी के रनिवास को चले गये।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी।।
बिप्र बधू कुलबृद्ध बोलाईं। करि कुलरीति सुमंगल गाईं।।

भा०- चतुर रानियाँ (सुनयना आदि) ने अपने पुरोहित के मुख से श्रीअवध के पुरोहित वसिष्ठ जी की वाणी सुनकर सखियों के सहित प्रसन्न होकर ब्राह्मण पत्नियों (मैत्रेयी आदि) और अपने कुल की वृद्धाओं को बुला लिया और विवाह के पूर्व की रीतियों का पालन करके सुन्दर मंगलगीत गाने लगीं।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभाय सुन्दरी श्यामा।।
तिनहिं देखि सुख पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारी।।

भा०- मनुष्य नारियों के वेश में आई हुई जो स्वभाव से सुन्दर और श्यामा अर्थात् सदैव सोलह वर्ष की दिखने वाली श्रेष्ठ देवपत्नियाँ थीं, उन्हें देखकर मिथिला की नारियाँ बहुत सुख प्राप्त कर रही थीं। वे बिना जान–पहचान के भी मिथिलानियों को प्राण से भी अधिक प्रिय लग रही थीं।

विशेष- “श्यामा षोडश वार्षिकी” अर्थात् सोलह वर्ष की युवती को श्यामा कहते हैं।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा शारद सम जानी।।
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लिवाई।।

भा०- देववधूओं को पार्वतीजी, लक्ष्मी जी और सरस्वती जी के समान जानकर, जनक जी की रानियाँ उनका बार–बार सम्मान कर रही थीं। सीता जी को सजाकर और विवाह के उपकरणों को व्यवस्थित करके रानियाँ प्रसन्न होती हुई कुमारी को मण्डप की ओर लिवा ले चलीं।

छं०- चलि ल्याइ सीतहिं सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नव सप्त साजे सुन्दरी सब मत्त कुंजर गामिनी।।
कल गाान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं।।

भा०- सुन्दर लक्षणों वाली सखियाँ मंगलों को सजाकर सीता जी को आदरपूर्वक लिवा ले चलीं। सभी सुन्दरियों ने सोलह शृंगार सजाये थे। सभी मतवाले हाथी की चाल से चल रहीं थी। उनका सुन्दर गान सुनकर, मुनि भी

ध्यान छोड़ देते थे। कामदेव की कोकिलायें लज्जित हो रही थीं। उनके चरणों में पायल पैंजनियाँ, तथा सुन्दर कंकण ताल की गति के अनुसार श्रेष्ठ प्रकार से बज रहे थे।

दो०- सोहति बनिता बृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय।।३२२।।

भा०- युवति नारियों के समूह में स्वभाव से सुन्दर सीता जी शोभित हो रही थीं मानो, छवि रूप सुन्दर महिलाओं के बीच सभी की कामना का विषय बनी हुई परमशोभारूप नारी विराजमान हो।

सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई।।
आवत देखि बरातिन सीता। रूपराशि सब भाँति पुनीता।।
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा।।

भा०- सीता जी की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरी बुद्धि बहुत छोटी और सीता जी की सुन्दरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि सब प्रकार से पवित्र भगवती सीता जी को आते देखकर, सभी वर यात्रियों ने उन्हें मन ही मन में प्रणाम किया और सभी लोग सीता जी के सहित श्रीराम को देखकर पूर्णकाम हो गये अर्थात् सभी की कामनायें पूर्ण हो गईं।

हरषे दशरथ सुतन समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता।।
सुर प्रनाम करि बरिषहिं फूला। मुनि आशिष धुनि मंगल मूला।।
गान निसान कोलाहल भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी।।

भा०- पुत्रों के सहित महाराज दशरथ जी भी बहुत प्रसन्न हुए। उनके हृदय में जितना आनन्द था, उसे कहा नहीं जा सकता। देवता प्रणाम करके पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं और सभी मंगलों की मूल, मुनियों की आशीर्वादध्वनि हो रही है। मंगलगान और नगरों की ध्वनि का भारी कोलाहल है। मिथिलानगर के नर-नारी श्रीसीता-राम विषयक प्रेम तथा मनचाहे लाभ से उत्पन्न प्रसन्नता में मग्न है।

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित शांति पढ़हिं मुनिराई।।
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू।।

भा०- इस प्रकार से सीता जी मण्डप में आईं। मुनिराज वसिष्ठजी, विश्वामित्र जी याज्ञवल्क्यजी, शतानन्द जी आदि प्रसन्न होकर शान्तिपाठ करने लगे। उसी अवसर पर दोनों कुलगुरुओं अर्थात् वसिष्ठ और शतानन्द जी ने वेदविधि और लोकव्यवहार के अनुकूल सभी कुलाचार सम्पन्न किये।

छं०- आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं अशीष अति सुख पावहीं।।
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलश सो तब लिए परिचारक रहैं।।१।।

भा०- गुरुजन कुलाचार सम्पन्न करके और सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर श्रीसीता-राम जी से गणपति और गौरी की पूजा करा रहे हैं। गणेश जी और पार्वती जी आदि देवता प्रकट होकर पूजा स्वीकारते हैं, आशीर्वाद देते हैं और बहुत सुख प्राप्त करते है। मधुपर्क अर्थात् समान मात्रा में दही, घी और मधु का घोल आदि जो भी मांगलिकद्रव्य मुनिगण जिस समय मन में चाहते हैं, उसी समय, स्वर्ण के परातों और कलशों में भरकर सेवक लेकर उपस्थित हो रहे हैं।

छं०- कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सब सादर किये।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहिं सुभग सिंघासन दिये।।
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसे करै।।२।।

भा०- अपने कुल की रीति स्वयं सूर्यनारायण प्रेम के सहित कह रहे हैं। वह सब श्रीसीता–राम ने आदरपूर्वक सम्पन्न किये। इस प्रकार देवताओं की पूजा करा कर ब्राह्मणों ने सीता जी को सुन्दर सिंहासन बैठने के लिए दिया। श्रीसीता–राम की परस्पर चितवन और उस से उद्‌भूत पारस्परिक अनिर्वचनीय प्रेम किसी को नहीं दिख पड़ रहा है। मन, बुद्धि, श्रेष्ठ वाणी से भी परे उन परमात्म दंपति के प्रेम को कवि कैसे प्रकट कर सकता है।

दो०- होम समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्रबेष धरि बेद सब, कहि बिबाह बिधि देहिं।।३२३।।

भा०- होम के समय अग्निदेव शरीर धारण करके अत्यन्त सुखपूर्वक श्रीसीता–राम द्वारा दी हुई आहुति स्वीकार करते हैं। सभी वेद, ब्राह्मणों का वेश धारण करके विवाह की विधि कह देते हैं।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी।।
सुजस सुकृत सुख सुन्दरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई।।

भा०- सम्पूर्ण जगत् जानता है कि, महाराज जनक जी की पट्टाभिषिक्त महारानी सुनयना को सुयश, सुकृत अर्थात् सत्कर्म, सुख तथा सुन्दरता इन सभी उपकरणों को समेट कर इन्हीं से ब्रह्मा जी ने सँवार–सँवार कर बनाकर रचा है अर्थात् सुनयना किसी माता–पिता के रज–शुक्र का परिणाम नहीं हैं, वे तो ब्रह्मा जी द्वारा बनायी हुई पितृ–देवताओं की मानसी पुत्री हैं, इसलिए उनका वर्णन कैसे किया जाय।

समय जानि मुनिबरन बोलाईं। सुनत सुवासिनि सादर ल्याईं।।
जनक बाम दिशि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना।।

भा०- समय जानकर (कन्यादान का) वसिष्ठ, शतानन्द आदि श्रेष्ठमुनियों ने सुनयना जी को बुलवाया। मुनियों का आदेश सुनते ही सौभाग्यवती महिलायें सुनयना जी को आदरपूर्वक मंडप में ले आईं। कन्यादानार्थ जनक जी के वामभाग में सुनयना जी सुशोभित हुईं, मानो हिमाचल पर्वत के साथ मैना बनी हुई हों।

कनक कलश मनि कोपर रूरे। शुचि सुगंध मंगल जल पूरे।।
निज कर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी।।

भा०- पवित्र एवं सुगन्धित मंगल जल से पूर्ण सुवर्णों के कलश और मणियों के सुन्दर परातों को महाराज जनक जी और महारानी सुनयना जी ने प्रसन्न होते हुए अपने हाथ से लाकर श्रीराम जी के आगे रखा।

पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी।।
बर बिलोकि दंपति अनुरागे। पायँ पुनीत पखारन लागे।।

भा०- मुनिजन मंगल वाणी में वेदपाठ करने लगे। अवसर जानकर आकाश से पुष्पों की झड़ी लग गयी। प्रभु श्रीराम को वर रूप में देखकर जनक राजदंपति (शिरध्वज जी और सुनयनाजी) अनुरक्त हो गये और दूल्हा श्रीराम के पवित्र चरण पखारने लगे।

छं०– लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जयधुनि उमगि जनु चहुँ दिशि चली।।
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं।।१।।

भा०– महाराज जनक जी और महारानी सुनयना जी मन के भगवत्प्रेम और तन की पुलकावलि अर्थात् रोमांच के साथ दूल्हा श्रीराम के श्रीचरणकमल का प्रक्षालन करने लगे। आकाश और नगर में हो रहे मंगलगान, नगारे और जय–जयकार की ध्वनि मानो उमग कर (उफन कर) चारों दिशाओं में चली गयी। जो चरणकमल कामदेव के शत्रु शिव जी के हृदयरूप सरोवर में कमल की भाँति सदैव विराजते रहते हैं, जिन्हें एक बार स्मरण करते ही मन में निर्मलता आ जाती है और सभी कलियुग के मल स्मरणकर्त्ता के मन से भाग जाते हैं।

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंद जिन को शंभु सिर शुचिता अवधि सुर बरनई।।
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय जय सब कहैं।।२।।

भा०– जिन श्रीचरणों का स्पर्श करके महर्षि गौतम जी की पत्नी अहल्या जी ने गति अर्थात् पतिलोक प्राप्त कर ली, शाप से मुक्त हुईं और दिव्यशरीर की प्राप्ति हो गईं, जो पाप स्वरूप थीं। जिन श्रीचरणकमल का मकरन्द (जल) पवित्रता की सीमा देवताओं की श्रेष्ठ नदी गंगा जी बनकर शिव जी के सिर पर विराजमान हुआ। अपने मन को भ्रमर बनाकर मुनि और योगीजन, जिनकी सेवा करके मनोवांछित गति प्राप्त करते हैं। उन्हीं श्रीचरणकमलों को सौभाग्यशाली जनक दंपति सौभाग्यमय सुवर्ण पात्र में प्रक्षालित कर रहे हैं, (धो रहे हैं)। सभी लोग जय हो! जय हो! इस प्रकार जय–जयकार की ध्वनि कर रहे हैं।

बर कुअँरि करतल जोरि शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं।
भयो पानिग्रहन बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं।।
सुखमूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधान कन्यादान नृपभूषन कियो।।३।।

भा०– वर और वधू (श्रीसीता–राम) के हाथ को जोड़कर अर्थात् श्रीराम की हथेली सीता जी के हथेली पर रखकर दोनों कुलगुरु श्रीवसिष्ठ और श्रीशतानन्द शाखोच्चार अर्थात् गोत्रोच्चार कर रहे हैं। इस प्रकार श्रीराम द्वारा सीता जी का पाणिग्रहण किया गया। यह पाणिग्रहण महोत्सव सम्पन्न हुआ। इसकी अनुपम विधि देखकर स्वर्गलोक के देवता मिथिला और अवध के मनुष्य, तथा तीनों लोक में भ्रमण करनेवाले मुनिजन आनन्द से परिपूर्ण हो गये। सभी सुखों के कारणस्वरूप दूल्हा श्रीराम को देखकर राजदंपति सुनयना जी और महाराज जनक जी रोमांचित शरीर होकर हृदय में उल्लसित (प्रसन्न) हुए। राजाओं के आभूषण जनक जी ने लौकिक और वैदिकविधान करके कन्यादान कर दिया अर्थात् अपनी श्रीसीता नामक कन्या श्रीराम नामक वर को समर्पित कर दी।

हिमवंत जिमि गिरिजा महेशहिं हरिहिं श्रीसागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी बिश्व कल कीरति नई।।
क्यों करै बिनय बिदेह कियो बिदेह मूरति साँवरी।
करि होम बिधिवत गाँठि जोरी होन लागी भाँवरी।।४।।

भा०– जिस प्रकार हिमाचल पर्वत ने पार्वती जी को महेश्वर शिव जी के लिए समर्पित किया था और जिस प्रकार क्षीरसागर ने लक्ष्मी जी को भगवान् श्रीहरि विष्णु के लिए प्रदान किया था, उसी प्रकार जनक जी ने भगवती सीता जी को भगवान् श्रीराम को समर्पित कर दिया। विश्व में यह मधुर–नवीन कीर्ति स्थापित हुई अर्थात् शिव जी एवं विष्णु जी के भी कारण–स्वरूप भगवान् श्रीराम को पार्वती जी एवं लक्ष्मी जी की कारण स्वरूप सीता जी समर्पित की गईं। विदेहराज जनक जी किस प्रकार विनय करें, क्योंकि श्रीराम की श्यामल मूर्ति ने जनक जी को बिना देह के अर्थात् आत्मभाव में व्यवस्थित कर दिया था। अब वे व्यवहार में आ ही नहीं पा रहे थे, इसलिए विनय नहीं कर सक रहे थे। विधिवत् लाजाहुति करके गाँठ जोड़ी गयी अर्थात् श्रीराम के पीताम्बर से श्रीसीता की चुनरी का ग्रन्थिबंधन हुआ और भाँवरी होने लगी अर्थात् श्रीसीता–राम जी सुवर्ण कलश मण्डित अग्निदेव की भ्रामरी देते हुए परिक्रमा करने लगे। (सात फेरे लिए।)

दो०– जय धुनि बंदी बेदधुनि, मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध, सुरतरु सुमन सुजान।।३२४।।

भा०– जयध्वनि, मंगलध्वनि, वेदध्वनि मांगलिक गान और नगाडे की ध्वनि सुनकर चतुर देवता प्रसन्न हो रहे हैं और कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं।

कुअँर कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभ सब सादर लेहीं।।
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी।।

भा०– कुअँर अर्थात् दूल्हा श्रीराम, कुअँरि अर्थात् दुल्हन श्रीसीता सुन्दर भांवरी दे रहे हैं। सभी बराती और घराती आदरपूर्वक नेत्रों का लाभ ले रहे हैं। यह मनोहर जोड़ी वर्णित नहीं की जा सकती। इसकी जो कुछ भी उपमा कहूँगा वह थोड़ी होगी, इसलिए श्रीसीता–राम की जोड़ी के प्रतिबिम्बों की उपमा कहकर कवि कर्म से संतुष्ट हो लूँगा।

रामसीय सुन्दर परिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं।।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाह अनूपा।।
दरस लालसा सँकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी।।

भा०– भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीता के सुन्दर प्रतिबिम्ब मिथिला–विवाहमण्डप के मणिमय खम्भों में प्रतिबिम्बित होकर जगमग (प्रकाशित) हो रहे हैं, मानो कामदेव और रति अगणित रूप धारण करके अनुपम श्रीसीता–राम विवाह देख रहे हैं। उन्हें श्रीसीता–राम विवाह के दर्शन की बड़ी लालसा है, परन्तु श्रीसीता–राम जी के सौन्दर्य का लेश भी अपने पास नहीं होने के कारण, काम और रति के मन में बहुत बड़ा संकोच है इसलिए जब दर्शन की इच्छा बलवती होती जाती है तो प्रतिबिम्बों के बहाने से खम्भों में प्रकट हो जाते हैं और जब अपनी सुन्दरता की न्यूनता का संकोच आता है, तब छिप जाते हैं। इन दोनों द्वन्द्वों में वे बार–बार प्रकट हो रहे हैं और छिप रहे हैं।

भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे।।
प्रमुदित मुनिन भाँवरी फेरी। नेगसहित सब रीति निबेरी।।

भा०– सभी देखनेवाले श्रीसीता–राम जी की भाँवरी के सौन्दर्यसागर में डूब गये। जनक जी के ही समान सभी घराती–बराती अपनापन भूल गये हैं। मुनियों ने प्रसन्नतापूर्वक दूल्हा–दुल्हन श्रीराम–सीता जी की भाँवरी फिराई और नेग के साथ सभी रीतियाँ सम्पन्न की।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। शोभा कहि न जाति बिधि केहीं।।
अरुन पराग जलज भरि नीके। शशिहिं भूष अहि लोभ अमी के।।

भा०– भगवान् श्रीराम, भगवती श्रीसीता के सिर पर सिंदूर दान कर रहे हैं। यह शोभा किसी भी विधि से नहीं कही जा सकती, इसलिए रूपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से इनके उपमानों की ही प्रतिक्रिया का वर्णन किया जा रहा है। सर्प, कमल में भली प्रकार से लाल पराग भरकर अमृत के लोभ से चन्द्रमा को लाल पराग से पूर्ण कमल के द्वारा भली प्रकार से विभूषित कर रहा है (सजा रहा है)।

विशेष– इस प्रसंग में उपमानों की ही क्रियाओं का वर्णन किया गया है। श्रीराम की भुजा उपमेय है और सर्प उपमान, लाल रंग का सिंदूर उपमेय है और अरुण पराग उसका उपमान है, श्रीराम का हस्त उपमेय है और पराग से भरा हुआ कमल उसका उपमान है, श्रीसीता का मुख उपमेय है और चन्द्रमा है उसका उपमान, सीता जी का सौन्दर्यानन्द उपमेय है और उसका उपमान है अमृत, सिंदूरदान उपमा क्रियात्मक उपमेय है और विभूषित करना क्रियात्मक उपमान है। तात्पर्य यह है कि, सर्प को अमृत की चाह है, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम की भुजाओं को श्रीसीता की सौन्दर्यानन्द की अपेक्षा है। चन्द्रमा, सर्प को अमृत तभी दे सकता है, जब उसे सर्प से कुछ अपूर्व वस्तु मिले। अत: सर्प उसे पराग से भरा हुआ कमल उपहार में दे रहा है और चन्द्रमा उसे अमृत देगा अर्थात् श्रीराम सिंदूरदान के माध्यम से सीता जी के मुखमंडल को सौभाग्य दे रहे हैं और उससे अनुराग प्राप्त कर रहे हैं। श्रीराम के करतल में सिंदूर है और उनकी दाहिनी भुजा सर्प के समान लचकी हुई है। भगवती सीता जी का भालमंडल चन्द्रमा है, जो श्रीराम के सिंदूर भरे करतल से अलंकृत हो गया। यही उसका पराग से भरे कमल से अलंकृत होना है।

बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुशासन। बर दुलहिनि बैठे एक आसन।।

भा०– फिर वसिष्ठ जी ने आदेश दिया और वर वधू (भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीता) एक आसन पर बैठ गये।

छं०– बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए।।
भरि भुवन रहा उछाह रामबिबाह भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यह मंगल महा।।१।।

भा०– भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीता एक ही श्रेष्ठ आसन पर दूल्हा–दुल्हन के रूप में बैठे। दशरथ जी अपने पुण्यरूप कल्पवृक्ष के नवीन फल के रूप में श्रीराम–सीता को देखकर शरीर से रोमांचित होकर मन में प्रसन्न हुए। यह उत्साह सम्पूर्ण भुवनों में भर रहा था। सभी ने कहा, श्रीसीता–राम विवाह सम्पन्न हो गया। मेरी एक रसना से यह महान् मंगल वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लई हँकारि कै।।
कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुन शील सुख शोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहिं दई।।२।।

भा०– तब वसिष्ठ जी की आज्ञा पाकर, विवाह का साज–सजाकर, जनक जी ने मांडवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति नामक तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। जो मांडवी नाम की, गुण, शील, सुख और शोभा की प्रचुरता से युक्त

जनक जी के छोटे भाई कुशध्वज जी की प्रथम कन्या थीं, उन्हें महाराज ने प्रेमपूर्वक सभी लौकिक-वैदिक रीतियों का सम्पादन करके भरत जी को ब्याह दिया अर्थात् श्रीमांडवी का श्रीभरत से विवाह कर दिया।

जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो जनक दीन्हीं ब्याहि लखनहिं सकल बिधि सनमानि कै।।
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूप शील उजागरी।।३।।

भा०- जो जानकी जी की छोटी बहन थीं अर्थात् सुनयना जी के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं, उन्हीं उर्मिला जी को सभी सुन्दरियों की शिरोमणि जानकर, सब प्रकार से सम्मान करके जनक जी ने लक्ष्मण जी से ब्याह दिया अर्थात् उर्मिला जी का लक्ष्मण जी के साथ विवाह कर दिया। जिनका नाम श्रुतिकीर्ति था, जो सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रवाली थीं, जो सभी गुणों की खानिस्वरूप थीं और जो रूप तथा शील में भी तीनों लोक में प्रसिद्ध थीं, उन्हें जनक जी ने शत्रुघ्न जी को ब्याह दिया अर्थात् श्रुतिकीर्ति जी का विवाह शत्रुघ्न जी के साथ कर दिया।

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं।।
सुन्दरी सुन्दर बरनि सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।४।।

भा०- इस प्रकार चारों वर (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) तथा चारों वधुयें (श्रीसीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति) परस्पर अनुरूप होने के कारण, एक-दूसरे को निहारकर संकुचित होकर हृदय में प्रसन्न हो रहे हैं। सभी दर्शक प्रसन्न होकर चारों दूल्हा और चारों दुल्हनों की सुन्दरता सराह रहे हैं और देवगण पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। चारों सुन्दरियाँ (भगवती सीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति) चारों सुन्दर वरों (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) के साथ एक ही मण्डप में सुशोभित हो रहे हैं। मानो जीव के हृदय में तुरीया, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत नाम की चारों अवस्थायें अपने विभुवों तुरीय, प्राज्ञ, हिरण्यगर्भ और वैश्वानर के साथ सुशोभित हो रही हैं।

विशेष- यहाँ सीता जी तुरीयावस्था, मांडवी जी सुषुप्ति अवस्था, श्रुतिकीर्ति जी स्वप्नावस्था और उर्मिला जी जाग्रत अवस्था हैं। इनके विभुवों में श्रीराम तुरीय चैतन्य सीतारूपिणी तुरीयावस्था के विभु, श्रीभरत प्राज्ञ मांडवीरूपिणीं सुषुप्ति अवस्था के विभु, श्रीशत्रुघ्न हिरण्यगर्भ श्रुतिकीर्तिरूपिणी स्वप्नावस्था के विभु और श्रीलक्ष्मण विराट् वैश्वानर उर्मिलारूपिणीं जाग्रत अवस्था के विभु हैं।

दो०- मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि, क्रियन सहित फल चारि।।३२५।।

भा०- चारों पुत्रवधुओं सहित चारों पुत्रों को निहारकर अवधनरेश दशरथ जी अत्यन्त प्रसन्न हैं, मानो राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती दशरथ जी ने चारों क्रियाओं (भक्ति, तपस्या, श्रद्धा और सेवा) के सहित मोक्ष, काम, धर्म और अर्थ को प्राप्त कर लिया हो।

विशेष- यहाँ श्रीराम मोक्ष हैं और रामरूप मोक्ष की क्रिया भक्ति ही सीता जी हैं। श्रीभरत काम भगवत्कैंकर्याभिलाष हैं और उनकी क्रिया हैं मांडवीरूपिणी तपस्या, श्रीलक्ष्मण ही धर्म हैं और लक्ष्मणरूप धर्म की श्रद्धा क्रिया हैं। उर्मिलाजी, श्री शत्रुघ्न जी अर्थ हैं और शत्रुध्नरूप अर्थ की सेवा क्रिया हैं श्रुतिकीर्ति।

विशेष– इस प्रसंग पर विशेष जिज्ञासार्थ मेरे द्वारा लिखित "**श्रीसीताराम विवाह दर्शन**" नामक पुस्तक पढ़िये।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी।।
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी।।

भा०– भगवान् श्रीराम के विवाह की जैसी विधि कही गई, उसी पद्धति से सभी तीनों कुमारों का विवाह हुआ। जनक जी ने बहुत अधिक दहेज दिया, उसका कुछ भी वर्णन किया नहीं जा सकता। मण्डप स्वर्णों और मणियों से भर गया।

कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे।।
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी।।
बस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन देखा।।

भा०– कम्बल, आश्चर्यजनक रेशमी वस्त्र, जो अनेक प्रकार के और बहुमूल्य थे। हाथी, रथ, घोड़े, दास, दासी, कामधेनु के समान सजी हुई गौयें, इस प्रकार की अनेक वस्तुयें जनक जी ने दहेज में दी, उनकी गणना कैसे की जाये? उन्हें तो वे ही जानते हैं, जिन्होंने उन्हें देखा हो।

लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुख माने।।
दीन्ह जाचकन जो जेहिं भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा।।

भा०– जिन्हें देखकर लोकपाल भी ईर्ष्या से प्रशंसा करने लगे। अवधनरेश दशरथ जी ने प्रसन्न होकर सब दहेज लिए। जिन्हें जो अच्छा लगा, वह माँगने वालों को दे दिया। जो अवशेष बचा वही जनवासे में आया।

तब कर जोरि जनक मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी।।

भा०– तब सम्पूर्ण बारात का सम्मान करके हाथ जोड़कर महाराज जनक जी कोमल वाणी में बोले–

छं०– सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै।।
सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किए।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिए।।१।।

भा०– आदर, दान, मान और प्रशंसा करके, सम्पूर्ण बारात का सम्मान करके, प्रसन्न होकर प्रेम उड़ेलकर, पूजा करके, जनक जी ने श्रेष्ठ मुनिसमूहों का वन्दन किया। देवताओं से प्रार्थना करके, सिर नवाकर, हाथ जोड़े हुए जनक जी, सभी बारातियों से कहने लगे, देवता और सन्तजन तो शुद्धहृदय का भाव ही चाहते हैं। क्या एक चुल्लू जल देने से समुद्र संतुष्ट हो जाता है, अर्थात् क्या एक चुल्लू जल से उस समुद्र की प्यास बुझ सकती है, जो अनेक नदियों के जल से भी नहीं भर पाता? अत: देवता और सन्त भाव के भूखे होते हैं, वस्तु के नहीं।

कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बैन सानि सनेह शील सुभाय सों।।
संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए।।२।।

भा०– फिर अपने छोटे भाई कुशध्वज के साथ, हाथ जोड़कर महाराज जनक जी ने कोसलनरेश दशरथ जी से स्वाभाविक शील और स्नेह से सने हुए मनोहर वचन बोले, हे राजन्! आपके इस वैवाहिक सम्बन्ध से अब हम

सब प्रकार से बड़े हो गये हैं। सभी साज–सज्जा सहित इस मिथिला राज्य को ही आप बिना मोल लिया हुआ, अपना सेवक जाने।

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठी कई।।
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान बिधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए।।३।।

भा०– हे महाराज! इन चारों राजकन्याओं को अपनी नवीन करुणा करते हुए अपनी सेविका करके जानियेगा। अथवा, आप अपने नवीन करुणा से इन चार सेविकाओं को अपनी चार बेटी करके मानियेगा। मैंने आपको बुलावा भेजा और बहुत बड़ी धृष्टता की, आप इस अपराध को क्षमा कीजियेगा। फिर सूर्यकुल के भूषण दशरथ जी ने अपने समधी जनक जी का सभी प्रकार से सम्मान किया। दोनों समधी महाराज जनक जी और महाराज दशरथ जी की पारस्परिक विनम्रता कही नहीं जाती। दोनों महाराजों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो गये।

बृंदारका गन सुमन बरषहिं राउ जनवासेहिं चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले।।
तब सखी मंगल गान करत मुनीश आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै।।४१।।

भा०– महाराज चारों पुत्रों का विवाह करके जनवासे चल पड़े। देवतागण पुष्पों की वर्षा करने लगे। आकाश और नगर दोनों में अत्यन्त सुन्दर कौतूहल (आनन्द से भरा हुआ कोलाहल) था। वहाँ नगाड़ों की जयध्वनि तथा वेदध्वनि हो रही थी। आकाश और नगर में अत्यन्त सुन्दर उत्सुकता से युक्त मांगलिक खेल हो रहे थे। तब वसिष्ठजी, विश्वामित्रजी, याज्ञवल्क्य जी और शतानन्द जी की आज्ञा पाकर सुन्दर सखियाँ चारों दूल्हा (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) चारों दुल्हिनियों (श्रीसीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति) के साथ कोहवर को आदरपूर्वक लिवाकर चल दीं।

दो०– पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचति मन सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि, प्रेम पियासे नैन।।३२६।।

भा०– भगवती सीताजी, श्रीराम को पुनः–पुनः देख रही हैं, वे संकुचित हो रही हैं, पर उनका मन नहीं संकुचित हो रहा है। श्रीराम प्रेम के प्यासे सीता जी के दोनों नेत्र सुन्दर मछलियों की छवि को चुरा रहे हैं।

श्याम शरीर सुभाय सुहावन। शोभा कोटि मनोज लजावन।।
जावक जुत पदकमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन छाए।।

भा०– भगवान् श्रीराम का स्वभाव से सुन्दर श्यामल शरीर अपनी शोभा से करोड़ों कामदेव को लज्जित कर रहा है। महावर से युक्त श्रीराम के श्रीचरणकमल बहुत सुन्दर हैं। मुनियों के मन रूप भौंरे जिन पर छाये अर्थात् मंडराये रहते हैं।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बालरबि दामिनि जोती।।
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिशाल बिभूषन सुन्दर।।

भा०– पीली, पवित्र मन को हरनेवाली प्रभु की धोती (वियहुती धोती) की ज्योति बालसूर्य और विद्युत की ज्योति को भी मानो चुराती रहती है अर्थात् उसको स्थानान्तरित करती रहती है। कटि प्रदेश में किंकिणि और मन को हरनेवाला कटिसूत्र है, विशाल बाहुओं में सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं।

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई।।
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत अतिभूषन राजे।।

भा०– भगवान् श्रीराम के वाम स्कन्ध पर पीला यज्ञोपवीत पूजनीय छवि प्रदान कर रहा है और दक्षिण श्रीहस्त में विराजमान नित्य आभूषण मुद्रिका चित्त को चुरा लेती है। सजे हुए विवाह के सभी साज अर्थात् उपकरण (जोड़ा जामा इत्यादि) श्रीविग्रह पर बहुत शोभित हो रहे हैं। विशाल हृदय पर हार कौस्तुभमणि, वैजयन्ती माला आदि आभूषण अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं।

पियर उपरना काँखा सोती। दुहुँ आँचरनि लगे मनि मोती।।
नयन कमल कल कुंडल काना। बदन सकल सौंदर्य निधाना।।

भा०– पीला दुपट्टा काँखा सोती के पद्धति से अर्थात् गले से लेकर दोनों काँख और पृष्ठभाग में पहना हुआ, सुन्दर लग रहा है। उसके दोनों आंचलों में मुक्तामणि लगी हुई है। कमल के समान प्रभु के नेत्र और कानों में पहने हुए कुण्डल बहुत मधुर हैं। मुख तो समस्त सुन्दरताओं का खजाना ही है।

सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक रुचिरता निवासा।।
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकता मनि गाथे।।

भा०– प्रभु की भृकुटि बड़ी सुन्दर है और उनकी नासिका मन को चुरा रही है। मस्तक पर विराजमान तिलक सुन्दरता का निवासस्थान ही है। माथे पर मंगलमय मुक्तामणियों से गूँथा हुआ, मन को हरने वाला मौर (विवाहोचित मुकुट) बहुत शोभित हो रहा है।

छं०– गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुन्दरी बरहिं बिलोकि सब तृन तोरहीं।।
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरषहिं सूत मागध बंदि सुजस सुनावहीं।।१।।

भा०– श्रेष्ठ मणियों से गूँथा हुआ मौर बहुत ही मधुर और सुन्दर है। भगवान् श्रीराम के सभी अंग ध्यान करने वालों के चित्त को चुरा रहे हैं। मिथिलापुर की नारियाँ और सभी देव सुन्दरियाँ, वर श्रीराम को देखकर तिनके तोड़ रही हैं कि, कहीं दृष्टिदोष न लग जाये। वे अनेक मणि, वस्त्र और आभूषणों की वर्षा करके आरती करती हैं और मंगल गाती हैं। देवता पुष्प बरसाते हैं और सूत, मागध तथा बंदी, भगवान् श्रीराम का सुयश सुनाते हैं।

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुवासिनिन सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ कै।।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन शारद कहैं।
रनिवास हास बिलास रस बश जन्म को फल सब लहैं।।२।।

भा०– सौभग्यवती महिलाओं ने सुख पाकर चारों राजकुमार और चारो राजकुमारियों को कोहवर में लाकर विराजमान कराया और मंगल गाकर अत्यन्त प्रेम से लौकिक रीति करने लगीं। लहकौरि की पद्धति पार्वतीजी, भगवान् श्रीराम को सिखाती हैं और सरस्वतीजी, सीता जी को कहती हैं। सम्पूर्ण जनक–रनिवास हासरस के

सुन्दर प्रयोगों के आनन्द के वश में है। सभी महारानियाँ सखियाँ, सुवासिनियाँ अपने जन्म का फल प्राप्त कर रही हैं।

निज पानि मनि महँ देखि प्रति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बश जानकी।।
कौतुक बिनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअँरि सुंदरि सकल सखी लिवाइ जनवासेहिं चलीं।।३।।

भा०– अपने हाथ में धारण किये हुए कंकण के मणि में स्वरूप के निधान भगवान् श्रीराम की प्रतिमूर्ति अर्थात् परछायीं देखकर भगवती सीता जी अपनी भुजा रूप लता को नहीं हिला रही हैं, क्योंकि जनकनन्दिनी जी विरह के भय के वश में हैं। वे सोचती हैं कि, यदि अपना हाथ नीचे कर लेंगी तो प्रभु के दर्शन नहीं हो पायेंगे। इस प्रकार, कौतुक अर्थात् परिहास भरे खेल (विनोद, हास, परिहास, प्रमोद तथा आनन्द) और प्रेम कहा नहीं जा सकता, इसे तो कोहवर की सखियाँ ही जानती हैं। सभी सुन्दर वर और बहुओं को सखियाँ कोहवर से लिवाकर जनवास को चली गईं।

तेहि समय सुनिय अशीष जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा।
चिर जियहु जोरी चारु चारिउ मुदित मन सबहीं कहा।।
जोगींद्र सिद्ध मुनीश देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी।।४।।

भा०– उस समय जहाँ–तहाँ आशीर्वाद ही सुनायी पड़ रहा था। आकाश और मिथिला नगर में महान् आनन्द था। सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी रहें इस प्रकार प्रसन्न होकर सभी ने कहा। श्रेष्ठ योगीजन, सिद्धगण, उच्चकोटि के मुनिजन तथा देवताओं ने प्रभु को देखकर नगारे बजाये और प्रसन्न होकर पुष्पों की वर्षा करके जय हो ! जय हो ! जय हो ! इस प्रकार जय–जयकार बोलकर अपने–अपने लोक को चले गये।

दो०– सहित बधूटिन कुअँर सब, तब आए पितु पास।
शोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास।।३२७।।

भा०– तब अर्थात् कोहवर की विधि सम्पन्न करके सभी चारों राजकुमार, बधूटिन अर्थात् अपनी–अपनी नई बहुओं के साथ, पिताश्री दशरथ जी के पास आये, मानो वह जनवासा शोभा, मंगल और आनन्द से भरकर उमड़ चला हो।

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती।।
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन समेत गवन कियो भूपा।।

भा०– फिर बहुत प्रकार से रसोई बनी और जनक जी ने भोजन के लिए सभी बारातियों को बुला भेजा। सुन्दर अनूठे वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे थे। पुत्रों के सहित महाराज भोजन के लिए चल पड़े।

सादर सब के पायँ पखारे। जथा जोग पीढ़न बैठारे।।
धोए जनक अवधपति चरना। शील सनेह जाइ नहिं बरना।।

भा०– आदरपूर्वक सभी के चरण पखारे गये (धोये गये) और योग्यतानुसार सब को लकड़ी के पाटों (पीढ़ा) पर बैठाया गया। जनक जी ने अवधनरेश दशरथ जी के चरण धोये। उनके स्वभाव और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महँ गोए।।
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी।।

भा०– फिर जनक जी ने भगवान् श्रीराम के उन श्रीचरणकमलों को धोया, जिन्हें शिव जी अपने हृदय कमल में छिपाकर रखते हैं। तीनों भाइयों को श्रीराम के समान जानकर जनक जी ने उनके चरण अपने हाथ से धोये।

आसन उचित सबहिं नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।।
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे।।

भा०– सब को महाराज ने उचित आसन दिये फिर सूपकारी अर्थात् भोजन बनाने वालों को बुला लिया। आदरपूर्वक पान की पत्तलें पड़ने लगीं। उनके पत्ते स्वर्ण के कीलों और मणियों से बनाये गये थे।

दो०- सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत।
छन महँ सब के परुसि गे, चतुर सुआर बिनीत।।३२८।।

भा०– चतुर और विनम्र परोसने वाले एक क्षण में ही सबके लिए सुन्दर स्वाद से युक्त और पवित्र दाल–भात तथा कामधेनु गौ का घी परोस गये।

पंच कवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने।।
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना।।

भा०– वे बाराती पंच कवल करके अर्थात् प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाम स्वाहा इन मंत्रों से पाँच ग्रास अग्नि में हवन करके भोजन करने लगे। गारी–गान सुनकर वे बहुत अनुरक्त हो गये। पत्तलों पर अमृत के समान स्वादवाले अनेक प्रकार के पकवान पड़े थे। वे बखाने नहीं जा सकते थे। अनेक प्रकार के व्यंजन, जिनका कोई नाम नहीं जान सकता, चतुर रसोइये परोसने लगे।

चारि भाँति भोजन श्रुति गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई।।
छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।।

भा०– वेदों में चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन गाये गये हैं। एक–एक के भी उतने ही उप–प्रकार हैं, उनका वर्णन सम्भव नहीं है। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त इन छः रसों के सुन्दर बहुत प्रकार के व्यंजन भी हैं। उनमें एक–एक रस के भी अनेक प्रकार हैं।

जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी।।
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउसुनि सहित समाजा।।
एहि बिधि सबहीं भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन लीन्हा।।

भा०– बारातियों के भोजन करते समय मिथिला की नारियाँ अवध की नारियों और पुरुषों का नाम ले–लेकर मधुर स्वर से गारी देने लगीं। इस सुहावने समय में गारी भी सुन्दर लग रही है। मिथिलानियों की गारी सुनकर बरातियों के साथ महाराज दशरथ जी भी हँस रहे हैं। इस प्रकार, सभी ने भोजन किया और फिर आदर के साथ सभी बरातियों के लिए आचमन का जल दिया गया। सभी ने सुगंधित जल से मुख धोया।

विशेष – महाराज दशरथ जी के हास के संबन्ध में नवगाधी के प्रसिद्ध भगवत् साक्षात्कार संपन्न परमहंस जी महाराज का एक भावबद्ध सवैया छन्द यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

कालिक हाल सुनो सजनी मड़ये प्रगट्यो एक कौतुक भारी
जेवँत जानि वरात सबै अवधेश लख्यो मिथिलेश अटारी।
राम को रूप निहारत ही सुधि भूलि गईं जित गावनिहारी
भूलि गई अवधेश को नाम वे देन लगीं मिथिलेश को गारी।।

दो०- देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज।
जनवासेहिं गवने मुदित, सकल भूप सिरताज।।३२९।।

भा०- जनक जी ने ताम्बूल (पान की बीड़ी) देकर बरातियों सहित दशरथ जी का सम्मान किया। सम्पूर्ण राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी प्रसन्न होकर जनवासे की ओर चले गये।

* मासपरायण, नवाँ विश्राम *

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं।।
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे।।

भा०- इस प्रकार नगर में नित्य नवीन मंगल हो रहे हैं तथा दिन और रात क्षण के समान बीत रहे हैं। इधर राजाओं के मुकुटमणि महाराज दशरथ जी प्रातःकाल जगे। याचकगण उनके गुणगणों को गाने लगे।

देखि कुअँर बर बधुन समेता। किमि कहि जात मोद मन जेता।।
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोद प्रेम मन माहीं।।

भा०- श्रेष्ठ वधुओं के सहित अपने चारों पुत्रों को देखकर उनके मन में जितना आनन्द हुआ वह कैसे कहा जाये? महाराज स्नान, सन्ध्यावन्दन करके गुरुदेव वसिष्ठ जी के पास गये। उनके मन में बहुत बड़ा आनन्द और प्रेम था।

करि प्रनाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी।।
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरनकाजा।।
अब सब बिप्र बोलाइ गोसाँई। देहु धेनु सब भाँति बनाई।।
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई।।

भा०- प्रणाम और पूजा करके हाथ जोड़कर महाराज मानो अमृत में डुबोई हुई वाणी बोले, हे मुनिराज! सुनिये, आपकी कृपा से आज मैं पूर्णकाम हो गया अर्थात् आज मेरे सभी कार्य पूर्ण हो गये। हे स्वामी! अब सभी वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर, सब प्रकार से सजायी हुई गौओं का दान करें। महाराज की वाणी सुनकर और चक्रवर्ती जी की प्रशंसा करके फिर गुरुदेव वसिष्ठ जी ने मुनि समूहों को बुला भेजा।

दो०- बामदेव अरु देवरिषि, बालमीकि जाबालि।
आए मुनिवर निकर तब, कौशिकादि तपशालि।।३३०।।

भा०- वसिष्ठ जी के आमंत्रण पर ब्रह्मवेत्ता वामदेव, देवर्षि नारद आदिकवि वाल्मीकि, जाबाली और विश्वामित्र आदि तपस्या से सुशोभित होनेवाले श्रेष्ठ मुनियों के समूह वहाँ अर्थात् जनकनगर में स्थित राजा दशरथ जी के जनवासे में आये।

दंड प्रनाम सबहिं नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे।।
चारि लक्ष बर धेनु मँगाई। काम सुरभि सम शील सुहाई।।
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन दीन्हीं।।
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जगजीवन लाहू।।

भा०- चक्रवर्ती जी ने सभी को दंडवत् प्रणाम किया। सभी महर्षियों की पूजा करके प्रेमपूर्वक श्रेष्ठ आसन दिया। कामधेनु के समान स्वभाव वाली सुन्दर श्रेष्ठ चार लाख कपिला गौवें मँगवाई। उन सभी को सब प्रकार से अलंकृत किया अर्थात् सजाया और प्रसन्न होकर महाराज ने ब्राह्मणों को दे दिया। महाराज दशरथ जी बहुत प्रकार से विनय करने लगे और बोले, हे महर्षियों! आज मैंने जगत् में जीवन का लाभ प्राप्त कर लिया।

पाइ अशीष महीश अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा।।
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुलनंदन।।

भा०- आशीर्वाद प्राप्तकर चक्रवर्ती राजा दशरथ जी प्रसन्न हुए और उन्होंने याचक समूहों को बुला लिया। सूर्यकुल को आनन्दित करनेवाले महाराज दशरथ जी ने सभी याचकों की रुचि पूछकर स्वर्ण, वस्त्र, मणि, घोड़े, हाथी और रथ दिये।

चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा।।
एहि बिधि राम बिबाह उछाहू। सकइ न बरनि सहसमुख जाहू।।

भा०- विरुदावली पढ़ते हुए और महाराज की गुणगाथायें गाते हुए हे सूर्यकुल के स्वामी! आपकी जय हो! जय हो! जय हो! इस प्रकार जयकारा लगाते हुए याचकजन चले गये। इस प्रकार, श्रीराम का विवाह सम्पन्न हुआ। इस उत्साह को वे शेषनारायण भी नहीं कह सकते जिनके पास एक हजार मुख हैं।

दो०- बार बार कौशिक चरन, शीश नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपा कटाक्ष पसाउ।।३३१।।

भा०- विश्वामित्र जी के चरणों में बार–बार सिर नवाकर चक्रवर्ती जी कहते हैं, हे नाथ! यह सभी सुख आपके कृपामय कटाक्ष के प्रसाद से ही सम्भव है।

जनक सनेह शील करतूती। नृप सब भाँति सराह बिभूती।।
दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनक सहित अनुरागा।।

भा०- चक्रवर्ती दशरथ जी महाराज जनक जी के स्नेह, शील, कार्य और उनके ऐश्वर्य की सब प्रकार से सराहना करते हैं। अवधनरेश प्रतिदिन आकर जनक जी से जाने की अनुमति माँगते हैं, पर जनक जी प्रेम के साथ उन्हें रोक लेते हैं।

नित नूतन आदर अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई।।
नित नव नगर अनंद उछाहू। दशरथ गवन सोहाइ न काहू।।

भा०- नित्य नूतन आदर अधिक हो रहा है और नित्य नवीन रूप से सहस्रों प्रकार का आतिथ्य हो रहा है। मिथिलानगर में नित्य नया आनन्द और उत्साह है। किसी को भी महाराज दशरथ जी का जाना अच्छा नहीं लग रहा है।

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती।।
कौशिक शतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहिं समुझाई।।
अब दशरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू।।
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव शीश तिन नाए।।

भा०- इस प्रकार से बहुत दिन बीत गये, मानो मिथिला के स्नेह की रस्सी में सभी बराती बँधे हुए थे। कोई अपने घर जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। तब ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी एवं शतानन्द जी ने जाकर जनकराज को समझाकर कहा, अब चक्रवर्ती दशरथ जी को श्रीअवध पधारने की अनुमति दीजिये। यद्यपि आप प्रेम नहीं छोड़ सकते और प्रेम के कारण दशरथ जी को छोड़ नहीं सकते, फिर भी एक न एक दिन ऐसा करना ही पड़ेगा। हे नाथ! ठीक है इस प्रकार, विश्वामित्र जी एवं शतानन्द जी से कहकर, जनक जी ने अपने मंत्रियों को बुलाया। "आप सब से उत्कृष्ट हों, आप चिरंजीवी हों" इस प्रकार मंगल वचन कहकर उन मंत्रियों ने मस्तक नवाकर राजा जनक जी का अभिवादन किया।

विशेष- प्राचीन समय में मंत्री या अन्य प्रजा लोग राजा के लिए जय जीव इन दो क्रियाओं का प्रयोग करते थे। ये दोनों ही आशीर्वाद रूप में प्रयुक्त लोट् लकार, मध्यमपुरुष एक वचन के धातु रूप हैं। इनका अर्थ है, जय अर्थात् आप सब से उत्कृष्ट हों, जीव अर्थात् आप जीवित रहें। मानस जी में जय जीव शब्द का चार बार प्रयोग हुआ है। बालकाण्ड में महाराज जनक जी के लिए एक बार और अयोध्याकाण्ड में महाराज दशरथ जी के लिए तीन बार।

दो०- अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेम बस सचिव सुनि, बिप्र सभासद राउ।।३३२।।

भा०- राजा जनक जी ने कहा, अयोध्याधिपति महाराज दशरथ जी श्रीअवध को चलना चाह रहे हैं। भीतर अर्थात् अन्तःपुर में रनिवास को सूचना कर दीजिये। यह सुनते ही मंत्रीगण, ब्राह्मण, जनक जी के सभासद और राजा स्वयं भी प्रेम के वश में हो गये।

पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता।।
सत्य गमन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने।।

भा०- मिथिला पुरवासी बारात अब प्रस्थान करेगी, ऐसा सुनकर व्याकुल होकर परस्पर बाता अर्थात् समाचार पूछने लगे। बरात का गमन सत्य है, ऐसा सुनकर सभी लोग दुःखी हो गये, मानो संध्या के समय कमल मुरझा गये हों।

जहँ तहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती।।
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साज न जाइ बखाना।।
भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठए जनक अनेक सुआरा।।

भा०- श्रीअवध से श्रीमिथिला आते समय बारातियों ने जहाँ-जहाँ वास किया था उन-उन विश्राम स्थलों के लिए अनेक प्रकार की सीध अर्थात् सीधा (सिद्धान्न, जैसे आटा, दाल, चावल, शाक, मसाले नमक आदि) चला

अर्थात् जनक जी के द्वारा भेजा गया। अनेक प्रकार के मेवे, पकवान, मिठाइयाँ जिसको बखाना नहीं जा सकता ऐसा भोजन बनाने का उपकरण (कड़ाही, बटलोही, थाली आदि) बैलों और अनेक कहाँरों पर भर–भर कर जनक जी ने भेजा और अनेक रसोइये भी साथ में भेजे।

तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु शीशा।।
मत्त सहसदस सिंधुर साजे। जिनहिं देखि दिशि कुंजर लाजे।।
कनक बसन मनि भरि भरि याना। महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना।।

भा०– एक लाख घोड़े, पच्चीस हजार रथ, जिन्हें नख से शिख तक सजाया गया था, ऐसे दस हजार मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लज्जित हो रहे थे, तथा वाहनों में भर–भर कर स्वर्ण, वस्त्र, मणियाँ, भैंसें, गौयें और अनेक प्रकार की अन्य वस्तुयें दीं।

दो०– दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि।।३३३।।

भा०– ऐसे अनेक दहेज जिन्हें कहा नहीं जा सकता, जिन्हें देखने पर लोकपालों को लोकों की संपत्ति भी बहुत थोड़ी लगती थी, महाराज जनक जी ने दहेज में दिया।

सब समाज एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई।।

भा०– इस प्रकार सम्पूर्ण दहेज के समान को सजाकर, जनक जी ने महाराज के प्रस्थान के पहले श्रीअवध भेज दिया।

विशेष– क्योंकि देहेजों का संज्ञान महाराज दशरथ को हो जाता, तो वे भिक्षुकों को बाँट देते श्रीअयोध्या कुछ भी नहीं पहुँच पाता, इसलिए जनक जी ने दहेजों को महाराज के संज्ञान के पहले ही श्रीअवध भेज दिया।

चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानी।।
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ अशीष सिखावन देहीं।।

भा०– बारात चल रही है, ऐसा सुनकर सभी रानियाँ उसी प्रकार विकल हुईं, जैसे थोड़ा जल रहने पर मछलियाँ व्याकुल हो जाती हैं। वे सीता जी को पुनः–पुनः गोद में लेती हैं, आशीर्वाद देकर उन्हें शिक्षा देती हैं।

होएहु संतत पियहिं पियारी। चिर अहिबात अशीष हमारी।।
सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।।

भा०– हे सीते! आप निरन्तर अपने प्रियतम श्रीराम की प्रिय रहेंगी। आपका सौभाग्य अनन्त वर्षों तक रहेगा यही हमारा आशीर्वाद है। आप सासुओं, श्वसुर तथा गुरुओं की सेवा करियेगा और अपने पति श्रीराम की इच्छा देखकर उनकी आज्ञा का अनुसरण करियेगा।

अति सनेह सब सखी सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी।।
सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन बार बार उर लाई।।
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी। कहहिं बिरंचि रची कत नारी।।

भा०– अत्यन्त स्नेह से सभी चतुर सखियाँ कोमल वाणी में सीता जी को नारीधर्म सिखाती हैं। इसी प्रकार, सीता जी के अतिरिक्त मांडवीजी, उर्मिला जी एवं श्रुतिकीर्ति जी इन सभी राजकुमारियों को रानियों ने बारम्बार हृदय से

लगाकर समझाया। मातायें बार-बार भेंट रही हैं अर्थात् चारों पुत्रियों को गले लगा रही हैं और कहती हैं कि, ब्रह्मा जी ने नारियों को किस प्रकार बनाया?

विशेष- क्योंकि भारतीय नारि अपने जीवन को पीहर तथा ससुराल इन दो विरुद्ध स्थानों से जोड़कर अपनी ममता का संयोजन कैसे कर पाती है, और जन्मस्थान से भी ससुराल को अधिक ममतास्पद बना लेती है, यह कठिन कार्य तो उसी के वश का है, इसी दृष्टि से भारतीय नारि की रचना पर मैथिलानी मातायें आश्चर्य कर रही हैं।

दो०- तेहि अवसर भाइन सहित, राम भानु कुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु।।३३४।।

भा०- उसी समय सूर्यकुल के पताकास्वरूप भगवान् श्रीराम तीनों भाइयों के साथ प्रसन्न होकर वधुओं को विदा कराने जनक जी के राजभवन चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए।।
कोउ कह चलन चहत हैं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू।।
लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी।।
को जानैं केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी।।

भा०- स्वभाव से सुहावने चारों भाइयों को देखने के लिए नगर के नारि-नर दौड़े। कोई सखी कहने लगीं, ये आज ही चलना चाहते हैं। जनक जी ने इनकी विदा की तैयारी कर ली है। इनका रूप आँख भर देख लो, अवधनरेश के चारों पुत्र प्यारे अतिथि हैं। हे सखी! कौन जाने किस पुण्य के फल से ब्रह्मा जी ने इन चारों भ्राताओं को यहाँ लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि बनाया?

मरनशील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा।।
पाव नारकी हरिपद जैसे। इन कर दरसन हम कहँ तैसे।।

भा०- जिस प्रकार, मरणासन्न व्यक्ति अमृत पा जाये, जिस प्रकार जन्मों का भूखा कल्पवृक्ष पा जाये, जिस प्रकार नरक में जानेवाला व्यक्ति हरिपद अर्थात् श्रीहरि का निवासस्थान वैकुण्ठ पा जाये, हमारे लिए इनके दर्शन उसी प्रकार दुर्लभ हैं।

निरखि राम शोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू।।
एहि बिधि सबहिं नयन फल देता। गए कुअँर सब राज निकेता।।

भा०- श्रीराम की शोभा को देखकर हृदय में धारण कर लो। अपने मन को सर्प और इनके मन को मणि बना लो अर्थात् जैसे सर्प मणि को छिपा लेता है, उसी प्रकार प्रभु श्रीराम की मूर्ति को अपने मन में छिपा लो। इस प्रकार, सबको नेत्रों का फल देते हुए सभी राजकुमार जनक जी के राजभवन गये।

दो०- रूप सिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठेउ रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु।।३३५।।

भा०- रूप के चार सागरस्वरूप चारों भाइयों (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी) को देखकर जनक जी का रनिवास प्रसन्न होकर उठ गया। सभी सासुयें मन में बहुत मुदित होकर न्यौछावर और आरती करने लगीं।

देखि राम छबि अति अनुरागी। प्रेम बिबश पुनि पुनि पद लागी।।
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई।।

भा०– भगवान् श्रीराम की छवि देखकर सासुयें अत्यन्त अनुरक्त हो गईं। वे प्रेम के विवश होकर पुनः–पुनः चरणों में लिपट गईं। उनके मन में कोई लज्जा नहीं रही, हृदय में प्रीति छा गई। सुनयना आदि रानियों के स्वाभाविक प्रेम का कैसे वर्णन किया जाय?

भाइन सहित उबटि अन्हवाए। छरस अशन अति हेतु जेवाँए।।
बोले राम सुअवसर जानी। शील सनेह सकुचमय बानी।।

भा०– सासुओं ने तीनों भाइयों के सहित प्रभु श्रीराम को उबटन लगाकर स्नान करवाया और अत्यन्त प्रेम से मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त इन छः रसों से निर्मित भोजन प्रभु को जिमाया। भगवान् श्रीराम सुन्दर अवसर जानकर शील, स्नेह और संकोच से भरी हुई वाणी बोले–

राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए।।
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू।।

भा०– हे माताओं! अवध के राजा (मेरे पिताश्री) श्रीअवध पधारना चाहते हैं। विदा होने के लिए हम यहाँ भेजे गये हैं। आप सब प्रसन्न मन से हमें आज्ञा दें और अपना बालक जानकर निरन्तर प्रेम करते रहियेगा।

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबश सासू।।
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्हीं। पतिन सौंपि बिनती अति कीन्हीं।।

भा०– प्रभु का यह वचन सुनकर सम्पूर्ण रनिवास विलख पड़ा प्रभु प्रेम के विवश हुई सभी सासुयें कुछ बोल नहीं पा रहीं थीं। उन्होंने सभी बेटियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर अत्यन्त विनती की।

छं०– करि बिनय सिय रामहिं समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ बिदित गति सब की अहै।।
परिवार पुरजन मोहि राजहिं प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीश शील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी।।

भा०– सुनयना जी ने प्रार्थना करके भगवती सीता जी को भगवान् श्रीराम को समर्पित कर दिया। हाथ जोड़कर पुनः–पुनः कहने लगीं, हे चतुर सबके प्रेमास्पद श्रीराम! मैं बलिहारी जाती हूँ, आपको सबकी गति विदित है। आप इस मिथिलापरिवार को, पुरजनों को, मुझे और महाराज को, सीता जी प्राणप्रिय हैं ऐसा जानियेगा। हे तुलसीदास के ईश्वर! हमारी सीता जी के शील और स्नेह को देखकर उन्हें अपनी दासी करके मानियेगा।

सो०– तुम परिपूरन काम, जान सिरोमनि भाव प्रिय।
जन गुन गाहक राम, दोष दलन करुनायतन।।३३६।।

भा०– हे श्रीराम! आप परिपूर्ण काम, ज्ञानियों में शिरोमणि, भाव के प्रिय, सज्जनों के गुणों को ग्रहण करनेवाले, दोषों को नष्ट करनेवाले और करुणा के आयतन अर्थात् निवासस्थान हैं।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी।।
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी।।

भा०– इतना कहकर महारानी सुनयनाजी, भगवान् श्रीराम के चरणों को पकड़कर चुप रह गईं, मानो उनकी वाणी प्रेम रूप पंक अर्थात् कीचड़ में समा गई अर्थात् फँस गई। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्रीराम ने सासु माँ का बहुत प्रकार से सम्मान किया।

राम बिदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी।।
पाइ अशीष बहुरि सिर नाई। भाइन सहित चले रघुराई।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बारम्बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर फिर मस्तक नवाकर तीनों भाइयों के सहित श्रीरघुनाथ जनकभवन से चले।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह शिथिल सब रानी।।

भा०- भगवान् श्रीराम की सुन्दर और मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सभी रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गईं।

पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी। बार बार भेंटहिं महतारी।।
पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी।।
पुनि पुनि मिलत सखिन बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।।

भा०- फिर धैर्य धारण करके चारों बेटियों को बुलाकर मातायें बार–बार भेंटने लगीं अर्थात् गले से लगाने लगीं। पहुँचाती और फिर मिलती थीं, परस्पर प्रेम बहुत बढ़ रहा था। बार–बार मिलती हुईं माताओं को राजकुमारियों से सखियों ने इसी प्रकार अलग कर दिया जैसे तत्काल जनी हुई गौ को छोटे बछड़े से अलग कर दिया गया हो।

दो०- प्रेमबिबस नर नारि सब, सखिन सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना बिरह निवास।।३३७।।

भा०- सभी मिथिला पुर के नर–नारी और सखियों के सहित सम्पूर्ण रनिवास प्रेम के विवश हो गया, मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने निवास ही कर लिया हो।

शुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरनि राखि पढ़ाए।।
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरज परिहरइ न केही।।
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दशा कैसे कहि जाती।।

भा०- जिन तोते और मैनों को भगवती सीता जी ने जिलाये थे और स्वर्ण के पिंजड़ें में रखकर उन्हें पढ़ाया था। वे तोता और मैंना भी सीता जी की विदायी समय व्याकुल होकर कहने लगे, वैदेही कहाँऽऽ हैं...वैदेही कहाँऽऽ हैं? उनकी यह वाणी सुनकर भला किसको धैर्य न छोड़ दे। पशु, पक्षी इस प्रकार व्याकुल हो गये तो मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है?

बंधु समेत जनक तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।।
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।।
लीन्ह राय उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की।।
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचार अनवसर जाने।।

भा०- जब छोटे भाई कुशध्वज के साथ सिरध्वज जनकजी, सीता जी के पास आये तब उनके नेत्रों में प्रेम से उमड़े हुए आँसू छा गये। जनक जी तो परमवैराग्यवान कहला रहे थे, परन्तु सीता जी को देखकर उनका भी धैर्य भंग हो गया। राजा जनक जी ने सीता जी को हृदय से लगा लिया और उनके ज्ञान की बहुत बड़ी मर्यादा मिट गई। सभी चतुर मंत्री महाराज जनक जी को समझाने लगे। जनक जी ने अनुचित अवसर जानकर विचार किया अर्थात् धैर्य धारण किया।

बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुन्दर पालकी मगाई।।

भा०– बार–बार पुत्री जानकी, मांडवी, उर्मिला तथा श्रुतिकीर्ति इन सभी पुत्रियों को हृदय से लगाकर जनक जी ने सजी हुई सुन्दर पालकी मंगवाई।

दो०– प्रेमबिबश परिवार सब, जानि सुलगन नरेश।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन, सुमिरे सिद्धि गणेश।।३३८।।

भा०– सम्पूर्ण परिवार प्रेम के विवश हो गया। महाराज जनक जी ने सुन्दर मुहूर्त जानकर छोटी अवस्थावाली चारों पुत्रियों अर्थात् सीताजी, मांडवीजी, उर्मिला जी और श्रुतिकीर्ति जी को पालकियों पर चढ़वाया और सिद्धि सहित गणपति का स्मरण किया।

विशेष– सौतन की सम्भावना के डर से जनक जी ने सिद्धि के ही सहित गणपति जी का स्मरण किया, बुद्धि का स्मरण नहीं किया, इसीलिए सरस्वती जी ने मंथरा और कैकेयी की बुद्धि फेरी जिससे राज–रसभंग हुआ।

बहुबिधि भूप सुता समुझाई। नारिधरम कुलरीति सिखाई।।
दासी दास दिए बहुतेरे। शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे।।

भा०– जनक जी ने पुत्रियों को बहुत प्रकार से समझाया उन्होंने राजकुमारियों को नारी धर्म और कुल की रीति सिखाई। बहुत सी दासियाँ और दास दिये और ऐसे पवित्र सेवक दिये जो सीता जी को भी प्रिय थे।

सीय चलत ब्याकुल पुरवासी। होहिं सगुन शुभ मंगल रासी।।
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा।।

भा०– सीता जी के चलते समय सभी मिथिलापुरवासी व्याकुल हो उठे। वहाँ सुन्दर कल्याणकारी मंगलों के राशि शकुन होने लगे। ब्राह्मणों, मंत्रियों और सभी समाज के साथ राजा जनकजी, सीता जी को पहुँचाने के लिए बारात के संग–संग चले।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन साजे।।
दशरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे।।
चरन सरोज धूरि धरि शीषा। मुदित महीपति पाइ अशीषा।।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भए नाना।।

भा०– प्रस्थान का समय देखकर बाजे बजने लगे और बारातियों ने रथ, घोड़े और हाथी सजाये। दशरथ जी ने सभी ब्राह्मणों को बुला लिया और दान तथा सम्मान से परिपूर्ण किया। उनके चरणकमल की धूलि को सिर पर रखकर तथा आशीर्वाद पाकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और गणपति जी का स्मरण करके श्रीअवध के लिए प्रयाण किया। उस समय अनेक मंगलों के मूल कारण शकुन हुए।

दो०– सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान।।३३९।।

भा०– देवता प्रसन्न होकर पुष्पों की वर्षा करने लगे, अप्सरायें मंगलगान करने लगीं प्रसन्नतापूर्वक नगारे बजाकर अवधनरेश दशरथजी, श्रीअवध के लिए चले।

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे।।
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने विनय करके सभी श्रेष्ठजनों को लौटाया और आदरपूर्वक सभी भिक्षुकों को बुलाया, उन्हें आभूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़े दिये। सबको प्रेम से पुष्ट करके अपने पाँव पर खड़ा कर दिया अर्थात् व्यवस्थित जीविका दे दी, जिससे कोई भीख न माँगे।

बार बार बिरुदावलि भाखी। फिरे सकल रामहिं उर राखी।।
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनक प्रेमबश फिरै न चहहीं।।

भा०– वे सभी बार–बार महाराज की विरुदावली कहकर भगवान् श्रीराम को हृदय में रखकर लौटे। दशरथ जी महाराज पुनः–पुनः जनक जी को लौट जाने के लिए कहते हैं, परन्तु महाराज जनक जी प्रेम के विवश में होने के कारण लौटना नहीं चाहते।

पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिय महीश दूरि बड़ि आए।।
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े।।
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधा जनु बोरी।।
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्ह बड़ाई।।

भा०– फिर महाराज दशरथ जी ने सुन्दर वचन कहे, हे राजा जनक! अब लौट जाइये, बहुत दूर आ गये हैं। फिर राजा जनक जी उतरकर खड़े हो गये और उनके नेत्रों में प्रेम के प्रवाह बढ़ गये। तब जनक जी हाथ जोड़ करके मानो स्नेह की सुधा में डूबोकर वचन बोले, हे महाराज! मैं किस प्रकार बनाकर विनय करूँ?

दो०– कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदय समाति।।३४०।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने अपने स्वजन (मित्र) समधी जनक जी का सब प्रकार से सम्मान किया। दोनों परस्पर मिल रहे थे, उनकी विनम्रता और प्रेम हृदय में नहीं समा रही थी।

मुनि मंडलिहिं जनक सिर नावा। आशिरबाद सबहिं सन पावा।।
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप शील गुननिधि सब भ्राता।।

भा०– तब जनक जी ने मुनियों के समूह को प्रणाम किया और सब से आशीर्वाद पाया। फिर आदरपूर्वक रूप शील एवं गुणों के महासागर चारों भाइयों श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक सभी जमाइयों को गले लगाया।

जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए।।
राम करौं केहि भाँति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा।।

भा०– फिर सुन्दर कमल के समान हाथ जोड़कर मानो प्रेम से उत्पन्न हुए वचन बोले। जनक जी ने कहा, हे श्रीराम! हे मुनियों एवं शिव जी के मनरूप मानससरोवर के राजहंस! आपकी कैसे प्रशंसा करूँ?

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी।।
ब्यापक ब्रह्म अलख अबिनाशी। चिदानंद निरगुन गुनराशी।।

भा०– क्रोध, मोह, ममता और मद छोड़कर योगी लोग जिनके लिए योग साधना करते हैं। जो सर्वव्यापक, ब्रह्म अर्थात् सबसे बड़े अलख अर्थात् प्राकृत नेत्रों से नहीं देखे जाने योग्य, अविनाशी अर्थात् विनाशरहित, चिदानन्द अर्थात् ज्ञान और आनन्दमय, निर्गुण अर्थात् हेय गुणों से रहित, गुणों की राशि अर्थात् सभी कल्याण गुणगणों के पुंज हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी।।
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई।।

भा०– जिन्हें मन के सहित वाणी नहीं जान पाती, सभी अनुमान करनेवाले प्राचीन और नव्यनैयायिक जिन्हें तर्क का विषय नहीं बना पाते, जिनकी महिमा को वेद 'नेति–नेति' कह कर कहते हैं, जो तीनों कालों में एक रस रहते हैं।

दो०- नयन बिषय मो कहँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ सुलभ जग जीव कहँ, भए ईश अनुकूल।।३४१।।

भा०– वे ही आप समस्त सुखों के परमकारण श्रीराम मेरे नेत्रों के विषय बन गये। वास्तव में आप जैसे ईश्वर के अनुकूल होने पर संसार में जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है।

सबहिं भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई।निज जन जानि लीन्ह अपनाई।।
होहिं सहस दश शारद शेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा।।
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा।।

भा०– हे रघुनाथजी! सुनिये, आपने सब प्रकार से मुझे बड़प्पन दिया है। अपना सेवक जानकर मुझे अपनाया है। यदि लाखों सरस्वती और शेष हों और वे करोड़ों कल्पपर्यन्त गणना करें तो भी वे मेरे भाग्य और आप की गुणगाथाओं का वर्णन करके समाप्त नहीं कर सकते अर्थात् मेरे भाग्य का भी कोई अन्त नहीं है और आपके गुणों का भी कोई अन्त नहीं है।

मैं कछु कहउँ एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे।।
बार बार मागउँ कर जोरे। मन परिहरै चरन जनि भोरे।।

भा०– फिर भी कुछ कह रहा हूँ, मेरे पास एक ही बल है, वह है स्नेह का। आप थोड़े से ही सुन्दर और पवित्र स्नेह से रीझ जाते हैं। मैं हाथ जोड़कर बार–बार माँग रहा हूँ कि, यह मेरा मन आपके उन श्रीचरणों को धोखे से भी ज्ञानरूप प्रभात के होने पर भी नहीं छोड़े, जिन श्रीचरणों को धोकर मैंने कन्यादानविधि सम्पन्न की।

सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरन काम राम परितोषे।।
करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौशिक बसिष्ठ सम जाने।।

भा०– मानो प्रेम के द्वारा पुष्ट किये हुए श्रेष्ठ वचनों को सुनकर, पूर्णकाम भगवान् श्रीराम प्रसन्न हुए और श्रेष्ठ विनय करके श्वसुरश्री जनक जी का सम्मान किया और उन्हें पिताश्री दशरथ जी एवं गुरुदेव विश्वामित्र जी तथा वसिष्ठ जी के समान जाना अर्थात् इन तीनों की श्रेणी में रख लिया।

बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आशिष दीन्ही।।

भा०– फिर जनक जी ने भरत जी से प्रार्थना की। उनसे प्रेमपूर्वक मिल कर पुनः आशीर्वाद दिया।

दो०- मिले लखन रिपुसूदनहिं, दीन्हि अशीष महीश।
भए परसपर प्रेमबश, फिरि फिरि नावहिं शीश।।३४२।।

भा०– फिर जनकजी, लक्ष्मण जी एवं शत्रुघ्न जी से मिले और अशीर्वाद दिया। महाराज जनक जी एवं श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न चारों भाई परस्पर प्रेम के वश हो गये और वे बार–बार प्रणाम कर रहे हैं अर्थात् जनक जी चारों भाइयों को प्रणाम कर रहे हैं और चारों भाई जनक जी को प्रणाम कर रहे हैं।

बार बार करि बिनय बड़ाई रघुपति चले संग सब भाई।।
जनक गहे कौशिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन लाई।।

भा०–बार–बार विनय और बड़ाई करके सभी तीनों भाइयों के साथ, भगवान् श्रीराम चले। जनक जी ने जाकर विश्वामित्र जी के चरण पकड़ लिए और उनकी चरणधूलि अपने सिर और नेत्रों में लगाया।

सुनु मुनीश बर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।।
जो सुख सुजस लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं।।
सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी।।

भा०– जनक जी ने कहा, हे मुनिनाथ! आपके श्रेष्ठ दर्शनों से मेरे लिए अब कुछ भी कठिन नहीं है, ऐसा मुझे विश्वास है। जिन सुख और सुयशों को लोकपाल चाहते हैं और मनोरथ करने में भी संकुचित होते हैं। वे सुख और सुन्दर यश मेरे लिए सुलभ हो चुके हैं, क्योंकि सभी सिद्धियाँ आपके दर्शनों का अनुगमन करती हैं।

कीन्ह बिनय पुनि पुनि सिर नाई। फिरे महीश आशिषा पाई।।
चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई।।
रामहिं निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी।।

भा०– जनक जी ने पुनः–पुनः सिर नवाकर विश्वामित्र जी से विनय किया और आशीर्वाद पाकर लौट गये। इधर छोटे–बड़े अर्थात् बालक–वृद्ध समुदायों से युक्त श्रीराम की वर–यात्रा नगारे बजाकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीअवध के लिए चल पड़ी। श्रीराम को देखकर मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों के नर–नारी नेत्रों का फल पाकर सुखी हो जाते थे।

दो०– बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत।।३४३।।

भा०– बीच–बीच में श्रेष्ठ विश्रामस्थलों पर निवास करके मार्ग के लोगों को सुख देते हुए, पवित्र दिन में बारात श्रीअवध के समीप जा पहुँची।

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि शंख धुनि हय गय गाजे।।
झाँझि बीन डिमडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई।।

भा०– ऊँचे धुन से नगारे बजाये गये, बहुत से ढोल बजे, भेरी और शंखों की ध्वनि हुई। हाथी, घोड़े गरजने लगे। झाँझ, वीणा, डिमडिमी तथा सुन्दर शहनाईयाँ सुन्दर मंगलराग में बजने लगीं।

पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।।
निज निज सुन्दर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे।।

भा०– अवधपुरवासी बारात को आते सुनकर प्रसन्न हुए। सबके अंगों में पुलकावलि छा गई। सबने अपने घर, बाजार, मार्ग, चौराहे और अवधपुर के द्वारों को सुन्दर सजाया।

गली सकल अरगजा सिंचाई। जहँ तहँ चौके चारु पुराई।।
बना बजार न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना।।

भा०– सम्पूर्ण गलियाँ अर्गजा, के द्रव्य से सींचीं गईं। जहाँ–तहाँ सुन्दर चौकें पूरकर बनाई गईं। बाजार इतना सुन्दर बना था कि, वह बखाना नहीं जाता। वहाँ तोरण, ध्वज, पताका और मण्डप भी सजे थे।

सफल पूगिफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला।।
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी।।

भा०- सुन्दर फलों से युक्त सुपारी के वृक्ष केले, आम्र, बकुल, कदम्ब और तमाल के वृक्ष भी लगाये गये। लगे हुए सुन्दर वृक्ष पृथ्वी को स्पर्श कर रहे थे। उनकी थालें मणियों से जटित थीं और उनकी कलाकृति बहुत सुन्दर थीं।

दो०- बिबिधि भाँति मंगल कलश, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबर पुरी निहारि।।३४४।।

भा०- प्रत्येक घरों पर अनेक प्रकार के मंगल कलश सजाकर रखे थे। श्रीराम की अवधनगरी को निहारकर, ब्रह्मा जी आदि देवता भी ईर्ष्या के सहित प्रशंसा करते थे।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा।।
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई।।
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दशरथ गृह छाए।।
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होइ न केही।।

भा०- उस अवसर पर महाराज दशरथ जी का भवन बहुत शोभित हो रहा था। उसकी रचना को देख कर कामदेव का मन भी मोहित हो जाता था। मांगलिक शकुन, सुन्दरता, नवों निधि और आठों सिद्धि, सभी प्रकार के सुख और सुहावनी सम्पत्ति तथा अन्य सभी स्वभाव से सुन्दर उत्साह मानो शरीर धारण करके दशरथ जी के भवन में छा गये थे। भला बताइये, ब्रह्मदंपति भगवान् श्रीराम और भगवती सीता जी को देखने की किसे इच्छा नहीं होगी?

जूथ जूथ मिलि चलीं सुवासिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि।।
सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती।।

भा०- अपनी सुन्दरता से कामदेव की पत्नी रति का निरादर करती हुईं, सभी सुमंगलों से पूर्ण आरती सजाई हुईं सौभाग्यवती महिलायें, अनेक समूहों में गाती हुई चलीं, मानो सरस्वती जी ही बहुत से वेश बनाकर प्रभु की आरती करने चली जा रही हों।

भूपतिभवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समय सुख सोई।।
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेमबिबश तनु दशा बिसारी।।

भा०- महाराज के भवन में बहुत कोलाहल हो रहा है। इस समय के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है। कौसल्यादि सभी श्रीराम की मातायें प्रेम के विवश होकर शरीर की दशा भूल गईं।

दो०- दिए दान बिप्रन बिपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि।।३४५।।

भा०- गणपति जी और शिव जी की पूजा करके माताओं ने ब्राह्मणों को बहुत से दान दिये। वे ऐसी प्रसन्न थीं, मानो परमदरिद्र (बहुत जन्मों से निर्धन) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारो पदार्थों को पाकर प्रसन्न हो रहा हो।

प्रेम प्रमोद बिबश सब माता। चलहिं न चरन शिथिल भए गाता।।
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साज सजन सब लागीं।।

भा०- सभी मातायें प्रेम तथा इष्ट लाभ से उत्पन्न आनन्द के विवश हैं। उनके चरण नहीं चल रहे हैं। सभी अंग शिथिल हो गये हैं। सभी मातायें श्रीसीता–राम जी के दर्शन के लिए अत्यन्त अनुराग से युक्त हो गईं और परिछन के सभी साज–सजाने लगीं।

बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे।।
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगिफल मंगल मूला।।
अक्षत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा।।
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए।।

भा०- अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। सुमित्रा जी ने प्रसन्न होकर बारह मंगल सजाये। हल्दी, दूर्बा, दही, पल्लव, पुष्प, मंगल का मूल पान, सुपारी, अक्षत (चावल), अंकुर (अँखुयें), गोरोचन, धान का लावा और कोमल मंजरियों से सुशोभित तुलसी उपस्थित की गई। स्वभाव से सुन्दर छूहे अर्थात् खड़िया मिट्टी के द्वारा अनेक प्रकार से चित्रित किये हुए स्वर्ण के घड़े ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कामदेव के पक्षियों ने अपने घोंसले बनाये हों।

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी।।
रची आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना।।

भा०- अनेक प्रकार के शकुन सूचक सुगंधित पदार्थ उपस्थित किये गये, जो बखाने नहीं जा सकते। इस प्रकार, सभी रानियाँ सभी मंगल साज–सजा रही थीं। उन्होंने अनेक प्रकार की आरतियाँ बनाकर रचीं और प्रसन्न होकर मधुर मंगलगान करने लगीं।

दो०- कनक थार भरि मंगलनि, कमल करनि लिए मात।
चलीं मुदित परिछनि करन, पुलक पल्लवित गात।।३४६।।

भा०- मंगलों से सुवर्ण के थालों को भरकर, उन्हें अपने कमल के जैसे कोमल हाथों में लिए हुए रोमांच से युक्त पल्लव के समान आचरण कर रहे अर्थात् प्रेम की विह्वलता से थोड़ा कांपते हुए शरीरवाली प्रभु श्रीराम की सात सौ मातायें प्रसन्न होती हुईं भगवान् श्रीराम की परिछन करने चल पड़ीं।

धूप धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन घमंड जनु ठयऊ।।
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मन करषहिं।।

भा०- धूप अर्थात् अगर धूप के धुयें से आकाश काला हो गया, मानो श्रावण के महीने में उमड़े–घुमड़े हुए मेघ उस पर छा गये हों। देवता कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला की वर्षा कर रहे हैं, वे मालायें ऐसी लग रही हैं, मानो श्रावण के आकाश में छायी हुई बगुलों की पंक्तियाँ मनों को आकर्षित कर रही हों।

मंजुल मनिमय बंदनवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे।।
प्रगटहिं दुरहिं अटन पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि।।

भा०- श्रीअवधनगर में मणियों से जटित सुन्दर बंदनवार ऐसे लग रहे हैं, मानो पाक दैत्य के शत्रु इन्द्र के धनुष सजे हों। श्रीअवध की अट्टालिकाओं पर सुलक्षणा सौभाग्यवती महिलायें प्रकट होती और छिप जाती हैं, मानो सुन्दर चंचल बिजलियाँ चमक रही हों।

दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा।।
सुर सुगंध शुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी।।

भा०– नगाड़ों की ध्वनि ही यहाँ बादलों की घोर गर्जना है। याचकगण ही यहाँ चातक मेंढक और मोर हैं। देवता ही सुन्दर सुगंधित गुलाब जल आदि के रूप में जलवृष्टि कर रहे हैं और नर–नारी रूप हरी–हरी खेती सुखी हो रही हैं।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुर प्रबेश रघुकुलमनि कीन्हा।।
सुमिरि शंभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा।।

भा०– समय जानकर गुरुदेव श्रीवसिष्ठ ने आज्ञा दी और रघुकुलमणि श्रीराम ने श्रीअवधपुर में प्रवेश किया। शिवजी, पार्वती जी और गणपति जी का स्मरण करके समाज सहित दशरथ जी बहुत प्रसन्न हुए।

दो०- होहिं सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ।।३४७।।

भा०– सुन्दर शकुन होने लगे, देवता दुंदुभियाँ बजाकर पुष्पों की वर्षा करने लगे और देववधुयें सुन्दर मधुर मंगल गा कर नाचने लगीं।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जस तिहुँ लोक उजागर।।
जयधुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिशि सुनिय सुमंगल सानी।।

भा०– मागध, सूत, बंदी और श्रेष्ठ नट तीनों लोक में प्रसिद्ध प्रभु के यश गा रहे हैं। दसों दिशाओं में सुमंगलों से सनी हुई जयध्वनि और निर्मल–श्रेष्ठ वेदों की वाणी सुनायी पड़ रही है।

बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे।।
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं।।

भा०– अनेक वाद्य बजने लगे, आकाश के देवता और नगर के लोग प्रेम में मग्न हो गये। बाराती सजे हुए थे, वे वर्णित नहीं किये जा सकते। वे अत्यन्त प्रसन्न हैं, उनके मन में अनेक प्रकार के सुख समा नहीं रहे हैं।

पुरबासिन तब राय जोहारे। देखत रामहिं भए सुखारे।।
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक शरीरा।।

भा०– तब बारात में नहीं गये हुए, श्रीअवधपुरवासियों ने चक्रवर्ती जी का अभिवादन किया और विवाहित श्रीराम को देखकर सुखी हो गये। उनके आँखों में आँसू और शरीर में रोमांच था। वे धन, मणि और वस्त्र न्यौछावर करने लगे।

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी।।
शिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी।।

भा०– श्रीअवधपुर की नारियाँ प्रसन्न होकर आरती कर रही हैं और चारों कुमारों को देखकर प्रसन्न हो रही हैं। पालकियों के सुन्दर ओहार अर्थात् सामने लगे हुए पर्दों को खोलकर चारों दुल्हनों को देख कर वे सुखी हो जाती हैं।

दो०- एहि बिधि सबही देत सुख, आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं, बधुन समेत कुमार।।३४८।।

भा०– इस प्रकार सबको सुख देते हुए चारों वधूओं सहित चारों राजकुमार राजद्वार पर आ गये और मातायें प्रसन्न होकर उनकी परिछन करने लगीं।

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेम प्रमोद कहै को पारा।।
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती।।

भा०– मातायें बारम्बार आरती करती हैं, उनके प्रेम और प्रमोद अर्थात् मनचाही वस्तु की उपलब्धि से होने वाली प्रसन्नता को कौन कह सकता है? नाना प्रकार के आभूषण मणि और वस्त्रों को मातायें अनेक प्रकार से न्यौछावर कर रही हैं।

बधुन समेत देखि सुत चारी। परमानन्द मगन महतारी।।
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी।।
सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही।।
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा।।

भा०– चारों बहुओं के साथ चारों पुत्रों को देखकर, मातायें परमानन्द में मग्न हो गईं। बार–बार श्रीसीता–राम जी की छवि को देखकर माताओं ने संसार में अपने जीवन को सफल समझा। सखियाँ बार–बार सीता जी का मुख देखकर अपने पुण्यों की प्रशंसा करके मंगलगान कर रही हैं। क्षण–क्षण में देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं, नाच रहे हैं, गा रहे हैं और अपनी सेवायें उपस्थित कर रहे हैं।

देखि मनोहर चारिउ जोरी। शारद उपमा सकल ढँढोरी।।
देत न बनहिं निपट लघु लागी। एकटक रही रूप अनुरागी।।

भा०– मन को हरनेवाली चारों अर्थात् श्रीसीता–रामजी, श्रीमांडवी–भरतजी, श्रीउर्मिला–लक्ष्मण जी तथा श्रीश्रुतिकीर्ति–शत्रुघ्न जी की जोड़ियों को देखकर, सरस्वती जी ने सभी उपमायें ढूँढ़ी कोई उपमा देते न बनी। सभी उपमायें बहुत छोटी लगीं। फिर सरस्वती जी चारों जोड़ियों के रूप में अनुरक्त होकर एकटक रहकर उन्हें देखने लगीं।

दो०– निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवड़े देत।
बधुन सहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाइ निकेत।।३४९।।

भा०– इस प्रकार वेद की नीति (विधि) और कुल की रीति सम्पन्न करके अर्घ और वस्त्रों के पाँवड़े देती हुई, सभी मातायें वधुओं के सहित सभी पुत्रों की द्वार पर परिछन करके, उन्हें लिवाकर राजभवन चलीं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए।।
तिन पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पायँ पुनीत पखारे।।

भा०– वहाँ स्वभावतः सुन्दर चार सिंहासन विराज रहे थे, मानो उन्हें कामदेव ने अपने हाथ से बनाया था। उन्हीं पर चारों वधुओं के सहित चारों वरों को बैठाया, अर्थात् एक–एक सिंहासन पर एक–एक नवदम्पति को विराजमान कराया तथा आदरपूर्वक उनके पवित्र पाँव पखारे।

धूप दीप नैवेद्य बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि।।
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं।।

भा०– धूप, दीप, नैवेद्य आदि वैदिकविधि से मंगल के सागर रूप चारों वर–वधुओं की जोड़ी की पूजा की। मातायें बार–बार आरती कर रही हैं और चारों जोड़ी के मस्तक पर सुन्दर पंखे और चामर चल रहे हैं।

बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं।।
पावा परम तत्त्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी।।
जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहिं लोचन लाभ सुहावा।।
मूक बदन जनु शारद छाई। मानहुँ समर शूर जय पाई।।

भा०- अनेक प्रकार की वस्तुयें न्यौछावर हो रही हैं। इष्टलााभ जनित प्रसन्नता से भरी हुईं सभी मातायें सुशोभित हो रही हैं, मानो योगी ने परमतत्त्व को पा लिया हो, मानो निरन्तर का रोगी ने अमृत पा लिया, मानो जन्मों के दरिद्र ने पारसमणि पा लिया, मानो दृष्टिहीन को सुन्दर नेत्रों का लाभ हो गया, मानो गूंगे के मुख पर सरस्वती जी छा गईं, मानो वीर ने युद्ध में विजय प्राप्त कर ली।

दो०- एहि सुख ते शत कोटि गुन, पावहिं मातु अनंद।
भाइन सहित बियाहि घर, आए रघुकुल चंद।।३५०(क)।।

भा०- इस सुख से भी अरबों गुणा आनन्द मातायें पा रही हैं। रघुकुल के चन्द्रमा भगवान् श्रीराम, भाइयों सहित मिथिला में विवाहित होकर घर आ गये हैं।

विशेष- इस प्रसंग में माताओं के सुख की छः उपमायें देकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीराम की छः सफलताओं की ओर संकेत किया है, वे हैं- ताटकावध, विद्याप्राप्ति, मारीच-सुबाहु पराजय और यज्ञरक्षा, अहल्योद्धार, धनुर्भंग तथा परशुराम-पराजय।

दो०- लोकरीति जननीं करहिं, बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोद बिनोद बिलोकि बड़, राम मनहिं मुसुकाहिं।।३५०(ख)।।

भा०- मातायें लोकरीति कर रही हैं, चारों वर-वधुओं की जोड़ियाँ संकुचित हो रही हैं। बहुत बड़ा आनन्द और विनोद देखकर भगवान् श्रीराम मन में मुस्कुरा रहे हैं, क्योंकि यह आनन्द उन्हें साकेत में कहाँ मिलता?

देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजी सकल बासना जी की।।
सबहिं बंदि मागहिं बरदाना। भाइन सहित राम कल्याना।।

भा०- बहुत प्रकार से माताओं ने देवताओं और पितृगणों की पूजा की। हृदय की सभी वासना अर्थात् शुभ-वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा पूर्ण हो गई। सभी की वन्दना करके मातायें तीनों भाइयों के सहित श्रीराम के कल्याण का वरदान माँगती हैं।

अंतरहित सुर आशिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं।।
भूपति बोलि बराती लीन्हे। यान बसन मनि भूषन दीन्हे।।
आयसु पाइ राखि उर रामहिं। मुदित गए सब निज निज धामहिं।।

भा०- देवता अन्तर्धान रहकर छिपे-छिपे आशीर्वाद देते हैं और आशीर्वाद सुनकर मातायें उन्हें आँचल फैलाकर ले लेती हैं। चक्रवर्ती महाराज ने बारातियों को बुलाया और उन्हें वाहन, वस्त्र तथा मणिमय आभूषण दिये। सभी बाराती महाराज का आदेश पाकर हृदय में श्रीराम को विराजमान करा प्रसन्नता से अपने-अपने घर को गये।

पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए।।
जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई।।
सेवक सकल बजनिआ नाना। पुरन किए दान सनमाना।।

भा०- श्रीअवधपुर के नर और नारियों को भी महाराज ने पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र दिये। घर-घर में बधाइयाँ बजने लगीं। याचकजन जो-जो माँगते हैं महाराज दशरथ वही-वही प्रसन्नता से दे देते हैं। सभी सेवकों और अनेक बजनियाँ अर्थात् बाजा बजाने वालों को महाराज दशरथ जी ने दान और सम्मान से पूर्ण कर दिया।

दो०- देहिं अशीष जोहारि सब, गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गमन कीन्ह नरनाथ।।३५१।।

भा०- सभी लोग महाराज का अभिवादन करके आशीष अर्थात् आशीर्वाद अथवा शुभकामनायें दे रहे हैं और महाराज के दिव्यगुणों की गाथायें गाते हैं। तब महाराज ने गुरुजनों और ब्राह्मणों के साथ राजभवन में प्रस्थान किया।

जो बसिष्ठ अनुशासन दीन्हा। लोक बेद बिधि सादर कीन्हा।।
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी।।
पायँ पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए।।
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत अशीष चले मन तोषे।।

भा०- वसिष्ठ जी ने जो आज्ञा दी उन सभी लौकिक और वैदिक विधियों को महाराज ने आदरपूर्वक सम्पन्न किया। सभी रानियाँ अपने भवन में पधारी ब्राह्मणों की भीड़ देखकर अपना बहुत बड़ा भाग्य जानकर आदरपूर्वक उठीं। महाराज दशरथ जी ने सभी ब्राह्मणों के चरण धोकर उन्हें स्नान कराया। उनकी पूजा करके भली–भाँति जिमाया और उन्हें आदर, दान तथा प्रेम से परिपुष्ट किया। मन में संतुष्ट हुए ब्राह्मण भोजन करके आशीर्वाद देते हुए राजभवन से चले गये।

बहु बिधि कीन्ह गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा।।
कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी। रानिन सहित लीन्ह पग धूरी।।
भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृप रनिवासू।।

भा०- महाराज ने गाधिनन्दन विश्वामित्र जी की बहुत प्रकार से पूजा की और कहने लगे, हे नाथ! आज मेरे समान कोई दूसरा धन्य नहीं है। चक्रवर्ती महाराज ने विश्वामित्र जी की बड़ी प्रशंसा की और सभी रानियों के साथ विश्वामित्र जी के चरणों की धूलि ली। विश्वामित्र जी को राजा दशरथ जी ने राजभवन के भीतरी कक्ष में निवास दिया जहाँ महाराज और सम्पूर्ण रनिवास उनके मनोभावों की रक्षा करते रहते थे अर्थात् यह प्रयास करते थे कि किसी प्रकार विश्वामित्र जी का मन उदास न हो।

पूजे गुरु पद कमल बहोरी। कीन्ह बिनय उर प्रीति न थोरी।।

भा०- इसके पश्चात् चक्रवर्ती महाराज ने गुरुदेव वसिष्ठ जी के श्रीचरणकमलों की पूजा और प्रार्थना की। उनके हृदय में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी के प्रति बहुत प्रीति अर्थात् भक्ति थी।

दो०- बधुन समेत कुमार सब, रानिन सहित महीश।
पुनि पुनि बंदत गुरु चरन, देत अशीष मुनीश।।३५२।।

भा०- चारों बहुओं श्रीसीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति सहित चारों कुमार श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न और सभी रानियों के सहित चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी पुनः–पुनः गुरुदेव के श्रीचरणों का वन्दन करते थे और पुनः–पुनः वसिष्ठ जी उन्हें आशीर्वाद देते थे।

बिनय कीन्ह उर अति अनुरागे। सुत संपदा राखि सब आगे।।
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा। आशिरबाद बहुत बिधि दीन्हा।।
उर धरि रामहिं सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गमन निकेता।।

भा०- सुख के साधन पुत्र और सभी प्रकार की संपत्ति महामुनि वसिष्ठ जी के सामने रखकर महाराज ने अतिशय प्रेम से युक्त होकर इन सुख–संपत्तियों को स्वीकार करने के लिए गुरुदेव से प्रार्थना की। मुनियों के नाथ वसिष्ठ जी ने स्वेच्छा से नेग माँग लिया और बहुत प्रकार से महाराज को आशीर्वाद दिया। भगवती सीता जी के सहित भगवान् श्रीराम को अपने हृदय में धारण करके प्रसन्न होते हुए गुरुदेव ने अपने भवन अर्थात् कुटिया के लिए प्रस्थान किया।

विशेष– प्रतीत होता है कि, वसिष्ठ जी ने बड़ी बहुरानी श्रीसीता के सहित बड़े राजकुमार श्रीराम को ही नेग में माँग लिया था।

बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं।।
बहुरि बोलाइ सुवासिनि लीन्ही। रुचि बिचारि पहिरावन दीन्ही।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने सभी ब्राह्मणपत्नियों को बुलाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण (गहने) धारण कराये। इसके पश्चात् सुवासिनी नगर की विवाहित पुत्रियों को बुलवाया और उनकी रुचि का विचार करके उन्हें पहनावे दिये, क्योंकि मुँहलगी होने के कारण नगर की बेटियाँ ही चक्रवर्ती जी से अपनी रुचि कह सकती थीं।

नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं।।
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने।।

भा०– सभी नेगी लोग योग्यता के अनुसार नेग ले रहे हैं और महाराज उनके रुचि के अनुरुप नेग दे रहे हैं। जो प्यारे पाहुने अर्थात् बेटी पक्ष के सम्बन्धी बहनोई, जमाई आदि पूज्य थे, उन्हें हृदय से पहचानकर महाराज ने भली–भाँति उनका सम्मान किया।

देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रशंसि उछाहू।।

भा०– देवता रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम का विवाह देखकर पुष्पों की वर्षा करके उत्साह की प्रशंसा करने लगे।

दो०– चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जस, प्रेम न हृदय समाइ।।३५३।।

भा०– देवता नगारे बजा–बजाकर परस्पर में श्रीराम का यश कहते हुए सुख पाकर अपने–अपने लोक को चल पड़े उनके हृदय में प्रेम नहीं समा रहा था।

सब बिधि सबहिं समदि नरनाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू।।
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन कुअँर निहारे।।

भा०– महाराज ने सब प्रकार से सबका सम्मान किया। उनके हृदय में उत्साह परिपूर्ण हो रहा था, फिर महाराज वहाँ पधारे जहाँ अन्तःपुर में रनिवास एकत्र था और चारों बहुओं के साथ चारों पुत्रों को देखा।

लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुख जेता।।
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरषि दुलारी।।

भा०– प्रसन्नता के सहित महाराज ने चारों पुत्रों को अपने गोद में बैठा लिया, उन्हें जितना बड़ा सुख हुआ, उसे कौन कह सकता है? प्रेमपूर्वक वधुओं को गोद में बैठा कर हृदय में प्रसन्न होकर महाराज ने बार–बार उन्हें दुलारा।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सब के उर आनँद कियो बासू।।
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरष होइ सब काहू।।

भा०- उस समाज को देखकर रनिवास प्रसन्न हुआ। सबके हृदय में आनन्द ने निवास कर लिया था। जिस प्रकार चारों भ्राताओं का विवाह हुआ वह सब महाराज ने कहा। यह सुन-सुनकर सभी अन्तःपुर के परिजनों तथा महारानियों को हर्ष हो रहा था।

जनक राज गुन शील बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई।।
बहुबिधि भूप भाँट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी।।

भा०- महाराज जनक जी के गुण, स्वभाव, बड़ी प्रीति की रीति, सुन्दर संपत्ति इन सबको महाराज दशरथ जी ने भाँट की भाँति बहुत प्रकार से वर्णन किया। सभी महारानियाँ यह कार्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं।

दो०- सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि बिप्र गुरु ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि, घरी पंच गइ राति।।३५४।।

भा०- पुत्रों के सहित स्नान करके ब्राह्मणों, गुरुजनों और अपनी जाति के लोगों को बुलाकर महाराज ने अनेक प्रकार के भोजन किये और पाँच घड़ी रात बीत गई।

मंगलगान करहिं बर भामिनि। भइ सुखमूल मनोहर जामिनि।।
अँचइ पान सब काहूँ पाए। स्रक सुगंध भूषित छबि छाए।।
रामहिं देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई।।

भा०- सौभाग्यवती स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं। वह सुन्दर रात्रि सुख की कारण बन गई। सभी लोग आचमन करके ताम्बूल अर्थात् पान के बीड़े प्राप्त किये और मालाओं तथा सुगंधित पदार्थ से सुशोभित होकर सुन्दरता से छाये अर्थात् बहुत सुन्दर लगे। श्रीराम को देखकर राजा की आज्ञा पाकर उन्हें प्रणाम करके सभी लोग अपने-अपने घर चले गये।

प्रेम प्रमोद बिनोद बड़ाई। समय समाज मनोहरताई।।
कहि न सकहिं शत शारद शेषू। बेद बिरंचि महेश गणेशू।।
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी।।

भा०- प्रेम, प्रमोद अर्थात् अनुकूल उपलब्धि की प्रसन्नता, विनोद अर्थात् हास-परिहास, बड़ाई आनन्दपूर्ण समय, विवाहोचित समाज तथा नगर की सुन्दरता इन सबको सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, शिव जी और गणपति जी भी नहीं कह सकते तो उसको मैं कुत्सित बुद्धिवाला तुलसीदास किस प्रकार वर्णन करके कह सकता हूँ? क्या पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाला साधारण सर्प अथवा मिट्टी का बना हुआ साँप पृथ्वी को धारण कर सकता है?

नृप सब भाँति सबहिं सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाई रानी।।
बधू लरिकिनीं पर घर आईं। राखेउ नयन पलक की नाईं।।

भा०- महाराज दशरथ जी ने सब प्रकार से सबका सम्मान किया और कोमल वचन कहकर सभी रानियों को बुलाया और बोले, ये चारों बहुयें लड़की अर्थात् बहुत बालिकायें हैं, (छःछः वर्ष की ही हैं) दूसरे घर आईं हैं, इन्हें उसी प्रकार सम्भाल कर रखना जैसे पलकें नेत्र की पुतलियों को रखा करती हैं।

दो०- लरिका श्रमित उनींद बश, शयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृह, राम चरन चित लाइ।।३५५।।

भा०- चारों बालक यात्रा के कारण थके हुए हैं, अत: ये उत्कृष्ट निद्रा के वश में हो चुके हैं। जाकर इन्हें शयन कराओ। महारानियों को इस प्रकार निर्देश देकर अपने चित्त को श्रीराम के चरणों में लगाकर चक्रवर्ती जी विश्राम गृह को चले गये।

भूपबचन सुनि सहज सुहाए। जड़ित कनक मनि पलँग डसाए।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना।।
उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्त्रक सुगंध मनिमंदिर माहीं।।
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा।।

भा०- महाराज के स्वभाव से सुहावने वचन सुनकर, महारानियों ने स्वर्ण और मणियों से जटित पलंग स्वयं बिछाये। सुन्दर कामधेनु के दूध के फेन के समान श्वेत और कोमल अनेक प्रकार की सुपेतियाँ अर्थात् सुन्दर चादरें बिछायी गईं। श्रेष्ठ उपबरहन अर्थात् तकियों का वर्णन नहीं किया जा सकता। उस राजमंदिर में मालिकायें, सुगंधित द्रव्य और मणि विराज रहे थे। रत्न का दीप और ऊपर लगा हुआ चँदोवा अत्यन्त सुन्दर था। उसे कहते नहीं बनता, उसे तो वही जान सकता है जिसने देखा हो अर्थात् जिसने ध्यान में भी प्रभु श्रीराम की शयन की झाँकी के दर्शन किये हों।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए।।
आग्या पुनि पुनि भाइन दीन्हीं। निज निज सेज शयन तिन कीन्हीं।।

भा०- इस प्रकार सुन्दर शैय्या सजाकर माताओं ने श्रीराम को उठाया अर्थात् गोद में उठाया। प्रेम के सहित उन्हें पलंग पर पौढ़ा दिया। प्रभु ने बार–बार तीनों भाइयों को आज्ञा दी। उन्होंने भी उसी कक्ष में सजे हुए अपने–अपने शैय्या पर शयन किया।

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता।।
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी।।

भा०- भगवान् श्रीराम के श्यामल सुन्दर कोमल अंगों को देखकर सभी मातायें प्रेम सहित कोमल वचन कहने लगीं, "हे तात! विश्वामित्र जी के साथ मार्ग में जाते हुए अत्यन्त भयंकर ताटका को आपने कैसे मार डाला?"

दो०- घोर निशाचर बिकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु।।३५६।।

भा०- जो अत्यन्त घोर राक्षस, भयंकर वीर और युद्ध में किसी को नहीं गिनते थे, ऐसे दुष्ट मारीच और सुबाहु को उनके सहायकों सहित आप ने कैसे मारा ?

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईश अनेक करवरें टारी।।
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाई।।

भा०- हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, मुनि विश्वामित्र जी के प्रसाद से परमेश्वर ने आप दोनों भाइयों के अनेक विघ्न टाल दिये। दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा करके गुरुदेव के प्रसाद से सारी विद्यायें प्राप्त कर ली।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी।।
कमठ पीठ पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिव धनु तोरा।।

भा०- हे राघव! आपकी चरणधूलि लगते ही मुनि पत्नी अहल्या तर गईं। आपकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकों में पूर्ण रूप से भर गई। आप ने सीता स्वयंवर के लिए आये हुए राजसमाज के बीच कछुवे की पीठ, वज्र और पर्वत के शिखर से भी कठोर शिवधनुष पिनाक को तोड़ दिया।

बिश्व बिजय जस जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई।।
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे।।

भा०- आपने विश्व विजय, यश और सीता जी को प्राप्त किया। साथ ही उसी मिथिला में अपने साथ तीनों भाइयों का विवाह करके सकुशल अपने घर अयोध्या लौट आये। आपके सभी कर्म अमानुष अर्थात् मनुष्य से विलक्षण हैं। इन्हें मनुष्य नहीं कर सकते। यह सब कुछ विश्वामित्र जी की कृपा ने सुधारा है। अथवा, आपकी कोमल कृपा ने विश्वामित्र जी को भी सुधारा है। नवीन सृष्टिकर्त्ता विश्वामित्र जी की भी बिगड़ी सुधारी तो केवल आप राघवसरकार की कृपा ने सुधारी।

आजु सुफल जग जनम हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा।।
जे दिन गए तुमहिं बिनु देखे। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखे।।

भा०- हे तात! आज आपका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख देखकर जगत् में हमारा अर्थात् आपकी हम सभी माताओं का जन्म लेना सुन्दर फल से युक्त हो गया। हमारे जो दिन आपश्री रामलला को देखे बिना अर्थात् आपके दर्शन के बिना चले गये उन्हें ब्रह्मा लेखे अर्थात् हमारी आयुष की दिनों की गणना में न डालें।

दो०- राम प्रतोषी मातु सब, कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि शंभु गुरु बिप्र पद, किए नींदबस नैन।।३५७।।

भा०- विनम्र और श्रेष्ठ वचन कहकर प्रभु श्रीराम ने सभी माताओं को संतुष्ट कर दिया और शिवजी, गुरुदेव विश्वामित्र जी तथा अन्य ब्राह्मणों के चरणों को स्मरण करके अथवा, इन सबके निवासस्थान अपने स्वरूप का ही स्मरण करके, प्रभु ने अपने नेत्रों को नींद के वश कर लिया अर्थात् माताओं की इच्छा से शयन की लीला कर ली। वस्तुतस्तु प्रभु श्रीराम नित्य जागते ही रहते हैं।

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना।।
घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परसपर मंगल गारी।।

भा०- नींद में भी प्रभु का सुन्दर मुख ऐसे सुशोभित हो रहा है मानो, सायंकाल लालकमल सम्पुटित हो गया हो। श्रीअवध की नारियाँ प्रत्येक घर में जागरण कर रही हैं और परस्पर (ननद, भाभियों को और भाभियाँ, ननदों को) मंगल गारी दे रही हैं।

पुरी बिराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी।।
सुन्दर बधुन सासु लै सोईं। फनिकनि जनु सिरमनि उर गोईं।।

भा०- रानियाँ कहती हैं, हे सखियों! देखो, रात्रि तो सुन्दर लग रही है, परन्तु श्रीअवधपुरी बहुत सुन्दर लग रही है, क्योंकि रात्रि को जो चन्द्रमा मिला है, वह सकलंक अर्थात् घटता–बढ़ता रहता है, परन्तु इस अवधपुरी को जो श्रीरामचन्द्र मिले हैं, वे निष्कलंक और सदैव पूर्ण हैं। सासुओं ने चारों सुन्दर वधुओं को लेकर अलग सेज पर शयन किया मानो, सर्पिणियों ने अपने सिर में रहने वाली मणियों को अपने हृदय में छिपा लिया हो।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे।।
बंदी मागध गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए।।

भा०– पवित्र प्रात:काल में प्रभु श्रीराम जगे श्रेष्ठ ताम्रचूड़ मुर्गे बोलने लगे। बंदी और मागधों ने गुणगणों का गान किया। पुरजन भगवान् श्रीराम का अभिवादन करने के लिए राजद्वार पर आ गये।

बंदि बिप्र सुर गुरु पितु माता। पाइ अशीष मुदित सब भ्राता।।
जननिन सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे।।

भा०– ब्राह्मण देवता, गुरु, पिता तथा माताओं को वन्दन करके आशीर्वाद प्राप्त करके सभी चारों भाई, श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर के साथ प्रभु के श्रीमुख के दर्शन किये और प्रभु महाराज दशरथ जी के साथ राजद्वार पर पधार गये।

दो०– कीन्ह शौच सब सहज शुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं, आए चारिउ भाइ।।३५८।।

भा०– स्वभावत: पवित्र प्रभु ने सभी शौच की विधियाँ पूर्ण की और पवित्र सरयू जी में स्नान करके प्रातक्रिया अर्थात प्रात:सन्ध्योपासन करके चारों भाई श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, पिताश्री के समीप पधार आये।

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई।।
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी।।

भा०– महाराज ने देखकर प्रभु को हृदय से लगा लिया और राजाज्ञा पाकर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम बैठ गये। श्रीराम को देखकर और उनको नेत्रों के लाभ की सीमा जानकर सम्पूर्ण सभा शीतल अर्थात् प्रसन्न हो गई।

पुनि बसिष्ठ मुनि कौशिक आए। सुभग आसननि मुनि बैठाए।।
सुतन समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे।।

भा०– फिर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी एवं मुनि विश्वामित्र जी राजसभा में आये। महाराज ने दोनों मुनियों को सुन्दर आसनों पर बैठाया। चारों पुत्रों सहित महाराज दशरथ दोनों मुनियों की पूजा करके उनके चरणों में लिपट गये। श्रीराम को देखकर दोनों गुरु वसिष्ठ जी एवं विश्वामित्र जी अनुराग से भर गये।

कहहिं बसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीप सहित रनिवासा।।
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी।।
बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची।।
सुनि आनंद भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू।।

भा०– वसिष्ठ जी धार्मिक इतिहास कहते हैं और रनिवास सहित महाराज सुनते हैं। मुनियों के मन को भी अगम्य विश्वामित्र जी की कीर्ति को वसिष्ठ जी ने प्रसन्न होकर अनेक प्रकार से वर्णित किया। वामदेव जी बोले, यह सम्पूर्ण कीर्ति सत्य है, क्योंकि विश्वामित्र जी की सुन्दर कीर्ति तीनों लोक में फैल रही है अर्थात् मंचित होती रहती है। यह सुनकर सम्पूर्ण सभासदों के मन में हर्ष हुआ और श्रीराम–लक्ष्मण जी के मन में तो बहुत उत्साह हुआ।

दो०– मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगि अवध आनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति।।३५९।।

भा०– निरन्तर मंगल, प्रसन्नता और उत्साह हो रहा है। इसी प्रकार दिन चले जा रहे हैं। उमगा हुआ आनन्द अयोध्या में भर गया और उसकी अधिकता दिन–प्रतिदिन अधिक होती जा रही है।

सुदिन सोधि कर कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे।।
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं।।

भा०– सुन्दर मुहूर्त का शोधन करके चारों भाइयों के हाथ के कंकण छोड़े गये अर्थात् उन्हें अब गृहास्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति मिल गई। उस समय मंगल, प्रसन्नता और हास–परिहास थोड़ा नहीं अर्थात् बहुत हो रहा था। इस प्रकार निरन्तर नया सुख देखकर देवता सिहाते हैं और ब्रह्मा जी के पास श्रीअवध में ही जन्म माँगते हैं।

बिश्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बश रहहीं।।
दिन दिन शतगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ।।

भा०– विश्वामित्र जी नित्य चलना चाहते हैं, परन्तु भगवान् श्रीराम के सुन्दर प्रेम और विनय के वश में होकर चलने का कार्यक्रम स्थगित करके ठहर जाते हैं। दिन–दिन महाराज दशरथ जी का विश्वामित्र जी के प्रति सौ गुणा श्रद्धाभाव बढ़ जाता है, उसे देखकर महामुनियों के राजा विश्वामित्र जी महाराज की प्रशंसा करते हैं।

माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन समेत ठाढ़ भे आगे।।
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी।।
करब सदा लरिकन पर छोहू। दरशन देत रहब मुनि मोहू।।
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी।।

भा०– एक दिन विश्वामित्र जी ने विदा माँग ही लिया। महर्षि के विदा माँगते समय चक्रवर्ती जी अनुराग से विह्वल हो गये। चारों पुत्र सहित विश्वामित्र जी के आगे खड़े हो गये और बोले, हे नाथ! यह सारी संपत्ति आपकी है। मैं पुत्रों और पत्नियों सहित आप का सेवक हूँ। निरन्तर बालकों पर ममतापूर्ण स्नेह कीजियेगा और हे मुने! मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। इस प्रकार कहकर पुत्रों और महारानियों सहित महाराज, विश्वामित्र जी के चरणों पर पड़ गये। उनके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी।

दीन्ह अशीष बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती।।
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई।।

भा०– ब्राह्मण विश्वामित्र जी ने महाराज को बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया और चले। वह प्रीति की रीति नहीं कही जा सकती। श्रीराम सभी भाइयों के साथ विश्वामित्र जी को प्रेमपूर्वक पहुँचाकर उनकी आज्ञा पाकर लौट आये।

दो०– राम रूप भूपति भगति, ब्याह उछाह अनंद।
जात सराहत मनहिं मन, मुदित गाधि कुल चंद।।३६०।।

भा०– श्रीराम का रूप, चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी की भक्ति, श्रीराम विवाह के उत्साह और आनन्द को मन ही मन सराहते हुए प्रसन्न हुये गाधिवंश क्षीरसागर के चन्द्रमा विश्वामित्र जी चले जा रहे हैं।

बामदेव रघुकुल गुरु ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी।।
सुनि मुनि सुजस मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ।।

भा०– मुनि वामदेव और रघुकुल के ज्ञानी वसिष्ठ जी ने फिर से गाधिनन्दन विश्वामित्र जी की कथा सुनायी। मुनि विश्वामित्र जी का सुयश सुनकर महाराज दशरथ जी मन ही मन अपने पुण्य प्रभाव का वर्णन करने लगे।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन समेत नृपति गृह गयऊ।।
जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा।।

भा०– महाराज दशरथ की राजाज्ञा हुई, सभा विसर्जित हुई लोग अपने–अपने घरों को गये और महाराज दशरथ जी भी अपने पुत्रों के सहित राजभवन को पधार गये। जहाँ–तहाँ सभी ने श्रीराम–विवाह के यश का गान किया, कर रहे हैं और करते रहेंगे। यह पवित्र यश तीनों लोक में छाया हुआ है।

आए ब्याहि राम घर जब ते। बसहिं अनंद अवध सब तब ते।।

भा०- जब से श्रीराम विवाह करके घर आये हैं, तब से सभी आनन्द श्रीअयोध्या में ही निवास कर रहे हैं।

प्रभु बिबाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू।।
कबिकुल जीवन पावन जानी। राम सीय जस मंगल खानी।।
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतू निज बानी।।

छं०- निज गिरा पावनि करन कारन राम जस तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पार कबि कौनें लह्यो।।
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं।।

भा०- प्रभु श्री राम जी के विवाह में जैसा उत्साह हुआ, उसे सरस्वती जी और शेष भी नहीं कह सकते। श्रीराम–सीता के यश को सभी मंगलों की खानि एवं कविकुल के जीवन को पवित्र करनेवाला जानकर मैंने (तुलसीदास ने) अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए श्रीराम का यश कुछ अंशों में बखान कर कहा है। अपनी वााणी को पवित्र करने के कारण मुझ तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम के बाल्यकालीन यश का वर्णन किया है। रघुवीर श्रीराम का चरित्र अपार सागर है, उसका पार किस कवि ने पाया? भगवान् श्रीराम के उपवीत अर्थात् उपनयन संस्कार और विवाह के उत्साह और मंगल को जो लोग आदरपूर्वक सुनते और गाते हैं तथा जो लोग सुनेंगे और गायेंगे वे लोग श्रीसीताराम जी के प्रसाद से सदैव सुख पा रहे हैं और सदैव सुख पाते रहेंगे।

सो०- सिय रघुबीर बिबाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन राम जस।।३६१।।

भा०- जो लोग प्रेम के सहित श्रीसीताराम जी के विवाह को गाते हैं, सुनते हैं तथा गायेंगे और सुनेंगे, उनके लिए निरन्तर उत्साह अर्थात् महोत्सव है और होता रहेगा, क्योंकि भगवान् श्रीराम का यश सभी मंगलों का आयतन अर्थात् भवन है।

* नवाहपारायण, तीसरा विश्राम *

* मासपारायण, दसवाँ विश्राम *

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचितेश्रीमद्रामचरितमानसेसकलकलिकलुषविध्वंसने
सुखसम्पादनं नाम प्रथमं सोपानं बालकाण्डं सम्पूर्णम्।
।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

इस प्रकार सम्पूर्ण कलियुग के पाप को नष्ट करने वाले श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस में सुखसम्पादन नाम वाला प्रथम सोपान बालकाण्ड सम्पूर्ण हो गया। यह श्रीसीताराम जी को समर्पित हो।

श्री रामभद्राचार्येण बालकाण्डे च मानसे। टीका प्रथम सोपाने कृता भावार्थबोधिनी।।

।।श्रीराघव:शंतनोतु।।

बालकाण्ड समाप्त

✦✸✦

।।श्री सीताराम।।
श्री गणेशाय नमः
श्री सीतारामौ विजयेते
श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

श्रीः
भावार्थबोधिनी टीका
द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्ड

श्लोक
मंगलाचरण

सौमित्रि सीतानुचरं प्रसन्नं यान्तं वनं नीलसरोजशोभं।
धृतेषुचापं तपनप्रतापं रामं भजे ब्रह्ममुनीन्द्रसेव्यम्।।
नत्वा श्रीतुलसीदासं अयोध्याकाण्ड ईर्यते।
श्री रामभद्राचार्येण टीका भावार्थबोधिनी।।

श्री सीताराम, श्री गणपति को नमस्कार। भगवान् श्री सीताराम सबसे उत्कृष्ट विराजमान हो रहे हैं। द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ होता है। यहाँ तीन मंगलाचरण श्लोक लिखे गये हैं।

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्।।१।।

भा०– जिनके वाम अंग में पर्वतराजपुत्री श्रीपार्वती जी विराजमान हैं, जिनके मस्तक पर देवनदी गंगा जी लहरा रही हैं, जिनके भाल पर बाल चन्द्रमा तथा जिनके गले में हलाहल विष है, जिनके हृदय पर सर्पराज शेष विद्यमान हैं, वे ही भस्म को भी आभूषण बनाने वाले देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, पापों के नाशकर्त्ता, सर्वव्यापक, चन्द्रमा के समान गौर और शीतल, कल्याणमय, श्रीसीता के द्वारा अनुगृहीत शङ्कर जी मेरी रक्षा करें।

विशेष– यह शार्दूल विक्रीडित वृत्त है। **''श्रिया अनुगृहीतः शङ्कर, श्रीशङ्कर सीतानुगृहीत शङ्कर इति भावः।''**

अर्थात् यहां श्रीपद का अर्थ है सीताजी श्रिया अनुगृहीतः शङ्कर इस विग्रह में मध्यम पद लोपी तृतीया तत्पुरुष समास करके श्रीशङ्कर शब्द निष्पन्न होता है, इसका अर्थ है श्रीसीता जी के द्वारा अनुगृहीत शङ्कर।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।२।।

भा०– जिनके मुख की शोभा राज्याभिषेक के समाचार से भी प्रसन्नता को नहीं प्राप्त हुई और जो वनवास के दुःख से भी नहीं मलिन हुई, वही श्रीसीता के सहित रघुनन्दन भगवान् श्रीराम के मुख कमल की शोभा मुझ तुलसीदास के लिए सदैव सुन्दर और मधुर मंगल प्रदान करने वाली बनी रहे। विशेष–यह वंशस्थ वृत्त है।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।३।।

भा०– नीले कमल के समान श्यामल और कोमल अंगवाले, जिनके वाम भाग में वेद के अनुशासन से वसिष्ठ जी द्वारा सीता जी विराजमान करायी गईं हैं, जिनके हाथ में अमोघ लक्ष्य होने के कारण महान बाण और सुन्दर धनुष है, ऐसे रघुवंश के स्वामी भगवान् श्रीराम को मैं नमन करता हूँ।

विशेष– यही श्लोक पूर्ण और पवित्र एक श्लोकी रामायण है। इसके प्रत्येक चरण में प्रभु की बाललीला, विवाहलीला, रणलीला, राज्यलीला का क्रमशः वर्णन हुआ है। यह उपजाति वृत्त है।

दो०– श्रीगुरुचरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जस, जो दायक फल चारि।।

भा०– श्री सम्प्रदायानुगत् गुरुदेव के चरणकमल के पराग रूप रज से अपने मन रूप दर्पण को सुधार कर, मैं (तुलसीदास) रघुवर श्रीराम के निर्मल यश का वर्णन करता हूँ। अथवा, रघुकुल में श्रेष्ठ चारों भाई श्रीराम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के निर्मल यश का वर्णन करता हूँ तथा जिन परम भागवतों के कारण रघुवर प्रभु श्रीराम का यश निर्मल हुआ, उन्हीं भगवती सीताजी, लक्ष्मणजी, केवट एवं भावते भैया भरत जी का वर्णन करता हूँ, जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नामक चारों फलों को देनेवाले हैं तथा जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों फलों के भी फल अविरल भक्ति, अनपायनी भक्ति, निर्भरा भक्ति और प्रेमा भक्ति को देनेवाले हैं।

विशेष– यह दोहा हनुमान चालीसा का भी प्रथम दोहा है। वहाँ भी *रघुवर विमल जस* शब्द में बहुव्रीहि समास करके हनुमान जी को अन्य पदार्थ मान लेना चाहिए *रघुवरस्य विमलं यशः येन* अर्थात् जिन हनुमान जी के कारण श्रीराम का यश विमल हुआ है, ऐसे हनुमान जी का वर्णन करता हूँ। इससे उनके मुख में अवश्य अज्ञान की कालिख लगेगी जो हनुमान चालीसा को तुलसीदास जी की कृति नहीं मानते।

जब ते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।।
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी।।

भा०– जब से भगवान् श्रीराम विवाहित होकर घर आये हैं, तभी से श्रीअवध में नित्य नये मंगल, प्रसन्नतायें और बधावे अर्थात् उत्सव हो रहे हैं। चौदहों भुवन रूप विशाल पर्वतों पर, सत्कर्म रूप मेघ, सुख रूप जल की वर्षा कर रहे हैं अर्थात् जैसे पर्वत पर मेघ प्रायः बहुत वर्षा करते हैं, उसी प्रकार चक्रवर्ती दशरथ जी द्वारा शासित चौदहों भुवनों में सत्कर्म, सुख की वर्षा कर रहे हैं।

ऋधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई।।
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। शुचि अमोल सुंदर सब भाँती।।

भा०– ऋद्धि अर्थात् निधि, सिद्धि और संपत्ति रूप सुन्दर नदियाँ उमड़कर अवध रूप समुद्र के पास आ गई हैं अर्थात् जैसे गंगाजी, यमुनाजी, सरस्वती जी सागर के पास आती हैं, उसी प्रकार, ऋद्धि, सिद्धि एवं संपत्तियाँ अवध के पास आ गईं हैं। मणि समूहों के समान नगर के नर–नारी पवित्र, अमूल्य और सब प्रकार से सुन्दर हैं।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु इतनिय बिरंचि करतूती।।
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद्र मुख चंद्र निहारी।।

भा०- नगर की विभूति कुछ भी कही नहीं जाती है, मानो ब्रह्मा जी की इतनी ही सृष्टि रचना की चातुरी है। श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सभी अवधपुर के लोग सब प्रकार से सुखी हैं।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।।
राम रूप गुन शील सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ।।

भा०- सभी मातायें, उनकी सभी समवयस्क सखियाँ मनोरथ की लता को फलती हुई देखकर प्रसन्न हैं। श्रीराम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर, महाराज दशरथ जी प्रसन्न हो रहे हैं।

दो०- सब के उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेश।
आपु अछत जुबराज पद, रामहिं देउ नरेश।।१।।

भा०- सबके मन में यही इच्छा है और सभी अवधवासी शिव जी से मनाकर यही कहते हैं कि, महाराज दशरथ जी अपने रहते हुए प्रभु श्रीराम को युवराज पद दे दें।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज बिराजा।।
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू।।

भा०- एक समय सम्पूर्ण समाज अर्थात् मंत्री, अमात्य, सेनापति, सामन्त, सभासदों के सहित रघुकुल के राजा दशरथ जी राजसभा में विराजमान हुए। महाराज दशरथ जी सम्पूर्ण पुण्यों के मूर्ति रूप थे। बंदीजनों के मुख से श्रीराम का सुयश सुनकर महाराज को बहुत ही उत्साह था।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।।
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दशरथ सम नाहीं।।

भा०- सभी राजा चक्रवर्ती जी की कृपा की इच्छा करते रहते हैं और सभी लोकपाल महाराज की संतुष्टि और रुख अर्थात् इच्छा की रक्षा करते हुए सब कुछ करते हैं। तीनों लोकों और भूत, वर्तमान, भविष्यत् इन तीनों कालों में महाराज दशरथ जी के समान बड़ा भाग्यशाली कोई नहीं है।

मंगलमूल राम सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सब तासू।।
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।।
श्रवन समीप भए सित केशा। मनहुँ जरठपन अस उपदेशा।।
नृप जुबराज राम कहँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू।।

भा०- सम्पूर्ण मंगलों के मूल कारण परमात्मा श्रीराम जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाये सब थोड़ा है। चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी ने स्वभावतः अर्थात् बिना किसी प्रयोजन के हाथ में दर्पण ले लिया। अपना मुख देखकर टेढ़े हुए मुकुट को समान अर्थात् सीधा किया। कानों के समीप के केश श्वेत हो गये थे मानो उनके बहाने वृद्धावस्था ही दशरथ जी के कान के समीप जाकर यह उपदेश दे रही थी कि, हे महाराज! अब युवराज पद श्रीराम को दे दीजिये। आप अपने जीवन में ही अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं ले लेते?

दो०- यह बिचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहिं सुनायउ जाइ।।२।।

भा०– यह विचार हृदय में लाकर सुन्दर दिन और मंगल अवसर पाकर महाराज दशरथ जी ने प्रेम से रोमांचित शरीर और मन में प्रसन्न होकर अपने सिंहासन से गुरुदेव के सिंहासन के पास जाकर, श्री गुरुवर को अपना मन्तव्य सुनाया।

कहइ भुआल सुनिय मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक।।
सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी।।
सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु अशीष जनु तनु धरि सोही।।
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोह सब रौरिहिं नाईं।।

भा०– पृथ्वी के पालक चक्रवर्ती दशरथ जी कहने लगे, हे मुनियों के स्वामी गुरुदेव! सुनिये, अब रामभद्र जी सभी विधियों से सब लायक हो चुके हैं। सेवक, मंत्रीजन, सभी अवधपुर के वासी और भी जो हमारे शत्रु रावणादि, मित्र जनकादि और तटस्थ, उदासीन दाक्षिणात्य राजा हैं सभी को श्रीराम उतने ही प्रिय हैं, जैसे मुझे प्रिय हैं, मानो आपका आशीर्वाद ही शरीर धारण करके श्रीराम रूप में सुशोभित हो रहा हैं। हे गोसाईं (स्वामी)! अपने परिवारों के साथ ब्राह्मण वर्ग आप के ही समान श्रीराम पर छोह अर्थात् ममत्व के साथ स्नेह करते हैं।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जन सकल बिभव बस करहीं।।
मोहि सम यह अनुभयउ न दूजे। सब पायउँ रज पावनि पूजे।।

भा०– जो लोग गुरुदेव की चरणधूलि अपने सिर पर धारण करते हैं वे सम्पूर्ण विश्व के विभवों को अपने वश में कर लेते हैं। मेरे समान किसी दूसरे ने इस प्रकार का अनुभव नहीं किया है। आपश्री गुरुदेव के श्रीचरणकमलों की पवित्र धूलि की पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया।

अब अभिलाष एक मन मोरे। पूजिहिं नाथ अनुग्रह तोरे।।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेश रजायसु देहू।।

भा०– अब (इस समय) मेरे मन में एकमात्र इच्छा है। हे नाथ! वह आपके ही अनुग्रह से पूर्ण होगी। महाराज का स्वाभाविक स्नेह देखकर श्री वसिष्ठ मुनि प्रसन्न हुए और कहने लगे, हे राजन्! आप रजायसु अर्थात् राजाज्ञा दीजिये।

दो०– राजन राउर नाम जस, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि, मन अभिलाष तुम्हार।।३।।

भा०– हे राजन्! आपका नाम और यश सभी मनोवांछित कामनाओं को देने वाला है। आपके मन की अभिलाषा राजाओं की भी मुकुटमणि है, फल उसका अनुगामी है। अथवा, हे राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती जी! आपके मन की अभिलाषा का फल अनुगामी है अर्थात् और लोगों की इच्छाओं का फल अनुगमन नहीं करता। प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक इच्छा नहीं पूरी होती।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।।
नाथ राम करियहिं जुबराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू।।

भा०– गुरुदेव को मन में सब प्रकार से प्रसन्न जानकर महाराज दशरथ जी प्रसन्न होकर कोमल वाणी में बोले, हे नाथ! श्रीराम को युवराज बना लीजिये। आप कृपा करके कहिये हम उस समाज अर्थात् महोत्सव की रचना करें।

मोहि अछत यह होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू।।
प्रभु प्रसाद शिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं।।

भा०– मेरे रहते यह उछाह अर्थात् श्रीराम राज्याभिषेक महोत्सव हो जाये। सभी अवध के लोग नेत्रों का लाभ प्राप्त कर लें। आपके प्रसाद से शिव जी ने मेरा सब कुछ निर्वाह कर दिया। यही एकमात्र श्रीराम राज्याभिषेक की लालसा मन में अवशिष्ट रह गई है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछे पछिताऊ।।
सुनि मुनि दशरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए।।

भा०– पुनः अर्थात् इस इच्छा के पूर्ण होने के पश्चात् शरीर रहे या जाये इसका मुझे कोई शोक नहीं, जिससे पीछे कोई पश्चात्ताप न हो। दशरथ जी के मंगल और प्रसन्नता के मूल वचन सुनकर मुनि वसिष्ठ जी को बहुत अच्छे लगे और वे बोले–

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं।।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम अनुगामी।।

भा०– हे राजन्! सुनिये जिन प्रभु से विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन के बिना मन की जलन नहीं जाती है, वे ही पवित्र प्रेम का अनुगमन करने वाले, समस्त संसार के स्वामी भगवान् श्रीराम, आपके पुत्र हुए हैं।

दो०- बेगि बिलंब न करिय नृप, साजिय सबइ समाज।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं जुबराज।।४।।

भा०– हे राजन्! शीघ्रता कीजिये, विलम्ब मत कीजिये। शीघ्र ही सम्पूर्ण समाज को सजाइये। उसी समय सुन्दर दिन और सुन्दर मुहूर्त होगा जब श्री राम युवराज होंगे।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्र बोलाए।।
कहि जयजीव शीश तिन नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए।।

भा०– महाराज दशरथ जी प्रसन्नतापूर्वक राजभवन आये और उनकी आज्ञा से सुमंत्र जी ने उनके सभी सेवकों और मंत्रियों को बुला लिया। अथवा, महाराज ने ही अपने सेवकों और मंत्रियों तथा विशेषकर सुमंत्र जी को बुला लिया। जय जीव! आप की जय हो, आप चिरंजीवी रहें, कहकर सभी सेवकों और सुमंत्र आदि सचिवों ने मस्तक नवाकर महाराज का अभिवादन किया और राजा दशरथ जी ने उन सबको सुन्दर मंगल भरे वचन सुनाये।

प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु जुबराजू।।
जौ पंचहिं मत लागौ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका।।
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी।।
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जियहु जगतपति बरिस करोरी।।

भा०– आज प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेव ने मुझे आदेश दे कर कहा है कि, हे राजन्! श्रीराम को युवराज पद दे दो। यदि आप सब पंच परमेश्वर को यह मत अच्छा लगता हो तो प्रसन्न होकर श्रीराम को राजतिलक कर दीजिये। प्यारी वाणी सुनते ही सभी मंत्री प्रसन्न हो गये, मानो अभिमत अर्थात् मनोभिलषित मन से चाहे हुए पदार्थ रूप बिरवे अर्थात् शीघ्र अंकुरित हुए वृक्ष पर पानी पड़ गया हो। सभी मंत्री हाथ जोड़कर विनती करने लगे। हे जगत्पति चक्रवर्ती जी! आप करोड़ों वर्षपर्यन्त जीवित रहें।

जग मंगल भल काज बिचारा। बेगिय नाथ न लाइय बारा।।
नृपहिं मोद सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ि जनु लही सुशाखा।।

भा०- यह तो जगत् का मंगल करने वाला कार्य आप ने विचारा है। हे नाथ! शीघ्रता कीजिये विलम्ब मत कीजिये। मंत्रियों की सुन्दर वाणी सुनकर महाराज को प्रसन्नता हुई, मानो बढ़ती हुई लता ने सुन्दर आम्र की शाखा का अवलम्बन पा लिया हो।

दो०- कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ।।५।।

भा०- महाराज ने कहा, मुनियों के राजा वसिष्ठ जी की श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए जो–जो आज्ञा हो आप लोग वही–वही करें।

हरषि मुनीश कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी।।
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना।।

भा०- प्रसन्न होकर मुनियों के ईश्वर वसिष्ठ जी ने कोमल वाणी में कहा, सम्पूर्ण श्रेष्ठतीर्थों का जल ले आओ और ओषधियाँ, जड़ी–बूटियाँ पुष्प, फल, पत्ते और ताम्बूल इस प्रकार अनेक मंगलों के नाम गिना कर कहे।

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती।।
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका।।

भा०- चामर, चर्म अर्थात् मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, नाना जातियों के ऊनी कम्बल तथा रेशमी वस्त्र, सुन्दर मणियों के समूह, अनेक मांगलिक वस्तुयें और जगत् के एकमात्र राजा अर्थात् सार्वभौम चक्रवर्ती के अभिषेक के लिए जो भी उचित हो उन सभी को लाने के लिए वसिष्ठ जी ने आज्ञा दी।

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना।।
सफल रसाल पूँगिफल केरा। रोपहु बीथिन पुर चहुँ फेरा।।
रचहु मंजु मनि चौके चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू।।
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा।।

भा०- वेद में विदित सभी विधानों को कहकर वसिष्ठ जी ने कहा, नगर में अनेक प्रकार के मण्डप बनाओ और नगर के चारों ओर फल से युक्त आम्र, सुपारी और कदली के वृक्षों को लगा दो। सुन्दर मणियों से युक्त चौके बनाओ और शीघ्र बाजारों को सजाने के लिए कहो। गणपति, कुल के गुरु और देवता इन सब की पूजा करो और ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो।

दो०- ध्वज पताक तोरन कलश, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर बचन सब, निज निज काजहिं लाग।।६।।

भा०- सब लोग ध्वजा, पताका, तोरणद्वार, मंगलकलश, घोड़े रथ और हाथी सजाओ। सभी लोग वसिष्ठ जी के आदेश को सिर पर धारण करके अपने–अपने कार्य में लग गये।

जो मुनीश जेहिं आयसु दीन्हा। सो तेहिं काज प्रथम जनु कीन्हा।।
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा।।
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा।।

भा०- वसिष्ठ जी ने जिसे जो आज्ञा दी, उसने वह कार्य मानो पहले ही कर लिया था। दशरथ जी ब्राह्मणों, सन्तों और देवताओं की पूजा कर रहे हैं और श्रीराम के लिए मांगलिक कार्य कर रहे हैं। श्रीराम का सुहावना अभिषेक सुनकर अवध में धमाकों के साथ बधावे बजने लगे।

राम सीय तनु सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए।।
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं।।
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी।।

भा०– श्रीराम और सीता जी के शरीर में मांगलिक शकुन प्रतीत होने लगे। उनके सुहावने मंगलमय अंग फड़कने लगे अर्थात् श्रीराम के दाहिने और सीता जी के वाम अंग फड़कने लगे। दम्पति (श्रीसीता–राम जी) रोमांचित होकर प्रेमपूर्वक परस्पर कहने लगे कि, ये शकुन भरत के आगमन के सूचक हैं अर्थात् ये भरत के आने की सूचना दे रहे हैं। भरत, शत्रुघ्न को ननिहाल गये बहुत दिन हो गये, मन में अत्यन्त चिन्ता है। शकुनों से प्रियजनों के मिलने का विश्वास हो रहा है।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फल दूसर नाहीं।।
रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडनि कमठ हृदय जेहि भाँती।।

भा०– हम लोगों के लिए संसार में भरत के समान कौन प्रिय है? शकुन का यही फल है और कोई दूसरा नहीं। हम दोनों से भरत मिलेंगे, वह मिलने का स्थान कोई भी हो। प्रभु श्रीराम को भैया भरत की, दिन–रात चिन्ता रहती है, जैसे कछुवे के हृदय को अंडे की चिन्ता रहती है।

विशेष– जनश्रुति यह है कि, जल में रहने वाला कछुवा अपना अंडा जल से दूर स्थल में रख देता है और जल में रहकर भी वह दूरवर्ती अंडों का अपने मानसिक चिन्तन और संकल्प से पालन करता है, उसी प्रकार प्रभु श्रीराम ने भी अवध में विरह–जल का संकट जानकर अपनी लीलाशक्ति से भरत जी को ननिहाल भेज दिया है, परन्तु श्रीअवध में रहकर भी अपने मानसिक संकल्प से सुदूर रहनेवाले भैया भरत का लालन–पालन कर रहे हैं।

दो०– एहि अवसर मंगल परम, सुनि रहसेउ रनिवास।
शोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलास।।७।।

भा०– इस अवसर पर श्रीरामराज्याभिषेक रूप परम मंगल सुनकर रनिवास प्रसन्न हुआ, मानो पूर्ण चन्द्रमा को सुशोभित देखकर समुद्र में तरंगों का विलास बढ़ रहा हो अर्थात् जैसे पूर्ण चन्द्र को देखकर समुद्र में लहरें अठखेलियाँ करने लगती हैं, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र का राज्य उत्कर्ष देखकर रनिवास रूप महासागर में प्रसन्नता की लहरें उठ गईं।

प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन पाए।।
प्रेम पुलकि तनु मन अनुरागीं। मंगल कलश सजन सब लागीं।।

भा०– जिन सेवकों ने सर्वप्रथम जाकर रानियों को श्रीरामराज्याभिषेक का समाचार का वचन सुनाया, उन्होंने अनेक आभूषण और वस्त्र पाये। महारानियाँ प्रेम से रोमांचित शरीरवाली हुईं तथा मन में अत्यन्त अनुराग उमड़ आया। सभी मांगलिक कलश सजाने लगीं।

चौके चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी।।
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी।।

भा०– सुमित्रा जी ने अनेक प्रकार के सुन्दर मणियों से चौकें पूरी अर्थात् बनाईं। चारों ओर से चतुष्कोण बनाकर बीच में मुक्तामणियाँ भरीं। श्रीराम की माता कौसल्या आनन्द में मग्न हो गईं और उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दिये।

पूजी ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू।।
गावहिं मंगल कोकिलबयनी। बिधुबदनी मृगशावकनयनी।।

भा०- उन्होंने ग्राम के देवी, देवता और नागराज की पूजा की, फिर देवताओं को बलि–भाग अर्थात् पूजा–भाग देने के लिए कहा। कौसल्या जी कहने लगीं, हे देवताओं! जिस प्रकार से श्रीरामलला जी का कल्याण हो आप दयाकर वही वरदान दें। चन्द्रमुखी, बालमृग के समान नेत्रवाली, कोकिलाओं के समान बोलने वाली श्रीअवध की नारियाँ मंगल गाने लगीं।

विशेष- यहाँ बलि का अर्थ पशुओं को काटकर बलि चढ़ाने से नहीं है, प्रत्युत् बलि वैश्वदेव की भाँति देवताओं के निमित्त सात्विक भोजन के समर्पण से है। इसलिए संस्कृत में बलि का अर्थ पूजा भी होता है– अंतिकन्यस्त बलिप्रदीपां। रघुवंश, २.२४।

दो०- राम राज अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि।।८।।

भा०- श्रीराम–राज्याभिषेक सुनकर, अवध के नर–नारी हृदय में प्रसन्न हुए और ब्रह्मा जी को अपने अनुकूल जानकर सभी लोग मंगल सजाने लगे।

तब नरनाह बसिष्ठ बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए।।
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा।।
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी।।

भा०- तब राजा दशरथ जी ने वसिष्ठ जी को बुलाया और शिक्षा देने के लिए उन्हें श्रीराम के भवन भेज दिया। श्रीरघुनाथ ने गुरुदेव का आगमन सुनते ही द्वार पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया। आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें अपने घर में ले आये तथा षोडशोपचार से गुरुदेव की पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर भगवती सीता जी के सहित भगवान् श्रीराम गुरुदेव के चरण पकड़ लिए और कमल के समान कोमल हाथों को जोड़कर बोले–

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।।
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइय काज नाथ असि नीती।।

भा०- सेवक के घर में स्वामी का आगमन सभी मंगलों का कारण और अमंगलों का नाशक होता है, फिर भी उचित नीति तो यह है कि, प्रेमपूर्वक सेवक को बुलाकर उसे कार्य के लिए भेज देना चाहिये। कार्य सौंपने के लिए स्वामी को सेवक के घर नहीं जाना चाहिये।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यह गेहू।।
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाई।।

भा०- आप प्रभु ने अपनी प्रभुता को छोड़ मुझ पर स्नेह किया यह घर पवित्र हो गया। हे स्वामी! जो आदेश हो वह करूँ। सेवक, स्वामी की सेवा प्राप्त करे।

विशेष– सर्वज्ञ प्रभु श्रीराम को आगामी वनवास का वृत्तान्त विदित है, इसीलिए उन्होंने यहाँ "मम गेहू" का प्रयोग नहीं किया 'यह गेहू' कहा अर्थात् यह मेरा घर नहीं है, कल इसे छोड़ मुझे जाना होगा, परन्तु आपश्री के पदार्पण से इसकी पवित्रता अवश्य निःसन्दिग्ध हो गई।

दो०- सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहिं प्रशंस।
राम कस न तुम कहहु अस, हंस बंश अवतंस।।९।।

भा०– इस प्रकार, प्रेम से सने वचन सुनकर मुनि वसिष्ठ जी ने रघुश्रेष्ठ श्रीराम की प्रशंसा की। हे सूर्यवंश के आभूषण श्रीराम! भला तुम ऐसा क्यों नहीं कहोगे?

बरनि राम गुन शील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ।।
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहिं जुबराजू।।
राम करहु सब संजम आजू। जौ बिधि कुशल निबाहै काजू।।

भा०– भगवान् श्रीराम के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से रोमांचित होकर मुनिराज वसिष्ठ जी बोले, राजा दशरथ ने राजतिलक के उपकरण सजा लिए हैं। वे तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं। हे श्रीराम! आज सब प्रकार का संयम कीजिये। अथवा, सब के प्राणों का संयमन अर्थात् प्रतिरोध कीजिये क्योंकि कैकेयी द्वारा आप को वनवास दे दिये जाने पर शरीर छोड़कर सभी के प्राण आप के पास जाना चाहेंगे। अतः उन सब का संयमन कीजिये, रोक दीजिये किसी को मरने न दीजिये। यदि विधाता यह कार्य सकुशल सम्पन्न कर दें।

गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ।।
जनमे एक संग सब भाई। भोजन शयन केलि लरिकाई।।
करनबेध उपबीत बियाहा। संग संग सब भए उछाहा।।
बिमल बंश यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई।।

भा०– गुरुदेव, श्रीराम को लौकिक और पारलौकिक शिक्षा देकर महाराज दशरथ जी के यहाँ चले गये। श्रीराम के मन में इस प्रकार का विष्मय हुआ, हम सभी चारों भाई एक ही साथ जन्मे और लड़कपन में भी एक ही साथ भोजन–शयन और क्रीड़ायें सम्पन्न की। एक ही साथ कर्णच्छेदन, उपवीत और विवाह के उत्सव सम्पन्न हुए। निर्मल वंश में यह अनुचित हो रहा है कि, छोटे भैया भरत को छोड़कर अथवा, छोटे भाइयों को छोड़कर बड़े का अभिषेक किया जा रहा है। प्रभु का प्रेमपूर्ण यह पछताना, श्रीरामभक्तों के हृदय की कुटिलता को दूर कर दे।

दो०- तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चंद।।१०।।

भा०– उसी समय प्रेम और आनन्द में मग्न होकर, लक्ष्मण जी वहाँ आये और प्रिय वचन कहकर, रघुकुल के चन्द्रमा भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी का सम्मान किया।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना।।
भरत आगमन सबहिं मनावहिं। आवहिं बेगि नयन फल पावहिं।।

भा०- अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं, नगर का प्रमोद कहा नहीं जा सकता है। सभी नर–नारी भरत जी का आगमन मना रहे हैं। सभी मन से कह रहे हैं कि, भरत जी शीघ्र आ जायें और वे भी सिंहासनासीन राजा श्रीराम को निहारकर नेत्रों का फल पा लें।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लुगाई।।
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहिं बिधि अभिलाष हमारा।।

भा०- बाजार, मार्ग, घर, गली और चौपालों में बैठे हुए नर–नारी परस्पर चर्चा करते हैं कि, हे विधाता! कल का वह सुन्दर मुहूर्त अभी कितनी देर है, जब हमारी इच्छा पूर्ण होगी?

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता।।
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली।।

भा०- सीता जी के सहित श्रीराम जब स्वर्ण–सिंहासन पर बैठेंगे, तभी हमारे चित्त में चेत होगा अर्थात् शान्ति होगी। सभी कह रहे हैं कि, कल कब होगा? इधर दुष्ट देवता विघ्न मना रहे हैं।

तिनहिं सोहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि राति न भावा।।
शारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पायँ लै परहीं।।

भा०- उन्हें अवध का बधावा अर्थात् बधाई का मंगलमय उत्सव नहीं अच्छा लग रहा है, क्योंकि चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। देवता, सरस्वती जी को बुलाकर विनय कर रहे हैं और बार–बार उनके चरणों को पकड़कर लेट जाते हैं।

दो०- बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु।
राम जाहिं बन राज तजि, होइ सकल सुरकाजु।।११।।

भा०- हे माँ! हमारी बहुत बड़ी विपत्ति को देखकर आज आप वही कीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्र अयोध्या का राज्य छोड़कर वन चले जायें और देवताओं के सभी कार्य पूर्ण हो जायें।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती।।
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी।।

भा०- देवताओं का वचन सुनकर सरस्वती जी खड़ी–खड़ी पछता रही हैं। वे सोचती हैं कि, मैं रघुकुलरूप कमल–वन को नष्ट करने के लिए हेमन्त की रात्रि बन गई। सरस्वती जी को पछताती हुई देखकर, देवता उनका निहोरा करते हुए अर्थात् प्रार्थना करते हुए कहने लगे, हे माँ! आपका थोड़ा भी दोष नहीं है।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ।।
जीव करम बश सुख दुख भागी। जाइय अवध देवहित लागी।।

भा०- भगवान् श्रीराम विषाद और हर्ष इत्यादि द्वन्द्वों से रहित हैं। आप तो श्रीराम का सब प्रभाव जानती हैं। जीव ही कर्म के वश में होने के कारण सुख–दुःख का भागी अर्थात् भोक्ता बनता है। अतः आप देवताओं के हित के लिए श्रीअवध अवश्य जाइये।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची।।
ऊँच निवास नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।

भा०– देवताओं ने बार–बार चरण पकड़ कर सरस्वती जी को संकोच में डाला और सरस्वती जी यह विचार कर चलीं कि, देवताओं की बुद्धि बहुत निकृष्ट होती है। इनका निवास तो ऊँचा अर्थात् स्वर्ग में है पर इनकी करतूत अर्थात् कर्म बहुत निम्न हैं। ये किसी दूसरे की विभूति देख नहीं सकते अर्थात् दूसरों का उत्कर्ष इनसे देखा नहीं जाता।

आगिल काज बिचारि बहोरी। करिहैं चाह कुशल कबि मोरी।।
हरषि हृदय दशरथ पुर आई। जनु ग्रह दशा दुसह दुखदाई।।

भा०– फिर अगले कार्य का विचार करके चतुर कवि मेरी चाह करेंगे। तात्पर्य यह है कि, जब मेरे निमित्त से श्रीराम का वनगमन होगा, तभी तो रावण का वध होगा और तभी तो जगत् को शान्ति मिल सकेगी। ऐसा विचार कर सरस्वती जी हृदय में प्रसन्न होकर, दशरथ जी के पुर श्रीअयोध्या में आईं, मानो असहनीय दुःख देने वाली शनिश्चर की महादशा आ गई हो।

दो०– नाम मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि।।१२।।

भा०– मंथरा नाम वाली एक मंदबुद्धि कैकेयी जी की दासी थी। सरस्वती जी उसी को अपयश की पिटारी अर्थात् विशाल पेटिका बनाकर उसी की बुद्धि को फेरकर अर्थात् विपरीत करके चली गईं।

दीख मंथरा नगर बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा।।
पूछेसि लोगन काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उर दाहू।।

भा०– मंथरा ने श्रीअवधनगर की सजावट और सुन्दर मंगल बधावे बजते देखा। उसने लोगों से पूछा, "यह कैसा उत्साह अर्थात् उत्सव है?" उनसे श्रीराम जी के सम्भावित तिलक की तैयारी सुनकर मंथरा के हृदय में बहुत जलन हुई।

करइ बिचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवनि बिधि राती।।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लहउँ केहि भाँती।।

भा०– कुत्सितबुद्धि और कुजाति अर्थात् दुष्टप्रकृति से युक्त, मंथरा विचार करने लगी कि, आज रात में ही किस प्रकार से अकाज अर्थात् श्रीरामराज्याभिषेक में विघ्न पड़े। जैसे मधुमक्खी के रस से भरे हुए छत्ते को देखकर कुटिल हृदयवाली भिल्लिनी अवसर ढूढ़ती है कि, किस भाँति से मैं मधु के छत्ते का रस पा जाऊँ, उसी प्रकार मंथरा भी वह उपाय सोचने लगी कि, यह श्रीरामराज्य का रस उसे प्राप्त हो, जिसका वह अपने स्वामिनी महारानी कैकेयी के पक्ष में उपयोग कर सके।

भरतमातु पहँ गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी।।
उतर देइ नहिं लेइ उसासू। नारिचरित करि ढारइ आँसू।।

भा०– वह मंथरा रोती, बिलखती श्रीभरत की माता कैकेयी जी के पास गई। रानी कैकेयी ने हँसकर कहा, अरी मंथरा! तू क्यों अनमनि हो गई है अर्थात् तेरा मन उदास क्यों है? मंथरा उत्तर नहीं देती है, लम्बे–लम्बे श्वास लेती जाती है और स्वार्थी नारी का नाटक से भरा चरित्र प्रस्तुत करके झूठे आँसू बहाती है।

हँसि कह रानि गाल बड़–तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।।
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ श्वास कारि जनु साँपिनि।।

भा०– रानी कैकेयी ने हँसकर कहा, तेरे पास बहुत बड़ा गाल है अर्थात् तू बहुत असभ्य प्रकार से बोलती है। मेरे मन में ऐसा लगता है कि, तुझे लक्ष्मण ने शिक्षा दी है अर्थात् डाँट–फटकार लगाई है। फिर भी बहुत बड़ी पापिनी दासी (मंथरा) नहीं बोलती है और काली साँपिन के समान ऊँचे–ऊँचे फुफकार के श्वास छोड़ती जाती है।

दो०- सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
लखन भरत रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर साल।।१३।।

भा०– रानी कैकेयी मंथरा के अनुत्तर का दृश्य देखकर भयभीत होती हुई कहने लगीं, उत्तर क्यों नहीं देती है, श्रीरामभद्र जी, चक्रवर्ती जी, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल हैं न? इनका कोई अमंगल तो नहीं हुआ? यह सुनकर, कुबड़ी (कुबड़वाली) मंथरा के हृदय में साल अर्थात् असहनीय कष्ट हुआ।

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई।।
रामहिं छाड़ि कुशल केहि आजू। जाहि जनेश देइ जुबराजू।।

भा०– मंथरा व्यंग्य भरे वचनों में बोली, हे माँ! मुझे कोई क्यों शिक्षा देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी अर्थात् किसके बल से बोलूँगी? आज श्रीराम को छोड़कर किसका कुशल हो सकता है, जिन श्रीराम को महाराज दशरथ जी युवराज पद दे रहे हैं?

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन।।
देखहु कस न जाइ सब शोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा।।

भा०– महारानी कौसल्या के लिए ब्रह्मा जी अत्यन्त दाहिने अर्थात् अनुकूल हो गये हैं। यह देखकर कौसल्या के हृदय में सौभाग्य का गर्व समाता नहीं। अथवा, देखने में तो कौसल्या के हृदय में गर्व रहता नहीं दिखता, परन्तु वे सौभाग्य से गर्वीली हो चुकी हैं। अथवा, कौसल्या के प्रति विधाता की अनुकूलता देखकर मेरे हृदय में अब आपके सौभाग्य का गर्व नहीं रह रहा है। अब मैं अत्यन्त असहाय हो गई हूँ। आप ही जाकर अवध नगर की शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मन में अत्यन्त क्षोभ अर्थात् दुःख हुआ है ?

पूत बिदेश न सोच तुम्हारे। जानति हहु बश नाह हमारे।।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।।

भा०– आपका पुत्र भरत विदेश (ननिहाल) दूर देश में है। आपको उसकी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। आप जानती हैं कि, महाराज हमारे अर्थात् कैकेयी के वश में हैं। सुन्दर तोषक की सेज पर आप को नींद बहुत प्रिय है अर्थात् गद्दे–मसनद लगाकर आप सोती रहती हैं। राजा दशरथ की कपटयुक्त चतुरता को नहीं देखती हैं।

सुनि प्रिय बचन मलिन मन जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी।।
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।

भा०– मंथरा के सामान्य लोगों को प्रिय लगने वाले वचनों को सुनकर तथा उसके मन को मलिन (मल से युक्त) जानकर रानी कैकेयी उस पर झिड़क पड़ीं और बोलीं, बस अब तू चूप रह। हे घर को फोड़ने वाली! यदि कभी फिर ऐसा कहा, तो पकड़ कर तेरी जीभ निकलवा लूँगी।

दो०- काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिशेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि।।१४।।

भा०– सरस्वती जी की माया से विशेषस्त्री अर्थात् कैकेयी की बुद्धि विपरीत हुई, इसलिए विकलांगों के प्रति अपमान का भाव रखती हुईं कानों अर्थात् एक नेत्र के विकार से युक्त, खोरों अर्थात् लंगड़ों एवं निकले हुए कुबड़ के कारण विकलांग बन्धुओं को कुटिल और विपरीत आचरणवाला जानकर, फिर चेरि कहकर श्रीभरत की माता कैकेयी परिहास की मुद्रा में मुस्कुरा पड़ीं।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोप न मोही।।
सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।।

भा०– फिर कैकेयी बोलीं, हे प्रियवादिनि! अर्थात् श्रीरामतिलक का प्रिय संदेश सुनाने वाली मंथरे! मैंने तुझको शिक्षा दी है, मुझे स्वप्न में भी तुम पर क्रोध नहीं है। जिस दिन तुम्हारा कथन सत्य अर्थात् श्रीराम का राजतिलक होगा वही सुन्दर मंगलों को देने वाला शुभ दिन होगा।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।।
राम तिलक जौ साँचेहु काली। देउँ माँगु मन भावत आली।।

भा०– बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक हुआ करता है, सूर्यकुल की यही सुहावनी रीति है। हे सखी! यदि कल सत्य ही श्रीराम का राजतिलक होगा तो तुम अपना मनभाया माँग लो, मैं अभी दे दूँगी।

कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज स्वभाव पियारी।।
मो पर करहिं सनेह बिशेषी। मैं करि प्रीति परीक्षा देखी।।

भा०– सरल स्वभाववाले श्रीराम को कौसल्या के समान ही सभी (सात सौ) मातायें प्रिय हैं। मुझ पर श्रीराम विशेष स्नेह करते हैं, मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख लिया है।

जौ बिधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पुतोहू।।
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन के तिलक छोभ कस तोरे।।

भा०– यदि विधाता मुझ पर कृपा और ममत्व करके मुझे अगला जन्म दें तो श्रीराम और श्रीसीता मेरे पुत्र और पुत्रवधू हों। श्रीराम मेरे प्राण से भी अधिक मुझे प्रिय हैं, उनके तिलक से तुझे क्षोभ क्यों है ?

दो०– भरत शपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ।।१५।।

भा०– तुझे भरत की शपथ है, तू कपट और दुराउ (छिपाव) की भावना छोड़कर सत्य कह। हे मंथरा! हर्ष के समय विषाद और आश्चर्य कर रही है, इसका कारण मुझे सुना।

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।।
फोरै जोग कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा।।

भा०– मंथरा ने व्यंग्य करते हुए कहा, महारानी जी एक ही बार के कहने से तो मेरी सभी आशायें पूर्ण हो गईं। अब यदि कुछ कहूँगी तो दूसरी जीभ लगानी पड़ेगी अर्थात् मेरी यह जीभ तो निकल जायेगी, फिर कैसे कुछ कह सकूँगी? मेरा यह अभागा कपाल (सिर) फोड़ने योग्य है, क्योंकि अच्छा कहने पर भी आपको दु:ख लग गया अर्थात् मैंने तो अच्छा समझकर ही कहा, उसका आपने उल्टा अर्थ निकाला।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुमहिं करुइ मैं माई।।
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।।

भा०- जो लोग झूठ–सच बातें बनाकर कहते हैं अर्थात् झूठ को सत्य बनाकर आपको वास्तविकता से दूर रखते हैं, वे लोग ही आपको प्रिय हैं। हे माँ! मैं सच–सच बोलती हूँ, इसलिए मैं कड़वी हूँ। अब मैं ठकुरसोहाती अर्थात् स्वामिनी को अच्छी लगनेवाली, भले ही वह सत्य से दूर हो ऐसी बातें कहूँगी नहीं तो दिन–रात मौन रहूँगी।

करि कुरूप बिधि परबश कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।।
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।।

भा०- कुरूप अर्थात् विपरीत रूपवाली बनाकर विधाता ने मुझे पराधीन कर दिया, जो बोया वही काटा जा रहा है। जो पूर्व में दिया है, वही अब पा रही हूँ। कोई भी राजा हो जाये हमें क्या हानि है? क्या मैं दासी छोड़कर अब रानी बन जाऊँगी? अर्थात् न ही श्रीराम के अभिषेक से व्यक्तिगत मेरी कोई हानि है और न ही श्रीभरत के अभिषेक से मेरा कोई व्यक्तिगत लाभ है।

जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।।
ताते कछुक बात अनुसारी। छमिय देबि बड़ि चूक हमारी।।

भा०- हे महारानीजी! हमारा स्वभाव तो जलाने योग्य है, क्योंकि आपका अहित हम से देखा नहीं जाता है, इसलिए कुछ बात की थी। हे देवी! मेरी यह बहुत बड़ी भूल क्षमा कीजिये।

दो०- गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बश बैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि।।१६।।

भा०- नारियों में अधमप्रकृति की श्रीराम–विरोधिनी मंथरा जिसे अस्थिर बुद्धि मिली है, छिपे हुए कपट अर्थ वाले प्रिय वचन सुनकर देवताओं की माया के वशीभूत रानी कैकेयी अपनी शत्रु मंथरा को अपना स्वाभाविक मित्र जानकर उस का विश्वास कर बैठीं।

विशेष – अधरा अधमा बुद्धिः यस्याः सा अधर बुद्धिः संस्कृत में अधर शब्द अधम का भी वाचक है। मंथरा की बुद्धि को सरस्वती ने अधर अर्थात् अधम कर दिया है। अतः अधरबुद्धि विशेषज्ञ मंथरा का ही है।

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। शबरी गान मृगी जनु मोही।।
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी।।
तुम पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ।।
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली।।

भा०- रानी कैकेयी आदरपूर्वक बार–बार मंथरा से पूछ रही हैं, मानो भिल्लिनी के गान से हरिणी मोहित हो गई हो। जैसी भवितव्यता अर्थात् होनहार है, उसी प्रकार कैकेयी की बुद्धि फिर गई। दासी मंथरा प्रसन्न हुई, मानो उसका घात लग गया हो अर्थात् मंथरा ने भ्रमवश अपनी योजना को सफल होते देख प्रसन्नता का अनुभव किया, जबकि कैकेयी की बुद्धि भवितव्यता के कारण फिरी थी। मंथरा ने प्रत्युत्तर दिया, महारानी जी! आप पूछ रही हैं, परन्तु मैं कहने से डर रही हूँ, क्योंकि आपने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी (घर फोड़ने वाली) रख दिया है। इसके अनन्तर, बहुत प्रकार से छील–गढ़कर अर्थात् जैसे कोई लकड़ी को छीलकर, गढ़कर सजाता है, उसी प्रकार अपनी बात को काट–पीटकर विश्वास को सजाकर (जमा कर) अवध की साढ़ेसाती अर्थात् शनिश्चर की (साढ़े सात वर्ष तक चलने वाली) महाभयंकर दशा के समान मंथरा बोली–

प्रिय सिय राम कहा तुम रानी। रामहिं तुम प्रिय सो फुरि बानी।।
रहे प्रथम अब ते दिन बीते। समय फिरे रिपु होहिं पिरीते।।

भा०– हे रानी! श्रीसीताराम जी आपको प्रिय हैं ऐसा आप ने कहा है और आप श्रीराम को प्रिय हैं, आपकी यह वाणी भी सत्य है, परन्तु वे दिन पहले थे अर्थात् तब समय आपके अनुकूल था जब श्रीसीताराम जी आपको प्रिय थे और आप उन्हें प्रिय थीं, परन्तु अब वे दिन चले गये। समय के फिरने अर्थात् विपरीत होने पर प्रिय भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा।।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।।

भा०– देखिये, जो सूर्य कमल समूह को पोषण करने वाले हैं, वही सूर्यनारायण उसी कमल को जल के बिना जलाकर खाक कर देते हैं। आपकी सौतें आपकी जड़ को उखाड़ फेंकना चाहती हैं। आप उपाय रूप सुन्दर बाड़ की व्यवस्था करके उस जड़ को रुँध दीजिये, जिससे आपकी सौतें आपकी जड़ तक पहुँच ही न सकें।

दो०– तुमहिं न सोच सोहाग बल, निज बश जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ।।१७।।

भा०– आपको तो अपने सौभाग्य के बल के कारण चिन्ता नहीं है। आप महाराज को अपने वश में जानती हैं, जबकि ऐसा नहीं है। राजा दशरथ मन के मैले और मुँह के मीठे हैं अर्थात् बोलते बहुत मधुर हैं, पर उनका मन मलों से भरा है और आपका स्वभाव सरल है।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीच पाइ निज बात सँवारी।।
पठए भरत भूप ननियउरे। राम मातु मत जानब रउरे।।

भा०– श्रीराम की माता कौसल्या जी बहुत चतुर और गंभीर हैं, उन्होंने अवसर पाकर इसी बीच अपनी बात बना ली है। आप यह बात जान लें की श्रीराम की माता कौसल्या जी की सम्मति से ही महाराज ने श्रीभरत को ननिहाल भेज दिया है।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत मातु बल पी के।।
शाल तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई।।

भा०– (कौसल्या जी की यह धारणा है कि,) मेरी सभी सौतें भली प्रकार से मेरी सेवा करती हैं, परन्तु प्रियतम महाराज दशरथ के बल से भरत की माता कैकेयी गर्वीली हो रही हैं। अथवा, हे श्रीभरत की माँ कैकेयी! आपकी यह धारणा है कि, सभी सौतें मेरी सेवा करती हैं और इसी कारण से भरत की माता आप, अपने पति दशरथ के बल से गर्वीली हो गईं हैं, जबकि परिस्थिति इसके विपरीत है। हे माँ! कौसल्या जी को आपका खटक है। वे कपट में चतुर हैं, इसलिए आपके प्रति वे अपने असंतोष को प्रकट नहीं करतीं।

राजहिं तुम पर प्रेम बिशेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी।।
रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।।

भा०– कौसल्या जी सौतन के स्वभाव के कारण तुम पर महाराज का विशेष प्रेम नहीं देख सकती हैं, इसलिए प्रपंच रचकर महाराज दशरथ को अपने वश में करके उन्होंने श्रीराम के राजतिलक के लिए मुहूर्त निश्चित करा लिया।

यह कुल उचित राम कहँ टीका। सबहिं सोहाइ मोहि सुठि नीका।।
आगिलि बात समुझि डर मोही। दैव देउ फिरि सो फल ओही।।

भा०– इस कुल अर्थात् रघुकुल में श्रीराम के लिए राजतिलक उचित है, वह सब को अच्छा लग रहा है, मुझे तो बहुत अच्छा लगता है, परन्तु इससे आगे की बात समझकर मुझे बहुत डर लग रहा है अर्थात् कहीं राजमाता बनकर कौसल्या आप के साथ अत्याचार कर बैठें। फिर ईश्वर उन्हें उसी प्रकार का फल दें अर्थात् राजमाता बन कर भी कौसल्या आप पर अत्याचार न कर सकें और ईश्वर करें कि, कौसल्या कभी राजमाता न बन पायें।

दो०– रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोध।
कहिसि कथा शत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोध।।१८।।

भा०– इस प्रकार, करोड़ों कुटिलताओं को सजावट के साथ रचकर मंथरा ने कैकेयी को कपटपूर्ण ज्ञान दिया अर्थात् उन्हें कपट के सिद्धान्तों से प्रबोधित किया और सैकड़ों ऐसी सौतों की कथायें कही, जिससे कैकेयी के मन में कौसल्या जी के प्रति विरोध बढ़ गया।

भावीबश प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि शपथ देवाई।।
का पूँछहु तुम अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पशु पहिचाना।।

भा०– भवितव्यता के कारण कैकेयी के हृदय में मंथरा के वाक्यों के प्रति विश्वास आ गया फिर रानी ने अपनी शपथ दिलाकर मंथरा से वास्तविकता पूछी। मंथरा क्रुद्ध होकर बोली, आप क्या पूछ रही हैं? आप ने अभी भी नहीं जाना, जबकि पशु भी अपना हित और अहित पहचान जाता है।

भयउ पाख दिन सजत समाजू। तुम पाई सुधि मोहि सन आजू।।
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोष हमारे।।
जौ असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई।।

भा०– श्रीराम राजतिलक का साज सजाते पन्द्रह दिन बीत गये, आप ने आज मुझसे समाचार पाया। हम आपके ही राज्य में खाती और पहनती हैं अर्थात् आप ही के कृपा से हमारा भोजन और वस्त्र चल रहा है। सत्य कहने से हमें दोष नहीं लगेगा। यदि मैं कुछ बनाकर असत्य कहूँगी तो ब्रह्मा जी मुझे उसका दण्ड देंगे।

रामहिं तिलक कालि जौ भयऊ। तुम कहँ बिपति बीज बिधि बयऊ।।
रेख खँचाइ कहउँ बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी।।
जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।

भा०– यदि कल श्रीराम का राजतिलक हो गया तो समझो कि, विधाता ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया है। मैं रेखा खींचकर बलपूर्वक भाषण करती हुई कह रही हूँ कि, हे भामिनि (सुलक्षणे) ! आप दूध की मक्खी हो चुकी हैं अर्थात् जैसे दूध में से मक्खी निकाल दी जाती है, उसी प्रकार अवध–राजपरिवार में आपका अस्तित्व नहीं रहा। यदि पुत्र श्रीभरत के साथ आप कौसल्या जी की सेविका की भाँति सेवा करेंगी तभी घर में रह सकती हैं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

दो०– कद्रू बिनतहिं दीन्ह दुख, तुमहिं कौसिला देब।
भरत बंदिगृह सेइहैं, लखन राम के नेब।।१९।।

भा०– जिस प्रकार कद्रू ने विनता को कष्ट दिया था, उसी प्रकार कौसल्या जी आपको दु:ख देंगी। श्रीभरत बंदिगृह के सेवक बनेंगे अर्थात् बंदी बना लिए जायेंगे और लक्ष्मण जी, श्रीराम के मुख्य सहायक होंगे। अथवा,

श्रीभरत बंदी (चारण) बनकर राजगृह की सेवा करेंगे और श्रीलक्ष्मण, श्रीराम के नेब अर्थात् समान सुख के भोक्ता बनेंगे।

विशेष- यहाँ प्रयुक्त नेब शब्द अर्द्धवाचक नेम शब्द का अपभ्रंश है। तात्पर्य यह है कि, श्रीलक्ष्मण, श्रीराम के नेम अर्थात अर्द्ध यानी युवराज पद के अधिकारी होंगे।

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी।।
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दशन जीभ तब चाँपी।।

भा०- मंथरा की यह कटुवाणी सुनकर कैकयराजपुत्री कुछ भी नहीं कह पा रही थीं। वे सहसा भयभीत होकर सूख गईं। उनके शरीर में पसीना आ गया, वे केले के वृक्ष की भाँति काँप उठीं। तब कुबजा मंथरा ने अपने दाँत से जीभ दबा लिया अर्थात् दाँत से जीभ दबाकर उसने यह बताना चाहा कि, सत्य की इतनी भयंकर सूचना मैंने रानी को क्यों दी?

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी।।
कीन्हेसि कठिन पढ़ाय कुपाठू। जिमि न नवै फिरि उकठि कुकाठू।।

भा०- मंथरा ने करोड़ों कपट के कथानक कहकर, धैर्य धारण कीजिये इस प्रकार, आश्वासन देते हुए रानी को प्रबुद्ध किया अर्थात् समझाया। कुत्सित दोषपूर्ण पाठ पढ़ाकर कैकेयी को मंथरा ने उतना कठिन बना दिया जैसे हवन आदि शुभकार्यों में न आने वाली सूखी लकड़ी फिर नहीं झुक पाती।

फिरा करम प्रिय लागि कुचाली। बकिहिं सराहइ मानि मराली।।
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी।।
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोहबश अपने।।
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ।।
दो०- अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहिं बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह।।२०।।

भा०- कैकेयी का कर्म फिर गया अर्थात् सत्कर्म, दुष्कर्म बन गया। वे बगली को हंसिनी मानकर उसकी प्रशंसा करने लगीं अर्थात् मंथरा जैसी दुष्ट महिला को कैकेयी ने साध्वी मान लिया और बोलीं, हे मंथरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़कती है। मैं प्रतिदिन-रात को बुरे सपने देखती हूँ, परन्तु अपने ही मोह के वश में होकर तुमसे नहीं कहती हूँ। हे सखी! क्या करूँ मेरा स्वभाव बहुत सीधा है। मैं कुछ भी दाहिना और बाँया नहीं समझती अर्थात् मुझे अनुकूलता और प्रतिकूलता की पहचान ही नहीं है। अपने चलते तो मैंने किसी का बुरा नहीं किया है। विधाता ने मेरे किस पाप से मुझे एक ही बार में असहनीय दुःख दे दिया?

नैहर जनम भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई।।
अरि बश दैव जियावत जाही। मरन नीक तेहि जीवन चाही।।

भा०- मैं मायके में ही जाकर सम्पूर्ण जीवन समाप्त कर लूँगी, परन्तु जीते जी सौतन की सेवा नहीं करूँगी। विधाता जिसे शत्रु के अधीन रखकर जिलाता है, उस जीवन की अपेक्षा तो मरण ही अच्छा है।

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरी तियमाया ठानी।।
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहाग तुम कहँ दिन दूना।।

भा०– जब रानी ने बहुत प्रकार से दीनतापूर्ण वचन कहे तब कूबड़ वाली मंथरा ने गँवार अवसरवादिनी स्त्री की माया (कपट वञ्चना) प्रारम्भ की और बोली, अपने मन को कौसल्या की अपेक्षा अल्प मानकर आप इस प्रकार की निराशापूर्ण वचन क्यों कह रही हैं? आपके लिए सुख और सौभाग्य तो दिन दूना और रात चौगुना है।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फल परिपाका।।
जब ते कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि।।
पूँछेउँ गुनिन रेख तिन खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची।।
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। हैं तुम्हरी सेवाबश राऊ।।

भा०– जिसने आपका अत्यन्त अहित सोचा है अथवा, अपनी दृष्टि से देखा है, वही परिणाम में यह पका हुआ फल पायेगा अर्थात् उसी का भयंकर अहित होगा, आपका नहीं। हे स्वामिनी जी! जब से मैंने यह कुमंत्र अर्थात् भरत की अनुपस्थिति में श्रीराम का राज्याभिषेक सुना है, तब से मुझे न ही दिन भर भूख लगती है और न ही रात को नींद आती है। मैंने गुणियों अर्थात् फलित ज्योतिष के विद्वानों से पूछा, उन्होंने यह सत्य रेखा खींचकर कह दिया है कि, श्रीभरत ही श्रीअवध के भूपाल अर्थात् शासक बनेंगे। हे सुलक्षणे! यदि आप करें तो मैं उपाय कहूँ। महाराज दशरथ आपकी सेवा के वश में हैं।

विशेष : जो ज्योतिषियों ने मंथरा से कहा था कि भरत "भुआल" अर्थात् भूपाल होंगे तात्पर्यतः भूमि का पालन करेंगे और १४ वर्ष पर्यन्त भूमि से पालित होकर भूमि के नीचे गुफा बना कर रहेंगे। भूआल होंगे अर्थात् भूमि ही उनका आलवाल यानी स्थल बन जायेगी। परन्तु मंथरा ने उनका आशय नहीं समझा और वह भुआल शब्द का अर्थ राजा ही समझ बैठी। यहाँ ज्योतिषी झूठे नहीं थे प्रत्युत् झूठी थी मंथरा।

दो०– परउँ कूप तुअ बचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि।।२१।।

भा०– कैकेयी बोलीं, मैं तेरे वचन के आधार पर कुँए में भी गिर सकती हूँ तथा अपने पुत्र भरत और पति महाराज दशरथ जी को छोड़ सकती हूँ। तुम मेरा बहुत बड़ा दुःख देखकर यदि कोई उपाय कह रही हो तो उसे अपने हित के लिए क्यों नहीं करूँगी?

कुबरी करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई।।
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृन बलि पशु जैसे।।

भा०– कुबरी ने कैकेयी को कबुली अर्थात् अपनी बात मानने के लिए वचनबद्ध करके, अपने हृदयरूप पत्थर पर कपटरूप छुरी (चाकू) तेज अर्थात् रगड़ कर तीखी की। रानी कैकेयी अपने निकटवर्ती दुःख को किस प्रकार नहीं देख रही है, जैसे बलि पर चढ़ने वाला पशु कटने के ठीक पहले हरी घास चरता है पर उसके अनन्तर होने वाली अपनी मृत्यु को नहीं समझ पाता।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी।।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं।।

भा०– मंथरा की बात सुनने में कोमल, परन्तु परिणाम में अत्यन्त कठोर अर्थात् भयानक है। मानो मंथरा मधु में घोलकर विष पिला रही है। दासी कहने लगी, स्वामिनी जी! आपको स्मरण है या नहीं, यह कथा आपने एक बार मुझसे कही थी।

दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती।।
सुतहिं राज रामहिं बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।

भा०– देवासुर संग्राम में महाराज दशरथ ने जो दो वरदान आपको दिये थे, धरोहर में पड़े हुए उन्हीं दोनों वरदानों को आज महाराज दशरथ से माँग लीजिये। अपनी तथा मेरी छाती को शीतल कीजिये। प्रथम वरदान से अपने पुत्र श्रीभरत को राज्य और द्वितीय वरदान से श्रीराम को वनवास दे दीजिये। अपनी सभी सौतनों का आनन्द छीन लीजिये।

भूपति राम शपथ जब करई। तब माँगेहु जेहिं बचन न टरई।।
होइ अकाज आजु निशि बीते। बचन मोर प्रिय मानेहु जी ते।।

भा०– जब महाराज श्रीराम की शपथ कर लें तभी वरदान माँगिये, जिससे वे वचन से न मुकर सकें। आज की रात बीत जाने पर अकाज अर्थात् काज की हानि हो जायेगी, क्योंकि कल ही श्रीराम का राजतिलक हो जाने पर कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। इसलिए मेरे वचन अपने हृदय से प्रिय मानो और उस पर क्रियान्वयन करो। अथवा, मेरे वचन प्राण से भी प्रिय मानना, प्राण चले जायें पर अपने निश्चय से नहीं डिगना।

दो०– बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु।।२२।।

भा०– पापिनी मंथरा ने बहुत बड़ा भयंकर आघात करके कैकेयी से फिर कहा, कोपभवन में चली जाइये, सतर्क रह कर काम बनाइये। सहसा विश्वास मत कीजियेगा, सब कुछ सोच–विचार कर कीजियेगा।

कुबरिहिं रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी।।
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कर भयसि अधारा।।
जौ बिधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहि चख पूतरि आली।।
बहुबिधि चेरिहिं आदर देई। कोपभवन गवनी कैकेई।।

भा०– रानी कैकेयी ने कुबरी मंथरा को अपने प्राणों से भी प्रिय समझा। बार–बार मंथरा की विशाल बुद्धि की प्रशंसा की। कैकेयी ने कहा, हे मन्थरे! इस संसार में तेरे समान मेरा कोई भी हितैषी नहीं है। तू बहे जाते के लिए आधार हो गई अर्थात् विपत्ति के सागर में बहती हुई मुझ कैकेयी को तुमने आश्रय देकर किनारे पर लगा लिया। हे सखी! यदि कल विधाता ने मेरा मनोरथ पूर्ण किया तो मैं तुम्हें अपनी आँख की पुतली बना लूँगी। दासी मंथरा को बहुत प्रकार से सम्मान देकर, कैकेयी कोपभवन में चलीं गईं।

बिपति बीज बरषा ऋतु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी।।
पाइ कपट जल अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा।।

भा०– यहाँ विपत्ति ही बीज है और दासी मंथरा ही वर्षा ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि ही भूमि बन गई, उसमें कपट का जल पाकर वह अंकुर जम आया, जिसके छोटे–छोटे दो दल अर्थात् पत्ते के समान बने दोनों वरदान और परिणाम में आनेवाला दुःख ही इसका फल बन गया अर्थात् जैसे वर्षा ऋतु में पृथ्वी पर पड़ा हुआ बीज जल की सहायता से दो दलों के साथ अंकुरित होकर फल उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मंथरा की प्रेरणा से कैकेयी की कुबुद्धि में विपत्ति का वपन हुआ जो दोनों वरदान रूप दलों के साथ अंकुरित होकर कपट–जल की सहायता से ही दुःख रूप फल का परिणामी बन गया।

कोप समाज साजि सब सोई। राज करत निज कुमति बिगोई।।
राउर नगर कोलाहल होई। यह कुचालि कछु जान न कोई।।

भा०– क्रोध के सभी उपकरणों को सजाकर कैकेयी कोपभवन में जाकर सो गईं। राज करते हुए कैकेयी अपनी ही कुबुद्धि के द्वारा नष्ट कर दी गईं। राजभवन और श्रीअवध नगर में कोलाहल हो रहा है कोई भी कैकेयी की यह कुचाल कुछ भी नहीं जान रहा है।

दो०- प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार।।२३।।

भा०– नगर के प्रसन्न नर–नारी सुन्दर मंगलाचार सजा रहे हैं। एक राजद्वार में प्रवेश करते हैं और एक राजद्वार से निकल रहे हैं। महाराज के द्वार पर बहुत भीड़ है।

बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहँ जाहीं।।
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुशल छेम मृदु बानी।।

भा०– भगवान् श्रीराम के बालमित्र श्रीराम के राजतिलक का समाचार सुनकर, हृदय में बहुत प्रसन्न होते हैं और दस–दस, पाँच–पाँच के समूहों में मिलकर श्रीराम के पास जाते हैं। उनका प्रेम पहचान कर, प्रभु श्रीराम उन्हें सम्मानित करते हैं और कोमल वाणी में उनसे कुशलक्षेम पूछते हैं।

फिरहिं भवन प्रभु आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई।।
को रघुबीर सरिस संसारा। शीज सनेह निबाहनिहारा।।

भा०– परस्पर श्रीराम की प्रशंसा करते हुए उनके बालमित्र प्रभु की आज्ञा पाकर अपने घरों को लौटते हैं और कहते हैं कि, संसार में रघुकुल के वीर श्रीराम के समान शील एवं स्नेह का एक साथ निर्वहन करने वाला कौन है?

जेहिं जेहिं जोनि करम बश भ्रमहीं। तहँ तहँ ईश देउ यह हमहीं।।
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू।।

भा०– सभी लोग परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि, हे भगवान्! हम अपने कर्मों के अधीन होकर चौरासी लाख योनियों में से जिस–जिस योनि में जन्म लेकर भ्रमण करें वहाँ–वहाँ आप हमें यही दीजिये कि उन–उन योनियों में हम सेवक रहें और भगवती सीता जी के पति भगवान् श्रीराम हमारे स्वामी बनें रहें। इस सेवक–सेव्यभाव सम्बन्ध का हमारे जीवनपर्यन्त निर्वाह होता रहे अर्थात् हमें मुक्ति नहीं चाहिये। हम तो प्रत्येक जन्म में प्रभु श्रीराम के सेवक ही बने रहना चाहते हैं।

अस अभिलाष नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू।।
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।।

भा०– श्रीअवध नगर के सभी लोगों के मन में इसी प्रकार की अभिलाषा है। उधर कोपभवन में सोयी हुई कैकेयी के हृदय में बहुत जलन हो रही है। बुरी संगति पाकर कौन नहीं नष्ट हो जाता? नीच लोगों के मत में रहनेवाले व्यक्ति के मन में चतुरता नहीं रह जाती अर्थात् नीच व्यक्ति के मंत्रणा से चलने पर लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं।

दो०- साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकयी गेह।
गमन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह।।२४।।

भा०– संध्या के समय संध्यावंदन आदि नित्यकृत्यों से निवृत होकर चक्रवर्ती महाराज दशरथजी, श्रीराम राज्याभिषेक का समाचार सुनाने के लिए आनन्दपूर्वक कैकेयी के भवन में गये। मानो शरीर धारण किये हुए स्नेह ने ही निष्ठुरता अर्थात् कठोरता के निकट प्रस्थान किया हो।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।।

भा०– कैकेयी को कोपभवन में प्रविष्ट हुए सुनकर, महाराज दशरथ जी संकुचित हो गये और कैकेयी के रुष्ट होने पर प्राणाराध्य श्रीराम के दुखित होने के डर से महाराज के चरण आगे नहीं पड़ रहे थे, क्योंकि महाराज की दृष्टि में कैकेयी अत्यन्त रामानुरागिनीं थीं। अत: उनके कुपित होने पर श्रीराम का दु:खी होना सम्भव था, जो महाराज के भय का कारण बना।

सुरपति बसइ बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुक ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
शूल कुलिश असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन शर मारे।।

भा०– यहाँ गोस्वामी जी काकवक्रोक्ति के माध्यम से श्रीरामकथा के सामान्य श्रोताओं को जागरूक करते हुए, महाराज दशरथ पर मिथ्या आरोपित कामुकता का खण्डन करते हुए, उसके समाधान में तीन प्रश्न करते हैं– हे श्रोताओं जिन महाराज दशरथ जी के बाहुबल से इन्द्र अमरावती में सुखपूर्वक निवास करते हैं, जिनके रुख को देखकर ही सभी राजा महाराज की इच्छा का पालन करते हैं, क्या वे चक्रवर्ती महाराज पत्नी का प्रणयकोप सुनकर सूख गये? क्या यहाँ तुम लोग काम का प्रताप और काम का बड़प्पन देख रहे हो? जो चक्रवर्ती महाराज दशरथजी, देवासुर संग्राम में महादेव शिव जी का त्रिशूल, इन्द्र का वज्र और महाकाली की तलवार का प्रहार भी सह चुके थे, उन्हीं परमश्रीरामभक्त श्रीराघव सरकार के पूज्य पिता दशरथ जी को रति के पति कामदेव ने पुष्पों के बाणों से ही मार डाला? अर्थात् नहीं। यहाँ सब कुछ एकमात्र श्रीरामप्रेम के आधार पर ही घटा। महाराज ने कैकेयी को श्रीराम प्रिय जानकर ही उनके सभी कदाचरणों को सहन किया।

सभय नरेश प्रिया पहँ गयऊ। देखि दशा दुख दारुन भयऊ।।
भूमि शयन पट मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना।।
कुमतिहिं कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवात सूच जनु भाबी।।
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी।।

भा०– महाराज दशरथ जी भयभीत होते हुए अपनी प्रिया कैकेयी के पास गये। वे तो उसे श्रीरामभक्ता ही जान रहे थे। उसकी वर्तमान दशा देखकर चक्रवर्ती जी को असहनीय दु:ख हुआ। कैकेयी भूमि पर शयन किये हुई थी। उसने मोटे और पुराने वस्त्र पहन रखे थे और उसने अपने शरीर के आभूषण जहाँ–तहाँ फेंक दिये थे। यह भयंकर वेश धारणकर कुबुद्धि वाली कैकेयी किस प्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो वह कुवेषता कैकेयी के भविष्यत्कालीन वैधव्य की सूचना दे रही थी। कैकेयी के निकट जाकर महाराज ने कोमल वाणी में कहा, हे प्राणप्रिय! अर्थात् मेरे प्राण श्रीराम को अपना परमप्रेमास्पद मानने वाली कैकेयी तुम किस कारण रुठी हुई हो?

छं०: केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं नेवारई।
मानहुँ सरोष भुजंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।।
दोउ बासना रसना दशन बर मरम ठाहर देखई।
तुलसी नृपति भवितब्यता बश काम कौतुक लेखई।।

भा०- हे रानी कैकेयी! तुम किस कारण से रुठी हो, ऐसा कहकर हाथ का स्पर्श करते हुए पति महाराज दशरथ को कैकेयी झटक कर उन्हें दूर कर देती है, मानो क्रोध से युक्त हुई सर्प की पत्नी नागिन भयंकर दृष्टि से महाराज को देख रही है। कैकेयी के हृदय में मंथरा द्वारा उत्पन्न की हुई भरत राज्याभिषेक तथा श्रीराम–वनवास की वासना ही कैकेयी रूप नागिन की दो जिह्वायें हैं और भरत को राज्याभिषेक तथा श्रीराम को वनवास नामक दो वरदान ही उस नागिन के दो दाँत हैं। वह डसने के लिए मर्मस्थान देख रही है कि, कब महाराज शपथ करें और मैं वरदान माँग लूँ। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि, होनहार भावी के वश हुए महाराज दशरथजी, कैकेयी की पूर्वोक्त क्रियाओं को उसका काम–कौतुक समझ रहे हैं। उन्हें अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि, मंथरा ने कैकेयी को श्रीराम–विमुख बना दिया है और वे स्वार्थ के आवेश में अब अपने वात्सल्यभाजन श्रीराघव को शत्रु समझ कर वनवास दे रही हैं।

सो०- बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोपकर।।२५।।

भा०- राजा दशरथ जी बार–बार कह रहे हैं, हे सुमुखी (सुन्दर मुखवाली) ! हे सुलोचनि (सुन्दर नेत्रवाली) ! हे पिकबचनि (कोयल के समान मधुर बोलने वाली) ! हे गजगामिनि (हाथी के सामन चलनेवाली) ! अपने क्रोध का मुझे कारण सुनाओ।

विशेष- यहाँ कैकेयी जी को महाराज द्वारा दिये हुए चारों विशेषण, श्रीरामप्रेम के अभिप्राय से है। महाराज का मानना है कि, बालरूप श्रीराघव को बारम्बार चूमने के कारण कैकयी सुमुखी हैं। राजीवलोचन श्रीराम को पुनः–पुनः निहारने के कारण कैकेयी सुलोचनि हैं। राम–राम कह कर बुलाने के कारण कैकेयी पिकबचनि हैं और बालरूप श्रीराघव को गोद में लेकर झूम–झूम कर चलने के कारण कैकेयी गजगामिनि भी हैं।

अनहित तोर प्रिया केहिं कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।।
कहु केहि रंकहि करहु नरेशू। कहु केहि नृपहिं निकासौं देशू।।

भा०- हे प्रिय कैकेयी! तुम्हारा अहित किसने किया है? कौन ऐसा दो सिरोंवाला है, क्योंकि एक सिरवाला तुम्हारा अहित नहीं कर सकता? किसे यमराज लेना चाहते हैं अर्थात् मेरे द्वारा दण्डित होकर कौन यमलोक जाना चाहता है? बोलो, किस दरिद्र को राजा बना दूँ और किस राजा को देश से निकाल दूँ।

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। कहा कीट बपुरे नर नारी।।
जानसि मोर स्वभाव बरोरू। मन तव आनन चंद्र चकोरू।।

भा०- कैकेयी मैं तुम्हारे शत्रु देवता को भी मार सकता हूँ अर्थात् तुमसे शत्रुता करने वाले उस देवता का भी मैं वध कर सकता हूँ, जो अमृत पीकर अमर हो चुका है, फिर कीड़े–मकोड़ों के समान निरीह मर्त्यलोक के नर–नारियों की क्या बात है? हे बरोरू (रघुवर श्रीराम को गोद में बिठाने के कारण सुन्दर उरू अर्थात् पलथी वाली) कैकेयी! तुम तो मेरा स्वभाव जानती हो। मेरा मन तुम्हारे मुखचन्द्र का चकोर है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र विषयक वात्सल्य–रससुधा तुम्हारे मुखचन्द्र में विराजमान है, उसी को मेरा मन चकोर पीता रहता है।

प्रिया प्रान सुत सरबस मोरे। परिजन प्रजा सकल बश तोरे।।
जौ कछु कहौं कपट करि तोहीं। भामिनि राम शपथ शत मोहीं।।

भा०- हे श्रीरामप्रेमास्पद कैकेयी! मेरे प्राण, पुत्र, सर्वस्व परिवार और प्रजा ये सब तुम्हारे अधीन हैं। यदि मैं तुमसे कुछ भी कपट करके कह रहा हूँ, तो हे सुलक्षणे! मुझे श्रीराम जी की सैकड़ों शपथ है।

बिहँसि माँगु मनभावति बाता। भूषन साजु मनोहर गाता।।
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहु कुबेषू।।

भा०– तुम हँस करके अपनी मनचाही बात मुझसे माँग लो और अपने सुन्दर शरीर पर आभूषण सजाओ तथा घड़ी और कुघड़ी अर्थात् समय और कुसमय का हृदय में विचार करके देखो। हे श्रीराम प्रियमयी कैकयी! इस निन्दित वेश को शीघ्र छोड़ दो।

दो०– यह सुनि मन गुनि शपथ बड़ि, बिहँ सि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फंद।।२६।।

भा०– महाराज का यह वचन सुनकर, मन में बहुत बड़ा श्रीराम–शपथ का विचार करके, मंदबुद्धि वाली कैकेयी हँसकर उठी और वह अपने अंगों में उसी प्रकार आभूषण सजाने लगी, मानो हरिण को देखकर उसे फाँसने के लिए भिलनी जाल का फंदा सजा रही हो।

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी।।
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा।।
रामहिं देउँ कालि जुबराजू। सजहु सुलोचनि मंगल साजू।।

भा०– फिर महाराज ने अपने मन में कैकेयी को सुहृद अर्थात् सुन्दर हृदयवाली मित्र जानकर प्रेम से रोमांचित होकर कोमल और मधुर वाणी में कहा, हे भामिनी! तुम्हारा मनचाहा हो गया। देखो श्रीअवध नगर के घर–घर में आनन्द उत्सव हो रहा है। हे सुन्दर नेत्रोंवाली कैकेयी! कल श्रीराम को युवराज पद दे रहा हूँ। अब तुम मंगल के साज–सजाओ।

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू।।
ऐसेउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई।।

भा०– यह सुनकर कैकेयी का कठोर हृदय भी उसी प्रकार फट उठा, जैसे पका हुआ बरतोरू (बाल टूट जाने पर हुआ फोड़ा) छू जाने पर पीड़ा के साथ फूटता है। ऐसी भयंकर पीड़ा को भी कैकेयी ने हँस कर छिपा लिया और चोर की नारी (चोरी करने वाले की स्त्री) के समान वह प्रकट करके नहीं रो सकीं।

लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई।।
जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू।।

भा०– महाराज दशरथजी, कैकेयी की उस कपट भरी चतुरता को नहीं देख रहे हैं, क्योंकि कैकेयी करोड़ों कुटिल–शिरोमणियों की भी आचार्या मंथरा द्वारा पढ़ाई हुई शिष्या हैं अर्थात् वह साधारण गुरु की विद्यार्थी नहीं हैं। यद्यपि महाराज दशरथ जी नीति में निपुण हैं, परन्तु माता, बहन, पत्नी तथा पुत्री इन चारों मान्यताओं से दूर भोगप्रधान प्राकृतनारी का चरित्र अगाध सागर भी तो है।

कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुख मोरी।।

दो०– माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु।।२७।।

भा०– फिर कपटपूर्ण स्नेह को बढ़ाकर आँखों और मुख को मोड़कर कैकेयी हँसती हुई बोलीं, हे प्रिय! आप माँगो–माँगो ऐसा कहते भर हैं, कभी देते–लेते नहीं हैं। मुझे दो वरदान देने के लिए कहा था, उन्हें पाने में भी मुझे संदेह लग रहा है।

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई। तुमहिं कोहाब परम प्रिय अहई।।
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ।।

भा०– महाराज हँसकर कहते हैं कि, हाँ मैंने रहस्य जान लिया, तुम्हें तो रूठना ही बहुत प्रिय है। वरदानों को धरोहर में रखकर तुमने मुझसे कभी नहीं माँगा और सीधा स्वभाव होने के कारण मुझे दोनों वरदान भूल गये थे।

झूँठेहुँ हमहिं दोष जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू।।
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहिं बरु बचन न जाई।।

भा०– हमें झूठा दोष मत दो, दो के स्थान पर चार क्यों नहीं माँग लेती? सदा से चली आ रही रघुकुल की यही रीति है कि, रघुवंशियों के प्राण चले जाते हैं पर उनका वचन नहीं जाता।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा।।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए।।

भा०– असत्य के समान पापों के समूह भी नहीं हो सकते। क्या करोड़ों छोटी–छोटी गुंजायें (घूमचियाँ) एक पर्वत के समान हो सकती हैं? सभी सुन्दर सत्कर्म सत्यमूलक हैं अर्थात् सभी श्रेष्ठकर्मों का मूल्य सत्य है। यह बात चारों वेदों तथा अठारहों पुराणों में प्रसिद्ध है और स्वायम्भुव मनु ने भी अपनी मनुस्मृति में गाया है।

तेहि पर राम शपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई।।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली।।

भा०– इस पर भी मेरे द्वारा श्रीराम की शपथ कर ली गई है। श्रीरघुनाथ तो मेरे पुण्यों और मेरे स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार, महाराज से अपनी बात दृढ़ कराके दुष्टबुद्धि वाली कैकेयी हँसकर बोली, मानो निकृष्ट मंत्रणारूप दुष्टपक्षी बाज की टोपी खोल दी हो।

दो०– भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहंग समाज।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाज।।२८।।

भा०– महाराज दशरथ जी के मनोरथरूप सुन्दर वन में निवास करनेवाले सुखरूप सुन्दर पक्षियों के समाज पर कैकेयी भिलनी के समान अपने भयंकर वचनरूप बाज पक्षी को छोड़ना चाहती है।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहिं टीका।।
माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।।
तापस बेष बिशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी।।

भा०– कैकेयी बोली, हे प्राणप्रिय चक्रवर्ती जी महाराज! मेरे मन को भानेवाला वरदान सुनिये। एक वरदान भरत का राज्याभिषेक दे दीजिये। हे नाथ! दूसरा वरदान मैं हाथ जोड़कर माँग रही हूँ, मेरे मनोरथ पूर्ण कीजिये, श्री राम तपस्वी का वेश धारण करके एक विशिष्ट शेष अर्थात् सेवक को साथ लेकर और एक उत्कृष्ट दासी अपनी अनन्य सेविका को सहचरी बनाकर चौदह वर्षों के लिए वनवासी बनें।

विशेष– यहाँ विशेष और उदासी दोनों ही शब्द सारगर्भित है। संस्कृत में शेष शब्द शेषनाग अवशिष्ट (काटने से बचा हुआ) और परिकर का वाचक है। यहाँ तृतीय अर्थ ही लिया गया है। *विशिष्टः शेषः सेवकः यस्य सः*

विशेष:। तथा उत्कृष्टा दासी यस्य स: उदासी। यहाँ उकार उत्कृष्ट का वाचक है, इस प्रकार कैकेयी के मुख से स्वयं ही श्रीराम–वनवास के साथ सरस्वती जी ने श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मण के वनवास की घोषणा करा दी।

सुनि तिय बचन भूप हिय शोकू। शशि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।।

भा०– स्त्री अर्थात् साधारण नारी की भूमिका में रहनेवाली कैकेयी के वचन सुनकर महाराज दशरथ जी के हृदय में अत्यन्त शोक हुआ, मानो चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श करते ही चकवा विकल हो गया हो। महाराज भय से सहम गये अर्थात् किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उनके मुख से कुछ भी कहा नहीं जा रहा था, मानो लवा अर्थात् बटेर पक्षी के समूह पर बाज पक्षी झपट पड़ा हो। मनुष्यों के पालक महाराज दशरथ विकृत वर्णवाले हो गये अर्थात् उनका आकार शोक के विकार से शोभाहीन हो गया। मानो आकाश से गिरी हुई बिजली ने ताल वृक्ष को नष्ट कर दिया हो।

माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच लाग जनु सोचन।।
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।।
अवध उजारि कीन्ह कैकेई। दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई।।

भा०– महाराज दशरथ जी अपने मस्तक पर हाथ रखकर दोनों आँखे मूँदकर उसी प्रकार चिन्ता करने लगे, मानो, शोक ही शरीर धारण करके शोक कर रहा हो। चक्रवर्ती जी ने मन में ही कहा, मानो मेरे मनोरथरूप कल्पवृक्ष के पुष्प में फल लगते ही, हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दिया हो। कैकेयी ने अवध को उजाड़ कर रख दिया और उसने अचल विपत्ति की नींव डाल दी।

दो०– कवने अवसर का भयउ, गयेउ नारि बिश्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहिं अबिद्या नास।।२९।।

भा०– अरे! किस अवसर में क्या हो गया? पत्नी के ऊपर से मेरा विश्वास उठ गया। कैकेयी ने मुझे उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे प्रयत्नशील योगी को योग की सिद्धि रूप फल के समय तम, मोह, महामोह, तामिश्र और अंधतामिश्र नामक पाँच पर्वों से युक्त अविद्या नष्ट कर देती है। अथवा किस समय क्या उपस्थित हो गया? अवसर था श्रीराम के राज्याभिषेक का और उपस्थित हो गया श्रीराम का वनवास, मुझ नर की सहचारिणीं नारी (पत्नी) के विश्वास से मैं नष्ट हो गया, जैसे योगी को योग की सिद्धि रूप फल के समय पर अविद्या नष्ट कर देती है।

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा।।
भरत कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।।

भा०– महाराज दशरथ जी इस प्रकार से मन ही मन खीझ कर पश्चाततताप करने लगे। उनकी यह व्याकुल चेष्टा देखकर कुमति अर्थात् अवधभूमि की सत्ता पर बुद्धि रखनेवाली कैकेयी मन में कुपित हो उठीं। कैकेयी बोलीं, हे महाराज! क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? क्या आप उन्हें क्रय करके ले आये हैं तथा क्या मुझ को आप किसी बाजार से क्रय कर लाये हैं? क्योंकि यदि मैं आप की परिणीता पत्नी हूँ और भरत आप द्वारा हविष्यान्न की विधि से गर्भाधान क्रिया द्वारा मुझसे जन्मे हैं तो उनका राज्य पर अधिकार बनता है।

विशेष- कुमति का 'कु' शब्द संस्कृत में पृथ्वी का भी वाचक है और पृथ्वी का सम्बन्ध सत्ता से है। इस समय कैकेयी की बुद्धि पृथ्वी के राज्य-सुखभोग में केन्द्रित है, इसलिए गोस्वामी जी ने उन्हें कुमति कहा "***कौ पृथिव्यां मतिः बुद्धिः यस्या सा कुमतिः।***"

जो सुनि शर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचन सँभारे।।
देहु उतर अनुकरहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं।।

भा०- जो सुनकर आपको बाण जैसे लगे, आप सम्भाल कर वचन क्यों नहीं बोलते हैं, महाराज आप उत्तर दीजिये। मुझे अनुकूलता से वरदान प्रदान कर रहे हैं की नहीं, क्योंकि आप रघुकुल में सत्यप्रतिज्ञ हैं।

देन कहेहु अब जनि बर देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू।।
सत्य सराहि कहेहू बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना।।

भा०- आपने वरदान देने के लिए कहा था, अब मत दीजिये। सत्य छोड़ दीजिये, जगत् में अपयश लीजिये। आपने, अपने सत्य की प्रशंसा करके मुझे वरदान देने के लिए कहा था। आप जानते थे कि, चबैना अर्थात् दाँत से चबाकर खाने वाला भूना हुआ चना तथा मक्के का लावा कैकेयी माँग लेगी।

शिबि दधीचि बलि जो कछु भाखा। तनु धन तजेउ बचन पन राखा।।
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई।।

भा०- महाराज शिवि, महर्षि दधीचि, दैत्यराज बलि ने जो कुछ देने के लिए प्रतिज्ञा करके कहा, उन्होंने अपना शरीर और धन छोड़ा परन्तु अपने वचन और प्रतिज्ञा का पालन किया। कैकेयी अत्यन्त कटुवचन कह रही है, मानो वह जले हुए पर नमक छिड़क रही है।

दो०- धरम धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय।।३०।।

भा०- धर्म की धूरी को धारण करने वाले महाराज दशरथ ने धैर्य धारण करके आँखें खोलीं। उन्होंने सिर पीट कर लम्बा श्वास लिया और बोले, अरे कैकेयी ने तो मुझे बुरे स्थान पर तलवार मारी है।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी।।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई।।
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवन लेइहि मोरा।।

भा०- महाराज ने अपने सन्मुख भयंकर क्रोध में जलती हुई कैकेयी को देखा। मानो म्यान से निकली हुई क्रोध की नंगी तलवार हो। कैकेयी की कुबुद्धि जिसकी मुठिया थी और निष्ठुरता ही जिसकी तेज धार थी तथा जो मंथरा रूप सान पर बनाकर रखी गई थी। अथवा, मंथरा ने जिस पर सान बनाकर रखी अर्थात् अपने प्रपंच से उसकी धार और नुकिली कर दी। महाराज ने देखा यह तलवार तो बहुत भयंकर और कठोर है, क्या यह सत्य ही मेरा जीवन ले लेगी?

बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती।।
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाती।।

भा०- महाराज अपनी छाती को कठिन करके कैकेयी को भानेवाली विनयपूर्ण वाणी बोले, हे प्रिये रामानुरागिणीं! हे भीर शोभावाली कैकेयी! इस प्रकार विश्वास और प्रेम की हत्या करके कुत्सित विचार वाले वचन क्यों कह रही हो?

मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि शङ्कर साखी।।
अवसि दूत मैं पठइब प्राता। ऐहैं बेगि सुनत दोउ भ्राता।।
सुदिन सोधि सब साज सजाई। देउँ भरत कहँ राज बजाई।।

भा०– मैं शिव जी को साक्षी करके सत्य कह रहा हूँ कि, भरत और श्रीराम मेरे दो बायें–दाहिने नेत्र हैं। मैं कल प्रातःकाल दूतों को अवश्य भेजूँगा। मेरा संदेश सुनते ही दोनों भाई भरत–शत्रुघ्न ननिहाल से शीघ्र श्रीअवध आ जायेंगे। सुन्दर मुहूर्त का शोधन करके राज्याभिषेक के सभी साज सजाकर डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा।

दो०– लोभ न रामहिं राज कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृप नीति।।३१।।

भा०– श्रीराम को राज्य का लोभ नहीं है, उन्हें श्रीभरत पर बहुत प्रेम है, परन्तु मैं ही हृदय में बड़े–छोटे का विचार करके राजनीति करता रहा, अर्थात् राजनीति के आधार पर श्रीभरत के बड़े भाई श्रीराम को युवराज पद देने का विचार करता रहा।

रामशपथ शत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ।।
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूँछे। तेहि ते परेउ मनोरथ छूँछे।।
रिसि परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू।।

भा०– मैं शुद्धभाव से कह रहा हूँ मुझे श्रीराम की सैकड़ों शपथ है कि, मुझे कभी भी, कुछ भी श्रीराम की माता कौसल्या ने नहीं कहा। मैंने तुझसे पूछे बिना सब कुछ किया, इसीलिए तो मेरे मनोरथ छूँछे अर्थात् रिक्त पड़ गये, उनका कोई फल नहीं मिला। कैकेयी! क्रोध छोड़ दो अब मांगलिक साज–सजाओ। कुछ दिन बीतने पर भरत युवराज बन जायेंगे।

एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा।।
अजहूँ हृदय दहत तेहि आँचा। रिसि परिहास कि साँचेहुँ साँचा।।

भा०– एक ही बात से मुझे बहुत कष्ट की अनुभूति हुई है। तुमने दूसरा वरदान सामंजस्यहीन अर्थात् असामंजस्यपूर्ण माँगा है, क्योंकि श्रीभरत के राज्य से श्रीराम के वनवास की कोई संगति नहीं बैठती। अब भी उसी ताप से मेरा हृदय जल रहा है। यह क्रोध परिहास का है या सत्य ही सत्य है अर्थात् यह अर्द्धसत्य तो नहीं है?

कहु तजि रोष राम अपराधू। सब कोउ कहइ राम सुठि साधू।।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू।।
जासु स्वभाव अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।।

भा०– तुम क्रोध छोड़कर श्रीराम का अपराध कहो, क्योंकि सभी लोग कहते हैं कि, श्रीराम सुठि अर्थात् सुन्दर और साधु हैं अर्थात् उनमें सम्पूर्णतया साधुता विराजमान है। तुम भी उनकी सराहना करती थी और स्नेह करती थी। अभी श्रीराम के विरुद्ध यह वचन सुनकर मुझे संदेह हो गया। जिन श्रीराम का स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल लगता है, वे श्रीराघव अपनी माँ के प्रतिकूल आचरण कैसे करेंगे?

दो०– प्रिया हास रिसि परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेक।
जेहिं देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेक।।३२।।

भा०- हे श्रीराम–प्रेमास्पद कैकेयी! यह परिहास का क्रोध छोड़ो विवेक से विचार करके वरदान माँगो, जिससे मैं अब भरत का राज्याभिषेक नेत्र भर देख सकूँ।

* मासपारायण, ग्यारहवाँ विश्राम *

जियइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जियइ दुख दीना।।
कहउँ स्वभाव न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं।।
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवन राम दरस आधीना।।

भा०- हे कैकेयी! जल से रहित मछली भले जी ले, कदाचित् मणि के बिना दुःख से दीन अर्थात् अभावग्रस्त सर्प भले जी सके, परन्तु मैं अपना वास्तविक भाव कहता हूँ, मेरे मन में कोई छल नहीं है। मेरा जीवन श्रीराम के बिना नहीं रह सकता। अर्थात् मछली और सर्प तिर्यगयोनि होने के कारण मुझसे अधिक संवेदनशील कैसे हो सकते हैं। उनके प्रेमास्पद अचिद्वर्ग के जड़ पदार्थ हैं, किन्तु मेरे प्रेमास्पद प्रभु चिद्–अचिद् विशिष्ट अद्वैततत्त्व हैं। हे चतुर अनुरागिणी कैकेयी! समझकर देखो, मेरा जीवन श्रीराम के दर्शन के अधीन है।

सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई।।
कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।।

भा०- दशरथ जी के कोमल वचन सुनकर कुत्सितबुद्धि वाली कैकेयी मन में क्रोध से जली जा रही है, मानो अग्नि में घी की आहुति पड़ रही हो। कैकेयी कहने लगी, महाराज! क्यों न आप करोड़ों उपाय कर डालें, पर यहाँ आपकी माया नहीं लगेगी अर्थात् मैं आपके छल से प्रभावित नहीं होऊँगी।

देहु कि लेहु अजस करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं।।
राम साधु तुम साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने।।
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फल उनहिं देउँ करि साका।।

भा०- आप वरदान दीजिये अथवा (नहीं कहकर) संसार में अपयश लीजिये। मुझे बहुत प्रपंच अच्छे नहीं लगते। श्रीराम साधु हैं और आप चतुर साधु हैं। श्रीराम की माता कौसल्या भली हैं, अब यह तथ्य सभी लोग पहचान गये हैं। कौसल्या ने जिस प्रकार मेरा भला देखा अर्थात् निश्चित किया, मैं उन्हें सब्जी के भाव से उसी प्रकार का फल दूँगी अर्थात् जैसे धन के ही अनुपात में सब्जी मिला करती है, उसी प्रकार कौसल्या के कार्य के अनुपात में ही उन्हें फल मिलेगा।

दो०- होत प्रात मुनिबेष धरि, जौ न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिय मन माहिं।।३३।।

भा०- हे राजन्! अपने मन में समझ लीजिये कि, यदि कल प्रातःकाल होते ही मुनिवेश धारण करके श्रीराम वन को नहीं चले जाते तो, मेरा मरण और आप का अपयश निश्चित है।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।।
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।।
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा।।
ढ़ाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।।

भा०- ऐसा कहकर कुटिल हृदय वाली कैकेयी जो पृथ्वी पर लेटी थी उठकर खड़ीं हो गई, मानो क्रोध की नदी ही बढ़ गई हो। वह क्रोध रूप नदी पाप रूप पर्वत से प्रकट हुई, जो क्रोध के जल से भरी थी और देखी नहीं जा रही थी। दोनों वरदान ही उसके दोनो किनारे थे और कठिन हठ ही उस नदी की धारा थी। कुबरी मंथरा के वचनों का प्रचार ही उस क्रोध नदी की घोर भंवर थी। वह क्रोध नदी महाराज दशरथरूप वृक्ष की जड़ को ढहाती हुई विपत्ति रूप समुद्र के सम्मुख चल पड़ी।

लखी नरेश बात सब साँची। तिय मिस मीचु शीष पर नाची।।
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी।।

भा०- राजा ने देखा की इसकी सभी बातें सत्य हैं। स्त्री के बहाने मेरे सिर पर मृत्यु नाच रही है। उन्होंने चरण पकड़कर विनय करके कैकेयी को बैठाया और कहा, कैकेयी! सूर्यकुल को काटने के लिए कुल्हाड़ी मत बन जाओ।

माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरह जनि मारसि मोही।।
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती।।

भा०- कैकेयी मस्तक माँग लो तुझे अभी दे दूँ। श्रीराम के विरह में मुझे मत मार डालो। जिस किसी प्रकार से श्रीराम को वन जाने से रोक लो, नहीं तो जीवन भर छाती जलेगी।

दो०- देखी ब्याधि असाध नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ।।३४।।

भा०- महाराज दशरथ ने जब ब्याधि को असाध्य देखा अर्थात् जब कैकेयी को किसी भी प्रकार से मानते नहीं देखा, तब अत्यन्त व्याकुल वचनों से राम–राम रघुनाथ शब्द का उच्चारण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

ब्याकुल राउ शिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।।
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी।।

भा०- महाराज व्याकुल हो गये, उनके सभी अंग शिथिल (ढीले) पड़ गये, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को तोड़कर गिरा दिया हो। राजा का कंठ सूख गया। मुख से वाणी नहीं निकलती, जैसे पानी के बिना पुराना मछली दीन अर्थात् अभाव से युक्त हो गया हो।

पुनि कह कटु कठोर कैकेयी। मनहुँ घाय महँ माहुर देई।।
जौ अंतहुँ अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु तुम केहिं बल कहेऊ।।

भा०- फिर कठोर कैकेयी अत्यन्त कड़वे कठोर वचन कहने लगी, मानों वह घाव में विष दे रही थी। यदि अन्त में आप को यही करना था, तो प्रारम्भ में किस बल से वरदान माँगो–वरदान माँगो कहा था।

दुइ कि होइ एक समय भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।।
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि छेम कुशल रौताई।।

भा०- हे महाराज! ठहाका लगाकर हँसना और गाल फुलाना, ये परस्पर विरोधी दोनों क्रियायें क्या एक साथ हो सकती है अर्थात् ठहाके लगाकर हँसने वाला व्यक्ति क्या गाल को फुला सकता है? नहीं, क्योंकि ठहाके में ही वह वायु निकल गया होता है, जिसके द्वारा गाल फुलाया जाता है। लोगों के सामने दानी कहलाना और कृपणता

करना क्या ऐसा सम्भव है? रावत अर्थात् शूरवीर बनकर युद्ध भी करना और शरीर का कुशल तथा क्षेम चाहना कैसे सम्भव है?

छाड़हु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।।
तनु तिय तनय धाम धन धरनी। सत्यसंध कहँ तृन सम बरनी।।

भा०- या तो वचन छोड़िये अथवा, धैर्य धारण कीजिये। सामान्य बलहीन ग्रामीण नारी की भाँति करुणा मत कीजिये। सत्यप्रतिज्ञ के लिए शरीर, स्त्री, पुत्र, भवन, धन और पृथ्वी, ये तृण के समान कहे गये हैं अर्थात् सत्यप्रतिज्ञ व्यक्ति इन्हें तिनके के समान छोड़ देता है।

दो०- मरम बचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लागेउ तोहि पिशाच जिमि, काल कहावत मोर।।३५।।

भा०- कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर चक्रवर्ती जी ने कहा, तेरा कुछ भी दोष नहीं है, मेरा काल ही तुम्हें पिशाच जैसे लग गया है और वही तुमसे सब कुछ कहला रहा है।

चहत न भरत भूपतहिं भोरे। बिधिबश कुमति बसी उर तोरे।।
सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू।।

भा०- भरत भूल कर भी भूपता अर्थात् राजपद नहीं चाहते हैं। दुर्भाग्यवश तुम्हारे हृदय में कुबुद्धि निवास करने लगी है। वह सब मेरे पाप का परिणाम है, जिससे अनुचित स्थान पर और अनुचित अवसर पर विधाता प्रतिकूल हो गये हैं।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई।।
करिहैं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई।।
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ।।
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई।।
जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी।।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी।।

भा०- सम्पूर्ण गुणों के आश्रय श्रीराम की प्रभुता से अयोध्या फिर सुहावनी होकर सुन्दर वास के साथ बस जायेगी। सभी तीनों भाई श्रीराम की सेवा करेंगे। तीनों लोक में श्रीराम की बड़ाई होगी, परन्तु तुम्हारा कलंक और मेरा पश्चात ताप ये दोनों हम दोनों के मरने पर भी नहीं मिटेंगे और कभी भी नहीं जायेंगे। अब तुम्हें जो अच्छा लगे वही करो। तुम अपना मुख छिपाकर मेरी आँखों से ओझल होकर बैठो। मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि, जब तक मैं जीवित रहूँ तब तक मुझसे फिर कुछ मत कहना। हे अभागिनी कैकेयी! तू फिर अन्त में पछतायेगी, क्योंकि सामान्य ताँत के लिए तू गाय को मार रही है। अथवा, वचनरूप रस्सी से बँधे हुए गाय की हत्या कर रही है। अथवा, सिंह के बच्चे के लिए गाय का वध कर रही है, जबकि सिंह अपने ही द्वारा मारे हुए पशु का माँस खाता है, दूसरे के द्वारा किये हुए शिकार का माँस नहीं खाता।

दो०- परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदान।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसान।।३६।।

भा०- महाराज दशरथ करोड़ों प्रकार से कहकर (समझाकर) पृथ्वी पर पड़ गये और कहने लगे, कैकेयी अयोध्या का सर्वनाश क्यों कर रही हो? परन्तु कपट में चतुर कैकेयी कुछ भी नहीं कहती अर्थात् महाराज के किसी भी वाक्य का उत्तर नहीं दे रही है। मानो, श्मशान में जगती हुई प्रेतमंत्र की सिद्धि कर रही हो।

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बिहालू।।
हृदय मनाव भोर जनि होई। रामहिं जाइ कहै जनि कोई।।

भा०- महाराज व्याकुल होकर राम–राम रट रहे हैं। मानो पंख के बिना पक्षी विकल हो रहा हो। चक्रवर्ती जी अपने हृदय में सूर्यनारायण को मना रहे हैं, हे भगवान्! आज प्रातःकाल नहीं हो और कोई श्रीराम को वन जाने के लिए न कहे।

उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुरु। अवध बिलोकि शूल होइहि उरु।।
भूप प्रीति कैकयि निठुराई। उभय अवधि बिधि रची बनाई।।

भा०- महाराज दशरथ जी कह रहे हैं, हे रघुकुल के श्रेष्ठ (रघुवंश के प्रवर्तक) सूर्यनारायण! आप अपना उदय मत प्रस्तुत कीजिये अर्थात् उदित नहीं होइये, क्योंकि आप का सूर्योदय देखकर अयोध्या में अत्यन्त विषाद हो जायेगा। महाराज की प्रीति और कैकेयी की निष्ठुरता इन दोनों की ही सीमा विधाता ने बनाकर रची है अर्थात् प्रीति की सीमा हैं, महाराज दशरथ और निष्ठुरता की सीमा है कैकेयी।

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु शंख धुनि द्वारा।।
पढ़हि भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक।।
मंगल सकल सोहाहिं न कैसे। सहगामिनिहिं बिभूषन जैसे।।
तेहिं निशि नींद परी नहिं काहू। रामदरस लालसा उछाहू।।

भा०- महाराज के विलाप करते हुए प्रातःकाल हो गया। राजद्वार पर वीणा, वंशी और शंख की ध्वनि होने लगी। बंदीजन विरुदावलि पढ़ने लगे, गायक अर्थात् मागध महाराज के गुणगान गाने लगे, जिसे सुनते ही राजा के हृदय में बाण जैसे चुभने लगे थे। सभी मंगल महाराज दशरथ की पुरी के लिए इसी प्रकार नहीं शोभित हो रहे है जैसे पति के साथ जानेवाली साध्वी अनुरागिणीं को आभूषण नहीं भाते क्योंकि पतिव्रता के लिए पति ही परम आभूषण होता है और पतिप्रेम ही उसका श्रंगार तात्पर्यतः थोड़ी ही देर में प्रभु श्रीराम वन को जायेंगे और अवधपुरी सहगामिनी बनकर प्रभु के साथ वन को ही चली जायेगी। अवध तहाँ जह राम निवासू। श्रीराम के दर्शनों की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी भी अयोध्यावासी को नींद नहीं आई।

विशेष- यहाँ सहगामिनी शब्द पति के साथ चलने वाली महिला के लिए प्रयुक्त हुआ है। *सः गच्छति या सा सहगामिनी*

दो०- द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारन कवन बिसेषि।।३७।।

भा०- सेवकों और मंत्रियों की भीड़ राजद्वार पर होने लगी। वे सूर्यनारायण को उदित होते देखकर कहने लगे कि, श्रीअयोध्यापति महाराज अभी भी नहीं जगे, यहाँ कौन ऐसा विशेष कारण है?

पछिले पहर भूप नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरज लागा।।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई।।

भा०– महाराज निरन्तर पिछले प्रहर अर्थात् चतुर्थ प्रहर में ही जग जाते हैं। आज हमें बहुत बड़ा आश्चर्य लग रहा है। सुमंत्र! जाओ और महाराज को जगाओ। राजाज्ञा पाकर श्रीराम राज्याभिषेक का कार्य प्रारम्भ किया जाये।

गए सुमंत्र तब राउर माहीं। देखि भयानक जात डेराहीं।।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा।।

भा०– तब सुमंत्र जी राजभवन में गये, उसे भयंकर देखकर सुमंत्र जाने में डर रहे थे, मानो राजभवन दौड़कर खा रहा था। वह देखा नहीं जा रहा था, मानो वहाँ पर विपत्ति और दुःख का निवास हो चुका था।

पूँछे कोउ न उत्तर देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई।।
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई।।

भा०– पूछने पर कोई उत्तर नहीं दे रहा था। जिस कोपभवन में महाराज दशरथ और कैकेयी थे, सुमंत्र वहाँ गये। "जय जीव" (आप की जय हो और आप जीवित रहें) कहकर मस्तक नवाकर सुमंत्र जी बैठ गये। महाराज की करुण दशा देखकर सुमंत्र जी सूख गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ।।
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली अशुभ भरी शुभ छूछी।।

भा०– सुमंत्र जी ने देखा महाराज शोक से व्याकुल और विकृत आकार होकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं, मानो कमल ने अपनी जड़ छोड़ दी है। मंत्री सुमंत्र जी अत्यन्त भयभीत हैं, वे पूछ नहीं सक रहे हैं। फिर कल्याण से रिक्त और अशुभ से भरी हुई कैकेयी बोली–

दो०- परी न राजहिं नीद निशि, हेतु जान जगदीश।
राम राम रटि भोर किय, कहइ न मरम महीश।।३८।।

भा०– आज महाराज को रात में नींद नहीं आई, इसका कारण तो भगवान् ही जाने। महाराज ने राम–राम रट कर सबेरा कर दिया अर्थात् सारी रात राम–राम का रट करते रहे। वे कोई रहस्य नहीं बता रहे हैं।

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई।।
चलेउ सुमंत्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी।।

भा०– श्रीराम को शीघ्र बुला ले आओ, फिर आकर समाचार पूछ लेना। महाराज का रुख जानकर सुमंत्रजी, श्रीराम को बुलाने चल पड़े। उन्होंने देख लिया की रानी ने कुछ बुरा कार्य कर दिया है।

सोच बिकल मग परइ न पाँऊ। रामहिं बोलि कहिहिं का राऊ।।
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूँछिहिं सकल देखि मन मारे।।

भा०– शोक से विकल होने के कारण सुमंत्र जी के चरण मार्ग में नहीं पड़ रहे हैं। वे सोचने लगे कि, श्रीराम को बुलाकर महाराज क्या कहेंगे? हृदय में धैर्य धारण करके सुमंत्र जी भवन से द्वार पर आ गये। सभी लोग सुमंत्र जी को मन मारे हुए देखकर पूछने लगे–

समाधान करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका।।
राम सुमंत्रहिं आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा।।
निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहिं चलेउ लिवाई।।
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं।।

भा०– सुमंत्र जी सबका समाधान करके, जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्रीराम थे, वहाँ गये। श्रीराम ने सुमंत्र जी को आते देखा, उनका आदर किया और उन्हें पिता के समान समझा। श्रीराम का मुख देखकर महाराज की राजाज्ञा कहकर रघुकुल के दीपक प्रभु श्रीराम को अपने संग लिवाकर, सुमंत्र राजभवन की ओर चल पड़े। श्रीराम, कुभाँति अर्थात् बिना कोई अलंकार धारण किये, चरण में बिना पदत्राण के अस्त–व्यस्त मुद्रा में मंत्री के साथ जा रहे हैं, यह देखकर जहाँ–तहाँ लोग बिलखने लगे।

दो०– जाइ दीख रघुबंशमनि, नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहिं, मनहुँ बृद्ध गजराज।।३९।।
सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुजंगू।।
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई।।

भा०– रघुवंश के मणि श्रीराम ने जाकर मनुष्यों के स्वामी राजा दशरथ जी का ऐसा अनुचित साज देखा अर्थात् उन्हें अस्त–व्यस्त पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, मानो सिंहनी को देखकर वृद्ध गजराज (हाथियों का राजा) पृथ्वी पर गिर पड़ा हो। महाराज के ओष्ठ सूख रहे हैं, उनके सभी अंग जल रहे हैं, मानो मणि से हीन सर्प दीन–दुःखी होकर पड़ा हो। महाराज के समीप क्रुद्ध कैकेयी को भगवान् श्रीराम ने ऐसे देखा, मानो वह महाराज की मृत्यु की घड़ी गिन रही हो। अथवा, मानो साक्षात् मृत्यु ही महाराज के महाप्रस्थान की घड़ी गिन रही हो।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ।।
तदपि धीर धरि समय बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी।।
मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिय जतन जेहिं होइ निवारन।।
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम पर बहुत सनेहू।।
देन कहेनि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना।।
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू।।

भा०– भगवान् श्रीराम का स्वभाव करुणा से युक्त और कोमल है। उन्होंने प्रथम बार यह दुःख देखा है, इसके पूर्व कहीं सुना भी नहीं था। फिर भी धैर्य धारण करके समय का विचार करके श्रीराम ने माता कैकेयी से मधुर वचन में पूछा, हे माँ! मुझ से पिताश्री के दुःख का कारण कहो। वही यत्न किया जाय जिससे उनके कष्ट का निवारण हो सके। कैकेयी बोलीं, हे श्रीराम! ये सब कारण सुनिये, महाराज के सम्पूर्ण दुःख का कारण यह है कि, महाराज को आप पर बहुत स्नेह है। महाराज ने मुझे दो वरदान देने के लिए कहा था, मैंने उनसे वही माँगा जो कुछ मुझे अच्छा लगा। उसे सुनकर महाराज के हृदय में शोक हो गया, क्योंकि वे आपका संकोच नहीं छोड़ सकते।

दो०– सुत सनेह इत बचन उत, संकट परेउ नरेश।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेश।।४०।।

भा०– इधर पुत्र का प्रेम और उधर वचन, महाराज इन दोनों के संकट में पड़ गये हैं। यदि तुम समर्थ हो तो आज्ञा को सिर पर धारण करो और अपने पिताश्री का कठिन क्लेश मिटा दो।

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी।।
जीभ कमान बचन शर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना।।
जनु कठोरपन धरे शरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू।।
सब प्रसंग रघुपतिहिं सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई।।

भा०– कैकेयी निःसंकोच बैठ कर कठोर वाणी कह रही है, उसे सुनते ही कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। कैकेयी की जीभ धनुष के समान है और उससे निकलते हुए वचन, मानो अनेक बाण हैं। महाराज दशरथ कोमल लक्ष्य के समान हैं, मानो कठोरत्व (कठोरपन) ही श्रेष्ठवीर का शरीर धारण करके धनुर्विद्या सीख रहा है। रघुकुल के स्वामी श्रीराम को सम्पूर्ण प्रसंग सुनाकर, मानो शरीर धारण की हुई निष्ठुरता ही बैठ गई है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू।।
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन।।

भा०– स्वाभाविक आनन्द के खजाने, सूर्यकुल के सूर्य भगवान् श्रीराम मन में मुस्कुरा कर सभी दोषों से रहित कोमल और मधुर वाणी के विभूषण जैसे वचन बोले–

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

भा०– हे माँ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता–माता के आदेश में अनुराग रखता है। हे माँ! माता–पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र सम्पूर्ण संसार में बहुत दुर्लभ है।

दो०- मुनिगन मिलन बिशेष बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर।।४१।।

भा०– हे माँ! मुनियों तथा मेरे लिए दिन गिनने वाले कोल, किरात, वानर, भालू आदि मेरे गणों के मिलन से वन में विशेष रूप से मेरा सब प्रकार का हित होगा। उसमें भी पिताश्री की आज्ञा और फिर आप की सम्मति है।

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा।।

भा०– मेरे प्राणों से प्रिय भरत राज्य पा जायेंगे। आज विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल हैं। यदि इस प्रकार के कार्य में भी मैं वन नहीं जाता हूँ, तो मूर्खों के समाज में मेरी प्रथम गिनती होगी।

सेवहिं अरँड कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिष माँगी।।
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं।।

भा०– जो लोग कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंड़–वृक्ष की सेवा करते हैं, जो अमृत को छोड़कर विष माँग लेते हैं, वे भी ऐसा समय पाकर नहीं चूकते। हे माँ! मन में विचार करके देखिये, क्या मैं पूर्वोक्त प्रकार के मूर्खों से अधिक मूर्ख हूँ?

अंब एक दुख मोहि बिशेषी। निपट बिकल नरनायक देखी।।
थोरिहिं बात पितहिं दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी।।

भा०– हे माँ! महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर मुझे यह एक विशेष दुःख है। थोड़ी बात से पिताश्री को बहुत बड़ा दुःख हुआ, हे माँ! मुझे विश्वास नहीं हो रहा है।

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू।।
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि शपथ तोहि कहु सतिभाऊ।।

भा०- महाराज धैर्यवान और गुणों के अगाध सागर हैं। मुझसे कुछ बड़ा अपराध हो गया है, जिससे महाराज मुझे कुछ भी नहीं कह रहे हैं अर्थात् कुछ भी आदेश नहीं दे रहे हैं। तुम्हें मेरी शपथ मुझसे इसका सत्यभाव कहो अर्थात् वास्तविक रहस्य बताओ।

दो०- सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिल समान।।४२।।

भा०- स्वभाव से सरल रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम के वचन को कुबुद्धि कैकेयी ने कुटिल वचन करके जाना। जोंक जल में टेढ़ी गति से चलती है, यद्यपि जल समान होता है, ठीक उसी प्रकार जल के समान श्रीरघुनाथ का स्वभाव है और जोंक के समान कैकेयी की टेढ़ी बुद्धि है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेह जनाई।।
शपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना।।

भा०- श्रीराम जी का रुख अर्थात् रुझान देखकर रानी कैकेयी प्रसन्न हुई और कृत्रिम स्नेह प्रकट करती बोली, तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध मैंने और कुछ दूसरा हेतु नहीं समझा है।

तुम अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता।।
राम सत्य सब जो कछु कहहु। तुम पितु मातु बचन रत अहहु।।

भा०- हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो वह सब सत्य है। तुम माता-पिता के वचन पालन में तत्पर हो।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जेहिं अजस न होई।।
तुम सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे।।

भा०- हे राघव! मैं बलिहारी जाऊँ, तुम अपने पिताश्री को समझाकर वही कहो जिससे, चौथेपन अर्थात् वृद्धावस्था में उनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने महाराज को तुम जैसा आज्ञाकारी पुत्र प्रदान किया, उस पुण्य का निरादर करना चक्रवर्ती जी के लिए उचित नहीं है।

लागहिं कुमुख बचन शुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे।।
रामहिं मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए।।

भा०- कैकेयी के निन्दित मुख में वचन कैसे शुभ लगते हैं जैसे, मगध में गया, विष्णुपद, फल्गु आदि तीर्थ कल्याणकारी हैं। श्रीराम को माता कैकेयी के सभी वचन भाये, जैसे गंगा जी को प्राप्त करके, सभी प्रकार का अपवित्र प्रदूषित जल भी सुन्दर हो जाता है।

दो०- गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समय सम कीन्ह।।४३।।

भा०- इसी बीच महाराज की मूर्च्छा समाप्त हुई, उन्होंने श्रीराम का स्मरण करके कैकेयी की ओर से पीछे मुड़कर करवट लिया अर्थात् पार्श्व परिवर्तन किया, बायीं ओर से दाहिनी ओर शरीर को मोड़ लिया। मंत्री सुमंत्र जी ने श्रीराम का आगमन सूचित करके समय के अनुकूल विनय किया। (महाराज! श्रीराम पधार आये हैं, यह सूचना दी।)

अवनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरज तब नयन उघारे।।
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप राम निहारे।।

भा०– तब श्रीराम को अपने पास पधारे हुए सुनकर, पृथ्वीपति महाराज दशरथ जी ने धैर्य धारण करके नेत्र खोले। मंत्री सुमंत्र जी ने सम्भाल कर महाराज को बिठा दिया। अपने चरणों में पड़ते हुए अर्थात् प्रणाम करते हुए श्रीराम को राजा दशरथ जी ने देखा।

लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई।।
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने स्नेह से व्याकुल होकर श्रीराम को हृदय से लगा लिया, मानो सर्प ने गयी हुई मणि को फिर से प्राप्त कर लिया हो। मनुष्यों के राजा दशरथ, श्रीराम को देखते ही रहे। उनके विमल नेत्रों से अश्रुजल का प्रवाह चल पड़ा।

शोक बिबश कछु कहै न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा।।
बिधिहिं मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं।।

भा०– महाराज दशरथ शोक के वश में होने से कुछ भी नहीं कह पा रहे हैं। वे बारम्बार श्रीराघव को हृदय से लगा लेते हैं। महाराज दशरथ मन में ब्रह्मा जी को मना रहे हैं, जिससे श्रीरघुनाथ जी वन को न जायें।

सुमिरि महेशहिं कहँइ निहोरी। बिनती सुनहु सदाशिव मोरी।।
आशुतोष तुम अवढरदानी। आरति हरहु दीन जन जानी।।

भा०– शिव जी का स्मरण करके अत्यन्त दीनतापूर्वक विनती कर महाराज दशरथ जी कहते हैं, हे सदाशिव! आप मेरी प्रार्थना सुनिये, आप आशुतोष (शीघ्र संतुष्ट होने वाले) हैं तथा अवढरदानी (किसी की भी ओर होकर मनोवांछित दान देने वाले) हैं। मुझे दीनसेवक जानकर मेरी आर्ति यानी पीड़ा हर लें।

दो०– तुम प्रेरक सब के हृदय, सो मति रामहिं देहु।
बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि शील सनेहु।।४४।।

भा०– आप सबके हृदय के प्रेरक हैं, श्रीराम को वही बुद्धि दे दीजिये, जिससे श्रीराघव मेरा वचन अर्थात् आदेश छोड़कर शील और स्नेह का त्याग करके घर में ही रह जायें।

अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ।।
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट राम जनि होहीं।।

भा०– हे शिवजी! चाहे जगत् में मेरा अपयश हो या पूर्व का सुयश नष्ट हो जाये। चाहे मैं नरक में पड़ जाऊँ या पूर्वपुण्यों से अर्जित मेरी स्वर्ग की प्राप्ति भी नष्ट हो जाये। मुझसे सभी असहनीय दुःख को सहन करा लीजिये, पर श्रीराम मेरी आँखों से ओझल न हों।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मन डोला।।
रघुपति पितहिं प्रेमबश जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी।।
देश काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी।।

भा०– महाराज मन में इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं हैं। उनका मन पीपल के पत्ते के समान चंचल हो उठा अर्थात् कभी ब्रह्मा जी को मनाता, कभी शिव जी को, कभी श्रीराम को वन देने के पक्ष में हो जाता, तो

कभी घर में रखने के पक्ष में। रघुकुल के स्वामी श्रीराम, पिताश्री दशरथ जी को प्रेम के वश जान कर और माता कैकेयी फिर कुछ कहेंगी, ऐसा उनके लक्षणों से अनुमान करके देश, काल और समय का अनुसरण करते हुए विचार करके विनम्र वचन बोले–

तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई।।
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा।।
देखि गोसाइँहिं पूँछेउँ माता। सुनि प्रसंग भए शीतल गाता।।

भा०– हे तात्! कुछ कह रहा हूँ, धृष्टता कर रहा हूँ, मेरा लड़कपन जानकर अनुचित को क्षमा कीजियेगा। बहुत छोटी–सी बात के लिए पिताश्री ने दुःख पाया। किसी ने भी मुझे पहले कहकर नहीं बताया। हे पृथ्वी के स्वामी! आपको व्याकुल देखकर, मैंने माताश्री से पूछा। कैकेयी माँ के मुख से सम्पूर्ण प्रसंग सुनकर मेरे अंग शीतल हो गये।

विशेष– 'गोसाइँहिं' शब्द खण्ड में प्रयुक्त 'गो' शब्द पृथ्वी का वाचक है, इस प्रयोग के पीछे भगवान् श्रीराम का यह अभिप्राय छिपा हुआ है कि, गोस्वामी अर्थात् पृथ्वी के स्वामी आप ही हैं, इसे आप भरत को दे दीजिये। मैं तो वन में जाने का निश्चय कर चुका हूँ।

दो०– मंगल समय सनेह बश, सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात।।४५।।

भा०– हे पिताश्री! इस मंगल के समय में आप मुझ पर पुत्र स्नेह से वशीभूत होकर शोक करना छोड़ दीजिये। हृदय में प्रसन्न होकर मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिये, ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम के अंग रोमांचित हो उठे।

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।।

भा०– संसार में उसी का जन्म धन्य है जिसके आचरणों को सुनकर पिता को प्रमोद अर्थात् इष्टलाभ से जनित आनन्द हो। चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसी के करतल अर्थात् हथेली में आ जाते हैं, जिसको पिता–माता प्राण के समान प्रिय होते हैं।

विशेष– संयोग से भगवान् श्रीराम के पास कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा ये तीन मातायें और पिताश्री दशरथ, ये चारो मानो चार पदार्थ, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता हैं। प्रभु श्रीराम, पिताश्री दशरथ की प्रीति से धर्म की, कैकेयी की प्रसन्नता से अर्थ की, सुमित्रा की संतुष्टि से काम की और कौसल्या जी की प्रियता से मोक्ष की सिद्धि समझ रहे हैं।

आयसु पालि जनम फल पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई।।
बिदा मातु सन आवउँ माँगी। चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी।।

भा०– आज्ञा का पालन करके, अपने जन्म लेने का फल पाकर, मैं शीघ्र ही आ जाऊँगा। मुझे वन जाने की राजाज्ञा हो जाये, मैं माताश्री से विदा माँग आऊँ, फिर आपश्री को प्रणाम करके वन चला जाऊँगा।

अस कहि राम गमन तब कीन्हा। भूप शोक बश उतर न दीन्हा।।
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।।

भा०– तब ऐसा कहकर श्रीराम ने विदा माँगने के लिए माता जी के पास प्रस्थान किया। महाराज ने शोक के वश में होने के कारण कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह तीखी वार्ता (समाचार) नगर में इस प्रकार व्याप्त हो गई मानो स्पर्श करते ही सबके शरीर में बीछी नामक घास चढ़ गई हो।

विशेष– हिमाचल प्रदेश में एक बीछी नामक घास होती है जो छूते ही बिच्छू के डंक की भाँति सारे शरीर में असहनीय पीड़ा उत्पन्न कर देती है।

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी।।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषाद नहिं धीरज होई।।

भा०– जिस प्रकार वन की अग्नि को देखते ही लता और वृक्ष सूख जाते हैं उसी प्रकार श्रीराम वनगमन का समाचार सुनकर श्रीअवध के सभी नर–नारी विकल हो गये। जो जहाँ सुनता वह वहीं सिर पीटने लगता था। लोगों के मन में बहुत बड़ा दु:ख था, मन में धैर्य नहीं हो रहा था।

दो०– मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, शोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ।।४६।।

भा०– लोगों के मुख सूख जाते थे, उनके नेत्र अश्रुपात कर रहे थे, शोक हृदय में नहीं समा रहा था, मानो करुणरस की सेना ही डंका बजाकर श्रीअवध में उतर आई हो।

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहि कैकयिहिं गारी।।
एहिं पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ।।

भा०– ब्रह्मा जी ने मेल अर्थात् सुन्दर संयोग के बीच में ही बात बिगाड़ दी। लोग जहाँ–तहाँ कैकेयी को गाली देने लगे। बोले, इस पापिनी कैकेयी को क्या समझ पड़ा, इसने छप्पर छाकर उस पर अग्नि रख दिया अर्थात् जैसे सरकंडे की छत बड़े परिश्रम से बनाकर, कोई अल्पबुद्धिवाला व्यक्ति उस पर स्वयं आग रख दे, कैकेयी ने उसी प्रकार का कार्य किया, स्वयं पहले श्रीराम पर प्रेम किया और आज उसी प्रेम रूप सरकंडे की छत पर वनवास रूप अग्नि रख दी।

निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिष चाहत चीखा।।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंश बेनु बन आगी।।

भा०– कैकेयी अपने हाथ से अपना नेत्र निकाल कर देखना चाहती है। अमृत फेंक कर, विष का स्वाद चख लेना चाहती है। कैकेयी कुटिल, कठोर और कुत्सित बुद्धिवाली तथा अभागिनी है। यह रघुवंश रूप बाँस के वन के लिए अग्नि बन गई।

पालव बैठि पेड़ एहिं काटा। सुख महँ शोक ठाट धरि ठाटा।।
सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपन ठाना।।

भा०– इसने पल्लव पर बैठकर, वृक्ष को काट डाला अर्थात् भरत की राजसत्ता पर आश्रित रहकर इसने महाराज दशरथ रूप वृक्ष को ही काट डाला। सुख में शोक का समाज रच डाला। श्रीराम सदैव इसको प्राण के समान प्रिय थे, किस कारण कैकयी ने यह कुटिलता ठान दी?

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगह अगाध दुराऊ।।७।।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।।८।।

भा०– कविगण सत्य ही कहते हैं कि, माँ, बहन, पत्नी और बेटी इन चारों अवधारणाओं से दूर भोगवादिनी नारी का स्वभाव सब प्रकार से अगाह अर्थात् अग्राह्य होता है और उसकी छिपाने की प्रवृत्ति बहुत ही गंभीर होती है। हे भाई! कदाचित् अपनी परछायीं पकड़ना सम्भव है, परन्तु स्वार्थपरायण और भगवान् से विमुख नारी की मनोदशा नहीं जानी जा सकती।

दो०- काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ।।४७।।

भा०– अग्नि क्या नहीं जला सकता, समुद्र में क्या नहीं समा सकता तथा अबला अर्थात् आध्यात्मिक बल से रहित, प्रबल अर्थात् भौतिक भोगबल से युक्त भगवत् भजनहीन स्त्री क्या नहीं कर सकती? काल किसे नहीं खा सकता? अर्थात् जैसे अग्नि सब कुछ जला सकता है, समुद्र में सब कुछ समा सकता है और काल सब को खा सकता है उसी प्रकार आध्यात्मिक बल से रहित केवल भोगपरायण स्त्री यहाँ वह सब कुछ कर सकती है।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा।।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बर बिचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा।।
जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबश ग्यान गुन गा जनु।।

भा०– ब्रह्मा जी ने क्या सुना कर, क्या सुना दिया? क्या दिखाना चाहिये था और क्या दिखा दिया? अर्थात् राज्याभिषेक सुनाकर, वनवास सुनाया और श्रीराम का राजतिलक दिखाना चाहिये था, पर आज श्रीराम की करुण वनयात्रा दिखा रहे हैं। उनमें से कुछ लोग कहने लगे कि, महाराज ने अच्छा नहीं किया, कुत्सित बुद्धिवाली कैकयी को विचार करके वरदान नहीं दिया। वही बिना विचारे दिया हुआ वरदान आज हठात् सभी दुःखों का पात्र बन गया। आध्यात्मिक बल से हीन कैकेयी के विवश हुए महाराज का मानो ज्ञानरूप गुण चला गया।

एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहिं दोष नहिं देहिं सयाने।।
शिवि दधीचि हरिचंद्र कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी।।

भा०– दूसरे लोग जो धर्म की परिमिति अर्थात् मर्यादा को पहचानते थे, वे चतुर लोग महाराज को दोष नहीं देते। शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक दूसरे से बखान कर अर्थात् व्याख्यान के साथ कहते हैं।

एक भरत कर सम्मत कहहीं। एक उदास भाव सुनि रहहीं।।
कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा।।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रानपिआरे।।

भा०– कुछ लोग श्रीराम के वनवास प्रकरण में कैकेयी के साथ श्रीभरत की सम्मति कहते हैं, दूसरे लोग यह भाव सुनकर उदास रह जाते हैं अर्थात् खिन्न हो जाते हैं। हाथ से कान मूँदकर दाँत से जीभ दबाकर कुछ लोग कहते हैं कि, यह बात निराधार और मर्यादा रहित है। ऐसा कहते ही तुम्हारे सभी पुण्य चले जायेंगे, क्योंकि श्रीभरत को श्रीराम प्राण के समान प्रिय हैं।

दो०- चन्द्र चवै बरु अनल कन, सुधा होइ बिषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल।।४८।।

भा०– भले ही चन्द्रमा बर्फीली किरणों वाला होकर भी अग्नि के कण गिराये, भले ही अमृत विष के समान हो जाये अर्थात् अपने जीवन गुण को छोड़कर लोगों के प्राण लेने लगे। इतने पर भी श्रीभरत स्वप्न में भी, कभी भी, कुछ भी, श्रीराम के प्रतिकूल नहीं करेंगे।

एक बिधातहिं दूषन देही। सुधा देखाइ दीन्ह बिष जेहीं।।
खरभर नगर सोच सब काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू।।

भा०– अन्य लोग ब्रह्मा जी को दोष देते हैं, जिन्होंने अमृत दिखाकर विष दे दिया, अर्थात् श्रीराम का राज्याभिषेकरूप अमृत दिखाकर, वनवासरूप विष दे दिया। श्रीअवध नगर में खलबली मच गई सभी लोगों के मन में शोक और असहनीय तपन होने लगी, हृदय का उत्साह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकयी केरी।।
लगीं देन सिख शील सराही। बचन बानसम लागहिं ताही।।

भा०– जो कैकेयी को परमप्रिय, ब्राह्मणों की पत्नियाँ, कुल की सम्मानित वृद्ध महिलायें तथा गुरुपत्नी अरुन्धती जी और परम्परा से कैकेयी की जेठानियाँ थीं, वे कैकेयी के शील की प्रशंसा करके शिक्षा देने लगीं। उनके वचन कैकेयी को बाण के समान लग रहे थे।

भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना।।
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बन देहू।।

भा०– हे कैकेयी! तुम सदैव यही कहती हो कि, मुझे श्रीराम के समान भरत प्रिय नहीं हैं। यह बात सारा संसार जानता है कि, तुम श्रीराम पर स्वभाव से प्रेम करती हो, आज किस अपराध पर कुपित होकर निर्दोष श्रीराम को वन दे रही हो?

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू।।
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा।।

भा०– तुमने कभी अपनी सौतनों के प्रति आरेसू (ऐर्ष्य) अर्थात् ईर्ष्या नहीं की। तुम्हारी श्रीराम के प्रति प्रीति और विश्वास को सम्पूर्ण कोसल देश जानता है। अब कौसल्या ने आपका क्या बिगाड़ा है, जिसके लिए आप ने श्रीअवधपुर में वज्रपात कर डाला।

विशेष– ईर्ष्या एव ऐर्ष्य अर्थात् ईर्ष्या शब्द ही स्वार्थिक अण् प्रत्यय करने से ऐर्ष्य बन जाता है और ऐर्ष्य का ही अपभ्रंश आरेसू है।

दो०- सीय कि पिय सँग परिहरिहिं, लखन कि रहिहैं धाम।
राज कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिइहिं बिनु राम।।४९।।

भा०– हे कैकेयी! क्या सीता जी अपने प्रियतम श्रीराम का साथ छोड़ देंगी, क्या श्रीलक्ष्मण, श्रीराम के बिना श्रीअवधधाम में रहेंगे, क्या श्रीराम–लक्ष्मण के बिना श्रीभरत श्रीअवध का राज भोगेंगे, क्या महाराज दशरथ श्रीराम के बिना जीवित रहेंगे?

विशेष– भोगब के स्थान पर भूँजब कह कर, ब्राह्मण पत्नियाँ क्रोध में यही कहना चाहती हैं कि, श्रीराम के बिना श्रीभरत राज्यरूप फल भून कर भी नहीं खायेंगे।

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। शोक कलंक कोठि जनि होहू।।
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू।।

भा०- हे कैकयी! ह्रदय में ऐसा विचार करके क्रोध छोड़ दीजिये। शोक और कलंक की कोठी (मिट्टी या ईंट का बना हुआ बहुत बड़ा स्थान)मत बनिये। भरत जी को राज्य अवश्य दीजिये, परन्तु वन में श्रीराम का क्या कार्य है?

नाहिन राम राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे।।
गुरु गृह बसहुँ राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू।।

भा०- कैकेयी! प्रभु श्रीरामचन्द्र राज्य के भूखे नहीं हैं। ये धर्म की धुरी को वहन करने वाले तथा विषय रस से रुखे अर्थात् आसक्ति रहित हैं। इसलिए तुम्हें यह आशंका नहीं होनी चाहिये कि, श्रीराम, भरत जी से राज्य छीन लेंगे। (तब अरुन्धती जी ने कहा–) श्रीराम, राजभवन छोड़कर गुरुदेव के भवन अर्थात् आश्रम में रह लें, इस प्रकार महाराज से दूसरा वरदान ले लो।

जौ नहि लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे।।
जौ परिहास कीन्ह कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई।।

भा०- यदि हमारे कहने में नहीं लगोगी अर्थात् हमारा कहना नहीं मानोगी तब तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा अर्थात् तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। यदि तुमने कोई परिहास किया हो, तो उसे प्रकट कह कर सबके सामने बता दो।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहिं सुनि तुम कहँ लोगू।।
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि शोक कलंक नसाई।।

भा०- श्रीराम जैसा बेटा वन के योग्य है, ऐसा सुनते ही लोग तुम्हें क्या कहेंगे? कैकेयी! जल्दी उठकर खड़ी हो जाओ और वही उपाय करो, जिस विधि से लोगों का शोक और आपका कलंक नष्ट हो जाये।

छं०: जेहि भाँति शोक कलंक जाइ उपाय करि कुल पालहू।
हठि फेरु रामहिं जात बन जनि बात दूसरि चालहू।।
जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु चंद्र बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी।।

भा०- जिस प्रकार से अवधवासियों का शोक और आपका कलंक चला जाये, वही उपाय करके रघुकुल का पालन कर लीजिये। वन जाते हुए श्रीराम को हठात् लौटा लीजिये और दूसरी बात मत चलाइये। तुलसीदास जी कहते हैं कि, अरुन्धती आदि ब्राह्मण वधुयें और रघुकुल की माननीया वृद्ध महिलायें तथा रानी कैकेयी की परम्परागत जेठानियाँ, तीन उदाहरण देकर समझाते हुए बोलीं, हे शुभलक्षणों वाली कैकेयी! तनिक अपने मन में तो समझो, जिस प्रकार सूर्य के बिना दिन तेज से हीन हो जाता है, जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर शोभाहीन हो जाता है, तथा जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि प्रकाशहीन और भयानक हो जाती है, उसी प्रकार अवध, प्रभु श्री राम के बिना क्रियाहीन और शोभाहीन हो जायेगा। अथवा, श्रीभरत, श्रीराम के बिना सूर्य से रहित दिन की भाँति तेज से हीन हो जायेंगे और प्रभु के बिना महाराज दशरथ प्राण के बिना शरीर के समान निष्क्रिय, निरर्थक हो जायेंगे तथा राघवेन्द्र जी के बिना प्रजा, चन्द्र के बिना रात्रि के समान शोभाहीन और अंधकार से युक्त हो जायेगी।

सो०- सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहिं कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी।।५०।।

भा०– सखियों ने मधुर और परिणाम में हितकर शिक्षा दी, उसे सुनते हुए उस कैकेयी ने कुछ भी कान नहीं दिया अर्थात् श्रवणेन्द्रिय से नहीं सुना। अनसुनी कर दी, क्योंकि वह कुटिल कुबड़ी मंथरा द्वारा प्रबोधित हुई थीं, अर्थात् समझायी गईं थी।

उतर न देइ दुसह रिसि रूखी। मृगिन चितव जनु बाघिनि भूखी।।
ब्याधि असाधि जानि तिन त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी।।

भा०– असहनीय क्रोध से रूक्ष अर्थात् निष्ठुर और उग्र हुई कैकेयी उनका उत्तर नहीं दे रही है और उन्हें उसी प्रकार देख रही है, जैसे आहार के लिए भूख से तड़पती हुई बाघिन हरिणियों को देखती है। रोग को असहनीय जानकर अर्थात् कैकेयी का हठ छोड़ना असम्भव जानकर अरुन्धती आदि ब्राह्मणियाँ, कुल की वृद्धायें और कैकेयी की पारम्परिक जेठानियाँ उसे छोड़कर मतिमन्द (मन्दबुद्धि वाली), अभागी (भाग्यहीन), कहते हुए राजभवन से चल दीं।

राज करत यहि दैव बिगोइ। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई।।
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी। देहिं कुचालहिं कोटिक गारी।।

भा०– राज्य करते हुए अर्थात् राज्यसुख भोगते हुए इसको विधाता ने नष्ट कर दिया। कैकेयी ने तो ऐसा कर डाला, जैसा कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार, अवधपुर के सभी नर–नारी विलाप करने लगे और बुरी चाल चलने वाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ देने लगे।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा।।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी।।

भा०– अवधवासी भयंकर शोक के ज्वर में जलते हुए ऊँची–ऊँची श्वास लेने लगे और कहने लगे कि, श्रीराम के बिना जीवन की कौन–सी आशा है? बहुत–बड़े वियोग से श्रीअवध की प्रजा उसी प्रकार अकुला उठी, जैसे जल के सूखते ही तलैयों और नदियों में रहने वाले जल–जन्तु अकुला उठते हैं।

अति बिषाद बश लोग लुगाई। गए मातु पहिं राम गोसाँई।।
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोच जनि राखै राऊ।।

भा०– अवध के पुरुष और महिलायें अतिशय विषाद अर्थात् दुःख के वश में हो गये। इन्द्रियों के स्वामी, ऋषिकेश, परमात्मा श्रीराम, माता कौसल्या जी के पास गये। उनका मुख प्रसन्न था, उनके मन में पूर्वोक्त चार उपलब्धियों की आशा में चार गुणा उत्साह था। महाराज उन्हें भवन में न रख लें, यह सम्भावित शोक भी मिट गया।

विशेष– श्रीराम ने कैकेयी के समक्ष वनवास की चार उपलब्धियों में क्रम से मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम के रूप में स्वीकारा था। मुनिगणों का मिलन मोक्ष, पिता की आज्ञा का पालन धर्म, कैकेयी की सम्मति अर्थ और प्राणप्रिय भरत की राज्य प्राप्ति काम, द्रष्टव्य है– अयोध्याकाण्ड का ४१ वाँ दोहा और उसी के पश्चात् पहली चौपाई। वनवास का निश्चय हो जाने पर इन्हीं चारों उपलब्धियों की प्रत्याशा से श्रीराम जी के हृदय में चार गुणा उत्साह हुआ।

दो०– नव गयंद रघुबीरमन, राज अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर आनंद अधिकान।।५१।।

भा०- रघुकुल के वीर श्रीराम के मनरूप युवा हाथी के हृदय में राज्यरूप बन्धन को छूटा जानकर और वन में जाना सुनकर, आनन्द अधिक हो गया अर्थात् जैसे बन्धन के छूटने से गजशाला से निकलकर वन की ओर चला हुआ युवा हाथी बहुत आनन्दित हो उठता है, उसी प्रकार भगवान् का मन भी राज्यरूप बन्धन को छूटा हुआ जानकर और अपने वनगमन की आज्ञा सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा।।
दीन्हि अशीष लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावर कीन्हे।।

भा०- रघुकुल के तिलक (श्रेष्ठ) श्रीराम ने दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्न होकर माता कौसल्या जी के चरणों में मस्तक नवाया। माताश्री ने प्रभु को आशीर्वाद दिया, उन्हें हृदय से लगा लिया और आभूषण तथा वस्त्र याचकों को न्यौछावर दिया।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता।।
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए।।

भा०- माता कौसल्या प्रभु के श्रीमुख को बार–बार चूम रही हैं। उनके नेत्रों में स्नेह का जल है और उनके अंगों में रोमांच हो रहा है। कौसल्या जी ने प्रभु श्रीराम को गोद में लेकर, फिर हृदय से लगा लिया। उनके सुन्दर थनों से प्रेम–रस अर्थात् वत्सलरस रूप दुग्ध चू रहा था।

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई।।
सादर सुंदर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी।।

भा०- कौसल्या का प्रेम और प्रमोद अर्थात् श्रीरामरूप अभीष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मानो दरिद्र ने देवों के धनाध्यक्ष कुबेर की पदवी पा ली। माँ कौसल्या आदरपूर्वक भगवान् के सुन्दर मुख को निहार कर मधुर वचन बोलीं–

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी।।
सुकृत शील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई।।

भा०- हे तात्! कहिये माता बलिहारी जाती है, प्रसन्नता और मंगल को करने वाले आप के तिलक का शुभ मुहूर्त कब है? आज हमारे पुण्य, शील एवं सुख की सीमा है और आज हमारे जन्म के लाभ की पूर्ण पराकाष्ठा है।

दो०- जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि शरद ऋतु स्वाति।।५२।।

भा०- जिस मुहूर्त को अवध के सभी नर–नारी अत्यन्त आर्त होकर, इस प्रकार चाह रहे हैं, जैसे प्यासे चातक और चातकी शरदऋतु में स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू।।
पितु समीप तब जाएहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया।।

भा०- हे तात् (मेरे वात्सल्य के आस्पद) राघव! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम शीघ्र नहा लो और जो तुम्हारे मन को भाये, कुछ मधुर (मिष्ठान्न, मोदक आदि) खा लो। हे भैया (भद्र)! पिताश्री के समीप तब अर्थात् स्वल्पाहार के पश्चात् जाना, बहुत देर हो गई है, माँ बलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला।।
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मन भवँर न भूला।।

भा०- अत्यन्त अनुकूल अपनी माता श्री कौसल्या जी के वचन सुनकर, जो स्नेह अर्थात् वात्सल्य प्रेम रूप कल्पवृक्ष के मानो पुष्प थे, जो सुख रूप मकरंद (पुष्परस) से भरे थे, जो श्री अर्थात् राज्यलक्ष्मी के मूल आश्रय थे, उन्हें देखकर भी श्रीराम का मनरूप भ्रमर नहीं भूला अर्थात् उन पर आकर्षित नहीं हुआ।

विशेष- तात्पर्य यह है कि, माताश्री ने पूर्व के अनुच्छेद में चार चौपाई और एक दोहा द्वारा जो वचन कहे, उनसे सामान्य व्यक्ति को आकर्षित होना स्वभाविक था, परन्तु परमेश्वर श्रीराम उन पर क्यों आकर्षित होते?

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी।।
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

भा०- धर्म की धुरी को धारण करने वाले श्रीराम ने धर्म की गति का ज्ञान करके अर्थात् वन यात्रा में धर्म यात्रा का लाभ समझकर, माता कौसल्या जी से अत्यन्त कोमल वाणी में कहा, हे माँ! पिता जी ने मुझे वन का राज्य दिया है। जहाँ मेरा सब प्रकार से बहुत बड़ा कार्य है अर्थात् अब अयोध्या में मेरी कोई उपयोगिता नहीं है।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता।।
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँद अम्ब अनुग्रह तोरे।।

भा०- हे माँ! आप प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दें, जिससे वन जाने में प्रसन्नता और मंगल हो, आप वात्सल प्रेम के वश होकर भूल कर भी मत डरियेगा। हे माँ! आपकी कृपा से वहाँ आनन्द ही आनन्द होगा।

दो०- बरष चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पायँ पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान।।५३।।

भा०- चौदह वर्ष पर्यन्त वन में निवास करके, पिताश्री के वचन को प्रमाणित करके पुनः श्रीअवध आकर आपके श्रीचरणों के दर्शन करूँगा। अपने मन को मलान अर्थात् हर्ष से रहित मत कीजियेगा अर्थात् दुःख मत कीजियेगा।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। शर सम लगे मातु उर करके।।
सहमि सूखि सुनि शीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी।।

भा०- रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम के विनम्र एवं मधुर वचन माता कौसल्या के हृदय में बाण के समान लगे और करके अर्थात् रूक-रूक कर कसकने लगे। प्रभु की शीतल वाणी सुनकर, माताश्री उसी प्रकार भयभीत होकर सूख गईं, जैसे वर्षा का जल पड़ने पर जवास नामक घास सूख जाती है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू।।
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहिं खाइ मीन जनु मापी।।

भा०- माता कौसल्या जी से कुछ भी कहा नहीं जा रहा है, उनके हृदय में उसी प्रकार का शोक हुआ, जैसे सिंह की गर्जना सुनकर हरिणी को हो जाता है। माँ कौसल्या जी के नेत्र अश्रुजल से पूर्ण हो गये। उनका शरीर थर-थर काँप उठा (बहुत कम्पित हो उठा)। मानो मांजा अर्थात् प्रथम वर्षा से उत्पन्न फेन को खाकर मीन (स्त्री मछली) मतवाली, मरणासन्न हो उठी हो।

धरि धीरज सुत बदन निहारी। गदगद बचन कहति महतारी।।
तात पितहिं तुम प्रानपियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।।
राज देन कहँ शुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा।।
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृशानू।।

भा०– धैर्य धारण करके, पुत्र श्रीराम के मुख को निहार कर, माता कौसल्या टूटते हुए स्वर में वचन कहने लगीं, हे तात्! मेरे वात्सल्य रस के आलम्बन पुत्र राघव! तुम अपने पिताश्री को प्राण के समान प्रिय हो, तुम्हारे चरित्र को देखकर महाराज निरन्तर प्रसन्न होते रहते हैं। तुम्हे राज्य देने के लिए उन्होंने शुभ दिन निश्चित किया, फिर तुम्हारे किस अपराध से चक्रवर्ती जी ने तुम्हें वन जाने के लिए कह दिया। हे बेटे! मुझे वह कारण सुनाओ कौन व्यक्ति सूर्यकुल के लिए अग्नि बन गया।

दो०– निरखि राम रुख सचिवसुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दशा बरनि नहिं जाइ।। ५४।।

भा०– प्रभु श्रीराम का रुख (संकेत) देखकर, मंत्री सुमंत्र के पुत्र अभिनन्दन ने माताश्री को सब कारण समझाकर कहा। सब प्रसंग सुनकर कौसल्या माता मूक अर्थात् गूंगे की भाँति चुप रह गईं। उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू।।

भा०– कौसल्या जी न तो श्रीराम को घर में रख सकती हैं और न ही, वन जाओ, ऐसा कह सकती हैं। दोनों प्रकार से कौसल्या माता के हृदय में असहनीय दाह अर्थात् जलन हो रही है। वे सोचने लगीं कि, देखो विधाता की गति अर्थात् चाल सदैव सभी के लिए वाम अर्थात् टेढ़ी हुआ करती है। चन्द्रमा लिखते समय राहु लिखा गया अर्थात् कहाँ तो चक्रवर्तीजी, श्रीराम के राजतिलकरूप चन्द्रमा की रचना कर रहे थे और कहाँ उन्हीं से राहुरूप श्रीराम का वनवास रचा लिया गया।

विशेष– कर्मकाण्ड में ग्रहों के आकार के क्रम में चन्द्रमा का आकार द्वितीया के चन्द्र के समान निर्दिष्ट है। चन्द्रमा लिखते समय उसके बीच में सहसा अधिक स्याही गिर जाये, तो वह सूर्पाकार हो जाता है और वही बन जाता है, राहु। यहाँ तात्पर्य यही है कि, महाराज द्वितीया के चन्द्र के समान श्रीराम–राज्याभिषेक की रचना कर रहे थे, जो उनके अनुसार कैकेयी के विश्वासरूप शिव जी का आभूषण बन जाता, परन्तु विधाता के वाम होने के कारण उसी के बीच में कैकेयी की कुमति रूप स्याही गिर पड़ी जिससे नहीं चाहते हुए भी महाराज के हाथ से श्रीराम वनवासरूप राहु रच दिया गया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछुंदरि केरी।।
राखउँ सुतहिं करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधु बिरोधू।।
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबश भइ रानी।।

भा०– धर्म और स्नेह (पुत्र वात्सल्य) इन दोनों ने कौसल्या माता की बुद्धि को घेर लिया और उनकी अर्थात् माता कौसल्या की गति साँप–छछूंदर की हो गई। भाव यह है कि, जब सर्प छछूंदर नामक विशेष कीड़े को मुँह में लेता है, तो न ही उसे निगल पाता है और न ही छोड़ पाता है, क्योंकि जनश्रुति के अनुसार यदि सर्प छछूंदर को निगल जाये, तो उसकी मृत्यु होगी और जब छोड़ दे तो वह दृष्टिहीन हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार, यदि कौसल्याजी, श्रीराम को रखती हैं, तो पुत्र के धर्म के लोप की सम्भावना से माँ की मृत्यु सम्भावित है और यदि श्रीराम को वन जाने के लिए कहती हैं, तो पुत्र के वियोग से रोते–रोते उनकी दृष्टिहीनता भी अवश्यम्भावी है। कौसल्या जी सोचने लगीं, यदि अनुरोध अर्थात् प्रेमपूर्वक हठ करूँ और पुत्र श्रीराम को श्रीअवध के राजभवन में

रख लूँ, तो इनका धर्म चला जायेगा और भाइयों के बीच विरोध हो सकता है और यदि इन्हें वन जाने के लिए कहूँ, तो मुझे बहुत–बड़ी हानि होगी। इस प्रकार, महारानी कौसल्या धर्मसंकट तथा पुत्रशोक के विवश हो गईं।

बहुरि समुझि तिय धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी।।
सरल स्वभाव राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।।

भा०– फिर परमचतुर और सरल स्वभाववाली श्रीराम की माता कौसल्याजी, भारतीय आदर्श, वैदिक, धर्मावलम्बिनी श्रेष्ठ महिला का धर्म समझकर तथा श्रीराम और श्रीभरत इन दोनों पुत्रों को समान जानकर, बहुत–बड़ा धैर्य धारण करके, भगवान् श्रीराम से यह वचन बोलीं–

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका।।
दो०– राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेश।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचंड कलेश।।५५।।

भा०– हे तात्! मेरे प्यारे पुत्र राघव, मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊँगी, तुमने अपने पिताश्री की आज्ञा से बिना प्रयास के पाये हुए राज्य को छोड़कर वन जाने का निर्णय करके बहुत अच्छा किया, क्योंकि पिताश्री की आज्ञा सम्पूर्ण धर्म का तिलक है। महाराज ने राज्य देने के लिए कहकर वन दिया, इसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। वस्तुतः तुम्हारे बिना श्रीभरत को, महाराज को और श्रीअवध की प्रजा को प्रचण्ड क्लेश होगा।

जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन शत अवध समाना।।

भा०– हे तात् (पुत्र)! यदि तुम्हें वन जाने के लिए केवल तुम्हारे पिताश्री की आज्ञा हो, तब तुम पिता से माता को बड़ी जानकर वन मत जाओ, किन्तु यदि तुम्हारे पिताश्री महाराज एवं तुम्हारी माता कैकेयी इन दोनों ने मिलकर तुम्हें वन जाने के लिए कहा हो, तब तो वन तुम्हारे लिए एक सौ अयोध्या के समान है, क्योंकि पिता से दस गुनी बड़ी होती है माता और माता से दस गुनी बड़ी होती है, सौतेली माता। यथा–

पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।
मातुर्दशगुणा मान्यां विमाताधर्मभिरुणा।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खगमृग चरन सरोरुह सेवी।।
अंतहुँ उचित नृपहिं बनबासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू।।

भा०– हे राघव! अब वनदेवता आपके पिता होंगे और वनदेवियाँ आपकी माता। पशु और पक्षी ही आपके चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत अर्थात् चतुर्थ आश्रम में ही वनवास उचित है। तुम्हारी यह अवस्था देखकर जो वन के लिए उचित नहीं है, मन में बहुत क्लेश हो रहा है।

बड़भागी बन अवध अभागी। जो रघुबंश तिलक तुम त्यागी।।
जौ सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू।।

भा०– हे रघुवंश के तिलक श्रीराम! वन बड़भागी है और अवध भाग्यहीन है, जिसे आपने छोड़ दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि, आप मुझे साथ ले लीजिये, तो आपके हृदय में संदेह हो सकता है। आप सोच सकते हैं कि, माँ मेरी धर्मपरायणता के प्रति विश्वस्त नहीं हैं अथवा अपने पतिव्रत पर दृढ़ नहीं है इसीलिए विपत्ति ग्रस्त मेरे

पिताश्री को छोड़कर मेरे साथ वन जाना चाहती है। इसलिए मैं स्वयं आप से स्वयं को साथ ले चलने के लिए नहीं कहूँगी। मैं चौदह वर्षपर्यन्त भवन में ही रह लूँगी।

पूत परम प्रिय तुम सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के।।
ते तुम कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ।।

भा०– हे पुत्र राघव! आप सभी को बहुत प्रिय हैं। आप प्राण के भी प्राण और जीवन के भी जीवन अर्थात् परमात्मा हैं। वही आप परमात्मा और प्राणि मात्र के परमप्रेमास्पद श्रीराम कह रहे हैं, "माताश्री मैं वन जा रहा हूँ।" मैं यह वचन सुनकर बैठकर पछता रही हूँ, क्योंकि न तो मैं आपके संग जा सकती हूँ और न ही आपको घर में रोक सकती हूँ।

दो०– यह बिचारि नहिं करहुँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ।।५६।।

भा०– यह विचार करके और असत्य स्नेह बढ़ाकर मैं आप से स्वयं को संग ले चलने का हठ नहीं कर रही हूँ। मैं बलिहारी जाऊँ, माता का नाता मानकर आपको मेरी स्मृति भूल नहीं जाये अर्थात् माता का सम्बन्ध मानकर आप मुझे भूल मत जाइयेगा। समय–समय पर स्मरण करते रहियेगा।

देव पितर सब तुमहिं गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं।।
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना।।
अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जियत जेहिं भेंटहु आई।।
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ।।
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल काल बिपरीता।।

भा०– हे इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा श्रीराम! नरलीला में वनवास के समय देवता और पितर सभी आपकी उसी प्रकार से रक्षा करें, जैसे पलक के दोनों पल्ले नयन अर्थात् आँख की पुतली की रक्षा करते हैं। हे राघव! आप करुणा की खानि और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं, चौदह वर्ष की अवधि जल है और प्यारे परिवार के लोग मछली हैं। अर्थात् जैसे जल के समाप्त होने पर मछली जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार चौदह वर्ष वनवास की अवधि समाप्त होने पर आपके परिजन जीवित नहीं रहेंगे। ऐसा विचार करके, आप वही उपाय करें जिससे जीते जी आप सबको मिल सकें। अर्थात् नन्दीग्राम में ही आपके अवधि का अंतिम क्षण पूर्ण हो और उसी समय श्रीअवध के नर–नारी आपके दर्शन कर सकें। मैं बलिहारी जाऊँ, आप सेवकों परिवार और अयोध्या को अनाथ करके सुखपूर्वक वन पधार जाइये। आज सभी का पुण्य–फल समाप्त हो गया है, समय सबके विपरीत और भयंकर हो गया है।

बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहिं जानी।।
दारुन दुसह दाह उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा।।

भा०– कौसल्या जी बहुत प्रकार से विलाप करके स्वयं को बहुत–बड़ी अभागिनी जानकर श्रीराघव जी के चरणों से लिपट गईं। हृदय में असहनीय भयंकर दाह अर्थात् ताप व्याप्त हो गया। माँ कौसल्या के विलापों के समूह वर्णन नहीं किये जा सकते।

राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई।।

भा०– श्रीराम ने उठाकर माता को हृदय से लगा लिया और कोमल वचन कहकर फिर उन्हें समझाया कि, आप यदि विकल हो जायेंगी, तो मैं धर्म का पालन कैसे कर सकूँगा?

दो०- समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बंदि बैठि सिर नाइ।।५७।।

भा०– उसी समय श्रीराम वनगमन का समाचार सुनकर, सीता जी अकुलाकर उठीं। अपने भवन से कौसल्या जी के भवन में जाकर सासु माँ के दोनों चरणकमलों का वंदन करके सिर झुका कर बैठ गईं।

दीन्ह अशीष सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी।।
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप राशि पति प्रेम पुनीता।।

भा०– सासु कौसल्या ने कोमल वाणी में सीता जी को आशीर्वाद दिया। श्रीसीता को अत्यन्त सुकुमारी देखकर (वन जाने के लिए उनकी उत्सुकता समझकर) कौसल्या जी अकुला गईं। रूप की राशि तथा पति श्रीराम के प्रेम से पवित्र भगवती श्रीसीताजी, मुख नीचे करके बैठ कर चिन्ता करने लगीं।

चलन चहत बन जीवननाथा। केहि सुकृती सन होइहि साथा।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना।।

भा०– सीता जी विचार करने लगीं, आज तो मेरे जीवन के स्वामी रघुनाथ जी वन को चलना चाहते हैं, उनका किस सुकृति से साथ हो सकेगा? क्या मेरे शरीर और प्राण दोनों प्रभु के साथ जायेंगे? अथवा, केवल मेरे प्राण श्रीराघव के साथ जायेंगे। विधाता को क्या करणीय है? यह कुछ भी ज्ञात नहीं हो रहा है।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।।
मनहुँ प्रेम बश बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरही।।

भा०– सीता जी अपने सुन्दर चरणों के नखों से पृथ्वी को कुरेद रही हैं और उनके श्रीचरणों के नूपुरों के मधुर शब्दों को कवि (तुलसीदास) वर्णन कर रहे हैं। कवि उत्प्रेक्षा में कहते हैं, मानो प्रेमवश होकर सीता जी के नूपुर, भगवती सीता जी के चरणों से प्रार्थना कर रहे हैं कि, वनगमन के समय सीता जी के चरण हमें (नूपुरों) को न त्यागें।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी।।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहिं पियारी।।

भा०– सीता जी को सुन्दर नेत्रों से जल गिराते अर्थात् अश्रुपात करते हुए देखकर, श्रीराम की माता कौसल्या जी बोलीं, हे तात! राघव सुनिये, सीता जी बहुत सुकुमारी हैं, वे सासुओं, श्वसुर महाराज चक्रवर्ती जी तथा परिवार को भी बहुत प्रिय हैं।

दो०- पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन, बिधु गुन रूप निधानु।।५८।।

भा०– हे राघव! इनके पिता हैं राजाओं के मुकुटमणि महाराज जनक और इनके श्वसुर हैं सूर्यकुल के सूर्य चक्रवर्ती जी महाराज तथा इन सीता जी के पति आप, जो कि, रघुकुलरूप कुमुदवन के लिए चन्द्रमा, गुणों और रूप के निधान स्वयं श्रीरामचन्द्र हैं।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप राशि गुन शील सुहाई।।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।

भा०– फिर मैंने (कौसल्या) भी रूप की राशि, गुणों और स्वभाव से सुहावनी सीता को प्यारी पुत्रवधू के रूप में पाया। मैंने सीता को नेत्रों की पुतली बनाकर, अपनी प्रसन्नता और प्रेम बढ़ाकर अपने प्राणों को जनकनंदिनी में लगाकर रखा (बारह वर्षपर्यन्त)।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा।।

भा०– हे राघव! मैंने सीता जी को कल्पवृक्ष की लता की भाँति स्नेह के जल से सींचकर बहुत प्रकार से दुलारा और पाला। उस सीतारूप कल्पलता के फूलते–फलते समय ही विधाता प्रतिकूल हो गये। यह समझ में नहीं आता की परिणाम कैसा होगा ?

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।
जिवनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।

भा०– सीता जी ने पलंग, पीठ अर्थात् भोजन करते समय का भारतीय पीढ़ा, मेरी गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर बारह वर्षपर्यन्त चरण नहीं रखा अर्थात् प्रायशः मैं सीता जी को पलंग पर पौढ़ा देती, फिर उन्हें पीठ अर्थात् पीढ़े पाटे पर विराजमान कराके भोजन कराती, फिर सीता जी को गोद में लेकर वाटिका में घुमाती और फिर झूलने के लिए हिंडोले पर विराजित कर देती हूँ। इसी क्रम में इन्हें श्रीअवध आये बारह वर्ष बीते और इन्होंने इस काल में कठोर पृथ्वी पर चरण नहीं रखा। अथवा, पृथ्वी पर कठोरता से चरण नहीं रखा। इन्हें मैंने दौड़कर चलने का अवसर नहीं दिया। मैं इनको संजीवनी (जड़ी) की मूलिका की भाँति सावधानी से बचा–बचाकर पालती–पोषती रहती हूँ। इनको मैं दीपक की बत्ती हटाने के लिए भी नहीं कहती हूँ। प्रायशः भवन में मणि का दीपक रखती हूँ, जिन्हें जलाने या बुझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।।
चंद्र किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी।।

भा०– वही सीता जी आज आपके साथ वन चलना चाहती हैं। हे रघुनाथजी! आपकी क्या आज्ञा हो रही है? चन्द्रमा के किरणों के रस की रसिक चकोरी सूर्य के सामने अपने नेत्रों को कैसे जोड़ सकती है, अर्थात् जिसके नेत्र चन्द्रमा को निहारने के अभ्यस्त हैं, वह सूर्य को कैसे देख सकती है? तात्पर्य यह है कि, सीता जी के लिए वनवास सर्वथा प्रतिकूल और अनुपयुक्त हैं।

दो०– करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि।।५९।।

भा०– वन में हाथी, सिंह, राक्षस और बहुत से दुष्ट जीव–जन्तु घूमते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पाती है?

बन हित कोल किरात किशोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी।।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊँ। तिनहिं कलेश न कानन काऊँ।।
कै तापसतिय कानन जोगू। जिन तप हेतु तजा सब भोगू।।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती।।

भा०– हे राघव! वन के लिए तो ब्रह्मा जी ने विषयसुखों से अनभिज्ञ, कोलों और किरातों की किशोरियों को बनाया है। हमारी जनकराजकिशोरी वन के लिए नहीं हैं। जिन कोल, किरात किशोरियों का स्वभाव पत्थर के कीड़ों के समान कठिन होता है, उनको वन में कभी भी क्लेश नहीं होता। अथवा, तपस्वियों की पत्नियाँ वन के योग्य होती हैं, जिन्होंने तप के लिए सभी भोगों का त्याग कर दिया हो। हे तात् (मेरे वत्सल रस के आलम्बन) राघव! सीता जी वन में किस प्रकार रहेंगी, जो चित्र में लिखे (चित्रित) वानरों को देख कर भी डर जाती है?

सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।।
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई।।

भा०– हे राघव! देवताओं के तालाब मानससरोवर के सुन्दर कमलवन में विहार करने वाली हंस की कुमारी क्या साधारण गड्ढे के योग्य हैं, अर्थात् जो देव तालाब के कमलवन में विहार करती हों, क्या वह बालमरालिका उस पंकिल जल से भरे छोटे से गड्ढे के योग्य हैं, जिसमें सूकर–कूकर आदि लोटते हों ? ऐसा विचार करके आप की जो आज्ञा हो, मैं सीता जी को वही शिक्षा दूँ।

जौ सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।।
सुनि रघबीर मातु पिय बानी। शील सनेह सुधा जनु सानी।।

दो०- कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं, प्रगटि बिपिन गुन दोष।।६०।।

भा०– माता कौसल्या जी ने फिर कहा, यदि सीता जी वनगमन का निश्चय छोड़कर भवन में रहें, तो मेरे लिए वे बहुत–बड़ी अवलम्ब हो सकती हैं। रघुकुल के वीर श्रीराम ने शील और स्नेह के अमृत से सनी हुई सी माता कौसल्या जी की कोमल वाणी सुनकर विवेक से पूर्ण वचन कहकर माता कौसल्या जी को परितुष्ट किया और वन के गुण और दोष को प्रकट करते हुए जनकनन्दिनी सीता जी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मन माहीं।।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू।।

भा०– भगवान् श्रीराम माता कौसल्या जी के समीप अपनी धर्मपत्नी सीता जी से कहने में संकोच करते हैं, परन्तु मन में समय समझकर प्रभु बोले, हे राजकुमारीजी! मेरी सिखावन (शिक्षा) सुनिये, मन में और दूसरे प्रकार से कुछ मत विचार कीजिये।

आपन मोर नीक जौ चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू।।
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।।

भा०– यदि आप अपना और मेरा दोनों का भला चाहती हैं, तो हमारा वचन मानकर घर में रह लीजिये। सासु की सेवा मेरी आज्ञा है। हे भामिनी (श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न) सीते! भवन में रहने में सब प्रकार से भलाई है।

एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पदपूजा।।
जब जब मातु करिहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी।।
तब तब तुम कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी।।
कहउँ स्वभाव शपथ शत मोहीं। सुमुखि मातु हित राखउँ तोहीं।।

भा०- आदरपूर्वक सासु और श्वसुर के चरणों की पूजा करना इससे अधिक कोई दूसरा धर्म नहीं है। माता जी जब-जब मेरा स्मरण करेंगी, प्रेम-विकल होने के कारण उनकी बुद्धि, भोरी अर्थात् बावली, विभ्रमित हो जायेगी। हे सुन्दरी! तब-तब तुम पुरानी अर्थात् पुराण प्रसिद्ध (मनु-शतरूपा अवतार की) कथा कहकर उन्हें कोमल वाणी में समझाना। मैं अपना भाव कह रहा हूँ, मुझे सैकड़ों शपथ है अथवा, मुझे अपने स्वभाव की सैकड़ों शपथ है, हे सुमुखी! मैं तुम्हें माताश्री के लिए ही श्रीअवध में रख रहा हूँ।

दो०- गुरु श्रुति सम्मत धरम फल, पाइय बिनहिं कलेश।
हठ बश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश।।६१।।

भा०- हे सीते! गुरु एवं वेद से सम्मत धर्म का फल क्लेश के बिना ही प्राप्त कर लिया जाता है। महर्षि गालव और राजा नहुष ने हठ के कारण बहुत संकट सहन किये थे, अर्थात् जैसे अपने हठ के कारण विश्वामित्र जी द्वारा माँगे गये आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों को इकट्ठा करने में गालव मुनि को बहुत संकट सहना पड़ा और हठ के कारण ही इन्द्राणी की प्राप्ति के लिए ऋषियों की सवारी का प्रयोग करके नहुष को अजगर बनकर घोर संकट सहना पड़ा उसी प्रकार आप को भी वन में संकट सहने पड़ेंगे।

विशेष- यहाँ दोनों उदाहरणों का तात्पर्य यह है कि, सीता जी को बिम्ब शरीर और प्रतिबिम्ब शरीर इन दोनों में घोर संकट सहना पड़ा। वास्तविक शरीर में वनमार्ग का कष्ट और अग्निवास तथा प्रतिबिम्ब शरीर में हरण, लंका की यातना और अग्नि में प्रवेश।

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी।।
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा।।

भा०- हे सुन्दर मुखवाली चतुर सीते! सुनो, फिर मैं पिताश्री की वाणी को प्रमाणित करके शीघ्र लौट आऊँगा। हे सुन्दरी! हमारी सिखावन सुनो, चौदह वर्ष के दिन जाते विलम्ब न लगेगा।

जौ हठ करहु प्रेम बश बामा। तौ तुम दुख पाउब परिनामा।।
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी।।

भा०- हे वामांगिनी! यदि तुम प्रेम के वश हठ करोगी तो परिणाम में तुम दुःख पाओगी। वन बहुत कठिन और बहुत ही भय उत्पन्न करने वाला है। उसमें धूप, ठंड बर्फीला जल और वायु ये सभी बहुत भयंकर होते हैं।

कुश कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना।।
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे।।

भा०- वहाँ कुश, काँटे और अनेक प्रकार के कंकड़ों पर, जूते, पनहीं के बिना पैदल चलना यह सब कष्टकर है। तुम्हारे चरण कमल के समान कोमल और सुन्दर हैं। मार्ग बहुत ही अगम्य है तथा वहाँ बड़े-बड़े पर्वत होते हैं।

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा।।

भा०- वन में बड़ी-बड़ी अगम्य और गंभीर गुफायें, खोह, अगाध नदियाँ, नद और नाले हैं, जो देखे नहीं जा सकते। वहाँ भालू, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी इतना भयंकर गर्जन करते हैं, जिसे सुनकर धैर्य भाग जाता है।

दो०- भूमि शयन बलकल बसन, अशन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलिहिं, सबइ समय अनुकूल।।६२।।

भा०- वन में पृथ्वी पर शयन, वस्त्र के लिए वल्कल (पेड़ों की छालें), भोजन के लिए कंदमूल और वन के फल होते हैं। वे भी क्या सब दिन समय के अनुकूल मिलते हैं ? अर्थात् नहीं। कभी मिलते हैं तो कभी निराहार ही रहना पड़ता है।

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक धरहीं।।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।।

भा०- वन में मनुष्यों का भोजन करने वाले राक्षस घूमते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार से कपटमय वेश धारण करते हैं। पहाड़ का पानी बहुत लगता है अर्थात् कष्ट देता है, पाचन के प्रतिकूल होता है, वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती।

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निशिचर निकर नारि नर चोरा।।
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।।

भा०- वन में भयंकर सर्प और घोर पक्षी होते हैं। स्त्रियों और पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के समूह वन में रहते हैं। हे मृगलोचनी (हरिण के समान नेत्र वाली) सीते! वन का स्मरण करने पर धीर लोग भी डर जाते हैं। तुम तो स्वभाव से भीरु अर्थात् डरने वाली हो।

हंसगमनि तुम नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहि देइहिं लोगू।।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जियइ कि लवन पयोधि मराली।।

भा०- हे हंसगामिनी (हंस के समान चलने वाली) सीते! तुम वन के योग्य नहीं हो, सुनकर लोग मुझे अपयश ही देंगे। भला बताओ, मानससरोवर के अमृत के समान जल द्वारा पाली–पोषी गई हंसिनी कहीं नमक के समुद्र में जी सकती है ?

नव रसाल बन बिहरनशीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।।
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद्रबदनि दुख कानन भारी।।

भा०- नवीन आम्र के वन में विहार करने वाली कोकिला (कोयल) क्या करील के वन में शोभित होती है ? हे चन्द्रमुखी सीते! हृदय में ऐसा विचार करके, तुम घर में रह जाओ, वन में बहुत दुःख है।

दो०- सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि।।६३।।

भा०- स्वभाव से मित्ररूप हितैषी, गुरु और स्वामी की शिक्षा को सिर पर मान कर अर्थात् शिरोधार्य करके जो नहीं करते, वह पश्चात ताप करके अघा जाते हैं अर्थात् मन भरकर पछताते हैं और उनके हित की अवश्य हानि होती है।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के।।
शीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं शरद चंद्र निशि जैसे।।

भा०- प्रियतम श्रीराम जी के कोमल और मन को हरने वाले वचन सुनकर, श्रीसीता जी के ललित अर्थात् अति सुहावने नेत्रों में जल भर आये। प्रभु श्रीराम की शीतल शिक्षा सीता जी के लिए किस प्रकार दाह (जलन) उत्पन्न करने वाली हुई, जैसे चकवी के लिए शरद्पूर्णिमा की चाँदनी रात।

उतर न आव बिकल बैदेही। तजन चहत शुचि स्वामि सनेही।।
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी।।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमब देबि बड़ि अबिनय मोरी।।

भा०- सीता जी के मुख से कुछ उत्तर नहीं आ रहा है। विदेहनन्दिनी व्याकुल हो गईं और सोचने लगीं कि, मेरे परमपवित्र स्नेहीस्वामी श्रीरघुनाथ जी मुझे छोड़ना चाहते हैं। हठपूर्वक विमल नेत्रों में अश्रुजल को रोककर हृदय में धैर्य-धारण करके भूमिपुत्री श्रीसीता ने सासु कौसल्याजी के चरणों में लिपटकर, हाथ जोड़कर कहा, हे देवी! मेरी बहुत बड़े अविनय अर्थात् धृष्टता (उद्दण्डता) को क्षमा कीजियेगा।

दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई।।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुख जग नाहीं।।

भा०- मेरे प्राणपति श्रीराघवेन्द्र जी ने मुझे वही शिक्षा दी जिस विधि से मेरा परमकल्याण हो, फिर मैंने अपने मन में समझकर यह देखा कि, संसार में प्रियतम के वियोग से बड़ा कोई दुःख नहीं है।

दो०- प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान।।६४।।

भा०- अनन्तर भगवती श्रीसीता, श्रीराम से बोलीं, हे करुणा के मंदिर! हे सुन्दर सुख देने वाले! सब कुछ जानने वाले, मेरे प्राणनाथ श्रीराघव! हे रघुकुल रूप कुमुद के चन्द्रमा प्रभु! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई।।
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुशील सुखदाई।।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते।।

भा०- हे नाथ! माता-पिता, बहन एवं प्यारा भाई, प्रिय परिवार और मित्रों के समूह, सास, श्वसुर, गुरुजन, मित्र, सहायक, सुन्दर, शोभन शीलवाले सुखदाता पुत्र तथा पुत्री, ये सभी जहाँ तक नेह और सम्बन्ध है, ये सब पति के बिना स्त्री के लिए सूर्यनारायण से भी अधिक तपाने वाले अर्थात् ताप देने वाले और कष्टदायी हैं।

तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब शोक समाजू।।
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।
प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।

भा०- शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना ये सब कुछ नारी के लिए शोक का ही समाज है। पति के बिना पत्नी के लिए भोग रोग के समान है, आभूषण बोझ के समान है और संसार यम की यातना (पापियों को मरण के पश्चात् यमराज द्वारा दिया जाने वाला कठोर दंड) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना संसार में मेरे लिए कहीं भी कोई भी सुख देने वाला नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसै नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद बिमल बिधु बदन निहारे।।

भा०– हे नाथ! जैसे जीवात्मा के बिना शरीर और जल के बिना नदी निरर्थक होती है, उसी प्रकार पुरुष (पति) के बिना नारी (पत्नी) भी अर्थहीन और शोभाहीन है। हे नाथ! आपके शरद्कालीन निर्मल चन्द्रमा के समान श्रीमुख को निहारकर आपके साथ मुझे सभी सुख उपलब्ध हो जायेंगे तथा उपलब्ध हैं।

दो०- खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुख मूल।।६५।।

भा०– आपके साथ रहने पर पक्षी और पशु मेरे कुटुम्बी होंगे, वल्कल (वृक्षों के छाल) मेरे लिए निर्मल दुकूल उत्तरीय तथा साड़ी के समान होंगे और आप के साथ मेरे लिए पर्णकुटी भी देवभवन के समान सुख का आश्रय बनेगी।

चौ०: बनदेबी बनदेव उदारा। करिहैं सासु ससुर सम सारा।।
कुश किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।।

भा०– उदार वनदेवियाँ और वनदेव सास–श्वसुर के समान मेरी देखभाल करेंगे। पुष्प और पल्लवों की बनी हुई साथरी (भूमि की शैय्या) आपके साथ सुन्दर कामदेव द्वारा बनाई हुई तोशक की शैय्या के समान सुखदायिनी होगी।

कंद मूल फल अमिय अहारू। अवध सौध शत सरिस पहारू।।
छिन छिन प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।

भा०– कंदमूल, फल ही मेरे लिए अमृत का भोजन होगा। वन के पर्वत ही मेरे लिए सैकड़ों श्रीअवध के राजमहल के समान होंगे। क्षण–क्षण आप प्रभु राघव के चरणकमल को देखकर दिन में चकवी की भाँति मैं प्रसन्न रह लूँगी।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।।
प्रभु बियोग लवलेश समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।।

भा०– हे नाथ! आप ने वन के बहुत से दुःख, अनेक भय, कष्ट और परितापों का वर्णन किया, परन्तु हे कृपानिधान! ये सब मिलकर भी आप प्रभु राघव के वियोग के लवलेश के समान भी नहीं होंगे।

अस जिय जानि सुजान शिरोमनि। लेइय संग मोहि छाड़िय जनि।।
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी।।

भा०– हे सुजानों अर्थात् सुन्दर ज्ञानवालों के शिरोमणि! हृदय में ऐसा जानकर मुझे साथ ले लीजिये, छोड़िये मत। हे स्वामी! मैं बहुत क्या प्रार्थना करूँ, क्योंकि आप स्वयं करुणा के स्वरूप, हृदय में निवास करने वाले और अन्तर्यामी हैं अर्थात् सभी का नियंत्रण करने वाले हैं।

दो०- राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत न जनियहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, शील सनेह निधान।।६६।।

भा०– हे दीनबन्धु! हे सर्वसुन्दर! हे सुखदाता! हे शील और स्नेह के कोश राघवेन्द्र सरकार! यदि आप मुझे चौदह वर्ष की अवधिपर्यन्त श्रीअयोध्या में रखेंगे तो मेरे प्राणों को रहते मत जानियेगा अर्थात् तब मेरे प्राण नहीं रहेंगे।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिन छिन चरन सरोज निहारी।।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।

भा०– मुझे, मार्ग चलते समय क्षण–क्षण आप के श्रीचरणकमल को देखकर हार अर्थात् थकावट नहीं होगी। मैं सब प्रकार से अपने प्रियतम आपश्री रघुनाथ जी की सेवा करूँगी और मार्ग में उत्पन्न सभी श्रमों को हर लूँगी।

पायँ पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बायु मुदित मन माहीं।।
श्रम कन सहित श्याम तनु देखे। कहँ दुख समय प्रानपति पेखे।।

भा०– आपके चरणों को धोकर वृक्ष की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होते हुए आपको आँचल से बयार करूँगी। श्रमकणों (पसीने की बूँदों) के सहित आप के श्यामल शरीर को देखकर अपने प्राणपति आप श्रीराघव सरकार के दर्शन करके मुझे दुःख का समय ही कहाँ रहेगा?

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पायँ पलोटिहि सब निशि दासी।।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही।।

भा०– समतल, भूतल पर घास और वृक्ष के पल्लव को बिछाकर, यह दासी सीता पूरी रात आपके चरण दबायेगी, बारम्बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गर्म हवा भी नहीं लगेगी।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहिं जिमि शशक सिआरा।।
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू। तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू।।

भा०– जैसे सिंह की पत्नी को खरगोश और गीदड़ नहीं देख सकते, उसी प्रकार आपके साथ में रह रही मुझ सीता को कौन देख सकता है? प्रभु क्या मैं सुकुमारी हूँ, तो आप तपस्या के योग्य हैं? क्या आपके लिए तपस्या उचित है और मेरे लिए भोग? अर्थात् नहीं।

दो०– ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौ न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान।।६७।।

भा०– आपके ऐसे कठोर वचनों को सुनकर यदि मेरा हृदय नहीं फटा, तो निश्चय ही मेरे नीच प्राण आपश्री राघव के वियोग के विषम दुःख को सहन करेंगे।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी।।
देखि दशा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना।।

भा०– ऐसा कहकर श्रीसीता जी बहुत व्याकुल हो गईं और वे प्रभु के वचन वियोग को भी नहीं सम्भाल सकीं। सीता जी की यह दशा देखकर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने हृदय में जान लिया कि, श्रीअवध में हठपूर्वक रखने पर सीता जी अपने प्राण नहीं रखेंगी।

कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा।।
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन गमन समाजू।।

भा०– सूर्यकुल के स्वामी कृपालु भगवान् श्रीराम ने कहा, हे सीते! चिन्ता छोड़कर मेरे साथ वन में चलिए। आज विषाद अर्थात् दुःख का समय नहीं है। वनगमन के समाज को शीघ्र सजाइये, अर्थात् राजकीय वस्त्र छोड़कर तपस्वी का वेश धारण कीजिये। अन्नाहार छोड़कर फलाहार के लिए तैयार रहिये। अलंकरण और वस्त्र सखियों में वितरित कर दीजिये।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आशिष पाई।।
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई।।

भा०– इस प्रकार प्रिय वचन कहकर अपनी प्राणप्रिया सीता जी को समझाया। श्रीराम माता कौसल्या के चरणों में लिपट गये। उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। माँ बोलीं, हे राघव! चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण करके शीघ्र अयोध्या लौटकर प्रजा का दु:ख मिटाइये और यह निर्दय कठोर माता आपके द्वारा न भुलाई जाये।

फिरिहिं दशा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जियत बदन बिधु जोइहि।।

भा०– हे विधाता! क्या यह मेरी करुण दशा फिर लौटगी अर्थात् जो मैं आज प्रभु को वनवास के लिए भेज रही हूँ, क्या इनका पुन: प्रत्यागमन देखूँगी? क्या फिर मैं श्रीसीता–राम जी की मनोहर जोड़ी को आँख भर देखूँगी? हे प्यारे राघव! उस सुन्दर दिन की वह सुन्दर घड़ी कब होगी, जब जीती हुई माँ कौसल्या आपके चन्द्रमुख को निहारेगी?

दो०– बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहउँ गात।।६८।।

भा०– हे राघव! मैं फिर कब 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति, रघुवर' और तात्' के सम्बोधनों से आपको बुलाकर हृदय से लगाकर प्रसन्नतापूर्वक आपके शरीर को निरखूँगी (देखूँगी)?

लखि सनेह कातरि महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी।।
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समय सनेह न जाइ बखाना।।

भा०– श्रीराम ने देखा की माता कौसल्या उनके स्नेह में कातर हो गईं हैं और उनके मुख से कोई वचन नहीं निकल रहा है, वे बहुत व्याकुल हैं। श्रीराम ने नाना प्रकार से माता का प्रबोधन किया अर्थात् उन्हें समझाया। उस समय का स्नेह कहा नहीं जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी।।
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।।

भा०– तब जनकनन्दिनी सीता जी सासु माँ कौसल्या के चरणों से लिपट गईं और बोलीं, हे माँ! सुनिये, मैं बहुत बड़ी दुर्भाग्यशालिनी हूँ। अब तक तो आप मेरी सेवा करती रहीं और जब मेरी सेवा का समय आया तब ईश्वर ने मुझे वनवास दे दिया। मेरे मनोरथ सफल नहीं किये।

तजब छोभ जनि छाड़िय छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू।।
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दशा कवनि बिधि कहौं बखानी।।

भा०– माताजी! मेरे प्रति क्षोभ छोड़ दीजिये और अपनी ममता कभी मत छोड़ियेगा। कर्त्तव्य का पालन करना बहुत कठिन है, मेरा भी कोई दोष नहीं है। सीता जी के वचन सुनकर सासु कौसल्या जी अकुला गईं, यह दशा किस प्रकार बखान कर कहूँ?

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आशिष दीन्ही।।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा।।

भा०– कौसल्या जी ने सीता जी को बारम्बार हृदय से लगाया और धैर्य धारण करके उन्हें शिक्षा और आशीर्वाद दिया। हे सीते! जब तक गंगा जी और यमुना जी में जल की धारा है, तब तक तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड रहे।

दो०– सीतहिं सासु अशीष सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिर, अति हित बारहिं बार।।६९।।

भा०– सासु कौसल्या जी ने सीता जी को अनेक प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षायें दीं। सीता जी अत्यन्त प्रेम से बारम्बार कौसल्या जी के चरणकमलों में मस्तक नवाकर, श्रीराम के साथ कौसल्या जी के भवन से चल पड़ीं।

* मासपारायण, बारहवाँ विश्राम *

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।

भा०– जब लक्ष्मण जी ने समाचार पाया (उर्मिला जी से) तब वे व्याकुल हो उठे, उनका मुख बिलख अर्थात् शोभा से रहित हो गया, तथा औदास्य और अश्रुओं से पूर्ण होने के कारण साधारणतया विकृत लक्ष्य अर्थात् देखने में सुखप्रद नहीं रहा। वे अपने भवन से उठकर दौड़े, उनके शरीर में कम्पन और रोमांच था। उनके नेत्र आँसू से युक्त थे। प्रेम में अत्यन्त अधीर होकर श्रीलक्ष्मण ने श्रीराम के चरण पकड़ लिए।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े।।
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा।।

भा०– लक्ष्मण जी से कुछ कहा नहीं जा रहा है, वे खड़े-खड़े श्रीराम को देख रहे हैं, मानो जल से निकाला हुआ दैन्यावस्था को प्राप्त मछली हो। लक्ष्मण जी हृदय में सोचने लगे कि, विधाता! अब क्या होने वाला है? मेरे सम्पूर्ण सुख और पुण्य नष्ट हो गये।

मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहैं भवन कि लैहैं साथा।।
राम बिलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे।।
बोले बचन राम नय नागर। शील सनेह सरल सुख सागर।।
तात प्रेम बश जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू।।

भा०– रघुनाथ जी मुझको क्या कहेंगे? मुझे अयोध्या के राजभवन में रखेंगे या साथ ले लेंगे। श्रीराम ने शरीर, घर, सभी से तृण तोड़ अर्थात् तृण के समान ममत्व तोड़े हुए, दोनों हाथ जोड़े हुए, भाई लक्ष्मण को देखा। नीति में निपुण, शील और स्नेह के कारण सरल, सुख के समुद्र श्रीराम, लक्ष्मण जी से बोले, अथवा नीति में निपुण, स्वभाव से सरल, शील, स्नेह एवं सुखों के समुद्र भगवान् श्रीराम यह वचन बोले, हे तात्! अपने हृदय में परिणाम में उत्साह (महोत्सव) समझकर प्रेम के कारण कदराओ मत अर्थात् व्याकुल होकर कर्त्तव्य मत छोड़ो।

दो०– मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, नतरु जनम जग जाय।।७०।।

भा०– जो लोग माता-पिता, गुरु और स्वामी की सुन्दर शिक्षा को सिर पर धारण करके पालन करते हैं, उन्होंने ही संसार में जन्म का लाभ लिया नहीं तो और लोगों का जन्म व्यर्थ है।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई।।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं।।
मैं बन जाउँ तुमहिं लेइ साथा। होइ सबहिं बिधि अवध अनाथा।।

भा०- हे भैया! हृदय में ऐसा जानकर मेरी शिक्षा सुनो, माता–पिता के चरणों की सेवा करो, इस समय भरत और शत्रुघ्न घर में नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं, उन्हें मन में मेरा दुःख भी है। यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन जाता हूँ, तो सब प्रकार से अयोध्या अनाथ हो जायेगी।

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू।।
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।।

भा०- गुरु, पिता–माता, प्रजा और परिवार इन सबको असहनीय दुःख का भार पड़ेगा, इसलिए अवध में रहो और सबका परितोष करो अर्थात् सबको समझाओ नहीं तो बहुत–बड़ा दोष होगा।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखन भए ब्याकुल भारी।।

भा०- जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी होती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी बन जाता है, ऐसी नीति का विचार करके, हे भैया लक्ष्मण! तुम अयोध्या में रहो। प्रभु का यह वचन सुनकर, लक्ष्मण जी बहुत व्याकुल हुए।

सिअरे बचन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।।
दो०- उतर न आवत प्रेम बश, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु त काह बसाइ।।७१।।

भा०- प्रभु के शीतल वचन से लक्ष्मण जी किस प्रकार सूख गये, जैसे तुहिन अर्थात् पाले का स्पर्श करते ही कमल सूख जाता है। प्रेम के वश होने से लक्ष्मण जी के मुख से उत्तर नहीं आ रहा है। उन्होंने अकुलाकर भगवान् श्रीराम के चरण पकड़ लिए और बोले हे नाथ! मैं दास हूँ, आप स्वामी हैं, यदि आप मुझे छोड़ रहे हैं, तो मेरा वश ही क्या है?

दीन्ह सीख मोहि नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं।।
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी।।
मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला।।

भा०- हे भगवन्! हे मेरे नाथ! आप ने तो मुझे बहुत अच्छी शिक्षा दी है, परन्तु अपनी कायरता के कारण वह मुझे कठिन लग रही है, क्योंकि जो धर्म की धुरी धारण करने वाले, धीर अर्थात् विकारों का कारण रहने पर भी विकृत नहीं होने वाले श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे इस वेद की नीति के अधिकारी हैं। मैं तो आप प्रभु श्रीराघव के वत्सल स्नेह का पाला–पोषा छोटा सा बालक हूँ। क्या हंस मंदराचल और सुमेरू को उठा सकते हैं?

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ स्वभाव नाथ पतियाहू।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई।।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।

भा०- हे नाथ! मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, आप विश्वास कीजिये मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता-माता किसी को नहीं जानता हूँ, इस संसार में वेदों ने जहाँ तक अपने स्नेह की सगाई (सम्बन्ध), प्रीति और विश्वास का गान किया है, वह सब मेरे लिए दीनों के बन्धु, हृदय के अन्तर्यामी, एकमात्र स्वामी आप ही हैं।

धरम नीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई।।

भा०- धर्म और नीति का तो उसे उपदेश देना चाहिये, जिसे कीर्ति, सम्पत्ति और श्रेष्ठगति प्रिय हो। हे कृपा के सागर श्रीराघव! जो मन से, कर्म से और वाणी से आपके श्रीचरणों में ही रत अर्थात् प्रेमपूर्वक लगा हो, क्या आप उसे छोड़ देंगे? अथवा, क्या उसे आपको छोड़ देना चाहिये?

दो०- करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत।।७२।।

भा०- करुणा के सागर श्रीराम ने, श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण जी के कोमल और विनम्र वचन सुनकर, उन्हें प्रेम के कारण भयभीत जानकर, हृदय से लगा कर समझाया।

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।।
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी।।

भा०- हे भाई! जाकर सुमित्रा माता जी से विदा माँगो, शीघ्र आओ और मेरे साथ वन चलो। रघुश्रेष्ठ श्रीराम की वाणी सुनकर, लक्ष्मण जी प्रसन्न हो गये। उनको बहुत बड़ा लाभ हुआ अर्थात् साथ चलने की अनुमति मिली और बहुत बड़ी हानि समाप्त हुई, क्योंकि लक्ष्मण जी की दृष्टि में प्रभु से पृथक् होना ही सब से बड़ी हानि थी और प्रभु के साथ रहना सब से बड़ा लाभ।

हरषित हृदय मातु पहँ आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए।।
जाइ जननि पग नायउ माथा। मन रघुनंदन जानकि साथा।।

भा०- लक्ष्मण जी हृदय में प्रसन्न होकर माता सुमित्रा के पास आये, मानो दृष्टिहीन ने गया हुआ नेत्र फिर पा लिया। लक्ष्मण जी ने जाकर जन्म देने वाली सुमित्रा जी के चरणों में मस्तक नवाया, परन्तु उनका मन रघुकुल को आनन्दित करने वाले प्रभु श्रीराम और जनकनन्दिनी श्रीसीता जी के साथ था।

पूँछेउ मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा।।

भा०- माता सुमित्रा जी ने लक्ष्मण जी का मन मलिन अर्थात् दुःखी देखकर पूछा, लक्ष्मण जी ने सब विशेष कथा सुनायी। श्रीराम-वनवास समाचाररूप कठोर वचन सुनकर, सुमित्रा जी उसी प्रकार अप्रत्याशित भय से डर कर सहम गईं, जैसे हरिणी चारों ओर वन की आग देखकर डर जाती है।

विशेष : यहाँ मलिन शब्द मल से युक्त अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि लक्ष्मण जी के मन में कोई मल है ही नहीं, यहाँ मलिन शब्द म्लान शब्द का तद्भव समझना चाहिये। संस्कृत में म्लान शब्द का दुःखी होना अर्थ होता है।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बश करब अकाजू।।
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं।।

भा०– लक्ष्मण जी ने देखा, आज तो अनर्थ हो गया, यह माता सुमित्रा जी श्रीराम पर वात्सल्य स्नेह के कारण मेरा अकाज करेंगी अर्थात् मेरे कार्य में रूकावट डालेंगी। लक्ष्मणजी, माता जी से विदा माँगते समय भयभीत होकर संकोच कर रहे हैं और कह रहे हैं, हे ब्रह्माजी! मुझे माता जी श्रीरघुनाथ जी के साथ जाने के लिए कहेंगी या नहीं?

दो०- समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ।।७३।।

भा०– सुमित्रा जी ने श्रीराम एवं भगवती श्रीसीता के रूप, शील और स्वभाव को समझकर, उन पर महाराज के स्नेह को देखकर सिर पीटा और बोलीं, पापिनी कैकेयी ने तो बुरा दाँव अर्थात् बुरे स्थान पर घात लगाया और गंभीर दावाग्नि लगा दी।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।।
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।।

भा०– प्रतिकूल समय जानकर, सुमित्रा जी ने धैर्य धारण किया और स्वभाव से सुन्दर हृदय वाली तथा प्राणि मात्र की मित्र यथार्थ नामवाली सुमित्राजी, लक्ष्मण जी से कोमल वाणी बोलीं, हे तात्, पुत्र लक्ष्मण! विशिष्ट शरीर वाली सभी शक्तियों की अवतारी रूप भगवती सीता जी तुम्हारी माँ हैं और नित्य स्नेह करने वाले परमात्मा श्रीराम सब प्रकार से तुम्हारे पिता हैं।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू।।
जौ पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं।।

भा०– जहाँ श्रीराम का निवास है अयोध्या वहीं है, जहाँ सूर्यनारायण का प्रकाश है दिन वहीं है। श्रीराम के वन चले जाने पर, श्रीअयोध्या उन्हीं के साथ चली जायेगी। यदि श्रीसीताराम जी वन जा रहे हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कोई कार्य नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइय सकल प्रान की नाईं।।
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।।

भा०– यद्यपि गुरु, पिता, माता, बड़ा भाई, देवता और स्वामी इन सब की प्राण के समान सेवा करनी चाहिये, परन्तु श्रीराम इस मान्यता से भी ऊपर हैं, क्योंकि भगवान् श्रीराम प्राणों को भी प्रिय हैं, जीवात्मा के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित मित्र हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। मानिय सबहिं राम के नाते।।
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।

भा०– संसार में जहाँ तक पूजा के योग्य और परमप्रिय अर्थात् पवित्र प्रेम के आश्रय लोग हैं, सबको श्रीराम के ही सम्बन्ध से मानना चाहिये अर्थात् जिनका श्रीराम से सम्बन्ध नहीं है, वे न तो पूजा करने के योग्य हैं और न ही प्रेम करने योग्य। हे बेटे लक्ष्मण! ऐसा हृदय में जानकर तुम सीताराम जी के साथ वन जाओ और जगत् में जीने का लाभ ले लो।

दो०- भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौ तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ।।७४।।

भा०– हे लक्ष्मण! मैं बलिहारी जाती हूँ, यदि तुम्हारे मन ने छल छोड़कर श्रीराम के चरणों में स्थान अर्थात् निवास स्थान बना लिया है और यदि छल छोड़े हुए तुम्हारे मन को श्रीराम के चरणों ने अपना निवासस्थान बना लिया, तब तुम मेरे सहित बहुत बड़े सौभाग्य के पात्र बन गये हो।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई।।
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी। राम बिमुख सुत ते हित हानी।।

भा०– वही युवती महिला पुत्रवती अर्थात् सुन्दर पुत्र को जन्म देने वाली है और वही पुत्रवती युवती अर्थात् वास्तविक नारी है, जिसका पुत्र श्रीराम का भक्त हो, नहीं तो भगवत् विमुख पुत्र की माँ से तो बाँझ अर्थात् बंध्यास्त्री श्रेष्ठ है। भगवान् का भजन नहीं करने वाले पुत्र को जन्म देकर माता व्यर्थ बियायी अर्थात् पशु जैसी संतान को क्यों जन्म दिया? श्रीराम से विमुख पुत्र से माता के हित की हानि हो जाती है।

विशेष : पुत्रवती शब्द में मतुप् प्रत्यय प्राशस्त्य अर्थ में हुआ है।

तुम्हरेहिं भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।

भा०– हे बेटे! तुम्हारे भाग्य से श्रीराम वन को जा रहे हैं, उनके वनवास में दूसरा और कुछ भी कारण नहीं है। जो भगवान् श्रीराम एवं भगवती श्रीसीता के श्रीचरणों में स्वाभाविक स्नेह है वही सम्पूर्ण सत्कर्मों का सबसे बड़ा फल है।

राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहु इनके बश होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।

भा०– हे लक्ष्मण! राग, क्रोध, ईर्ष्या, मद और मोह इन पाँच विकारों के वश में स्वप्न में भी मत होना अर्थात् मुझ पर और उर्मिला पर राग मत करना, कैकेयी पर क्रोध मत करना, श्रीवैष्णव के प्रति ईर्ष्या मत करना, अपनी सेवा पर मद मत करना और श्रीराम पर मोह मत करना। यदि ये आ भी जायें तो इन्हें नियंत्रित कर लेना। सभी प्रकार के विकारों को छोड़कर मन, वाणी, शरीर से सेवा करना।

तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू।।
जेहिं न राम बन लहहिं कलेशू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेशू।।

भा०– जिनके साथ श्रीराम–सीता जी जैसे पिता–माता हों, ऐसे तुम्हारे लिए तो वन में सब प्रकार से सुपास अर्थात् सभी सुविधायें हैं। हे पुत्र! श्रीराम जिससे वन में क्लेश नहीं पायें तुम वही करना मेरा यही उपदेश है।

छं०: उपदेश यह जेहिं तात तुमते राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।।
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आशिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।।

भा०– हे तात्! मेरा यही उपदेश है कि, जिससे श्रीराम एवं भगवती सीता जी तुमसे सुख पाते रहें और वन में पिता, माता, प्रिय परिवार और अयोध्या तथा सुख की स्मृति भूल जायें। तुलसीदास जी कहते हैं, इस प्रकार पुत्र लक्ष्मण को शिक्षा देकर, माता सुमित्रा जी ने उन्हे वन जाने की आज्ञा दी फिर आशीर्वाद दिया कि, तुम्हारे हृदय में श्रीसीताराम जी के चरणों के प्रति अविरल निर्मल और नित्य–नित्य नवीन भक्ति हो।

सो०- मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत शंकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग बश।।७५।।

भा०- माता सुमित्रा जी के चरणों में मस्तक नवाकर, उर्मिला जी के सम्बन्ध में हृदय में शंकित होते हुए श्रीलक्ष्मण उसी प्रकार चल पड़े मानो सौभाग्यवश हरिण भयंकर जाल को तोड़कर वन की ओर भग गया हो। यहाँ शंकित शब्द का प्रयोग करके गोस्वामी जी ने लक्ष्मण जी की उर्मिला जी के साथ चलने की इच्छा की आशंका स्पष्ट कर दी और मृग द्वारा जाल तोड़ने का उदाहरण देकर लक्ष्मण जी के वैराग्य का संकेत दे दिया। इस संबन्ध में विशेष जानने के लिये मेरे द्वारा लिखित ''मानस में सुमित्रा'' नामक पुस्तक अवश्य पढ़िये।

गए लखन जहँ जानकिनाथा। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथा।।
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए।।

भा०- जहाँ जानकीपति भगवान् श्रीराम थे लक्ष्मण जी वहाँ गये। प्रेमास्पद श्रीराम का साथ पाकर, लक्ष्मण जी मन में प्रसन्न हुए। श्रीसीता–राम जी के सुहावने चरणों को वंदन करके उनके संग चले। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण विदा लेने के लिए महाराज दशरथ जी के भवन आये।

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी।।
तनु कृश मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने।।

भा०- पुर (अवधपुर) के पुरुष–स्त्री परस्पर कह रहे हैं कि, ब्रह्मा जी ने अच्छी बात बनाकर बिगाड़ दी। उनका शरीर दुर्बल है, मन में दुःखी और मुख से उदास नर–नारी इतने दुःखी हैं, मानो मधु को छीन लेने पर मधुमक्खीयाँ व्याकुल हो गई हों।

कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।।
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषाद अपारा।।

भा०- नगर के नर–नारी हाथ मलते और सिर पीट कर पछताते हैं, जैसे पंखों के बिना पक्षी अकुला रहे हों। महाराज के द्वार पर बहुत भीड़ हो गई है, वह अपार विषाद वर्णन नहीं किया जा सकता।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन राम पगु धारे।।
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी।।

भा०- श्रीराम पधारे हैं, यह प्रिय वचन कहकर, मंत्री सुमंत्र जी ने उठाकर महाराज को बिठाया। वनगमन के लिए तैयार सीता जी के सहित दोनों पुत्रों श्रीराम, लक्ष्मण को देखकर पृथ्वी के स्वामी महाराज दशरथ जी बहुत व्याकुल हो गये।

दो०- सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बश, राउ लेइ उर लाइ।।७६।।

भा०- सीता जी के सहित दोनों सुन्दर पुत्रों श्रीराम, लक्ष्मण को पुनः–पुनः देखकर शोक से आकुल महाराज दशरथ जी, स्नेहवश बारम्बार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। शोक जनित उर दारुन दाहू।।

भा०- महाराज बोल नहीं सक रहे हैं, अत्यन्त व्याकुल है, उनके हृदय में पुत्र श्रीराम के वियोग की सम्भावना से उठे हुए शोक से उत्पन्न भयंकर दाह (जलन) हो रहा है।

नाइ शीष पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा।।
पितु आशिष आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमय कत कीजै।।
तात किए प्रिय प्रेम प्रमादू। जस जग जाइ होइ अपबादू।।

भा०– तब रघुकुल के वीर श्रीराम ने उठकर, अत्यन्त प्रेम से पिताश्री के चरण में मस्तक नवाकर, वन जाने के लिए विदा माँगी, हे पिताश्री! मुझे आशीर्वाद तथा चौदह वर्षो के लिए वन जाने का आदेश दीजिये। आप हर्ष के समय विषाद क्यों कर रहे हैं? हे तात्! प्रेमास्पद के प्रेम के कारण प्रमाद करने पर यश चला जाता है और जगत् में बहुत निन्दा होती है।

सुनि सनेह बश उठि नरनाहा। बैठारे रघुपति गहि बाँहा।।
सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं।।
शुभ अरु अशुभ करम अनुहारी। ईश देइ फल हृदय बिचारी।।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई।।

दो०– और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोग।।७७।।

भा०– श्रीराम का वचन सुनकर, प्रेम के वश हुए महाराज दशरथ जी ने उठकर दोनों हाथ पकड़कर रघुकुल के स्वामी श्रीराम को निकट बैठा लिया और बोले, हे मेरे वत्सल प्रेम के आश्रय श्रीराम! आपके लिए मुनिजन कहते हैं कि, श्रीराम चर्–अचर् अर्थात् चेतन–जड़ (चित्–अचित्) वर्ग के नायक हैं। शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार हृदय में विचार करके ईश्वर फल देते हैं। जो जैसा कर्म करता है उसको वही फल मिलता है, वेद की यही नीति है, ऐसा सभी लोग कहते हैं। किन्तु अपराध कोई दूसरा करे फल किसी दूसरे को मिले भगवान् की गति बहुत विचित्र है, इसे जगत् में कौन जानने योग्य है? तात्पर्य यह है कि, मेरे अपराध का फल आप क्यों भोग रहे हैं?

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छल त्यागी।।
लखा राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने श्रीराम को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत से उपाय किये, किन्तु उन्होंने जब श्रीराम का रुख देख लिया और जान गये कि, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, विकारों से भी नहीं विचलित होने वाले, चतुर श्रीराम नहीं रह रहे हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्हीं।।
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए।।

भा०– तब महाराज ने भगवती सीता जी को हृदय से लगा लिया। उन्हें अत्यन्त प्रेम से बहुत प्रकार से शिक्षा दी। महाराज ने सीता जी को वन के असहनीय दु:ख कह सुनाये, उसके विपरीत सासु, श्वसुर और पिता का सुख समझाया। महाराज का संकेत यह था कि, चौदह वर्ष पर्यन्त, सीता जी ससुराल और मायके में रह कर समय काट लें।

सिय मन राम चरन अनुरागा। घर न सुगम बन बिषम न लागा।।
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई।।

भा०– सीता जी का मन श्रीराम के चरणों में अनुरक्त था, इसलिए उन्हें न तो घर सुगम लगा और न ही वन भयंकर लगा और भी सभी लोगों ने वन की विपत्ति की अधिकता कह–कह कर सीता जी को समझाया।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी।।
तुम कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू।।

भा०– मंत्रियों की पत्नियाँ तथा चतुर गुरुपत्नी अरुंधती जी प्रेम के सहित कोमल वाणी में सीता जी से कहती हैं, सीते! तुम्हें तो वनवास नहीं दिया गया है, इसलिए, जो तुम्हारे श्वसुर, गुरुदेव वसिष्ठ और सासु जी कहते हैं, तुम वही करो अर्थात् वन में मत जाओ।

दो०- सिख शीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सोहानि।
शरद चंद्र चंदिनि निरखि, जनु चकई अकुलानि।।७८।।

भा०– शीतल, कल्याणकारिणी, मधुर और कोमल शिक्षा सीता जी को सुनकर नहीं अच्छी लगी। शरद्कालीन चन्द्रमा की चांदनी को देखकर, मानो चकई अकुला गई हो।

सीय सकुच बश उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई।।
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी।।
नृपहिं प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। शील सनेह न छाड़िहि भीरा।।
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुमहिं जान बन कहिंहिं न काऊ।।
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा।।

भा०– संकोच के वश में होने के कारण सीता जी उत्तर नहीं दे रही हैं। महाराज दशरथ, मंत्रीपत्नी और गुरुपत्नी का वह वचन सुनकर क्रोध में तमतमाई हुई कैकेयी उठी। मुनियों के लिए उचित वल्कलवस्त्र, तिलक आदि आभूषण और कमण्डल आदि पात्रों को लाकर, श्रीराम के आगे रखकर, कोमल वाणी में बोली, हे रघुवीर! आप महाराज को प्राण के समान प्रिय हैं। भयभीत महाराज शील और स्नेह दोनों नहीं छोड़ेंगे परन्तु इससे उनके पुण्य, सुयश और परलोक का नाश हो जायेगा, फिर भी वे आपको वन जाने के लिए कभी नहीं कहेंगे, पर आपको महाराज के बिना कहे ही उनकी इच्छा का आदर करना चाहिये। ऐसा विचार कर, वही कीजिये जो आपको अच्छा लगे। माता कैकेयी की शिक्षा सुनकर श्रीराम ने सुख पाया अर्थात् प्रसन्न हुए।

भूपहिं बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे।।
लोग बिकल मुरछित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू।।
राम तुरत मुनि बेष बनाई। चले जनक जननिहिं सिर नाई।।

भा०– महाराज को कैकेयी के वचन बाण के समान लगे। वे सोचने लगे कि, अभागे प्राण प्रयाण नहीं कर रहे हैं, अर्थात् शरीर छोड़कर क्यों नहीं चले जा रहे हैं? लोग विकल हैं और महाराज मूर्च्छित हो गये। क्या किया जाये किसी को कुछ नहीं सूझ रहा है? श्रीराम तुरन्त मुनिवेश बनाकर अर्थात् वल्कलवस्त्र पादुका, कमण्डल धारण करके, पिता दशरथ और माता कैकेयी को मस्तक नवाकर वन के लिए चल पड़े।

दो०- सजि बन साज समाज सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहिं अचेत।।७९।।

भा०– वन की सज्जा और सभी उपकरणों से सुसज्जित होकर युवती पत्नी सीता एवं प्रत्येक परिस्थिति में सहायक छोटे भाई लक्ष्मण के साथ ब्राह्मणों और गुरुदेव के चरणों का वंदन करके वहाँ उपस्थित सभी नर–नारियों को चेतनाशून्य अर्थात् मूर्च्छित करके प्रभु श्रीराम वन को चल पड़े।

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े।।
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए।।
गुरु सन कहि बरषाशन दीन्हे। आदर दान बिनय बश कीन्हे।।
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे।।

भा०– राजभवन से निकलकर सीताजी, लक्ष्मण जी सहित श्रीराम वसिष्ठ जी के द्वार पर खड़े हो गये। उन्होंने सभी लोगों को विरह रूप दावाग्नि से जलते हुए देखा। प्रिय वचन कहकर प्रभु ने सभी नर–नारियों को समझाया और पाँचों वीरताओं से सम्पन्न रघुकुल के वीर श्रीराम ने ब्राह्मणों के समूहों को बुला लिया। गुरुदेव वसिष्ठ जी से प्रार्थना करके बुलाये हुए सभी ब्राह्मणों के लिए बरषाशन अर्थात् चौदह वर्षों के लिए भोजन दिया। सभी ब्राह्मणों को प्रभु ने आदर, दान और विनय के वश में कर लिया। भिक्षुकों को दान और मान से संतुष्ट किया। पवित्र मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रभु ने परितुष्ट किया अर्थात् प्रेम का ही पारितोषिक दिया।

विशेष– भाव यह है कि, ब्राह्मणों को चौदह वर्ष के दिनों के अनुसार, आय–व्यय का लेखा–जोखा तैयार करके, उतना ही अन्न गुरुदेव के आश्रम में उपस्थित कर दिया और गुरुदेव से प्रार्थना कर ली।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि बोले कर जोरी।।
सब कर सार सँभार गोसाँईं। करब जनक जननी की नाईं।।

भा०– मिथिला से आये हुए दासियों और दासों को बुलाकर, उन्हें गुरुदेव को सौंपकर प्रभु हाथ जोड़कर बोले, हे स्वामिन्! इन सभी दासी, दासों का आप माता–पिता की भाँति प्रबन्ध और सम्भाल कीजियेगा।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत राम सब सन मृदु बानी।।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि ते रहैं भुआल सुखारी।।

भा०– बार–बार दोनों हाथ जोड़कर श्रीराम सब से कोमल वाणी में कह रहे हैं कि, वही सब प्रकार से मेरा हितकारी होगा, जिससे महाराज सुखी रहेंगे।

दो०– मातु सकल मोरे बिरह, जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम करेहु सब, पुर जन परम प्रबीन।।८०।।

भा०– हे परमकुशल अवधपुरवासियों! तुम सब वही उपाय करना जिससे मेरी सभी मातायें मेरे दुःख से दीन न हो जायें।

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिर नावा।।
गनपति गौरि गिरीश मनाई। चले अशीष पाइ रघुराई।।

भा०– इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने सबको समझाया और प्रसन्न होकर, गुरुदेव जी के चरणों में मस्तक नवाया। गुरुदेव का आशीर्वाद पाकर, श्रीगणेश, पार्वती एवं शिव जी से प्रार्थना करके रघुकुल के राजा श्रीराम वन को चल पड़े।

राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू।।
कुसगुन लंक अवध अति शोकू। हरष बिषाद बिबश सुरलोकू।।

भा०– श्रीराम के चलते समय अवधवासियों को बहुत दुःख हुआ। अवधपुर का आर्तनाद सुना नहीं जाता था। उस समय लंका में अपशकुन, अयोध्या में अत्यन्त शोक और देवलोक हर्ष तथा विषाद दोनों के वश में था, अर्थात् देवता श्रीराम वनगमन से प्रसन्न थे और अयोध्यावासियों की दयनीय दशा देखकर दुःखी थे।

गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्र कहन अस लागे।।
राम चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तनु माहीं।।

भा०– मूर्च्छा गई तब महाराज जगे, सुमंत्र जी को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे, सुमंत्र! श्रीराम तो वन को चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। यह किस सुख के लिए अभी शरीर में रह रहे हैं।

यहि ते कवन ब्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजिहिं तनु प्राना।।
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम जाहू।।

भा०– इससे कौन व्यथा अधिक बलवती होगी, जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे? फिर महाराज धैर्य धारण करके कहने लगे, हे मित्र! रथ लेकर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी के संग जाओ।

दो०– सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बन, फिरेहु गए दिन चारि।।८१।।

भा०– अत्यन्त सुकुमार दोनों राजपुत्रों श्रीराम, लक्ष्मण को तथा सुकुमारी जनकराजपुत्री सीता जी को रथ पर चढ़ाकर वन दिखला कर, चार दिन बीतने पर लौट आना।

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई।।
तौ तुम बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेश किशोरी।।

भा०– यदि धीरशिरोमणि दोनों भाई नहीं लौटें, क्योंकि वे रघुकुल के राजा श्रीराम, सत्यसंध और दृढ़व्रत हैं, तब तुम हाथ जोड़कर विनय कर लेना कि, हे प्रभु! जनक किशोरी सीता जी को ही अयोध्या लौटा दीजिये।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसर पाई।।
सासु ससुर अस कहेउ सँदेशू। पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेशू।।

भा०– जब सीता जी वन देखकर डर जायें, तभी अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना। हे पुत्री सीते! आपके सास, श्वसुर ने इस प्रकार संदेशा कहा है, आप अयोध्या लौट चलिए, वन में बहुत क्लेश अर्थात् कष्ट है।

पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी।।
यहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा।।

भा०– कभी पिता जनक जी के घर में तो कभी ससुराल में, आप वहीं रहना। जहाँ आप की रुचि हो। इस प्रकार, उपायों का समूह प्रस्तुत करियेगा, यदि सीता जी लौट आयें तो मेरे प्राण का अवलम्ब हो जायेगा।

नाहिं त मोर मरन परिनामा। कछु न बसाइ भयउ बिधि बामा।।
अस कहि मुरछि परेउ महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ।।

भा०- नहीं तो परिणाम में मेरा मरण ही होगा। कुछ वश नहीं चल रहा है, विधाता प्रतिकूल हो गये हैं, ऐसा कहकर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को लाकर मुझे दिखाओ, इस प्रकार क्रंदन करके महाराज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

दो०- पाइ रजायसु नाइ सिर, रथ अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ।।८२।।

भा०- महाराज की राजाज्ञा पाकर, मस्तक नवाकर, अत्यन्त वेगशाली रथ सजाकर सुमंत्र जी नगर के बाहर गये, जहाँ सीता जी के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण विराज रहे थे।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ राम चढ़ाए।।
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहिं सिर नाई।।

भा०- तब सुमंत्र जी ने महाराज का आदेश सुनाया और विनती करके श्रीराम को रथ पर चढाया, सीता जी के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण हृदय में विराजमान श्रीअवध को प्रणाम करके वन को चल दिये।

चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा।।
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बश पुनि फिरि आवहिं।।

भा०- श्रीराम के चलते समय, श्रीअवध को अनाथ देखकर, सभी व्याकुल अवधवासी प्रभु के साथ लग गये। कृपा के सागर श्रीराम, अवधवासियों को बहुत प्रकार से समझाते हैं। अयोध्यावासी लौटते हैं, फिर प्रेमवश होकर प्रभु के पास आ जाते हैं।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी।।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी।।
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।
बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं।।

भा०- अयोध्या अत्यन्त भयानक लग रही है, मानो वह अंधेरी कालरात्रि हो। नगर के नर, नारी भयंकर जीव–जन्तु के समान हो गये हैं। वे एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं। घर, श्मशान जैसा हो गया। नगरवासी यमदूत के समान लग रहे हैं। पुत्र, हितैषी, मित्रगण, मानो यमदूतों के समान दिखाई पड़ते हैं। वाटिकाओं में वृक्ष और लतायें सूख रही हैं, नदियाँ और तालाब देखे नहीं जा रहे हैं।

दो०- हय गय कोटिन केलिमृग, पुरपशु चातक मोर।
पिक रथांग शुक सारिका, सारस हंस चकोर।।८३।।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।।

भा०- हाथी, घोड़े, करोड़ों खेल के लिए रखे हुए मृग, नगर के पशु, चातक, मयूर, कोयल, चकवा, शुक अर्थात् तोता, मैंना, सारस, हंस तथा चकोर यह सब श्रीराम के वियोग से विकल होकर, जहाँ–तहाँ मानो दीवारों में खोद कर लिखे हुए चित्र के समान खड़े हैं।

नगर सकल जनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी।।
बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिशि दीन्ही।।

भा०– सम्पूर्ण अयोध्या मानो एक विशाल घना वन बन गया। उसमें रहनेवाले सभी नर–नारी, मानो अनेक पक्षी और पशु हैं। विधाता ने कैकेयी को भिलनी रूप में बनाया, जिसने दसों दिशाओं में असहनीय दावाग्नि लगा दी।

सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी।।
सबहिं बिचार कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं।।
जहाँ राम तहँ सबइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।।
राम चरन पंकज प्रिय जिनहीं। बिषय भोग बश करहिं कि तिनहीं।।

भा०– वे श्रीराम के विरह की अग्नि को नहीं सह सके और सभी लोग व्याकुल होकर भाग चले। सबने मन में विचार किया कि, श्रीसीता, श्रीराम तथा लक्ष्मण जी के बिना सुख की सम्भावना नहीं है। जहाँ श्रीराम हैं, वहीं सम्पूर्ण समाज है। रघुवीर श्रीराम के बिना अवध में कोई कार्य नहीं है, इस प्रकार मंत्रणा दृढ़ करके देव दुर्लभ सुखपूर्ण भवनों को छोड़कर अवधवासी श्रीराम के साथ चल दिये। जिनको श्रीराम के चरणकमल प्रिय हैं, क्या उन्हें विषय–भोग वश में कर सकते हैं?

दो०– बालक बृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ।।८४।।

भा०– बालक और वृद्ध, घर छोड़कर सभी लोग प्रभु के साथ लग गये। वनवास के प्रथम दिन श्रीरघुनाथ ने तमसा के तट पर निवास किया।

रघुपति प्रजा प्रेमबश देखी। सदय हृदय दुख भयउ बिशेषी।।
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइयहिं पीर पराई।।

भा०– रघुकुल के स्वामी श्रीराम ने अवध की प्रजा को अपने प्रेम के वश में देखा। उनके दयापूर्ण हृदय में विशेष दुःख हुआ। श्रीराम करुणास्वरूप, रघुकुल के नाथ और सभी जीवों के गो अर्थात् सभी के इन्द्रियों के स्वामी हैं। वे दूसरों की पीड़ा को शीघ्र ही पा जाते हैं अर्थात् जान जाते हैं और स्वीकार कर लेते हैं।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए।।
किए धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेम बश फिरहिं न फेरे।।

भा०– प्रेमपूर्वक सुहावने कोमल वचन कहकर, श्रीराम ने लोगों को बहुत प्रकार से समझाया। बहुत से धर्म सम्बन्धी उपदेश भी किये, किन्तु श्रीअवध के लोग प्रेम के वश होने के कारण लौटाने पर भी नहीं लौट रहे थे।

शील सनेह छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बश भे रघुराई।।
लोग शोक श्रम बश गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई।।

भा०– शील और स्नेह छोड़े नहीं जा सकते, श्रीराम असमंजस के विवश हैं अर्थात् वन जायेंगे तो शील की रक्षा होगी और अवध लौटेंगे तो स्नेह की रक्षा होगी, दोनों को एक साथ कैसे निभाया जाये? अवध के लोग शोक और श्रम के वश में होकर सो गये, देवमाया ने भी उनकी बुद्धि को कुछ मोहित कर दिया।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती।।
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता।।

भा०– जब दो प्रहर रात बीती, तब श्रीराम ने प्रेमपूर्वक मंत्री से कहा, हे तात्! खोज मारि अर्थात् रथ के पहियों के चिह्नों को मिटाते हुए रथ आगे चलाइये और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी।

दो०- राम लखन सिय यान चढ़ि, शंभु चरन सिर नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ।।८५।।

भा०- शिव जी के चरणों में मस्तक नवाकर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी रथ पर आरुढ़ हुए और मंत्री सुमंत्र जी ने भी इधर-उधर रथ चलाकर रथ के चिह्नों को नष्ट करके शीघ्र रथ को चला दिया।

जागे सकल लोग भए भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू।।
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।।

भा०- इधर सवेरा हुआ सभी अवधवासी जगे श्रीरघुनाथ चले गये हैं, तमसा तट पर बहुत कोलाहल हुआ। वे कहीं भी रथ का चिह्न नहीं पाते हैं। राम-राम कह कर चारों दिशाओं में दौड़ते हैं।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू।।
एकहिं एक देहिं उपदेशू। तजे राम हम जानि कलेशू।।

भा०- मानो समुद्र में जहाज डूब जाने से बहुत-बड़ा व्यापारियों का समाज व्याकुल हो उठा हो। एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि, श्रीराम ने वन में क्लेश जानकर ही हमको छोड़ दिया। अथवा, हम लोगों से स्वयं पर क्लेश की सम्भावना देखकर प्रभु श्रीराम ने हमें छोड़ दिया।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना।।
जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा।।

भा०- अवधवासी अपनी निन्दा करते हैं और मछली की प्रशंसा करते हैं अर्थात् जल के बिना मछली नहीं जीती, परन्तु हम श्रीराम के बिना क्यों जी रहे हैं? श्रीराम से विहीन होकर जीवन को धिक्कार है। यदि विधाता ने हमारा प्रियतम से वियोग किया तो फिर हमें माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी?

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा।।
बिषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आश सब राखहिं प्राना।।

भा०- इस प्रकार का प्रलाप अर्थात् निरर्थक वाक्यों के समूह का उच्चारण करते हुए, दुःख से भरे हुए अयोध्यावासी तमसा-तट से अवध लौट आये। उन्हें भगवान् श्रीराम का इतना भयंकर वियोग था, जो व्याख्यान द्वारा कहा नहीं जा सकता। सब लोग अवधि की प्रत्याशा में अपने प्राण रख रहे हैं।

दो०- राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि।।८६।।

भा०- श्रीराम जी के दर्शनों के लिए नर, नारी नियम और व्रतानुष्ठान करने लगे, मानो सूर्य के बिना चकवा, चकवी और कमल दीन हो गये हों।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। श्रृंगबेरपुर पहुँचे जाई।।
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरष बिशेषी।।
लखन सचिव सिय कीन्ह प्रनामा। सबहि सहित सुख पायउ रामा।।

भा०- श्रीसीता एवं सुमंत्र जी के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण जाकर शृंगबेरपुर पहुँच गये। देवनदी गंगा जी को देखकर, श्रीराम रथ से उतरे और विशेष प्रसन्नता के साथ गंगा जी को दंडवत् प्रणाम किया, लक्ष्मण, सुमंत्र

तथा सीता जी ने भी गंगा जी को प्रणाम किया। सभी तीनों परिकरों के सहित योगियों को भी रमाने वाले श्रीराम ने सुख पाया।

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब शूला।।
कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। राम बिलोकहिं गंग तरंगा।।

भा०– गंगा जी सभी प्रसन्नताओं और मंगलों की मूल हैं। वे सभी सुखों को उत्पन्न करनेवालीं और सभी दुःखों को हरनेवालीं हैं। इस प्रकार, करोड़ों कथा प्रसंगों को कह–कह कर, भगवान् श्रीराम, गंगा जी की तरंग अर्थात् लहरों के दर्शन कर रहे हैं।

सचिवहिं अनुजहिं प्रियहिं सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई।।
मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। शुचि जल पियत मुदित मन भयऊ।।
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू।।

भा०– सुमंत्रजी, लक्ष्मण जी और परम प्रेमास्पद सीता जी को देवनदी गंगा जी की महिमा की अधिकता सुनाकर, भगवान् श्रीराम ने गंगा जी में स्नान किया। उनके मार्ग का श्रम चला गया और पवित्र जल पीते ही श्रीराम का मन प्रसन्न हो गया। जिनका स्मरण करते ही श्रम का भार मिट जाता है उन्हें श्रम? यह तो नरलीला का व्यवहार है।

दो०– शुद्ध सच्चिदानन्दमय, राम भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु।।८७।।

भा०– शुद्ध सत्, चित् और आनन्दस्वरूप सूर्यकुल के पताका भगवान् श्रीराम मनुष्यों का अनुसरण करते हुए संसार सागर के सेतुरूप चरित्रों को प्रस्तुत करते हैं।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा।।

भा०– यह अर्थात् श्रीराम आगमन का समाचार जब गुहराज निषाद ने पाया तब प्रसन्न होकर उन्होंने अपने प्रिय बंधुओं को बुला लिया और बहंगियों में भर–भर कर फल और कंदमूल भेंट लिए हुए, मन में अपार हर्ष के साथ प्रभु श्रीराम से मिलने के लिए चले।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे।।
सहज सनेह बिबश रघुराई। पूँछी कुशल निकट बैठाई।।

भा०– प्रभु को दंडवत् करके उनके सामने भेंट रखकर, अत्यन्त अनुराग से भरे हुए निषादराज प्रभु श्रीराम को निहारने लगे। रघकुल के राजा श्रीराम, निषादराज के स्वाभाविक स्नेह के विवश होकर उन्हें निकट बैठाकर उनसे कुशल समाचार पूछने लगे।

नाथ कुशल पद पंकज देखे। भयउँ भागभाजन जन लेखे।।
देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।।

भा०– निषादराज ने कहा, हे नाथ! आपके श्रीचरणकमलों के दर्शन करके सब कुछ कुशल है। आज मैं लोगों की गिनती में भाग्य का पात्र बन गया। अथवा सौभाग्यपात्रों की गणना में आ गया। हे देव! पृथ्वी, धन, भवन यह सब कुछ आपका है, परिवार सहित कर्म से निकृष्ट मैं आपका सेवक हूँ।

कृपा करिय पुर धारिय पाँऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ।।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना।।

भा०– आप कृपा करके नगर में चरण रखें। अपने भक्त को स्थापित कर दें, जिससे सभी लोग सिहायें अर्थात् ईर्ष्यापूर्वक मेरी प्रशंसा करें। श्रीरघुनाथ ने कहा, हे चतुरमित्र! तुमने सब कुछ सत्य कहा है, पर पिताश्री ने मुझे दूसरी आज्ञा दी है।

दो०– बरष चारिदश बास बन, मुनि ब्रत बेष अहार।
ग्राम बास नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयउ दुख भार।।८८।।

भा०– मुझे चौदह वर्ष वन में निवास करना होगा। मेरा व्रत, वेश और आहार मुनियों का सा होगा, मुझे ग्रामवास उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बहुत बड़ा दुःख हुआ।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी।।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।।
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहिं बिधि दीन्हा।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण और भगवती सीता जी के रूप को देखकर ग्राम के नरों की नारियाँ अर्थात् ग्राम–वधुयें प्रेमपूर्वक कहने लगीं, हे सखी! वे पिता–माता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेजा दिया? उनमें से एक लोग कहने लगे महाराज ने बहुत अच्छा किया विधाता ने हमें नेत्रों का लाभ दे दिया।

तब निषादपति उर अनुमाना। तरु शिंशुपा मनोहर जाना।।
लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा।।

भा०– तब निषादराज ने हृदय से अनुमान किया अर्थात् प्रभु के अनुकूल सम्मान किया। अशोक वृक्ष को सुन्दर जाना और श्रीराम को लिवा कर, वह स्थान दिखलाया। श्रीराम ने कहा, यह सब प्रकार से सुन्दर है।

पुरजन करि जोहार घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए।।
गुह सँवारि साथरी डसाई। कुश किसलयमय मृदुल सुहाई।।

भा०– शृंगबेरपुरवासी प्रभु को प्रणाम करके अपने–अपने घर लौट आये। श्रीराम संध्या करने के लिए पधारे तब निषादराज गुह ने कुश और पल्लव से युक्त कोमल सुन्दर सँवार कर साथरी बिछायी अर्थात् भूमि पर शैय्या बिछा दी।

शुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी।।

भा०– पवित्र फल और कंदमूल को मधुर और कोमल जानकर, दोने में भर–भर कर लाकर सामने रखा।

दो०– सिय सुमंत्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ।
शयन कीन्ह रघुमंशमनि, पायँ पलोटत भाइ।।८९।।

भा०– सीता जी, सुमंत्र जी तथा भ्राता लक्ष्मण जी के साथ कंदमूल, फल खाकर रघुवंश के मणि श्रीराम जी ने उसी साथरी पर शयन किया और भाई लक्ष्मण जी प्रभु के चरण दबाने लगे।

उठे लखन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन मृदु बानी।।
कछुक दूरि सजि बान शरासन। जागन लगे बैठि बीरासन।।

भा०– प्रभु को शयन करते जानकर, कोमल वाणी में मंत्री सुमंत्र जी को सोने के लिए कहकर लक्ष्मण जी उठे। श्रीराम की शैय्या से कुछ दूरी पर धनुष पर बाण सजाकर वीरासन पर बैठ कर, लक्ष्मण जी जगने लगे।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती।।
आपु लखन पहँ बैठेउ जाई। कटि भाथी शर चाप चढ़ाई।।

भा०– निषादराज गुह ने विश्वस्त पहरा देनेवालों को बुलाकर, अत्यन्त प्रेम से स्थान–स्थान पर रख दिया। कटि प्रदेश में तरकस, धनुष तथा बाण चढ़ाकर स्वयं लक्ष्मण जी के पास जाकर बैठ गये।

सोवत प्रभुहिं निहारि निषादू। भयउ प्रेम बश हृदय बिषादू।।
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई।।

भा०– प्रभु को सोते हुए देखकर निषादराज प्रेमवशात् हृदय में बहुत दुःखी हुए। उनका शरीर रोमांचित हो उठा नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। वे प्रेमपूर्वक लक्ष्मण जी से वचन कहने लगे।

भूपति भवन स्वभाव सुहावा। सुरपति सदन न पटतर पावा।।
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे।।

भा०– महाराज दशरथ जी का भवन स्वभावतः सुन्दर है। इन्द्र का भवन भी उसकी समता को नहीं पा सकता। उसमें सुन्दर मणियों से रचित मनोहर चौबारे अर्थात् चार द्वारों वाले ऐसे छतों के ऊपर के बंगले हैं, जिन्हें कामदेव ने मानो अपने हाथ से सजाये हैं।

दो०– शुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास।।९०।।

भा०– जो पवित्र, अत्यन्त विचित्र अर्थात् विविध चित्रों से युक्त, सुन्दर भोग की सामग्रियों से समन्वित, सुगंधित पुष्पों की सुन्दर सुरभि से युक्त हैं, जहाँ अत्यन्त सुन्दर पलंग तथा मणियों के दीपक विराजते हैं। जहाँ सब प्रकार की सभी सुविधायें हैं।

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बिशद सुहाई।।
तहँ सिय राम शयन निशि करहीं। निज छबि रति मनोज मद हरहीं।।

भा०– अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र और सुन्दर तकिया तथा दूध के फेन के समान श्वेत–सुन्दर तोषकें जिन पलंगों पर बिछायी गई हैं, उन्हीं पलंगों पर रात्रि में श्रीसीताराम जी शयन करते हैं, जो अपनी छवि से रति और कामदेव के मद को भी हर लेते हैं।

ते सिय राम साथरी सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए।।
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुशील दास अरु दासी।।
जोगवहिं जिनहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं।।

भा०– वे ही श्रीसीताराम जी श्रमित होकर, बिना चादर के कुश की चटाई पर सोये हुए हैं, जो देखे नहीं जाते हैं। जिन श्रीराम को माता–पिता, कुटुम्बी जन, पुरवासी, सुन्दर शील वाले मित्रगण, दास, दासियाँ प्राण के समान सावधानी से बचा–बचा कर रखते हैं। वे ही पृथ्वी के स्वामी श्रीराम आज पृथ्वी पर सो रहे हैं।

पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेश सखा रघुराऊ।।
रामचंद्र पति सो बैदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही।।

भा०– संसार में विदित प्रभाववाले जनक जी जिनके पिता हैं तथा रघुकुल के राजा और इन्द्र के मित्र महाराज दशरथ जिनके श्वसुर हैं, प्रभु श्रीरामचन्द्र जैसे सर्वशक्तिमान प्रभु जिनके पति हैं, वही श्रीसीता पृथ्वी पर सो रहीं हैं। विधाता किस के लिए प्रतिकूल नहीं हैं ?

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू।।

भा०– क्या श्री सीताराम वन के योग्य हैं? क्या कर्म प्रधान है, यह बात लोग सत्य कहते हैं? अर्थात् श्रीसीताराम जी ने कौन–सा ऐसा कर्म किया है, जिससे इन्हें वनवास मिला?

दो०- कैकयनंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह।।९१।।

भा०– मन्दबुद्धि वाली कैकयराजपुत्री कैकेयी ने ऐसी कठिन कुटिलता की है, जिसने रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्रीराम तथा जनकनन्दिनी श्रीसीता को सुख के अवसर पर दुःख दिया है।

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिश्व दुखारी।।
भयउ बिषाद निषादहिं भारी। राम सीय महि शयन निहारी।।

भा०– कैकेयी सूर्यकुल रूप वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी बन गई। इस कुत्सितबुद्धि वाली कैकेयी ने सम्पूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया। श्रीराम–सीता को पृथ्वी पर शयन करते हुए देखकर, निषादराज गुह को बहुत दुःख हुआ।

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता।।

भा०– लक्ष्मण जी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिरस से सनी हुई मीठी कोमल वाणी बोले, हे भाई! कोई किसी को सुख–दुःख नहीं देता, सभी अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही सुख–दुःख भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।
जनम मरन जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू।।
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि ब्यवहारू।।
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।।

भा०– योग (संयोग), वियोग (अलगाव), भोग, भला, बुरा, हित, अहित, मध्यम अर्थात् उदासीन ये सब भ्रम के फंदे हैं। इस जगत् के जाल में जहाँ तक जन्म, मरण, संपत्ति, विपत्ति, कर्म तथा काल, पृथ्वी, भवन, धन, पुर, नगर, परिवार, स्वर्ग, और नरक इत्यादि, जहाँ तक व्यवहारिक सत्ता देखी, सुनी अथवा, मन में विचार की जा रही है, इसके मूल में केवल मोह है, यहाँ परमार्थ है ही नहीं।

दो०- सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ।।९२।।

भा०– जिस प्रकार, स्वप्न में राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र स्वर्ग का पति इन्द्र हो जाता है, पर जगने पर राजा, राजा ही रहता है और दरिद्र, दरिद्र ही रहता है। राजा को न कोई हानि होती है और न ही दरिद्र को कोई लाभ, इसी प्रकार इस प्रपंच को भी हृदय में समझना चाहिये। अर्थात् यह सम्पूर्ण व्यवहार क्षणभंगुर है, यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है।

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न दीजिय दोषू।।
मोह निशा सब सोवनिहारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।

भा०– ऐसा विचार कर क्रोध मत कीजिये और किसी को भी व्यर्थ का दोष मत दीजिये। इस मोहरूप रात्रि में सभी सोने वाले लोग, अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। इस जगत् की रात्रि में परमार्थ के चिन्तक, प्रपंच से दूर रहने वाले योगी लोग ही जागते हैं।

जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।।
होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।।

भा०– जीव को तभी जगत् में जागा हुआ जानना चाहिये, जब वह संसार के विषयों के विलासों से विरक्त हो जाये। उसके मन में विवेक हो, उसका मोह–भ्रम भग जाये, तब उसे श्रीराम के चरणों में अनुराग प्राप्त हो जाता है।

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा।।

भा०– हे मित्र यही परम परमार्थ है, जहाँ जीव को मन, शरीर और वाणी से श्रीराम जी के चरणों में स्नेह उत्पन्न हो जाये। श्रीराम परब्रह्म हैं, परमार्थ अर्थात् मोक्ष उनका रूप है। वे अविगत् अर्थात् कहीं से गये हुए नहीं हैं, वे सर्वव्यापक हैं, किन्तु प्राकृतिक नेत्रों से नहीं दिखते, इसलिए अलख हैं। वे आदिरहित होने के कारण अनादि और उपमाओं से रहित होने के कारण अनूप हैं। प्रभु श्रीराम सम्पूर्ण विकारों से रहित तथा अपने–पराये के भेद से शून्य हैं। वेद निरन्तर 'न इति' अर्थात् 'यह भी नहीं, यह भी नहीं", ऐसा कहकर उनका निरन्तर निरूपण करते हैं।

दो०– भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिं जग जाल।।९३।।

भा०– भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिए, कृपालु श्रीराम, मनुष्य का शरीर धारण करके चरित्र करते हैं। उसे सुनकर संसार के जाल मिट जाते हैं।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू।।
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल दातारा।।

भा०– हे मित्र! ऐसा समझकर, मोह छोड़कर श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में अनुरक्त हो जाओ। इस प्रकार, लक्ष्मण जी द्वारा श्रीराम के गुण कहते–कहते प्रातःकाल हो गया और जगत् को मंगल देने वाले श्रीराम जग गये।

सकल शौच करि राम नहावा। शुचि सुजान बट छीर मँगावा।।
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए।।

भा०– सब प्रकार की शौचक्रिया सम्पन्न कर भगवान् श्रीराम ने गंगा जी में स्नान किया। संध्यावंदन के अनंतर पवित्र और चतुर श्रीराम ने बड़ का दूध मंगवाया, उससे लक्ष्मण जी के सहित प्रभु ने अपने सिर पर जटा बनायी। यह देखकर सुमंत्र जी की आँखों में आँसू छा गये।

हृदय दाह अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना।।
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथ जाहु राम के साथा।।

भा०– सुमंत्र जी के हृदय में अत्यन्त दाह (जलन) हुआ। उनका मुख अत्यन्त मलीन अर्थात् हर्ष से रहित, दुःखी हो गया। सुमंत्र जी हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन कहने लगे, हे नाथ! अयोध्याधिपति महाराज दशरथ जी ने मुझसे इस प्रकार कहा था, हे सुमंत्र! रथ लेकर श्रीराम के साथ जाओ।

बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनहु फेरि बेगि दोउ भाई।।
लखन राम सिय आनेहु फेरी। संशय सकल सँकोच निबेरी।।

भा०– वन दिखाकर गंगा जी में स्नान करा कर दोनों भाइयों को शीघ्र अयोध्या लौटा लाओ। सभी संशयों और संकोचों को समाप्त करके, लक्ष्मण, श्रीराम और श्रीसीता को लौटा लाओ।

दो०– नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायँन परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ।।९४।।

भा०– महाराज ने इस प्रकार कहा है, हे इन्द्रियों के स्वामी ऋषिकेश परमात्मा श्रीराम! आप जो कहें मैं वह करुँ। मैं आपके बलिहारी जाता हूँ, इस प्रकार प्रार्थना करके सुमंत्र जी प्रभु श्रीराम के चरण पर गिर पड़े और छोटे बालक की भाँति रो दिये अर्थात् फूट–फूट कर रो पड़े।

तात कृपा करि कीजिय सोई। जाते अवध अनाथ न होई।।
मंत्रिहिं राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मत तुम सब सोधा।।

भा०– हे नाथ! आप कृपा करके वही करें जिससे अवध अनाथ न हो जाये। अपने चरणों पर पड़े हुए मंत्री को उठाकर, श्रीराम ने समझाया, हे तात्! आपने धर्म के सभी मतों का शोधन किया है अर्थात् धर्म के सामान्य और विशेष सभी पक्ष आप को ज्ञात हैं।

शिवि दधीचि हरिचंद्र नरेशा। सहे धरम हित कोटि कलेशा।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना।।
धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।

भा०– शिवि, दधीचि, महाराज हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों क्लेश सहे हैं। महाराज रन्तिदेव, दैत्यराज बलि और भी चतुर राजाओं ने अनेक संकट सहकर धर्म को धारण किया। सत्य के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। यह बात आगमों, वेदों एवं पुराणों ने व्याख्यान के माध्यम से गाकर सुनायी है।

मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजस छावा।।
संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।।

भा०– उसी धर्म को मैंने सुलभ करके सहजता से प्राप्त कर लिया है, इसे छोड़ने से तीनों लोकों में अपयश छा जायेगा। संभावित अर्थात् सम्मानित व्यक्ति के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मरण के समान असहनीय दाह कारक है, अर्थात् वह सहने योग्य नहीं जलन उत्पन्न कर देती है।

तुम सन तात बहुत का कहऊँ। दिए उतर फिरि पातक लहऊँ।।

भा०– हे तात्! आपको बहुत क्या कहूँ, उलट कर उत्तर देने से तो मैं पाप ही प्राप्त करूँगा।

दो०- पितु पद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात की, तात करिय जनि मोरि।।९५।।

भा०- पिताश्री के चरण पकड़कर करोड़ों प्रणाम कहकर, हाथ जोड़कर मेरी ओर से विनती कर लीजियेगा। हे पिताश्री! आप मेरी किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

तुम पुनि पितु सम अति हित मोरे। बिनती करउँ तात कर जोरे।।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे।।

भा०- फिर आप पिताश्री के समान ही मेरे अत्यन्त हितैषी हैं। मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। आपश्री का वही सब प्रकार से कर्त्तव्य है, जिससे पिताश्री मेरे शोक में दु:ख नहीं पायें।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू।।
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।।
सकुचि राम निज शपथ देवाई। लखन सँदेश कहिय जनि जाई।।

भा०- श्रीराम एवं मंत्री का संबाद सुनकर, परिवार के सहित निषादराज गुह विकल हो गये। फिर लक्ष्मण जी ने कुछ कटु वाणी कही। बड़ा अनुचित जानकर प्रभु ने लक्ष्मण जी को रोका। श्रीराम ने संकुचित होकर अपनी शपथ दिलायी और मंत्री से कहा कि, लक्ष्मण का संदेश जाकर मत कहियेगा।

कह सुमंत्र पुनि भूप सँदेशू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेशू।।
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबीर तुमहिं करनीया।।
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना।।

भा०- फिर सुमंत्र जी ने सीता जी के प्रति दिया हुआ महाराज दशरथ जी का संदेशा कहा, सीता जी वन का क्लेश नहीं सह सकेंगी। हे रघुकुल के वीर श्रीराम! जिस विधि से सीता जी अयोध्या लौट आयें, तुम्हें वही करणीय है अर्थात् करना चाहिये, नहीं तो अवलम्ब से पूर्णतया विहीन मैं उसी प्रकार नहीं जी सकूँगा, जैसे जल के बिना मछली नहीं जीता है।

दो०- मइके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तहँ तब रहहिं सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान।।९६।।

भा०- सीता जी के मायके जनकपुर और ससुराल अवधपुर में सब प्रकार के सुख हैं। जब तक विपत्तिरूप रात्रि का प्रात:काल नहीं हो, उसके मध्य जब, जहाँ उनका मन भाये तब, वहाँ सीता जी सुखपूर्वक रह लें।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती।।
पितु सँदेश सुनि कृपानिधाना। सियहिं दीन्ह सिख कोटि बिधाना।।

भा०- सुमंत्र जी फिर बोले, हे राघव! महाराज ने जिस प्रकार से प्रार्थना की है, वह आर्त (व्याकुलता) और वह प्रीति मुझसे कही नहीं जाती। पिताश्री का संदेश सुनकर, कृपानिधान श्रीराम ने सीता जी को करोड़ों प्रकार से शिक्षा दी।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू।।
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही।।

भा०– हे सीते! यदि तुम लौट जाओ, तो सासु, श्वसुर, गुरु और प्रिय परिवार इन सबका कष्ट दूर हो जायेगा। पति श्रीराम के वचन सुनकर, विदेह नन्दिनी जानकी जी कहने लगीं, हे मेरे परमस्नेह (दाम्पत्य प्रेम) के आश्रय प्राणेश्वर राघवेन्द्र! सुनिये–

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाह किमि छेकी।।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंद्र तजि जाई।।

भा०– हे प्रभु! आप में प्रचुर मात्रा में करुणा है, आप परम विवेकवान हैं। भला विचार कीजिये, शरीर को छोड़कर छाया रोकने से भी कैसे अलग रह सकती है? प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है और चन्द्रिका, चन्द्रमा को छोड़कर कहाँ जा सकती है?

पतिहिं प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई।।
तुम पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउँ फिरि अनुचित भारी।।

भा०– इस प्रकार, अपने पति श्रीराम को प्रेम प्रचुर विनय सुनाकर, सीताजी, मंत्री के सामने सुहावनी वाणी कहने लगीं, आप मेरे पिता तथा मेरे श्वसुर के समान हैं, मेरा हित करने वाले हैं, आपको उलटकर उत्तर दे रही हूँ, यह बहुत बड़ा अनुचित है।

दो०– आरति बश सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात।।९७।।

भा०– हे तात्! मैं अपने मन की व्याकुलता भरी आतुरता के कारण आपके सामने हुई हूँ। इससे विलग अर्थात् अन्यथा मत मानियेगा। आर्यपुत्र श्रीराघव के श्रीचरणकमल के बिना संसार में जहाँ तक नाते हैं, वे सब व्यर्थ हैं।

पितु बैभव बिलास मैं दीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा।।
सुखनिधान अस पितु गृह मोरे। पिय बिहीन मन भाव न भोरे।।

भा०– मैंनें पिताश्री जनकराज के वैभव का विलास भी देखा है, जिनकी चरण पादुकायें अधीनस्थ राजाओं के मुकुटमणियों से मिलती रहती हैं अर्थात् सामन्त राजा मेरे पिताश्री की चरण पादुका पर अपनी मुकुटमणियों को रखकर प्रणाम करते हैं। सुख के निधान, ऐसे पिताश्री का घर भी प्रियतम श्रीराम के बिना मेरे मन को भूल कर भी नहीं भाता।

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई।।
ससुर एतादृश अवध निवासू। प्रिय परिवार मातु सम सासू।।
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा।।

भा०– मेरे श्वसुर अयोध्याधिपति महाराज स्वयं चक्रवर्ती जी हैं, उनका प्रभाव चौदहों भुवन में प्रकट है। जिन्हें इन्द्र आगे होकर ससम्मान अपने भवन में लिवा लाते हैं और अपना आधा सिंहासन ही चक्रवर्ती जी को आसन देते हैं। इस प्रकार, के मेरे श्वसुर, अयोध्या जैसा निवास, प्यारा परिवार, माता के समान सासुयें ये सब कुछ श्रीरघुपति के श्रीचरणकमल के पराग के बिना मुझे स्वप्न में भी कोई सुखदायक नहीं लगता।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा।।
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा।।

भा०- अगम्यमार्ग, वन की भूमि, पर्वत, हाथी, सिंह, पार रहित तालाब और नदियाँ, कोल, किरात जैसी वनजातियाँ, मृग और पक्षी ये सभी प्राणपति श्रीराम के संग में मुझे सुखदायक ही लगते हैं।

दो०- सासु ससुर सन मोरि हुँति, बिनय करब परि पाँय।
मोर सोच जनि करिय कछु, मैं बन सुखी सुभाँय।।९८।।

भा०- मेरी ओर से मेरी सासुओं और श्वसुर जी को पाँव पकड़कर विनय कर लीजियेगा। मेरी कुछ भी चिन्ता नहीं करें, मैं स्वभावतः वन में सुखी हूँ।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा।।
नहिं मग श्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे।।

भा०- वीरों की धुरी को धारण करने वाले, धनुष और तरकस धारण किये हुए मेरे प्राणनाथ श्रीराघव और प्यारे देवर मेरे साथ हैं। मेरे मन में मार्ग का श्रम, किसी प्रकार का भ्रम तथा दुःख नहीं है। मेरे लिए भूलकर भी आप लोग शोक नहीं करें।

सुनि सुमंत्र सिय शीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी।।
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना।।

भा०- सीता जी की शीतल वाणी सुनकर, सुमंत्र जी उसी प्रकार व्याकुल हो गये, जैसे मणि की हानि से सर्प व्याकुल हो जाता है। वे इतने अधिक अकुला गये कि, न तो उन्हें नेत्रों से कुछ सूझता था और न ही कान से कुछ सुना जाता था, वे कुछ भी नहीं कह सक रहे थे।

राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं शीतल छाती।।
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे।।

भा०- श्रीराम ने बहुत प्रकार से प्रबोध किया अर्थात् समझाया, फिर भी उनकी छाती शीतल नहीं हो रही थी। सुमंत्र जी ने साथ चलने के लिए अनेक यत्न किये पर श्रीरघुनाथ ने उन्हें उचित उत्तर दिया। अथवा उचित न रघुनन्द उत्तर दीन्हे अर्थात आपका मेरे साथ चलना उचित न होगा इस प्रकार रघुकुल को आनंदित करने वाले श्रीराम ने सुमंत्र को उत्तर दिया।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करमगति कछु न बसाई।।
राम लखन सिय पद सिर नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई।।

भा०- श्रीराम जी की राजाज्ञा मिटायी नहीं जा सकती। कर्म की गति बहुत कठिन है, सुमंत्र जी का कुछ भी वश नहीं चल रहा है। श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी के चरणों में प्रणाम कर, सुमंत्र जी अवध की ओर ऐसे चल पड़े, जैसे व्यापारी बनिक ने अपना मूलधन ही गँवा दिया हो।

दो०- रथ हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबश, धुनहिं शीष पछिताहिं।।९९।।

भा०- सुमंत्र जी ने रथ को हाँका। घोड़े श्रीराम के शरीर को देख–देखकर हिनहिनाने लगे। घोड़े की ऐसी दशा देखकर, निषाद लोग सिर पीटने और पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे।।

भा०-जिनके वियोग में पशु इस प्रकार विकल हो रहे हों, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जी रहे हैं?

बरबस राम सुमंत्र पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए।।
माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना।।

भा०– श्रीराम जी ने हठपूर्वक तथा वर अर्थात् वरदान के वश में होने के कारण सुमंत्र जी को श्रीअवध भेजा, फिर आप श्रीसीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ गंगा जी के किनारे आये। श्रीराम ने नाव माँगी केवट नहीं लाया, उसने कहा, मैंने आपका मर्म जान लिया है।

विशेष– १. 'बरबस' शब्द में श्लेष अलंकार होने के कारण अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है। सामान्यतः बरबस शब्द का अर्थ, हठ होता है और श्लेष से वर वश इन दो शब्दों के योग से बरबस शब्द वरदान के वशीभूत अर्थ को भी कहता है। अर्थात् नारद जी द्वारा दिये हुए वरदान के अनुसार वन में वानर, भालू ही भगवान् श्रीराम की सहायता करेंगे। अतः वहाँ सुमंत्र जी की कोई आवश्यकता नहीं है।

२. रावण ने श्रीराम–लक्ष्मण के हाथ से ही अपनी तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु मांगी अतः वहाँ तृतीय मनुष्य की आवश्यकता नहीं है। अतः प्रभु ने सुमंत्र जी को अवध भेज दिया।

३. कैकेयी ने केवल श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी को श्रीराम के साथ वन जाने की अनुज्ञा दी है, अतः इन तीनों वरदानों के वश में होने के कारण श्रीराम ने सुमंत्र जी को अवध भेज दिया।

चरन कमल रज कहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत शिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।

भा०– सभी लोग आपके चरणकमल की धूलि के लिए कहते हैं कि, वह मनुष्य बनाने वाली कोई जड़ी है, जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुन्दर नारी बन गई तो पत्थर से काष्ठ कठिन नहीं होता। नाव भी मुनि की पत्नी हो जायेगी। मार्ग में ही मेरी नाव उड़ जायेगी। अथवा, ठगहारी हो जायेगी और मेरी नाव उड़ जायेगी।

एहिं प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु और कबारू।।
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।

भा०– इसी के द्वारा मैं सम्पूर्ण परिवार का पालन करता हूँ और कोई दूसरा कार्य नहीं जानता हूँ। हे प्रभु! यदि आप अवश्य पार जाना चाहते हैं, तो मुझे चरणकमल को पखारने के लिए कहिये।

छं०: पद पदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साँची कहौं।।
बरुतीर मारहुँ लखन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं।।

भा०– चरणकमल को धोकर नाव पर चढ़ाकर मैं उतराई नहीं चाहता हूँ। हे श्रीराम! मुझे आपकी सौगन्ध और दशरथ जी की शपथ है, मैं सब कुछ सत्य कह रहा हूँ। भले लक्ष्मण जी गंगा तट पर बाण से मारें, फिर भी जब तक चरण नहीं धोऊँगा, हे तुलसीदास के नाथ श्रीराम! तब तक आप को पार नहीं उतारूँगा।

सो०– सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी लखन तन।।१००।।

भा०– केवट के प्रेम से लपेटे, किन्तु अटपटे अर्थात् टेढ़े व्यंगोक्ति से भरे हुए वचन सुनकर, करुणा के धाम श्रीराम, सीता जी और लक्ष्मण जी के शरीर को देखकर ठहाके लगाकर हँसे।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।।
बेगि आनि जल पायँ पखारू। होत बिलंब उतारहि पारू।।

भा०– कृपा के सागर श्रीराम जी हँसकर बोले, वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाये। शीघ्रता से जल ले आकर चरण धो लो, बिलम्ब हो रहा है, हमें पार उतार दो।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।।
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहिं जग किय तिहुँ पगहु ते थोरा।।

भा०– जिसका नाम एक बार स्मरण करके साधक लोग अपार भवसिन्धु से पार उतर जाते हैं, जिन्होंने संसार को इस चरण से थोड़ा कर दिया था अथवा तीन चरणों से भी थोड़ा कर दिया था। उन्हीं कृपालु श्रीराम ने केवट का निहोरा किया अर्थात् अपना काम करवाने के लिए उसे मनाया।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी।।
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लै आवा।।

भा०– श्रीराम के चरण–नख को देखकर गंगा जी प्रसन्न हुईं और भगवान् के वचन सुनकर उनकी बुद्धि को मोह ने आकर्षित कर लिया, अर्थात् गंगा जी को थोड़ी देर के लिए भगवान् के प्रति मोह हो गया। तात्पर्य यह है कि, जब पार जाने के लिए भगवान् ने केवट से मनुहार की तब गंगा जी को क्षण भर के लिए यह लगा कि, श्रीराम भगवान् हैं या नहीं ? केवट ने श्रीराम से राजाज्ञा पाई और वह कठौता भर कर गंगा जी का जल ले आया।

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।।

भा०– अत्यन्त आनन्द और अनुराग में उमंगित होकर अर्थात् आप्लावित होकर केवट श्रीराघव के चरणकमल को पखारने लगा (धोने लगा)। सभी देवता पुष्पों की वर्षा करके ईर्ष्या के साथ केवट की प्रशंसा कर रहे हैं, इसके समान आज कोई भी पुण्यपुंज नहीं है। अर्थात पुण्य समूहों वाला नहीं है।

दो०– पद पखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लै पार।।१०१।।

भा०– स्वयं परिवार के सहित श्रीराम के चरणों को पखारकर चरणामृत जल का पान करके, पितरों को पार करा के, फिर प्रसन्नता से केवट श्रीसीता, लक्ष्मण जी के साथ प्रभु श्रीराम को नाव पर बिठा कर गंगा जी के पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता।।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।

भा०– गुह और लक्ष्मण जी के सहित श्रीसीताराम जी नाव से उतरकर गंगा जी की रेत अर्थात् बालू में खड़े हो गये। केवट ने नाव से उतरकर प्रभु को दंडवत किया। प्रभु को संकोच हुआ, मैंने इसे कुछ भी नहीं दिया।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई।।

भा०– प्रियतम श्रीराम के हृदय को जानने वाली श्रीसीता ने मन में प्रसन्न होकर अपनी मणिमय मुद्रिका हाथ से उतार दी। अथवा अपने शीश का चूड़ामणि एवं हाथ की मुद्रिका प्रसन्न होकर उतार दी। कृपालु श्रीराम जी ने कहा, केवट! उतराई ले लो। केवट ने अकुलाकर श्रीसीताराम जी के चरण पकड़ लिए और बोला–

विशेष- क्योंकि केवट ने भगवान् श्रीराम की उतराई लेने से मना कर दिया था *न नाथ उतराइ चहौं।* मानस २.१००.९, परन्तु श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीता की उतराई अभी शेष थी, इसलिए श्रीसीता जी ने लक्ष्मण जी की उतराई के लिए चूड़ामणि एवं स्वयं की उतराई के लिए मुद्रिका उतार ली।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।

भा०- नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया? मेरे दोष, दु:ख और दारिद्र रूप दावाग्नि सब मिट गये। मैंने बहुत काल तक मजदूरी की, पर आज विधाता ने सुन्दर और बहुत अधिक पारिश्रमिक दे दिया।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयालु अनुग्रह तोरे।।
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा।।

भा०- हे नाथ! हे दीनदयालु! आपके अनुग्रह से अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। हे नाथ! फिरती बार अर्थात् वनवास से लौटते समय अथवा, मेरी जीवन–यात्रा के अन्त में आप मुझे जो देंगे वह प्रसाद मैं मस्तक पर चढ़ा कर ले लूँगा।

दो०- बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ।।१०२।।

भा०- प्रभु श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीसीता जी ने बहुत आग्रह किया, पर केवट कुछ भी नहीं ले रहा है। फिर करुणा के भवन श्रीराम जी ने विमल भक्तिरूप वरदान देकर केवट को विदा किया। अथवा भगवती श्रीसीता जी ने करुणा के भवन श्रीराम जी की विमलभक्ति को ही केवट को वरदानरूप में देकर उसे विदा कर दिया।

* मासपारायण, तेरहवाँ विश्राम *

तब मज्जन करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा।।

भा०- तब अर्थात् केवट को विदा देने के पश्चात्, रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम जी ने गंगा जी में स्नान करके पार्थवेश्वर (शिव जी) की पूजा करके मस्तक नवाया।

सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउब मोरी।।
पति देवर सँग कुशल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी।।

भा०- सीता जी ने गंगा जी से हाथ जोड़कर कहा, हे माँ! आप मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। जिससे मैं अपने पति श्रीराघव तथा छोटे देवर लक्ष्मण के साथ सकुशल वनवास–यात्रा पूरी करके, आकर आप की पूजा करूँ।

सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी।।
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाव जग बिदित न केही।।
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।।
तुम जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई।।
तदपि देबि मैं देब अशीषा। सफल होन हित निज बागीशा।।
दो०- प्राननाथ देवर सहित, कुशल कोसला आइ।
पूजिहिं सब मन कामना, सुजस रहिहि जग छाइ।।१०३।।

भा०– इसके पश्चात् सीता जी की प्रेमरस से सनी हुई प्रार्थना सुनकर, निर्मल जलवाली गंगा जी में श्रेष्ठ वाणी हुई अर्थात् गंगा जी बोलीं, हे रघुवीर श्रीराम जी की प्रिया! हे विदेह नन्दिनी जानकी जी! सुनिये, संसार में आपका प्रभाव किसको नहीं ज्ञात है। अथवा, संसार में आपका प्रभाव किसी को ज्ञात नहीं है, क्योंकि उसे सामान्य बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। वस्तुतः आपकी कृपादृष्टि से अर्थात् देखने मात्र से साधारण जीव भी लोकपाल हो जाते हैं। सभी अणिमादि सिद्धियाँ, हाथ जोड़कर आपकी सेवा करती हैं। आपने जो हमें बहुत प्रार्थना सुनायी, वह तो कृपा की है और मुझको बड़प्पन दी है। हे देवी! आप देवाधिदेव श्रीराम जी की पत्नी हैं। सीते! फिर भी मैं अपनी वागीशा अर्थात् सरस्वती को सफल करने के लिए आशीर्वाद अवश्य दूँगी। आप अपने प्राणपति श्रीराम एवं देवर लक्ष्मण के साथ वनवास–यात्रा पूर्ण करके, कुशलपूर्वक श्रीअयोध्या पधार आयेंगी। आपकी सभी मन : कामनाये पूर्ण होंगी, आपका सुयश संसार में छाया रहेगा।

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला।।

भा०– गंगा जी की प्रसन्नता और मंगलों के आश्रय रूप वचनों को सुनकर और देवनदी गंगा जी को अपने अनुकूल जानकर सीता जी प्रसन्न हुईं।

तब प्रभु गुहहिं कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू।।
दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी।।
नाथ साथ रहि पंथ देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाईं।।
जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करब सुहाई।।
तब मोहि कहँ जस देब रजाई। सो करिहउँ रघुबीर दोहाई।।

भा०– तब प्रभु श्रीराम ने निषादराज गुह से कहा, तुम घर लौट जाओ। यह सुनते ही निषादराज का मुख सूख गया और उनके हृदय में प्रभु के संभावित वियोग से बहुत–बड़ा दाह अर्थात् ताप हुआ। निषादराज गुह हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक वचन कहने लगे, हे रघुकुल के मणि श्रीराम जी! मेरी प्रार्थना सुनिये, मैं आपके साथ रहकर वन का मार्ग दिखलाकर चार दिनों तक आप के श्रीचरणों की सेवा करके, आप जिस वन में जाकर रहेंगे वहाँ मैं आपके लिए सुन्दर पर्णकुटी बनाऊँगा, फिर आप मुझे जैसी राजाज्ञा देंगे मैं वही करूँगा। हे रघुकुल के वीर श्रीराम! आप की दुहाई हो (आप का कल्याण हो)।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू।।
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोष बिदा तब कीन्हे।।

भा०– श्रीराम ने निषादराज गुह का स्वाभाविक स्नेह देखकर हृदय में उल्लास के साथ गुह को अपने संग ले लिया। फिर राजा गुह ने अपने ग्याति अर्थात् बंधु–बांधवों, परिजनों और सभी मंत्रियों को बुला लिया और उनका परितोष करके अर्थात् समझा–बुझाकर सबको विदा कर दिया (लौटा दिया) तथा स्वयं प्रभु के साथ चले।

दो०– तब गनपति शिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गमन कीन्ह रघुनाथ।।१०४।।

भा०– तब प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ रघु अर्थात् शुभ–अशुभ का लंघन करने वाले, रघु शब्द के अर्थरूप सम्पूर्ण जीवों के नाथ यानी ईश्वर, भगवान् श्रीराम ने श्रीगणेश तथा शिव जी का स्मरण करके, देवनदी गंगा जी को प्रणाम करके, मित्र गुह, छोटे भैया लक्ष्मण तथा सीता जी के सहित शृंगबेरपुर से वन के लिए गमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू।।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई।।

भा०- उस दिन संध्याकाल में भगवान् श्रीराम का एक वृक्ष के नीचे वास अर्थात् विश्राम हुआ। लक्ष्मण जी तथा मित्र निषादराज ने श्रीसीताराम जी की सभी सुविधापूर्ण व्यवस्थायें की। प्रातःकाल रघुकुल के राजा प्रभु श्रीराम ने प्रातःकालीन कृत्य अर्थात् वेद विहित संध्यावन्दन, अग्निहोत्र आदि नित्य नेम करके, जाकर तीर्थराज प्रयाग के दर्शन किये।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीत हितकारी।।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेश देश अति चारू।।
छेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन पावा।।
सैन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा।।
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अछयबट मुनि मन मोहा।।
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा।।

दो०- सेवहिं सुकृती साधु शुचि, पावहिं सब मनकाम।।
बंदी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुन ग्राम।।१०५।।

भा०- यहाँ रूपक अलंकार द्वारा प्रयाग को तीर्थों के राजा के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। सत्य ही तीर्थराज प्रयाग का मंत्री है तथा श्रद्धा, अर्थात् वेद और ईश्वर में आस्था तीर्थराज की प्रिय पत्नी हैं। उनके बारह माधव जैसे हित करने वाले मित्र हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नामक चार पदार्थों से तीर्थराज का भंडार (राजकोष) भरा रहता है। पुण्यमय प्रयाग प्रदेश ही, उनका सुन्दर देश है। प्रयाग क्षेत्र (गंगा की धारा वाला क्षेत्र जहाँ कल्पवासी कल्पवास करते हैं) ही अगम्य और दृढ़ गढ़ अर्थात् राजदुर्ग (किला) है, जिसे स्वप्न में भी पापरूप प्रतिपक्षी नहीं पा सकते (जीतकर नहीं अधिकृत कर सकते)। सभी (निन्यानबे करोड़) तीर्थ ही श्रेष्ठ वीर, युद्ध में धीर रहने वाले तीर्थराज की सेना हैं, जो दोषों की सेना को नष्ट करते रहते हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम ही तीर्थराज का सिंहासन है और मुनियों के मन को मोहित करने वाला अक्षयवट, तीर्थराज का छत्र है। भगवती गंगा जी और यमुना जी की लहरें ही तीर्थराज के दो चामर हैं, जिनके दर्शन करने मात्र से दुःख और दारिद्र नष्ट हो जाते हैं। सत्कर्म करने वाले पवित्र साधुजन, अर्थात् सज्जनवृन्द प्रयाग रूप राजा की सेवा करते हैं (वे ही प्रयाग रूप राजा के परिकर हैं)। प्रयाग रूप राजा की सेवा से वे मन द्वारा इच्छित फल पाते हैं। चारों वेद, अठारहों पुराण, अठारहों उप–पुराण ही प्रयाग रूप राजा के बंदीगण हैं, जो तीर्थराज के निर्मल गुण समूह को कहते रहते हैं।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।।
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुख पावा।।
कहि सिय लखनहिं सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई।।
करि प्रनाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।।

भा०- पापसमूह रूप हाथियों को नष्ट करने के लिए, सिंहस्वरूप प्रयाग के प्रभाव को कौन कह सकता है? ऐसे सुहावने तीर्थराज को देख कर सुख के समुद्र रघुवर श्रीराम ने सुख पाया, अर्थात् प्रभु प्रसन्न हुए। अपने श्रीमुख

से सीताजी, लक्ष्मण जी और मित्र निषाद को तीर्थराज की बड़ाई सुना–सुनाकर कहते हुए, प्रणाम करके तीर्थराज के वनों और बगीचों को देखते हुए अत्यन्त प्रेम से प्रभु श्रीराम जी प्रयाग का माहात्म्य कह रहें हैं।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।।
मुदित नहाइ कीन्हि शिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा।।

भा०– इस प्रकार, से भगवान् श्रीराम ने आकर स्मरण करने मात्र से सभी सुमंगलों को देने वाली त्रिवेणी के दर्शन किये, प्रसन्नतापूर्वक नहा कर सोमेश्वर भगवान् शिव जी की श्रीराम ने सेवा की और विधिपूर्वक प्रयाग तीर्थ के सभी देवताओं की पूजा की।

तब प्रभु भरद्वाज पहँ आए। करत दंडवत मुनि उर लाए।।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द राशि जनु पाई।।

भा०– तब प्रभु श्रीराम, सीताजी, लक्ष्मण जी एवं निषादराज गुह जी के साथ महर्षि भरद्वाज के पास आये। उन्हें दण्डवत् करते हुए मुनि ने हृदय से लगा लिया। भरद्वाज मुनि के मन का मोद अर्थात् आनन्द कुछ भी नहीं कहा जा सकता, मानो महर्षि ने ब्रह्मानन्द की राशि को ही पा लिया है।

दो०– दीन्ह अशीष मुनीश उर, अति आनँद अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि।।१०६।।

भा०– मुनि भरद्वाज ने भगवान् श्रीराम को आशीर्वाद दिया, मानो ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण सत्कर्मों के फल को ही ले आकर, भरद्वाज के नेत्रों का विषय बना दिया अर्थात् आज पुण्यों का फल ही शरीर धारण करके भरद्वाज के नेत्रों के समक्ष उपस्थित हुआ, ऐसा जानकर, महर्षि के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ।

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।।
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के।।
सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए।।
भए बिगतश्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे।।
आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू।।
सफल सकल शुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू।।
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।।

भा०– महर्षि भरद्वाज ने प्रभु का कुशल पूछकर उन्हें आसन दिया। भगवान् श्रीराम की पूजा करके, उन्हें अपने प्रेम से परिपूर्ण कर दिया। अथवा, भगवान् की पूजा करके भरद्वाज ने अपने प्रेम को ही परिपूर्ण कर लिया। मुनि ने मानो अमृत के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए सुन्दर कंदमूल, फल और अंकुर शाक प्रभु को नैवेद्य समर्पित किये। प्रभु श्रीराम ने सीता जी, लक्ष्मण जी और अपने सेवक निषादराज गुह के साथ रुचिपूर्वक सुहावने मूल और फल खाये अर्थात् स्वीकार किया। भगवान् श्रीराम का पैदल चलने से उत्पन्न श्रम समाप्त हो गया, वे सुखी हुए, तब भरद्वाज ने कोमल वचन कहे, हे भगवन्! आज मेरे तप, तीर्थयात्रा और त्याग सफल हो गये, आज जप, योग और वैराग्य सफल हो गये। हे श्रीराम! आज आपके दर्शन करते ही सम्पूर्ण कल्याणों का साज भी सफल हो गया। प्रभु कोई दूसरी लाभ की अवधि और सुख की अवधि नहीं है, अर्थात् आपके दर्शन ही सभी लाभों और सभी सुखों की सीमा है। आपके दर्शनों से मेरी सभी आशायें पूर्ण हो गईं।

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।।

दो०- करम बचन मन छाड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार।।१०७।।

भा०- हे प्रभु! अब कृपा करके अपने चरणकमलों में स्वाभाविक प्रेम दे दीजिये, मेरे लिए यही वरदान है। कर्म, वाणी और मन से छल छोड़कर जीव जब तक आपका सेवक नहीं बनता, तब तक करोड़ों सुखों के यत्न करने पर भी उसें स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता।

सुनि मुनि बचन राम सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।।
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा।।
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीश तुम आदर देहू।।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं।।

भा०- भरद्वाज मुनि के वचन सुनकर श्रीराम संकुचित हो गये और मुनि के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। तब रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने भरद्वाज मुनि का सुहावना सुयश करोड़ों प्रकार से कहकर सुनाया। हे मुनियों के ईश्वर भरद्वाज! जिसे आप आदर देते हैं, वही बड़ा हो जाता है और वही सम्पूर्ण श्रेष्ठगुणों के समूहों का घर बन जाता है। मुनि तथा भगवान् श्रीराम दोनों ही एक–दूसरे के प्रति विनम्र हो रहे हैं अर्थात् झुक रहे हैं और दोनों वाणी के विषय से परे अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं।

विशेष : यहाँ यह तथ्य अत्यन्त ध्यान देने योग्य है कि महाभारत आदि पर्व एवं भागवत् नवम स्कन्ध में वर्णित तथ्य भरद्वार से श्री रामायण में वर्णित सप्तर्षियों मण्डल में विराजमान श्री भरद्वार की कथा सर्वथा भिन्न है। महाभारत और भागवत में वर्णित भरद्वार यदि सामान्य कोटि के ब्राह्मण कुमार हैं जो द्रोणाचार्य जैसे अधम कक्षा के आचार्य के पिता हैं और श्रीरामायण में वर्णित भरद्वाज सप्तर्षियों में विशिष्ट अनादि ऋषि, महर्षि वाल्मीकि के शिष्य, श्रीमानस के स्रोता, परम रामभक्त ब्रह्मर्षि हैं।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी।।
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दशरथ सुअन सुहाए।।

भा०- श्रीराम भरद्वाज आश्रम में पधारे हैं, यह समाचार पाकर सभी प्रयाग–क्षेत्र में रहने वाले, विषयों से उदासीन, ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि और सिद्धजन, सुन्दर दशरथ राजकुमार को देखने के लिए भरद्वाज के आश्रम में आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोचन लाहू।।
देहिं अशीष परम सुख पाई। फिरे सराहत सुंदरताई।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने सभी ब्रह्मचारियों, मुनियों, तपस्वियों और सिद्धजनों को प्रणाम किया। वे सब नेत्रों का लाभ प्राप्त करके (प्रभु के दर्शन करके) प्रसन्न हुए। सभी परमसुख अर्थात् श्रेष्ठसुख पाकर प्रभु को आशीर्वाद तथा शुभकामनायें देने लगे और भगवान् श्रीराम की सुन्दरता की सराहना करते हुए अपने–अपने आश्रमों को लौट गये।

दो०- राम कीन्ह बिश्राम निशि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहिं सिर नाइ।।१०८।।

भा०- श्रीराम ने रात्रि में भरद्वाज के आश्रम में ही विश्राम किया। प्रात:काल प्रयाग में स्नान करके तथा भरद्वाज जी को प्रणाम करके, सीताजी, लक्ष्मण जी तथा अपने सेवक निषादराज के साथ प्रसन्नतापूर्वक आगे चले।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं।।
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम कहँ अहहीं।।

भा०- भगवान् श्रीराम जी ने प्रेम के साथ भरद्वाज जी से कहा (पूछा), हे नाथ! बतायें, हम किस मार्ग से जायें? भरद्वाज मुनि मन में हँसकर श्रीराम से कहते हैं, हे प्रभु! आपके लिए सभी मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि शिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए।।

भा०- प्रभु के साथ के लिए भरद्वाज मुनि ने शिष्यों को बुलाया। उनकी आज्ञा सुनकर मन में प्रसन्न होते हुए पचासों शिष्य आ गये।

विशेष- चार वेद, चार उप–वेद, अठारह पुराण, अठारह स्मृतियाँ, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्यौतिष, छन्द और व्याकरण ये छ: बेदांग, ये ही भरद्वाज मुनि के पचास शिष्य हैं।

सबहिं राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मग दीख हमारा।।
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन बहु जनम सुकृत सब कीन्हे।।
करि प्रनाम ऋषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई।।

भा०- उन सभी पचास शिष्यों को भगवान् श्रीराम पर अपार प्रेम था और सभी कह रहे थे कि, मार्ग हमारा देखा हुआ है। तब भरद्वाज मुनि ने उन चार ब्रह्मचारी शिष्यों को श्रीराम के साथ दिया, जिन्होंने बहुत से जन्मों में सभी शुभकर्म किये थे। प्रणाम करके, भरद्वाज मुनि की आज्ञा पाकर, रघुराज श्रीराम प्रसन्न मन से आगे चले।

विशेष- यहाँ चार बटु, ऋग्, यजुष्, साम् तथा अथर्वण यह चार वेद ही थे। इन्होंने सौ करोड़ रामायण के रूप में सौ करोड़ जन्म लेकर, श्रीराम–गुण गाकर समस्त शुभकर्म कर दिये थे।

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरस नारि नर धाई।।
होहिं सनाथ जनम फल पाई। फिरहिं दुखित मन संग पठाई।।

भा०- जब श्रीराम ग्राम के निकट से जाकर निकलते हैं, तब गाँव के नर–नारी दौड़कर दर्शनीय श्रीराम को देखते हैं। अपने जीवन का फल पाकर, सनाथ अर्थात् प्रभु श्रीराम के द्वारा नाथवान् हो जाते हैं (प्रभु श्रीराम जी को अपना स्वामी मानकर धन्य हो जाते हैं।) और अपने मन को प्रभु के साथ भेज कर दुखित होकर अपने घरों को लौट आते हैं।

दो०- बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम ।
उतरि नहाए जमुन जल, जो शरीर सम श्याम।।१०९।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने प्रार्थना करके चारों ब्रह्मचारी बटुओं को विदा कर दिया। वे प्रभु के पास से मनचाहा वरदान् पाकर भरद्वाज मुनि के आश्रम को लौट गये। फिर भगवान् श्रीराम नौका से पार उतरकर, यमुना जी के जल में स्नान किये, जो श्रीराघवेन्द्र के शरीर के समान ही श्यामल था।

सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी।।
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई।।

भा०- प्रभु का आगमन सुनकर यमुना जी के तीर पर रहने वाले सभी पुरुष–स्त्री अपने–अपने कार्य छोड़कर दौड़े तथा लक्ष्मणजी, श्रीराम और भगवती श्रीसीता की सुन्दरता देखकर, अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।।
जे तिन महँ बय बृद्ध सयाने। तिन करि जुगुति राम पहिचाने।।

भा०- सबके मन में प्रभु के सम्बन्ध में जानने की बहुत लालसा अर्थात् उत्कंठा थी, परन्तु सभी भगवान् का नाम और ग्राम पूछने में संकोच कर रहे थे। उन यमुना तटवासियों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्ति करके अर्थात् श्रीवत्सलांछन आदि के दर्शनों से भगवान् श्रीराम को पहचान लिया।

सकल कथा तिन सबहिं सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई।।
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं।।

भा०- उन लोगों ने सभी को सम्पूर्ण कथा सुनायी और बताया कि, श्रीराम पिता की आज्ञा पाकर वन को चल पड़े हैं। यह समाचार सुनकर, सभी लोग दुःख के साथ पश्चात् ताप करने लगे और बोले, रानी कैकेयी और महाराज दशरथ ने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा।।
कबि अलखित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी।।

भा०- उसी अवसर पर एक प्रधान तपस्वी आया, जो तेज का तो समूह था तथा छोटी अवस्था का बड़ा सुन्दर लग रहा था। वह कवि था, उसकी गति अलक्ष्य थी अर्थात् वह तपस्वी किस ओर से आया, किस मार्ग से आया, यह किसी ने नहीं देखा। वह वेश से विरागी था, अर्थात् वह श्वेत काषायवस्त्र धारण किये हुए चरण में पादुका, गले में बहुत–बड़ी मणियों वाली सुन्दर तुलसी की कण्ठी, द्वादश तिलक, शिखा, यज्ञोपवीत तथा कमण्डल धारण किये था और वह मन कर्म और वचन से भगवान् श्रीराम का अनुरागी था।

दो०- सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल, दशा न जाइ बखानि।।११०।।

भा०- अपने इष्टदेव श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को पहचानकर, नेत्रों में आँसू भरकर रोमांचित शरीर वाला होकर तापस डण्डे की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी दशा बखानी नहीं जाती।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा।।
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सब कोऊ।।

भा०- श्रीराम ने प्रेमपूर्वक रोमांचित होकर तापस को हृदय से लगा लिया, मानो परमदरिद्र ने पारस मणि पा लिया। सभी लोग कहने लगे कि, मानो शरीर धारण करके प्रेम और परमार्थ मोक्ष परस्पर मिल रहे हों।

बहुरि लखन पायँन सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा।।
पुनि सिय चरन धूरि धरि शीषा। जननि जानि शिशु दीन्ह अशीषा।।

भा०- फिर वह तापस मुनि, श्रीलक्ष्मण के चरणों से लिपट गया। अनुराग से पूर्ण होकर लक्ष्मण जी ने उसे उठा लिया, फिर तापस ने भगवती श्रीसीता जी के चरणों की धूलि को मस्तक पर धारण किया। माँ ने शिशु अर्थात् तापस को छोटा बालक (पुत्र) जानकर आशीर्वाद दिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही।।
पियत नयन पुट रूप पियूषा। मुदित सुअशन पाइ जिमि भूखा।।

भा०– फिर निषादराज गुह ने तापस को दण्डवत् किया और वह तापस निषादराज को श्रीराम का स्नेही सखा देखकर, उनसे प्रसन्नतापूर्वक मिला। तापस अपने दोनों नेत्र से प्रभु श्रीराम के रूपसुधा का पान करने लगा। वह इतना प्रसन्न हुआ, मानो भूखा व्यक्ति सुन्दर भोजन पा गया हो।

विशेष– यहाँ तापस प्रसंग को लेकर अनेक शंकायें उठायी जाती हैं। कुछ लोग इसे क्षेपक कहते हैं और कुछ अनेक उत्प्रेक्षायें करते हैं। मेरी अवधारणा में यह तापस गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह गोस्वामी जी का समाधि–दर्शन है। श्रीराम की लीलायें देश, काल और परिस्थितियों से ऊपर उठकर उन भक्तों की भावना के अनुसार नित्य ही प्रकट या गुप्तरूप में होती रहती है। यमुना तट पर गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्मभूमि राजापुर में भावना जगत् के अनुसार पहुँचकर, तुलसीदास जी का प्रभु से मिलना, उनके रुपामृत का पान करना, यह सब कुछ स्वाभाविक है, जैसे महात्मा सूरदास जी का भगवान् कृष्ण की लीला से मिलकर बाराती अथवा, ढाँढ़ी होना। इस प्रसंग के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए मेरे द्वारा लिखित, मानस में तापस प्रसंग नामक ग्रंथ देखिये।

राम लखन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी।।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी का रूप देखकर यमुना तट के नर–नारी प्रेम से विकल हो गये। महिलायें बोलीं, हे सखी! वे पिता–माता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया?

दो०– तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहिं सिखावन दीन्ह।
राम रजायसु शीष धरि, भवन गवन तेहिं कीन्ह।।१११।।

भा०– तब रघुकुल के वीर श्रीराम ने मित्र निषादराज गुह को अनेक प्रकार की शिक्षायें दीं। तब श्रीराम की राजाज्ञा को सिर पर धारण करके निषादराज गुह ने अपने घर के लिए प्रस्थान किया।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी।।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई।।

भा०– फिर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी ने हाथ जोड़कर यमुना जी को प्रणाम किया, फिर सीता जी के सहित दोनों भाई सूर्यपुत्री यमुना जी की प्रशंसा करते हुए चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।।
राज सुलच्छन अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे।।
मारग चलहु पयादेहिं पाएँ। ज्योतिष झूठ हमारे भाएँ।

भा०– मार्ग में जाते हुए अनेक पथिक मिलते हैं और दोनों भ्राताओं को देखकर प्रेमपूर्वक कहते हैं कि, तुम दोनों के अंग में राजाओं के श्रेष्ठ लक्षण हैं। तुम्हें देखकर हमारे हृदय में अत्यन्त शोक हो रहा है। तुम बिना पदत्राण के पैदल मार्ग में चल रहे हो हमारे ही भाव से ज्योतिष झूठा पड़ रहा है।

अगम पंथ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी।।
करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई।।
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहिं सिर नाई।।

भा०– मार्ग बड़ा कठिन है, वन में बहुत–बड़े पर्वत हैं, उसमें भी आप लोगों के साथ एक सुकुमारी महिला है। मार्ग में हाथी और सिंह है, जो देखे नहीं जा सकते। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें, आप जहाँ तक जायेंगे वहाँ तक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम पुनः लौट आयेंगे।

दो०- एहि बिधि पूँछिहिं प्रेम बश, पुलक गात जल नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिनहिं, कहि बिनीत मृदु बैन।।११२।।

भा०- इस प्रकार रोमांचित शरीर होकर, आँखों में आँसू भरकर प्रेम के विवश हुए पथिकगण, श्रीराम से पूछते हैं और कृपा के सागर भगवान् श्रीराम विनम्र तथा कोमल वाणी कहकर उन्हें लौटा देते हैं।

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिनहिं नाग सुर नगर सिहाहीं।।
केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए।।

भा०- मार्ग में जो पुर और ग्राम बस रहे हैं, उन्हें नागों और देवताओं के नगर ईर्ष्यापूर्वक सिहा रहे हैं। वे कहते हैं, इन परमसुन्दर पुण्यों की प्रचुरता से युक्त पुरों और ग्रामों को किस सत्कर्म करने वाले ने किस समय बसाया?

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन समान अमरावति नाहीं।।
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिनहिं सराहहिं सुरपुर बासी।।
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता लखन सहित घनश्यामहिं।।

भा०- जहाँ जहाँ भगवान् श्रीराम के चरण चले जाते हैं उन ग्रामों, नगरों और पुरों के समान इन्द्र की पुरी अमरावति भी नहीं है। मार्ग के निकट रहने वाले लोग पुण्यपुंज से मुक्त हैं, उन्हें देवलोक के निवासी सराहते हैं, जो लोग श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के सहित वर्षाकालीन बादल के समान श्यामल श्रीराम को आँख भर निहार रहे हैं।

जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहिं देवसर सरित सराहहिं।।
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई।।
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा।।

भा०- जिन तालाब और नदियों में भगवान् श्रीराम स्नान करते हैं, उन्हें देवताओं के तालाब मानससरोवर आदि और देवनदी गंगा जी आदि सराहती हैं (उनकी प्रशंसा करती है)। जिस वृक्ष के नीचे प्रभु श्रीराम जाकर विश्राम के लिए बैठते हैं, कल्पवृक्ष उनकी प्रशंसा करते हैं। श्रीराम के चरणकमल की पराग रूप धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बहुत–बड़ा सौभाग्य मानती है।

दो०- छाँहँ करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग, राम चले मग जाहिं।।११३।।

भा०- बादल छाया कर रहे हैं और देवतागण पुष्पों की वर्षा करते हुए सिहा रहे हैं (ईर्ष्या के साथ प्रशंसा कर रहे हैं)। पर्वत, वन, पक्षी और पशुओं को देखते हुए, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी मार्ग में चले जा रहे हैं।

विशेष- यहाँ राम पद से ही गोस्वामी जी ने श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता जी का बोध कराया है, यथा– 'र' राघव, 'आ' आदिशक्ति सीताजी, 'म' जीवाचार्य लक्ष्मणजी।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।।
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी।।

भा०- सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ जब, रघुकुल के राजा श्रीराम गाँव के निकट से जाकर निकलते हैं, तब सभी बालक, वृद्ध, पुरुष और स्त्रियाँ अपने घर के कार्य भूलकर प्रभु के दर्शनों के लिए तुरन्त चल पड़ते हैं।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी।।
सजल बिलोचन पुलक शरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण और भगवती सीता जी के रूप को निहारकर (देखकर) नेत्रों का फल पाकर, ग्राम के सभी नर–नारी सुखी हो जाते हैं। दोनों भाइयों को देखकर सबके नेत्रों में जल भर आया। सभी के शरीरों में रोमांच हो आया और सभी प्रेम में मग्न हो गये।

बरनि न जाइ दशा तिन केरी। लहि जनु रंकनि सुरमनि ढेरी।।
एकन एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं।।

भा०– उनकी दशा कही नहीं जाती, मानो दरिद्रों ने सुरमणि अर्थात् चिन्तामणि का ढेर पा लिया हो। एक–दूसरे को बुलाकर शिक्षा देते हैं, इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो अर्थात् भगवान् श्रीराम को देख लो।

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे।।
एक नयन मगछबि उर आनी। होहिं शिथिल तनु मन बर बानी।।

भा०– कुछ लोग श्रीराम को देखकर, प्रेम में भरे हुए एकटक निहारते हुए, प्रभु के साथ लगे चले जा रहे हैं। अन्य लोग नेत्रों के माध्यम से श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी की छवि को हृदय में ले आकर, श्रेष्ठ शरीर, मन, वाणी से शिथिल हो जाते हैं अर्थात् उनके शरीर निश्चेष्ट, मन संकल्पशून्य और वाणी मूक हो रही है।

दो०– एक देखि बट छाँहँ भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनक श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात।।११४।।

भा०– अन्य लोग वटवृक्ष की सुन्दर छाया देखकर, कोमल घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि, क्षण भर इस शैय्या पर बैठकर अपनी थकान उतार लीजिये, फिर अभी चले जाइयेगा अथवा, प्रातःकाल पधारियेगा, जैसी आपकी अनुकूलता हो।

एक कलश भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदु बानी।।
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुशील बिशेषी।।
जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंब कीन्ह बट छाहीं।।

भा०– अन्य लोग घड़ों में भर कर जल लाते हैं और कोमल वाणी में कहते हैं, स्वामी! आचमन कर लीजिये अर्थात् थोड़ा जल पी लीजिये। ग्रामवासियों के कोमल वचन सुनकर, उनकी विशेष प्रीति को देखकर, सीता जी को मन में श्रमित अर्थात् थकी हुई जानकर, कृपामय सुन्दर शील वाले श्रीराम ने एक घड़ी भर वट की छाया के नीचे विलम्ब अर्थात् यात्रा को विलम्बित कर दिया (विश्राम किया)।

मुदित नारि नर देखहिं शोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा।।
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद्र चकोरा।।

भा०– प्रसन्न होकर स्त्री और पुरुष श्रीराम की शोभा को देख रहे हैं, क्योंकि प्रभु के उपमाओं से रहित रूप में सभी ग्रामवासियों के नेत्र और मन लुब्ध हो रहे हैं। सभी ग्रामवासी श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र के चकोर बने हुए टकटकी लगाये हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। अर्थात् सभी नर–नारियों के चारों ओर श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र के ही दर्शन हो रहे हैं, यही प्रभु का विश्वतोमुखत्व है।

तरुन तमाल बरन तन सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा।।
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख शिख सुभग भावते जी के।।

भा०– भगवान् श्रीराम का नवीन तमाल वृक्ष के समान श्यामल शरीर सुशोभित हो रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेव के मन मोहित हो जाते हैं। विद्युत के समान गौरवर्ण के लक्ष्मण जी बहुत सुन्दर हैं, वे नख से शिखापर्यन्त सुन्दर हैं और जीवात्मा को बहुत भाते हैं।

मुनिपट कटिन कसे तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा।।

दो०- जटा मुकुट शीषनि सुभग, उर भुज नयन बिशाल।
शरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल।।११५।।

भा०– उन दोनों भाइयों के कटि–प्रदेशों में मुनिपट अर्थात् वल्कलवस्त्र और तरकस कसे हुए हैं। उनके हस्तकमलों में धनुष और बाण सुशोभित हो रहे हैं। उनके सिरों में सुन्दर जटायें ही मुकुट बन गई है। दोनों भ्राताओं के हृदय, भुजायें और नेत्र विशाल (बड़े–बड़े) हैं। उनके शरद् की पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे मुखों पर पसीने की बूँदों के समूह सुशोभित हो रहे हैं।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। शोभा बहुत थोरि मति मोरी।।
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई।।
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिया से।।

भा०– इस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीराम, लक्ष्मण की शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है। सभी ग्राम नर–नारी चित्त, मन और बुद्धि को लगा कर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी की सुन्दरता के दर्शन कर रहे हैं। प्रेम के प्यासे नारी–नर अर्थात् महिला और पुरुष उसी प्रकार, थके अर्थात् भावविभोर होकर स्थिर हो गये, मानो दीपक को देखकर हरिणी और हिरण स्थिर हो गये हों।

विशेष– दीपक के प्रकाश को देखकर मृगी और मृग निश्चेष्ट हो जाते हैं। यह दृश्य आज भी बहुशः मार्ग में देखने को मिलता है।

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेह सकुचाहीं।।
बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ।।

भा०– भगवती श्रीसीता के समीप ग्राम की महिलायें जाती हैं और पूछने में अत्यन्त प्रेम के कारण सकुचा जाती हैं। सभी ग्रामीण महिलायें बार–बार श्रीसीता के चरणों में लिपटती हैं और स्वभाव से ही सरल तथा कोमल वाणी कहती हैं।

राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाव कछु पूँछत डरहीं।।
स्वामिनि अबिनय छमब हमारी। बिलग न मानव जानि गँवारी।।

भा०– हे राजकुमारी! हम ग्रामीण महिलायें आपसे प्रार्थना करती हैं। अपने नारी स्वभाव के कारण आपसे कुछ पूछने में हम डर रही हैं। हे स्वामिनी जी! हमारी इस अनुचित प्रार्थना को क्षमा कीजियेगा और हमको गँवार अर्थात् अशिक्षित और असभ्य जानकर अपने से दूर मत मानियेगा।

राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन ते लहि दुति मरकत सोने।।

दो०- श्यामल गौर किशोर बर, सुंदर सुषमा ऐन।
शरद शर्बरीनाथ मुख, शरद सरोरुह नैन।।११६।।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।

भा०- यह दोनों राजकुमार स्वभाव से सुन्दर हैं। मरकत मणि और स्वर्ण ने इन्हीं से कान्ति पाई है। अर्थात् मरकत मणि को जो नीलिमा मिली है, वह साँवले राजकुमार से प्राप्त हुई है और स्वर्ण में जो पीलापन दिख रहा है, वह गोरे राजकुमार से ही प्राप्त हुआ है। दोनों राजकुमार किशोर साँवले और गोरे हैं तथा पन्द्रह वर्ष से कम वय वाले दिखते हैं। ये श्रेष्ठ सुन्दर तथा परमशोभा के ऐन, अर्थात् आश्रय हैं। इनके मुख शरद् पूर्णिमा की चन्द्रमा के समान हैं और इनके नेत्र शरद्काल के कमल जैसे हैं। अर्थात् जैसे चन्द्रमा के सामने कमल संकुचित रहता है, उसी प्रकार हम चन्द्रमुखियों के सामने इनके नेत्र बंद हैं। हे सुमुखी! तुम्हारा मुख धन्य है, जिसे श्यामल राजकुमार बार-बार देखते हैं। ऐसे करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले दोनों राजकुमार तुम्हारे कौन (सम्बन्धी) हैं, बताओ?

सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महँ मुसुकानी।।
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ संकोच सकुचति बरबरनी।।
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी।।

भा०- ग्राम वधुओं की स्नेह से युक्त मधुर वाणी सुनकर, सीता जी संकुचित होने लगीं और मन में मुस्कुरायीं। कुलांगना वधू (सुन्दर दुल्हन) सीताजी, उन सखियों को देखकर पृथ्वी को देखती हैं और दोनों के संकोच से संकुचित हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि, सीता जी सोचती हैं कि, यदि उत्तर नहीं दूँगी, तो गाँव की स्त्रियाँ दुःखी हो जायेंगी, यदि उत्तर दूँगी, तो अपनी माता पृथ्वी के समक्ष अपने पति का परिचय देने से भारतीय महिला की शालीनता समाप्त हो जायेगी। फिर बालहरिणी के समान नेत्र वाली, कोकिला के समान बोलने वाली, जनकनन्दिनी जानकी जी संकुचित होकर प्रेमपूर्वक मधुर वचन बोलीं-

सहज स्वभाव सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौहँ करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सयननि।।

भा०- जिनका स्वभाव सहज अर्थात् सरल है, अथवा जिनका जन्म से ही मेरे प्रति सुन्दर भाव है, ऐसे बहुत सुन्दर, जो गोरे शरीर वाले हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, वे मेरे छोटे देवर हैं अर्थात् बड़े देवर भरत ननिहाल में हैं। लक्ष्मण उनसे छोटे हैं, इसलिए वे लघु देवर हैं। फिर, सीता ने अपने मुखचन्द्र को आँचल से ढँककर, प्रियतम श्रीराम की ओर देखकर, अपनी भौंहें टेढ़ी करके खंजन पक्षी के समान सुन्दर और मधुर तिरछे नेत्रों द्वारा, संकेत से उन ग्रामीण महिलाओं से खंजन पक्षी के समान श्रीराम को अपना पति कहकर अथवा, तिरछे नेत्रों से प्रभु की ओर निहार कर उन्हीं को अपना पति कहकर परिचय दिया।

विशेष- श्रीसीता ने आँचल से मुख ढँककर संकेत यह किया कि, जैसे चित्त के मिलित होते हुए भी पति को आँचल की ओट से देखने पर ही पत्नी को रसानुभूति होती है, उसी प्रकार परमात्मा की आराधना में भी किसी न किसी भक्ति सहित भाव का आश्रय लेने में ही भजन का आनन्द आता है।

भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रंकन राय राशि जनु लूटी।।
दो०- अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहुबिधि देहिं अशीश।
सदा सुहागिनि रहहु तुम, जब लगि महि अहि शीश।।११७।।

भा०- सभी ग्राम वधुयें बहुत प्रसन्न हुई, मानो दरिद्रों ने रायराशि अर्थात् राजा की धनराशि (राजकोष) लूट ली हो। गाँव की नारियाँ अत्यन्त पवित्र प्रेम के साथ सीता जी के चरणों को पकड़कर बहुत प्रकार से आशीर्वाद दे

रहीं हैं। कहती हैं, हे राजकुमारी! जब तक पृथ्वी शेषनाग के सिर पर विराज रही है, उस कालपर्यन्त आप सदैव सौभाग्यवती रहें।

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू।।
पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी। जौ एहि मारग फिरिय बहोरी।।
दरशन देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी।।
मधुर बचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी।।

भा०- हे राजकुमारी! आप श्रीपार्वती जी के ही समान अपने पति की प्यारी हों हे देवी! हम पर से अपनी ममता मत छोड़िये। हम हाथ जोड़कर बार-बार विनय करती हैं। यदि आप इस मार्ग से फिर लौटें, तो अपनी दासी जानकर हमें दर्शन दीजियेगा। श्रीसीता जी ने सभी ग्रामीण महिलाओं को प्रेमरस की प्यासी देखा। मीठे वचन कह-कह कर सबको परितुष्ट किया। अर्थात् समझाकर संतुष्ट किया, मानो कौमुदी अर्थात् चांदनी ने कुमुदिनियों को अपने किरणों के माध्यम से पुष्ट कर दिया हो।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मग लोगन मृदु बानी।।
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी।।

भा०- उसी समय, श्रीराम का संकेत जानकर लक्ष्मण जी ने लोगों से कोमल वाणी में मार्ग पूछा, यह सुनते ही सभी स्त्री-पुरुष दु:खी हो गये, उनके शरीर रोमांचित हो उठे और उनके नेत्रों में आँसू भर आये।

मिटा मोद मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने।।
समुझि करम गति धीरज कीन्हा। सोधि सुगम मग तिन कहि दीन्हा।।

भा०- ग्रामवासियों की प्रसन्नता मिट गई, मन उदास हो गया, मानो दी हुई निधि को ब्रह्मा जी छीन ले रहें हैं। कर्म की गति समझकर, हमारे पास इतने क्षणों के लिए ही श्रीसीताराम जी के दर्शन का सौभाग्य था, ग्रामवासियों ने धैर्य धारण किया और सुगम मार्ग का शोधन करके उन लोगों ने लक्ष्मण जी को बता दिया।

दो०- लखन जानकी सहित तब, गमन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ।।११८।।

भा०- इसके पश्चात् लक्ष्मण जी और श्रीसीता जी के सहित श्रीरघुनाथ जी ने वन के लिए प्रस्थान किया। प्रिय वचन कहकर, सभी को लौटाया, पर सबके मन को अपने साथ ले लिया।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैवहिं दोष देहिं मन माहीं।।
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं।।

भा०- लौटते हुए ग्राम के नारी-नर बहुत पछताते हैं और वे मन में दैव अर्थात् कर्मफलदाता ईश्वर को दोष देते हैं। विषाद के साथ एक-दूसरे से कहते हैं कि, विधाता के सभी कार्य उल्टे अर्थात् विपरीत हैं।

निपट निरंकुश निठुर निशंकू। जेहिं शशि कीन्ह सरुज सकलंकू।।
रूख कलपतरु सागर खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा।।

भा०- कहते हैं कि, देखो, ब्रह्मा जी अत्यन्त निरंकुश हैं अर्थात् इन पर किसी का प्रतिबन्ध नहीं है। वह निर्दय और नि:शंक, अर्थात् निर्भीक हैं। जिन्होंने इतने सुन्दर चन्द्रमा को रोगी और कलंकी बना दिया, अर्थात् अमृत किरणोंवाला होकर भी चन्द्रमा क्षय का रोगी बना और गुरुपत्नी पर आसक्त होकर कलंकी बन गया। कल्पवृक्ष को साधारण पेड़ बनाया और अगाध समुद्र को खारा करके अपेय बना दिया अर्थात् जिस विधाता ने चन्द्रमा को

रोगी और कलंकी, देववृक्ष को सामान्य वृक्ष और सागर को खारा बनाया, उसी ने राज्यसुख के योग्य इन राजकुमारों को वन भेज दिया?

जौ पै इनहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू।।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना।।

भा०- यदि विधाता ने इन राजकुमारों को वनवास दिया, तो फिर अनेक भोग की सामग्रियाँ क्यों रच डाली? ये राजकुमार बिना पनहीं के नंगे चरण से वन में भ्रमण कर रहे हैं, फिर विधाता ने अनेक हाथी, घोड़े, रथ, विमान आदि वाहनों की रचना व्यर्थ ही की।

ए महि परहिं डासि कुश पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता।।
तरुतर बास इनहिं बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि कत श्रम कीन्हा।।

भा०- यदि ये दो राजकुमार और राजकुमारी कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं, तो विधाता सुन्दर-सुन्दर शैय्याओं की क्यों रचना करते हैं? विधाता ने इनको तो वृक्ष के नीचे निवास दिया, फिर दूसरों के लिए चूने से पोते हुए सुन्दर श्वेत भवनों की रचना करके क्यों श्रम किया?

दो०- जौ ए मुनि पट धर जटिल, सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार।।११९।।

भा०- यदि सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार ये तीनों मुनियों के ही वस्त्र धारण करते हैं और सिर पर जटा बना रखी है, अर्थात् ब्रह्मा जी के रचित आभूषणों और वस्त्रों का इनके लिए कोई उपयोग नहीं है, तो फिर ब्रह्मा जी ने व्यर्थ ही अनेक प्रकार के आभूषणों और वस्त्रों की रचना की।

जौ ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि अशन जग माहीं।।

भा०- यदि ये तीनों (श्रीसीता, राम एवं लक्ष्मण) कंदमूल तथा वन के फल ही खाते हैं और कोई भोजन इनके भाग्य में नहीं है, तो फिर संसार में अमृत आदि भोजन व्यर्थ है?

एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए।।
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी।।
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी।।
इनहिं देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा।।
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए।।

भा०- अन्य लोग कहने लगे, स्वभाव से सुन्दर ये (श्रीसीता, राम, लक्ष्मण) स्वयं ही प्रकट हुए हैं, इन्हें विधाता ने नहीं बनाया। वेद ने जहाँ तक हमारे श्रवण (कान), नेत्र और मन का विषय बनी हुई ब्रह्मा जी की रचना को वर्णन करके कहा, वहाँ तक चौदहो भुवन ढूंढकर देखो श्रीराम, लक्ष्मण, ऐसे पुरुष कहाँ हैं और श्रीसीता जी जैसी नारी कहाँ है ? इन्हें देखकर विधाता का भी मन अनुरक्त हो गया और इनकी उपमा देने के लिए इनके सादृश्य के योग्य उपमानों को बनाने लगा। बहुत श्रम किया, परन्तु कोई भी विधाता के बनाये हुए नर-नारी इनकी समानता में नहीं आये। इसी ईर्ष्या के कारण विधाता ने इन तीनों को वन में ले आकर छिपा दिया।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं।।
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहैं जिन देखे।।

भा०– दूसरे लोग कहने लगे, हम तो बहुत नहीं जानते हैं, हम अपने को ही अत्यन्त धन्य करके मान रहे हैं। फिर हमने उनको पुण्यों का पुंज मान लिया है, जो लोग इन्हें देख रहे हैं, भविष्य में जो देखेंगे और पूर्व में जिन्होंने इन्हें देखा है।

दो०– एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर।
किमि चलिहैं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर।।१२०।।

भा०– इस प्रकार, प्यारे वचन कह–कह कर ग्राम के नर–नारी अपने नेत्रों मे आँसू भर लेते हैं और कहते हैं, अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले ये तीनों पथिक अगम्य मार्ग में कैसे चलेंगे?

नारि सनेह बिकल सब होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं।।
मृदु पद कमल कठिन मग जानी। गहबर हृदय कहहिं बर बानी।।

भा०– ग्राम की सभी नारियाँ प्रेम से विकल हो जाती है, जैसे सायंकाल में चकई शोभित होती है। इन तीनों पथिकों के चरणों को कमल के समान कोमल तथा वन को कठिन जानकर, करुण रस से घिरे हुए हृदय से नारियाँ श्रेष्ठ वाणी में कहती हैं।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे।।
जौ जगदीश इनहिं बन दीन्हा। कस न सुमनमय मारग कीन्हा।।
जौ माँगा पाइय बिधि पाहीं। ए रखियहिं सखि आँखिन माहीं।।

भा०– इनके कोमल लाल चरणों को स्पर्श करते हुए, पृथ्वी उसी प्रकार संकुचित हो रही है, जैसे हमारे हृदय संकुचित हो रहे हैं। यदि जगत् के ईश्वर विधाता ने इन्हें (श्रीसीता, राम, लक्ष्मण) को वन दिया, तो मार्ग को पुष्पमय क्यों नहीं बनाया? यदि हम विधाता के पास से माँगा हुआ पातीं, तो हे सखी! इन तीनों पथिकों को हम अपनी आँखों में रख लेतीं।

जे नर नारि न अवसर आए। तिन सिय राम न देखन पाए।।
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई।।
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम फल पाई।।
दो०– अबला बालक बृद्ध जन, कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबश लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं।।१२१।।

भा०– उस अवसर पर जो पुरुष–स्त्री नहीं आये, वे श्रीसीता, राम, लक्ष्मण को नहीं देख पाये। (यहाँ राम शब्द लक्ष्मण का भी उपलक्षण है।) तीनों पथिकों का स्वरूप सुनकर वे अकुलाकर पूछने लगे, हे भाई! श्रीसीता, राम, लक्ष्मण अभी कहाँ तक गये होंगे? जो समर्थ हैं वे तो दौड़कर जाकर देख लेते हैं और प्रभु के दर्शन कर अपने जन्म लेने का फल पाकर इष्टलाभ से उत्पन्न प्रसन्नता के साथ लौट आते हैं, किन्तु चलने फिरने में जो असमर्थ निर्बल महिलायें, बालक और वृद्धजन हैं, वे हाथ मलते और पछताते हैं कि, हाय विधाता! हमसे आने में विलम्ब क्यों हुआ? इस प्रकार श्रीराम जहाँ–जहाँ जाते हैं वहाँ–वहाँ लोग प्रेम के विवश हो जाते हैं।

गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू।।
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं।।
कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जोइ लोचन लाहू।।

भा०- इस प्रकार से सूर्यकुलरूप कुमुद के चन्द्रमा प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को देखकर गाँव-गाँव में आनन्द होता है। जो लोग कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे महाराज दशरथ और महारानी कैकेयी को दोष लगाते हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि, महाराज दशरथ जी अच्छे हैं, जिन्होंने श्रीराम जी को वनवास देकर हमें नेत्रों का लाभ तो दे दिया।

कहहिं परसपर लोग लुगाई। बातें सरल सनेह सुहाई।।
ते पितु मातु धन्य जिन जाए। धन्य सो नगर जहाँ ते आए।।
धन्य सो देश शैल बन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ।।
सुख पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही।।

भा०- पुरुष और स्त्रियाँ परस्पर सरल स्नेह से सुन्दर बातें कह रहे हैं, वे पिता-माता धन्य हैं, जिन्होंने इन तीनों को जन्म दिया है। वह नगर धन्य है, जहाँ से ये लोग आये हैं। वह देश, वह पर्वत, वह वन, वह ग्राम धन्य हैं। जहाँ-जहाँ ये जा रहे हैं, वह स्थान धन्य है। जिस व्यक्ति के ये सब प्रकार से स्नेही अर्थात् स्नेह के आश्रय हैं, उसी की रचना करके ब्रह्मा जी ने बहुत सुख पाया।

राम लखन सिय कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई।।

दो०- एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत।।१२२।।

भा०- श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी की कथा वन के सम्पूर्ण मार्ग में छायी रही। इस प्रकार, मार्ग के लोगों को सुख देते हुए वन को देखते हुए सूर्यकुलरूप कमल के सूर्य श्रीराम, सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ चले जा रहे हैं।

* नवाहपरायण, चौथा विश्राम *

आगे राम लखन बने पाछे। तापस बेष बिराजत काछे।।
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

भा०- आगे श्रीराम तथा उनके पीछे लक्ष्मण जी विराज रहे हैं, वे दोनों तपस्वियों के वेश धारण किये हुए, बहुत सुन्दर लग रहे हैं। दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण के बीच में श्रीसीता जी किस प्रकार सुशोभित हो रही है, जैसे ब्रह्म और जीवाचार्य के बीच में भगवान् की माया अर्थात् कृपा सुशोभित होती है।

विशेष- कोशों में माया शब्द कृपा, लीला, मूल अज्ञान तथा छल, इन चार अर्थो में प्रसिद्ध है। माया कृपायां लीलायां मूलाज्ञाने छले तथा। उक्त चार अर्थो में से यहाँ कृपा अर्थ अभीष्ट है। जीव शब्द यहाँ जीवाचार्य के अर्थ में प्रयुक्त है।

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई।।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही।।

भा०- फिर मैं वह छवि कह रहा हूँ, जो मेरे मन में निवास कर रही है। श्रीराम, लक्ष्मण जी के बीच में सीता जी ऐसे सुशोभित हो रही हैं, मानो वसन्त और काम के बीच में रति शोभा पा रही हों। फिर हृदय में देखकर अर्थात् मानसिक नेत्रों से दर्शन करके उपमा कह रहा हूँ, मानो बुध और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी सुशोभित हो रही हों।

विशेष- यहाँ मानसकार ने क्रम से तीन उपमायें देकर, भगवती श्रीसीता जी के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्य का दर्शन कराया है।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।।
सीय राम पद अंक बराए। लखन चलहिं मग दाहिन लाए।।

भा०- भगवती श्रीसीता जी मार्ग में प्रभु श्रीराम के चरणों की रेखाओं के बीच-बीच में चरण रखती हैं और भयभीत होकर चलती हैं कि, कहीं उनके चरणों से प्रभु के चरणों की रेखायें मिट न जायें। सीता जी एवं श्रीराम के चरण चिन्हों को बचा-बचाकर लक्ष्मण जी मार्ग में दाहिनी ओर से चलते हैं, जिससे मर्यादा की रक्षा के साथ प्रभु की अनुकूलता की भी रक्षा होती रहे।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई।।
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं।।

भा०- श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी की परस्पर प्रीति बड़ी ही सुहावनी तथा वाणी के विषय से परे है, वह किस प्रकार कही जाये? प्रभु की छवि को देखकर, पक्षी और पशु भी मग्न हो जाते हैं। बटोही श्रीराम ने चित्त को चुरा लिया है।

दो०- जिन जिन देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मग अगम अनंद तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ।।१२३।।

भा०- जिन-जिन लोगों ने सीता जी के सहित प्यारे पथिक दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण जी को वन पथ में जाते हुए देखा, वे ही संसार के दुर्गम मार्ग अर्थात् जन्म-मरणात्मक आवागमनमय मार्ग को आनन्दपूर्वक बिना श्रम के समाप्त करके, आनन्दित रह रहे हैं अर्थात् अब उनके लिए कोई भवबन्धन नहीं रह गया, वे मुक्त होकर प्रभु के नित्य परिकरों में मिल गये हैं।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहिं लखन सिय राम बटाऊ।।
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई।।

भा०- आज भी जिसके हृदय में किसी भी समय स्वप्न में भी श्रीलक्ष्मण, सीता जी एवं श्रीराम रूप बटोही निवास करते हैं, वही श्रीरामधाम का वह पथ प्राप्त कर लेगा, जो मार्ग कभी कोई मुनि प्राप्त करता है।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बट शीतल पानी।।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई।।

भा०- तब रघुकुल के वीर श्रीराम ने सीता जी को श्रमित जाना और थोड़ी ही दूर पर वटवृक्ष तथा शीतल जल देखकर, रघुराज श्रीराम जी वहाँ निवास कर रात्रि में कन्द, मूल, फल का आहार कर, प्रातःकाल स्नान करके आगे के लिए चले।

देखत बन सर शैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए।।
राम दीख मुनि बास सुहावन। सुंदर गिरि कानन जल पावन।।

भा०- इस प्रकार, वन, तालाब और सुहावने पर्वतों को देखते हुए, प्रभु श्रीराम वाल्मीकि मुनि के आश्रम आये। श्रीराम ने मुनि का सुहावना निवास, सुन्दर वन और पर्वत तथा पावन जल देखा। (जो आज भी वाल्मीकि गंगा के नाम से प्रसिद्ध है।)

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले।।
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं।।

भा०- वहाँ तालाबों में कमल तथा वन में वृक्ष विकसित हो रहे थे। मकरन्द में भूले हुए भ्रमर मधुर गुंजार कर रहे थे। अनेक पक्षी, पशु कोलाहल करते और वैर से रहित होकर प्रसन्नता से वन में विचरण करते थे।

दो०- शुचि सुंदर आश्रम निरखि, हरषे राजिवनैन।
सुनि रघुबर आगमन मुनि, आगे आयउ लेन।।१२४।।

भा०- इस प्रकार, बहुत सुन्दर वाल्मीकि जी का आश्रम देखकर लाल कमल के समान नेत्रोंवाले भगवान् श्रीराम प्रसन्न हुए। रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान् का आगमन सुनकर, उन्हें लिवा ले जाने के लिए महर्षि वाल्मीकि जी आगे आये।

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आशिरबाद बिप्रवर दीन्हा।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आश्रमहिं आने।।

भा०- महर्षि वाल्मीकि जी को भगवान् श्रीराम ने दण्डवत् किया और श्रेष्ठ ब्राह्मण वाल्मीकि जी ने प्रभु को आशीर्वाद दिया। श्रीराम की छवि को देखकर, महर्षि के नेत्र शीतल हो गये, वे सम्मान करके प्रभु को आश्रम ले आये।

मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाए। तब मुनि आसन दिए सुहाए।।
कंद मूल फल मधुर मँगाए। सिय सौमित्रि राम फल खाए।।

भा०- मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने आज प्राणों के प्रिय प्रभु को अतिथि रूप में प्राप्त किया है। इसके पश्चात् मुनि ने श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को सुन्दर आसन दिया। वाल्मीकि जी ने मधुर कन्द, मूल, फल मंगवाये। श्रीसीता, लक्ष्मणजी, और श्रीराम ने कन्द, मूल, फल खाये।

बालमीकि मन आनँद भारी। मंगल मूरति नयन निहारी।।
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन सुखदाई।।

भा०- मंगलमूर्ति श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को अपने नेत्रों से निहारकर महर्षि वाल्मीकि जी के मन में बहुत–बड़ा–आनन्द हुआ। तब रघु अर्थात् जीवमात्र के स्वामी और रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम कमल के समान कोमल हाथ जोड़कर कानों को सुख देनेवाले वचन बोले–

तुम त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।।
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी।।

भा०- हे मुनियों के स्वामी वाल्मीकि जी! आप त्रिकालदर्शी अर्थात् तीनों काल की घटनाओं को देख लेते हैं। सम्पूर्ण विश्व बेर–फल के समान आपके हाथ में है अर्थात् जैसे कोई व्यक्ति बेर के फल को हाथ में लेकर उसकी सम्पूर्ण परिस्थिति समझ लेता है, उसी प्रकार आप विश्व के भीतर–बाहर सब कुछ जान लेते हैं। ऐसा कह कर, प्रभु ने वह सब कथा कह सुनायी, जिस–जिस प्रकार से रानी कैकेयी ने वनवास दिया था।

दो०- तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाउ।।१२५।।

भा०- पिता जी के वचन का पालन, फिर माता कैकेयी का हित और भैया भरत जैसा राजा तथा मुझे आपका दर्शन, हे प्रभु! सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

देखि पायँ मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे।।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग न पावै कोई।।
मुनि तापस जिन ते दुख लहहीं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं।।
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू।।
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन शाला। बास करौं कछु काल कृपाला।।

भा०- हे मुनिराज! आपके श्रीचरणों के दर्शन करके मेरे सभी सत्कर्म सफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो, जहाँ कोई मुनि मुझसे उद्वेग नहीं प्राप्त करें अर्थात् मेरे रहने से किसी को विक्षेप नहीं हो वहाँ मैं रह लूँ, क्योंकि जिन राजाओं से मुनि और तपस्वीजन दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही जल जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सभी मंगलों का मूल है और ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को जला देता है। मन में ऐसा जानकर, आप वही स्थान कहिये, जहाँ मैं सीता, लक्ष्मण के साथ जाऊँ। हे कृपालु! वहाँ सुन्दर पर्णकुटी बना कर कुछ कालपर्यन्त निवास करूँ।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी।।
कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम पालक संतत श्रुति सेतू।।

भा०- स्वभाव से सरल रघु अर्थात् जीवों के वरणीय श्रीराम की वाणी सुनकर, ज्ञानी मुनि वाल्मीकि जी बोले, 'साधु-साधु'(बहुत अच्छा-बहुत अच्छा), हे रघुकुल के पताका श्रीराम! आप ऐसा क्यों नहीं कहेंगे, क्योंकि आप सदैव वेदरूप सेतु के पालक हैं।

छं०- श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।
जो सहसशीष अहीश महिधर लखन सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निशिचर अनी।।

भा०- हे श्रीराम! आप वेदरूप सेतु के पालक हैं। भगवती सीता जी आपकी माया अर्थात् कृपाशक्ति हैं, जो कृपानिधान आपश्री राम जी का संकेत पाकर, ब्रह्मा जी द्वारा जगत् का सृजन कराती हैं, विष्णु जी के द्वारा जगत् का पालन कराती हैं तथा शिव जी द्वारा जगत् का संहार कराती हैं। अथवा आप और जनकनन्दिनी जानकी जी वेदरूप सेतु के पालक हैं। सीता जी की माया अर्थात् लीला ही कृपा के निधान आपश्री का संकेत पाकर क्रम से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव जी का रूप धारण करके जगत् का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो सहस्र सिरवाले विराट् तथा अहीश अर्थात् शेषनाग के भी नियन्ता, वराहरूप से पृथ्वी को धारण करने वाले और चर (चिद् वर्ग), अचर (अचिद् वर्ग) के सहित इस जगत् के धनी अर्थात् पति, वैकुण्ठविहारी विष्णु हैं, वे ही आपके साथ लक्ष्मण जी के रूप में हैं। आप देवताओं के कार्य के लिए राजा का शरीर धारण करके, दुष्ट राक्षसों की सेना को नष्ट करने के लिए वन को चले हैं।

सो०- राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।१२६।।

भा०– हे श्रीराम! आपका स्वरूप, वाणी से अगम्य, बुद्धि से परे, सर्वव्यापक, अकथनीय और अपार है, उसे 'नेति–नेति' इस प्रकार समस्त पदार्थों का निर्षण करते हुए वेद निरन्तर कहते रहते हैं।

जग पेखन तुम देखनिहारे। बिधि हरि शंभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुमहिं को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।।

भा०– यह संसार एक प्रेक्षण अर्थात् खेल है, इसे आप देखने वाले हैं। इस संसार रूप कठपुतली को क्रम से जन्म द्वारा ब्रह्मा, पालन द्वारा विष्णु और संहार द्वारा शिव जी नचाने वाले हैं। वे (ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी) भी आप का मर्म नहीं जानते उनकी किस क्रिया से आप संतुष्ट होंगे, भला त्रिदेव के अतिरिक्त और कौन आपको जानने वाला है? हे परमात्मन्! आपको वही जान सकता है, जिसे आप स्वयं जना देते हैं, अर्थात् जिसको आप स्वयं कृपा करके अपने स्वरूप का ज्ञान करा देते हैं। जो आपको जानते हैं, ऐसे साधक ज्ञाता आपको जानते–जानते आपके लिए हो जाते हैं।

तुम्हरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

भा०– हे रघकुल तथा रघु नामक जीव को आनन्दित करने वाले! हे भक्तों के हृदय के चंदन अर्थात् आह्लादक (भक्तों के हृदय को आनन्दित करने वाले) प्रभु श्रीराम! आपकी कृपा से आपके भक्त आप को जानते हैं।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।

भा०– भगवन्! आपका शरीर चैतन्य और आनन्दमय है। आप जन्म, मरण, स्थिति, परिवर्तन, परिवर्धन और विनाश इन छः विकारों से रहित हैं। आपको अधिकारी ही जानते हैं। आप सन्तों और देवताओं के कार्य के लिए मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। आप साधारण राजा की भाँति कह और कर रहे हैं अर्थात् साधारण राजकुमार की लीला कर रहे हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।
तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिअ तस चाहिय नाचा।।

भा०– हे श्रीराम! आपके चरित्रों को देख और सुनकर जड़बुद्धि वाले लोग मोहित हो जाते हैं और विद्वान् सुखी हो जाते हैं। आप जो कहते हैं, उसी को सत्य करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार वेश बनाया जाये उसी प्रकार नाचना चाहिये।

दो०- पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुमहिं देखावौं ठाउँ।।१२७।।

भा०– आपने मुझ से पूछा कि, मैं कहाँ रहूँ? मैं तो पूछने में संकोच कर रहा हूँ। आप जहाँ न हों वहाँ बतायें अर्थात् कोई ऐसा स्थान बतायें जहाँ आप की व्यापकता नहीं हो, तब मैं आपको स्थान दिखा दूँ, क्योंकि सर्वदेशवृत्ति को व्यापक कहते हैं, यदि वह एक भी अंगुल स्थान पर नहीं रहा तो परमात्मा का व्यापकत्व कैसा? आप सर्वव्याप्त हैं और सर्वत्र रह रहे हैं। अतः आपको स्थान दिखाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महँ मुसुकाने।।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिय रस बोरी।।

भा०- प्रेमरस में भीने हुए महर्षि बाल्मीकि जी के वचन सुनकर, श्रीराम संकुचित होकर मन में मुस्कुराये। फिर महर्षि बाल्मीकि जी हँसकर अमृतरस में डूबोयी हुई मधुर वाणी कहने लगे।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।

भा०- हे श्रीराम! सुनिये, अब वह भवन बताता हूँ, जहाँ आप सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ रहें।

विशेष- यहाँ से महर्षि बाल्मीकि जी चौदह स्थानों का निर्देश करना प्रारम्भ कर रहे हैं। इन्हीं के माध्यम से वे चौदह परमभागवतों की चर्चा करेंगे। अथवा, भक्तों के उन चौदह विशेषताओं की चर्चा करेंगे, जिनमें से किसी एक विशेषता के रहने पर भी भगवान्, भक्त के हृदय में निवास करते हैं। यहाँ यह ध्यान रहे कि, छन्द रचना के अनुरोध से भले ही कहीं सीता जी एवं लक्ष्मण जी का नाम न सुनायी पड़े, परन्तु उपलक्षण की विधा से प्रत्येक स्थान में तीनों का निवास समझना होगा।

जिन के स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन के हिय तुम कहँ गृह रूरे।।

भा०- जिनके कान समुद्र के समान हैं, वे आपकी अनेक कथारूप गंगा जी को भरते रहते हैं और कभी पूर्ण नहीं होते, उनके हृदय, आप तीनों श्रीराम, सीता, लक्ष्मण जी के लिए सुन्दर भवन हैं। अर्थात् जिनके कान आपकी कथा सुनते–सुनते कभी तृप्त नहीं होते, उनके हृदय में आप निवास कीजिये।

विशेष- यह प्रथम विशेषता का वर्णन सम्पन्न हुआ, जो श्रीपार्वती, श्रीगरुड़ श्रीभरद्वाज तथा श्रीयाज्ञवल्क्य जी में समन्वित हो जाता है।

लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।
तिन के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।

भा०- हे रघुकुल के स्वामी प्रभु श्रीराम! जिन्होंने अपने नेत्र को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूप मेघों की अभिलाषा किये रहते हैं और जो विशाल नदी, समुद्र तथा तालाबों का भी निरादर करते हैं। केवल आपश्री के रूप के बिन्दु जल से अर्थात् आपकी एक हल्की झाँकी निहारकर सुखी हो जाते हैं, उनके सुख देने वाले हृदयरूप भवन में आप, भाई लक्ष्मण जी और धर्मपत्नी सीता जी के साथ वास कीजिये।

विशेष- यह द्वितीय महाभागवत का लक्षण है, जो बालकाण्ड के ही उत्तरार्द्ध में श्रीमनु–शतरूपा, श्रीदशरथ–कौसल्या, श्रीवसिष्ठ–अरुंधती, श्रीविश्वामित्र, श्रीअहल्या, श्रीजनक–सुनयना तथा समस्त मिथिलावासियों में समन्वित हो जाता है।

दो०- जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु।।१२८।।

भा०- हे राघवेन्द्र! योगियों के भी रमण के आश्रय प्रभु! आपके निर्मल यश–चरित्ररूप मानससरोवर में जिसकी जिह्वा हंसिनी के समान आपके गुणगण रूप मोतियों को चूगती रहती है, उसके हृदय में आप श्रीसीता, लक्ष्मण जी के साथ वास करें।

विशेष- यह तृतीय स्थान है, जो तीसरे प्रकार के भगवत्भक्त का लक्षण है। यह अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्द्ध में अवधवासियों, निषादराज गुह, केवट, सुमंत्र तथा ग्राम के नर–नारियों में समन्वित हो जाता है।

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुमहिं निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
शीष नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिशेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन के मन माहीं।।

भा०– जिसकी नासिका आपके प्रसाद से आई हुई तुलसी, सुन्दर नैवेद्य, पुष्प, इत्र आदि सुगंधित द्रव्यों की पवित्र सुगंध को आदरपूर्वक निरन्तर ग्रहण करती रहती है। जो आपको निवेदित किये हुए पदार्थ का ही भोजन करते हैं अर्थात् अपने भोजन के पूर्व, जो सुन्दर तुलसी पधराकर प्रत्येक सामग्री आपको भोग धरा कर फिर प्रसाद बुद्धि से पाते हैं। जो आपके प्रसाद रूप में ही वस्त्रों और आभूषणों को धारण करते हैं। जिनके सिर, देवता, गुरुजन एवं ब्राह्मणों को देखकर अत्यन्त विशेष विनय के साथ प्रीतिपूर्वक नमन करते हैं। जिनके हाथ, राम अर्थात् परब्रह्म आप श्रीराम प्रभु के श्रीचरणकमल की पूजा करते हैं। जिनके हृदय में आपश्री प्रभु श्रीराम का ही विश्वास रहता है, आपश्री के अतिरिक्त जिन्हें इष्ट रूप में और किसी का विश्वास नहीं रहता। जिनके चरण श्रीराम अर्थात् आपश्री के धाम रूप तीर्थ (श्रीअवध, श्रीचित्रकूट) चल कर जाते हैं। हे श्रीराम! सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ आप उनके हृदय में निवास कीजिये।

विशेष– यह चतुर्थ स्थान की सम्पूर्ण विशेषता श्रीअयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध के प्रतिपाद्य भैया भरत में अक्षरशः घट जाती है।

मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।
तुम ते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी।।
दो०- सब करि माँगहिं एक फल, राम चरन रति होउ।
तिन के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ।।१२९।।

भा०– जो निरन्तर आपके मंत्रराज षडक्षरमंत्र का जप करते हैं (कम से कम साठ माला का जप करते हैं)। जो अपने परिवार के सहित आपकी पूजा करते हैं (श्रीराम पंचायतन की पूजा)। जो अनेक प्रकार के तर्पण और होम करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराके बहुत दान देते हैं। अपने हृदय में आपसे अपने सद्‌गुरुदेव को अधिक जानकर, सम्मान करके उनकी सब प्रकार से सेवा करते हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण वेदविहित् कर्म करके सभी से एक ही वरदान माँगते हैं, वह यह कि, श्रीसीताराम जी के चरणों में रति अर्थात् प्रेमाभक्ति हो जाये। उनके मन–मंदिर में लक्ष्मण के साथ आप दोनों श्रीसीताराम जी निवास करें।

विशेष– यह पाँचवे स्थान का सम्पूर्ण लक्षण अरण्यकाण्ड के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित सभी मुनिगणों, श्रीअत्रि, श्रीशरभंग, श्रीसुतीक्ष्ण, श्रीअगस्त्य आदि महाभागवतों में घट जाती है।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन के कपट दंभ नहिं माया। तिन के हृदय बसहु रघुराया।।

भा०– हे रघुकुल के राजा श्रीराम! जिनके हृदय में काम, क्रोध, मद, मान और मोह नहीं है। जिनके हृदय में लोभ (लालच), क्षोभ (किसी भी प्रकार का मानसिक विकार) नहीं है। जिनके हृदय में राग और द्वेष नहीं है। जिनके पास कपट, दम्भ और माया अर्थात् छल नहीं है, उन्हीं परमभागवतों के हृदय में आप सीता, लक्ष्मण जी के साथ वास कीजिये।

विशेष- इस छठें स्थान की पूरी विशेषता अरण्यकाण्ड के उत्तरार्द्ध में वर्णित श्रीजटायु, श्रीशबरी तथा श्रीनारद जैसे परम श्रीरामभक्तों में समन्वित हो जाती है।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत शरन तुम्हारी।।
तुमहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन के मन माहीं।।

भा०- हे भगवान् श्रीराम! जो सभी के प्रिय और सभी के हितैषी हैं। जिनके लिए सुख, दुःख, प्रशंसा तथा गाली समान है। जो विचार करके सत्य और प्रियवचन ही कहते हैं। जो जागते और सोते अर्थात् प्रत्येक अवस्था में आपकी शरण में रहते हैं अर्थात् आपको छोड़कर जिनके लिए कोई दूसरी गति नहीं है अर्थात् जो आपके अनन्य शरणागत् हैं। उन्हीं के मन में आप श्रीसीता, लक्ष्मण जी के साथ निवास करें।

विशेष- यह सातवें स्थान का पूर्णलक्षण किष्किन्धकाण्ड के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित हनुमान जी महाराज तथा सुग्रीव जी में पूर्ण रूप से समन्वित हो जाती है।

जननी सम जानहिं परनारी। धन पराव बिष ते बिष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पद बिपति बिशेषी।।
जिनहिं राम तुम प्रानपियारे। तिन के मन शुभ सदन तुम्हारे।।

भा०- हे प्रभु राघवेन्द्र जी! जो परायी नारी को अपने माता के समान जानते हैं तथा जो, दूसरे के धन को विष से भी भयंकर विष मानते हैं। जो दूसरे की संपत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं। जो दूसरे की विपत्ति में विशेष दुःखी हो जाते हैं। जिन्हें आप प्राणों के समान प्रिय हैं, उनके हृदय आप अर्थात् श्रीसीता, राम लक्ष्मण जी के कल्याणमय भवन हैं।

विशेष- इस आठवें स्थान की विशेषता किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित श्रीसुग्रीव, जाम्बवान, नल, नील, अंगद आदि सम्पूर्ण वानरों तथा स्वयंप्रभा एवं सम्पाति आदि सहायक परिकरों में घट जाती है।

दो०- स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन के सब तुम तात।
मन मंदिर तिन के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।।१३०।।

भा०- हे तात् अर्थात् परमप्रेमास्पद श्रीराम! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उन्हीं के मन-मंदिर में श्रीसीता के सहित आप दोनों भ्राता निवास करें।

विशेष- यह नवम् स्थान का लक्षण सुन्दरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित हनुमान जी में समग्रतः समन्वित हो जाता है।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन कर मन नीका।।

भा०- जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ही ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणों और गौओं के लिए संकट सहते हैं। जगत् में जिनकी नीति में निपुण (कुशल) के रूप में मर्यादा रही है। उनका सुन्दर मन श्रीसीता, लक्ष्मण और आपका सुन्दर घर है।

विशेष- इस दशम् स्थान का सम्पूर्ण वैशिष्ट्य सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित विभीषण जी में सुसंगठित हो जाता है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।

भा०- जो आपके गुणों और अपने दोषों का अनुसंधान करते हैं, जिन्हें सब प्रकार से आपका ही भरोसा रहता है। जिनको आप श्रीराम के भक्त प्रिय लगते हैं, उनके हृदय में श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के सहित आप निवास करें।

विशेष- यह ग्यारहवें स्थान का लक्षण, युद्धकाण्ड के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित समुद्र, मंदोदरी, अंगद आदि भागवतों में समन्वित हो जाता है।

जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुमहि रहइ लय लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई।।

भा०- जो जाति (जाति का अभिमान), पाँति (वर्ग विशेष), धन, धर्म, बड़ाई, प्रिय कुटुम्ब, सुख देने वाले भवन, सब कुछ छोड़कर आप में ही अपनी चित्तवृत्ति को लगा करके रह लेता है, उस भागवत के हृदय में आप श्रीराम, सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ रहें।

विशेष- यह बारहवें स्थान का लक्षण, युद्धकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित अग्नि, ब्रह्मा, इन्द्र, शिव जी आदि देवताओं में तथा देवांश वानरगण, महर्षि भरद्वाज और निषादराज गुह में संगठित हो जाता है।

सरग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा।।

भा०- हे श्रीराम! जो समानरूप से स्वर्ग, नरक तथा मोक्ष इन तीनों को समान समझता है। अथवा, इन तीनों ही अवस्थाओं में समान रूप से जहाँ–तहाँ आपको धनुष, बाण धारण करते हुए देखता रहता है। जो कर्म, वाणी और मन से आपका ही सेवक है। आप, उसी के हृदय में श्रीसीता तथा लक्ष्मण जी के साथ डेरा अर्थात् अपना निवास करें।

विशेष- यह तेरहवें स्थान का सम्पूर्ण लक्षण उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित श्रीभरत, शत्रुघ्न, सनकादि महर्षि और श्रीअवध की सम्पूर्ण प्रजा में समन्वित हो जाता है।

दो०- जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह।।१३१।।

भा०- जिसको आपसे कभी भी कुछ भी नहीं चाहिये। जो आपसे स्वाभाविक स्नेह करता है, उसी के मन में आप श्रीसीता, लक्ष्मण के साथ निरन्तर वास करें। उसी परमभक्त का निष्किंचन मन आपका निज गेह अर्थात् व्यक्तिगत् स्थायी भवन है।

विशेष- यह चौदहवें स्थान का सम्पूर्ण लक्षण, उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित श्रीभुशुण्डि में पूर्णरूपेण समन्वित हो जाता है। वस्तुतः महर्षि बाल्मीकि जी द्वारा कहे हुए श्रीरामभक्तों की चौदहों विशेषतायें श्रीमानस जी के प्रतिपाद्य मूर्धन्यभक्त श्रीभरत और श्रीहनुमान में पूर्णतः घट जाते हैं। अतः यह अकेले ही चौदहों भक्तों का प्रतिनिधित्व कर लेते हैं। इसकी विस्तृत चर्चा पश्चात् में लिखे जाने वाले श्रीराघव कृपा–भाष्य में की जायेगी।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए।।
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक।।

भा०– इस प्रकार, से श्रेष्ठमुनि बाल्मीकि जी ने भगवान् श्रीराम को चौदह भक्ति विधाओं के वर्णन के ब्याज से चौदह भवन दिखाये। उनके प्रेमपूर्वक वचन प्रभु श्रीराम के मन को भा गये। फिर मुनि बाल्मीकि जी ने कहा, हे सूर्यकुल के स्वामी श्रीराघव! अब वर्तमान समय में सुख देनेवाला आश्रम कहता हूँ।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।।
शैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू।।

भा०– हे प्रभु! आप, श्रीचित्रकूटपर्वत पर निवास कीजिये। वहाँ आपका सब प्रकार से सुपास होगा, अर्थात् वहाँ आपको सारी सुविधायें मिलेगी। श्रीचित्रकूटपर्वत बहुत सुहावना है। श्रीचित्रकूट के वन बहुत सुन्दर हैं, वहाँ हाथी, सिंह, हिरण और पक्षी विहार करते हैं।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपबल आनी।।
सुरसरि धार नाम मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।

भा०– श्रीचित्रकूट में पुराणों में प्रशंसित पवित्र नदी है, जिसे अत्रि जी की प्रिय पत्नी अनुसूइया जी अपनी तपस्या के बल से चित्रकूट में ले आई थीं, जो देवनदी गंगा जी की धारा अर्थात् तीन धाराओं में स्वर्ग की धारा है। इसका नाम मंदाकिनी है, जो सभी पापरूप बालकों को नष्ट करने के लिए, डाकिनी ग्रह के समान है। अर्थात् जैसे डाकिनी ग्रह शिशुओं को मार डालती है। उसी प्रकार, मंदाकिनी जी दर्शन, आचमन, स्नान और जलपान मात्र से सभी पापों को समाप्त कर देती हैं।

विशेष– आर्षग्रन्थों के अनुसार जब भगीरथ महाराज की प्रार्थना पर शिव जी ने अपनी जटा से गंगा जी को छोड़ा तब गंगा जी तीन धाराओं में विभक्त हुईं। उनमें से गंगा जी की जो धारा पाताल को गईं, उन्हें भोगावती कहते हैं, जो स्वर्गलोक को गईं, वह मंदाकिनी नाम से प्रसिद्ध हुईं और जो इस पृथ्वीलोक में आईं, उन्हें भागीरथी कहते हैं। अतः स्वर्गलोक की मंदाकिनी को ही अनुसूइया जी श्रीचित्रकूट ले आईं, इसलिए यहाँ गोस्वामी जी ने सुरसरि–धारा का प्रयोग किया है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू।।

भा०– हे राघव, श्रीराम! श्रीचित्रकूट में अत्रि जी आदि बहुत से मुनिजन निवास करते हैं। वे तप से अपने शरीर को कसते रहते हैं अर्थात् कृश करते रहते हैं। चलिए (मेरे साथ चलिए), सबका श्रम सफल कीजिये। हे श्रीराम! पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्य और उससे भी श्रेष्ठ श्रीचित्रकूट पर्वत को गौरव प्रदान कीजिये, जो आपके निवास के कारण अब कामदगिरि के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा।

दो०– चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरितवर, सिय समेत दोउ भाइ।।१३२।।

भा०– महामुनि बाल्मीकि जी ने श्रीचित्रकूट की असीम महिमा को गाकर कहा। श्रीसीता के सहित दोनों भ्राता, श्रीराम और लक्ष्मण जी ने आकर नदियों में श्रेष्ठ मंदाकिनी जी में स्नान किये।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।।
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिशि फिरेउ धनुष जिमि नारा।।
नदी पनच शर शम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।।

चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी।।
अस कहि लखन ठाँव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा।।
रमेउ राम मन देवन जाना। चले सहित सुर थपति पधाना।।
कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ शाला। एक ललित लघु एक बिशाला।।

भा०– रघुकुल में श्रेष्ठ और रघु अर्थात् जीवों के द्वारा वरणीय भगवान् श्रीराम ने कहा, लक्ष्मण! यह घाट बहुत अच्छा है, यहीं कहीं पर स्थान की व्यवस्था करो अर्थात् कुटी बनाने की व्यवस्था करो। लक्ष्मण जी ने पयस्वनी नदी का उत्तरी ऊँचा किनारा देखा और बोले, यहाँ चारों ओर से धनुष के समान एक नाला फिरा हुआ है। मंदाकिनी नदी उसकी पनच अर्थात् प्रत्यंचा (डोरी) हैं। आध्यात्मिक लोगों के शम अर्थात् मन को शान्त करने की प्रक्रिया, दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन, दान अर्थात् सात्विक दान ही बाण हैं। कलियुग के सभी दोष, अनेक प्रकार के हिंसक जन्तु जो इन बाणों के लक्ष्य अर्थात् निशाने हैं। चित्रकूट पर्वत मानो स्थिर अहेरि अर्थात् आखेटक (शिकारी) है, जो घात अर्थात् मारने से नहीं चूकता। मुठभेर करके, ललकार कर, युद्ध करके, सामने से इन पापरूप जन्तुओं को मारता है। ऐसा कह कर लक्ष्मण जी ने भगवान् श्रीराम को कुटी बनाने के लिए उपयुक्त स्थान दिखलाया। लक्ष्मण जी द्वारा निर्दिष्ट स्थान देखकर, रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम ने सुख पाया अर्थात् प्रभु प्रसन्न हुए। श्रीचित्रकूट में सभी योगियों को रमानेवाले परब्रह्म श्रीराम का मन रम गया है, जब देवताओं ने यह जाना तब स्थपति अर्थात् देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को प्रधान मानकर सभी देवता चले अर्थात् विमानों के बिना पैदल चले। सभी देवता कोलों, किरातों के वेश में श्रीचित्रकूटविहारी प्रभु के पास आये और पत्तों तथा घास से सुन्दर भवन बनाये। दो सुन्दर कुटिया बनायी गई, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इनमें से एक सुन्दर बहुत छोटी कुटी बनायी गई, जिसमें प्रभु अपनी प्राणप्रिया श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के साथ भोजन, विश्राम आदि करेंगे। एक विशाल कुटि बनायी गई, जहाँ भगवान् श्रीराम आगन्तुक मुनियों के साथ सामूहिक, सार्वजनिक चर्चा करेंगे।

दो०– लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदन मुनि बेष जनु, रति ऋतुराज समेत।।१३३।।

भा०– लक्ष्मण जी और भगवती सीता जी के सहित प्रभु श्रीराम सुन्दर पर्णगृह में सुशोभित हो रहे हैं, मानो रति और ऋतुओं के राजा वसन्त के सहित मुनिवेश धारण करके कामदेव ही सुशोभित हो रहे हैं।

* मासपारायण, चौदहवाँ विश्राम *

अमर नाग किंनर दिशिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला।।
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू।।

भा०– उस समय देवता, नाग, किन्नर और दसों दिक्पाल श्रीचित्रकूट आये। सबको श्रीराम ने प्रणाम किया और सभी देवताओं ने श्रीराम को प्रणाम किया। नेत्रों का लाभ लेकर देवता प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू।।
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए।।

भा०- पुष्पों की वर्षा करके देवताओं के समाज ने कहा, हे नाथ! आज हम सनाथ हो गये। देवताओं ने प्रार्थना करके रावण से प्राप्त हो रहे अपने असहनीय दु:ख को सुनाया और प्रभु का आश्वासन पाकर अपने–अपने लोक को चले गये।

चित्रकूट रघुनंदन छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए।।
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा।।

भा०- श्रीचित्रकूट में रघुनंदन अर्थात् जीवमात्र को आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीराम छाये, अर्थात् पर्णकुटी बना कर रह रहे हैं। यह समाचार सुन–सुन कर मुनिगण आ गये। प्रसन्न मुनि समूहों को आते देखकर, रघुकुल के चन्द्रमा भगवान् श्रीराम ने उन्हें दण्डवत् किया।

विशेष : यहाँ रघुशब्द रघुकुल और सम्पूर्ण जीव जगत् इन दोनों अर्थों का बोधक है भगवान् श्रीराम दोनों को ही आनन्द देते हैं इसीलिए उन्हें रघुनंदन कहा जाता है। ***''रघुन सम्पूर्ण जीवान् रघुकुलो तमवांश्च नन्दयति इति रघुनन्दन :''***

मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आशिष देहीं।।
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं।।

भा०- मुनिजन, श्रीराम को हृदय से लगा लेते हैं और असुरों के संहार के लिए प्रभु को आशीर्वाद देते हैं। श्रीसीता एवं सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण जी तथा श्रीराम की छवि देखते हैं और अपने सम्पूर्ण साधनों को सफल करके समझते हैं।

दो०- जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमनि स्वछंद।।१३४।।

भा०- योग्यता के अनुसार मुनियों का सम्मान करके, प्रभु ने मुनि समूह को विदा किया। वे अपने आश्रमों में स्वच्छन्द अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे। श्रीचित्रकूट में उन्हें कोई नहीं रोकता, तात्पर्य यह है कि श्रीचित्रकूट में रावण का प्रवेश नहीं है।

यह सुधि कोल किरातन पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई।।
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।

भा०- जब कोल, किरातों ने यह सुधि अर्थात् श्रीचित्रकूट में श्रीसीता, लक्ष्मण सहित प्रभु श्रीराम के निवास का समाचार पाया तब वे इतने प्रसन्न हुए, मानो उनके घर में नौ निधियाँ आ गई हों। कोल, किरात पत्तों के दोनों में कन्द, मूल, फल भर–भर कर प्रभु के पास ऐसे चले, मानो सोना लूटने के लिए दरिद्र जा रहे हों।

तिन महँ जिन देखे दोउ भ्राता। अपर तिनहिं पूँछहिं मग जाता।।
कहत सुनत रघुबीर निकाई । आइ सबनि देखे रघुराई।।

भा०- जिन लोगों ने दोनों भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण जी को देखा है, उनसे मार्ग में जाते हुए दूसरे लोग पूछते हैं। श्रीराम की सुन्दरता कहते और सुनते आकर सभी ने रघुराज श्रीराम जी को देखा।

करहिं जुहार भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे।।
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक शरीर नयन जल बाढ़े।।

भा०– प्रभु के आगे भेंट रखकर जुहार अर्थात् पृथ्वी पर सिर टेक कर प्रणाम करते हैं और अत्यन्त अनुराग में भर कर प्रभु श्रीराम को देखते हैं। सभी चित्र में लिखे हुए के समान, जहाँ–तहाँ खड़े रह गये। उनके शरीर रोमांचित हो गये, नेत्रों में अश्रुजल की बाढ़ आ गई अर्थात् उनके नेत्र आँसुओं से भर गये।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने।।
प्रभुहिं जुहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी।।

भा०– श्रीराम ने सभी कोल, किरातों को प्रेम में मग्न जाना, तब प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। प्रभु श्रीराम को बारम्बार जुहार के साथ प्रणाम करके, हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक कोल, किरात प्रार्थना करने लगे।

दो०- अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभु पाँय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय।।१३५।।

भा०– हे नाथ! अब हम आपके चरणों को देखकर सनाथ हो गये हैं अर्थात् हम को एक समर्थ स्वामी प्राप्त हो चुके हैं। हे कोसल जनपद के राजा श्रीराम! हमारे भाग्य से आपका वन में आगमन हुआ है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम धारा।।
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुमहिं निहारी।।
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा।।

भा०– हे नाथ! जहाँ–जहाँ आपने चरण रखा वह भूमि, वन, मार्ग और पर्वत धन्य है। वन में भ्रमण करने वाले पक्षी और मृग धन्य हैं। आपको निहारकर (देखकर) उनके जन्म अर्थात् जीवन सफल हो गये हैं। हम सब कोल, किरात अपने परिवारों के साथ धन्य हैं, क्योंकि हम ने नेत्र भर आपके दर्शन किये।

कीन्ह बास भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल ऋतु रहब सुखारी।।
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई।।
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा।।
तहँ तहँ तुमहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर जलठाउँ देखाउब।।
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता।।

भा०– आपने सुन्दर स्थान का विचार करके निवास किया है। यहाँ आप सभी ऋतुओं में सुखी रहेंगे। हम हाथी, सिंह, सर्प और बाघों से बचाते हुए आपकी सब प्रकार से सेवा करेंगे। हे प्रभु! अत्यन्त सघन वन, पर्वत, गुफायें और खोह अर्थात् ढलाव की भूमि, ऊबड़–खाबड़ गड्ढे, नाले, सब कुछ हमारा एक–एक पग देखा हुआ है। हम वहाँ–वहाँ अर्थात् अनेक स्थानों पर आपको आखेट खेलायेंगे अर्थात् शिकार खेलने में सहायता करेंगे। आपको सुन्दर तालाब, झरने आदि जल के स्थान दिखायेंगे। हम परिवार के सहित आपके सेवक हैं, हे नाथ! आप आज्ञा देने में संकोच नहीं करेंगे।

दो०- बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बैन।।१३६।।

भा०– जो वेदों के वचन और मुनियों के मन के लिए भी अगम्य हैं, ऐसे करुणा के भवन, सर्व समर्थ श्रीराम किरातों के वचन इस प्रकार सुन रहे हैं, जैसे पिता बालक के वचन सुनता है।

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।।

भा०- जो जानने वाले हैं, वे आप लोग जान लें कि, श्रीराम को केवल प्रेम अर्थात् शुद्ध प्रेम प्रिय है। अथवा, श्रीराम को प्रेम ही प्रिय है और कुछ नहीं। इसके पश्चात् श्रीराम ने सभी कोल, किरातों को संतुष्ट किया। कोमल वचन कहकर, सभी को प्रेम से परिपुष्ट कर दिया।

बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए।।
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई।।

भा०- प्रभु ने सभी कोल, किरातों को विदा किया। वे भी भगवान् श्रीराम को सिर नवाकर गये और प्रभु के गुणों को कहते-सुनते अपने घरों को आ गये। इस प्रकार, देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण, सीता जी के सहित वन में निवास करने लगे।

जब ते आइ रहे रघुनायक। तब ते भा बन मंगलदायक।।
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना।।

भा०- रघुकुल के नायक श्रीराम जब से आकर श्रीचित्रकूट में रहे (विराजे) तब से, श्रीचित्रकूट वन मंगल देने वाला हो गया। वहाँ सुन्दर लताओं के वितानों से आलिंगित अनेक प्रकार के वृक्ष सदैव फूलने और फलने लगे।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए।।
गुंजत मंजुल मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी।।

भा०- वे वृक्ष स्वभाव से सुन्दर और कल्पवृक्ष के समान थे, मानो वे नन्दन वन को छोड़कर, वहाँ चित्रकूट में आये हों। सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ मधुर गुंजार कर रही है और सब प्रकार से सुख देने वाली तीनों प्रकार की बयार बह रही है।

दो०- नीलकंठ कलकंठ शुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग, स्रवन सुखद चित चोर।।१३७।।

भा०- नीलकंठ अर्थात् मयूर, कोयल, तोते, चातक, चकवा और चकोर आदि अनेक पक्षी कानों को सुख देने वाले और चित्त को चुराने वाले स्वरों में बोलते हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा।।
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिशेषी।।

भा०- हाथी, सिंह, वानर, सुअर, मृग, वैर छोड़कर सब साथ विचरण करते हैं। आखेट (शिकार) में भ्रमण करते हुए श्रीराम की छवि देखकर, मृगों के समूह बहुत प्रसन्न होते हैं।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि राम बन सकल सिहाहीं।।
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या।।
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना।।

भा०- संसार में जहाँ तक देवताओं के वन हैं, वे सभी श्रीराम का वन देखकर ईर्ष्या के साथ प्रशंसा करते हैं। देवनदी गंगा जी, सरस्वती जी, सूर्य की कन्या यमुना जी, मेकलपर्वत की पुत्री नर्मदा जी तथा धन्य गोदावरी जी, सभी मानससरोवर आदि तालाब, चारों महासागर, सरयू जी आदि नदियाँ, सोनभद्र आदि अनेक नद, मंदाकिनी जी की प्रशंसा करते हैं।

उदय अस्त गिरि वर कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू।।
शैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते।।
बिंध्य मुदित मन सुख न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई।।

भा०- उदयाचल, अस्ताचल, पर्वतों में श्रेष्ठ कैलाश, सभी देवताओं के निवासस्थान मंदराचल, सुमेरु और हिमाचल आदि जितने पर्वत हैं, वे सब श्रीचित्रकूट पर्वत का यश गाते हैं। विन्ध्याचल मन में प्रसन्न हैं, उनका सुख उनके मन में नहीं समा रहा है, क्योंकि बिना श्रम के विन्ध्याचल ने बहुत बड़ाई पा ली।

दो०- चित्रकूट के बिहग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ।।१३८।।

भा०- श्रीचित्रकूट वन के पक्षी, पशु, लतायें, वृक्ष, तृणों की जातियाँ सब के सब पुण्यों के पुंजस्वरूप और धन्य हैं, इस प्रकार देवता दिन-रात कहते हैं।

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिशोकी।।
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी।।

भा०- नेत्रवान् लोग रघुवर श्रीराम को देखकर, जीवन का फल पाकर, शोकरहित हो जाते हैं और अचर् अर्थात् जड़ स्थावर लोग, प्रभु श्रीराम की चरण धूलि का स्पर्श करके, सुखी और परमपद के अर्थात् श्रीसाकेत में निवास अधिकारी हो गये।

सो बन शैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन।।
महिमा कहिय कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू।।

भा०- वह श्रीचित्रकूट वन और श्रीचित्रकूट पर्वत स्वभावतः सुन्दर, मंगलमय और अत्यन्त पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। उस श्रीचित्रकूट की महिमा किस प्रकार कही जाये, जहाँ सुख के सागर प्रभु श्रीराम ने निवास किया।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखन राम रहे आई।।
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौ शत सहस होहिं सहसानन।।

भा०- क्षीरसागर को छोड़कर और अयोध्या का त्याग करके, जहाँ (जिस श्रीचित्रकूट में) आकर श्रीसीता, लक्ष्मण जी के साथ श्रीराम रह रहे हैं, उस वन की जैसी परमशोभा है, उसको यदि एक लाख शेषनारायण हों तो भी वे नहीं कह सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केही। डाबर कमठ कि मंदर लेही।।
सेवहिं लखन करम मन बानी। जाइ न शील सनेह बखानी।।

भा०- वह मैं किस विधि से वर्णन करके कहूँ ? क्या साधारण गड्ढे के कछुवे मंदर पर्वत को उठा सकते हैं? लक्ष्मण जी कर्म, मन और वाणी से भगवान् श्रीसीताराम जी की सेवा करते हैं, उनके शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०- छिन छिन लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेह।
करत न सपनेहुँ लखन चित, बंधु मातु पितु गेह।।१३९।।

भा०- क्षण-क्षण श्रीसीताराम जी के चरणों को देखकर, अपने पर उनका वात्सल्य स्नेह जानकर, लक्ष्मण जी स्वप्न में भी भाई शत्रुघ्न, माता कौसल्या, सुमित्रा, पिता दशरथ और राजभवन पर अपना चित्त नहीं करते। अथवा, अपने चित्त में इन सबका स्मरण नहीं करते।

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी।।
छिन छिन पिय बिधु बदन निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी।।

भा०– नगर, परिवार और घर की स्मृति भुलाकर, सीताजी, श्रीराम के साथ श्रीचित्रकूट में सुखपूर्वक रहती हैं। क्षण–क्षण अपने प्रियतम श्रीराम के मुख को निहारकर सीता जी चकोर की कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

नाह नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।।
सिय मन राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बन प्रिय लागा।।

भा०– निरन्तर अपने प्राणनाथ श्रीराम जी का प्रेम देखकर श्रीसीता जी दिन में चकवे की भाँति प्रसन्न रहती हैं। श्रीसीता जी का मन श्रीराम जी के चरणों में अनुरक्त है। उन्हें सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है।

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवार कुरंग बिहंगा।।
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर। अशन अमिय सम कंद मूल फर।।

भा०– प्रियतम श्रीराम के साथ सीता जी को पर्णकुटी प्रिय लगती है। मृग और पक्षी उन्हें परिवार के समान प्रिय लगते हैं। मुनि पत्नियाँ और मुनिगण सीता जी को सास और श्वसुर के समान लगते हैं। कन्द, मूल और फल का भोजन उन्हें अमृत के समान लगता है।

नाथ साथ साथरी सुहाई। मयन शयन शत सम सुखदाई।।
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू।।

भा०– प्रभु के साथ कुश और पल्लवों की शैय्या सीता जी को सैकड़ों काम शैय्याओं की भाँति सुख देती है। जिनके दर्शन मात्र से भी सामान्य लोग लोकपाल हो जाते हैं, क्या उन्हीं सीता जी को विषयों के विलास मोहित कर सकते हैं?

दो०– सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरज तासु।।१४०।।

भा०– श्रीराम का स्मरण करते ही भगवान् के भक्तजन विषय–भोगों को तृण के समान छोड़ देते हैं। जो स्वयं जगत् की माता और भगवान् श्रीराम की परमप्रेमास्पद पत्नी हैं, उन सीता जी के लिए सब कुछ त्याग देने में आश्चर्य नहीं।

सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।।
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखन सिय अति सुख मानी।।

भा०– सीता जी और लक्ष्मण जी जिस प्रकार सुख प्राप्त करते हैं, श्रीरघुनाथ वही करते हैं और वही कहते हैं। पुरानी कथायें और कहानियाँ कहते हैं तथा लक्ष्मण जी और सीता जी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं।।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह शील सेवकाई।।
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी।।
लखि सिय लखन बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं।।

भा०– जब–जब श्रीराम श्रीअवध का स्मरण करते हैं, तब–तब उनके नेत्रों में जल भर जाता है। माता, पिता, परिवार, भ्राता, भरत जी का स्नेह, उनका शील तथा उनकी सेवा का स्मरण करके कृपा के सागर भगवान् श्रीराम दुःखी हो जाते हैं, फिर अनुचित समय जानकर धैर्य धारण करते हैं। यह देखकर सीता जी और लक्ष्मण जी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे परछायीं पुरुष का अनुसरण करती है।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदन। धीर कृपालु भगत उर चंदन।।
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं लखन अरु सीता।।

भा०– प्राणप्रिया सीता जी एवं लक्ष्मण जी की गति देखकर, परमधीर, कृपालु, भक्त के हृदय को शीतल करने वाले, श्रीराम कुछ ऐसी पवित्र कथा कहने लगते हैं, जिससे लक्ष्मण जी और सीता जी सुख प्राप्त करते हैं।

दो०– राम लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, शची जयंत समेत।।१४१।।

भा०– श्रीसीता–लक्ष्मण जी के सहित श्रीराम पर्णकुटी में इस प्रकार सोहित हो रहे हैं, जैसे शची और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती में रहते हैं।

जोगवहि प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।।
सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष शरीरहिं।।
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी।।

भा०– प्रभु श्रीराम और सीताजी, लक्ष्मण जी को किस प्रकार सावधानी से पालते–पोषते हैं, जिस प्रकार से दोनों पलकें नेत्रों के गोलक का सम्हाल करते हैं। लक्ष्मणजी, श्रीसीताराम जी की इस प्रकार सेवा करते हैं, जिस प्रकार अविवेकी पुरुष शरीर की रक्षा करता है। इस प्रकार, पक्षी, मृग, देवता और तपस्वियों का हित करने वाले, प्रभु श्रीराम, सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ वन में सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं।

कहेउँ राम बन गमन सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा।।

भा०– भुशुण्डि जी गरुड़जी को, शिव जी पार्वती जी को, याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को और तुलसीदास जी सन्तों को सावधान करते हुए कहते हैं, मैंने श्रीराम का सुहावना वनगमन कहा, अब वह प्रसंग सुनो, जिस प्रकार सुमंत्र जी श्रीअवध आये।

फिरेउँ निषाद प्रभुहिं पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेउ आई।।
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू।।

भा०– प्रभु श्रीराम को यमुना पार छोड़कर निषादराज गुह शृंगबेरपुर लौटे और आकर उन्होंने सुमंत्र सहित श्रीराम का रथ देखा। मंत्री सुमंत्र जी को व्याकुल देखकर, निषादराज को जैसा विषाद हुआ वह कहा नहीं जा सकता।

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी।।
देखि दखिन दिशि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।।

भा०– राम–राम, सीता, लक्ष्मण इस प्रकार, पुकार लगाते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर सुमंत्र जी पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। दक्षिण दिशा की ओर देखकर, घोड़े हिनहिना रहे हैं, मानो पंखों के बिना पक्षी अकुला रहे हों।

दो०– नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि।।१४२।।

भा०– घोड़े न तो तृण चर रहे (खा रहे) हैं और न ही जल पी रहे हैं। वे नेत्रों से आँसू गिरा रहे हैं। इस प्रकार श्रीराम जी के घोड़ों को देखकर सभी निषाद गण व्याकुल हो गये।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू।।
तुम पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता।।

भा०– तब धैर्य धारण करके निषादराज गुह कहने लगे, सुमंत्र जी! अब दुःख छोड़िये। आप परमार्थ तत्त्व के ज्ञाता पण्डित हैं। ब्रह्मा जी को इस समय श्रीअवध के प्रतिकूल देखकर धैर्य धारण कीजिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी।।
शोक शिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी।।

भा०– कोमल वाणी में अनेक कथायें कह–कह कर गुहराज ने सुमंत्र जी को लाकर हठपूर्वक रथ पर बिठाया। सुमंत्र जी शोक के कारण शिथिल होने से रथ को नहीं चला सक रहे हैं। उनके हृदय में श्रीराम विरह की तीखी पीड़ा है।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे।।
अढुकि परहि फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे।।

भा०– रथ के घोड़े तड़फड़ा रहे हैं, मार्ग में चल नहीं पा रहे हैं। मानों वन के हिरणों को ले आकर रथ में जोड़ दिया गया हो। वे ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, अर्थात् किसी पत्थर या मिट्टी के ढेले से टकरा कर गिर पड़ते हैं। फिर पीछे मुड़कर देखते हैं, क्योंकि वे श्रीराम के वियोग के तीक्ष्ण दुःख से व्याकुल हैं।

जो कह राम लखन बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही।।
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती।।

भा०– जो कोई श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी इस प्रकार कहता है, उसे ये घोड़े बार–बार हिंकार करके प्रेम से देखते हैं। घोड़ों के विरह की गति किस प्रकार कही जा सकती है, जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो गए हों।

दो०– भयउ निषाद बिषाद बश, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग।।१४३।।

भा०– मंत्री सुमंत्र और घोड़ों को देखकर निषादराज गुह दुःख के वश हो गये। तब सुमंत्र जी को रथ ले जाने में असमर्थ जानकर, चार सुन्दर सेवकों को बुलाकर, सारथी (सुमंत्र जी के संग) दे दिया। अथवा, सुमंत्र जी के साथ चार सेवक और एक सारथी भी दे दिया।

गुह सारथिहिं फिरेउ पहुँचाई। बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई।।
चले अवध लेइ रथहिं निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा।।

भा०– महाराज दशरथ जी के सारथी मंत्री सुमंत्र जी को पहुँचाकर, निषादराज गुह लौटे। उनके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। निषाद अर्थात् गुह के चारों सेवक रथ लेकर श्रीअवध को चले। वे क्षण–क्षण विषाद (दुःख) में मग्न हो रहे थे।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना।।
रहिहि न अंतहु अधम शरीरू। जस न लहेउ बिछुरत रघुबीरू।।

भा०– दुःख से दीन होकर व्याकुल हुए सुमंत्र जी शोक करने लगे, रघुवीर श्रीराम जी से विहीन इस जीवन को धिक्कार है। यह अधम शरीर अन्त में तो नहीं रहेगा, परन्तु रघुकुल के वीर प्रभु श्रीराम के बिछुड़ते अर्थात् अलग होते समय इसने यश नहीं प्राप्त कर लिया (छूटा नहीं)।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना।।
अहह मंद मन अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका।।

भा०– मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र बन गये। ये किस कारण से शरीर छोड़कर प्रयाण नहीं कर रहे हैं, अर्थात् श्रीराम के पास नहीं चले जा रहे हैं। अरे, नीच मन! तू अवसर चूक गया अर्थात् (क) जब कैकेयी ने मुझे श्रीराम को बुलाने भेजा। (ख) जब अयोध्यावासियों के सामने से मैं श्रीराम को रथ पर लेकर गया। (ग) जब प्रथम रात्रि में तमसा तट से सोते हुए अयोध्यावासियों को छोड़कर मुझे श्रीराम का रथ ले जाना पड़ा। (घ) जब प्रभु की आज्ञा से सूना रथ लेकर मुझे अयोध्या जाना पड़ रहा है। इन अवसरों का तुमने लाभ नहीं उठाया। अब भी हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते, अर्थात् हृदय फट नहीं जाता।

मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन राशि गवाँई।।
बिरद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई।।

भा०– सुमंत्र जी हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहे हैं, मानो कृपण ने धन की राशि ही गुमा दी है, मानो बहुत–बड़ा यश प्राप्त कर वीर कहलाकर कोई सुन्दर भट संग्रामभूमि को छोड़कर भग चला हो।

दो०– बिप्र बिबेकी बेदबिद, सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मदपान कर, सचिव सोच तेहि भाँति।।१४४।।

भा०– विवेक से पूर्ण, वेदज्ञों के द्वारा सम्मानित, साधु, सुन्दर जाति में उत्पन्न हुआ ब्राह्मण, जिस प्रकार धोखे से अन्जाने में मदिरा पीकर शोकित हो जाता है, उसी प्रकार सुमंत्र जी शोक करने लगे।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता कर मन बानी।।
रहै करम बश परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू।।

भा०– जिस प्रकार, सुन्दर कुल में उत्पन्न हुई साध्वी, चतुर, कर्म, मन और वाणी से पतिव्रता स्त्री को उसका पति दुर्भाग्यवश छोड़ रहा हो और वह नारी विकल हो, मंत्री के हृदय में उसी प्रकार का दाह, ताप (जलन) है।

विशेष– यहाँ सुमंत्र के लिए प्रयुक्त चार उपमायें सुमंत्र जी की पूर्वोक्त चारों मनोदशाओं की सूचक है। तात्पर्यतः प्रथम बार की भूल पर सुमंत्र जी अपनी धनराशि गुमाये हुए एक कृपण व्यापारी की भाँति पछता रहे हैं कि कैकेयी के कहने पर वे श्रीराम को महाराज के राजमहल में क्यों ले गए ? क्यों नही श्रीराम को स्वयं और वसिष्ठजी के द्वारा अयोध्या के राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। दूसरी भूल पर सुमंत्र जी को युद्ध तजकर भागे हुए यशस्वी योद्धा जैसा पश्चात ताप हो रहा है कि हाय! प्रभु को रोकने के लिए मार्ग में लेटे हुए श्रीअवधवासियों को धक्के दे–देकर सुमंत्र जी श्रीराम का रथ क्यों ले गए ? अपनी तीसरी भूल पर सुमंत्र जी विवेकी वेदज्ञ सम्मत सज्जन कुलीन उस ब्राह्मण की भाँति पश्चात ताप कर रहे हैं जिसने धोखे में मदिरा पी ली हो। हाय! तमसा तट पर सोये हुए श्री अयोध्यावासियों को छोड़कर मैंने प्रभु श्रीराम का रथ आगे क्यों बढ़ाया? कम से कम अयोध्यावासियों को जगाकर उन्हें प्रभु के दर्शन ही करा देता। अपने अंतिम चूक पर सुमंत्र जी पति परित्यक्ता सात्विक नारी की भाँति पछता रहे हैं। अरे! जब श्रीराघव ने मुझे अयोध्या लौट आने की आज्ञा दी उसी समय मेरा हृदय दो टूक क्यों नहीं हो गया ?

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी।।
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी।।

भा०– सुमंत्र जी के नेत्र सजल अर्थात् अश्रुजल से पूर्ण हो गये हैं। उनकी दृष्टि बहुत थोड़ी हो चुकी है अर्थात् उन्हें बहुत कम दिख रहा है। वे कानों से भी नहीं सुन पा रहे हैं और उनकी बुद्धि व्याकुल तथा भोली हो चुकी है

अर्थात् वह स्थिर नहीं है। उनके अधर सूख रहे हैं, मुख में लाटी लग गई है अर्थात् मुख का लार सूख गया है। यह सब मृत्यु के लक्षण होने पर भी उनके प्राण नहीं जा रहे हैं, क्योंकि उनके हृदय में चौदह वर्षों के श्रीराम–वनवास अवधि का किवाड़ लगा है अर्थात् सुमंत्र जी को यह आशा है कि चौदह वर्षों के पश्चात् भगवान् श्रीराम मिलेंगे।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी।।
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी।।

भा०– सुमंत्र का आकार विकृत हो गया वह देखा नहीं जा रहा था, मानो उन्होंने पिता–माता की हत्या कर दी हो। सुमंत्र के मन में बहुत–बड़ी हानि और ग्लानि व्याप्त हो गई, जैसे कोई पापी यमपुर के मार्ग में शोक कर रहा हो।

बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई।।
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई।।

भा०– सुमंत्र जी के मुख से वाक्य नहीं निकल रहे हैं, वे हृदय में पछता कर सोच रहे हैं कि, मैं अवध में जाकर क्या देखूँगा? अथवा, श्रीअवध जाकर कैसे देखूँगा? जो भी रथ को श्रीराम जी से रहित देखेगा वह मुझे देखने में संकुचित होगा।

दो०– धाइ पूँछिहैं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतर देब मैं सबहिं तब, हृदय बज्र बैठारि।।१४५।।

भा०– जब व्याकुल नगर के नर–नारी मुझसे दौड़कर पूछेंगे, तब मैं अपने हृदय में वज्र को बैठाकर सभी को उत्तर दूँगा। अथवा, अपने हृदय को वज्र बनाकर सब को बिठा कर व्यवस्थित उत्तर दूँगा।

पुछिहैं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिनहिं बिधाता।।
पूछिहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेश सुखारी।।

भा०– हे विधाता! जब दीन और दुःख से पीड़ित श्रीराम की सभी मातायें मुझसे श्रीराघव के विषय में पूछेंगी, तब उनसे मैं क्या कहूँगा? जब लक्ष्मण की माँ सुमित्रा पूछेंगी, तब उनसे मैं कौन–सा सुखद संदेश कहूँगा?

राम जननि जब आइहिं धाई। सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई।।
पूँछत उतर देब मैं तेही। गए बन राम लखन बैदेही।।

भा०– जब बछड़े का स्मरण करके तत्काल जनी हुई गौ की भाँति श्रीराम की माता कौसल्या जी दौड़कर आयेंगी, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यही उत्तर दूँगा कि, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी वन चले गये।

जोइ पूँछिहि तेहि उत्तर देबा। जाइ अवध अब यह सुख लेबा।।
पूँछिहिं जबहिं राउ दुख दीना। जिवन जासु रघुनाथ अधीना।।
दैहउँ उतर कौन मुह लाई। आयउँ कुशल कुअँर पहुँचाई।।
सुनत लखन सिय राम सँदेशू। तृन जिमि तनु परिहरिहिं नरेशू।।

भा०– जो पूछेगा उसे उत्तर दूँगा, अब श्री अवध जाकर मैं यही सुख लूँगा (सुमंत्र जी का यह वचन व्यंगात्मक है)। जब दुःखी और दीन हुए महाराज दशरथ जी पूछेंगे, जिनका जीवन श्रीरघुनाथ के अधीन है, तब मैं कौन–सा मुँह लेकर उत्तर दूँगा कि, मैं राजकुमारों को कुशलपूर्वक वन में छोड़कर आ गया? श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी का संदेश सुनकर महाराज तृण के समान शरीर छोड़ देंगे।

दो०- हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रियतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यह जातना शरीर।।१४६।।

भा०- प्रियतम श्रीरामरूप जल के बिछुड़ते अर्थात् अलग होते ही मेरा हृदय कीचड़ की भाँति नहीं फट गया। अतः मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा जी ने मुझे इसी शरीर में यह यातना दे दी है। अथवा, यह शरीर ही यातनारूप में दे दिया है, जो पापियों को भोगने के लिए मिला करती है।

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथ आवा।।
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायँ परि बिकल बिषादा।।

भा०- इस प्रकार, मार्ग में सुमंत्र जी के पश्चात् ताप करते–करते तुरन्त ही रथ तमसा के तट पर आ गया। सुमंत्र जी ने विनय करके गुहराज के सेवक निषादों को लौटा दिया। वे भी (गुहराज के सेवक) दुःख से व्याकुल होकर प्रणाम करके श्रृंगबेरपुर लौट गये।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु बाभन गाई।।
बैठि बिटप तर दिवस गवाँवा। साँझ समय तब अवसर पावा।।

भा०- नगर में प्रवेश करते हुए सुमंत्र जी संकुचित हो रहे हैं, मानो उन्होंने गुरु, ब्राह्मण और गौ की हत्या कर दी हो। वृक्ष के नीचे बैठकर दिन बिताया। जब संध्या का समय हुआ तब उन्होंने अवसर पाया।

विशेष- सुमंत्र जी की दृष्टि में महाराज दशरथ में गुरु जैसी श्रीराम प्रेम दीक्षा दान की पात्रता है, ब्राह्मण जैसी पूज्यता है और गौ जैसी प्रभु श्रीराम के प्रति पुत्र वत्सलता है। संयोग से सुमंत्र जी प्रभु का संदेश सुनाकर उन्हीं महाराज दशरथ जी के मरण के निमित्त बन रहे हैं। अतएव स्वयं को गुरु, ब्राह्मण और गौ का हत्यारा समझकर सुमंत्र जी को अवध प्रवेश में संकोच की अनुभूति हो रही है।

अवध प्रबेश कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुवारे।।
जिन जिन समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथ देखन आए।।

भा०- सुमंत्र जी ने अन्धेरे में अयोध्या में प्रवेश किया। रथ को राजद्वार पर रख कर, सुमंत्र राजभवन में प्रविष्ट हुए। जो–जो लोग सुमंत्र जी के आगमन का समाचार सुन पाये, वे रथ को देखने के लिए राजा के द्वार पर आये।

रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे।।
नगर नारि नर ब्याकुल कैसे। निघटत नीर मीनगन जैसे।।

भा०- रथ को पहचानकर, घोड़ों को व्याकुल देखकर, अवधवासियों के शरीर उसी प्रकार गल रहे थे, जैसे धूप से बर्फ के ओले पिघल जाते हैं। नगर के स्त्री–पुरुष, किस प्रकार से व्याकुल थे, जैसे जल के समाप्त होते समय मछलियों के समूह व्याकुल हो जाते हैं।

दो०- सचिव आगमन सुनत सब, बिकल भयउ रनिवास।
भवन भयंकर लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निवास।।१४७।।

भा०- मंत्री का आगमन सुनकर, सम्पूर्ण रनिवास व्याकुल हो उठा। सुमंत्र जी को राजभवन इतना भयंकर लगा, मानो वह प्रेतों का निवासस्थान बन गया हो।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतर न आव बिकल भइ बानी।।
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा।।
दासिन दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लिवाई।।

भा०- अत्यन्त आर्त्त अर्थात् आकुलता से सभी रानियाँ पूछ रही हैं, सुमंत्र जी के मुख से कोई उत्तर नहीं आ रहा है। उनकी वाणी व्याकुल हो गई, वे कान से नहीं सुन रहे हैं और नेत्रों से कुछ नहीं दिख रहा है। बताओ, महाराज कहाँ हैं? इस प्रकार, वे जिस-किसी से पूछ रहे हैं। दासियों ने मंत्री सुमंत्र जी की व्याकुलता देखी तब उन्हें कौसल्या के भवन में ले गईं।

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिय रहित जनु चंद्र बिराजा।।
आसन शयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।।

भा०- सुमंत्र जी ने जाकर, महाराज दशरथ जी को किस प्रकार देखा, मानो अमृत से रहित चन्द्रमा विकृत रूप से शोभित हो रहा हो। महाराज, आसन, शयन और आभूषणों से रहित होकर अत्यन्त उदास स्थिति में पृथ्वी पर पड़े हैं।

लेइ उसास सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खँसेउ जजाती।।
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही।।
लेत सोच भरि छिन छिन छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती।।

भा०- महाराज ऊँचे-ऊँचे श्वास ले रहे हैं और इस प्रकार से शोक कर रहे हैं, मानो पुण्य के क्षीण होने पर महाराज ययाति स्वर्ग से गिर गये हों। वे राम-राम, स्नेही राम कहते हैं। फिर हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीता! कहते हुये क्षण-क्षण शोक से अपने हृदय भर लेते हैं, मानो पंखों के जल जाने पर सम्पाती नीचे गिर पड़ा हो।

दो०- देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनाम।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति, कहु सुमंत्र कहँ राम।।१४८।।

भा०- महाराज को देखकर, मंत्री सुमंत्र जी ने "जय-जीव" कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। मंत्री की वाणी सुनते ही महाराज व्याकुल होकर उठे और बोले, सुमंत्र! कहो श्रीराम कहाँ हैं ?

भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई।।
सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी।।
राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखन बैदेही।।
आने फेरि कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए।।

भा०- महाराज दशरथ जी ने सुमंत्र जी को हृदय से लगा लिया, मानो शोक के सागर में डूबते हुए महाराज कुछ आधार पा गए हैं। स्नेह के साथ सुमंत्र जी को निकट बैठाकर नेत्रों में आँसू भरकर महाराज पूछने लगे, हे प्रेमी मित्र सुमंत्र! श्रीराम का कुशल समाचार सुनाओ। रघुकुल के नाथ श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता जी कहाँ हैं? क्या तुम श्रीराम, लक्ष्मण, सीता को लौटा लाये या वे वन को ही पधार गये? यह सुनते ही मंत्री के नेत्रों में आँसू छा गये।

शोक बिकल पुनि पूँछ नरेशू। कहु सिय राम लखन संदेशू।।
राम रूप गुन शील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ।।
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू।।
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना।।

भा०- शोक से विकल महाराज ने फिर पूछा, सुमंत्र! सीता, राम, लक्ष्मण का संदेशा कहो। श्रीराम के रूप, गुण, चरित्र और स्वभाव का हृदय में स्मरण करके महाराज शोक करने लगे। जिस पुत्र श्रीराम को राज्य की सूचना

देकर मैंने वनवास दे दिया, फिर भी उनके मन में न तो राज्य सुनकर प्रसन्नता हुई और न ही वनवास सुनकर विषाद। उस पुत्र के भी बिछुड़ते अर्थात् अलग होते ही मेरे प्राण नहीं गये। मेरे समान बड़ा पापी कौन है?

दो०- सखा राम सिय लखन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ।।१४९।।

भा०- हे मित्र! जहाँ श्रीराम, लक्ष्मण, सीता रह रहे हैं, वहाँ मुझे भी पहुँचा दो अर्थात् ले चलो नहीं तो अब मेरे प्राण चलना चाहते हैं। मैं अपना सत्यभाव कह रहा हूँ।

विशेष- महाराज के अनुरोध करने पर भी चतुर मंत्री सुमंत्र चक्रवर्ती जी को प्रभु के पास दो कारणों से नहीं ले जा सके प्रथम तो सुमंत्र जी को प्रभु के वर्तमान निवास का ठीक-ठीक परिज्ञान नहीं था। कदाचित् वे गुह के माध्यम से प्रभु राम के वनवास स्थान का पता लगा भी लेते तो भी महाराज का प्रभु के पास जाना सर्वथा धर्म से विरुद्ध हो जाता। अतएव सुमंत्र जी ने महाराज को प्रभु के पास ले जाने की अपेक्षा चक्रवर्ती जी की मृत्यु को श्रेष्ठ माना।

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहिं राऊ। प्रियतम सुवन सँदेश सुनाऊ।।
करउ सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम लखन सिय नयन देखाऊ।।

भा०- महाराज मंत्री से बारम्बार पूछ रहे हैं, हे मित्र! मेरे सबसे प्रिय पुत्र श्रीराम का संदेश सुनाओ। मित्रवर! वह उपाय शीघ्र करो श्रीराम, लक्ष्मण, सीता को आँखों से दिखा दो।

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम पंडित ग्यानी।।
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाज सदा तुम सेवा।।

भा०- मंत्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी में कहा, हे महाराज! आप ज्ञानी, पण्डित, वीर, सुन्दर, धैर्य की धुरी को धारण करने वाले देवतुल्य हैं। आप ने सदैव सन्त समाज की सेवा की है।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रिय मिलन बियोगा।।
काल करम बश होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं।।

भा०- हे स्वामी! जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख, सभी शुभ, अशुभ भोग, हानि, लाभ, प्रियजनों का मिलन और वियोग ये हठपूर्वक रात और दिन के समान समय और कर्म के वश होते ही रहते हैं, अर्थात् इन्हें टाला नहीं जा सकता। उसी नियम के अनुसार पच्चीस वर्ष पहले आपका श्रीराम से मिलन हुआ और आज वियोग हो गया।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहि मन माहीं।।
धीरज धरहु बिबेक बिचारी। छाड़िय सोच सकल हितकारी।।

भा०- जड़ लोग सुख में प्रसन्न होते हैं और दुःख में विलखने लगते हैं, परन्तु धैर्यवान् पुरुष सुख और दुःख दोनों को समान रूप से मन में धारण करते हैं। हे सभी के हितकारी महाराज! विवेक से विचार कर धैर्य धारण कीजिये और शोक छोड़ दीजिये।

दो०- प्रथम बास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि, सिय समेत दोउ बीर।।१५०।।

भा०- श्रीराम का तमसा तट पर प्रथम वास हुआ और श्रृंगबेरपुर में गंगा जी के तट पर दूसरा निवास हुआ। उस दिन सीता जी के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण गंगा जी में स्नान करके केवल जलपान करके ही रह गये।

विशेष– शृंगबेरपुर मे श्रीराम ने सीता, लक्ष्मण और सुमंत्र जी के सहित कन्द, मूल, फल खाया था, जैसे की अयोध्याकाण्ड के ८९ वें(नवासीवें) दोहे में स्पष्ट है, परन्तु यहाँ सुमंत्र जी ने केवल जलपान की बात इसलिए कही, क्योंकि उनकी बुद्धि शोक से भ्रमित हो गई थी।

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई।।
होत प्रात बट छीर मँगावा। जटा मुकुट निज शीष बनावा।।

भा०– केवट ने बहुत सेवा की। प्रभु ने वह रात्रि सिंगरौर अर्थात् शृंगबेरपुर में बितायी। प्रातःकाल होते ही श्रीराम ने वटवृक्ष का दूध मंगाया और अपने सिर पर जटा का मुकुट बनाया।

राम सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई।।
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई।।

भा०– श्रीराम के सखा निषादराज ने तब नाव मंगायी। पत्नी श्रीसीता को नाव पर चढ़ाकर रघुवंश में सुशोभित होने वाले श्रीराम स्वयं नाव पर चढ़े। लक्ष्मण जी व्यवस्थित करके श्रीराम का धनुष–बाण लिए हुए थे। प्रभु से आज्ञा पाकर स्वयं श्रीलक्ष्मणकुमार भी नाव पर चढ़े।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा।।
तात प्रनाम तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू।।

भा०– मुझको व्याकुल देखकर, त्याग वीरता, दया वीरता, विद्या वीरता, पराक्रम वीरता और धर्म वीरता से युक्त रघुवीर श्रीराम धैर्य धारण करके मधुर वचन बोले, हे तात्! पिताश्री को प्रणाम कहियेगा, बार–बार उनके चरणकमल पकड़ लीजियेगा।

करब पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी।।
बन मग मंगल कुशल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे।।

भा०– फिर पिताश्री के चरण पर पड़ कर, मेरी ओर से विनय कर लीजियेगा और मेरा संदेश कहियेगा। "हे पिताश्री! आप मेरी चिन्ता न करें, आपकी कृपा, आपके अनुग्रह और आपके पुण्य से हमारे लिए वन के मार्ग में मंगल और कुशल ही होगा।" अर्थात् आपकी कृपा से मैं कुशल मंगल से रहूँगा, आपके अनुग्रह अर्थात् अनुकम्पा से लक्ष्मण का मंगल होगा और आप के पुण्य से सीता जी भी सकुशल और मंगल में रहेंगी।

छं०: तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुशल देखन पायँ पुनि फिरि आइहौं।।
जननी सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहिं बिधि कुशल रह कोसलधनी।।

भा०– हे तात्! आपके अनुग्रह अर्थात् अनुकम्पा से वन में जाते हुए मैं सभी सुख को प्राप्त कर लूँगा। मैं आपकी आज्ञा का प्रतिष्ठापूर्वक पालन करके वनवास अवधि के पश्चात् पुनः सकुशल आपके श्रीचरणों के दर्शन के लिए श्रीअवध लौट आऊँगा। इसी प्रकार, सभी माताओं को समझाकर संतुष्ट करके बार–बार चरणों पर पड़कर बहुत विनती कीजियेगा। तुलसीदास जी कहते हैं कि, "तु" अर्थात् तुरीय श्रीराम, "ल" अर्थात् लक्ष्मण, "सी" अर्थात् श्रीसीता जी ने कहा, "हे सुमंत्र, वही यत्न करियेगा जिससे कोसलपति महाराज कुशल से रहें।

सो०– गुरु सन कहब सँदेश, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेश, जेहिं न सोच मोहि अवधपति।।१५१।।

भा०– गुरुदेव के भी बार–बार चरण पकड़कर उनसे मेरा संदेश कहियेगा। "हे गुरुदेव! आप महाराज को उसी प्रकार वही उपदेश दीजियेगा जिससे अयोध्याधिपति मेरे विषय में शोक न करें।"

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी।।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी।।

भा०– हे तात्! पुरवासी, परिवार के सभी लोगों को मेरी ओर से निहोरा करते हुए अर्थात् बार–बार अनुरोध करते हुए यही विनती सुनाइयेगा कि, "वही सब प्रकार से मेरा हितैषी होगा जिससे महाराज सुख पायेंगे।"

कहब सँदेश भरत के आए। नीति न तजिय राजपद पाए।।
पालेहु प्रजहिं करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी।।
ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई।।
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करैं न काऊ।।

भा०– भरत के आने पर मेरा यह संदेश कह दीजियेगा। "हे भैया भरत! आप राजपद पाकर नीति नहीं छोड़ें। कर्म, मन और वाणी से प्रजा का पालन करें। सभी माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करें। हे भाई! पिता, माता और सज्जनों की सेवा करके भायप अर्थात् भ्रातृत्व के सम्बन्ध को निभाते रहें। हे भैया! महाराज को उसी प्रकार रखें जिससे वे कभी भी मेरे विषय में शोक नहीं करें।"

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।।
बार बार निज शपथ देवाई। कहब न तात लखन लरिकाई।।

भा०– फिर लक्ष्मण जी ने कुछ कठोर वचन कहे, उन्हें रोककर फिर श्रीराम जी ने मुझसे अनुरोध किया। बार–बार अपनी शपथ दिलायी और कहा, लक्ष्मण के लड़कपन की बात पिताश्री से मत कहियेगा।

दो०– कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ शिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह।।१५२।।

भा०– प्रणाम कहकर सीता जी कुछ कहना चाहीं। उसी समय में स्नेह से शिथिल हो गईं, उनकी वाणी रुक गई, उनके नेत्र अश्रुजल से पूर्ण हो गये, उनका शरीर रोमांचित होकर पल्लव के समान काँपने लगा।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहिं नाव चलाई।।
रघुकुल तिलक चले एहिं भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिश धरि छाती।।

भा०– उसी अवसर पर रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम का संदेश पाकर केवट ने गंगा जी के उस पार जाने के लिए नाव चला दी। इस प्रकार, रघुकुल के तिलक श्रीराम शृंगबेरपुर से वन के लिए चले और मैं अपने हृदय पर वज्र रखकर, यह दृश्य देखता रहा।

मैं आपन किमि कहौं कलेशू। जियत फिरेउँ लेइ राम सँदेशू।।
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बश भयऊ।।

भा०– मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ, मैं तो श्रीराम का संदेश लेकर जीवित लौटा अर्थात् यदि श्रीराम का संदेश आपको नहीं देना होता, तो मैं भी प्रभु श्रीराम के वियोग में प्राण त्याग देता। ऐसे वचन कहकर मंत्री चुप रह गये। वे हानि, ग्लानि और शोक के वश हो गये।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू।।
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहँ ब्यापा।।

भा०– सारथी और मंत्री सुमंत्र जी का वचन सुनते ही महाराज दशरथ जी पृथ्वी पर गिर पड़े। हृदय में असहनीय दाह अर्थात् जलन होने लगी, महाराज तड़फड़ाने लगे और उनका मन मोह अर्थात् भ्रमात्मक विचार से उन्मत्त हो उठा, मानो मछली को माँजा अर्थात् प्रथम वर्षा का फेन व्याप्त हो गया हो।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी।।
सुनि बिलाप दुखहूँ दुख लागा। धीरजहूँ कर धीरज भागा।।

भा०– विलाप करके सभी रानियाँ रो रही थीं। वह महान् विपत्ति कैसे बखानी जा सकती है ? महारानियों का विलाप सुनकर दुःख को भी दुःख लग गया और धैर्य का भी धैर्य भाग गया।

दो०– भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर शोर।
बिपुल बिहग बन परेउ निशि, मानहुँ कुलिश कठोर।।१५३।।

भा०– महाराज के राजभवन में विलाप जनित क्रन्दन (चिल्लाना) सुनकर, अवध में भी बहुत कोलाहल मच गया, मानो रात्रि में बहुत से पक्षियों से युक्त वन में कठोर वज्र गिर पड़ा हो।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू।।
इंद्रिय सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बन बिनु बारी।।

भा०– महाराज के प्राण उनके कण्ठगत् हो गये, मानो मणि से विहीन सर्प व्याकुल हो गया हो। सभी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं, मानो जल के बिना तालाब का कमल समूह सूख रहा हो।

कौसल्या नृप दीख मलाना। रबिकुल रबि अथयउ जिय जाना।।
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी।।

भा०– कौसल्या जी ने महाराज को मलान अर्थात् हर्ष से रहित देखा, और जान गईं कि सूर्यकुल के सूर्य, महाराज अब अस्त ही होने वाले हैं। श्रीराम की माँ कौसल्या जी हृदय में धैर्य धारण करके समय का अनुसरण करती हुई बोलीं–

नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू।।
करनधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।।

भा०– हे नाथ महाराज! हृदय में समझकर विचार कीजिये। श्रीराम का वियोग अपार सागर है। चौदह वर्ष की अवधि जहाज है। उस पर श्रीराम के सम्पूर्ण प्रियजन रूप पथिकों का समाज चढ़ा हुआ है, आप उसके कर्णधार हैं।"

धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू।।
जौ जिय धरिय बिनय पिय मोरी। राम लखन सिय मिलिहिं बहोरी।।

भा०– आप धैर्य धारण करें तो पार पाया जा सकता है, नहीं तो सम्पूर्ण परिवार श्रीराम के विरह–सागर में डूब जायेगा। हे प्रियतम महाराज! यदि आप मेरी प्रार्थना हृदय में धारण कर लें तो फिर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी मिल जायेंगे।

दो०– प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत शीतल बारि।।१५४।।

भा०- अपनी प्रियतमा कौसल्या जी के वचन सुनकर, महाराज ने आँख खोलकर देखा, जैसे जल-क्षय से उदास, पानी के बिना तड़पता हुआ मछली शीतल जल से सींचने पर चेतना प्राप्त कर उठा हो।

धरि धीरज उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू।।
कहाँ लखन कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही।।

भा०- धैर्य धारण करके महाराज दशरथ उठकर बैठ गये और बोले, सुमंत्र! बताओ, कृपालु श्रीराम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? मेरे वात्सल्य स्नेह के आश्रय श्रीराम कहाँ हैं और प्यारी पुत्रवधू विदेहनन्दिनी जानकी जी कहाँ हैं?

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती।।
तापस अंध स्राप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई।।

भा०- महाराज व्याकुल होकर विलाप करने लगे। रात्रि युग के समान हो गयी, वह बीतती ही नहीं थी। दृष्टिहीन तपस्वी के शाप का स्मरण हो आया। कौसल्या जी को सब कथा सुनायी।

विशेष- लोक में प्रचलित श्रवण कुमार, श्रमण का अपभ्रंश है, जो अविवाहित, परिव्राजक के अर्थ में पहले प्रचलित था। महर्षि पाणिनी ने भी (कुमारः श्रमणादिभीः। पा०अ०, २.९.६०) कहा, इसलिए अन्धदम्पति ब्राह्मण थे और वैश्य द्वारा शूद्र (चतुर्थ वर्ण की स्त्री) से जन्मे हुए एक परिचारक को अपनी सेवा में रखा था, जो इन दृष्टिहीन दम्पति को ही माता-पिता मानता था। जनश्रुति के आधार पर दृष्टिहीन महिला का नाम सुशीला और दृष्टिबाधित पुरुष का नाम शान्तनु कहा जाता है। हमें किसी आर्षग्रन्थ में श्रमण के माता-पिता का नाम लिखित रूप में अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है, कहीं होगा- हरि अनंत हरि कथा अनंता।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा।।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पन मोर निबाहा।।

भा०- इस इतिहास का वर्णन करते-करते चक्रवर्ती जी बहुत व्याकुल हो गये और विकल अर्थात् उनके शरीर की दसों इन्द्रियों और पंचप्राणों की शक्ति कलायें विकृत हो गईं। महराज ने कहा, श्रीराम के बिना मेरे जीवन की आशा करना धिक्कार है। वह शरीर रखकर मैं क्या करूँगा, जिसने मेरे प्रेम और प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं किया? अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीराम के बिना मुझे एक क्षण नहीं जीवित रहना चाहिये था। पर मैं छह दिन जीवित रहा अतः यह शरीर प्रभु के विरहाग्नि में भस्म कर देना ही उचित होगा।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर।।

भा०- हा! प्राणों के समान प्रिय रघुकुल तथा रघु शब्द के वाच्यार्थ सभी जीवात्माओं को आनन्दित करने वाले श्रीराम! आप के बिना जीते हुए बहुत दिन (छः दिन) बीत गये। हा जनकनन्दिनी सीते! हा लक्ष्मण! हा पिता के प्रेमपूर्ण चित्त रूप चातक के बादल! अथवा, हा पिता के हितैषी और मेरे चित्त रूप चातक के मेघ श्रीराघव!

दो०- राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम।।१५५।।

भा०- इस प्रकार राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, पुनः राम-राम, राम कहकर (छः बार राम) कहकर अर्थात् इसी माध्यम से षडक्षर श्रीरामनाम जप कर तथा छः बार श्रीरामनाम के उच्चारण से प्रभु के बिना छः दिन तक जीवित रहने के पाप का प्रायश्चित करके और छः बार श्रीरामनाम का उच्चारण करके छः प्रकार की

शरणागति की प्रतिज्ञा करके तथा छः बार श्रीरामनाम के उच्चारण से शरीर, स्त्री, पुत्र, भवन, धन और पृथ्वी के मोह का त्याग करके श्रीराम के विरह में शरीर छोड़कर महाराज चक्रवर्ती दशरथ जी सुरधाम अर्थात् सुरपति इन्द्र के लोक में चले गये।

विशेष– यहाँ सुरधाम का अर्थ है, इन्द्र का धाम, क्योंकि आगे के प्रकरणों में ऐसे ही संकेत मिलते हैं। पुनः युद्धकाण्ड में सुरधाम शब्द साकेतलोक के लिए प्रयुक्त होगा।

जिवन मरन फल दशरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।।
जियत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह मरि मरन सँवारा।।

भा०– महाराज दशरथ जी ने जीवन और मरण दोनों का फल पा लिया। अनेक ब्रह्माण्डों में उनका निर्मल यश छा गया। अपने जीवन काल में महाराज श्रीराम के मुख–चन्द्र को निहारते रहे और श्रीराम के वियोग में मरकर उन्होंने मृत्यु को भी सँवारा, अर्थात् सजाया तथा मृत्यु का शृंगार किया। अमंगल में भी मंगल बना दिया।

शोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप शील बल तेज बखानी।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा।।

भा०– सभी रानियाँ (कैकेयी को छोड़कर) महाराजश्री के रूप, शील, बल और तेज की प्रशंसा करके रो रहीं हैं। अनेक प्रकार से विलाप कर रही हैं, बारम्बार पृथ्वी पर पछाड़ खा कर गिर रही हैं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी।।
अथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू।।

भा०– व्याकुल हुए दास और दासियाँ विलाप कर रही हैं। घर–घर में अवधवासी रुदन कर रहे हैं अर्थात् रो रहे हैं। वे कहते हैं, आज धर्म की सीमा तथा गुणों और रूप के कोशस्वरूप श्रीदशरथरूप सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गये।

गारी सकल कैकइहिं देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं।।
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी।।

भा०– सभी लोग कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं, जिसने जगत् को ही नेत्र से विहीन कर दिया है। इस प्रकार, विलाप करते वह रात बीत गई। प्रातःकाल सभी ज्ञानी महर्षिगण राजभवन में आये।

दो०– तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
शोक निवारेउ सबहिं कर, निज बिग्यान प्रकास।।१५६।।

भा०– तब वसिष्ठ मुनि समय के समान ही अनेक पूर्व इतिहास कहकर, अपने विशिष्ट ज्ञान के प्रकाश से (विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार) सभी के शोक को सीमा पार करने से रोक दिया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।।
धावहु बेगि भरत पँह जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।।

भा०– वसिष्ठ जी ने तेल से भरी नाव में महाराज के शरीर को रख दिया और फिर दूतों को बुलाकर ऐसा कहा, दौड़ो शीघ्र भरत के पास जाओ और कहीं भी किसी से भी महाराज का समाचार मत कहना।

इतनहिं कहेहु भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई।।
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए।।

भा०- जाकर भरत जी को केवल इतना कहना कि, दोनों भाई श्रीभरत, शत्रुघ्न जी को गुरु वसिष्ठ ने बुला भेजा है। मुनि वसिष्ठ जी का आदेश सुनकर, दौड़नेवाले दूत दौड़ते हुए चले, वे अपने वेग से श्रेष्ठ घोड़ों को भी लज्जित कर रहे थे।

अनरथ अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होहिं भरत कहँ तब ते।।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना।।

भा०- जब से श्रीअवध में अनर्थ का आरम्भ हुआ, तब से श्रीभरत के लिए अपशकुन होने लगे। वे रात्रि में भयानक स्वप्न देखते हैं और जागकर, करोड़ों कड़वी कल्पनायें करते हैं अर्थात् अपने मन में अशुभ विचार लाते हैं।

बिप्र जिवाँइ देहिं दिन दाना। शिव अभिषेक करहिं बिधि नाना।।
माँगहि हृदय महेश मनाई। कुशल मातु पितु परिजन भाई।।

भा०- श्रीभरत दिन में ब्राह्मणों को भोजन कराके दान देते हैं और अनेक प्रकार से शिव जी का अभिषेक अथवा, मंगलमय सनातन धर्म के पाँचों देवताओं का अभिषेक करते हैं। हृदय में शिव जी से प्रार्थना करके, सभी माताओं, पिताश्री, परिवार (भगवती श्रीसीता सहित तीनों बहुओं और भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण) के कुशल अर्थात् कल्याण की याचना करते हैं।

दो०- एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु अनुशासन स्रवन सुनि, चले गणेश मनाइ।।१५७।।

भा०- इस प्रकार मन में श्रीभरत के चिन्ता करते समय ही श्रीअवध के दौड़ाक दूत उनके पास आकर पहुँच गये। गुरुदेव की आज्ञा सुनकर सम्भावित विघ्न की आशंका से ग्रस्त श्रीभरत, शत्रुघ्न जी के साथ श्रीगणेश की प्रार्थना करके श्रीअवध के लिए चल पड़े।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित शैल बन बाँके।।
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई।।

भा०- सारथी द्वारा हाँके हुए घोड़े नदियों, पर्वत और टेढ़-मेढ़े वनों को लाँघते हुए वायु के वेग से चल पड़े। श्रीभरत के हृदय में बहुत शोक था, उन्हें कुछ भी नहीं अच्छा लग रहा था। वे हृदय में ऐसा विचार कर रहे थे कि, उड़कर अवध राजभवन में चला जाऊँ।

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर नियराई।।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।।

भा०- एक-एक क्षण वर्ष के समान जा रहा था। इस प्रकार, श्रीभरत, श्रीअवध नगर के निकट आ गये। नगर में प्रवेश करते ही अनेक अपशकुन हो रहे हैं, खेतों में कौवे बुरी प्रकार से करड़-करड़ रट रहे हैं।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत उर शूला।।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिशेष भयावन लागा।।

भा०- गधे और गीदड़ भी प्रतिकूल अर्थात् अशुभ रीति से बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर श्रीभरत के हृदय में बहुत दुःख हो रहा है। तालाब, नदी, वन और बगीचे शोभा से हीन हैं। अवध नगर बहुत भयंकर लग रहा है।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए।।
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबनि सब संपति हारी।।

भा०- पक्षी, पशु, हाथी, घोड़े देखे नहीं जा रहे हैं, वे श्रीराम के वियोगरूप भयंकर रोग से नष्ट कर दिये गये हैं। अवधनगर की महिलायें और पुरुष अत्यन्त दु:खी हैं, मानो सभी ने अपनी सारी सम्पत्ति बाजी में हार दी हो।

दो०- पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवँहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पूँछि न सकहिं, भय बिषाद मन माहिं।।१५८।।

भा०- नगर के लोग श्रीभरत से मिलते हैं, कुछ भी नहीं कहते, प्रणाम करते हैं और धीरे से चले जाते हैं। उनके मन में भय और दु:ख है, वे श्रीभरत का कुशल भी नहीं पूछ सकते। अथवा, वे इतने शीघ्र चले जाते हैं कि, श्रीभरत उनका कुशल भी नहीं पूछ पाते हैं।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दश दिशि लागि दवारी।।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि।।

भा०- अवध के बाजार और मार्ग देखे नहीं जा रहे हैं, मानो अवध के दसों दिशाओं में जंगली आग लगी हुई है। पुत्र (श्रीभरत) को आते हुए (मंथरा से) सुनकर सूर्यकुलरूप कमल के लिए चाँदनी रात के समान कैकय राजपुत्री कैकेयी प्रसन्न हुईं।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई।।
भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन बनज बन मारा।।

भा०- कैकेयी प्रसन्नता से उठकर, स्वयं आरती सजाकर दौड़ी और राजद्वार पर ही भरत जी से मिलकर दोनों भाइयों को अपने भवन में ले आइ। श्रीभरत ने परिवार को (मांडवी जी को) उसी प्रकार दु:खी देखा, मानो कमल के वन को पाला मार गया हो।

कैकेयी हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।।
सुतहिं ससोच देखि मन मारे। पूँछति नैहर कुशल हमारे।।

भा०- कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न हुई, मानो वन में आग लगाकर भिलनी प्रसन्न हो रही हो। पुत्र को मन मारे हुए शोक से युक्त देखकर, कैकेयी पूछती हैं कि, हमारे मायके में कुशल तो है?

विशेष- हमें एक भिलनी से यह ज्ञात हुआ कि, वह अग्निदेव से यह मान्यता माँगती है कि, हे अग्निदेव! मेरे पुत्र का विवाह होने पर मैं आग लगाकर सम्पूर्ण वन आपको भोजन के लिए सौंप दूँगी और ऐसा करके वह प्रसन्न होती है। जबकि, इससे उसी की हानि होती है, क्योंकि वन की लकड़ियों से ही उसके पुत्र की जीविका चलती है तथा वन की अग्नि से उसके पुत्र के जलने की भी सम्भावना रहती है।

सकल कुशल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुशल भलाई।।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।।

भा०- श्रीभरत ने कैकेयी को उसके मायके का सम्पूर्ण कुशल समाचार कह सुनाया, फिर अपने कुल का कुशल मंगल पूछा। (श्रीभरत बोले–कहो!) पिताश्री कहाँ हैं? सभी मातायें कहाँ हैं? भगवती सीता जी कहाँ हैं? प्यारे भ्राता श्रीराम–लक्ष्मण कहाँ हैं?

विशेष- कैकेयी के क्षण भर चुप रहने पर, भरत जी ने मांडवी को संकेत करके कहा, बोलो, पिताश्री, सभी मातायें, श्रीसीता एवं दोनों भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण कहाँ हैं? मांडवी जी उत्तर नहीं दे सकीं।

दो०- सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नैन।
भरत स्रवन मन शूल सम, पापिनि बोली बैन।।१५९।।

भा०- पुत्र भरत के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर, नेत्रों में कपट के आँसू भरकर पाप करने वालीं कैकेयी, भरत जी के कानों और मन को त्रिशूल के समान चुभनेवाले कष्टकारक वचन बोलीं–

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ सहाय मंथरा बिचारी।।
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ।।

भा०- हे बेटे! मैंने सब बात बना ली, बिचारी निरीह मंथरा मेरी सहायक हुईं। बीच में विधाता ने कुछ थोड़ी-सी बात बिगाड़ दी, महाराज इन्द्रपुर को पधार गये।

सुनत भरत भए बिबश बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा।।
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी।।

भा०- यह सुनते ही श्रीभरत इस प्रकार विषाद अर्थात् दुःख के विवश हो गये, मानो सिंह की गर्जना से हाथी भय से सहम गया हो। हा तात्! हा तात्! (हा! पिताश्री! हा पिताश्री! हा! पिताश्री) ऊँचे स्वर से चिल्लाकर बहुत व्याकुल होकर, श्रीभरत आसन पर से पृथ्वी तल पर गिर पड़े और बोले–

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही।।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी।।

भा०- हे पिताश्री! आपके इन्द्रलोक प्रस्थान करते समय मैं नहीं देख पाया और आपने मुझे भगवान् श्रीराम को नहीं सौंपा अर्थात् मुझे बीच में ही छोड़कर चले गये। फिर धैर्य धारण करके, श्रीभरत सम्भालकर उठे और कैकेयी से पूछा, माँ! पिताश्री की मृत्यु का कारण बताओ।

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरम पाँछि जनु माहुर देई।।
आदिहु ते सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी।।

भा०- पुत्र भरत जी के वचन सुनकर कैकेयी ऐसे कह रही है अर्थात् उत्तर दे रही है, मानो पीठ पर मर्मान्तक घाव करके, उस पर विष के घोल का छिड़कन दे रही हो। कुटिल हृदयवाली, कठोर प्रकृति की कैकेयी ने प्रसन्न मन से प्रारम्भ से अपनी सम्पूर्ण करनी कह सुनायी।

दो०- भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन।।१६०।।

भा०- भरत जी को पिताश्री का मरण भूल गया। श्रीराम का वनगमन सुनते ही हृदय में स्वयं को ही उसका कारण जानकर, मौन धारण करके श्रीभरत थकित अर्थात् सम्पूर्ण चेष्टायें शान्त करके स्तब्ध रह गये।

बिकल बिलोकि सुतहिं समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति।।
तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढ़ई सुकृत जस कीन्हेउ भोगू।।

भा०- पुत्र भरत को विकल अर्थात् व्याकुल और सम्पूर्ण चेष्टाओं से शून्य देखकर, कैकेयी समझा रही है, मानो वह जले पर नमक लगा रही है। कैकयी बोली, हे तात्! महाराज शोक करने योग्य नहीं हैं, उन्होंने पुण्य और यश का अर्जन करके सभी राजभोग किये और उन पुण्यों तथा यश का सुख भोगा।

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए।।
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू।।

भा०– महाराज ने जीवित रहते ही जन्म के सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिए और अन्त में देवताओं के स्वामी इन्द्र के भवन पधार गये। ऐसा अनुमान करके तुम अपने पिताश्री का शोक छोड़ दो। अपने मंत्री, सेनापति, पुरजन और परिजन समाज के साथ अवधपुर में राज्य करो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू।।
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।।

भा०– कैकेयी का यह वचन सुनकर, राजकुमार श्रीभरत बहुत सहम गये अर्थात् व्याकुल हो उठे, मानो पके हुए घाव पर अंगार अर्थात् जलती हुई अग्नि के कणों का समूह लग गया हो। धैर्य धारण करके, श्रीभरत जी ऊँचा श्वास भर लेते हैं। मन में सोचते हैं कि, पापिनी कैकेयी ने तो सभी प्रकार से कुल को ही नष्ट कर दिया।

जौ पै कुरुचि रही असि तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।।
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जियन निति बारि उलीचा।।

भा०– श्रीभरत कैकेयी से बोले, यदि तुम्हारे मन में इसी प्रकार की कुत्सित बुद्धि थी अर्थात् बुरी रुचि थी, तो तुम ने जन्म लेते ही मुझे क्यों नहीं मार डाला? तुम ने वृक्ष को काट कर पल्लव को सींचा है। मछली के जीवन के लिए (तालाब से) जल को ही उलीच डाला अर्थात् श्रीदशरथरूप वृक्ष को काटकर, मुझ भरतरूप पल्लव को राज्यजल से तुमने सींचना चाहा। मुझ भरतरूप मछली को जिलाने के लिए श्रीअवधरूप तालाब से तुम ने श्रीरामरूप जल को उलीचा, अर्थात् बाहर फेंक दिया।

दो०– हंसबंश दशरथ जनक, राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ।।१६१।।

भा०– कहाँ मेरा सूर्य का वंश, श्रीचक्रवर्ती जी जैसे पिता, श्रीराम, लक्ष्मण जैसे परमेश्वर मेरे भ्राता, (ऐसे शुभ संयोग के बीच) हे माँ! जननी तू जननी भई अर्थात् अपनी माता के ही समान पति को मारनेवाली तू मेरी माँ बन गई। विधाता के सामने किसी का कुछ भी वश नहीं चलता।

जब तैं कुमति कुमतजिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ।।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा।।

भा०– हे कुबुद्धि कैकेयी! जब तुमने अपने जीवात्मा में यह कुत्सित बुद्धि धारण की तब तुम्हारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गये? वरदान माँगते समय तुम्हारे मन को पीड़ा क्यों नहीं हुई? तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गल गई? तुम्हारे मुख में कीड़े क्यों नहीं पड़ गये?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।।
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।।
सरल सुशील धरम रत राऊ। सो किमि जानहिं तीय सुभाऊ।।

भा०– महाराज ने तुम्हारा विश्वास क्यों कर लिया? मरणकाल में विधाता ने उनकी बुद्धि हर ली थी, जो सम्पूर्ण पाप, कपट और दुर्गुणों की खानि होती है, ऐसी स्वार्थपरायण (कौसल्या, सीता आदि महिलाओं के अतिरिक्त) साधारण नारी के हृदय की गति ब्रह्मा जी भी नहीं जान पाये। महाराज, सरल, सुन्दर चरित्रवाले और धर्म में अनुरक्त थे, वे ग्राम्य-नारी का स्वभाव कैसे जान सकते थे?

विशेष– यह उक्ति उस साधारण स्वार्थिनी नारी के लिए है, जो माता, पुत्री, बहन और पत्नी इन चारों भारतीय संस्कृति की अवधारणाओं से दूर खल प्रकृति की नारी है।

अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहिं रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं।।
भे अति अहित राम तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही।।
जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई।।

भा०- संसार में कौन ऐसा जीव–जन्तु अर्थात् बड़ा, छोटा प्राणी है, जिसे रघुनाथ अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के स्वामी श्रीराम प्राण के समान प्रिय नहीं हैं। वे भी श्रीराम तुम्हारे लिए अत्यन्त अहित अर्थात् शत्रु हो गये। तुम कौन हो मुझ से सत्य कहो? तुम जो हो वह रहो, मुख में स्याही लगाकर यहाँ से उठकर मेरी आँखों से ओझल होकर जाकर बैठो अर्थात् अब मैं तुम्हें अपनी आँखों से नहीं देखना चाहता।

दो०- राम बिरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि।।१६२।।

भा०- जिसका हृदय राम विरोधी है, ऐसी माँ की कोख से विधाता ने मुझे प्रकट किया है। मेरे समान पापी कौन है? मैं तुम्हें व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिसि कछु न बसाई।।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई।।

भा०- माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न जी के अंग क्रोध से जले जा रहे हैं। उनका कुछ वश नहीं चल रहा है। उसी अवसर पर अनेक वस्त्र और आभूषण अपने शरीर पर सजाकर वहाँ अर्थात् जहाँ श्रीभरत, शत्रुघ्न बैठे थे, उस कैकेयी भवन में मंथरा दासी आ गई।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।।
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करति पुकारा।।

भा०- उसे देखकर, श्रीलक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न जी क्रोध से भर गये। जलते हुए अग्नि ने घी की आहुति पा ली, उन्होंने अपने चरण को हुमकि, अर्थात् दृढ़ करके जोड़ से फटकार कर, कठोर दृष्टि से देखकर, मंथरा के कूबड़ पर ही मार दिया। वह ऊँचे स्वर में पुकार अर्थात् क्रन्दन करती हुई, चिल्लाती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू।।
आह दैव मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा।।

भा०- उसका कूबड़ टूट गया, सिर फूट गया, उसके सभी बत्तीसों दाँत टूट गये और मुख से रक्त का प्रवाह चल पड़ा। वह चीखती हुई बोली, आह ईश्वर! मैंने क्या बिगाड़ा? अच्छा करते हुए बुरा फल पाया।

सुनि रिपुहन लखि नख शिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।।
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई।।

भा०- मंथरा की बात सुनकर, नख से शिखा तक तथा खोटी अर्थात् बहुत बुरी दुष्ट स्त्री जानकर शत्रुघ्न जी उसके बाल पकड़ कर घसीटने लगे। दया के सागर भरत जी ने मंथरा को शत्रुघ्न जी से छुड़ा दिया और श्रीभरत, शत्रुघ्न दोनों भाई माता कौसल्या जी के पास गये।

दो०- मलिन बसन बिबरन बिकल, कृश शरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुषार।।१६३।।

भा०– कौसल्या जी के वस्त्र मलिन हो गये थे, उनका आकार बिबरन, अर्थात् विकृत और उदास हो गया था, वे व्याकुल थीं। दुःख के भार से कौसल्या जी का शरीर उसी प्रकार दुर्बल हो गया था, मानो स्वर्ण से निर्मित श्रेष्ठ कल्पलतिका के वन को तुषार अर्थात् हिमपात ने नष्ट कर दिया हो।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई।।
देखत भरत बिकल भए भारी। परे चरन तनु दशा बिसारी।।

भा०– शत्रुघ्न जी के साथ श्रीभरत को देखकर, माता कौसल्या उठकर दौड़ीं और वे चक्कर खाकर मूर्च्छित होकर, पृथ्वी पर गिर पड़ीं। माता जी की दशा देखते ही श्रीभरत बहुत व्याकुल हो गये और वे अपने शरीर की दशा को भुलाकर, बड़ी माताश्री के चरणों पर गिर पड़े।

मातु तात कहँ देहु देखाई। कहँ सिय राम लखन दोउ भाई।।
कैकयि कत जनमी जग माँझा। जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा।।
कुल कलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही।।

भा०– श्रीभरत बोले, माँ! पिता जी को दिखा दो। श्रीसीता तथा दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण कहाँ हैं? कैकेयी इस संसार में क्यों जन्मी? जन्मी भी तो वह क्यों नहीं बाँझ (निःस्संतान) हो गई, जिसने अपयश के पात्र, प्रियजनों का द्रोह करने वाले मुझ जैसे कुल के कलंक को जन्म दिया।

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी।।
पितु सुरपुर बन रघुकुल केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू।।
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी।।

भा०– हे माँ! तीनों लोकों में मेरे समान कौन भाग्यहीन है, जिसके कारण आपकी ऐसी गति हुई? पिता जी इन्द्रपुर में हैं और रघुकुल के पताका श्रीराम वन में हैं और मैं एकमात्र सभी अनर्थों का हेतु यहाँ हूँ। मुझे धिक्कार है। मैं असहनीय जलन, दुःख और दोष का पात्र तथा सूर्यवंशरूप बाँस के वन के लिए अग्नि बन गया।

दो०– मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि।।१६४।।

भा०– माता कौसल्या, भरत जी के कोमल वचन सुनकर, फिर सम्भालकर उठीं। नेत्रों से आँसू गिराती हुई भरत जी को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सरल सुभाय माय हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए।।
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। शोक सनेह न हृदय समाई।।

भा०– सरल स्वभाव वाली माता जी ने अत्यन्त प्रेम से श्रीभरत को गले लगा लिया, मानो प्रभु श्रीराम वन से श्रीअवध लौट आये हैं, फिर लक्ष्मण जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी को माँ ने हृदय से लगा लिया। शोक और स्नेह उनके हृदय में नहीं समा रहा था।

देखि स्वभाव कहत सब कोई। राम मातु अस काहे न होई।।
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे।।

भा०– माँ कौसल्या जी का स्वभाव देखकर, सभी लोग कह रहे थे कि, श्रीराम की माता जी ऐसी क्यों न हों? माता जी ने भरत जी को गोद में बैठा लिया। उनके आँसू पोंछकर, कोमल वचन बोलीं–

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि शोक परिहरहू।।
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।।

भा०– हे वत्स! मैं बलिहारी जाऊँ अब भी धैर्य धारण करो, समय को विपरीत समझकर शोक छोड़ दो। मन में पिताश्री के निधन से हानि और श्रीराम के वनगमन से ग्लानि मत मानो। हे तात्! यह जान लो कि, समय और कर्म की गति अघटित है अर्थात् यह तो होकर ही रहता है, इसका नाश नहीं हो सकता।

काहुहिं दोष देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता।।
जो एतेहुँ दुख मोहि जियावा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा।।

भा०– हे तात्! किसी को दोष मत दो। मेरे लिए ही विधाता सब प्रकार से प्रतिकूल हो गये हैं, जो इतने बड़े दुःख में भी मुझे जिला रहे हैं। अभी भी कौन जाने कि, उन्हें क्या अच्छा लग रहा है?

दो०– पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर।।१६५।।

भा०– हे बेटे भरत! पिताश्री के ही आदेश से रघुकुल के वीर श्रीराम ने आभूषण और वस्त्र छोड़ दिया। उनके हृदय में विस्मय अर्थात् शोक और हर्ष कुछ भी नहीं था तात्पर्यतः हर्ष–विषाद के द्वन्द्व से ऊपर उठकर, उन्होंने वल्कल वस्त्र धारण किया।

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू।।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी।।

भा०– श्रीराम का मुख प्रसन्न था, उनके मन में राग और रोष नहीं था। वे सब प्रकार से सबका परितोष करके अर्थात् सबको समझाकर वन को चले। सुनकर, सीता जी उनके साथ लग गईं। श्रीराम के चरण की अनुरागिणी श्रीसीता रोकने पर भी नहीं रहीं।

सुनतहिं लखन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा।।
तब रघुपति सबही सिर नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई।।

भा०– सुनते ही उठकर लक्ष्मण जी भी साथ चल पड़े। यत्न करने पर भी रघुनाथ जी श्रीअवध में नहीं रह सके। अथवा श्रीरघुनाथ जी के यत्न करने पर भी लक्ष्मण अयोध्या में नहीं रह सके। तब सभी को प्रणाम करके रघुकुल के स्वामी श्रीराम, श्रीसीता जी और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन को चल पड़े।

राम लखन सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गये, न तो मैं उनके संग गई और न ही उनके साथ अपने प्राणों को भेज सकी।

यह सब भा इन आँखिन आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे।।
मोहि न लाज निज नेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी।।
जियइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय शत कुलिश समाना।।

भा०– यह सब इन्हीं आँखों के सामने हो गया, फिर भी अभागे मेरे जीवात्मा ने शरीर को नहीं छोड़ा। मुझे अपना वत्सल स्नेह देखकर लज्जा नहीं लग रही है। श्रीराम जैसे पुत्र और मुझ जैसी माँ, दोनों में क्या तुलना? महाराज श्री ने भली प्रकार से जीना और मरना जान लिया था अर्थात् श्रीराम की उपस्थिति में जीवन और श्रीराम की

अनुपस्थिति में मरण श्रेष्ठ है, यही जीवन–मरण का रहस्य महाराज ने भली प्रकार से जाना और अपने व्यवहार में उतारा मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान है।

दो०- कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवास।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ शोक निवास।।१६६।।

भा०- कौसल्या के वचन सुनकर, श्रीभरत के सहित सम्पूर्ण रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा, मानो राजभवन में शोक का निवास हो गया था।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिए हृदय लगाईं।।
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि बिबेकमय बचन सुनाये।।

भा०- व्याकुल होकर भरत जी और उनसे उपलक्षित शत्रुघ्न जी ये दोनों भाई विलाप करने लगे। अथवा 'भ' यानी भक्त, भक्ति, भगवान् तथा भाव में 'रत' यानी लगे हुए दोनों भाई व्याकुल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या जी ने दोनो भाइयों को हृदय से लगा लिया। कौसल्या जी ने विवेकपूर्ण सुहावने वचन कहकर, अनेक प्रकार से श्रीभरत को समझाया।

विशेष- यहाँ प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त भरत शब्द योग शक्ति से भक्त, भक्ति, भगवान् और भाव में रत का वाचक है। अतएव वह दोउ भाई शब्द का विशेषण बन गया। भेषु भक्त भक्ति भगवद् भावेषु रतौ भरतौ।

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई।।
छल बिहीन शुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी।।

भा०-भरत जी ने भी पुराणों और वेदों की सुन्दर कथायें कहकर, सभी (छह सौ अन्ट्ठानबे) माताओं को समझाया। भरत जी दोनों हाथ जोड़कर छल से रहित, पवित्र, सरल और सुन्दर वचन बोले–

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइगोठ महिसुर पुर जारे।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हें।।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।।
ते पातक मोहि देउ बिधाता। जौ यह हो इ मोर मत माता।।

भा०- माता, पिता और पुत्रों को मारने पर तथा गौ का गोष्ठ अर्थात गोशाला और ब्राह्मणों का नगर जलाने पर जो पाप होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक का वध करने पर होते हैं, जो पाप मित्र और राजा को विष देने पर होता है, जो पाप और उप–पाप मन, वाणी, शरीर से उत्पन्न होते हैं, ऐसे मनीषीजन कहते हैं, यदि इस प्रकार का मेरा मत हो तो विधाता मुझे उन्हीं पापों का फल दे दें अर्थात् मैं उन्हीं पापों के फल भोगूँ।

दो०- जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तिन की गति मोहि देउ बिधि, जौ जननी मत मोर।।१६७।।

भा०- जो लोग विष्णु और शिव जी के चरणों को छोड़कर घोर भूतगणों को भजते हैं। हे माँ! यदि श्रीरामवनवास में मेरा मत हो, तो उन्हीं भूत–भक्तों की गति विधाता मुझे दे दें।

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिशुन पराय पाप कहि देहीं।।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिश्व बिरोधी।।
लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधन परदारा।।
पावौं मैं तिन कै गति घोरा। जौ जननी यह सम्मत मोरा।।

भा०– जो लोग वेद को बेच देते हैं और धर्म का दोहन कर लेते हैं, जो पिशुन अर्थात् एक की बात दूसरे तक पहुँचाते हैं, जो दूसरों का पाप कहते रहते हैं, जो लोग कपटी, कुटिल, कलहप्रिय, तथा क्रोधी होते हैं और जो वेदों की निन्दा करते रहते हैं तथा विश्वभर के विरोधी होते हैं, जो लोभी, विषयों के लम्पट, लोलुप और चार अर्थात् छिपकर दूसरों के भाव जानने का यत्न करते हैं, जो दूसरों के धन और दूसरों की स्त्री पर बुरी दृष्टि डालते हैं, हे माँ! उन्हीं की घोर गति मैं प्राप्त करूँ, यदि मेरी श्रीरामवनवास में तनिक भी सम्मति हो। अथवा, यदि श्रीरामवनवास मेरी सम्मति से हुआ हो।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे।।
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिनहिं न हरि हर सुजस सोहाई।।
तजि श्रुतिपंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जग छलहीं।।
तिन कै गति मोहि शङ्कर देऊ। जननी जौ यह जानौं भेऊ।।

भा०– जो सन्तों के संग में अनुराग नहीं रखते, जो अभागे मोक्ष के मार्ग से विमुख हैं, जो मानव शरीर धारण करके भी भगवान् को नहीं भजते, जिनको विष्णु और शिव जी का शोभन यश नहीं सुहाता, जो वेदमार्ग छोड़कर वाममार्ग पर चलते हैं, जो वंचक लोग ठग का वेश बनाकर जगत् को छलते रहते हैं, हे माँ! उन्हीं की गति मुझे शङ्कर जी दे दें, यदि मैं यह भेद जानता होऊँ।

दो०– मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम, सदा बचन मन काय।।१६८।।

भा०– माता जी सरल स्वभाववाले भरत जी के कोमल और सत्य वचन सुनकर कहने लगीं, हे बेटे भरत! तुम वाणी, मन और शरीर से स्वभावतः सरल तथा श्रीराम को प्रिय हो।

राम प्रान के प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रानहु ते प्यारे।।
बिधु बिष चवै स्रवै हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी।।
भए ग्यान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू।।
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।।

भा०– हे तात्! श्रीराम तुम्हारे प्राणों के भी प्राण हैं। तुम श्रीरघुपति के प्राणों के भी प्रिय हो। चाहे चन्द्रमा विष गिरायें, चाहे अग्नि हिमपात करे, चाहे जल में रहनेवाले मछली आदि जन्तु जल के विरागी हो जायें अर्थात् जल से वैराग्य ले लें। भले ही ज्ञान के होने पर मोह न मिटे, इतने पर भी तुम श्रीराम के प्रतिकूल नहीं होओगे। श्रीरामवनगमन में तुम्हारा मत है, जो ऐसा कहेंगे, वे स्वप्न में भी सुख और सुन्दर गति नहीं प्राप्त करेंगे।

अस कहि मातु भरत हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए।।
करत बिलाप बहुत यहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती।।

भा०– ऐसा कहकर माता कौसल्या जी ने श्रीभरत को हृदय से लगा लिया। उनके स्तन दुग्धस्राव करने लगे, उनके नेत्रों में आँसू छा गये। इस प्रकार, बहुत विलाप करते हुए माता कौसल्या जी के साथ बैठे–बैठे ही श्रीभरत की सम्पूर्ण रात बीत गई।

बामदेव बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए।।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेशे। कहि परमारथ बचन सुदेशे।।

भा०- तब वामदेव और वसिष्ठजी, भरत जी के पास आये और सभी मंत्रियों और संभ्रान्त लोगों को बुला लिया। मननशील वसिष्ठ जी ने सुन्दर देश कालानुसार परमार्थ अर्थात् मोक्ष के वचन कहकर, बहुत प्रकार से श्रीभरत को उपदेश दिया। गुरुदेव बोले–

दो०- तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सब साजु।।१६९।।

भा०- हे बेटे भरत! अब हृदय में धैर्य धारण करो, आज जो अवसर है वह करो अर्थात् पिताश्री का अन्त्येष्टि कर्म करो। गुरुदेव के वचन अर्थात् आदेश सुनकर, भरत जी उठे और सभी प्रकार का साज अर्थात् दाहसंस्कार का प्रबन्ध करने के लिए कहा।

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा।।
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरसन अभिलाषी।।

भा०- श्रीभरत ने तेल भरी नाव में रखे हुए महाराज दशरथ जी के शरीर को वेदों में प्रसिद्ध विधान से स्नान कराया और अत्यन्त विचित्र अर्थात् विविध चित्रों से युक्त विमान सजाया तथा उसमें महाराज के शरीर को पधराया। श्रीभरत ने महाराज के साथ सती होने के लिए तैयार कौसल्या आदि सभी माताओं को चरण पकड़कर रख लिया अर्थात् उन्हें सती नहीं होने दिया। सभी मातायें चौदह वर्षो के पश्चात् श्रीअवध आनेवाले श्रीराम के दर्शनों की अभिलाषा में रह गईं अर्थात् महाराज के साथ सती होने के लिए श्मशान नहीं गईं।

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए।।
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई।।

भा०- चन्दन, अगर और अनेक प्रकार के अपार सुगन्ध द्रव्यों के बहुत से भार समूह आये। सरयू के तीर पर सँवार कर महाराज दशरथ की चिता लगाई गई, मानो वह स्वर्गलोक की सुंदर सीढ़ी हो।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्ही।।
सोधि समृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दशगात्र बिधाना।।

भा०- इस प्रकार, श्रीभरत ने महाराज की सम्पूर्ण दाह–क्रिया सम्पन्न की और विधिपूर्वक सरयू जी में स्नान करके महाराज को तिलांजलि दी। अठारहों स्मृति, चारों वेद, और सभी पुराणों का शोधन करके श्रीभरत ने महाराज का दशगात्र विधान सम्पन्न किया।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा।।
भये बिशुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना।।

भा०- वसिष्ठ जी ने जहाँ जैसा आदेश दिया, वहाँ उसी प्रकार से श्रीभरत ने सब कुछ सहस्र प्रकार से किया। विशुद्ध हुए अर्थात एकादशा करके लगे हुये सूतक से छूटकर शुद्ध हुए और गौ, घोड़े, हाथी, नाना प्रकार के वाहन तथा अन्य भी बहुत से दान दिये।

दो०- सिंघासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम।।१७०।।

भा०- भरत जी ने सिंहासन, अलंकार, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी, धन और भवन सब दिया। उन्हें प्राप्त कर महाब्राह्मणगण परिपूर्ण काम हो गये अर्थात् उनकी कामनायें पूर्ण हुईं।

* मासपारायण, पन्द्रहवाँ विश्राम *

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।
सुदिन सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बुलाए।।

भा०– पिताश्री दशरथ जी के लिए श्रीभरत ने जो श्राद्धकर्म किया वह लाखों मुखों से वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर मुहूर्त का शोधन करके सभी श्रेष्ठ मुनिगण आये और सभी मंत्रियों तथा श्रेष्ठजनों को बुला लिया।

बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई।।
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे।।

भा०– सभी जाकर राजसभा में बैठे और श्रीभरत और शत्रुघ्न जी इन दोनों भाइयों को बुला भेजा। अथवा भरत अर्थात भक्ति, भक्त, भगवान् में रत दोनों भाई भरत शत्रुघ्न को राजसभा में वसिष्ठ जी ने बुला भेजा। वसिष्ठ जी ने श्रीभरत को अपने निकट बैठा लिया और नीति तथा धर्म से पूर्ण कोमल वचन बोले।

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकयि कुटिल कीन्हि जसि करनी।।
भूप धरमब्रत सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा।।

भा०– सर्वप्रथम वसिष्ठ जी ने सम्पूर्ण वह कथा कह सुनायी, जिस प्रकार कुटिल कैकेयी ने कार्य किया था, फिर महाराज दशरथ के धर्म, व्रत और सत्य की सराहना की, जिन्होंने शरीर का त्याग करके प्रेम का निर्वाह किया।

कहत राम गुन शील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।।
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। शोक सनेह मगन मुनि ग्यानी।।

भा०– श्रीराम के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते–करते वसिष्ठ जी सजल नेत्र और पुलकित हो उठे अर्थात् मुनि के नेत्रों में आँसू और शरीर में रोमांच हो गया, फिर लक्ष्मण जी और सीता जी के प्रेम का बखान करके ज्ञानीमुनि शोक और स्नेह में डूब गये।

दो०– सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ।।१७१।।

भा०– वसिष्ठ जी ने विलखकर अर्थात् दु:खी होकर कहा, हे भरत! सुनो, भवितव्यता प्रबल होती है। हानि–लाभ, जीवन–मृत्यु, यश और अपयश ये सभी ब्रह्मा जी के हाथ में है।

विशेष–
हानि भई दसमौलि की, लाभ विभीषण राज।
जीवन भा मुनि मखन को, दशरथ मरण अकाज।।
सुयश भयो जग भरत को, अपयश कैकयि साथ।
हानि लाभ जीवन मरण, जस अपजस विधि हाथ।।

अस बिचारि केहि देइय दोषू। ब्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू।।
तात बिचार करहु मन माहीं। सोच जोग दशरथ नृप नाहीं।।

भा०– ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाये और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाये? हे भरत! मन में विचार करो राजा दशरथ शोक के योग्य नहीं हैं।

सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धर्म बिषय लयलीना।।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।

भा०– उस ब्राह्मण के लिए शोक करना चाहिये, जो वेद से विहीन हो और अपना धर्म छोड़कर विषय–भोगों में लिप्त हो गया हो। वह राजा सोचनीय है, जो नीति नहीं जानता और जिसे प्रजा प्राण के समान प्रिय नहीं है।

सोचिय बैश्य कृपन धनवानू। जो न अतिथि शिव भगत सुजानू।।
सोचिय शूद्र बिप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।।

भा०– वह वैश्य शोक करने योग्य है, जो धनी होकर भी कृपण है जो अतिथि और शिव जी का भक्त नहीं है और जो चतुर नहीं है। ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला, बहुत बोलने वाला, ज्ञान का अहंकार रखने वाला, शोक के कारण असन्तुलित चतुर्थ वर्णवाला भी शोक के योग्य है।

सोचिय पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी।।
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।।

भा०– फिर अपने पति को ठगनेवाली कुटिल, जिसे झगड़ा करना प्रिय हो ऐसे स्वेच्छा के अनुसार आचरण करने वाली भोगपरायण महिला भी सोचनीय है। वह ब्रह्मचारी शोक करने योग्य है, जिसने अपना व्रत छोड़ दिया हो और गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता हो।

दो०– सोचिय गृही जो मोह बश, करइ करम पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग।।१७२।।

भा०– जो मोह के वश में होकर अपने वैदिक कर्म–मार्ग का त्याग कर दिया है, वह गृहस्थ मरण के पश्चात् सोचनीय है। प्रपंच में लगा हुआ, ज्ञान और वैराग्य से रहित सन्यासी मरण के पश्चात् शोक के योग्य है।

बैखानस सोइ सोचन जोगू। तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू।।
सोचिय पिशुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी।।

भा०– वह वानप्रस्थ मरण के पश्चात् सोचने योग्य है, जिसे तपस्या छोड़ भोग अच्छा लगता है। जो एक की बात दूसरे तक पहुँचाने वाला, बिना कारण क्रोध करने वाला, माता–पिता, गुरु तथा भाइयों का विरोध करने वाला हो, वह भी सोचने योग्य है।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी।।
सोचिय लोभनिरत अतिकामी। सुर श्रुति निन्दक परधनस्वामी।।

भा०– दूसरों का अपकार करने वाला, अपने शरीर का पोषण करने वाला, बहुत ही निर्दयी व्यक्ति सब प्रकार से सोचनीय है। लोभ में लगा हुआ, अत्यन्त कामी, देवता और वेदों का निन्दक तथा दूसरों के धन का स्वामी, अर्थात् दूसरों के धन को हड़पने वाला भी सोचनीय है।

सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरि जन होई।।
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।

भा०– जो छल छोड़कर भगवान् श्रीराम का भक्त नहीं हो जाता, वही सभी प्रकारों से सोचनीय है। अयोध्यापति महाराज दशरथ जी शोक के योग्य नहीं हैं, उनका प्रभाव चौदहों भुवन में प्रकट है।

भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।।
बिधि हरि हर सुरपति दिशिनाथा। बरनहिं सब दशरथ गुन गाथा।।

भा०– हे भरत! जिस प्रकार तुम्हारे पिताश्री थे, ऐसा राजा नहीं हुआ, नहीं है और नहीं अब होने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल ये सभी महाराज के गुणों की गाथाओं का वर्णन करते हैं।

दो०- कहहु तात केहि भाँति कोउ, करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम शत्रुहन, सरिस सुवन शुचि जासु।।१७३।।

भा०– हे तात! बताओ, उस व्यक्ति की बड़ाई किस प्रकार से कोई करेगा, जिसके श्रीराम, लक्ष्मण, तुम अर्थात् भरत और शत्रुघ्न जैसे पवित्र पुत्र हों।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी।।
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू।।

भा०– महाराज सब प्रकार से भाग्यशाली हैं, उनके लिए व्यर्थ ही शोक किया जा रहा है। ऐसा सुनकर और समझकर तुम शोक छोड़ो और महाराज की राजाज्ञा सिर पर धारण करके उसका पालन करो।

राय राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा।।
तजे राम जेहिं बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी।।
नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रमाना।।

भा०– महाराज ने तुम्हें राजपद दिया है, पिता का वचन सत्य करना चाहिये। महाराज ने अपने जिस सत्य वचन के लिए श्रीराम को भी छोड़ दिया और उन्हीं श्रीराम की विरह–अग्नि में शरीर का भी त्याग कर दिया। महाराज को वचन प्रिय है, प्राण प्रिय नहीं है, इसलिए हे तात्! पिता जी के वचन को प्रमाणित कीजिये।

करहु शीष धरि भूप रजाई। है तुम कहँ सब भाँति भलाई।।
परशुराम पितु आग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी।।
तनय जजातिहिं जौबन दयऊ। पितु आग्या अघ अजस न भयऊ।।

भा०– हे भरत! महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करो। तुम्हारे लिए सब प्रकार से भलाई ही है। सम्पूर्ण लोक साक्षी है कि, पिता की आज्ञा की रक्षा करके परशुराम जी ने अपनी माँ को ही मार डाला। ययाति को पिता की आज्ञा से पुत्र पुरु ने अपनी युवावस्था दे दी, उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ।

दो०- अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन।।१७४।।

भा०– अनुचित, उचित का विचार छोड़कर, जो पिता के वचन का पालन करते हैं, वे सुख और सुयश के पात्र होते हैं और देवताओं के पति इन्द्र के भवन में निवास करते हैं।

अवसि नरेश बचन फुर करहू। पालहु प्रजा शोक परिहरहू।।
सुरपुर नृप पायिहिं परितोषू। तुम कहँ सुकृत सुजस नहिं दोषू।।

भा०– पिता जी के वचन को आप अवश्य सत्य कीजिये, प्रजा का पालन कीजिये, शोक छोड़िये। महाराज दशरथ भी इन्द्रलोक में परितोष अर्थात् पूर्ण संतोष प्राप्त करेंगे। आपको भी पुण्य और सुयश मिलेगा, कोई दोष नहीं होगा।

बेद बिदित सम्मत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका।।
करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी।।

भा०– यह सिद्धान्त वेदों में विदित और सभी का सम्मत है अर्थात् सम्मानित है कि, जिसे पिता देते हैं, वही राजतिलक पाता है। आप राज्य कीजिये, ग्लानि छोड़ दीजिये। मेरा वचन कल्याणप्रद जानकर मान लीजिये।

सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही।।
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी।।

भा०– यह सुनकर, श्रीराम और सीता जी सुख प्राप्त करेंगे और कोई भी पण्डित किसी को भी अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्या जी आदि जो भी श्रीराम की मातायें हैं, वे भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

मरम तुम्हार राम सब जानहिं। सो सब बिधि तुम सन भल मानहिं।।
सौंपेहु राज राम के आए। सेवा करेहु सनेह सुहाए।।

भा०– तुम्हारा सम्पूर्ण मर्म श्रीराम जानते हैं। वह तुमसे सब प्रकार से भला ही मानते हैं। श्रीराम के आने पर उन्हें राज्य सौंप देना और सुहावने स्नेह के साथ उनकी सेवा करना।

दो०– कीजिय गुरु आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आए उचित जस, तस तब करब बहोरि।।१७५।।

भा०– मंत्रीगण भी हाथ जोड़कर कहते हैं कि हे भरत! गुरुदेव की आज्ञा का अवश्य पालन कीजिये। श्रीराम के आने पर जो उचित हो, फिर वही कर लीजियेगा।

कौसल्या धरि धीरज कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई।।
सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय बिषाद काल गति जानी।।

भा०– माता कौसल्या धैर्य धारण करके कहने लगीं, हे पुत्र! गुरुदेव की आज्ञा पथ्य है अर्थात् इसका सेवन करने से पापरूप रोग नष्ट हो जाता है। उसे कल्याणकारी मानकर आदर करो और उसका पालन करो। काल की गति समझकर दु:ख छोड़ दो।

बन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम एहि भाँति तात कदराहू।।
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुमहीं सुत सब कहँ अवलंबा।।

भा०– श्रीराम वन में हैं, महाराज देवपुर अर्थात् इन्द्रलोक में हैं। हे तात्! तुम श्रीअवध में रहकर इस प्रकार कदरा रहे हो अर्थात् शोक से आतुर होकर राज्य नहीं स्वीकार रहे हो। हे बेटे! परिवार, प्रजा, मंत्री, सभी मातायें इन सबके तुम ही अवलम्ब अर्थात् आश्रय हो।

लखि बिधि बाम काल कठिनाई। धीरज धरहु मातु बलि जाई।।
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुख हरहू।।

भा०– विधाता को प्रतिकूल देखकर और समय की कठिनता को समझकर तुम धैर्य धारण करो, माँ तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरुदेव की आज्ञा को मस्तक पर धारण करके उनका अनुसरण करो, प्रजा का पालन करके अपने परिजनों का कष्ट हर लो।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदन। सुने भरत हिय हित जनु चंदन।।
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। शील सनेह सरल रस सानी।।

भा०– हृदय में चन्दन के समान हितकर गुरुदेव के वचन और मंत्रियों का अभिनन्दन अर्थात् गुरुदेव के वचन का अनुमोदन श्रीभरत ने सुना, फिर माता कौसल्या जी की स्नेह, शील, सरल रस अर्थात वत्सल रस से सनी हुई वाणी श्रीभरत ने सुनी।

छं०: सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए।।
सो दशा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।।

भा०- सरल तथा भक्तिरस से सनी हुई, बड़ी माता कौसल्या जी की वाणी सुनकर, श्रीभरत व्याकुल हो गये। उनके अश्रुपात करते हुए नेत्र हृदय में अंकुरित विरह वृक्ष के अंकुरों को सींचने लगे। उस समय वह दशा देखकर, सभी सभासदों को शरीर की सुधि भूल गई। तुलसीदास जी कहते हैं कि, सभी सभासद आदरपूर्वक स्वाभाविक स्नेह की सीमा श्रीभरत की प्रशंसा करने लगे।

सो०- भरत कमल कर जोरि, धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं।।१७६।।

भा०- धीरों की धुरी को धारण करने वाले भरत जी, कमल के समान हाथों को (जो राज्य के कीचड़ से दूर हो चुके हैं) जोड़कर, मानो अमृतरस से डुबोये हुए वचनों से सभी (गुरुदेव, मंत्री और बड़ी माताश्री) को उचित उत्तर दे रहें हैं।

मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव सम्मत सबही का।।
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा। अवसि शीष धरि चाहउँ कीन्हा।।

भा०- मुझे गुरुदेव ने बहुत सुन्दर उपदेश दिया है, जो प्रजा और मंत्री सभी को सम्मत है। फिर बड़ी माताश्री ने भी मुझे उचित उपदेश दिया है। उसे शिरोधार्य करके मैं अवश्य करना चाहता हूँ।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी।।
उचित कि अनुचित किए बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू।।

भा०- गुरु, पिता, माता और स्वामी की हित सम्बन्धिनी वाणी को सुनकर, उसे भली अर्थात् श्रेष्ठ जानकर प्रसन्न मन से पालन करना चाहिये। यह उचित है अथवा अनुचित इस प्रकार विचार करने पर धर्म चला जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ जाता है।

तुम तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई।।
जद्यपि यह समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोष न जी के।।

भा०- आप सब तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण से मेरी भलाई हो। यद्यपि मैं यह भली प्रकार से समझ रहा हूँ, फिर भी मेरे हृदय को संतोष नहीं हो रहा है।

अब तुम बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू।।
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू।।

भा०- अब आप सब मेरा विनय सुन लें और मुझे अनुसरण करने योग्य शिक्षा दें। मैं उत्तर दे रहा हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करें, क्योंकि सज्जन लोग दुखित जनों के दोष और गुणों को नहीं गिना करते।

दो०- पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज।।१७७।।

भा०- पिताश्री देवलोक में हैं और श्रीसीताराम जी वन में, आप लोग मुझे राज्य करने के लिए कह रहे हैं। इससे आप लोग मेरा बहुत–बड़ा हित समझ रहे हैं अथवा अपना बहुत–बड़ा कार्य अर्थात् इन दोनों की अनुपस्थिति में

मुझे राज्य देकर आप मेरा कौन–सा बहुत–बड़ा हित करना चाहते हैं? या, अपने किस बहुत–बड़े कार्य को सिद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि पिताश्री और श्रीसीताराम जी की अनुपस्थिति में मेरा अथवा आप सबका कोई बहुत–बड़ा हित होगा, मुझे इसकी सम्भावना ही नहीं प्रतीत होती।

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई।।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं।।

भा०– श्रीसीता जी के पति श्रीराम जी की सेवा में ही हमारा बहुत–बड़ा हित है। वह भी माता जी की कुटिलता ने हर लिया अर्थात् मेरी माता की कुटिलता से मुझसे भगवान् श्रीराम की सेवा छिन गई। मैंने मन में अनुमान करके देख लिया है कि, दूसरे उपाय से मेरा हित नहीं होगा।

शोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे।।
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू।।
सरुज शरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा।।
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई।।

भा०– लक्ष्मण, श्रीराम एवं श्रीसीता जी के चरणों को बिना देखे शोक का समाज स्वरूप यह राज्य मेरे लिए किस गिनती में है? वस्त्रों के बिना भारस्वरूप आभूषण व्यर्थ है। वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार अर्थात् वेदान्त शास्त्र का चिन्तन व्यर्थ है। रोग से युक्त शरीर के लिए बहुत से पदार्थों का भोग व्यर्थ है। श्रीरामभक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ है। जीवात्मा के बिना सुन्दर शरीर व्यर्थ है। उसी प्रकार रघुकुल के राजा श्रीराम के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू।।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बश कहहू।।

भा०– मैं श्रीराम जी के पास जा रहा हूँ, यही मुझे आज्ञा दीजिये, यही एक निश्चित सिद्धान्त है और यही मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाह रहे हैं, वह भी स्नेह की जड़ता के वश में होकर कह रहे हैं।

दो०– कैकेयी सुत कुटिलमति, राम बिमुख गतलाज।
तुम चाहत सुख मोहबश, मोहि से अधम के राज।।१७८।।

भा०– जो कैकेयी का पुत्र है, जिसकी बुद्धि अत्यन्त कुटिल है, जो श्रीराम जी से विमुख और निर्लज्ज है, ऐसे मुझ भरत जैसे अधम के राज्य में आप लोग मोहवश होने के कारण ही सुख चाह रहे हैं।

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरमशील नरनाहू।।
मोहि राज हठि देइहउ जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।।

भा०– मैं सत्य कह रहा हूँ, आप सब सुनकर विश्वास कीजिये। राजा को स्वभाव से धर्मशील होना चाहिये। जिस समय आप लोग हठपूर्वक मुझे राज्य दीजियेगा, उसी समय पृथ्वी रसातल में चली जायेगी।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू।।
राय राम कहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा।।
मैं शठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू।।
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू।।

भा०– मेरे समान और कौन पाप का निवास स्थान होगा, जिसके कारण श्रीसीताराम जी का वनवास हुआ। महाराज ने श्रीराम को वनवास दिया और उनके बिछुड़ते (अलग होते) ही देवलोक में प्रस्थान किया। सभी

अनर्थों का कारण रूप दुष्ट मैं (भरत) सचेत हुआ बैठकर सब बात सुन रहा हूँ। रघुकुल के वीर श्रीराम जी के बिना श्रीअवध का राजभवन देखते हुए, संसार का उपहास सहकर मेरे प्राण रह रहे हैं, वे निकलते नहीं।

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे।।
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिश जेहिं लही बड़ाई।।

भा०– क्योंकि मेरे प्राण श्रीरामरूप पवित्ररस से रूखे हैं और ये विषयों के लोलुप तथा भूमि के भोग के भूखे हैं, इसलिए ये श्रीराम जी के बिना भी मेरे शरीर में रह रहे हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता कहाँ तक कहूँ, जिसने वज्र का निरादर करके बड़ाई पाई है अर्थात् इतनी बड़ी करुणा की घड़ी में भी मेरा हृदय नहीं फटा, जबकि इस परिस्थिति में वज्र होता तो फट जाता।

दो०– कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थि ते उपल ते, लोह कराल कठोर।।१७९।।

भा०– मेरा कोई दोष नहीं है, कारण अर्थात् जन्म देने वाले से कार्य अर्थात् कारण में उत्पन्न होने वाला पदार्थ कठिन होता है, जैसे दधीचि के अस्थि से उत्पन्न हुआ वज्र अस्थि की अपेक्षा भयंकर होता है, और पत्थर से उत्पन्न हुआ लोहा पत्थर की अपेक्षा कठोर होता है, उसी प्रकार कैकेयी से उत्पन्न हुआ मैं, कैकेयी की अपेक्षा भयंकर और कठोर हूँ।

कैकेयी भव तनु अनुरागे। पामर प्रान अघाइ अभागे।।
जौ प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे।।

भा०– मेरे नीच प्राण कैकेयी से उत्पन्न हुए शरीर से प्रेम करते हैं, इसलिए वे दुर्भाग्य से तृप्त हो रहे हैं। यदि प्यारे श्रीराम के विरह में भी मुझे प्राण प्रिय लगे हैं अर्थात् श्रीराम जी का वनगमन सुनकर नहीं निकले तो आगे भी मैं बहुत कुछ देखूँगा और सुनूँगा।

लखन राम सिय कहँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।।
लीन्ह बिधवपन अपजस आपू। दीन्हेउ प्रजहिं शोक संतापू।।
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू।।
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका।।

भा०– कैकेयी ने लक्ष्मण, श्रीराम और भगवती श्रीजानकी को वनवास दे दिया। महाराज को बिना अवसर के देवलोक भेजकर अपने पति का भी हित किया, स्वयं विधवापन और अपयश प्राप्त किया, प्रजा को शोक और दुःख दिया, मुझे भी सुख, सुयश और सुन्दर राज्य दिया। इस प्रकार, कैकेयी ने सबका कार्य किया है। अर्थात् श्रीलक्ष्मण, श्रीराम, भगवती श्रीसीता जी को राज्य के स्थान पर वनवास दिया जो बहुत अनुचित हुआ, अपने पति महाराज चक्रवर्ती जी को बिना समय के ही इन्द्रलोक भेज दिया, क्या यह उचित कहा जायेगा? स्वयं सौभाग्य के स्थान पर विधवापन, सुयश के स्थान पर अपयश ले लिया, क्या यह भारतीय नारी के लिए आदर्श होगा? प्रजा को हर्ष के स्थान पर शोक, सुख के स्थान पर दुःख देकर कैकेयी ने क्या सम्राज्ञी की मर्यादा का निर्वहन किया? मुझे क्या उसने सुख, सुयश और सुराज्य दिया है? कदापि नहीं। क्या पुत्र के प्रति माता का यही कर्त्तव्य है? इस प्रकार से कैकेयी ने सम्पूर्ण लोक का अकार्य ही तो किया है। इससे अधिक अब मेरी क्या भलाई हो सकेगी? इस पर भी आप लोग टीका अर्थात् राजतिलक देने के लिए कह रहे हैं।

कैकयि जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं।।
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई।।

भा०- कैकेयी के गर्भ से संसार में जन्म लेकर, यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। विधाता ने ही मेरी सभी बात बना दी है। हे प्रजा वर्ग! हे निर्णायक पंचजन! गुरुदेव! मंत्री! और माता जी! आप लोग क्या सहायता कर रहे हैं अर्थात् सब प्रकार से मेरी बात बिगड़ ही गई है, फिर राजतिलक देने के लिए कह कर आप लोग उसे और अधिक क्यों बिगाड़ रहे हैं?

दो०- ग्रह गृहीत पुनि बात बश, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कौन उपचार।।१८०।।

भा०- हे सभासदों! आप यही बतायें, जो ग्रहों के द्वारा पकड़ लिया गया हो, फिर वात के रोग से पीड़ित हो, फिर उसी को बिच्छू ने डंस लिया हो, पुनः उसी को मदिरा पिला दी जाये, तो उसका कोई उपचार हो सकता है? अर्थात् नहीं। इसी प्रकार, मुझको मंथरा रूप साढ़ेसाती, शनिश्चर की महादशा ने पूर्णरूप से ग्रहण कर लिया है और पिताश्री की मृत्यु के कारण मैं वात रोगी की भाँति बावला हो चुका हूँ तथा प्रभु श्रीराम के वनवास के समाचार ने मुझे बिच्छू के समान डंक मार कर पीड़ा से विकल कर दिया है। इतने पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देकर राज्य रूप मदिरा पिलाना चाहते हैं। अब मेरा क्या उपचार होगा? अब तो मेरी मृत्यु होगी ही।

कैकयि सुवन जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।।
दशरथ तनय राम लघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि बादि बड़ाई।।

भा०- कैकेयी के पुत्र के योग्य संसार में जो कुछ भी था, वह सब चतुर विधाता ने मुझे दे दिया है। विधाता ने दशरथ जी के पुत्र और श्रीराम के छोटे भाई का गौरव मुझे व्यर्थ ही दे डाला, मैं इसके योग्य नहीं हूँ।

तुम सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका।।
उतर देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही।।

भा०- आप सब मुझे टीका कढ़ाने के लिए अर्थात् राजतिलक करवाने के लिए कह रहे हैं। सबके लिए महाराज की राजाज्ञा अच्छी है। मैं किस–किसको किस प्रकार से उत्तर दूँ? जिसको जैसी रुचि हो आप लोग सुखपूर्वक वही कहें।

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि केहि कीन्हि भलाई।।
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय राम प्रानप्रिय नाहीं।।

भा०- आप लोग ही बतायें कि दुष्ट माता कैकेयी के समेत मुझ भरत को छोड़कर कौन कहेगा की यह भलाई की गई अर्थात् अच्छा कार्य किया गया? अर्थात् श्रीरामवनवास को या तो कैकेयी अच्छा कहेगी या मैं।

विशेष- यह श्रीभरत जी का व्यंग्य है। मुझे छोड़कर चित्–अचित् से युक्त इस संसार में कौन है, जिसे श्रीसीताराम जी प्राण के समान प्रिय नहीं हैं?

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू।।
संशय शील प्रेम बश अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू।।

भा०- बहुत बड़ी–हानि ही सबके लिए बहुत–बड़ा लाभ हो गया है अर्थात् आप सब बहुत–बड़ी हानि को बहुत–बड़ा लाभ मान रहे हैं, इसलिए श्रीराम जी और पिताश्री की अनुपस्थिति में भी आप मुझे राजा बनाना

चाहते हैं। इसमें मेरा ही दुर्दिन है, किसी का दोष नहीं है। आप सब संदेह से युक्त प्रेम के वश में हो गये हैं अर्थात् आपको यह लगता है कि, भरत, श्रीराम जी के बिना सुखपूर्वक रह सकेंगे या नहीं, जबकि ऐसा नहीं है, मैं प्रभु के बिना कैसे सुखी रह सकता हूँ? आप सब जो कुछ कह रहे हैं, वह आप सबके लिए उचित है।

दो०- राम मातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिशेषि।
कहत सुभाय सनेह बश, मोरि दीनता देखि।।१८१।।

भा०- श्रीराम की माता कौसल्या जी सुन्दर और सरल चित्तवाली हैं। उन्हें मुझ पर विशेष वात्सल्य प्रेम है, इसलिए मेरी दीनता देखकर, वे भी स्वाभाविक स्नेह के वश में होकर मुझे राज्य स्वीकारने के लिए कह रहीं हैं, जबकि उनकी वह वास्तविकता नहीं है।

गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिनहिं बिश्व कर बदर समाना।।
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भए बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ।।

भा०- जगत जानता है, गुरुदेव महर्षि वसिष्ठ जी विवेक के समुद्र हैं। उनके लिए यह विश्व बेर के फल के समान है अर्थात् वे विश्व की प्रत्येक परिस्थिति से परिचित हैं। वे भी मेरे लिए राजतिलक का साज सजा रहे हैं। जब विधाता ही विमुख हो गये तथा सभी लोग मुझ से विमुख हो ही गये हैं, तो फिर विधाता के पुत्र गुरुदेव क्यों नहीं विमुख होंगे?

परिहरि राम सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं।।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी।।

भा०- अन्तर्यामीस्वरूप श्रीसीताराम जी को छोड़कर कोई भी संसार में यह नहीं कहेगा कि, श्रीरामवनवास प्रकरण में मेरा अर्थात् भरत का सम्मत नहीं है। मेरी वास्तविकता तो केवल श्रीसीताराम जी जानते हैं। वह सब मैं सुख मानकर सुनूँगा और सहूँगा, क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्ततः कीचड़ होता ही है अर्थात् गुण के साथ दोष का रहना स्वाभाविक ही है।

डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू।।
एकइ उरबस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी।।

भा०- मुझे संसार क्यों न बुरा कहे, इसका मुझे डर नहीं है और मुझे परलोक की भी कोई चिन्ता नहीं है। मेरे हृदय में एक ही असहनीय दावाग्नि (जंगल की आग) निवास कर रहा है वह यह कि, मेरे लिए श्रीसीताराम जी दुःखी हो गये।

जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा।।
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।।

भा०- लक्ष्मण ने जीवन का भला अर्थात् श्रेष्ठ लाभ पाया, उन्होंने सब कुछ छोड़कर श्रीराम जी के चरणों में अपना मन लगा लिया है। मेरा जन्म तो श्रीराम जी के वन के लिए हुआ है। मैं भाग्यहीन भरत क्यों झूठा पश्चात्ताप कर रहा हूँ?

दो०- आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ।।१८२।।

भा०- अपनी असहनीय दीनता मैं सबको सिर नवाकर कह रहा हूँ। श्रीराम के चरणों के दर्शन किये बिना मेरे हृदय की जलन नहीं जा सकती।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।।
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं।।

भा०– मुझे और दूसरा उपाय नहीं सूझ रहा है। रघु अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के द्वारा वरण करने योग्य श्रीराम जी के बिना मेरे हृदय को कौन समझ सकता है? मेरे मन में यही एकमात्र निश्चय है कि, मैं कल प्रात:काल प्रभु के पास चला जाऊँगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी।।
तदपि शरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहैं कृपा बिशेषी।।

भा०– यद्यपि मैं अत्यन्त बुरा और अपराधी हूँ, मेरे ही कारण सब अनर्थ हुआ है, फिर भी मुझे अपने सम्मुख शरण में आया हुआ देखकर, सब कुछ क्षमा करके प्रभु विशेष कृपा करेंगे।

शील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं शिशु सेवक जद्यपि बामा।।

भा०– रघुकुल के राजा अथवा, रघु अर्थात् सभी जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान श्रीराम, शील (चरित्र और संकोच के कारण), सुन्दर, सरल स्वभाव वाले हैं। वे कृपा और स्नेह के भवन हैं। श्रीराम जी ने अपने शत्रु का भी अहित नहीं किया है। मैं बालक और सेवक हूँ, यद्यपि मैं प्रभु से प्रतिकूल हूँ।

तुम पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आशिष देहु सुबानी।।
जेहिं सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।।

भा०– तुम (आप) भी अर्थात् सभी पंच लोग मेरा भला मानकर, सुन्दर वाणी में आज्ञा और आशीर्वाद दे दीजिये। जिससे भगवान् श्रीराम जी मेरी प्रार्थना सुनकर, मुझे अपना सेवक जानकर अपनी राजधानी अयोध्या में लौट आयें।

दो०– जद्यपि जनम कुमातु ते, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं, मोहि रघुबीर भरोस।।१८३।।

भा०– यद्यपि मेरा जन्म दुष्ट माता से हुआ है। मैं दुष्ट और सदैव दोषयुक्त हूँ, फिर भी प्रभु मुझे अपना जानकर नहीं छोड़ेंगे। मुझे रघुवीर श्रीराम का भरोसा है।

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे।।
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।।

भा०– श्रीराम जी के स्नेहामृत से पगे हुए जैसे श्रीभरत जी के वचन, सबको प्रिय लगे। लोग वियोगरूप तीक्ष्ण विष से दग्ध हो गये थे, मानो बीज से युक्त श्रीराममंत्र सुनते ही जग गये।

विशेष– यहाँ श्रीभरत जी के द्वारा कहा हुआ सात दोहों में विसर्ग के साथ षडक्षर श्रीराम मंत्र की व्याख्या की गई।

मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भए भारी।।
भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।।

भा०– मातायें, मंत्री, गुरुजन और अवधपुर के सभी नर–नारी प्रेम से बहुत विकल हो गये। सब लोग बारम्बार प्रशंसा करके श्रीभरत जी के लिए कहते हैं कि, श्रीभरत जी का शरीर तो श्रीरामप्रेम की मूर्ति है।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू।।

भा०– हे भैया भरत! आप ऐसा क्यों नहीं कहेंगे, क्योंकि आप श्रीराम जी को प्राण के समान प्रिय हैं।

जो पामर आपनि जड़ताई। तुमहिं सुगाइ मातु कुटिलाई।।
सो शठ कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप शत नरक निकेता।।

भा०– जो दुष्ट अपनी जड़ता के कारण आप पर कैकेयी माता की कुटिलता की आशंका करेगा, वह शठ अपने करोड़ों पूर्वजों के साथ सौ कल्पपर्यन्त नरक के भवन में निवास करेगा।

अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई।।

भा०– मणि, सर्प के पाप और अवगुणों को नहीं ग्रहण करता, प्रत्युत् उसके विष का हरण कर लेता है और सर्प के भयंकर दु:ख और दारिद्र को जला डालता है। उसी प्रकार कैकेयी से उत्पन्न होकर भी आप भैया भरत उसके कुकृत्य से प्रभावित नहीं हुये, प्रत्युत् उसके रामविरोध रूप विष को नष्ट करके माँ को भगवान् राम से मिलाकर उसके सन्ताप और दारिद्रय को नष्ट कर डालेंगे।

दो०– अवसि चलिय बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
शोक सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबन दीन्ह।।१८४।।

भा०– जहाँ श्रीराम जी हैं, उस वन में अवश्य चला जाये, हे भरतजी! आपने बहुत अच्छी मंत्रणा की है, शोक के समुद्र में डूबते हुए सभी को आपने अवलम्बन दिया है।

भा सबके मन मोद न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा।।
चलत प्रात लखि निरनय नीके। भरत प्रान प्रिय भे सबही के।।

भा०– सबके मन में बहुत–बड़ी प्रसन्नता हुई, मानो बादल की गर्जना सुनकर, मेढ़क और मोर प्रसन्न हो गये हों। श्रीभरत प्रात:काल चलना चाहते हैं, यह सुन्दर निर्णय देखकर, भरत जी सभी को प्राण के समान प्रिय हो गये।

मुनिहिं बंदि भरतहिं सिर नाई। चले सकल घर बिदा कराई।।
धन्य भरत जीवन जग माहीं। शील सनेह सराहत जाहीं।।

भा०– वसिष्ठ जी की वन्दना करके, श्रीभरत को प्रणाम करके, विदा लेकर सभी सभासद अपने घरों को चल पड़े। संसार में श्रीभरत का जीवन धन्य है। इस प्रकार, सभासद उनके शील और स्नेह की प्रशंसा करते हुए जा रहे हैं।

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू।।
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदन मारी।।

भा०– सब लोग परस्पर कह रहे हैं, बहुत–बड़ा कार्य हो गया। सभी चलने का साज सजा रहे हैं, जिस व्यक्ति को घर में, "रखवाली के लिए रहो" ऐसा कहकर रखते हैं, वह जानता है, मानो उसका गर्दन काट दिया।

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू।।
केहि न भाव सिय लछिमन रामू। सब कहँ प्रिय हिय सदा सकामू।।

भा०– कोई कहता है, किसी को भी रहने के लिए नहीं कहना चाहिये। संसार में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता? सभी के प्रिय श्रीसीता, लक्ष्मण, एवं श्रीराम किसको नहीं भाते ? सदैव मन में कोई न कोई कामना रहती ही है।

दो०- जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद, करै न सहज सहाइ।।१८५।।

भा०- श्रीराम के चरणों के सन्मुख होने में जो स्वभावतः सहायता नहीं करता, वह सम्पत्ति, सुख, घर, माता-पिता और भाई जल जायें अर्थात् वही परिवार के लोग स्नेह करने योग्य हैं, जो श्रीराम के भजन करने में सहायक हों।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरष हृदय परभात पयाना।।

भा०- सभी अवधवासी (प्रातःकाल श्रीभरत के साथ चलने के लिए), अनेक वाहन सजा रहे हैं। प्रातःकाल श्रीराघव के दर्शन के लिए प्रस्थान करेंगे। इसलिए सबके हृदय में हर्ष है।

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगर बाजि गज भवन भँडारू।।
संपति सब रघुपति कै आही। जौ बिनु जतन चलौं तजि ताही।।
तौ परिनाम न मोहि भलाई। पाप शिरोमनि साइँ दोहाई।।

भा०- श्रीभरत ने घर जाकर विचार किया कि, नगर, घोड़े, हाथी, राजभवन, भाण्डागार, यह सम्पूर्ण सम्पत्ति रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की है। यदि इसकी कोई व्यवस्था किये बिना, इसी प्रकार, छोड़कर चलता हूँ, तब परिणाम में मेरी भलाई (कल्याण) नहीं होगी। यह स्पष्ट स्वामी का द्रोह होगा और अपने स्वामी का द्रोह सभी पापों का शिरोमणि अर्थात् सबसे बड़ा पाप है।

करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई।।
अस बिचारि शुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले।।
कहि सब मरम धरम भल भाखा। जो जेहिं लायक सो तेहिं राखा।।

भा०- ऐसा विचार करके श्रीभरत ने उन पवित्र सेवकों को बुलाया, जो स्वप्न में भी अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य से नहीं डिगते। उन्हें सभी गोपनीय मर्म समझाकर (श्रीअवध में रहकर नगर की रक्षा करना ही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है) सुन्दर धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कहा। जो जिसके योग्य था, उसे उसी कार्य में नियुक्त किया अर्थात् श्रीअवध की पूरी सुरक्षा सुनिश्चित की।

करि सब जतन राखि रखवारे। राम मातु पहँ भरत सिधारे।।

भा०- इस प्रकार, सम्पूर्ण यत्न (व्यवस्था) करके, नगर में रक्षकों को नियुक्त करके, भरत जी, श्रीराम की माताश्री कौसल्या जी के पास गये।

दो०- आरत जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान।
कहेउ सजावन पालकी, सुखद सुखासन यान।।१८६।।

भा०- सभी माताओं को श्रीराम के दर्शनों के लिए आर्त्त अर्थात् व्याकुलतापूर्वक उत्सुक जानकर, स्नेह में चतुर श्रीभरत ने सुन्दर सुख देने वाली पालकियाँ और सुखपूर्वक बैठने योग्य आसनों से युक्त वाहनों को सजाने के लिए कहा।

चक चकई जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी।।
जागत सब निशि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना।।
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहिं राजू।।
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे।।

भा०– नगर के नर–नारी, चकवे और चकवी की भाँति हृदय में अत्यन्त आर्त्त होकर शीघ्र प्रातःकाल चाह रहे हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण रात्रि भर जागते हुए प्रातःकाल हो गया। श्रीभरत ने चतुर मंत्रियों (सुमंत्र जी आदि) को बुलाया और कहा, सभी राजतिलक के उपकरण ले लीजिये। वन में ही गुरुदेव श्रीराम को राज्य दे देंगे। शीघ्र चलिए, सुनकर मंत्रियों ने प्रणाम किया तथा तुरन्त घोड़े रथ हाथियों को सजाया।

अरुंधती अरु अगिनि समाजू। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराजू।।
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना।।

भा०– भगवती अरुन्धती जी और अग्नि समाज अर्थात् अग्निहोत्र की सम्पूर्ण सामग्री के साथ सर्वप्रथम मुनियों के राजा वसिष्ठ जी रथ पर चढ़कर श्रीचित्रकूट के लिए चले। सभी तपस्याओं और तेज के निधान अर्थात् कोशस्वरूप अन्य ब्राह्मण समूह भी अनेक वाहनों पर चढ़कर वन के लिए चल पड़े।

नगर लोग सब सजि सजि याना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।।
शिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भइ सब रानी।।

भा०– श्रीअवध नगर के सब लोगों ने वाहनों को सजा–सजाकर श्रीचित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। जो बखानी नहीं जा सकती ऐसे अनेक सुन्दर पालकियों पर चढ़–चढ़कर सभी रानियाँ अर्थात् राजघराने की महिलायें वन के लिए चल पड़ीं।

विशेष– निषादराज गुह द्वारा श्रीसीता, राम एवं लक्ष्मण के श्रीचित्रकूट निवास का समाचार श्रीअवध में आ गया था। अतएव, सबको पूर्व से ही ज्ञात है कि, श्रीराम श्रीचित्रकूट में विराज रहे हैं।

दो०– सौंपि नगर शुचि सेवकन, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब, चले भरत दोउ भाइ।।१८७।।

भा०– पवित्र सेवकों को श्रीअवधनगर की सुरक्षा और व्यवस्था सौंपकर, आदरपूर्वक वन जाने वाले सभी नर–नारियों को प्रस्थान करा कर सबसे पीछे श्रीभरत, शत्रुघ्न जी दोनों भाई, श्रीराम तथा भगवती श्रीसीता का स्मरण करके श्रीचित्रकूट के लिए चले।

राम दरश बश सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी।।
बन सिय राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं।।
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे।।

भा०– सभी अवध के नर–नारी श्रीराम दर्शन की इच्छा के वश में होकर उसी प्रकार आतुरता से चले, जैसे प्यासे हाथी और हथिनी जल की ओर दृष्टि करके चल पड़ते हैं। मन में श्रीसीताराम जी को वन में विराजते हुए अर्थात् बिना जूते पहनकर पदयात्रा करते हुए समझकर छोटे भाई शत्रुघ्न जी के साथ श्रीभरत पैदल चले जा रहे हैं। उनका स्नेह देखकर, सभी लोग अनुराग से भर गये। घोड़े, हाथी तथा रथों को छोड़ दिया तथा वाहनों से उतरकर पैदल चल पड़े।

जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली।।
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवार दुखारी।।
तुम्हरे चलत चलिहिं सब लोगू। सकल शोक कृश नहिं मग जोगू।।

भा०– समीप जाकर, अपनी पालकी श्रीभरत के पास रोककर, श्रीराम की माता कौसल्या जी श्रीभरत से कोमल वाणी में बोलीं, बेटे भरत! रथ पर चढ़ो अर्थात् रथ पर चढ़कर चलो। माता बलिहारी जाती है, अन्यथा प्रिय

परिवार दुःखी हो जायेगा। तुम्हारे पैदल चलते सभी लोग पैदल ही चलेंगे। शोक के कारण सभी लोग दुर्बल हो चुके हैं, वे पैदल मार्ग के योग्य नहीं हैं।

सिर धरि बचन चरन सिर नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई।।
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू।।

भा०– माताश्री के वचन को शिरोधार्य करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर दोनों भाई श्रीभरत–शत्रुघ्न जी रथ पर चढ़कर चले। प्रथम दिन तमसा के तट पर वास करके, दूसरा निवास गोमती के तट पर किया।

दो०– पय अहार फल अशन एक, निशि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग।।१८८।।

भा०– कुछ अयोध्यावासी दूध का आहार करके और कुछ फलाहार करके तथा कुछ रात्रि–भोजन करके अर्थात् सम्पूर्ण दिन रात्रि में एक बार भोजन करके आभूषण और भोगों को छोड़कर श्रीराम के लिए नियम और व्रत कर रहे हैं।

सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब नियराने।।
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करइ सबिषादा।।

भा०– सई नदी (सिंदिका) के तट पर वास करके, प्रातःकाल ही लोग चल पड़े और सभी शृंगबेरपुर के निकट आ गये। गुहराज निषाद ने सम्पूर्ण समाचार सुना, वे दुःख के साथ हृदय में विचार करने लगे।

कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपट भाव मन माहीं।।
जौ पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई।।

भा०– किस कारण से भरत वन को जा रहे हैं? उनके मन में क्या कुछ कपट का भाव है? यदि भरत के हृदय में कुटिलता नहीं होती, तो उन्होंने अपने साथ सेना क्यों ली है?

जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी।।
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवन हानी।।

भा०– वे (भरत) जान रहे होंगे कि, छोटे भैया लक्ष्मण के साथ श्रीराम को मारकर मैं सुखी रहकर अकंटक अर्थात् विघ्न–बाधाओं से रहित राज्य करूँ। भरत ने हृदय में राजनीति का विचार नहीं किया। तब अर्थात् श्रीरामवनवास से तो उन्हें कलंक लगा ही और वनयात्रा करते समय उनके जीवन की हानि भी होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा।।
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिय फल फरहीं।।

भा०– सम्पूर्ण देवता और असुर योद्धा यदि एक साथ मिलकर युद्ध करें, तो भी युद्ध में वे श्रीराम को नहीं जीत सकते। भरत कौन–सा ऐसा आश्चर्य कर रहे हैं अर्थात् यह तो उनके लिए स्वाभाविक है, क्योंकि वे कैकेयी के बेटे हैं। कभी विष की लता में अमृत के फल नहीं फला करते अर्थात् विष की लता में तो विष के ही फल लगेंगे।

दो०– अस बिचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु।।१८९।।

भा०- ऐसा विचार करके, निषादराज गुह ने अपनी जाति के सभी लोगों से कहा, सब लोग सावधान हो जाओ। पूरी नौकाओं को तथा पूरे घाटों को अपने हाथ में ले लो। नौकायें गंगा जी में डूबो दो और घाटारोहु अर्थात् घाट पर आक्रमण कर दो तथा उन्हें रोक लो।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा।।
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ।।

भा०- सब लोग सुसज्जित हो जाओ, घाटों को रोक लो, मरने की सम्पूर्ण व्यवस्था कर लो (युद्ध में लड़ने और मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं सामने से भरत से लोहा लूँगा अर्थात् युद्ध करूँगा और जीते जी उन्हें गंगा जी पार होने नहीं दूँगा।

समर मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काज छनभंग शरीरा।।
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइय मीचू।।
स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दश चारी।।
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।।

भा०- एक ओर युद्ध में मरना, फिर गंगा जी का तट, पुनः श्रीराम का कार्य और यह शरीर भी क्षणभंगुर, उधर श्रीराम के छोटे भ्राता राजा भरत और इधर मैं श्रीराम का एक छोटा-सा सेवक, ऐसी मृत्यु बड़े सौभाग्य से प्राप्त होती है। अपने स्वामी श्रीराम के कार्य के लिए रणभूमि में भरत से युद्ध करूँगा और चौदहों भुवन को अपने यश से धवल, अर्थात् उज्जवल (शुभ्र) कर दूँगा। श्रीराम के ही निहोरे पर (कृतज्ञता में) अपने प्राण छोड़ूँगा। मेरे दोनों हाथ में लड्डू है, अर्थात् युद्ध में जीतूँगा तो, श्रीराम का कृतज्ञ सेवक रहूँगा और भरत के हाथों मरूँगा तो स्वर्ग-सुख को प्राप्त करूँगा तथा चौदहों भुवन में स्वच्छ कीर्ति का पात्र बनूँगा।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा।।
जाय जियत जग सो महिभारू। जननी जौबन बिटप कुठारू।।

भा०- साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं हो तथा श्रीरामभक्तों में जिसकी रेखा अर्थात् गणना न हो, वह पृथ्वी का भार तथा माँ की युवावस्थारूप वृक्ष की कुल्हाड़ी बनकर जगत में व्यर्थ ही जीता है अर्थात् सन्तों के समाज द्वारा अपमानित और भगवान् की भक्ति से दूर रहने वाला व्यक्ति पृथ्वी का भार है और अपने जन्म से माँ की युवावस्था को भी उसने निरर्थक समाप्त किया।

दो०- बिगत बिषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाई उछाह।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाह।।१९०।।

भा०- स्वयं दुःख छोड़कर अर्थात् उत्साहित होकर निषादों के राजा गुह ने सबके मन में उत्साह बढ़ाकर श्रीराम का स्मरण करके तुरन्त बाणों से भरा तरकस-धुनष और कवच मँगाया।

बेगिहिं भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।।
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइं करषा।।

भा०- भाइयों! शीघ्र ही मेरी राजाज्ञा सुनकर, युद्ध के सम्पूर्ण संयोगों को सजा लो कोई कायर न बने। सभी लोग हर्षपूर्वक कहने लगे, स्वामी! जैसी आज्ञा, बहुत अच्छा है। एक-दूसरे में युद्ध के प्रति आकर्षण अर्थात् उत्साह बढ़ा रहे हैं।

चले निषाद जोहारि जोहारी। शूर सकल रन रूचइ रारी।।
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथा बाँधि चढ़ावँहि धनुहीं।।

भा०- गुहराज को बार-बार प्रणाम करके, सभी निषाद सैनिक चले। सभी वीर हैं और सबको युद्ध भाता है। भगवान् के चरणकमल की पनही अर्थात् जूती का स्मरण करके, कटिप्रदेश में तरकस बाँधकर निषाद सैनिक धनुषों पर प्रत्यंचायें चढ़ा रहे हैं।

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं।।
एक कुशल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े।।

भा०- वे अँगरी अर्थात् अंगरक्षक कवच पहन कर सिर पर कूँड़ि अर्थात् कुण्ड के आकार का लोहे का टोप धारण करते हैं। फरसा, लाठी में लगे हुए भाले तथा बरछे को सीधा कर रहे हैं और एक तलवार के प्रहार को सहन करने में अत्यन्त कुशल सैनिक, आकाश में ऐसे उछलते हैं, मानो पृथ्वी को छोड़ चुके हों।

निज निज साज समाज बनाई। गुह राउतहिं जोहारे जाई।।
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने।।

भा०- अपने-अपने साज और युद्ध के उपकरणों को सजाकर, सभी सैनिकों ने जाकर अपने राजा गुह को ऊँचे स्वर में जय-जयकार करके प्रणाम किया। राजा गुह ने सभी योद्धाओं को युद्ध में सब प्रकार से योग्य जानकर नाम ले-लेकर सभी का सम्मान किया।

दो०- भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि।।१९१।।

भा०- गुह राजा ने कहा, भाइयों! धोखा मत लाना अर्थात् प्रमाद और असावधानी मत करना, आज मुझे बहुत-बड़ा कार्य है। गुह राजा के वचन सुनकर, सभी योद्धा युद्धोचित क्रोधपूर्वक बोले, हे वीर महाराज गुह! आप अधीर मत होइये।

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरे।।
जीवत पाउँ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं।।

भा०- हे स्वामी! श्रीराम के प्रताप और आपके बल से हम शत्रु सेना को बिना वीरों के और बिना घोड़े के कर देंगे अर्थात् सभी वीरों, अश्वारोहियों, गजारोहियों को मार डालेंगे। हम जीते- जी युद्ध में पीछे पग नहीं रखेंगे अर्थात् यावत् जीवन युद्ध से भागेंगे नहीं। हम पृथ्वी को रुंड-मुंडमय अर्थात् धड़ों और सिरों से युक्त कर देंगे।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।।
एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनियन खेत सुहाए।।

भा०- निषादों के राजा गुह ने अपने वीर सैनिकों की टोली भली देखकर अर्थात् अपनी सेना को सब प्रकार से सुसज्जित और सशक्त जानकर कहा कि, अब युद्ध का ढोल बजा दो अर्थात् युद्ध के बाजे से आक्रमण का संकेत कर दो। निषादराज के इतना कहते ही, उनके बायीं ओर किसी की छींक हुई। शकुनवेत्ताओं ने कहा, खेत सुहाये अर्थात् युद्ध का क्षेत्र सुन्दर है, हम युद्ध में विजयी अवश्य होंगे।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिय न होइहि रारी।।
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं।।

भा०– एक वृद्ध ने शकुन विचारकर कहा, श्रीभरत से मिलना चाहिये, युद्ध नहीं होगा अथवा, श्रीभरत से मिलना होगा, युद्ध नहीं। शकुन ऐसा कहता है कि, श्रीभरत, श्रीराम को मनाने श्रीचित्रकूट जा रहे हैं अर्थात् राज्य स्वीकार करने के लिए, श्रीराम को श्रीभरत सहमत करना चाह रहे हैं। उनके मन में विग्रह यानी विरोध नहीं है और वे प्रभु के साथ विग्रह अर्थात् युद्ध करने नहीं जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा।।
भरत स्वभाव शील बिनु बूझे। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे।।

भा०– वृद्ध की यह बात सुनकर राजा गुह ने कहा, वृद्ध बहुत ठीक कह रहे हैं। सहसा विचार के बिना कार्य करके विशिष्ट मोह से युक्त मूर्ख लोग पश्चात्ताप करते हैं। भरत जी का स्वभाव और चरित्र बिना समझे, बिना जानकारी के युद्ध करके बहुत–बड़ी हानि हो सकती है।

दो०– गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तस तब करिहउँ आइ।।१९२।।

भा०– हे सभी वीरों! इकट्ठे होकर इस घाट को पकड़कर ग्रहण कर लो अर्थात् अपने अधिकार में किये रहो। मैं जाकर श्रीभरत को मिलकर उनका मर्म अर्थात् गोपनीय भाव जान लूँ। शत्रु–मित्र और उदासीनों की भावनायें समझकर, जैसी परिस्थिति होगी आकर उसी प्रकार करूँगा।

लखब सनेह सुभाय सुहाए। बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराए।।

भा०– मैं श्रीभरत के स्नेह और सुहावने लगने वाले सुन्दर भाव को सूक्ष्मता से देखूँगा, क्योंकि वैर और प्रेम छिपाने से छिपते नहीं हैं, वे किसी न किसी चेष्टा से प्रकट हो ही जाते हैं।

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे।।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन आने।।

भा०– सैनिकों से इस प्रकार कहकर निषादराज भेंट की सामग्री इकट्ठी करने लगे। उन्होंने कन्दमूल तथा खग–मृग अर्थात् आकाश में उड़नेवाले तोते पक्षी के द्वारा खोजकर खाये जाने वाला आम्रफल मँगवाया। कहारों ने काँवरों में भर–भर कर पुराणों में पठित अर्थात् अनेक पौराणिक स्तुतियों द्वारा प्रशंसित और जिसमें मछली स्वस्थ होती है, ऐसी मध्यधारा का गंगाजल लाये।

विशेष– यहाँ खग–मृग और मीन–पीन ये दोनों शब्द गोस्वामी श्रीतुलसीदास के कूट गूढार्थक तथा मार्मिक हैं और यही बालकाण्ड के प्रारम्भ में प्रतिज्ञात अर्थ की अनूपता भी है। सामान्यतः इन पदों का यही अर्थ निकलता है कि, निषादराज ने कन्दमूल, पक्षी, हिरण और मछली मँगायी, क्योंकि तीनों ही प्रकार की सामग्रियों के माध्यम से वे भरत जी की मनोवृत्ति का परीक्षण करना चाहते थे। उनकी धारणा में यदि भरत जी सात्विक होंगे तो कन्द–मूल ग्रहण करेंगे, राजस होंगे तो पक्षी और हिरण से संतुष्ट होंगे और यदि तमोगुणी होंगे तो मछलियों से संतुष्ट होंगे, परन्तु यह धारणा सत्य से बहुत दूर है, क्योंकि निषादराज परम श्रीरामभक्त, सात्विक और श्रीवैष्णव हैं। अतएव, वे भेंट में इन वस्तुओं को नहीं ले जा सकते और पूर्वोक्त अर्थ अनूप अर्थ नहीं है, जो गोस्वामी जी को अभीष्ट है। अतः यहाँ गोस्वामी जी का अभीष्ट अनूप अर्थ ही प्रतिपाद्य ग्रन्थ का हृदय तथा प्रस्तोतव्य है। निषादराज ने कन्द–मूल के साथ वह फल मँगाया, जो कोश में खग–मृग का भी वाचक है। सात्वत कोश में आम्रफल के पर्यायवाचियों में खग–मृग की भी गणना है। यथा–

रसालं स्यात् खगमृगं सहकार च सौरभं।
चूतमाम्रफलं स्वीष्टं देवेष्टं कोकिलप्रियम्।।

आम्र के फल को खग–मृग इसलिए कहा गया है, क्योंकि इसे आकाशगामी तोता नाम का पक्षी मार्गण अर्थात् खोज करके खाता है। **खगेन शुकेन मृग्यते इति खगमृगं।** आम्रफल के साथ जल पीने में कोई स्वास्थ्य की बाधा नहीं होती और लंगड़ा आदि देशी आम खाने पर जल पीना बहुत अनुकूल रहता है। निषादराज ने कहारों से बहँगियों द्वारा गंगाजल भी मँगाया। अत: उसके लिए यहाँ ग्रन्थकार ने मीन, पीन, पाठीन, पुराने तीन विशेषण दिये। वह गंगाजल मँगाया, जो पुराने अर्थात् पुराणों में प्रसिद्ध है। पाठीन अर्थात् जो वेदों में भी अनेक मंत्रों द्वारा पठित है। "**पठितमेव पाठीनं, मीनपीन मीना: पीना यस्मिन् तत् मीनपीनं**" जिसमें मछली मोटे हो जाते हैं। इस प्रकार पुराणों में प्रसिद्ध वेदों में पठित् जहाँ मछली स्वस्थ होती है, ऐसे गंगा के मध्य से विशुद्ध गंगाजल बहँगियों में कहार ले आये। यदि यहाँ मछली अर्थ विवक्षित होता तो कहार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ होता, यहाँ मल्लाहों की बात की जाती। आज भी बड़े घरों में पानी भरने का कार्य कहार ही करते हैं। सात्वत कोश में जल के पर्यायवाची शब्दों में मीनपीन भी आया है। जैसे– "कीलालं सलिलं पाथो मीनपीनं च जीवनं। कुशं वनं जलं नीरं पानीय तोयमबृणं।।"

मिलन साज सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन शुभ पाए।।
देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीशहिं दंड प्रनामू।।

भा०– इस प्रकार मिलन के साज सजाकर गुहराज श्रीभरत से मिलने के लिए गये। उन्होंने मंगलों के आश्रय, कल्याणकारी शकुनों को ही प्राप्त किया। वसिष्ठ जी को देखकर अपना नाम कहकर, गुह जी ने मुनिराज को दूर से ही प्रणाम किया।

जानि रामप्रिय दीन्ह अशीशा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीशा।।
राम सखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा।।
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहार माथ महिं लाई।।

भा०– गुह जी को श्रीराम का प्रिय जानकर वसिष्ठ जी ने आशीर्वाद दिया और मुनियों के ईश्वर गुरुदेव ने श्रीभरत को बुलाकर, गुहराज का परिचय दिया। भरत जी ने श्रीराम के सखा गुह जी का वसिष्ठ जी से परिचय सुनकर और उन्हें अपने पास आते देखकर, रथ छोड़ दिया और उमड़ते हुए अनुराग के साथ रथ से उतरकर गुह जी से मिलने चल पड़े। निषादराज ने अपने गाँव शृंगबेरपुर का, निषाद जाति का, और गुह नाम का श्रवण करा कर पृथ्वी पर मस्तक टेक कर जोहार अर्थात् प्रणाम किया।

दो०– करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ।।१९३।।

भा०– उन्हें अर्थात् निषादराज को दण्डवत् करते हुए देखकर, श्रीभरत ने हृदय से लगा लिया, मानो उनकी लक्ष्मण जी से भेंट हो गई हो। प्रेम श्रीभरत के हृदय में नहीं समा रहा था।

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।।
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहिं बरषहिं फूला।।

भा०– श्रीभरत अत्यन्त प्रीति अर्थात् प्रसन्नता के साथ निषाद को भेंट रहे हैं अर्थात् मिल रहे हैं। लोग श्रीभरत के प्रेम की रीति की प्रशंसा कर रहे हैं। सम्पूर्ण मंगलों की मूल आश्रयरूप धन्य–धन्य ध्वनि हो रही है। निषादराज की प्रशंसा करके देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं।

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।

भा०– जो लोक और वेद दोनों ही प्रकार से सामान्य लोगों की दृष्टि में निकृष्टकोटि का है। साधारण लोग जिसकी छाया का स्पर्श करके भी अपने पर जल का छींटा लेते हैं, उसी निषाद को अपनी भुजाओं में भरकर श्रीराम के छोटे भ्राता श्रीभरत रोमांच से परिपूर्ण शरीर के साथ प्रेम से मिल रहे हैं अर्थात् श्रीरामप्रेम–महिमा से श्रीभरत वैदिक मंत्रों के गंभीर अर्थ को जानते हैं, जिनमें किसी के भी प्रति अपमान या तिरस्कार का भाव नहीं है। इसलिए, मीमांसा के ''निषाद स्थपति याजकाधिकरण'' में निषाद को यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहि न पाप पुंज समुहाहीं।।
यहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा।।

भा०– राम–राम कहकर जो अंगड़ाई लेते हैं, उनके भी समीप पापों के समूह नहीं आते। इस निषादराज को तो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीराम ने हृदय से लगा लिया और इसे परिवार के समेत जगत् में पवित्र और जगत को पवित्र करने वाला बना दिया।

करमनाश जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु शीष नहिं धरई।।
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।।

भा०– भला बताइये, यदि कर्मनाशा नदी का जल गंगा जी में मिल जाता है तो क्या कोई उसे सिर पर नहीं धारण करता? अर्थात् जैसे गंगा जी से मिलकर कर्मनाशा का जल भी पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराम से मिलकर पतित जीव भी पावन हो जाता है। जगत जानता है कि, राम नाम का उल्टा मरा–मरा जप कर महर्षि वाल्मीकि जी, ब्रह्मा जी के समान काव्यजगत के प्रथमकर्त्ता बन गये अर्थात् जैसे ब्रह्मा जी ने प्राणियों के भोगायतन शरीरों की सृष्टि की, उसी प्रकार श्रीरामनाम का उल्टा मरा–मरा जपकर, महर्षि वाल्मीकि जी ने सर्वप्रथम काव्यजगत् की सृष्टि की।

विशेष– मरा शब्द यद्यपि राम नाम का उल्टा है, फिर भी वह श्रीराम का नाम ही है। अथवा, उलटा नाम जपत जग जाना। अर्थात् जगत की जानकारी में यह उल्टा है, परन्तु परमार्थतः यह भी भगवान् श्रीराम जी का नाम है, नहीं तो सप्तर्षि वाल्मीकि जी को 'मरा–मरा' का ही उपदेश क्यों करते ? मरा मरा मरा चैव मरेति जप सर्वदा मरा शब्द निरर्थक नहीं है और न ही मरे हुए का वाचक है, ''म'' शब्द जीव के कल्याण कारक शिव जी तथा चन्द्रमा का वाचक है। यथा–मम राति इति मरा। जो साधक को कल्याण एवं कल्याण स्वरूप शिव जी तथा रामचन्द्ररूप चन्द्रमा को भी दे डालता है, उसे मरा कहते हैं।

दो०– स्वपच शबर खस जमन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात।।१९४।।

भा०– स्वपच (कुत्ते का माँस पकानेवाला चाण्डाल), शबर, भील, खस, असभ्य जाति, जमन, जड़ (जड़प्रकृति के यमन) अर्थात् इस्लाम आदि, पामर (निम्न संस्कारवाले) कोल और किरात भी श्रीरामनाम का बैखरी वाणी में जप करने मात्र से चौदहों भुवन में विख्यात और परमपवित्र हो जाते हैं।

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई।।
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं।।

भा०– यह आश्चर्य नहीं है, यह परम्परा युग–युग से चलती आ रही है। रघुवीर, अर्थात् जिनके कारण सामान्य जीव भी वीर हो जाते हैं, ऐसे भगवान् श्रीराम ने किस को बड़प्पन नहीं दिया। इस प्रकार, देवता श्रीराम नाम की महिमा कह रहे हैं और सुन–सुन कर अवध के लोग सुख प्राप्त कर रहे हैं।

विशेष– *रघव: अर्थात् जीवा: वीरा: भवन्ति येन स रघुवीर:* अर्थात् पाप, पुण्य का भोग करने वाले सामान्य जीव भी जिनकी कृपा से वीर बन जाते हैं, उन्हीं परब्रह्म परमात्मा को रघुवीर कहते हैं।

रामसखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुशल सुमंगल छेमा।।
देखि भरत कर शील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।।

भा०– श्रीराम जी के सखा गुह जी को प्रेम के सहित मिलकर श्रीभरत ने उनके कुशल, सुन्दर मंगल और कल्याण के सम्बन्ध में पूछा। श्रीभरत जी के स्वभाव और स्नेह को देखकर, उस समय निषादराज गुह विदेह हो गये, अर्थात् उन्हें शरीर की सुधि भूल गई।

सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा।।
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी।।

भा०– निषादराज के मन में संकोच, प्रेम और प्रसन्नता बढ़ गई। वे टकटकी लगाकर श्रीभरत को निहारते हुए खड़े रह गये। फिर धैर्य धारण करके श्रीभरत के श्रीचरणों का वन्दन करके हाथ जोड़कर निषादराज प्रेमपूर्वक विनय करने लगे।

कुशल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुशल निज लेखी।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे।।

भा०– हे प्रभु! सम्पूर्ण कुशलों के आश्रयरूप आपके श्रीचरणकमल को देखकर, मैंने भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों काल में अपनी कुशलता समझ ली है। हे प्रभु! आपके परमअनुग्रह से करोड़ों कुलों के सहित मेरा मंगल ही मंगल है।

दो०– समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित सोइ।।१९५।।

भा०– मेरी कार्यशैली और कुल समझकर तथा मन में प्रभु श्रीराम की महिमा का विचार करके, जो व्यक्ति रघुवीर श्रीराम के श्रीचरण का भजन नहीं करता, संसार में विधाता के द्वारा वही वंचित हुआ अर्थात् ठगा गया।

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती।।
राम कीन्ह आपन जबही ते। भयउँ भुवन भूषन तबही ते।।

भा०– मैं कपटी, कायर, दुष्टबुद्धि वाला तथा हीन जाति वाला और सब प्रकार से लोक और वेद से बहिष्कृत हूँ, पर जब से श्रीराम ने मुझे अपना बना लिया तभी से मैं संसार का आभूषण बन गया।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई।।
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी।।

भा०- निषादराज की प्रीति देखकर और सुहावनी विनती सुनकर, फिर श्रीभरत के छोटे भाई श्रीशत्रुघ्न निषादराज से मिले। निषादों के स्वामी गुह ने अपना नाम बताकर, राजघराने की सभी महिलाओं को आदरपूर्वक प्रणाम किया।

जानि लखन सम देहिं अशीषा। जियहु सुखी शत लाख बरीषा।।
निरखि निषाद नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखन निहारी।।

भा०- निषादराज को श्रीलक्ष्मण के समान जानकर, सभी राजमातायें आशीर्वाद दे रहीं हैं, तुम सुखपूर्वक सौ लाख वर्ष जीवित रहो। निषादराज को देखकर श्रीअवधनगर के नर–नारी इतने सुखी हुए, मानो उन्होंने श्रीलक्ष्मण को निहार लिया हो।

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू।।
सुनि निषाद निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई।।

भा०- सभी नर–नारी कहने लगे, इस निषादराज ने तो अपने जीवन का लाभ ले लिया, क्योंकि श्रीरामभद्र ने इसे अपने बाँहों में भरकर भेंटा। निषादपति गुह जी अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर, प्रसन्न मन से सभी को लिवा ले चले।

दो०- सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएनि जाइ।।१९६।।

भा०- सभी सेवकों को निषादराज ने संकेत दिया, वे अपने स्वामी का संकेत पाकर चले। उन्होंने घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों के तट पर, बागों और वनों मे सेना के लिए अस्थायी निवास बनाये।

शृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बश अंग शिथिल तब।।
सोहत दिए निषादहिं लागू। जनु तनु धरें बिनय अनुरागू।।

भा०- जब श्रीभरत ने शृंगबेरपुर देखा, तब स्नेह के वश होने से उनके सभी अंग शिथिल हो गये। निषादराज को अपना कन्धा दिये हुए, सहारा लेकर श्रीभरत इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया।

एहि बिधि भरत सैन सब संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा।।
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मन मगन मिले जनु रामू।।

भा०- इस प्रकार श्रीभरत ने संग में आई हुई सम्पूर्ण सेना के साथ जगतपावनी गंगा जी के दर्शन किये। उन्होंने रामघाट को प्रणाम किया, उनका मन प्रेम में ऐसा मग्न हुआ, मानो श्रीभरत को श्रीराम ही मिल गये हों।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।।
करि मज्जन माँगहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी।।

भा०- नगर के नर–नारी गंगा जी को प्रणाम करते हैं और ब्रह्मस्वरूप गंगा जी का जल देखकर, बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। गंगा जी में स्नान करके हाथ जोड़कर उनसे श्रीरामचन्द्र के श्रीचरणों में अत्यन्त प्रीति (प्रेम) माँगते हैं।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू।।
जोरि पानि बर माँगउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।।

भा०- श्रीभरत जी ने कहा, हे गंगाजी ! आपकी रेणुका सबको सुख देनेवाली और सेवकों के लिए तो कामधेनु है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि, श्रीसीताराम जी के चरणों में मुझे स्वाभाविक प्रेम मिल जाये।

दो०- एहि बिधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुशासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लिवाइ।।१९७।।

भा०- इस प्रकार गंगा जी में स्नान करके, गुरुदेव की आज्ञा पाकर, सभी माताओं को स्नान की हुयी जानकर, श्रीभरत सभी को निवास पर लिवा चले।

जहँ तहँ लोगन डेरा कीन्हा। भरत सोध सबही कर लीन्हा।।
गुरु सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहँ गे दोउ भाई।।

भा०- लोगों ने जहाँ–तहाँ निवास किया था, श्रीभरत ने सबका समाचार लिया। गुरुदेव की सेवा करके, उनसे आज्ञा पाकर, दोनों भाई श्रीभरत–शत्रुघ्नजी, श्रीराम की माताश्री कौसल्या जी के पास गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरत सनमानी।।
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहिं लीन्ह बोलाई।।

भा०- माताओं के चरण दबाकर, कोमल वाणी में कह–कह कर श्रीभरत ने सभी माताओं का सम्मान किया। शत्रुघ्न जी को माता की सेवा सौंप कर श्रीभरत ने निषादराज को बुला लिया।

चले सखा करसों कर जोरे। शिथिल शरीर सनेह न थोरे।।
पूँछत सखहिं सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ।।

भा०- निषादराज के हाथ से हाथ जोड़कर भरत जी चले। उनका शरीर शिथिल था और स्नेह थोड़ा नहीं अर्थात् बहुत था। भरत जी मित्र निषाद से पूछने लगे, सखे ! वह स्थान दिखाइये, तनिक नेत्रों और मन की तपन को बुझा दीजिये।

जहँ सिय राम लखन निशि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए।।
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू।।

भा०- जहाँ रात्रि में श्रीसीता, राम एवं लक्ष्मण जी शयन किये थे। ऐसा कहते–कहते श्रीभरत के नेत्रों के कोने में अश्रुजल भर आये। श्रीभरत का वचन सुनकर, निषादराज के मन में बहुत दुःख हुआ और श्रीभरत को वे तुरन्त वहाँ ले गये।

दो०- जहँ शिंशुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्राम।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनाम।।१९८।।

भा०- जहाँ शिंशुपा अर्थात् अशोक के पवित्र वृक्ष के नीचे श्रीराम ने विश्राम किया था। श्रीभरत ने अत्यन्त प्रेम के साथ आदरपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया।

कुश साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई।।
चरन रेख रज आँखिन लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।।

भा०- सुन्दर कुश की शैय्या देखकर, जाकर श्रीभरत जी ने प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया, अथवा प्रदक्षिणा की पद्धति से जाकर प्रणाम किया। प्रभु के चरणों की रेखा की धूलि को आँखों में लगाया। श्रीभरत की प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे शीष सीय सम लेखे।।
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी।।

भा०- कुश की शैय्या में चिपके हुए श्रीसीता की साड़ी से निकले हुए दो–चार अथवा, छह अथवा, दो की चतुर्गुणी आठ अथवा, दो–चार चौबीस सुवर्ण बिन्दु श्रीभरत जी ने देखे। उन्हें सिर पर रख लिया और उन स्वर्ण के बिन्दुओं को सीता जी के समान जान उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, हृदय में अत्यन्त ग्लानि होने लगी। अपने मित्र गुहराज निषाद से सुन्दर वाणी में श्रीभरत यह वचन कहने लगे–

श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि मलीना।।
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही।।
ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू।।
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाई।।

भा०- मित्र! देखो, ये स्वर्ण के बिन्दु श्रीसीता के विरह में शोभा से हत और प्रकाश से हीन हो गये हैं, जैसे अयोध्या के नर–नारी श्रीसीताराम जी के वियोग में मलीन हैं अर्थात् यही स्वर्णबिन्दु जब भगवती श्रीसीता की साड़ी में थे, तब कितने प्रकाशित होते थे, आज श्रीसीता से अलग होकर, वे कान्ति और शोभा से हीन हो रहे हैं। जब इन्हें श्रीसीता के वियोग की अनुभूति हो रही है तो, अवध के नर–नारियों का क्या कहना है? जिन श्रीसीता के पिताश्री जनक जी की किससे उपमा दूँ, जिनको संसार में ही भोग और योग दोनों हस्तगत् हुए? जिनके श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्रीदशरथ थे, जिनकी प्रशंसा अमरावती के स्वामी इन्द्र भी करते हैं। जिनके प्राणपति सम्पूर्ण जीवों की इन्द्रियों के स्वामी भगवान् श्रीराम हैं। जो भी बड़ा होता है, वह श्रीराम की बड़ाई से ही होता है।

दो०- पति देवता सुतीय मनि, सीय साथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबि ते कठिन बिशेषि।।१९९।।

भा०- पतिव्रता श्रेष्ठनारियों की मुकुटमणि भगवती श्रीसीता की कुश की शैय्या को देखकर, मेरा हृदय अत्यन्त दुःख से आहत होकर नहीं फटा। हे शिवजी! यह वज्र से भी विशेष कठिन है।

लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपियारे।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिश एहिं छाती।।

भा०- लक्ष्मण, सुन्दर, मुझसे भी छोटे और लालन, पालन के योग्य हैं, ऐसा भाई न हुआ, न है और न ही होने वाला है। लक्ष्मण, पुरजनों को प्रिय, पिता–माता के दुलारे तथा श्रीसीताराम जी को प्राणों के समान प्यारे हैं, उनकी मूर्ति कोमल तथा स्वभाव बहुत सुकुमार है, उनके शरीर में कभी गर्मवायु भी नहीं लगा, वही लक्ष्मण, वन में सब प्रकार से विपत्ति सह रहे हैं अर्थात् मैं यहाँ उनकी कुश की शैय्या भी नहीं देख रहा हूँ। फलतः मेरे लक्ष्मण रात्रि में विश्राम भी नहीं करते होंगे, मेरी इस छाती ने तो करोड़ों वज्र का भी निरादर कर दिया।

राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप शील सुख सब गुन सागर।।
पुरजन परि जन गुरु पितु माता। राम स्वभाव सबहिं सुखदाता।।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं।।
शारद कोटि कोटि शत शेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा।।

दो०- सुखस्वरूप रघुबंशमनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुश डासि महि, बिधि गति अति बलवान।।२००।।

भा०- रूप, चरित्र तथा स्वभाव, सुख, एवं अन्य शुभगुणों के समुद्र श्रीराम ने जन्म लेकर जगत को उजागर अर्थात् प्रसिद्ध कर दिया। तात्पर्य यह है कि, श्रीरामजन्म के कारण आज मर्त्यलोक, उसमें भी भारतवर्ष, उसमें भी कोसल जनपद, उसमें भी अवधनगर सबसे प्रसिद्ध हुआ। अवधपुर निवासी, परिवार, गुरुजन, पिता तथा मातायें सभी को श्रीराम का स्वभाव सुख देने वाला है। शत्रु भी श्रीराम की प्रशंसा करते हैं। श्रीराम अपने भाषण, मिलन और विनम्रता से सभी के मन को चुरा लेते हैं। करोड़ों सरस्वती और अरबों शेष भी प्रभु श्रीराम के श्रेष्ठ गुणगणों की गणना नहीं कर सकते। जो रघुकुल के मणि भगवान् श्रीराम सुखस्वरूप तथा मंगलों और प्रसन्नताओं के कोश हैं, वे भी कुश की साथरी बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं, विधाता की गति अत्यन्त बलवती होती है।

राम सुना दुख कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवत राऊ।।
पलक नयन फनि मनि जेहिं भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती।।

भा०- श्रीराम ने कभी भी कान से दु:ख सुना भी नहीं था। महाराज चक्रवर्ती जी संजीवन वृक्ष अर्थात् जीवन मूलिका के वृक्ष की भाँति उन्हें बचा–बचाकर रखते थे। जिस प्रकार नेत्रों की रक्षा पलकें करती हैं और सर्प जिस प्रकार मणियों को रखा करते हैं, उसी प्रकार दिन–रात सभी मातायें उन्हें सावधानी से बचा कर लालती–पालती थीं।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी।।
धिग कैकयी अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला।।

भा०- वही श्रीराम इस समय कन्दमूल, फल और फूल का आहार करके वन में पैदल भ्रमण कर रहे हैं। सभी अमंगलों की राशि कैकेयी को धिक्कार है, जो प्राणों के भी प्रियतम परमात्मा श्रीराम के प्रतिकूल हो गई।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सब उतपात भयउ जेहि लागी।।
कुल कलंक करि सृजेउ बिधाता। साइँद्रोह मोहि कीन्ह कुमाता।।

भा०- सम्पूर्ण पापों का समुद्र, भाग्यहीन मैं भरत भी धिक्कार का पात्र हूँ.. मैं धिक्कार का पात्र हूँ, जिसके लिए सभी उत्पात हुए। विधाता ने मुझे रघुकुल के कलंक के रूप में रचा और कुमाता कैकेयी ने मुझे स्वामी श्रीराम के द्रोह के रूप में ही जन्म दिया।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिय कत बादि बिषादू।।
राम तुमहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं। यह निरजोस दोष बिधि बामहिं।।

भा०- भरत जी का वचन सुनकर निषादराज उन्हें प्रेमपूर्वक समझाने लगे, हे नाथ! आप निरर्थक शोक क्यों कर रहे हैं? श्रीराम आपको प्रिय हैं और आप श्रीराम को प्रिय हैं। पूरे प्रकरण का यही निष्कर्ष, यही निचोड़ है, यही निर्णय है और समस्त श्रीरामभक्तों का यही निश्चय है। वैदिक वाङ्मय का यही सिद्धान्त है तथा आप दोनों का परस्पर प्रेम निरजोस अर्थात् अतुलनीय है। किसी प्राकृत या अप्राकृत तराजू पर नहीं तौला जा सकता। दोष तो प्रतिकूल विधाता और विधाता की वामा, अर्थात् ब्रह्मपत्नी सरस्वती जी का है।

छं०- बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी।।

तुलसी न तुम सों राम प्रियतम कहत हौं सौंहें किए।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरज हिए।।

भा०– हे भरत! प्रतिकूल विधाता और विधाता की पत्नी सरस्वती जी की करनी अर्थात् कृति बहुत कठिन है। जिसने माँ कैकेयी को बावली बना दिया। उस रात अर्थात् मेरे शृंगबेरपुर में प्रभु के विश्राम की रात में श्रीराम प्रभु बारम्बार आदरपूर्वक आपकी ही सराहना करते रहे। तुलसीदास जी कहते हैं कि, निषादराज ने कहा, मैं शपथ करके कहता हूँ कि, आपके समान श्रीराम का कोई भी प्रियतम नहीं है। परिणाम को मंगल जानकर, आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये।

सो०– अंतरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय बिश्राम, यह बिचार दृढ़ आनि मन।।२०१।।

भा०– संकोच, शुद्ध प्रेम और कृपा के विशाल भवन श्रीराम अन्तर्यामी हैं अर्थात् सबके हृदय में रहकर सबके हृदय की सब परिस्थिति जानते हैं। हृदय में यह दृढ़ विचार ले आकर चलिए और विश्राम कीजिये।

* मासपारयण, सोलहवाँ विश्राम *

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा।।
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी।।

भा०– मित्र निषादराज के वचन सुनकर, हृदय में धैर्य धारण करके, रघुवीर श्रीराम का स्मरण करते हुए, श्रीभरत अपने निवासस्थान को चले गये। यह समाचार पाकर निषादराज के नगर के नर–नारी बहुत बड़ी व्याकुलता के साथ श्रीभरत के दर्शन करने के लिए चल पड़े। अथवा, श्रीभरत के आगमन का समाचार पाकर नगर के नर–नारी श्रीभरत को देखने के लिए चल पड़े। उनके मन में श्रीभरत के दर्शनों की बहुत–बड़ी आर्ति अर्थात् विकलता थी।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकयिहिं खोरि निकामा।।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहिं दूषन देहीं।।
एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू।।
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं।।

भा०– शृंगबेरपुर के नर–नारी, श्रीभरत की परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। अपने निर्मल नेत्रों में बार–बार आँसू भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाता को दोष देते हैं। कुछ लोग श्रीभरत के स्नेह की प्रशंसा करते हैं और कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि, महाराज दशरथ जी ने प्रेम का निर्वाह कर लिया। वे सब निषादराज की सराहना करके अपनी निन्दा करते हैं। उनके विमोह अर्थात् मोह से रहित निर्दोष विषाद अर्थात् दु:ख को कौन कह सकता है?

एहि बिधि राति लोग सब जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा।।
गुरुहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई।।
दंड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा।।

भा०– इस प्रकार सभी लोग रात भर जागते रहे। प्रात:काल होने पर गंगा जी के तट पर पार उतरने की प्रक्रिया में गुदारा अर्थात् कोलाहल होने लगा। गुरुदेव को सुहावनी और सुदृढ़ नाव पर चढ़ाकर श्रीभरत ने नवीन नौका पर

सभी माताओं को चढ़ाया। चार दण्डों में श्रीभरत की सम्पूर्ण सेना पार हो गई। श्रीभरत ने पार उतरकर तब सभी को सम्भाल लिया।

विशेष– अवधी में बोलने के अर्थ में गुदरन की क्रिया का प्रयोग होता है। यथा– *मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई।* मानस २.२४०.५। उसी का यहाँ प्रयोग है। प्रातःकाल नदी के तट पर प्रायशः पार जाने वालों की भीड़ का कोलाहल करना स्वाभाविक है।

दो०– प्रातक्रिया करि मातु पद, बंदि गुरुहिं सिर नाइ।
आगे किए निषाद गन, दीन्हेउ कटक चलाइ।।२०२।।

भा०– प्रातःकाल की क्रिया अर्थात् सन्ध्यावन्दन आदि करके, माताओं के चरणों की वन्दना करके, गुरुदेव को प्रणाम करके भरत जी ने निषादगणों को आगे किया और उन्हीं की देख–रेख में सेना को चला दिया अर्थात् चलने का आदेश दिया।

कियउ निषादनाथ अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई।।
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन सहित गमन गुरु कीन्हा।।

भा०– निषादनाथ गुह ने अगुआई की अर्थात् वे आगे–आगे चले और नेतृत्व सम्भाला। सभी माताओं की पालकियाँ चलायी गई। उनके साथ बुलाकर, छोटे भाई शत्रुघ्न जी को दे दिया। ब्राह्मणों के साथ गुरुदेव ने वन के लिए प्रस्थान किया।

आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू।।
गवने भरत पयादेहिं पाएँ। कोतल संग जाहिं डोरिआएँ।।

भा०– आप अर्थात् श्रीभरत ने गंगा जी को प्रणाम किया और लक्ष्मण जी के सहित श्रीसीताराम जी का स्मरण किया। श्रीभरत बिना पनहीं के ही पैदल चल पड़े। पालतू घोड़े रस्सियों में बँधे हुए श्रीभरत के साथ चले जा रहे हैं अर्थात् श्रीभरत के साथ सेवक घोड़ों को रस्सियों से बाँधकर लिए ले जा रहे हैं।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइय नाथ अश्व असवारा।।
राम पयादेहिं पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए।।

भा०– सुन्दर सेवक बार–बार कह रहे हैं, हे नाथ! घोड़े पर असवार हो जाइये। श्रीभरत कहने लगे, श्रीराम तो बिना जूते, पनहीं के पदयात्रा करके वन गये और हमारे लिए रथ, हाथी और घोड़े बनाये गये।

सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरम कठोरा।।
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी।।

भा०– मैं सिर के बल वन जाऊँ मेरे लिए यही उचित होगा। सेवक धर्म सबसे कठोर होता है। श्रीभरत जी की यह गति देखकर और उनकी कोमल वाणी सुनकर सभी सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे हैं।

दो०– भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेश प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग।।२०३।।

भा०– राम–सीता, राम–सीता कहते हुए बार–बार अनुराग से उमगते हुए श्रीभरत ने दिन के तीसरे प्रहर प्रयाग में प्रवेश किया।

झलका झलकत पायँन कैसे। पंकज कोश ओस कन जैसे।।
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू।।

भा०– श्रीभरत के चरणों में झलका अर्थात् फफोले किस प्रकार झलकते अर्थात् दिख रहे हैं, जैसे कमल के कोश पर प्रातःकाल ओस के कण दिखते हैं। आज श्रीभरत शृंगबेरपुर से प्रयाग पैदल आये हैं, यह सुनकर सम्पूर्ण समाज दुःखी हो गया।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहिं आए।।
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने।।

भा०– श्रीभरत जी ने जब सबका समाचार पा लिया कि, सभी लोग स्नान कर चुके हैं, तब प्रणाम किया और सभी लोग त्रिवेणी संगम पर आ गये। सभी लोगों ने विधिपूर्वक श्वेत और नीले अर्थात् गंगा–यमुना जी के जल के संगम में स्नान किया, दान दिया और तीर्थ पुरोहित ब्राह्मणों का सम्मान किया।

देखत श्यामल धवल हिलोरे। पुलकि शरीर भरत कर जोरे।।
सकल कामप्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ।।
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी।।
दो०– अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन।।२०४।।

भा०– नीले और श्वेत (यमुना जी और गंगा जी) के हिलोरें अर्थात् जलप्रवाहों को परस्पर मिलते हुए देख रोमांचित शरीर श्रीभरत ने हाथ जोड़ लिए और बोले, हे तीर्थराज प्रयाग! आप सभी कामनायें देनेवाले हैं, आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध तथा वेदों द्वारा ज्ञात और जगत में प्रकट है। मैं अपने कुलधर्म, वर्णधर्म, वैष्णव सम्प्रदाय, धर्म और जातिधर्म छोड़कर आप से भीख माँगता हूँ, क्योंकि अपने मनोवांछित वस्तु को पाने के लिए आर्त्त अर्थात् व्याकुल व्यक्ति कौन–सा कुकर्म नहीं करता? ऐसा हृदय में जानकर संसार के चतुर और श्रेष्ठ दानीजन याचकों की वाणी अर्थात् याचना को सफल करते हैं। याचक जो माँगता है, वह दे डालते हैं, इसलिए आपको मेरी भिक्षा मुझे देनी पड़ेगी। हे तीर्थराज! यद्यपि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ आप के भाण्डागार में भरे हैं, फिर भी मेरी अर्थ, धर्म और काम में रुचि नहीं है। तात्पर्य यह है कि, त्रिवर्ग को तो मैं कभी नहीं चाहता और चारों गतियाँ (सलोक्य, सामीप्य, सायुज्य और सारूप्य) को भी नहीं चाहता और मतान्तर से सिद्ध एकत्व ऐक्यलक्षण निर्वाण अर्थात् मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं प्रत्येक जन्मों में श्रीसीताराम जी के चरणों में अनुरक्ति (प्रेमलक्षणा) भक्ति चाहता हूँ। मुझे यही वरदान दीजिये दूसरा नहीं।

विशेष– ऐसे प्रत्येक स्थान पर जहाँ गोस्वामी जी ने केवल राम शब्द का प्रयोग किया हो, वहाँ उपलक्षण की विधा से श्रीसीता का भी तात्पर्य समझ लेना चाहिये। अथवा *राकारात् राघवो गेयः मकारात् मैथिली स्मृता* यानी राम के रकार से श्रीराघव और मकार से मैथिलराजनन्दिनी श्रीसीता समझ लेना चाहिए।

जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहहुँ गुरु साहिब द्रोही।।
सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।।

भा०– भले ही श्रीराम मुझे कुटिल समझें, भले ही लोग मुझे गुरुदेव और स्वामी का द्रोही कहें, इन प्रतिक्रियाओं से मेरे मन में कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिये। हे तीर्थराज प्रयाग! आपके अनुग्रह से मेरे मन में श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों की भक्ति दिन–दिन अनुकूलता से बढ़ती रहे।

जलद जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जल पबि पाहन डारउ।।
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई।।
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहे।।

भा०– भले मेघ जीवनभर चातक की स्मृति भुलाये रहे और चातक के माँगने पर भले ही बादल जल के रूप में वज्र और पाहन अर्थात् ओला गिराये अर्थात् भले ही बादल चातक की उपेक्षा करे और उसे हानि पहुँचाये, फिर भी चातक को अपने प्रेम में अडिग रहना चाहिये, क्योंकि चातक की रटन (पी–कहाँऽऽ– पी–कहाँऽऽ) के घटने से उसकी प्रेमपरायणता ही घट जायेगी अर्थात् यदि बादल के दण्ड देने पर चातक ने रुठकर मेघ से माँगना छोड़ दिया, तब तो स्वयं चातक ही समाप्त हो जायेगा। इस उपेक्षा पर भी चातक के प्रेम के बढ़ते रहने पर ही उसकी सब प्रकार से भलाई अर्थात् कल्याण है।

विशेष– यही रागानुगा भक्ति है, जिसे गोस्वामी जी ने मानस जी के बीज रूप में और दोहावली में बत्तीस दोहों के माध्यम से विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया। दोहावली के उस प्रकरण को सुधिजन *चातक बत्तिसी* के नाम से जानते हैं। द्रष्टव्य् है– दोहावली, २७७ से ३०९। जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्ण में भी बान चढ़ती है अर्थात् उसमें उसका वास्तविक स्वरूप आरूढ़ हो जाता है। अग्नि में तपाने से स्वर्ण में उसका तेज उपस्थित होता है और कीर्ति बढ़ती है, उसी प्रकार प्रियतम के चरणों में नियम का निर्वाह करने से प्रेम में अनादिकालीन वासना–वश खोया हुआ तथा भूला हुआ सहजस्वरूप (सेवक–सेव्यभाव लक्षण) आ जाता है।

भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी।।
तात भरत तुम सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं।।

भा०– श्रीभरत के वचन सुनकर त्रिवेणी के मध्य से सुन्दर मंगल देनेवाली कोमल वाणी हुई। संगम, प्रयाग का सिंहासन है, "**संगम सिंहासन सुठि सोहा।**" (मानस, २.१०५.७) अतः उसी त्रिवेणी के मध्य संगम–सिंहासन पर आसीन होकर तीर्थराज प्रयाग ने गंगा, यमुना, सरस्वती जी को माध्यम बनाकर, कोमल वाणी में श्रीभरत के वचनों का उत्तर दिया। गंगा जी की धारा से प्रयाग ने कहा, हे तात भावते भरत! आप सभी प्रकार से साधु हैं। यमुना जी की धारा से प्रयाग ने कहा, आपके हृदय में श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों के प्रति अगाध और अनुपम राग है, अर्थात् आपके श्रीसीतारामविषयक प्रेम का कोई थाह नहीं है। सरस्वती जी की गुप्तधारा से प्रयाग ने कहा, भद्र! आप व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हैं, आपके समान श्रीसीताराम जी को कोई प्रिय नहीं है।

दो०– तनु पुलकेउ हिय हरष सुनि, बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल।।२०५।।

भा०– त्रिवेणी के माध्यम से तीर्थराज प्रयाग द्वारा कहे हुए अनुकूल वचन सुनकर श्रीभरत के शरीर में रोमांच हो गया और हृदय में प्रसन्नता हुई। "श्रीभरत धन्य हैं... श्रीभरत धन्य हैं" कहकर देवता प्रसन्न होते हुए पुष्पों की वर्षा करने लगे।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी।।
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा। भरत सनेह शील शुचि साँचा।।

भा०- तीर्थराज प्रयाग में निवास करने वाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और सन्यासी ये चारों आश्रमों के लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये। दस–पाँच के समूह में मिलकर परस्पर अर्थात् एक–दूसरे से कहने लगे कि, श्रीभरत का श्रीरामविषयक स्नेह और उनका स्वभाव पवित्र तथा सत्य है।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिवर पहँ आए।।
दंड प्रनाम करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे।।

भा०- श्रीराम के सुन्दर गुणसमूहों को सुनते–सुनते श्रीभरत, मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज जी के पास आ गये। मुनि भरद्वाज जी ने श्रीभरत को दण्डवत् प्रणाम करते देखा तो उन्होंने अपना मूर्तिमान भाग्य ही समझा अर्थात् श्रीभरत के दर्शनों से महर्षि को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनका भाग्य ही शरीर धारण करके आ गया हो।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्ह अशीष कृतारथ कीन्हे।।
आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे।।

भा०- मुनि भरद्वाज जी ने दौड़कर अपनी भुजाओं से पृथ्वी पर पड़े हुए श्रीभरत को उठाकर हृदय से लगा लिया। आशीर्वाद दिया (तुम्हें श्रीसीताराम जी के दर्शन अवश्य होंगे) और श्रीभरत जी को कृतार्थ कर दिया। आसन दिया, श्रीभरत सिर नवाकर बैठ गये, मानो वे भागकर संकोच के गृह में प्रविष्ट होना चाहते थे।

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले ऋषि लखि शील सकोचू।।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर कछु न बसाई।।

भा०- श्रीभरत जी के हृदय में यह बहुत–बड़ी चिन्ता है कि, महर्षि भरद्वाज जी मुझ से कुछ पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगा? श्रीभरत के स्वभाव और संकोच को देखकर ऋषि अर्थात् मंत्रद्रष्टा *(ऋषयो मंत्र द्रष्टारः)* भरद्वाज जी बोले, हे भरत! सुनो, हमने अपने त्रिकालज्ञान के आधार पर सब समाचार पा लिया है। ब्रह्मा जी के कृत्य पर किसी का कुछ वश नहीं चलता।

दो०- तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकयिहिं दोष नहिं, गई गिरा मति धूति।।२०६।।

भा०- माता की करतूती अर्थात् कुत्सित करनी समझकर, तुम अपने हृदय में ग्लानि मत करो। बेटे! कैकेयी का कोई दोष नहीं है, सरस्वती जी ही उनकी दासी मंथरा तथा कैकेयी की भी बुद्धि को भ्रष्ट करके चली गईं हैं अर्थात् फेर गईं हैं।

विशेष- धूति शब्द कम्पनार्थक धुँये धातु से सिद्ध हुआ जान पड़ता है अर्थात् सरस्वती जी, कैकेयी और मंथरा की बुद्धि को चलायमान करके चली गईं, इसलिए वह श्रीरामप्रेम की निष्ठा पर अडिग न रह सकीं।

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोक बेद बुध सम्मत दोऊ।।
तात तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकहु बेद बड़ाई।।

भा०- महर्षि ने फिर कहा, मेरे यह कहते हुए भी अर्थात् कैकेयी के कृत्य को कोई भी भला नहीं कहेगा, क्योंकि लोक और वेद ये दोनो ही विद्वानों द्वारा सम्मत है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को लोक और वेद दोनों का समन्वय करके ही कार्य करना चाहिये। हे तात! आपके विमल यश को गाकर साधक, लोक और वेद दोनों की दृष्टि से बड़ाई अर्थात् गौरव प्राप्त कर सकेंगे। तात्पर्य यह है कि, कैकेयी जी का कार्य भले ही वेद सम्मत होते हुए भी लोक सम्मत नहीं हो, पर आपका कार्य तो उभयसम्मत है अर्थात् उसकी लोक और वेद दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसा हो रही है।

लोक बेद सम्मत सब कहई। जेहि पितु देइ राज सो लहई।।
राउ सत्यब्रत तुमहिं बोलाई। देत राज सुख धरम बड़ाई।।

भा०– यह पक्ष लोक और वेद दोनों से सम्मत है और सभी कहते हैं कि, जिसे पिता राज्य दें वही राज्य प्राप्त करता है। इसमें बड़े या छोटे का पिता के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

विशेष– जैसे नहुष ने बड़े पुत्र को छोड़कर मध्यम पुत्र ययाति को राज्य दिया। तुम्हारे समक्ष वचन देने के कारण सत्यव्रत महाराज दशरथ जी यदि तुम्हारी माता के समक्ष तुम्हें ननिहाल से बुलाकर राज्य दे देते तो उन्हें सुख, धर्म और बड़प्पन तीनों की प्राप्ति हो जाती अर्थात् तुम्हें राज्य देने के लिए श्रीराम को वन भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

राम गमन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिश्व भा शूला।।
सो भावी बश रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी।।

भा०– श्रीराम का वनगमन ही सभी अनर्थों का कारण बन गया, क्योंकि यह किसी भी प्रकार न तो विधिसम्मत है और न ही तर्कसम्मत जिसे सुनकर, सम्पूर्ण विश्व को बहुत दु:ख हुआ। भवितव्यतावश ज्ञान से शून्य रानी कैकेयी भी वह कुचाल कुकृत्य करके अन्त में पछताईं और पछतायेंगी।

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू।।
करतेहु राज त तुमहिं न दोषू। रामहिं होत सुनत संतोषू।।

भा०– वहाँ भी जो तुम्हारा थोड़ा भी अपराध कहता है, या कहेगा, वह नीच है, ज्ञानरहित है और असज्जन है अर्थात् दुष्ट है। यदि तुम राज्य करते तो भी तुम्हें कोई दोष नहीं लगता, श्रीराम जी को सुनकर संतोष हो जाता।

दो०– अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु।।२०७।।

भा०– परन्तु हे भरत! अब तो तुमने बहुत अच्छा किया है, जो पाये हुए राज्य को छोड़कर प्रभु श्रीराम के दर्शनों के लिए श्रीचित्रकूट जा रहे हो। तुम्हारे लिए यही मत उचित है, क्योंकि श्रीराम के चरणों में स्नेह, संसार के सभी शुभमंगलों का कारण है।

सो तुम्हार धन जीवन प्राना। भूरिभाग को तुमहिं समाना।।
यह तुम्हार आचरज न ताता। दशरथ सुवन राम प्रिय भ्राता।।

भा०– वह अर्थात् श्रीराम के श्रीचरणों का स्नेह, तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है। तुम्हारे समान बड़ा भाग्यशाली कौन है? हे तात! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य नहीं है, क्योंकि तुम महाराज दशरथ जैसे परम श्रीरामानुरागी के पुत्र हो और शुद्धप्रेम के अनुगामी, परमात्मा श्रीराम के प्रेमास्पद भाई हो।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेम पात्र तुम सम कोउ नाहीं।।
लखन राम सीतहिं अति प्रीती। निशि सब तुमहिं सराहत बीती।।
जाना मरम नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा।।

भा०– हे भरत! सुनो, रघुश्रेष्ठ श्रीराम के मन में तुम्हारे समान कोई भी प्रेम पात्र नहीं है अर्थात् तुम श्रीराम के अद्वितीय प्रेम के पात्र हो। जबकि समस्त संसार श्रीराघव का कृपापात्र है। अपनी वनयात्रा के क्रम में जिस दिन प्रभु श्रीराम मेरे आश्रम में पधारे श्रीलक्ष्मण, राम और सीता जी की वह सम्पूर्ण रात्रि अत्यन्त प्रेमपूर्वक तुम्हारी

प्रशंसा करते हुए ही बीत गई। मैंने श्रीप्रयाग में स्नान करते समय प्रभु का मर्म जान लिया। वे उस समय भी मन में तुम्हारे ही अनुराग में मग्न होते रहे। तन से भले ही प्रयाग में डुबकि लगा रहे हों।

विशेष– प्रयाग स्नान करते समय जब भरद्वाज जी ने श्रीराम से संकल्प पढ़ने के क्रम में भरतखण्डे शब्द का उच्चारण कराया, उस समय प्रभु भरत जी का स्मरण करके, भावविभोर होकर फूट–फूटकर रो पड़े, यही भरद्वाज जी का मर्म जानना है।

तुम पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नर के।।
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई।।
तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू।।

भा०– हे भरत! श्रीराम का तुम पर इसी प्रकार का स्नेह है, जैसे जड़बुद्धि वाले सांसारिक प्राणी को जगत् के सुख और अपने जीवन पर होता है। जिनके कारण सामान्य जीव भी वीर हो जाता है, ऐसे रघुवीर श्रीराम की यह कोई अधिक प्रशंसा नहीं है। रघुकुल के राजा श्रीराम तो शरणागत भक्तसमूहों का पालन करते हैं। अथवा प्रभु प्रणतजन के कुटुम्ब यानी परिवार का भी पालन करते हैं, तुम तो साक्षात् उनके शरणागत् भक्त हो। हे भरत! मेरा तो ऐसा मानना है कि, तुम तो मानो शरीरधारी श्रीरामप्रेम ही हो अर्थात् यदि परब्रह्म परमेश्वर श्रीराम हैं, तो श्रीरामप्रेम भरत अर्थात् तुम हो।

दो०– तुम कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेश।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समय गणेश।।२०८।।

भा०– हे भरत! यह श्रीरामवनवास की घटना तुम्हारे लिए कलंक और हम सबके लिए उपदेश है, क्योंकि हम साधु होकर भी छोटी–सी एक कुटिया नहीं छोड़ सकते। यहाँ तो श्रीराम ने तुम्हारे लिए अयोध्या का राज्य छोड़ा और तुमने श्रीराम जी के लिए। वस्तुतः यह लांछन अर्थवाला कलंक नहीं है, प्रत्युत् पारद रस को सिद्ध करनेवाला यह पारद भस्म रूप कलंक है। श्रीरामभक्ति रससिद्धि के लिए यह समय गणेश बन गया है अर्थात् जैसे गणेश जी सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार यह रामवनवास समय श्रीरामभक्त के रसत्व की सिद्धि में आनेवाले सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट कर रहा है और नष्ट करता रहेगा।

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना।।

भा०– हे वत्स! तुम्हारा यश निर्मल, निष्कलंक, नवीन, पूर्णचन्द्रमा है। रघुवर श्रीराम के सेवक ही उसके कुमुद और चकोर हैं अर्थात् जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुद विकसित होता है, उसी प्रकार भगवान् के भक्त तुम्हारे यश सुनकर प्रसन्न होंगे। जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणों को पीता है, उसी प्रकार रघुवर श्रीराम के भक्त अपने कानों के दोने से तुम्हारे यश को पीते रहते हैं। तुम्हारा यश, चन्द्रमारूप आकाश में निरन्तर उदित रहेगा। यह दिन–दिन दूना होगा कभी अस्त नहीं होगा।

कोक त्रिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहिं न हरिही।।
निशि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकयि करतब राहू।।

भा०– त्रिलोकरूप चकवा इस पर अत्यन्त प्रेम करेंगे। भगवान् श्रीराम का प्रतापरूप सूर्य इसकी छवि अर्थात् सुन्दरता का हरण नहीं करेगा। यह दिन–रात सदैव सभी के लिए सुखदायक रहेगा। कैकेयी का कुकर्मरूप राहु इसे नहीं ग्रसेगा।

पूरन राम सुप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहिं दूषा।।
रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू।।

भा०- यह श्रीराम के प्रेमरूप अमृत से पूर्ण है और आपका यशश्चन्द्र गुरु के अपमान के दोष से दूषित नहीं हुआ। हे श्रीरामभक्तों! अब यह अमृत पी–पीकर तृप्त हो जाओ। भरत जी ने तो पृथ्वी पर भी सुधा अर्थात् श्रीरामप्रेमामृत को सुलभ कर दिया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी।।
दशरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं।।

भा०- महाराज भगीरथ जी पृथ्वी पर गंगा जी को ले आये, जो स्मरण मात्र से सम्पूर्ण सुमंगलों की खानि बन गई, परन्तु महाराज दशरथ के तो गुणगन वर्णित नहीं किये जा सकते। उनसे अधिक कौन होगा, जिनके समान भी इस जगत् में और कोई नहीं है?

दो०- जासु सनेह सकोच बश, राम प्रगट भए आइ ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ, निरखे नाहिं अघाइ।।२०९।।

भा०- जिन महाराज दशरथ जी के स्नेह और संकोच के वश में होकर, वे परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम श्रीअयोध्या आकर प्रकट हुए, जिनको शङ्कर जी अपने हृदय में विराजमान करा कर तीनों नेत्र से निहारते हुए नहीं अघाते। फलतः महाराज दशरथ जी का व्यक्तित्व महाराज भगीरथ से भी बड़ा है।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बश राम प्रेम मृगरूपा।।
तात गलानि करहु जिय जाए। डरहु दरिद्रहिं पारस पाए।।

भा०- हे भरत! तुमने अनुपम यशरूप चन्द्रमा को प्रकट किया, जहाँ श्रीराम का प्रेम मृगरूप में निवास करता है अर्थात् तुम्हारे यशोरूप चन्द्रमा में जो श्यामता दिख रही है, वह श्रीरामप्रेमरूप कृष्णमृग की श्यामता है। हे तात् भरत! तुम व्यर्थ ही ग्लानि कर रहे हो और पारसमणि को प्राप्त करने पर भी दारिद्र से डर रहे हो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं।।
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखनराम सिय दरशन पावा।।
तेहिं फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।।
भरत धन्य तुम जस जग जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।।

भा०- हे भरत! हम तपस्वी, शत्रु–मित्र, हित–अहित, दुःख–सुख, आदि द्वन्द्वों से उदासीन होकर वन में रहते हैं। अतः झूठ नहीं बोल रहे हैं, सभी साधनों के सुहावने शुभफल के रूप में हमने श्रीलक्ष्मण, राम एवं भगवती सीता जी के दर्शन पाये। श्रीरामदर्शनरूप उस फल का भी फल है तुम्हारा दर्शन। प्रयाग के सहित यह हमारा सौभाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से जगत् के यश को जीत लिया। ऐसा कह कर, महर्षि भरद्वाज श्रीरामप्रेम में मग्न हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे।।
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा।।

भा०- मुनि के वचन सुनकर सभी सभासद प्रसन्न हुए। देवताओं ने साधु–साधु शब्द का उच्चारण करके श्रीभरत की सराहना करते हुए पुष्प बरसाये अर्थात् नन्दनवन के पुष्पों की वर्षा किये। आकाश और प्रयाग में धन्य–धन्य की ध्वनि गूंज गई, उसे सुन–सुनकर श्रीभरत जी अनुराग में डूब गये।

दो०- पुलक गात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनाम मुनि मंडलिहिं, बोले गदगद बैन।।२१०।।

भा०- श्रीभरत के शरीर में रोमांच था, उनके हृदय में श्रीसीताराम जी विराज रहे थे और उनके कमलनेत्र अश्रुपूर्ण थे। मुनि–मण्डली को प्रणाम करके श्रीभरत प्रेम से स्खलित वचन बोले–

मुनि समाज अरु तीरथराजू। साँचिहुँ शपथ अघाइ अकाजू।।
एहिं थल जौ कछु कहिय बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई।।
तुम सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ।।

भा०- एक ओर मुनियों का समाज और दूसरा तीर्थराज प्रयाग का क्षेत्र, यहाँ सत्य का शपथ करने पर भी व्यक्ति अकाज अर्थात् बहुत–बड़ी हानि से अघा जाता है, अर्थात् तृप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि, इतने पवित्र स्थल पर सत्य की शपथ भी बहुत–बड़ी हानि कर सकती है, तो असत्य का प्रश्न ही नहीं है। इस स्थल पर यदि कुछ बनाकर कहा जाये, तो इससे अधिक न तो पाप होगा और न ही कोई नीचता। आप अर्थात् भरद्वाज सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं, और भगवान् श्रीराम हृदय के अन्तर्यामी हैं। अतः मैं अपना सत्यभाव कह रहा हूँ।

मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुख जिय जग जानिह पोचू।।
नाहिन डर बिगरिहिं परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न शोकू।।
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए।।
राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू।।

भा०- मुझे कैकेयी माता के किये कुकृत्य का शोक नहीं है और मुझे हृदय में यह भी दुःख नहीं है कि, संसार मुझे बुरा समझेगा, परलोक नष्ट हो जायेगा इसका भी डर नहीं है। मुझे पिताश्री के मरण का भी शोक नहीं है, उनके तो सुहावने सत्कर्म और सुन्दर यश से सभी भुवन भर रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मण और श्रीराम जैसे सुयोग्य पुत्रों को प्राप्त किया और श्रीराम के वियोग में क्षणभंगुर शरीर छोड़ा, महाराज के शोक का कोई प्रसंग ही नहीं है।

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं।।

दो०- अजिन बसन फल अशन महि, शयन डासि कुश पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात।।२११।।

भा०- श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी बिना पनही वाले चरणों से मुनिवेश धारण करके वन–वन में भटकते फिर रहे हैं, मृगचर्म पहनकर, फल का भोजन करके, कुश और पत्ते को बिछाकर, पृथ्वी पर शयन करके, वृक्ष के नीचे निवास करते हुए, निरन्तर शीत, धूप, वर्षा और वायु को सहन कर रहे हैं।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।।
एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल बिश्व मन माहीं।।

भा०- इसी दुःख और जलन से मेरी छाती दिन–दिन जली जा रही है। दिन में भूख नहीं लगती और रात में नींद नहीं आती। मैंने सम्पूर्ण विश्व में और अपने मन में भी ढूंढ़ लिया, मेरे इस कुरोग की कहीं भी औषधि नहीं है।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बसूला।।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू।।

मोहि लगि यह कुठाट तेहिं ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा।।
मिटइ कुजोग राम फिरि आए। बसइ अवध नहिं आन उपाए।।

भा०– माँ कैकेयी का कुमत अर्थात् बुरा विचार ही सभी पापों का मूल बढ़ई (लकड़ी की वस्तु बनानेवाला) है। उसने मेरे हित को ही वसूला अर्थात् लकड़ी काटनेवाला एक शस्त्र बनाया और कलहरूप अशुभ लकड़ी का उसने अभिचारात्मक यन्त्र बनाया, कठिन कुत्सित मंत्र पढ़कर अयोध्या में उसे गाड़ दिया। मेरे लिए उसने (कैकेयी ने) यह बुरा साज बनाया और सारे संसार को बारह मार्गों में बाँटकर उसे नष्ट कर दिया। यह कुयोग श्रीराम के अवध लौट आने से ही नष्ट होगा नहीं तो और किसी दूसरे उपाय से श्रीअवध में ही निवास करेगा।

विशेष– इस रुपक में पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित ग्रामीण अभिसारात्मक प्रयोग का संकेत है। बढ़ई से बहेरे अथवा, भिलावे की लकड़ी को काट कर, गढ़कर एक पुतला बनवाया जाता है और कुछ भयंकर मंत्र पढ़कर उसे अपनी शत्रुता के लक्ष्य व्यक्ति के घर के पास रात में ही गाड़ दिया जाता है। जिसके घर के पास यह गाड़ा जाता है, उसका प्राय: सर्वनाश होकर ही रहता है। उसी रुपक से श्रीभरत अपनी बात स्पष्ट कर रहे हैं कि, माता कैकेयी का कुमंत्र पाप का मूल बढ़ई है, उसने मेरे हित को ही वसूला अर्थात् कुल्हाड़ी की ही जाति का एक शस्त्र बनाया, उसी से कलहरूप बहेरे या भिलावे की लकड़ी को गढ़कर पुतला अथवा, तेल पेरने वाला कोल्हु का भयंकर यंत्र बनाया और विरोध अथवा, श्रीरामवनगमन प्रस्थानरूप कठोर और बुरा मंत्र पढ़कर चौदह वर्षों के लिए अयोध्या में गाड़ दिया। मेरे लिए कैकेयी ने ऐसा कुप्रबंध किया और सारे जगत को बारह मार्गों में विभक्त कर दिया।

भरत बचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई।।
तात करहु जनि सोच बिशेषी। सब दुख मिटिहिं राम पग देखी।।

भा०– श्रीभरत का वचन सुनकर, भरद्वाज मुनि ने सुख पाया अर्थात् श्रीभरत की राज्य के प्रति निष्क्रियता और श्रीराम के प्रति अखण्ड भक्ति से उन्हें सुख मिला। सभी ने बहुत प्रकार से श्रीभरत की प्रशंसा की। महर्षि भरद्वाज ने कहा, वत्स! भरत बहुत शोक मत करो। श्रीराम के श्रीचरणों को देखकर सभी दु:ख मिट जायेंगे।

दो०– करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु।।२१२।।

भा०– श्रीभरत को समझाकर मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज जी ने कहा, हे प्रेमप्रिय अर्थात् श्रीरामप्रेम ही जिन्हें प्रिय है, ऐसे भरत! आज तुम हमारे अतिथि बन जाओ। हम तुम्हें कन्द, मूल, फल और फूल दे रहे हैं। हम पर ममता और आत्मीयता करके उन्हें स्वीकार करो।

सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू।।
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी।।
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।।

भा०– मुनि के वचन सुनकर, श्रीभरत के हृदय में चिन्ता होने लगी, यह तो कुसमय में कठिन संकोच हो गया अर्थात् श्रीराम के दर्शनों के बिना कन्द, मूल स्वीकार करना मेरे लिए उचित नहीं है। फिर गुरुतुल्य भरद्वाज जी की वाणी को गरुइ अर्थात् अनुलंघनीय जानकर, उनके चरणों की वन्दना करके श्रीभरत हाथ जोड़कर बोले, हे नाथ! आप की आज्ञा को सिर पर धारण करके हम पालन करें यह हमारा परमधर्म है।

भरत बचन मुनिवर मन भाए। शुचि सेवक तब निकट बोलाए।।
चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।।

भा०– भरत जी के वचन भरद्वाज मुनि के मन को भाये, फिर उन्होंने पवित्र सेवकों को निकट बुला लिया। भरत जी का आतिथ्य करना चाहिये अर्थात् मैं श्रीभरत की पहुनाई करना चाहता हूँ। तुम लोग जाकर कन्द, मूल, फल ले आओ।

भलेहिं नाथ कहि तिन सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए।।
मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिय जस देवता।।
सुनि ऋधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं।।

भा०– ''ठीक है स्वामी'' ऐसा कहकर सेवकों ने महर्षि को प्रणाम किया और प्रसन्न मन से अपने–अपने कार्य के लिए वन को चले गये। इधर भरद्वाज मुनि के मन में चिन्ता हुई कि, मैंने बहुत–बड़े अतिथि को आमंत्रित कर लिया। जैसा देवता हो उसकी वैसी पूजा होनी चाहिये अर्थात् श्रीभरत राजकुमार हैं, तो उनकी राजकीय पहुनाई होनी चाहिये। भरद्वाज जी का मानसिक संकल्प सुनकर अणिमादिक सिद्धियाँ और महापदम आदि ऋद्धियाँ भरद्वाज जी के पास आईं और बोलीं, स्वामी! आप की जो आज्ञा हो हम वही करें।

दो०– राम बिरह ब्याकुल भरत, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहा मुदित मुनिराज।।२१३।।

भा०– भरद्वाज जी ने प्रसन्न होकर कहा कि, छोटे भाई और अन्य राजसमाज सहित श्रीभरत, श्रीराम के वियोग में व्याकुल हैं। अतिथि सत्कार करके, उनका श्रम हर लो अर्थात् उन्हें सुखी कर दो, यही हमारी आज्ञा है।

ऋधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनि आपुहिं अनुमानी।।
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई।।

भा०– ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ मुनि भरद्वाज की आज्ञा को शिराधार्य करके स्वयं को परमसौभाग्यशालिनी समझीं। सभी ऋद्धि–सिद्धियाँ परस्पर विचार करती हुईं कहने लगीं कि, भगवान् श्रीराम के छोटे भाई श्रीभरत अतुलनीय अतिथि हैं।

मुनि पद बंदि करिय सोइ काजू। होइ सुखी सब राज समाजू।।
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना।।

भा०– भरद्वाज मुनि के चरणों की वन्दना करके आज हम वही करें जिससे सम्पूर्ण राजसमाज सुखी हो जाये। ऐसा कह कर, सिद्धियों ने अनेक सुन्दर भवन बनाये, जिन्हें देखकर देवताओं के विमान भी बिलखने लगे।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहिं अमर अभिलाषे।।
दासी दास साज सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हे।।

भा०– उन भवनों में सिद्धियों ने अनेक भोगों और विभूतियों को भर–भरकर रखा, जिन्हें देखते हुए देवता भी उन्हें प्राप्त करने के लिए इच्छुक हो जाते थे। वे अपने साथ दासियों और दासों को भी लिए थीं, जो मन की इच्छा को देखते रहते और सबको मन के अनुकूल वस्तुयें दे दिया करते थे।

सब समाज सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं।।
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही।।

भा०– जो सुख देवलोक में स्वप्न में भी उपलब्ध नहीं होते ऐसे सुखों के सम्पूर्ण समाज को एक क्षण में सजाकर सिद्धियों ने सर्वप्रथम सब को निवास स्थान दिया जो सुन्दर और सुखद थे। जिसको जैसी रुचि थी, उसको उसी प्रकार का निवास दिया गया।

दो०– बहुरि सपरिजन भरत कहँ, ऋषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायक बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह।।२१४।।

भा०– फिर परिजनों सहित भरत जी को ऋषि भरद्वाज ने इसी प्रकार की आज्ञा दी कि, तुम राजोचित् आतिथ्य स्वीकार करो। भरद्वाज मुनि ने अपनी तपस्या के बल से ब्रह्मा जी को भी विस्मय देने वाले वैभव की रचना कर दी।

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका।।
सुख समाज नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी।।

भा०– जब श्रीभरत ने भरद्वाज मुनि का प्रभाव देखा, तब उन्हें सभी लोक और लोकपाल छोटे लगे। वहाँ के सुख के समाज का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी अपना वैराग्य भूल रहे थे।

आसन शयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना।।
सुरभि फूल फल अमिय समाना। बिमल जलाशय बिबिध बिधाना।।
अशन पान शुचि अमिय अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से।।
सुर सुरभी सुरतरु सबही के। लखि अभिलाष सुरेश शची के।।

भा०– वहाँ सुन्दर आसन, शैय्या, तम्बू, वन और वाटिकायें अनेक प्रकार के पक्षी और मृग, सुगन्धित पुष्प तथा अमृत के समान फल, अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय, अमृत के समान पवित्र भोजन और पेय पदार्थ, जिन्हें देखकर लोग संयमी के समान सकुचा रहे थे अर्थात् वस्तुओं का उपयोग तो हो जाता था, पर संयम उन्हें मना कर देता था। सब के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे। जिन्हें देखकर इन्द्र और शची को भी पाने की इच्छा हो जाती थी।

ऋतु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी।।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बश लोगा।।

भा०– वहाँ वसन्त–काल था, तीनों प्रकार की शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बह रहा था। सब के लिए चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) सुलभ थे। वहाँ माला–चन्दन और स्त्री आदि तथा अन्य भोग–पदार्थ भी थे, जिन्हें देखकर लोग प्रसन्न भी थे और विस्मित भी।

दो०– संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निशि आश्रम पिंजरा, राखे भा भिनुसार।।२१५।।

भा०– मुनि के आदेशरूप खिलाड़ी ने उस रात आश्रम रूप पिंजड़े में सम्पत्तिरूप चकवी और श्रीभरतरूप चकवे को रख दिया और चकवे की अनासक्ति में ही सवेरा हो गया।

विशेष– जनश्रुति के अनुसार एक कौतुकी बालक ने एक दिन चकवी और चकवे को दिन में एक साथ पिंजड़े में बन्द कर दिया। कदाचित् उसके मन में यह धारणा थी कि, आज की रात में चकवी और चकवे एक ही पिंजड़े में रहते हुए एक–दूसरे से कैसे बिछुड़ सकेंगे? संयोग से सायंकाल उसी ने चकवे दम्पति के जलपानार्थ जल भरा एक कटोरा पिंजड़े में रख दिया और रात्रि में वही दोनों के वियोग का कारण बना। कटोरे के इस पार चकवा

और उस पार चकवी, दोनों ही कटोरे को नहीं लांघ पाये यही परिस्थिति बनी भरत जी और भरद्वाज जी के बीच। कदाचित् भरद्वाज जी ने आश्रमरूप पिंजड़े में भरत जी और सम्पत्ति का समागम कराना चाहा, पर चकवे दंपति के समान श्रीरामप्रेम के कटोरे ने ऐसा नहीं होने दिया।

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहिं सिर सहित समाजा।।
ऋषि आयसु आशिष सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी।।
पथ गति कुशल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चित दीन्हें।।

भा०– समाज के सहित श्रीभरत ने तीर्थराज प्रयाग में सशिरष्क स्नान किया। मुनि भरद्वाज जी को सिर नवाकर तथा ऋषि की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके और वाणी से बहुत से विनयपूर्ण वचन बोलकर, मार्ग के ज्ञान में कुशल सभी मार्गदर्शकों को साथ लिए हुए, श्रीचित्रकूट में अपना चित्त लगाकर, श्रीभरत जी चल पड़े।

रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू।।
नहिं पद त्रान शीष नहिं छाया। प्रेम नेम ब्रत धरम अमाया।।
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहिं कहत मृदु बानी।।
राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके।।

भा०– श्रीराम के सखा निषाद के हाथ को सहारा दिये हुए अर्थात् अपने स्कन्ध पर रखे हुए श्रीभरत ऐसे चल रहे हैं, मानो अनुराग शरीर धारण करके चल रहा हो। श्रीभरत के चरणों मे न ही पनहीं है और न ही उनके सिर पर कोई छाया है। श्रीभरत का प्रेम, नियम, व्रत और धर्म–अमाया अर्थात् छल–प्रपंच से रहित है। श्रीलक्ष्मण, राम और भगवती सीता जी की वनमार्ग की कथा मित्र निषादराज से पूछ रहे हैं और वे (निषादराज) कोमल वाणी में कह रहे हैं। श्रीराम के वास के स्थान वाले वृक्षों को देखकर, श्रीभरत के हृदय में अनुराग रोकने से भी नहीं रुक रहा है।

देखि दशा सुर बरषहिं फूला। भइ मृदु महि मग मंगल मूला।।

भा०– भरत जी की दशा देखकर देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पृथ्वी कोमल हो गई है और मार्ग मंगलों का आश्रय अर्थात् कारण और जन्मदाता बन गया है।

दो०– किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात।।२१६।।

भा०– जल–वर्षा करने वाले बादल छाया किये जा रहे हैं और सुख देने वाला श्रेष्ठ वायु बह रहा है। उस प्रकार का मार्ग श्रीराम के लिए भी नहीं हुआ था, जैसा श्रीभरत के श्रीचित्रकूट जाते समय हो गया।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन प्रभु हेरे।।
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू।।
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं।।
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ।।
भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगलदाता।।
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहिं निरखि हरष हिय लहहीं।।

भा०– मार्ग के अनेक जड़ और चेतन जीवों में, जिन्होंने प्रभु श्रीराम को देखा अर्थात् सद्भाव से दर्शन किये तथा जिनको प्रभु श्रीराम ने निहार लिया, वे दोनों प्रकार के सभी जीव परमपद के योग्य हो गये अर्थात् उनमें श्रीराम के दर्शन करने तथा श्रीराम के दृश्य बनने से परमपद अर्थात् साकेत लोक प्राप्त करने की योग्यता आ

गई, जो उनके प्रारब्ध शरीर क्षय होने पर सम्भव थी, परन्तु श्रीभरत के दर्शनों ने तो उन सबको भवरोग अर्थात् संसार के बन्धनरूप प्रारब्धमय शरीर के रोगों से दूर कर दिया और वे सब तुरन्त ही अपने भवरूप शरीर को छोड़-छोड़कर सद्योमुक्ति प्राप्त कर साकेत लोक को चले गये। श्रीभरत के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिनको श्रीराम अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। संसार के जो भी लोग एक बार भी श्रीराम कह लेते हैं, वे स्वयं संसार-सागर से पार हो जाते हैं और दूसरों को भी पार कर देते हैं। श्रीभरत तो प्रभु श्रीराम के प्रिय और फिर प्रभु के छोटे भ्राता हैं, तो उनके लिए वन-मार्ग मंगल देने वाला क्यों न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि इस प्रकार कह रहे हैं तथा श्रीभरत को देखकर हृदय में हर्ष प्राप्त कर रहे हैं।

देखि प्रभाव सुरेशहिं सोचू। जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू।।
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई।।

भा०- श्रीभरत का प्रभाव देखकर देवराज इन्द्र को चिन्ता होने लगी, क्योंकि संसार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है अर्थात् दोष दृष्टि का है सृष्टि का नहीं। इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति जी से कहा, हे प्रभु! वही किया जाये, जिससे श्रीराम की श्रीभरत से भेंट न हो।

दो०- राम सँकोची प्रेम बश, भरत सप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति, करिय जतन छल सोधि।।२१७।।

भा०- श्रीराम प्रेम के विवश और स्वभाव से संकोची हैं। श्रीभरत सुष्ठु प्रेम के सागर हैं, बनी हुई बात बिगड़ना चाहती है, छल ढूढ़कर उसी के आधार पर यत्न किया जाये।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने।।
कह गुरु बादि छोभ छल छाँडू। इहाँ कपट करि होइहिं भाँडू।।

भा०- इन्द्र के वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पति जी मुस्कुराये और सहस्रनेत्रों वाले होने पर भी इन्द्र को बिना नेत्र के अर्थात् दृष्टिहीन जाना। बृहस्पति जी ने कहा, हे इन्द्र! व्यर्थ का दुःख और छल छोड़ दो, यहाँ अर्थात् इस अवसर पर जब श्रीभरत, श्रीराघवेन्द्र सरकार से मिलने जा रहे हैं, कपट करके भण्डाफोड़ हो जायेगा अर्थात् तुम्हारी सारी कुचाल लोगों के सामने उजागर हो जायेगी।

मायापति सेवक सन माया। करिय त उलटि परइ सुरराया।।
तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी।।

भा०- हे देवताओं के राजा इन्द्र! यदि माया के पति श्रीराम के सेवकों से माया की जाती है, तो वह उलट पड़ती है अर्थात् करने वाले के ऊपर ही अपना प्रभाव दिखाती है। तब (श्रीराम वनगमन के समय) श्रीराम का रुख अर्थात् प्रभु की इच्छा और संकेत जानकर ही हम लोगों ने कुछ किया था अर्थात् सरस्वती जी से प्रार्थना करके मंथरा और कैकेयी की बुद्धि फेरने के लिए विवश किया था। पुनः देवमाया का प्रयोग करके कैकेयी को मंथरा के प्रति विश्वस्त कराया था। फिर तमसा-तट पर आये हुए अवधवासियों को देवमाया के प्रयोग से घोरनिद्रा में मग्न कर दिया था। परन्तु इस समय कुछ भी कुचाल करने पर हम सब देव परिवार की ही हानि होगी, क्योंकि अभी श्रीराम स्वयं श्रीभरत से मिलने के लिए बहुत ही इच्छुक और उत्कण्ठित हैं।

सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।

भा०- हे देवों के राजा इन्द्र! श्रीरघुनाथ का स्वभाव सुनो, वे अपने अपराध पर कभी भी रुष्ट नहीं होते, परन्तु जो प्रभु श्रीराम के भक्त का अपराध करता है, वह भगवान् श्रीराम के क्रोधाग्नि में जल जाता है।

लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा।।
भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम राम जप जेही।।

भा०- यह इतिहास लोक और वेदों में विदित है अर्थात् वेद से अनुमोदित सभी पुराण इसकी चर्चा कर चुके हैं। यह महिमा दुर्वासा ऋषि जानते हैं कि, अम्बरीश का अपराध करने पर उन्हें क्या भोगना पड़ा था। श्रीभरत के समान प्रभु श्रीराम का स्नेह–भाजन कौन हो सकता है? सम्पूर्ण संसार श्रीराम का (राम–राम) जप करता है और श्रीराम स्वयं जिन्हें (भरत–भरत) जपते हैं।

दो०- मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुबर भगत अकाज।
अजस लोक परलोक दुख, दिन दिन शोक समाज।।२१८।।

भा०- हे देवताओं के स्वामी इन्द्र! श्रीराम और श्रीभरत के मिलनरूप कार्य में व्यवधान की बात अथवा, रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीभरत के श्रीराम दर्शनरूप कर्म में रुकावट का उपाय मन में भी मत ले आना अर्थात् मन में भी मत सोचना, करने की बात तो बहुत दूर है। अन्यथा लोक में अपयश हो जायेगा, परलोक में दुःख होगा और दिन–दिन अर्थात् सदैव शोक का समूह उपस्थित रहेगा।

सुनु सुरेश उपदेश हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा।।
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैर अधिकाई।।

भा०- हे देवताओं के राजा इन्द्र! हमारा (देवगुरु बुहस्पति का) उपदेश सुनो, भगवान् श्रीराम को सेवक परम–प्रिय होते हैं। वे (प्रभु श्रीराम) अपनी सेवक की सेवा से सुख मानते हैं अर्थात् प्रसन्न होते हैं और सेवक के वैर से वे अधिक वैर मान लेते हैं।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू।।
करम प्रधान बिश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

भा०- यद्यपि भगवान् श्रीराम सम हैं, वे राग–रोष, पाप–पुण्य, गुण–दोष कुछ भी नहीं स्वीकारते। उन्होंने इस संसार को कर्मप्रधान करके रखा है अर्थात् प्रभु श्रीराम ने जीवों के शुभ–अशुभ कर्मफलों के भोगरूप में ही इस संसार की सृष्टि की है। यहाँ जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार का फल भोगता है अर्थात् संसार के प्रति भगवान् श्रीराम की भूमिका एक चतुर माता की है, जैसे चतुर माता पुत्रों के कमाये हुए धन के अनुसार उन्हें वस्तु का वितरण करती है अर्थात् कमाई के अनुपात में ही उन्हें उपकरण देती है, उसी प्रकार भगवान् जीव के कर्मों के ही अनुपात में उसके फल–योग की व्यवस्था करते हैं।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।।
अगुन अलेप अमान एकरस। राम सगुन भए भगत प्रेम बस।।

भा०- फिर भी भक्ति के क्षेत्र में भगवान् इस नियम का पालन नहीं करते। यहाँ भक्त और अभक्त के हृदय अर्थात् हृदय में रहनेवाले भाव के अनुसार सम होते हुए भी भगवान् विषम व्यवहार करते हैं अर्थात् कुकर्म करने पर भी, अपने विशेषाधिकार से भक्त के अशुभ फलों को समाप्त कर देते हैं। उसके हृदय की भावना देखकर अशुभ कृत्यों की ओर ध्यान नहीं देते। भक्तों के प्रेम के वश में होने के कारण ही अगुण अर्थात् हेय गुणों से रहित और सभी गुणों को अपने में अन्तरलीन करके भी, कर्मफल के लेप से दूर रहकर भी, मानरहित होने पर भी, सदैव एकमात्र रसस्वरूप होकर भी, श्रीराम सगुण अर्थात् दिव्य कल्याण–गुणगणों के साथ प्रकट हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी।।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई।।

भा०– श्रीराम ने सदैव अपने सेवकों की रुचि ही रखी है। इसके वेद और उससे अनुमोदित पुराण तथा वेद, पुराणों से सम्मत सन्त और देवता भी साक्षी हैं। हे इन्द्र! हृदय में ऐसा जानकर अपनी कुटिलता छोड़ दो और श्रीभरत के चरणों में सुहावनी अर्थात् निर्दोष प्रीति (प्रेम) करो।

दो०– राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत शिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल।।२१९।।

भा०– हे इन्द्र! श्रीराम के भक्त, परोपकार में लगे हुए, दूसरों के दुःख में दुःखी हो जानेवाले, दयालु और भक्तों के शिरोमणि श्रीभरत से निरर्थक मत डरो।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी।।
स्वारथ बिबश बिकल तुम होहू। भरत दोष नहिं राउर मोहू।।

भा०– प्रभु श्रीराम सत्यसंध अर्थात् सत्य प्रतिज्ञावाले तथा देवों के हितकारी हैं और श्रीभरत, श्रीराम की आज्ञा का अनुसरण करने वाले हैं। तात्पर्य यह है कि, जब श्रीराम, पिताश्री के समक्ष वनगमन की प्रतिज्ञा कर चुके हैं अर्थात् चौदह वर्षपर्यन्त वन में रहने और इस अवधि के बीच ग्राम, नगर तथा पुर न लौटने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो फिर क्या वे अपनी प्रतिज्ञा से मुकरेंगे? श्रीभरत, श्रीराम के आज्ञापालक हैं, तो क्या वे प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करेंगे? निष्कर्षतः श्रीराम चौदह वर्ष पर्यन्त वन में प्रवास कर, रावण का वध कर, देवताओं को सुखी करेंगे और श्रीभरत प्रभु की आज्ञा मानकर श्रीअवध लौट जायेंगे। तुम स्वार्थ के विवश होकर व्याकुल हो रहे हो। श्रीरामदर्शन के लिए श्रीचित्रकूट जाना श्रीभरत का दोष नहीं है। यह आपका मोह ही है, जो इस पवित्र प्रकरण को भी दोष–दृष्टि से भाषित करा रहा है।

सुनि सुरवर सुरगुरु बर बानी। भा प्रबोध मन मिटी गलानी।।
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ।।

भा०– देवगुरु बृहस्पति की श्रेष्ठवाणी सुनकर, देवश्रेष्ठ इन्द्र के मन में प्रबोध अर्थात् ज्ञान हो गया मन की ग्लानि मिट गई। प्रसन्न होकर, पुष्पों की वर्षा करके, देवराज इन्द्र भरत जी के स्वभाव की सराहना करने लगे।

विशेष– प्रायशः बहुत से स्थानों पर गोस्वामी जी की दृष्टि में निन्दा का पात्र होकर भी इन्द्र इसलिए प्रसन्नता के पात्र बने, क्योंकि इन्होंने देवगुरु से श्रीभगवान् की महिमा सुनी, इसलिए गोस्वामी जी ने इस प्रसंग में उन्हें सुरवर कहा।

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दशा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं।।
जबहि राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा।।

भा०– इस प्रकार श्रीभरत, श्रीचित्रकूट के मार्ग में चले जा रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुनि और सन्त ईर्ष्या के साथ उनकी प्रशंसा करते हैं। (मुनि और सन्त सोचते हैं कि, हाय! श्रीभरत के समान श्रीराम का प्रेमी कोई नहीं हो सकता।) जब श्रीभरत, "श्रीराम" कहकर ऊँची श्वास लेते हैं, तब मानो उनके हृदय का प्रेम चारों ओर उमड़ पड़ता है।

द्रवहि बचन सुनि कुलिश पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना।।
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीर लोचन जल छाए।।

भा०– श्रीभरत के वचन सुनकर उनके दर्शनों के लिए आये हुए इन्द्र के आयुध वज्र तथा वनमार्ग के पत्थर भी पिघल जा रहे हैं और पुरजनों का प्रेम तो कहा ही नहीं जा सकता। बीच में निवास करके श्रीभरत यमुना जी के पास आ गये। यमुना जी का नीला जल देखकर श्रीभरत के नेत्र जल से पूर्ण हो गये।

दो०- रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज।।२२०।।

भा०– श्रीराम के समान नीले वर्णवाले यमुना जी के जल को देखकर सम्पूर्ण समाज के साथ श्रीभरत विवेक जहाज पर चढ़कर भी श्रीराम के विरह–सागर में डूबने लगे।

जमुन तीर तेहिं दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहिं सुपासू।।
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी।।

भा०– उस दिन श्रीयमुना जी के तट पर निवास किया। सब की समय के अनुकूल व्यवस्था हुई। रात में ही अनेक घाटों की अगणित नौकायें आ गईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रात पार भए एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा।।
चले नहाइ नदिहिं सिर नाई। साथ निषादनाथ लघु भाई।।

भा०– प्रात:काल एक ही खेवे अर्थात् एक ही बार में पार जाने वाली नौकाओं पर सभी श्रीचित्रकूट के यात्री यमुना पार हो गये। श्रीराम–सखा निषादराज की सेवा से संतुष्ट होकर, नदी अर्थात् भगवान् के वियोग में आर्त्तनाद कर रही यमुना जी को प्रणाम करके निषादों के राजा गुह एवं छोटे भाई शत्रुघ्न जी के साथ श्रीभरत श्रीचित्रकूट की ओर चल पड़े।

आगे मुनिवर बाहन आछे। राजसमाज जाइ सब पाछे।।
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे।।

भा०– सबसे आगे वसिष्ठ जी तथा अन्य श्रेष्ठब्राह्मणों के सुन्दर वाहन चल रहे थे। उनके पीछे सम्पूर्ण राजसमाज जा रहा था। उसके भी पीछे साधारण सात्विक आभूषण और सात्विक वस्त्र धारण किये हुए अर्थात् सामान्य सा धौतवस्त्र और कन्धे पर पीला श्रीरामनाम अंकित उत्तरीय डाले हुए श्रीभरत–शत्रुघ्न जी जा रहे थे।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखन सीय रघुनाथा।।
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा।।

भा०– श्रीभरत के साथ में सेवक, मित्रगण, और मंत्री सुमंत्र के पुत्र अभिनन्दन भी जा रहे थे। वे सब श्रीलक्ष्मण, सीता और रघुनाथ जी का स्मरण कर रहे थे। जहाँ–जहाँ श्रीराम के रुकने के स्थान और विश्राम स्थान दिखते थे, वहीं–वहीं श्रीभरत प्रेमपूर्वक प्रणाम करते थे।

दो०- मगबासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि स्वरूप सनेह बश, मुदित जनम फल पाइ।।२२१।।

भा०– मार्ग के निवासी, नर–नारी, श्रीभरत का आगमन सुनकर, अपने घरों और कार्यो को छोड़कर दौड़कर श्रीभरत–शत्रुघ्न जी के स्वरूप को देखकर, अपने जन्म का फल पाकर, स्नेह के वश होकर, प्रसन्न हो जाते थे।

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। राम लखन सखि होहिं कि नाहीं।।
बय बपु बरन रूप सोइ आली। शील सनेह सरिस सम चाली।।

भा०- ग्राम की नारियाँ परस्पर एक–दूसरे से प्रेमपूर्वक कहती हैं, सखी! ये दोनों युवक पथिक श्रीराम–लक्ष्मण हो सकते हैं या नहीं, क्योंकि इनकी अवस्था, शरीर, वर्ण और रूप वही है। उसी प्रकार का स्वभाव वैसा ही पारस्परिक स्नेह और उसी प्रकार की इनके चलने की प्रकृति है।

बेष न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा।।
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेह होइ एहिं भेदा।।

भा०- दूसरी सखी बोली, सखी! इनका वह अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण जी जैसा वल्कल, जटा रूपधारी, धनुर्बाण एवं निषंग से सुशोभित वेश नहीं है। इनके साथ श्रीसीता भी तो नहीं हैं। इनके आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है। श्रीराम–लक्ष्मण जी के समान इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं। इनके मन में खेद है, इस भेद से संदेह हो रहा है।

विशेष- यहाँ सात समानताओं के होने पर भी श्रीराम–लक्ष्मण जी तथा श्रीभरत–शत्रुघ्न जी में पाँच विषमतायें भी हैं। इसी से प्रत्यगात्मा और परमात्मा का स्वरूपगत् भेद स्पष्ट हो जाता है। भजन करके जीवात्मा परमात्मा के साथ कतिपय अंशों में समानता प्राप्त कर लेता है, जैसे कि श्रीभरत ने श्रीराम के कुछ अंशों में समानता प्राप्त कर ली है। वे हैं– अवस्थागत, शरीरगत, वर्णगत, रूपगत, शीलगत, स्नेहगत और गमन चेष्टागत यही है जीवात्मा, पमात्मा का भोगमात्र साम्य जो ब्रह्मसूत्र, ४.४.१८ में निर्दिष्ट है, परन्तु जीवात्मा को परमात्मा का वेश, उनकी आह्लादिनीशक्ति, सहाय निरपेक्षता, स्वाभाविक प्रसन्नता और मानसिक आनन्द ये पाँचों कभी नहीं प्राप्त हो सकते, यही इस प्रसंग का दार्शनिक तथ्य है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तोहि सम न सयानी।।
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी।।

भा०- द्वितीय सखी के तर्क को नारीगण अर्थात् बुद्धिमती महिलाओं ने मन से बहुत सम्मानित किया और सभी कहने लगीं कि, सखी! तुम्हारे समान इसमें कोई भी चतुरस्त्री नहीं है जो, इन पथिकों की विलक्षणताओं के आधार पर जीवात्मा और परमात्मा के श्रुतिसम्मत भेद को इतना स्पष्ट कर सके। उस की सराहना करके उसकी सत्यवाणी का सम्मान करके दूसरी महिला मधुर वाणी बोली–

कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू।।
भरतहिं बहुरि सराहन लागी। शील सनेह सुभाय सुभागी।।

भा०- शील (चरित्र), स्नेह तथा सुन्दरभाव से सौभाग्यवती ग्रामवधू, जिस प्रकार श्रीराम के राज्य में रसभंग अर्थात् विघ्न हुआ उस सम्पूर्ण कथाप्रसंग को प्रेमपूर्वक कहकर, फिर स्वभाव, स्नेह एवं सुन्दरभावों से भाग्यशाली श्रीभरत की प्रेमपूर्वक प्रशंसा करने लगे।

दो०- चलत पयादेहिं खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं, भरत सरिस को आजु।।२२२।।

भा०- सखी! श्रीभरत पैदल चलते हुए, फल खाते हुए, पिता जी के द्वारा दिये हुए राज्य को छोड़कर रघुवर श्रीराम को मनाने के लिए श्रीचित्रकूट जा रहे हैं, आज उनके समान कौन है?

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू।।
जो कछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई।।

भा०- श्रीभरत का भ्रातृत्व और इनके दिव्य आचरण कहते और सुनते दु:ख और दोषों को हर लेते हैं। हे सखी! मैं इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहूँगी वह सब थोड़ा ही होगा, भला श्रीराम के भाई श्रीभरत ऐसे क्यों न हों?

हम सब सानुज भरतहिं देखे। भइनि धन्य जुबती जन लेखे।।
सुनि गुन देखि दशा पछिताहीं। कैकयि जननि जोग सुत नाहीं।।

भा०– हम सभी महिलायें छोटे भाई शत्रुघ्न जी के साथ श्रीभरत के दर्शन करके धन्य हो गईं हैं, श्रीभरत के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर सभी महिलायें विषादपूर्वक पश्चात्ताप कर रही हैं। कहती हैं, आह! कैकेयी माता के योग्य तो बेटा नहीं है अथवा, श्रीभरत जैसे उच्च आदर्श सम्पन्न बेटे के योग्य माता कैकेयी नहीं हैं।

कोउ कह दूषन रानिहिं नाहिन। बिधि सब कीन्ह हमहिं जो दाहिन।।
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी।।

भा०– कोई महिला कहने लगीं, अरे सखी! रानी कैकेयी का कोई दोष नहीं है? सब कुछ ब्रह्मा जी ने किया है, जो हमारे लिए दाहिन अर्थात् अनुकूल हैं। कहाँ हम लौकिक और वैदिक विधि से हीन, कुल और कर्म से भी मलीन अर्थात् सामान्य कर्म करके अपनी जीविका चलाने वाली, अनपढ़, संस्कारों से शून्य, साधारण स्त्रियाँ और कहाँ श्रीभरत जैसे श्रीरामभक्त शिरोमणि के दर्शन अर्थात् यदि श्रीराम का वनवास नहीं हुआ होता तो, हमको श्रीभरत के दर्शन कैसे होते?

बसहिं कुदेश कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरस पुन्य परिनामा।।
अस अनंद अचरज प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा।।

भा०– हम कुत्सित देश अर्थात् चोर, डाकूवाले देश में निवास करते हैं। हमारा गाँव भी कुगाँव है अर्थात् धार्मिक संस्कारों से शून्य है। हम कुबामा अर्थात् पृथ्वी के ही भोगों में आसक्त रहनेवालीं, भगवान् श्रीराम के भक्ति से हीन सामान्य स्त्रियाँ और कहाँ ये पुण्यों के प्रभाव से प्राप्त होनेवाले श्रीभरत का अपूर्व दर्शन, ये सब हमारे पुण्यों का फल है। हमने कोई पुण्य किया है, नहीं तो, अहैतुक अकारण कृपा करने वाले, विधि अर्थात् ब्रह्मा जी के भी विधाता भगवान् श्रीराम की अनुकूलता का फल है। इस प्रकार, श्रीभरत के दर्शनों से प्रत्येक ग्राम को आनन्द के साथ आश्चर्य हो रहा था, मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष जम गया हो अर्थात् अंकुरित हो गया हो।

दो०– भरत दरस देखत खुलेउ, मग लोगन कर भाग।
जनु सिंघलबासिन भयउ, बिधि बश सुलभ प्रयाग।।२२३।।

भा०– भरत जी के दर्शन करते ही मार्ग के लोगों का भाग्य खुल गया, मानो सिंघलद्वीप वासियों को संयोगवश प्रयाग सुलभ हो गया हो।

विशेष– आज की श्रीलंका ही सिंघलद्वीप है। आज भी वहाँ सिंघली जाति के लोग पाये जाते हैं। आज की श्रीलंका को रावण की लंका समझनी बड़ी भूल होगी, क्योंकि सेतुबन्ध से श्रीलंका की अधिक से अधिक दूरी पच्चीस किलोमीटर के अन्दर ही कही जा सकती है, जबकि सेतुबन्ध से लंका की दूरी कम से कम सौ योजन अर्थात् बारह सौ किलोमीटर है। यह लंका समुद्र में डूबी हुई है और यदि है भी तो उसे आस्ट्रेलिया माना जा सकता है। आज भी वहाँ के लोग अन्य देशवासियों की अपेक्षा बड़े होते हैं, जिन्हें हम लोग विनोद में कँगारू कहते हैं। भरत जी के प्रति गोस्वामी जी ने कदाचित् प्रयाग की उत्प्रेक्षा की है, क्योंकि यहाँ भी श्रीरामभक्तिरूपिणी गंगा जी, श्रीरामप्रेमरूपिणी यमुना जी और श्रीरामतत्त्वज्ञानरूपिणी सरस्वती जी विराजती हैं और भरत नाम का भी यही निर्वचन है। '**भ**' (भक्ति), '**र**' (श्रीराम प्रेमरस), '**त**' (तत्त्वज्ञान), **भम् च, रम् च, तम् च, इति भरतानि तानि सन्ति अस्मिन् इति भरतः।**

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।।
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा।।
मनही मन मागहिं बर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू।।

भा०– श्रीभरत अपने गुणों के सहित श्रीराम की गुणगाथाओं को अथवा, अपने गुणों पर सहित अर्थात् प्रेमपूर्वक अनुरक्त श्रीराम की गुणगाथाओं को सुनते हुए और श्रीरघुनाथ का स्मरण करते हुए चले जा रहे हैं। तीर्थों, मुनियों के आश्रमों तथा देवताओं के मंदिरों को देखकर, जलाशयों में निष्ठापूर्वक स्नान करते हैं तथा मुनियों और देवताओं को प्रणाम करते हैं। मन ही मन यही वरदान माँगते हैं कि, हे महर्षि और देवताओं! मेरे मन में श्रीसीताराम जी के श्रीचरणकमल के प्रति स्नेह हो जाये।

मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी।।
करि प्रनाम पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखन राम बैदेही।।

भा०– मार्ग में वनवासी कोल, किरात, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी तथा विषयों से उदासीन सन्यासी मिलते हैं। श्रीभरत जिस किसी को प्रणाम करके पूछते हैं, भैया! बताओ, श्रीलक्ष्मण, राम एवं भगवती सीता जी किस वन में निवास करते हैं?

ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनम फल लहहीं।।
जे जन कहहिं कुशल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे।।

भा०– वे सभी (कोल, किरात, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्यासी) प्रभु का सम्पूर्ण समाचार सुनाते हैं और श्रीभरत को निहारकर अपने जन्म का फल पा जाते हैं। जो लोग कहते हैं कि, हमनें श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को सकुशल देखा है, उनको श्रीभरत ने श्रीराम–लक्ष्मण के समान प्रिय माना।

एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी।।

दो०- तेहि बासर बसि प्रातहीं, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ।।२२४।।

भा०– इस प्रकार से सुन्दर वाणी में सभी से श्रीरामवनवास की कथायें पूछते हुए और सबसे सुनते हुए, उस दिन, रात्रि–विश्राम करके प्रातःकाल श्रीरघुनाथ का स्मरण करके आगे चले। श्रीभरत के ही समान सम्पूर्ण साथ अर्थात् समूह को श्रीरामदर्शन की लालसा है।

विशेष– यहाँ साथ शब्द सार्थ का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है मार्ग में जानेवाले एक ही प्रकार के मनुष्यों का समूह।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू।।
भरतहिं सहित समाज उछाहू। मिलिहैं राम मिटिहिं दुख दाहू।।

भा०– सभी मंगलमय शकुन हो रहे हैं, सबको सुख देने वाली, नेत्र और भुजायें फड़क रही हैं अर्थात् पुरुषों के दक्षिण नेत्र–भुजायें और महिलाओं के वाम नेत्र–भुजायें फड़क रही हैं। समाज के सहित श्रीभरत को बहुत उत्साह है कि श्रीराम मिलेंगे और दुःख तथा विरह के सन्ताप मिट जायेंगे।

करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके।।
शिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बश बोलहिं।।

भा०– जिसके हृदय में जैसी भावना है, उसके अनुसार सभी लोग मनोरथ कर रहे हैं और सब लोग प्रेम की मदिरा में छके हुए चले जा रहे हैं। सभी के अंग शिथिल हो गये हैं। वे मार्ग में लड़खड़ाते हुए चरणों से धीरे–धीरे चलते हैं और प्रेम के वश में होकर विह्वल अर्थात् व्याकुल होकर वचन बोलते हैं।

रामसखा तेहि समय देखावा। शैल शिरोमनि सहज सुहावा।।
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा।।

भा०– उसी समय श्रीराम के सखा (मित्र) केवट ने स्वभाव से सुन्दर पर्वतों के शिरोमणि श्रीचित्रकूट, कामद पर्वत, श्रीभरत को दिखाया, जिस कामदगिरि के समीप लगभग छह फीट दूर बायीं ओर विराजमान पयस्विनी नदी के तट पर श्रीसीता के सहित दोनों भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण जी निवास करते हैं।

विशेष– श्रीचित्रकूट पर्वत ही प्रभु श्रीराम के आगमन से कामद नाम से प्रसिद्ध हो गया, जो आज कामदगिरि, कामदेश्वर तथा कामतानाथ नाम से जाना जाता है। कामदगिरि की परिक्रमा लगभग पाँच किलोमीटर की है। आज भी कामदगिरि परिक्रमा के मध्य में उनकी बायीं ओर कामदपर्वत से लगभग छह फीट की दूरी पर ही पयस्विनी नदी का उद्गम स्थल ब्रह्मकुण्ड है। उसमें वर्षाकाल में जल आ जाता है।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा।।
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू।।

भा०– श्रीकामदगिरि के दर्शन करके, 'जानकी–जीवन श्रीराम जी की जय' कहते हुए, सभी अवधवासी दण्डवत् प्रणाम करने लगे (उसी समय से कामदगिरि की दण्डवती परिक्रमा प्रारम्भ हुई)। राजसमाज इस प्रकार प्रेम में मग्न हो गया, मानो रघुकुल के राजा श्रीराम वनवास पूर्ण करके श्रीअयोध्या लौट चले हों।

दो०– भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न शेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अह मम मलिन जनेषु।।२२५।।

भा०– उस समय श्रीभरत का जैसा प्रेम दृष्टिगोचर हुआ, उसे उस प्रकार से शेष भी नहीं कह सकते। (मुझ तुलसीदास जैसे) कवि को वह उसी प्रकार अनुभव में भी अगम्य है, जैसे अहंकार और ममता से मलिन प्राणियों में वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्मसुख अर्थात् ब्रह्मानन्द दुलर्भ होता है।

सकल सनेह शिथिल रघुबर के। गए कोश दुइ दिनकर ढरके।।
जल थल देखि बसे निशि बीते। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते।।

भा०– सभी अयोध्यावासी रघु अर्थात् सभी प्राणियों के वरणीय भगवान् श्रीराम के प्रेम में शिथिल होने के कारण प्रातःकाल से सूर्य भगवान् के अस्त होने तक, मात्र दो कोस अर्थात् लगभग छः किलोमीटर की ही यात्रा सम्पन्न कर सके अर्थात् दो कोस तक ही गये। श्रीराम के प्रिय और श्रीराम को प्रेम करने वाले श्रीभरत और उनके सहयात्री जल–स्थल देखकर रात में विश्राम किये। रात बीतने पर श्रीरघुनाथ के पर्णकुटी की ओर गमन किया।

उहाँ राम रजनी अवशेषा। जागे सीय सपन अस देखा।।
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तनु ताए।।
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी।।

भा०– वहाँ अर्थात् श्रीरघुनाथ जी की पर्णकुटी में विराजमान श्रीरामचन्द्र रात्रि के कुछ शेष रहते ही ब्रह्ममुहूर्त में जगे। श्रीसीता ने इस प्रकार स्वप्न देखा और जग कर प्रभु से बोलीं, भगवन्! मैंने अभी एक स्वप्न देखा है, मानो

आपके वियोग के तप से तपे हुए शरीरवाले भरत समाज–सहित श्रीचित्रकूट आये हुए हैं। सभी के मन उदास हैं, सभी दीन अर्थात् सब कुछ खोकर अभावग्रस्त तथा दु:खी दिखे, सभी सासुयें दूसरी जैसी विधवा–वेश में दिखीं।

सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबश सोच बिमोचन।।
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।।
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने।।

भा०– श्रीसीता के स्वप्न सुनकर भगवान् श्रीराम के नेत्र जल से भर गये और भक्तों का शोक नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम शोक के वश में हो गये तथा बोले, लक्ष्मण! यह अर्थात् प्रात:काल देखा हुआ सीता का स्वप्न अच्छा नहीं हो सकता। आज कोई हमें कठोर और अप्रिय समाचार सुनायेगा। ऐसा कह कर भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मण जी के साथ मंदाकिनी में स्नान किया और पुरारी अर्थात् त्रिपुरासुर के शत्रु, श्रीचित्रकूट में विराजमान पुराण प्रसिद्ध, सृष्टि के प्रारम्भिक शिवलिंग मत्यगजेन्द्रनाथ शङ्कर जी की पूजा करके साधुजनों का सम्मान किया।

छं०– सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिशि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए।।
तुलसी उठे अवलोकि कारन काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन आइ तेहि अवसर कहे।।

भा०– देव अर्थात् शिव जी एवं अन्य देवताओं का सम्मान करके, मुनियों का वन्दन करके अपनी पर्णकुटी में बैठे हुए प्रभु श्रीराम उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। उस समय आकाश में धूल थी। बहुत से पक्षी, हिरण व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु श्रीराम के आश्रम में गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि, यह दृश्य देखकर 'तु' अर्थात् तुरीय श्रीराम, **'ल'** अर्थात् श्रीलक्ष्मण, **'सी'** अर्थात् श्रीसीता, ये तीनों (श्रीराम, लक्ष्मण, सीता) उठकर खड़े हो गये। क्या कारण है यह जानने के लिए उनके चित्त में आश्चर्य भर गया। उसी अवसर पर आकर किरातों और कोलों ने सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया।

विशेष– यहाँ श्लेष अलंकार के बल से तुलसीदास पद तथा "**नामैकदेश ग्रहणे नाम ग्रहणम्**" अर्थात् नाम के एक अंग के ग्रहण से पूरे नाम का ग्रहण हो जाता है इस सिद्धान्त के अनुसार 'तु' से तुरीय श्रीराम, 'ल' से श्रीलक्ष्मण, 'सी' से श्रीसीता अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण, सीता का वाचक बना।

दो०– सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
शरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल।।२२६।।

भा०– तुलसीदास जी कहते हैं कि, कोल, किरातों से श्रीभरत के आगमन का सूचक, मंगलमय समाचार वचन सुनकर, श्रीराम का शरीर पुलक से भर गया और उनके मन में प्रमोद अर्थात् अनुकूल लाभ की प्रसन्नता हो गई। उनके शरद्कालीन कमल जैसे नेत्रों में स्नेह का जल भर आया।

बहुरि सोचबस भे सियरमनू। कारन कवन भरत आगमनू।।
एक आइ अस कहा बहोरी। सैन संग चतुरंग न थोरी।।

भा०– फिर श्रीसीतारमण भगवान् श्रीरामशोक वश हो गये। किस कारण से भरत का आगमन हुआ है? एक किरात ने आकर फिर ऐसा कहा, भरत के साथ तो बहुत–बड़ी चतुरंगिणी सेना है।

सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। इत पितु बच उत बंधु सँकोचू।।
भरत स्वभाव समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं।।

भा०– वह सुनकर श्रीराम को बहुत शोक हुआ। उधर पिता की वाणी इधर भाई का संकोच अर्थात् भरत स्वयं मुझे संकोच में डलवाने के लिए ही चतुरंगिणी सेना ला रहे हैं। उनकी यह धारणा है कि, इतने लोगों में किसी न किसी का तो भगवान् श्रीराम संकोच करेंगे ही। मन में भरत का स्वभाव समझकर प्रभु का चित्त न तो शांति पा रहा है और न ही स्थिरता। वे सोच रहे हैं कि, इस धर्मसंकट का कैसे समाधान हो?

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने।।
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू।।

भा०– तब स्वयं ही समाधान हो गया, श्रीराम ने यह जान लिया कि, भरत हमारे कहने में हैं अर्थात् मेरा कहना मान जायेंगे, क्योंकि वे चतुर और साधु पुरुष हैं। लक्ष्मण जी ने प्रभु के हृदय में खलबली तथा वैचारिक द्वन्द्व देखा, फिर वे समय के ही समान राजनीति से पूर्ण विचार कहने लगे।

बिनु पूँछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाईं।।
तुम सर्बग्य शिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी।।

भा०– हे इन्द्रियों के स्वामी ऋषिकेश भगवान्! मैं आपके बिना कुछ पूछे ही कह रहा हूँ (क्षमा कीजियेगा), क्योंकि समय पर सेवक की धृष्टता से वह धृष्ट नहीं माना जाता अर्थात् इस समय की धृष्टता से आप मुझे धृष्ट नहीं समझें। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों के शिरोमणि हैं। मैं आपका अनुगमन करनेवाला सेवक हूँ, इसलिए मैं यहाँ अपनी समझ कह रहा हूँ, कोई सिद्धान्त नहीं कह रहा हूँ।

दो०– नाथ सुहृद सुठि सरल चित, शील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान।।२२७।।

भा०– हे भगवन्! आप सबके स्वामी, सुन्दर हृदयवाले, सबके मित्र, अत्यन्त सरल चित्त, चरित्र, स्वभाव और स्नेह के निधान अर्थात् कोश हैं, इसलिए आप सब पर अपने ही समान प्रेम और विश्वास हृदय में जानते हैं।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बश होहिं जनाई।।
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना।।
तेऊ आजु राज पद पाई। चले धरम मरजाद मिटाई।।

भा०– परन्तु विषयी जीव प्रभुता पाकर मोह के वश होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और स्वयं को प्रकट कर देते हैं। यह सारा संसार जानता है कि, भरत राजनीति में प्रेम रखते हैं। वे चतुर और साधु हैं, उन्हें प्रभु अर्थात् आप श्रीराम के चरणों में प्रीति भी है। वे भी आज राजपद पाकर अर्थात् अवधराज की पदवी पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा कर श्रीचित्रकूट के लिए चल पड़े हैं।

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनबास एकाकी।।
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू।।

भा०– भरत कुटिल और दुष्ट हैं। वे कुसमय देखकर श्रीराम को वनवास में अकेले जानकर मन में कुमंत्रणा करके सेना सजाकर निष्कंटक अर्थात् शत्रुविहीन राज्य करने के लिए आये हुए हैं।

विशेष– आवेश में श्रीलक्ष्मण, भले ही श्रीभरत की निन्दा कर रहे हैं, परन्तु उनके मुख से सरस्वती जी कुछ दूसरा ही कह रहीं हैं। यहाँ सब कुछ द्वयर्थक है। श्रीलक्ष्मण की जिज्ञासा है, क्या राजपदवी पाकर श्रीभरत धर्ममर्यादा का विचार कर आये हैं? यद्यपि श्रीभरत की सहायक बनी बन्धुरूपिणी माता कैकेयी कुटिल हैं, उसने कुअवसर देखा है, परन्तु क्या श्रीभरत ऐसे हैं? क्या वे श्रीराम को वन में अकेले जानते हैं? क्या उनके मन में

कुमंत्रणा है? क्या वे निष्कंटक राज्य करना चाहते हैं? अर्थात् नहीं। वे तो श्रीराम के दर्शन करके प्रभु का प्रसाद पाकर कृतकृत्य होंगे।

कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई।।
जौ जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली।।

भा०– करोड़ों प्रकार से कुटिलता करके दोनों भाई भरत–शत्रुघ्न सेना इकट्ठी करके आये हैं। यदि हृदय में कपट भरी कुचाल नहीं होती तो रथ, घोड़े और हाथियों के समूह किसे अच्छे लगते?

विशेष– यहाँ भी श्रीलक्ष्मण की वक्रोक्ति है, क्या दोनों भाई कुटिलता के कारण सेना इकट्ठी करके आये हैं? अर्थात् नहीं। सभी प्रभु के दर्शन करने और प्रभु को श्रीअवध लौट चलने की प्रर्थना करने आये हैं। श्रीलक्ष्मण नकार का चौपाई के उत्तरार्द्ध में अन्वय करके कहते हैं, *केहि न सोहाति रथ बाजि गजाली* यदि भरत जी के हृदय में कपट और कुचाल होता तो वे प्रसन्न मन से आये होते, क्योंकि रथ, हाथी, घोड़े किसे अच्छे नहीं लगते? फिर भरत पैदल क्यों चले आये? इससे सिद्ध हुआ कि, उनके मन में कुचाल नहीं है, क्योंकि विषयी जीव प्रभुता पाकर अहंकारी होते हैं, न कि भरत जैसे।

भरतहिं दोष देइ को जाए। जग बौराइ राज पद पाए।।

दो०– शशि गुरु तिय गामी नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर यान।
लोक बेद ते बिमुख भा, अधम न बेन समान।।२२८।।
सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।।

भा०– श्रीलक्ष्मण कहते हैं, कोई भरत को क्यों दोष दे? राजपद पाकर संसार ही बावला हो जाता है। ब्राह्मणों का राज्य पाकर अर्थात् ब्रह्मा जी द्वारा ब्राह्मणों और वनस्पतियों का राजा बनाये जाने पर चन्द्रमा गुरुपत्नी गामी बन गया। राजा नहुष ब्रह्महत्या के कारण इन्द्र के मानससरोवर में छिप जाने पर इन्द्र का पद पाकर ब्राह्मणों द्वारा ढोयी जानेवाली पालकी पर चढ़ा। राजा वेन जम्बूद्वीप का राज पाकर लोक और वेद से विमुख हुआ। उसके समान कोई भी नीच नहीं हो सकता। सहस्रबाहु (कार्तवीर्य), इन्द्र और त्रिशंकु इनमें से किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया अर्थात् सभी लोग पागल हुए। सहस्रार्जुन पागल होकर जमदग्नि की कामधेनु हर लाया और परशुराम जी द्वारा मारा गया। इन्द्र अधिकार के मद में अहल्या जी से ही अनुचित व्यवहार कर बैठा। त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाने की ठानी, इस प्रकार राजमद ने किसे नहीं कलंक दिया।

विशेष– यहाँ श्रीलक्ष्मण कहते हैं कि, श्रीभरत को दोष देना ठीक नहीं है, क्योंकि राजमद से जगत बावला होता है। श्रीभरत जगत से ऊपर हैं। चन्द्रमा, नहुष, वेन, सहस्रार्जुन एवं इन्द्र तथा त्रिशंकु श्रीभरत की कक्षा से बहुत नीचे हैं।

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु ऋन रंच न राखब काऊ।।
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई।।
समुझि परिहि सोउ आजु बिशेषी। समर सरोष राम मुख पेखी।।

भा०– (लक्ष्मण जी कहते हैं कि) भरत ने यह उचित ही उपाय किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी भी थोड़े अंश में भी नहीं रखना चाहिये अर्थात् दोनों को समाप्त कर देना चाहिये, परन्तु भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, उन्होंने श्रीराम को असहाय जानकर उनका निरादर किया है। वह भी आज युद्ध में क्रुद्ध हुए श्रीराम के

मुख को देखकर उन्हें विशेष रूप से समझ में आ जायेगा अर्थात् जब मैं (लक्ष्मण) श्रीराम की ओर से भरत के विरूद्ध युद्ध करूँगा तब उन्हें इसका संज्ञान होगा कि, श्रीराम असहाय हैं या ससहाय।

विशेष- लक्ष्मण की सरस्वती जी कहती हैं कि, श्रीचित्रकूट आकर श्रीभरत ने बहुत उचित प्रयत्न किया है। यहाँ वे भगवान् श्रीराम के दर्शन करके अपने बड़े भ्राता के ऋण से और कलंकरूप शत्रु से मुक्त हो जायेंगे। क्या श्रीभरत ने एक भी अच्छा कार्य नहीं किया है? क्या श्रीराम को असहाय जानकर उनका उन्होंने निरादर किया है? अर्थात् नहीं। उनका आदर करने के लिए ही इतनी बड़ी सेना के साथ गुरुजन, मंत्री तथा माताओं को लेकर श्रीभरत आये हैं। समर अर्थात् स्मर कामदेव भी जिसके सौन्दर्य को देखकर अपने सौन्दर्य पर सरोष अर्थात् क्रुद्ध हो जाता है, ऐसे श्रीराम के मुखारविन्द को देखकर वह रहस्य भी विशेषरूप से समझ में आ जायेगा। यदि श्रीभरत, श्रीराम का निरादर करते तो उनके प्रति श्रीराम का मुख इतना भावुक क्यों होता?

इतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटप पुलक मिस फूला।।
प्रभु पद बंदि शीष रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी।।

भा०- इतना कहते–कहते लक्ष्मण जी को राजनीति का रस अर्थात् आनन्द विस्मृत हो गया। रोमांच के व्याज से श्रीलक्ष्मण का वीररस पुष्पित हो उठा अर्थात् युद्ध के लिए उत्साहित होने के कारण लक्ष्मण जी के रोम खड़े हो गये और ऐसा लगा, मानो वीररस रूप वृक्ष में पुष्प आ गये हैं। प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों को वन्दन करके, उनकी धूल मस्तक पर रखकर, श्रीलक्ष्मण सत्य और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले–

विशेष- वस्तुतः भरत जी के सम्बन्ध में इतने मधुर उद्‌गार कहते–कहते लक्ष्मण जी को नीतिरस अर्थात राजनैतिक दृष्टि से वन में शान्तिपूर्वक रहने का सैद्धान्तिक आनन्द भूल गया, लक्ष्मण जी के मन में एक आशंका जगी कि कदाचित् श्रीभरत के चित्रकूट चले आने पर श्री अवध नगर को सूना जानकर रावणादि विपक्षी श्रीअवध पर आक्रमण करने का मन नहीं बना रहे हों। अतएव उनसे मुझे युद्ध करना चाहिये। अतएव रावणादि से युद्ध करने के लिये उत्साहित श्रीलक्ष्मण का वीररस रूप वृक्ष पुलकावलि के बहाने से पुष्पित हो उठा। कुमार लक्ष्मण प्रभु को वन्दन कर श्रीचरणों की धूलि सिरपर रखकर अपना स्वाभाविक बल कहते हुए बोले युद्ध के लिये उत्साहित होना मेरा कोई अनुचित कार्य नहीं है, क्योंकि भैया भरत आपश्री से मिलने चित्रकूट पधार रहे हैं। आप उनसे प्रसन्नतापूर्वक मिलिये, यदि रावण इस अवसर का लाभ उठाकर श्रीअवध पर आक्रमण करने जा रहा हो तो मैं उसे रोकूँगा। क्योंकि मैं रावण से थोड़ा भी नहीं डरता, आप साथ में हैं और धनुष हमारे हाथ में है। श्रीअयोध्या जाने के लिये रावण का यही मार्ग होगा अतः मैं उसे यहीं रोककर समाप्त कर दूँगा।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा।।
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे।।

भा०- हे नाथ! आप मेरा थोड़ा भी अनुचित मत मानियेगा। भरत ने हमें थोड़ा नहीं चिढ़ाया है अर्थात् बहुत चिढ़ाया है। कहाँ तक सहें और अपना मन मार कर कब तक रहें, आप हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में।

दो०- छत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान।
लातहु मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान।।२२९।।

भा०- मेरी क्षत्रिय जाति है, रघुकुल में जन्म हुआ, मैं श्रीराम का छोटा भ्राता हूँ, यह सारा संसार जानता है। धूलि के समान कौन छोटा है, फिर भी लात अर्थात् पैर के मारने से वह धूल भी सिर पर चढ़ जाती है, तो फिर इतने अधिकारों को प्राप्त करके भरत के अपमान पर मेरा उत्तेजित होना स्वाभाविक है।

विशेष– श्रीलक्ष्मण की श्रीसरस्वती कहती हैं कि, श्रीभरत ने हमें थोड़ा भी नहीं चिढ़ाया अर्थात् हमारा सम्मान किया है। जबकि श्रीभरत की जाति क्षत्रिय है, उनका जन्म रघुकुल में हुआ, वे श्रीराम के छोटे भाई हैं, यह जगत जानता है। इतने पर भी श्रीभरत कितने विनम्र हैं। जबकि सबसे नीच धूल भी लात के मारने से सिर पर चढ़ जाती है, परन्तु संसार में अपमानित होने पर भी श्रीभरत के मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं है। वे कहाँ तक सहें और कहाँ तक अपना मन मार कर रहें। उनके पास तो कोई नहीं है। हमारे पास तो स्वयं श्रीराघव सरकार और धनुष भी है।

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा।।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि शरासन सायक हाथा।।

भा०– लक्ष्मण जी ने उठकर हाथ जोड़कर भगवान् श्रीराम से राजाज्ञा माँगी, मानो सोता हुआ वीररस जग गया हो। सिर पर जटा बाँधकर कटि–प्रदेश में तरकस कसकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर हाथ में धनुष लेकर श्रीलक्ष्मण बोले–

विशेष– यहाँ श्रीलक्ष्मण की सरस्वती जी कहती हैं कि, श्रीलक्ष्मण, भरत जी के साथ युद्ध करने के लिए नहीं प्रत्युत् श्रीभरत के चित्रकूट आ जाने पर, श्रीअवध को सूना जानकर रावण द्वारा सम्भावित आक्रमण के प्रतिकार पर चिन्तित हुए। प्रभु श्रीराम को आश्वस्त करते हुए श्रीलक्ष्मण, रावण के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हैं, इसलिए उन्होंने जटा बाँधकर, कटि में तरकस कस कर, हाथ में धनुष–बाण लेकर रावण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रभु से राजाज्ञा माँगी।

आजु राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।।
राम निरादर कर फल पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई।।
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिसि पाछिल आजू।।

भा०– आज मैं श्रीरामसेवक का यश ले लूँ, युद्ध में भरत को शिक्षा दूँ। श्रीराम का निरादर अर्थात् अपमान का फल पाकर दोनों भाई युद्ध की शैय्या पर सोयें। बहुत ही अच्छे प्रकार से आज सम्पूर्ण समाज श्रीचित्रकूट में आ बना है। मैं अपना पिछला क्रोध प्रकट कर लूँ अर्थात् श्रीरामवनवास के समय कैकेयी और भरत पर उत्पन्न क्रोध को जो मैंने छिपा लिया था, वह प्रकट कर लूँ।

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।।
तैंसेहिं भरतहिं सैन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।।
जौ सहाय कर शङ्कर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई।।

भा०– मैं श्रीराम की दुहाई करके कहता हूँ कि, जिस प्रकार सिंह, हाथियों के समूह को मार डालता है, जिस प्रकार बाज पक्षी, लवा अर्थात् बटेर को लपेट लेता है, उसी प्रकार मैं सेना के सहित एवं शत्रुघ्न के साथ भरत को अपमानित करते हुए मार डालूँ। यदि शङ्कर जी भी सहायता करें तो भी मैं युद्ध में भरत को मार सकता हूँ।

विशेष– यहाँ सरस्वती जी पूर्ववत् कुमार श्रीलक्ष्मण से वक्रोक्ति विधा द्वारा अपना मन्तव्य प्रस्तुत करती हैं। श्रीलक्ष्मण वस्तुतः प्रश्न की मुद्रा में जगत् से प्रश्न करते हैं कि, क्या मैं श्रीभरत को युद्ध की शिक्षा दूँ अर्थात् क्या मैं भैया भरत से प्रार्थना करूँ कि, मेरी अनुपस्थिति में आपको अयोध्या पर संभावित शत्रुओं के आक्रमण का कठोरता से उत्तर देना होगा, जिससे श्रीराम के निरादर का फल पाकर दोनों भाई रावण, कुम्भकर्ण यदि अयोध्या पर आक्रमण करने की इच्छा चाहें तो भरत जी के हाथों युद्ध की शैय्या पर सो जायें। यदि इस समय श्रीभरत के चित्रकूट आ जाने पर अयोध्या को सूनी जानकर रावण आक्रमण करने की सोचे तो मैं स्वयं उसका उत्तर देने के

लिए कुछ क्षणपर्यन्त श्रीअवध की रक्षा करने के लिए तैयार हूँ और देवताओं के अत्याचार से उत्पन्न क्रोध को मैं आज रावण पर प्रकट कर दूँगा, इसीलिए मैंने सिर पर जटा, कटि में तरकस बाँध लिया है और हाथ में धनुष-बाण ले लिया है। आप से इसलिए राजाज्ञा माँग रहा हूँ। २३०वें दोहे की सातवीं पंक्ति में प्रयुक्त 'निदरि' शब्द निराधार नहीं प्रत्युत् श्रीभरत का विशेषण है अर्थात् सरस्वती जी की दृष्टि में लक्ष्मण जी का यह वक्तव्य है कि, प्रभु के दर्शन के लिए सेना सहित श्रीचित्रकूट में पधारे हुए छोटे भाई सहित 'भरतहिं' अर्थात् भरत जी को 'निदरि' यानी अपमानित करके श्रीअवध पर आक्रमण करने वाले रावण, कुम्भकर्ण को उसी प्रकार युद्ध में मार सकता हूँ, जैसे सिंह हाथी को और बाज बटेर को मार डालता है, यदि रावण की सहायता करने के लिए शङ्कर जी भी आयें तो भी मैं आपकी कृपा से उसे युद्ध में मार सकता हूँ। अतः आप श्रीभरत की अनुपस्थिति में श्रीअयोध्या पर रावण के आक्रमण की सम्भावना से चिन्तित न हों। तब आकाशवाणी ने लक्ष्मण जी को इसलिए रोक दिया, जिससे रावण द्वारा प्रभु के हाथों माँगी हुई मृत्यु का वरदान सफल हो सके।

दो०- अति सरोष माखे लखन, लखि सुनि सपथ प्रमान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान।।२३०।।

भा०- श्रीलक्ष्मण को युद्ध में अत्यन्त आमर्षित अर्थात् आवेशित और क्रुद्ध देखकर एवं उनके प्रामाणिक शपथ को सुनकर सभी लोकपाल और लोक भयभीत होकर अपने स्थान से भागने की इच्छा करने लगे।

जग भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबल बिपुल बखानी।।
तात प्रताप प्रभाव तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा।।
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ।।
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं।।

भा०- सारा संसार भय में मग्न हो गया, अर्थात् डूब गया। उस समय श्रीलक्ष्मण के विपुल अर्थात् बहुत-बड़ी बाहुबल की प्रशंसा करके आकाशवाणी हुई, हे तात! आपके प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है? परन्तु अनुचित अथवा उचित जो भी कुछ कार्य हो उसे, जो समझकर करता है, उसे सभी लोग भला कहते हैं। जो लोग एकाएक कोई कार्य करके फिर पीछे से पछताते हैं वेद के विद्वान कहते हैं कि, वे पण्डित नहीं प्रत्युत् मूर्ख होते हैं।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने।।
कही तात तुम नीति सुहाई। सब ते कठिन राजमद भाई।।

भा०- देववचन सुनकर श्रीलक्ष्मण सकुचा गये। श्रीराम तथा सीता जी ने उनका आदरपूर्वक सम्मान किया (उन्हें पास बैठाया)। भगवान् श्रीराम बोले, तात्! अर्थात् प्रिय भाई! तुमने सुन्दर नीति कही है कि, राजमद सब से कठिन होता है।

जो अँचवत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई।।
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच कहँ सुना न दीसा।।

भा०- जिसे पीकर वे राजा बावले होते हैं, जिन्होंने सन्तों की सभा की सेवा नहीं की है अर्थात् जिन्होंने सत्संग नहीं किया है। हे लक्ष्मण! सुनो भरत जी के समान भला व्यक्ति विधाता के प्रपंच (सृष्टि) में न तो सुना गया है और न ही देखा गया है।

दो०- भरतहि होइ न राजमद, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ।।२३१।।

भा०- ब्रह्माजी, विष्णु जी एवं शिव जी का पद अर्थात् अधिकार (पदवी) पाकर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता। फिर क्या कभी काँजी अर्थात् दही जमाने वाली खटाई की दो–चार बूँदों से सम्पूर्ण क्षीरसागर नष्ट हो सकता है अर्थात् फट सकता है?

तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई। गगन मग न मकु मेघहिं मिलई।।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी।।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहिं भाई।।

भा०- चाहे मध्याह्न के सूर्य को अन्धकार निगल जाये, चाहे आकाश मार्ग से रहित होकर बादल में मिल जाये, चाहे गौ के खुर के जल में घड़े से जन्म लेनेवाले अगस्त्य जी (जिन्होंने समुद्र को भी सोख लिया था।) डूब जायें, चाहे पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे, चाहे मच्छर की फूँक से सुमेरु पर्वत उड़ जाये। हे भाई! इतने पर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता।

लखन तुम्हार शपथ पितु आना। शुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।
सुगुन छीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता।।
भरत हंस रबिबंश तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी।।

भा०- हे लक्ष्मण! तुम्हारी शपथ और पिताश्री की शपथ करके मैं बहुत सत्य कह रहा हूँ कि, भरत के समान पवित्र और सुन्दर भाई इस संसार में नहीं है। हे भैया लक्ष्मण! शुभ गुणरूप दूध और दुर्गुण रूप जल को मिला कर विधाता अर्थात् ब्रह्मा जी सृष्टि करते हैं। तात्पर्य यह है कि, जैसे दूध में मिले हुए जल को हंस के अतिरिक्त कोई भी अलग नहीं कर सकता, उसी प्रकार शुभगुणों और दुर्गुणों से मिश्रित संसार में से, दुर्गुणों और सद्‌गुणों को पृथक् करना सबके वश का नहीं है। सूर्यवंशरूप तालाब से जन्म लेकर भरतरूप हंस ने गुणों और दोषों का विभाग कर दिया। अवगुणरूप जल को छोड़कर गुणरूप दूध को ग्रहण करके भरत ने अपने यश से जगत में प्रकाश कर दिया।

विशेष- इस प्रकरण में ग्यारह (११) पंक्तियों द्वारा भगवान् श्रीराम ने श्रीलक्ष्मण के रौद्रभाव को शान्त करते हुये उन्हें श्रीभरत के प्रति आश्वस्त करते हुये यह संकेत किया कि भरत श्रीअवध की सुरक्षा के पक्ष में भी बहुत जागरूक हैं, तुम्हारी आशंका से पूर्व ही भरत को अपनी अनुपस्थिति में श्रीअवध पर रावणादि के आक्रमण की संभावना की आशंका हो गयी थी। भरत अवध का उत्तराधिकार पाकर पागल नहीं हुये, उन्होंने श्रीचित्रकूट आने के पूर्व ही श्रीअवध की सुरक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था कर ली, यथा–

भरत जाइ घर कीन्ह विचारू। नगर बाजि गज भवन भँडारू।।
शंपति सब रघुपति कै आही। जौ बिनु जतन चलौं तजि ताही।।
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप शिरोमनि साइँ दोहाई।।
करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई।।
अस विचारि शुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले।।
कहि सब मरम धरम भल भाखा। जो जेहिं लायक सो तेहिं राखा।।

अर्थात् भरत जी ने स्वयं विचार किया कि श्रीराम की संपत्ति और अवध को असुरक्षित छोड़कर जाना बहुत ही अनुचित होगा, परिणाम में मुझ पर ही राष्ट्रद्रोह का पाप लगेगा। ऐसा विचार कर श्रीभरत ने पवित्र सेवकों और सुरक्षाधिकारियों को स्थल-स्थल पर बड़ी ही कुशलता से नियुक्त किया, और संभावित आक्रमणों को रोकने के लिये सम्पूर्ण गोपनीय मर्मों का निर्देश किया। प्रभु श्रीराम श्रीलक्ष्मण पर व्यंग्य करते हुये कहते हैं कि मेरे स्नेह में बावले होकर तुम उत्तरदायित्वों से मुकरे, जब कि मैंने तुम्हें श्रीअवध की रक्षा में नियुक्त करना चाहा था। परंतु भरत ने ऐसा नहीं किया, वे तो श्रीअवध की सुरक्षा सुनिश्चित करके ही चित्रकूट आये हैं। अत: भरत हंस हैं तुम नहीं। "**भरत हंस रबिबंस तड़ागा**"।

कहत भरत गुन शील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।।

भा०- भरत जी के गुण, शील (चरित्र) और स्वभाव का वर्णन करते-करते रघुकुल के राजा श्रीराम प्रेमसागर में मग्न हो गये।

दो०- सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु।।२३२।।

भा०- श्रीराम जी की वाणी सुनकर और श्रीभरत पर प्रभु का प्रेम देखकर, सभी देवता श्रीराम जैसे कृपा के भवन अर्थात् स्वामी की सराहना करने लगे।

* मासपारायण, सत्रहवाँ विश्राम *

जौ न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को।।
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम बिनु रघुनाथा।।
लखन राम सिय सुनि सुर बानी। अति सुख लहेउ न जाइ बखानी।।

भा०- (देवता कहने लगे) हे श्रीरघुनाथ! यदि श्रीभरत का जन्म नहीं हुआ होता तो सम्पूर्ण धर्मों की धुरी तथा पृथ्वी को कौन धारण करता? श्रीभरत के गुणों की गाथा कविकुल के लिए अगम्य है अर्थात् आदि कवि से लेकर अद्यावधि उसे पूर्णतया कोई नहीं कह पाया। ऐसे कवि समूहों के लिए अगम्य श्रीभरत की गुणगाथा आपके बिना कौन जान सकता है? देवताओं की वाणी सुनकर श्रीलक्ष्मण, राम एवं सीता जी ने अत्यन्त सुख प्राप्त किया, जिसे कहा नहीं जा सकता।

इहाँ भरत सब सहित सहाए। मंदाकिनी पुनीत नहाए।।
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा।।
चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथ लघु भाई।।

भा०- यहाँ अर्थात् श्रीअवध के वनयात्री समाज में सभी सहागन्तुकों के साथ श्रीभरत ने पवित्र मन्दाकिनी जी में स्नान किया। सभी लोगों को मन्दाकिनी के समीप रखकर, माताश्री कौसल्या, गुरुदेव वसिष्ठ जी एवं मंत्रियों से अनुमति माँगकर श्रीभरत अपने साथ निषादों के राजा गुह एवं छोटे भ्राता शत्रुघ्न जी को लेकर जहाँ सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ रघुकुल के राजा श्रीराम विराज रहे थे, वहाँ के लिए चल पड़े।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन माहीं।।
राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।।

दो०- मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर।।२३३।।

जौ परिहरहिं मलिन मन जानी। जौ सनमानहिं सेवक मानी।।
मोरे शरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं।।

भा०- श्रीभरत माता कैकेयी का कुकृत्य समझकर, मन में संकोच कर रहे हैं और करोड़ों कुतर्क अर्थात् प्रतिकूल शंका-आशंका कर रहे हैं। मन में सोचते हैं, अहा! कदाचित् मेरा नाम सुनकर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी अपना निवास स्थान छोड़ उठकर अन्यत्र न चले जायें। मुझे माता कैकेयी के मत में मानकर मेरे लिए वे जो कुछ भी करेंगे, वह थोड़ा ही होगा। अथवा मुझे अपने पक्ष में समझकर मेरे पाप और अवगुणों को क्षमा करके, प्रभु मेरा आदर करेंगे। यदि श्रीराम मुझे मलिन मनवाला जानकर मेरा त्याग कर दें, अथवा यदि मुझे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें। किसी भी स्थिति में श्रीराम की पनहीं ही मेरे लिए शरण अर्थात् रक्षक और आश्रय है। श्रीराम एकमात्र सुन्दर स्वामी हैं, दोष मुझ सेवक का ही है।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नबीना।।
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह शिथिल सब गाता।।

भा०- संसार में चातक और मछली ही यश के पात्र हैं, क्योंकि वे अपने नियम और प्रेम में निपुण अर्थात् कुशल हैं तथा उनका यह नियम और प्रेम नित्य नया बना रहता है। अर्थात् चातक जैसा कोई नियम का निर्वाह नहीं कर सकता और मछली जैसा किसी का प्रेम नहीं हो सकता। चातक स्वाति के जल को ही पीने का नियम लेकर उसका मरण पर्यन्त निर्वाह करता है और मछली जल से जो प्रेम करता है, उसका वह यावत् जीवन निर्वाह करता है। मैं इन दोनों की अपेक्षा छोटा हूँ, क्योंकि न तो मैं चातक का नियम निभा पाया और न ही मछली का प्रेम। इस प्रकार, मन में विचार करते हुए श्रीभरत मार्ग में चले जा रहे हैं। उनके सम्पूर्ण अंग संकोच और स्नेह से शिथिल पड़ गये।

फेरति मनहिं मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ।।
भरत दशा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाह जल अलि गति जैसी।।

भा०- श्रीभरत के मन को माता कैकेयी द्वारा की हुई करनी लौट जाने के लिए वाध्य कर रही है, परन्तु धीरज धोरी अर्थात् *धैर्य-धौरेय* धीरज की धुरी को धारण करने वाले भरत भगवान् श्रीराम की भक्ति के बल से आगे चले जा रहे हैं। जब श्रीरघुनाथ के स्वभाव का स्मरण करते हैं तब मार्ग में श्रीभरत के चरण शीघ्रता से पड़ने लगते हैं। उस समय श्रीभरत की दशा किस प्रकार की है, जैसे जल के प्रवाह में जल के भ्रमर की हो जाती है। अर्थात् जैसे जल का भ्रमर (काला कीड़ा) कभी जल के सामान्य होने पर रुक-रुक कर चलता है और कभी जल की तीव्रता में शीघ्रता से चलता है। उसी प्रकार, श्रीभरत का मन माता के कुकृत्य का स्मरण करके कभी उन्हें लौटने को विवश करता है, कभी भक्ति के बल से धैर्य धारण करके श्रीभरत सामान्य गति से चलते हैं और कभी प्रभु के स्वभाव का स्मरण करके जल्दी-जल्दी चलने लगते हैं।

देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।।

दो०- लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोच होइहिं हरष, पुनि परिनाम बिषाद।।२३४।।

भा०– भरत जी के शोक और स्नेह को देखकर, उस समय निषादराज गुह विदेह हो गये, उन्हें देह की सुधि भूल गई। भरत जी के लिए मांगलिक शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर (श्रीभरत के मुख से) विचार करके निषादराज कहने लगे, भद्र! आपका शोक मिट जायेगा, प्रसन्नता होगी, फिर परिणाम में दुःख रूप फल भी होगा।

विशेष– इस यात्रा में गुह निषाद की ये तीनों बातें सत्य हुईं। श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी के दर्शनों से श्रीभरत का शोक मिट गया। श्रीराम–भरतमिलाप से श्रीभरत को हर्ष हुआ और पुनः प्रभु की पादुका के साथ लौटने पर प्रभु के वियोग से श्रीभरत को विषाद भी तो हुआ।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ नियराने।।
भरत दीख बन शैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू।।

भा०– भरत जी ने सेवक अर्थात् केवट निषादराज गुह के सभी वचनों को सत्य माना और भगवान् श्रीराम के आश्रम के निकट जा पहुँचे। श्रीभरत ने वन और श्रीचित्रकूट पर्वत का जब साज–समाज देखा तो वे इतने प्रसन्न हुए, मानो भूखे को सुन्दर भोजन मिल गया हो।

विशेष– विनय पत्रिका पद संख्या २१९ में भक्ति को ही अमृत भोजन कहा गया है, *पेटभरि तुलसीहिं जिवाईय भगत सुधा सुनाज।* यही सुनाज श्रीचित्रकूट में श्रीभरत जी को उपलब्ध हुआ।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिधि ताप पीड़ित ग्रह मारी।।
जाइ सुराज सुदेश सुखारी। होइ भरत गति तेहि अनुहारी।।

भा०– जैसे टिड्डी आदि छह ईतियों के भय से दुःखी तथा दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के तापों से एवं ग्रह तथा महामारी से पीड़ित प्रजा सुन्दर राज्य और सुन्दर देश को पाकर सुखी हो जाती है। उसी प्रकार की श्रीभरत की गति हुई, अर्थात् वे भी महाराज दशरथ की मृत्युरूप ईति के भय से दुःखी थे, उन्हें भी श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी के वनवास से तीनों प्रकार के ताप सता रहे थे। उन्हें मंथरारूप ग्रह दशा (साढ़े साती) शनिश्चर की महादशा कष्ट दे रही थी और वे कैकेयी के कुकृत्यरूप महामारी से भी पीड़ित थे। अब उन्हें विवेक के सुराज्य और श्रीचित्रकूट देश में शान्ति मिल रही है।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा।।
सचिव बिराग बिबेक नरेशू। बिपिन सुहावन पावन देशू।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी के निवास से वन की सम्पत्ति सुशोभित हो रही है। अथवा, श्रीराम के निवासरूप सम्पत्ति से वन इस प्रकार सुशोभित है, जैसे सुन्दर राजा को प्राप्त करके प्रजा सुखी हो गई हो। वहाँ वैराग्य ही मंत्री है और विवेक राजा, सुहावना वन ही उस राज्य का सुन्दर देश है।

भट जम नियम शैल रजधानी। शांति सुमति शुचि सुंदरि रानी।।
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ।।

भा०– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम तथा तप, शौच सन्तोष, स्वाध्याय (अपनी वैदिक शाखा का अध्ययन) और ईश्वर का प्रणिधान ये पाँच नियम ही विवेकरूप महाराज के वीर सैनिक हैं। श्री चित्रकूट पर्वत ही विवेक महाराज की राजधानी है। शान्ति ही सुन्दर बुद्धिवाली पवित्र तथा सुन्दर महारानी है। ये विवेकरूप महाराज राज्य के सभी अंगों से परिपूर्ण एवं भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों के आश्रित तथा प्रसन्न मन वाले हैं।

दो०– जीति मोह महिपाल दल, सहित बिबेक भुआल।
करत अकंटक राज पुर, सुख संपदा सुकाल।।२३५।।

भा०– यह विवेकरूप महाराज, मोहरूप राजा को जीतकर, सुख–सम्पत्ति और सुन्दर समय के साथ, अपने श्रीचित्रकूट के नगर में निष्कंटक अर्थात् शत्रुओं से विहीन होकर राज्य कर रहा है।

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे।।
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना।।

भा०– उसका वन ही प्रदेश है तथा वन के परिसर में मुनियों के अनेक निवास स्थान ही मानो उस राज्य के पुर, नगर, ग्राम तथा छोटे–छोटे खेड़े अर्थात् पुरवे हैं। अनेक प्रकार के विविध रंगों के पक्षी और अनेक मृग ही इस राज्य के प्रजाओं के समाज हैं, जो बखाने नहीं जा सकते।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साज सराहा।।
बयर बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सैन चतुरंगा।।

भा०– गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, वराह (शूकर), भैंसा, बैल, इनके साज देखकर, इनकी प्रशंसा की जाती है। ये सब पारस्परिक विरोध को छोड़कर जहाँ–तहाँ एक साथ वन में भ्रमण करते हैं। यही मानो विवेक रूप राजा की चतुरंगिणी सेना है।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं।।
चक चकोर चातक शुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन।।
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा।।
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद मंगल मूला।।

भा०– झरने झर रहे हैं अर्थात् जल प्रवाहित कर रहे हैं। मतवाले हाथी गरज रहे हैं, मानो ये ही विवेकरूप राजा के अनेक प्रकार के नगारे बज रहे हैं। चकवे, चकोर, पपीहा, तोते, कोयल के समूह और सुन्दर हंस प्रसन्न मन से बोल रहे हैं। भ्रमर गा रहे हैं, मोर नाच रहे हैं, मानो इस सुन्दर राज्य में चारों ओर मांगलिक उत्सव हो रहे हैं। लतायें, वृक्ष और तृण (घास) सब पुष्प से युक्त हैं। इस प्रकार, वन का सम्पूर्ण समाज ही आनन्द और मंगल का आश्रय बन गया है।

दो०– राम शैल शोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम।।२३६।।

भा०– भगवान् श्रीराम के पर्वत श्रीचित्रकूट की शोभा देखकर, श्रीभरत के हृदय में अत्यन्त प्रेम है, जैसे तपस्या का फल पाकर, नियम के समाप्त होने पर, तपस्वी सुखी हो गया हो।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।।
नाथ देखियहिं बिटप बिशाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला।।
तिन तरुबरन मध्य बट सोहा। मंजु बिशाल देखि मन मोहा।।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला।।
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुषमा सी।।
ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई।।

भा०– तब केवट अर्थात् निषादराज गुह दौड़कर, ऊँचे स्थान पर चढ़कर दोनों भुजायें उठाकर, श्रीभरत से कहने लगे, नाथ! इन विशाल चार वृक्षों को देख रहे हैं, जो पाकड़, जामुन, आम और तमाल के नाम से जाने जाते हैं, उन्हीं वृक्षों के बीच में सुन्दर और विशाल वटवृक्ष सुशोभित हो रहा है, जिसे देखकर मन मोहित हो उठता है। इसके पल्लव नीले और अत्यन्त घने हैं, इसके फल लाल तथा सभी कालों में सुख देनेवाली छाया भी घनी है,

मानो विधाता ने सुषमा अर्थात् परमशोभा को एकत्र करके अरुण और अंधकार की राशि की रचना की है। हे गोसाईं! अर्थात् अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करके भगवान् श्रीराम के भजन में लगाने वाले श्रीभरत! पूर्वोक्त ये पाँचो वृक्ष (पाकड़, जामुन, आम, तमाल और वट) मंदाकिनी नदी के समीप में हैं। जहाँ रघुवर अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के वरणीय श्रीराम की पर्णकुटी देवताओं द्वारा छायी गई है अर्थात् कुछ दिन पूर्व ही बनायी गई है।

विशेष– नीले पल्लव ही यहाँ अंधकार के उपमेय हैं और लाल फल अरुण के।

तुलसी तरुवर बिबिध सुहाए। कहुँ सिय पिय कहुँ लखन लगाए।।
बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई।।

भा०– यहाँ तुलसी जी के अनेक श्रेष्ठ वृक्ष सुहावने लग रहे हैं। कहीं पर तो श्रीसीतापति प्रभु श्रीराम ने लगाये हैं और कहीं पर श्रीलक्ष्मण ने लगाये हैं। वटवृक्ष की छाया के नीचे भगवती श्रीसीता ने अपने करकमलों से सुहावनी यज्ञवेदिका बनाई है।

दो०– जहँ बैठे मुनिगन सहित, नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान।।२३७।।

भा०– जिस वेदिका पर बैठे अर्थात् विराजमान हुए चतुर श्रीसीता–राम जी नित्य ही सभी इतिहास तथा आगम अर्थात् ऋषिप्रणीत संहितायें, वेद एवं पुराणों की कथायें सुनते हैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी।।
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति शारद सकुचाई।।

भा०– मित्र निषादराज के वचन सुनकर, पूर्वोक्त पाँचों वृक्षों को देखकर, श्रीभरत के विलोचन अर्थात् विशिष्ट नेत्रों में जल उमड़ आये। दोनों भाई श्रीभरत एवं शत्रुघ्न जी प्रणाम करते हुए चले। उनका प्रेम कहते हुए सरस्वती जी भी संकुचित हो रही थीं।

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायउ रंका।।
रज सिर धरि हिय नयननि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।।

भा०– श्रीराम के चरण चिन्हों को देखकर श्रीभरत इस प्रकार प्रसन्न हो रहे थे, मानो दरिद्र को पारस अर्थात् पारसमणि मिल गया हो। प्रभु की चरणधूलि सिर पर रखकर, श्रीभरत उसे हृदय और आँखों में लगा रहे हैं। उससे वे श्रीराम के मिलन के समान सुख पा रहे हैं।

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा।।
सखहिं सनेह बिबश मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला।।

भा०– श्रीभरत की अत्यन्त अनिर्वचनीय गति को देखकर हिरण, पक्षी तथा जड़–जीव भी प्रेम में मग्न हो गये। श्रीभरत प्रेम के विवश होने से मित्र निषादराज को मार्ग भूल गया। सुन्दर मार्ग कहकर, देवता पुष्पवृष्टि करने लगे।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेह सराहन लागे।।
होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।।

भा०– उन्हें देखकर, सिद्ध और साधक भी अनुरक्त हो उठे अर्थात् प्रेम में भर गये और श्रीभरत के स्वाभाविक स्नेह की प्रशंसा करने लगे। यदि संसार में श्रीभरत का भाव प्रकट न हुआ होता, अथवा श्रीभरत का जन्म न हुआ होता, तो जड़ों को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?

दो०- प्रेम अमिय मंदर बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर।।२३८।।

भा०- विरह को मंदराचल पर्वत बनाकर उसी से देवतारूप सन्तों के लिए श्रीभरतरूप गम्भीर क्षीरसागर का मंथन करके, कृपा के सागर, रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने प्रेमरूप अमृत को प्रकट कर दिया।

विशेष- क्षीरसागर के मंथन से तो तेरह अन्य रत्नों के साथ अमृत प्रकट हुआ था, परन्तु भगवान् श्रीराम ने श्रीभरतरूप क्षीरसागर को मथ कर प्रेमामृत को ही चौदह बार प्रकट किया।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा।।
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन।।
करत प्रबेश मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा।।

भा०- श्रीलक्ष्मण ने घने वन के ओट में होने के कारण मित्र गुह के साथ मनोहर जोड़ी श्रीभरत-शत्रुघ्न जी को नहीं देखा। श्रीभरत ने सम्पूर्ण शुभमंगलों के निवास स्थान तथा सुन्दर पवित्र श्रीराम के आश्रम को देख लिया, आश्रम में प्रवेश करते ही श्रीभरत के सभी दुःख दावाग्नि समाप्त हो गये, मानो योगी ने परमार्थ को पा लिया।

देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे।।
शीष जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसे कर शर धनु काँधे।।

भा०- श्रीभरत ने देखा की श्रीलक्ष्मण प्रभु श्रीराम के आगे खड़े हैं। वे श्रीराम के द्वारा पूछे हुए प्रश्नों के उत्तररूप वचनों को कहते-कहते प्रेममग्न हो गये हैं। उन्होंने शीश पर जटा और कटि-प्रदेश में मुनिपट अर्थात् वल्कल वस्त्र बाँध रखा है। तरकस कस रखा है, उनके हाथ में बाण और स्कन्ध में धनुष शोभित है।

बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू।।
बलकल बसन जटिल तनु श्यामा। जनु मुनि बेष कीन्ह रति कामा।।
कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।।

भा०- यज्ञ-वेदिका पर मुनि और सन्तों के समाज के साथ श्रीसीता के सहित रघुकुल के राजा श्रीरामचन्द्र विराज रहे हैं। उन्होंने वल्कल वस्त्र धारण किया है, उनके सिर पर जटा विराज रही है, उनका शरीर श्यामल है। प्रभु श्रीसीता के सहित ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानो रति और कामदेव ने ही मुनि का वेश बना लिया है। प्रभु अपने करकमलों से धनुष-बाण फेर रहे हैं और हँसकर निहारते हुए जीवमात्र के जलन को समाप्त कर रहे हैं।

दो०- लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंद।
ग्यान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद।।२३९।।

भा०- मुनि-मण्डली के मध्य में भगवती श्रीसीता एवं रघुकुल के चन्द्रमा भगवान् श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं, मानो ज्ञान की सभा में भक्ति तथा सच्चिदानन्द अर्थात् सत्-चित्त्-आनन्द स्वरूप परब्रह्म ही शरीर धारण करके विराजमान हैं।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष शोक सुख दुख गन।।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।।

भा०– श्रीशत्रुघ्न एवं श्रीनिषादराज के साथ श्रीभरत का मन मग्न हो गया। वे हर्ष, शोक, सुख और दुःखों के समूहों को भूल गये। हे नाथ! हे गोसाईं! प्रभु श्रीराम मेरी रक्षा कीजिये–रक्षा कीजिये। ऐसा कह कर, श्रीभरत छोटी–सी छड़ी के समान पृथ्वी पर संज्ञाशून्य की दशा में गिर पड़े।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने।।
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बर जोरा।।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई।।
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।।

भा०– श्रीभरत के प्रेमपूर्वक वचन को लक्ष्मण जी ने पहचान लिया और यह भी जान लिया कि, श्रीभरत प्रेमपूर्वक प्रभु को प्रणाम कर रहे हैं। इस ओर भ्राता का स्नेह बढ़ता जा रहा है और उस ओर स्वामी की सेवा भी अपना बल बढ़ा रही है अर्थात् लक्ष्मण जी के हृदय में उमड़ा हुआ श्रीभरत के प्रति भ्रातृस्नेह उन्हें श्रीभरत से मिलने के लिए विवश कर रहा है और उधर स्वामी श्रीराम की सेवा श्रीलक्ष्मण को सेवा करते रहने के लिए बाध्य कर रही है। अतः न तो श्रीलक्ष्मण से श्रीभरत को मिला जा रहा है और न ही उनसे श्रीभरत के सम्बन्ध में प्रभु से कुछ कहते बन रहा है। कोई सुकवि ही श्रीलक्ष्मण की इस मानसिक दशा का वर्णन कर सकता है। लक्ष्मण जी अपना सम्पूर्ण भार सेवा पर ही रख चुके हैं, उन्होंने अपने मन को सेवा के प्रति इसी प्रकार खींचा जैसे कुशल पतंग उड़ाने वाला खिलाड़ी आकाश में चढ़ी हुई पतंग को खींच लेता है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।।

भा०– श्रीलक्ष्मण पृथ्वी पर सिर नवाकर प्रेमपूर्वक प्रभु से कहने लगे, हे श्रीरघुनाथ! भैया श्रीभरत पृथ्वी पर मस्तक नवाकर आपको प्रेमपूर्वक प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर, प्रेम में अधीर होते हुए अर्थात् अपने धैर्य का त्याग करते हुए भगवान् श्रीराम आसन पर से उठ खड़े हुए, उनका उत्तरीय वस्त्र कहीं गिर पड़ा, तरकस कहीं गिरा, धनुष–बाण कहीं गिरे।

दो०– बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरा सबहिं अपान।।२४०।।

भा०– कृपा के कोश भगवान् श्रीराम ने पृथ्वी पर पड़े हुए श्रीभरत को बरबस अर्थात् श्रीभरत के नहीं चाहने पर भी, बलपूर्वक उठा लिया और हृदय से लगा लिया। श्रीभरत और भगवान् श्रीराम का मिलन अर्थात् मिलाप देखकर सभी को अपनापन भूल गया।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी।।
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।।

भा०– कविकुल के लिए कर्म, मन और वाणी से अगम्य श्रीराम–भरत की मिलनि और उनकी प्रीति किस प्रकार कही जाये? दोनों भाई श्रीराम–भरत जी परमपूजनीय प्रेम से परिपूर्ण हैं, उन्होंने मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त इन सबको भुला दिया है।

कहहु सो प्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई।।
कबिहिं अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।।

भा०- यहाँ चारों वक्ता श्रीभुशुण्डि, शङ्करजी, याज्ञवल्क्य जी एवं तुलसीदास जी अपने-अपने श्रोताओं श्रीगरुड़, पार्वती, भरद्वाज एवं श्रीवैष्णव सन्तगण के मन को सावधान करते हुए कहते हैं कि, भला बताइये, भगवान् श्रीराम और श्रीभरत के उस प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की मति (बुद्धि) किसकी छाया का अनुसरण करे। कवि को अर्थ और अक्षरों का ही वास्तविक बल होता है। नट, ताल की गति का अनुसरण करके ही नाचता है।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को।।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती।।

भा०- श्रीभरत एवं भगवान् श्रीराम का प्रेम इतना अगम्य अर्थात् कठिन है कि जहाँ ब्रह्माजी, विष्णुजी, शिव जी का मन भी नहीं जाता। उसको कुत्सित बुद्धिवाला मैं (तुलसीदास, भुशुण्डि, शिव, याज्ञवल्क्य) किस प्रकार से कहूँ? क्या गाँडर अर्थात् गाँठवाली कोमल पत्तियों की घास से बनी ताँत से बनी हुई सारंगी से सुन्दर राग बज सकती है? वह तो एक ही रगड़ में टूट जायेगी।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धुकधुकी धरकी।।
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रशंसन लागे।।

भा०- श्रीराम एवं श्रीभरत का मिलन देखकर देवताओं के समूह डर गये, उनकी धुकधुकी अर्थात् छाती धड़कने लगी। देवगुरु बृहस्पति ने समझाया, फिर वे स्वार्थ से जड़ देवता जगे और पुष्पवर्षा करके प्रशंसा करने लगे।

दो०- मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम।।२४१।।

भा०- श्रीराम ने प्रेमपूर्वक शत्रुघ्न जी से मिलकर निषादराज को गले से लगा लिया और श्रीभरत ने प्रणाम करते हुए लक्ष्मण जी को अत्यन्त भाव से हृदय से लगाया।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन बंदे। अभिमत आशिष पाइ अनंदे।।

भा०- श्रीलक्ष्मण ने ललककर अर्थात् प्रेम से आकुल होकर छोटे भाई शत्रुघ्न जी को भेंटा अर्थात् मिले, फिर उन्होंने निषादराज गुह को गले से लगा लिया, फिर दोनों भाई श्रीभरत एवं शत्रुघ्न जी ने श्रीचित्रकूट के मुनिगणों को वन्दन किया तथा उनसे मनचाहा आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा।।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए।।

भा०- छोटे भाई शत्रुघ्न जी के सहित श्रीभरत ने प्रेम में उमंगित होकर सीता जी के चरणकमलों की धूलरूप पराग को अपने सिर पर धारण किया। बार-बार प्रणाम करते हुए दोनों भ्राता श्रीभरत-शत्रुघ्न जी को सीता जी ने उठा लिया। उनके सिर पर अपने करकमल को स्पर्श करके उन्हें बिठाया।

सीय अशीष दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं।।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।।

भा०- श्रीसीता ने दोनों भ्राता श्रीभरत-शत्रुघ्न जी को मन में ही आशीर्वाद दिया। वे प्रेम में मग्न हो गईं, उन्हें शरीर का स्मरण भी नहीं रहा। श्रीसीता को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर श्रीभरत-शत्रुघ्न जी शोक से रहित हो गये। उनके हृदय का अपडर अर्थात् कल्पित भय दूर हो गया।

कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।।
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि।।

भा०– न कोई किसी से कुछ कह रहा है और न कोई किसी से कुछ पूछ रहा है। सबका मन प्रेम से भरा हुआ है, परन्तु निज गति अर्थात् अपने संकल्प की गति से शून्य हो गया है। उसी समय धैर्य धारण करके, प्रणाम करके, हाथ जोड़कर निषादराज केवट विनती करने लगे।

दो०– नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग।।२४२।।

भा०– हे नाथ! (राघवजी) मुनियों के राजा वसिष्ठ जी के साथ आपके वियोग में व्याकुल हुई सभी मातायें, नगर के लोग, सेवक, सेनापति और सभी मंत्रिगण आपके दर्शनों के लिए श्रीचित्रकूट आये हैं। (हम लोग आपके आश्रम का पता लगाने के लिए आये थे, अब उन लोगों को बुला लिया जाये।)

शीलसिंधु सुनि गुरु आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू।।
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला।।

भा०– शील अर्थात् स्वभाव के सागर धर्म की धुरी को धारण करने में धैर्यवान, दीनों पर दया करने वाले भगवान् श्रीराम गुरुदेव का आगमन सुनकर सीता जी के समीप शत्रुघ्न जी को रखा और स्वयं उसी समय वेगपूर्वक चल दिये।

गुरुहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे।।
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई।।

भा०– गुरुदेव को देखकर, छोटे भाई श्रीलक्ष्मण के सहित भगवान् श्रीराम अनुराग से भर गये और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने दौड़कर दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण जी को हृदय से लगा लिया और प्रेम के तरंग में तरंगित होकर उन्हें मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू।।
रामसखा ऋषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे।।

भा०– प्रेम से रोमांचित होकर अपना नाम कहकर निषादराज गुह ने दूर से ही वसिष्ठ जी को दण्डवत् प्रणाम किया और महर्षि वसिष्ठ जी श्रीराम के सखा गुह जी को बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगाकर मिले, मानो पृथ्वी पर लोटते हुए स्नेह को ही वसिष्ठ जी ने समेट कर हृदय से लगा लिया हो।

विशेष– यहाँ दो बार वसिष्ठ जी को निषाद जी के प्रणाम का वर्णन आता है। इसका कारण यह है कि, पहली बार निषाद जी ने वसिष्ठ जी को श्रीराम के मित्र के अधिकार से प्रणाम किया था और दूसरी बार श्रीराम की कुटिया का पता लगा लेने के हर्ष में श्रीभरत के मित्र के अधिकार से अथवा इस बार भी उन्होंने स्वयं को श्रीराम परिवार का मानकर उस अधिकार से ही प्रणाम किया।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरषहिं फूला।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं।।

दो०– जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ।।२४३।।

भा०- सभी सुमंगलों की आश्रय तथा कारणरूप श्रीरामभक्ति की सराहना करके आकाश से देवता पुष्पवृष्टि करने लगे और बोले, संसार में निषादराज गुह जैसा अत्यन्त निकृष्ट कोई नहीं है और महर्षि वसिष्ठ जी के समान संसार में कोई बड़ा भी नहीं है, जिस निषाद को देखकर लक्ष्मण जी से अधिक मानकर प्रसन्नतापूर्वक मुनिराज वसिष्ठ जी उससे मिल रहे हैं, वह तो श्रीसीतापति श्रीराम की भक्ति का ही प्रताप और प्रभाव प्रकट है। अन्यथा, वसिष्ठ जी जैसे सर्वोच्च कोटि का ब्राह्मण अपने वर्णाभिमान को छोड़कर लक्ष्मण जी से भी अधिक वात्सल्य से निषादराज को क्यों मिलते?

आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना।।
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी।।
सानुज मिलि पल महँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू।।
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं।।

भा०- करुणा की खानि, चतुर ऐश्वर्य आदि छहों माहात्म्यों से युक्त भगवान् श्रीराम ने सब लोगों को अपने दर्शनों के लिए आर्त्त अर्थात् अत्यन्त व्याकुलता के साथ उत्सुक जाना। जो जिस भाव से प्रभु के दर्शनों के लिए इच्छुक था भगवान् श्रीराम ने उस–उस व्यक्ति की उसी–उसी प्रकार से रुचि की रक्षा की। एक क्षण में छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित भगवान् श्रीराम ने सभी को मिलकर असहनीय दुःख और भगवत् वियोग से उत्पन्न हुए ताप को दूर कर दिया। भगवान् श्रीराम के लिए एक क्षण में सबसे मिल लेना यह कोई बड़ी बात नहीं है, जैसे एक सूर्य की छाया करोड़ों घड़ों को प्रभावित कर देती है अर्थात् करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्यनारायण की छाया (प्रतिबिम्ब) प्रकटरूप में दिखती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम ने एक होकर भी असंख्य लोगों को मिलकर सभी का दुःख और संताप दूर कर दिया।

मिलि केवटहिं उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा।।
देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी।।

भा०- अनुराग के उमंग से युक्त होकर निषादराज केवट को मिलकर सभी अवधवासी उनके सौभाग्य की सराहना करने लगे। भगवान् श्रीराम ने माताओं को उसी प्रकार दुःखी देखा, मानो हिमपात के द्वारा मारी हुई सुन्दर लताओं की पंक्तियाँ हों।

प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभाय भगति मति भेयी।।
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी।।

भा०- सर्वप्रथम श्रीराम कैकेयी से मिले उनके गले लगे। अपने सरल स्वभाव और भक्ति से प्रभु ने कैकेयी की बुद्धि को भिंगो दिया। फिर उनके चरणों पर पड़कर, प्रभु ने प्रबोध किया अर्थात् कैकेयी जी को समझाया, माँ! काल और कर्म के कारण विधाता ने आपके सिर पर दोष मढ़ दिया।

दो०- भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अंब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष।।२४४।।

भा०- प्रबोध और परितोष करके अर्थात् दिव्यज्ञान एवं उपदेश और संतोष का उपाय करके, समझा–बुझाकर श्रीराम सब माताओं से मिले और अनेक रूप धारण करके सब के गले लगे। बोले, हे माताओं! यह जगत् ईश्वर के अधीन है, इसलिए किसी को दोष मत दीजिये।

गुरुतिय पद बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे सँग आई।।
गंग गौरि सम सब सनमानीं। देहिं अशीष मुदित मृदु बानीं।।

भा०- दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण जी ने गुरुपत्नी अरुन्धती जी के श्रीचरणों को वन्दन किया और साथ में जो ब्राह्मणपत्नियाँ आई थीं उनके भी चरणों को प्रेमपूर्वक वन्दन किया। गंगाजी, एवं पार्वती जी की भाँति सबका सम्मान किया। सभी ब्राह्मण पत्नियाँ कोमल वाणी में श्रीराम को आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका।।
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता।।

भा०- इसके अनन्तर दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण जी चरण पकड़कर सुमित्रा जी की गोद में जाकर लिपट गये, मानो अत्यन्त दरिद्र को सम्पत्ति मिल गई हो, फिर श्रीराम-लक्ष्मण जी माता कौसल्या जी के चरणों में पड़ गये, उनके सभी अंग प्रेम से व्याकुल हो रहे थे।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए।।
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू।।

भा०- अत्यन्त अनुराग (प्रेम) से माता कौसल्या जी ने दोनों भ्राता श्रीराम-लक्ष्मण जी को हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहते हुए प्रेम के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और शोक को कवि कैसे कह सकता है? जैसे गूँगा स्वाद को कह नहीं सकता, केवल अनुभव करता है उसी प्रकार, कवि उस समय के हर्ष और विषाद को कह नहीं पा रहा है।

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरु सन कहेउ कि धारिय पाँऊ।।
पुरजन पाइ मुनीश नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू।।

भा०- छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने माता कौसल्या जी से मिलकर गुरुदेव से कहा कि, आश्रम में पधारें। अवधवासी सभी लोग गुरुदेव वसिष्ठ जी का आदेश पाकर, जल और स्थल देख-देखकर मंदाकिनी पार उतरे।

दो०- महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गमन किय, भरत लखन रघुनाथ।।२४५।।

भा०- ब्राह्मण, मंत्री, मातायें, गुरुजन और अन्य गणमान्य सभी लोगों को साथ लेकर श्रीभरत, लक्ष्मण तथा राम जी पवित्र आश्रम को प्रस्थान किये।

सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित अशीष लही मन माँगी।।
गुरुपत्निहिं मुनितियन समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता।।
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आशिरबचन लहे प्रिय जी के।।

भा०- भगवती श्रीसीता आकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी के चरणों में लिपट गईं और उन्होंने मन माँगा उचित आशीर्वाद पाया। ब्राह्मणों की पत्नियों के साथ गुरुपत्नी अरुन्धती जी को सीता जी मिलीं। उनके हृदय में जितना प्रेम था, वह नहीं कहा जा सकता। सबके चरणों को बार-बार वन्दन करके सीता जी ने अपने मन को प्रिय लगने वाले आशीर्वाद प्राप्त किये।

सासु सकल जब सीय निहारी। मूदे नयन सहमि सुकुमारी।।
परी बधिक बश मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली।।

भा०- जब सासुओं ने सुकुमारी श्रीसीता को निहारा अर्थात् देखा, तब उन्होंने दुःख से सहम कर अर्थात् भयभीत होकर अपनी आँखें मूँद ली, मानो बहेलिए के वश में हंसिनी पड़ गई हो। विधाता ने यह कौन–सा कुचाल कर डाला? अथवा, जब सुकुमारी श्रीसीता ने अपनी सभी सासुओं को विधवारूप में देखा, तब उन्होंने दुःख से भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर ली। वे सोचने लगीं, मानो हंसिनी बहेलिए के वश में हो गई है, बुरी चाल चलने वाले विधाता ने यह क्या कर दिया?

तिन सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा।।
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा।।
मिली सकल सासुन सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई।।

भा०- सासुओं ने श्रीसीता को तपस्विनी वेश में देखकर बहुत दुःख पाया। वे सोचने लगीं कि, वह सब सहना पड़ता है, जो ईश्वर सहाते हैं (सहन करने के लिए विवश करते हैं)। तब जनकनन्दिनी सीता जी हृदय में धैर्य धारण करके नीले कमल जैसे नेत्रों में अश्रुजल भरकर, जाकर सभी सासुओं से मिलीं, उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गई। अथवा, पृथ्वी करुणा से ढँक गई।

दो०- लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय अशीषहिं प्रेम बश, रहिहहु भरी सुहाग।।२४६।।

भा०- श्रीसीता सभी सासुओं के चरणों में लिपट–लिपटकर अत्यन्त प्रेम से सबके गले मिल रही हैं। सभी (सात सौ) सासुयें प्रेमवश होकर हृदय में आशीर्वाद दे रही हैं, हे सीते! तुम सदैव सौभाग्य से भरी रहोगी।

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुरु ग्यानी।।
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा।।

भा०- श्रीसीता एवं राजघराने की सभी स्त्रियाँ प्रेम से व्याकुल हो रही हैं। ज्ञानी गुरुदेव वसिष्ठ जी ने सभी को बैठने के लिए कहा। मायामय संसार की गति का वर्णन करके, मुनियों के राजा वसिष्ठ जी ने मोक्ष की कुछ गाथायें सुनायीं।

नृप कर सुरपुर गमन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।।
मरन हेतु निज नेह बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी।।

भा०- महाराज दशरथ का इन्द्रपुर गमन अर्थात् शरीर त्यागकर इन्द्रलोक जाने का समाचार सुनाया, यह सुनकर रघुकुल के स्वामी श्रीराम ने असहनीय दुःख पाया। अपने पर सत्यप्रेम को ही महाराज के मरने का कारण विचार कर, धीरों की धुरी को धारण करने वाले प्रभु श्रीराम बहुत व्याकुल हो गये।

कुलिश कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी।।
शोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।।

भा०- वज्र के समान कठोर कड़वी वाणी सुनकर, लक्ष्मणजी, भगवती श्रीसीता एवं सभी महाराज दशरथ की रानियाँ विलाप करने लगीं। सम्पूर्ण समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो उठा, मानो आज ही महाराज का अकाज अर्थात् शरीर छोड़कर इन्द्रलोक गमन हुआ हो।

मुनिवर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए।।
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा।।

भा०– मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने फिर श्रीराम को समझाया। प्रभु श्रीराम ने अपने समाज के सहित मंदाकिनी जी में स्नान किया। उस दिन प्रभु श्रीराम ने सीता एवं लक्ष्मण जी के साथ निरंबु व्रत अर्थात् निर्जल व्रत किया। वसिष्ठ जी ने इस व्रत की सहमति दी और किसी अवधवासी ने जल आदि नहीं लिया।

दो०- भोर भए रघुनंदनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह।।२४७।।

भा०– प्रात:काल होने पर रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्रीराम को वसिष्ठ जी ने जो आज्ञा दी, प्रभु ने श्रद्धा अर्थात् आस्था तथा भक्ति अर्थात् प्रेम के सहित वह सब आदरपूर्वक सम्पन्न किया।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी।।
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला।।
शुद्ध सो भयउ साधु सम्मत अस। तीरथ आवाहनि सुरसरि जस।।

भा०– वेदों में जिस प्रकार वर्णित है, उसी प्रकार से अपने पिताश्री की श्राद्ध–क्रिया करके पापरूप अन्धकार के लिए सूर्य भगवान् श्रीराम पवित्र हुए। जिनका नाम स्मरणमात्र से पापरूप रूई के लिए अग्नि के समान है तथा जो स्मरण करने पर सम्पूर्ण शुभों और मंगलों का आश्रय है और कारण भी, वे भी शुद्ध हुए। यहाँ सन्तों का इस प्रकार की सम्मति है कि, जैसे नित्य शुद्ध गंगा जी की शुद्धि के लिए तीर्थों का आवाहन् किया जाता है, जबकि गंगा जी के सम्पर्क से सभी तीर्थ शुद्ध हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार, शुद्ध सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीराम की शुद्धि के सम्बन्ध में समझना चाहिये। जिनके सम्पर्क से सम्पूर्ण वैदिककृत्य शुद्ध होते हैं, उन प्रभु की शुद्धि का प्रयोग केवल लोकमर्यादा की रक्षा है।

शुद्ध भए दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते।।
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी।।
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।।
सब समेत पुर धारिय पाँऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।।
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गोसाँई।।

भा०– श्रीराम के शुद्ध हुए दो दिन बीते, फिर प्रीति से युक्त श्रीराम, गुरुदेव से प्रार्थना करते हुए बोले, हे नाथ! कन्दमूल, फल और जल का आहार करते हुए सभी श्रीअवध के लोग बहुत दु:खी हो रहे हैं, क्योंकि मेरे लिए विहित कन्दमूल इन्हें खाना पड़ रहा है, जो इनके लिए विहित नहीं है। छोटे भाई शत्रुघ्न के सहित भरत, मंत्रीगण और सभी माताओं को देखकर, मेरे लिए एक पल युग के समान बीत रहा है, क्योंकि इनके यहाँ रहने पर मेरी प्रतिज्ञा टूट रही है। कारण यह है कि, मुझे उदासी अर्थात् मात्र श्रीसीता एवं लक्ष्मण के साथ वन में निवास करने के लिए आदिष्ट किया गया है। यहाँ माताओं, दोनों भ्राताओं, मंत्रियों को देखकर, अपने व्रत के भंग होने के भय से मुझे इतना कष्ट हो रहा है कि, एक पल युग के समान बीत रहे हैं। अथवा, हे प्रभु! यद्यपि मैं सुखी हूँ, क्योंकि शत्रुघ्न के साथ भरत, सभी मंत्रियों को देखकर मुझे तो इतनी प्रसन्नता हो रही है कि "**पल जिमि जुग जाता**" अर्थात् एक युग एक क्षण के समान बीत रहा है अर्थात् यद्यपि मैं आप सबकी उपस्थिति में बहुत सुखी हूँ, परन्तु कन्दमूल, फल आदि आहार करके लोग दु:खी हैं। इसलिए सबके सहित अब श्रीअवधपुर को पधार जाइये, क्योंकि आप तो यहाँ हैं और महाराज अमरावती में अर्थात् इन्द्रलोक में, अयोध्या सब प्रकार से असुरक्षित है। मैंने बहुत कहा और सब धृष्टता की, हे स्वामी! जो उचित हो आप वही कीजिये।

विशेष- *देखि मोहि पल जिमि जुग जाता* अंश का यद्यपि मानस पीयूष, गीता प्रेस, सिद्धान्ततिलक तथा गूढार्थचन्द्रिका आदि टीकाओं में एक ही प्रकार का अर्थ लिखा गया है, जिसमें भगवान् श्रीराम कहते हैं कि, भरत, शत्रुघ्न, सभी मंत्री और माताओं को देखकर, मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है, परन्तु यह अर्थ उचित नहीं है और न ही यहाँ के अक्षर इस अर्थ का समर्थन कर रहे हैं। यदि *"युग पल जिमि जाता"* वाक्य खण्ड होता तब पूर्व के टीकाकारों का अर्थ उचित लगता, परन्तु जिमि शब्द का अन्वय पल शब्द के साथ है, न कि युग शब्द के साथ, इसलिए पूर्व अर्थ से न तो मैं सहमत हूँ और न ही वहाँ के अक्षर। अतः यही अर्थ करना चाहिये कि, श्रीरघुनाथ जी कह रहे हैं कि, *पल जिमि जुग जाता* अर्थात् यद्यपि भरत, शत्रुघ्न, मंत्री और सभी माताओं को देखकर युग मुझे पल के समान जा रहा है। इनकी उपस्थिति में वनवास की अवधि सुख से बीत जायेगी फिर भी यह दुःख है। अतः आप पधार जाइये, क्योंकि आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रलोक में, अयोध्या सुरक्षित नहीं है।

दो०- धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहिं बिश्राम।।२४८।।

भा०- वसिष्ठ जी बोले, हे धर्म के सेतु और करुणा के धाम स्वरूप श्रीराम! आप ऐसा क्यों नहीं कहेंगे? दुखित श्रीअवध के लोग आपके दर्शन पाकर दो दिन तो विश्राम कर लें।

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महँ बिकल जहाजू।।
सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला।।

भा०- श्रीराम का अवध प्रत्यागमन सम्बन्धी वचन सुनकर, सम्पूर्ण अवधसमाज भयभीत हो गया, मानो सागर के मध्य डूबने की आशंका से जहाज विकल हो रहा हो। सुन्दर मंगलों की मूल गुरुदेव के वाणी को सुनकर सब लोग इतने प्रसन्न हुए, मानो उन्हें अनुकूल वायु मिल गया हो, जिससे नाव किनारे लग जायेगी।

पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं।।
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि।।

भा०- श्रीअयोध्यावासी पवित्र पयस्विनी के जल में तीनों काल स्नान करते हैं, जिसे देखकर पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं। स्नान के पश्चात् मंगलमूर्ति श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को बार-बार नेत्रों में भरकर पुनः-पुनः प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक निहारते हैं।

राम शैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल शकल दुख नाहीं।।
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी।।

भा०- श्रीअवधवासी श्रीराम के पर्वत श्रीचित्रकूट और उनके वनों को देखने जाते हैं, जहाँ सब सुख है पर दुःखों का शकल अर्थात् खण्ड भी नहीं है। यहाँ के झरने अमृत के समान जल प्रवाहित करते रहते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनों प्रकार की वायु तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों को हर लेता है।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती।।
सुंदर शिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं।।

भा०- वहाँ के वृक्ष, लतायें और तृण अनेक जातियों के हैं और सब प्रकार से फल, पुष्प और पल्लवों से सम्पन्न रहते हैं। वहाँ की शिलायें सुन्दर और वृक्षों की छाया सुख देने वाली हैं। श्रीरामवन अर्थात् श्रीचित्रकूट की छवि किसके द्वारा अर्थात् किसके पास से वर्णन का विषय बन सकती है अर्थात् इसका वर्णन कौन कर सकता है?

दो०- सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहुरंग।।२४९।।

भा०- तालाबों में कमल खिल रहे हैं और जल के पक्षी बोल रहे हैं तथा भौरें गुंजार कर रहे हैं, बहुरंगे हरिण और पक्षी पारस्परिक वैर छोड़कर वन में विचरण कर रहे हैं।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु शुचि सुंदर स्वाद सुधा सी।।
भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। कंदमूल फल अंकुर जूरी।।
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा।।
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं।।

भा०- श्रीचित्रकूट वन में रहने वाले कोल, किरात और भील्ल, सुन्दर और अमृत के समान स्वाद वाली पवित्र मधु एवं कन्दमूल, फल तथा अंकुरों की गड्डियों को सुन्दर रची हुई पत्तों की दोनियों में भर–भरकर मूल, फल और अंकुरों के स्वादों के भेद, गुण और नामों को कह–कहकर सभी को प्रार्थना और प्रणाम करके देते हैं। लोग उनका बहुत मूल्य दे रहे हैं, परन्तु कोल, किरात, भील्ल कुछ नहीं ले रहे हैं। वस्तुओं को लौटाने पर वे श्रीराम की दुहाई देते हैं अर्थात् श्रीराम के नाम का शपथ देकर लेने के लिए विवश करते हैं।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी।।
तुम सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरशन राम प्रसादा।।

भा०- कोल, किरात स्नेह में मग्न होकर कोमल वाणी में कहते हैं कि, साधुजन प्रेम को पहचानकर ही भाव और वस्तु का सम्मान करते हैं अर्थात् आप लोग साधुजन हैं, वस्तुयें लौटाकर अथवा, उनका मूल्य देकर आप हमारे प्रेम का अपमान मत कीजिये। आप लोग सुकृत अर्थात् श्रेष्ठकर्म करने वाले पुण्यात्मा जन हैं। हम निकृष्ट निषाद लोग हैं भगवान् श्रीराम के प्रसाद से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाये।

हमहिं अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा।।
राम कृपालु निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा।।

भा०- हमको आपके दर्शन उसी प्रकार कठिन थे, जैसे मरुभूमि में देवनदी गंगा जी की धारा कठिन होती है। कृपालु श्रीराम ने हम लोगों को निवाजा अर्थात् कृपा पुरस्कार से पुरस्कृत किया है, जैसा राजा हो उसी प्रकार राजा के परिवार और प्रजा को भी तो होना चाहिये।

दो०- यह जिय जानि सँकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु।।२५०।।

भा०- हे अयोध्यावासियों! हृदय में ऐसा जानकर, संकोच छोड़कर हमारा स्नेह देखकर, आप सब हम लोगों पर ममतापूर्ण दया करें। हमें कृतार्थ करने के लिए ही हमारा फल, तृण और अंकुर (उपलक्षणतया) कन्दमूल, फल ले लें।

तुम प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोग न भाग हमारे।।
देब काह हम तुमहिं गोसाँईं। ईंधन पात किरात मिताई।।

भा०- आप हमारे प्रिय अतिथि वन में चरण रखें अर्थात् पधारे हैं, आपके सेवा योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे, क्योंकि हम किरातों की तो आग में जलने वाले ईंधन तथा पत्तों से ही मित्रता है अर्थात् आपको देने के लिए हमारे पास सूखी लकड़ी और पत्तों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई।।
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।।
पाप करत निशि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं।।
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।।

भा०– हमारी आप लोगों के लिए यही बहुत बड़ी सेवा है कि, हम आपके पात्र और वस्त्र नहीं चुरा ले रहे हैं। हम दुष्टजीव हैं, हम जीवगणों की हत्या करते हैं। हम कुटिल, कुचाल करने वाले, दुष्टबुद्धि वाले और नीचकर्म करने वाले जाति में उत्पन्न हुए हैं। पाप करते–करते हमारे रात–दिन बीत जाते हैं। फिर भी हमारे पास तन ढँकने के लिए न तो कपड़े होते हैं और न ही हम पेट से तृप्त होते हैं अर्थात् नंगे–भूखे रहकर अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। स्वप्न में भी कभी हमारे मन में कैसी धर्मबुद्धि? यह रघुकुल को आनन्दित करने वाले भगवान् श्रीराम के दर्शनों का प्रभाव है।

जब ते प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे।।
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन के भाग सराहन लागे।।

भा०– हमने जब से श्रीसीता, लक्ष्मण सहित प्रभु श्रीराम के श्रीचरणकमलों के दर्शन किये हैं, तभी से हमारे असहनीय दुःख और दोष मिट गये हैं। कोल, किरातों के वचन सुनकर, श्रीअवधपुरवासी अनुराग से पूर्ण हो गये और उनके अर्थात् कोल, किरातों के भाग्य की सराहना करने लगे।

छं०: लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेह लखि सुख पावहीं।।
नर नारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंशमनि की लोह लै लौका तिरा।।

भा०– सभी अवधपुरवासी कोल, किरातों के भाग्य सराहने लगे। वे लोग अनुरागपूर्ण वाणी सुनाते हैं। उनका मधुर बोलना, मिलना और श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में स्नेह देखकर, अवधवासी अत्यन्त सुख पाते हैं। कोल, भील्लों की वाणी सुनकर श्रीअवध के नर–नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि, रघुकुल के रत्न भगवान् श्रीराम की कृपा से लौका अर्थात् लौकी का तुमरा लोहों को लेकर तर गया अर्थात् लोहों को डूबने न दिया। तात्पर्य यह है कि, श्रीराम की कृपा से आज कोल, किरातों का स्नेह, अवधवासियों के स्नेह से अधिक हो गया।

सो०– बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर, भए पीन पावस प्रथम।।२५१।।

भा०– प्रतिदिन प्रसन्न हुए अवध के नर–नारी वन के चारों ओर भ्रमण करते हैं, जैसे वर्षा के प्रथम जल में मेंढक और मयूर मोटे हो जाते हैं।

* नवाहपारायण, पाँचवाँ विश्राम *

पुर नर नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती।।
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करहिं सरिस सेवकाई।।
लखा न मरम राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ।।
सीय सासु सेवा बश कीन्हीं। तिन लहि सुख सिख आशिष दीन्हीं।।

भा०– श्रीअवधपुर के नर–नारी अत्यन्त प्रेम में मग्न हैं, इनके दिन पलक के समान बीत जाते हैं। श्रीसीता जी सासुओं की संख्या के अनुपात में अपना वेश बनाकर आदरपूर्वक सभी सासुओं की सेवा करती हैं अर्थात् सात सौ सासुओं की सेवा करने के लिए श्रीसीता सात सौ वेश बनाकर सबकी समान सेवा कर रही हैं। यह मर्म भगवान् श्रीराम के अतिरिक्त किसी ने भी नहीं देखा, क्योंकि संसार की सभी माया भगवती श्रीसीता की ही है अर्थात् भगवती श्रीसीता महामाया हैं, इसलिए उनकी माया को मायारहित मुकुन्द भगवान् श्रीराम ही जान सकते हैं। श्रीसीता ने सभी सासुओं को अपनी सेवा द्वारा अपने वश में कर लिया, उन्होंने सुख प्राप्त कर श्रीसीता जी को शिक्षा और आशीर्वाद दिया।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई।।
अवनि जमहिं जाचति कैकेई। महि न बीच बिधि मीच न देई।।
लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थल नरक न लहहीं।।

भा०– श्रीसीता जी के सहित दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण को सरल देखकर कुटिल हृदय की रानी कैकेयी पश्चात ताप से तृप्त होने लगीं अर्थात् भर पेट पछताने लगीं। कैकेयी पृथ्वी और यमराज से याचना करने लगीं कि, पृथ्वी बीच अर्थात् फटकर स्थान नहीं दे रही हैं और विधि अर्थात् मृत्यु के विधाता यमराज मृत्यु नहीं दे रहे हैं। यह बात लोक और वेद में विदित है तथा कवि अर्थात् क्रान्तदर्शी मनीषी कहते हैं कि भगवान् श्रीराम से विमुख लोग नरक में भी स्थान नहीं पाते।

यह संशय सब के मन माहीं। राम गमन बिधि अवध कि नाहीं।।

दो०– निशि न नीद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच।।२५२।।

भा०– यह सन्देह सभी अवधवासियों के मन में है, विधाता ! इस समय श्रीअयोध्या में श्रीराम का गमन होगा या नहीं अर्थात् श्रीराम इस समय श्रीभरत के कहने से श्रीअवध पधारेंगे या नहीं। इधर श्रीभरत को रात में नींद नहीं आती, दिन में भूख नहीं लगती। श्रीभरत उसी प्रकार अत्यन्त शोक में विकल हैं, जैसे पृथ्वी के निचले तल पर अर्थात् बहुत गहराई में वर्तमान कीचड़ के बीच में डूबे हुए मछली को जल की अल्पता से शोक और तड़फड़ाहट होती है।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली।।
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू।।

भा०– (श्रीभरत जी विचार करने लगे) माता कैकेयी का बहाना लेकर काल ने उसी प्रकार की कुचाल कर दी, जैसे पकती हुई फसल पर इतियों अर्थात् टिड्डियों का भय हो जाये अर्थात् जैसे पकने के निकट आये हुए फसल पर, टिड्डी, चूहे आदि का प्रकोप हो, उसी प्रकार श्रीरामराज्य सम्पन्न होते–होते काल ने कुचाल कर दी। श्रीराम का राज्याभिषेक किस प्रकार से हो मुझे तो एक भी उपाय समझ में नहीं आ रहा है।

अवसि फिरिहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी।।
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करब कि काऊ।।

भा०– गुरुदेव की आज्ञा मानकर श्रीराम जी अवश्य लौट चलेंगे। पुनः वसिष्ठ जी श्रीराम की रुचि जानकर ही उन्हें आदेश देंगे। माताश्री कौसल्या जी के कहने पर भी रघुकुल के राजा श्रीराम लौट सकते हैं, परन्तु क्या कभी श्रीराम की माता कौसल्या जी हठ करेंगी?

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमय बाम बिधाता।।
जौ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि ते गुरु सेवक धरमू।।

भा०- मुझ सेवक की कितनी बात, उसमें भी प्रतिकूल समय और विधाता भी मुझसे रुठे हैं। यदि मैं हठ करूँ तो मेरा बहुत–बड़ा कुकर्म होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिव जी के पर्वत कैलाश से भी भारी है अर्थात् कैलाश को तो रावण ने उठा लिया था, परन्तु वह भी सेवकधर्म का निर्वहन नहीं कर पाया।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैनि बिहानी।।
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिर नाई। बैठत पठए ऋषय बोलाई।।

भा०- श्रीभरत के मन में एक भी युक्ति स्थिर नहीं हो पाई, इस प्रकार चिन्ता करते–करते श्रीभरत की पूरी रात बीत गई। प्रातःकाल स्नान (सन्ध्यावंदनादि) करके प्रभु श्रीराम को प्रणाम करके बैठते ही श्रीभरत ने ऋषियों को बुला भेजा।

दो०- गुरु पद कमल प्रनाम करि, बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ।।२५३।।

भा०- गुरुदेव वसिष्ठ जी के श्रीचरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर, श्रीभरत बैठ गये। ब्राह्मण, गणमान्य लोग, सभी मंत्री आदि सम्पूर्ण सभासद आ कर इकट्ठे हो गये।

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना।।
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्वबश भगवानू।।
सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू।।
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।।

भा०- मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी समय के अनुकूल वचन बोले, हे सभासदों! और हे चतुर भरत! सब लोग सुनिये, श्रीराम धर्म की धुरी को धारण करने वाले सूर्यकुलरूप कमल के लिए सूर्यस्वरूप, स्वतंत्र, ऐश्वर्यादि सभी छहों माहात्म्य से नित्यसम्पन्न, भगवान् तथा श्रीअवध के राजा हैं। वे सत्यप्रतिज्ञ, वेद–सेतु के पालक अर्थात् रक्षक हैं। भगवान् श्रीराम का जन्म जगत के मंगल के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता एवं माता के वचन अर्थात् आदेश का अनुसरण अर्थात् पालन करने वाले हैं। श्रीराम खलों के दल को नष्ट करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं। राजनीति, प्रेम, मोक्ष तथा स्वार्थ अर्थात् धर्मार्थ कर्म और अपने प्रयोजन के सम्बन्ध में श्रीराम के अतिरिक्त यथार्थ रूप में कोई नहीं जानता।

बिधि हरि हर शशि रबि दिशिपाला। माया जीव करम कुलि काला।।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई।।
करि बिचार जिय देखहु नीके। राम रजाइ शीष सबही के।।

भा०- ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिग्पाल, माया, जीव, कर्म और भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीनों काल, शेष तथा महीप अर्थात् पृथ्वी की रक्षा करने वाले शूकरावतार वराह, योग की सिद्धियाँ एवं वेद और आगमों में गायी हुई जहाँ तक प्रभुता है। सब लोग मन में विचार कर ठीक–ठीक देख लो तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि, इन सभी के सिर पर भगवान् श्रीराम की राजाज्ञा है अर्थात् पूर्वोक्त चौदहों प्रभुताओं के श्रीराम ही नियन्ता हैं।

विशेष- यहाँ वसिष्ठ जी ने भगवान् श्रीराम की १४ प्रभुताओं का संकेत किया है। इसी सूत्र से उन्होंने भगवान् श्रीराम के वनवास की १४ वर्ष की अवधि का भी संकेत किया। कैकेई भगवान् श्रीराम के लिए १२ वर्षों का भी वनवास माँग सकती थी, परन्तु सरस्वती जी ने कैकेई के मुख से १४ वर्ष ही क्यों कहलवाया? यथा-"**तापस वेष विशेष उदासी। चौदह बरष राम वनवासी**"।। (मानस २.२९.३) कदाचित् सरस्वती जी के मन में यह धारणा रही होगी कि १४ वर्षों में ही श्रीराम के द्वारा खर दूषण की १४ हजार सेनाओं का संहार किया जा सकेगा। मेघनाद को ब्रह्मा जी के वरदान के अनुसार १४ वर्ष पर्यन्त निद्रा, नारी और भोजन का त्याग करनेवाला ही मार सकता है जो राम जी के वनवास काल में साथ रहने पर लक्ष्मण जी के लिये सम्भव हुआ। महर्षि वाल्मीकि द्वारा भगवान् श्रीराम के लिए निवासार्थ जो १४ अलौकिक भवन बताये गये उन १४ भागवतों के दर्शन भी वनवास काल के १४ वर्षों में सम्पन्न होंगे। दस इन्द्रियों और ४ अन्तःकरणों की शुद्धि भी १४ वर्षों में ही सम्भव है। और अभी-अभी वसिष्ठ जी द्वारा जिन १४ प्रभुताओं का संकेत किया गया उनके दर्शन भी श्रीराम वनवास के १४ वर्षों में ही सम्भव है। इत्यादि अनेक कारण कहे जा सकते हैं, पर यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

दो०- राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि सम्मत सोइ।।२५४।।

भा०- श्रीराम की राजाज्ञा और उनके इच्छापूर्ण संकेत की रक्षा करने से ही हम सभी का हित हो सकता है। हे चतुर सभासदों! यह बात समझकर सभी लोग मिलकर अब वही सर्वसम्मत उपाय करो।

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू।।
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ।।

भा०- हे सभासदों! श्रीराम का राज्याभिषेक सबके लिए सुखद है और यह एकमात्र मंगल एवं प्रसन्नता का मूलकारण और आश्रय है। रघुकुल के राजा श्रीराम किस विधि से श्रीअयोध्या लौटेंगे, सभी लोग समझ कर कहो, वही उपाय किया जाये।

सब सादर सुनि मुनिवर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी।।
उतर न आव लोग भए भोरे। तब सिर नाइ भरत कर जोरे।।

भा०- नीति, परमार्थ अर्थात् मोक्ष और अपने प्रयोजनों से मिश्रित वसिष्ठ जी की वाणी को आदरपूर्वक सुनकर, सभी लोग भोरे अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, किसी को भी मुख से उत्तर नहीं आ रहा है। तब मस्तक नवाकर श्रीभरत ने हाथ जोड़कर कहना प्रारम्भ किया।

भानुबंश भए भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे।।
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम शुभाशुभ देइ बिधाता।।
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस आशिष राउरि जग जाना।।
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।।

भा०- सूर्यवंश में अनेक राजा हुए, वे सब एक से एक अधिक बड़े हुए। सभी के जन्म के कारण तो माता-पिता होते हैं, परन्तु शुभ और अशुभ कर्मों का फल विधाता अर्थात् परमेश्वर दिया करते हैं, परन्तु आप का आशीर्वाद सम्पूर्ण दुःखों को नष्ट करके सभी कल्याणों को सजा अथवा सृजन करके रच देता है, यह जगत जानता है। हे स्वामी! आप वही हैं, जिन्होंने ब्रह्मा जी की गति को भी छेंक दिया था अर्थात् रोक दिया था। आप जो निश्चय कर लेते हैं, उसे कौन टाल सकता है?

विशेष- श्रीभरत के कहने का तात्पर्य है कि, विधाता ने मेरे पिताश्री के भाग्य में पुत्र प्राप्ति का लेख नहीं लिखा था, परन्तु आपने उस लेख पर छेंक लगाकर पिताश्री को चार पुत्र दे दिये, तो यदि आपकी इच्छा से श्रीराम श्रीसाकेत से श्रीअवध निकेत आ गये तो यदि आप इच्छा करें तो श्रीराम चित्रकूट से अवध चल सकते हैं।

दो०- बूझिय मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह मय बचन गुरु, उर उमगा अनुराग।।२५५।।

भा०- ऐसे समर्थ गुरुदेव आप भी अब मुझसे उपाय पूछ रहे हैं। यह मेरा दुर्भाग्य ही तो है। भरत जी के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर गुरुदेव वसिष्ठ जी के हृदय में अनुराग उमड़ पड़ा।

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं।।
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता।।
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरियहिं लखन सीय रघुराई।।

भा०- हे तात्! श्रीराम कृपा से यह बात सत्य है। जो श्रीराम से विमुख हो जाता है, उसे स्वप्न में भी कोई सिद्धि नहीं मिलती अर्थात् प्रभु श्रीराम की कृपा एवं उनकी इच्छा से ही मैंने विधाता की गति रोकी थी और अपने प्रभाव से श्रीराम को रघुवंश में प्रकट होने के लिए विवश किया था, परन्तु उस प्रभाव का प्रयोग यहाँ नहीं कर सकता, क्योंकि प्रभु की इच्छा अभी साथ नहीं दे रही है। हे तात्! एक बात कहने में मैं संकोच कर रहा हूँ, जहाँ सब कुछ जा रहा हो, वहाँ विद्वान् लोग आधा छोड़कर आधा ले लेते हैं। उसी प्रकार तुम भी आधे-आधे का बँटवारा कर लो अर्थात् अभी तो अयोध्या से श्रीराम दूर हो रहे हैं और उनकी सेवा से तुम, इसमें से आधा ले लो। अतः तुम दोनों भाई भरत-शत्रुघ्न वन को चले जाओ और लक्ष्मण, सीताजी, श्रीराम अयोध्या को लौट जायेंगे अर्थात् श्रीराम अयोध्या में रहें। इससे केवल तुम्हारे कैंकर्य की हानि होगी अर्थात् तुम्हें चौदह वर्षों तक प्रभु की सेवा नहीं मिल सकेगी, यही आधा छूटेगा।

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता।।
मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भए राजा।।
बहुत लाभ लोगन लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी।।

भा०- यह सुन्दर वचन सुनकर दोनों भ्राता श्रीभरत एवं शत्रुघ्न जी प्रसन्न हो गये। उनके शरीर अभीष्ट लाभ से उत्पन्न प्रसन्नता से परिपूर्ण हो गये। उनका मन प्रसन्न हुआ, शरीर में तेज सुशोभित होने लगा। मानो महाराज दशरथ जीवित हो उठे और श्रीराम राजा बन गये। वसिष्ठ जी के इस सुझाव से लोगों को बहुत लाभ अर्थात् श्रीराम के अयोध्या चलने से लाभ की सम्भावना हुई और श्रीभरत की अनुपस्थिति से थोड़ी-सी हानि की भी अनुभूति हुई, परन्तु सभी रानियों को दुःख-सुख दोनों समान ही लगे और वे रोने लगीं अर्थात् श्रीराम के श्रीअवध गमन की सम्भावना से एक ओर जहाँ सुख हुआ वहीं दूसरी ओर श्रीभरत के वनगमन की आशंका से दुःख भी तो हुआ। वस्तुतः उन्हें तो श्रीराम एवं श्रीभरत इन दोनों भाइयों की एक साथ उपस्थिति चाहिए थी।

कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे। फल जग जीवन अभिमत दीन्हे।।
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहिं ते अधिक न मोर सुपासू।।

भा०- श्रीभरत कहने लगे, हे महर्षि! आपने जो कहा वही किया और जगत में जीवन का मनोवांछित फल दे दिया अर्थात् अन्ततोगत्वा मुझे वनवास देकर तथा श्रीराम के लिए श्रीअवध चलने का प्रस्ताव करके आपने सबको मनचाहा फल दे दिया। अथवा, महर्षि गुरुदेव वसिष्ठ जी ने मेरे लिए जो चौदह वर्षों के वनवास का पक्ष कहा है, उसे करने से तो मुझे जगत के जीवों को मनचाही वस्तु देने का फल मिलेगा। मैं जीवन भर वन में ही

वास करूँगा। यहाँ से अधिक सुपास अर्थात् सुख–सुविधा श्रीअवध में नहीं सम्भव है, क्योंकि वन प्रभु श्रीराम के चरण–चिन्हों से अंकित है, जो मुझ दरिद्र के लिए पारस है।

दो०- अंतरजामी राम सिय, तुम सरबग्य सुजान।
जौ फुर कहहुँ त नाथ निज, कीजिय बचन प्रमान।।२५६।।

भा०- हे गुरुदेव! भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीता अन्तर्यामी हैं अर्थात् सभी के मन के नियन्ता होने के कारण श्रीसीताराम जी सभी के अन्तर्गत जानते हैं और आप भी सब कुछ जानने वाले तथा चतुर हैं। अथवा, सर्वज्ञ श्रीराम के सम्बन्ध में पूर्णरूप से जानते हैं। अत: आप दोनों मेरे भी मन के सत्य और असत्य इन दोनों पक्षों को जानते हैं। यदि मैं सत्य कह रहा हूँ कि, मैं श्रीअवध की अपेक्षा वन में अधिक सुखी रहूँगा, तो फिर हे स्वामी! आप अपने वचन को प्रमाणित कीजिये अर्थात् मुझे वनवास दीजिये तथा श्रीराम को श्रीअवध लौटा ले जाइये।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू।।
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी।।
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा।।
और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई।।

भा०- श्रीभरत का यह वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सभी के सहित वसिष्ठ जी विदेह हो गये अर्थात् उन्हें अपने शरीर की सुधि–बुधि भूल गई। श्रीभरत की महामहिमा जल की राशि अर्थात् सागर है, वसिष्ठ जी की बुद्धि उस सागर के तट पर खड़ी हुई किंकर्तव्यविमूढ़, आत्मबल से हीन, भोली–भाली महिला के समान है। वह श्रीभरत की महिमा–सागर के पार जाना चाहती है। हृदय में यत्न ढूँढ रही है, किन्तु न तो वह नाव प्राप्त कर रही है और न ही जहाज और बेड़ा पा रही है अर्थात् वहाँ विद्यारूप नाव, विवेकरूप जहाज और शरीररूप बेड़ा यह तीनों ही श्रीभरत के स्नेह के प्रवाह में डूब गये हैं। वसिष्ठ जी के अतिरिक्त और कौन श्रीभरत की प्रशंसा करेगा? क्या तलैया में उत्पन्न हुई सीपि में अथाह सागर समा सकता है?

भरत मुनिहिं मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहँ आए।।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब सुनि मुनि अनुशासन।।

भा०- श्रीभरत मुनि वसिष्ठ जी के मन के भीतर भा गये और प्रथम सभा को विश्राम देकर वसिष्ठ जी सम्पूर्ण समाज के सहित भगवान् श्रीराम के पास आये। प्रभु श्रीराम ने प्रणाम करके सबको सुन्दर आसन दिया। मुनि की आज्ञा सुनकर सभी लोग बैठ गये अर्थात् दूसरी सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

बोले मुनिवर बचन बिचारी। देश काल अवसर अनुहारी।।
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना।।

भा०- मुनि वसिष्ठ जी विचार कर देश, काल तथा समय के अनुरूप वचन बोले, हे सब कुछ जानने वाले चतुर! हे धर्म,नीति, सद्गुण और ज्ञान के कोश स्वरूप प्रभु श्रीराम! सुनिये,

दो०- सब के उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिय उपाउ।।२५७।।

भा०- आप सभी के हृदय के भीतर निवास करते हैं और सभी के श्रेष्ठ भाव और बुरे भाव को जानते हैं। जिससे अवधपुरवासियों का, सभी माताओं का और भरत का हित हो आप वही उपाय कहिये।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ।।
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ।।

भा०- आर्त्तलोग अर्थात् अभीष्ट वस्तु पाने के लिए व्याकुल लोग कभी भी विचार करके कुछ भी नहीं कहते, क्योंकि जुआ खेलनेवाले को अपना ही दाव सूझता है, उसे दूसरों के हानि–लाभ की चिन्ता नहीं रहती। अत: हम आर्त्त हैं, हम कुछ भी विचार करके नहीं कह रहे हैं। वसिष्ठ जी के वचन सुनकर, रघुराज श्रीराम बोले, हे नाथ! वह उपाय आपके हाथ में है।

सब कर हित रुख राउर राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखे।।
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करौं सिख सोई।।
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाँई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।।

भा०- आपके रुख अर्थात् मनोभाव को प्रकट करने वाले संकेत का पालन करने में तथा प्रसन्नतापूर्वक सत्य कहे हुए आदेश का पालन करने में सभी का हित है। सर्वप्रथम जो मेरे लिए आज्ञा हो, उसको मैं अपने मस्तक पर धारण करके आपकी शिक्षा मानकर पालन करूँगा। हे स्वामी! फिर आप जिसके लिए जो कहेंगे वह सब प्रकार से आपकी सेवा में तत्पर रहेगा।

कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत सनेह बिचार न राखा।।
तेहिं ते कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बश भइ मति मोरी।।
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो शुभ शिव साखी।।

भा०- मननशील महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा, हे श्रीराम! आपने सत्य ही कहा है, परन्तु भरत के प्रेम ने मेरे मन में कोई विचार नहीं रहने दिया, इसलिए मैं आप से पुन:–पुन: कह रहा हूँ कि, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश में हो गई है। मेरी समझ में आप भरत की रुचि की रक्षा करके, जो भी करेंगे वह शुभ होगा। मेरी इस अवधारणा में शिव जी साक्षी हैं।

दो०- भरत बिनय सादर सुनिय, करिय बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि।।२५८।।

भा०- पहले आदरपूर्वक भरत का विनय सुन लीजिये, फिर विचार कीजिये इसके पश्चात् साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों को निचोड़कर निष्कर्ष निकालकर वही करियेगा।

गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनन्द बिशेषी।।
भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी।।
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला।।

भा०- गुरुदेव का श्रीभरत पर अनुराग अर्थात् उपमा रहित अनुच्छिष्ट अनुकूल राग यानी लगाव देखकर, भगवान् श्रीराम के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। श्रीभरत जी को धर्म की धुरी को धारण करने वाला जानकर, शरीर, मन और वाणी से श्रीभरत को अपना सेवक मानकर, भगवान् श्रीराम गुरुदेव की आज्ञा के अनुकूल मधुर कोमल, प्रसन्नता और कल्याण के आश्रयरूप वचन बोले–

नाथ शपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई।।
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी।।
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू।।

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई।।
भरत कहहिं सोइ किए भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।।

भा०– हे नाथ! आपकी शपथ और पिताश्री के चरणों की दुहाई करके मैं सत्य कहता हूँ कि, भरत जैसा भाई संसार में नहीं हुआ। जो गुरुदेव के श्रीचरणकमल में प्रेम करते हैं, वे लोक और वेद दोनों में बहुत–बड़े भाग्यशाली होते हैं। जिस पर आपका ऐसा अनुराग हो, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है? भरत को छोटा भाई देखकर, मुख पर भरत की बड़ाई करते हुए मेरी बुद्धि संकुचित हो रही है। जो भरत कहें वही करने में भलाई अर्थात् कल्याण है। ऐसा कहकर, भगवान् श्रीराम चुप रह गये।

दो०– तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन, कहहु हृदय की बात।।२५९।।

भा०– तब महर्षि वसिष्ठजी, भरत जी से बोले, हे वत्स! सम्पूर्ण संकोच छोड़कर कृपा के सागर अपने प्यारे भैया श्रीराम से अपने हृदय की बात कहो।

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई।।
लखि अपने सिर सब छर भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू।।

भा०– मुनि वसिष्ठ जी के वचन सुनकर, श्रीराम की इच्छासूचक संकेत पाकर एवं गुरुदेव तथा स्वामी को पूर्ण अनुकूल जानकर और गुरुदेव एवं स्वामी की अनुकूलता से तृप्त होकर, अपने ही सिर पर सम्पूर्ण कार्य–भार देखकर श्रीभरत कुछ भी नहीं कह सके, विचार करने लगे।

पुलकि शरीर सभा भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े।।
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहौं मैं काहा।।

भा०– रोमांचित शरीर होकर श्रीभरत कुछ बोलने के लिए सभा में खड़े हो गये। उनके कमल जैसे नेत्रों में स्नेह का जल भर आया, परन्तु अमंगल के भय से वह गिरा नहीं। श्रीभरत ने कहा, मुनियों के नाथ गुरुदेव ने मेरे कथन का निर्वाह किया इससे अधिक मैं क्या कहूँ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ।।
मो पर कृपा सनेह बिशेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी।।

भा०– मैं अपने नाथ श्रीराघव का स्वभाव जानता हूँ। अपराधी पर भी उन्हें कभी भी क्रोध नहीं आता। मुझ पर कृपा और विशेष स्नेह करते हैं। खेल में भी कभी उनमें क्रोध नहीं देखा।

शिशुपन ते परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।।
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेउँ खेल जितावहिं मोही।।

भा०– बाल्यावस्था से उन्होंने कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा। अथवा, मुझ पर से कभी लगाव नहीं छोड़ा। प्रभु ने कभी भी मेरा मनोभंग नहीं किया अर्थात् मेरा मन नहीं तोड़ा, सतत मेरे मन का ही किया। मैंने प्रभु श्रीराघव की कृपा की पद्धति अपने हृदय में और हृदय से देखी है। खेल में हारे हुए मुझ भरत को प्रभु जिता दिया करते थे।

दो०– महूँ सनेह सकोच बश, सनमुख कहा न बैन।
दरशन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन।।२६०।।

भा०– मैंने भी स्नेह और संकोच के कारण प्रभु के सन्मुख वचन नहीं कहे अर्थात् एक भी वाक्य नहीं बोला, कभी अपनी इच्छा नहीं प्रकट की। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु श्रीराम के दर्शनों से तृप्त नहीं हुए।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा।।
यहउ कहत मोहि आजु न शोभा। आपनि समुझि साधु शुचि को भा।।

भा०– परन्तु विधाता प्रभु श्रीराघव द्वारा किये जा रहे मेरे दुलार को नहीं सह सके और उन्होंने निम्नश्रेणी वाली माता कैकेयी के बहाने मेरे और प्रभु के बीच अन्तर डाल दिया। आज यह कहने में भी मेरे लिए शोभा नहीं है, क्योंकि अपनी समझ से कौन पवित्र साधु हुआ है अर्थात् अपने द्वारा दिये हुए प्रमाण–पत्र में न कोई साधु होता है और न माना जाता है। जिसे समाज प्रमाण–पत्र देता है तथा प्रशंसा करता है, वही साधु है।

मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।।
फरइ कि कोदव बालि सुशाली। मुकता प्रसव कि शंबुक ताली।।

भा०– माता निकृष्ट प्रकृति की है और मैं सुन्दर कार्य करने वाला साधु हूँ, ऐसी धारणा हृदय में लाने पर करोड़ों कुचाल हो जाता है अर्थात् माता के गुण तो पुत्र में आते ही हैं, क्या कोदव में सुन्दर धान की बाल फल सकती है? क्या तलैया के घोंघे में मोती उत्पन्न हो सकती है?

सपनेहुँ दोसक लेश न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।।
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। जारेउँ जाय जननि कहि काकू।।

भा०– स्वप्न में भी किसी के दोष का लेश भी नहीं है अर्थात् कुछ भी दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य ही अगाध सागर है, अपने पाप का परिणाम समझे बिना मैंने व्यर्थ ही काकू अर्थात् तीखी वक्रोक्तियाँ कह कर अपनी माँ को जलाया।

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा।।
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।।

भा०– हृदय में सब ओर ढूँढ कर मैं हार चुका हूँ। मेरा तो एक ही प्रकार से भला ही भला है, आप जैसे समर्थ इन्द्रियों के नियन्ता वसिष्ठ जी मेरे गुरुदेव हैं और श्रीसीताराम जी मेरे स्वामिनी और स्वामी हैं, मुझे परिणाम अच्छा लग रहा है।

दो०– साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूँठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ।।२६१।।

भा०– सन्तों की सभा में अपने गुरुदेव आप वसिष्ठ मुनि एवं प्रभु श्रीसीता, राम जी के निकट इस पवित्र स्थल श्रीचित्रकूट में मैं अपने हृदय का सत्यभाव कह रहा हूँ। यह मेरे प्रेम का प्रपंच अर्थात् निरर्थक विस्तार है। अथवा, असत्य है या सत्य है इसे तो मननशील गुरुदेव वसिष्ठ जी एवं रघु अर्थात् जीवों के हृदय में राउ यानी अन्तर्यामी रूप से विराजमान श्रीसीताराम जी ही जानते हैं।

भूपति मरन प्रेम पन राखी। जननी कुमति जगत सब साखी।।
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी।।
मैंहि सकल अनरथ कर मूला। सो मन समुझि सहेउँ सब शूला।।

भा०– प्रेम और प्रतिज्ञा की रक्षा करने से महाराज दशरथ जी का मरण हुआ और मेरी माँ दुष्टबुद्धि की है, इस तथ्य का सारा संसार साक्षी है। प्रभु के वियोग में व्याकुल मातायें देखी नहीं जा रही हैं। श्रीराघव के वियोग के विषम ज्वर से श्रीअवध के सभी नर–नारी जले जा रहे हैं। मैं ही इस सम्पूर्ण अनर्थ का मूल कारण हूँ। मन में यह समझ कर मैंने सम्पूर्ण कष्ट सहन किया।

सुनि बन गमन कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा।।
बिनु पानहिन पयादेहिं पाएँ। शङ्कर साखि रहेउँ एहि घाएँ।।

भा०– मुनिवेश धारण करके चरणों में पनहीं धारण किये बिना नंगे चरणों से पैदल ही लक्ष्मण, भगवती श्रीसीता के सहित श्रीराम ने वन के लिए गमन किया, यह समाचार सुनकर, इस घाव से मैं जीवित रहा, इसमें शिवजी साक्षी हैं अर्थात् जैसे विष पी कर शिव जी जीवित रहे, उसी प्रकार यह विष पीकर मैं जीवित रहा।

बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिश कठिन उर भयउ न बेहू।।
अब सब आँखिन देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबई सहाई।।
जिनहिं निरखि मग सापिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी।।

भा०– फिर निषादराज गुह के स्नेह को देखकर भी वज्र से भी कठिन मेरे ह्रदय में बेहू अर्थात् वेध नहीं हुआ अर्थात् यह फट नहीं गया। अब श्रीचित्रकूट आकर सब कुछ आँखों से देखा। जीता हुआ यह दुष्ट जीव सब कुछ सहा रहा है और सब कुछ सहन करायेगा। जिन श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को देखकर वन मार्ग की सर्पिणियाँ और बीछियाँ अर्थात् बिच्छू की स्त्रियाँ अपने भयंकर विष और तीक्ष्ण तमोगुण से उत्पन्न क्रोध को छोड़ देती है।

दो०- तेइ रघुनंदन लखन सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि।।२६२।।

भा०– वे ही रघुकुल के नन्दन तथा रघु अर्थात् जीवमात्र को आनन्द देने वाले श्रीराम, लक्ष्मण, भगवती सीताजी, जिस कैकेयी को अनहित अर्थात् शत्रु प्रतीत हुए। उस कैकेयी के पुत्र मुझ भरत को छोड़कर विधाता और किसे असहनीय दुःख सहायेंगे? अर्थात् ऐसे निष्ठुर माता के पुत्र को ही यह असहनीय दुःख सहना होगा?

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी।।
शोक मगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुषारू।।

भा०– इस प्रकार आर्त्ति, प्रीति, विनम्रता और राजनीति से सनी हुई अत्यन्त व्याकुल हुए श्रीभरत की श्रेष्ठ वाणी सुनकर शोक से विकल हुई सम्पूर्ण सभा को खभार, भयंकर दुःख हुआ अर्थात् खलबली मच गई मानो कमल के समूह पर हिमपात हो गया हो।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोध कीन्ह मुनि ग्यानी।।
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू।।

भा०– अनेक प्रकार से पौराणिक कथा कहकर, ज्ञानीमुनि वसिष्ठ जी ने भरत जी को प्रबोधित किया अर्थात् उन्हें समझाया। सूर्यकुलरूप कुमुदवन के चन्द्रमा रघु अर्थात् सम्पूर्ण जीवों को आनन्दित करने वाले प्रभु श्रीराम उचित वचन बोले–

तात जाय जनि करहु गलानी। ईश अधीन जीव गति जानी।।
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्यसलोक तात तर तोरे।।

भा०– हे भैया भरत! जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानकर तुम मन में व्यर्थ ही ग्लानि कर रहे हो। हे भैया! भूत, वर्तमान, भविष्यत् नामक तीनों कालों में स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक इन तीनों लोकों में और मेरे मत में सभी पुण्यश्लोक तुम्हारे नीचे हैं, तुम सर्वश्रेष्ठ पुण्यश्लोक हो।

विशेष– शास्त्रों में नल, युधिष्ठिर, महाराज जनक और भगवान् विष्णु को पुण्यश्लोक कहा गया है।

पुण्यश्लोको नलो राजा, पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।।
पुण्यश्लोको विदेहश्च, पुण्यश्लोको जनार्दनः।।

परन्तु भरत इन सभी पुण्यश्लोकों से सर्वश्रेष्ठ हैं।

उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई।।
दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन गुरु साधु सभा नहिं सेई।।

भा०– तुम पर हृदय में कुटिलता का भाव लाते ही लोक चला जायेगा और परलोक भी नष्ट हो जायेगा। वे ही जड़ प्रकृति के लोग माता कैकेयी को दोष देते हैं और देंगे, जिन्होंने गुरुजनों और साधुओं की सभा की सेवा नहीं की है।

दो०– मिटिहैं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार।।२६३।।

भा०– हे भैया! आपके भरत–भरत इस नाम का स्मरण करते ही सभी पापों का प्रपंच अर्थात् विस्तार समूह, अमंगलों के भार नष्ट हो जायेंगे, लोक में सुयश होगा और परलोक में सुख होगा।

कहउँ स्वभाव सत्य शिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी।।
तात कुतरक करहु जनि जाए। बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराए।।

भा०– मैं शिव जी को साक्षी करके अपना सत्यभाव कह रहा हूँ, हे भरत! आपके ही रखने से यह पृथ्वी रह रही है। हे तात्! व्यर्थ का कुतर्क मत करो अर्थात् अपने मन में कुविचार मत करो, वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते।

मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।।
हित अनहित पशु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना।।

भा०– देखो भरत! अबोध पक्षी और हिरण भी शान्त अहिंसाप्रिय मुनिगणों के निकट चले जाते हैं और हिंसक कसाई को देखकर स्वयं भाग जाते हैं। जब अज्ञानी पशु और पक्षी भी अपना हित और अनहित समझते हैं तब मनुष्य शरीर तो गुणों और ज्ञान का कोश है।

तात तुमहिं मैं जानउँ नीके। करौं काह असमंजस जीके।।
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी।।
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू।।
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा।।

भा०– हे भैया! मैं तुम्हें अच्छी प्रकार से जानता हूँ। अपने मन में असमंजस क्यों करूँ? महाराज पिताश्री ने मुझे त्याग कर सत्य की रक्षा की और प्रेम और प्रतिज्ञा के लिए अपना शरीर छोड़ दिया। उनका वचन रूप आदेश मेटने अर्थात् मिटा देने में मुझे अत्यन्त शोक हो रहा है, उससे भी अधिक है तुम्हारा संकोच, उस पर गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी है। तुम जो कहोगे मैं वही अवश्य करना चाहूँगा।

दो०- मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आज।
सत्यसंध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाज।।२६४।।

भा०- अपने मन को प्रसन्न करके संकोच छोड़कर तुम जो कहोगे आज मैं वही करूँगा। सत्यप्रतिज्ञ भगवान् श्रीराम का वचन सुनकर सम्पूर्ण समाज सुखी हो गया।

* मासपारायण, अठारहवाँ विश्राम *

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू।।
करत उपाउ बनत कछु नाहीं। राम शरन सब गे मन माहीं।।

भा०- देवगणों के सहित भयभीत देवराज इन्द्र चिन्ता करने लगे। अब तो अकार्य हुआ चाहता है, कोई उपाय करते नहीं बन रहा है। सभी देवगण मन में श्रीराम के शरण में गये।

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं।।
सुधि करि अंबरीष दुर्बासा। भे सुर सुरपति निपट निराशा।।

भा०- फिर देवगण विचार करके परस्पर कहते हैं कि, श्रीराम भक्तों के भक्ति के वश में रहते हैं। अम्बरीश और दुर्वासा का स्मरण करके देवता और इन्द्र बहुत निराश हुए।

विशेष- उस प्रकरण में भगवान् ने दुर्वासा का नहीं प्रत्युत् अम्बरीश का पक्ष लिया था। कदाचित् यहाँ भी भगवान् देवताओं का पक्ष न लेकर भरत जी का पक्ष ले लें, यही तथ्य देवताओं के निराशा का कारण है।

सहे सुरन बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा।।
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा।।

भा०- देवताओं ने बहुत काल तक कष्ट सहे, इसके पश्चात् प्रह्लाद ने श्रीनृसिंहदेव को प्रकट कर दिया। सभी देवता सिर पीट-पीट कर एक दूसरे के कान में लग-लग कर कहते हैं कि, अब तो श्रीभरत के हाथ में ही देवताओं का कार्य है।

आन उपाय न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक सेवा।।
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। निज गुन शील राम बश करतहिं।।

भा०- हे देवताओं! अब और उपाय हम लोग नहीं देख रहे हैं। भगवान् श्रीराम सुन्दर सेवक की सेवा को ही मानते हैं और उसे सम्मान देते हैं। अपने गुण और स्वभाव के द्वारा भगवान् श्रीराम को अपने वश में कर रहे श्रीभरत को प्रेमपूर्वक हृदय में स्मरण करो।

दो०- सुनि सुरमत सुर गुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग।
सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुराग।।२६५।।

भा०- देवताओं का मत सुनकर, देवगुरु बृहस्पति ने कहा, तुम्हारा बहुत-बड़ा श्रेष्ठ भाग्य है, क्योंकि श्रीभरत के चरणों का प्रेम संसार के सभी शुभ मंगलों का मूल है।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु शत सरिस सुहाई।।
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच बिधि बात बनाई।।

भा०- श्रीसीता के पति भगवान् श्रीराम के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनु के समान सुहावनी है। तुम्हारे मन में श्रीराम के सेवक श्रीभरत की भक्ति आ गई है। देवताओं चिन्ता छोड़ दो विधाता ने सब बात बना दी है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज स्वभाव बिबश रघुराऊ।।
मन थिर करहु देव डर नाही। भरतहि जानि राम परिछाहीं।।

भा०– हे इन्द्र! श्रीभरत का प्रभाव तो देखो उनके सहज स्वभाव के विवश हो रहे हैं भगवान् श्रीराम। देवताओं! कोई डर नहीं है श्रीभरत को श्रीराम की परछाईं जानकर मन को स्थिर कर लो।

सुनि सुरगुरु सुर सम्मत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू।।
निज सिर भार भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना।।

भा०– देवगुरु का सम्मत और देवताओं की चिन्ता सुनकर, अन्तर्यामी प्रभु श्रीराम को संकोच होने लगा। श्रीभरत ने जब अपने सिर पर पूरा भार जाना, तब वे मन में करोड़ों प्रकार से अनुमान करने लगे।

करि बिचार मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका।।
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा।।

भा०– उन्होंने विचार करके मन में एक ठीका दिया अर्थात् निश्चय किया कि भगवान् श्रीराम की राजाज्ञा का पालन अपने लिए बहुत अच्छा है, उसके पालन में अपनी भलाई है। भगवान् श्रीराम ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा की। मुझ पर उन्होंने ममता और स्नेह थोड़ा नहीं किया है अर्थात् बहुत किया है।

दो०- कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जलज जुग हाथ।।२६६।।

भा०– श्रीसीता के पति भगवान् श्रीराम ने सब प्रकार से असीम और अत्यन्त अनुग्रह किया है। इस प्रकार निश्चय करके दोनों करकमलों को जोड़ प्रणाम करके श्रीभरत बोले–

कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी।।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित शूला।।

भा०– हे कृपा के सागर! हे अन्तर्यामी मेरे स्वामी राघवेन्द्र! अब मैं क्या कहूँ और क्या कहलाऊँ? गुरुदेव को प्रसन्न और स्वामी श्रीराघव को अपने अनुकूल देखकर मेरे मलिन (मैले मल से युक्त) मन द्वारा कल्पित दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोष देव दिशि भूले।।
मोर अभाग मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई।।
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला।।

भा०– हे देव! मैं अपने द्वारा कल्पित डर से डर गया जबकि, मेरे शोक में मूल नहीं है। मैं निराधर शोक कर रहा हूँ। हे देव! यदि कोई दिशा भूल जाये तो इसमें सूर्यनारायण का दोष नहीं समझना चाहिये। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की प्रतिकूल गति और काल की कठिनता सबने मिलकर मेरा पाँव पकड़कर गिराया अर्थात् नष्ट किया। परन्तु हे शरणागतों के पालक! आप ने अपने प्रण का पालन किया।

यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई।।
जग अनभल भल एक गोसाईं। कहिय होइ भल कासु भलाई।।

भा०– हे भगवन्! यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है। यह लोक और वेद में प्रसिद्ध है, किसी से छिपी नहीं है। हे गोसाईं प्रभु श्रीराम! सारा संसार अनभल अर्थात् बुरा है। आप ही एक भले हैं, फिर कहिये आपकी भलाई को छोड़कर किसकी भलाई से जीव का भला हो सकता है।

देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ।।
दो०- जाइ निकट पहिचानि तरु, छाहँ शमन सब सोच।
माँगत अभिमत पाव फल, राउ रंक भल पोच।।२६७।।

भा०– हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, जो कभी भी किसी के लिए न ही सन्मुख है, न तो विमुख अर्थात् न ही प्रतिकूल है और न ही अनुकूल। हे भगवन्! चाहे राजा हो या दरिद्र, चाहे भला हो या बुरा, कभी भी कल्पवृक्ष के निकट जाकर, उसे पहचानकर, उससे कुछ भी माँगे तो वह अभिमत फल दे देता है और अपनी छाया से सम्पूर्ण शोकों को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार राजा–भिखारी, भला–बुरा कोई भी जब आपके निकट जाता है और आपको पहचान लेता है तो उसकी चिन्ता मिट जाती है और वह मनचाहा फल पा जाता है।

लखि सब बिधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू।।
अब करुनाकर कीजिय सोई। जन हित प्रभु चित छोभ न होई।।

भा०– सब प्रकार से गुरुदेव एवं स्वामी आपश्री भगवान् राम के स्नेह को देखकर मेरा क्षोभ मिट गया है, मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। हे करुणा की खानि भगवान् श्रीराघव जी! अब वही कीजिये जिससे दास का हित हो और आपके चित्त में क्षोभ भी न हो।

जो सेवक साहिबहिं सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची।।
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई।।

भा०– जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना हित चाहता है, उसकी बुद्धि निम्न होती है। सेवकों का हित तो इसमें है कि, वह सम्पूर्ण सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा करे।

स्वारथ नाथ फिरे सबही का। किए रजाइ कोटि बिधि नीका।।
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू।।

भा०– हे नाथ! आपके श्रीअवध लौट चलने से सभी का स्वार्थ सिद्ध हो जायेगा, पर उसकी अपेक्षा आपकी राजाज्ञा का पालन करने से करोड़ों प्रकार से भला होगा। हे भगवन्! आपको जो मैं पक्ष दे रहा हूँ, यह स्वार्थ और परमार्थ का तत्त्व है तथा सम्पूर्ण सत्कर्मों का फल है और सुन्दर गति, निर्वाण का भी शृंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी।।
तिलक समाज साजि सब आना। करिय सुफल प्रभु जौ मन माना।।

भा०– हे देव! एक मेरी प्रार्थना सुन लीजिये, फिर जैसा उचित हो वैसा कर दीजियेगा। हे प्रभु! आपके तिलक का सम्पूर्ण समाज अर्थात् सामग्री सजाकर श्रीचित्रकूट ले आया हूँ। यदि आपका मन मान जाये तो उसको सफल कर दीजिये।

दो०- सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरियहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ।।२६८।।

भा०- हे राघव! आप छोटे भाई शत्रुघ्न के सहित मुझे वन भेज दीजिये और श्रीसीता, लक्ष्मण के साथ श्रीअवध पधारकर सभी को सनाथ अर्थात् आश्रयवान बना लीजिये। नहीं तो, दोनों भाई लक्ष्मण, शत्रुघ्न को अयोध्या भेज दीजिये और हे नाथ! आपके साथ वन को मैं चलूँ।

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई।।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिय सोई।।

भा०- नहीं तो हम तीनों भाई, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वन को चले जायें और हे रघुराज प्रभु! आप श्रीसीता के सहित श्रीअवध को पधार जाइये। हे प्रभु! जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न हो, हे करुणा के समुद्र श्रीराघवेन्द्र सरकार! आप वही कीजिये।

देव दीन्ह सब मोहि शिर भारू। मोरे नीति न धरम बिचारू।।
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। सहत न आरत के चित चेतू।।
उतर देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई।।
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू।।
अब कृपालु मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा।।
प्रभु पद शपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ।।

दो०- प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहिं सब, मिटिहिं अनट अवरेब।।२६९।।

भा०- हे देव! आप ने मेरे सिर पर सारा भार दे दिया है, जबकि मेरे पास न तो नीति है और न ही धर्म का विचार। मैं सभी वचन अपने स्वार्थ के लिए कहता हूँ, क्योंकि आर्त्त को चित्त का चेत नहीं होता अर्थात् चेतना नहीं होती। स्वामी की राजाज्ञा सुनकर भी जो सेवक उसके प्रतिपक्ष में उत्तर देता है, उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। इसी प्रकार का मैं दुर्गुणों का अगाध सागर हूँ, किन्तु स्वामी के स्नेह के कारण ही साधुजन सराहना करते हैं और आप भी स्नेह के कारण मुझे साधु कहकर सराहते हैं। हे कृपालु! अब तो मुझे वही मत अच्छा लग रहा है, जिससे स्वामी के मन में संकोच न आवे। अथवा, हे कृपालु मुझे तो वही मत अच्छा लगता है। आप निस्संकोच आज्ञा दें, क्योंकि संकोच के कारण आपश्री का वास्तविक मनोभाव पाया नहीं जाता। मैं आपके चरणों की शपथ करके सत्यभाव से जगत् के मंगल के लिए ही उपाय कह रहा हूँ। हे प्रभु! आप मन में प्रसन्न होकर जिसे जो आज्ञा देंगे वह सभी लोग सिर पर धारण कर–कर के पालन करेंगे और सभी अन्याय, उपद्रव और अवरेब अर्थात् उलझनें मिट जायेंगी।

भरत बचन शुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन बहु बरषे।।
असमंजस बश अवध निवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी।।
चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची।।

भा०- श्रीभरत के पवित्र वचन सुनकर, देवता प्रसन्न हुए, सभी लोग साधु–साधु कहकर श्रीभरत की सराहना करके बहुत से पुष्पों की वर्षा किये। सभी श्रीअयोध्यावासी असमंजस के वश में हो गये अर्थात् श्रीराम श्रीअवध को लौटेंगे या नहीं इस दुविधा में पड़ गये। तपस्वी और वनवासी मन में बहुत प्रसन्न हुए। स्वभाव से संकोची श्रीरघुनाथ चुप रहे। प्रभु की यह दशा देखकर सम्पूर्ण सभा सोच में पड़ गई।

जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए।।
करि प्रनाम तिन राम निहारे। बेष देखि भए निपट दुखारे।।

भा०- उसी अवसर पर जनक जी के दूत श्रीचित्रकूट आ गये। सुनते ही वसिष्ठ मुनि ने उन्हें शीघ्र ही सभा में बुला लिया। प्रणाम करके दूतों ने श्रीराम को देखा और उनका तपस्वी वेश देखकर बहुत दु:खी हुए।

दूतन मुनिवर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुशलाता।।
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरे हाथा।।
बूझब राउर सादर साईं। कुशल हेतु सो भयउ गोसाईं।।

भा०- दूतों से मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने बाता अर्थात् वार्ता कुशल पूछी, हे दूतों! विदेहराज जनक जी का कुशल सुनाओ। वसिष्ठ जी के वचन सुनकर संकुचित होकर, पृथ्वी पर मस्तक नवाकर हाथ जोड़े हुए श्रेष्ठदूत बोले, हे स्वामी! हे इन्द्रियों के नियन्ता महर्षि! आपका आदरपूर्वक जनकराज का कुशल पूछना वही उनकी कुशलता का कारण बन गया।

विशेष- वसिष्ठ जी के कुशल प्रश्नों से जनकराज के दूतों को इसलिए संकोच हुआ कि, वे यह सोचने लगे कि, कदाचित् वसिष्ठ जी की अवधारणा हो कि, महाराज का निधन सुनकर भी श्रीजनक श्रीअवध को क्यों नहीं पधारे? परन्तु उनका उत्तर भी बहुत सुन्दर है कि, महराज जनक जी के नहीं आने पर आपको भी तो उनकी कुशल के विषय में आशंका होनी चाहिये थी। चूँकि आप कुशल प्रश्न पूछ रहे हैं इसलिए जनकराज की कुशलता तो सुनिश्चित हो ही गई।

दो०- नाहिं त कोसल नाथ के, साथ कुशल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिशेष ते, जग सब भयउ अनाथ।।२७०।।

भा०- नहीं तो, हे नाथ! अयोध्यापति दशरथ जी के साथ ही जनक जी की भी कुशलता चली गई। विशेषकर मिथिला, अयोध्या और सामान्यतया सारा संसार अनाथ हो गया।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग सोच बस बौरा।।
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नाम सत्य अस लाग न केहू।।

भा०- अयोध्यापति दशरथ जी की गति सुनकर जनकपुर के सभी लोग शोक के वश होकर बावले हो गये। उस समय जिसने श्रीजनक को देखा उसे उनका विदेह नाम सत्य जैसा नहीं लगा अर्थात् विदेह होकर भी श्रीजनक शोक से बहुत प्रभावित हुए।

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहिं।।
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेशहिं हृदय हरासू।।

भा०- रानी कैकेयी की कुचाल सुनकर मनुष्यों के पालक महाराज श्रीजनक को उसी प्रकार कुछ नहीं सूझा जैसे मणि के बिना सर्प को कुछ नहीं सूझता। श्रीभरत का राज्य और श्रीराम का वनवास सुनकर, महाराज के हृदय में बहुत दु:ख हुआ। अर्थात् श्रीजनक श्रीभरत को राज्य और श्रीराम को वनवास इन दोनों में से किसी को उचित नहीं ठहरा पाये।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू।।
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ।।

भा०- महाराज जनक जी ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा आप लोग विचार करके कहिये, आज क्या उचित है? श्रीअवध में दोनों असमंजस समझकर रुकना चाहिये अथवा चलना चाहिये, इन दोनों पक्षों में से कोई कुछ भी नहीं कह रहा है, क्योंकि श्रीभरत और श्रीराम दोनों ही जनकपुर के जामाता हैं।

नृपहिं धीर धरि हृदय बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी।।
बूझि भरत गति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ।।

भा०- महाराज श्रीजनक ने ही धैर्य धारण करके, हृदय में विचार कर, चार चतुर गुप्तचरों को श्रीअवध भेजा। उनसे कहा कि, श्रीभरत की मनोदशा, भाव और कुभाव को समझकर शीघ्र चले आओ, कोई भी तुम्हें देख नहीं सके।

दो०- गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहिं भरत, चार चले तिरहूति।।२७१।।

भा०- श्रीअवध में गुप्तचर गये और उन्होंने भरत जी की गति समझी और उनके कर्म देखे। जब श्रीभरत श्रीचित्रकूट चल पड़े, तब श्रीजनक के चारों गुप्तचर भी मिथिला के लिए चले।

दूतन आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी।।
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति।।

भा०- श्रीजनक के दूतों ने मिथिलापुर आकर अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीजनक की सभा में श्रीभरत के कृत्य कह सुनाये। दूतों के वचन सुनकर, गुरु याज्ञवल्क्य जी, परिवार के लोग, मंत्री और महाराज श्रीजनक, सभी लोग स्नेह में अत्यन्त व्याकुल हो गये।

धरि धीरज करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई।।
घर पुर देश राखि रखवारे। हय गय रथ बहु यान सँवारे।।
दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्राम न मग महिपाला।।
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सब लागा।।
खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन कहि अस महि नायउ माथा।।

भा०- धैर्य धारण करके तथा भरत की बड़ाई करके श्रीजनक ने वीर सैनिकों और साहनी, अर्थात् रक्षकों अथवा, घोड़ों के पालने वालों को बुला लिया। राजभवन, जनकपुर और मिथिला देश में रक्षकों को रखकर हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी पालकी आदि अन्य वाहन सजाये। दुघरी अर्थात् द्वीघटी मुहूर्त का शोधन करके तत्काल चल पड़े। महाराज श्रीजनक ने मार्ग में विश्राम नहीं किया। आज ही प्रातःकाल प्रयाग नहाकर चले और जब सब लोग यमुना पार उतरने लगे, उसी समय श्रीचित्रकूट का समाचार लेने के लिए श्रीजनक द्वारा हम लोग भेजे गये हैं। ऐसा कहकर, श्रीजनक जी के दूतों ने पृथ्वी पर प्रणाम किया।

साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे।।

दो०- सुनत जनक आगमन सब, हरषेउ अवध समाज।
रघुनंदनहिं सँकोच बड़ सोच बिबश सुरराज।।२७२।।

भा०- उनके साथ छः-सात किरातों को दिया और वसिष्ठ जी ने शीघ्र ही दूतों को विदा किया। जनक जी का चित्रकूट आगमन सुनते ही सम्पूर्ण अवध समाज प्रसन्न हुआ। श्रीराम को बहुत संकोच हो रहा है और इन्द्र शोक के वश हो गये हैं।

गरइ गलानि कुटिल कैकेयी। काहि कहै केहि दूषन देई।।
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी।।

भा०– कुटिल कैकेयी ग्लानि से गलीं जा रहीं हैं। वह किसे क्या कहें और किसे दोष दें? ऐसा विचार मन में लाकर श्रीअवध के नर–नारी बहुत प्रसन्न हुए कि, अब तो फिर कम से कम चार दिन तक तो यहाँ रहना हो ही गया, क्योंकि जनक जी के आगमन के पश्चात् महाराज दशरथ का त्रिदिवसीय राजकीय शोक मनाया जायेगा, इसके पश्चात् कोई कार्यवाही होगी।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लगे सब कोऊ।।
करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनपति गौरि पुरारि तमारी।।

भा०– इस प्रकार, वह दिन भी बीत गया। प्रात:काल सब लोग स्नान करने लगे और स्नान करके सभी नर–नारी गणेश, गौरी, शिवजी, सूर्य और विष्णु जी की पूजा करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी।।
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी।।
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं राम करहिं जुबराजा।।
एहि सुख सुधा सीचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू।।

भा०– और फिर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु जी के चरणों का वन्दन करके पुरुषगण हाथ जोड़ और नारियाँ हाथ में आँचल लेकर पंचदेव (गणपति, शक्ति, शिवजी, सूर्य और विष्णु जी) से प्रार्थना करने लगे। श्रीराम राजा बनकर और भगवती श्रीजानकी अवध की साम्राज्ञी बनकर आनन्द की सीमारूप श्रीअयोध्या राजधानी में समाज के सहित फिर सुखपूर्वक निवास करें और श्रीराजाराम, श्रीभरत को युवराज बनायें। हे देव! (हे पंचदेव!) इस सुख के अमृत से सभी अवधवासियों को सींचकर जगत् में जीवन का लाभ दीजिये।

दो०– गुरु समाज भाइन सहित, राम राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ।।२७३।।

भा०– हे पंचदेवताओं! गुरुजन, परिजन और भाइयों के सहित श्रीअवधपुर में श्रीराम का राज्य हो और श्रीअवध में श्रीराम के राजा रहते ही हम लोग मरें अर्थात् अपना शरीर छोड़ें, इस प्रकार सभी लोग पाँचों देवताओं से माँग रहे थे।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ज्ञानी।।
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन।।

भा०– अवधवासियों की प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनिजन अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस प्रकार सभी अवधवासी नित्यक्रिया, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, अग्निहोत्र, पंचयज्ञ बलिवैश्वदेव करके भगवान् श्रीराम को रोमांचित शरीर होकर प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरस निज निज अनुहारी।।
सावधान सबहीं सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं।।

भा०– सभी अवध के नर–नारी अपनी–अपनी अनुहार अर्थात् उत्कृष्ट, निकृष्ट और मध्यम भावना के अनुसार प्रभु के दर्शन प्राप्त करते हैं। प्रभु श्रीराम सावधान रहकर सबका सम्मान करते हैं। सभी कृपानिधान श्रीराम की प्रशंसा करते हैं।

लरिकाइहिं ते रघुबर बानी। पालत प्रीति रीति पहिचानी।।
शील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ।।

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे।।
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे।।

भा०– लड़कपन से ही प्रीति की पद्धति पहचानकर रघुश्रेष्ठ श्रीराम की वाणी का पालन करते हैं। वे कहते हैं कि, रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम शील अर्थात् चरित्र और संकोच के तो सागर ही हैं। प्रभु सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रवाले हैं, प्रभु का स्वभाव बहुत सरल है। इस प्रकार, भगवान् श्रीराम के गुणगणों को कहते–कहते श्रीअवधवासी प्रेम में मग्न हो गये और सभी अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि, इस संसार में हम जैसे थोड़े ही लोग पुण्यसमूह के स्वरूप हैं तथा पुण्यसमूहों को इकट्ठे किये हैं, जिन्हें श्रीराम अपना करके जानते हैं।

विशेष– यहाँ अवधवासियों का अभिप्राय मिथिलावासियों से है, क्योंकि अवधवासियों को श्रीराम अपने भाई, पिता, माता, बहन करके मानते हैं और मिथिलावासियों को श्वसुर, साले, सास, सलहज और साली करके मानते हैं।

दो०- प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेश।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रबिकुल कमल दिनेश।।२७४।।

भा०– उस समय सभी लोग प्रेम में मग्न थे, इसी बीच मिथिलाधिराज श्रीजनक को आते सुनकर, सूर्यकुलरूप कमल के सूर्य, भगवान् श्रीराम सभा के सहित संभ्रम अर्थात् उत्कंठा के साथ उठे।

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा। आगे गमन कीन्ह रघुनाथा।।
गिरिवर दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं।।

भा०– तीनों भाई, मंत्री, गुरुजन और पुरजनों को साथ लेकर श्रीरघुनाथ श्रीजनक की अगवानी लेने के लिए आगे चले। जिस समय जनकवंश के राजा शिरध्वज महाराज विदेह ने पर्वतश्रेष्ठ श्रीचित्रकूट कामदनाथ को देखा, उसी समय उन्होंने प्रणाम करके अपना रथ छोड़ दिया।

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेश कलेश न काहू।।
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही।।

भा०– श्रीराम के दर्शनों की लालसा और उत्साह में किसी को भी मार्ग के श्रम का लेश और किसी प्रकार का क्लेश नहीं था, क्योंकि सबके मन वहाँ थे, जहाँ रघुश्रेष्ठ श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी थीं और बिना मन के शारीरिक दु:ख और सुख का स्मरण किसे रह सकता है?

आवत जनक चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती।।
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परस्पर लागे।।

भा०– इस प्रकार श्रीजनक समाज के सहित चले आ रहे थे। उनकी बुद्धि प्रेम में मत्त हो गई है। श्रीजनक अब श्रीराम के निकट आ गये। अवध और मिथिला के लोग एक–दूसरे को देखकर अनुराग में भरकर जहाँ–तहाँ परस्पर मिलने लगे।

लगे जनक मुनि जन पद बंदन। ऋषिन प्रनाम कीन्ह रघुनंदन।।
भाइन सहित राम मिलि राजहिं। चले लिवाइ समेत समाजहिं।।

भा०– श्रीजनक मुनिजनों के चरणों का वन्दन करने लगे और रघुवंश को आनन्द देने वाले श्रीराम ने भी मिथिलांचल से पधारे ऋषियों को प्रणाम किया। श्रीराम अपने तीनों भाइयों के साथ अगवानी में आकर महाराज श्रीजनक से मिलकर उन्हें समाज के सहित लेकर चले।

दो०- आश्रम सागर शांत रस, पूरन पावन पाथ।
सैन मनहुँ करुना सरित, लिए जाहिं रघुनाथ।।२७५।।

भा०- शान्तरसरूप पवित्र जल से पूर्ण आश्रमरूप सागर से, मानो सेनारूप करुणा की नदी को मिलाने के लिए श्रीरघुनाथ लिए चले जा रहे हैं।

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन सशोक मिलत नद नारे।।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा।।

भा०- वह करुणा की नदी अपने तट पर ही ज्ञान और वैराग्य तटों को डूबो दे रही है। लोगों के शोकपूर्ण वचन ही छोटे-छोटे नद और नाले बनकर इस नदी में मिल रहे हैं। यहाँ शोक के ऊँचे-ऊँचे श्वास ही वायु से उठने वाले उसके तरंग हैं, जो धैर्यरूप तटवर्ती वृक्षों को तोड़ डाल रही है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा।।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐकि नहिं आवा।।

भा०- भयंकर दुःख ही इस नदी की वेगवती धारा है, लोगों के मन में बसा हुआ भय और भ्रम यही नदी के भँवर और आवर्त (चक्र) हैं, विद्वान् ही केवट हैं और उनकी विद्या बहुत-बड़ी नाव है, जिसे वे खे (चला) नहीं सक रहे है, क्योंकि उनको नदी की ऐक, अर्थात् पार का अटकल नहीं मिल रहा है।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे।।
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।।

भा०- वन में रहने वाले बेचारे कोल, किरात ही पथिक हैं, जो इसे देखकर वहीं रुक गये और हृदय में हार गये। यह करुणा की नदी जब आश्रमरूप सागर से जाकर मिली तो मानो सागर ही अकुला उठा अर्थात् ज्वार की परिस्थिति में आ गया।

शोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यान न धीरज लाजा।।
भूप रूप गुन शील सराही। सोचहि शोक सिंधु अवगाही।।

भा०- दोनों अर्थात् अवध-मिथिला राजसमाज शोक से व्याकुल हो उठे। उस समय किसी को भी ज्ञान, धैर्य और लज्जा नहीं रही। महाराज दशरथ के रूप, गुण और शील की सराहना करके दोनों समाज के सभी नर-नारी शोकसागर में डूब कर चिन्ता करने लगे।

छं०: अवगाहिं शोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा।।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दशा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की।।

भा०- सभी नर-नारी व्याकुल होकर शोकसागर में डूब कर सोच कर रहे हैं। सभी लोग विधाता को दोष देकर क्रोधपूर्वक बोलते हैं, प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदास जी कहते हैं कि, विदेहराज श्रीजनक की यह दशा देखकर देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगीजन और मुनि वसिष्ठ जी कोई भी उस समय समर्थ नहीं था, जो इस स्नेह-सरिता को पार कर सके।

सो०- किए अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन मुनिवरन।
धीरज धरिय नरेश, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।।२७६।।

भा०- जहाँ–तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने दोनों समाज के लोगों के लिए असीम उपदेश किये। हे महाराज श्रीजनक! धैर्य धारण कीजिये, इस प्रकार वसिष्ठ जी ने विदेहराज श्रीजनक से कहा।

जासु ग्यान रबि भव निशि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा।।
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई।।

भा०- जिन महाराज का ज्ञानरूप सूर्य साधक की संसार–रात्रि का नाश कर देता है, जिनके वचनरूप सूर्य किरणों से मुनिरूप कमलों का विकास होता है, क्या उन महाराज श्रीजनक के निकट मोह और ममता आ सकती है? कदापि नहीं। यह श्रीसीताराम के स्नेह का बड़प्पन है, जिसके कारण श्रीजनक भी ममतावान् दिख रहे हैं। वस्तुतः यह उनका श्रीसीतारामविषयक वात्सल्य भाव है।

बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।।
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू।।
सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल यानू।।

भा०- वेद ने संसार में विषयी, साधक, सिद्ध इन तीन प्रकार के जीवों का व्याख्यान किया है। इन तीनों प्रकार के जीवों में जिस जीव का मन, श्रीसीताराम जी के स्नेह में सरस होता है अर्थात् रस की अनुभूति करता है, भगवान् श्रीराम की साधना करने वाले साधुओं के समाज में उसका बहुत–बड़ा आदर होता है, चाहे वह विषयी हो अथवा, साधक या सिद्ध, सम्मान का मापदण्ड भगवत् प्रेम है। श्रीरामप्रेम के बिना ज्ञान उसी प्रकार नहीं सुशोभित होता, जैसे मल्लाह के बिना जल की नाव अर्थात् खेनेवाले के बिना, जैसे नाव कभी भी जल में डूब सकती है अथवा अपने लक्ष्य से भटक कर किसी भी किनारे पर लग सकती है, उसी प्रकार श्रीरामप्रेम के बिना शुष्कज्ञान या मोह–महासागर में डूब जायेगा या लक्ष्यविहीन होकर भटक जायेगा।

मुनि बहुबिधि बिदेह समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए।।
सकल शोक संकुल नर नारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी।।
पशु खग मृगन न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू।।

भा०- मुनि वसिष्ठ जी ने विदेहराज जनक जी को बहुत प्रकार से समझाया और सभी लोगों ने श्रीचित्रकूट के रामघाट पर स्नान किया। सभी नर–नारी शोक से युक्त हो गये थे। वह दिन बिना जल के ही बीत गया। पशु–पक्षी और हिरणों ने भी आहार नहीं किया, तो फिर प्रिय परिवार अर्थात् परिजन का कौन विचार करे?

दो०- दोउ समाज निमिराज रघु, राज नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृश गात।।२७७।।

भा०- दोनों अर्थात् अवध–मिथिला समाज तथा नीमिकुल के राजा महाराज श्रीजनक एवं रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने प्रातःकाल, स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि सम्पन्न किया। सभी वटवृक्ष के नीचे बैठे, सभी के मन उदास थे और शरीर दुर्बल हो गये थे।

जे महिसुर दशरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी।।
हंस बंश गुरु जनक पुरोधा। जिन जग मग परमारथ सोधा।।
लगे कहन उपदेश अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका।।
कौशिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं।।

भा०– जो दशरथपुर अर्थात् श्रीअवध के वासी ब्राह्मण थे और जो मिथिलापुर के अर्थात् राजा जनक जी के नगर में निवास करने वाले ब्राह्मण थे, जिन्होंने संसार के लिए परमार्थ अर्थात् मोक्ष के मार्ग का संशोधन किया था और सिद्ध किया था कि, संसार में रहकर भी व्यक्ति अन्ततोगत्वा मोक्ष पा सकता है, ऐसे सूर्यवंश के गुरु ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी तथा महाराज जनक जी के पुरोहित शतानन्द जी धर्म, नीति, वैराग्य और ज्ञान के सहित उपदेश वचन कहने लगे। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी ने सुन्दर वाणी में पौराणिक कथायें कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया।

विशेष– यहाँ सामान्य लोग कौशिक शब्द से यह सन्देह करते हैं कि, अयोध्याकाण्ड के श्रीरामवनवास प्रसंग में विश्वामित्र जी का आना कैसे सम्भव हुआ? इसका उत्तर यह है कि, ऋषि, देश, काल और वस्तुओं की सीमा से ऊपर होता है। विश्वामित्र जी सप्तर्षि मण्डल के तारा भी हैं, जो आकाश में उदित रहता है। कुछ लोग कौशिक शब्द से शतानन्द जी का तात्पर्य ग्रहण करते हैं और **कौशिकश्च शतानंद** शब्द को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, परन्तु वे उस उदाहरण में प्रयुक्त 'च' शब्द पर ध्यान नहीं देते, जो समुच्चय का वाचक है अर्थात् कौशिक और शतानन्द। अयोध्याकाण्ड में ही चार बार कौशिक शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा– **कौशिक कहि कहि कथा पुरानीं** (मानस, २.२७८.४). **तब रघुनाथ कौशिकहिं कहेऊ** (मानस, २.२७८.५). **कौशिकादि मुनि सचिव समाजू** (मानस, २.२९३.३). **कौशिक बामदेव जाबाली** (मानस, २.३१९.६). इन चारों प्रयोग में कौशिक जी को अवध पक्ष का सिद्ध किया गया है, क्योंकि इसके पूर्व यह कहा गया कि, भगवान् श्रीराम मिथिलापक्षीय लोगों को विदा दे चुके। यथा– **मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने** (मानस, २.३१९.४). **सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आशिष पाई** (मानस, २.३१९.५). अर्थात् फिर श्रीरामचन्द्र ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु जी और शिव जी के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया। तब श्रीराम, लक्ष्मण जी दोनों भाई सास के पास गये और उनके चरणों की वन्दना करके आशीर्वाद पाकर लौट आये। इसके अनन्तर श्रीअवध के परिवार को विदा करने का प्रसंग आता है, जिसमें कौशिक की चर्चा की गई है। यथा– **कौशिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली** (मानस, २.३१९.६). **जथा जोग करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा** (मानस, २.३१९.७). अर्थात् फिर विश्वामित्रजी, वामदेवजी, जाबाली जी और शुभ आचरणों वाले कुटुम्बी, नगर के निवासी और मंत्री सबको छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित श्रीराम ने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। इस उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि, कौशिक जी अवध पक्ष के हैं न कि मिथिला पक्ष के, इसलिए शतानन्द जी का तात्पर्य ग्रहण करना केवल मूर्खतापूर्ण पण्डित मान्यता का प्रदर्शन होगा।

तब रघुनाथ कौशिकहिं कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ।।
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई।।

भा०– तब श्रीरघुनाथ जी ने कुशिकपुत्र ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी से कहा, हे नाथ! कल सभी लोग बिना जल के ही रह गये थे अर्थात् आज सबको पहले जलपान कर लेना चाहिये, फिर और कुछ। विश्वामित्र जी ने कहा, हे रघुकुल के राजा श्रीराम! आप उचित कह रहे हैं। आज भी अढ़ाई प्रहर दिन बीत गया, अर्थात् मध्याह्न से अधिक हो गया। अभी भी कोई जल नहीं लेना चाहता। अब तो अवश्य ही जलपान कर लेना चाहिये, अभी सभा विसर्जित की जाती है।

ऋषि रुख लखि कह तिरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं अशन अनाजू।।
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना।।

भा०– ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी का रुख अर्थात् इच्छासूचक संकेत देखकर तिरहुति राजा अर्थात् मिथिलाधिराज जनक जी ने कहा, भगवन्! इस श्रीचित्रकूट में अन्न–भोजन करना उचित नहीं है, क्योंकि प्रभु श्रीराम फलाहार करें और हम सब अन्नाहार करें, यह तो उचित नहीं होगा। महाराज का यह कथन सुनकर, सभी को अच्छा लगा और सभी लोग फलाहार का ही निश्चय करके श्रीराम और जनक जी की राजाज्ञा पाकर सायंकालीन स्नान के लिए चल पड़े।

दो०– तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार।।२७८।।

भा०– उसी समय बहुत से वनचर अर्थात् कोल, किरातगण काँवरों और गढ्ढियों में भर–भरकर अनेक प्रकार के फल, पुष्प दल और कंद, मूल ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा।।

भा०– भगवान् श्रीराम के प्रसाद से सभी पर्वत कामदपर्वत के समान हो गये। अथवा, भगवान् श्रीराम के प्रसाद से श्रीचित्रकूट भगवान् कामद बन गये, जो दर्शनमात्र से सभी दुःखों को समाप्त कर देते हैं अर्थात् सभी दुःखों का अपहरण कर लेते हैं।

विशेष– श्रीचित्रकूट पर्वत का ही एक नाम कामद भी है, जो भगवान् श्रीराम के आगमन के पश्चात् उन्हीं के प्रसाद से रखा गया। कामद शब्द की व्युत्पति कई प्रकार से की जाती है। "**कामान् मनोवांछित पदार्थं ददाति इति कामदः**" अर्थात् जो साधकों को प्रेमपूर्वक परिक्रमा करने मात्र से मनोवांछित पदार्थ दे देते हैं उन्हीं गिरिराज श्रीचित्रकूट को कामद कहते हैं। अथवा, "**कं ब्रह्माणं अं विष्णुं मं महेश्वरं ददाति इति कामदः**" संस्कृत में ब्रह्मा जी को '**क**' भगवान् विष्णु जी को '**अ**' और शिव जी को '**म**' कहा जाता है, श्रीकामदगिरिराज इन तीनों के दर्शन करा देते हैं, इसलिए इन्हें कामद कहा जाता है। अथवा, "**कश्च अश्च मश्च इति कामाः ते सन्ति अस्मिन् इति कामः, रामचन्द्रस्य तं ददाति इति कामदः**" अर्थात् '**क**' ब्रह्मा जी '**अ**' विष्णु जी और '**म**' महेश्वर ये तीनों जिनमें निरन्तर विराजते हैं, ऐसे बह्मा जी, विष्णु जी और शङ्कर जी के भी कारणरूप भगवान् श्रीराम को काम कहते हैं। उन्हीं श्रीराम को, परिक्रमा से प्रसन्न होकर, जो साधक को अर्पित कर देते हैं, उन्हीं श्रीचित्रकूट के प्रखण्ड विशेष (जो लगभग पाँच किलोमीटर में फैले हैं उन्हीं पर्वत श्रेष्ठ) को कामद कहते हैं। अथवा, "**कामं द्यति खण्डयति इति कामदः**" अर्थात् जो कामवासना को नष्ट कर देते हैं, उन्हीं श्रीचित्रकूट के प्रखण्ड विशेष को कामद कहते हैं। साधकों का तो ऐसा मानना है कि, जीवों पर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीराम ही कामद बन गये। उनकी दृष्टि से इस चौपाई का अन्वय होगा "**प्रसादा राम कामदगिरि भे**" अर्थात् प्रसन्न हुए श्रीरामचन्द्र ही कामदगिरि बन गये, जो दर्शनमात्र से प्राणियों के कष्ट को हर लेते हैं, इसलिए रामस्तवराज के तीसवें श्लोक में भगवान् श्रीराम को कामद कहा गया है **कामदं कमलेक्षणम्।**

सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा।।
बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला।।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू।।
जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई।।

भा०– तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के प्रदेश में मानो आनन्द और अनुराग उमड़ रहा था। लतायें और वृक्ष सभी सुन्दर फल और सुन्दर फूलों से युक्त हो गये। पक्षी, पशु और भ्रमर अनुकूलता से बोलने लगे थे। उस अवसर

पर वन में बहुत उत्साह था, तीनों प्रकार का वायु सबको सुख दे रहा था। वन की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता था, मानो पृथ्वी स्वयं अपने वास्तविक पति जनक जी का आतिथ्य कर रही थीं।

तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई।।
देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे।।

भा०– इसके पश्चात् सभी लोग स्नान कर–करके भगवान् श्रीराम, श्रीजनक एवं गुरुदेव वसिष्ठ जी का आदेश पाकर वृक्षों को देख–देखकर प्रेम से अनुरक्त हो उठे और मिथिलापुर के निवासी जहाँ–तहाँ उतरने लगे अर्थात् वृक्षों के नीचे समतल भूमि में व्यवस्थित होने लगे।

दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना।।

दो०– सादर सब कहँ राम गुरु, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फरहार।।२७९।।

भा०– अनेक प्रकार के खाने योग्य पत्ते, फल और पवित्र सुन्दर अमृत के समान स्वाद वाले मूल, कन्द गड्डियाँ भर–भरकर आदरपूर्वक भगवान् श्रीराम के गुरुदेव वसिष्ठ जी ने सभी श्रीमिथिला निवासियों के लिए भेज दिये। सब लोग पितृ, देवता, गुरुजन, अतिथि और देवताओं की पूजा करके अर्थात् पंचयज्ञ और बलिवैश्वदेव सम्पन्न करके फलाहार करने लगे।

एहि बिधि बासर बीते चारी। राम निरखि नर नारि सुखारी।।
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं।।

भा०– इस प्रकार से चार दिन बीत गये। श्रीसीता–राम को देखकर सभी नर–नारी सुखी हो रहे थे। दोनों समाज के मन में ऐसी रुचि है कि, श्रीसीताराम जी के बिना लौटना उचित नहीं है।

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू।।
परिहरि लखन राम बैदेही। जेहि घर भाव बाम बिधि तेही।।
दाहिन दैव होइ जब सबहीं। राम समीप बसिय बन तबहीं।।
मंदाकिनि मज्जन तिहुँ काला। राम दरस मुद मंगल माला।।
अटन राम गिरि बन तापस थल। अशन अमिय सम कंद मूल फल।।
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहि न जनियहिं जाता।।

भा०– श्रीसीताराम जी के साथ वन में निवास करना तो करोड़ों देवपुर के समान सुखद होगा। भगवती श्रीसीता, लक्ष्मण एवं भगवान् श्रीराम को छोड़कर जिसे अपना घर अच्छा लगता हो, उसके लिए विधाता प्रतिकूल ही हैं। जब सबके लिए ईश्वर अनुकूल होंगे तभी भगवान् श्रीराम के समीप वन में निवास कर सकेंगे। तीनों काल अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल भगवती मंदाकिनी जी में मज्जन अर्थात् डुबकी लगाकर स्नान और उनके साथ प्रसन्नता और मंगलों की मालिकारूप श्रीसीता, लक्ष्मण सहित प्रभु श्रीराम का दर्शन, भगवान् श्रीकामदगिरि की परिक्रमा और पवित्र तपस्वियों की स्थली श्रीचित्रकूट का भ्रमण तथा अमृत के समान कन्द, मूल, फल का भोजन इन क्रियाओं से दो सात अर्थात् सात के दोगुणे चौदह वर्ष सुख के साथ एक पलक के समान हो जायेंगे, वे जाते हुए भी नहीं जान पड़ेंगे।

दो०– एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भाग।
सहज स्वभाव समाज दुहुँ, राम चरन अनुराग।।२८०।।

भा०- सब लोग कह रहें हैं कि, हम लोग इस सुख के योग्य कहाँ हैं? हमारे ऐसे भाग्य कहाँ है कि, हम अपनी घर–गृहस्थी की ममता छोड़कर भगवान् श्रीराम के सान्निध्य में रह सकें और चाहें भी तो प्रभु हमें कहाँ ऐसी अनुमति दे सकेंगे? क्योंकि उन्हें केवल श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के साथ वनवास की अनुमति हुई है। श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के अतिरिक्त परिवार के तीसरे व्यक्ति को प्रभु के साथ वन में रहने के लिए अनुमति नहीं मिली है। दोनों समाज अर्थात् अवध–मिथिला के लोगों का भाव स्वाभाविक और सुन्दर है। दोनों समाज का श्रीराम के प्रति अनुपम और अनुच्छिष्ठ राग है अर्थात् प्रेम है।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं।।

भा०- इस प्रकार अवध–मिथिला, दोनों ओर के सभी नर–नारी श्रीराम के सान्निध्य में रहने का मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनने मात्र से मन को चुरा लेते हैं अर्थात् संसार में भटक रहे मन को चुराकर उसे श्रीरामप्रेम के कोषागार में छिपा देते हैं।

सीय मातु तेहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसर आई।।
सावकाश सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू।।
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी।।

भा०- उसी समय भगवती सीता जी की माता महारानी सुनयना जी द्वारा भेजी हुई दासी सुन्दर अवसर देखकर श्रीअवध रनिवास आई और सुनयना जी के आने की अनुमति माँगी। सीता जी की सभी सासुओं को सावकाश सुनकर अर्थात् उनका रिक्त समय जानकर, अथवा अपने लिए सुरक्षित समय जानकर राजा जनक जी का रनिवास अवध रनिवास के पास आया अर्थात् श्रीजनकराज की महारानियाँ भगवान् श्रीराम की माताओं से मिलने के लिए उनके निवास स्थान पर आईं। श्री कौसल्या माता ने आदरपूर्वक समधिन का सम्मान किया और उन्हें समय के समान ही आसन लाकर दिये अर्थात् कुश की चटाई समर्पित की।

शील सनेह सरिस दुहुँ ओरा। द्रवहि देखि सुनि कुलिश कठोरा।।
पुलक शिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन।।
सब सिय राम प्रीति की मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति।।

भा०- दोनों ओर अर्थात् श्रीअवध–मिथिला पक्ष में समान रूप से शील और स्नेह था, जिसे देख और सुनकर वज्र के समान कठोर लोग भी द्रवित हो उठते थे। उनके शरीर रोमांच से युक्त और शिथिल थे। उनके विमल नेत्रों में प्रेम के आँसू थे। वे पृथ्वी को नख से कुरेदती हुईं सबकी सब शोक करने लगीं। सभी महारानियाँ श्रीसीताराम जी के प्रेम की मूर्ति थीं। वे ऐसे शोकमग्न हो रही थीं, मानो करुणा ही बहुत से वेशों में चिन्तित हो रही हो।

सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेन फोर पबि टाँकी।।

दो०- सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल।।२८१।।

भा०- भगवती श्रीसीता की माता सुनयना जी ने कहा कि, विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो वज्र की टाँकी अर्थात् छेनी से दूध के फेन को फोड़ रही है अर्थात् दूध के फेन के समान कोमल श्रीराम, श्रीदशरथ एवं श्रीकौसल्या के संयोग को विधाता ने श्रीराम–वनवासरूप वज्र की टाँकी से फोड़कर तितर–बितर कर दिया अर्थात् श्रीराम को वन में, दशरथ जी को इन्द्र के भवन में और कौसल्या जी को श्रीअवधराजभवन में करके अलग–अलग कर दिया। अथवा, युवराज पदरूप दूध के फेन को श्रीराम को वनवास प्रदानरूप छेनी से फोड़ा,

यही विधाता की बुद्धि का टेढ़ापन है। अमृत केवल सुना जाता है, परन्तु विष प्रत्यक्षत: दिखाई पड़ता है। विधाता के सभी कार्य भयंकर हैं। कौवे, उल्लू और बगुले तो जहाँ–तहाँ बहुश: दिखते हैं, परन्तु हंस तो एकमात्र मानस सरोवर में ही उपलब्ध होता है।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी।।

भा०– महारानी सुनयना जी के वचन को सुनकर देवी सुमित्रा जी ने शोक के साथ कहा, विधाता की गति बड़ी ही विपरीत अर्थात् उल्टी और विचित्र अर्थात् विषम चित्रोंवाली है, जो जगत् की रचना करके उसका पालन करते हैं और फिर उसे समाप्त कर डालते हैं। यदि समाप्त ही करना था, तो फिर उसे बनाया ही क्यों? बनाकर भी पाल–पोषकर बड़ा किया फिर संहार किया। बालक की क्रीड़ा के समान ही विधाता की बुद्धि बड़ी ही भोली है। जैसे बालक मिट्टी के घरौंदों को बनाता है, फिर फोड़ देता है। घरौंदों को बनाने से न तो उसे हर्ष होता है और न ही बिगाड़ने में शोक, वह तो उसकी लीला है। उसी प्रकार विधाता की बुद्धि के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

कौसल्या कह दोष न काहू। करम बिबश दुख सुख छति लाहू।।
कठिन करम गति जान बिधाता। जो शुभ अशुभ सकल फल दाता।।

भा०– भगवती कौसल्या जी ने कहा कि, इसमें किसी का भी दोष नहीं है। दु:ख, सुख, हानि, लाभ ये सब कुछ कर्म के पराधीन हैं। जो सभी जीवों के शुभाशुभ कर्म के अनुसार सभी फल देते हैं, वे विधाता कर्म की कठिन गति को जानते हैं, इसलिए उन्हें निरर्थक कोसना ठीक नहीं है।

ईश रजाइ शीष सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के।।
देबि मोह बश सोचिय बादी। बिधि प्रपंच अस अचल अनादी।।

भा०– उत्पत्ति, स्थिति अर्थात् पालन, लय अर्थात् संहार, विष और अमृत इन सभी के सिर पर ईश्वर की राजाज्ञा है अर्थात् इन पाँचों का नियंत्रण भी ईश्वर करते हैं। हे देवी! मोहवश हमलोग व्यर्थ ही शोक कर रहे हैं। विधाता का आदिरहित प्रपंच भी इसी प्रकार अचल है अर्थात् अडिग है। इसे कोई इधर–उधर स्थानान्तरित नहीं कर सकता।

भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिय सखि लखि निज हित हानी।।
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी।।

भा०– हे सखी! महाराज चक्रवर्ती जी के जीने और मरने को हृदय में लाकर अपने स्वार्थ की हानि देखकर हमलोग शोक कर रहे हैं। वस्तुत: महाराज ने तो प्रभु से यह वरदान ही माँग रखा था कि, वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणपर्यन्त श्रीराम को गोद में लेकर खेलायेंगे और उनकी अनुपस्थिति में अपने शरीर का त्याग कर देंगे। इसमें विधाता का क्या दोष है? श्रीसीता की माता सुनयना जी ने कहा, हे महारानी जी! आपकी वाणी सत्य है, क्योंकि अयोध्यापति चक्रवर्ती जी महाराज सत्कर्म और पुण्य की सीमा थे।

दो०– लखन राम सिय जाहिं बन, भल परिनाम न पोच।
गहबरि हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोच।।२८२।।

भा०– श्रीलक्ष्मण, भगवान् श्रीराम और श्रीसीता यदि वन जाते ही हैं, तो परिणाम में अच्छा ही होगा बुरा नहीं अर्थात् प्रभु श्रीराम, रावण का वध करके श्रीअवध को पधारेंगे और फिर श्रीरामराज्य की स्थापना होगी। कौसल्या जी ने शोक से घिरा हुआ हृदय करके कहा कि मुझे तो भरत की बहुत चिन्ता है।

ईश प्रसाद अशीष तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी।।

राम शपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ।।

भा०– ईश्वर साकेताधिपति भगवान् श्रीराम के प्रसाद से और आपके आशीर्वाद से मेरे पुत्र श्रीराम और पुत्रवधू श्रीसीता तो गंगाजल के समान बहुत ही पवित्र हैं उनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। अथवा मेरे चारों पुत्र (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) और चारों पुत्रवधुयें (श्रीसीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति) गंगाजल के समान निर्मल है। इनमें तो कभी परस्पर मतभेद की सम्भावना ही नहीं है, परन्तु हे सखी! मैंने कभी श्रीराम की शपथ नहीं की है, आज वह भी करके अपना सत्य भाव कहती हूँ।

भरत शील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई।।
कहत शारदहु कर मति हीचे। सागर सीपि कि जाहिं उलीचे।।

भा०– भरत का शील, गुण, विनम्रता, बड़प्पन, भ्रातृप्रेम, श्रीराम के प्रति भक्ति, श्रीराम के प्रति विश्वास और भलाई अर्थात् भद्रता, अच्छापन कहने में सरस्वती जी की भी बुद्धि हिचकती है। क्या समुद्र सीपि द्वारा उलीचने पर समाप्त हो सकता है।

विशेष– यहाँ श्रीभरत के सात गुण, शील, विनम्रता, बड़प्पन, भ्रातृत्व, भक्ति, विश्वास और भद्रता, सात सागरों का उपमेय बनाया गया है। शील को गुण का विशेषण माना गया है और सरस्वती जी की बुद्धि को सीपि का उपमेय बनाया गया है।

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।।
कसिय कनक मनि पारिख पाए। पुरुष परिखियहिं समय सुभाए।।

भा०– हे सुनयनाजी! मैं तो निरन्तर भरत को रघुकुल का दीपक जानती हूँ और चक्रवर्ती महाराज ने भी मुझे बार–बार यही कहा है।

विशेष– सूर्य और चन्द्र दोनों की अनुपस्थिति में दीपक ही प्रकाश दान की भूमिका निभाता है, उसी प्रकार श्रीदशरथरूप सूर्य के अस्त हो जाने पर और श्रीरामरूप चन्द्र के उदय में बिलम्ब हो जाने पर, अमावस्या की रात्रि में श्रीभरतरूप दीपक से ही रघुकुल को प्रकाश मिलेगा। यहाँ श्रीभरत दीपक हैं, चौदह वर्ष की अवधि बत्ती है, श्रीरामप्रेम स्नेह अर्थात् घी है और विरह अग्नि। इस दीपक को कैकेयी का लोभरूप वायु नहीं बुझा पाया। अथवा, श्रीभरत, श्रीरामनाम का जप करते–करते श्रीरामनाम रूप हो गये हैं। अतएव, श्रीभरत श्रीरामनाम रूप मणिदीप हैं, जिन्हें कैकेयी का लोभरूप वायु नहीं बुझा सकेगा। जहाँ दिन–रात परमप्रेम का प्रकाश रहेगा, जहाँ दीप, पात्र, घी और बत्ती की आवश्यकता नहीं होगी, जहाँ विष, अमृत बनेगा और जहाँ काम आदि खल निकट फटकेंगे भी नहीं। **जानउँ सदा भरत कुलदीपा** पंक्ति में प्रयुक्त 'सदा' शब्द का यही भाव प्रतीत होता है। स्वर्ण कसौटी पर कसे जाने पर, रत्न–पारखी प्राप्त होने पर परखा जाता है, उसी प्रकार पुरुष भी समय की कसौटी पर और सुभाय अर्थात् अपने स्वभाव और सुन्दर चरित्र से परीक्षित होता रहता है अर्थात् परखा जाता है। तात्पर्य यह है कि, आज मेरे भरत की ईश्वर द्वारा दोनों प्रकार की परीक्षायें हो रही हैं। यह समय उनके लिए कसौटी का समय है और उनका स्वभाव और चरित्र ही पारखी है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। शोक सनेह सयानप थोरा।।
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी।।

भा०– आज मेरा इस प्रकार कहना भी अनुचित है, क्योंकि शोक और स्नेह में चतुरता बहुत थोड़ी रह जाती है और चतुरता के बिना परीक्षार्थी परीक्षा में उतीर्ण नहीं हो सकता। गंगा जी के समान भगवती कौसल्या जी की पवित्र करनेवाली वाणी सुनकर, सभी रघुकुल और निमिकुल की रानियाँ प्रेम से विकल हो गईं।

दो०- कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेशि।
को बिबेक निधि बल्लभहिं, तुमहिं सकइ उपदेशि।।२८३।।

भा०– कौसल्या जी ने धैर्य धारण करके कहा, हे मिथिलेश्वरी देवी सुनयना जी! सुनिये, विवेक के सागर महाराज जनक जी की प्रियतमा आपश्री सुनयना जी को कौन उपदेश दे सकता है?

रानि राय सन अवसर पाई। आपनि भाँति कहब समुझाई।।
राखिय लखन भरत गवनहिं बन। जौ यह मत मानै महीप मन।।
तौ भल जतन करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत कर भारी।।
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहि लागत नाहीं।।

भा०– हे महारानी सुनयना जी! समय पाकर सम्राट् श्रीजनक को आप अपने प्रकार से (अर्थात् मेरी दृष्टि से नहीं) समझाकर कहियेगा। लक्ष्मण जी को अयोध्या में रखा जाये और भरत जी, श्रीराम के साथ वन में गमन करें। यदि यह मत महाराज श्रीजनक का मन मान ले, तो आप सुन्दर विचारपूर्वक यत्न कीजियेगा, क्योंकि ऐसा करने पर भला ही होगा। मुझे भरत की बड़ी चिन्ता है। भरत के मन में श्रीराम के प्रति गोपनीय प्रेम है, उनके श्रीअवध में रह जाने पर मुझे अच्छा नहीं लग रहा है, क्योंकि चौदह वर्षपर्यन्त भरत, श्रीराम के बिना जीवित रहेंगे, इसमें मुझे संदेह है।

लखि स्वभाव सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी।।
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। शिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि।।

भा०– माता कौसल्या जी का स्वभाव देखकर और उनकी सत्य, सुन्दर वाणी सुनकर, सभी रानियाँ करुणरस में मग्न हो गईं। आकाश से पुष्पों की झरी लग गई और धन्य-धन्य ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ।।
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती।।

भा०– यह देखकर अर्थात् कौसल्या जी की चिन्ता की आकाश में भी प्रतिक्रिया देखकर, सम्पूर्ण रनिवास थकित अर्थात् स्तब्ध रह गया। तब सुमित्रा जी ने धैर्य धारण करके कहा, हे देवी! दो दण्ड अर्थात् दो घड़ी रात्रि बीत गई। तात्पर्यतः अब राजपरिवार को रात्रि में बहुत देर तक बैठना उचित नहीं होगा। यह सुनकर श्रीराम की माता कौसल्या जी प्रेमपूर्वक उठीं और सुनयना जी से कहने लगीं।

दो०- बेगि पायँ धारिय थलहि, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईश गति, कै मिथिलेश सहाय।।२८४।।

भा०– कौसल्या जी स्नेह और सत्यभाव से कहने लगीं, हे महारानी सुनयना जी! अपने निवासस्थान को शीघ्र पधारें। अब तो हमारे लिए ईश्वर ही गति अर्थात् आश्रय हैं अथवा, जनक जी की सहायता अथवा, हमारे लिए तो मिथिलापति जनक जी को हमारा सहायक बना कर ईश्वर ही उनके माध्यम से हमारे रक्षक हैं।

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनक प्रिया गह पायँ पुनीता।।
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दशरथ घरनि राम महतारी।।

भा०- माता कौसल्या जी का स्वभाव देखकर और उनके विनम्र वचन सुनकर, जनकराज की प्रियतमा सुनयना जी ने कौसल्या जी के पवित्र चरण पकड़ लिए और बोलीं, हे देवी! आपकी इस प्रकार की विनम्रता बहुत उचित है, क्योंकि आप जिनका रथ दसों दिशाओं में जाता था, ऐसे चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथ की गृहलक्ष्मी और परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम की माँ हैं।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं।।
सेवक राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेश भवानी।।
रउरे अंग जोग जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै।।

भा०- समर्थ लोग अपने से छोटों को भी आदर देते हैं। देखिये अग्नि देवता धुँये को और पर्वत छोटे से तिनके को अपने सिर पर धारण करते हैं। महाराज मिथिलाधिपति, मनसा, वचसा, कर्मणा आपके सेवक हैं। आपके सहायक तो सदैव शिव जी और पार्वती जी ही हैं। इस संसार में आपके सहायक होने योग्य कौन है? क्या सूर्यनारायण दीपक को सहायक बनाकर शोभित होते हैं? अथवा, क्या सूर्यनारायण का सहायक बनकर छोटा सा दीपक शोभा पा सकता है?

राम जाइ बन करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहैं राजू।।
अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहैं अपने अपने थल।।
यह सब जाग्यबल्क्य कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाखा।।

भा०- श्रीराम वन में जाकर देवताओं का कार्य करके श्रीअवधपुर में अचल राज्य करेंगे अर्थात् न तो श्रीराम अयोध्या छोड़कर कहीं जायेंगे और न ही उनका राज्य समाप्त होगा। वे सदैव अपने दिव्यप्राण के साथ अपने दिव्य अवधपुर में विराजमान होकर दिव्यराज्य करेंगे। भगवान् श्रीराम के बाहुबल से स्वर्ग में सभी देवता, पाताल में सभी नाग और मनुष्य लोक में सभी मनुष्य अपने–अपने स्थल पर सुखपूर्वक निवास करेंगे। यह सब पहले ही महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने मुझ से कह रखा है। हे देवी! महर्षियों की वाणी कभी झूठी नहीं होती।

दो०- अस कहि पग परि प्रेम अति, सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ।।२८५।।

भा०- ऐसा कहकर, अत्यन्त प्रेम से कौसल्या जी के चरणों पर पड़कर अपने साथ थोड़ी देर के लिए सीता जी को लिवा जाने की प्रार्थना सुनाकर, कौसल्या जी की सुन्दर आज्ञा पाकर, श्रीसीता की माता सुनयना जी श्रीसीता के साथ अपने निवास स्थल के लिए चलीं।

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोग भाँति तस तेही।।
तापस बेष जानकिहिं देखी। भे सब बिकल बिषाद बिशेषी।।

भा०- विदेहनंदिनी श्रीसीता अपने मायके के प्रिय परिवार से जो जिसके योग्य था उसे, उसी प्रकार से मिलीं। भगवती श्रीसीता को तपस्विनी के वेश में देखकर सभी लोग विशेष दुःख से विकल हो गये।

जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई।।
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की।।

भा०– इधर श्रीराम के गुरुदेव वसिष्ठ जी की आज्ञा पाकर, महाराज जनक जी अपने निवास स्थल को विश्राम के लिए चले और आकर वहाँ पधारी हुईं भगवती श्रीसीता को देखा। प्रेम और प्राण की पवित्र अतिथि श्रीजानकी को देखकर श्रीजनक ने हृदय से लगा लिया।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मन मनहुँ प्रयागू।।
सिय सनेह बट बाढ़त जोहा। ता पर राम प्रेम शिशु सोहा।।

भा०– महाराज श्रीजनक के हृदय में अनुराग का सागर उमड़ गया, मानो श्रीजनक का मन प्रयाग हो गया, उसमें सीता जी के स्नेहरूप अक्षयवट को बढ़ते हुए देखकर, उसी पर श्रीराम–प्रेमरूप शिशु (बाल मुकुन्द) सुशोभित हुए।

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु।।
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की।।

भा०– मानो ज्ञानरूप चिरंजीवी मुनि मार्कण्डेय ने उस अनुराग सागर में डूबते हुए श्रीराम प्रेमरूप बालक का अवलम्ब ले लिया। तात्पर्य यह है कि, जैसे प्रयाग में बैठे–बैठे वहीं पर आये हुए सागर की लहरों में डूबते हुए, मार्कण्डेय मुनि को उसी जल में तैर रहे अक्षयवट के पत्ते पर विराजमान बाल मुकुन्द जी का अवलम्ब मिल गया था, उसी प्रकार से पुत्री–प्रेम के प्रवाह में डूबते हुए श्रीजनक के ज्ञान को भी भगवती श्रीसीता के प्रेम पर आधारित श्रीरामप्रेम का अवलम्ब मिल गया।

विशेष– विदेहराज जनक जी की बुद्धि सांसारिक पुत्री राग विषयक मोह में नहीं डूबी, यही श्रीसीताराम जी के प्रेम की महिमा है, जिसने जनक जी के मन में क्षण भर के लिए सीता जी के प्रति आये हुए पुत्रीभाव को समाप्त कर दिया। अथवा श्रीसीताराम जी के स्नेह की महिमा से विदेहराज जनक जी की बुद्धि सांसारिक पुत्री–जामाता विषयक मोह में नहीं डूबी अर्थात् ज्यों ही जनक जी के मन में श्रीसीताराम जी के प्रति बेटी और जामाता का सांसारिक भाव जगा तत्क्षण उनके प्रति ब्रह्मभाव ने उसे दबा दिया।

दो०– सिय पितु मातु सनेह बश, बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरज धरेउ, समय सुधरम बिचारि।।२८६।।

भा०– श्रीसीता, माता–पिता के प्रेम के वश होकर व्याकुल हो गईं और अपने को सम्भाल नहीं सकीं, फिर पृथ्वीपुत्री सीता जी ने समय और अपने कर्त्तव्यों का विचार करके धैर्य धारण किया।

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष बिशेषी।।
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ।।

भा०– तपस्वी वेश में विराजमान श्रीसीता को देखकर श्रीजनक को विशेष प्रेमपूर्ण संतोष हुआ। वे बोले, हे पुत्री! तुमने दोनों कुलों अर्थात् रघुकुल और निमिकुल को पवित्र कर दिया। सभी लोग कहते हैं कि, तुम्हारे सुयश से सम्पूर्ण संसार धवल अर्थात् श्वेत हो रहा है। अथवा, तुम्हारा सुयश इस जगत को ही धवलित अर्थात् प्रकाशित कर रहा है।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गमन कीन्ह बिधि अंड करोरी।।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे।।
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महि मनहुँ समानी।।

भा०– तुम्हारी कीर्तिरूप नदी ने देवनदी गंगा जी को जीतकर विधाता के करोड़ों ब्रह्माण्ड में गमन किया है। गंगा जी ने तो तीन स्थलों हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर को बड़ा बनाया, परन्तु हमारी मैथिली की इस कीर्ति–नदी ने तो अनेक साधु–समाज को बड़ा बना दिया। पिता जी ने स्नेहपूर्ण एवं सत्य–सुन्दर वाणी कही, परन्तु श्रीसीता तो मानो संकोच की पृथ्वी में ही समा गईं।

पुनि पितु मातु लीन्ह उर लाई। सिख आशिष हित दीन्ह सुहाई।।

भा०– फिर पिता और माता ने श्रीसीता को हृदय से लगा लिया और कल्याणपूर्ण सुहावनी शिक्षा और हितैषी आशीर्वाद दिया।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।।
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदय सराहत शील सुभाऊ।।

भा०– मन में संकोच करके श्रीसीता कह तो नहीं रही हैं, पर विचार करती हैं कि, यहाँ अर्थात् मायके वालों के साथ रात में रहना उचित नहीं है। श्रीसीता का रुख देखकर महारानी ने श्रीजनक को अवगत कराया और हृदय में श्रीसीता के शील और स्वभाव की प्रशंसा करने लगीं।

दो०– बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि।।२८७।।

भा०– श्रीसीता के माता–पिता सुनयना जी और महाराज श्रीजनक ने बार–बार मिलकर और भेंटकर श्रीसीता का सम्मान करके विदा किया। फिर समय पाकर चतुर रानी ने सुन्दर वाणी में श्रीभरत की गति का वर्णन किया।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा शशि सारू।।
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन।।

भा०– महाराज श्रीजनक ने स्वर्ण में सुगन्धरूप और चन्द्रमा के साररूप अमृत के समान श्रीभरत का व्यवहार सुनकर, अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को मूँद लिया अर्थात् बन्द कर लिया, उनके शरीर में रोमांच हो गया और महाराज श्रीजनक प्रसन्न मन से श्रीभरत के सुयश की प्रशंसा करने लगे।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू।।
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहै काह छल छुअति न छाँहीं।।

भा०– हे सुमुखी ! और हे सुलोचनी ! अब संसार के बन्धन को नष्ट करने वाली श्रीभरत कथा सावधान होकर सुनो। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार अर्थात् वेदान्त इन विषयों में मेरी बुद्धि के अनुसार मेरा प्रचार है अर्थात् इन जटिल विषयों में भी मेरा साधिकार प्रवेश है। वही मेरी बुद्धि श्रीभरत की महिमा कैसे कहे, क्योंकि वह उसकी छाया को छल से भी नहीं छू सकती।

बिधि गनपति अहिपति शिव शारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिशारद।।
भरत चरित कीरति करतूती। धरम शील गुन बिमल बिभूती।।
समुझत सुनत सुखद सब काहू। शुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू।।

भा०– ब्रह्माजी, गणेश जी, शेष जी, शिव जी, सरस्वती जी, मनीषी, वेदज्ञ पण्डित और बौद्धिक सम्पत्ति में चतुर विद्वानगण, सभी के लिए श्रीभरत का चरित्र कीर्ति, कार्य, धर्म, स्वभाव, गुण और निर्मल ऐश्वर्य यह सब कुछ

समझने में सुलभ और सबको सुख देने वाला है। ये गंगा जी को पवित्रता से और अपने स्वाद द्वारा अमृत का भी निरादर करते हैं।

दो०- निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि।।२८८।।

भा०- श्रीभरत के गुणों की सीमा नहीं है और वे उपमा रहित पुरुष हैं। क्या सुमेरु पर्वत को सेर अर्थात् सेर के बटखरे के समान कहा जा सकता है? श्रीभरत को श्रीभरत के समान जानकर कविकुल की बुद्धि संकुचित हो गई।

अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गम धरनी।।
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी।।

भा०- हे सुन्दर वर्णवाली सुनयना! श्रीभरत का चरित्र सबके लिए इसी प्रकार वर्णन करने में कठिन है, जैसे जल के बिना मछली का पृथ्वी पर चलना। हे रानी! सुनो, श्रीभरत की असीम महिमा को केवल भगवान् श्रीराम जानते हैं, पर वे कह नहीं सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ।।
बहुरहिं लखन भरत बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं।।

भा०- प्रेमपूर्वक श्रीभरत के प्रभाव का वर्णन करके पत्नी के हृदय की रुचि को देखकर, महाराज श्रीजनक बोले, श्रीलक्ष्मण अयोध्या लौटें और श्रीभरत, श्रीराम के साथ वन को जायें इसमें सबका भला है और यह सबके मन में है।

देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।।
भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि राम सींव समता की।।

भा०- परन्तु, हे देवी! श्रीभरत और श्रीराम की प्रीति और प्रतीति (विश्वास) तर्क का विषय बनाई नहीं जा सकती। श्रीभरत यद्यपि स्नेह और ममता की अवधि हैं, परन्तु श्रीराम समता की सीमा भी हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।।
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।

भा०- परमार्थ और निजी हित तथा सम्पूर्ण सुखों को श्रीभरत ने स्वप्न में भी मन से भी नहीं देखा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीभरत का यही मत है कि श्रीराम के चरणों में प्रेम ही सम्पूर्ण साधनों की सिद्धि है।

दो०- भोरेहुँ भरत न पेलिहैं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिय न सोच सनेह बश, कहेउ भूप बिलखाइ।।२८९।।

भा०- महाराज जनक जी ने बिलखकर कहा कि, भरत जी भूलकर भी मन से भी श्रीराम की राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। आप स्नेह के वश होकर शोक मत कीजिये।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निशि दम्पतिहिं पलक सम बीती।।
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे।।

भा०- प्रेमपूर्वक श्रीराम और श्रीभरत के गुणों की चर्चा करते हुए दम्पति सुनयना जी और जनक जी की रात्रि पलक के समान बीत गई। प्रात:काल दोनों राज समाज के लोग जगे और स्नान कर–करके देवताओं की पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुरु पहँ रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई।।
नाथ भरत पुरजन महतारी। शोक बिकल बनबास दुखारी।।

भा०– रघुकुल के राजा श्रीराम स्नान करके गुरुदेव के पास गये और उनका रुख पाकर उनके चरणों की वन्दना करके बोले, हे नाथ! शत्रुघ्न के साथ भरत, पुरजन और सभी मातायें वन में वास करके शोक से विकल और दुःखी हैं।

सहित समाज राज मिथिलेशू। बहुत दिवस भए सहत कलेशू।।
उचित होइ सोइ कीजिय नाथा। हित सबही कर रौरे हाथा।।

भा०– समाज के सहित महाराज श्रीजनक को भी क्लेश सहते बहुत दिन हो गये। हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिये, क्योंकि आप ही के हाथ में सबका हित है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ।।
तुम बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा।।

भा०– इतना कहकर भगवान् श्रीराम अत्यन्त संकुचित रह गये। प्रभु के शील और स्वभाव को देखकर, मुनि वसिष्ठ जी रोमांचित हो उठे और बोले, हे श्रीराम! आपके बिना सम्पूर्ण सुखों का साज और दोनों राजसमाज नरक के समान है।

दो०- प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह, जिनहिं तिनहिं बिधि बाम।।२९०।।

भा०– हे श्रीराम! आप प्राण के प्राण, जीवात्मा के भी जीवनदाता, परब्रह्म परमात्मा तथा सुख के भी सुख हैं। आपको छोड़कर जिन्हें घर अच्छा लगता हो उनके लिए विधाता प्रतिकूल हैं।

सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।।
जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू।।

भा०– हे राघव! वह सुख, वह कर्म, वह धर्म जल जाये, जिसमें आपके श्रीचरणकमलों के प्रति भाव न हो अर्थात् जिसका आचरण करने से आपके प्रति प्रेम की अनुभूति न हो, जहाँ आप श्रीराम का प्रेम मुख्य न हो, वह योग, कुयोग है, वह ज्ञान अज्ञान है।

तुम बिनु दुखी सुखी तुम तेहीं। तुम जानहु जिय जो जेहि केहीं।।
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके।।
आपु आश्रमहिं धारिय पाँऊ। भयउ सनेह शिथिल मुनिराऊ।।

भा०– वस्तुतः दोनों राज समाज आपके बिना दुःखी होंगे और आप से ही अर्थात् आपके उपस्थिति में ही सुखी होंगे। जिस किसी के हृदय में जो है, वह आप जानते हैं। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। हे कृपालु! आपश्री को सम्पूर्ण गति विदित है। अथवा, सम्पूर्ण प्राणी मात्र आपके बिना दुःखी रह जायेगा अर्थात् जीव तब दुःखी रहेगा जब उसको आपकी समीपता का बोध नहीं होगा और जिसको भी जो सुख है, वह आप से ही है। आप प्रत्येक प्राणी के हृदय की बात जानते हैं। आपकी आज्ञा सब के सिर पर है। ब्रह्मा जी से लेकर चींटी पर्यन्त कोई भी आपकी आज्ञा टाल नहीं सकता, क्योंकि आप सबकी स्थिति जानते हैं। आप आश्रम में पधारें, हम इस समस्या के समाधान का प्रयत्न करेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी महाराज, भगवान् के प्रेम में शिथिल हो गये।

करि प्रनाम तब राम सिधाए। ऋषि धरि धीर जनक पहँ आए।।
राम बचन गुरु नृपहिं सुनाए। शील सनेह सुभाय सुहाए।।

भा०– इसके पश्चात् प्रणाम करके प्रभु श्रीराम अपने आश्रम को चले गये। महर्षि वसिष्ठ जी धैर्य धारण करके, जनक जी के पास गये। गुरु वसिष्ठ जी ने शील (स्वभाव), स्नेह और श्रेष्ठ भावों से सुहावने श्रीराम के वचन महाराज जनक जी को सुनाये।

महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धरम सहित हित होई।।
दो०– ग्यान निधान सुजान शुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम बिनु असमंजस शमन, को समरथ एहि काल।।२९१।।

भा०– हे महाराज! अब वही कीजिये जिससे सभी का धर्म के साथ कल्याण हो अर्थात् धर्म से हीन कल्याण किसी को अभीष्ठ नहीं है और न ही स्वीकार्य है। हे महाराज! आप ज्ञान के कोश हैं, आप परमचतुर, पवित्र तथा धर्म के आचरण में धीर और स्थिर एवं संसार के भोगों में न रमने वाले साधक, मनुष्यों के पालक हैं। इस समय आपके बिना इस असमंजस को नष्ट करने मे कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं। इसलिए ऐसा कुछ कीजिये जिससे श्रीराम एवं श्रीभरत दोनों भ्राताओं को संतोष हो जाये।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यान बिराग बिरागे।।
शिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं।।
रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रमाना।।
हम अब बन ते बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई।।

भा०– महर्षि वसिष्ठ जी के वचन को सुनकर श्रीजनक अनुराग में मग्न हो गये। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य भी विरक्त हो गया अर्थात् दोनों ने अपने–अपने दायित्व छोड़ दिये। प्रेम में शिथिल होकर श्रीजनक मन में ही विचार करने लगे कि, मैं यहाँ आया यह अच्छा नहीं किया। महाराज ने श्रीराम को वन जाने के लिए कह दिया और स्वयं अपने प्रियतम श्रीराम के प्रेम को प्रमाणित कर दिया। अर्थात् प्रभु के प्रेम में प्राण त्यागकर अपने सत्य प्रेम को जगत् में प्रमाणित किया और मैं (राजा जनक) प्रभु को वन से गहन वन में भेजकर अपने विवेक को बड़ाई के साथ बढ़ाकर अर्थात् श्रेष्ठ विवेक का दम्भ लेकर प्रसन्नता से मिथिला लौट जाऊँगा अर्थात् मेरे पास चक्रवर्ती जी जैसा प्रेम नहीं है कि जिससे मैं प्रभु के वियोग में उत्सर्जित हो सकूँ। इसके विपरीत मैं लोगों के समक्ष प्रसन्नता का अभिनय करके अपने विवेकवत्ता का निरर्थक प्रमाण पत्र ही तो लूँगा और विवेक के बड़प्पन से प्रसन्न होकर प्रसन्नता से लौट जाऊँगा।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बश बिकल बिशेषी।।
समय समुझि धरि धीरज राजा। चले भरत पहँ सहित समाजा।।

भा०– तपस्वी, मुनिगण और अवध, मिथिला के ब्राह्मण लोग श्रीजनक की ऐसी दशा सुन और देखकर, प्रेम के वश होकर विशेष व्याकुल हो उठे। समय को समझकर धैर्य धारण करके राजा जनक जी समाज के साथ श्रीभरत के पास चले आये।

भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे।।
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुमहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ।।

दो०- राम सत्यब्रत धरम रत, सब कर शील सनेहु।
संकट सहत सकोच बश, कहिय जो आयसु देहु।।२९२।।

भा०- श्रीभरत ने आगे होकर महाराज की अगवानी की और समय के अनुसार सुन्दर आसन दिया। मिथिला नरेश श्रीजनक कहने लगे, हे प्रेमास्पद भरत! आपको रघुकुल के वीर श्रीराम का स्वभाव ज्ञात है कि, वे अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते और किसी के मन को दु:खी नहीं करते। सत्य की रक्षा जिनका व्रत है, ऐसे धर्माचरण में लगे हुए श्रीराम सभी के शील और स्नेह के कारण संकोचवश संकट सह रहे हैं। जो आप आयसु अर्थात् सम्मति दें, वही उनसे कहा जाये।

विशेष- तात्पर्य यह है कि, श्रीराम सत्यव्रत होने के कारण वन से श्रीअवध नहीं लौटेंगे, क्योंकि इससे उनका व्रतभंग होगा जबकि वे दृढ़व्रत हैं। यथा- "**सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई**" (मानस, २.८२.१)। वे धर्मव्रत हैं इसलिए भी अयोध्या नहीं लौटेंगे, क्योंकि इससे सम्पूर्ण धर्म की टीका पिताश्री की आज्ञा का स्पष्ट उल्लंघन होता है। वे सभी के शील और स्नेह का निर्वाह भी करना चाहते हैं। इसलिए किसी को स्पष्ट जाने के लिए भी नहीं कहेंगे और न ही गुरुजन का संकोच तोड़ेंगे। अत: संकट सह रहे हैं अब तुम जो सम्मति दो हम वही करें।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरत धीर धरि भारी।।
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू।।
कौशिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुन आजू।।
शिशु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइय स्वामी।।

भा०- श्रीजनक के वचन सुनकर शरीर में रोमांचित होकर नेत्रों में प्रेम का जल भरकर बहुत-बड़ा धैर्य धारण करके श्रीभरत बोले, मेरे प्रभु श्रीराम स्वयं मेरे प्रेमास्पद, पूज्य और पिताश्री के समान हैं। कुलगुरु वसिष्ठ जी के समान माता-पिता भी हितैषी नहीं हैं और यहाँ विश्वामित्र जी आदि मुनि तथा मन्त्रियों का समाज उपस्थित है। आज ज्ञान के समुद्र स्वयं आप महाराज श्रीजनक इस सभा में उपस्थित हैं। हे महाराज! मुझे बालक, अपना सेवक और स्वामी की आज्ञा का अनुगमन करने वाला जानकर शिक्षा दीजिये।

एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर।।
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता।।

भा०- इतने बड़े समाज में और इतने पवित्र श्रीचित्रकूट स्थल में आपका पूछना मेरे लिए बड़ा असमंजस लग रहा है, क्योंकि यदि मैं मौन रहता हूँ, कोई उत्तर नहीं देता हूँ, तब मुझे मलिन अर्थात् मलों से युक्त मनवाला माना जायेगा। यदि मैं बोलता हूँ तो मुझे बावला अर्थात् पागल समझा जायेगा, तो मैं करूँ क्या? हे तात्! (श्वसुरश्री) मैं छोटे मुख से बड़ी बात कह रहा हूँ, विधाता को प्रतिकूल देखकर आप मुझे क्षमा कीजिये।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरम कठिन जग जाना।।
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू।।

भा०- यह संहिताओं, स्मृतियों, तन्त्रग्रन्थों, वेदों और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि, सेवाधर्म बहुत कठिन है। स्वामीधर्म का स्वार्थ से विरोध है, वैर दृष्टिहीन होता है और प्रेम को प्रबोध अर्थात् ज्ञान नहीं होता है (समझ नहीं होती है)। इसलिए मैं किसी भी ओर से कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ, क्योंकि मेरा स्वार्थ है। जो स्वामीधर्म से सर्वथा विरुद्ध है, वैर स्वयं अन्धा होता है और प्रेम को कोई ज्ञान नहीं होता, इसलिए मुझसे न कहलायें।

दो०- राखि राम रुख धरम ब्रत, पराधीन मोहि जानि।
सब के सम्मत सर्ब हित, करिय प्रेम पहिचानि।।२९३।।

भा०- धर्मपरायण श्रीराम के रुख, धर्म और व्रत की रक्षा करके मुझे पराधीन अर्थात् प्रभु के आज्ञा के अधीन समझकर सबकी सम्मति, सबके हित और प्रेम को पहचानकर ही कुछ किया जाये अर्थात् वही किया जाये, जिसमें श्रीराम के रुख की, उनके धर्म की और व्रत की रक्षा हो सके, सबकी सम्मति हो, तथा सबका हित भी हो जाये और प्रेम की हानि भी न हो।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ।।

भा०- श्रीभरत के वचन सुनकर उनका स्वभाव देखकर समाज के सहित महाराज श्रीजनक, श्रीभरत के वचनों की सराहना करने लगे।

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थोरे।।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी।।

भा०- जनक जी कहने लगे कि, श्रीभरत के वचन कहने में सुगम है और करने में कठिन है, समझने में यह कोमल और मधुर, पर आचरण में बहुत कठोर है। इनके अर्थ अत्यन्त असीम हैं और अक्षर बहुत थोड़े हैं। यह वाणी ऐसी आश्चर्यमयी है जैसे अपने ही हाथ के शीशे में अपना ही मुख प्रतिबिम्बत होता है, पर वह दर्पण में पकड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार यह वाणी कान से सुनी जा सक रही है, परन्तु पकड़ी नही जा रही है।

विशेष- श्रीभरत कहते हैं कि, सेवाधर्म कठिन है अर्थात् सेवक आज्ञा नहीं दे सकता। मैं आप सबको कैसे आज्ञा दूँ? स्वामीधर्म का सेवक के स्वार्थ से विरोध है अर्थात् स्वामी श्रीराम का धर्म है वन में रहना और मेरा स्वार्थ है प्रभु श्रीराम को श्रीअवध लौटाकर उनकी सेवा करना इन दोनों का विरोध है। विरोध बिना वैर के नहीं रह सकता, इसलिए मेरा स्वार्थ स्वामीधर्म से वैर बाँध लेने के कारण सेवाधर्म को देख नहीं पा रहा है। वह प्रभु की आज्ञा पर ही छोड़ दें और श्रीराघवेन्द्र सरकार से हठ नहीं करें (कहें की श्रीराम को अपने रुख के अनुसार करने दें) तो, प्रेम को समझ कहाँ है। अतः मेरे स्वार्थ और मेरे प्रेम, ये दोनों ही मुझको सता रहे हैं। आप लोग श्रीराम के रुख, धर्म और व्रत की रक्षा कीजिये, अर्थात् इससे तो श्रीराम का वनगमन ही निश्चित होगा पर क्या उसमें सर्वसम्मति और सर्वहित की सम्भावना है? क्या उससे सबके प्रेम की रक्षा होगी? यदि प्रेम, सर्वसम्मति और सर्वहित की रक्षा करने जायेंगे तब श्रीराम के रुख, उनके धर्म और व्रत की रक्षा नहीं हो सकेगी। यही सब परस्पर विरोध है। अतः यह सुनने में सुगम और करने में अगम्य है। कहने में कोमल और आचरण में लाने में बहुत कठोर है। यहाँ अक्षर कम हैं पर अर्थ बहुत अधिक है।

भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू।।
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा।।

भा०- महाराज श्रीजनक, श्रीभरत, मुनि वसिष्ठ जी एवं साधुजन का समाज सब लोग वहाँ गये जहाँ देवतारूप कुमुदों को विकसित करने वाले चन्द्रमा भगवान् श्रीराम विराज रहे थे। यह समाचार सुनकर सभी लोग शोक से व्याकुल हो गये। मानो नवीन जल के संयोग से मछली गण तलफला उठे हों।

विशेष- ''सोमो राजा अस्माकं ब्राह्मणानां'', इस श्रुति के अनुसार चन्द्रमा को द्विजराज अर्थात् ब्राह्मणों का राजा कहा जाता है।

देव प्रथम कुलगुरु गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिशेषी।।
राम भगतिमय भरत निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे।।
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख सोच बश लेखा।।

भा०- देवताओं ने सर्वप्रथम श्रीराम के कुलगुरु वसिष्ठ जी की गति देखी और विदेहराज श्रीजनक के विशेष स्नेह को निहारकर, जब श्रीभरत को श्रीरामप्रेम स्वरूप निहारा तब तो स्वार्थी देवता हृदय में डर कर हार गये। उन्होंने सभी को श्रीरामप्रेममय देखा अर्थात् श्रीचित्रकूट आये हुए सभी नर–नारियों में श्रीरामप्रेम की प्रचुरता देखी। तब लेखा अर्थात् अदिति के पुत्र सभी देवता असीम सोच के वश हो गये।

विशेष- लेखा अदिति नन्दनाः। (अमर कोश)

दो०- राम सनेह सकोच बश, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहिं त भयउ अकाज।।२९४।।

भा०- इन्द्र ने चिन्तित होकर कहा, श्रीराम प्रेम और संकोच के वश में हैं, पंच अर्थात् सभी लोग मिलकर कुछ माया का प्रपंच रचो नहीं तो अकाज अर्थात् कार्य में तो व्यवधान हो ही गया समझो।

सुरन सुमिरि शारदा सराही। देबि देव शरनागत पाही।।
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया।।

भा०- देवताओं ने स्मरण करके सरस्वती जी की प्रशंसा की और बोले, हे देवी! अपनी शरण में आये हुए देवताओं की रक्षा कीजिये। अपनी माया करके श्रीभरत की बुद्धि को फेर दीजिये और अपनी छल की छाया करके देवताओं के समूह का पालन कीजिये।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी।।
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू।।

भा०- देवताओं की विनय अर्थात् प्रार्थना सुनकर चतुर देवी सरस्वतीजी, देवताओं को स्वार्थ के कारण जड़ जानकर बोलीं, देवताओं! मुझ से कह रहे हो कि, श्रीभरत की बुद्धि को फेर दो। हे इन्द्रदेव! तुम्हें एक हजार आँखों से भी सुमेरु पर्वत नहीं दिख रहा है अर्थात् श्रीभरत का व्यक्तित्व सुमेरु के समान है।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी।।
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदनि कर कि चंडकर चोरी।।

भा०- ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी की माया बहुत–बड़ी है, वह भी श्रीभरत की बुद्धि को देख भी नहीं सकती। मुझे कह रहे हो कि, उसी बुद्धि को भोरी कर दीजिये। क्या चन्द्रमा की किरण सूर्यनारायण की चोरी कर सकती है? अर्थात् मैं चन्द्रिका के समान बहुत छोटी हूँ और श्रीभरत का ज्ञान ग्रीष्म के सूर्य के समान है।

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू।।
अस कहि शारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निशि मानहुँ कोका।।

भा०- श्रीभरत के हृदय में श्रीसीताराम जी का निवास है। जहाँ सूर्यनारायण का प्रकाश हो क्या वहाँ अन्धकार रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वती जी ब्रह्मलोक चली गईं। देवता विकल हो गये, मानो रात्रि में चकवे व्याकुल हो गये हों।

दो०- सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाट।
रचि प्रपंच माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाट।।२९५।।

भा०- मैले मनवाले स्वार्थसाधक देवताओं ने प्रपंच, प्रबलमाया, भय, भ्रम, अप्रसन्नता और उच्चाटन की रचना करके अपनी कुमंत्रणा का बुरा साज सजा दिया अर्थात् कुत्सित मंत्रणा के अनुसार कुप्रबंध कर दिया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू।।
गए जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा।।

भा०- कुचाल अर्थात् बुरा कर्त्तव्य करके देवराज इन्द्र चिन्ता करने लगे कि, सम्पूर्ण कार्य और अकार्य अब श्रीभरत के हाथ में है अर्थात् सभी कार्यों का सिद्ध होना अथवा, असिद्ध होना श्रीभरत के हाथ में है। श्रीजनक रघुकुल के नाथ भगवान् श्रीराम के पास गये और रघुकुल के दीपक श्रीराम ने सबका सम्मान किया।

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंश पुरोधा।।
जनक भरत संबाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई।।

भा०- इसके अनन्तर रघुकुल के पुरोहित वसिष्ठ जी समय, समाज और धर्म के अविरुद्ध अर्थात् समयानुकूल, समाजानुकूल और धर्मानुकूल वचन बोले। गुरुदेव ने श्रीजनक और श्रीभरत का सम्वाद सुनाया और श्रीभरत की सुन्दर उक्ति भी कही।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करैं मोर मत एहू।।
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी।।

भा०- हे जीवमात्र के परमप्रेमास्पद श्रीराम! आप जैसी आज्ञा दें सब लोग वही करें, यही मेरा मत है। गुरुदेव का यह वचन सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथ स्वभावतः सत्य और कोमल वाणी बोले–

बिद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू।।
राउर राय रजायसु होई। राउर शपथ सही सिर सोई।।

भा०- आपश्री (गुरूदेव) तथा मिथिलाधिपति श्रीजनक के उपस्थित रहने पर मेरा कुछ भी कहना सब प्रकार से भद्दापन ही तो है। मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ कि, आप श्रीगुरुदेव की और महाराज श्रीजनक की जो आज्ञा होगी, मैं उसे सिर धारण करके प्रतिकूलता में भी सहन करूँगा।

दो०- राम शपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख, बनइ न उत्तर देत।।२९६।।

भा०- भगवान् श्रीराम की शपथ सुनकर, राजसभा के सहित महर्षि वसिष्ठ जी और राजर्षि श्रीजनक संकुचित हो गये। सभी श्रीभरत का मुख देखने लगे, किसी से उत्तर देते नहीं बन रहा था।

सभा सकुच बश भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरज भारी।।
कुसमय देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिंध्य जिमि घटज निवारा।।

भा०- सम्पूर्ण सभा संकोच के वश में होकर श्रीभरत को देखने लगी। तब भगवान् श्रीराम के छोटे भ्राता श्रीभरत ने बहुत–बड़ा धैर्य धारण करके फिर प्रतिकूल समय देखकर अपने स्नेह को उसी प्रकार सम्भाल लिया, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्य जी ने रोक लिया था।

शोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जग जोनी।।
भरत बिबेक बराह बिशाला। अनायास उधरी तेहि काला।।

भा०- श्रीभरत के शोकरूप हिरण्याक्ष ने गुणगणरूप जगत को जन्म देने वाली श्रीभरत की विमलबुद्धिरूप पृथ्वी का अपहरण कर लिया था। श्रीभरत के विवेकरूप विशाल वराह ने उसे उसी समय बिना प्रयास के हिरण्याक्ष से उद्धृत कर लिया अर्थात् छुड़ा लिया।

विशेष- पौराणिक कथा के अनुसार पृथ्वी को हिरण्याक्ष ने चुरा लिया था, फिर भगवान् ने शूकरावतार लेकर हिरण्याक्ष का वध करके उससे पृथ्वी को मुक्त कराया, उसी का यहाँ गोस्वामी जी ने रूपक प्रस्तुत किया है। उन्होंने शोक को हिरण्याक्ष, बुद्धि को पृथ्वी तथा श्रीभरत के विवेक को शूकरावतार भगवान् से उपमित किया है।

करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे।।
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा।।

भा०- श्रीभरत ने प्रणाम करके सबको हाथ जोड़ा और भगवान् श्रीराम, योगिराज श्रीजनक, ब्रह्मर्षि गुरुदेव वसिष्ठ जी और साधुसमाज से कृतज्ञतापूर्ण प्रार्थना की। आज सभी लोग मेरा बहुत-बड़ा अनुचित क्षमा कीजिये, मैं कोमल मुख से कठोर वचन कह रहा हूँ।

हिय सुमिरी शारदा सुहाई। मानस ते मुख पंकज आई।।
बिमल बिबेक धरम नय शाली। भरत भारती मंजु मराली।।

भा०- उन्होंने हृदय में सुहावनी शारदा जी का स्मरण किया। वे मानससरोवर से श्रीभरत के मुखकमल पर विराजमान हो गईं। निर्मल विवेक, धर्म तथा राजनीति से सुशोभित श्रीभरत की वाणी सुन्दर हंसिनी बन गई।

दो०- निरखि बिबेक बिलोचननि, शिथिल सनेह समाज।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज।।२९७।।

भा०- विवेक के नेत्रों से समाज को शिथिल देखकर श्रीसीता एवं श्रीराम का स्मरण करके, प्रणाम करके श्रीभरत बोले-

* मासपारायण, उन्नीसवाँ विश्राम *

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी।।
सरल सुसाहिब शील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू।।
समरथ शरनागत हितकारी। गुनगाहक अवगुन अघहारी।।
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाईं।।

भा०- हे प्रभु! आप पिता, माता, मित्र, गुरु, स्वामी, पूज्य, परमहितैषी और अन्तर्यामी हैं। सरल, सुन्दर ईश्वर, शील के निधान (भाण्डागार), प्रणतों के पालक, सर्वज्ञ, चतुर, समर्थ, शरणागतों के भय को हरने वाले, गुणगणों को ग्रहण करने वाले, पाप और अवगुणों को हरने वाले हैं। ऐसे मेरे स्वामी श्रीराघवेन्द्र अपने समान आप ही हैं और मेरे समान स्वामी का द्रोह करने वाला मैं ही हूँ।

प्रभु पितु बचन मोह बश पेली। आयउँ इहाँ समाज सकेली।।
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू।।
राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं।।
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई।।

भा०– हे प्रभु! मोह के कारण पिताश्री के वचन का उल्लंघन करके, मैं पूरे समाज को इकट्ठा करके यहाँ आया हूँ। जगत का भला–बुरा, ऊँच–नीच, अमृत, अमर पद अर्थात् अमरत्व, विष, मृत्यु कोई भी, मन में भी श्रीराम की राजाज्ञा का उल्लंघन किया हो, ऐसा हमने न तो देखा है न सुना है। वह भी मैंने सब प्रकार से धृष्टता की है अर्थात् आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है, परन्तु आपने उसे स्नेह और सेवा मान ली।

दो०- कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजस चारु चहुँ ओर।।२९८।।

भा०– हे नाथ! अपनी कृपा तथा अपनी भद्रता से आपने मेरा बहुत भला किया है। मेरे दोष आभूषण के समान हो गये हैं, मेरा सुन्दर सुयश चारों ओर फैल रहा है।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई।।
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीश निशंकी।।
तेउ सुनि शरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किये अपनाए।।
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने।।

भा०– आपकी रीति, सुन्दर स्वभाव तथा आपका बड़प्पन यह जगत् में विदित है। इसे निगमों तथा उनसे अनुमोदित पुराणों और स्मृतियों ने गाया है। दुष्ट, कुटिल तथा टेढ़ी प्रकृतिवाले खल, कलंक से युक्त चरित्र से नीच, निम्न स्वभाव वाला, असमर्थ और स्वामी के संरक्षण से रहित, शंका से रहित, अर्थात् निर्भीक वे लोग भी आपका सुयश सुनकर, आपके सन्मुख होकर, आपश्री के शरण में आ गये तो, एक बार भी प्रणाम करने पर आपने उन्हें अपना लिया। उनका दोष देखकर हृदय में कभी भी नहीं लाये, परन्तु भक्तों के गुण सुनकर उन्हें सन्तों के समाज में बखाना।

को साहिब सेवकहिं नेवाजी। आपु समान साज सब साजी।।
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने।।

भा०– हे प्रभु! ऐसे किस स्वामी ने अपने सेवक को इस प्रकार निवाजा अर्थात् कृपापूर्वक सम्मानित किया? अथवा, किस स्वामी ने अपने सेवक को इस प्रकार कृपापूर्वक पुरस्कृत किया और अपने ही समान उसके सम्पूर्ण साज को सजाया। जो स्वप्न में भी सेवक के प्रति की हुई, अपनी कृति का स्मरण नहीं करते, उसके विपरीत सेवक को अपने से किसी प्रकार का संकोच न हो जाये, इस प्रकार अपने हृदय में चिन्ता करते रहते हैं अर्थात् सेवक के संकोच से अपने हृदय में चिन्तित होते रहते हैं।

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी।।
पशु नाचत शुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना।।

भा०– वह स्वामी आप ही हैं, कोई भी दूसरा नहीं है। मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जैसे पशु अर्थात् बन्दर नाचते हैं, तोता बोलने में कुशल हो जाता है, परन्तु बन्दर के नाचने की कला मदारी के अधीन होती है और तोते के बोलने की कला पढ़ाने वाले के अधीन होती है।

दो०- यों सुधारि सनमानि जन, किए साधु सिरमौर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरुदावलि बरजोर।।२९९।।

भा०– इसी प्रकार आपने भी भक्तों को सुधारकर और सम्मानित करके उन्हें साधुओं का शिरोमणि बना दिया। हे कृपालु! आपके बिना अपनी विरुदावलि को हठपूर्वक कौन पालेगा?

शोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ।।
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा।।

भा०– शोक और स्नेह के कारण, अथवा बालक स्वभाव के कारण, मैं आपकी राजाज्ञा को बायें करके अर्थात् इसका अपमान करके श्रीचित्रकूट आया, फिर भी परमकृपामय आपश्री ने अपनी ओर अर्थात् अपना सम्बन्धी देखकर, मेरा सब प्रकार से भला ही माना, मेरे किसी भी कृत्य को बुरा नहीं माना।

देखेउँ पायँ सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला।।
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू।।

भा०– सभी शुभमंगलों के मूल आपके श्रीचरणों के मैंने दर्शन किये और अपने स्वामी को सहजतः अपने अनुकूल जाना बहुत–बड़े समाज में मैंने अपना सौभाग्य देखा और मेरी बहुत–बड़ी भूल पर भी स्वयं पर स्वामी का प्रेम भी देखा।

कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई।।
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने शील स्वभाव भलाईं।।

भा०– हे कृपा के सागर! आपने मुझ पर कृपा और अनुग्रह अर्थात् अनुकूल ग्रहण अनुकम्पा के सभी अंगों को तृप्त होकर अर्थात् जी भरकर अत्यन्त अधिक किया है अर्थात् मुझ पर सर्वांग कृपा और सर्वांग अनुग्रह, पूर्ण–तृप्त होकर किया है। जितनी मेरी पात्रता थी उससे भी अधिक किया है। हे गोसाईं! आपने अपने स्वभाव, अपने स्नेह तथा अपने ही भलेपन से मेरा दुलार अर्थात् लाड़–प्यार रखा है।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई।।
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिय देव अति आरत जानी।।

भा०– हे नाथ! स्वामी के समाज का संकोच छोड़कर मैंने बहुत ही ढिठाई अर्थात् धृष्टता की है। हे देव! मुझको अत्यन्त आर्त्त जानकर मेरे द्वारा अपनी रुचि के अनुसार बोली गई अविनय अर्थात् अशिष्ट अथवा, शिष्ट विनयपूर्ण वाणी क्षमा कीजिये। अथवा, मेरे द्वारा अविनय में भी विनय समझकर अपनी रुचि अनुसार बोली हुई वाणी को क्षमा कीजिये।

दो०– सुहृद सुजान सुसाहिबहिं, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि।।३००।।

भा०– अपने मित्र, कल्प चतुर, सुन्दर स्वामी के समक्ष बहुत बोलना भी बहुत–बड़ा दोष है। हे देव! आदेश दीजिये और अब मेरी सब बिगड़ी हुई सुधार लीजिये।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई।।
सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की।।

भा०– हे प्रभु! जो सत्य, सत्कर्म और सुख की सीमा है, उसी सुहावनी आपके श्रीचरणकमल के परागरूप धूलि की दुहाई करके अर्थात् शपथ करके मैं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की अपने हृदय की रुचि कहता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा।।

भा०- स्वाभाविक स्नेह के साथ स्वार्थ, कपट और अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप चारों फलों को छोड़कर स्वामी की सेवा करना ही मेरी सामान्य रुचि है। वस्तुतः आज्ञापालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की कोई सेवा नहीं है। हे देव! अब सेवक वही प्रसाद पा जाये अर्थात् आप मुझे आज्ञा दें, मैं उसका पालन करूँगा।

अस कहि प्रेम बिबश भए भारी। पुलक शरीर बिलोचन बारी।।
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समय सनेह न सो कहि जाई।।

भा०- इतना कहकर, श्रीभरत प्रेम के बहुत विवश हो गये। उनके शरीर में रोमांच हो गया और विमल नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने अकुलाकर प्रभु के श्रीचरणकमलों को पकड़ लिया। वह समय और उस समय का श्रीभरत का वह स्नेह मुझसे कहा नहीं जा रहा है।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी।।
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। शिथिल सनेह सभा रघुराऊ।।

भा०- कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने सुन्दर वाणी से श्रीभरत का सम्मान करके हाथ पकड़कर उन्हें अपने समीप बैठा लिया। श्रीभरत की प्रार्थना सुनकर उनका स्वभाव देखकर सम्पूर्ण राजसभा और रघुकुल के राजा श्रीराम स्नेह में शिथिल हो गये।

छं०: रघुराउ शिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी।।
भरतहिं प्रशंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निशागम नलिन से।।

भा०- भगवान् श्रीराम, साधुओं का समाज, मुनिगण तथा मिथिलाधिपति श्रीजनक स्नेह में शिथिल हो गये। मन में श्रीभरत के भ्रातृत्व और उनकी भक्ति की बहुत-बड़ी महिमा की सराहना करने लगे। मन में मलिन होने से देवतागण श्रीभरत की प्रशंसा करते हुए, पुष्पों की वर्षा करने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि, यह सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये और रात्रि के आगमन के समय के कमल के समान संकुचित हो गये।

सो०- देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत।।३०१।।

भा०- दोनों समाज (श्रीअवध-मिथिला समाज) के सभी नर-नारी अर्थात् स्त्री-पुरुषों को दुःखी और दीन देखकर भी मलिन (मलों से युक्त) इन्द्र मरे हुए को मारकर भी मंगल चाहने लगा।

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू।।
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलिन कतहूँ न प्रतीती।।
प्रथम कुमत करि कपट सँकेला। सो उचाट सब के सिर मेला।।
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिशय न बिछोहे।।

भा०- इन्द्र कपट और बुरी चाल की सीमा हैं, उन्हें दूसरों का कार्य बिगाड़ना और अपना कार्य बनाना प्रिय है। पाक नामक दैत्य के शत्रु देवराज इन्द्र की पद्धति छली, मलिन स्वभाववाले, कहीं भी किसी का भी विश्वास नहीं करने वाले कौवे के समान है। सर्वप्रथम इन्द्र ने कुमत अर्थात् कुमंत्रणा करके कपट को संकलित किया अर्थात् इकट्ठा किया और वह उच्चाटन सभी अवध-मिथिलावासियों के सिर पर डाल दिया। इन्द्र ने देवमाया से सभी अवध-मिथिला के लोगों को विशेषरूप से मोहित कर दिया। यद्यपि वे (देवमाया से मोहित लोग) श्रीरामप्रेम से

बहुत नहीं बिछड़े अर्थात् बहुत अलग नहीं हुए। देवमाया से मोहित होने पर भी श्रीअवध–मिथिलावासियों के मन में सामान्यरूप से श्रीरामप्रेम बना ही रहा।

भय उचाट बश मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं।।
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी।।

भा०– श्रीअवध–मिथिलावासियों के मन इन्द्र द्वारा प्रेरित उच्चाटन के वश में हो गये, वे स्थिर नहीं हो पा रहे थे। एक क्षण तो लोगों को वन के लिए रुचि हो जाती थी और दूसरे क्षण उन्हें अपने–अपने घर अच्छे लगने लगते थे। इस प्रकार द्विविधावाली मानसिक दशा के कारण प्रजा दुःखी हो रही थी, मानो नदी और सागर के संगम में जल हो अर्थात् जैसे नदी और सागर के संगम के समय जल की परिस्थिति द्विविधा की हो जाती है। उसी प्रकार प्रजा भी द्विविधा में पड़ गई, कभी तो वह अपने घररूप नदी की ओर मुड़ती और कभी श्रीरामरूप सागर की ओर।

दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं। एक एक सन मरम न कहहीं।।
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस श्वान मघवान जुबानू।।

भा०– इस प्रकार भवन और वन इन दो स्थानों में चित्त होने के कारण श्रीअवध–मिथिलावासी कहीं भी संतोष नहीं प्राप्त कर रहे हैं और एक–दूसरे से अपने गोपनीय मनोभाव भी नहीं कह रहे हैं। प्रजा की इस परिस्थिति को देखकर कृपा के कोश भगवान् श्रीराम ने हँसकर हृदय में कहा कि, कुत्ते, इन्द्र और युवक ये तीनों एक ही समान होते हैं अर्थात् तीनों अपना कार्य सिद्ध करने के लिए अनर्थ की किसी भी सीमा तक जा सकते हैं।

विशेष– "सरिस श्वान मघवान जुबानू" का प्रयोग गोस्वामी जी ने पाणिनि के एक सूत्र और संस्कृत की सुप्रसिद्ध एक सूक्ति के आधार पर किया है। कोई एक भारतीय कन्या, माला के एक ही तागे में शीशा, मणि और स्वर्ण की लड़ियाँ पिरो रही थी। उसे देखकर किसी ने पूछा, भद्रे! आप एक ही तागे में तीनों को क्यों पिरो रही हैं? तब उसने (कन्या ने) शालीनता से उत्तर दिया, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैं तो व्याकरण के सर्वश्रेष्ठ आचार्य भगवान् पाणिनि का अनुकरण कर रही हूँ। उन्होंने (पाणिनि ने) भी संस्कृत के एक ही सूत्र में श्वान, युवान और मघवान को पिरोया। यथा– **श्वयुवमघोनामतद्धिते** (६.४.९३३) श्लोक इस प्रकार है– **कांचं मणिं कांचनमेकसूत्रे ग्रथनासि बाले किंमूचित्रमेतत्। अशेषवित पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह।।**

दो०– भरत जनक मुनि जन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, जथाजोग जन पाइ।।३०२।।

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे।।

भा०– श्रीभरत, शत्रुघ्न, योगिराज जनक, वसिष्ठ जी आदि मुनिजन, मंत्रीगण, चेतनावान् साधु समाज जो भगवत् भजन से जागरूक रहते हैं, को छोड़कर योग्यतानुसार लोगों को पाकर सभी पर देवमाया लग गई। यहाँ साधु–समाज शब्द में सभी माताओं का भी समावेश हो गया। कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने अपने स्नेह तथा देवराज के छल से भरे अर्थात् बोझिल सभी लोगों को दुःखी देखा अर्थात् लोग एक ओर तो भगवत् प्रेम से आकर्षित होकर प्रभु के साथ वन में रहना चाहते थे और दूसरी ओर इन्द्र के छल के कारण अपने–अपने घरों का स्मरण करके व्याकुल हो रहे थे।

सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री।।
रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से।।

भा०- जिन्हें देवमाया ने प्रभावित किया था, उनकी मनोदशा का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि, श्रीचित्रकूट की तीसरी सभा में योगिराज जनकजी, गुरुदेव वसिष्ठ जी एवं विश्वामित्रजी, सभी ब्राह्मण एवं मंत्रीगण इन सबकी बुद्धि श्रीभरत की भक्ति से नियंत्रित हो गई थी अर्थात् इन पर इन्द्र की देवमाया का प्रभाव नहीं पड़ा था। वे सभी चित्र में चित्रित किये हुए से चेष्टारहित होकर टकटकी लगाये भगवान् श्रीराम को निहार रहे थे और सीखे हुए के समान अर्थात् स्वाभाविकता छोड़कर वचन बोलने में संकोच कर रहे थे।

भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई।।
जासु बिलोकि भगति लवलेशू। प्रेम मगन मुनिजन मिथिलेशू।।
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी।।
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी।।
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई।।

भा०- श्रीभरत की प्रीति, नम्रता, विनय, बड़प्पन यह सब सुनने में सुख देते हैं, परन्तु इनका वर्णन करना बहुत कठिन है। जिन श्रीभरत की भक्ति के लवलेश, अर्थात् छीटे के परिमाण मात्र को देखकर मुनिजन और श्रीजनक जी प्रेम में मग्न हो गये। उन श्रीभरत जी की महिमा तुलसीदास किस प्रकार कह सकता है? तथापि श्रीभरत की भक्ति और उनके स्वभाव से मुझ कवि तुलसीदास के हृदय में सुन्दर बुद्धि हुलस पड़ी है अर्थात् उल्लासित हो रही है, परन्तु स्वयं को छोटी जानकर और श्रीभरत की महिमा को बहुत–बड़ी समझकर कविकुल की कानि, अर्थात् मर्यादापूर्ण संकोच मानकर फिर मुझ तुलसीदास की बुद्धि संकुचित हो रही है। मेरी बुद्धि श्रीभरत के गुणों को कह नहीं सकती और कहने की रुचि अधिक हो रही है। अब तो मेरी बुद्धि की दशा बालक के वचन के जैसी हो गई है। जैसे बालक बोलना तो बहुत चाहता है, परन्तु अपने भावों को व्यक्त करने के लिए उसके पास शब्दों का अभाव, दारिद्र और संकट रहता है।

दो०- भरत बिमल जस बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि।।३०३।।

भा०- भक्तों के हृदयरूप आकाश में उदित हुए श्रीभरत के निर्मल यशरूप निष्कलंक चन्द्रमा को मुझ तुलसीदास की सात्विक बुद्धिरूप चकोर की छोटी बालिका टकटकी लगाकर निहार रही है अर्थात् जैसे अविवाहिता छोटी–सी चकोर की पुत्री केवल चन्द्रमा को टकटकी लगाकर देखती रहती है, क्योंकि तब तक उसका चकोर के साथ कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं हुआ रहता, उसी प्रकार मेरी बुद्धि केवल श्रीभरत के यश का ही चिन्तन कर रही है।

भरत स्वभाव न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ।।
कहत सुनत सति भाव भरत को। सीय राम पद होइ न रत को।।
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को।।

भा०- हे कवि, अर्थात् मनीषियों! (वाल्मीकि, व्यास आदि ऋषि महाकवियों) श्रीभरत के स्वभाव का वर्णन तो वेदों के लिए भी सुगम नहीं है, क्योंकि वेद भगवान् श्रीराम के श्वासरूप हैं, जो श्रीभरत के स्वभाव को देखकर प्रेम के प्रवाह में रुक जाती है। इसलिए मेरी छोटी बुद्धि की चपलता को आप सब क्षमा करेंगे। श्रीभरत के सत्य अर्थात् सन्तों के हितैषीभाव को कहते–सुनते श्रीसीताराम जी के चरणों में कौन अनुरक्त नहीं हो जायेगा?

श्रीभरत का स्मरण करते हुए जिसे श्रीसीताराम जी का प्रेम न सुलभ हो उसके समान वाम अर्थात् भगवत् विरुद्ध, दुष्ट, कुटिल कौन हो सकता है?

देखि दयालु दशा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की।।
धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह शील सुख सागर।।
देश काल लखि समय समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू।।
बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत शशि रस से।।

भा०– दया के आगार और सबके हृदय की जानने वाले अर्थात् सबके साथ श्रीभरत की भी स्थिति को समझने वाले, परमचतुर, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, धैर्यवान और 'धी', अर्थात् बुद्धि के 'इर' अर्थात् प्रेरक, नीति में निपुण, सत्य, स्नेह, शील अर्थात् स्वभाव एवं चरित्र तथा सुखों के सागर, नीति और प्रीति का पालन करने वाले, रघुकुल के राजा एवं 'रघु' शब्द के मुख्यार्थ सम्पूर्ण जीवों के हृदयों में अन्तर्यामी रूप से विराजमान, योगियों के भी हृदय में रमनेवाले और चराचर को रमानेवाले परमेश्वर भगवान् श्रीराम देश, काल और समय अर्थात् अवसर और समाज को देखकर ऐसे वचन बोले, जो वाणी अर्थात् भगवती सरस्वती जी के सर्वस्व के समान थे। जो परिणाम में हितकर अर्थात् कल्याणकारी थे और जो सुनने में शशिरस अर्थात् चन्द्रमा के सारभूत अमृत के समान थे।

विशेष– यहाँ वाणी शब्द सरस्वती जी का वाचक है और रस शब्द सारतत्त्व का बोधक है।

तात भरत तुम धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना।।

दो०– करम बचन मानस बिमल, तुम समान तुम तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात।।३०४।।

भा०– श्रीराम ने कहा, हे तात् (मेरे प्रेमपात्र) भरत! तुम धर्म के धुरीन, लोक और वेद के ज्ञाता तथा प्रेम में प्रवीण अर्थात् कुशल हो। हे भैया! तुम कर्म, वाणी और मन से निर्मल हो, तुम्हारे समान तुम ही हो। गुरुजनों के समाज और इस प्रतिकूल समय में छोटे और प्रिय भाई के गुण कैसे कहे जा सकते हैं? अर्थात् यदि यहाँ गुरुजन नहीं होते और यह प्रतिकूल समय नहीं होता तो मैं कदाचित् तुम्हारे सम्बन्ध में बहुत कुछ कहता।

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती।।
समय समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की।।
तुमहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू।।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा।।

भा०– हे भैया! तुम सूर्यकुल की रीति अर्थात् परम्परा को, सत्यप्रतिज्ञ पिताश्री के यश और उनके मुझ रामविषयक प्रेम को, समय, समाज एवं गुरुजन की लज्जा और मर्यादा को, उदासीन अर्थात् मध्यस्थ, मित्र और शत्रुओं के मन की दशा को जानते हो। मुझे तुम्हारा सब प्रकार से विश्वास है, फिर मैं भी समय के अनुसार, अथवा, अवसर का अनुसरण करते हुए कुछ कह रहा हूँ।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुलगुरु कृपा सँभारी।।
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू।।

भा०– हे भैया! पिताश्री के बिना (अनुपस्थिति में) हमारी बात (वार्ता अर्थात् कुशल) केवल कुलगुरु अर्थात् रघुवंश के आचार्य वसिष्ठ जी की कृपा ने ही सम्भाल दिया अर्थात् उन्हीं की कृपा से हमारी कुशलता सम्भली हुई

है, नहीं तो चारों भाइयों सहित श्रीअवध की प्रजा, हमारे आश्रित सेवक, अथवा सगे सम्बन्धी और राजपरिवार सबके सब नष्ट हो गये होते।

विशेष- यद्यपि इस चौपाई में प्रयुक्त परिजन और परिवार एक ही अर्थ के वाचक हैं, परन्तु गोस्वामी जी ने इनका एक साथ प्रयोग करके थोड़ा-सा अन्तर सूचित किया है। यहाँ परिजन का अर्थ है निजी सेवक, अथवा सगे सम्बन्धी और परिवार का अर्थ है एक ही कुल में उत्पन्न हुए लोगों का समूह।

जौ बिनु अवसर अथव दिनेशू। जग केहि कहहु न होइ कलेशू।।
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेश राखि सब लीन्हा।।

भा०- हे भैया! बताओ, यदि बिना अवसर के अर्थात् निर्धारित अस्तकाल के पूर्व सूर्यनारायण अस्त हो जायें तो जगत में किसे नहीं क्लेश होगा? हे तात्! विधि, अर्थात् हमारे भाग्य ने उसी प्रकार का उत्पात कर दिया, परन्तु उसे गुरुदेव वसिष्ठ जी एवं मिथिलापति श्वसुर श्रीजनक ने बचा लिया। तात्पर्य यह है कि, पिताश्री मुझे युवराज पद देकर, अभी कुछ दिन और राजा के पद पर रहना चाहते थे, परन्तु श्रवण कुमार के माता-पिता के शाप के कारण मुझ पुत्र का वियोग उपस्थित होने पर वे अपने मनोरथ के निर्धारित समय के पूर्व चले गये।

विशेष- यहाँ ''**बिनु अवसर अथव दिनेशू**'' शब्द से महाराज दशरथ की अकाल मृत्यु की आशंका नहीं करनी चाहिये। वस्तुतः बिनु अवसर शब्द से भगवान् श्रीराम, महाराज चक्रवर्ती जी की इच्छा द्वारा निर्धारित समय से प्रथम अवसर की चर्चा कर रहे हैं। अथवा, बिनु अवसर का तात्पर्य यह है कि, सूर्य के अस्त का उचित अवसर तब होता है जब, उनका दायित्व सम्भालने के लिए चन्द्रमा का उदय प्राप्त हो। पिताश्री मुझ श्रीरामचन्द्र के दायित्व सम्भालने के पहले ही गये यही बिनु अवसर है। अथवा, पिताश्री के महाप्रस्थान काल में हम चारों भाइयों में से कोई भी उपस्थित नहीं था, यही बिनु अवसर है।

दो०- राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरु प्रभाव पालिहिं सबहिं, भल होइहि परिनाम।।३०५।।

भा०- सम्पूर्ण राज्य का कार्य, लज्जा और मर्यादा, धर्म, पृथ्वी, धन और राजभवन सबका पालन गुरुदेव का कृपा प्रसाद ही करेगा, परिणाम बहुत अच्छा होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा।।
मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू। सकल धरम धरनीधर शेषू।।
सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू।।
साधन एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी।।

भा०- हे भैया भरत! गुरुदेव का प्रसाद ही समाज के सहित तुम्हारा और हमारा घर तथा वन में रक्षक है। माता-पिता, गुरु और स्वामी का आदेश सम्पूर्ण धर्मों की पृथ्वी को धारण करने वाले शेष है अर्थात् माता-पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वही तुम करो और मुझ से भी करवाओ। हे भरत! तुम सूर्यकुल के रक्षक बन जाओ। आज्ञापालन रूप यही एक साधना कीर्ति, मोक्ष और ऐश्वर्य से युक्त त्रिवेणी है अर्थात् जैसे गंगाजी, यमुनाजी और सरस्वतीजी के संगम में एकमात्र स्नान से तीन वस्तुयें प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार माता-पिता की आज्ञापालनरूप गंगाप्रवाह, गुरुदेव की आज्ञा पालनरूप यमुनाप्रवाह तथा स्वामी की आज्ञापालनरूप गुप्त सलिला सरस्वती जी के प्रवाह के संगमरूप तुम्हारे लिए अवध-प्रवास और मेरे लिए वन-

प्रवास रूप आज्ञापालन की साधना, सेवा की त्रिवेणी बनकर कीर्ति, श्रेष्ठ गति और ऐश्वर्य को देने वाली त्रिवेणी की भूमिका निभायेगी।

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी।।
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।

भा०- हे भैया! उस पक्ष का विचार कर बहुत-बड़ा संकट सहकर तुम अवधिपर्यन्त (चौदह वर्षों तक), प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भैया भरत! पड़ी हुई यह विपत्ति केवल एक को नहीं सहनी है। यह सभी को और मुझे भी विधाता द्वारा बाँट दी गई है अर्थात् हम, तुम और समस्त अवधवासी मिलकर इसका सामना करेंगे। यद्यपि चौदह वर्ष के वनवास की अवधिपर्यन्त तुम्हें बहुत कठिनता होगी।

जानि तुमहिं मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा।।
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओड़ियहिं हाथ अशनिहु के घाए।।

भा०- तुम्हें कोमल जानकर भी मैं यह आदेशरूप वियोगात्मक कठोर वचन कह रहा हूँ, हे भैया! यह प्रतिकूल समय की विडम्बना है अर्थात् अभी हमारा समय अनुकूल नहीं है, नहीं तो मैं तुम्हें अपने से क्यों अलग करता? मेरा यह अनुचित कार्य नहीं है। श्रेष्ठ भ्राता कुठाऊँ अर्थात् बुरे स्थान पर ही सहायक होते हैं। जैसे वज्र के भी घाव को हाथ पर रोक लिया जाता है अर्थात् सम्भाला जाता है, अथवा, वज्र के भी घाव को पहले हाथ सहन करता है, उसी प्रकार यह वज्र का आघात है और तुम मेरे हाथ हो।

दो०- सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ।।३०६।।

भा०- सेवक हाथ, चरण और नेत्र के समान होने चाहिये और स्वामी मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदास जी कहते हैं कि, सेवक और स्वामी की प्रीति की यह परम्परा सुनकर श्रेष्ठकवि उसी की सराहना करते हैं।

विशेष- यह संयोग और सौभाग्य ही कहना चाहिये कि, श्रीराम जैसे स्वामी को तीन सेवक श्रीभरत, लक्ष्मण और सीता जी प्राप्त हैं और ये तीनों यहाँ कहे हुए हाथ, चरण और नेत्र की भूमिका निभा रहे हैं। श्रीभरत प्रभु के हाथ हैं, लक्ष्मण जी प्रभु के चरण हैं और श्रीसीता प्रभु के नेत्र हैं।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी।।
शिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दशा चुप शारद साधी।।

भा०- प्रेमरूप क्षीरसागर के सारतत्त्व अमृत से सनी हुई-सी रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम की वाणी सम्पूर्ण सभा ने सुनी और प्रेम की समाधि में सम्पूर्ण सभा शिथिल हो गई। उसकी दशा देखकर निरन्तर बोलने वाली श्रीसरस्वती जी ने भी चुप रहने की साधना कर ली, अर्थात् मौन हो गईं।

भरतहिं भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू।।
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू।।

भा०- श्रीभरत को प्रभु के वचनों से परम संतोष हो गया। स्वामी श्रीराम के सम्मुख होते ही दुःख, दोष श्रीभरत से विमुख हुए अर्थात् दूर हो गये अथवा स्वामी श्रीराम, भरत जी के सम्मुख हो गये तथा दुःख और दोष उनसे विमुख हो गये। उनका मुख प्रसन्न हो गया, मन का कष्ट मिट गया, मानो गूँगे को वाणी अर्थात् सरस्वती जी का प्रसाद मिल गया।

कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी।।
नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को।।

भा०– फिर श्रीभरत ने प्रेमपूर्वक प्रभु को प्रणाम किया और कमल जैसे कोमल हाथों को जोड़कर बोले, हे नाथ! साथ जाने का सुख मुझे मिल गया और मैंने संसार में जन्म लेने का लाभ भी प्राप्त कर लिया।

अब कृपालु जस आयसु होई। करौं शीष धरि सादर सोई।।
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पार पावौं जेहि सेई।।

भा०– हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो मैं सिर पर धारण करके आदरपूर्वक वही करूँ। हे देव! मुझे वही अवलम्ब दीजिये जिसकी सेवा करके मैं अवधि का पार पा सकूँ अर्थात् अवधिरूप महासागर को पार करके जीवित रह कर चौदह वर्षों के पश्चात् फिर आपके दर्शन कर सकूँ।

दो०– देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुशासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहिं कहँ काह रजाइ।।३०७।।

भा०– हे देव! आपश्री देवाधिदेव श्री राघवेन्द्र सरकार के अभिषेक के लिए गुरुदेव की आज्ञा पाकर मैं सम्पूर्ण तीर्थों का जल यहाँ ले आया हूँ, उसके लिए क्या राजाज्ञा हो रही है?

एक मनोरथ बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं।।
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई।।

भा०– मेरे मन में एक बहुत–बड़ा मनोरथ है, परन्तु भय और संकोच के साथ होने से वह मुझ से कहा नहीं जा रहा है। "भैया! बताओ" इस प्रकार, श्रीराम की आज्ञा पाकर श्रीभरत स्नेह से सुहावनी वाणी बोले–

चित्रकूट शुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन।।
प्रभु पद अंकित अवनि बिशेषी। आयसु होइ त आवौं देखी।।

भा०– हे प्रभु! यदि आज्ञा हो तो श्रीचित्रकूट के पवित्र स्थलों, तीर्थों, वनों, पक्षियों, हरिणों, तालाबों, नदियों, झरनों और पर्वतसमूहों तथा प्रभु अर्थात् आप श्रीराम के श्रीचरणों से चिह्नित विशिष्ट भूमियों के दर्शन कर आऊँ।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू।।
मुनि प्रसाद बन मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता।।
ऋषिनायक जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जल थल तेहीं।।
सुनि प्रभु बचन भरत सुख पावा। मुनि पद कमल मुदित सिर नावा।।

भा०– भगवान् श्रीराम बोले, हे भैया! अवश्य देख आओ। महर्षि अत्रि जी की आज्ञा को शिरोधार्य करो और भय छोड़कर श्रीचित्रकूट वन में विचरण करो। हे मेरे प्रेमपात्र भैया भरत! अत्रि मुनि के प्रसाद से ही यह श्रीचित्रकूट वन सभी मंगलों को देनेवाला, अत्यन्त पवित्र और सुहावना है। ऋषियों के राजा अत्रि जी जहाँ आज्ञा दें, उसी स्थल पर सम्पूर्ण तीर्थों के जल को स्थापित कर दो। प्रभु श्रीराम के वचन को सुनकर श्रीभरत ने सुख पाया और प्रसन्न होकर अत्रि मुनि के श्रीचरणकमलों में सिर नवाया।

दो०– भरत राम संबाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल।।३०८।।

भा०– सम्पूर्ण श्रेष्ठ मंगलों के आश्रय और कारणस्वरूप भरत–राम संवाद सुनकर स्वार्थी देवता, रघुकुल की सराहना करते हुए कल्पवृक्ष के पुष्प बरसाने लगे।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरियाईं।।
मुनि मिथिलेश सभा सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू।।

भा०–श्रीभरत धन्य हैं और पृथ्वी के स्वामी भगवान् श्रीराम की जय हो! इस प्रकार कहते हुए देवगण, प्रभु श्रीराम के भरत वियोग से सम्भावित करुण प्रसंग में भी, रावण के भय का वातावरण होने पर भी, हठात् प्रसन्न हो रहे हैं। जबकि इनकी प्रसन्नता यहाँ की परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल नहीं है। श्रीभरत का वचन सुनकर मुनि वसिष्ठ जी, विश्वामित्र जी तथा मिथिलाधिराज श्रीजनक और सभा के सम्पूर्ण सदस्यों को उत्साह हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रशंसत राउ बिदेहू।।
सेवक स्वामि स्वभाव सुहावन। नेम प्रेम अति पावन पावन।।
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे।।

भा०– महाराज जनक जी पुलकित होकर श्रीभरत एवं भगवान् श्रीराम के गुण समूहों की तथा दोनों भाइयों के पारस्परिक प्रेम की प्रशंसा करने लगे। मिथिलाधिराज के मंत्री और उनके सभी सभासद अनुराग से पूर्ण होकर सेवक श्रीभरत और स्वामी श्रीराम के सुहावने स्वभाव की और श्रीभरत के अत्यन्त पवित्र नियम तथा सबको पवित्र करने वाले प्रेम की अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे।

सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहुँ समाज हिय हरष बिषादू।।
राम मातु दुख सुख सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी।।
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई।।

भा०– श्रीराम–भरत संवाद सुन–सुनकर दोनों समाज अर्थात् मिथिलावासियों एवं अवधवासियों के हृदय में हर्ष के साथ दुःख हो रहा है। हर्ष इस बात का कि समस्या का समाधान हो गया और अब चौदह वर्षपर्यन्त श्रीभरत जीवित रह लेंगे तथा दुःख इस बात का कि अब हम अतिशीघ्र चौदह वर्षों के लिए प्रभु से बिछड़ जायेंगे। श्रीराम की माता कौसल्या जी ने दुःख और सुख दोनों को समान जाना। उन्होंने श्रीराम के गुणों का वर्णन करके अवध राजघराने की सभी महिलाओं को समझाया। कोई रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के बड़प्पन की बात कह रहा है, अर्थात् प्रभु की ईश्वरता का वर्णन कर रहा है और एक लोग श्रीभरत की भलाई अर्थात् भलेपन की सराहना कर रहे हैं।

दो०– अत्रि कहेउ तब भरत सन, शैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप।।३०९।।

भा०– तब महर्षि अत्रि जी ने श्रीभरत से कहा, इसी श्रीचित्रकूट कामदपर्वत के समीप सुन्दर कुआँ है। वहीं पर पवित्र और अमृत के समान अनुपम सम्पूर्ण तीर्थों का जल स्थापित कर दिया जाये।

भरत अत्रि अनुशासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई।।
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू।।
पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा।।

भा०– श्रीभरत ने अत्रि जी की आज्ञा पाकर सभी तीर्थजल के पात्रों को चला दिया अर्थात् सेवकों द्वारा कूप के पास पहुँचवा दिया। महर्षि अत्रि जी, मुनि वसिष्ठ जी एवं अन्य साधुओं के सहित छोटे भाई शत्रुघ्न जी को साथ लेकर स्वयं श्रीभरत वहाँ गये, जहाँ अपार जलवाला कूप था। श्रीभरत ने उसी पुण्यमय स्थल पर पवित्र तीर्थजल को स्थापित कर दिया। प्रेम से प्रसन्न होकर अत्रि मुनि ने इस प्रकार कहा–

तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू।।
तब सेवकन सरस थल देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिशेषा।।
बिधि बश भयउ बिश्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू।।

भरतकूप अब कहिहैं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा।।
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहैं बिमल करम मन बानी।।

भा०- हे तात् भरत! यह स्थल अनादिकाल से सिद्ध है, परन्तु समय ने इसे छिपा दिया था, इसलिए यह बहुत दिनों तक किसी को भी ज्ञात नहीं हुआ। इसके पश्चात् हमारे सेवकों ने इस स्थल को सरस अर्थात् सुन्दर तथा सरस जल के स्रोतों से युक्त देखा, तो स्वादयुक्त जल के लिए यहाँ विशिष्ट कूप बना लिया। संयोगवश आज तो इससे विश्व का उपकार हो गया। अत्यन्त अगम धर्म का विचार आज इस कूप के कारण सुगम हो गया। पवित्र स्थल और तीर्थजल के संयोग से अब अर्थात् इस क्षण से लोग इसे भरतकूप कहेंगे। जिसका अर्थ है श्रीभरत द्वारा स्थापित सभी तीर्थों के जलों से भरा हुआ कूप अर्थात् कुआँ। प्रेम और नियम के साथ इस कूप में निष्ठापूर्वक स्नान करते ही प्राणी कर्म, मन और वाणी से निर्मल हो जायेंगे।

दो०- कहत कूप महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहिं, तीरथ पुन्य प्रभाउ।।३१०।।

भा०- सभी लोग भरतकूप की महिमा कहते हुए जहाँ श्रीरघुराज थे, वहाँ गये। अत्रि जी ने रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीराम को भरतकूप तीर्थ का पुण्य और प्रभाव सुनाया।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोर निशि सो सुख बीती।।
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुरु आयसु पाई।।
सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे।।

भा०- इस प्रकार प्रेमपूर्वक धर्मशास्त्र और इतिहास की चर्चा करते हुए प्रातःकाल हो गया। वह रात्रि बीत गई। संक्षेप में नित्य-क्रिया करके दोनों भाई श्रीभरत, और शत्रुघ्नजी, भगवान् श्रीराम, महर्षि अत्रि जी और गुरु वसिष्ठ जी का आदेश पाकर सम्पूर्ण समाज और सात्विक साज अर्थात् व्यवस्था के सहित, पैदल ही श्रीराम वन श्रीचित्रकूट के पर्यटन अर्थात् यात्रा के लिए चल दिये।

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं।।
कुश कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई।।
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे।।
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुलाहीं।।
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानीं। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी।।

भा०- श्रीभरत कोमल चरणों से बिना पनहीं के चल रहे हैं। मन ही मन संकुचित होकर पृथ्वी कोमल हो गई। कुश, काँटे, कंकड़ और घास से ढकी हुयी कोपली भूमि तथा कटु अर्थात् चुभने वाली बीछी आदि वन की घासें और कठोर बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने कोमल और सुन्दर मार्ग बना दिया। शीतल, मंद और सुगंध वायु तीनों प्रकार के सुखों को लिए बहने लगा। देवता पुष्प बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल और फल देकर, तृण कोमलता के द्वारा, हिरण अपने नेत्रों से निहारकर, पक्षी सुन्दर वाणी में बोलकर, इस प्रकार प्रकृति के सभी उपकरण, श्रीरामप्रिय जानकर श्रीभरत की सेवा करने लगे।

दो०- सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहुँ, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात।।३११।।

भा०- श्रीराम कहते-कहते जम्हाई लेने वाले साधारण लोगों को भी जब सम्पूर्ण सिद्धियाँ सुलभ हो जाती है, तो फिर श्रीराम के प्राणप्रिय श्रीभरत के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं हो रही है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं। नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं।।
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा।।
चारु बिचित्र पबित्र बिशेषी। बूझत भरत दिब्य सब देखी।।
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ।।

भा०– इस प्रकार श्रीभरत जी वन में भ्रमण कर रहे हैं। उनका नियम और प्रेम देखकर मुनि भी संकुचित हो उठते हैं। पवित्र जलाशय, भूमि के विशिष्ट भागों में वर्तमान पक्षी, पशु, वृक्ष, घास, सुन्दर बाग, पर्वत, वन, बगीचे इन सबको सुन्दर, पवित्र और विशेष प्रकार के विविध चित्रों से युक्त तथा सबको दिव्य देखकर श्रीभरत पूछते हैं। उनका प्रश्न सुनकर ऋषियों के राजा अत्रि जी उनके कारण, नाम, गुण, पुण्य एवं प्रभाव को कहते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।।
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई।।

भा०– श्रीभरत कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मन को आनन्दित करने वाले श्रीसीताराम जी के विहार स्थलों को देखते हैं। कहीं मुनि की आज्ञा पाकर बैठकर श्रीसीता के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण का स्मरण करते हैं।

देखि स्वभाव सनेह सुसेवा। देहिं अशीष मुदित बनदेवा।।
फिरहिं गए दिन पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहि आई।।

भा०– उनके स्वभाव, स्नेह, और सुन्दर सेवा को देखकर वन के देवता प्रसन्न होकर भरत जी को आशीर्वाद देते हैं। भरत जी अढ़ाई प्रहर दिन बीतने तक श्रीचित्रकूट का भ्रमण करते हैं, फिर आकर प्रभु के श्रीचरणकमलों के दर्शन करते हैं।

दो०– देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरि हर सुजस, गयउ दिवस भइ साँझ।।३१२।।

भा०– इस प्रकार श्रीभरत ने पाँच दिनों के भीतर सभी तीर्थ स्थानों को देखा। भगवान् श्रीराम एवं शिव जी अथवा "हरिं हरति इति हरिहरः" अर्थात हरि यानी नारायण को भी हर यानी मोहित करने वाले महाविष्णु श्रीराम का सुयश कहते–सुनते विश्राम का दिन बीता और सन्ध्या हो गई। लोगों ने सन्ध्यावन्दन एवं लघु आहार करके विश्राम किया।

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू।।
भल दिनु आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं।।

भा०– प्रातःकाल स्नान करके, श्रीभरत, ब्राह्मणगण और महाराज जनक जी इन सबके साथ सम्पूर्ण समाज इकट्ठा हुआ। आज अच्छा दिन है अर्थात् अब इन लोगों को श्रीअवध और श्रीमिथिला भेज देना चाहिये। ऐसा मन में जानकर कृपालु श्रीराम कहने में संकुचित हो रहे हैं।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी।।
शील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।।

भा०– श्रीराम ने पहले गुरुदेव, महाराज जनक जी और श्रीभरत के सहित सभा को देखा, फिर संकुचित होकर पृथ्वी को देखा। प्रभु के शील की सराहना करके सम्पूर्ण सभा सोचने लगी कि, श्रीराम के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिशेषी।।
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी।।

भा०– चतुर श्रीभरत, श्रीराम का रुख देखकर, प्रेमपूर्वक उठकर विशेष धैर्य धारण करके दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे, हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियों की रक्षा की है।

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू।।
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई।।

भा०– मेरे लिए सभी ने बहुत कष्ट सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। हे सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी श्रीराघव! अब मुझे राजाज्ञा दीजिये, जाकर अवधिपर्यन्त श्रीअवध की सेवा करूँ।

दो०– जेहिं उपाय पुनि पाँय जन, देखै दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल।।३१३।।

भा०– हे कोसल जनपद के पालक कृपालु श्रीरघुनाथ! जिस उपाय से यह दास आपश्री दीनदयालु श्रीरघुनाथ के श्रीचरणों का फिर दर्शन कर सके अवधि भर के लिए आप मुझे वही शिक्षा दीजिये।

पुरजन परिजन प्रजा गोंसाईं। सब शुचि सरस सनेह सगाई।।
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू।।
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की।।
प्रनतपाल पालिहि सब काहू। देव दुहुँ दिशि ओर निबाहू।।

भा०– हे गोसाईं अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा श्रीराम! आपके स्नेह और सम्बन्ध से सभी अवधपुरवासी, सभी परिवार के लोग एवं सम्पूर्ण प्रजा, पवित्र और सरस अर्थात् आनन्द से युक्त हैं। आपके लिए संसार के दुःख का ताप भी सभी को श्रेष्ठ लगता है और आपके बिना परमपद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। चतुरस्वामी आपश्री राघव सभी की रुचि, लालसा और रहन तथा मुझ सेवक की हृदय की बात जानकर प्रणतों के पालक आप सभी का लालन–पालन करेंगे और हे देव! इस प्रकार दोनों दिशाओं में अर्थात् हमारे और आपके पक्ष में ओर अर्थात् सम्बन्ध का निर्वाह हो जायेगा। तात्पर्यतः हम सबका आपके साथ पालक–पाल्यभाव सम्बन्ध होगा।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किए बिचार न सोच खरो सो।।
आरति मोरि नाथ कर छोहु। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहु।।
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइय अनुगामी।।
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रशंसी। छीर नीर बिबरन गति हंसी।।

भा०– इस प्रकार मुझे भी सब प्रकार से बहुत विश्वास है और विचार करने पर मुझे तिनके–सी भी चिन्ता नहीं है। मेरी आर्त्ति अर्थात् अभीष्ट लाभ की प्राप्ति की आतुरता और आपके छोहों अर्थात् ममतापूर्ण कृपा इन दोनों ने मुझको हठात् ढीठ अर्थात् धृष्ट कर दिया है। हे स्वामी! मेरे इस बहुत–बड़े दोष को दूर करके मुझ अनुगामी को संकोच छोड़कर शिक्षा दीजिये। क्षीर–नीर अर्थात दूध और जल का विश्लेषण करने वाली हंसिनी की दशा से सम्पन्न श्रीभरत की विनती सुनकर सभी ने उनकी प्रशंसा की।

दो०– दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन।
देश काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन।।३१४।।

भा०– दीनों के बन्धु, चतुर श्रीराम अपने भाई, श्रीभरत की छल से रहित और दैन्य से पूर्ण वचन सुनकर, देश, समय और अवसर के अनुकूल वचन बोले–

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरुहि नृपहिं घर बन की।।
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेशू। हमहिं तुमहिं सपनेहुँ न कलेशू।।

भा०– हे तात्! तुम्हारी, मेरी और परिजनों की तथा श्रीअयोध्या एवं श्रीचित्रकूट वन की, गुरुदेव वसिष्ठ जी को और महाराज जनक जी को चिन्ता है। हमारे सिर पर गुरु वसिष्ठ जी एवं विश्वामित्र जी आदि मुनि तथा श्रीजनक विराजमान हैं। हमें और तुम्हें तो स्वप्न में भी कोई क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ।।
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई।।

भा०– मेरा और तुम्हारा यही पूजनीय पुरुषार्थ है, यही स्वार्थ, यही सुन्दर यश और यही धर्म तथा यही मोक्ष का साधन है कि, हम दोनों भाई राम और भरत पिताश्री की आज्ञा का पालन करें, क्योंकि राजा की भलाई से ही लोक और वेद में भला होता है।

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले।।
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई।।

भा०– गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से बुरे मार्ग चलने पर भी चरण नीचे अर्थात् गड्ढे में नहीं पड़ते। ऐसा विचार करके सभी चिन्ताओं को छोड़कर चौदह वर्ष वनवास की अवधिपर्यन्त श्रीअवध का पालन करो।

देश कोश पुरजन परिवारू। गुरु पद रजहिं लाग छरभारू।।
तुम मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।

भा०– अवध देश, राजकोष, अवधवासियों तथा रघु परिवार का सम्पूर्ण भार गुरुदेव की श्रीचरण धूलि पर ही लगा हुआ है अर्थात् निर्भर है, आधारित है और आश्रित है, फिर तुम गुरुदेव, माताश्री एवं मंत्रियों की शिक्षा मानकर, पृथ्वी, प्रजा एवं राजधानी का पालन करना।

दो०– मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक।।३१५।।

भा०– गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि, भगवान् श्रीराम जी ने कहा कि, हे भरत! मुखिया अर्थात् किसी समुदाय के प्रमुख (स्वामी) को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने–पीने के लिए तो अकेला होता है, परन्तु विवेक के साथ वह सम्पूर्ण अंगों का पालन–पोषण करता है अर्थात् शरीर में प्रायशः सभी अंग दो–दो होते हैं, केवल मुख एक होता है, जो संग्रह करता है थोड़ा और परिग्रह करता है अधिक।

राजधरम सरबस एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई।।
बंधु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न साँती।।

भा०– राजधर्म सर्वस्व इतना ही है, जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है अर्थात् गोपनीयता ही राजधर्म का सर्वस्व है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने छोटे भाई श्रीभरत को बहुत प्रकार से प्रबोध किया अर्थात् उन्हें बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु श्रीभरत को किसी आधार के बिना मन में न तो संतोष हो रहा था और न ही शान्ति मिल रही थी।

भरत शील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबश रघुराजू।।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत शीष धरि लीन्ही।।

भा०– एक ओर श्रीभरत का शील अर्थात् स्वभाव है और दूसरी ओर गुरुजन और मंत्रियों का समाज है। अतः जीवमात्र को प्रकाशित करने वाले रघुराज श्रीराम संकोच और स्नेह के विवश हो गये अर्थात् श्रीराम, भरत जी

के स्नेह के विवश होकर उन्हें अपनी चरण पादुका देना चाहते हैं, किन्तु उन्हें गुरुजन अर्थात् वसिष्ठजी, विश्वामित्र जी तथा गुरुतुल्य सभी माताओं एवं मंत्री समाज का संकोच होता है कि, इनके सामने स्वयं को कैसे पूज्य के रूप में प्रस्तुत करूँ? कैसे भरत से पादुका पूजवाऊँ? कैसे ऐश्वर्य प्रकट करूँ? अन्ततोगत्वा श्रीभरत के स्नेह की जीत हुई और प्रभु श्रीराम ने श्रीभरत तथा प्राणिमात्र पर कृपा करके, श्रीभरत को अपनी पादुका दे दी। अथवा, कृपाशक्ति ने ही प्रभु श्रीराम को पादुका बनाकर अर्थात् श्रीसीताराम जी को दो पादुका के रूप में अवतीर्ण करके श्रीभरत को दे दी और श्रीभरत ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया अर्थात् स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए मेरे द्वारा लिखित "**प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं**" नामक पुस्तक देखिये।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के।।
कुल कपाट कर कुशल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के।।
भरत मुदित अवलंब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे ते।।

भा०- करुणा के कोश श्रीराम के दोनों चरणपीठ (पादुका युगल) मानो श्रीअवध की प्रजा के प्राणों के लिए (प्राण रक्षा के लिए) जामिक अर्थात् दो प्रहरी बन गये। वे श्रीभरत के स्नेहरूप रत्न को सुरक्षित करने के लिए सम्पुट अर्थात् दो पल्ली वाले डिब्बे बन गये, मानो वे दोनों चरणपीठ जीव के जप रूप यत्न के लिए, श्रीरामनाम के दो अक्षर "रकार" और "मकार" ही थे। वे रघुकुल के कपाट अर्थात् किवाड़ के दो पल्ले और कुशल कर्म को सम्पादित करने के लिए दो सुन्दर हाथ तथा सेवारूप सुधर्म के मार्गदर्शन के लिए, दो निर्मल ज्ञान, वैराग्यरूप नेत्र ही बन गये। श्रीभरत यह अवलम्ब प्राप्त करने से बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें वही सुख मिला जो श्रीसीताराम जी के रहने से अर्थात् उनकी उपस्थिति में होता।

दो०- माँगेउ बिदा प्रनाम करि, राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ।।३१६।।

भा०- श्रीभरत ने प्रणाम करके श्रीअवध चलने के लिए विदा माँगी। श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। कुटिल और दुष्ट देवराज इन्द्र ने प्रतिकूल अवसर पाकर लोगों को उच्चाटित कर दिया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की।।
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा।।

भा०- इन्द्र की वह कुचाल सबके लिए अच्छी हो गई, वह अवधि की आशा के समान और जीव के लिए संजीवनी के समान हुई नहीं तो श्रीलक्ष्मण, श्रीसीता एवं भगवान् श्रीराम के वियोगरूप कुरोग से भयभीत होकर सभी लोग मर गये होते।

रामकृपा अवरेव सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।।
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रस कहि न परत सो।।

भा०- भगवान् श्रीराम जी की कृपा ने सभी अवरेव अर्थात् अड़चनें, उपद्रव तथा विघ्नों को सुधार दिया। देवताओं की सेना जो लूट-पाट करने आई थी, वही गुण देने वाली गुहार अर्थात् रक्षक बनी। श्रीभरत जैसे भ्राता को भगवान् श्रीराम बाँहों में भर कर भेंट रहे हैं। वह श्रीराम प्रेमरस अर्थात् प्रभु प्रेम का सार नहीं कहा जा सकता।

विशेष-संकट में चिल्लाते हुए लोगों को बचाने के लिए जो लोग आते हैं, उन्हीं को अवधी में गोहारी कहा जाता है।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरज त्यागा।।
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दशा सुर सभा दुखारी।।

भा०- प्रभु के शरीर, मन और वचन से प्रेम फूट-फूटकर उमड़ रहा है। धीरों की धुरी को धारण करने वाले प्रभु ने अपना धैर्य छोड़ दिया। प्रभु श्रीराम कमल जैसे नेत्रों से अश्रुपात कर रहे हैं। उनकी दशा देखकर देवता तथा श्रीचित्रकूट की चतुर्थ सभा के सभासद दुःखी हो गये।

मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से।।
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए।।
दो०- तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार।।३१७।।

भा०- जिन्होंने ज्ञान की अग्नि में मन को स्वर्ण की भाँति कसा अर्थात् तपाया है ऐसे धैर्य की धुरी स्वरूप मुनियों के समूह, गुरुदेव वसिष्ठ जी और जनक जी जैसे लोग, जिन्हें ब्रह्मा जी ने निर्लेप ही उत्पन्न किया और जो संसाररूप जल के कमल के पत्र की भाँति निर्लेप जन्मे, वे लोग भी श्रीराम और श्रीभरत की उपमा रहित अपार प्रीति देखकर, विवेक और विचार के साथ तन, मन और वचन से मग्न हो गये।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी।।
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहिं लोगू।।
सो सकोच रस अकथ सुबानी। समय सनेह सुमिरि सकुचानी।।
भेंटि भरत रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदमन हरषि हिय लाए।।

भा०- जहाँ जनक जी एवं गुरुदेव वसिष्ठ जी की दशा और बुद्धि भोली हो गई हो तो फिर प्राकृत लोगों के प्रेम का कहना तो बहुत-बड़ा दोष होगा। भगवान् श्रीराम और श्रीभरत के वियोग का वर्णन सुनकर लोग मुझे कठोर कवि जानेंगे। वह संकोच और अकथनीय करुणरस तथा उस समय का स्नेह स्मरण करके मेरी सुन्दर वाणी संकुचित हो रही है। श्रीभरत को गले मिलकर श्रीराम ने बहुत समझाया, फिर रोमांचित होकर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई।।
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा।।

भा०- श्रीभरत का संकेत पाकर सभी सेवक और मंत्रीगण अपने-अपने कार्य में लग गये। चलना सुनकर दोनों समाज को असहनीय दुःख हुआ और सब लोग चलने का साज सजाने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले शीष धरि राम रजाई।।
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी।।
दो०- लखनहिं भेंटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम अशीष सुनि, सकल सुमंगल मूरि।।३१८।।

भा०- दोनों भाई श्रीभरत एवं शत्रुघ्नजी, प्रभु श्रीराम के श्रीचरणकमलों का वन्दन करके सिर पर श्रीराम की राजाज्ञा रूप पादुका धारण करके चल पड़े। मुनियों, तपस्वियों, और वनदेवताओं से कृतज्ञता के साथ अनुनय-

विनय करके और सभी को बारम्बार सम्मानित करके लक्ष्मण जी को मिलकर तथा प्रणाम करके और श्रीसीता के श्रीचरणकमल की धूलि सिर पर धारण करके सम्पूर्ण सुमंगलों की मूलिका अर्थात् कारण रूप संजीवनी बूटी के समान श्रीसीता का दिव्य आशीर्वाद सुनकर प्रेमपूर्वक चल पड़े।

सानुज राम नृपहिं सिर नाई। कीन्ह बहुत बिधि बिनय बड़ाई।।
देव दया बश बड़ दुख पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ।।
पुर पगु धारिय देइ अशीशा। कीन्ह धीर धरि गवन महीशा।।
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने।।
सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आशिष पाई।।

भा०– श्रीलक्ष्मण के साथ भगवान् श्रीराम ने महाराज श्रीजनक को मस्तक नवाकर बहुत प्रकार से प्रार्थना और प्रशंसा की। हे देव! आपने दया के वश होकर बहुत दुःख पाया। आप समाज के सहित वन में आये, अब आशीर्वाद देकर श्रीमिथिलापुर पधार जाइये। योगीराज श्रीजनक ने धैर्य धारण कर श्रीमिथिलापुर के लिए प्रस्थान किया। श्रीमिथिला से आये याज्ञवल्क्य जी, अष्टावक्र जी आदि मुनियों, शतानन्द जी आदि ब्राह्मणों और साधुओं का भी भगवान् श्रीराम ने सम्मान किया और उन्हें भगवान् विष्णु जी और शिव जी के समान जाना तथा पूज्यभाव से विदा किया। दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण सासु सुनयना जी के पास गये और उनके चरणों की वन्दना करके उनका आशीर्वाद पाकर लौटे।

कौशिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली।।
जथा जोग करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा।।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे।।

भा०– कुशिक के पुत्र विश्वामित्रजी, वामदेवजी, जाबालि जी, अवधपुरवासी परिवार के लोग तथा अच्छे मार्ग पर चलने वाले मंत्री, सभी को यथायोग्य प्रार्थना और प्रणाम करके छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित श्रीरामचन्द्र ने सबको विदा किया। कृपा के सागर श्रीरामचन्द्र ने स्त्रियों (महिलाओं), छोटे बालकों, मध्यावस्था के युवकों और सभी वृद्धों को सम्मानित करके लौटा दिया।

दो०– भरत मातु पद बंदि प्रभु, शुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि।।३१९।।

भा०– प्रभु श्रीराम ने पवित्र प्रेम के साथ श्रीभरत की माता कैकेयी जी के चरणों का वन्दन करके, उनसे गले मिलकर, उनके संकोच और शोक को मिटा कर, सजी हुई पालकी पर बिठाकर उन्हें विदा किया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता।।
करि प्रनाम भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि मन न हुलासू।।

भा०– प्राण प्रिय श्रीराम के प्रेम से पवित्र श्रीसीता अपने पीहर के परिवार तथा माता–पिता से मिलकर लौटीं। प्रणाम करके श्रीसीता सभी सासुओं को गले मिलीं। उस समय की प्रीति का वर्णन करने में कवि के हृदय में उल्लास नहीं हो रहा है अर्थात् उस करुणा की अभिव्यक्ति करते नहीं बन रहा है।

सुनि सिख अभिमत आशिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई।।
रघुपति पटु पालकीं मगाई। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई।।
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई।।

भा०– शिक्षा सुनकर, मनचाहा आशीर्वाद पाकर श्रीसीता दोनों ओर के प्रेम में मानो समा गईं। भगवान् श्रीराम ने सुन्दर पालकियाँ मँगाई और समझा–बुझाकर सभी माताओं को पालकियों पर चढ़ाया। रघुकुल के राजा श्रीराम ने बार–बार हिल–मिलकर समान स्नेह के साथ सभी माताओं को पहुँचाया अर्थात् अयोध्या भेजा।

साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना।।
हृदय राम सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता।।
बसह बाजि गज पशु हिय हारे। चले जाहिं परबश मन मारे।।

भा०– घोड़े, हाथी और अनेक वाहनों को सजाकर श्रीभरत और श्रीजनक की सेना ने प्रस्थान किया। हृदय में श्रीलक्ष्मण के सहित श्रीराम एवं सीता जी को विराजमान करके अचेत हुए सभी लोग श्रीचित्रकूट से चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु भी हृदय में हार कर अपने मन को मारे हुए पराधीन होकर चले जा रहे हैं।

दो०– गुरु गुरुतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आए परन निकेत।।३२०।।

भा०– प्रभु श्रीराम, सीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ गुरुदेव और गुरुपत्नी अरुन्धति जी के चरणों का वन्दन करके, धर्मसंकट के टलने से हर्ष और प्रियजनों के बिछुड़ने से विषाद के सहित लौटे और अपने पत्तों के बने हुए भवन में आ गये।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू।।
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने सम्मान करके निषादराज गुह को विदा किया और वे भी हृदय में विरह से उत्पन्न बहुत–बड़े दु:ख के साथ चले। कोल, किरात, भील आदि वनवासियों को अयोध्यावासियों ने लौटाया और वे भी बार–बार प्रणाम करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं।।
भरत सनेह सुभाव सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी।।
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेमबश बरनी।।

भा०– प्रभु श्रीराम, भगवती श्रीसीता जी एवं श्रीलक्ष्मण जी वट की छाया में बैठकर अपने प्रिय परिजनों के वियोग में बिलख रहे हैं, अर्थात् दु:खी हो रहे हैं। प्रभु श्रीराम, श्रीभरत जी के स्नेह, स्वभाव और सुन्दर वाणी को प्रिया भगवती और छोटे भाई श्रीलक्ष्मण जी के समक्ष बखान कर कह रहे हैं। वचन, मन और कर्म से श्रीभरत जी की प्रीति और उनके विश्वास को प्रेमवश होकर श्रीमुख श्रीराम जी ने बार–बार वर्णन किया।

तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना।।
बिबुध बिलोकि दशा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की।।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो।।

भा०– उस समय पक्षी, हिरण, जल के मछली और श्रीचित्रकूट के चेतन और जड़ सभी लोग, अवध–मिथिलावासियों के वियोग से मलिन अर्थात् दु:खी थे। देवगण भगवान् श्रीराम की दशा देखकर पुष्प–वर्षा करके उनसे प्रत्येक देवता के घर की गति अर्थात् दशा का वर्णन किये। तात्पर्यत: प्रत्येक देवता को रावण ने जो कष्ट दिया था, सब कह सुनाया। प्रभु ने प्रणाम करके उन्हें भरोसा दिया कि, शीघ्र ही रावण वध करके वे देवताओं की समस्या का समाधान कर देंगे। देवता प्रसन्न मन से स्वर्गलोक को चले, उन्हें अब तिनका भर भी डर नहीं है।

दो०- सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यान बैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर।।३२१।।

भा०- छोटे भाई श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीता के सहित प्रभु श्रीराम पर्णकुटी में विराज रहे हैं, जैसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ही शरीर धारण करके सुशोभित हो रहे हों।

विशेष- यहाँ श्रीसीता भक्ति की, श्रीराम ज्ञान के और लक्ष्मण जी वैराग्य के उपमेय हैं।

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम बिरह सब साज बिहालू।।
प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं।।

भा०- मुनि विश्वामित्रजी, याज्ञवल्क्य जी आदि, ब्राह्मण शतानन्द जी आदि, गुरुदेव वसिष्ठजी, शत्रुघ्न जी के सहित श्रीभरत और योगीराज श्रीजनक का समाज श्रीराम के विरह में अत्यन्त दु:खी है। मन में प्रभु श्रीराम के गुणसमूहों का चिन्तन करते हुए सभी लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहें हैं।

जमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ।।
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू।।

भा०- यमुना जी उतर कर सब लोग पार हुए, वह दिन बिना भोजन के ही गया। गंगा तट पर उतर कर दूसरा विश्राम हुआ। वहाँ श्रीराम के सखा निषादराज ने सब सुविधा कर दी।

सई उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए।।
जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी।।

भा०- सई, अर्थात् स्यंदिका नदी को पार करके सब ने गोमती जी में स्नान किया और चौथे दिन श्रीअयोध्या आ गये। श्रीजनक श्रीअयोध्या में चार दिन रहे वहाँ राजकार्य और सभी व्यवस्थाओं को सम्भाला।

सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू।।
नगर नारि नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी।।

भा०- मंत्री, गुरु और भरत जी को राज्य सौंपकर, अपना सम्पूर्ण साज सजाकर जनक जी मिथिला चले गये। श्रीअवध के नर–नारी (स्त्री–पुरुष), गुरुदेव की शिक्षा मानकर सुखपूर्वक श्रीराम की राजधानी श्रीअयोध्या में निवास किये।

दो०- राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जियत अवधि की आस।।३२२।।

भा०- सभी लोग श्रीराम के दर्शनों के लिए आभूषण, भोग और सुखों को छोड़–छोड़कर नियम और उपवास कर रहे हैं और अवधि की इसी आशा में जी रहे हैं कि, चौदह वर्षो के पश्चात् श्रीराम जी अयोध्या अवश्य पधारेंगे।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे।।
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई।।

भा०- श्रीभरत ने मंत्रियों और सुन्दर सेवकों को समझाया, वे श्रीभरत की शिक्षा पाकर अपने–अपने कार्य में ओधे अर्थात् लग गये। फिर श्रीभरत ने छोटे भ्राता शत्रुघ्न जी को बुलाकर शिक्षा दी और उन्हें सभी सात सौ माताओं की सेवा सौंप दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बर बिनय निहोरे।।
ऊँच नीच कारज भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू।।
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधान करि सुबस बसाए।।

भा०- ब्राह्मणों को बुलाकर श्रीभरत ने हाथ जोड़ प्रणाम और श्रेष्ठ प्रार्थना करके उनसे अनुनय-विनय किया और बोले, हे प्रभु! ऊँचा-नीचा, बड़ा-छोटा जो भी कार्य हो आप आज्ञा देंगे संकोच नहीं करेंगे। पुरजनों तथा राजघरानों के लोगों और प्रजा को बुलाया सबकी समस्याओं का समाधान करके उन्हें सुन्दर निवास और सुख सुविधा देकर अवध में फिर बसाया।

सानुज गे गुरु गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी।।
आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा।।
समुझब कहब करब तुम जोई। धरम सार जग होइहि सोई।।

भा०- फिर श्रीभरत, छोटे भाई शत्रुघ्न जी के साथ गुरुदेव वसिष्ठ जी के घर गये। उन्हें दण्डवत करके हाथ जोड़कर कहने लगे, यदि आपश्री की आज्ञा हो तो चौदह वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक रह लूँ। मुनि वसिष्ठ जी शरीर में रोमांचित होकर प्रेमपूर्वक बोले, हे भरत! तुम जो समझोगे, जो कहोगे और जो करोगे वह संसार के लिए धर्म का सारतत्त्व हो जायेगा।

दो०- सुनि सिख पाइ अशीष बड़ि, गनक बोलि दिन साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि।।३२३।।

भा०- गुरुदेव की शिक्षा सुनकर बहुत-बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ दिन का शोधन करके श्रीभरत ने किसी प्रकार के विघ्न के बिना अर्थात् कैकेयी माता की भी सम्मति से अवधराज के सिंहासन पर प्रभु श्रीराम की पादुकाओं को विराजमान कराया।

राम मातु गुरु पद सिर नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।।
नंदिग्राम करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा।।

भा०- श्रीराम की माता कौसल्या जी और गुरुदेव को सिर नवाकर प्रभु श्रीराम की चरणपादुका की राजाज्ञा पाकर धर्म की धुरी को धारण करने में स्थिर अर्थात् तत्पर श्रीभरत ने पर्णकुटी बनाकर नंदिग्राम में निवास किया।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुश साथरी सँवारी।।
अशन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन ऋषि धरम सप्रेमा।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तृन तूरी।।
अवध राज सुरराज सिहाई। दशरथ धन सुनि धनद लजाई।।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।

भा०- सिर पर जटाजूट और मुनिवस्त्र धारण करके, पृथ्वी को खोदकर गुफा बनाकर, वहाँ कुश की चटाई बिछाकर, भोजन, वस्त्र और पात्र, व्रत, नियम में प्रेमपूर्वक कठिन ऋषिधर्म का पालन करने लगे अर्थात् भोजन में कन्द, मूल, वस्त्र में वल्कल, पात्र में मिट्टी के पात्र और लौकी से निर्मित कमण्डलु, व्रत में चन्द्रायण आदि, नियम में तप, संतोष, शौच, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का आचरण करते हुए प्रेमपूर्वक राजर्षि-धर्म का पालन करने लगे। श्रीभरत ने मन, वाणी और शरीर से तिनके की भाँति सम्बन्ध तोड़कर आभूषण, वस्त्र और

भोग तथा बहुत से राजकीय सुखों को छोड़ दिया। श्रीअवध के राज्य को इन्द्र ईर्ष्या के साथ सिहाते हैं अर्थात् ईर्ष्या के साथ उसकी प्रशंसा करते हैं। दशरथ जी का धन सुनकर कुबेर लज्जित हो उठते हैं। उसी अवधपुर में श्रीभरत बिना लगाव के उसी प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पा के बगीचे में भ्रमर उसका रस लिए बिना ही रह लेता है। श्रीराम के अनुरागी भाग्यशाली भगवत्भक्त श्रीवैष्णव, लक्ष्मी का विलास अर्थात् संसार का भौतिक सुख वमन की भाँति छोड़ देते हैं।

दो०- राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक बिबेक बिभूति।।३२४।।

भा०- श्रीभरत तो श्रीराम के प्रेम के पात्र ही हैं वे इस भोगैश्वर्य त्यागरूप कृत्य से बड़े नहीं हुए। वह उनका स्वभाव है, जैसे चातक और हंस को टेक और विवेक की विभूति के कारण सराहा जाता है अर्थात् पृथ्वी का जल न पीने की टेक से चातक और नीर–क्षीर विवेक की शक्ति से हंस की सराहना की जाती है। यदि ऐसा न हो तो उसे क्यों सराहा जायेगा? टेक चातक का स्वरूप है और विवेक हंस का, उसी प्रकार त्याग श्रीभरत का स्वरूप है। अतः इनकी स्वभावतः प्रशंसा होती ही है और होगी ही। यदि टेक और विवेक के कारण चातक और हंस जैसे पक्षियों की सराहना हो सकती है, तो क्या स्वयं भगवत् प्रेममूर्ति श्रीभरत की सराहना नहीं होनी चाहिये?

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटन तेज बल मुख छबि सोई।।
नित नव राम प्रेम पन पीना। बढ़त धरम दल मन न मलीना।।

भा०- दिनो दिन श्रीभरत का शरीर दुर्बल हो रहा है, उनका तेज और बल नहीं घट रहा है, मुख की छवि उसी प्रकार की बनी हुई है। प्रतिज्ञा से दृढ़ होते हुए श्रीराम प्रेम निरन्तर नया होता जा रहा है। उनके धर्म का दल बढ़ रहा है अर्थात् श्रीभरत के धार्मिक विचारों में वृद्धि हो रही है। उनका मन उदास नहीं हो रहा है।

जिमि जल निघटत शरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे।।
शम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा।।

भा०- जिस प्रकार शरदऋतु के प्रकाश में जल घटता है, बेंत वृक्ष सुशोभित होते हैं और कमल विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भरत जी के शरीर का मेद्यांश घट रहा है और तेज, बलरूप बेतस वृक्ष सुशोभित हो रहा है तथा मुख, कमल के समान विकसित हो रहा है। भरत जी के हृदयरूप निर्मल आकाश में शम, दम, संयम, नियम और उपवास, नक्षत्र मण्डल के समान चमक रहे हैं।

ध्रुव बिश्वास अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी।।
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा।।

भा०- प्रभु श्रीराम के प्रति भरत जी का विश्वास ही ध्रुवतारा है। चौदह वर्ष की अवधि राका अर्थात् शारदीय पूर्णिमा के समान है। स्वामी श्रीराम की स्मृति सुरवीथि अर्थात् देवताओं का नक्षत्र मार्ग आकाशगंगा के समान सुशोभित हो रही है। श्रीराम जी का निष्कलंक, निर्दोष प्रेम ही शरद्पूर्णिमा का कलंक रहित निर्दोष चन्द्रमा है, जो श्रीभरत के हृदयरूप शरद्कालीन निर्मल आकाश में निरन्तर नक्षत्र–समाज के सहित सुन्दर रूप में सुशोभित हो रहा है।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती।।
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। शेष गणेश गिरा गम नाहीं।।

भा०- श्रीभरत की रहन (रहने की पद्धति), उनकी समझन (श्रीरामविषयक ज्ञान), उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनके गुणों की निर्मल सम्पत्ति इन सबका वर्णन करते हुए सभी श्रेष्ठकवि संकुचित हो रहे हैं। वहाँ शेष जी, गणेश जी एवं सरस्वती जी का भी प्रवेश नहीं है।

दो०- नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति।।३२५।।

भा०- श्रीभरत निरन्तर प्रभु श्रीराम की चरणपादुका जी का पूजन करते हैं। उनके हृदय में भगवान् की प्रीति नहीं समाती। वे पादुका जी से आदेश माँग–माँगकर अनेक प्रकार से राजकीय कार्य करते हैं।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।
लखन राम सिय कानन बसही। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं।।
दोउ दिशि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू।।
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दशा मुनिराज लजाहीं।।

भा०- श्रीभरत के अंग पुलकित हैं, श्रीभरत के हृदय में श्रीसीताराम जी विराज रहे हैं। श्रीभरत जीभ से श्रीसीताराम जी का श्रीरामनाम जप रहे हैं। उनके नेत्रों में प्रेम का जल है। श्रीलक्ष्मण, श्रीराम एवं भगवती श्रीसीता वन में निवास करते हैं, परन्तु श्रीभरत भवन में निवास करके भी शरीर को तप से कसते हैं। दोनों दिशाओं अर्थात् श्रीभरत एवं श्रीराम के पक्षों को समझकर सभी लोग कहते हैं कि, श्रीभरत सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य हैं। उनके व्रत और नियम सुनकर साधु अर्थात् साधक लोग सकुचा जाते हैं। श्रीभरत की दशा देखकर श्रेष्ठ मुनि लज्जित हो जाते हैं।

विशेष- इसके विशेष विवेचन के लिए मेरे द्वारा लिखित ''**भरत महिमा**'' नामक पुस्तक को अवश्य देखिये।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू।।
हरन कठिन कलि कलुष कलेशू। महामोह निशि दलन दिनेशू।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। शमन सकल संताप समाजू।।
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू।।

भा०- श्रीभरत का परमपवित्र आचरण बड़ा ही मधुर, सुन्दर और प्रसन्नताओं और मंगलों को उत्पन्न करने वाला है। सम्पूर्ण कलियुग के पाप और क्लेशों को हरनेवाला तथा महामोह रात्रि को नष्ट करने के लिए यह सूर्य के समान है। पाप पुंज रूप हाथियों के लिए श्रीभरत का आचरण सिंह के समान है। यह सम्पूर्ण संताप, अर्थात् दुःखों के समाज को नष्ट कर देता है। श्रीभरत का आचरण भगवान् के भक्तों को प्रसन्न करता है, संसार के भार को नष्ट कर देता है और श्रीभरत का आचरण श्रीराम के स्नेहरूप चन्द्रमा का सारसर्वस्व अमृत है।

छं०: सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम शम दम बिषम ब्रत आचरत को।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से शठनि हठि राम सनमुख करत को।।

भा०- श्रीसीताराम जी के प्रेमामृत से पूर्ण श्रीभरत का जन्म यदि नहीं हुआ होता तो मुनियों के मन के लिए अगम, यम, नियम, शम, दम और कठोर व्रतों का आचरण कौन करता और अपने सुन्दर यश के बहाने दुःख और तीनों प्रकार के ताप, दरिद्रता, दम्भ और दोषों को अपहरण कौन करता? इस कलिकाल में तुलसीदास जैसे शठों को उनके न चाहते हुए भी हठपूर्वक श्रीराम के सम्मुख कौन करता?

विशेष– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहे जाते हैं। तप, संतोष, शौच, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। मन को असत्य संकल्पों से हटाना शम है, इन्द्रियों को बाहरी विषयों से बलपूर्वक मोड़ना दम है। यहाँ इस अकिंचन दास का भी एक निवेदन है–

आते जो न भरत भद्र भारत वसुंधरा पै,
जन जन में राम प्रेम सागर लहराता कौन?
कौन सरसाता शुष्क मानस मरुस्थल को,
विरति विवेक वरवारि बरसाता कौन?
कौन हरसाता कोटि कोटि राम भक्तन को,
सीता राम भक्ति भागीरथी भू पे लाता कौन?
रामभद्राचार्य जैसे कोटि क्रूर पामरों को,
मानस मंदाकिनी में मुदित नहलाता कौन?

सो०- भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस बिरति।।३२६।।

भा०– गोस्वामी तुलसीदास जी अयोध्याकाण्ड की फलश्रुति में कहते हैं कि, जो लोग नियम करके आदरपूर्वक श्रीभरत के चरित्र सुनते हैं और सुनेंगे उनके हृदय में श्रीसीताराम जी के चरणों के प्रति प्रेम हो जाता है और हो जायेगा। अवश्य ही उन्हें संसार के आनन्द से वैराग्य हो जाता है और होता रहेगा।

* मासपारायण, बीसवाँ विश्राम *

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्राचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विषादशमनं नाम द्वितीयं सोपानं अयोध्याकाण्डं सम्पूर्णम्

।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

भा०– इस प्रकार सम्पूर्ण कलिकलुष के नाशक श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस में विषादशमन नामक द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्ड सम्पन्न हुआ। यह श्री सीताराम जी को समर्पित हो।

श्रीरामभद्राचार्येण कृता भावार्थबोधिनी मानसस्य द्वितीयोऽस्मिन् सोपाने राष्ट्रभाषया।

।।श्री राघवःशन्तनोतु।।
अयोध्याकाण्ड समाप्त

।।श्री सीताराम।।

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामौ विजयेते

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

तृतीय सोपान

अरण्यकाण्ड

मंगलाचरण

श्रीः

भावार्थबोधिनी टीका

वसन्नरण्येऽप्यनरण्यवंश्योः,
जगच्छरेण्योऽपि शरण्यशोभी।
श्रीराघवः शं सहलक्ष्मणो मे
सीताभिरामः प्रकरोतु रामः।।
नत्वा श्रीतुलसीदासमरण्ये काण्डउच्यते,
श्रीरामभद्राचार्येण टीका भावार्थबोधिनी।।

श्रीगणपति को नमस्कार। श्रीसीताराम की जय हो। गोस्वामी श्री तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्ड का श्लोक मंगलाचरण।

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्।।१।।

भा०– धर्मरूप वृक्ष के मूल अर्थात् कारण एवं आश्रय, विवेकरूप सागर को आनन्द देनेवाले पूर्ण चन्द्रमा, वैराग्यरूप कमल को विकसित करने के लिए सूर्य, निश्चित रूप से घने अन्धकार को नष्ट कर देनेवाले, भक्तों के आधिदैहिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापों को समाप्त करनेवाले, मोहरूप बादलों के समूह के विनाशविधि में अर्थात् विनाशविधि के निमित्त आकाश में उत्पन्न होनेवाले वायुरूप, ब्राह्मण ही जिनके कुटुम्ब हैं, ऐसे जगत कलंक को नष्ट करनेवाले श्रीराम राजा के प्रिय तथा जिन्हें श्रीराम राजा प्रिय हैं, ऐसे कल्याणकारी भगवान् शङ्कर जी का मैं तुलसीदास वन्दन करता हूँ।

विशेष : संस्कृत न जानने के कारण जनसाधारण इस श्लोक में भूल कर बैठता है। यहाँ तक कि प्रायशः मानस के टीकाकार भी भूलकर बैठे हैं, कुछ लोग "ब्रह्मकुलंकलङ्कशमनं" को एक पद मानकर अर्थ करते हैं कि शिव जी ब्रह्मा जी के कुल के कलङ्कों के नाशक हैं, जबकि सामान्य व्यक्ति भी इस वाक्यखण्ड में दो पक्षों का निश्चय कर लेता है। यदि ब्रह्मकुल शब्द का कलङ्कशमन शब्द से षष्ठी तत्पुरुष समास होता और राजपुरुष की भाँति कुलशब्द में कोई विभक्ति नहीं लगी होती तब पूर्वोक्त अर्थ उचित होता। जब कि ब्रह्मकुलं शब्द में स्पष्ट द्वितीया विभक्ति दीख रही है, और यह शब्द कलङ्कशमनं शब्द से जुड़ा भी नहीं है। स्वर्गीय विजयानन्द त्रिपाठी जी ने

ब्रह्मकुलं शब्द को स्वतंत्र पद तो माना, परन्तु उसमें षष्ठी तत्पुरुष मानकर उसको विशेष्य मान लिया और इस श्लोक को ब्राह्मण कुल की वन्दना मान ली। यहाँ तक कि 'शङ्कर' शब्द को भी 'ब्रह्मकुलं' पद का विशेषण माना, जब कि संज्ञा शब्द होने पर ही शं पूर्वक 'कृञ्' धातु से अच् प्रत्यय होता है "शमि धातोः संज्ञायां" पा.सू. ३-२-१४ अतएव यहाँ शङ्कर शब्द ब्रह्मकुलं का विशेषण नहीं बन सकता। वह तो योग रुढ़ि से विशेष्य ही रहेगा, जो कल्याण करने वाले भूत भावन सदाशिव का वाचक होगा। और 'ब्रह्मकुलं' बहुब्रीहि समास के आधार पर शङ्कर शब्द का विशेषण होगा, तथा अन्य पदार्थ 'शङ्करं' शब्द ही रहेगा। संस्कृत में ब्रह्म शब्द पुल्लिङ्ग में ब्राह्मण शब्द का पर्याय है, ब्रह्मा-ब्रह्माणौ ब्रह्माणः। कुल शब्द का अर्थ परिवार है ब्रह्माणः (ब्राह्मणाः) कुलानि (परिवाराः) यस्य तं ब्रह्मकुलं शङ्करं वन्दे, अर्थात् ब्राह्मण ही जिनके परिवार हैं, तथा ब्राह्मण जिन्हें कुटुम्ब की भाँति प्रिय हैं ऐसे भगवान् शङ्कर को मैं वन्दन करता हूँ, विनय पत्रिका में भी शिवजी को ब्राह्मण कुल का वल्लभ कहा गया है, "ब्रह्मकुल वल्लभं सुलभमति दुर्लभं" विनय पत्रिका १२।

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथि गतं रामाभिरामं भजे।।२।।

भा०- घनीभूत आनन्द के बादल को जिनके श्रीविग्रह से शोभा और सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो पीत वर्णवाला वल्कल वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा माधुर्य लीला में चम्पा के समान पीत वर्णवाली श्रीसीता के आँचल वस्त्र (धूप को रोकने के लिये) की, जिनके सिर पर छाया है, जो बहुत ही सुन्दर हैं, जिनके हाथ में धनुष और बाण है, जिनके कटितट पर कसा हुआ तरकस सुशोभित है। जो सर्वश्रेष्ठ तथा सबके वरणीय हैं। जिनके नेत्र लालकमल के समान विशाल हैं, जो धारण किये हुए जटाजूट से पूर्णतया सुशोभित हैं, ऐसे श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी से युक्त वन के मार्ग में प्राप्त सारे संसार को अभीष्ट आनन्द देनेवाले, अथवा रामा अर्थात् श्रीसीता के द्वारा सुन्दर लगते हैं, अथवा राम अर्थात् परशुराम जी को भी अभीष्ट आनन्द देनेवाले, ऐसे दण्डकवन विहारी भगवान् श्रीराम को मैं भजता हूँ।

सो०- उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति।।

भा०- शिव जी, पार्वती जी को सावधान करते हुए कहते हैं कि, हे पार्वती! श्रीराम के गुण बहुत गोपनीय हैं, उन्हें सुनकर शास्त्रों तथा श्रीरामभक्ति के सिद्धांतों के पण्डित एवं मुनि, संसार से वैराग्य प्राप्त कर लेते हैं। जो श्रीहरि से विमुख हैं और जिन्हें धर्म में प्रेम नहीं है, ऐसे विकार युक्त मूर्ख लोग इन गुणों को सुनकर, भगवान् श्रीराम के विषय में मोह भी प्राप्त कर लेते हैं।

पुर जन भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई।।
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जो बन सुर नर मुनि भावन।।

भा०- हे पार्वती! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार अवध, मिथिला, पुरजनों की और भरत जी की अनुपम और सुन्दर प्रीति गायी। अब तुम प्रभु श्रीराम का देवता, मनुष्य और मुनियों को भानेवाला वह पावन चरित्र सुनो, जिसे प्रभु श्रीराम, वन अर्थात् दण्डकवन में कर रहे हैं।

विशेष– यहाँ क्रम से अरण्यकाण्ड के आदि में जयन्त को दण्ड देकर प्रभु ने सुरभावन चरित्र किया, अरण्यकाण्ड के मध्य में खर–दूषण आदि का वध करके नरभावन चरित्र किया और अरण्यकाण्ड के अन्त में मारीच, कबन्ध वध तथा गिद्धराज जटायु एवं शबरी माँ को सुगति देकर, अथवा नारद जी का मोहभंग करके प्रभु ने मुनिभावन चरित्र किया।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला परमाधर।।

भा०– एक बार सुहावने पुष्पों को चुनकर भगवान् श्रीराम ने अपने ही श्रीकरकमलों से आभूषण बनाये और उन्हें सर्वसमर्थ प्रभु ने, आदरपूर्वक श्रीसीता को पहनाया तथा परमाधर, अर्थात् श्रेष्ठ पराशक्ति को धारण करनेवाले प्रभु श्रीराम, सीता जी के सहित स्फटिक शिला पर बैठ गये।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। शठ चाहत रघुपति बल देखा।।
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा।।

भा०– देवताओं के राजा इन्द्र का पुत्र दुष्ट जयन्त कौवे का वेश धारण करके रघुकुल के स्वामी श्रीराम का बल देखना चाहने लगा। जिस प्रकार अत्यन्त मन्दबुद्धि वाली चींटी सागर का थाह पाना चाहती हो, ठीक उसी प्रकार जयन्त ने भी प्रभु के बल रूप महासागर की थाह लगानी चाही।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा।।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना।।

भा०– मूढ़, मन्दबुद्धिवाला और भगवान् की परीक्षा लेने के लिए विशेष रूप से कौवा बना हुआ, अथवा मन्दबुद्धि जिसका कारण है, अथवा मूर्खतापूर्ण मन्दबुद्धि ही जिसका उत्पति स्थान है, ऐसा कौवा बना हुआ जयन्त, भगवती श्रीसीता के चरणों में चोंच मारकर भाग गया। चरण से रक्त चल पड़ा, तब रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम ने यह जान लिया और जयन्त को दण्डित करने के लिए सींक के धनुष पर ब्रह्मास्त्र के मंत्र द्वारा बाण का संधान किया।

दो०– अति कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुन गेह।।१।।

भा०– भगवान् श्रीराम अत्यन्त कृपालु हैं, उन्हें दीनों पर निरन्तर स्नेह है, ऐसे प्रभु से दुर्गुणों के घर इस मूर्ख ने आकर छल किया।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा।।
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं।।
भा निराश उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय ऋषि दुर्बासा।।

भा०– मंत्र से प्रेरित होकर ब्रह्मबाण जयन्त की ओर दौड़ा। कौआ भाग चला, वह ब्रह्मास्त्र के भय से भयभीत हो गया। जयन्त अपना रूप धारण कर पिता इन्द्र के पास गया। इन्द्र ने भी श्रीराम से विमुख जयन्त को अपने पास नहीं रखा। जयन्त निराश हो गया, उसके मन में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ, जैसे चक्र से भयभीत होकर दुर्वासा ऋषि निराश और भयभीत हो गये थे।

ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय शोका।।
काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही।।

भा०– जयन्त थका हुआ तथा शोक और भय से व्याकुल हुआ, ब्रह्मलोक, शिवलोक और अन्यान्य सभी लोकों में जाकर लौट आया। किसी ने भी उसे बैठने के लिए भी नहीं कहा, क्योंकि भगवान् श्रीराम के द्रोही को कौन शरण में रख सकता है?

मातु मृत्यु पितु शमन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरियाना।।
मित्र करइ शत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी।।
सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता।।

भा०– गरुड़ जी को सावधान करते हुए भुशुण्डि जी कहते हैं, हे श्रीहरि के वाहन गरुड़ जी! सुनिये, जो श्रीराम विमुख होते हैं, उनके लिए माता मृत्यु बन जाती है, पिता यमराज के समान भयंकर हो जाते हैं और अमृत विष हो जाता है। उनके साथ मित्र भी सैकड़ों शत्रुओं का–सा व्यवहार करते हैं और उस श्रीरामद्रोही के लिए देवनदी गंगाजी भी वैतरणी नदी के समान यातना देने वाली हो जाती हैं। हे भैया गरुड़ जी! सुनिये, जो रघुवीर श्रीराम से विमुख हो जाता है उसके लिए सारा संसार अग्नि से भी तप्त अर्थात् गरम हो जाता है।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता।।
पठवा तुरत राम पहँ ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।।

भा०– नारद जी ने व्याकुल जयन्त को देखा, उन्हें दया लग गई, क्योंकि सन्त का चित्त कोमल होता है। नारद जी ने तुरन्त ही उसे अर्थात् जयन्त को भगवान् श्रीराम के पास भेज दिया। जयन्त ने पुकार कर कहा, "हे शरणागतों के हितकारी प्रभु! आप मेरी रक्षा कीजिये।"

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई।।
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई।।

भा०– आतुर और भयभीत जयन्त ने जाकर, प्रभु श्रीराम का चरण पकड़ लिया और बोला, "हे दयालु! हे रघुवंश के राजा श्रीराम! आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपका बल अतुलनीय है, आपकी प्रभुता अतुलनीय है, मन्दबुद्धिवाला मैं उसे नही जान पाया।"

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि शरन तकि आयउँ।।
सुनि कृपालु अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।।

भा०– हे प्रभु! मैं अपने किये हुए कर्म से उत्पन्न फल पा चुका, अब मेरी रक्षा कीजिये, क्योंकि अब मैं देखकर अर्थात् निश्चित करके आपकी शरण में आया हूँ। (शिव जी कहते हैं कि, हे पार्वती!) कृपालु श्रीराम ने जयन्त की अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर, उसे एक नेत्र करके छोड़ दिया अर्थात् अब वह अपने नेत्रों से परमात्मा को ही देख सकेगा।

सो०– कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाँड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम।।२।।

भा०– जयन्त ने मोह के वश होकर भगवान् श्रीराम से द्रोह किया था। यद्यपि उसका वध ही उचित था, फिर भी भगवान् श्रीराम ने ममतापूर्ण प्रेम करके उसे छोड़ दिया। रघुवीर श्रीराम के समान कौन कृपालु होगा?

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित करत श्रुति सुधा समाना।।
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहिं भीरि सबहिं मोहि जाना।।
सकल मुनिन सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई।।

भा०– रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम चित्रकूट में निवास करते हुए श्रवणेन्द्रिय के लिए अमृत के समान अनेक चरित्र कर रहे हैं। फिर भगवान् श्रीराम ने मन में ऐसा अनुमान किया कि, अब यहाँ दर्शनार्थियों की बहुत भीड़ हो जायेगी, क्योंकि जयन्त के निग्रह प्रसंग से सभी ने मुझे भगवान् के रूप में जान लिया है। कहीं ऐश्वर्य खुल न जाये। अत: सभी मुनियों से विदा करा श्रीसीता के सहित दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण जी आगे चले।

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ।।
पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि राम आतुर चलि आए।।

भा०– जब प्रभु अत्रि मुनि के आश्रम में गये तो उनका आगमन सुनकर, महर्षि अत्रि जी प्रसन्न हो उठे। पुलकित शरीर होकर अत्रि जी उठकर दौड़े। श्रीराम को देखकर आतुरता में पैदल ही चले आये अर्थात् शीघ्रता में पादुका भी नहीं धारण की।

करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने।।
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए।।

भा०– श्रीराम–लक्ष्मण जी को दण्डवत् करते हुए ही मुनि ने हृदय से लगा लिया और दोनों भ्राताओं को अपने प्रेमाश्रु से नहला दिया। श्रीराम की छवि देखकर अत्रि जी के नेत्र शीतल हो गये। तब मुनि श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता जी को अपने आश्रम ले आये। प्रभु की पूजा करके सुहावने वचन कहकर प्रभु के मन को भानेवाले कन्दमूल, फल दिये और प्रभु ने प्रसाद पाया।

सो०– प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन, जोरि पानि अस्तुति करत।।३।।

भा०– आसन पर विराजमान प्रभु श्रीराम की शोभा, भर नेत्र निहारकर परमकुशल मुनिश्रेष्ठ अत्रि जी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

विशेष– पौराणिक कथाओं के आधार पर भगवान् श्रीराम का श्रीचित्रकूट में बारह वर्षपर्यन्त निवास करना सिद्ध है। इसलिए आज अत्रि मुनि जी बारह प्रमाणिका छन्दों में भगवान् की स्तुति कर रहे हैं। प्रमाणिका वृत्त के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होता है।

छं०– नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालुशीलकोमलम्।।
भजामि ते पदांबुजम् । अकामिनां स्वधामदम्।।१।।
निकामश्यामसुंदरम् । भवाम्बुनाथमंदरम्।।
प्रफुल्लकंजलोचनम् । मदादिदोषमोचनम्।।२।।

भा०– मैं परमकृपालु, स्वभाव से कोमल, भक्तवत्सल, प्रभु को नमन कर रहा हूँ। निष्कामभक्तों को अपना धाम देनेवाले आपके श्रीचरणों का मैं भजन कर रहा हूँ। अत्यन्त श्याम सुन्दर, भवसागर के लिए मंदराचल के समान विकसित कमल जैसे नेत्रवाले, कामादि दोषों को नष्ट करनेवाले प्रभु श्रीराम! मैं आपको नमन करता हूँ।

प्रलंबबाहुविक्रमम् । प्रभोऽप्रमेयवैभवम्।।
निषंगचापसायकम् । धरं त्रिलोकनायकम्।।३।।
दिनेशवंशमंडनम् । महेशचापखंडनम्।।
मुनींद्रसंतरंजनम् । सुरारिबृंदभंजनम्।।४।।

भा०– प्रलम्ब अर्थात् घुटनों से नीचे तक लम्बमान, भुजाओं के पराक्रम से युक्त, सर्वसमर्थ, प्रमाणों से परे वैभववाले, निषंग धनुष और बाण धारण करनेवाले, तीनों लोक के नायक, सूर्यवंश के आभूषण, शिव जी का धनुष तोड़नेवाले श्रेष्ठ मुनियों और सन्तों को आनन्द देनेवाले और देवशत्रु राक्षसवृन्दों को नष्ट करनेवाले,

मनोजवैरिवंदितम् । अजादिदेवसेवितम्।।
विशुद्धबोधविग्रहम् । समस्तदूषणापहम्।।५।।
नमामि इंदिरापतिम् । सुखाकरं सतां गतिम्।।
भजे सशक्ति सानुजम् । शचीपतिप्रियानुजम्।।६।।

भा०– कामदेव के शत्रु शिव जी द्वारा वन्दित् और ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, विशुद्धज्ञान ही जिनका विग्रह अर्थात् शरीर है, ऐसे सम्पूर्ण दोषों का अपहरण अर्थात् हनन करनेवाले, इन्दिरा अर्थात् लक्ष्मी जी को भी प्रकट करनेवाली, श्रीसीता के पति, सुखों की खानि, सन्तों के एकमात्र गन्तव्य, परमेश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिनके छोटे भाई लक्ष्मण जी भविष्य में मेघनाद का वध करने के कारण शची के पति इन्द्र को प्रिय हैं, ऐसे आपश्री को परमशक्ति श्रीसीता और अनुगमन करनेवाले श्रीलक्ष्मण के साथ मैं भजता हूँ।

त्वदंघ्रिमूलये नरा । भजंति हीनमत्सराः।।
पतंति नो भवार्णवे। वितर्कवीचिसंकुले।।७।।
विविक्तवासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा।।
निरस्य इंद्रियादिकम् । प्रयांति ते गतिं स्वकाम्।।८।।

भा०– जो आपके श्रीचरणकमल की धूलिरूप संजीवनी मूलिका के लिए मत्सरभावना को छोड़कर भजते हैं, वे विकृत तर्करूप लहरों से युक्त भवसागर में नहीं पड़ते। जो एकान्त में निवास करके मुक्ति के लिए, प्रसन्नता से अपने इन्द्रिय, मन आदि को निरस्त करके आपश्री का भजन करते हैं, वे अपनी आत्मीय सामीप्य गति को प्राप्त हो जाते हैं।

त्वमेकमद्भुतं प्रभुम् । निरीहमीश्वरं विभुम्।।
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलम्।।९।।
भजामि भाववल्लभम्। कुयोगिनां सुदुर्लभम्।।
श्वभक्तकल्पपादपम् । समस्तसेव्यमन्वहम्।।१०।।

भा०– तीनों देवताओं से त्वम् अर्थात् अन्य, एक अद्भुत, सर्वसमर्थ, चेष्टारहित, ईश्वर, सर्वव्यापक, जगत् के गुरु, शाश्वत तुरीयतत्त्व, एकमात्र अर्थात् अद्वितीय जिन्हें भक्तों का भाव ही प्रिय है, जो कुयोगियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ हैं, जो अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष हैं, ऐसे सभी के द्वारा निरन्तर सेव्य, प्रभु का मैं भजन करता हूँ।

अनूपरूपभूपतिम् । नतोऽहमुर्विजापतिम्।।
प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्जभक्ति देहि मे।।११।।
पठन्ति ये स्तवं त्विदम्। नरादरेण ते पदम्।।
व्रजन्ति नात्र संशयम् । त्वदीयभक्तिसंयुताः।।१२।।

भा०– अनुपम रूपवाले, अयोध्या के राजा और पृथ्वीपुत्री श्रीसीता के पति प्रभु! मैं आपको नत हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों, मैं आपको नमन करता हूँ। मुझे अपने श्रीचरणकमल की भक्ति दे दें। इस प्रकार जो नर अर्थात् मनुष्य इस स्तोत्र को आदरपूर्वक पढ़ते हैं या पढ़ेंगे वे आपकी भक्ति से युक्त होकर आपके परमपद को प्राप्त हो जाते हैं और हो जायेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

दो०- बिनती करि मुनि नाइ सिर, कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि।।४।।

भा०- इस प्रकार बारह प्रमाणिका छन्दों में प्रभु की प्रार्थना करके मस्तक नवाकर अत्रि जी ने फिर हाथ जोड़कर कहा, हे नाथ! आपके श्रीचरणकमल को मेरी बुद्धि कभी न छोड़े।

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुशील बिनीता।।
ऋषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आशिष दीन्हि निकट बैठाई।।
दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए।।
कह ऋषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी।।

भा०- फिर सुन्दर स्वभाववाली, विनम्र भगवती श्रीसीता, अत्रि जीकी धर्मपत्नी अनुसूइया जी के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि की पत्नी अनसूया जी के मन में अधिक सुख हुआ। उन्होंने, श्रीसीता को आशीर्वाद देकर अपने पास बिठा लिया। अनसूया जी ने श्रीसीता को अलौकिक वस्त्र और आभूषण पहनाये अर्थात् धारण कराये, जो नित्य नवीन, निर्मल और सुन्दर बने रहते हैं। महर्षि अत्रि जी की वधू (पाणिगृहीतपत्नी) अनसूया जी ने श्रीसीता जी के ही बहाने आनन्दयुक्त, कोमल वाणी में भारतीय वैदिक नारियों के, अथवा महिला मात्र के लिए कुछ धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कहे।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।

भा०- अनसूया जी बोलीं, हे राजकुमारी जी (सीते)! सुनिये, माता-पिता, भाई और अन्य हितकर लोग अर्थात् सास-श्वसुर, ज्येठ, देवर इत्यादि ये सब महिला को सीमित वस्तु ही दे सकते हैं, किन्तु हे विदेह नन्दिनी जी! पति अमित दानी अर्थात् सीमाओं को पार करके पत्नी को उसकी मनचाही वस्तु देता है अर्थात् यहाँ न कोई बन्धन होता है और न कोई सीमा। उस पति की जो सेवा नहीं करती वह नारी अधम अर्थात् निम्नकोटि की है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखियहिं चारी।।
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।।

भा०- आपत्ति के समय धैर्य, धर्म, मित्र और नारी अर्थात् नर की सहचारिणी पत्नी इन्हीं चारों की परीक्षा होती है। वृद्ध रोगी, जड़ अर्थात् चेष्टारहित, धन से हीन, दृष्टिहीन, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन अर्थात् सभी अभावों से अत्यन्त ग्रस्त, ऐसे पति का भी जो अपमान किया तो वह नारी यमपुर में नाना प्रकार के दुःख पाती है। नारी के लिए शरीर, वाणी और मन से पति के चरणों में और पति के पद अर्थात् आश्रय रूप परमात्मा श्रीराम में प्रेम करना ही एकमात्र धर्म, एक व्रत और एक नियम है अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा पति और रघुपति के चरणों में प्रेम करने मात्र से नारी धर्म, व्रत और नियमों को किये बिना ही सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेती है।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

भा०- वेद, पुराण और सभी सन्त ऐसा कहते हैं कि, संसार में उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और अधम ये चार प्रकार की पतिव्रतायें हैं। उत्तम पतिव्रता के मन में ऐसी भावना रहती है कि, स्वप्न में भी उसके पति के अतिरिक्त संसार में कोई और पुरुष है ही नहीं। मध्यम पतिव्रता परपुरुष को किस प्रकार देखती है जैसे उनका निजी भ्राता, पिता और निजी पुत्र अर्थात् दूसरे पुरुष में उनको भ्राता, पिता और पुत्र की बुद्धि होती है। जो दूसरे पुरुष पर आकर्षित होकर भी अपने धर्म का विचार करके और कुल की मर्यादा को समझकर अपने सतीत्व में बनी रहती है, वेद उसको निकृष्ट पतिव्रता कहते हैं। जो परपुरुष पर आकर्षित होकर भी अवसर न पाकर लोकभय से बची रहती है, उस नारी को अधम पतिव्रता जानना चाहिये।

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प शत परई।।
छन सुख लागि जनम शत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।।

भा०- जो अपने पति को ठगनेवाली, और दूसरे के पति से प्रेम करती है, वह नारी सौ कल्पपर्यन्त रौरव नरक में पड़ी रहती है। एक क्षण के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्मों के दुःख को नहीं समझती उस स्त्री के समान कौन खोटी हो सकती है?

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।।

भा०- जो नारी छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को स्वीकार करती है, वह बिना श्रम के ही परमगति को प्राप्त कर लेती है। पति से प्रतिकूल वर्तन करनेवाली नारी जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वह युवावस्था को पाकर ही विधवा हो जाती है।

विशेष- यहाँ उपलक्षण की विधा से पुरुष के लिए भी इसी प्रकार के नियम समझ लेना चाहिये अर्थात् पतिव्रत की भाँति पत्नीव्रत धर्म भी पुरुष को परमगति प्रदान कर देता है। जैसे परपतिप्रेम निषिद्ध है, उसी प्रकार परपत्नी प्रेम भी निषिद्ध है। पुरुष के लिए भी पूर्वोक्त प्रकार के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और अधम पत्नीव्रत समझ लेना चाहिये।

सो०- सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहइ।
जस गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय।।५।।(क)।।

भा०- जो नारी, स्वभाव से अपने कुसंस्कारों के कारण अपवित्र हो, वह भी पति की सेवा करके शुभगति प्राप्त कर लेती है। चारों वेद आज भी माता तुलसी का यश गा रहे हैं। जो तुलसी (वृन्दा) दैत्यकुल में जन्म लेकर, दैत्य के सम्पर्क से अपवित्र होकर भी अपने पति, अत्यन्त पतित जालन्धर की सेवा करने मात्र से शुभगति को प्राप्त कर लीं और तुलसी बनकर, परमेश्वर को भी प्रिय बन गईं।

विशेष- आज भी अवध प्रान्त में यह सूक्ति प्रचलित है-

चार पहर चौंसठ घड़ी, ठाकुर के ऊपर ठकुराइन चढ़ी।।

यहाँ सहज अपावनि शब्द सामान्य नारियों के लिए नहीं प्रयुक्त है, यह शब्द कुसंस्कारिणी नारी का विशेषण है अर्थात् पतिसेवा करके जब स्वभाव से अपवित्र स्त्री दैत्यपत्नी भी शुभगति को प्राप्त कर सकती है, तो फिर जो नित्यपवित्र, सीता, सावित्री आदि हैं उनकी बात ही क्या।

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तुमहिं प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित।।५(ख)।।

भा०– हे सीते! सुनिये, आपके नाम (*श्रीसीताशरणं मम*) का स्मरण करके नारियाँ पतिव्रत धर्म का आचरण करती हैं। आपको तो भगवान् श्रीराम प्राण से भी अधिक प्रिय हैं, इसलिए मैंने यह उपदेश आपको नहीं दिया है। मैंने तो आपके बहाने से संसार की नारियों के हित के लिए यह कथा कही है।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिर नावा।।
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना।।
संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू।।

भा०– अनसूया जी के वचन सुनकर, जनकनन्दिनी श्रीसीता ने श्रेष्ठसुख प्राप्त किया और आदर के सहित अनसूया जी के चरणों में श्रीसीता ने सिर नवाया। (अर्थात् सिर नवाकर मानो, दक्षिणा के रूप में स्वयं को ही समर्पित कर दिया।) इसके पश्चात् कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम ने अत्रि मुनि से कहा, अब आज्ञा हो तो दूसरे वन में जाऊँ। मुझ पर सदैव कृपा करते रहियेगा, सेवक जानकर अपना स्नेह मत छोड़ियेगा।

धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी।।
जासु कृपा अज शिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी।।
ते तुम राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे।।

भा०– धर्म की धुरी को धारण करनेवाले प्रभु श्रीराम की वाणी सुनकर, भगवद्ज्ञान से सम्पन्न अत्रि मुनि प्रेमपूर्वक बोले, ब्रह्मा जी, शिव जी, सनकादि, अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और अन्य सभी परमार्थवादी अर्थात् मोक्षसिद्धान्त के चिन्तक, जिन आपश्री भगवान् श्रीराम की कृपा चाहते रहते हैं, वही कामनारहित, भक्तों के प्रिय अर्थात् निष्काम, भक्तों के प्रेमास्पद, दीनों के बन्धु आप श्रीराम ने इस प्रकार कोमल वचन कहे अर्थात् मुझ से अन्य वन में जाने की आज्ञा माँगी। तात्पर्य यह है कि, जो आप सब पर कृपा करते रहते हैं, वे मेरी कृपा की अपेक्षा कर रहे हैं, यह आपके स्वभाव का चमत्कार है।

अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहिं सब देव बिहाई।।
जेहि समान अतिशय नहिं कोई। ता कर शील कस न अस होई।।

भा०– अब मैंने श्री अर्थात् श्रीसीता की चतुरता समझ ली है, जिन्होंने आपके स्वभाव पर आकृष्ट होकर ही जनकराज द्वारा आयोजित स्वयंवर में राजाओं के वेश में पधारे हुए सभी देवताओं को छोड़कर आपकी ही सेवा की अर्थात् उन्होंने स्वयं शिव जी का धनुष तोड़ने के लिए आपसे प्रार्थना की और आपके गले में जयमाला पहनाकर आपकी धर्मपत्नी बनकर आज भी आपको ही भज रही हैं, नहीं तो परमशक्तिस्वरूपा श्रीसीता किसी भी देवता को अपनी शक्ति देकर धनुष तुड़वा सकती थीं। अर्थात् लक्ष्मी की भी लक्ष्मी, श्री की भी श्री, सीता जी को भी आपने अपने जिस स्वभाव से जीता उसी स्वभाव के कारण आप आज अन्य वन जाने के लिए मुझ से अनुमति माँग रहे हैं। संसार में जिन आपके समान न तो कोई है और न ही आपसे अधिक। ऐसे निरस्त साम्यातिशय आपश्री का स्वभाव ऐसा क्यों न हो?

विशेष– जो लोग इस प्रकरण को लक्ष्मी जी के सन्दर्भ में लगाते हैं, वे या तो मानस जी के सिद्धान्त से अनभिज्ञ हैं या घोर दुराग्रही तथा अपलापी, क्योंकि मानसकार ने भगवान् श्रीराम को विष्णु जी के अंशी के रूप में और भगवती श्रीसीता को श्रीलक्ष्मी की अंशी के रूप में प्रकट किया है। यथा– ***शंभु बिरंचि बिष्णु भगवाना।***

उपजहिं जासु अंश ते नाना।। मानस, १.१४४.६. जासु अंश उपजहिं गुण खानि। अगनित उमा रमा ब्रह्माणी।। मानस, १.१४८.३.

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम अंतरजामी।।
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक शरीरा।।

भा०– हे नाथ! हे अन्तर्यामी परमात्मा श्रीराम! आप ही कहिये, आपको जाने के लिए मैं किस प्रकार कहूँ? मैं तो यही चाहूँगा कि, आप निरन्तर मेरे पास रहें। असुर–वध के लिए दूसरे रूप में अन्यत्र पधारें, परन्तु इस रूप में तो आप श्रीचित्रकूट में मेरे पास ही विराजें, इस प्रकार कहकर प्रभु श्रीराम को निहारकर धीर मुनि अत्रि जी के नेत्रों से अश्रुजल बहने लगा और उनका शरीर पुलकित हो उठा।

छं०– तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए।।
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निशि दिन दास तुलसी गावई।।

भा०– महर्षि अत्रि जी का शरीर पुलकित हो गया। वे निर्भर अर्थात् सीमा से रहित, प्रभु प्रेम से पूर्ण हो गये। उन्होंने अपने नेत्र प्रभु श्रीराम के मुखकमल को दे दिया अर्थात् उन्हीं में लगा दिया, नेत्रों से प्रभु के मुखकमल को निहारने लगे। महर्षि अत्रि जी मन में विचार करने लगे कि मैंने कौन–सा जप और तप किया है, जिसके पुण्य से मन, ज्ञान अर्थात् बुद्धि, तीनों गुण और दसों इन्द्रियों से भी अतीत अर्थात परे परमसमर्थ, वेदान्तवेद्य, प्रभु श्रीराम के दर्शन किये, क्योंकि मनुष्य जप, योग और धर्मानुष्ठान से उत्पन्न पुण्यों के समूह से ही श्रीराम की उपमारहित भक्ति पाता है और उसी भक्ति से भगवान् के दर्शन होते हैं। वह तो मेरे पास नहीं है, अत: यह तो प्रभु की एकमात्र अहैतुकी कृपा का फल है। तुलसीदास जी कहते हैं कि, अत्रि मुनि ने कहा कि, इसी कृतज्ञता का ही बोध करके प्रभु का आभारी बना हुआ दास, रात–दिन उन्हीं रघुवीर की कृपालुता के चरित्र को गाता रहता है और मुझ से अभिन्न तुलसीदास भी प्रभु की कृपालुता का चरित्र रात–दिन गाता है।

दो०– कलिमल शमन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन पर, राम रहहिं अनुकूल।।६(क)।।

भा०– गोस्वामी तुलसीदास जी इस प्रकार की फलश्रुति कहते हैं कि कलियुग के मलों को शान्त करनेवाले, उपद्रवी मन का दमन करने वाले सभी सुखों के कारण और आश्रय भगवान् श्रीराम का सुयश, जो लोग आदरपूर्वक सुनते हैं, भगवान् श्रीराम उन पर अनुकूल रहते हैं।

सो०– कठिन काल मल कोस, धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर।।६(ख)।।

भा०– मलों के कोशरूप इस कठिन समयवाले कलियुग में न तो धर्म सम्भव है, न ही ज्ञान, न ही योग और जप, अत: जो लोग इन सभी साधनों का विश्वास छोड़कर एकमात्र भगवान् श्रीराम को भजते हैं, प्रभु के नाम, रूप, लीला, धाम का सेवन करते हैं, वे ही प्राणी चतुर हैं।

मुनि पद कमल नाइ करि शीशा। चले बनहिं सुर नर मुनि ईशा।।
आगे राम लखन पुनि पाछे। मुनि बर बेष बने अति आछे।।
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं सब बाटा।।
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया।।

भा०– देवताओं, मनुष्यों और मुनियों के ईश्वर, भगवान् श्रीराम, अत्रि मुनि के चरणों में मस्तक नवाकर दण्डक वन को चल पड़े। आगे–आगे श्रीराम, फिर लक्ष्मण जी पीछे चल रहे हैं, जो मुनिवर वेश में बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण जी के बीच में श्री अर्थात् सभी ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री भगवान् श्रीराम की श्रयणीय श्रीसीता, किस प्रकार शोभित हो रही हैं जैसे ब्रह्म और जीवाचार्य के बीच परमेश्वर की अहैतुकी कृपा सुशोभित होती है। नदियाँ, वन, पर्वत और नदियों के दुर्गम घाट तथा घाटियाँ, सम्पूर्ण चर, अचर के स्वामी श्रीराम जी को पहचान कर सभी मार्ग दे देते हैं। देवताओं के भी देवता रघुकुल के राजा श्रीराम जहाँ–जहाँ जाते हैं, वहाँ–वहाँ बादल आकाश में छाया कर देते हैं।

मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता।।
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा।।

भा०– मार्ग में जाते हुए प्रभु को असुर अर्थात् देवताओं का विरोधी आसुरी सम्पत्तिवाला विराध नाम का राक्षस मिला। उसे अपने निकट आते ही रघुकुल के वीर श्रीराम ने निपाता अर्थात् निचले गड्ढे में गाड़ दिया। उसी प्रक्रिया से उसका वध कर दिया। तुरन्त ही उस विराध ने सुन्दर रूप प्राप्त कर लिया अर्थात् प्रभु श्रीराम ने उसे सारुप्य मुक्ति दी और उसे दुःखी देखकर अपने धाम साकेतलोक भेज दिया।

पुनि आए जहँ मुनि शरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा।।

दो०– देखि राम मुख पंकजहिं, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म शरभंग।।७।।

भा०– फिर सम्पूर्ण सौन्दर्यों के निधान, सुन्दर श्रीराम, सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मण जी और जनकनन्दिनी सीता जी के साथ जहाँ शरभंग मुनि थे, वहाँ आये। भगवान् श्रीराम के मुखकमल को देखकर अत्यन्त धन्य जन्मवाले मुनिश्रेष्ठ शरभंग जी के नेत्ररूप भ्रमर प्रभु के मुखकमल के छविरूप मकरन्द का आदरपूर्वक पान करने लगे अर्थात् शरभंग जी अपने नेत्रों से प्रभु की रूप–सुधा पीने लगे। शरभंग जी का जन्म अत्यन्त धन्य हो गया।

विशेष– शरभंग जी की तपस्या से डरकर इन्द्र ने इनके पास कामदेव को भेजा था और कामदेव के शर अर्थात् बाणों का यहाँ भंग हो गया अर्थात् कामदेव के बाण भी महर्षि को विकृत नहीं कर सके। इसी से इनका नाम शरभंग पड़ गया। *शराणां काम बाणानां भंगः विनाशः यस्मिन् सः शरभंगः।*

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। शङ्कर मानस राजमराला।।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ स्रवन बन ऐहैं रामा।।
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।।
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।।
सो कछु देव न मोहिं निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा।।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलउँ तुमहिं तनु त्यागी।।

भा०– शरभंग मुनि ने कहा, हे शिव जी के मनरूप मानससरोवर के राजहंस, कृपालु रघुवीर श्रीराम! सुनिये, मैं (अपनी तपस्या से अर्जित) ब्रह्मा जी के धाम अर्थात् ब्रह्मलोक को जा रहा था। उस समय मार्ग में किसी रामायण वक्ता के मुख से अपने कानों द्वारा सुना कि भगवान् श्रीराम इसी दण्डक वन में आयेंगे। अतः मैं ब्रह्मलोक की

अपनी यात्रा स्थगित करके ब्रह्मा जी के विमान से नीचे कूदकर अपने आश्रम में फिर आ गया। तब से मैं दिन-रात आपकी बाट जोहता रहा अर्थात् वनमार्ग में आपको निहारता रहा। इस समय आपको देखकर मेरी छाती शीतल हो गई। हे नाथ! मैं सभी साधनों से हीन हूँ। मुझे अभावों से ग्रस्त सेवक जानकर आप ने दर्शन दिये। हे देव! हे भक्तों के मन को चुरानेवाले! मुझे दर्शन देकर आपने कोई निहोरा नहीं किया है अर्थात् मेरे प्रति कृतज्ञता नहीं की है। मुझसे मिलकर तो केवल आपने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा की है। मुझ दीन शरभंग के कल्याण के लिए आप तब तक यहीं रहें अर्थात् मेरी प्रतिक्षा करें जब तक यह नश्वर शरीर छोड़ मैं दिव्य शरीर से आपको मिलूँ, अर्थात् आपकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त कर सकूँ।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।।
एहि बिधि शर रचि मुनि शरभंगा। बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा।।

भा०- अपने द्वारा किये हुए योग, यज्ञ, जप, तप और व्रतों का सम्पूर्ण पुण्यफल भगवान् श्रीराम को समर्पित करके शरभंग जी ने प्रभु से भेदमूलक सेवक-सेव्यभाव सम्बन्ध पर आश्रित प्रेमलक्षणा भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रक्रिया से शरभंग मुनि सरकण्डों से चिता बनाकर हृदय से सभी आसक्तियों को छोड़कर उस चिता पर बैठ गये और बोले-

दो०- सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम।।८।।

भा०- हे सगुण रूप अर्थात् समस्त कल्याण गुणगणों के आश्रयस्वरूप श्रीसीता को रमण करानेवाले और उन्हीं श्रीसीता में रमण करनेवाले तथा उन्हीं श्रीसीता जी के साथ सर्वत्र रमने वाले, नीले वर्षोन्मुख मेघ के समान श्यामल शरीरवाले प्रभु श्रीराम! आप श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के साथ मेरे हृदय में निरन्तर वास करें।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा बैकुंठ सिधारा।।
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ।।

भा०- इतना कहकर शरभंग जी ने अपने योगबल से प्रकट किये हुए योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। वे श्रीराम की कृपा से बैकुण्ठ अर्थात् कुण्ठारहित साकेतलोक चले गये। मुनि शरभंग जी इसी कारण श्रीहरि भगवान् श्रीराम में लीन नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने चिता में प्रवेश के पहले ही प्रभु से भेदमूलक भक्ति का वरदान ले लिया था।

ऋषि निकाय मुनि वर गति देखी। सुखी भए निज हृदय बिशेषी।।
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा।।

भा०- ऋषियों के समूह, मुनिश्रेष्ठ शरभंग जी की सालोक्य मुक्तिरूप गति देखकर अपने हृदय में विशेष सुखी हुए। सभी मुनिवृन्द प्रभु की स्तुति करने लगे, हे प्रणतों (शरणागतों) के हितैषी! हे करुणारूप जल के मेघ प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवर बृंद बिपुल सँग लागे।।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूँछी मुनिन लागि अति दाया।।

भा०- फिर श्रीरघुनाथ शरभंग आश्रम से आगे दण्डक वन की ओर चले। अनेक श्रेष्ठमुनियों के समूह प्रभु के संग लग गये अर्थात् प्रभु के साथ चल पड़े। थोड़ी ही दूर पर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने मार्ग में पड़े हुए

मुनियों के हड्डियों के समूह को देखकर मुनियों से पूछा, प्रभु को बहुत दया लग गई अर्थात् वे नरकंकालों को देखकर दु:खी हो गये।

जानतहूँ पूँछिय कस स्वामी। सबदरसी तुम अंतरजामी।।
निशिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए।।

भा०– हे स्वामी आप जानते हुए भी कैसे पूछ रहे हैं? क्योंकि आप सब कुछ देखनेवाले और सबके अन्तर्यामी अर्थात् अन्तरात्मा का भी नियंत्रण करने वाले, भीतर की भी बात को जानने वाले हैं। राक्षसों के समूहों ने सभी वानप्रस्थी मुनियों को खा लिया। उन्हीं की अवशेष अस्थियाँ यहाँ पड़ी हैं। सुनकर रघुकुल के वीर अर्थात् त्यागवीरता, दयावीरता, विद्यावीरता, पराक्रमवीरता और धर्मवीरता से उपलक्षित भगवान् श्रीराम के नेत्रों में अश्रु भर आये।

दो०– निशिचर हीन करहुँ मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमनि, जाइ जाइ सुख दीन्ह।।९।।

भा०– मैं पृथ्वी को राक्षसों से हीन कर दूँगा। प्रभु ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की और सम्पूर्ण मुनियों के आश्रम में जा–जाकर सबको सुख दिया।

मुनि अगस्त्य कर शिष्य सुजाना। नाम सुतिच्छन रति भगवाना।।
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक।।

भा०– श्रीअगस्त्य मुनि के एक चतुर शिष्य थे, उनका नाम सुतीक्ष्ण था और उन्हें भगवान् श्रीराम के प्रति बहुत अनुरक्ति थी। वे मन, कर्म और वचन से श्रीराम के श्रीचरणों के सेवक थे, उन्हें स्वप्न में भी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था।

प्रभु आगवन स्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा।।
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से शठ पर करिहैं दाया।।
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहैं निज सेवक की नाईं।।

भा०– ज्यों ही सुतीक्ष्ण जी अपने कानों से प्रभु श्रीराम का आगमन सुन पाये, त्यों ही वे मन में अनेक मनोरथ करते हुए आतुर होकर दौड़ पड़े। मन में सोचने लगे कि हे विधाता! क्या मुझ जैसे शठ पर दीनों के बन्धु, जीवमात्र के राया अर्थात् सर्वस्व, रघुराज श्रीराम दया करेंगे? क्या मुझे अपने सेवक की भाँति ही लक्ष्मण जी के सहित सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के स्वामी श्रीसीता से अभिन्न श्रीराम मिलेंगे?

मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं।।
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा।।

भा०– मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नहीं हो रहा है कि प्रभु मुझे दर्शन देंगे, क्योंकि मेरे मन में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य कुछ भी नहीं है। न तो सत्संग किया है और न ही योग, जप, यज्ञ किया है और प्रभु के श्रीचरणकमलों में दृढ़ प्रेम भी नहीं है।

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की।।
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन।।

भा०– करुणानिधान भगवान् श्रीराम की एक बानि अर्थात् एक प्रकृति है। उनको वही प्रिय लगता है, जिसको दूसरे का आश्रय नहीं हो। कदाचित् अपने उस स्वभाव के कारण प्रभु मुझे दर्शन दे देंगे, क्योंकि मुझे केवल श्रीराम

की ही गति है। अब विश्वास हो गया आज संसार–भाव को नष्ट करनेवाले प्रभु श्रीराम के मुखकमल को देखकर मेरे नेत्र सफल हो जायेंगे।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दशा भवानी।।
दिशि अरु बिदिशि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।।

भा०– ज्ञानी मुनि निर्भर अर्थात् जिसे मन में नहीं धारण किया जा सके ऐसे अपार प्रेम में मग्न हो गये। हे पार्वती! सुतीक्ष्ण जी की वह दशा नहीं कही जाती। उन्हें दिशा तथा विदिशा (दिशाओं का मध्य भाग) और मार्ग भी नहीं सूझ रहा था। मैं कौन हूँ, कहाँ के लिए चला हूँ? यह कुछ भी सुतीक्ष्ण जी नहीं समझ पा रहे थे।

कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई।।
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई।।

भा०– सुतीक्ष्ण जी कभी–कभी पीछे की ओर मुड़ते हैं और पुनः आगे जाते हैं। कभी–कभी भगवान् श्रीराम के गुणों को गाते हुए नृत्य करने लगते हैं, क्योंकि सुतीक्ष्ण जी को अब सब कुछ श्रीराममय दिख रहा है। मुनि सुतीक्ष्ण जी ने अविरला और प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त कर ली है। वृक्ष की आड़ में छिपकर प्रभु श्रीराम भी सुतीक्ष्ण जी की यह भक्ति की उन्मत्तता देख रहे हैं।

अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा।।
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक शरीर पनस फल जैसा।।
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दशा निज जन मन भाए।।

भा०– संसार के भय को दूर करनेवाले रघु अर्थात् जीवों में वीर अर्थात् विशेष प्रेरणा देनेवाले तात्पर्यतः जीवमात्र के प्रेरक श्रीराम, सुतीक्ष्ण जी की अतिशय प्रीति देखकर उनके हृदय में प्रकट हो गये। सुतीक्ष्ण मुनि मार्ग के बीच में ही स्थिर होकर बैठ गये। कटहल के फल के समान उनका शरीर पुलकित हो गया अर्थात् जैसे कटहल के फल में छोटे–छोटे काँटे होते हैं जो बहुत चुभते नहीं उसी प्रकार, मुनि के शरीर के रोयें भी कटहल के काँटों के समान खड़े हो गये। तब श्रीरघुनाथ वृक्ष की ओट से मुनि के निकट चले आये। अपने भक्त सुतीक्ष्ण जी की दशा देखकर प्रभु श्रीराम को बहुत अच्छा लगा।

मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।।
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप देखावा।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने अपने भक्त सुतीक्ष्ण जी को बहुत प्रकार से जगाया, परन्तु वे जगे नहीं, क्योंकि सुतीक्ष्ण जी भगवान् श्रीराम के ध्यान से उत्पन्न अलौकिक सुख पा रहे थे। तब भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्ण जी के हृदय में विराजमान अपने धनुर्बाणधारी, नील नीरधर श्याम रमणीय राजा रूप को छिपा लिया और सुतीक्ष्ण जी के हृदय में अपने अंश विष्णु जी के चर्तुभुज रूप का दर्शन कराया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनि वर जैसे।।
आगे देखि राम तनु श्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा।।
परेउ लकुट इव चरननि लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी।।

भा०– तब सुतीक्ष्ण मुनि किस प्रकार अकुला कर उठे जैसे मणि से विहीन श्रेष्ठसर्प व्याकुल हो जाता है। अपने सम्मुख भगवती श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के सहित सुख के धाम, श्यामल शरीरवाले प्रभु श्रीराम को देखकर प्रेम में मग्न बड़ भागी मुनि सुतीक्ष्ण प्रभु के श्रीचरणों से लिपटकर लाठी की भाँति पृथ्वी पर पड़ गये।

भुज बिशाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई।।
मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहिं जनु भेंट तमाला।।
राम बदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा।।

भा०– प्रभु ने विशाल भुजाओं (अजानु लम्बी) से सुतीक्ष्ण जी को पकड़कर उठा लिया और अत्यन्त प्रियता के कारण श्रीराम ने सुतीक्ष्ण जी को देर तक हृदय से लगाये रखा। कृपालु श्रीराम मुनि सुतीक्ष्ण जी से मिलते हुए इस प्रकार सुशोभित हुए, मानो तमाल वृक्ष स्वर्णमय वृक्ष को भेंट रहा हो। सुतीक्ष्ण मुनि श्रीराम के मुख को देखते हुए खड़े रहे, मानो वे चित्र फलक के बीच से निकाले हुए चित्र हैं।

दो०– तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार।।१०।।

भा०– तब मुनि सुतीक्ष्ण जी ने हृदय में धैर्य धारण करके बारम्बार प्रभु के श्रीचरण पकड़कर भगवान् को अपने आश्रम में ले आकर प्रभु श्रीराम की अनेक प्रकार से पूजा की।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी।।
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी।।

भा०– सुतीक्ष्ण मुनि कहने लगे, हे प्रभु श्रीराम! आप मेरी प्रार्थना सुनिये, मैं किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा असीम है और मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है, जैसे सूर्य के सम्मुख जुगनू का उजाला अर्थात् ज्योति हो।

श्याम तामरस दाम शरीरम्। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरम्।।
पाणि चाप शर कटि तूणीरम्। नौमि निरंतर श्रीरघुबीरम्।।

भा०– नीले कमल की माला के समान छरहरे और विनम्रता से झुकने के कारण मालाकार शरीरवाले, जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र को परिधान बनाकर धारण करने वाले, हाथों में धनुष–बाण तथा कटि प्रदेश में तरकस कसे हुए, ऐसे श्रीसीता के साथ वर्तमान रघुवीर आप श्रीराम को मैं निरन्तर नमन करता हूँ।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः।।
निशिचर करिवरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः।।

भा०– घने मोह वन को जलाने के लिए अग्नि के समान और सन्तरूप कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान, राक्षसरूप हाथी समूहों के लिए सिंह तथा संसाररूप पक्षी को नष्ट करने के लिए बाज पक्षी स्वरूप श्रीराम जी आप हमारी निरन्तर रक्षा करें।

अरुण नयन राजीव सुवेशम्। सीता नयन चकोर निशेशम्।।
हर हृदि मानस बाल मरालम्। नौमि राम उर बाहु विशालम्।।

भा०– लाल कमल के समान अरुण नेत्र, सुन्दर वेशवाले, श्रीसीता के नेत्र चकोर के चन्द्रमा, शिव जी के मनरूप मानससरोवर के राजहंस, विशाल हृदय और विशाल भुजावाले श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः।।
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रासु सदा नो कृपा वरूथः।।

भा०– संशयरूप सर्प को खाने के लिए गरुड़ के समान तथा कठोर कुतर्क और दुःख को समाप्त करने वाले, भक्तों के संसारभाव को नष्ट करने वाले, देवसमूहों को आनन्द देनेवाले, ऐसे अनन्त कृपाओं को धारण करनेवाले, प्रभु श्रीराम जी आप हमारी रक्षा करें।

निर्गुण सगुण विषम सम रूपम्। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपम्।।
अमलमखिल-मनवद्यमपारम्। नौमि राम भंजन महि भारम्।।

भा०– हेयगुणों से दूर और सभी कल्याण गुणगणों से युक्त, भक्तिहीनों के लिए विषम और भक्तों के लिए समस्वरूप अथवा भक्तों के लिए विषम और ज्ञानियों के लिए समस्वरूप, ज्ञान अर्थात् बुद्धि, वाणी और इन्द्रियों से अतीत, उपमारहित, निर्मल, अखण्ड, निन्दारहित तथा पाररहित पृथ्वी के भार को नष्ट करनेवाले, श्रीराम को मैं नमन करता हूँ।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः।।
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः।।
अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलिमल विपुल विभंजन नामः।।
धर्म वर्म नर्मद गुणु ग्रामः। संतत शन्तनोतु मम रामः।।

भा०– भक्तों के लिए कल्पवृक्षों के आराम अर्थात् उद्यानस्वरूप, क्रोध, लोभ, मद और काम को तर्जन अर्थात् दंडित करनेवाले, अत्यन्त कुशल और भवसागर के सेतु तथा सूर्यकुल के पताकास्वरूप श्रीराम आप निरन्तर रक्षा करें। जिनकी भुजाओं के प्रताप अतुलनीय हैं, जो बल के धाम हैं, जिनका नाम कलियुग के अनेक मलों का नाशक है, जो स्वयं धर्म के कवचस्वरूप हैं, अथवा धर्म ही जिनका कवच है, जिनके गुणों के समूह नर्मद अर्थात् सुख देने वाले और वासनात्मक विनोद को नष्ट करने वाले हैं, ऐसे भगवान् श्रीराम निरन्तर मेरा कल्याण करते रहें।

विशेष : इस दोहे की प्रथम से लेकर १६ पंक्तियों में ही श्रीरामचरितमानस का पुरुष सूक्त है।

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदय निरंतर बासी।।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। वसतु मनसि मम काननचारी।।

भा०– भगवान् यद्यपि रजोगुण से दूर, सर्वव्यापक, अविनाशी तथा निरन्तर सबके हृदय में निवास करने वाले हैं, फिर भी हे खर नामक राक्षस के शत्रु! हे दण्डक कानन में भ्रमण करनेवाले श्रीराम! आप श्रीलक्ष्मण और सीता जी के सहित मेरे मन में निवास करें।

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी।।
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना।।

भा०– हे स्वामी! जो लोग आप सगुण, साकार और सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से रहनेवाले प्रभु को निर्गुण रूप से जान रहे हैं, वे जानते रहें, उन असत् पक्षियों को मैं छेड़ना ही नहीं चाहता। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि जो अयोध्यापति कमलनयन आप भगवान् श्रीराम हैं, वे ही आप मेरे हृदय को अपना मंदिर बना लें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए।।

भा०– मेरे मन से ऐसा अभीष्ट मान, अथवा अभिमान भूलकर भी नहीं जाये कि मैं सुतीक्ष्ण, श्रीराम का सेवक हूँ और रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम मेरे स्वामी हैं। मुनि के वचन सुनकर, श्रीराम के मन को बहुत भाये और प्रसन्न होकर प्रभु ने मुनियों में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण जी को फिर हृदय से लगा लिया और बोले–

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउ सो तोही।।
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा।।

भा०– हे मुनि सुतीक्ष्ण! आप मुझे परम प्रसन्न जानें। आप जो वरदान माँगें वह मैं आपको दे दूँ। मुनि सुतीक्ष्ण जी ने कहा, मैंने कभी वरदान माँगा ही नहीं, क्योंकि क्या झूठा है और क्या सत्य मुझे कुछ भी समझ नहीं पड़ता।

तुमहिं नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई।।
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना।।
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा।।

भा०– हे रघुराज श्रीराम! हे दासों को सुख देनेवाले प्रभु! आपको जो अच्छा लगे वह मुझे दे दीजिये। तब भगवान् श्रीराम ने कहा, हे सुतीक्ष्ण! तुम अविरल भक्ति, वैराग्य, संसार की नश्वरता के ज्ञान तथा सभी श्रेष्ठ गुणों एवं अर्थपंचक के ज्ञान के कोश हो जाओ। सुतीक्ष्ण जी ने कहा कि आपने जो वरदान दिया वह मैं पा गया, अथवा वह तो मैं पहले ही प्राप्त कर चुका हूँ। अब तो मुझे वह दीजिये, जो मुझे भाता है।

विशेष– स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपायस्वरूप, विरोधीस्वरूप और फलस्वरूप के ज्ञान को अर्थपंचक ज्ञान कहते हैं। यही विज्ञान के नाम से जाना जाता है। तथा अनन्योपायत्व, अनर्न्याहत्व और अनन्यशेषत्व अर्थात् भगवान् ही मेरे एकमात्र उपाय हैं, मैं केवल भगवान् के लिए हूँ और मैं केवल भगवान् का हूँ, यही अकार त्रेय का ज्ञान ही यहाँ ज्ञान है।

दो०– अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा निष्काम।।११।।

भा०– हे सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम! आप छोटे भाई लक्ष्मण जी और जानकी जी के सहित धनुष–बाण धारण करके आकाश में चन्द्रमा की भाँति सांसारिक कामनाओं से रहित मेरे हृदय में निरन्तर निवास कीजिये।

एवमस्तु कहि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज ऋषि पासा।।
मुनि प्रनाम करि कह कर जोरी। सुनहु नाथ बिनती एक मोरी।।

भा०– रमा अर्थात् सीता जी के हृदय में निवास करनेवाले भगवान् श्रीराम "एवमस्तु" (ऐसा ही हो) इस प्रकार कहकर प्रसन्न होकर महर्षि कुम्भज के पास चले। सुतीक्ष्ण मुनि ने प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा, हे नाथ! मेरी एक प्रार्थना सुनिये–

बहुत दिवस गुरु दरशन पाए। भए मोहि एहिं आश्रम आए।।
अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं।।

भा०– हे नाथ! मुझे इस आश्रम में आये हुए और गुरुदेव के दर्शन पाये हुए बहुत दिन हो गये। अब मैं आपके साथ ही गुरुदेव श्रीअगस्त्य के पास जाऊँगा। इसमें आपको कोई निहोरा नहीं अर्थात् मैं आपका कृतज्ञ नहीं रहूँगा। मुझे जाना तो था ही और साथ आप मिल गये। अथवा, आप पर मेरा कोई निहोरा नहीं होगा।

देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहँसे द्वौ भाई।।
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा।।

भा०– कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने मुनि की चतुरता देखकर, उनको (सुतीक्ष्ण जी को) अपने साथ ले लिया, दोनों भाई हँसने लगे। मार्ग में अपने उपमा से रहित अलौकिक भक्ति का वर्णन करते हुए, देवभूमि स्वर्ग की रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीराम मुनि श्रीअगस्त्य के आश्रम में पहुँच गये।

तुरत सुतिच्छन गुरु पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ।।
नाथ कोसलाधीश कुमारा। आए मिलन जगत आधारा।।
राम अनुज समेत बैदेही। निशि दिन देव जपत हउ जेही।।

भा०– सुतीक्ष्ण जी तुरन्त गुरुदेव अगस्त्य जी के पास गये और दण्डवत् करके इस प्रकार कहने लगे, हे नाथ! जगत् के आधारस्वरूप, अयोध्यानरेश श्रीदशरथ के पुत्र श्रीराम, आपसे मिलने के लिए अर्थात् आपश्री के दर्शन के लिए आये हैं। हे देव! जिन्हें आप रात–दिन जपते हैं, वे ही परब्रह्म भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी और भगवती विदेहनन्दिनी श्रीसीता के साथ आपके यहाँ पधारे हैं।

सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए।।
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। ऋषि अति प्रीति लिए उर लाई।।

भा०– सुतीक्ष्ण जी के वचन सुनते ही अगस्त्य जी तुरन्त उठ दौड़े और श्रीहरि को देखकर उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू छा गये। दोनों भाई श्रीराम–लक्ष्मण जी अगस्त्य मुनि के चरणकमलों पर पड़ गये और अगस्त्य जी भी अत्यन्त प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिए।

सादर कुशल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी।।
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा।।
जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा।।

भा०– ज्ञानीमुनि अगस्त्य जी ने आदरपूर्वक प्रभु से कुशल पूछकर अपने आश्रम में ले आकर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जी को आसन पर बिठाया और फिर अगस्त्य जी ने प्रभु की बहुत प्रकार से पूजा की और कहा कि मेरे समान कोई दूसरा भाग्यशाली नहीं है। जहाँ तक और भी मुनियों के समूह थे, वे सब सुख के मेघस्वरूप भगवान् श्रीराम को देखकर प्रसन्न हो गये।

दो०– मुनि समूह महँ बैठ प्रभु, सन्मुख सब की ओर।
शरद इंदु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर।।१२।।

भा०– प्रभु श्रीराम मुनि समूह में सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं और सभी मुनिजन प्रभु को इसी प्रकार देख रहे हैं, जैसे चकोर के समूह शरद के चन्द्रमण्डल को निहारता है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम सन प्रभु दुराव कछु नाहीं।।
तुम जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ।।

भा०– तब रघुवीर श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से कहा, हे प्रभु! आपसे कुछ भी छिपाव नहीं है। आप जानते हैं, मैं जिस कारण से यहाँ आया हूँ। हे तात! इसलिए मैंने आपको कहकर नहीं समझाया है।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही।।
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूँछेहु नाथ मोहि का जानी।।

भा०– हे प्रभु! अब आप मुझे वही मंत्र अर्थात् सम्मति दीजिये जिस प्रकार से मैं मुनियों के द्रोही असुरों को मार सकूँ। प्रभु की वाणी सुनकर अगस्त्य जी मुस्कुराये, हे नाथ! आपने मुझे क्या जानकर पूछा है?

तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी।।
ऊमरि तरु बिशाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।।
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना।।

ते फल भक्षक कठिन कराला। तव डर डरत सदा सोउ काला।।
ते तुम सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं।।

भा०– हे अघारी अर्थात् पापों के नाशक! आप ही के भजन के प्रभाव से मैं आपकी कुछ महिमा को जानता हूँ। आपकी माया विशाल गूलर के वृक्ष के समान है। अनेक ब्रह्माण्डों के समूह उसी के फल हैं। चर–अचर अर्थात् चित्–अचित्, चेतन–जड़ जीव उन फलों में रहनेवाले छोटे–छोटे जन्तु मच्छरों के समान हैं जो उन ब्रह्माण्डरूप फलों के भीतर रहते हैं और अपने अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते अर्थात् सीमित ज्ञानवाले होते हैं। उन ब्रह्माण्डरूप फलों का भक्षण करने वाला, कठिन भयंकर वह काल भी आपके भय से निरन्तर डरता रहता है। वही आप सम्पूर्ण लोकों के स्वामी श्रीराम मनुष्य की भाँति मुझसे प्रश्न कर रहें हैं।

विशेष– यहाँ ऊदुम्बर शब्द का अपभ्रंश ही ऊमरि है, जिसका अर्थ होता है, गूलर।

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता।।
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।।
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्मरति मानउँ।।
संतत दासन देहु बड़ाई। ताते मोहि पूँछेहु रघुराई।।

भा०– हे कृपा के भवन श्रीराम! मैं आप से यह वरदान माँगता हूँ कि, आप मेरे हृदय में भगवती श्रीसीता जी एवं लक्ष्मण जी के साथ निवास कीजिये। यद्यपि आप खण्डरहित और अन्तरहित परब्रह्म परमात्मा हैं जो अनुभव गम्य हैं, जिन्हें सन्त भजते हैं। आपके इस प्रकार के रूप को मैं जानता भी हूँ और व्याख्यान करके कहता भी हूँ, तथापि सगुणब्रह्म में ही मैं बारम्बार अपना प्रेम मानता हूँ अर्थात् निर्गुणब्रह्म को जानकर भी सगुणब्रह्म में प्रेम करता हूँ। आप दासों को निरन्तर बड़प्पन देते हैं। हे रघुकुल के राजा श्रीराम! इसलिए आपने मुझसे पूछा है।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ।।
गोदावरी नदी तहँ बहई। चारिहु जुग प्रसिद्ध सो अहई।।

भा०– हे प्रभु! एक परम मनोहर अर्थात् सुन्दर और पवित्र स्थान है, उसका पंचवटी नाम है। वहाँ पाँच वट के वृक्ष हैं, इसलिए उसे पंचवटी कहते हैं। वहाँ पर गोदावरी नदी बहती हैं, जो चारों युगों में प्रसिद्ध हैं।

दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र स्राप मुनिवर कर हरहू।।
बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन पर दाया।।

भा०– हे प्रभु! दण्डक वन को पवित्र कर दीजिये और मुनिश्रेष्ठ गौतम जी के शाप के प्रभाव को अब समाप्त कर दीजिये। हे रघुकुल के राजा! श्रीराम दण्डक वन के अर्न्तगत् उसी पंचवटी नामक स्थान में आप निवास कीजिये और सभी मुनियों पर दया कीजिये।

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी नियराई।।
दिव्य लता द्रुम प्रभु मन भाये। निरखि राम तेउ भये सुहाये।।
लखन राम सिय चरन निहारी। कानन अघ गा भा सुखकारी।।

भा०– मुनि की आज्ञा पाकर श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी से उपलक्षित भगवान् श्रीराम चल पड़े और शीघ्र ही पंचवटी जा पहुँचे। स्वर्गीय लताओं से आलिंगित वृक्ष प्रभु के मन को भा गये, वे भी (लता और वृक्ष) प्रभु श्रीराम के

दर्शन करके बहुत सुहावने हो गये। लक्ष्मण जी, भगवान् श्रीराम एवं भगवती श्रीसीता के श्रीचरणों के दर्शन करके दण्डक वन का पाप चला गया और वह सुखकर हो गया।

दो०- गीधराज सों भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे परन गृह छाइ।।१३।।

भा०- बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीराम की गिद्धराज से भेंट अर्थात् मित्रता हुई। प्रभु पर्णकुटी बनाकर गोदावरी नदी के समीप निवास किये।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।।
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए।।
खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं।।
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने जब से पंचवटी में निवास किया तभी से सभी मुनि सुखी हो गये और सबका भय समाप्त हो गया। पर्वत, वन, नदी और तालाब ये सब दिनोदिन छाँव से युक्त और अत्यन्त सुहावने होने लगे। पक्षियों और हिरणों के समूह आनन्दित रहने लगे। भ्रमर मधुर गुंजार करते हुए छवि प्राप्त कर रहे हैं अर्थात् सुन्दर लग रहे हैं। उस वन का वर्णन सर्पराज शेष भी नहीं कर सकते, जहाँ प्रकट अर्थात् सगुण साकार रूप में रघुवीर अर्थात् जीवों के विशेष प्रेरक श्रीराम विराज रहे हैं।

विशेष- *लंघन्ति पाप पुण्य मार्गान् ये ते रघवः जीवाः तान् विशेषेण इरयति, अर्थात् प्रेरयति यः सः रघुवीरः।*

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा।।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।।

भा०- एक बार जब प्रभु श्रीराम सुखासन पर बैठे हुए थे, अथवा, सुखपूर्वक आसीन थे, उस समय लक्ष्मण जी ने छल से विहीन वचन कहे, हे प्रभु! यद्यपि आप चर और अचर सहित देवताओं, मनुष्यों और मुनियों के स्वामी हैं, फिर भी मैं आप से अपने प्रभु की भाँति पूछ रहा हूँ अर्थात् विशेषाधिकार का प्रयोग कर रहा हूँ। हे देव! मुझे वही तत्त्व समझाकर कहिये, जिससे सब कुछ छोड़कर आपकी श्रीचरणरज की सेवा कर सकूँ। मुझे मायातत्त्व को समझाइये और ज्ञान और वैराग्य के सम्बन्ध में कहिए। मुझे वह भक्ति समझाइये, जिसके कारण आप जीवों पर दया करते हैं।

दो०- ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, शोक मोह भ्रम जाइ।।१४।।

भा०- हे प्रभु! ईश्वर और जीव के बीच वर्तमान सम्पूर्ण भेदों को समझाकर कहिये, जिससे मुझे आपके श्रीचरणों में भक्ति हो जाये और मेरा शोक, मोह तथा भ्रम चला जाये।

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मन मति चित लाई।।

भा०- भगवान् श्रीराम बोले, हे भैया लक्ष्मण! अब मैं थोड़े में ही सब कुछ समझाकर कहता हूँ। हे भैया लक्ष्मण! इसे मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनिये इसमें अहंकार मत लगाइयेगा, अन्यथा शास्त्र समझ में नहीं आयेगा।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बश कीन्हे जीव निकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

भा०– यह मैं हूँ यह मेरा है, यह तू है यह तेरा है, इस प्रकार जगत् में अपने सम्बन्धों की कल्पना ही माया है, जिसने सम्पूर्ण जीवों को अपने वश में कर रखा है। यह मन जहाँ तक इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों में जाता है, हे भाई! वह सब माया ही समझो।

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बश जीव परे भवकूपा।।
एक रचइ जग गुन बश जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।

भा०– उस माया का भी तुम भेद सुनो। वह माया भी विद्या और अविद्या नामक दो भेदों से युक्त हैं। एक अर्थात् अविद्या नामक माया अत्यन्त दुष्ट और दुःखरूप है, जिसके वश में हुए ये जीव संसार के कूप में पड़े हैं। एक अर्थात् विद्या जगत् की रचना करती है, जिसके वश में सत्व, रजस, और तमस ये तीनों गुण हैं। वह प्रभु से प्रेरित होकर जगत् की रचना करती है, उसके पास निजी कोई बल नहीं है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देखिय ब्रह्म रूप सब माहीं।।
कहिय तात सो परम बिरागी। तृण सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।।

भा०– ज्ञान उसे कहते हैं, जहाँ मान आदि एक भी दोष नहीं रहता और जहाँ सब में ब्रह्मरूप के दर्शन होते हैं। हे तात! उसी को परम वैराग्यवान कहना चाहिये जो अणिमादि सिद्धियों और तीनों गुणों को तृण के समान त्याग देता है।

दो०– माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्ब पर, माया प्रेरक शीव।।१५।।

भा०– जो अपने को माया का ईश्वर नहीं समझता उसी को जीव कहते हैं और ईश्वर भगवद्विरुद्धों को बन्धन तथा भगवद्भक्तों को मोक्ष देनेवाला अथवा अपने भक्तों को मोक्ष देने वाले सभी कारणों तथा चित्–अचित् वर्ग से परे माया का प्रेरक तथा शिव अर्थात् कल्याणकारी है।

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोक्षप्रद बेद बखाना।।
जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।।
सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।।
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइ अनुकूला।।

भा०– धर्म से वैराग्य तथा योग से ज्ञान उपलब्ध होता है। वेदों ने कहा है कि ज्ञान मोक्ष को देने वाला है। हे भाई! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाता हूँ, वही भक्तों को सुख देने वाली मेरी भक्ति है। वह स्वतंत्र है, उसका कोई दूसरा अवलम्ब नहीं है। ज्ञान और विज्ञान सब उसी के अधीन हैं। हे तात! मेरी भक्ति उपमारहित, सुखों का कारण है, जब सन्त अनुकूल होते हैं, तभी वह मिलती है।

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।।
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।।
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम चरन उपज अनुरागा।।
श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं।।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा।।
मम गुन गावत पुलक शरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बश मैं ताके।।

भा०- हे लक्ष्मण! अब मैं भक्ति के साधनों को बखानकर कहता हूँ इसका मार्ग बहुत ही सुगम है, इससे प्राणी मुझे पा जाते हैं। सर्वप्रथम जन्मना ब्राह्मण एवं संस्कार से द्विज, सांगोपांग वेदपाठ से विप्र और वेदज्ञ होने से श्रोत्रिय कहे जानेवाले ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रीति होनी चाहिये और वेदविहित और वेद की परम्परा के अनुसार अपने–अपने कर्म में निष्ठापूर्वक रत हो। फिर इसी का फल है विषयों का वैराग्य अर्थात् वेद विहित कर्म में निरत होने से इसके फल के रूप में साधक को विषयों से वैराग्य हो जाता है। फिर उसमें मेरे चरणों के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, फिर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म निवेदन यह नौ भक्तियाँ दृढ़ होती है और मेरी लीला के प्रति मन में अत्यन्त अनुराग हो जाता है। सन्तों के श्रीचरणकमलों में अत्यन्त प्रेम, मन, कर्म और वचन के द्वारा दृढ़ नियमपूर्वक मेरा भजन करना, गुरु, पिता, माता, पति, देवता यह सब मुझी को जान ले और दृढ़ सेवा करे। मेरे गुणों को गाते–गाते जब शरीर में पुलकावलि हो जाये, वाणी गदगद हो, नेत्रों से अश्रुपात हो, काम, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, ये सब जिनके पास न हो, हे भैया! मैं निरन्तर उसी के वश में रहता हूँ।

दो०- बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहिं निष्काम।
तिन के हृदय कमल महँ, करउँ सदा बिश्राम।।१६।।

भा०- जो मन, कर्म और वचन से एकमात्र मेरा ही आश्रय लेकर निष्काम भाव से भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं निरन्तर विश्राम करता हूँ।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरननि सिर नावा।।
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती।।

भा०- भगवान् श्रीराम के मुख से भक्ति–योग सुनकर लक्ष्मण जी ने बहुत सुख प्राप्त किया और उन्होंने प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में सिर नवाया। इस प्रकार से वैराग्य, ज्ञान, गुण, नीति कहते हुए श्रीराम के पंचवटी में निवास करते कुछ दिन बीत गये।

विशेष- यहाँ पर लक्ष्मणजी ने प्रभु से अर्थपंचक सिद्धान्त के पाँच प्रश्न किये, जिनमें माया का प्रश्न, विरोधीस्वरूप, ज्ञान, वैराग्य, साधन भक्ति का प्रश्न, उपायस्वरूप ईश्वर और जीव का भेद परस्वरूप और स्वस्वरूप है वही भगवत् चरण में रति अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति है, जो शोक, मोह, भ्रम की समाप्ति के फलस्वरूप है। श्रीराम ने भी इसीलिए क्रम से पहले माया का विवेचन, फिर ज्ञान, वैराग्य का विवेचन, पुनः ईश्वर, जीव के भेद का विवेचन और पुनः प्रेमलक्षणा भक्ति का विवेचन किया। अर्थपंचक की श्लोकतालिका इस प्रकार है– प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं, प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्ति उपायं फलं चैव, तथा प्राप्ति विरोधी च।। अर्थात् परस्वरूप, स्वस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप और विरोधीस्वरूप यही अर्थ पंचक है।

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।

भा०- शूर्पणखा रावण की बहन थी, जो सर्पिणि के ही समान भयंकर और दुष्ट हृदयवाली थी। वह शूर्पणखा एक बार पंचवटी गई और दोनों राजकुमारों श्रीराम, एवं लक्ष्मणजी को देखकर व्याकुल हो गई।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहिं बिलोकी।।

भा०– भुशुण्डि जी गरुड़ जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे सर्पों के शत्रु गरुड़ देव जी! भ्राता, पिता और पुत्र इन तीनों को नारी, पुरुष की दृष्टि से, सुन्दरता की दृष्टि से अर्थात् पौरुष सम्पन्न सुन्दर देखते ही विकल हो जाती है, मन को नहीं रोक सकती, जैसे सूर्यनारायण को देखकर चन्द्रकान्त मणि पिघल जाता है। तात्पर्य यही है कि नारी को अपने पति के अतिरिक्त किसी भी नर में पौरुष और सुन्दरता की अनुभूति नहीं करनी चाहिये। इसी से शूर्पणखा का पतन हुआ और भगवान् श्रीराम का पतन इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने शूर्पणखा में मनोहरता की अनुमति नही की। भ्राता, पिता अथवा पुत्र कोटि का पुरुष जब नारी में मनोहरता देखने लगता है, तब वह विकल हो जाता है, मन को नहीं रोक पाता, जैसे चन्द्रकान्त मणि सूर्य को देखकर पिघलती है, उसी प्रकार किसी भी कोटि का पुरुष जब नारी के सौन्दर्य की अनुभूति करता है, तब वह पतित होता है।

विशेष– संयोग से श्रीराम जी की शूर्पणखा के प्रति तीनों कोटियाँ है। राजा की बहन होने के कारण शूर्पणखा के श्रीराम जी भ्राता हैं। जगत् पिता होने से प्रभु शूर्पणखा के पिता हैं और शूर्पणखा की अपेक्षा बहुत छोटी अवस्था होने के कारण श्रीराम जी शूर्पणखा के पुत्र स्थानी भी हैं। परन्तु शूर्पणखा ने श्रीराम जी में मनोहरता और पौरुष दोनों देखा। यथा– **देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।** (मानस, ३.१७.४). और **तुम सम पुरुष न मो सम नारी।** (मानस ३.१७.८).ठीक इसके विपरीत भगवान् श्रीराम ने न तो शूर्पणखा में मनोहरता का बोध किया और न ही नर–सहचारिणी नारीभाव का, वे तो श्रीसीता को ही देखते रहे। यथा– **सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता** (मानस, ३.१७.११)।. यहाँ यह ध्यान रहे कि इस दोहे की पाँचवीं पंक्ति में प्रयुक्त पुरुष और मनोहर शब्द भाववाचक हैं और भ्राता, पिता तथा पुत्र ये तीनों शब्द सप्तम्यन्त हैं। यहाँ विभक्ति का लोप हुआ है अर्थात् जब नारी भ्राता, पिता और पुत्र में पौरुष और मनोहर अर्थात् मनोहरता सौन्दर्य देखेगी तब पतित होगी, परन्तु जब वह इन तीनों को इनके मूलभाव से देखेगी अर्थात् भ्राता को भ्रातृत्व से, पिता को पितृत्व से और पुत्र को पुत्रत्व से देखेगी तब उसका पतन सम्भव ही नहीं है। इसी प्रकार पुरुष–पक्ष में भी नारी शब्द लुप्तविभक्तिकसप्तम्यन्त है अर्थात् जब भ्राता, पिता तथा पुत्र वर्ग का पुरुष नारी में सौन्दर्यबोध करेगा और उसमें नरसहचारिणी भाव देखेगा तब उसका पतन होगा। यहाँ श्रीराम ने माया रूपधारिणी शूर्पणखा में सौन्दर्य नहीं देखा, इसलिए वे स्थिर रहे। शूर्पणखा ने सौन्दर्य भी देखा और पुरुषत्व भी। यथा– **मन माना कछु तुमहिं निहारी**–मानस, ३.१७.१०. और **तुम सम पुरुष न मो सम नारी**–मानस, ३.१७.८).

रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।

भा०– शूर्पणखा राक्षसी माया के बल से सुन्दरी नारी का रूप धारण करके प्रभु श्रीराम के पास जाकर बहुत मुस्कुराकर यह वचन बोली, युवक! इस संसार में न तो कोई तुम समान सुन्दर पुरुष है और न ही मेरे समान कोई सुन्दर नारी, ब्रह्मा जी ने विचार कर तुम्हारा और मेरा यह संयोग रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं।।
ताते अब लगि रहेउँ कुमारी। मन माना कछु तुमहि निहारी।।

भा०– मेरे अनुरूप संसार में पुरुष (वर) नहीं है, मैंने तीनों लोकों में खोजकर देख लिया है, इसलिए अब तक मैं कुमारी अर्थात् अविवाहिता रही हूँ। तुम्हें देखकर मेरा मन कुछ माना है, क्योंकि तुम साँवले हो, इसलिए मेरा मन पूरा नहीं माना फिर भी काम चल जायेगा।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी।।

भा०- भगवती श्रीसीता को देखकर प्रभु भगवान् श्रीराम ने यह बात कही कि, मेरा छोटा भ्राता कुमार है। शूर्पणखा, लक्ष्मण जी के पास गई। लक्ष्मण जी उसे शत्रु की बहन जानकर, प्रभु श्रीराम को देखकर कोमल वाणी में बोले–

विशेष- मेरे छोटे भ्राता होने पर भी लक्ष्मण सीता जी की दृष्टि से पुत्र हैं और लड़के हैं, यथा–**जल को गए लक्खन हैं लरिका।** (कवितावली २.१२)। अतः सीता जी की दृष्टि से अभी वे अविवाहित हैं। चूँकि तुम विवाहित होकर भी, पति की अनुपस्थिति से स्वयं को कुमारी अर्थात् अविवाहिता बता रही हो, अतः तुम्हारी ही परिभाषा में मैं लक्ष्मण की धर्मपत्नी उर्मिला की अनुपस्थिति से लक्ष्मण को कुमार अर्थात् अविवाहित घोषित कर रहा हूँ। चूँकि मुझे देखकर तुम्हारा मन कुछ माना है क्योंकि मैं श्याम हूँ, अतः लक्ष्मण को स्वीकार करो, क्योंकि वे गौर हैं और वे 'कुमार' अर्थात् अपनी सुन्दरता से कामदेव को भी कुत्सित अर्थात् निन्दित कर चुके हैं **कुत्सितः मारः येन् स कुमारः।** तुम राजभगिनी हो अतः रानी न सही तो राजकुमार की पत्नी होकर तुम्हें सन्तोष करना होगा। यहाँ मैं राजा हूँ, भरत युवराज हैं। यथा–**राजा राम जानकी रानी**–मानस, २.२७३.६. और **भरतहिं राम करहिं जुबराजा**–मानस, २.२७३.७. लक्ष्मण जी कुमार हैं, **करि बिनती समझाउ कुमारा**–मानस ४.२०.३. अतः उनकी पत्नी बनकर तुम कुँवरानी तो बन ही जाओगी। इसलिए भगवान् श्रीराम ने झूठ न बोलकर सत्य वस्तुस्थिति कही–**अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।** अर्थात् मेरे छोटे भ्राता लक्ष्मण कुमार हैं, मुझ से अवस्था में छोटे हैं।

सुंदरि सुनु मैं उन कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।।
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा।।
सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन शुभ गति ब्यभिचारी।।
लोभी जस चह चारि गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी।।

भा०- हे सुन्दरी! सुन, मैं उन प्रभु श्रीराम का दास हूँ, मुझ पराधीन के यहाँ तेरी सुख-सुविधा नहीं हो सकेगी। श्रीराम स्वामी, सर्वसमर्थ और अयोध्यापुरी के राजा हैं अर्थात् वहाँ पूर्व में राजा बहुपत्निक होते रहे तो यहाँ भी तुम दूसरी पत्नी हो जाओगी तो क्या आपत्ति हो जायेगी? वह जो कुछ करें उन्हें सब कुछ शोभा देता है, पर मेरे लिए यह सम्भव नहीं है क्योंकि न तो मैं प्रभु हूँ और न ही कोसलपुर का राजा। यदि सेवक सुख चाहता हो, भिखारी सम्मान चाहता हो, व्यसनी अर्थात् मदिरा आदि के व्यसन से युक्त धनसंग्रह की इच्छा करे, व्यभिचारी अर्थात् चरित्रहीन, (परनारी-लम्पट) शुभगति चाहता हो, लोभी यश चाहे और अहंकारी चारि अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की इच्छा करे, तो ये प्राणी आकाश दुहकर दूध ग्रहण करना चाहते है अर्थात् इनकी अपेक्षा उसी प्रकार निरर्थक सिद्ध होगी जैसे आकाश से दूध की अपेक्षा।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई।।
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई।।

भा०- पुनः वह लक्ष्मण जी के यहाँ से लौटकर श्रीराम के निकट आई। प्रभु श्रीराम ने उसे फिर लक्ष्मण जी के पास भेजा। लक्ष्मण जी ने क्रुद्ध होकर कहा कि तेरा वरण तो वही कर सकता है जो तिनके के समान तोड़कर लज्जा को छोड़ चुका हो।

विशेष– इस प्रसंग में शूर्पणखा को दो बार लक्ष्मण जी के पास भेजकर प्रभु श्रीराम उसका सुधार करना चाहते थे, क्योंकि लक्ष्मण जी जीवाचार्य हैं, कदाचित् इसका कल्याण हो जाये, परन्तु ऐसा नहीं हो पाया।

तब खिसियानि राम पहँ गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।।
सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई।।

भा०– तब क्रोध में तिलमिलायी हुई शूर्पणखा भगवान् श्रीराम के पास गई और श्रीसीता को खा जाने के उद्देश्य से भयंकर रूप प्रकट किया। श्रीसीता को भयभीत देखकर, रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी को संकेत में समझाकर कह दिया कि इसका नाक, कान काट लो।

विशेष– लक्ष्मण जी को भगवान् श्रीराम ने कैसे समझाया इसकी चर्चा स्वयं मानसकार बरवै रामायण में करते हैं–

बेद नाम कहि, अँगुरिन, खंडि आकास।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास।। (बरवै रामायण ३१)

अर्थात् पहले भगवान् श्रीराम ने चार अंगुलियाँ दिखाईं, वेद चार होते हैं और वेद को संस्कृत में श्रुति कहते हैं और फिर तर्जनी अंगुली ऊपर करके आकाश का संकेत किया, संस्कृत में आकाश को नाक कहते हैं तथा नासिका का संक्षिप्त नाम नाक भी है, फिर अंगुली को नीचे करके काटने का संकेत किया, जिसे लक्ष्मण जी तुरन्त समझ गये।

दो०– लछिमन अति लाघव तेहिं, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह।।१७।।

भा०– लक्ष्मण जी ने अत्यन्त शीघ्रता से शूर्पणखा को नाक, कान के बिना कर दिया अर्थात् उसके नाक, कान काटकर शूर्पणखा के ही हाथ में दे दिया, मानो शूर्पणखा के हाथ में कटे हुए दोनों कान और नासिका को रखकर लक्ष्मण जी ने शूर्पणखा के हाथों से ही रावण को चुनौती दे दी अर्थात् ललकार दिया या युद्ध के लिए सावधान रहने की सूचना दे दी।

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव शैल गेरु कै धारा।।
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तस पौरुष बल भ्राता।।

भा०– शूर्पणखा नाक, कान के बिना अत्यन्त विकराल हो गई। उसके कटे हुए नाक और कान के स्थान से ऐसे रक्त की धारा बह चली, मानो पर्वत से गेरु की लालधारा चल पड़ी हो। शूर्पणखा विलाप करती हुई खर–दूषण के पास गई और खर से बोली, हे भाई! तुम्हारे बल और पौरुष को धिक्कार है।

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सैन बनाई।।
चौदह सहस सुभट सँग लीन्हे। जिन सपनेहुँ रन पीठि न दीन्हे।।

भा०– खर ने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब कुछ समझाकर कहा। यह सुनकर गुल्म के अधिपति खर ने सेना सजा ली और उन चौदह सहस्र वीर सैनिकों को अपने साथ लिया जिन्होंने स्वप्न में भी युद्ध में पीठ नहीं दिखाया था।

धाए निशिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा।।
नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा।।

भा०- अनेक वाहनों को सजाकर अनेक आकार वाले, अनेक अस्त्र-शस्त्र लिए हुए भयंकर अपार राक्षसों के सैन्य समूह दौड़े, मानो पंखों से युक्त कज्जल पर्वत के समूह ही सामने आ रहे हों।

सूपनखा आगे करि लीनी। अशुभ रूप श्रुति नासा हीनी।।
असगुन अमित होहि भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबश सब झारी।।

भा०- अशुभ रूपवाली कान और नाक से रहित शूर्पणखा को ही खर ने अपनी सेना के आगे कर लिया। उस समय सीमा से रहित भयंकर अपशकुन होने लगे, उनसे इन राक्षस सैनिकों को डर नहीं लग रहा था, क्योंकि ये सारे मृत्यु के विवश हो चुके थे।

गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटक भट अति हरषाहीं।।
कोउ कह जियत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई।।

भा०- वीर गरजते हैं, ललकारते हैं, आकाश मे उड़ जाते हैं, अपनी सेना देखकर वीर सैनिक बहुत प्रसन्न होते हैं। कोई कहता है कि, दोनों भाई राम, लक्ष्मण को जीते जी पकड़ लो। पकड़कर अथवा, बंदी बनाकर उनके साथ रहनेवाली नारी को छीन लो।

धूरि पूरि नभ मंडल रहेऊ। राम बोलाइ अनुज सन कहेऊ।।
लै जानकिहिं जाहु गिरि कंदर। आवा निशिचर कटक भयंकर।।

भा०- आकाशमण्डल धूल से भर गया, तब भगवान् श्रीराम ने बुलाकर छोटे भाई लक्ष्मण जी से कहा, लक्ष्मण! जनकनन्दिनी को लेकर पर्वत की गुफा में जाकर छिप जाओ, क्योंकि इनके समक्ष राक्षसों का वध नहीं किया जा सकेगा, इस समय भयंकर राक्षसों की सेना आ गई है।

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री शर धनु पानी।।
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा।।

भा०- सजग रहना, इस प्रकार प्रभु की वाणी सुनकर, हाथ में धनुष-बाण लेकर सीता जी के साथ लक्ष्मण जी पर्वत की गुफा में चले गये। इधर श्रीराम ने देखा की शत्रुदल निकट चला आया है उन्होंने हँसकर कठिन कोदंड अर्थात् धनुष चढ़ाया।

छं०- कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटा जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत कुधर पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों।।
कटि कसि निषंग बिशाल भुज गहि चाप बिशिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै।।

भा०- कठिन अर्थात् शत्रुओं की ओर अभेद्य शारंग धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का जूट बाँधते हुए प्रभु किस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकत मणि के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों के साथ दो सर्प लड़ रहे हों। कटि प्रदेश में तरकस कसकर विशाल भुजा से धनुष हाथ में लेकर, बाण सुधारकर प्रभु खर-दूषण की सेना को उसी प्रकार उत्साह से निहार रहें हैं, जैसे श्रेष्ठ हाथियों के समूह को देखकर सिंह सतर्कता से देखता है।

सो०- आइ गए बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहिं घेरत दनुज।।१८।।

भा०- पकड़ो-पकड़ो कहकर खर के चौदह सहस्र सैनिक अपनी पंक्तियाँ तोड़कर उसी प्रकार प्रभु श्रीराम को आकर घेर लिए, जैसे प्रात:काल अकेले देखकर बालसूर्य को दस हजार मंदेह नामक राक्षस घेर लेते हैं।

विशेष– पौराणिक कथा के अनुसार सूर्यनारायण के उदय के समय दस हजार मंदेह नामक राक्षस प्रतिदिन घेर लेते हैं फिर सूर्यनारायण ब्राह्मणों द्वारा दिये हुए सूर्यार्घ्यादि आयुधों से प्रतिदिन प्रातः उन मंदेह राक्षसों को मार डालते हैं और रात्रि में वे फिर जन्म ले लेते हैं।

प्रभु बिलोकि शर सकहिं न डारी। थकित भये रजनीचर झारी।।
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन।।

भा०– प्रभु श्रीराम को देखकर राक्षस उन पर बाण नहीं चला सक रहे हैं, सभी राक्षस सैनिक स्तब्ध रह गए। मंत्रियों को बुलाकर खर–दूषण बोले, (खर ने कहा, यह कोई राजकुमार है, दूषण ने कहा, ये मनुष्यों के आभूषण हैं।) दोनों ने संवेत स्वर में कहा–

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते।।
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई।।

भा०– संसार में जितने भी नाग, दैत्य, देवता, नर और मुनि हैं, सबको हमने देखा भी, जीता भी और कितनों को मार डाला, परन्तु हे सभी भाइयों! हमने अपने सम्पूर्ण जीवन में ऐसी सुन्दरता नहीं देखी।

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीवत भवन जाहु द्वौ भाई।।

भा०– यद्यपि इन्होंने मेरी बहन को कुरूप कर दिया है, पर इतने सुन्दर, अनुपम पुरुष बध लायक नहीं हैं अर्थात् अवध्य हैं। उनसे जाकर कहो कि, (गुफा में) छिपायी हुई अपनी नारी को शीघ्र दे दो और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाओ।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु।।
दूतन कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई।।

भा०– हे दूतों! मेरा कहा हुआ संदेश तुम लोग जाकर उसे अर्थात् बड़े राजपुत्र को सुनाओ और उनका संदेश सुनकर मेरे यहाँ शीघ्र आ जाओ। दूतों ने श्रीराम को खर का संदेश कहा, यह सुनकर श्रीराम मुस्करा कर बोले–

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम से खल मृग खोजत फिरहीं।।
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं।।

भा०– हम तो क्षत्रिय हैं, वन में आखेट करते रहते हैं, तुम जैसे खल मृगों को ढूँढते रहते हैं, बलवान शत्रु से भी नहीं डरते, एक बार तो काल से लड़ जाते हैं।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक।।
जौ न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू।।

भा०– यद्यपि हम लोग मनुष्य हैं, फिर भी राक्षसकुल का नाश करने वाले हैं, मुनियों के पालक हैं और खलों को नष्ट करनेवाले वीर पिता श्रीदशरथ के पुत्र हैं। यदि तुम लोगों के पास बल न हो तो घर लौट जाओ। युद्ध से विमुख होकर पीठ दिखाने पर मैं किसी को नहीं मारता।

रन चढ़ि करिय कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई।।
दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ।।

भा०– रणभूमि में आकर तथा युद्ध के सिद्धान्तों पर आरुढ़ होकर कपटपूर्ण चतुरता करना और शत्रु पर कृपा का प्रर्दशन करना तो बहुत–बड़ी कायरता है। श्रीराम के पास से तुरन्त लौटकर दूतों ने सब कुछ कह दिया। प्रभु का प्रत्युत्तर सुनकर खर–दूषण अपने हृदय में बहुत जल उठे।

छं०– उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु बिकट भट रजनीचरा।
शर चाप तोमर शक्ति शूल कृपान परिघ परशु धरा।।
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा।।

भा०– खर–दूषण के हृदय जले और उन्होंने कहा– "धनुष, बाण, तोमर, शक्ति (बर्छी), त्रिशूल, कृपाण, परिघ और फरसे को लेकर हे भयंकर राक्षसों! मारो, दौड़ौ।" प्रभु श्रीराम ने प्रथम ही कठोर और भयंकर धनुष का टंकार किया, यह सुनकर राक्षस सैनिक बहरे और व्याकुल हो गये। उस अवसर पर उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा।

दो०– सावधान होइ धाए, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहुभाँति।।१९(क)।।

तिन के आयुध तिल सरिस, करि काटे रघुबीर।
तानि शरासन स्रवन लगि, पुनि छाड़े निज तीर।।१९(ख)।।

भा०– शत्रु श्रीराम को अपनी अपेक्षा सबल जानकर राक्षस सावधान होकर दौड़े और भगवान् श्रीराम पर अनेक प्रकार से अस्त्र–शस्त्रों की वर्षा करने लगे। रघुवीर अर्थात् रघुकुल के पराक्रमी वीर श्रीराम ने उन राक्षसों के आयुधों (अस्त्र–शस्त्रों को) तिल के समान करके काट दिया। पुनः धनुष कान तक खींचकर अपने बाण छोड़े।

छं०– तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिशिख निशित निकाम।।१।।
अवलोकि खर तर तीर। मुरि चले निशिचर बीर।
एक एक को न सम्हार। करैं तात भ्रात पुकार।।२।।

भा०– तब श्रीराम के भयंकर बाण चले, वे ऐसे फुंकार कर रहे थे, मानो बहुत से सर्प हों। श्रीराम युद्ध में कुपित हो गये और उनके अत्यन्त तीखे बाण चल पड़े। अत्यन्त तीखे बाणों को देखकर वीर राक्षस युद्ध से मुड़ चले, एक–एक को नही सम्भाल रहा था सभी लोग "अरे बाप–अरे भाई" कहकर चिल्ला रहे थे।

कोउ कहै खर का कीन्ह। जो जुद्ध इन सन लीन्ह।
जाके बान अतिहिं कराल। ग्रसैं आय मानहु ब्याल।।३।।

भा०– कोई कह रहा था कि खर ने यह क्या कर डाला, जो इनसे युद्ध ले लिया, जिनके बाण इतने भयंकर हैं, जो सर्प के समान आकर हमें खाये जा रहे हैं।

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ।
तेहिं बधव हम निज पानि। फिरे मरन मन महँ ठानि।।४।।

भा०– फिर तीनों भाई खर, दूषण और त्रिशिरा बहुत क्रुद्ध हुए और बोले, जो भी युद्ध से भाग जायेगा उसे हम अपने ही हाथ से मार डालेंगे। फिर मन में मरने का निश्चय करके वे राक्षस सैनिक युद्ध के लिए लौटे।

आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार।
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष शर संधानि।।५।।

छाड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिशाच।
उर शीष भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महिं परन।।६।।

भा०- वे अनेक प्रकार के शस्त्रों द्वारा सामने से प्रहार करने लगे। प्रभु श्रीराम ने शत्रुओं को बहुत कुपित समझकर धनुष पर बाण संधान करके बहुत से बाण छोड़े उनसे भयंकर माँसाहारी राक्षस कटने लगे। जहाँ–तहाँ पृथ्वी पर राक्षसों के हृदय, सिर, भुजायें, हथेलियाँ और चरण कटकर गिरने लगे।

चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान।
भट कटत तन शत खंड। पुनि उठत करि पाषंड।।७।।

भा०- बाणों के लगने से राक्षस वीर चिल्लाते थे उनके पर्वत के समान धड़ गिर रहे थे। राक्षस वीरों के शरीर सैकड़ों खण्डों में कट रहे थे, फिर भी वे पाखण्ड करके उठ जाते थे।

नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड।
खग कंक काक शृंगाल। कटकटहिं कठिन कराल।।८।।

भा०- आकाश में बहुत सी भुजायें और सिर उड़ रहे थे और बिना सिर के राक्षसों के धड़ दौड़ रहे थे। गृध्र, कौवे, चील, गीदड़ कठिन और भयंकर कटकटाहट कर रहे थे।

छं०- कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिशाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं।।
रघुबीर बान प्रचंड खंडहि भटन के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा।।९।।

भा०- गीदड़ कटकटा रहे हैं, भूत, प्रेत और पिशाच कटी हुई खोपड़ियों का संचय कर रहे हैं अर्थात् इकट्ठे कर रहे हैं। वेताल लोगों के सिरों का ताल बजा रहे हैं, योगिनियाँ नाच रही हैं। रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के भयंकर बाण राक्षस भटों के हृदय, भुजा और सिरों को काट रहे हैं। जहाँ–तहाँ राक्षसों के धड़ पड़ते और फिर उठकर लड़ते हैं और भयंकर वाणी में "धरो, पकड़ो" इस प्रकार कहते हैं।

अंतावरी गहि उड़त गीध पिशाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं।।
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिशिरादि खर दूषन फिरे।।१०।।

भा०- गृध्र पक्षी राक्षसों की अंतड़ियों को लेकर उड़ते हैं और उन्हें हाथ में लेकर पिशाच दौड़ते हैं मानो संग्रामपुर में रहनेवाले बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हों। भगवान् श्रीराम के द्वारा बहुत से वीर मारे गये, बहुत से गिराये गये, बहुतों के हृदय फाड़ डाले गये और बहुत से वीर अपने फटे हुए हृदयों के साथ कराहते हुए समर–भूमि में पड़े हैं। इस प्रकार अपने दल के वीरों को देखकर, त्रिशिरा, खर–दूषण आदि वीर सेनापति युद्ध करने के लिए लौटे।

शर शक्ति तोमर परशु शूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निशाचर डारहीं।।
प्रभु निमिष महँरिपु शर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिशिख उर माझ मारे सकल निशिचर नायका।।११।।

भा०– क्रुद्ध होकर अनगिनत राक्षस रघुवीर भगवान् श्रीराम पर एक ही साथ बाण, बर्छी, तोमर, फरसे और तलवार फेंकते हैं। प्रभु श्रीराम ने एक ही क्षण में शत्रुओं के बाण आदि आयुधों को काटकर, ललकार कर बाण छोड़े और सभी राक्षस सेनापतियों के हृदय के मध्य में दस–दस बाण मारे।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर देखि इक कोसल धनी।।
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो।।१२।।

भा०– वीर राक्षस पृथ्वी पर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं, मरते ही नहीं और अत्यन्त घनी माया करते हैं। चौदह सहस्र राक्षसों के सामने एकमात्र अयोध्यापति श्रीराघव को देखकर देवता डर रहे हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर समस्त मायाओं के ईश्वर श्रीराम ने एक अत्यन्त कौतुक किया। सभी लोग परस्पर अर्थात् एक–दूसरे को श्रीराम के ही रूप में देख रहे हैं। इस प्रकार श्रीराम की बुद्धि से एक–दूसरे को मारकर स्वयं ही शत्रुदल अपने ही हाथों लड़कर मर गये।

दो०– राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारेउ, छन महँ कृपानिधान।।२०(क)।।

भा०– वे राम–राम कहकर अपना शरीर छोड़ते हैं और मोक्ष पद पा जाते हैं। इस प्रकार कृपा के निधान श्रीराम ने उपाय करके एक क्षण में ही चौदह सहस्र राक्षस शत्रुओं को मार डाला।

हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, शोभित बिबिध बिमान।।२०(ख)।।

भा०– देवता प्रसन्न होकर पुष्पवर्षा कर रहे हैं, आकाश में नगारे बज रहे हैं। स्तुति कर–करके अनेक विमानों पर शोभित होकर सभी देवता मुनि अपने–अपने लोक को चले गये।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते।।
तब लछिमन सीतहिं लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए।।
सीता चितव श्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता।।
पंचबटी बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक।।

भा०– जब श्रीरघुनाथ ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया और देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय समाप्त हो गये, तब लक्ष्मण जी पर्वत की गुफा से भगवती श्रीसीता को ले आये। अपने चरणों में पड़ते हुए लक्ष्मण जी को प्रभु ने हर्षित होकर हृदय से लगा लिया। अथवा, लक्ष्मण जी भगवान् श्रीराम के चरणों पर पड़ रहे थे और श्रीसीता ने प्रसन्न होकर प्रभु को हृदय से लगा लिया। श्रीसीता श्रीराघवेन्द्र सरकार के कोमल और श्यामल शरीर को एकटक निहारने लगीं। इसलिए कि राक्षसों के शस्त्रों से कहीं प्रभु को घाव तो नहीं लगा। प्रभु के प्रति श्रीसीता के मन में उस समय दाम्पत्यमूलक परमप्रेम उमड़ आया। उनके नेत्र नहीं अघा रहे थे। इस प्रकार पंचवटी में निवास करते हुए रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम देवता, मनुष्यों और मुनियों को सुख देने वाले सुन्दर चरित्र कर रहे हैं।

विशेष– यहाँ खर के वध से देवता, दूषण के वध से नर और त्रिशिरा के वध से मुनि निर्भय हुए। इस प्रकार यह चरित्र तीनों के लिए सुखदायक बना।

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा।।
बोली बचन क्रोध करि भारी। देश कोश कै सुरति बिसारी।।
करसि पान सोवसि दिन राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।।

भा०– खर, दूषण और त्रिशिरा का धुँआ अर्थात् ध्वंस (विनाश) देखकर, अथवा श्रीराम जी के द्वारा अग्निबाण से इन्हें भस्म कर दिये जाने पर इनके उठे हुए धूम को देखकर, अथवा खर, दूषण आदि चौदह सहस्र राक्षसों के शव देखकर शूर्पणखा ने लंका जाकर रावण को प्रेरित किया अर्थात् उत्तेजित किया। शूर्पणखा बहुत–बड़ा क्रोध करके बोली, हे रावण! तू देश और कोश की स्मृति भूलकर मदिरा का पान करता है और दिन–रात सोता है। तुझे स्मरण ही नहीं है कि तेरे सिर पर शत्रु है।

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा।।
बिद्या बिनु बिबेक उपजाए। श्रम फल पढ़े किए अरु पाए।।
संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति असि सुनी।।

भा०– हे रावण! मैंने ऐसी नीति सुनी है कि नीति के बिना राज्य, धर्म के बिना धन, श्रीहरि के समर्पण के बिना सत्कर्म, बिना विवेक उत्पन्न किये हुए विद्या और पढ़ने, करने और पाने के श्रम का फल, आसक्ति से सन्यासी, बुरी मंत्रणा से राजा, अभिमान से ज्ञान, मदिरापान से लज्जा, विनम्रता के बिना प्रीति, मद से गुणी, शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

सो०– रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदन करन।।२१(क)।।

भा०– शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, फल स्वामी और सर्प इन्हें कभी छोटा करके नहीं गिनना चाहिये, ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके शूर्पणखा रोदन करने लगी।

दो०– सभा माझ ब्याकुल परी, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जियत दशकंधर, मोरि कि असि गति होइ।।२१(ख)।।

भा०– रावण की सभा के बीच शूर्पणखा व्याकुल होकर गिर पड़ी और बार–बार रोकर कहने लगी कि हे दस सिरोंवाले रावण! तेरे जीते जी मेरी ऐसी गति क्यों हो रही है? अर्थात् मेरी ऐसी गति कैसे हो रही है? तेरे जीते रहने पर मेरी ऐसी दुर्दशा का होना क्या उचित है?

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई।।
कह लंकेश कहसि निज बाता। केहि तव नासा कान निपाता।।

भा०– शूर्पणखा के वचन सुनकर रावण के सभासद अकुलाकर उठे, शूर्पणखा को समझाया और उसकी बाँह पकड़कर उठाया। रावण ने कहा, अपनी बात तो कह, किसने तेरे नाक, कान काटे हैं? शूर्पणखा बोली–

अवध नृपति दशरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए।।
समुझि परी मोहि उन कै करनी। रहित निशाचर करिहैं धरनी।।
जिन कर भुजबल पाइ दशानन। अभय भए बिचरहिं मुनि कानन।।
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना।।
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता।।

शोभा धाम राम अस नामा। तिन के संग नारि एक श्यामा।।
रूप राशि बिधि रची सँवारी। रति शत कोटि तासु बलिहारी।।
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करी परिहासा।।

भा०– अवध के महाराज दशरथ के पुत्र, पुरुषों में सिंह के समान, दो राजकुमार वन में आखेट खेलने आये हैं। मुझे उनकी करनी का ज्ञान हो गया है, वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे। हे दस मुखवाले रावण! उनकी भुजाओं का बल पाकर अभय हुए मुनिगण वनों में विचरण कर रहे हैं। वे दोनों भ्राता देखने में बालक, परन्तु काल के समान हैं। वे अद्वितीय धनुर्धर, परमधीर तथा नाना गुणों से सम्पन्न हैं। दोनों भ्राता अतुलनीय भुजा प्रताप से सम्पन्न हैं। वे दुष्टों के वध में निरत और देवता तथा मुनियों को सुख देनेवाले हैं। बड़े राजकुमार शोभा के धाम और राम इस नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके साथ एक श्यामा अर्थात् षोडश वर्षीया अप्रसूता नारी है। विधाता ने रूप की राशि को ही नारी रूप में सँवारकर बनाया है। उस पर करोड़ों–करोडों रतियां बलिहारी हैं। उन राम के छोटे भाई ने मेरे कान–नाक काटे और तुम्हारी बहन सुनकर उन्होंने मेरा परिहास किया।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महँ सकल कटक उन्ह मारा।।
खर दूषन त्रिशिरा कर घाता। सुनि दशशीष जरे सब गाता।।

भा०– मेरी पुकार सुनकर खर, दूषण, त्रिशिरा मेरे लिए लगे अर्थात् राम से युद्ध करने लगे परन्तु उन्होंने एक क्षण में ही चौदह सहस्र राक्षसी सेना का संहार कर डाला और खर, दूषण, त्रिशिरा का वध भी कर दिया। यह सुनकर रावण के सम्पूर्ण अंग जल–भुन गये।

दो०– सूपनखहिं समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोचबस, नींद परइ नहिं राति।।२२।।

भा०– शूर्पणखा को समझाकर रावण ने बहुत प्रकार से अपने बल की प्रशंसा की और अत्यन्त चिन्ता के वश में होकर रावण अपने भवन गया। उसे रात में नींद नहीं आ रही थी।

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं।।
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिनहिं को मारइ बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु शर प्रान तजे भव तरऊँ।।
होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

भा०– रावण सोचने लगा, देवता, मनुष्य, मुनि, नाग और पक्षी इनमें से कोई भी मेरे सेवक के समान भी नहीं है फिर खर, दूषण तो मेरे समान बलवान थे। इन्हें भगवान् के बिना कौन मार सकता है? यदि देवताओं को आनन्द देनेवाले, पृथ्वी का भार नष्ट करने वाले जगदीश्वर साकेतविहारी श्रीराम, श्रीदशरथ के यहाँ अवतार ले चुके हैं तब तो मैं हठपूर्वक जाकर वैर करूँगा और प्रभु श्रीराम के बाणों से अपने प्राणों को छोड़कर भवसागर पार हो जाऊँगा। इस तामसी शरीर में मन, कर्म, वचन से भजन नहीं होगा, मेरा यही दृढ़ निश्चय है।

जौ नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।

भा०– यदि ये नर रूप में कोई राजकुमार होंगे तो, इन दोनों को युद्ध में जीतकर, इनके साथ में रहने वाली महिला का हरण कर लूँगा।

चला अकेल यान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ।।
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई।।

भा०– रावण अपने रथ पर चढ़कर अकेले वहाँ चल पड़ा जहाँ समुद्र तट पर मारीच रहता था। (शिव जी बोले–) हे पार्वती! इधर अर्थात् पंचवटी में भगवान् श्रीराम ने जैसी युक्ति बनाई वह सुन्दर कथा सुनो।

दो०– लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृंद।।२३।।

भा०– जब युद्ध के पश्चात् लक्ष्मण जी मूल, फल और कन्द लेने के लिए वन में चले गये, तब एकान्त में कृपा और सुख के आश्रय, अथवा, समूह रूप भगवान् श्रीराम जी हँसकर जनकनन्दिनी श्रीसीता से बोले–

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।
तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

भा०– पतिव्रता व्रत से सुन्दर स्वभाववाली मेरी प्रेमास्पद हे सीते! सुनिये, मैं अब कुछ ललित नरलीला करूँगा, इसलिए उसमें लीलाशक्ति की ही नायिका के रूप में आपकी आवश्यकता होगी, अतः जब तक मैं राक्षसों का नाश करता हूँ, तब तक के लिए आप अग्नि में निवास कीजिये।

विशेष– क्योंकि रावण ने सूर्य, चन्द्र और अग्नि को तेज से हीन कर दिया है, लंका दहन के लिए अग्नि को अलौकिक तेज की आवश्यकता है, इसलिए आप अग्नि में निवास कीजिये। महाराज श्रीदशरथ पहले ही कह चुके हैं कि, चौदहवर्षीय वनवास की अवधि में कभी पिता के घर और कभी श्वसुर के घर श्रीसीता रहेंगी। यथा–***पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी।***–मानस २.८२.५. अग्नि भी श्रीसीता के श्वसुर के समान हैं, क्योंकि उन्हीं के दिए हुए चरु को निमित्त मानकर भगवान् श्रीराम का प्राकट्य हुआ है, इसलिए प्रभु ने ललित नरलीला काल में श्रीसीता को अग्नि में निवास करने के लिए कहा। लंकादहन करते समय कदाचित् अग्नि श्रीहनुमान के अंगों को जला न दे, क्योंकि अग्नितत्त्व का स्वभाव जड़प्राय है। यथा–***गगन समीर अनल जल धरनी। इन कै नाथ सहज जड़ करनी***–मानस, ५.५९.२. श्रीसीता की अग्नि में उपस्थिति से लंकादहन के समय श्रीहनुमान की सुरक्षा हो जायेगी। अतः प्रभु ने श्रीसीता को अग्नि में निवास करने के लिए कहा। अग्नि विराट् भगवान् का मुख है, यथा–***आनन अनल अंबुपति जीहा***–मानस, ६.१५.६. भगवान् को श्रीमुख भी कहा जाता है, अतः "***तुम पावक महँ करहू निवासा***" भगवान् श्रीराम का क्रोध भी अग्नि है, यथा–***राम रोष पावक अति घोरा*–मानस**, ३.३१.१७. कहीं प्रभु के क्रोध से राक्षसों का बहुत अनिष्ट न हो जाये, अतः कृपाशक्ति श्रीसीता की प्रभु की क्रोधाग्नि में उपस्थिति आवश्यक है, इसलिए ***तुम पावक महँ करहू निवासा*** श्रीराम का बाण अग्नि है, ***रघुपति बान कृशानु***–मानस, ५.१५. कहीं वह राक्षसों के शरीर में लगकर बहुत पीड़ा न पहुँचाये, इसलिए वहाँ श्रीसीता का रहना बहुत आवश्यक है, अतः "***तुम पावक महँ करहू निवासा***"। वेद के अग्नि प्रथम देवता हैं, वे ही भगवती को सम्भाल सकते हैं, अतः "***तुम पावक महँ करहू निवासा***"। पति के प्रवास के समय राजवधू को पुरोहित के पास रहना चाहिये और अग्नि प्रथम पुरोहित हैं, "***अग्निं मिले पुरोहितं***" (ऋगवेद १.१.१). इसलिए श्रीराम जी ने कहा, "*तुम पावक महँ करहू निवासा*" और अधिक भाव जानने के लिए मेरे द्वारा लिखित "***तुम पावक महँ करहू निवासा***" पुस्तक अवश्य पढ़िये।

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील बिनीता।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने जब सब कुछ विस्तार से कहा, तब भगवती श्रीसीता हृदय में भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों को धारण करके अग्नि में प्रवेश कर गईं। श्रीसीता ने वहाँ अर्थात् पंचवटी में अपने उसी प्रकार के रूप, सुन्दर-स्वभाव और विनम्रता से युक्त प्रतिबिम्ब को रख दिया। उसी में रणलीला के समय वेदवती का प्रवेश हुआ, जो रावण विनाश की निमित्त बनीं। भगवान् श्रीराम ने जो कुछ चरित्र यहाँ रचा अर्थात् श्रीसीता को अग्नि में प्रवेश कराया और उन्हीं की प्रतिबिम्ब को अपने वाम भाग में विराजमान कराया इस मर्म को श्रीलक्ष्मण भी नहीं जान सके और वन से लौटकर आने पर जस का तस देखा।

दशमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा।।
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई।।
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।।

भा०- दस मुखोंवाला रावण-समुद्र तट पर जहाँ मारीच था वहाँ गया और स्वार्थ में तत्पर, अवसरवादी, निम्न प्रकृतिवाले रावण ने मारीच को मस्तक नवाया। श्रीपार्वती को सम्बोधित करते हुए, भगवान् शिव कहते हैं कि हे भवानी! नीच व्यक्ति का नमन भी बहुत दुखद होता है। जैसे अंकुश अर्थात् बर्छी, धनुष, सर्प और बिल्ली का झुकना। बर्छी झुकने पर ही चुभकर माँस निकालती है। झुके हुए धनुष से ही प्रत्यंचा से छूटा हुआ बाण प्राण ले लेता है। सर्प झुककर ही डंसता है। बिल्ली झुककर ही चूहे पर वार करती है। जिस प्रकार बिना समय के खिले हुए पुष्प भयंकर होते हैं, उसी प्रकार दुष्ट की कोमल वाणी भी भयदायक होती है।

विशेष- रावण को पाँच वस्तुओं से उपमित करके यह सूचित किया कि, उसके द्वारा श्रीराम, लक्ष्मण, भगवती श्रीसीता, जटायु और विभीषण इन पाँच लोगों को कष्ट मिला। उसने अंकुश के समान श्रीराम को व्यथित किया। धनुष बनकर लक्ष्मण जी को, सर्प बनकर श्रीसीता को, बिल्ली के समान जटायु जी को और असमय का पुष्प बनकर विभीषण जी को अथवा समस्त राक्षस समाज को, इस विषय पर विशेष चर्चा श्री राघवकृपाभाष्य में की जायेगी।

दो०- करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति, अकसर आयहु तात।।२४।।

भा०- तब राक्षसराज रावण की पूजा (सम्मान) करके मारीच ने आदरपूर्वक बात अर्थात् कुशल पूछी। हे तात! किस कारण से तुम्हारा मन अत्यन्त व्यग्र है और तुम यहाँ अकेले आये हो?

विशेष- यहाँ बात शब्द संस्कृत के 'वार्त्त' शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ कुशल होता है। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में वार्त्त शब्द को कुशल के अर्थ में प्रयुक्त किया है *सर्वत्र नो वार्त्तमवेहि राजन।* -रघुवंश, ५.१३।

दशमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे।।
होहु कपट मृग तुम छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी।।

भा०- भाग्यहीन दस मुखवाले रावण ने मारीच के सामने अभिमानपूर्वक शूर्पणखा-विरूपीकरण तथा श्रीराम द्वारा मारे गये चौदह सहस्र राक्षसों के सहित खर, दूषण, त्रिशिरा वध की सम्पूर्ण कथा कह सुनायी और बोला, मारीच तुम छल करने वाला कपट मृग बन जाओ, जिस प्रकार से मैं नृप नारी अर्थात् राजवधू (अयोध्या के राजा श्रीराम की धर्मपत्नी) सीता को हर लाऊँ।

तेहिं पुनि कहा सुनहु दशशीशा। ते नररूप चराचर ईशा।।
तासों तात बैर नहिं कीजै। मारे मरिय जियाए जीजै।।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर शर रघुपति मोहि मारा।।
शत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन सन बैर किए भल नाहीं।।
भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई।।
जौं नर तात तदपि अति शूरा। तिनहिं बिरोधि न आइहि पूरा।।

भा०- फिर उस मारीच ने कहा, हे दस सिरोंवाले रावण! सुनो, वे अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण मनुष्य के रूप में चर-अचर संसार के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे कभी भी वैर नहीं करना चाहिये जिनके मारने से प्राणी मरता है और जिनके जिलाने से ही जीता है अर्थात् जीव परवश है और परमेश्वर स्वतंत्र हैं, जीवन और मरण, उन्हीं के हाथ में है। विश्वामित्र जी की यज्ञ की रक्षा के लिए कुमार अर्थात् प्रथमावस्था बाल्यकाल में ही भगवान् श्रीराम, विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम गये हुए थे। यज्ञविध्वंस करने आये हुए मुझ मारीच को रघुपति श्रीराम ने बिना फल के बाण से मारा और मैं एक क्षण में ही सौ योजन सागर के पार (आज की दृष्टि से बारह सौ किलोमीटर) दूर यहाँ आ गया। उन श्रीराम के साथ वैर करने से अच्छा नहीं है। मेरी स्थिति कीट, भृंग की हो गई है अर्थात् जैसे झींगुर नामक कीड़े को ले आकर भ्रमर अपने समान बना देता है और भोर का चिन्तन करते-करते झींगुर कीड़ा भी अपना स्वरूप छोड़कर भ्रमर ही बन जाता है, उसी प्रकार मैं राक्षसभाव छोड़कर यत्र-तत्र, सर्वत्र दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण को ही देखता रहता हूँ। हे तात! यदि श्रीराम मनुष्य भी हों तो भी बहुत-बड़े वीर हैं, उन्हें तुम नहीं जीत सकोगे, उनसे विरोध करके तुम्हारा पूरा नहीं पड़ेगा।

दो०- जेहिं ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन त्रिशिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिबंड।।२५।।

भा०- जिन श्रीराम ने ताटका तथा सुबाहु को मारकर शिव जी के धनुष के दो टुकड़े कर दिये और खर, दूषण तथा त्रिशिरा का वध किया, क्या कोई मनुष्य इस प्रकार का बलवान हो सकता है? अर्थात् मनुष्य में इतना पराक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि शिव जी के धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति निःस्संदेह शिव जी से भी अधिक प्रभावशाली है।

विशेष- बरिबंड शब्द बलिबन्द्य शब्द का अपभ्रंश है। जिसकी व्युत्पत्ति होगी *बलिनां बन्द्यः* अर्थात् बलवानों का भी वन्दनीय।

जाहु भवन कुल कुशल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी।।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा।।

भा०- हे रावण! अपनी कुल की कुशलता का विचार करके घर अर्थात् लंका लौट जाओ। मारीच की बात सुनते ही रावण क्रोध से जल-भुन गया और मारीच को बहुत गालियाँ दी। रावण बोला, मूर्ख। तू गुरु के समान मेरा प्रबोध कर रहा है, भला कह तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है? क्या मैं राम से पराजित हो जाऊँगा?

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिं कल्याना।।
शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी।।

भा०- मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री अर्थात् शस्त्र चालनेवाले, मर्मी अर्थात् भेद जाननेवाले गुप्तचर, प्रभु अर्थात् स्वामी, शठ अर्थात् दुष्ट, धनी अर्थात् धनवान व्यक्ति, वैद्य अर्थात् चिकित्सक, बंदि अर्थात् भाट (यश गानेवाले), कवि अर्थात् साहित्यकार अथवा, विद्वान मनीषी भानस गुनी अर्थात् रसोई बनाने में चतुर कुशल रसोइया, इन नौवों से विरोध करने पर कल्याण नहीं है। उनमें से रावण में पाँच विशेषतायें तो घटती ही है। यह शस्त्रधारी है, यह मेरा भेद भी जानता है अतः मर्मी भी है, यह राक्षसों का समर्थ स्वामी है तथा दुष्ट और धनवान

भी है, इसलिए, मेरे पाँच भौतिक शरीर को नष्ट करने में और मेरे पाँच प्राणों को हर लेने के लिए रावण के पास पर्याप्त सामग्री है।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना।।
उतर देत मोहि बधब अभागे। कस न मरौं रघुपति शर लागे।।

भा०- मारीच ने दोनों प्रकार से अर्थात् न जाने पर रावण के हाथ से और जाने पर श्रीराघव के हाथ से अपना मरण देखा, तब उसने रघुकुल के नायक श्रीराम की शरण तकी अर्थात् श्रीराम की शरण में जाने का निर्णय ले लिया। उत्तर देते ही अभागा रावण मुझे मार डालेगा, फिर तो रघुकुल के स्वामी श्रीराम के बाण लगने से क्यों न मर जाऊँ?

विशेष- ***रावणादपि मर्त्तव्यम् मर्त्तव्यम् राघवादपि। उभयोर्यदि मर्त्तव्यम वरं रामो न रावणः*** अर्थात् नहीं जाऊँगा तो रावण के हाथ से मरना पड़ेगा और यदि जाऊँगा तो श्रीराघव के हाथ से मरना पड़ेगा, यदि दोनों स्थानों पर मरना ही है तब तो श्रीराम ही श्रेष्ठ हैं, न कि रावण।

अस जियजानि दशानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा।।
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही।।

भा०- मन में ऐसा जानकर मारीच दस मुखवाले रावण के संग चल पड़ा। उसके मन में श्रीराम के श्रीचरणों के प्रति अभंग अर्थात् नहीं नष्ट होनेवाला प्रेम और हर्ष था, पर उसने यह रावण को नहीं जनाया। मारीच सोचने लगा आज मैं अपने परमस्नेह के आश्रय श्रीराम के दर्शन करूँगा।

छं०- निज परम प्रिय तम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं।।
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबशहिं बशकरी।
निज पानि शर संधानि सो मोहि बधिहिं सुखसागर हरी।।

भा०- अपने परम प्रियतम (प्यारे) भगवान् श्रीराम को देखकर अपने नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। श्रीसीता के सहित, अथवा श्रीसीता के हित अर्थात् प्रेममय कल्याण से पूर्ण एवं लक्ष्मण जी के साथ विराजमान कृपा के निवासस्थान भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में मन लगाऊँगा, जिनका क्रोध भी निर्वाण अर्थात् मोक्ष देने वाला है, जिनकी भक्ति किसी के वश में नहीं आनेवाली स्वयं जिन परमात्मा को वश में कर लेती है, वही सुखों के समुद्र, पापहारी श्रीहरि भगवान् श्रीराम बाण का संधान करके अपने ही हाथ से मेरा वध करेंगे।

दो०- मम पाछे धर धावत, धरे शरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहिं बिलोकिहउँ, धन्य न मो सम आन।।२६।।

भा०- धनुष–बाण धारण किये हुए मेरे पीछे–पीछे पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु श्रीराम को मैं मुड़–मुड़कर बार–बार देखूँगा, आज मेरे समान कोई दूसरा धन्य नहीं है।

सीता लखन सहित रघुराई। जहि बन बसहिं मुनिन सुखदाई।।
तेहि बन निकट दशानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ।।

भा०- श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के सहित मुनियों को सुख देनेवाले रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम जिस वन में निवास कर रहे हैं, उसी पंचवटी वन के निकट जब रावण गया तब मारीच कपट मृग बन गया।

अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई।।
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा।।

भा०– मारीच ने मणियों से रचित स्वर्ण का शरीर बनाया जो अत्यन्त विचित्र अर्थात् आश्चर्यमय था जिसका कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्वर्णमृग इसके पहले न तो कहीं देखा गया और न ही कहीं सुना गया। श्रीसीता ने अंग–अंग में सुन्दर मन को हरने वाले वेश से युक्त उस परमसुन्दर मृग को देखा।

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।।
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही।।

भा०– वैदेही अर्थात् देह से रहित प्रतिबिम्ब की बनी हुई श्रीसीता कहने लगीं कि, हे देव! अर्थात् राक्षसों को जीतने के इच्छुक रघुकुल में श्रेष्ठ, रघुकुल के वीर, कृपामय श्रीराघव! सुनिये, इस मृग की छाल बड़ी सुन्दर है। हे सत्यप्रतिज्ञ समर्थ प्रभु! इस मारीच का वध करके इसका चर्म निश्चयपूर्वक ला दीजिये।

विशेष– ***विगतो देह यस्य सः विदेह प्रतिबिम्बः तस्य यम वैदेही*** अर्थात् देह से रहित प्रतिबिम्ब की बनी हुई श्रीसीता। दूसरे पक्ष में, *वै निश्चेन देहि*–अर्थात् मारीच का चर्म निश्चयपूर्वक ला दीजिये, यहाँ दोनों अर्थ श्लेष से ही निकलते हैं।

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन।।
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर शर साँधा।।

भा०– तब सम्पूर्ण कारणों को जानते हुए रघुकुल अर्थात् तीनों प्रकार के नित्य, बध, मुक्त जीवकुल के स्वामी परब्रह्म परमात्मा श्रीराम देवताओं का कार्य बनाने के लिए प्रसन्न होकर उठे। मृग (कपटी हिरण) को देखकर प्रभु ने अपने कटि प्रदेश में परिकर अर्थात् फेंटा बाँधा। अपने करतल अर्थात् बायीं हथेली में लिए हुए धनुष पर रुचिर अर्थात् सुन्दर ब्रह्मास्त्र के मंत्र से प्रेरित बाण का संधान किया।

प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निशिचर बहु भाई।।
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी।।

भा०– प्रभु ने लक्ष्मण जी को समझाकर कहा, हे भैया! वन में बहुत से राक्षस भ्रमण कर रहे हैं, इसलिए बुद्धि, विवेक, बल और समय का विचार करके सीता की रक्षा करना।

प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भाजी। धाए राम शरासन साजी।।
निगम नेति शिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सो धावा।।

भा०– प्रभु श्रीराम को देखकर कपटी मृग भाग चला और धनुष को सजाकर भगवान् श्रीराम भी उसके पीछे दौड़ पड़े। जिनको वेद 'नेति–नेति' कहकर गाते हैं, शिव जी जिन्हें ध्यान में भी सहसा नहीं प्राप्त करपाते, वे ही मायापति भगवान् श्रीराम माया–मृग के पीछे दौड़ रहे हैं।

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई।।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी।।

भा०– स्वर्णमृग वेशधारी मारीच कभी तो श्रीराम के निकट आता और कभी दूर भाग जाता है, कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है। इस प्रकार प्रकट होते, छिपते और अनेक प्रकार का छल करते हुए कपटमृग मारीच प्रभु को आश्रम से बहुत दूर लेकर चला गया।

तब तकि राम कठिन शर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा।।
लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा।।

भा०- तब मारीच को कड़ी दृष्टि से देखकर श्रीराम ने ब्रह्मास्त्र मंत्र से प्रेरित तीक्ष्ण बाण को मार दिया, वह (मारीच) भयंकर पुकार करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। पहले तो उच्च स्वर में श्रीलक्ष्मण का हाऽऽऽ!!लक्ष्मण उच्चारण के साथ नाम लेकर, पीछे उसने मन में श्रीराम नाम का स्मरण किया।

प्रान तजत प्रगटेसि निज देही। सुमिरेसि राम सहित बैदेही।।
अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना।।

भा०- अपने प्राणों को छोड़ते हुए मारीच ने अपने राक्षसी शरीर को प्रकट कर लिया और विदेहनन्दिनी श्रीसीता के सहित भगवान् श्रीराम को "सीताराम–सीताराम" रटते हुए स्मरण किया। चतुर श्रीराम ने मारीच के आन्तरिक प्रेम को पहचान लिया और उसे मुनियों के लिए भी दुर्लभ गति दे दी अर्थात् अपने चरण में ही लीन कर लिया, जहाँ उसकी माता ताटका लीन हुई थी।

दो०- बिपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्हेउ असुर कहँ, दीनबंधु रघुनाथ।।२७।।

भा०- देवता बहुत से पुष्पों की वर्षा करने लगे और प्रभु श्रीराम के गुणों की गाथा गाने लगे। वे बोले, दीनों के बन्धु अर्थात् सहायक अर्थात् जीवमात्र के ईश्वर भगवान् श्रीराम ने असुर अर्थात् देवविरोधी और 'असु' यानी प्राणों में 'र', अर्थात् रमण करनेवाले मारीच जैसे राक्षस को भी अपना पद अर्थात् चरण दे दिया उसे अपने श्रीचरणों में लीन कर लिया।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा।।

भा०- खल प्रकृतिवाले राक्षस मारीच का वध करके रघुवीर श्रीराम तुरन्त आश्रम के लिए लौटे। उनके हाथ में धनुष और कटि प्रदेश में तरकस सुशोभित था।

विशेष- मारीच को मारकर बाण भगवान् श्रीराम के तरकस में प्रवेश कर चुका था, इसलिए गोस्वामी जी ने प्रभु के हाथ में केवल धनुष की चर्चा की।

आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता।।

भा०- जब श्रीसीता ने आर्तवाणी सुनी तब वे परम भयभीत होती हुई, अथवा परम अर्थात् परमशक्ति सम्पन्न भगवान् श्रीराम के प्रति भयभीत होती हुई लक्ष्मण जी से कहने लगीं–

विशेष- *परा मा यस्मिन् स परमः तस्मिन् सभीता परम सभीता।*

जाहु बेगि संकट तव भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।।
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई।।

भा०- हे लक्ष्मण! शीघ्र जाओ तुम्हारे भैया संकट में हैं, लक्ष्मण जी हँसकर बोले, हे माताश्री! सुनिये, जिनके भृकुटि के विलासमात्र से, जगत् की सृष्टि और उसका प्रलय हो जाता है अर्थात् भौंहों के विशेष लास से जगत् की सृष्टि और विकृत लास से प्रलय होता है, क्या वे परमात्मा श्रीराम स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं ?

सौंपि गये रघुपति मोहि थाती। जो तजि जाउँ तोष नहिं छाती।।
मरम बचन जब सीता बोली। हरि प्रेरित लछिमन मति डोली।।

भा०- हे माँ! रघुकुल के स्वामी श्रीराम आपको धरोहर रूप में मुझे सौंप कर गये हैं, जिसे छोड़कर जाता हूँ, तो मेरे हृदय में संतोष नहीं होगा। जब श्रीहरि भगवान् श्रीराम से प्रेरित होकर श्रीसीता मर्मवचन अर्थात् वास्तविक

श्रीसीता के अग्निप्रवेश सम्बन्धी गोपनीय वचन बोलीं। तब लक्ष्मण जी की बुद्धि डोल गई अर्थात् श्रीसीता की रक्षा के निश्चय से डिग गई।

विशेष– यहाँ की परिस्थिति को न जानने के कारण मर्मवचन शब्द को लेकर भगवत्‌विमुख और अनभिज्ञ लोगों ने प्रारम्भ से लेकर आज तक कुछ वीभत्स पक्ष प्रस्तुत किये। वास्तव में तो जब बार–बार कहने पर भी लक्ष्मण जी ने अपना निश्चय नहीं छोड़ा, तब भगवान् श्रीराम की प्रेरणा से माया की श्रीसीता वही मर्म अर्थात् रहस्यपूर्ण वचन बोलीं जो चौबीसवें दोहे की पाँचवी पंक्ति में श्रीराम, लक्ष्मण जी से छिपा रखे थे, यथा– ***लछिमनहूँ यह मरम न जाना***–मानस, ३.२४.५. श्रीसीता ने स्पष्ट कहा कि, हे लक्ष्मण! तुम बहुत हठी हो, मेरी बात समझने का प्रयास नहीं कर रहे हो, इस समय तुम्हारी माताश्री वास्तविक श्रीसीता यहाँ नहीं हैं, अभी तो उनके प्रतिबिम्ब में मैं वेदवती प्रविष्ट हो गई हूँ। प्रभु ने वास्तविक श्रीसीता को राक्षस नाशपर्यन्त अग्नि में निवास करने के लिए आदिष्ट कर दिया है। इसलिए तुम जाओ, तुम नहीं जाओगे तो मेरा हरण नहीं होगा और उसके बिना रावण सहित राक्षसों का मरण नहीं होगा, फिर तुम्हारी सेवा और प्रभु के अवतार का प्रयोजन ये दोनों सिद्ध नहीं हो पायेंगे।

चहु दिशि रेख खँचाइ अहीशा। बारहिं बार नाइ पद शीशा।।
बन दिशि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन शशि राहू।।

भा०– अहि अर्थात् शेषनाग के भी नियामक स्वामी, वैकुण्ठबिहारी विष्णुस्वरूप लक्ष्मण जी अपनी धनुष से कुटिया के चारों ओर रेखा खींचकर सीता जी के श्रीचरणों में बारम्बार मस्तक नवाकर, उन्हें सभी वन देवताओं और दिग्पालों को सौंपकर जहाँ रावणरूप चन्द्रमा के नाभिकुण्ड के अमृत के शोषक राहुरूप भगवान् श्रीराम विराज रहे थे, वहाँ चले।

चितवहिं लखन सियहिं फिरि कैसे। तजत बच्छ निज मातहिं जैसे।।

दो०– एक डरत डर राम के, दूजे सीय अकेलि।
लखन तेज तन हत भयी, जिमि डाढ़ी दव बेलि।।२८।।

भा०– जाते समय लक्ष्मण जी, श्रीसीता को किस प्रकार निहार रहे हैं, जैसे गाय का छोटा बछड़ा अपनी माँ को छोड़ते हुए निहारता रहता है। एक तो लक्ष्मण जी श्रीराम के डर से डर रहे हैं और दूसरे श्रीसीता को अकेली छोड़कर भयभीत हैं। लक्ष्मण जी का शरीर इस प्रकार तेज से हीन हो गया है जैसे जंगल की आग से झुलसी हुई लता।

सून बीच दशकंधर देखा। आवा निकट जती के बेषा।।
जाके डर सुर असुर डेराहीं। निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं।।
सो दशशीष श्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़ियाईं।।
इमि कुपंथ पग देत खगेशा। रह न तेज तन बुधि बल लेशा।।

भा०– इसी बीच रावण ने कुटिया को सून अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण से रहित देखा, तब वह यति के वेश में अर्थात काषाय वस्त्र धारण करके, शिखा, छत्र और जूते पहनकर और बायें कन्धे पर ली हुई एक लाठी में कमण्डल लटका कर "भिक्षाम् देहि" कहते हुए श्रीसीता के निकट आया। यथा–***श्लच्छणकाषायसंवीत: शिखी छत्री उपानही। वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू।।***–वाल्मीकि रामायण, ३.४६.३. अर्थात् सुन्दर काषाय वस्त्र धारण किये हुए, लम्बी चोटी, छत्र और चरण में जूता धारण किये हुए, बायें कन्धे पर लाठी, कमण्डल लटकाये हुए, रावण, श्रीसीता के पास आया। गूढ़ार्थचन्द्रिकाकार ने अपनी क्षुद्र साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण जो यह कहने का प्रयास किया कि रावण त्रिदण्डी वेश में श्रीसीता के पास आया था, वह पक्ष श्रीवाल्मीकि द्वारा पूर्वलिखित श्लोक में निरस्त हो गया, क्योंकि त्रिदण्ड दाहिने हाथ में लिया जाता है और वह दाहिने स्कन्ध पर

आश्रित होता है, जबकि रावण ने बायें कन्धे पर लाठी लटकायी थी। यदि श्रीवाल्मीकि जी को त्रिदण्ड अभीष्ट होता तो वे "***स त्रिदण्ड कमण्डलूं***" कह देते। त्रिदण्डी सन्यासी चमड़े का जूता नहीं धारण करते और रावण ने चमड़े का जूता पहन रखा था। यथा–"***शिखी छत्री उपानही***"–वाल्मीकि रामायण ३.४६.३.। जिसके डर से देवता डरते हैं, वे रात में नींद नहीं लेते और दिन में अन्न नहीं खाते, वही रावण कुत्ते की भाँति इधर–उधर देखकर परनारी की चोरी के लिए चल पड़ा। भुशुण्डि जी, गरुड़जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पक्षीराज गरुड़देव! इसी प्रकार से बुरे मार्ग पर पग देते ही शरीर में तेज, बुद्धि और बल का लेशमात्र भी नहीं रह जाता।

विशेष : यहाँ "भड़ियाईं" शब्द का अर्थ है चोरी करना।

करि अनेक बिधि छल चतुराई। माँगी भीख दशानन जाई।।
अतिथि जानि सिय कन्द मूल फल। देन लगीं तेहि कीन्ह बहुरि छल।।
कह रावन सुनु सुन्दरि बानी। बाँधी भीख न लेउँ सयानी।।
बिधि गति बाम काल कठिनाई। रेख नाघि सिय बाहेर आई।।

दो०- विश्व भरनि अघ दल दलनि, करनि सकल सुर काज।
जाना नहिं दशशीष तेहि, मूढ़ कपट के साज।।२९।।

भा०- अनेक प्रकार से छल और चतुरता करके दस मुखवाले रावण ने निकट जाकर श्रीसीता से भिक्षा माँगी। अतिथि को आया हुआ जानकर श्रीसीता उसे कन्द, मूल, फल देने लगीं। फिर रावण ने श्रीसीता से छल किया, रावण ने कहा, हे चतुर सुन्दरी! मेरी बात सुन, मैं बँधी हुई भिक्षा नहीं ले सकता अर्थात् भिक्षा देने के लिए तुम्हें रेखा लाँघकर बाहर आना पड़ेगा। विधाता की गति की प्रतिकूलता और समय की कठिनता के कारण श्रीसीता लक्ष्मण जी द्वारा खींची हुई रेखा से बाहर आ गईं। जो विश्व का भरण–पोषण करनेवाली, पापसमूहों को नष्ट करनेवाली और देवताओं का समस्त कार्य सम्पन्न करनेवाली भगवान् श्रीराम की लीलाशक्ति इस समय श्रीसीता के रूप में वर्तमान हैं, कपट का साज होने के कारण मोहवश रावण ने उन्हीं श्रीसीता को नहीं पहचाना अर्थात् श्रीसीता को महाकाली के रूप में नहीं जाना। उन्हें तो वह भगवान् श्रीराम की धर्मपत्नी जनकनन्दिनी श्रीसीता ही समझ रहा था। रावण ने माया सीता जी की बुद्धि से श्रीसीता का हरण ही नहीं किया था, क्योंकि वह रहस्य श्रीसीता, राम और लक्ष्मण जी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था।

नाना बिधि कहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति देखाई।।
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं।।

भा०- रावण ने श्रीसीता की भिक्षा नहीं स्वीकारी उल्टे उन्हें नाना प्रकार से कहकर कथा सुनाने लगा और राजनीति व्याख्यान करने लगा, उसने भय और प्रीति भी दिखाई तब श्रीसीता जी ने कहा, हे गोसाईं यति अर्थात् इन्द्रियों का ही चिन्तन करनेवाला पतित सन्यासी! तूने तो दुष्ट के समान वचन बोले हैं अर्थात् तूने सन्यासी धर्म का उल्लंघन किया है।

तब रावन निज रूप देखावा। भइ सभीत जब नाम सुनावा।।
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा।।

भा०- तब रावण ने श्रीसीता को अपना वास्तविक रूप दिखा दिया और जब उसने अपना रावण नाम सुनाया तब माया की श्रीसीता अपने वेदवती स्वरूप का स्मरण करके भयभीत हो गईं। फिर लीलाशक्ति का आवेश आते ही

श्रीसीता ने दृढ़ धैर्य धारण करके कहा कि, दुष्ट रावण! खड़ा रह, प्रतिक्षा कर प्रभु श्रीराघव आ ही गये अर्थात् आने ही वाले हैं।

जिमि हरिबधुहिं छुद्र शश चाहा। भएसि कालबस निशिचर नाहा।।
बायस कर चह खग पति समता। सिंधु समान होय किमि सरिता।।
खरि कि होइ सुरधेनु समाना। जाहु भवन निज सुनु अग्याना।।
सुनत बचन दशशीष लजाना। मन महँ चरन बंदि सुख माना।।

भा०– हे राक्षसराज! सिंह की वधू को जैसे खरगोश देखता है, उसी प्रकार मुझे देखकर अब तू काल के वश में हो गया है। जैसे कौवा गरुड़ की समता करना चाहता हो, उसी प्रकार तू श्रीराघव की समता करना चाहता है। क्या सिन्धु अर्थात् समुद्रगामिनि गंगा जी के समान साधारण कर्मनाशा जैसी नदी हो सकती है? क्या गधी, कामधेनु के समान हो सकती है? उसी प्रकार तेरी अपहृत और परिणीता पत्नियाँ, मुझ श्रीराघव पत्नी सीता की समता नहीं कर सकती। ऐसा समझकर, हे अज्ञानग्रस्त रावण! तू अपनी लंका के भवन लौट जा। श्रीसीता के ये वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। मन में ही उनके चरणों की वन्दना करके उसने सुख माना, प्रसन्न हुआ और सुखपूर्वक श्रीसीता का सम्मान किया।

दो०– क्रोधवंत तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ।।३०।।

भा०– तब क्रोध से युक्त रावण ने माया की सीता जी को अपने रथ पर बैठा लिया और उतावलेपन की व्याकुलता के साथ आकाश मार्ग से चल पड़ा। भगवान् श्रीराम से उत्पन्न हुए भय के कारण उससे शीघ्रता से रथ हाँका नहीं जा रहा था।

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।।
आरति हरन शरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक।।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा।।
बिपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडाश चह रासभ खावा।।

भा०– हा! जगत् के एकमात्र वीर रघुराज श्रीराघव! मेरे किस अपराध से, आप अपनी दया के गुण को भूल गये? हा! आर्त्ति का हरण करनेवाले! शरणागतों के सुखदायक श्रीरघुनाथ जी, हा! सूर्यकुल रूप कमल को विकसित करनेवाले सूर्य श्री राघव, हा! लक्ष्मण! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैंने तुम जैसे निर्दोष सेवक पर क्रोध किया वह फल मैं पा चुकी हूँ। मेरी विपत्ति को प्रभु श्रीराम को कौन सुनायेगा, अथवा कौन सुनाये? अब तो पुरोडाश (यज्ञ की शेष हवि) गधा खाना चाहता है अर्थात् जिस यज्ञ की शेष हवि को खाने का अधिकार यजमान को है, उसे गधा खा रहा है। आशय यह है कि मेरी प्राप्ति यज्ञ शेष हवि है उसके उपभोग का अधिकार निरन्तर यज्ञ करने वाले यजमान श्रीराघव को है, न कि रावण जैसे गधे को।

बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही।।
सीता कर बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी।।

भा०– श्रीसीता विविध प्रकार से विलाप कर रही हैं। अनन्तकृपा में समर्थ प्रभु श्रीसीता के परमप्रेमी श्रीराम आज उनसे दूर हैं, अथवा माया की श्रीसीता से भूरिकृपा यानी कृपाशक्ति श्रीजानकी और उनके प्रेमास्पद श्रीराम भी आज दूर हो गये हैं, क्योंकि इन्होंने परमभागवत् लक्ष्मण जी का अपमान किया है, अथवा श्रीसीता ही अनेक

प्रकार से विलाप करती हुई कह रही हैं, हा! मेरे श्रीराघव प्रभु आपकी कृपा तो मुझ पर बहुत है, परन्तु मेरे प्रेमास्पद प्रभु मुझ से दूर हो गये हैं। आशय यह है कि यदि मुझ पर प्रभु की कृपा नहीं होती तो दो ही चार क्षणों के लिए क्यों न हो, प्रभु का और मेरा सम्पर्क क्यों होता? प्रभु, मुझे कतिपय क्षणों के लिए भी अपने वाम भाग में क्यों स्वीकारते? परन्तु शीघ्र ही प्रभु मुझसे दूर हो गये उनके सान्निध्य का मैं बहुत आनन्द नहीं ले पाई। श्रीसीता के इस भारी विलाप को सुनकर चर–अचर सभी जीव दुःखी हो गये।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी।।
अधम निशाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बश कपिला गाई।।

भा०– गृद्धों के राजा जटायु जी ने श्रीसीता की आर्तवाणी सुनकर रघुकुलतिलक भगवान् श्रीराम की धर्मपत्नी श्रीसीता को पहचान लिया। इन्हें नीच राक्षस रावण लिए जा रहा है जैसे कसाई यवन के वश में कपिला गाय पड़ गई हो।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा।।
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटइ पबि परबत कहँ जैसे।।

भा०– जटायु ने ललकारते हुए कहा, हे पुत्री सीते! मन में त्रास मत करो अर्थात् मत डरो, मैं राक्षस रावण का नाश करूँगा। यह कहकर क्रोध से युक्त पक्षी जटायु किस प्रकार दौड़े, जैसे पर्वत के लिए इन्द्र का वज्र छूटता है।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेसि मोही।।
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दशकंधर कर अनुमाना।।
की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई।।
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाड़िहि देहा।।

भा०– जटायु ने ललकार कर कहा, रे–रे दुष्ट रावण! क्यों नहीं खड़ा हो जाता? तू निर्भय होकर चल पड़ा है, क्या तूने मुझे नहीं जाना कि श्रीसीता का श्वसुर के समान रक्षक जटायु भी यहाँ है? काल के समान जटायु जी को अपने सम्मुख आते हुए देखकर दसकंधर रावण ने फिर अपने मन में अनुमान किया, यह कौन है, क्या यह मैनाक पर्वत है? क्या यह गरुड़ है, क्योंकि वही अर्थात् गरुड़देव ही अपने स्वामी विष्णु के साथ मेरा बल जानते हैं? जिनके चक्र के प्रहार से भी मेरी भुजायें नहीं कटी। इस प्रकार हेतुओं का चिन्तन करते हुए और निकट आने पर रावण ने जान लिया कि यह तो बूढ़ा जटायु है, अब यह मेरे हाथरूप तीर्थ में अपना शरीर छोड़ देगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा।।
तजि जानकिहिं कुशल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू।।
राम रोष पावक अति घोरा। होइहि शलभ सकल कुल तोरा।।

भा०– यह सुनते ही क्रोध से आतुर हुए गृद्धराज जटायु जी दौड़े और बोले, रावण! मेरी सीख सुन ले, श्रीजानकी को छोड़कर कुशलपूर्वक लौट जा, नहीं तो हे बहुत बाहुओंवाले रावण! अब ऐसा कुछ होगा अथवा, नहीं तो बहुबाहू अर्थात् बाहू बाहवि अर्थात् हाथों से किया जानेवाला युद्ध यानी हाथापायी होगी, तात्पर्य यह है कि यदि तुम ने मेरी बात नहीं मानी तो इस प्रकार से हाथापायी वाला युद्ध होगा, जिसमें प्रभु श्रीराम के क्रोधरूप अत्यन्त भयंकर अग्नि में तुम्हारा सम्पूर्ण कुल पतंगा हो जायेगा अर्थात् पतंगे की भाँति जल जायेगा।

विशेष– बहुबाहू शब्द रावण का विशेषण है, अथवा बाहू बाहवि शब्द का अपभ्रंश है। हाथ से किये जाने वाले अर्थात् हाथापायी के युद्ध को बाहू बाहवि कहते हैं।

उतर न देत दशानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा।।
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा।।
चोचन मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरछा तेही।।

भा०– योद्धा रावण जटायु जी का कोई भी उत्तर नहीं दे रहा था। उस समय गृद्धराज जटायु जी क्रोध करके दौड़े, उन्होंने रावण का केश पकड़कर उसे विरथ कर दिया अर्थात् रथ पर से गिरा दिया और रथ भी तोड़ डाला। रावण पृथ्वी पर गिर गया। श्रीसीता को एक ओर रखकर गृद्धराज जटायु जी फिर मुड़े। चोंच से मारकर जटायु जी ने रावण के शरीर को विदीर्ण कर दिया और रावण को एक दण्ड के लिए मूर्च्छा हो गई।

विशेष : श्लेष अलंकार के आधार पर यहाँ गोस्वामी जी ने विरथ शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है। पहला "विगतो रथो यस्य स विरथः" अर्थात् जटायु जी ने रावण को रथ से हीन कर दिया। दूसरा "विनाशितो रथो यस्य स विरथः" अर्थात् जटायु जी के द्वारा रावण का रथ तोड़कर विनष्ट कर दिया गया।

तब सक्रोध निशिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना।।
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी।।
सीतहिं यान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी।।

भा०– तब क्रुद्ध रावण जटायु जी के ऊपर खीझ गया और उसने अत्यन्त भयंकर चन्द्रहास नाम की तलवार निकाल ली एवं उससे जटायु के दोनों पंख काट दिये। आकाशचारी जटायु जी श्रीराम का स्मरण करके और रणभूमि में आश्चर्यजनक पराक्रम करके पृथ्वी पर गिर गये। फिर श्रीसीता जी को विमान पर चढ़ाकर रावण शीघ्रता के साथ चला, उसके मन में बहुत भय था।

करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबश जनु मृगी सभीता।।
गिरि पर बैठे कपिन निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी।।
एहि बिधि सीतहिं सो लै गयऊ। बन अशोक महँ राखत भयऊ।।

भा०– सीता जी विलाप करती हुई आकाश में चली जा रही थीं, मानो बहेलिए के वश में हुई भयभीत हरिणीं हो। ऋषिमुख पर्वत पर बैठे श्री सुग्रीव जी, श्रीहनुमान जी, श्री नल–नील और श्री जाम्बवान् नामक वानर जाति के लोगों को देखकर, श्रीहरि का नाम लेकर श्रीसीता ने अपना उत्तरीय वस्त्र गिरा दिया। इस प्रकार वह रावण श्रीसीता जी को पंचवटी से लंका ले गया और उन्हें अशोक वन में बंदी बनाकर रख दिया।

दो०– हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब अशोक पादप तर, राखेसि जतन कराइ।।३१(क)।।
जेहिं बिधि कपट कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।३१(ख)।।

भा०– बहुत प्रकार से भय और प्रेम दिखाकर जब खलप्रकृति का रावण हार गया और श्रीसीता को राजभवन में चलने के लिए सहमत नहीं कर पाया तब रावण ने यत्न पूर्वक श्रीसीता को अशोक वाटिका के अशोक वृक्ष के नीचे ही रख दिया। जिस प्रकार से कपट मृग के साथ श्रीजी को रमाने वाले भगवान् श्रीराम दौड़कर चले थे, उसी छवि को अपने हृदय में रखकर श्रीसीता हरि अर्थात् वेदवेद्य ब्रह्मा जी, विष्णु जी और शिव जी के भी अंशी महाविष्णु प्रभु के श्रीरामनाम को रटती रह रही हैं।

रघुपति अनुजहिं आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्ह बिशेषी।।
जनकसुता परिहरी अकेली। आयहु तात बचन मम पेली।।
निशिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं।।
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी।।

भा०– रघुपति अर्थात् रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को अपने पास आते देखा तो बाहर से विशेष चिन्ता की और बोले, हे भैया! जनकनन्दिनी श्रीसीता को कुटिया में अकेले छोड़ दिया और मेरे वचन अर्थात् आदेश का उल्लंघन करके तुम चले आये। वन में राक्षस समूह घूमते रहते हैं। मेरा मन कहता है कि सीता जी आश्रम में नहीं हैं। व्यंग्यार्थ यह है कि श्रीसीता मेरे मन अर्थात् हृदय में हैं, परन्तु आश्रम में नहीं हैं। लक्ष्मण जी भगवान् के श्रीचरणकमल पकड़कर हाथ जोड़े और कहा, हे नाथ! मेरा कोई दोष नहीं है अर्थात् माता जी ने हठपूर्वक मुझे आपके पास भेजा है।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ।।
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।।

भा०– श्रीलक्ष्मण के सहित प्रभु श्रीराम वहाँ गये जहाँ गोदावरी नदी के तट पर उनका आश्रम था। अपने आश्रम को श्रीसीता से रहित देखकर प्रभु श्रीराम उसी प्रकार व्याकुल हो उठे, जैसे प्राकृत अर्थात् अति साधारण अभावग्रस्त दीन व्यक्ति दु:खी हो जाता है।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप शील ब्रत नेम पुनीता।।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूँछत चले लता तरु पाँती।।

भा०– श्रीराम विलाप करने लगे, हा! गुणों की खानि जानकी! हा सीते! हा! रूप, शील और व्रत से पवित्र सीते! हा! तुम कहाँ हो? लक्ष्मण जी ने श्रीराम को बहुत प्रकार से समझाया और प्रभु श्रीराम लताओं और वृक्षसमूहों से पूछते हुए आगे चले।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।।
खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल शरद शशि अहि भामिनी।।
बरुन पाश मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रशंसा।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न शंक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।।

भा०– हे पक्षियों! हे हरिणों! हे भ्रमरों की श्रेणियों! तुमने हरिण के समान नेत्रवाली तथा स्वर्ण के हरिण पर ही जिसका नेत्र गया हो ऐसी सीता जी को देखा है? खंजन पक्षी, तोता, कबूतर, हरिण, मछली, भौंरों के समूह, गान में कुशल कोकिला, कुन्द की कली, अनार, बिजली, कमल, शरदकालीन चन्द्रमा, अहिभामिनी, अर्थात् नागिन, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, हाथी और सिंह, ये सभी अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं अर्थात् तुम्हारी उपस्थिति में ये सब तुम्हारे अंगों से निन्दित हो रहे थे, अब प्रसन्न हो रहे हैं। श्रीफल (बेल का फल), सुवर्ण, केले का वृक्ष, ये सब प्रसन्न हो रहे हैं, इनके मन में तनिक भी संकोच या शंका नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना आज ये सब तुम्हारे अंगों के उपमान, इतने हर्षित हो चुके हैं, मानो उन्हें राज्य मिल गया हो। इस प्रकार तुम्हारे द्वारा अनख अर्थात् क्रोध कैसे सहा जा रहा है यानी इन सबका अपमान और ईर्ष्या तुम क्यों सह रही हो? हे प्रिय! तुम शीघ्र क्यों नहीं प्रकट हो जाती?

विशेष– गोस्वामी तुलसीदास जी ने यहाँ भगवान् श्रीराम से उपमानों का माध्यम लेकर भगवती श्रीसीता का नख, शिख वर्णन कराया। गोस्वामी तुलसीदास जी एक मर्यादावादी कवि हैं और महाकाव्य में नख, शिख वर्णन अनिवार्य है, इसलिए उन्होंने अपने धर्मसंकट का समाधान कर लिया। यहाँ भगवान् श्रीराम, श्रीसीता के इक्कीस उपमानों का संकीर्तन करते हुए विलाप में भी व्यतिरेक अलंकार प्रस्तुत कर रहे हैं अर्थात् श्रीसीता की उपस्थिति में ये सब नगण्य थे और आज सबके सब प्रसन्न हो रहे हैं। खंजन, हरिण और मछली ये सब श्रीसीता के शृंगार, सौम्य और व्याकुल नेत्रों के उपमान हैं, तोता नासिका का, कबूतर कंठ का, भ्रमर केशों के, कोकिला मधुर वाणी की उपमान है। कुन्दकली, अनार और विद्युत दाँतों के, कमल श्रीचरण एवं श्रीहस्त, नेत्र और मुख का, शरद्चन्द्र मुख का, नागिन श्रीसीता की वेणी का, वरुण–पाश केशबन्ध का, कामधनुष भौंहों का, हंस चाल का, गज प्रसन्नता की चाल का, सिंह कटि का, श्रीफल वक्षोज का, स्वर्ण सम्पूर्ण शरीर की गौरता का और कदली जंघे का उपमान है।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।।
पूरनकाम राम सुख राशी। मनुज चरित कर अज अबिनाशी।।

भा०– इस प्रकार समस्त लोकों के स्वामी भगवान् श्रीराम विलाप करते हुए भगवती श्रीसीता को ढूँढ़ रहे हैं, मानो वे महाविरही और बहुत–बड़े कामी हों। भगवान् श्रीराम पूर्णकाम हैं अर्थात् उनकी समस्त कामनायें पूर्ण हैं। उन्हीं की कृपा से अनेक भक्तों की कामनायें भी पूर्ण हो जाती हैं, ऐसे पूर्णकाम, सुखों की राशि, अजन्मा, अविनाशी, भगवान् श्रीराम स्त्री–विरही मनुष्य के चरित्र का अभिनय कर रहे हैं।

सरवर अमित नदी गिरि खोहा। बहुबिधि राम लखन तहँ जोहा।।
सोच हृदय कछु कहि नहिं आवा। टूट धनुष सर आगे पावा।।
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन चिन्ह रेखा।।

भा०– श्रीराम, लक्ष्मण जी ने अनेक तालाबों, नदियों, पर्वत की कन्दराओं को देखा, वहाँ बहुत प्रकार से श्रीसीता को ढूँढ़ा। श्रीराम के मन में अत्यन्त शोक है, उनके मुख से कुछ कहा नहीं जा रहा है। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने रावण का टूटा धनुष और बाण देखा, आगे पड़े हुए गृद्धराज जटायुजी को देखा जो श्रीराम के श्रीचरण चिन्ह की रेखाओं का स्मरण कर रहे थे।

दो०– कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर।।३२।।

भा०– कृपा के सागर, रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने जटायु के सिर पर अपने करकमल का स्पर्श किया और अपने करकमल से मानो कृपा का सागर जटायु जी के सिर पर परोस दिया। छवि के निवासस्थान प्रभु श्रीराम का मुख देखकर जटायु जी की सम्पूर्ण पीड़ा समाप्त हो गई।

तब कह गीध बचन धरिधीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा।।
नाथ दशानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही।।
लै दच्छिन दिशि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।।

भा०– तब हृदय में धैर्य धारण करके गृद्धराज जटायु जी ने कहा, हे संसार के भय को नष्ट करनेवाले श्रीराम! सुनिये, हे नाथ! दसमुख रावण ने मेरी यह दशा की है और उसी खल ने जनकसुता श्रीजानकी को हर लिया है। हे

पृथ्वी के स्वामी! कुररी पक्षी की भाँति अत्यन्त करुण विलाप करती हुई सीता जी को लेकर वह दक्षिण दिशा की ओर गया है। हे प्रभु! आपके दर्शनों के लिए ही मैंने ये प्राण रखे, हे कृपा के भण्डागार, श्रीराम! अब ये चलना चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता।।
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।।
सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खागे।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा, हे तात अर्थात् पिताश्री! शरीर रख लीजिये। जटायु जी ने मुख से मुस्कुराते हुए यह बात कही, जिनका नाम मरणकाल में यदि मुख में आ जाये तो अधम भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं। वे ही प्रभु आप मेरे नेत्रों का विषय बनकर सम्मुख उपस्थित हैं। हे नाथ! अब किस न्यूनता की पूर्ति के लिए शरीर को रखूँ?

जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज ते गति पाई।।
परहित बस जिन के मन माहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम पूरनकामा।।

भा०– नेत्रों में अश्रु जल भरकर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम कहने लगे, हे तात अर्थात् पिताश्री जटायु! आपने अपने कर्म से ही यह गति पाई है इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। जिनके मन में दूसरों का हित करने की भावना रहती है, उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता अर्थात् उन्हें सब कुछ मिल जाता है। हे पिताश्री! यह शरीर छोड़कर आप मेरे धाम साकेतलोक को जाइये। मैं आप को क्या दूँ, आपकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो चुकी हैं, क्योंकि मैं आपका पुत्र बना इसलिए आपकी भुक्ति सुधर गई। मेरे प्रति आपकी अविरलभक्ति है और इस समय आपने अपने कर्म के प्रभाव से चारों मुक्तियाँ प्राप्त कर ली है। मैंने अपने श्रीकरकमल से आपका स्पर्श किया और आपको गोद में लिया इससे आपको सायुज्यमुक्ति मिल गई। मैं आपके समीप हूँ अतः आपने सामीप्यमुक्ति पाई। आप मेरे लोक जा रहे हैं अतः सलोक्यमुक्ति भी आपको मिल गई और मेरा चतुर्भुज रूप धारण करके आप जा रहे हैं, अतः आप सारूप्यमुक्ति भी पा गये।

दो०– सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दशानन आइ।।३३।।

भा०– हे पिताश्री! सीताहरण की बात पूज्यपिता चक्रवर्ती जी से जाकर मत कहियेगा, यदि मैं वास्तव में राम अर्थात् सभी अवतारों का अवतारी साकेताधिपति परमात्मा राम हूँ तो फिर सम्पूर्ण परिवार के सहित मेरे पास आकर मुझसे ही स्वयं सन्देशा लेकर रावण ही यह समाचार पिताश्री को सुनायेगा। अथवा, रावणवध के पश्चात् पिताश्री साकेतलोक में मेरे पास होंगे और रावण भी वहीं आकर समाचार सुनायेगा।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
श्याम गात बिशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

भा०– जटायु जी गृद्ध का शरीर छोड़कर भगवान् का वैष्णवरूप धारण करके बहुत से आभूषण और अनुपम पीताम्बर धारण करके, श्याम शरीर और विशाल चार भुजाओं से युक्त होकर आँखों में अश्रुजल भरकर स्तुति करने लगे–

विशेष– अर्थात् चतुर्भुज रूप धारण करके भी जटायु जी के मन से सेवक–सेव्यभाव नहीं गया, क्योंकि जीव मुक्त हो सकता है, पर उस अवस्था में भी जीवात्मा का परमात्मा से स्वरूपगत् भेद बना रहता है। इसीलिए ब्रह्मसूत्र में भी केवल भोग में जीवात्मा का परमात्मा से सादृश्य कहा गया है, *"भोगमात्र शाम्यलिंगात्"। (व०सू ४.४.१८)*

छं०– जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दश शीश बाहु प्रचंड खंडन चंड शर मंडन मही।।
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनम्।
नित नौमि राम कृपालु बाहु बिशाल भव भय मोचनम्।।१।।

भा०– जटायु जी बोले, हे श्रीराम! आपकी जय हो। हे अनुपम रूपवाले, हे निर्गुण और सगुण, हे गुणों के वास्तविक प्रेरक, हे रावण की प्रचण्ड भुजाओं को काटने में निपुण सुन्दर बाणों को धारण करनेवाले, पृथ्वी के आभूषण प्रभु! आपकी जय हो। जल बरसाने वाले बादल के समान श्यामल शरीर, कमल मुख, लाल कमल के समान विशाल नेत्र, आजानु विशाल बाहु, संसार के भय को नष्ट करनेवाले हे कृपालु श्रीराम! आपको मैं निरन्तर नमन करता हूँ।

छं०– बल- मप्रमेय- मनादि- मज- मब्यक्त- मेक-मगोचरम्।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरम्।।
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनम्।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनम्।।२।।

भा०– हे अमित बलवाले, सभी प्रमाणों से परे, आदिरहित, अजन्मा, प्राकृत इन्द्रियों से व्यक्त न होनेवाले, अद्वितीय, विषयों से परे, गोविन्द अर्थात् वेद, वाणी, बुद्धि, इन्द्रियों तथा पृथ्वी को भी सेविका के रूप में उपलब्ध करनेवाले, इन्द्रियों से परे, द्वन्द्वों को नष्ट करनेवाले, विज्ञान के घनीभूत विग्रह, अथवा विज्ञान के पुंजस्वरूप, अथवा विज्ञान के मेघस्वरूप पृथ्वी को धारण करनेवाले तथा जो श्रीराममंत्र का जप करते हैं ऐसे अनन्त सन्तों, अथवा राममंत्र जापक सन्त शेषावतार श्रीलक्ष्मण और अन्य श्रीभरत आदि निष्किंचन भक्तों के मन को आनन्द देनेवाले, कामनारहित जनों के हितैषी, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि खलों के दल को नष्ट करनेवाले, आप प्रभु श्रीराम जी को मैं निरन्तर नमन करता हूँ।

छं०– जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं।।
सो प्रगट करुना कंद शोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई।।३।।

भा०– जिन आपश्री को श्रुतियाँ निरन्जन अर्थात् कर्मफल के लेप से रहित ब्रह्म, सर्वव्यापक, रजोगुण से रहित और अजन्मा कहकर गाती हैं। जिन आप श्रीराघव सरकार को अनेक मुनिगण अनेक प्रकार के ध्यान, ज्ञान, वैराग्य, योग, साधना करके प्राप्त कर लेते हैं, वे ही मेरे हृदय रूप कमल के भ्रमर, करुणा के बादल और शोभा के समूहों को धारण करनेवाले, आपश्री लोकाभिराम भगवान् श्रीराम आज मेरी आँखों के सामने प्रकट होकर अपने अंगों में करोड़ों कामदेव की छवि को धारण करके सुशोभित हो रहे हैं और जड़–चेतन सबको मोहित कर रहे हैं।

छं०- जो अगम सुगम स्वभाव निर्मल असम सम शीतल सदा।
पश्यन्ति यं जोगी जतन करि करत मन गो बश यदा।।
सो राम रमा निवास संतत दास बश त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी।।४।।

भा०- जो आप श्रीराघवेन्द्र सरकार संसारियों के लिए अगम अर्थात् कठिन और अपने भक्तों के लिए सुगम अर्थात् सुखपूर्वक प्राप्त हो जाते हैं। जो भक्तों के लिए विषम व्यवहार करते हुए उनके अशुभ फल को भी शुभ में परिवर्तित कर देते हैं और अभक्तों के लिए सम अर्थात् समान रूप से सत्कर्म और कुकर्म का फल देते हैं। जिनका स्वभाव अत्यन्त निर्मल है, जो सदैव शीतल हैं, जब मन और इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं तभी योगी यत्नपूर्वक जिन आपश्री को देखते हैं अर्थात् जिनका साक्षात्कार कर लेते हैं, वही तीनों लोक के स्वामी श्रीसीता के हृदय में निवास करनेवाले आप श्रीराम निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। जिन आपश्री की कीर्ति अत्यन्त पवित्र है और जो संसार के आवागमन को नष्ट कर देते हैं, वही आप श्रीराम मेरे हृदय में निरन्तर निवास करें।

दो०- अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम।।३४।।

भा०- इस प्रकार स्तुति करके वरदान रूप में प्रभु से अविरल भक्ति माँगकर गृद्धराज जटायु जी श्रीहरि श्रीराम के साकेतधाम को चले गये। श्रीराम ने अपने हाथ से उन जटायु जी की यथोचित अंत्येष्टि क्रिया की।

* नवाहपारायण, छठाँ विश्राम *

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।

भा०- अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनों पर दयालु, बिना कारण ही कृपा करने वाले ऐसे रघुनाथ जी ने माँसाहारी नीच पक्षी गृद्ध जटायु जी को वह गति दे दी जिसे नारदादि योगी माँगते रहते हैं और नहीं पाते।

विशेष- नारद जी ने श्रीनारायण से उन्हीं का रूप माँगा था, पर प्रभु ने नारद को अपना रूप न देकर उल्टे उन्हें वानर का रूप दे दिया, परन्तु जटायु जी को बिना माँगे ही चर्तुभुज रूप दे दिया।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।।

भा०- शिव जी कहते हैं कि, हे पार्वती ! सुनिये, वे लोग बहुत दुर्भाग्यशाली हैं, जो भगवान् को छोड़कर विषयों में अनुरक्त हो जाते हैं।

पुनि सीतहिं खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।।
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन।।

भा०- फिर श्रीसीता को खोजते हुए, बहुत से वनों को देखते हुए दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण जी आगे चले। वहाँ लताओं से युक्त वृक्ष और घने वन तथा बहुत से पक्षी, पशु, हाथी और सिंह थे।

आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही स्राप कै बाता।।
दुरबासा मोहि दीन्हे स्रापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा।।

भा०- मार्ग में आते हुए कबन्ध को भगवान् ने मार डाला। कबन्ध ने शाप की बात कही। उसने कहा, हे श्रीराघव ! मुझे दुर्वासा जी ने शाप दिया था, आज आपके श्रीचरणों को देखकर मेरे सब पाप मिट गये।

सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही।।

दो०- मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि शिव, बश ताके सब देव।।३५।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने कहा, हे गन्धर्व! सुनो, मैं तुमसे कहता हूँ कि मुझे ब्राह्मणकुल का द्रोही कभी अच्छा नहीं लगता। जो कपट छोड़कर मनसा, वाचा, कर्मणा, ब्राह्मण की सेवा करते हैं, मुझ महाविष्णु श्रीराम के साथ ब्रह्मा जी, शिव जी, विष्णु जी आदि सभी देवता उसके वश में हो जाते हैं।

स्रापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता।।
पूजिय बिप्र शील गुन हीना। शूद्र न गुनगन ज्ञान प्रबीना।।

भा०- सन्त ऐसा गाते हैं कि शाप देता हुआ (नारद जी की भाँति), पिटाई करता हुआ (भृगु जी की भाँति), कठोर वचन कहता हुआ (परशुराम जी की भाँति) भी, ब्राह्मण पूज्य है। शील अर्थात् स्वभाव-गुण से हीन, जन्मना ब्रह्मणत्व को प्राप्त करके (ब्राह्मण द्वारा गर्भाधान संस्कार क्रिया से उसकी सवर्ण पत्नी ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए), पुनः गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, बहिर्निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, लिप्यारम्भ, व्रतबन्ध, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, अग्निहोत्र इन पन्द्रह संस्कारों से सम्पन्न और सोलहवें अन्त्येष्टि संस्कार के लिए अधिकृत, ऐसे वेदपाठी ब्राह्मण की अवश्य पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मणकुल में जन्म लेने पर भी उक्त सोलह संस्कारों से रहित और चिन्ता से असंतुलित, आचरणहीन व्यक्ति की गुणगणों और ज्ञान में प्रवीण (कुशल) होने पर भी पूजा नहीं करनी चाहिये।

विशेष- छान्दोग्य उपनिषद् के रैक्व आख्यान से यह स्पष्ट है कि इन प्रकरणों में शूद्र शब्द जातिवाचक न होकर आचरणवाचक है, त्रिकाल सन्ध्यारहित ब्राह्मण भी शूद्र है। अतः स्पष्ट होता है कि शील, गुण से हीन होने पर भी विप्र अर्थात् सदाचारी ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिये और गुणगणों और ज्ञान में कुशल होने पर भी शूद्र अर्थात् आचरणहीन किसी भी व्यक्ति की पूजा नहीं करनी चाहिये।

कहि निज धर्म ताहि समझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा।।
रघुपति चरन कमल सिर नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने कबन्ध को उसका और अपना भी धर्म कहकर समझाया और अपने श्रीचरणों में प्रीतिमूलक भक्ति देखकर कबन्ध श्रीराम के मन को भा गया एवं श्रीराम के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाकर अपनी गति पाकर तुम्बुरु गन्धर्व आकाश मार्ग से गन्धर्व लोक चला गया।

ताहि देइ गति राम उदारा। शबरी के आश्रम पगु धारा।।
शबरी देखि राम गृह आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए।।

भा०- उदार श्रीराम कबन्ध को गति देकर, शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी ने श्रीराम को अपने घर आया हुआ देखा, तब मुनिवर श्री मतंग जी के वचन का स्मरण करके शबरी को श्रीराम बहुत भाये।

सरसिज लोचन बाहु बिशाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।।
श्याम गौर सुंदर दोउ भाई। शबरी परी चरन लपटाई।।

भा०- कमल जैसे नेत्र, विशाल भुजायें, सिर पर जटा का मुकुट और हृदय पर तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल इन पाँच पुष्पों से गूँथी हुई, चरणपर्यन्त लटकती हुई वनमाला को धारण किये हुए, श्यामल और गौर दोनों भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण जी के चरणों में शबरी लिपट गई।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।

भा०– प्रेम में मग्न होने से शबरी के मुख से वचन नहीं निकल रहे हैं, उन्होंने बारम्बार प्रभु के श्रीचरणकमलों में सिर नवाया। शबरी ने आदरपूर्वक जल लेकर प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण जी के चरण पखारे, फिर उन्हें सुन्दर आसन पर बिठाया।

दो०- कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि।।३६।।

भा०– शबरी ने कन्द, मूल और अत्यन्त रसयुक्त फल लाकर श्रीराम को दिया और प्रभु ने बारम्बार उसकी प्रशंसा करके प्रेमपूर्वक खाया।

विशेष– प्रेमपत्तनम् एवं सूरसागर के अनुसार भगवान् श्रीराम ने शबरी के जूठे फल खाये, यद्यपि वाल्मीकि रामायण आदि में प्रभु द्वारा शबरी के फल खाने की चर्चा तो है, परन्तु जूठे फल खाने की चर्चा नहीं है। अतएव स्वभाव से समन्वयभाव के पक्षधर गोस्वामी जी ने सुरस अति कहकर दोनों पक्षों की बात कह दी जो जिस पक्ष का है, वही मान ले। वस्तुतः फलों में अत्यन्त शोभन रसवत्ता तो शबरी माता के चख–चख कर देने में ही है, क्योंकि भगवत् भजन महिम्ना शबरी मनुष्यभाव से बहुत ऊपर उठ गई हैं और वर्णाश्रम धर्म के पालन का शरीर भाव के स्मरणपर्यन्त ही आज्ञा है। यदि अभिधा वृत्ति से ही यह पक्ष अभीष्ट हो तो खाए पद का कन्दमूल फल के साथ अन्वय करना चाहिए। खाए सुरस सुरस अति कंद मूल फल राम कँह आनि दिए पुनः प्रभु बारम्बार बखानि प्रेम सहित खाए अर्थात् शबरी माता ने अपने द्वारा चखे हुए अत्यन्त स्वादयुक्त कन्दमूल और फल लाकर श्रीराम जी को दिए और प्रभु श्रीराम ने बारम्बार स्वाद की सराहना करके माँ शबरी द्वारा चखे हुए उस कंदमूल फलों को प्रेम सहित खाया।

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।।
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन महँ मैं मतिमंद अघारी।।

भा०– शबरी जी हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं। प्रभु श्रीराम को देखकर उनके मन में भगवत प्रेमभावना और बढ़ी। शबरी बोलीं, हे प्रभु! अत्यन्त जड़ बुद्धि वाली, अधम जाति में उत्पन्न हुई मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ? मैं वर्ण से अधम, आश्रम से अधम और कुल से अत्यन्त अधम नारी हूँ। हे अघासुर के शत्रु! उनमें भी मैं अत्यन्त मन्दबुद्धि की महिला हूँ।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहत कैसे। बिनु जल बारिद देखिय जैसे।।

भा०– रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने कहा, हे भामिनी अर्थात् मेरी कैकेयी माँ के समान सर्वलक्षण सम्पन्न माता शबरी! मैं भक्ति को प्रधान मानता हूँ अर्थात् जाति–पंक्ति, कुल, धर्म, बड़प्पन, धन, बल, परिवार, गुण और चतुरता से सम्पन्न भी मुझ श्रीराम की भक्ति से हीन प्राणी, उसी प्रकार शोभित होता है जैसे बिना जल का बादल दिखता है।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

दो०- गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।३७।।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम शील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।
नव महँ एकउ जिन के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।

भा०- हे शबरी माँ! आपके पास मैं भक्ति के नौ प्रकार कह रहा हूँ, उन्हें सावधान होकर सुनिये और मन में धारण कीजिये अर्थात् यह सोचिये कि, नौ में से एक भी प्रकार की भक्ति से सम्पन्न व्यक्ति मुझे प्रिय हो जाता है और आप में तो मेरी भक्ति के नौवें प्रकार दृढ़ हो चुके हैं, तो आपकी कक्षा कितनी ऊँची हो गई? सन्तों का संग प्रथम भक्ति है। मेरे कथा के प्रसंगों में अनुरक्ति दूसरी भक्ति है। मानरहित होकर अर्थात् सम्मान–पूजा की लिप्सा के बिना गुरुदेव के चरणकमलों की सेवा तृतीय भक्ति है। मेरे गुणगणों का कपट छोड़कर गायन चतुर्थ भक्ति है। मेरा दृढ़ विश्वास करके मंत्र–जाप अर्थात् मुझ श्रीराम का षड्क्षर मंत्र या द्वादशाक्षरमंत्र, अथवा अष्टाक्षर या चतुरक्षरमंत्र या द्वैक्षरमंत्र इनमें से किसी भी मंत्र का जाप करना, वेद में प्रसिद्ध मेरी पाँचवीं भक्ति है। स्वभाव से दमनशीलता बहुत से वाह्यकर्मों से वैराग्य और सज्जन अर्थात् श्रीवैष्णवधर्म में निष्ठापूर्वक लगे रहना छठीं भक्ति है। सर्वत्र समदृष्टि रखना जगत को मुझ श्रीराममय देखना, सन्तों को मुझ से अधिक करके समझना यह सातवीं भक्ति है। जितना लाभ हो उसी में संतुष्ट रहना, स्वप्न में भी दूसरों के दोष को नहीं देखना मेरी आठवीं भक्ति है। सभी के समक्ष सरल, छलहीन रहना, हृदय में मेरा भरोसा, हर्ष और दैन्य दोनों से दूर होकर भजन के आनन्द में रहना, यही मेरी नवीं भक्ति है। इन नौ भक्तियों में एक भी भक्ति चर (चेतन) अथवा अचर (जड़), नारी अथवा पुरुष इनमें से जिस किसी के पास हो, हे भामिनी अर्थात् कैकेयी तुल्या माँ! वही मुझे अत्यन्त प्रिय होता है। आप में तो मेरी भक्ति के सभी प्रकार दृढ़ हो चुके हैं।

विशेष- इस प्रसंग में श्रीराम ने शबरी को तीन बार 'भामिनी' शब्द से सम्बोधित किया है। यथा–**कह रघुपति सुनु भामिनि बाता**–मानस, ३.३७.४. **सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे**–मानस, ३.३८.७. **जनकसुता कइ सुधि भामिनि**–मानस, ३.३८.१०. और यही सम्बोधन महाराज दशरथ जी ने कैकेयी को दिया था। यथा–**भामिनि भयउ तोर मनभावा**–मानस, २.२७.२. इससे भगवान् श्रीराम का यही तात्पर्य है कि जितनी मुझे कैकेयी माँ प्रिय हैं उतनी ही प्रिय आप भी हैं।

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहँ आजु सुलभ भइ सोई।।
मम दरशन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा।।
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहु कहु करिवरगामिनी।।

भा०– हे माँ! जो गति योगिवृन्दों के लिए भी दुर्लभ है, वह आज आप को सुलभ हो गई है। मेरे दर्शन का फल परमपूज्य, अनुपम अर्थात् उपमारहित है। उसी से जीव अपने सहजस्वरूप अर्थात् मेरे दास्यभाव को प्राप्त कर लेता है। हे भामिनी! क्या आप श्रेष्ठ गजगामिनी जनकनन्दिनी श्रीसीता का समाचार जानती हैं? तो कहिए।

विशेष– दास्यभाव ही जीव का स्वाभाविक स्वरूप है। जीव, ईश्वर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जीव का ईश्वर से स्वरूपगत भेद शाश्वत सत्य है। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए प्रस्थानत्रयी पर मेरा राघवकृपाभाष्य देखिये।

पंपा सरहिं जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई।।
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहू पूँछहु मतिधीरा।।
बार बार प्रभु पद सिर नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई।।

भा०– हे रघुराज श्रीराम! आप पम्पासरोवर जाइये, वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता हो जायेगी। हे देवाधिदेव रघु अर्थात् जीवमात्र के वीर अर्थात् प्रेरक प्रभु! वे सुग्रीव आपको श्रीसीता के सम्बन्ध में सब कुछ बतायेंगे। हे मतिधीर! आप जानते हुए भी सब कुछ पूछ रहे हैं। शबरी माता ने भगवान् श्रीराम के चरणों में बार–बार मस्तक नवाकर प्रेमपूर्वक सब कथा सुनायी।

छं०– कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।।
नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत शोकप्रद सब त्यागहू।
बिश्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू।।

भा०– सम्पूर्ण कथा कहकर प्रभु का मुख निहारकर माता शबरी ने अपने हृदय में भगवान् श्रीराम के श्रीचरणपंकज को धारण कर लिया और योगाग्नि में अपने शरीर को छोड़कर प्रभु के श्रीचरणों में लीन हो गईं, जहाँ जाकर फिर कोई नहीं लौटता। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे मनुष्यों! कष्ट देनेवाले अनेक कर्म अनेक अधर्म और बहुत से मत–मतान्तर सब शोकप्रद है। इन्हें छोड़ दो और विश्वास करके भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में प्रेम करो।

दो०– जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्ह असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि।।३८।।

भा०– हे अत्यन्त मन्दमनवाले जीव! अथवा अत्यन्त मन्द मेरे मन! प्रभु श्रीराम ने अत्यन्त हीनजाति में उत्पन्न हुए पापों की जन्मभूमि हिंसाप्रधान कोल, किरातों के कुल में पली, ऐसी संस्कारहीन नारी को भी जब मुक्त कर दिया तो तुम ऐसे प्रभु को छोड़कर क्या सुख चाहते हो? प्रभु के बिना वह तुम्हें मिलेगा ही नहीं।

विशेष– इस प्रसंग में सन्त एक दोहा कहते हैं–

ब्याह न किन्हेउ सपनेहूँ, पति दरशन नहीं कीन्ह।
शबरी पुत्रवती भई, प्रभु गोदी भरि दीन्ह।।

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ।।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा।।

भा०– श्रीराम आगे चले, वह वन भी छोड़ा। दोनों भ्राता मनुष्यों में सिंह के समान अतुलनीय बलवाले हैं। प्रभु विरही की भाँति विषाद कर रहे हैं और लक्ष्मण जी से अनेक संवादों के क्रम में अनेक कथायें कह रहे हैं।

लछिमन देखु बिपिन कइ शोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा।।
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हैं निंदा।।

भा०– लक्ष्मण! वन की शोभा तो देखो, इसे देखकर किस के मन में क्षोभ नहीं हो जाता? सभी पक्षी और पशु अपनी–अपनी पत्नियों के साथ भ्रमण करते हुए, मानो मेरी निन्दा कर रहे हैं।

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं।।
तुम आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए।।
संग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देहीं।।

भा०– लक्ष्मण! हमें देखकर हरिण लोग भागते हैं, तब मृगियाँ कहती हैं कि तुमको डर नहीं है। हे मृगपुत्रों! तुम तो हमारे साथ आनन्द करो, ये तुमको नहीं मारेंगे, क्योंकि ये तो स्वर्णमृग खोजने आये हैं। हाथी, हथिनियों को अपने साथ लगा लेते हैं, मानो मुझे शिक्षा देते हैं कि तुम्हें सीता जी को छोड़कर स्वर्णमृग मारने के लिए नहीं जाना चाहिये था।

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बश नहिं लेखिय।।
राखिय नारि जदपि उर माहीं। जुबती शास्त्र नृपति बश नाहीं।।

भा०– भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी से कहते हैं कि सुविचारित होने पर भी शास्त्रों को बारम्बार देखना चाहिये, एक क्षण की उपेक्षा से भी शास्त्र भूल जाते हैं और विद्यार्थी को सर्वनाश के कगार पर खड़ा कर देते हैं। सेवा से संतुष्ट हुए राजा को भी अपने वश में नहीं समझना चाहिये। भले सामान्य लोग नारी को हृदय में ही रखें, परन्तु युवती नारी, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं हुआ करते।

विशेष– *"शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिवीक्षणीयं संसेवितोऽपि नृपतिः पुनरीक्षणीयः अंकेगतापि युवतिश्च निरीक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतोवसित्वं।"*

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।।

भा०– लक्ष्मण! देखो, यह सुहावना वसंत, प्रिया सीता जी से बिछुड़े हुए मुझ राम में भय उत्पन्न कर रहा है।

दो०– बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खगन, मदन कीन्ह बगमेल।।३९(क)।।

भा०– मुझे काम ने विरह से व्याकुल सीतारूप शक्ति से अलग होने के कारण निर्बल और अत्यन्त अकेला जान लिया है, इसलिए कामदेव ने वन, भ्रमरों और पक्षियों के सहित, मानो पंक्ति तोड़कर आक्रमण किया है।

देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहु तब, कटक हटकि मन जात।।३९(ख)।।

भा०– परन्तु कामदेव का दूत वायु जब मुझ राम को भ्राता लक्ष्मण के सहित देखकर गया तब उसकी बात सुनकर, मानो कामदेव ने सेना को रोककर वन में डेरा डाल दिया अर्थात् छावनी बना ली, जिसे देखकर रोकने पर भी मन वहाँ चला जाता है।

बिटप बिशाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।।
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।।

भा०– विशाल वृक्षों में लतायें उलझी हुई हैं, मानो ये ही काम सेना के अनेक तम्बू हैं। कदली अर्थात् केले और ताल के वृक्ष ही उसके ध्वज और पताका है जिसका मन धीर होगा वही उसे देखकर नहीं मोहित होगा।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।।
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए।।

भा०– यहाँ बहुत प्रकार से अनेक वृक्ष फूलों से लदे हैं, मानो ये ही सेना के परिवेश में कुशल तीर चलाने वाले सैनिक हैं। कहीं–कहीं सुन्दर वृक्ष बड़े आकार में सुहावने लग रहे हैं, मानो वे ही अलग–अलग छावनी डाले विशिष्ट योद्धा हैं।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते।।
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी।।
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा।।

भा०– बोलते हुए कोयल मानो मतवाले हाथी हैं, ढेक और महोक पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस ये ही सब ताजी जाति के सुन्दर घोड़े हैं। तीतर और बटेर कामदेव के पैदल सैनिक हैं, कामदेव की सेना का वर्णन नहीं किया जा सकता।

रथ गिरि शिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना।।
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई।।
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हे।।

भा०– पर्वत की शिलायें कामदेव के रथ हैं, झरना उस के नगारे हैं। भ्रमरों का गुंजार कामदेव की भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द, सुगन्ध ये तीन प्रकार की बयार दूत बनकर आई है। यह काम वसंत के उपकरण रूप चतुरंगिणी सेना लिए हुए, सबको चुनौती देता हुआ अर्थात् युद्ध के लिए ललकारता हुआ इस वन में विचरण कर रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन कै जग लीका।।
एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी।।

भा०– हे लक्ष्मण! काम की सेना को देखते हुए जो लोग धीर अर्थात् विकार से शून्य, पवित्र रह जाते हैं, संसार में उन्हीं की मर्यादा और प्रतिष्ठा होती है। इसके (कामदेव की) एकमात्र नारी परमबल है, उसकी आसक्ति से जो बच जाये वही बहुत–बड़ा योद्धा है अर्थात् पुरुष ही वासना में प्रधान भूमिका निभाता है, अतः व्यभिचार में नारी की अपेक्षा पुरुष का अपराध अधिक होता है।

दो०– तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ।।४०(क)।।
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि।।४०(ख)।।

भा०– हे तात! काम, क्रोध, और लोभ ये तीनों दुष्ट अत्यन्त प्रबल हैं, जो विज्ञान के निवास स्थान मुनियों के भी मन में एक क्षण में क्षोभ कर देते हैं। मुनिवर लोग विचार कर कहते हैं कि लोभ के पास इच्छा तथा दम्भ का बल होता है, काम का बल तो एकमात्र नारी है तथा क्रोध के पास कठोर वचन का बल होता है।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी।।
कामिन कै दीनता देखाई। धीरन के मन बिरति दृढ़ाई।।
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।।

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला।।
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना।।

भा०– हे पार्वती! भगवान् श्रीराम तीनों गुणों से परे, चर–अचर सहित सम्पूर्ण जगत् के स्वामी और सभी के अन्तर्यामी हैं। सीताहरण में विलाप करके भगवान् श्रीराम जी ने कामियों की दीनता का दर्शन कराकर धैर्यवानों के मन में वैराग्य को ही दृढ़ किया है। क्रोध, काम, लोभ, मद, माया ये सभी भगवान् श्रीराम की दया से ही छूट जाते हैं। वह मनुष्य कभी भी संसाररूप इन्द्रजाल में नहीं भूलता, जिस पर वह नट ऐन्द्रजालिक भगवान् श्रीराम अनुकूल होते हैं। हे पार्वती! मैं अपना अनुभव कह रहा हूँ कि श्रीहरि भगवान् श्रीराम का भजन अर्थात् नाम, रूप, लीला, धाम का चिन्तन ही सत्य अर्थात् अविनाशीतत्त्व है। इसके अतिरिक्त जगत् का सम्पूर्ण व्यवहार सब सपना है अर्थात् स्वप्न के समान परिवर्तनशील और अस्थायी है।

विशेष– जगत् को स्वप्न कहकर गोस्वामी जी ने झूठा नहीं परन्तु अस्थिर कहा, क्योंकि चारों अवस्थाओं में स्वप्नावस्था भी एक अवस्था है, जिसके विभु हिरण्यगर्भ हैं जिन्हें गोस्वामी जी ने शत्रुघ्न जी से उपमित किया है। गोस्वामी जी के मत में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया नामक चारों अवस्थायें उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, माण्डवी तथा सीता जी की उपमान हैं और इनके विभु विराट्, हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ और तुरीय परमेश्वर क्रमशः लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और श्रीराम के उपमान हैं। यथा– जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं–मानस, १.३२५.१४ अतः गोस्वामी जी स्वप्न को झूठा कैसे कहेंगे? जगत् सब सपना'कहकर उन्होंने स्पष्ट रूप से जगत् की क्षणभंगुरता के साथ सत्ख्यातिवाद का सिद्धान्त ही स्वीकार किया है।

पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा।।
संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।।
जहँ तहँ पियहिं बिहग मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।।

भा०– फिर प्रभु श्रीराम पम्पा नामक सुन्दर गम्भीर सरोवर के तट पर गये। उसमें सन्तों के हृदय जैसा निर्मल जल था और चार सुन्दर घाट बने हुए थे। जहाँ–तहाँ अनेक पक्षी और मृग जल पी रहे थे, मानो उदार के घर में याचकों की भीड़ लगी हो।

दो०– पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुन ब्रह्म।।४१(क)।।

भा०– घनी पुरइनों अर्थात् कमलिनियों के आर (व्यवधान) में जल का मर्म शीघ्रता से नहीं पाया जा सकता था, जैसे माया से आच्छन्न बुद्धि से निर्गुणब्रह्म नहीं देखे जा सकते।

सुखी मीन सब एकरस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मशीलन के, दिन सुख संजुत जाहिं।।४१(ख)।।

भा०– एकरस अर्थात् स्थिर अत्यन्त अथाह जल में रहने वाले सभी मछली उसी प्रकार सुखी थे जैसे धर्मात्माजनों के दिन सुखपूर्वक ही बीतते हैं।

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा।।

भा०- पम्पा सरोवर में श्वेत रक्त, नील और पीत इन नाना रंगों के कमल खिले हुए थे। मधुर स्वर में बहुत से भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वहाँ जल के मुर्गे और श्रेष्ठ हंस बोल रहे थे, मानो वे प्रभु श्रीराम को देखकर प्रशंसा कर रहे थे।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।।
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई।।

भा०- वहाँ चक्रवाक और बगुलों का भी समुदाय था जो देखते बनता था और कहा नहीं जा सकता था। सुन्दर पक्षियों की सुहावनी वाणी, मानो जाते हुए पथिकों को तालाब के पास बुला लेती थी।

ताल समीप मुनिन गृह छाए। चहुँ दिशि कानन बिटप सुहाए।।
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।।
शीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ।।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।।

भा०- तालाब के समीप चारों ओर मुनियों ने कुटिया बनाई हुई थी और उनके चारों ओर वन में सुहावने वृक्ष थे। जिनमें चम्पा, बकुल, कदम्ब, तमाल, गुलाब, कटहल, ढाँक (टेसू) और आम्र प्रमुख थे। नवीन पल्लवों से युक्त कुसुमित अर्थात् पुष्पों से लदे हुए अनेक प्रकार के वृक्षों पर भ्रमरों का समूह गान कर रहा था। स्वभाव से शीतल, मन्द, सुगन्ध सुन्दर वायु निरन्तर बह रहा था। कोयल कूहूऽऽऽ–कूहूऽऽऽ ध्वनि कर रहे थे, जिनका सरस स्वर सुनकर मुनियों के ध्यान टल जाते थे।

दो०- फल भारन नमि बिटप सब, रहे भूमि नियराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ।।४२।।

भा०- फल के बोझों से झुके हुए सभी वृक्ष पृथ्वी के समीप आ गये थे, जैसे परोपकारी पुरुष सुन्दर सम्पत्ति पाकर झुक जाते हैं।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा।।
देखी सुंदर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया।।

भा०- अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर भगवान् श्रीराम ने परमसुख प्राप्त किया और उसमें स्नान किया। एक सुन्दर श्रेष्ठ वृक्ष की छाया देख वहाँ छोटे भाई सहित रघुराज श्रीराम बैठ गये।

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए।।
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला।।

भा०- फिर वहाँ सम्पूर्ण देवता और मुनि आये। वे प्रभु की स्तुति करके अपने–अपने निवासस्थान को चले गये। पम्पा सरोवर के तट पर वृक्ष की छाया में लक्ष्मण जी के समक्ष रसयुक्त कथा कहते हुए कृपालु श्रीराम परमप्रसन्न हुए विराज रहे हैं।

बिरहवंत भगवंतहिं देखी। नारद मन भा सोच बिशेषी।।
मोर स्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा।।
ऐसे प्रभुहिं बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहिं अस अवसर आई।।
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना।।
गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी।।

भा०- भगवान् श्रीराम को विरहवान देखकर नारद जी के हृदय में विशेष चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि मेरे शाप को स्वीकार करके भगवान् श्रीराम नाना प्रकार के दुःख के भार सह रहे हैं, जाकर ऐसे प्रभु के दर्शन करूँ। फिर इस प्रकार का अवसर नहीं बनेगा। ऐसा विचार करके हाथ में वीणा लेकर प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान कर श्रीरामचरित्र का गान करते हुए नारद जी जहाँ प्रभु सुखपूर्वक आसीन थे, वहाँ गये।

करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई।।
स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।।

भा०- दण्डवत् करते देखकर देवर्षि नारद जी को भगवान् श्रीराम ने उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रखा। वस्तुतः यह अर्थ प्राचीन टीकाकारों के अनुरोध से किया गया है। वास्तविकता इसके विपरीत है। नारद जी को आते देखकर ब्रह्मण्यदेव प्रभु श्रीराम दण्डवत् करने लगे। प्रभु को दण्डवत् करते देख नारद जी ने उन्हें उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगा रखा। स्वागत अर्थात् सुन्दर आगमन का समाचार पूछकर, प्रभु श्रीराम ने नारद जी को निकट बैठाया। लक्ष्मण जी ने नारद जी के चरणकमलों को पखारा।

दो०- नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तब, जोरि सरोरुह पानि।।४३।।

भा०- तब नाना प्रकार से प्रार्थना करके प्रभु श्रीराम को मन में प्रसन्न जानकर कमल के समान कोमल हाथ जोड़कर देवर्षि नारद जी वचन बोले–

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक।।
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी।।

भा०- हे स्वभावतः उदार और स्वभावतः सुन्दर, कठिन और सुगम वरदान देनेवाले, रघुकुल के नायक श्रीराम! सुनिये, मैं एक वरदान माँग रहा हूँ, उसे दे दीजिये। हे स्वामी! हे अन्तर्यामी श्रीराम! यद्यपि आप उसे जानते हैं।

जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ।।
कवनि बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने कहा, हे मुनिश्रेष्ठ! आप मेरा स्वभाव जानते हैं। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ? संसार में मुझे कौन ऐसी वस्तु प्रिय लगी है जो आप नहीं माँग सकते?

जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिश्वास तजहु जनि भोरे।।
तब नारद बोले हरषाई। अस बर माँगउँ करउँ ढिठाई।।

भा०- भक्त के लिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है, ऐसा विश्वास भूलकर भी नहीं छोड़ियेगा। तब नारद जी प्रसन्न होकर बोले, मैं ऐसा वर माँग रहा हूँ और ढिठाई कर रहा हूँ, क्योंकि नामापराध कर रहा हूँ।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका।।
राम सकल नामन ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।

भा०- यद्यपि वेद प्रभु के एक से एक श्रेष्ठ अनेक नाम कहते हैं, फिर भी हे नाथ! श्रीरामनाम आपके सभी नामों से अधिक प्रभावशाली हो जाये और यह पापरूप पक्षीसमूहों के लिए बहेलिए के समान हो जाये।

दो०- राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहुँ भगत उर ब्योम।।४४(क)।।

भा०– हे प्रभु! आपकी भक्तिरूपी पूर्णिमा की रात्रि में वही रामनाम चन्द्रमा के समान हो तथा आपके और नाम तारागणों के समान हों। इस प्रकार, भक्त के निर्मल हृदय आकाश में आपकी भक्ति पूर्णिमा के पर्व पर अन्य नामरूप तारागणों के सहित आपका श्रीरामनामरूप चन्द्रमा निवास करे।

एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभु पद नायउ माथ।।४४(ख)।।

भा०– कृपा के सागर श्रीरघुनाथ ने मुनि से कहा, एवमस्तु (ऐसा ही हो), तब मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर नारद जी ने प्रभु के श्रीचरणों में मस्तक नवाया।

अति प्रसन्न रघुनाथहिं जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी।।
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया।।
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।।

भा०– श्रीरघुनाथ को अत्यन्त प्रसन्न जानकर, नारद जी फिर कोमल वाणी बोले, हे रघुकुल के राजा परब्रह्म परमात्मा श्रीराम! जब आप ने विष्णुरूप की अपनी माया को प्रेरित किया और मुझे मोहित कर लिया तब मैं विवाह करना चाहता था, हे प्रभु! तब आपने मुझे किस कारण से विवाह नहीं करने दिया?

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।।
करउँ सदा तिन कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।
गह शिशु बच्छ अनल अहि धाई। तेहि राखइ जननी अरगाई।।
प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता।।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।।

भा०– हे नारद मुनि! मैं तुम से सहर्ष यह बात कह रहा हूँ। जो मुझे सभी का भरोसा छोड़कर भजते हैं, उनकी मैं उसी प्रकार सदैव रखवाली करता हूँ, जैसे वात्सल्यवती माँ बालक की रक्षा करती है। छोटा–सा वात्सल्यभाजन बालक अग्नि और सर्प दौड़कर पकड़ता है, तब उसे चुपचाप माँ दौड़कर बचा लेती है और प्रौढ़ हो जाने पर उसी पुत्र पर माता प्रीति तो करती है, पर उसकी पिछली बात नहीं रह जाती, क्योंकि अब प्रौढ़ हुआ पुत्र माता पर ही निर्भर नहीं रहता स्वयं अपनी रक्षा करने लगता है और कुछ हित, अहित जानने लगता है। उसी प्रकार ज्ञानी–भक्त मेरे प्रौढ़पुत्र के समान हैं और मानरहित दास शिशु पुत्र के समान हैं।

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही।।
अस बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं।।

भा०– जनहि अर्थात् निष्किंचन दास को मेरा बल रहता है और ज्ञानीभक्त को उसका बल हो जाता है। दोनों के ही काम और क्रोध शत्रु हैं इसलिए ऐसा विचार करके पंडित लोग मेरा भजन करते हैं, ज्ञान प्राप्त करके भी भक्ति को नहीं छोड़ते। इसी कारण उनका पतन नहीं होता, केवल ज्ञान से पतन सम्भव है।

दो०– काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि।।४५।।

भा०– काम, क्रोध, लोभ और मद ये सब मोह की बहुत बड़ी सेना हैं, उनमें भी मायारूपिणी, भोगवादिनी, वासनाप्रधान नारी अत्यन्त भयंकर दु:ख देनेवाली है।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।

भा०– हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूप वन के लिए भोगप्रधान नारी वसन्त के समान होती है। जप, तप, नियम इन सभी जलाशय समूहों को भौतिक नारी ग्रीष्मऋतु बनकर सोख लेती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हरषप्रद बरषा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन कहँ शरद सदा सुखदाई।।

भा०– काम, क्रोध, मद और मत्सर इन मेढ़कों को नारी एकमात्र वर्षाऋतु बनकर प्रसन्नता दे देती है और दुर्वासनारूप जो कुमुदों का समुदाय है, उन्हें भोगप्रिय नारीरूप शरदऋतु सदैव सुखद होती है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिनहिं दहइ सुख मंदा।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि शिशिर ऋतु पाई।।

भा०– धार्मिक अनुष्ठानरूप अथवा, धर्मानुष्ठान से उत्पन्न पुण्यरूप सभी कमल समूहों को मन्द सुखवाली सांसारिक स्त्री हेमन्तऋतु बनकर जला डालती है, फिर ममतारूप जवास, नारीरूप शिशिरऋतु को पाकर बहुत हरा–भरा हो जाता है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।।
बुधि बल शील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।।
दो०– अवगुन मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि।।४६।।

भा०– पापरूप उल्लू समूहों को सुखी करने के लिए कामप्रधान नारी घनी अँधेरी रात है। चतुर लोग कहते हैं कि बुद्धि, बल, शील सत्यरूप सभी मछलियों के लिए भगवत् भजनहीन नारी कँटिया के समान है। जैसे कँटिया मछली फँसाती है, उसी प्रकार भोगप्रधान नारी, बुद्धि, बल, शील, और सत्य को फँसा लेती है। हे नारद मुनि! प्रकृष्ट भोगमद से युक्त माता, बहन, पत्नी तथा पुत्री इन चारों पवित्र सम्बन्धों से दूर, रूप बेचनेवाली वासनाप्रधान साधारण नारी सभी दुर्गुणों का कारण और कष्ट देनेवाली होती है, इसलिए मैंने हृदय में ऐसा जानकर मेरी माया के साथ विवाह करने जा रहे, आपको रोका। आप भागवत्प्रपन्न सन्यासी होकर गृहस्थ आश्रम की ओर जा रहे थे, आरूढ़ पतित हो रहे थे। अतएव मैंने आपको इस झंझट से बचा लिया।

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए।।
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती।।
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी।।

भा०– श्रीरघुनाथ के सुहावने वचन सुनकर नारद मुनि के शरीर में रोमांच हो गया और उनके नेत्र भर आये। वे स्वगत् कहने लगे अर्थात् अपने से अपनी बात करने लगे। कहो, प्रभु की ऐसी कौन रीति है जो अपने सेवक पर इतनी ममता और अत्यन्त प्रेम करते हैं। जो लोग भ्रम छोड़कर ऐसे निर्व्याज प्रेम करनेवाले, बिना कारण सेवक पर ममता करनेवाले प्रभु श्रीराम को नहीं भजते वे मनुष्य ज्ञान के दरिद्र, मूर्ख और बहुत–बड़े दुर्भाग्यशाली हैं।

पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिशारद।।
संतन के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भंजन भव भीरा।।

भा०– फिर आदरपूर्वक नारद जी बोले, हे विज्ञान के विशारद अर्थात् विशिष्टाद्वैत विज्ञान के चतुर ज्ञाता श्रीराम! सुनिये, हे संसार के भय को दूर करनेवाले रघुवीर श्रीराम! आप सन्तों के लक्षण कहिये।

सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जिन ते मैं उन के बस रहऊँ।।
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन शुचि सुखधामा।।
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना।।

भा०– हे नारद मुनि! सुनिये, मैं अब सन्तों के गुण कह रहा हूँ। जिन गुणों के कारण मैं उनके वश में रहता हूँ। सन्त लोग छहों विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर को जीत लेते हैं तथा निष्पाप और कामनारहित होते हैं। वे अचल अर्थात् निष्ठा से चलायमान नहीं होते। वे अकिंचन अर्थात् श्रीरामनाम धन को छोड़कर किसी धन का संग्रह नहीं करते। वे पवित्र होते हैं और भगवद् भजनरूप पवित्रसुख के आश्रय होते हैं। उनका भगवद् सम्बन्धी ज्ञान असीम होता है। सन्तों की कोई चेष्टा नहीं होती, वे सांसारिक पदार्थों का सीमित भोग करते हैं। सत्यभाषण ही सन्तों का सारतत्त्व होता है। वे मनीषी, वेदज्ञ और योगी होते हैं। वे निरन्तर भजन में सावधान, सबको सम्मान देनेवाले, मद से हीन, धीर अर्थात् विकारों की सामग्रियों के रहने पर भी विचलित नहीं होने वाले और धर्म की गति में परमकुशल होते हैं।

दो०– गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन कहँ देह न गेह।।४७।।

भा०– सन्त गुणों के भण्डागार, संसार के दुःखों से रहित और सन्देह से रहित होते हैं। उन सन्तों को मेरे श्रीचरणकमलों को छोड़कर शरीर और घर भी प्रिय नहीं होते अर्थात् सन्त शरीर और घर का प्रेम छोड़कर एकमात्र मेरे चरणकमल में ही प्रेम करते हैं।

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल स्वभाव सबहिं सन प्रीती।।

भा०– अपने गुण कानों से सुनकर सकुचाते हैं और दूसरों का गुण, अथवा पर अर्थात् परमेश्वर के गुण सुनकर अधिक प्रसन्न होते हैं। वे समदर्शी और शीतल होते हैं तथा अपनी रीति नहीं छोड़ते। उनका स्वभाव सरल होता है और सबके समक्ष भगवद् प्रीति का ही व्यवहार करते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्रपद प्रेमा।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत शीला।।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते।।

भा०– सन्तों में जप, तप, व्रत, इन्द्रिय दमन, संयम अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि का एकीकरण और अहिंसादि नियम होते हैं। सन्तों में गुरुदेव, भगवान् और ब्राह्मणों के चरणों के प्रति प्रेम होता है। उनमें श्रद्धा अर्थात् वैदिक सिद्धांत में आस्था, क्षमा, मित्रता, दया, मुदिता अर्थात् प्रसन्नता, मेरे चरणों में छलरहित प्रीति, वैराग्य, विवेक, विनम्रता, विज्ञान तथा अर्थ के अनुकूल वेदपुराणों का बोध होता है। सन्त कभी भी दम्भ (पाखण्ड अथवा दिखावा), मान, मद नहीं करते और भूलकर भी बुरे मार्ग पर पग नहीं देते। सन्त निरन्तर मेरी लीलाओं को गाते

और सुनते हैं। उनका स्वभाव स्वार्थरहित और परोपकार में लगा हुआ रहता है। हे नारद मुनि! सुनिये, सन्तों के जितने गुण हैं, उतने गुणों को सरस्वती जी और वेद भी नहीं कह सकते।

छं०- कहि सक न शारद शेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपालु अपने भगत गुन निज मुख कहे।।
सिर नाइ बारहिं बार चरननि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रए।।

भा०- सन्तों के गुण सरस्वती जी और शेष जी नहीं कह सकते। इस प्रकार श्रीमुख से सन्तलक्षण सुनकर, नारद जी ने प्रभु श्रीराम के श्रीचरणकमल पकड़ लिए। कृपालु, दीनबन्धु श्रीराम ने इस प्रकार अपने ही श्रीमुख से अपने ही भक्तों के गुणगण कहे। प्रभु के श्रीचरणों में बारम्बार सिर नवाकर नारद जी ब्रह्मलोक पधार गये। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि वे लोग धन्य हैं, जो सम्पूर्ण आशायें छोड़कर प्रभु श्रीराम के रंग में रंग जाते हैं।

दो०- रावनारि जस पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग।।४८।।

भा०- रावण के शत्रु भगवान् श्रीराम के पवित्र यश को जो लोग गाते और सुनते हैं, अथवा गायेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योग के बिना भी श्रीराम की दृढ़ भक्ति पा रहे हैं और पा जायेंगे।

* मासपारायण, इक्कीसवाँ विश्राम *

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने भवभंजनं नाम तृतीयसोपानं अरण्यकाण्डं सम्पूर्णं।

श्रीसीतारामार्पणमस्तु।

इस प्रकार श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित सम्पूर्ण कलियुग के पाप को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का भवभंजन नामक तृतीय सोपान, अर्थात् अरण्यकाण्ड सम्पन्न हुआ। यह श्रीसीताराम जी को समर्पित हो।

श्रीरामभद्राचार्येण कृता भावार्थबोधिनी मानसे च तृतीयोऽस्मिन् सोपाने राम तुष्टये।

।।श्रीराघवःशन्तनोतु।।

अरण्यकाण्ड समाप्त

।।श्री सीताराम।।
श्री गणेशाय नमः
श्री सीतारामौ विजयेते
श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

किष्किन्धाकाण्ड

मंगलाचरण
श्रीः
भावार्थबोधिनी टीका

कृतकुन्दाम्बुदतापौ धृतशरचापौ हृता निलजतापौ।
वन्दे लक्ष्मण रामौ निजजनचित्ताभिरामौ तौ।।१।।
नत्वा श्रीतुलसीदासं किष्किन्धाकाण्ड इर्यते।
श्री रामभद्राचार्येण टीका भावार्थबोधिनी।।२।।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीसीताराम जी का स्मरण। श्रीगणपति को नमस्कार भगवान् श्रीसीताराम जी सर्वश्रेष्ठता के साथ विराजमान हो रहे हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस का किष्किन्धाकाण्ड नामक चतुर्थ सोपान प्रारम्भ हो रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी दो शार्दूलविक्रिडित छन्दों में मंगलाचरण प्रस्तुत करते हैं। प्रथम श्लोक में गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीराम एवं लक्ष्मण जी से भक्ति प्राप्ति की अपेक्षा करते हुए कहते हैं कि–

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथि गतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः।।१।।

भा०– कुन्द–पुष्प और नीले कमल के समान सुन्दर, अथवा कुन्द और इन्दीवर (नीला कमल) जिनके कारण सुन्दर हैं, अर्थात् इन्हें जिनसे सुन्दरता प्राप्त हुई है, ऐसे अतिशय बल वाले, विमल ज्ञान के आश्रय, शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुष धारण करने वाले, वेदों द्वारा नमन का विषय बनाये गये अर्थात् वेद जिन्हें नमन करते हैं, जो गौ और ब्राह्मणवृन्द को प्रिय हैं तथा जिन्हें गौ और वेदपाठी ब्राह्मणवृन्द प्रिय हैं, ऐसे सभी जीवों पर कृपा करके मनुष्य रूप धारण किये हुए श्रेष्ठ धर्म जिनका कवच है और जो सन्तों तथा धर्म के कवच के समान रक्षक हैं, ऐसे श्रीसीता के अन्वेषण में तत्पर ऋष्यमूक पर्वत के मार्ग में चलते हुए रघुकुल में श्रेष्ठ वे दोनों भ्राता श्री राम लक्ष्मण हमारे लिए भक्ति प्रदान करने वाले हों अर्थात् श्रीलक्ष्मण हमें साधना–भक्ति प्रदान करें और श्रीराम हमें प्रेमलक्षणा भक्ति प्रदान करें।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।।२।।

भा०– द्वितीय श्लोक में श्रीरामनाम को अमृत से रूपित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् वेदरूप क्षीरसागर से पूर्णरूपेण उत्पन्न कलियुग के मलों को नष्ट करने वाले तथा अव्यय अर्थात् तीनों कालों में नाश से रहित सदैव सीता जी की कृपा से अनुगृहीत कल्याणकारी शिव जी के सुन्दर और श्रेष्ठ मुखचन्द्र में सम्यक्रूप से शोभित संसाररूप रोग की औषधि

और संसार के रोगों के लिए औषधिस्वरूप अत्यन्त मधुर पराशक्ति श्रीसीता तथा जनकनन्दिनी श्रीसीता की प्रतिबिम्बमयी माया की सीता जी के भी जीवन के आधारस्वरूप भगवान् श्रीराम के श्रीरामनामरूप अमृत का जो वैखरी वाणी द्वारा जप के माध्यम से सतत् पान करते रहते हैं, वे कृति अर्थात सत्कर्म करने वाले, पुण्यात्मा, भाग्यशाली महानुभाव धन्य हैं।

सो०- मुक्ति जनम महि जानि, ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न।।
जरत सकल सुर बृंद, बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मति मंद, को कृपालु शङ्कर सरिस।।

भा०- जहाँ शिव जी तथा पार्वती जी निवास करते हैं ऐसे ज्ञान की खानि और पापों का नाश करने वाली उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि मानकर क्यों नहीं सेवा करनी चाहिये? अर्थात् काशीवास करके श्रीरामनाम का जप अवश्य करना चाहिये। हे मन्दमति जीव! जिन शिव जी ने क्षीरसागर से उत्पन्न कालकूट विष की गर्मी से सभी देवसमूहों को भस्म होते देखकर, उस भयंकर विष को श्रीरामनाम का उच्चारण करके पान कर लिया था, उनका भजन क्यों नहीं करता? अर्थात् शिव जी के ही भक्ति से श्रीरामभक्ति सम्भव है, क्योंकि शिव जी श्रीरामनाम जप के प्रथम आचार्य हैं और श्रीरामनाममंत्र के चतुर्थ अक्षर के ऋषि हैं, ऐसे उन (भगवान् शिव) के समान कृपालु कौन है?

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्बत नियराया।।

भा०- फिर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम नारद जी के ब्रह्मलोक पधार जाने के पश्चात् लक्ष्मण जी के साथ पम्पा सरोवर से आगे चले और ऋष्यमूक पर्वत के निकट आ गये, अथवा प्रभु से मिलने के लिए ऋष्यमूक पर्वत ही उनके निकट आ गया।

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा।।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिय सयन बुझाई।।
पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह शैला।।

भा०- उस ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीहनुमान, नल, नील और जाम्बवान इन चार मंत्रियों के साथ सुग्रीव जी रहते थे। जब उन्होंने अतुलनीय बल की सीमा स्वरूप श्रीराम एवं लक्ष्मण जी को अपने निकट आते देखा तब सुग्रीव जी ने अत्यन्त भयभीत होकर कहा, हे हनुमान! सुनो, तुम ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वेश धारण करके ऋष्यमूक पर्वत से नीचे जाकर, बल और रूप के निधान इन दोनों पौरुष सम्पन्न मनुष्य राजकुमारों को देखो। हृदय में समझकर मुझे संकेत से समझाकर कहना। यदि मन के मैले अर्थात् मलिन मनवाले बालि के द्वारा ये भेजे गये हों तब मैं तुरन्त भाग जाऊँ और यह पर्वत भी छोड़ दूँ।

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ अस पूँछत भयऊ।।
को तुम श्यामल गौर शरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी।।
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।।
की तुम तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायण की तुम दोऊ।।
दो०- जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम अखिल भुवन पति, लीन्ह मनुज अवतार।।१।।

भा०- कपि अर्थात् वृषाकपि स्वयं शिव जी जो हनुमान जी के रूप में अवतीर्ण हुए थे, ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ अर्थात् ऋष्यमूक पर्वत पर से उतरकर श्रीराम, लक्ष्मण जी के पास गये। सिर नवाकर इस प्रकार पूछने लगे, हे वीर! आप दोनों श्यामल, गौर शरीर वाले कौन हैं जो क्षत्रिय रूप में इस वन में भ्रमण कर रहे हैं? हे स्वामी! इस कठिन भूमि में कोमल चरणों से चलने वाले आप दोनों किस हेतु से अर्थात् किस कारण से वन में विचरण कर रहे हैं? कोमल मन को हरनेवाले सुन्दर श्रीअंगों से युक्त

आप दोनों वन में असहनीय धूप और कठोर वायु सहन कर रहे हैं। क्या आप दोनों ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीनों देवों में से कोई हैं? अथवा, क्या आप दोनों नर–नारायण हैं? जबकि वे उत्तरापथ में तपस्या कर रहे हैं और आप दोनों दक्षिणापथ के वन में विराज रहे हैं। क्या आप जगत् के परमकारण सम्पूर्ण लोकों के पति साकेताधिपति भगवान् श्रीराम हैं, जो जीवों को भवसागर से तारने के लिए और पृथ्वी का भार हरण करने के लिए श्रीअवध में मनुष्य रूप में अवतार लिए हैं?

विशेष– यहाँ हनुमान जी ने प्रभु श्रीराम जी से पाँच प्रश्न करके अपने पाँच मुख भी प्रमाणित किया। हनुमान जी के पाँच मुख आगमों में इस प्रकार प्रसिद्ध है– गरुड़मुख, वराहमुख, नृसिंहमुख, अश्वमुख और वानरमुख। इनसे उन्होंने प्रभु को भरोसा दिलाया कि मैं गरुड़मुख के ही समान और उनसे भी अधिक वेग से सौ योजन वाले सागर को लाँघकर लंका जाकर श्रीसीता का पता लगाऊँगा। जिस प्रकार वराह भगवान् ने हिरण्याक्ष द्वारा चुरायी हुई पृथ्वी का उद्धार किया था, उसी प्रकार रावण द्वारा चुरायी हुई पृथ्वीपुत्री श्रीसीता की प्रतिबिम्ब सीता जी के भी उद्धरण में मैं सहायक बनूँगा। जिस प्रकार नृसिंह ने हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल फाड़ा था, उसी प्रकार आप के विरोधी राक्षसों को फाड़ डालूँगा। जैसे हयग्रीव जी ने लुप्त हुए श्रुतियों का पता लगाया था, उसी प्रकार मैं कहीं भी छिपायी हुई श्रीसीता का पता लगा लूँगा और वानर के रूप में सदैव आपकी सेवा करूँगा।

हँसि बोले रघुबंश कुमारा। बिधि कर लिखा को मेटन हारा।।
कोसलेश दशरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
इहाँ हरी निशिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।

भा०– रघुवंश के कुमार भगवान् श्रीराम हँसकर बोले, विधाता द्वारा लिखे लेख को कौन मिटा सकता है अर्थात् यदि विधाता ने रावण का वध मनुष्य के हाथों से लिखा तो उसे कौन मिटायेगा? उसे ही सत्य करने के लिए हमें मनुष्य बनना पड़ा। अयोध्याधिपति श्रीदशरथ के हम दोनों पुत्र हैं और पिताश्री के आदेशात्मक वचन मानकर ही हम चौदह वर्षों के लिए वन में आये हैं। हम राम, लक्ष्मण नाम के दो भाई हैं। हमारे साथ एक सुन्दरी सुकुमारी नारी भी थीं (जिसे श्रीसीता कहते हैं), हे ब्राह्मणदेव! यहाँ अर्थात् वन में किसी राक्षस ने विदेहनन्दिनी श्रीसीता का हरण कर लिया है, हम उन्हीं को ढूँढ़ते हुए वन में फिर रहे हैं अर्थात् वन–वन भटकते फिर रहे हैं और हे ब्राह्मणदेव! हम यहाँ अर्थात् ऋष्यमूक पर्वत के समीप हरी अर्थात् द्वितीया विभक्ति के द्विवचन के वाच्यार्थ दोनों वानरों अर्थात् हनुमान जी एवं सुग्रीव जी को, एक राक्षस अर्थात् विभीषण जी को, वैदेही प्रतिबिम्ब श्रीसीता को, निश्चित रूप से ढूँढ़ रहे हैं। हे विप्रदेव! हमनें अपना चरित्र गाकर कहा, अब अपनी कथा आप समझाकर कहिये।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना।।

भा०– हे पार्वती! अपने प्रभु श्रीराम को पहचानकर हनुमान जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर पड़ गये। हनुमान जी का वह सुख वर्णित नहीं किया जा सकता। श्रीराम, लक्ष्मण जी के सुन्दर वेश की रचना देखते ही हनुमान जी का शरीर पुलकित हो उठा उनके मुख से वचन नहीं निकल रहे थे।

पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहिं चीन्ही।।
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम पूछहु कस नर की नाईं।।
तव माया बश फिरउँ भुलाना। ता ते मैंनहिं प्रभु पहिचाना।।

भा०– फिर धैर्य धारण करके हनुमान जी ने स्तुति की और अपने स्वामी श्रीराम को पहचानकर हनुमान जी के हृदय में बहुत हर्ष हुआ। अन्जनानन्दवर्द्धन प्रभु कहने लगे, हे मेरे स्वामी श्रीराघवेन्द्र सरकार! मेरा पूछना तो उचित था, क्योंकि मैं

अल्पज्ञ जीव हूँ, इसलिए मैंने पूछा किन्तु आप परमेश्वर होकर भी अल्पज्ञ मनुष्य की भाँति क्यों पूछ रहे हैं? हे स्वामी! मैं आपके माया के वश में पड़कर इधर–उधर भूला रहा इसी कारण मैं प्रभु श्रीराम आप को नहीं पहचान पाया।

दो०- एक मंद मैं मोहबश, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबंधु भगवान।।२।।

भा०- एक तो मैं मन्दबुद्धिवाला जीव, फिर मोह के वश में हो गया पुनः कुटिल, अर्थात् स्वार्थी और पुनः हृदय में अज्ञान से युक्त फिर समर्थ होकर भी, दीनों के बन्धु, छहों ऐश्वर्य से युक्त भगवान् आप श्रीराम ने मुझे भुला दिया अर्थात् अवतार लिए हुए लगभग उन्तालीस वर्ष बीत गये आप ने मेरी कोई खोज खबर नहीं ली।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहिं परै जनि भोरे।।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।।

भा०- हे नाथ! यद्यपि मेरे पास बहुत से अवगुण हैं, फिर भी प्रभु को सेवक भोरे नहीं पड़ना चाहिये अर्थात् प्रभु के द्वारा सेवक की विस्मृति नहीं की जानी चाहिये। यदि स्वामी सेवक को भूल ही जायेंगे तो, उसका (सेवक का) सर्वनाश हो जायेगा। हे नाथ! यह जीव–जगत् आपकी माया से मोहित है, अथवा इस जीव–जगत को आपकी माया ने मोहित कर रखा है। वह जीव आपकी ही वात्सल्यमयी कृपा से इस माया से निस्तार पा सकता है। उस पर भी हे रघुकुल के वीर श्रीराम! मैं अपनी शपथ करके कहता हूँ कि मैं कोई भी भजन के उपाय नहीं जानता अर्थात् आप ही मेरे उपाय हैं और आप ही उपेय। सेवक और पुत्र स्वामी तथा माता के भरोसे पर निश्चिन्त रहता है। उसे प्रभु को पालते–पोषते ही बनता है, अथवा सेवक तो आप जैसे स्वामी के पालन–पोषण करने पर बन जाता है, अन्यथा बिगड़ भी जाता है। अतएव अब तो प्रभु को ही मेरा पालन–पोषण करना पड़ेगा, अन्यथा बिगड़ने में देर नहीं लगेगी।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना तै मम प्रिय लछिमन ते दूना।।
समदरशी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ।।

भा०- इतना कहकर हनुमान जी अपना वानर शरीर प्रकट करके व्याकुल होकर भगवान् श्रीराम के चरणों पर पड़ गये। उनके हृदय में भगवान् की प्रीति अर्थात् प्रियता छा गई। आशय यह है कि भगवान् श्रीराम के अतिरिक्त अब हनुमान जी के हृदय में कोई भी प्रेम का आश्रय नहीं रह गया। तब रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने अपने चरणों में पड़े हुए हनुमान जी को आजानु बाहुओं से उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने कमल नेत्रों के शीतल जल से सींचकर हनुमान जी को शीतल कर दिया। (प्रभु बोले–) हे कपि अर्थात् मेरे श्रीरामनामामृत को पीनेवाले वानर शरीरधारी वृषाकपि साक्षात् शिव! सुनो, तुम अपने मन में स्वयं को न्यून मत समझना। तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो अथवा, तुम मुझे इतने प्रिय हो कि लक्ष्मण से दो नहीं हो, तुम दोनों एक समान हो। जैसे मैंने और श्रीसीता ने लक्ष्मण को पुत्र माना है, उसी प्रकार हम दोनों के तुम भी पुत्र हो। मुझे सभी लोग समदर्शी कहते हैं, परन्तु औरों की अपेक्षा मुझे सेवक प्रिय हैं और वह भी यदि अनन्यगति का हो अर्थात् यदि उसे एकमात्र मेरा ही आश्रय हो तो फिर बात ही क्या।

दो०- सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत।।३।।

भा०- हे हनुमान जी! वह सेवक अनन्य है, जिसके पास इस प्रकार की बुद्धि हो और जो कभी न टले कि मैं सेवक हूँ और चेतन तथा जड़ सहित सारा संसार स्वामी भगवान् श्रीराम का स्वरूप है।

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीते सब शूला।।
नाथ शैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।।
तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै।।
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।।

भा०- पवनपुत्र हुनमान जी ने जब स्वामी भगवान् श्रीराम को सब प्रकार से अनुकूल देखा, तब उनके हृदय में हर्ष हुआ और सब कष्ट दूर हो गये। हनुमान जी बोले, हे श्रीरघुनाथ! इसी ऋष्यमूक पर्वत पर वानरों के राजा सुग्रीव जी रहते हैं, वे आप के दास भी हैं। हे स्वामी, परमेश्वर! आप उनसे मित्रता कर लें और उन्हें दीन जानकर बालि से निर्भय कर दें। वे सुग्रीव जी श्रीसीता की खोज करायेंगे और जहाँ–तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेंगे।

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई।।
जब सुग्रीब राम कहँ देखा। अतिशय जन्म धन्य करि लेखा।।
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा।।
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहँइ बिधि मो सन ए प्रीती।।
दो०- तब हनुमंत उभय दिशि, कै सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाई।।४।।

भा०- इस प्रकार से सम्पूर्ण कथा समझाकर, दो जन अर्थात् श्रीराम–लक्ष्मण जी को हनुमान जी ने अपने पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव जी ने श्रीराम को देखा तब उन्होंने अपने जन्म को अत्यन्त धन्य माना और भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में प्रणाम करके सुग्रीव जी आदरपूर्वक मिले। श्रीरघुनाथ ने छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित सुग्रीव जी को गले से लगा लिया। वानरराज सुग्रीव जी विचार करने लगे कि हे ब्रह्मा जी! क्या भगवान् श्रीराम इस प्रकार से मुझ से मित्रता करेंगे। तब हनुमान जी ने दोनों ओर की कथा सुनाकर अर्थात् श्रीराम को सुग्रीव जी की तथा सुग्रीव जी को श्रीराम की कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर सुग्रीव जी और श्रीराम की मित्रता सम्बन्धी प्रीति दृढ़तापूर्वक जोड़ दी।

विशेष : १. हनुमान् जी ने अग्नि को साक्षी देकर श्रीराम की सुग्रीव जी से मित्रता कराई जिससे यह कभी टूटे न।
२. हनुमान जी स्वयं राक्षस वन के लिए पावक है "**खल बन पावक ग्यानघन**" मानस १.१६ अतः स्वयं को साक्षी बनाया और चरितार्थ भी किया।
३. जब सुग्रीव प्रमाद वशात् भगवान् का कार्य भूले, तत्क्षण हनुमान् जी सक्रिय हो गए। "**यहाँ पवनसुत हृदय विचारा। राम काज सुग्रीव** बिसारा।" मानस ४.१९.१.
४. श्रीराम नाम भी अग्नि है "जासु नाम पावक अघ तूला।" मानस २.२४८.२ अतः उसी को साक्षी बनाया।
५. चुँकि सीता जी सम्प्रति अग्नि में निवास कर रही हैं। "**तुम पावक महँ करहु निवासा**" मानस ३.२४.२ अतः अग्नि के ब्याज से जनकनन्दिनी जी को साक्षी बनाया। "**चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्नि साक्षीकम**" वा०रा० १.१.६१.

विशेष- पीठ पर चढ़ाने के बहुत से मेरे भाव हैं, जिनमें से कुछ यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ और विस्तार से शीघ्र ही प्रस्तुत किये जानेवाले मानस जी के *राघवकृपाभाष्य* में करूँगा।
(क) हनुमान जी ने सोचा कि प्रभु श्रीराम, श्रीअवध के राजा हैं और वे वानरों के राजा सुग्रीव जी से मिलने जा रहे हैं। राजा और आचार्य पीठ के बिना कहीं नहीं जा सकते इसलिए हुनमान जी ने अपनी पीठ को ही प्रभु की पादुका पीठ बना ली।
(ख) भगवान् श्रीराम सूर्यकुल के सूर्य हैं, उन्हें अब सूर्यपुत्र से मिलना है यह समय उनके अभ्युदय का है और सूर्योदय के लिए उदयाचल चाहिये, जो स्वर्ण पर्वत सुमेरु का शिखर है और संयोग से हनुमान जी का शरीर भी

स्वर्ण का है इसलिए उन्होंने श्रीरामरूप सूर्य के लिए अपनी स्वर्णमयी पीठ को ही उदयाचल पर्वत बनाकर श्रीराम को विराजमान करा लिया।
(ग) वामनावतार में प्रभु ने बलि की पीठ चाही थी, अतः इस बार भी बजरंगबली ने अपनी पीठ दे दी।
(घ) पीछे पीठ पर अधर्म रहा करता है। हनुमान जी ने पीठ पर प्रभु को बिठाकर अपना सम्पूर्ण शरीर धर्ममय बना लिया।
(ङ) गरुड़ जी ने श्रीनारायण को पीठ पर बिठाया था, तो उन्हीं की भूमिका में श्रीनारायण के भी कारण महानारायण श्रीराम को हनुमान जी ने अपनी पीठ पर बिठा लिया। (च) प्रभु को अब राक्षस वध करना है, उसके लिए श्रीगणपति का स्मरण चाहिये जो गजमुख हैं, अतः हनुमान जी ने श्रीगणेश की भूमिका निभाते हुए स्वयं को हाथी बनाकर प्रभु को पीठ पर बिठा लिया। (छ) पराजित व्याक्ति पीठ दिखाता है, अतः हनुमान जी ने श्रीराम को पीठ पर बिठाकर स्वयं को अजेय बना लिया। (ज) पीठ पर लगा हुआ घाव भरता नहीं, अतः अनामय प्रभु को पीठ पर बिठाकर हनुमान जी ने स्वयं को घाव लगने से बचा लिया। (झ) यदि प्रभु को कन्धे पर बिठाते तो लक्ष्मण जी को बायें कन्धे पर बिठाना होता जो भगवान् को भक्त से पृथक् करने पर हनुमान जी को भगवतापराध हो जाता, अतः दोनों को एक ही पीठ पर बिठा कर हनुमान जी ने स्वयं को इस अपराध से बचा लिया। (ञ) बन्दर प्रायशः बच्चों को पीठ पर बिठाया करता है, इसलिए शिशुरूप श्रीराघव को हनुमान जी ने अपनी पीठ पर बिठाया। (ट) सूर्यनारायण को पीठ से सेवा करनी चाहिये। यथा– *भानु पीठि सेइअ उर आगी।*–मानस, ४.२३.४. और श्रीराम सूर्यकुल के सूर्य हैं इसलिए हनुमान जी ने उन्हें पीठ पर बिठा लिया।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा।।
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहिं नाथ मिथिलेशकुमारी।।

भा०– श्रीराम और सुग्रीव जी ने परस्पर मित्रता सम्बन्धी प्रीति कर ली, कुछ भी अन्तर नहीं रखा। लक्ष्मण जी ने सम्पूर्ण श्रीरामचरित्र कह सुनाया। आँखों में जल भरकर सुग्रीव जी कहने लगे, हे नाथ! मिथिलापति श्रीजनक की पुत्री श्रीसीता आपको अवश्य मिलेंगी।

मंत्रिन सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा।।
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबश परी बहुत बिलपाता।।
राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी।।
माँगा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।।

भा०– हे प्रभु! एक बार मैं इसी ऋष्यमूक पर्वत पर बैठकर मंत्रियों के सहित कुछ विचार कर रहा था, उसी समय मैंने शत्रु के वश में पड़ी हुई, बहुत विलाप करती हुई, श्रीसीता को आकाश मार्ग से जाती देखा। हम वानरों को देखकर श्रीसीता ने ऊँचे स्वर में राम–राम, हा! राम पुकार कर अपना उत्तरीय वस्त्र (जिसमें केयूर कुण्डल और नूपुर बँधे थे) गिरा दिया। प्रभु श्रीराम ने वह वस्त्र जब माँगा, तब तुरन्त उन्होंने अर्थात् सुग्रीव जी ने श्रीसीता का उत्तरीय वस्त्र प्रभु को दे दिया। वस्त्र को हृदय से लगाकर प्रभु ने बहुत शोक किया।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।।
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहिं जानकी आई।।

भा०– सुग्रीव जी ने कहा, हे रघुकुल के वीर श्रीराम! शोक छोड़ दीजिये अपने हृदय में धैर्य ले आइये। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा जिस विधि जनकनन्दिनी श्रीसीता आपको आ मिलेंगी।

दो०– सखा बचन सुनि हरषे, कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव।।५।।

भा०– सखा सुग्रीव जी के वचन सुनकर कृपा के सागर और बल की सीमा प्रभु श्रीराम हर्षित हो गये और पूछा, हे सुग्रीव! आप मुझे बताइये की किस कारण से आप वन में रह रहे हैं, अपने भवन में नहीं रहते ? क्या किसी ने आपको मुझ जैसे वनवास दे दिया है?

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।
मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।।
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहइ न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।।

भा०– हे नाथ! बालि और मैं (सुग्रीव) दोनों सगे भाई हैं। हममें इतनी प्रीति थी कि जिसका कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता। हे प्रभु! मय दानव का एक पुत्र था, उसका मायावी नाम था। वह एक बार हमारे गाँव में आया। आधी रात को किष्किन्धापुर के द्वार पर आकर युद्ध के लिए ललकारा, बालि शत्रु के बल को नहीं सह पाया, इसलिए बालि मायावी से युद्ध करने के लिए दौड़ा। उसे देखकर मायावी भागा। बालि ने उसका पीछा किया, फिर मैं भी अपने भाई के साथ लगा–लगा चला ही गया।

गिरिवर गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई।।
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा।।
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।
तब मैं निज मन कीन्ह बिचारा। जाना असुर बालि कहँ मारा।।

भा०– मायावी जाकर पर्वत की श्रेष्ठ गुफा में प्रवेश कर गया। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा, पन्द्रह दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना, यदि उतने दिनों में नहीं आऊँ तब जान लेना कि मैं मायावी दैत्य के द्वारा मारा गया। हे खर राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम! मैं एक महीने के दिनों तक अर्थात् तीस दिनों तक वहाँ रहा। बालि की प्रतीक्षा करता रहा। वहाँ अर्थात् पर्वत की गुफा में से रक्त की बहुत–बड़ी धारा निकली तब मैंने अपने मन में विचारा और जान गया कि देवविरोधी मायावी दैत्य ने बालि को मार डाला है।

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। शिला द्वार दै चलेउँ पराई।।
मंत्रिन पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआईं।।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा।।
रिपु समान मोहि मारेसि भारी। हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी।।

भा०– मायावी ने बालि को मार डाला अब मुझे भी मार डालेगा, ऐसा सोचकर गुफा के द्वार पर पर्वत शिला रखकर मैं भाग चला और अपने नगर में आ गया। मंत्रियों ने किष्किन्धानगर को बिना स्वामी के देखा तब हठ करके मुझे राज्य दे दिया। संयोग से उस मायवी दैत्य को मारकर बालि किष्किन्धापुर में आ गया, मुझे राजा बना हुआ देखकर उसने अपने मन में भेद बढ़ा लिया। मुझे शत्रु के समान बहुत पीटा, मेरा सब कुछ छीन लिया और मेरी पत्नी रूमा को भी हथिया लिया।

ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।।
इहाँ स्राप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।।
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठी द्वै भुजा बिशाला।।

भा०– हे कृपालु रघुवीर श्रीराम! उसी बालि के भय से मैं सम्पूर्ण लोकों में भटकता फिरा। मैं जहाँ–जहाँ जाता था बालि वहाँ–वहाँ मुझे मारने चला आता था। इस ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग जी के शाप के कारण बालि नहीं आता, फिर भी मैं मन में बहुत भयभीत रहता हूँ। सेवक सुग्रीव का दुःख सुनकर दीनों पर दया करने वाले भगवान् श्रीराम की दोनों विशाल भुजायें फड़क उठीं और भगवान् श्रीराम बोले–

दो०- सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ, बालिहिं एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र शरनागत, गए न उबरहिं प्रान।।६।।

भा०- हे सुग्रीव! सुनिये, मैं बालि को एक ही बाण से मार डालूँगा। ब्रह्मा जी, शिव जी और उपलक्षणतया विष्णु जी के भी शरण में जाने पर बालि के प्राण नहीं बचेंगे। अथवा ब्रह्मा और रूद्र भी जिनके शरणागत होते हैं, ऐसे वैकुण्ठ बिहारी विष्णु की भी शरण में जाने पर बाली के प्राण नहीं बचेंगे, क्योंकि मैं विष्णु का भी नियन्ता साकेताधिपति परब्रह्म राम हूँ।

जे न मित्र दुख होहि दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
जिन के असि मति सहज न आई। ते शठ कत हठि करत मिताई।।

भा०- जो मित्र के दु:ख से दु:खी नहीं होते उन्हें देखने में भी भयंकर पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दु:ख को धूल के समान जाने और मित्र के धूल के समान दु:ख को पर्वत के समान समझे, जिनको स्वभाव से ऐसी बुद्धि नहीं आती, वे दुष्ट हठपूर्वक मित्रता क्यों करते हैं?

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुननि दुरावा।।
देत लेत मन शंक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर शतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।

भा०- बुरे मार्ग से रोक कर अच्छे मार्ग पर चलाये, उसके अर्थात् मित्र के गुणों को समाज में प्रकट करे और उसके अवगुणों को छिपा ले, देने–लेने में मन में किसी प्रकार की शंका न करे और अपने बल के अनुसार निरन्तर हित करता रहे, विपत्तिकाल में पहले से सौ गुणा अधिक प्रेम करे, वेद कहते हैं कि सन्त प्रकृतिवाले श्रेष्ठ मित्र के ये ही गुण हैं।

विशेष- इन पंक्तियों का समानार्थक श्लोक इस प्रकार का है–

पापान् निवारयति योजयते हिताय गुह्यं च गुहति गुणान् प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।।

भा०- हे भाई सुग्रीव! जो आगे अर्थात् सम्मुख तो बनाकर कोमल वचन कहता है और पीछे अर्थात् परोक्ष में अत्यन्त बुरा करता है और जिसका मन कुटिलता से भरा रहता है, जिसका चित्त अहिगति अर्थात् सर्प के चाल के समान टेढ़ा होता है, ऐसे कुत्सित मित्र को छोड़ देने में ही भलाई है।

सेवक शठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र शूल सम चारी।।
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे।।

भा०- दुष्ट सेवक, कृपण राजा, कुलटा अर्थात् चरित्रहीन स्त्री और कपटी मित्र, ये चारों त्रिशूल के समान दु:खद होते हैं। हे मित्र सुग्रीव! तुम मेरे बल पर निर्भर रहकर शोक छोड़ दो, मैं सब प्रकार से तुम्हारे कार्य के प्रति चेष्टावान रहूँगा अर्थात करूँगा।

विशेष : घट चेष्टायां (पा०धा०पा० ७६३)

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन भइ परतीती।।

भा०- सुग्रीव जी ने कहा, हे रघुकुल के वीर श्रीराम! सुनिये, बालि महाबलवाला, युद्ध में अत्यन्त धीर अर्थात् स्थिर प्रकृतिवाला और युद्ध से कभी भागना नहीं जानता। सुग्रीव जी ने भगवान् श्रीराम को दुन्दुभी राक्षस की अस्थि (हड्डी) और सात ताल के वृक्ष दिखाये एवं कहा कि, हे प्रभु! दुन्दुभी दैत्य को मारकर बालि ने उसके कंकाल को एक योजन दूर फेंक दिया था और यह देखिये सात ताल के वृक्ष, बालि को एक सर्प ने शाप दिया था कि जो व्यक्ति एक ही बाण से सात ताल वृक्षों को काट देगा वही बालि का वध कर सकेगा। यह सुनकर श्रीरघुनाथ ने बिना किसी प्रयास के दुन्दुभी के अस्थि और सात ताल वृक्ष को ढहा दिया अर्थात् अपने वामचरण के अंगूठे से दुन्दुभी राक्षस के कंकाल को दस योजन दूर फेंक दिया और एक ही बाण से विरुद्ध दिशाओं में फैले हुए सातों ताल वृक्षों को काटकर गिरा दिया। प्रभु का असीम बल देखकर सुग्रीव जी का प्रभु के प्रति प्रेम बढ़ा और प्रभु श्रीराम बालि का वध करेंगे, इस प्रकार सुग्रीव जी को विश्वास हो गया।

बार बार नावइ पद शीशा। प्रभुहिं जानि मन हरष कपीशा।।
उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला।।
सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।
ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।।
शत्रु मित्र सुखदुख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं।।

भा०- सुग्रीव जी बार–बार प्रभु के श्रीचरणों में मस्तक नवाने लगे। प्रभु श्रीराम को पहचान कर वानरराज मन में बहुत प्रसन्न हुए। उनके मन में ज्ञान उत्पन्न हो गया तब सुग्रीव जी यह वचन बोले, हे नाथ! आपकी कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया है। मैं सुख, सम्पत्ति, परिवार, बड़प्पन सब कुछ छोड़कर आपकी सेवा करूँगा। आपके श्रीचरणों की आराधना करने वाले सन्त कहते हैं कि ये सब श्रीराम की भक्ति में बाधक हैं। संसार में जो भी शत्रु, मित्र, सुख और दुःख हैं, वे माया से किये गये हैं, परमार्थ में कुछ नहीं है।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम शमन बिषादा।।
सपने जेहि सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई।।
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती।।
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि राम धनुपानी।।

भा०- हे प्रभु! बालि मेरा शत्रु नहीं परमहितैषी है, जिसके प्रसाद से दुःख को दूर करने वाले आप मुझे मिले हैं। स्वप्न में भी जिससे लड़ाई होती है, जगने पर समझते ही मन संकुचित हो जाता है अर्थात् अब मैं समझ गया हूँ बालि से मेरी लड़ाई नहीं हो सकती। हे प्रभु! अब तो इस प्रकार से कृपा कीजिये कि सब कुछ छोड़कर दिन–रात आपका भजन करूँ। अतः अब तो आप ऐसी कृपा करें कि राज्य का आग्रह और बालि की शत्रुता तथा पत्नी की प्रत्याशा छोड़कर मैं दिन–रात भजन करूँ। इस प्रकार वैराग्य से युक्त कपि अर्थात् सुग्रीव की वाणी सुनकर धनुषपाणि श्रीराम विचित्र प्रकार से हँसते हुए बोले–

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई।।

भा०- जो तुमने कहा वह सब सत्य है, परन्तु हे मित्र! मेरा वचन भी झूठा नहीं होगा अर्थात् तुमसे बालि की लड़ाई होगी और तुम ही बालि वध के लिए मुझसे प्रार्थना करोगे।

नट मरकट इव सबहिं नचावत। राम खगेश बेद अस गावत।।
लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा।।

भा०– श्रीभुशुण्डि, गरुड़ जी को सावधान करते हुए कहते हैं कि हे पक्षियों के ईश्वर गरुड़ जी! वेद ऐसा गाते हैं कि भगवान् श्रीराम जगत को उसी प्रकार नचा रहे हैं, जैसे नट अर्थात् मदारी वानर को नचाता है। इसके पश्चात् सुग्रीव को साथ लेकर हाथ में धनुष–बाण धारण करके श्रीरघुनाथ ऋष्यमूक से किष्किन्धा की ओर चले।

तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।
सुनु पति जिनहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।
कोसलेश सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।

भा०– तब भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव जी को लड़ने के लिए भेजा। श्रीराम का बल पाये हुए सुग्रीव जी बालि के निकट जाकर गरजे। सुग्रीव जी की गर्जना सुनकर, क्रोध में आतुर होकर बालि दौड़ा। नारी अर्थात् बालि की पत्नी तारा ने उसके चरण को हाथ में लेकर समझाया, हे पति बालि! जिन दो महापुरुषों से सुग्रीव मिले हैं, वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं, अयोध्यापति श्रीदशरथ के पुत्र श्रीलक्ष्मण और भगवान् श्रीराम युद्ध में काल को भी जीत सकते हैं।

दो०– कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरशी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ।।७।।

भा०– बालि ने कहा–हे डरावने स्वभाववाली प्रिय तारा! सुनो, रघुकुल के नाथ भगवान् श्रीराम समदर्शी हैं। उनकी दृष्टि में सुग्रीव और मैं दोनों ही समान हैं फिर यदि कदाचित् श्रीराम मुझे मारते भी हैं तो भी मैं सनाथ हो जाऊँगा।

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहिं जानी।।
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।।

भा०– ऐसा कहकर बहुत–बड़ा अभिमानी बालि, सुग्रीव जी को तृण के समान जानकर उनसे लड़ने के लिए चल पड़ा। दोनों भिड़ गये, बालि अत्यन्त तर्जना करने लगा अर्थात् सुग्रीव जी को डाँटकर दबोचा और सुग्रीव जी को एक मुक्का मारकर भयंकर ध्वनि में गर्जना किया।

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा।।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला।।

भा०– तब सुग्रीव जी व्याकुल होकर भागे, क्योंकि उनकी पीठ पर मुष्ठिका का प्रहार वज्र के समान लगा था। सुग्रीव जी ने कहा, हे कृपालु श्रीरघुवीर! मैंने जो बालि को परमहितैषी बन्धु कहा था, ऐसा नहीं है। बालि मेरा बन्धु नहीं हो सकता यह तो मेरा काल है।

एकरूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ।।
कर परसा सुग्रीव शरीरा। तनु भा कुलिश गई सब पीरा।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा कि तुम दोनों भाई एक अर्थात् समान रूप हो, उसी भ्रम से मैंने उसको भी नहीं मारा। प्रभु ने सुग्रीव जी के शरीर पर अपने श्रीहस्त का स्पर्श किया। सुग्रीव का शरीर वज्रवत हो गया और सारी पीड़ा चली गई।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिशाला।।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव जी के कण्ठ में सुमन अर्थात् जिनके स्पर्श से मन सुन्दर हो जाता है, ऐसी तुलसी माता की माला डाल दी और फिर उनको विशाल बल देकर युद्ध के लिए भेजा। बालि और सुग्रीव जी में नाना

प्रकार से युद्ध हुआ। उस युद्ध को वृक्ष की ओट से अर्थात् वृक्ष का टेका लेकर खड़े हुए रघुराज भगवान् श्रीराम देख रहे थे।

दो०- बहु छल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माझ शर तानि।।८।।

भा०- जब बहुत प्रकार से छल और बल करके हृदय में भय मानकर सुग्रीव जी हार गये तब भगवान् श्रीराम ने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर बालि के मध्य हृदय में बाण मार दिया।

परा बिकल महि शर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।।
श्याम गात सिर जटा बनाए। अरुन नयन शर चाप चढ़ाए।।

भा०- बाण के लगने से विकल अर्थात् व्याकुल होकर तथा सभी प्राण की कलाओं से विगत् होकर बालि पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर प्रभु को अपने सामने देखकर बालि उठकर बैठ गया। बालि ने देखा प्रभु के अंग श्यामल हैं, उन्होंने सिर पर जटा बना रखा है, प्रभु के नेत्र लाल हैं और वे धनुष पर बाण चढ़ाये हुए हैं।

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।।
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा।।
धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारन कवन नाथ मोहि मारा।।

भा०- बारम्बार प्रभु को निहारकर बालि ने उनके चरणों में मन लगाया अथवा, प्रभु को बारम्बार निहारकर उनके हृदय पर विराजमान ब्राह्मण चरण के चिह्न में चित्त को समर्पित कर दिया और उसी चिन्ह से प्रभु को पहचानकर बालि ने अपने जन्म को धन्य मान लिया। बालि के हृदय में प्रीति थी। वह श्रीराम की ओर देखकर मुख से कठोर वचन बोला, हे गोसाईं अर्थात् पृथ्वी के स्वामी भगवान् श्रीराम! आप ने धर्म के लिए अर्थात् धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है, परन्तु मुझे व्याध की भाँति निर्दयतापूर्वक मारा है, तो क्या यहाँ धर्म का उल्लंघन नहीं हुआ? हे प्रभु! क्या मैं आपका वैरी हूँ और सुग्रीव प्रिय है? यदि ऐसा नहीं तो हे नाथ! आपने किस कारण से मुझे मारा है? भगवान् श्रीराम बोले–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु शठ कन्या सम ए चारी।।
इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

भा०- हे दुष्ट! सुन, छोटे भाई की वधू, बहन, पुत्रवधू तथा भगिनी सुत नारी, अर्थात् भान्जे की बहू ये चारों कन्या के समान होती हैं, इन्हें जो कुदृष्टि से देख लेता है, उसे मारने पर कुछ भी पाप नहीं होता।

विशेष- यहाँ भगिनी सुत नारी में श्लेष है अर्थात् अनुज वधू, भगिनी, सुत नारी और भगिनी सुत नारी ये चारों कन्या सम अर्थात् छोटे भाई की वधू, बहन, सुत नारी अर्थात् पुत्र की वधू और भगिनी सुत नारी अर्थात् बहन के पुत्र की वधू ये चारों अपनी बेटी के समान होती हैं।

मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।।

भा०- हे मूढ़ तुझे अत्यन्त अहंकार है, तू अपनी पत्नी की शिक्षा भी अपनी कान में नहीं करता अर्थात् नहीं सुनता है। तुलसी की माला के संकेत से उस सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल के आश्रित जानकर भी अधम, अभिमानी बालि तू उसे मारना चाहता था।

दो०- सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंतकाल गति तोरि।।९।।

भा०- हे भगवान् श्रीराम! सुनिये, स्वामी के सामने मेरी कोई चतुराई नहीं चली। हे प्रभु! क्या अब भी मैं पापी हूँ? क्योंकि अन्तकाल में तो मुझे आपका ही आश्रय है।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि शीष परसेउ निज पानी।।
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना।।

भा०- बालि की अत्यन्त कोमल वाणी सुनते ही भगवान् श्रीराम ने बालि के सिर पर अपने श्रीहस्त का स्पर्श किया और बोले, बालि! अपने प्राणों को रख लो मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर देता हूँ। बालि ने कहा, हे कृपानिधान! सुनिये–

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।
जासु नाम बल शङ्कर काशी। देत सबहिं सम गति अबिनाशी।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।।

भा०- मुनिजन अनेक जन्मपर्यन्त यत्न करते हैं, फिर भी अंतिम समय में मुख से जल्दी श्रीराम का उच्चारण नहीं कह आता अर्थात् नहीं निकल पाता। जिनके श्रीरामनाम के बल से अविनाशी शिव जी काशी में सभी पुण्यात्माओं और पापात्माओं को समान रूप से गति देते हैं, वही आप भगवान् श्रीराम मेरे नेत्रों के विषय बनकर सगुण–साकार रूप में मेरे सम्मुख आये हैं। हे प्रभु! क्या इस प्रकार का बनाव फिर बन सकेगा?

छं०- सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं।।
मोहि जानि अति अभिमान बश प्रभु कहेउ राखु शरीरहीं।
अस कवन शठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरहीं।।१।।

भा०- हे प्रभु! जिनके गुण "नेति–नेति" कहकर वेद गाते हैं। प्राणायाम द्वारा वायु को और ईश्वर के ध्यान द्वारा मन को जीतकर, संयम द्वारा इन्द्रिय को निरस बनाकर, जिन्हें मुनिजन कभी–कभार ध्यान में पा लेते हैं, वही प्रभु आप श्रीराम! मेरे नेत्रों के विषय बने हैं। हे प्रभु! मुझे अभिमान के वश जानकर भी आप ने इस अभिमानी शरीर को रखने के लिए कहा, ऐसा कौन सा दुष्ट होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काट कर बबूल का बगीचा लगायेगा?

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बश तहँ राम पद अनुरागऊँ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये।।२।।

भा०- हे नाथ! अब तो करुणा करके मेरी ओर देखिये और मुझे वही वरदान दीजिये जो मैं माँग रहा हूँ। मैं अपने कर्मों के फल के अनुसार जिस भी योनि में जन्म लूँ वहाँ आप श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम करूँ। हे सम! विनय, बल और कल्याण को प्रदान करने वाले प्रभु! आप मेरा यह पुत्र ले लीजिये, हे देवताओं और मनुष्यों के ईश्वर प्रभु श्रीराम। अंगद की बाँह पकड़कर इसे अपना दास बना लीजिये।

दो०- राम चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग।।१०।।

भा०- श्रीराम के चरणों में प्रीति को दृढ़ करके बालि ने उसी प्रकार शरीर का त्याग कर दिया जैसे हाथी अपने कण्ठ से गिरती हुई पुष्पमाला को नहीं जान पाता अर्थात् बालि को मरते समय कोई कष्ट नहीं हुआ।

विशेष- इस प्रसंग का पर्यालोचन करने से तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं–

(क) भगवान् श्रीराम ने बालि को छिपकर नहीं मारा था।

(ख) बालि को ऐसा कोई भी वरदान प्राप्त नहीं था कि जिसके आधार पर शत्रु का आधा बल उसे मिल जाता हो और

(ग) बालि को मारकर भगवान् श्रीराम ने कोई अन्याय भी नहीं किया। भगवान् श्रीराम ने बालि को सामने से मारा, इसलिए बालि ने श्रीराम को अपने सामने खड़ा देखा। यथा–*पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे*–मानस, ४.९.१. मानस ४.८.८ में प्रयुक्त ओट शब्द का अर्थ, आड़ न होकर टेका है अर्थात् भगवान् श्रीराम वृक्ष को टेका देकर विश्राम की मुद्रा में खड़े होकर बालि–सुग्रीव का युद्ध देख रहे थे। मानस ४.९.५. में प्रयुक्त *ब्याध की नाईं* शब्द का अर्थ निर्दयता है और यह उत्तरी भारत में प्रयुक्त एक वाक्यालंकार की सूक्ति है, जिसका अर्थ होता है कसाई की भाँति मारना (निर्दयता से मारना)। वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के उन्नीसवें सर्ग के बारहवें श्लोक में श्रीराम के साथ, बालि के युद्ध का भी वर्णन किया गया है। यथा– ***क्षिप्तान् वृक्षान् समाविध्य विपुलाश्च तथा शिला:। वालीवज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेव निपातित:*** अर्थात् बालि के चलाये हुए वृक्षों और बड़ी–बड़ी शिलाओं को अपने वज्र तुल्य बाणों से विदीर्ण करके श्रीराम ने बालि को मार गिराया है, मानो वज्रधारी इन्द्र ने अपने वज्र के द्वारा किसी महान पर्वत को धराशायी कर दिया हो। जो यह कहा जाता है कि बालि को इसलिए छिपकर मारा क्योंकि उसे ब्रह्मा जी का वरदान प्राप्त था कि सामने आये हुए शत्रु का आधा बल उसे मिल जायेगा यह पक्ष भी इसलिए निराधार है, क्योंकि यह उद्धरण किसी भी पुराण में नहीं प्राप्त होता और श्रीराम के बल की कोई सीमा भी तो नहीं है, जिसका आधा हो सके। श्रीराम ने बालि को मारकर कोई अपराध नहीं किया है, क्योंकि बालि ने सुग्रीव जी की पत्नी रुमा पर अत्याचार किया जो उसके छोटे भाई की बहू थी। यदि यह कहा जाये कि पशु होने के कारण बालि पर यह नियम प्रभावी नहीं होगा, क्योंकि उसे धर्म, अधर्म का ज्ञान नहीं है तो फिर बालि ने श्रीराम के सामने धर्म का प्रश्न उठाया ही कैसे? इससे सिद्ध होता है कि उसे पूर्ण ज्ञान है और क्षत्रिय को आखेट में पशु–वध से कोई पाप नहीं होता। अतएव यह शंका भी निर्मूल हो जाती है कि बालि ने ब्याध बनकर कृष्णावतार में भगवान् से बदला लिया, क्योंकि श्रीराम के धाम जाकर कोई पीछे नहीं लौटता "***यदगत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परम मम***" फिर बालि ही क्यों लौटा? वस्तुत: यदि यही एक आग्रह हो तो मैं यह कहूँगा कि बालि के इन्द्रतत्व अर्जुन के रूप में अवतरण हुआ और प्रभु की सेवा करके उसने पूर्वजन्म में किये हुए पाप का प्रायश्चित् किया। इस प्रसंग पर विशेष जानने के लिए पाठकवृन्द मेरे "**श्रीराघवकृपाभाष्य**" की प्रतीक्षा करें।

बालि राम निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा।।
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केश न देह सँभारा।।

भा०– श्रीराम ने बालि को अपने धाम साकेत भेज दिया, यह सुनकर सभी नगर के लोग व्याकुल होकर दौड़े। तारा नाना प्रकार से विलाप करने लगी, उनके केश बिखर गये, उन्हें देह का सम्भाल नहीं रहा।

पुनि पुनि तासु शीष उर धरई। बदन बिलोकि हृदय हति परई।।
मैं पति तुमहिं बहुत समझावा। काल बिबश कछु मनहिं न आवा।।

भा०– तारा बार–बार बालि के सिर को हृदय पर रखती हैं, उसका मुख देखकर छाती पीटकर पड़ जाती हैं (पृथ्वी पर गिर जाती है)। तारा कहती हैं कि, हे पतिदेव! मैंने आपको बहुत समझाया पर काल के विवश होने से कुछ भी आपके मन में नहीं आया।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।।
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा।।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा।।

भा०- तारा को व्याकुल देखकर, रघुराया अर्थात् जीवमात्र को सुशोभित करने वाले श्रीराम ने ज्ञान दिया और तारा की माया हर ली। भगवान् बोले, हे तारा! बालि का अत्यन्त अधम शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों के पंचीकरण से विधाता द्वारा बनाया गया है। वह शरीर प्रकट रूप से तुम्हारे सामने सो रहा है। अतः इससे तुम्हारा वियोग नहीं है, यदि कहो कि बालि के जीव से मैं अलग हो गई तो उससे भी तुम अलग नहीं हो, क्योंकि वह नित्य है, नित्य का किसी से वियोग नहीं होता, फिर तुम किसके लिए रो रही हो?

उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।।
उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।।

भा०- तारा के हृदय में ज्ञान उत्पन्न हो गया, वह भगवान् श्रीराम के चरणों में लिपट गई और प्रभु से परम भक्ति वरदान माँग लिया। शिव जी कहने लगे, हे पार्वती! इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा श्रीराम लकड़ी से बनी हुई स्त्री कठपुतली की भाँति सभी को नचाते रहते हैं।

विशेष- चिद्वर्ग को नट–मरकट की भाँति नचाते हैं और अचिद् वर्ग को दारु जोषित अर्थात् कठपुतली की भाँति नचाते हैं।

तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा।।
राम कहा अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं जाई।।
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।।

भा०- तब भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव जी को आज्ञा दी और उन्होंने विधिपूर्वक बालि का मृतककर्म किया। श्रीराम ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को समझाकर कहा कि किष्किन्धानगर में जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्रीरघुनाथ से प्रेरित होकर लक्ष्मण जी के संग सभी हनुमान आदि वानर चल पड़े।

दो०- लछिमन तुरत बोलाएउ, पुरजन बिप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुबराज।।११।।

भा०- लक्ष्मण जी ने नगरवासियों और ब्राह्मण समाज को तुरन्त बुलाया उन्होंने सुग्रीव जी को राज्य और अंगद जी को युवराज पद दे दिया।

उमा राम सम हित जग माहीं। सुत पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं।।
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।।
बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंता जर छाती।।
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपालु रघुबीर सुभाऊ।।

भा०- शिव जी कहते हैं कि, हे पार्वती! इस संसार में पुत्र, पिता, माता और स्वामी कोई भी भगवान् श्रीराम के समान हितैषी नहीं है। देवता, मनुष्य, और मुनि समाज की यह रीति है, सभी अपने स्वार्थ के लिए ही प्रेम करते हैं। जो सुग्रीव जी बालि के त्रास से दिन–रात व्याकुल थे, शरीर में बहुत से घाव थे और हृदय चिन्ता से जलता रहता था, उन्हीं सुग्रीव जी को भगवान् श्रीराम ने वानरों का राजा बना दिया, श्रीरघुवीर जी का स्वभाव अत्यन्त कृपालु है।

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं।।
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई।।

भा०– जानते हुए भी जो ऐसे प्रभु को छोड़ देते हैं, वे प्राणी विपत्ति जाल में क्यों न पड़ें? पुनः प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव जी को बुला लिया और उन्हें बहुत प्रकार से राजनीति सिखाई।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराया। दीन जानि पुर कीजिय दाया।।
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा। पुर न जाउँ दस चारि बरीषा।।
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट शैल पर छाई।।
अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू।।
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। राम प्रवरषन गिरि पर छाए।।

भा०– सुग्रीव जी ने कहा, हे रघुकुल के राजा श्रीराम! सुनिये, मुझे दीन जानकर पुर में चलने की दया कीजिये। भगवान् श्रीराम ने कहा, हे वानरों के राजा सुग्रीव जी! सुनिये, मैं चौदह वर्षपर्यन्त पुर में नहीं जा सकता। ग्रीष्मऋतु जा चुकी है और वर्षाऋतु आ चुकी है। मैं यहीं निकटस्थ पर्वत पर रहूँगा तुम अंगद के सहित राज्य करो। मेरे कार्य को निरन्तर हृदय में धारण किये रखना। जब सुग्रीव जी अपने भवन को लौट आये तब श्रीराम जी प्रवर्षण पर्वत पर विराजे।

दो०– प्रथमहिं देवन गिरि गुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ।।१२।।

भा०– देवताओं ने प्रथम ही पर्वत की एक सुन्दर गुफा बना रखी थी, उनके मन में यह था कि कृपा के सागर श्रीराम यहाँ आकर कुछ दिन निवास करेंगे।

सुंदर बन कुसुमित अति शोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा।।
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए।।

भा०– जब से प्रभु श्रीराम प्रवर्षण पर्वत पर पधारे तभी से, वन कुसुमित अर्थात् पुष्पों से लद गया और वह सुन्दर हो गया। उसकी शोभा अतिशय हो गई, मधु के लोभ से भ्रमरों का समूह गुंजार करने लगा और बहुत मात्रा में सुन्दर कन्दमूल, फल और पत्ते उत्पन्न हो गये।

देखि मनोहर शैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा।।
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा।।
मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते।।

भा०– मनोहर और उपमारहित प्रवर्षण पर्वत को देखकर देवताओं के भी राजा भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण जी के सहित उसी पर्वत पर चातुर्मास के लिए निवास किये और भ्रमरों–पक्षियों और हरिणों का शरीर धारण करके देवता, सिद्ध और मुनि प्रभु श्रीराम की सेवा करने लगे। रमा अर्थात् रकार के वाच्य भगवान् श्रीराम की 'मा' यानी शक्ति ऐसी श्रीसीता के पति श्रीराम ने जब से निवास किया तभी से वह वन मंगलमय हो गया।

फटिक शिला अति शुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई।।
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका।।
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।।

भा०– प्रवर्षण पर्वत पर अत्यन्त सुहावनी श्वेतस्फटिक शिला थी उसी पर दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण सुखपूर्वक आसीन हो गए। भगवान् श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मण जी से अनेक कथायें, भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक का वर्णन करने लगे। श्रीराम ने कहा, हे लक्ष्मण! देखो, वर्षाकाल में आकाश में छाये हुए मेघ गरजते हुए बहुत सुहावने लग रहे हैं।

दो०- लछिमन देखहु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्णु भगत कहँ देखि।।१३।।

भा०- लक्ष्मण! देखो, बादलों को देखकर मयूरगण प्रसन्नता से नाच रहे हैं, जैसे वैराग्यभाव में लगे हुए गृहस्थ मुझ महाविष्णु के भक्तों को देखकर प्रसन्न होते हैं।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।।
दामिनि दमक न रह घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं।।

भा०- आकाश में मेघों के समूह घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया से हीन मेरा मन डर रहा है। बिजली चमक कर बादल में स्थिर नहीं रहती, जैसे खलप्रवृति के व्यक्ति की प्रीति स्थिर नहीं होती।

विशेष- इस पंक्ति का विशेष जानने के लिए मेरे द्वारा रचित् '**भृंगदूतम्**' नामक खण्डकाव्य अवश्य पढ़िये।

बरषहिं जलद भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।।

भा०- बादल पृथ्वी के निकट आकर वर्षा कर रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान विनम्र हो जाते हैं। वर्षा की बूँदों का आघात पर्वत कैसे सह रहे हैं, जैसे सन्तजन दुष्टों के वचनों को सहा करते हैं।

छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल बौराई।।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।।

भा०- छोटी-छोटी नदियाँ जल से भर कर तीव्रता से बह चली हैं, जैसे दुष्टप्रकृति का व्यक्ति थोड़े ही धन में बावला हो जाता है। पृथ्वी पर पड़ते ही जल ढाबर अर्थात् मटमैला हो गया है, मानो जीव को माया लिपट गई हो।

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहँ आवा।।
सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

भा०- भिन्न-भिन्न स्थानों से इकट्ठे होकर जल तालाबों में भर रहे हैं, जैसे सज्जन अर्थात् भगवद्भक्तों के पास श्रेष्ठगुण आ जाते हैं। नदियों के जल सागर में जाकर स्थिर हो जाते हैं, जैसे मुक्तजीव मुझ श्रीहरि को पाकर स्थिर होकर अचल हो जाता है।

दो०- हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बिबाद ते, लुप्त होहिं सदग्रंथ।।१४।।

भा०- घासों से युक्त पृथ्वी हरी-भरी हो गई है, मार्ग घास से ढके होने के कारण समझ नहीं पड़ रहे हैं, जैसे पाखण्ड और विवाद के कारण श्रेष्ठग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं।

दादुर धुनि चहुँ दिशा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।।
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका।।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी।।

भा०- चारों ओर सुहावनी मेढकों की ध्वनि हो रही है, मानो ब्राह्मणों के ब्रह्मचारी समूह वेदपाठ कर रहे हों। अनेक वृक्ष नवीन पल्लवों से युक्त हो गये हैं, जैसे विवेक प्राप्त करने से साधकों के मन उत्साहित हो जाते हैं।

अर्क (मन्दार) और जवासे पत्तों से रहित हो गये हैं, जैसे सुन्दर राज्य में दुष्ट का उद्यम चला गया हो। खोजने पर भी कहीं धूल नहीं मिलती है, जैसे धर्म, क्रोध को दूर कर देता है।

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी।।
निशि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर जुरा समाजा।।

भा०- ससि अर्थात् हरी-भरी खेती से युक्त पृथ्वी किस प्रकार शोभित हो रही है, जैसे उपकार करने वाले की सम्पत्ति सुन्दर लगती है। रात्रि के घने अन्धकार में टिम-टिम चमकते हुए जुगनू ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो दम्भी अर्थात् झूठा प्रदर्शन करने वालों का समाज जुड़ गया हो।

महाबृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी।।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।।

भा०- अत्यन्त वृष्टि के कारण खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र हो जाने पर प्राकृत नारियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर कृषक खेती निरा रहे हैं अर्थात् अपने खेतों से घास निकाल रहे हैं, जैसे पण्डित लोग मोह, मद और मान छोड़ देते हैं।

देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं।।
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।।

भा०- चक्रवाक पक्षी नहीं दिख रहे हैं, जिस प्रकार कलियुग को प्राप्त करके धर्माचरण भाग जाते हैं। ऊसरों में मेघ बरस रहे हैं, परन्तु वहाँ एक भी घास नहीं जम रही है, जैसे मुझ भगवान् राम के भक्तों के हृदय में कामना नहीं उत्पन्न होती।

बिबिध जंतु संकुल महिं भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजे ग्याना।।

भा०- अनेक जन्तुओं से युक्त पृथ्वी बहुत सुन्दर लग रही है, जैसे सुन्दर राज्य, अथवा सुन्दर राजा को प्राप्त कर प्रजा में वृद्धि हो जाती है। वर्षा होने के कारण अपनी यात्रायें स्थगित करके जहाँ-तहाँ पथिक रुक गये हैं, जैसे ज्ञान के उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ अपने विषयों के व्यापार से विरत हो जाती हैं।

दो०- कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नसाहिं।।१५(क)।।

भा०- कभी जब वायु तीव्र बहता है और उसके झकोरे से बादल जहाँ-तहाँ तितर-बितर हो जाते हैं, जिस प्रकार कुल के कपूतों अर्थात् संस्कारहीन बालकों के जन्म लेने से सम्पत्ति के सहित धर्म परम्परायें नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग।।१५(क)।।

भा०- कभी दिन में घना अंधकार हो जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं, जैसे कुसंग अर्थात् बुरा संग और सुन्दर संग पाकर ज्ञान नष्ट और उत्पन्न हो जाता है।

बरषा बिगत शरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।।

भा०– हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा के चले जाने पर अत्यन्त सुहावनी शरदऋतु आ गई है। खिले हुए कास नामक तृणों से सारी पृथ्वी ढँक गई है, मानो वर्षा ने अपनी वृद्धावस्था को प्रकट कर दी हो अर्थात् मानो वर्षा ने कास पुष्परूप श्वेतकेशों से अपने बुढ़ापा की सूचना दे दी है।

उदित अगस्त्य पंथ जल शोषा। जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा।।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।।

भा०– उदित हुए अगस्त्य तारा ने मार्गों के जल को सोख लिया है, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों में निर्मल जल सुशोभित हो रहा है, जैसे मद और मोह से रहित सन्तों का हृदय सुन्दर लगता है।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।
जानि शरद ऋतु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।।

भा०– धीरे–धीरे नदियों और तालाबों का जल सूख रहा है, जिस प्रकार ज्ञानी लोग ममता का त्याग कर देते हैं। शरद्ऋतु जानकर खन्जन पक्षी आ गये हैं, जैसे सुन्दर समय पाकर सुकृत अर्थात् सत्कर्म जनित् पुण्य उपस्थित हो जाता है।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी।।
जल संकोच बिकल भये मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना।।

भा०– शरदऋतु में न तो कीचड़ है और न धूल, अर्थात् कीचड़ और धूल से रहित पृथ्वी अत्यन्त शोभित हो रही है, जैसे नीति निपुण राजा की कृति सुन्दर लगती है, जहाँ न तो कलंक रूप कीचड़ होता है और न ही निन्दा रूप धूल। जल की न्यूनता से मछलीगण व्याकुल हो उठे हैं, जैसे धन से हीन होने पर विद्यारहित बड़े परिवार वाला गृहस्थ व्याकुल हो जाता है।

बिनु घन निर्मल सोह अकाशा। हरिजन इव परिहरि सब आशा।।
कहुँ कहुँ बृष्टि शरदऋतु थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी।।

भा०– बादलों के बिना आकाश, सम्पूर्ण आशाओं को छोड़े हुए मुझ भगवान् के भक्त के समान मल से रहित होकर सुशोभित हो रहा है। कहीं–कहीं शरदऋतु में थोड़ी–थोड़ी वृष्टि हो रही है, जैसे कोई एक मेरी भक्ति पा जाता है।

दो०– चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि।।१६।।

भा०– शरदऋतु को देखकर राजा प्रसन्न होकर नगर छोड़कर दिग्विजय करने के लिए, तपस्वी तपस्या करने के लिए, वनिक व्यापार करने के लिए और भिखारी भिक्षाटन के लिए चल पड़े हैं, जैसे मुझ श्रीहरि राम की भक्ति पाकर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी ये चारों आश्रमी लोग अपने–अपने आश्रमों के कर्त्तव्यपालन जैसे श्रम को छोड़ देते हैं।

विशेष– यहाँ राजा गृहस्थ का, तपस्वी ब्रह्मचारी का, वनिक वानप्रस्थ का, भिखारी सन्यासी का, नगर श्रम का और शरदऋतु श्रीहरि भक्ति का उपमान है।

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरन न एकउ बाधा।।
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे।।

भा०– जहाँ अगाध जल है वहाँ मछली सुखी हैं, जिस प्रकार मुझ श्रीहरि की शरण में एक भी बाधा नहीं होती। खिले हुए कमलों से तालाब अथवा तालाबों के जल किस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे निर्गुणब्रह्म, सगुण होकर सुशोभित होते हैं।

विशेष– जल में कमल खिल जाने पर उस पर भ्रमर आते हैं, वे गुंजार करते हैं उससे अन्य लोगों का मनोरंजन होता है, ठीक उसी प्रकार जब ब्रह्म अपने दिव्यगुणों को प्रकट करते हैं तो, उन गुणों के आकर्षण से ब्रह्म का भजन करने के लिए सन्त पधारते हैं और उनके गुंजनरूप भगवद्‌गुणगान से सामान्य लोगों का मन भी भगवन्नमय हो जाता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा।।
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।।

भा०– उपमारहित मुखर भ्रमर उन कमलों पर गुंजार कर रहे हैं और अनेक रूपवाले सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे हैं। शरद की उजेली रात देखकर चक्रवाक के मन में दुःख है, जैसे दूसरों की सम्पत्ति देखकर दुष्टजन दुःखी हो जाते हैं।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शङ्कर द्रोही।।
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।।

भा०– चातक रट रहा है उसे बहुत प्यास लगी है। जैसे शिव जी का द्रोह करने वाला सुख नहीं प्राप्त कर पाता। रात्रि में चन्द्रमा शरद की धूप (गर्मी) को समाप्त कर देते हैं, जैसे सन्तों के दर्शन से पाप समाप्त हो जाता है।

देखहिं बिधु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।।
मशक दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा।।

भा०– शरदपूर्णिमा की चन्द्रमा को चकोर समूह देख रहे हैं जैसे मुझ श्रीहरि परमात्मा श्रीराम को प्राप्त कर मेरे भक्त टकटकी लगाकर निहारा करते हैं। हेमन्तऋतु के त्रास से अब मच्छरों के डंक समाप्त हो गये हैं, जैसे ब्राह्मणों का द्रोह करने से कुल का नाश हो जाता है।

दो०– भूमि जीव संकुल रहे, गए शरद ऋतु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाइ।।१७।।

भा०– वर्षाकाल में पृथ्वी पर जो जीव–जन्तु, कीड़े–मकोड़े व्याप्त थे, वे शरदऋतु को पाकर समाप्त हो गये हैं, जैसे सद्‌गुरु के मिलने पर संशय और भ्रमों के समूह चले जाते हैं।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई।।
एक बार कैसेहुँ सुधि पावौं। कालहुँ जीति निमिष महँ ल्यावौं।।

भा०– हे भैया लक्ष्मण! वर्षा चली गई अब निर्मल शरदऋतु आ गई, फिर भी हमने सीताजी की सुधि नहीं पाई अर्थात् सीता जी का समाचार नहीं पाया। एक बार किसी प्रकार भी समाचार पा जाऊँ, तो काल को भी जीतकर सीता जी को एक क्षण में ले आऊँगा।

कतहुँ रहउ जौ जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई।।
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोश पुर नारी।।
जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं शर हतौं मूढ़ कहँ काली।।

भा०- कहीं भी हों यदि सीता जी जीवित हों तो हे तात! मैं उपाय करके उन्हें (सीता जी को) ले आऊँगा। सुग्रीव भी मेरी सुधि भूल गये। उन्होंने राज, धन, पुर और पत्नी पा ली, जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, कल उसी बाण से सुग्रीव के मोहभाव को भी समाप्त कर दूँगा।

विशेष- यहाँ भगवान् श्रीराम ने जो सुग्रीव जी के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त की है उसका सामान्यत: यही अर्थ लगाया जाता रहा है कि जिस बाण से बालि को मारा था कल उसी बाण से मूर्ख सुग्रीव को मारूँगा। ***जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली।।*** परन्तु क्या मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम अपने ही द्वारा अभयदान से अलंकृत किये हुए मित्र सुग्रीव को मारने की बात कर सकते हैं? क्या प्रभु अग्नि की साक्षी में किये हुए नियमों को भूल गए? यदि नहीं तो *हतौं मूढ़ कहँ* शब्दखण्ड का क्या अर्थ होगा? इसका क्या औचित्य है? वह भी गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे शब्दसिद्ध सारस्वत महाकवि के लेख में। यहाँ मैं इतना ही विनम्र निवेदन कर सकता हूँ कि गोस्वामी जी ने मूढ़ शब्द में भाव में 'क्त' प्रत्यय माना है *नपुंसके भावे क्त:* पा०अ०सू० ३.३.१४. अर्थात् प्रभु कहते हैं कि जिस बाण से मैंने बालि को मारा उसी बाण से मैं कल सुग्रीव के मोहभाव को नष्ट कर दूँगा।

जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ता कहँ उमा कि सपनेहुँ कोहा।।
जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन रघुबीर चरन रति मानी।।

भा०- हे पार्वती! जिन प्रभु श्रीराम की कृपा से मद, मोह आदि विकार छूट जाते हैं, क्या उन श्रीराम को स्वप्न में भी कभी क्रोध आ सकता है? यह चरित्र तो वे ही ज्ञानीमुनि जानते हैं, जिन्होंने रघुवीर श्रीराम के श्रीचरणों में रति अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति को ही अपना सर्वस्व मान लिया है।

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।।
दो०- तब अनुजहिं समुझायेउ, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव।।१८।।

भा०- लक्ष्मण जी ने जान लिया कि प्रभु श्रीराम क्रोध से युक्त हो गये हैं, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर हाथ में बाण ले लिया। तब करुणा की सीमा भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी को समझाया कि सुग्रीव मेरे मित्र हैं, उन्हें केवल भय दिखाकर मेरे पास ले आइये, मारियेगा नहीं।

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। राम काज सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरननि शिर नावा। चारिहुँ बिधि तेहिं कहि समुझावा।।

भा०- यहाँ पवनपुत्र हनुमान जी ने हृदय में विचार किया कि सुग्रीव जी भगवान् श्रीराम के कार्य को भूल गये हैं। हनुमान जी ने सुग्रीव जी के निकट जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया और साम, दान, भय, भेद इन चारों विधियों से कह कर सुग्रीव जी को समझाया।

सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।।
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा।।

भा०- सुनकर सुग्रीव जी ने बहुत–बड़ा भय माना अर्थात् भयभीत हो गये उन्होंने सोचा कि, अरे! विषय भोगों ने मेरे ज्ञान को ही चुरा लिया। हे पवनपुत्र हनुमान जी! अब जहाँ–तहाँ वानर यूथों को बुलाने के लिए दूतों के समूह भेज दीजिये और दूतों से यह सन्देश कहिये कि मेरा आदेश सुनकर पृथ्वी पर कहीं भी रहनेवाला जो बन्दर पन्द्रह दिनों के भीतर मेरे पास नहीं आ जाता तो मेरे हाथों से उसका वध हो जायेगा अथवा, जहाँ वानर जूहा तहाँ दूत समूहा पठवहू अर्थात् पृथ्वी पर जहाँ भी वानरों के यूथ रहते हों, वहाँ दूतों के समूह भेज दीजिये और मेरा यह

संदेश कहिये कि जो एक पक्ष में नहीं आयेगा उसका मेरे हाथों से वध होगा, क्योंकि मैं राजा हूँ और राजाज्ञा पालन सबकी बाध्यता है।

तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता।।
भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरननि सिर नाई।।

भा०– तब हनुमान जी ने दूतों को बुलाया, सभी का बहुत सम्मान करके भय, प्रीति और नीति का प्रदर्शन किया। सभी दूत हनुमान जी के चरणों में सिर नवाकर पृथ्वी भर के समस्त वानर वीरों को बुलाने के लिए चल पड़े।

एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए।।
दो०– धनुष चढ़ाई कहा तब, जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर बिलोकि तब, आयउ बालिकुमार।।१९।।

भा०– उसी अवसर पर लक्ष्मण जी सुग्रीव जी के नगर में पधार आये उनका क्रोध देखकर जहाँ–तहाँ वानर दौड़ने लगे अर्थात् अपने प्राणों की रक्षा के लिए दौड़–दौड़ कर भागने लगे। तब लक्ष्मण जी ने धनुष पर डोर चढ़ाकर कहा कि मैं किष्किन्धापुर को जला कर भस्म कर दे रहा हूँ। तब नगर को व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगद जी, लक्ष्मण जी के पास आये।

चरन नाइ सिर बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाहँ तेहिं दीन्ही।।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीश अति भय अकुलाना।।
सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा।।
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना।।
करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए।।

भा०– अंगद जी ने चरणों में मस्तक नवाकर प्रार्थना की, लक्ष्मण जी ने उन्हें अपनी अभय बाँह दे दी अर्थात् अंगद जी को दाहिना हाथ पकड़ा दिया। लक्ष्मण जी को क्रोध से युक्त सुनकर अतिशय भय से अकुलाये हुए वानरों के राजा सुग्रीव जी ने कहा, हे हनुमान जी! भाभी माँ तारा जी को साथ लेकर आप प्रार्थना करके लक्ष्मण कुमार को समझाइये। तारा जी के सहित लक्ष्मण जी के पास जाकर हनुमान जी ने कुमार लक्ष्मण के चरणों की वन्दना करके, प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण जी के सुयश की प्रशंसा की। हनुमान जी प्रार्थना करके लक्ष्मण जी को राजभवन ले आये। उनके चरण पखार कर (पूर्णरूप से धोकर) उन्हें सुग्रीव जी के ही पलंग पर बैठा दिया।

तब कपीश चरननि सिर नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।।
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा।।
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई।।

भा०– तब वानरराज सुग्रीव जी ने लक्ष्मण जी के चरणों में मस्तक नवाया और लक्ष्मण जी ने भी उनकी बाँह पकड़कर सुग्रीव जी को कण्ठ से लगा लिया। सुग्रीव जी बोले, हे नाथ! विषयभोग के समान कोई मदिरा नहीं हो सकती यह एक क्षण में मुनियों के भी मन में मोह उत्पन्न कर देती है। सुग्रीव जी के विनम्र वचन सुनकर लक्ष्मण जी ने सुख प्राप्त किया और लक्ष्मण जी ने सुग्रीव जी को बहुत प्रकार से समझाया। उसी समय पवनपुत्र हुनमान जी ने लक्ष्मण जी को सब कथा कहकर सुनायी, जिस प्रकार कुमार लक्ष्मण के आने के पहले ही, वानरों को बुलाने के लिए सुग्रीव जी की आज्ञा से दूतों के समूह यत्र–तत्र जा चुके हैं।

दो०- हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामअनुज आगे किये, आए जहँ रघुनाथ।।२०।।

भा०- तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर प्रसन्न होकर सुग्रीव जी श्रीराम के पास चले। श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण जी को आगे किये हुए वहाँ आये जहाँ प्रवर्षण पर्वत के स्फटिकशिला पर भगवान् श्रीरघुनाथ विराज रहे थे।

नाइ चरन सिर कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी।।
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौ दाया।।
बिषय बश्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पामर पशु कपि अति कामी।।
नारि नयन शर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा।।
लोभ पाश जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम समान रघुराया।।
यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।।

भा०- सुग्रीव जी भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में मस्तक नवाकर हाथ जोड़कर कहने लगे, हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है, हे देव! आपकी माया अत्यन्त प्रबल है, हे श्रीराम! वह तभी छूटती है जब आप दया करते हैं। हे स्वामी! देवता, मानव और मुनि ये सभी विषय के वश में हैं, मैं तो नीच पशु और अत्यन्त कामी प्राणी हूँ। जिसको भगवत् विरुद्ध वासनापरायण नारी का नेत्रबाण नहीं लगा अर्थात् जो कामुक नारी के नेत्रबाण से प्रभावित नहीं हुआ, जो घोर क्रोध की अन्धेरी रात में भी जागता रहा, जिसने लोभ के फन्दे से अपने गले को नहीं बँधा लिया, हे श्रीरघुराज जी! वह मनुष्य आपके समान है। यह गुण, साधन से नहीं उत्पन्न हो सकता, आपकी कृपा से इसे कोई–कोई प्राप्त करता है।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।।
अब सोइ जतन करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई।।

भा०- तब रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम मुस्कराकर बोले, हे भाई सुग्रीव! तुम मुझे भरत के समान प्रिय हो, अब तुम मन लगाकर वही यत्न करो जिस प्रकार से मैं सीता जी का समाचार पा सकूँ।

दो०- एहि बिधि होत बतकही, आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिशि, देखिय कीस बरूथ।।२१।।

भा०- इस प्रकार भगवान् श्रीराम और सुग्रीव जी के बीच वार्तालाप हो रहा था कि इसी बीच दूतों द्वारा सन्देश पाकर अनेक वर्णोंवाले वानरों के समूह आ गये। उस समय सभी दिशाओं में अनेक वर्णोंवाले रंग–बिरंगे वानरों के समूह ही दिख रहे थे।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा।।
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदन सब होहि सनाथा।।
अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुशल जेहि पूछी नाहीं।।
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई। बिश्वरूप ब्यापक रघुराई।।

भा०- हे पार्वती! वानरों की सेना को मैंने देखा है, जो उसकी गिनती करना चाहे वस्तुतः वह मूर्ख ही है। वानर आ–आकर भगवान् श्रीराम के चरणों में मस्तक नवाते हैं और प्रभु के श्रीमुख को निरखकर (देखकर) सभी सनाथ हो जाते हैं। सेना में ऐसा एक भी वानर नहीं था जिससे प्रभु श्रीराम ने कुशल न पूछी हो। प्रभु श्रीराम की

यह कोई अधिकता नहीं है, क्योंकि रघु शब्द के अर्थ सम्पूर्ण जीवों के राया अर्थात् सर्वस्व भगवान् श्रीराम विश्वरूप और सर्वव्यापक हैं। तात्पर्य यह है कि, प्रभु ने वानरों के ही प्रमाण में रूप प्रकट किया अर्थात् जितने वानर आये उतने ही रूप धारण करके एक क्षण में सबसे कुशल समाचार पूछा।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहिं समुझाई।।
राम काज अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।।
जनकसुता कहँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। अवसि मरिहिं सो मम कर आये।।

भा०– जहाँ–तहाँ आज्ञा पाकर सभी अट्ठारह पद्‌म यूथपतियों के नेतृत्व में सभी वानर खड़े हो गये। सुग्रीव जी ने सबको समझाकर कहा, श्रीराम के कार्य और मेरी कृतज्ञता के आधार पर, हे वानर यूथों! चारों दिशाओं में जाओ अर्थात् यह श्रीराम का कार्य और मेरा विशेष अनुरोध है कि जाकर श्रीसीता को ढूँढो। हे भाइयों! एक महीने के भीतर ही श्रीसीता का समाचार लेकर आ जाना। जो श्रीसीता का समाचर पाये बिना एक महीने की अवधि का उल्लंघन करके आयेगा वह मेरे हाथ से अवश्य ही मारा जायेगा।

दो०– बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाए, अंगदादि हनुमंत।।२२।।

भा०– सुग्रीव जी का आदेश सुनते ही सभी वानर तुरन्त जहाँ–तहाँ चल पड़े। तब सुग्रीव जी ने अंगद, नल, नील, जाम्बवान् और हनुमान जी को बुलाया।

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना।।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू।।
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काज सँवारेहु।।

भा०– हे नील, नल, अंगद, हनुमान तथा धीरबुद्धि वाले जाम्बवान् जी! सुनिये, आप सभी वीर मिलकर दक्षिण दिशा को जाइये। श्रीसीता का समाचार सबसे पूछियेगा। मन, कर्म और वाणी से उसी यत्न का विचार करियेगा, जिससे आप लोग श्रीरामचन्द्र के कार्य को सँवार लें।

भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहिं सर्ब भाव छल त्यागी।।
तजि माया सेइय परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव शोका।।

भा०– सूर्यनारायण की पीठ से एवं अग्नि की हृदय से सेवा करनी चाहिये और स्वामी की छल छोड़कर सर्वभाव से सेवा करनी चाहिये। कपट छोड़कर परलोक अर्थात् मोक्ष की साधना करनी चाहिये इससे संसार से उत्पन्न सभी शोक मिट जाते हैं अर्थात् भगवान् श्रीराम में सूर्य, अग्नि, स्वामी और परलोक इन चारों के गुण एक साथ विद्यमान हैं, इसलिए उनकी सेवा से सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।

विशेष– इन दोनों पंक्तियों का मूल श्लोक इस प्रकार है–

पृष्ठेन सेवये दर्कम जठरेन हुतासनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोक ममायया।।

देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई।।
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी।।
आयसु माँगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई।।

भा०– हे भाई! शरीर धारण करने का यही फल है कि प्राणी सभी कामनाओं को छोड़कर श्रीराम का भजन करे। वही गुनज्ञ है, वही सबसे बड़ा भाग्यशाली है, जो रघुकुल के वीर श्रीराम के श्रीचरणों का अनुरागी है। इस प्रकार नल, नील, अंगद, जाम्बवान् जी आदि सभी वानर सुग्रीव जी से आदेश माँगकर श्रीराम, लक्ष्मण एवं सुग्रीव जी के चरणों में प्रणाम करके, प्रसन्न होकर रघुराज श्रीराम का स्मरण करते हुए दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा शीष सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्ह जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु। कहि बल बीर बेगि तुम आएहु।।
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना।।
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता।।

भा०– सबसे पीछे पवनपुत्र हनुमान जी ने श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव जी को प्रणाम किया और चलने की अनुमति माँगी। हनुमान जी से कार्य होने की सम्भावना जानकर प्रभु श्रीराम ने संकेत से (*तनी हेने आवऽऽऽ...*) कहकर उन्हें नजदीक बुला लिया। प्रभु ने अपने करकमलों से हनुमान जी के सिर पर स्पर्श किया और आन्जनेय जी को अपना अन्तरंग सेवक जानकर अपने हाथ की मुद्रिका दे दी। भगवान् श्रीराम बोले, हे वीर (हे महावीर!) सीता जी को बहुत प्रकार से समझाना और मेरा बल पराक्रम कहकर तथा शत्रु को भी मेरे बल का अनुभव करा कर तुम लौट आना। हनुमान जी ने अपना जन्म सफल हुआ जाना और अपने हृदय में कृपानिधान श्रीराम को धारण करके चल पड़े। यद्यपि प्रभु श्रीराम सब बात जानते हैं, फिर भी देवताओं के रक्षक प्रभु राजनीति की मर्यादा की रक्षा करते हैं।

दो०– चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन, बिसरा तन कर छोह।।२३।।

भा०– सभी वानर नदी, तालाब, पर्वत और गुफाओं को खोजते हुए चल पड़े। उनका मन श्रीराम के कार्य में लयलीन अर्थात् तन्मय था, इसलिए वे शरीर की ममता भी भूल गये।

कतहुँ होइ निशिचर ते भेंटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा।।
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं।।

भा०– कहीं भी जब राक्षस से भेंट हो जाती है तब एक ही एक थप्पड़ में उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और वनों में बहुत प्रकार से ढूँढ़ते हैं, यदि कोई मुनि मिल जाते हैं तो उसे सब लोग घेर लेते हैं अर्थात् श्रीसीता का समाचार पूछते हैं और श्रीसीता को प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

लागि तृषा अतिशय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने।।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना।।
चढ़ि गिरि शिखर चहूँ दिशि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा।।
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिशहिं तेहि माहीं।।

भा०– वानरों को अत्यन्त प्यास लगी सभी अकुला गये, जल नहीं मिल रहा है, घने जंगल में सब लोग मार्ग भूल गये। तब हनुमान जी ने मन में विचार किया कि सभी वानर बिना जलपान के मरना चाहते हैं। हनुमान जी ने पर्वत के शिखर पर चढ़कर चारों ओर देखा और खेल ही खेल में पृथ्वी पर एक छिद्र अर्थात् गुफा देखी अथवा, पृथ्वी की एक गुफा में पक्षियों का कौतुक देखा। उसमें चक्रवाक, बगुले और हंस भी उड़ रहे हैं, जबकि बगुले और हंस एक साथ नहीं रहा करते और बहुत से पक्षी उस बिबर में प्रवेश भी कर रहे हैं।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहँ लै सोइ बिबर देखावा।।
आगे करि हनुमंतहिं लीन्हा। पैठे बिबर बिलंब न कीन्हा।।

भा०- पर्वत से उतरकर हनुमान जी आये और सभी को ले जाकर बिबर अर्थात् पृथ्वी की वह विशाल गुफा दिखाई। सब ने हनुमान जी को आगे कर दिया और किसी प्रकार का बिलम्ब नहीं किया तुरन्त उस पृथ्वी की गुफा में प्रवेश कर गये।

दो०- दीख जाइ उपवन बिबर, सर बिकसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहाँ, बैठि नारि तप पुंज।।२४।।

भा०- वानरों ने उस बिल में एक सुन्दर उपवन देखा वहाँ तालाब में बहुत से कमल खिले हुए थे। बिल के अन्दर एक मन्दिर भी था, वहाँ तपस्या की पुंजस्वरूप एक महिला बैठी थीं, जो स्वयंप्रभा नामक एक गन्धर्व कन्या थीं।

दूरि ते ताहि सबन सिर नावा। पूँछे निज बृतांत सुनावा।।
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना।।
मज्जन कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए।।
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई।।

भा०- सभी वानरों ने दूर से उस तपस्विनी को प्रणाम किया। उसके पूछने पर अपना वृतान्त सुनाया, फिर उस तपस्विनी ने कहा, जलपान करो और नाना प्रकार से स्वादयुक्त फल खाओ। सभी ने तालाब में स्नान, जलपान किया और मधुर फल खाये फिर सभी लोग उन तपस्विनी के निकट चले आये। उन तपस्विनी ने अपनी सम्पूर्ण कथा सुना दी और कहने लगीं कि अब तो मैं वहीं जाऊँगी जहाँ श्रीराम हैं।

मूंदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहिं जनि पछिताहू।।
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा।।
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा।।
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही।।

भा०- उन तपस्विनी स्वयं प्रभा जी ने कहा—हे वानर भटों! अपनी आँखें मूँद लो, इस गुफा को छोड़कर चले जाओ, श्रीसीता को प्राप्त कर लोगे पश्चात् ताप मत करो। एक क्षण के लिए नेत्रों को मूँदकर पुनः नेत्रों को खोलकर सब वीर देखने लगे तो सभी के सभी समुद्र तट पर ही खड़े थे, फिर वे तपस्विनी प्रवर्षण पर्वत पर जहाँ श्रीराम थे वहाँ गईं, जाकर प्रभु के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाया। उन तपस्विनी ने नाना प्रकार से प्रार्थना की और प्रभु ने उन्हें अनपायनी भक्ति दे दी।

दो०- बदरीबन कहँ सो गई, प्रभु आग्या धरि शीश।
उर धरि राघव चरन जुग, जे बंदत अज ईश।।२५।।

भा०- वे स्वयंप्रभा प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण करके और जिन्हें ब्रह्मा जी और शिव जी वन्दन करते हैं ऐसे श्रीराघव सरकार के युगल श्रीचरणों को हृदय में धारण करके बदरीवन को अर्थात् बदरिकाश्रम को चली गईं।

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं।।
सब मिलि कहहि परस्पर बाता। बिनु सुधि लिए करब का भ्राता।।

भा०- यहाँ समुद्र के तट पर सभी वानर विचार करने लगे कि अवधि तो बीत गई कुछ भी कार्य नहीं हुआ। सभी मिलकर परस्पर बात कहने लगे कि भैया! श्रीसीता की सुधि लिए बिना हम क्या करेंगे?

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।।
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई।।
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही।।
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संशय नाहीं।।

भा०- अंगद जी ने नेत्रों में आँसू भरकर कहा कि हमारी तो दोनों प्रकार से मृत्यु हो गई, इधर श्रीसीता जी का समाचार नहीं पाया और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे। पिताश्री बालि का वध हो जाने पर सुग्रीव मुझे मार ही डालते, परन्तु श्रीराम ने मुझे रख लिया, इसमें सुग्रीव के प्रति मेरी कोई कृतज्ञता नहीं है। अंगद जी ने सभी से बार-बार यही कहा कि अब तो मृत्यु हो ही गई, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा।।
छन एक सोच मगन होइ गए। पुनि अस बचन कहत सब भए।।
हम सीता कै शोध बिहीना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना।।
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।।

भा०- अंगद जी के वचन सुनते ही सभी वीर वानर बोल नहीं सक रहे हैं, नेत्रों से आँसू बह रहे हैं। एक क्षण के लिए सब लोग शोक में मग्न हो गये फिर सभी लोगों ने यह वचन कहा, हे कुशल युवराज अंगद जी ! हम श्रीसीता का समाचार पाये बिना लौटकर किष्किन्धा नहीं जायेंगे। समुद्रतट पर अनशन करके मरेंगे। इतना कहकर खारे समुद्र के तट पर जाकर कुशासन बिछाकर सभी अनशन के लिए बैठ गये।

जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेश बिशेषी।।
तात राम कहँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी।।

दो०- निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोक्ष सुख त्यागि।।२६।।

भा०- अंगद जी का दुःख देखकर जाम्बवान् जी ने उपदेश प्रधान बहुत-सी कथायें कहीं, हे भैया ! श्रीराम को मनुष्य मत मानो उन्हें किसी से भी नहीं जीते जानेवाले, अजन्मा और निर्गुणब्रह्म समझो। हम सभी सेवक अत्यन्त भाग्यशाली हैं, जो सगुणब्रह्म भगवान् श्रीराम में अनुराग रखते हैं। देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए प्रभु अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं और मोक्षसुख को छोड़कर, सगुण उपासक भक्त भी जहाँ प्रभु अवतार लेते हैं वहाँ, उनके साथ रहते हैं।

विशेष- सन्तजन इस प्रसंग में एक दोहा कहते हैं। यथा-

त्रेता में वानर भये। द्वापर में भये ग्वाल।।
कलियुग में साधू भये। तिलक छाप अरुमाल।।

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदरा सुनी संपाती।।
बाहेर होइ देखि बहु कीशा। मोहि अहार दीन्ह जगदीशा।।
आजु सबहिं कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ।।
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा।।

भा०– इस प्रकार वानर बहुत प्रकार से कथा कह ही रहे थे कि पर्वत की कन्दरा से सम्पाती ने सुन ली। उसने गुफा से बाहर आकर समुद्र तट पर आमरण अनशन कर रहे बहुत से वानरों को देखकर मन में कहा, अहा! ईश्वर ने मुझे आहार दे दिया, आज क्रम से सभी को भक्षण कर जाऊँगा। बहुत दिन चले गये, बिना भोजन के भूखों मर रहा हूँ। कभी भी भरपेट आहार नहीं मिला, आज विधाता ने एक ही बार में दे दिया।

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना।।
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिशेषी।।

भा०– गृध्र का वचन सुनकर सभी डर गये और कहने लगे, हम समझ गये अब सत्य ही हमारा मरण होगा, क्योंकि गृध्र मरी हुई लाश को ही खाता है। इसे हमारी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया है, अतएव इसने खाने की बात कही। सम्पाती को आते देखकर सभी वानर आसन पर से उठ गये। जाम्बवान् के हृदय में विशेष चिन्ता हुई, हे राम! इनका तो व्रत भी टूट गया, ये प्रभु का कार्य नहीं कर सकेंगे।

विशेष : सम्पाती को देखकर सभी वानर–भालू अपने स्थान से उठकर खड़े हो गए थे अर्थात् सबका व्रत टूटा परन्तु हनुमान जी महाराज यथावत् बैठे रहे और मौन होकर भगवान् श्रीराम का स्मरण करते रहे। अतएव आगे चलकर जाम्वान् कहेंगे "**का चुप साधि रहेउ बलवाना**" मानस ४.३०.३

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।।
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़ भागी।।

भा०– अंगद जी ने मन में विचार करके कहा कि जटायु जी के समान धन्य कोई नहीं है। परमबड़भागी जटायु जी श्रीराम के कार्य के लिए अपने शरीर का त्याग कर श्रीहरि के पुर अर्थात् साकेतलोक पधार गये।

सुनि खग हरष शोक जुत बानी। आवा निकट कपिन भय मानी।।
ताहिं देखि कपि चले पराई। ठाढ़ कीन्ह पुनि शपथ दिवाई।।
तिनहिं अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन ताहि सुनाई।।
सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी।।

भा०– जटायु जी के परधाम जाने से हर्ष और मृत्यु से शोकयुक्त वाणी सुनकर सम्पाती वानरों के निकट आया, वानरों ने भय माना अर्थात् भयभीत हुए। उसे देखकर वानर भाग चले। सम्पाती ने अपनी शपथ देकर वानरों को खड़ा किया। उन वानरों को अभय करके जाकर पूछा तो वानरों ने जटायु जी की सम्पूर्ण कथा उन्हें सुनायी। अपने भाई का सुन्दर कृत्य सुनकर, सम्पाती ने बहुत प्रकार से भगवान् श्रीराम की महिमा का वर्णन किया। सम्पाती ने वानरों से कहा–

दो०– मोहि लै चलहु सिंधुतट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करब मैं, पैहहु खोजहु जाहि।।२७।।

भा०– हे वानरों! मुझे समुद्र के तट पर ले चलो, मैं दिवंगत उस जटायु को तिलान्जली दे सकूँ। मैं वचन से तुम्हारी सहायता करूँगा तुम जिन्हें खोज रहे हो, उन सीता जी को पा जाओगे। जाओ।

विशेष : "जाहि" शब्द या धातु लोट लकार मध्यम पुरुष एकवचन याहि का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है तुम जाओ। अभिप्राय यह है कि और वानर प्रभु का कार्य नहीं कर सकेगे, क्योंकि इन सबने अपना व्रत तोड़ दिया है। हे हनुमान जी! तुम्हीं श्रीराम कार्य को करोगे अत: तुम सागर पार लंका जाओ।

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा।।
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई।।
तेज न सहिं सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि नियरावा।।
जरे पंख रबि तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा।।

भा०- समुद्र के तट पर छोटे भाई जटायु जी की जलक्रिया करके सम्पाती ने अपनी कथा कही। हे वीर वानरों! सुनो, बहुत पहले युवावस्था में अथवा प्राथमिक युवावस्था में हम दोनों भाई (सम्पाती और जटायु) आकाश में उड़कर सूर्यनारायण के निकट गये। जटायु सूर्यनारायण का तेज नहीं सह सके वह लौट आये और अहंकारी मैं (सम्पाती) सूर्यनारायण के निकट पहुँच गया। सूर्यनारायण के अपार अर्थात् असह्य तेज से मेरे दोनों पंख जल गये और मैं घोर चित्कार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही।।
बहु प्रकार तेहि ग्यान सिखावा। देह जनित अभिमान छुड़ावा।।
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहैं। तासु नारि निशिचर पति हरिहैं।।
तासु खोज पठइहिं प्रभु दूता। तिनहिं मिले तैं होब पुनीता।।
जमिहैं पंख करसि जनि चिंता। तिनहिं देखाइ देव तैं सीता।।

भा०- एक चन्द्रमा नामक मुनि थे, मुझे विपन्न अवस्था में देखकर उन्हें अत्यन्त दया लग गई। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान की शिक्षा दी और मेरे देहजनित् अभिमान अर्थात् शरीर से उत्पन्न अहंकार को छुड़ा दिया। वे बोले, त्रेता में परब्रह्म श्रीराम मनुष्य शरीर धारण करेंगे, उनकी पत्नी श्रीसीता को राक्षसराज रावण चुरा लेगा। उन्हीं श्रीसीता की खोज में प्रभु श्रीराम वानरदूतों को भेजेंगे, उनसे मिलकर तू (सम्पाती) पवित्र हो जायेगा, तुम्हारे पंख जम जायेंगे, तुम चिन्ता मत करो उन वानर दूतों को तुम श्रीसीता के दर्शन करा देना अर्थात् उनके रहने का संकेत स्थान बता देना।

अस कहि मुनि निज आश्रम गयऊ। तेहि छन हृदय ग्यान कछु भयऊ।।
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू।।

भा०- ऐसा कहकर चन्द्रमा मुनि अपने आश्रम को चले गये उसी क्षण मेरे हृदय में कुछ ज्ञान हुआ। मुनि की वाणी आज सत्य हो गई, मेरा वचन सुनकर प्रभु श्रीराम का कार्य करो।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज अशंका।।
तहाँ अशोक बाटिका अहई। सीता बैठी सोचत रहई।।

भा०- त्रिकूट पर्वत के ऊपर लंका नामक एक पुरी बसी हुई है। उसमें स्वभाव से अशंक अर्थात् निर्भीक, शंकाओं से रहित रावण नाम का राक्षस रहता है, उस लंका में अशोक वाटिका है, उसी में बैठी हुई श्रीसीता जी सदैव शोक करती रहती हैं।

दो०- मैं देखउँ तुम नाहीं, गीधहिं दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार।।२८।।

भा०- मैं देख रहा हूँ तुम लोग नहीं देख रहे हो, क्योंकि गृध्र की अपारदृष्टि होती है, मैं वृद्ध हो गया हूँ नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता भी करता।

जो नाघइ शत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर।।

जो कोउ करइ राम कर काजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू।।
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपा कस भयउ शरीरा।।
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं।।
तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई।।

भा०– जो सौ योजन समुद्र को लाँघ सके वही बुद्धि का भवन महापुरुष भगवान् श्रीराम का कार्य कर सकेगा। जो कोई आज श्रीराम का कार्य करेगा उसके समान कोई दूसरा धन्य नहीं होगा। हे वानरों! मुझे देखकर हृदय में धैर्य धारण करो। देखो, श्रीराम की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया अर्थात् मेरे पंख भी जम गये और मैं स्वस्थ भी हो गया। जिन प्रभु का नाम यदि पापी भी स्मरण करते हैं, तो अत्यन्त अगाध भवसागर को पार कर लेते हैं, तुम उन्हीं पापहारी श्रीहरि भगवान् श्रीराम के दूत हो। कायरता छोड़कर भगवान् श्रीराम को हृदय में धारण करके उपाय करो।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ । तिन के मन अति बिसमय भयऊ।।
निज निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ कर संशय राखा।।
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेशा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेशा।।
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी।।
दो०- बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हि मैं, सात प्रदच्छिन धाइ।।२९।।

भा०– भुशुण्डि जी, गरुड़ जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे गरुड़देव! ऐसा कहकर जब सम्पाती चला गया, तब उन वानरों के भी मन में बहुत विस्मय अर्थात् आश्चर्य हुआ। सभी वानरों ने अपना–अपना बल कहकर सुनाया, परन्तु समुद्र पार जाने में संशय बनाये रखा अर्थात् किसी ने भी समुद्र पार जाने में निःसंदेहता नहीं व्यक्त की। भालुओं के राजा श्रीजाम्बवान् जी कहने लगे, अहो! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ मेरे शरीर में पहले के बल का लेश भी नहीं रह गया है। जब खर के शत्रु भगवान् श्रीराम, त्रिविक्रम अर्थात् वामन बने थे अर्थात् वामनस्वरूप धारण किये थे, तब मैं बहुत बड़े बलवाला युवक था। बलि को बाँधते समय प्रभु श्रीराम वामनस्वरूप से जिस प्रकार बढ़े थे, उस शरीर का वर्णन नहीं किया जा सकता, तब मैंने दो घड़ी में दौड़कर सात परिक्रमायें दी थी।

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय संशय कछु फिरती बारा।।
जामवंत कह तुम सब लायक। पठइय किमि सब ही कर नायक।।

भा०– अंगद जी ने कहा मैं पार जा सकता हूँ, परन्तु लौटते समय में मेरे मन में कुछ सन्देह हो रहा है अर्थात् पार जाकर उसी वेग से मैं लौट नहीं सकूँगा। जाम्बवान् जी ने कहा आप सब कुछ करने में समर्थ हैं, परन्तु सभी वानरों के नेता को कैसे भेजा जाये?

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना।।
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ पर्बताकारा।।

भा०– भालुओं के स्वामी जाम्बवान् जी कहने लगे, हे हनुमान जी! सुनिये, हे प्रशस्त बलवाले और नित्य बलशाली! आप क्यों चुप लगाकर बैठे हैं? आप पवन के पुत्र हैं और आपके पास पवन के समान बल है। आप बुद्धि, विवेक और विज्ञान के कोश हैं, हे तात! संसार में ऐसा कौन–सा कठिन कार्य है जो आपके पास से नहीं हो सकता? श्रीराम के कार्य के लिए ही आपका अवतार हुआ है, यह सुनते ही कपि अर्थात् श्रीहनुमान पर्वताकार हो गये, उनका आकार पर्वत के समान विशाल हो गया।

विशेष– जाम्बवान् जी का तात्पर्य था कि भगवान् श्रीराम का साधुरक्षण, दुष्टदमन और धर्मसंस्थापना कार्य करने के लिए ही आपश्री रुद्रदेव का यहाँ वानरावतार हुआ है।

जेहिं शरीर रति राम सों, सोइ आदरहिँ सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह–बश, वानर मे हनुमान।। (तुलसी दोहावली १४२)

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन कर राजा।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं लाघउँ जलधि अपारा।।

भा०- हनुमान जी के स्वर्ण के समान सुन्दर शरीर में तेज विराजने लगा, मानो वे दूसरे पर्वतराज सुमेरु ही थे। श्रीहनुमान जी ने बार–बार सिंहनाद करके कहा, मैं इस अपार सागर को खेल–खेल में लाँघ सकता हूँ।

सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावन दीजहु मोही।।

भा०- मैं सहायकों के सहित रावण को मारकर लंका के आधार त्रिकूटाचल पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ, हे जाम्बवान् जी! मैं आपसे पूछ रहा हूँ, मुझे उचित शिक्षा दीजिये।

इतना करहु तात तुम जाई। सीतहिं देखि कहहु सुधि आई।।
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना।।
छं०- कपि सैन संग सँघारि निशिचर राम सीतहिं आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं।।
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावहीं।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावहीं।।

भा०- जाम्बवान् जी ने कहा, हे तात! तुम समुद्र पार जाकर इतना करो, श्रीसीता को देखकर समुद्र के इस पार आकर हम लोगों से, सुग्रीव जी से एवं श्रीराम, लक्ष्मण जी से उनका समाचार कहो, तब राजीवनेत्र भगवान् श्रीराम जी अपने ही भुजाओं के बल से वानर–सेना को केवल कौतुक के लिए संग लेकर रावण का वध करेंगे। संग में वानरी–सेना लेकर राक्षसों का संहार करके भगवान् श्रीराम श्रीसीता को लंका से ले आयेंगे और उनके तीनों लोक को पवित्र करने वाले सुयश को देवता और नारद आदि मुनिगण बखानेंगे। जिस सुयश को सुनते, गाते और समझते हुए साधक–प्राणी परमपद पा जाते हैं, उसी सुयश को श्रीराम के श्रीचरणकमलों का दास तुलसीदास गाता है।

दो०- भव भेषज रघुनाथ जस, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिशिरारि।।३०(क)।।

भा०- भवरोग की औषधि श्रीरघुनाथ के यश को जो नर–नारी सुनेंगे, उनके सभी मनोरथों को त्रिशिरा के शत्रु श्रीराम सिद्ध कर देंगे।

नीलोत्पल तनु श्याम, काम कोटि शोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक।।३०(ख)।।

भा०- जिनका शरीर नीले कमल के समान श्यामल है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेव की शोभा से भी अधिक है और जिनका नाम पापरूप पक्षियों का वध करने के लिए व्याध के समान है, ऐसे प्रभु श्रीराम के गुणगण को सुनिये अथवा निरन्तर सुनना चाहिये।

*** मासपरायण, बाईसवाँ विश्राम ***

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने संदेहगंजनं नाम चतुर्थसोपानं किष्किन्धाकाण्डं सम्पूर्णम्।
।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

इस प्रकार से सम्पूर्ण कलिकलुष को नष्ट करने वाले गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस में सन्देहगंजन नामक चतुर्थ सोपान किष्किन्धाकाण्ड सम्पूर्ण हो गया। यह श्री सीताराम जी को समर्पित हो।

श्रीरामभद्राचार्येणकृता भावार्थबोधिनीटीका चतुर्थसोपाने मानसे रामतुष्टये।
।।श्रीराघव:शन्तनोतु।।
किष्किन्धाकाण्ड समाप्त

–––

।।श्री सीताराम।।

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामौ विजयेते

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

पंचम सोपान

सुन्दरकाण्ड

मंगलाचरण

श्रीः

भावार्थबोधिनी टीका

विहितविपुलकुलतिलकं जितजलतिलकं धृतेषुचलतिलकम्।
रामं रघुकुलतिलकं हतखलतिलकानुजं वन्दे।।
कनककुधर कुलदेहं बलगुणगेहं समुद्रसन्देहम्।
पवनजमथवन्देऽहं दमितखलेहं विमानेहम्।।
नत्वा श्रीतुलसीदासं सुन्दरे सुन्दरीमहम्।
मानसे राष्ट्रभाषायां भाषे भावार्थबोधिनीम्।।

गोस्वामी जी श्रीसीताराम नाम से भगवान् को स्मरण करते हैं और श्रीगणपति को नमन करते हैं। भगवान् श्रीसीताराम जी सर्वोत्त्कृष्ट देवता के रूप में विजयी हो रहे हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदास श्रीरामचरितमानस के पंचम सोपान सुन्दरकाण्ड के तीन श्लोकों में मंगलाचरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

विशेष- छह काण्डों के नाम किसी न किसी घटना से जुड़े हुए हैं। बालकाण्ड भगवान् श्रीराम की बाल्यावस्था की घटना से, अयोध्याकाण्ड अयोध्या की घटना से, अरण्यकाण्ड वन की घटना से, किष्किन्धाकाण्ड बालि की पुरी और उसकी गुफा की घटना से, युद्धकाण्ड श्रीराम–रावण युद्ध की घटना से, उत्तरकाण्ड उत्तर दिशा में वर्तमान

उत्तर कोसल की घटना से, अथवा प्रश्नों के उत्तरों से तथा श्रीराम के उत्तर चरित्रों से जुड़ा है, परन्तु सुन्दरकाण्ड किसी घटना से जुड़ा हुआ नहीं प्रतीत होता, फिर इसका आदिकवि से लेकर सभी रामायण रचयिताओं ने सुन्दरकाण्ड ही नाम क्यों रखा? इस प्रश्न के यहाँ कुछ उत्तर दिये जा रहे हैं। इस विषय पर विस्तार से शीघ्र ही प्रस्तुत होने वाली मेरी अगली रचना "**श्रीराघवकृपाभाष्य**" में विचार किया जायेगा।

पूर्वाचार्यों की दृष्टि से इसमें सब कुछ सुन्दर है, श्रीसीता की कुशलता का सुन्दर समाचार है और इसके तीन मुख्य पात्र श्रीराम, हनुमान एवं सीता जी बहुत सुन्दर हैं, इसलिए इसका नाम सुन्दर है। इस भाव का श्लोक इस प्रकार है–

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरः कपिः।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्।।

जिस पर्वत से हनुमान जी कूदे थे, उसका भी सुन्दराचल नाम है। यथा– ***सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर*–मानस,** ५.१.५. मानस जी की दृष्टि से इसमें हनुमान जी का चरित्र है और गोस्वामी जी ने इसमें आठ बार सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है। इसमें भगवत्कृपा से विषयी, साधक, सिद्ध इन तीनों प्रकार के जीव (सिद्ध हनुमान जी, साधक विभीषण जी और विषयी शुक) ने सागर का लंघन किया और अन्त में भगवान् ने सागर का निग्रह किया, यह सब सौन्दर्य इसमें समाहित है। इसमें एक ही साथ हनुमान जी की भक्ति, सीता जी का सतीत्व और भगवान् श्रीराम की उदारता तथा आत्मविश्वास वर्णित है, इसलिए इसे सुन्दरकाण्ड कहा जाता है। इसका विस्तार "**श्रीराघव कृपाभाष्य**" में किया जायेगा।

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्।।१।।

भा०– नित्यशान्ति से सम्पन्न तथा निरन्तर वर्तमान अर्थात् विनाशरहित, प्रमाणों से परे निष्पाप, देवताओं को शान्ति देने वाले, ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं शेष के भी सेव्य और इनके द्वारा सेवित, अज्ञानरूप रात्रि से रहित, वेदान्त के द्वारा (विशिष्टाद्वैतवाद परम्परा से) जानने योग्य और प्राप्य, सर्वव्यापी, जगत् के ईश्वर, ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओं के पिता एवं आचार्य, भव, भय और भक्तों के त्रिताप को हरनेवाले, करुणा की खानि तथा भक्तों पर अहैतुकी करुणा करनेवाले, रघुकुल में श्रेष्ठ एवं रघु नामक जीव के वरणीय, भक्तों पर कृपा करने के लिए लीला में मनुष्य जैसा आचरण करनेवाले, सम्पूर्ण राजाओं के मुकुटमणि, श्रीराम नाम से विख्यात, श्रीहरि परब्रह्म परमात्मा, साकेताधिपति भगवान् श्रीराम को मैं तुलसीदास वन्दन करता हूँ।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च।।२।।

भा०– हे रघुपते अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के स्वामी श्रीराम! हमारे हृदय में और कोई स्पृहा अर्थात् वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा नहीं है, मैं सत्य कहता हूँ, क्योंकि आप सभी जीवों के अन्तरात्मा के साथ अन्तर्यामी रूप से विराजते हैं। हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ प्रभु श्रीराम! मुझे भव–भार को नष्ट करनेवाली भक्ति दीजिये तथा मेरे मन और मेरे द्वारा रचे जा रहे श्रीरामचरितमानस को कामादि दोषों से रहित कर दीजिये अर्थात् मेरे मन में कामादि दोष न आने दीजिये और मेरे श्रीरामचरितमानस में भी कामादि दोषों के वर्णन करने से मुझे रोक दीजिये।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।।३।।

भा०– तुलनारहित बल के भवन तथा अतुलनीय बलवाले, भगवान् श्रीराम के भी धाम अर्थात् मन्दिरस्वरूप, स्वर्ण के पर्वत सुमेरु के समान आभावाले दिव्यशरीर से युक्त अथवा, स्वर्ण के पर्वत सुमेरु को भी जिससे आभा प्राप्त हुई ऐसे मंगलमय शरीरवाले, राक्षसरूप वन एवं राक्षसों के वन अशोक वन के लिए अग्निस्वरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य अर्थात् प्रथम गिने जानेवाले, सभी वैष्णवोचित श्रेष्ठगुणों के कोश, वानरों के आधिकारिक ईश्वर, रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के श्रेष्ठ विश्वासपात्र दूत, वायु देवता के सांकल्पिक पुत्र हनुमान जी महाराज को मैं तुलसीदास नमन करता हूँ।

विशेष– यहाँ प्रथम श्लोक शार्दूल विक्रीडित में द्वितीय श्लोक वसंततिलका में और तृतीय श्लोक मालिनी वृत्त में कहा गया है।

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखहु तुम भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई।।
जब लगि आवौं सीतहिं देखी। होइ काज मन हरष बिशेषी।।

भा०– जाम्बवान् जी के सुहावने वचन सुनकर हनुमान जी के हृदय में वे वचन बहुत अच्छे लगे। हनुमान जी ने सभी वानर वीरों से कहा, हे भाई! दुःख सहकर, कन्द, मूल और फल खाकर तब तक तुम लोग इसी उत्तरी सागर–तट पर मेरी प्रतीक्षा करना जब तक मैं श्रीसीता के दर्शन करके आ रहा हूँ अर्थात् मेरे आने तक कहीं भागना नहीं कार्य होगा, मेरे मन में विशेष हर्ष है।

विशेषः– यहाँ हनुमान जी कार्यसिद्धि में कहे हुए अपने सम्बन्ध में ज्योतिष का तीसरा सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं। गर्गाचार्य के मत में प्रातःकाल यात्रा करके कार्यारम्भ करने से कार्यसिद्ध हो जाता है। वृहस्पति जी के मत में यात्रा के प्रारम्भ में सुन्दर शकुन होने से कार्यसिद्ध होता है। अंगिरा जी के मत में यात्रा के प्रारम्भ में यदि मन में उत्साह

हो तब कार्यसिद्धि निश्चित जाननी चाहिये और भगवान् विष्णु के मत में यदि यात्रा के प्रारम्भ में ब्राह्मण का आशीर्वाद मिल जाये तब कार्य की सिद्धि निःसंदिग्ध समझ लेनी चाहिये।

उषः प्रशस्यते गर्गः शकुनं तु बृहस्पति :।
अंगिरा मन उत्साहं विप्र वाक्यं जनार्दन :।

अस कहि नाइ सबनि कहँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।।
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ तेहि ऊपर।।
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी।।

भा०– ऐसा कहकर सभी को मस्तक नवाकर, प्रसन्न होकर, रघुनाथ जी को हृदय में धारण करके हनुमान जी चल पड़े। समुद्र के तट पर एक सुन्दर पर्वत था, अथवा सुन्दराचल नाम का एक प्रधान पर्वत था, हनुमान जी खेल–खेल में उछलकर उसके ऊपर चढ़ गये। विशाल बलवाले, अथवा विपुल बल को धारण करनेवाले वायु देवता के पुत्र हनुमान जी त्यागवीरता, दयावीरता, विद्यावीरता, पराक्रमवीरता एवं धर्मवीरता के मूर्तस्वरूप रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम को बारम्बार सँभारी अर्थात् स्मरण करके समुद्रतट पर स्थित उस सुन्दराचल पर्वत से उछले।

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता।।
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।

भा०– हनुमान जी महाराज जिस सुन्दराचल पर्वत पर अपने चरणों को टिकाकर आकाश मार्ग से लंका के लिए चले, हनुमान जी के चरणों से दबने के कारण वह पर्वत तुरन्त धँसकर पाताल चला गया। जिस प्रकार रघुपति भगवान् श्रीराम जी के धनुष से छूटा हुआ अमोघ बाण लक्ष्य की ओर तीव्रता से चलता है, इसी प्रकार से भगवान् श्रीराम जी के सुग्रीवरूप धनुष से छूटकर श्रीराम–बाणरूप हनुमान जी महाराज अपने लक्ष्य की ओर चल पड़े।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। कह मैनाक होहु श्रमहारी।।
दो०– हनूमान तेहि परसि कर, पुनि पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काज कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम।।१।।

भा०– जल के कोश समुद्र ने हनुमान जी को श्रीराम का दूत विचारकर अपने अन्दर छिपे हुए हिमाचल के पुत्र मैनाक से कहा, हे मैनाक! तुम ऊपर आकर हनुमान जी का श्रम हरण करो अर्थात् निरालम्ब आकाश मार्ग में जाते हुए हनुमान जी यदि तुम पर विश्राम कर लेंगे तो उनकी थकान दूर हो जायेगी। (मैनाक ने वैसा ही किया) उन्होंने अर्थात् मैनाक ने जल से ऊपर आकर अपने ऊपर विश्राम करने के लिए हनुमान जी से प्रार्थना की, फिर हनुमान जी महाराज ने अपने हाथ से मैनाक को स्पर्श करके पुनः प्रणाम किया और बोले, भगवान् श्रीराम का कार्य किये बिना मेरे लिए विश्राम कहाँ है? अर्थात् विश्राम तो तब करूँगा जब सागर पार करके जनकनन्दिनी जी के दर्शन कर लूँगा।

जात पवनसुत देवन देखा। जानै कहँ बल बुद्धि बिशेषा।।
सुरसा नाम अहिन कै माता। पठएनि आइ कही तेहिं बाता।।

भा०– देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान जी को आकाश–मार्ग से लंका जाते हुए देखा, तब उनके विशेष बल और बुद्धि जानने के लिए अथवा हनुमान जी के बल और बुद्धि का वैशिष्ट्य जानने के लिए सुरसा नामक सर्पों की माता को हनुमान जी के पास भेजा। सुरसा ने आकर यह बात कही–

आजु सुरन मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा।।
राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं।।
तब तुव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।।

भा०– आज देवताओं ने मुझे आहार दिया है, यह सुनकर पवनपुत्र हनुमान जी ने यह वचन कहा, मैं भगवान् श्रीराम का कार्य करके लौट आऊँ और श्रीसीता का समाचार प्रभु श्रीराम को सुना दूँ, तब अपने आप आकर मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर जाऊँगा, मैं सत्य कहता हूँ, हे माँ! मुझे जाने दो। सुरसा किसी भी उपाय से हनुमान जी को जाने नहीं देती है, तब हनुमान जी ने कहा, तो फिर मुझे क्यों नहीं खा लेतीं?

जोजन भरि तेहिं बदन पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप देखावा।।
शत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगी बिदा ताहि सिर नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरम तोर मैं पावा।।

भा०– सुरसा ने हनुमान जी को खाने के लिए एक योजन यानी चार कोस और वर्तमान की दृष्टि से बारह किलोमीटर तक मुख फैलाया। हनुमान जी ने अपने शरीर का उससे दुगुणा विस्तार कर लिया। सुरसा ने अपना मुख सोलह योजन तक फैलाया, पवनपुत्र हनुमान जी तुरन्त बत्तीस योजन के हो गये। जैसे–जैसे सुरसा ने अपना मुख बढ़ाया वैसे–वैसे हनुमान जी ने उससे दुगुना अपना रूप दिखा दिया। सुरसा ने अपना मुख सौ योजन का कर लिया, तब पवनपुत्र हुनमान जी ने अपना बहुत छोटा रूप कर लिया और सुरसा के मुख में प्रवेश करके हनुमान जी फिर बाहर आये। चलने की अनुमति माँगी और उसे अर्थात् सुरसा को मस्तक नवाया। सुरसा ने कहा कि देवताओं ने मुझे जिस कारण से भेजा था मैंने तुम्हारी बुद्धि और बल का वह मर्म पा लिया।

दो०– रामकाज सब करिहउ, तुम बल बुद्धि निधान।
आशिष दै सुरसा चली, हरषि चले हनुमान।।२।।

भा०– हे हनुमान जी! तुम सम्पूर्ण श्रीराम का कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल और बुद्धि के कोश हो। इस प्रकार हनुमान जी को आशीर्वाद देकर सुरसा देवताओं के पास चली गई और हनुमान जी भी प्रसन्न होकर आगे चले।

निशिचरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई।।
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन कै परिछाहीं।।
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई।।
सोइ छल हनूमान ते कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा।।

भा०- समुद्र में एक सिंहिका नामक राक्षसी रहती थी, वह माया अर्थात् छल करके आकाश के पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो भी छोटे-बड़े जीव-जन्तु उड़ा करते थे, उनकी जल में परछाईं देखकर वह उस जीव की छाया पकड़ लेती थी, जिससे वह जीव उड़ नहीं सकता था और वह नीचे गिर जाता था। इस प्रकार, वह निरन्तर आकाशचारी पक्षियों को खाती रहती थी। उसने वही छल हनुमान जी से भी किया, हनुमान जी ने तुरन्त ही उसका कपट पहचान लिया और आकार छोटा बनाकर उसके पेट में प्रवेश कर गये तथा अपने तीखे नखों से सिंहिका का पेट फाड़ दिया। धीर बुद्धिवाले वायु के पुत्र हनुमान जी सिंहिका को मारकर समुद्र के पार चले गये।

तहाँ जाइ देखी बन शोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा।।
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए।।

भा०- समुद्र के उस दक्षिणी तट पर जाकर हनुमान जी ने वन की शोभा देखी। वहाँ मधु के लोभ से भौंरे गुँजार कर रहे थे। फल और पुष्पों से सुन्दर अनेक वृक्ष, पक्षी और हरिण के समूह को देखा जो हनुमान जी के मन को भा गये।

शैल बिशाल देखि एक आगे। ता पर कूदि चढ़ेउ भय त्यागे।।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई।।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिशेषी।।
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।।

भा०- हनुमान जी अपने सामने एक विशाल पर्वत अर्थात् त्रिकूटाचल को देखकर भय छोड़ उछलकर उस पर चढ़ गये। शिव जी, पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, हे उमा! यह हनुमान जी की कोई अधिकता नहीं है, यह तो केवल प्रभु श्रीराम का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर हनुमान जी ने लंका देखी उसका अत्यन्त विशिष्ट किला कहा नहीं जा सकता था, वह अत्यन्त विशाल था और उस किले के चारों ओर समुद्र था, जो खाई की भूमिका निभा रहा था, उस पर स्वर्ण से बने हुए परकोटे का अत्यंन्त श्रेष्ठ प्रकाश हो रहा था।

छं०- कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना।।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथनि को गनै।
बहुरूप निशिचर जूथ अतिबल सैन बरनत नहिं बनै।।१।।

भा०- स्वर्ण का दुर्ग और आश्चर्यमय मणियों से बनाये हुए अत्यन्त घने सुन्दर भवन, चउहट्ट अर्थात् चार प्रकार के मार्गवाले स्थान, बाजार, सुन्दर राजमार्ग, गलियाँ इन सबसे सुन्दर लंकानगर बहुत प्रकार से रमणीय बना हुआ

था। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह, पदाति सैनिक और रथों के समूह जिन्हें कौन गिन सकता है के सहित बहुत रूपवाले अत्यन्त बलशाली राक्षस यूथों से युक्त राक्षसी सेना का वर्णन करते नहीं बनता।

बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।
कहुँ मल्ल देह बिशाल शैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारनि भिरहिं बहु बिधि एक एकन तर्जहीं।।२।।

भा०- वन, बगीचे, उपवन अर्थात् उद्यान, वाटिकायें, तालाब, कुएँ बावलियाँ सुशोभित हो रही थी। मनुष्य, नाग, देवता और गन्धर्व कन्याओं के रूप को देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते थे। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीरवाले अत्यन्त बलशाली मल्लगण गरजते और तरजते हुए अनेक अखाड़ों में बहुत प्रकार से एक-दूसरों से भिड़ते अर्थात् मल्लयुद्ध करते और एक-दूसरे को डाँट रहे थे।

करि जतन भट कोटिन बिकट तन नगर चहुँ दिशि रक्षहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निशाचर भक्षहीं।।
एहि लागि तुलसीदास इन की कथा संछेपहिं कही।
रघुबीर शर तीरथ शरीरनि त्यागि गति पैहैं सही।।३।।

भा०- इस प्रकार से भयंकर शरीरवाले करोड़ों राक्षस वीर चारों ओर नगर की रक्षा कर रहे थे और कहीं खलप्रकृति वाले राक्षस, भैंसों, मनुष्यों, गौओं, गधों और बकरों को खा जाते थे। तुलसीदास जी ने इनकी कथा इसलिए संक्षेप में कही, क्योंकि ये रघुवीर श्रीराम के बाणरूप तीर्थों में अपने शरीरों का त्याग करके सुन्दर गति पा जायेंगे।

दो०- पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निशि, नगर करौं पैसार।।३।।

भा०- बहुत से नगर के रक्षकों को देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने मन में विचार किया कि, बहुत छोटा-सा रूप धारण कर लूँ और रात्रि में ही नगर में प्रवेश करूँ।

मशक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
नाम लंकिनी एक निशिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।
जानेसि नाहि मरम शठ मोरा। मोर अहार लंक कर चोरा।।

भा०- हनुमान जी ने मशक के समान अपना छोटा-सा रूप बना लिया अर्थात् मच्छर का रूप नहीं बनाया, किन्तु मच्छर के समान छोटा वानररूप ही बनाया और पुरुषों में सिंह श्रीराम का स्मरण करके लंका को चल पड़े। लंकाद्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी थी। उसने कहा, अरे दुष्ट वानर! मेरा निरादर करके लंका में चले जा रहे हो। अरे शठ! तू मेरा मर्म नहीं जानता। लंका के चोर मेरे आहार होते हैं, अर्थात् जो चोरी से लंका में प्रवेश करता है, उसे मैं खा लेती हूँ।

मुठिका एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।।
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय सशंका।।
जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
बिकल होसि जब कपि के मारे। तब जानेसु निशिचर संघारे।।
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।

भा०– हनुमान जी ने उसे एक हल्की मुष्ठिका मारी और लंकिनी रक्त का वमन करती हुई, लुढ़कती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर वह लंकिनी सम्भालकर उठी और हाथ जोड़कर भयभीत हुई हनुमान जी से प्रार्थना करने लगी। जब रावण को ब्रह्मा जी ने वरदान दिया था, तब चलते–चलते ब्रह्मा जी ने मुझे एक पहचान बताई थी कि हे लंकिनी! जब वानर की मुष्ठिकाप्रहार से विकल हो जाना उसी समय जान लेना कि अब राक्षसों का संहार निकट है। आज मैं तुम्हारे प्रहार से विकल हुई अर्थात् अब तो निकट भविष्य में श्रीराम के विरोधी राक्षसों का संहार हो जायेगा। हे तात! मेरा तो आज बहुत अधिक पुण्य उदय हुआ है। मैंने अपने नेत्रों से श्रीराम के दूत आप श्रीहनुमान जी को देख लिया।

दो०– तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग।।४।।

भा०– हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सुख को तराजू के एक पलड़े पर रखा जाये और दूसरे पलड़े पर एक क्षण के सत्संग का सुख रखा जाये तो जो एक क्षण के सत्संग का सुख है उसे सभी स्वर्ग और अपवर्ग के सुख मिलकर भी नहीं तुलित कर पाते अर्थात् एक क्षण के सत्संग की तुलना में स्वर्ग और मोक्ष के सुख भी नहीं आ पाते। आज मैं स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही सुखों की अपेक्षा अधिक सुख का अनुभव कर रही हूँ। आप जैसे सन्त का एक क्षण का भी सत्संग मेरे लिए पर्याप्त है।

प्रबिशि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा।।

भा०– कोसलपुर अर्थात् श्रीअयोध्या के महाराज भगवान् श्रीराम को हृदय में धारण करके लंकानगर में प्रवेश कर जाइये। आप भगवान् श्रीराम का सम्पूर्ण कार्य कीजिये। (यह कहकर लंकिनी चुप हो गई और भुशुण्डि जी गरुड़ जी को सावधान करते हुए बोले–)

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल शितलाई।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवहिं जाही।।

भा०– हे गरुड़ देव! प्रभु श्री राम जी जिसको कृपा करके निहार लेते हैं उसके लिए विष, अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गौ के खुर के समान छोटा और छिछला हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाता है और सुमेरु पर्वत धूल के समान हो जाता है, जैसा कि हनुमान जी के लिए हुआ। उनके लिए सुरसा का विष अमृत बन गया, प्रबलशत्रु लंकिनी ने उनसे मित्रता की, समुद्र गाय के खुर से छोटा हो गया, लंका में लगी आग हनुमान जी के लिए शीतल हो गई और सुमेरु पर्वत के समान विशाल रावण का प्रभाव धूलि के समान हो गया।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मन्दिर मन्दिर प्रति करि शोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दशानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।
शयन किए देखा कपि तेही। मंदिर महँ न दीख बैदेही।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।

भा०– हनुमान जी ने फिर बहुत छोटा (वानर का) रूप धारण किया और भगवान् श्रीराम का स्मरण करके रावण के नगर में प्रवेश किया। प्रत्येक मन्दिर में श्रीसीता की खोज करके हनुमान जी ने जहाँ–तहाँ अनेक योद्धाओं को देखा। हनुमान जी रावण के भवन में गये वह अत्यन्त विचित्र था अर्थात् विकृतविलासी चित्रों से युक्त था। वह कहा नहीं जा सकता अर्थात् उस अश्लील दृश्य का वर्णन मेरे वश का नहीं है। हनुमान जी ने रावण को शयन

किये हुए देखा, पर रावण के भवन में विदेहनन्दिनी श्रीसीता नहीं दिखीं, फिर हनुमान जी ने एक सुन्दर भवन देखा वहाँ पर अलग से हरि अर्थात् रामाभिधान श्रीहरि भगवान् श्रीराम का मन्दिर बनाया गया था। *मंदिरं तिलकं प्रोक्तं*– कोश के अनुसार उस भवन में दीवार में खोद कर ऊर्ध्वपुण्ड्र का चिन्ह बनाया गया था। अथवा हनुमान जी ने प्रत्येक राक्षस भवन के पास बने हुए प्रत्येक मंदिर में सीता जी को ढूँढा, क्योंकि हनुमान जी के मन में यह निश्चय तो था ही कि सीता जी किसी भी परिस्थिति में रावण के अन्त:पुर में नहीं जा सकतीं और न ही रावण सीता जी को बलपूर्वक अपने भवन में ले जा सकता है, क्योंकि उसे नल कूबर का स्राप है। इसीलिए हनुमान जी ने राक्षसों के भवनों के पास बने हुए मंदिरों अर्थात् पूजा गृह में ही सीता जी को ढूँढा अन्त में रावण के भी भवन के पास बने हुए मन्दिर अर्थात पूजा गृह में भी जाकर हनुमान जी ने सीता जी को नही देखा। इसके विपरीत वहाँ पूजा के लिए आकर सोये हुए रावण को ही हनुमान जी ने देखा। अनन्तर विभीषण के भवन के पास श्री वैष्णव परम्परा का मंदिर देखकर हनुमान जी प्रसन्न हुए।

दो०- रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ।।५।।

भा०- श्रीराम के आयुध धनुष–बाण से उत्कीर्ण उस भवन की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ नये तुलसी वृक्षों के समूहों को देखकर वानरराज हनुमान जी, अथवा कपि अर्थात् वानरों के राय अर्थात् सम्पूर्ण धनस्वरूप श्रीहनुमान जी प्रसन्न हुए।

विशेष- संस्कृत में धन को "रै" और राय भी कहते हैं। पाणिनि ने "**रायौ हलि**" (पा०अ०७.२.५) से हलादि विभक्तियों में "रै" शब्द को आकारान्ता आदेश किया है और "***कं राम प्रेमामृतं पिवन्ति ये ते कपय: तेषां राय:* अर्थात् श्रीरामप्रेमामृत का पान करनेवाले वैष्णवजन के भी हनुमान जी सर्वस्व हैं।**"

लंका निशिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महँ तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषन जागा।।
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

भा०- श्रीहनुमान जी मन में विचार करने लगे कि, लंका तो भगवत् विरोधी राक्षस समूहों का निवासस्थान है, यहाँ सज्जन अर्थात् श्रीवैष्ण्वजन का निवास कहाँ हो सकता है? उसी समय विभीषण जी जग गये, उन्होंने राम–राम का उच्चारण करके भगवान् श्रीराम का स्मरण किया। हनुमान जी सज्जन अर्थात् श्रीवैष्ण्व को पहचानकर हृदय में प्रसन्न हुए।

विशेष- यहाँ दो बार प्रयुक्त हुए सज्जन शब्द वैष्णव का पर्यायवाची है उपनिषदों में भगवान् को सत् कहा गया है, उन्हीं सत् अर्थात् परमात्मा के जन यानी सेवक को सज्जन कहते हैं।

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए।।

भा०- हनुमान जी ने निश्चय किया कि मैं इस व्यक्ति से हठात् परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कभी कार्य की हानि नहीं होती। ये साधुपुरुष हैं इसलिए इनके मुख से जगने के पश्चात् सर्वप्रथम श्रीरामनाम का उच्चारण हुआ। हनुमान जी ने ब्राह्मण का रूप धारण करके वचन सुनाया अर्थात् "श्रीसीताराम" की धुनि सुनाई, यह सुनते ही विभीषण जी उठकर वहाँ चले आये।

करि प्रनाम पूँछी कुशलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।
की तुम हरि दासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम राम दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।।

भा०– ब्राह्मण वेशधारी हनुमान जी को प्रणाम करके विभीषण जी ने कुशल पूछी, हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिये, क्या आप भगवान् श्रीराम के दासों में से कोई एक हैं, क्योंकि मेरे हृदय में अत्यन्त प्रीति अर्थात् भगवान् के प्रति प्रेमभावना हो रही है। क्या आप दीनों पर अनुराग करनेवाले स्वयं भगवान् श्रीराम हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने के लिए सागर–पार करके लंका में आये हैं?

दो०– तब हनुमंत कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन ग्राम।।६।।

भा०– तब हनुमान जी ने विभीषण जी के सामने सम्पूर्ण श्रीरामकथा और अपना नाम भी कहा। इस प्रकार हनुमान जी से युगल अर्थात् श्रीरामकथा और श्रीरामकथावाचक हनुमान का नाम सुनते ही विभीषण जी के शरीर में रोमांच हो आया और प्रभु के गुणग्रामों का स्मरण करके विभीषण का मन श्रीरामगुण–महासागर में डूब गया।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।।
जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम मोहि दरस हठि दीन्हा।।

भा०– विभीषण जी बोले, हे पवनपुत्र हनुमान जी! सुनिये, लंका में मेरा रहना उसी प्रकार है, जैसे दाँतों के बीच बिचारी जीभ अपनी रक्षा करती हुई रह लेती है। हे तात! क्या मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ भगवान् श्रीराम मुझ पर कभी कृपा करेंगे, क्योंकि मेरा शरीर तमोगुणी है, मेरे पास कुछ भी साधन नहीं है और प्रभु श्रीराम के श्रीचरणकमलों में प्रेम भी नहीं है। हे हनुमान जी! अब मुझे भरोसा हो गया है कि, प्रभु मुझ पर कृपा कर रहे हैं, क्योंकि श्रीहरि की कृपा के बिना सन्त नहीं मिलते, यदि रघुकुल के वीर श्रीराम ने मुझ पर अनुग्रह किया तभी तो आपने हठपूर्वक मुझे दर्शन दिया।

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।

दो०– अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर।।७।।

भा०– हनुमान जी बोले, हे विभीषण जी! प्रभु श्रीराम जी की पद्धति सुनिये, वे अपने सेवक पर निरन्तर प्रेम करते हैं। भला बताओ, मैं कौन से उच्चकुल में उत्पन्न हुआ व्यक्ति हूँ, मैं चंचल वानरयोनि में उत्पन्न हुआ और सभी विधियों से हीन हूँ। यहाँ तक की जो भी प्रातःकाल हम वानरों का नाम ले ले उस दिन उसको भोजन नहीं मिलता। हे मित्र! सुनिये, मैं ऐसे अधम वानर जाति में उत्पन्न हुआ मुझ पर भी रघुवीर श्रीराम ने कृपा कर दी। प्रभु के गुणों का स्मरण करके हनुमान जी के नेत्रों में जल भर आया, अथवा, हनुमान जी के नेत्र जल से भर गये।

विशेष– यहाँ हनुमान जी ने अपने दैन्य का परिचय देते हुए विभीषण जी से यह कहा कि जो प्रातःकाल हमारा नाम ले लें उस दिन उसे भोजन नहीं मिलता। प्रभु की कृपा के पहले वानर जाति के पक्ष में भले ही यह वाक्य कुछ अंशों में यथार्थ रहा हो परन्तु प्रभु की कृपा के पश्चात् इसका अर्थ दैन्य के साथ–साथ कुछ और भी समझना

चाहिए। सरस्वती जी ने हनुमान जी से यह कहलवाया कि श्रीरामकृपा के अनन्तर प्रात:काल जो हमारा नाम ले लेता है उस दिन उसे अहार अर्थात् मन को संसार की ओर ले जानेवाले इन्द्रिय के विषय नहीं मिलते अर्थात् उसका वह सम्पूर्ण दिन श्रीराममय रहता है। अथवा संस्कृत में भगवान् शिव जी को हर कहते हैं, हर अर्थात् शिव जी के प्रिय श्रीरामनाम को हार कहते हैं और उस हार याने श्रीरामनाम से विरूद्ध काम को अहार कहते हैं। अत: जो प्रात:काल हमारा नाम ले लेता है "**तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा**" अर्थात् उस दिन उसको अहार याने हार श्रीराम से विरूद्ध काम नहीं मिलता। प्रात:काल हनुमान जी के स्मरणमात्र से साधक का वह सम्पूर्ण दिन श्रीराममय ही रहता है "*हरः शिवः तस्येदं हारम् रामनाम हार विरुद्धः अहारः कामः।*"

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहि दुखारी।।
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।।

भा०- जानते हुए भी ऐसे स्वामी प्रभु श्रीराम को भूलकर जो लोग इधर-उधर भटकते हैं, वे क्यों नहीं दु:खी होंगे? इस प्रकार श्रीराम के गुणग्राम कहते हुए हनुमान जी ने अनिर्वचनीय विश्राम प्राप्त कर लिया अर्थात् हनुमान जी की प्रतिज्ञा के अनुसार विभीषण जी के मिलने से श्रीराम-कार्य का निश्चय हो गया और उन्हें विश्राम मिल गया।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।

भा०- फिर विभीषण जी ने हनुमान जी को वह सब कथा सुनाई, जिस प्रकार जनकनन्दिनी श्रीसीता लंका की अशोक वाटिका में रह रही थीं। तब हनुमान जी ने कहा, हे भैया! सुनिये, मैं माता जानकी जी के दर्शन करना चाहता हूँ। विभीषण जी ने हनुमान जी को सम्पूर्ण युक्ति सुनायी और हनुमान जी विभीषण जी से विदा ले कर, अर्थात् अनुमति लेकर अशोक वाटिका के लिए चल पड़े।

धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन अशोक सीता रह जहवाँ।।
देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति गई निशि जामा।।
कृश तनु शीष जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।।

दो०- निज पद नयन दिए मन, राम चरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन।।८।।

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई।।

भा०- फिर श्रीहनुमान जी वही अर्थात् विभीषण जी का रूप धारण करके वहाँ गये जहाँ अशोक वाटिका में भगवती सीता जी रह रही थीं। उन्हें देखकर हनुमान जी ने मन में ही प्रणाम कर लिया, और हनुमान जी के बैठे-बैठे एक प्रहर रात बीत गई। सीता जी का शरीर दुर्बल हो गया था। सिर पर जटा का एक जूड़ा था, हृदय में रघुकुल के नाथ भगवान् श्रीराम के गुणों की श्रेणियों, अर्थात् गुण विभागों का जप कर रही थीं। (भगवान् श्रीराम जी के गुणों के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्य नामक तीन विभाग हैं, उन्हीं का श्रीसीता विभागशः स्मरण कर रही थीं)। श्रीसीता जी ने नेत्रों को अपने चरणों में लगा रखा था और उनका मन भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में लीन था। इस प्रकार जानकी जी को दीन अवस्था में देखकर पवनपुत्र हनुमान जी अत्यन्त दु:खी हुए। हनुमान जी अशोक-वृक्ष के पल्लव में छिपे रहे और विचार करने लगे कि, हे भाई! अब मैं क्या करूँ?

तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किए बनावा।।
बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दान भय भेद देखावा।।
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।

भा०– उसी अवसर पर बहुत–सी शृंगार की हुई नारियों को साथ लेकर रावण वहाँ आया। उस खल ने श्रीसीता को बहुत प्रकार से समझाया। उसने साम, दान, भय और भेद का भी प्रदर्शन किया। रावण ने कहा, हे सुमुखी! हे चतुर सीते! सुनिये, मेरा प्रण है, तुम एक बार मेरी ओर देख लो तो मैं मंदोदरी आदि सभी रानियों को तुम्हारी सेविका बना दूँगा।

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।
सुनु दशमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझिय कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
शठ सूने हरि आनेसि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

भा०– परमप्रेमास्पद अयोध्यापति श्रीराम का तथा अयोध्या के पूर्व राजा श्रीदशरथ के परमप्रेमास्पद भगवान् श्रीराम का स्मरण करके श्रीसीता जी तिनके का ओट करके अर्थात् अपने और रावण के बीच व्यवधान रूप में तिनके को रखकर कहने लगीं, हे रावण! सुन, कहीं जुगनू के प्रकाश से कमलिनि विकास कर सकती है, जनकनन्दिनी श्रीसीता कहती हैं, तुम्हें भी इसी प्रकार मन में समझना चाहिये। हे खल! क्या तुझे रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के बाण का समाचार नहीं मिला। अथवा, रघुपति के बाणस्वरूप हनुमान जी के आगमन का समाचार नहीं मिला। अरे शठ! तू मुझे सूने में अर्थात् श्रीराम, लक्ष्मण से रहित कुटिया में से चुरा लाया, अरे अधम, निर्लज्ज तुझे तो लज्जा ही नहीं है।

विशेष– व्यवधान के रूप में तृण को रखा, क्योंकि तृण भूमि से उत्पन्न होने के कारण श्रीसीता का भाई है। अथवा, रावण जो लंका श्रीसीता को उपहार के रूप में देना चाहता है वह तृण के समान है और वह शीघ्र ही तृण के समान जलकर राख हो जायेगा। अथवा, जिन श्रीराम के लिए श्रीदशरथ ने तृण के समान अपना शरीर छोड़ दिया, श्रीभरत ने तृण के समान भूषण, वस्त्र और भोग छोड़े, लक्ष्मण जी ने तृण के समान देह, गेह का सम्बन्ध छोड़ा, सन्तजन तृण के समान स्वर्ग–अपवर्ग छोड़ देते हैं और भक्तजन तृण के समान विषय विलास छोड़ देते हैं, उन प्रभु के प्रेम के समक्ष रावण की लंका तृण से भी तुच्छ है। अथवा, श्रीसीता अपनी क्रोधाग्नि में रावण को भस्म कर सकती हैं, परन्तु उन्होंने तृण को व्यवधान के रूप में रखा, क्योंकि श्रीराम दूर्वादल के समान श्यामल हैं, यथा– ***"रामं दूर्वादल श्यामं"।*** इसके और भी भाव श्रीराघवकृपाभाष्य में उपलब्ध कराये जायेंगे।

दो०– आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान।।९।।

भा०– अपने को जुगनू के समान और भगवान् श्रीराम जी को सूर्यनारायण के समान सुनकर तथा श्रीसीता के मुख से अत्यन्त कठोर वचन सुनकर अत्यन्त खीझा हुआ रावण तलवार निकालकर बोला–

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।

भा०- हे सीते! तूने मेरा अपमान किया है। मैं अपने कठिन तलवार से तेरा सिर काट दूँगा। हे सुन्दर मुखवाली सीता! नहीं तो शीघ्र ही मेरी वाणी मान ले अन्यथा तेरे जीवन की हानि हो रही है।

श्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दशकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु शठ अस प्रमान पन मोरा।।

भा०- श्रीसीता जी बोलीं, हे दसकंधोवाले दुष्ट रावण! सुन, तेरी तलवार से मेरा सिर कट ही नहीं सकता। जो भगवान् श्रीराम की भुजा नीले कमल की माला के समान सुन्दर है और हाथी के सूँढ़ के समान सुदृढ़ और विशाल है, वही भुजा मेरे कण्ठ में पड़ेगी, तेरी घोर तलवार मेरे कण्ठ को कैसे स्पर्श कर सकती है, मेरी ऐसी प्रमाणिक प्रतिज्ञा है।

विशेष- यहाँ अब तक के टीकाकारों ने जो अर्थ लिखा है कि ''या तो प्रभु की भुजा मेरे गले में पड़ेगी या तो तेरी तलवार'' यह अर्थ, अनर्थ है और टीकाकारों का भ्रम भी, क्योंकि यदि श्रीसीता को रावण की तलवार से अपने गले को कटवाना इष्ट होता तो फिर ग्यारहवें दोहे में रावण के हाथ सम्भावित मृत्यु पर वे चिन्ता क्यों करती, यथा– ***''मास दिवस बीते मोही, मारिहि निशिचर पोच''*** और क्यों आगे चलकर श्रीसीता जी श्रीहनुमान जी को यह कहतीं कि, यदि प्रभु एक महीने में नहीं आयेंगे तो फिर मुझे जीवित नहीं पायेंगे। अतः यहाँ ''कि'' शब्द का अर्थ विकल्प नहीं प्रत्युत् प्रश्नार्थक हैं। श्रीसीता कहती हैं कि मेरे कण्ठ में प्रभु की सुन्दर भुजा ही पड़ेगी तेरे तलवार की क्या शक्ति?

चंद्रहास हरु मम परितापा। रघुपति बिरह अनल संतापा।।
शीतल निशि तव असि वर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।

भा०- श्रीसीता ने रावण के तलवार से कहा, हे रावण के चन्द्रहास नामक कृपाण! तू मेरे परिताप अर्थात् पछतावे को और रघुकुल के स्वामी श्रीराघव के विरह अग्नि से उत्पन्न संताप को हर ले और मेरा गला काटने के बदले रावण का ही गला काट दे। हे चन्द्रहास तलवार! तेरी श्रेष्ठधार शीतल चन्द्रमा के समान है, तू मेरे दुःख के बोझ को समाप्त कर दे और रावण के ही कण्ठ पर लगकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाल।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निशिचरिन बोलाई। सीतहिं बहु बिधि त्रासहु जाई।।
मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना।।

भा०- श्रीसीता के यह वचन सुनते ही, फिर रावण उन्हें मारने दौड़ा। मयपुत्री मंदोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। रावण ने समझाकर सभी राक्षसियों से कहा कि, तुम लोग जाकर सीता को बहुत प्रकार से धमकाओ और डराओ, कह दो यदि एक महीने के अन्दर मेरा कहा नहीं मानेगी तब मैं तलवार निकालकर उसको मार डालूँगा।

दो०- भवन गयउ दशकंधर, इहाँ निशाचरि बृंद।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद।।१०।।

भा०- यह कहकर रावण अपने भवन को चला गया। यहाँ झुण्ड-झुण्ड में विभक्त राक्षसियाँ, श्रीसीता को डर दिखाती हैं और बहुत प्रकार से निकृष्ट रूप धारण करती हैं।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबहिं बोलाइ सुनाएसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना।।

भा०- त्रिजटा नाम की एक राक्षसी जो तत्काल सोकर उठी थी, वह भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में भक्तिमति और विवेक अर्थात् ज्ञान में बहुत कुशल थी। उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा, श्रीसीता की सेवा करके सब लोग अपना हित कर लो।

सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीशा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिन दिशि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।
यह सपना मैं कहौं बिचारी। होइहि सत्य गए दिन चारी।।

भा०- त्रिजटा ने कहा कि अभी देखे गये मेरे सपने में वानर ने लंका जला दिया उसने राक्षसों की सारी सेना मार डाली। दस सिरोंवाला रावण वस्त्रहीन होकर तथा मुंडन करा, अपनी बीस भुजाओं से खण्डित होकर, इस प्रकार गधे पर चढ़ा हुआ दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है, मानो विभीषण ने लंका को प्राप्त कर लिया, नगर में श्रीराम की दुहाई फिर गई तब प्रभु ने अशोक वाटिका में बन्दी श्रीसीता को अपने पास बुलवा लिया। मैं इस सपने को विचार कर कह रही हूँ कि यह चार दिन बीतते–बीतते अथवा, आज ही दिन चारि अर्थात् दिन में चरण करने वाले भगवान् सूर्य के अस्त होते–होते सत्य हो जायेगा।

विशेष- वस्तुतः यहाँ भगवान् श्रीराम ने हनुमान जी के एक–एक धर्मसंकट का समाधान करने के लिए त्रिजटा के स्वप्नदर्शन का कौतुक रचाया। जाम्बवान् जी ने हनुमान जी को श्रीसीता के दर्शन करके चले आने की ही बात कही थी। इतने से प्रभु का कार्य बननेवाला नहीं था, इसलिए त्रिजटा के स्वप्नदर्शन के माध्यम से श्रीराघवेन्द्र सरकार ने हनुमान जी को उनके कर्त्तव्यों का संकेत करा दिया कि वे लंका जलाकर, राक्षस सेना का वध करके आज सूर्यास्त होते–होते प्रभु के पास पहुँच सकें।

तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरननि परीं।।

दो०- जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निशिचर पोच।।११।।

भा०- त्रिजटा का वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गईं और जनकनन्दिनी श्रीसीता के श्रीचरणों में पड़नें लगीं। तब सब जहाँ–तहाँ चली गई, एकान्त में श्रीसीता मन में चिन्ता करने लगीं "एक महीने के दिन बीतने पर नीच रावण मुझे मार डालेगा।"

विशेष- यह भगवती श्रीसीता जी के प्रतिबिम्ब में आविष्ट हुई वेदवती के वाक्य हैं, रावण ने पहले उन्हीं के केश पकड़े थे।

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई।।
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहु लगाई।।
सत्य करहु मम प्रीति सयानी। सुने को स्रवन शूल सम बानी।।

भा०- श्रीसीता जी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं, हे माँ! इस विपत्ति में तुम ही मेरी संगिनी हो। मैं यह शरीर छोड़ूँ, शीघ्र वही उपाय करो। प्रभु का असहनीय विरह अब नहीं सहा जा रहा है। काष्ठ ले आइये उसी की चिता बना दीजिये, हे माँ! फिर उसमें अग्नि लगा दीजिये उसमें प्रविष्ट होकर मैं जल जाऊँ। हे चतुर त्रिजटे! मेरी प्रीति

को सत्य कर दीजिये अर्थात् प्रभु के वियोग में जी रही मेरी प्रीति झूठी हो रही है, आप उसे सत्य कर दीजिये, रावण की त्रिशूल के समान कठोर वाणी कानों से कौन सुने?

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि।।
निशि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।

भा०– श्रीसीता का वचन सुनकर चिता की व्यवस्था करने के लिए उठकर खड़ी हुई त्रिजटा ने जानकी जी के श्रीचरणों को पकड़कर समझाया कि, हे राजकुमारी! आप को न तो चिता में प्रविष्ट होने का अधिकार है और न ही मुझे चिता में अग्नि लगाने का, क्योंकि प्राणपति की उपस्थिति में कोई महिला जीवित अवस्था में चिता में कैसे प्रवेश कर सकती है और माँ जीवित बेटी को कैसे अग्निदान दे सकती है? त्रिजटा ने प्रभु श्रीराम के प्रताप, बल और सुयश सुनाये और कहा, हे सुकुमारी! सुनिये, रात्रि में कहीं आग नहीं मिलेगी अथवा आप रात्रि में अग्नि में प्रवेश मत कीजिये। सुनिये, आप सुकुमारी हैं, कठोर बनिये, कुछ घण्टों का विलम्ब है, यह लंका अग्निसात् हो जायेगी। ऐसा कहकर वह त्रिजटा अपने भवन को चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलइ न पावक मिटइ न शूला।।
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावकमय शशि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हत भागी।।
सुनहु बिनय मम बिटप अशोका। सत्य नाम करु हरु मम शोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहु अगिनि तनु करउँ निदाना।।

भा०– श्रीसीता ने कहा, ब्रह्मा जी मेरे प्रतिकूल हो गये हैं, अग्नि नहीं मिल रही है और मेरा कष्ट नहीं मिट रहा है। आकाश में प्रत्यक्ष रूप से बहुत से अंगारे दिख रहे हैं, परन्तु एक भी तारा पृथ्वी पर नहीं आ रहा है, मानो मुझे हत्भागिनी जानकर अग्निमय चन्द्रमा भी अग्नि की वर्षा नहीं कर रहा है। हे अशोक! तू मेरी प्रार्थना सुन ले, अपना नाम सत्य कर और मेरा शोक हर ले। तेरे नवीन पल्लव अग्नि के समान हैं, तू मुझे अग्नि दे दे, मैं शरीर को उसके कारण में मिला दूँ।

विशेष– यहाँ श्रीसीता ने क्रम से त्रिजटा, ब्रह्मा जी, तारागण, चन्द्रमा और अशोक से अग्नि माँगा, मानो वे इन पाँच अग्नियों से अपने पाँच भूतों को उनके कारण में मिलाना चाहती थीं अथवा, अग्नि में जलकर मानो अग्नि में रहनेवाली श्रीसीता को वियोगलीला का दायित्व सौंपना चाहती थीं। अशोक ने कहा, मैं आपका भाई हूँ, मुझे अग्नि देने का अधिकार नहीं है, मैं तो आपको अनुराग देने का अधिकारी हूँ। सौभाग्यवती महिला को पति अथवा पुत्र ही अग्नि दे सकते हैं। आगे पुत्र की भूमिका में हनुमान जी मुद्रिका के माध्यम से श्रीसीता को श्रीरामनामरूप अग्नि सौंपेंगे जो श्रीसीता के नहीं प्रत्युत् उनके दुःख–वन को भस्म कर देगा।

देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहिं कलप सम बीता।।

सो०– कपि करि हृदय बिचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।१२।।

भा०– श्रीसीता को प्रभु के विरह में व्याकुल देखकर वह क्षण श्रीराम–प्रेमरसपानकर्त्ता हनुमान जी महाराज के लिए एक कल्प के समान व्यतीत हुआ। तब हनुमान जी ने हृदय में विचारकर अपने मुख में ली हुई मुद्रिका उगल दी। मानो अशोक वृक्ष ने अग्नि दे दिया, ऐसा समझकर श्रीसीता ने प्रसन्नतापूर्वक उठकर गिरी हुई मुद्रिका को हाथ में ले लिया।

विशेष- *"दीन्ह मुद्रिका डारि तब"* वाक्यखण्ड में प्रयुक्त "डारि" शब्द का अर्थ होता है, उगलना यह विशेषकर, चित्रकूट जनपद में बोला जाता है और यहाँ अर्थसंगत भी है।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुद्रिक पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया ते असि रची न जाई।।
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।

भा०- तब श्रीसीता ने मन को हरनेवाले अत्यन्त सुन्दर श्रीरामनाम अंकित अतिशय सुन्दर मुद्रिका देखी। चकित होकर देखते हुए श्रीसीता प्रभु की मुद्रिका पहचान गईं। हृदय में उत्पन्न हुए हर्ष और शोक से श्रीसीता व्याकुल हो उठीं, प्रभु के पास से यह आई इस बात से हर्ष हुआ, परन्तु यह आई कैसे? इसने प्रभु के श्रीकरकमल को छोड़ा क्यों? इसका विषाद भी हुआ, क्योंकि प्रभु से दूर होकर कोई सुखी नहीं रह सकता। अतः मुद्रिका की सम्भावित दुःख की कल्पना करके सीता जी को दुःख हुआ। अजेय रघुकुल के राजा श्रीराम को युद्ध में कौन जीत सकता है? यदि कहें कि किसी राक्षस ने माया से मुद्रिका बना दी तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि इस प्रकार की श्रीरामनाम अंकित चिन्मयी अतिशय सुन्दर मुद्रिका राक्षसी माया से बनाई ही नहीं जा सकती। इस प्रकार श्रीसीता नाना विचार कर रही थीं, उसी बीच हनुमान जी मधुर वचन बोल पड़े।

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
लागीं सुनैं स्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई।।
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।।

भा०- हनुमान जी श्रीराम के गुणों का वर्णन करने लगे। सुनते ही श्रीसीता का दुःख भाग गया। श्रीसीता श्रवण में मन लगाकर अथवा श्रवणेन्द्री और मन लगाकर प्रभु की कथा सुनने लगीं। हनुमान जी ने प्रारम्भ से अब तक की सम्पूर्ण कथा सुना दी। सीता जी ने कहा, हे भाई! जिसने श्रवणों को अमृत के समान लगने वाली सुहावनी प्रभुकथा सुनायी वह प्रकट क्यों नहीं हो रहा है?

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ।।
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुनानिधान की।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी।।
नर बानरहिं संग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे।।

भा०- तब हनुमान जी वृक्ष से उतरकर विनीत वानर वेश में श्रीसीता के निकट चले गये। उन्हें देखकर श्रीसीता के मन में विस्मय हुआ, वे पीछे मुड़कर बैठ गईं। हनुमान जी ने कहा, हे जनकनन्दिनी सीता माता जी! मैं करुणानिधान श्रीराम जी की शपथ करके सत्य कह रहा हूँ कि मैं भगवान् श्रीराम का दूत हूँ। हे माताश्री! यह मुद्रिका आपके पास मैं लाया हूँ, भगवान् श्रीराम ने इसे आपको अभिज्ञान अर्थात् पहचान के रूप में दिया है, क्योंकि वे दानी हैं। श्रीसीता ने पूछा, बताओ नर और वानर में कैसे मित्रता हुई? जिस प्रकार मित्रता हुई थी, हनुमान जी ने श्रीसीता को वह कथा सुना दी।

दो०- कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिश्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास।।१३।।

भा०- हनुमान जी के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर माया की श्रीसीता के मन में विश्वास हो गया और वे जान गईं कि यह मन, कर्म और वचन से कृपा के सागर भगवान् श्रीराम का दास है।

विशेष : श्रीसीता का मुद्रिका को देखकर विकल हो जाना पुनः हनुमान जी को उपस्थित देखकर उनसे पीछे मुड़कर बैठना तथा हनुमान जी को शपथ के लिए विवश करना, नर-वानर की संगति के लिए कथा पूछना पश्चात् उन पर विश्वास करना यह सब कुछ सीता जी के प्रतिबिम्ब में आविष्ट वेदवती का ही कृत्य समझना चाहिए।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी।।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहँ जलयाना।।

भा०- हनुमान जी को भगवान् का भक्त जानकर श्रीसीता के मन में उनके प्रति बहुत प्रेम बढ़ गया। श्रीसीता जी के नेत्र सजल हो गये और पुलकित रोमावलि खड़ी हो गई, अथवा, पुलकित होकर श्रीसीता भी खड़ी हो गईं। उन्होने कहा, हे तात! हे हनुमान! प्रभु श्रीराम के विरहसागर में डूबती हुई मुझ सीता के लिए तुम जल के जहाज बन गये।

अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी।।
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।

भा०- मैं बलिहारी जाती हूँ, अब तुम छोटे भैया लक्ष्मण के सहित सुख के निवासस्थान, खर के शत्रु श्रीरघुनाथ का कुशल कहो। हे प्रभु प्रेमामृत पीनेवाले हनुमान! कोमल चित्तवाले परमकृपालु श्रीरघुनाथ ने मेरे सम्बन्ध में किस कारण निष्ठुरता धारण कर ली है?

सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।
कबहुँ नयन मम शीतल ताता। होइहिं निरखि श्याम मृदु गाता।।

भा०- सेवक को सुख देना जिनका सहज स्वभाव है अथवा, सरल स्वभाववाले, सेवकों को सुख देने वाले रघुकुल के नायक प्रभु कभी मेरा स्मरण करते हैं? हे तात! क्या कभी प्रभु के श्यामल और कोमल अंगों को निहारकर मेरे नेत्र शीतल होंगें?

बचन न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ मोहिं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।

भा०- श्रीसीता के मुख से वचन नहीं आ रहे हैं, उनके नेत्र में आँसू भरे हैं, वे बोलीं, अहह! खेद और आश्चर्य है कि मेरे नाथ श्रीरघुनाथ ने मुझे पूर्णरूप से भुला दिया। श्रीसीता को विरह में परमव्याकुल देखकर हनुमान जी कोमल और विनम्र वचन बोले-

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता।।
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम ते प्रेम राम के दूना।।

भा०- हे माता जी! छोटे भैया लक्ष्मण जी के साथ प्रभु श्रीराम कुशल से हैं। कल्याणकारिणी कृपा के भवन श्रीराघव आपके दुःख से दुखित रहते हैं। हे माँ! आप अपने मन को छोटा मत मानिये अर्थात् मन छोटा मत करिये आपसे आपके प्रति श्रीराम का प्रेम दूना है, अर्थात् आपका प्रभु के प्रति जितना प्रेम है, उससे दूना प्रेम है प्रभु का आपके प्रति।

दो०- रघुपति कर संदेश अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर।।१४।।

भा०– हे माताश्री! अब धैर्य धारण करके श्रीरघुपति का सन्देश सुनिये, ऐसा कहकर हनुमान जी गदगद हो गये अर्थात् उनका स्वरभंग हो गया और उनके विमलनेत्र अश्रुजल से पूर्ण हो गये।

राम कहेउ बियोग तव सीता। मो कहँ सकल भए बिपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृशानू। काल निशा सम निशि शशि भानू।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग श्वास सम त्रिबिध समीरा।।

भा०– अब हनुमान जी के मुख से स्वयं भगवान् श्रीराम बोल पड़े, हे सीते! आपके वियोग में मेरे लिए सारे पदार्थ विपरीत हो गये हैं। नये–नये वृक्षों के पल्लव मानो अग्नि हैं, रात्रि कालरात्रि के समान हो गई है, चन्द्रमा सूर्य हो गये हैं। कमल का वन बर्छी के वन के समान हो गये हैं, बादल मानो खौलती हुई तेल की वर्षा कर रहे हैं। अब तक प्रकृति के जो पदार्थ मेरे लिए हितैषी थे, अनुकूल थे, वे ही अब पीड़ा कर रहे हैं अर्थात् मुझे दुःख दे रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकार का वायु मेरे लिए सर्प का श्वास हो गया है।

कहेहूँ ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।।
प्रभु संदेश सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।

भा०– कहने से भी दुःख कुछ हल्का होता है, पर किससे कहूँ यह कोई भी नहीं जानता? हे प्रिये! मेरे और तुम्हारे प्रेमतत्त्व को एकमात्र मेरा मन ही जानता है और वह मन सदैव तुम्हारे पास रहता है। इतने में ही प्रेम का सार जान लो। प्रभु का संदेश सुनते ही वैदेही श्रीजानकी प्रेम में मग्न हो गईं, उन्हें शरीर की सुधि नहीं रही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरि राम सेवक सुखदाता।।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु बिकलाई।।

भा०– श्रीहनुमान ने कहा, माता जी! धैर्य धारण कीजिये और सेवकों को सुख देनेवाले प्रभु श्रीराम का स्मरण कीजिये। हृदय में श्रीराम की प्रभुता को धारण कीजिये और मेरे वचन सुनकर व्याकुलता छोड़ दीजिये।

दो०– निशिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृशानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निशाचर जानु।।१५।।

भा०– राक्षससमूह पतंगे के समान हैं और भगवान् श्रीराम के बाण अग्नि हैं। हे माता जी! धैर्य धारण कीजिये और राक्षसों को जला हुआ जानिये।

जौ रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंब रघुराई।।
राम बान रबि उए जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की।।

भा०– यदि श्रीरघुवीर आपका समाचार पा गये होते तब रघुवंश के राजा श्रीराम आने में विलम्ब नहीं करते। हे श्रीजनकनन्दिनी जी! राक्षसों के सेनारूप अन्धकार के लिए अब श्रीराम के बाणरूप सूर्य उदित हो गये हैं।

अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित अइहैं रघुबीरा।।
निशिचर मारि तुमहिं लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहैं।।

भा०– हे माताश्री! मैं श्रीराम की दुहाई करके कहता हूँ कि मुझे प्रभु की आज्ञा नहीं है, नहीं तो मैं आपको अभी लिवा जाऊँ। हे माताश्री! कुछ दिनों तक और धैर्य धारण कीजिये, वानरों के सहित रघुवीर श्रीराम आक्रमण करने

लंका आयेंगे, राक्षसों को मारकर आपको ले जायेंगे और तीनों लोकों में नारद आदि भगवान् के पार्षद श्रीराम–रावण संग्राम का यश गायेंगे।

हैं सुत कपि सब तुमहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।
मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा।।
कनक भूधराकार शरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।

भा०– श्रीसीता सन्देह के स्वर में बोलीं, हे पुत्र! सभी वानर तो आपके ही समान हैं अर्थात् जैसे आपका शरीर आठ अंगुल का है इतने ही बड़े सभी बन्दर हैं और राक्षस तो अत्यन्त बड़े और बलवान हैं। मेरे हृदय में परमसन्देह है कि, ऐसे निर्बल वानरों की सहायता से प्रभु श्रीराघव सरकार राक्षसी सेना को कैसे जीत सकेंगे? श्रीसीता के संदिग्ध वाक्य सुनकर हनुमान जी ने अपना शरीर प्रकट कर दिया। हनुमान जी का शरीर स्वर्ण के पर्वत के आकार वाला हो गया। हनुमान जी युद्ध में भयंकर अतिशय बल से सम्पन्न वीर योद्धा के रूप में प्रकट हुए, तब श्रीसीता के मन में भरोसा हो गया, फिर पवनपुत्र हनुमान जी ने अपना छोटा रूप ले लिया अर्थात् स्वीकार कर लिया। हनुमान जी स्पष्ट करते हुए बोले–

दो०– सुनु माता शाखामृगहिं, नहिं बल बुद्धि बिशाल।
प्रभु प्रताप ते गरुडहिं, खाइ परम लघु ब्याल।।१६।।

भा०– हे माता जी! शाखामृग अर्थात् एक डाल से दूसरे डाल पर कूदनेवाले वानरों में बल और विशाल बुद्धि नहीं होती। आप मुझमें जो बल और बुद्धि की विशालता देख रही हैं, वह मेरा व्यक्तिगत नहीं है। मुझे सब कुछ प्रभु के प्रताप से प्राप्त हुआ है, क्योंकि प्रभु श्रीराम जी के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है।

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आशिष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल शील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू।।
करिहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

भा०– प्रभु के प्रताप तथा तेज और बल से सनी हुई हनुमान जी की वाणी सुनकर श्रीसीता के मन में बहुत संतोष हुआ और श्रीजानकी ने हनुमान जी को श्रीराम का प्रिय जाना अर्थात् श्रीसीता जान गईं कि हनुमान जी भगवान् श्रीराम के प्रिय हैं और उनको भगवान् श्रीराम प्रिय हैं। उन्होंने अग्नि में रहनेवाली कृपाशक्ति श्रीजनकनन्दिनी के आवेश से हनुमान जी को सात आशीर्वाद दिए। हे तात! तुम बल और शील के निधान हो जाओ, हे बेटे! तुम अजर हो जाओ अर्थात् तुम्हे बुढ़ापा कभी नहीं सताये, तुम अमर हो जाओ, जब तक चाहो तब तक जीवित रहो, तुम सभी गुणसमूहों के सागर बन जाओ, रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम तुम पर छोह अर्थात् बहुत ममत्वपूर्ण प्रेम करें और प्रभु तुम पर सदैव कृपा करें। इस प्रकार श्रीसीता के सात आशीर्वाद अपने कानों से सुनकर हनुमान जी निर्भर प्रेम में मग्न हो गये।

बार बार नाएसि पद शीशा। बोला बचन जोरि कर कीशा।।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आशिष तव अमोघ बिख्याता।।
सुनहु मातु मोहि अतिशय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा।।

भा०– हनुमान जी ने श्रीसीता के श्रीचरणों में बार–बार सिर नवाया और फिर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी हाथ जोड़कर बोले, हे माता! अब मैं कृतकृत्य हो गया अर्थात् मेरे लिए जो करणीय था वह कर लिया गया। आपका आशीर्वाद

अमोघ रूप में प्रसिद्ध है अर्थात् ये मोघ (झूठा) नहीं होगा। मैं अब बलवान, शीलवान, अजर, अमर, गुणनिधि, प्रभु का वात्सल्यभाजन और उन्हीं श्रीरघुनाथ का कृपाभाजन हो गया, परन्तु हे माताश्री! सुनिये, इस अशोक वन के वृक्षों में सुन्दर फल देखकर मुझे अतिशय भूख लग गई है। अतः आप मुझे फल खाने की आज्ञा दीजिये।

सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।।
तिन कर भय माता मोहि नाहीं। जौ तुम सुख मानहु मन माहीं।।

भा०- श्रीसीता बोलीं, हे पुत्र! सुनो, इस वन की श्रेष्ठ योद्धा और बहुत बड़े-बड़े राक्षस रक्षा करते हैं, इनके रहते फल कैसे खा सकोगे? तब हनुमान जी ने कहा, हे माताश्री! यदि आप अपने मन में सुख मान लें अर्थात् प्रसन्न हो जायें तो मुझे इनका डर नहीं है।

दो०- देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु।।१७।।

भा०- वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जनकनन्दिनी श्रीसीता ने कहा, जाओ और हे तात! रघुपति अर्थात् रघुकुल के स्वामी श्रीराम के श्रीचरणों को अपने हृदय में धारण करके इस अशोक वन के मीठे-मीठे फल खाओ।

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरै लागा।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे।।

भा०- श्रीसीता को मस्तक नवाकर हनुमान जी चले और अशोक वन के फलों के बगीचे में प्रवेश किया, फल खाये और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ रक्षा करनेवाले बहुत से वीर थे, उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने रावण के यहाँ जाकर पुकार लगाई।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं अशोक बाटिका उजारी।।
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे।।

भा०- हे नाथ! हे राक्षसपति रावण! अशोक वन में एक विशाल वानर आया हुआ है, उसने अशोक वाटिका को उजाड़ डाली। उसने सारे फल खा लिए और फलवाले वृक्षों को उखाड़ कर फेंक दिया तथा रक्षकों को मसल-मसलकर चूर्ण करके पृथ्वी पर फेंक दिया।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिनहिं देखि गर्जेउ हनुमाना।।
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे।।

भा०- रक्षकों के मुख से अशोकवाटिका का विनाश सुनकर रावण ने अनेक योद्धा भेजे, उन्हें देखकर हनुमान जी गरज उठे। हनुमान जी ने सभी राक्षसों का संहार कर दिया। कुछ अधमरे राक्षस पुकार लगाते हुए रावण के पास गये जब तक पाँच सेनापतियों और सात मंत्रीपुत्रों का हनुमान जी महाराज ने वध कर दिया।

पुनि पठयउ तेहि अक्षकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।

भा०- फिर रावण ने अपने सबसे छोटे पुत्र अक्षकुमार को युद्ध में भेजा। वह अपार अर्थात् युद्ध में जिसका कोई पार नहीं पा सके, ऐसे सुभटों को साथ लेकर चला। अक्षकुमार को आते देखकर हनुमान जी ने वृक्ष को लेकर उसे तर्जा अर्थात् डाँटा, वृक्ष से ही मारा और अक्षकुमार का वध करके हनुमान जी ने महाध्वनि में गर्जना की। हनुमान जी की महाध्वनि वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है-

ज्यत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः।।
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम।। (वा०रा० ५.४३-३३, ३४, ३५, ३६)

अर्थात् अतिशय बलवाले श्रीराम की जय हो! महाबली लक्ष्मण जी की जय हो! श्रीराघव द्वारा पालित राजा सुग्रीव जी की जय हो। मैं पवित्र कर्म करनेवाले अयोध्यापति श्रीराम जी का सेवक शत्रु सेनाओं को नष्ट करने वाला वायुपुत्र हनुमान हूँ। शिलाओं और सहस्रों वृक्षों से प्रहार करते हुए, मेरे सामने अनेक रावण युद्ध में प्रतिबल अर्थात् समान बलवाले प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकते। मैं सभी राक्षसों के देखते-देखते लंका को तहस-नहस करके जनकनन्दिनी श्रीसीता जी को प्रणाम करके, अपने प्रयोजनों को सिद्ध करके यहाँ से सकुशल लौट जाऊँगा, यही उनकी महाध्वनि है।

दो०- कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि।।१८।।

भा०- हनुमान जी ने कुछ को मारा, कुछ को मसल दिया, कुछ को पकड़ धूल में मिला दिया। युद्ध में बचे हुए राक्षस जाकर रावण के पास चिल्लाये, प्रभु! वह वानर तो अनन्त बलशाली है अर्थात् वह मर्कट मारता भी है और काटता भी है।

सुनि सुत बध लंकेश रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना।।
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिय कपिहिं कहाँ कर आही।।
चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु बधन सुनि उपजा क्रोधा।।
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।
अति बिशाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेश कुमारा।।
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्देसि निज अंगा।।

भा०- पुत्र अक्षकुमार का वध सुनकर लंकापति रावण क्रुद्ध हो गया और उसने बलवान मेघनाद को भेजा और कहा, हे पुत्र! वानर को मारना नहीं, उसे बाँधकर ले आना, देखा जाये वह वानर कहाँ का है अर्थात् उसे देवताओं ने भेजा है या दानवों ने। इन्द्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। हनुमान जी द्वारा अपने छोटे भाई का वध सुनकर मेघनाद के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। हनुमान जी ने देखा भयंकर वीर मेघनाद आ गया है। हनुमान जी दाँतों को कटकटाते हुए गरजे और दौड़े, एक अत्यन्त विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और उसके प्रहार से लंकापति रावण के बड़े पुत्र मेघनाद को विरथ कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ दिया, उसके साथ जो महाभट अर्थात् श्रेष्ठवीर राक्षस थे उनको पकड़-पकड़ अपने अंगों मे ही मसल डाला।

तिनहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।।
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई।।
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।

दो०- ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधेउ, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौ न ब्रह्मशर मानउँ, महिमा मिटइ अपार।।१९।।

भा०- मेघनाद के उन वीर सैनिकों को मारकर हनुमान जी मेघनाद से ही लड़ने लगे। दोनो ऐसे भिड़े मानो दो ऐरावत हाथी भिड़ गये हों। हनुमान जी मेघनाद को एक मुक्का मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। मेघनाद को एक क्षण के लिए मूर्च्छा आ गई। फिर उठकर मेघनाद ने बहुत-सी कुत्सित मायायें प्रकट की, किन्तु प्रभन्जन अर्थात् वायु के पुत्र हनुमान जी मेघनाद से नहीं जीते जा रहे थे अर्थात् जब माया के बल का प्रयोग करके मेघनाद हनुमान जी को नहीं जीत पाया तब मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का संधान किया। हनुमान जी ने मन में विचार किया यदि ब्रह्मास्त्र बाण को नहीं मानता हूँ तो ब्रह्मा जी की अपार महिमा मिट जायेगी, इसलिए इसे स्वीकार करके मुझे थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित हो जाना चाहिये।

ब्रह्मबान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटक संघारा।।
तेहिं देखा कपि मुरछित भयऊ। नागपाश बाँधेसि लै गयऊ।।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी।।
तासु दूत कि बंध तर आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।।

भा०- मेघनाद ने हनुमान जी को ब्रह्मबाण मारा, हनुमान जी ने भूमि पर गिरते समय भी मेघनाद की सेना का संहार कर डाला। उसने अर्थात् मेघनाद ने देखा की अब तो वानरश्रेष्ठ हनुमान जी मूर्च्छित हो गये हैं, फिर हनुमान जी को मेघनाद ने नागपाश में बाँधा और रावण की राजसभा में ले गया। शिव जी, पार्वती जी को सावधान करते हुए कहते हैं कि, हे पार्वती! सुनिये, जिन प्रभु श्रीराम का श्रीरामनाम जपकर ज्ञानी-जीव भवबन्धन को काट देते हैं, उन प्रभु श्रीराम का दूत क्या बन्धन के नीचे आ सकता है? हनुमान जी ने तो प्रभु के कार्य के लिए मेघनाद से स्वयं अपने को बँधवा लिया।

कपि बंधन सुनि निशिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए।।
दशमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरे सुर दिशिप बिनीता। भ्रुकुटि बिलोकत सकल सभीता।।
देखि प्रताप न कपि मन शंका। जिमि अहिगन महँ गरुड अशंका।।

भा०- हनुमान जी को बँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुक देखने अर्थात् खेल देखने के लिए सभी रावण की सभा में आ गये। हनुमान जी ने भी जाकर रावण की सभा देखी। रावण की अत्यन्त प्रभुता कही नहीं जाती है। वहाँ देवता हाथ जोड़े हुए खड़े थे, दसों दिग्पाल विनम्रभाव से उपस्थित थे। सभी भयभीत हुए रावण की भृकुटि देख रहे थे। रावण का यह प्रताप देखकर भी हनुमान जी के मन में शंका नहीं थी, जैसे साँपों के समूह के बीच गरुड़ जी निर्भीक रहते हैं।

दो०- कपिहिं बिलोकि दशानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदय बिषाद।।२०।।

भा०- हनुमान जी को देखकर उन्हें अभद्र बात कहकर रावण ने उनका बहुत परिहास किया फिर पुत्रवध का स्मरण किया तो उसके हृदय में बहुत कष्ट हुआ।

कह लंकेश कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेसि बन खीसा।।
की धौं स्रवन सुनेसि नहिं मोही। देखउँ अति अशंक शठ तोही।।
मारे निशिचर केहि अपराधा। कहु शठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।

भा०- लंकापति रावण ने कहा, अरे वानर! तू कौन है, किस के बल से तूने खीझकर वन को नष्ट कर डाला? क्या तुमने अपने कानों से मुझे नहीं सुना है? अरे दुष्ट! तुझको मैं निर्भीक देख रहा हूँ। तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? अरे दुष्ट! बोल, तुझे अपने प्राणों की वाधा अर्थात् डर नहीं है।

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।।
जाके बल बिरंचि हरि ईशा। सिरजत पालत हर दशशीशा।।
जा बल शीष धरत सहसानन। अंडकोष समेत गिरि कानन।।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम से शठन सिखावन दाता।।
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तोहि समेत नृप दल मद गंजा।।
खर दूषन त्रिशिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलशाली।।

दो०- जाके बल लवलेश ते, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जाहि करि, हरि आनेहु प्रिय नारि।।२१।।

भा०- हनुमान जी ने उत्तर दिया, हे रावण! सुन, जिसका बल पाकर विद्यामाया अनेक ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है, हे दस सिरोंवाले रावण! जिनके बल से ब्रह्मा जी जगत् की सर्जना करते हैं, विष्णु जी जगत् का पालन करते हैं और शिव जी जगत् का संहार कर देते हैं। जिनके बल से सहस्रमुख वाले शेषनारायण पर्वतों और वनों के सहित इस ब्रह्माण्डकोश को अपने एक सिर पर धारण कर लेते हैं। तुम जैसे दुष्ट को शिक्षा देने के लिए और देवताओं की रक्षा करने के लिए जो भगवान् अनेक शरीर को धारण करते हैं। सीतास्वयंवर में जिन्होंने शिव जी के कठिन पिनाक धनुष को तोड़ दिया था और तुम्हारे साथ सम्पूर्ण राजसमूह का बल, मद नष्ट कर दिया था, जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि जैसे अतुलनीय बलशालियों का वध किया। तुमने भी जिन प्रभु साकेताधिपति, ब्रह्मा जी, विष्णु जी तथा शङ्कर के भी पूज्य भगवान् श्रीराम के बल के परमाणु के लेशमात्र से सम्पूर्ण चराचरों को जीत लिया था, जिनकी प्रियपत्नी श्रीसीता को तू हर लाया, मैं उन्हीं देवाधिदेव भगवान् श्रीराम का दूत हूँ।

विशेष- इस प्रकरण में त्राता और दाता शब्द हेतु अर्थ को तृन (३.२.१३५) पाणिनिसूत्र से तृन प्रत्यान्त होकर निष्पन्न हुआ है, इसलिए यहाँ त्राता शब्द का अर्थ है रक्षा करने के लिए और दाता शब्द का अर्थ है देने के लिए।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।।
समर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा।।
खायउँ फल मोहि लागी भूखा। कपि स्वभाव ते तोरेउँ रूखा।।
सब के देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।
जिन मोहि मारे तिन मैं मारा। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा।।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।

भा०- मैं तुम्हारी प्रभुता जानता हूँ सहस्रबाहु के साथ तुम्हारी लड़ाई आ पड़ी थी (जहाँ तुम पराजित हुए थे) और बालि के साथ युद्ध करके भी तुमने यश पाया (छः महीने बालि के काँख में दबा रहा।) हनुमान जी का वचन सुनकर हँसकर रावण ने बहला दिया अर्थात् उस विषय को टाल दिया। हनुमान जी ने कहा मैंने अशोक वाटिका के फल खाये, क्योंकि मुझे भूख लगी थी और अपने वानर स्वभाव से वृक्षों को तोड़ा। हे कुमार्गगामियों के स्वामी! सब को शरीर परमप्रिय होता है, जब कुमार्ग पर चलनेवाले आपके सैनिक मुझे मारने लगे, तब जिन्होंने

मुझे मारा उनको मैंने भी मारा। उस पर भी आपके पुत्र मेघनाद ने मुझे बाँध लिया। मुझे बाँधे जाने की कोई लज्जा नहीं है मैं तो अपने प्रभु श्रीराम का कार्य करना चाहता हूँ।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।
देखहु तुम निज हृदय बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बैर कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै।।

भा०– हे रावण! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ अपना अहंकार छोड़कर मेरी सिखावन अर्थात् शिक्षा सुन, तुम अपने हृदय में विचार करके तो देखो। अपना भ्रम छोड़कर भक्तों के भयहारी प्रभु श्रीराम का भजन करो। जो देवता, दैत्य और सचराचर को खा लेता है, ऐसा काल भी जिनके डर से बहुत डरता है, उन प्रभु श्रीराम से कभी वैर मत कीजिये, मेरे कहने से श्रीराम को भगवती श्रीजानकी जी का समर्पण कर दीजिये।

दो०– प्रनतपाल रघुबंश मनि, करुना सिंधु खरारि।
गए शरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि।।२२।।

भा०– भगवान् श्रीराम चरणों में प्रणाम करनेवालों के पालक, रघुकुल के मणि, करुणा के सागर और तुम्हारे छोटे भ्राता खर नामक राक्षस के शत्रु हैं। शरण में चले जाने पर तुम्हारे सब अपराधों को भूलकर प्रभु रक्षा कर लेंगे।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू।।
रिषि पुलस्त्य जस बिमल मयंका। तेहिं कुल महँ जनि होहु कलंका।।

भा०– हे रावण! हृदय में श्रीराम के श्रीचरणकमल को धारण कर लो, तुम लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्य का यश निर्मल–निष्कलंक चन्द्रमा है, उस कुल में तुम कलंक मत बनो।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।

भा०– श्रीरामनाम के बिना वाणी नहीं शोभित होती, मद, मोह का त्याग करके विचार करके तो देखो। हे देवशत्रु रावण! जिस प्रकार से सभी आभूषणों से सजी हुई श्रेष्ठनारी वस्त्र के बिना नहीं शोभित होती, श्रीरामनाम के बिना वाणी की भी वही दशा समझनी चाहिये।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन सरितन नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं।।

भा०– भगवान् श्रीराम से विमुख व्यक्ति की सम्पत्ति और प्रभुता पूर्व से रहते हुए भी भगवत् विमुखता के पश्चात् चली जाती है, पायी हुई बिना पायी हुई के समान हो जाती है अर्थात् प्राप्त करने वाले के किसी भी प्रयोजन को सिद्ध नहीं करती।

सुनु दशकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।।
शङ्कर सहस बिष्णु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।

भा०– हे रावण! सुन, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि श्रीराम से विमुख प्राणी का कोई भी रक्षक नहीं बनता। तुझ श्रीरामद्रोही को करोड़ों शङ्कर, करोड़ों विष्णु और करोड़ों ब्रह्मा भी नहीं बचा सकते अर्थात् अपनी शरण में नहीं रख सकते।

दो०- मोहमूल बहु शूल प्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपा सिंधु भगवान।।२३।।

भा०- अब तू बहुत कष्टों को देनेवाले मोह के कारणस्वरूप अपने अहंकार को छोड़ दे और कृपा के सागर रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम का भजन कर।

जदपि कहीं कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी।।
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ग्यानी।।
मृत्यु निकट आई खल तोहीं। लागेसि अधम सिखावन मोहीं।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।
सुनि कपि बचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना।।
सुनत निशाचर मारन धाए। सचिवन सहित बिभीषन आए।।
नाइ शीष करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता।।
आन दंड कछु करिय गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई।।

भा०- यद्यपि हनुमान जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई अत्यन्त हितैषिणी वाणी कही फिर भी महाअभिमानी रावण हँसकर बोला, मुझे बहुत–बड़ा ज्ञानी वानर ही गुरु मिला। अरे दुष्ट! मृत्यु तुम्हारे निकट आ गई है, तू मुझे सिखाने लगा है। हनुमान जी ने कहा, यह सब उल्टा होगा अर्थात् मेरे निकट नहीं मृत्यु तो तेरे निकट है। मैंने तुम्हारा प्रत्यक्ष बुद्धिभ्रम जान लिया है। हनुमान जी के वचन सुनकर रावण बहुत चिढ़ गया और उसने कहा, इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं ले लेते? यह सुनकर राक्षस लोग हनुमान जी को मारने दौड़े। उसी समय अपने मंत्रियों के सहित विभीषण जी रावण की सभा में आये। विभीषण जी ने रावण को मस्तक नवाकर बहुत विनय किया और कहा कि, नीति के विरुद्ध परदूत को नहीं मारना चाहिये। अन्यथा, इस कर्म से राजनीति का विरोध होगा, विदेशी दूत को मत मारिये। हे राक्षसों की भूमि के स्वामी भाई रावण! दूसरा कुछ–दण्ड विधान कर दीजिये। सबने कहा, यह मंत्रणा भली है।

सुनत बिहँसि बोला दशकंधर। अंग भंग करि पठइय बंदर।।

दो०- कपि के ममता पूँछ पर, सबहिं कह्यो समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ।।२४।।

भा०- विभीषण जी के वचन सुनकर रावण हँसकर बोला, इस बन्दर को अंग–भंग करके भेजना चाहिये अर्थात् इसे विकलांग बनाकर भेजा जाये। रावण ने सबको समझाकर कहा कि वानर की पूँछ पर ममता होती है, इसलिए वस्त्र को तेल में डुबोकर उन्हीं वस्त्रों से इसकी पूँछ बाँधकर उसमें आग लगा दो अर्थात् इसकी पूँछ जलाकर इसे बाँड़ा कर दो।

पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब शठ निज नाथहिं लइ आइहि।।
जिन कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन कै प्रभुताई।।

भा०- जब यह वानर पूँछ से हीन होकर जायेगा, तब यह दुष्ट अपने स्वामी को भी ले आयेगा, जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं उनकी प्रभुता तो देखूँ।

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय शारद मैं जाना।।
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचन मूढ़ सोइ रचना।।

भा०– रावण का वचन सुनकर हनुमान जी मन में मुस्कुराये और कहने लगे कि, मैं जान गया अब सरस्वती जी सहायक हो गई हैं अर्थात् रावण की बुद्धि उसी प्रकार फेर दी जिससे इसका विनाश हो जाये। मूर्ख राक्षस रावण का वचन सुनकर वही रचना रचने लगे अर्थात् तेल और घी में डुबो–डुबोकर कपड़े हनुमान जी की पूँछ में बाँधने लगे।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।
बाजहिं ढोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।।

भा०– नगर में वस्त्र, तेल और घी नहीं बचा, हनुमान जी की पूँछ बढ़ती गई और राक्षस तेल, घी में डुबो–डुबोकर कपड़े बाँधते गये। हनुमान जी ने भी वानर का खेल किया सारे कपड़े तेल, घी के समाप्त होने पर भी हनुमान जी की पूँछ का बढ़ना समाप्त नहीं हुआ। कौतुक देखने के लिए आये हुए लंकापुरवासी चरणों से हनुमान जी को मारने लगे और उनकी बहुत हँसी करने लगे। ढोल आदि बाजे बजने लगे, सभी बच्चे ताली बजाने लगे। हनुमान जी को नगर में भ्रमण कराकर फिर उनकी पूँछ में प्रहस्त आदि राक्षसों ने आग जलायी।

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निशाचर नारी।।

भा०– अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान जी तुरन्त बहुत छोटे रूप में हो गये अर्थात् अग्नि ने हनुमान जी को नहीं जलाया, क्योंकि अग्नि में निवास करती हुई श्रीसीता ने अग्निज्वाला को नियंत्रित कर दिया। हनुमान जी स्वयं को बँधन से छुड़ाकर स्वर्ण की अट्टालिका पर चढ़ गये, सभी राक्षस नारियाँ डर गईं।

दो०– हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास।।२५।।

भा०– उसी अवसर पर हरि, वायु देवता और हरि भगवान् श्रीराम से प्रेरित हुए उनचासों वायु चल पड़े, हनुमान जी अट्टहास करके गरजे और बढ़कर आकाशमण्डल में लग गये।

देह बिशाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ धाई।।
जरत नगर भये लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।
तात मातु हा सुनिय पुकारा। एहिं अवसर को हमहिं उबारा।।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई।।

भा०– हनुमान जी का शरीर बहुत विशाल है पर उसमें बहुत हल्कापन है। वे एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर पर दौड़कर चढ़ रहे हैं। नगर के जलते समय सभी लोग व्याकुल हो उठे। असंख्य करोड़ अग्नि की भयंकर लपटें झपट रही हैं अर्थात् लपक–लपककर सब को जला रही हैं। इस समय हा, तात! हा, माता! शब्द की पुकार सुनायी पड़ रही है। इस अवसर पर हमें कौन बचायेगा? हम ने जो कहा था यह वानर नहीं हो सकता, यहाँ तो किसी देवता ने वानर का स्वरूप धारण कर लिया है।

साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।
जारा नगर निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।

भा०– साधु के अपमान का इसी प्रकार का फल मिलता है, जिसके कारण अनाथ के जैसा यह नगर जल रहा है। हनुमान जी ने एक क्षण में पूरा नगर जला दिया, विभीषण का भवन और एकमात्र अशोकवाटिका नहीं जलायी।

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।

भा०– हे पार्वती! हनुमान जी उन प्रभु श्रीराम के दूत हैं, जिन्होंने अग्नि की रचना की है, इसलिए अग्नि के भीतर रहकर भी हनुमान जी नहीं जले। उलट–पलटकर अर्थात् इस ओर से उस ओर पुनः उस ओर से इस ओर भ्रमण करके हनुमान जी ने सम्पूर्ण लंका जला दी फिर वे समुद्र के मध्य में कूद पड़े।

दो०– पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि।।२६।।

भा०– अपने पूँछ को बुझाकर समुद्र के शीतल जल में श्रम दूर करके फिर छोटा सा रूप धारण करके, हनुमान जी जनकनन्दिनी श्रीसीता के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।

भा०– हनुमान जी बोले, हे माता जी! जिस प्रकार श्रीरघुनाथ ने मुझे मुद्रिका का चिन्ह दिया था, उसी प्रकार आप भी मुझे कुछ पहचानी दीजिये। तब श्रीसीता ने चूड़ामणि को ही शीश पर से उतार कर दे दिया और पवनपुत्र हनुमान जी ने भी चूड़ामणि ले लिया।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा।।
दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

भा०– श्रीसीता ने कहा, हे तात! मेरा प्रणाम कहकर प्रभु से इस प्रकार सन्देशा कहना कि हे श्रीराघवेन्द्र! आप सब प्रकार से पूर्णकाम हैं, हे नाथ! अपना दीनदयालरूप–यश का स्मरण करके मेरा बहुत–बड़ा संकट हर लीजिये।

तात शक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहिं समुझाएहु।।
मास दिवस महँ नाथ न आवैं। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावैं।।

भा०– हे तात! इन्द्र पुत्र जयन्त की कथा सुना देना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझा देना। यदि एक महीने के भीतर श्रीरघुनाथ नहीं आयेंगे तो फिर मुझे जीवित नहीं पायेंगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुमहूँ तात कहत अब जाना।।
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती। पुनि मो कहँ सोइ दिन सो राती।।

भा०– हे हनुमान जी! आप ही बताइये कि मैं प्राणों को किस प्रकार रखूँ, क्योंकि अब तो आप भी जाने के लिए कह रहे हैं। आपको देखकर मेरी छाती शीतल हो गई थी, पुनः मेरे लिए वही दिन और वही रात।

दो०– जनकसुतहिं समुझाइ करि, बहु बिधि धीरज दीन्ह।
चरन कमल सिर नाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह।।२७।।

भा०– जनकनन्दिनी श्रीसीता को समझाकर हनुमान जी ने उन्हें बहुत प्रकार से धैर्य बँधाया। पुनः भगवती श्रीसीता जी के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाकर हनुमान जी ने भगवान् श्रीराम के पास प्रस्थान किया।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्त्रवेउ सुनि निशिचर नारी।।
नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। शबद किलिकिला कपिन सुनावा।।

भा०- चलते हुए हनुमान जी ने महाध्वनि में भारी गर्जना की, सुनकर राक्षसपत्नियों ने गर्भस्राव कर दिया। हनुमान जी समुद्र को लाँघकर इस पार अर्थात् उत्तरी तट पर आये और वानरों को अपना स्वाभाविक किलकिला शब्द सुनाया।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन तब जाना।।
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा।।

भा०- सभी लोग हनुमान जी को देखकर प्रसन्न हुए, तब वानरों ने अपना नया जन्म जाना। हनुमान जी का मुख प्रसन्न था और शरीर पर तेज चमक रहा था, क्योंकि उन्होंने भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का कार्य कर लिया था।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी।।
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा।।

भा०- सब लोग हनुमान जी से मिले और अत्यन्त सुखी हो गये, मानों तलफलाती हुई मछलियों ने जल पा लिया हो। नवीन इतिहास पूछते और कहते हुए सभी लोग प्रसन्न होकर रघुनाथ श्रीराम के पास चल पड़े।

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद सहित मधुर फल खाए।।
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार करत सब भागे।।

भा०- तब सभी वानर मधुवन के भीतर आये और अंगद जी के सहित सब लोगों ने मधुर फल खाया अर्थात् हनुमान जी के आगमन तक वानरों ने कुछ भी नहीं खाया–पिया था। जब मधुवन के रखवाले रोकने लगे तब वानरों के मुक्कों से प्रहार करते ही सब भाग गये।

दो०- जाइ पुकारे ते सकल, बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आए प्रभु काज।।२८।।

भा०- वे रक्षक सुग्रीव जी के पास जाकर चिल्लाकर समाचार दिये कि युवराज अंगद जी ने वन को उजाड़ दिया। यह सुनते ही सुग्रीव जी बहुत प्रसन्न हुए वे जान गये कि वानरगण भगवान् श्रीराम का कार्य करके आये हैं।

जौ न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई।।
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा।।

भा०- यदि उन्होंने श्रीसीता का समाचार नहीं पाया होता तो क्या मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार वानरों के राजा सुग्रीव जी मन में विचार ही कर रहे थे कि समाज के सहित वानरगण आ गये।

आइ सबनि नावा पद शीशा। मिलेउ सबहिं अति प्रेम कपीशा।।
पूँछी कुशल कुशल पद देखी। राम कृपा भा काज बिशेषी।।

भा०- सभी ने आकर सुग्रीव जी के चरणों में मस्तक नवाया और सुग्रीव जी सभी से अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिले और सबसे कुशल पूछी, सबने कहा आपके श्रीचरणों के दर्शन से कुशल है। भगवान् श्रीराम की कृपा से विशिष्ट कार्य हो गया।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन के प्राना।।
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन सहित रघुपति पहिं चलेऊ।।

भा०- हे नाथ! हनुमान जी ने प्रभु का कार्य किया है, इन्होंने सभी वानरों के प्राण रख लिए। यह सुनकर सुग्रीव जी फिर हनुमान जी से मिले और वानरों के सहित रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के पास चल दिये।

राम कपिन जब आवत देखा। किए काज मन हरष बिशेषा।।
फटिक शिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरननि जाई।।

भा०– जब भगवान् श्रीराम ने वानरों को आते देखा तो उन्हें अनुमान हो गया कि इन लोगों ने कार्य कर लिया है, इनके मन में विशेष हर्ष है। दोनों भाई श्रीराम, लक्ष्मण स्फटिक शिला पर बैठे थे। सभी वानर उनके श्रीचरणों पर जाकर पड़ गये।

दो०– प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुशल नाथ अब, कुशल देखि पद कंज।।२९।।

भा०– करुणा के पुंज श्रीराम जी ने प्रसन्नतापूर्वक सभी वानरों को गले से लगाया और कुशल पूछी। वानरों ने कहा, हे नाथ! आपके श्रीचरणों के दर्शन करके कुशल ही हैं।

* मासपारायण, तेईसवाँ विश्राम *

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया।।
ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर।।
सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजस त्रैलोक उजागर।।

भा०– जाम्बवान् जी ने कहा, हे रघुराज अर्थात् रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम! हे नाथ! आप जिस पर दया कर देते हैं उसका सदैव शुभ रहता है, उसका निरन्तर कुशल होता है, देवता, मनुष्य, मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं। वही जगत् में विजयी होता है, उसी में विनम्रता आती है, वह सभी गुणों का समुद्र बन जाता है और उसका सुन्दर यश तीनों लोकों में व्याप्त हो जाता है अर्थात् आप ने हनुमान जी पर दया की तो उनका कल्याण हुआ, वे सकुशल लौटे। वन उजाड़ने से उन पर देवता प्रसन्न हुए, राक्षसों का वध करने से वे मनुष्यों के प्रसन्नता के पात्र बने, क्योंकि हनुमान जी ने नरभक्षी राक्षसों को मारा और लंका दहन से उन पर मुनि प्रसन्न हुए। वे विजयी बने और श्रीसीता के समक्ष विनय प्रस्तुत किया। उनका यश तीनों लोकों में फैला अर्थात् आपकी दया से सीता जी का समाचार लेकर हनुमान जी सकुशल लौट आये हैं।

प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जनम हमार सुफल भा आजू।।
नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहिं सुनाए।।

भा०– आप प्रभु श्रीराम की कृपा से सब कार्य हो गया। आज हम लोगों का जन्म सफल हो गया, क्योंकि देवताओं ने आपकी सेवा करने के लिए वानर, भालु का शरीर धारण किया था। हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान जी ने जो कार्य किया वह सहस्रमुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। हनुमान जी महाराज के सुहावने चरित्र को जाम्बवान् जी ने रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम को सुना दिया।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए।।
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रक्षा स्वप्रान की।।

भा०– जाम्बवान् जी के वचन सुनते ही कृपासागर भगवान् श्रीराम के मन में हनुमान जी के चरित्र भी बहुत भाये और हनुमान जी भी बहुत भाये। फिर प्रसन्न होकर प्रभु ने हनुमान जी को हृदय से लगा लिया और पूछने लगे, हे तात! बताओ, सीता लंका में बन्दी बनकर अपने प्राणों की किस प्रकार रक्षा करती रहती हैं?

दो०- नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट।।३०।।

भा०- हनुमान जी ने उत्तर दिया, हे प्रभु! श्रीसीता अपने प्राणों की रक्षा में असमर्थ हैं उनके प्राण जाना भी चाहते हैं, परन्तु वे स्वयं भगवती जी के शरीर में बन्दी बन गये हैं। आपका श्रीरामनाम "रकार" और "मकार" के रूप में दिन-रात का प्रहरी है, आपका ध्यान बहुत बड़ा किवाड़ है और सीता के नेत्र उन्हीं के चरणों में यंत्रित हैं अर्थात् लग गये हैं तो उनके प्राण किस मार्ग से जायें?

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी।।

भा०- श्रीसीता ने लंका से चलते समय मुझे चूड़ामणि दी, वह आपके श्रीचरणों में समर्पित है। श्रीरघुनाथ ने हाथ से लेकर वह चूड़मणि हृदय से लगा लिया, फिर हनुमान जी कहने लगे, हे नाथयुगल अर्थात् मेरे आराध्य श्रीराम-लक्ष्मण जी! जनकराज की पुत्री श्रीसीता ने अपने दोनों नेत्रों में जल भरकर कुछ वचन अर्थात् संदेश कहे हैं।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना।।
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ मोहि त्यागी।।

भा०- श्रीसीता ने पहले तो मुझसे कहा कि, हे हनुमान! तुम और अनुज अर्थात् छोटे भैया लक्ष्मण दोनों ही, समेत अर्थात् साथ मिलकर दीनों के बन्धु और प्रणाम करने वालों के कष्ट को दूर करने वाले प्रभु श्रीरघुनाथ के श्रीचरण पकड़ लेना अर्थात् तुम मेरी ओर से प्रभु के वामचरण पकड़ना और सेवा करना और छोटे भैया लक्ष्मण प्रभु के दक्षिणचरण की सेवा करेंगे, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में श्रीराघव के वामचरण की सेवा नहीं होती होगी, क्योंकि वह मेरे लिए अधिकृत थी। मन, कर्म और वचन से प्रभु के श्रीचरणों में अनुराग करनेवाली मुझ सीता को मेरे नाथ ने किस अपराध से त्याग दिया है?

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयननि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। श्वास जरइ छन माहिं शरीरा।।
नयन स्त्रवहिं जल निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।।

भा०- हाँ! एक मेरा अवगुण अर्थात् दोष अवश्य है, उसे मैंने मान लिया वह यह कि, आपसे बिछुड़ते समय अर्थात् वियोग होते समय ही मेरे प्राणों ने शरीर छोड़कर प्रयाण नहीं किया, परन्तु हे मेरे स्वामी, श्रीराघव! वह अपराध मेरा नहीं प्रत्युत् मेरे नेत्रों का है, क्योंकि प्राणों के निकलते समय मेरे नेत्र ही बाधा डाल देते हैं। वे कहते हैं कि, हे प्राणों! अभी मत निकलो प्रभु के दर्शन होंगे। विरह ही अग्नि है, शरीर रुई के समान हो चुका है और शोक श्वास ही वायु है, इसलिए शोकरूप वायु से प्रेरित होकर विरह की अग्नि में रुई के समान यह शरीर एक क्षण में जल जाता, परन्तु अपने हित के लिए नेत्र जल बरसाते रहते हैं, जिससे विरह की अग्नि में शरीर जलने नहीं पाता। नेत्रों का हित यह है कि यदि शरीर रहेगा तो किसी न किसी दिन हमें प्रभु के दर्शन हो ही जायेंगे।

सीता कै अति बिपति बिशाला। बिनहिं कहे भलि दीनदयाला।।

दो०- निमिष निमिष करुनायतन, जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुज बल खल दल जीति।।३१।।

भा०- हे दीनों पर दया करनेवाले प्रभु श्रीराघव! श्रीसीता की वह विशाल विपत्ति बिना कहे ही भली है अथवा श्रीसीता की विपत्ति अत्यन्त विशाल है अर्थात् माताजी सब प्रकार से दीन हो गई हैं, फिर भी आप उन पर दया न करके उनके सम्बन्ध में कठोरता से प्रश्न कर रहे हैं। अत: आपको दीनदयाल नहीं कहने में ही भलाई है, अब तो यह दीनदयाल नाम अर्थहीन हो रहा है। हे करुणा के आयतन अर्थात् भवन (आश्रय) प्रभु श्रीराघव! श्रीसीता के लिए एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहे हैं, इसलिए शीघ्र चलिए और अपनी भुजाओं के बल से खल प्रकृतिवाले रावणदल को जीतकर उन श्रीसीता माता जी को ले आइये।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिय बिपति कि ताही।।
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोइ। जब तव सुमिरन भजन न होई।।
केतिक बात प्रभु जातधान की । रिपुहिं जीति आनिवी जानकी।।

भा०- श्रीसीता को दु:खी सुनकर सुखों के भवन प्रभु श्रीराम के लालकमल जैसे नेत्रों में जल भर आये। प्रभु ने कहा, हे हनुमान! जिसे मन, शरीर और कर्म से मेरा ही आश्रय हो क्या उसे स्वप्न में भी विपत्ति होनी चाहिये? तात्पर्य यह है कि यदि सीता जी मन, वाणी और शरीर से मुझ पर ही आश्रित हैं, तो उन्हें विपत्ति होनी नहीं चाहिये। या, तो उनका मुझ पर समर्पण नहीं है या तुम या तुम्हारी माता जी झूठ बोल रही हैं। हनुमान जी ने कहा, प्रभु आपको विपत्ति का अनुभव नहीं है, क्योंकि आप सुखस्वरूप परमात्मा हैं, इसलिए आपको विपत्ति की परिभाषा भी कदाचित् विदित नहीं है। हे भगवन्! भक्त की विपत्ति तो वह है कि, जब आपका स्मरण और भजन न हो अर्थात वही विपत्ति है, जब आपके सुमिरण अर्थात् स्मरण का भजन अर्थात् आस्वादन याने आनन्द न हो। भाव यह है कि जब माताश्री आपके स्मरण से जनित सुख का एकान्त में अस्वादन करने लगती हैं, उस समय रावण और उसकी वशवर्तनी राक्षसियाँ अनेक प्रकार से विपरीत वातावरण प्रस्तुत करके भजन में विक्षेप और विघ्न डालते हैं। हे प्रभु! आपके सामने राक्षस रावण की कितनी बात अत: शत्रु रावण को जीतकर आप जनकनन्दिनी श्रीसीता को ले आइये।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुन नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचारि मन माहीं।।
पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।।

भा०- हे वानरश्रेष्ठ हनुमान! शरीरधारी देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई भी तुम्हारे समान मेरा उपकारी नहीं है। मैं तुम्हारा क्या प्रतिउपकार करूँ, मेरा मन तुम्हारे सामने ही नहीं हो सक रहा है अर्थात् तुमने अपने उपकारों से मुझे बोझिल कर दिया है। तुम्हारा प्रतिउपकार तो तब सम्भव हो जब मेरे समान तुम विपत्ति में पड़ो और तुम्हारी अपहृत भार्या का मैं पता लगाऊँ और वह न तो सम्भ्व है और न ही मुझे अभीष्ट है, क्योंकि तुम बालब्रह्मचारी हो और मैं तुम्हारी विपत्ति देख नहीं सकता। हे पुत्र! मैंने अपने मन में विचार करके देख लिया है, मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और भविष्य में भी रहूँगा। इतना कहकर देवताओं के रक्षक भगवान् श्रीराम, हनुमान जी को पुन:-पुन: अपने राजीवनेत्रों से निहार रहे हैं। उनके नेत्र सजल हैं और प्रभु के अंगों में अत्यन्त रोमांच है।

दो०- सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख, हृदय हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत।।३२।।

भा०– प्रभु के वचन सुनकर और उनका श्रीमुख देखकर, हृदय में प्रसन्न होकर प्रेम में अकुलाते हुए हनुमान जी महाराज श्रीराघव के श्रीचरणों में पड़ गये और वे कहने लगे, हे भगवन्! बचा लीजिये...बचा लीजिये अर्थात् आपकी इतनी प्रशंसा से कहीं मेरे मन में पापी अभिमान न आ जाये।

बार बार प्रभु चहत उठावा। प्रेम मगन तेहिं उठब न भावा।।
प्रभु पद पंकज कपि के शीशा। सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा।।
सावधान मन करि पुनि शङ्कर। लागे कहन कथा अति सुंदर।।

भा०– प्रभु श्रीराम समर्थ होते हुए भी अपने चरणों में पड़े हुए हनुमान जी को बार–बार बलपूर्वक उठाना चाहते हैं, परन्तु प्रेम में मग्न हुए उन हनुमान जी को प्रभु के चरणों से उठना भाता ही नहीं। आज प्रभु भगवान् श्रीराम के श्रीचरण कमलों पर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी का सिर विराजमान है। वह दशा स्मरण करके गौरीपति शिव जी भाव में मग्न हो गये। सोचने लगे, अहा! इतने देर तक प्रभु के श्रीचरणों में पड़े रहने का मुझे भी सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। इस भावना में शिव जी की कथा का प्रवाह टूटने–सा लगा। फिर अपने मन को सावधान करके कल्याणकारी शिव जी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे।

विशेष– अतिसुन्दर विशेषण मन का, कथा का और शिवजी का भी हो सकता है।

कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा।।
कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।।

भा०– शिव जी कहने लगे, हे पार्वती! अन्ततोगत्वा प्रभु श्रीराम ने हनुमान जी को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनका हाथ पकड़ अपने अति निकट बिठा लिया तथा बोले, हे हनुमान! बताओ, रावण के द्वारा पालित लंका के सुदृढ़ दुर्ग को तुमने किस विधि से जलाया ?

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना।।
शाखामृग कै बड़ि मनुसाई। शाखा ते शाखा पर जाई।।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निशिचर गन बधि बिपिन उजारा।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरि प्रभुताई।।

भा०– हनुमान जी ने प्रभु श्रीराम को अपने ऊपर प्रसन्न जाना फिर स्वभावतः अभिमान से रहित आन्जनेय जी बोले, हे रघुराई अर्थात् जीवों के सर्वस्व रघुकुल के राजा प्रभु! यदि शाखामृग अर्थात् वानर की मनस्विता अर्थात् बहुत–बड़ा पुरुषार्थ होगा तो वह एक शाखा से दूसरी शाखा पर चढ़ जायेगा उसकी इतनी ही सीमा है, परन्तु यहाँ तो समुद्र को लाँघा, सोने के नगर को जलाया, राक्षसगणों का वध करके वन को उजाड़ा वह सब आपके प्रताप ने ही किया। हे प्रभु! हे रघुराज! इसमें मेरी कुछ भी प्रभुता नहीं है।

दो०– ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहिं, जारि सकइ खलु तूल।।३३।।

भा०– हे प्रभु! जिस पर आप अनुकूल हों उस के लिए कुछ भी अगम्य अर्थात् कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से बड़वानल अर्थात् समुद्र के जल को जलाने वाले अग्नि को भी रुई निश्चयपूर्वक जला सकती है अर्थात् जो रुई छोटी–सी अग्नि की चिन्गारी से जल जाती है, वह आपके प्रभाव से सागर के जल को भस्म करने वाली अग्नि को भी भस्म कर सकती है। यह असम्भव नहीं है खलु अर्थात् यही वेद सम्मत निश्चय है।

सुनत बचन प्रभु बहु सुख माना। मन क्रम बचन दास निज जाना।।
माँगु पवनसुत बर अनुकूला। देउँ आज तुम कहँ सुख मूला।।

भा०– हनुमान जी के वचन सुनकर प्रभु श्रीराम ने बहुत सुख माना अर्थात् बहुत–बड़े सुख की अनुभूति की। श्रीरघुनाथ ने हनुमान जी को मन, कर्म और वचन से अपना निजी दास जान लिया और बोले, हे पवनपुत्र अर्थात् वायु के समान ही अभिमान का स्पर्श न करनेवाले अहंकार शून्य हनुमान! आज अपने अनुकूल और सम्पूर्ण सुखों का आश्रयरूप वरदान माँग लो। आज मैं तुमको वह दे दूँगा।

नाथ भगति तव अति सुखदायिनि। देहु कृपा करि सो अनपायनि।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।

भा०– हनुमान जी ने कहा, हे नाथ! जो अतिसुख देने वाली आपकी अनपायनी भक्ति अर्थात् जिसका कभी अपाय यानी नाश नहीं होता और जिसके आ जाने पर अपाय यानी भक्त का आपसे वियोग नहीं होता। वही अनपायनी भक्ति मुझे कृपा करके दे दीजिये। शिव जी कहते हैं कि, हे पार्वती! इसके पश्चात् हनुमान जी की परमसरल वाणी सुनकर प्रभु श्रीराम ने कहा "एवमस्तु" (ऐसा ही हो)।

उमा राम स्वभाव जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।

भा०– हे पार्वती! जिसने भी भगवान् श्रीराम का स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर और कुछ भी नहीं भाता। चूँकि हनुमान जी महाराज भगवान् श्रीराम जी का स्वभाव जान चुके हैं, इसलिए उन्होंने भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी प्रभु से नहीं माँगा। श्रीराम एवं हनुमान जी का यह संवाद जिसके हृदय में आ जाता है अर्थात् समझ में आ जाता है विचारों में उतरकर व्यवहार स्वरूप हो जाता है, वही साधक श्रीराम के श्रीचरणों की भक्ति पा जाता है।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपालु सुखकंदा।।
तब रघुपति कपिपतिहिं बोलावा। कहा चलै कर करहु बनावा।।
अब बिलंब केहि कारन कीजै। तुरत कपिन कहँ आयसु दीजै।।
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ ते भवन चले सुर हरषी।।

भा०– प्रभु के वचन सुनकर वानरसमूह कहने लगे, हे सुख के मेघ कृपालु श्रीराम! आपकी जय हो...जय हो...जय हो अर्थात् तीनों कालों और तीनों लोकों में आपकी जय हो। तब रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव जी को बुलाया और कहा कि, हे मित्र! अब लंका पर आक्रमण करने के लिए चलने के साज सजाइये, अब किस कारण से विलम्ब किया जाये? वानरों को लंका पर चढ़ाई करने के लिए तुरन्त आज्ञा दीजिये। यह कौतुक देखकर बहुत से पुष्पों की वृष्टि करके प्रसन्न हुए देवता आकाशमण्डल से अपने–अपने लोक को चले गये।

दो०– कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ।।३४।।

भा०– वानरराज सुग्रीव जी ने (सभी वानरों को)शीघ्र बुलाया, उनके आदेश से अनेक वर्ण वाले अतुलनीय बल से सम्पन्न वानरों और भालुओं के समूह तथा यूथपतियों के भी यूथ अर्थात् न्यूनातिन्यून अठाराह पद्म यूथपति वानर आ गये और प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए।

प्रभुपद पंकज नावहिं शीशा। गर्जहिं भालु महाबल कीशा।।
देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिव नैना।।

भा०– भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाते हैं और महाबली भालु, बन्दर "जय श्रीराम" कहकर गर्जना करते हैं। भगवान् श्रीराम ने कृपा करके अपने राजीवनेत्रों से सम्पूर्ण वानरी सेना को निहारकर देखा अर्थात् सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और सब में कृपाबल का संचरण कर दिया।

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पक्षजुत मनहुँ गिरिंदा।।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर शुभ नाना।।

भा०– भगवान् श्रीराम की कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर, मानो पंखों से युक्त हिमाचल, विन्ध्याचल आदि श्रेष्ठपर्वत हो गये अर्थात् जैसे पूर्वकाल में पंख होने के कारण पर्वत आकाश में उड़ते थे, उसी प्रकार प्रभु ने पंखों के बिना प्रत्येक वानर को आकाश में उड़ने की क्षमता और पर्वत जैसी विशालता तथा दृढ़ता दे दी। तब विजय मुहूर्त में भगवान् श्रीराम ने प्रसन्न होकर विजययात्रा के लिए लंका की ओर प्रस्थान किया। उस समय अनेक प्रकार से कल्याणकारी मंगल शकुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।।
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहिं होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई।।

भा०– जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण मंगलमय हो उनके प्रस्थान से शकुन हुए यह नीति अर्थात् लीला की एक परम्परा है। प्रभु के प्रस्थान को विदेहनन्दिनी श्रीसीता ने भी जान लिया। उनके वामअंग फड़ककर मानो उनसे यह कह दे रहे थे कि अब प्रभु की विजययात्रा प्रारम्भ हो चुकी है। श्रीसीता को जो–जो शकुन हो रहे थे, रावण को वही–वही अपशकुन हुए।

चला कटक को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा।।
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी।।
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।।

भा०– श्रीराम की सेना विजययात्रा के लिए चल पड़ी, उसका वर्णन कौन कर सकता है? अपार वानर, भालु गरज रहे थे। अपनी इच्छा से चलने में समर्थ कुछ वानर नख को शस्त्र बनाकर और कुछ वानर वृक्ष लेकर, कुछ पर्वत धारण करके आकाश और पृथ्वी के मार्ग से चल पड़े। भालु, वानर सिंहगर्जना करते हैं। दिशाओं के हाथी डगमगाते हैं और चिग्घाड़ करते हैं।

छं०– चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे।।
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं।।१।।

भा०– दिग्गज चिग्घाड़ कर रहे हैं, पृथ्वी हिल रही है (बार–बार भूकम्प आ रहा है) समुद्र में खलबली मच गई, सूर्य, चन्द्रमा, देवता, मुनि, नाग और किंन्नर मन में प्रसन्न हो रहे हैं, क्योंकि अब शीघ्र ही सबका दुःख समाप्त होगा। बहुत से भयंकर वीर वानर दाँतों को कटकटाते हैं और करोड़ों की संख्या में दौड़ते हैं। हे प्रबल–प्रतापी श्रीराम! आपकी जय हो, इस प्रकार कहकर अयोध्यापति प्रभु श्रीराघव के गुण के समूहों को गाते हैं।

सहि सक न भार अपार अहिपति बार बार बिमोहई।
गह दशन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई।।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।।२।।

भा०- वानरों का अपार भार शेषनाग भी नहीं सह सक रहे हैं, वे बारम्बार मूर्च्छित हो जाते हैं और पुनः-पुनः कच्छप भगवान् की कठोर पीठ को अपने दाँतों से पकड़कर किस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानो रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के सुन्दर प्रयान अर्थात् विजययात्रा की परिस्थिति अर्थात् प्रस्थान गाथा को परमसुन्दर जानकर वह अविचल और पवित्रकीर्ति शेषनारायण कच्छप भगवान् की पीठ पर अपने दाँतों से शिलालेख के रूप में लिख रहे हैं।

दो०- एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर।।३५।।

भा०- इस प्रकार कृपानिधि भगवान् श्रीराम जाकर समुद्र के उत्तरी तट पर उतरे। जहाँ-तहाँ अनेक वीर भालु और बन्दर फल खाने लगे।

उहाँ निशाचर रहहिं सशंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निशिचर कुल केर उबारा।।
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई।।

भा०- उधर अर्थात् लंका में राक्षस तभी से भयभीत रह रहे हैं जब से हनुमान जी लंका जलाकर गये हैं। सभी राक्षस अपने-अपने घरों में बैठकर विचार कर रहे हैं कि राक्षसकुल का उबरना अब सम्भव नहीं है। जिन श्रीराम के दूत का बल वर्णित नहीं किया जा सकता, उन्हीं के नगर में आने पर क्या भलाई हो सकती है आशय यह है कि यदि दूत इतना बलवान था, तो उसके स्वामी कितने बलवान होंगे?

दूतिन सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी।।

भा०- दूतियों के मुख से इस प्रकार पुरजनों की वाणी सुनकर रावण की ज्येष्ठपत्नी मंदोदरी अधिक अकुला गई और वह एकान्त में हाथ जोड़कर अपने पति रावण के पग में लिपट गई तथा नीतिरस में डुबोकर वचन बोली-

कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।

भा०- मन्दोदरी ने रावण को सम्बोधित करते हुए कहा, हे पति रावण! श्रीहरि से निरर्थक वैर छोड़ दीजिये, अत्यन्त कल्याणकारक मेरे कथन हृदय में धारण कीजिये। जिन श्रीराम के दूत की करनी को ध्यान में आते ही आज भी राक्षसपत्नियाँ गर्भस्राव कर देती हैं, हे पति! यदि भलाई चाहते हैं, तो उनकी पत्नी श्रीसीता को अपने मंत्री को बुलाकर श्रीराम के पास भेज दीजिये।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता शीत निशा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हे।।

भा०– आपके कुल रूप कमलवन को दु:ख देने के लिए श्रीसीता हेमन्तऋतु की शीतरात्रि के समान लंका में आई हैं। हे नाथ! सुनिये, श्रीराम को श्रीसीता के सौंपे बिना शिव जी और ब्रह्मा जी के करने पर भी आपका हित नहीं होगा, क्योंकि शिव जी, ब्रह्मा जी और विष्णु जी आदि सभी देवता श्रीराम के अधीन हैं।

दो०– राम बान अहि गन सरिस, निकर निशाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतन करहु तजि टेक।।३६।।

भा०– राक्षस समूह रूप मेंढकों को सर्प के समान श्रीराम के बाण जब तक खा नहीं लेते तब तक टेक अर्थात् हठ छोड़कर यत्न कर लीजिये।

स्रवन सुनी शठ ता करि बानी। बिहँसा जगत बिदित अभिमानी।।
सभय स्वभाव नारि कर साँचा। मंगल महँ भय मन अति काँचा।।
जौ आवइ मर्कट कटकाई। जियहिं बिचारे निशिचर खाई।।
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई।।
मंदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।।

भा०– दुष्ट रावण ने जब उस मंदोदरी की वाणी कान से सुनी तब जगत्प्रसिद्ध अभिमानी रावण ठहाके लगाकर हँस पड़ा और कहा, सत्य ही नारी का स्वभाव भीरु होता है। मंगल के समय में इस प्रकार का भय, हे मंदोदरी! तेरा मन बहुत कच्चा है। यदि वानरों की सेना लंका में आती भी है तो बेचारे राक्षस उसे खा कर जी जायेंगे, क्योंकि मेरा खाद्य मंत्रालय राक्षसों के लिए खाद्यसामग्री की आपूर्ति नहीं कर पा रहा है। जिसके डर से लोकपाल भी काँपते हैं, उस रावण की पत्नी इतनी डरपोक है यह मेरे लिए बहुत हँसी की बात है। ऐसा कहकर और सामान्यरूप से हँसकर मंदोदरी को हृदय से लगाकर रावण अपनी सभा में चला गया। उसके मन में सीता जी के प्रति अधिक ममता थी। मंदोदरी अपने हृदय में चिन्ता करने लगी कि मेरे पति रावण पर विधाता विपरीत हो गये हैं अर्थात् रुठ गये हैं।

बैठेउ सभा खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।।
जितेहु सुरासुर तव श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं।।

भा०– रावण सभा में जाकर बैठ गया उसी समय उसने ऐसा समाचार पाया कि श्रीराम की सम्पूर्ण वानरी सेना समुद्र–पार अर्थात् समुद्र के उस पार उत्तरी तट पर आ गई है। रावण ने मंत्रियों से पूछा, बोलो, उचित मत कहो अब क्या करना चाहिये? वे सब हँसे और बोले, हे राक्षसराज! चुप लगाकर बैठिये, देवताओं और असुरों को जीतने पर भी जब आपको श्रम नहीं हुआ अर्थात् आपने बिना श्रम के देवताओं और दैत्यों को जीत लिया तो फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?

दो०– सचिव बैद गुरु तीनि जौ, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज धर्म तनु तीनि कर, होइ बेगिहीं नाश।।३७।।

भा०– यदि मंत्री, वैद्य और गुरुजन क्रमश: स्वामी, रोगी और शिष्य की अप्रसन्नता के भय से अथवा इनसे लाभ की आशा से प्रिय बोलते हैं अर्थात् चाटुकारिता करते हैं और मंत्री उचित मंत्रणा नहीं देते, वैद्य उचित पथ्य नहीं देते तथा गुरुजन शास्त्रानुरूप शिक्षा नहीं देते तब क्रमश: राज्य, शरीर और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

सोइ रावन कहँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई।।

भा०– वही रावण की सहायक बन गई अर्थात् तीनों ने ठकुरसोहाति की। मंत्रियों के कारण रावण का राज्य गया। "***वैद्यो नारायणो हरिः***" अर्थात् भगवान् नारायण ही वैद्य हैं, उन्होंने भी उचित पथ्य नहीं दिया इससे रावण का शरीर गया। शिव जी के प्रियभाषण से रावण का धर्म गया। अतः तीनों की प्रियवादिता रावण की सहायक बनी। मंत्री गण सुना–सुनाकर रावण की स्तुति करने लगे।

अवसर जानि बिभीषन आवा। भ्राता चरन शीष तेहिं नावा।।
पुनि सिर नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुशासन।।

भा०– समय जानकर रावण की सभा में विभीषण जी आये उन्होंने बड़े भाई रावण के चरणों में मस्तक नवाया, फिर राजसत्ता को सिर झुकाकर अपने आसन पर जाकर बैठ गये और रावण की आज्ञा पाकर मंत्रणापूर्ण वचन बोले।

जौ कृपालु पूँछेहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।

भा०– यदि कृपालु अर्थात् कृपा को काटकर फेंकनेवाले अर्थात् किसी पर भी कृपा नहीं करनेवाले परम–रणधीर आप रावण ने भी मुझ से बात पूछी है, तो हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित में बात कहता हूँ अथवा, यदि कृपालु श्रीराम ने ही आपके द्वारा मुझसे बात पुछवाई है तो, हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप कल्याणकारी मंत्र कहता हूँ।

विशेष– कृपालु शब्द भगवान् श्रीराम के अर्थ में आया है। वह गोस्वामी जी द्वारा रावण के लिए कैसे प्रयुक्त हो सकता है, इसलिए यहाँ कृपालु शब्द में तद्धित प्रत्यय् नहीं प्रत्युत् धातु प्रत्ययान्त शब्द है। यह व्युत्पत्ति कृपालु तथा कृपाल इन दोनों शब्दों के लिए सामान्यरूप से जाननी चाहिये "*कृपां लोनाति इति कृपालु*"ः श्रीविभीषण जी का मानना है कि आप तो कृपालु हैं अर्थात् आपने अपनी कृपाण से कृपा को भी काट डाला है, फिर भी यदि आप जैसे त्रिलोक विजेता को कृपालु श्रीराम ने मुझसे पूछने की प्रेरणा दी है तो, मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप हित कह रहा हूँ। यहाँ "पूँछेहू" शब्द भी अन्तंभावितव्यर्थ के सिद्धान्त से पुछवाई के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जो आपन चाहै कल्याना। सुजस सुमति शुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं।।

भा०– जो भी साधक अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुन्दर बुद्धि, सुन्दर गति तथा नाना प्रकार के सुख चाहता हो तो, हे गोसाईं अर्थात् इन्द्रियों को तृप्त करने वाले रावण! वह साधक परनारी अर्थात् दूसरे की पत्नी का ललाट चतुर्थी के चन्द्रमा की भाँति छोड़ दे अर्थात् जैसे चतुर्थी की चन्द्रमा को देखना पाप है, उसी प्रकार परायी नारी का ललाट (मस्तक) यानी मुखमंडल देखना पाप है।

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठइ नहिं सोई।।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।।

भा०– जो चौदहों भुवन का एकमात्र स्वामी है, वह भी जीवद्रोह करके स्थिर नहीं रह पाता अर्थात् भूतद्रोह से नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और अत्यन्त चतुर होता है, उसे भी थोड़े से लोभ के कारण कोई भी भला अर्थात् श्रेष्ठ नहीं कहता। तात्पर्य यह है कि, काम चतुर्थी की चाँद की भाँति व्यक्ति को कलंकित बनाता है, क्रोध बड़े से बड़े को अस्थिर कर देता है और लोभ भद्र को भी अभद्र बना देता है।

दो०- काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु कहहिं सदग्रंथ।।३८।।

भा०- हे भैया! काम, क्रोध और मदिरा के समान लोभ ये सभी तीनों नरक के मार्ग हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरघुवीर अर्थात् जीवों को विशिष्ट प्रेरणा देनेवाले भगवान् श्रीराम का भजन करिये, यह सिद्धान्त सभी श्रेष्ठग्रन्थ कहते हैं।

विशेष- पूर्वप्रकरण में तीन पंक्तियों द्वारा काम, क्रोध और लोभ के निषेध की चर्चा की गई है और दोहे में काम, क्रोध, लोभ के अतिरिक्त मद शब्द अधिक आया है, इसलिए हमने इसे लोभ का विशेषण माना और यह क्रोध का भी विशेषण बन सकता है तथा काम का भी।

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तन धारी।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रक्षक सुर त्राता।।

भा०- हे तात (बड़े भाई)! श्रीराम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं, वे तो चौदहों भुवन के ईश्वर, काल के भी काल, जगत् के जन्म, स्थिति, प्रलय के कारणरूप, ब्रह्म, अनामय अर्थात् जन्म, स्थिति, बढ़ना, घटना, परिवर्तित होना और नष्ट हो जाना इन छह आमय यानी विकारों से रहित अजन्मा अथवा अकार नामक विष्णु को भी जन्म देने वाले, ऐश्वर्यादि छहों माहात्म्य से नित्य सम्पन्न, सर्वव्यापक, किसी के भी द्वारा न जीते जाने वाले, आदिरहित और अन्तरहित, गो अर्थात् पृथ्वी, ब्राह्मण, देवता और गौओं का हित करने वाले कृपा के सागर, लीला में मनुष्य शरीर धारण करने वाले, अपने भक्तों को आनन्द देने वाले, दुःखसमूहों को नष्ट करने वाले, वैदिक-सनातन धर्म के रक्षक और देवताओं को परित्राण देने वाले परब्रह्म परमात्मा हैं।

विशेष- "*अं विष्णुं जनयति इति अजः*" अर्थात् जो अकार के वाच्य विष्णु जी को भी जन्म देते हैं, उन श्रीराम को अज कहते हैं। जहाँ ब्रह्मा जी के लिए अज का प्रयोग होता है वहाँ अज शब्द की व्युत्पत्ति अधोलिखित है: ***अकारः विष्णु तस्मात् अकारात् जायते नाभिकमलतः प्रादुर्भवति इति अजः*** जो अकार यानी विष्णु जी की नाभि कमल से जन्म लेते हैं, उन ब्रह्मा जी को भी अज कहते हैं।

ताहि बैर तजि नाइय माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।
देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही।।
शरन गए प्रभु ताहु न त्यागा। बिश्व द्रोह कृत अघ जेहिं लागा।।
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन।।

भा०- हे नाथ! वैर छोड़कर उन भगवान् श्रीराम को मस्तक नवाइये, क्योंकि रघुनाथ जी प्रणाम करने वालों की आर्ति अर्थात् भय के नाशक हैं। हे नाथ! सर्वसमर्थ प्रभु को उनकी धर्मपत्नी श्रीसीता को दे दीजिये। बिना कारण प्रेम करने वाले भगवान् श्रीराम का भजन कीजिये। अपने शरण में जाने पर प्रभु श्रीराम उसका भी त्याग नहीं करते जिसको विश्वद्रोह का पाप लगा हुआ होता है। हे रावण! अपने मन में विचार कीजिये, जिन प्रभु श्रीराम का रामनाम तीनों प्रकार के तापों को नष्ट कर देता है, वे ही साकेताधिपति परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम श्रीअवध में प्रकट हुए हैं।

दो०- बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दशशीश।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीश।।३९(क)।।

भा०- मैं बार-बार आपके चरणों में लिपटता हूँ और प्रार्थना करता हूँ, हे दस सिरोंवाले रावण! मान, मोह, मद छोड़कर अयोध्यापति भगवान् श्रीराम का भजन करिये।

मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात।।३९(ख)।।

भा०- पुलस्त्य मुनि ने अपने शिष्य के द्वारा यह बात कहला भेजी है। सुन्दर अवसर पाकर मैंने भी आपके सामने वह बात कह दी।

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना।।
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।।

भा०- माल्यवान नामक रावण के एक अत्यन्त चतुर मंत्री ने उन विभीषण जी का वचन सुनकर बहुत सुख पाया अर्थात् माल्यवान बहुत प्रसन्न हुआ, उसने रावण से कहा, हे पुत्र! तुम्हारे छोटे भाई नीति के विभूषण अर्थात् अलंकार हैं। जो विभीषण कह रहे हैं, उसे हृदय में धारण करो।

रिपु उतकरष कहत शठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ ते कोऊ।।
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषन पुनि कर जोरी।।

भा०- रावण ने झुँझलाकर कहा, ये दोनों दुष्ट विभीषण और माल्यवान शत्रु के उत्कर्ष की बात कह रहे हैं। इन्हें कोई यहाँ से क्यों नहीं दूर कर देता? अर्थात् राक्षसों में से कोई इन दोनों को राजसभा में से दूर कर दो, फिर माल्यवान अपने घर चला गया, पुनः श्रीविभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे-

सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।।
कालराति निशिचर कुल केरी। तेहिं सीता पर प्रीति घनेरी।।

भा०- हे नाथ! पुराण और वेद ऐसे कहते हैं कि सुमति और कुमति अर्थात् सुबुद्धि और कुबुद्धि सबके हृदय में रहती है, एवं समय-समय पर निवास करती है। जब व्यक्ति भगवद्‌भजन करता है, तब उसके हृदय में सुमति आकर रहती है और जब भजन नहीं करता तब कुमति आकर रहती है। जो निरन्तर भजन करता है उसके हृदय में निरन्तर सुमति रहती है और जो भजन नहीं करता उसके हृदय में निरन्तर कुमति रहती है। जहाँ सुमति रहती है वहाँ अनेक प्रकार की सम्पत्ति रहती है और जहाँ कुमति अर्थात् कुबुद्धि आकर रहती है वहाँ विपत्ति और नाश होता है। तुम्हारे हृदय में विपरीत कुमति आकर बस गई है, तुम हित को अहित और शत्रु को मित्र मानने लगे हो। विपरीत कुमति का यह परिणाम है कि, अब तुम्हे सब कुछ उल्टा दिख रहा है, जैसे जो राक्षसकुल की कालरात्रि हैं उन्हीं श्रीसीता पर तुम्हारी बहुत-बड़ी प्रीति है। तुम यह नहीं समझ पा रहे हो कि ये श्रीसीता राक्षसों का सर्वनाश करके रहेंगी।

विशेष : इस प्रसंग में विभीषण जी ने रावण को तीन बार "नाथ" शब्द से सम्बोधित किया है यथा- ***नाथ नरक के पंथ***, मानस ५.३८, ***देहुनाथ प्रभु कहँ बैदेही*** मानस ५.३९.६ ***नाथ पुरान निगम अस कहहीं***-मानस-५.४०.५. इन सम्बोधनों के पीछे विभीषण जी के तीन अभिप्राय छिपे हैं, प्रथम विभीषण ये कहना चाहते है कि

तुम सबको कष्ट ही दे रहे हो। 'नाथ' शब्द नाथृ धातु से निष्पन्न हुआ है जिसके याचना, ऐश्वर्य, उपताप और आर्शीवाद ये चार अर्थ है। "***नाथाति इति नाथः*** यहाँ उपताप अर्थ के अभिप्राय से विभीषण ने कहा "***नाथ नरक के पंथ***" हे सबको कष्ट देने वाले रावण ! काम आदि नरक के मार्ग है, अथवा 'नाथ' शब्द नरक पंथ का भी विशेषण बन सकता है। विभीषण कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, नाथ अर्थात उपताप देने वाले नरक के पंथ है। दूसरे सम्बोधन में विभीषण 'नाथ' शब्द को याचना के अर्थ में ले रहे हैं "***नाथति याचते इति नाथ :***" अर्थात् हे रावण ! तुम तो भिक्षुक हो अब संसार से मांगना छोड़कर प्रभु श्रीराम की चरणों में सीता जी को समर्पित करके उन्हीं से अभय की भीख माँग लो "***देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही***"। यहाँ नाथ लोट लकार मध्यम पुरुष एक वचन का क्रिया पद है। '***नाथृ ञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु***' (पा.धा.पा. ६)। तृतीय सम्बोधन नाथृ धातु के आर्शीवाद अर्थ में अच् प्रत्यान्त होकर निष्पक्ष हुआ और वह पुराण तथा निगम का विशेषण भी बन गया "नाथ्यषे इति नाथः तत् सम्बुद्धौ हे नाथ" विभीषण कहते हैं हे रावण! यद्यपि तुम्हें ब्रह्मा जी एवं शिवजी द्वारा बहुत आर्शीवाद मिले हैं, परन्तु उनका तुम दुरुपयोग कर रहे हो जैसा सबको आर्शीवाद देने वाले पुराण और वेद भी कह रहे हैं। "नाथन्ते (आशाशते) इति नाथाः पुराण निगमाः।

दो०- तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अति हित होइ तुम्हार।।४०।।

भा०- हे बड़े भाई रावण! मैं तुम्हारे चरण पकड़कर यह उपहार माँग रहा हूँ, मेरा दुलार रख लो अर्थात् मेरे लाड़-प्यार की रक्षा कर लो। भगवती श्रीसीता को भगवान् श्रीराम को सौंप दो, तुम्हारा बहुत-बड़ा हित होगा।

बुध पुरान श्रुति सम्मत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी।।
सुनत दशानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।
जियसि सदा शठ मोर जियावा। रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहि भावा।।
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं।।

भा०- विभीषण जी ने विद्वानों, पुराणों और वेदों से सम्मत अपनी वाणी से व्याख्यान करके नीति कही, किन्तु उसे सुनते ही रावण क्रुद्ध होकर उठा और बोला, अरे खल! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है। अरे शठ! तू मेरा जिलाया हुआ सदैव जी रहा है और मूर्ख! अब तुझे शत्रु का पक्ष भा रहा है। अरे खल! क्यों नहीं कहता संसार में ऐसा कौन है, जिसे मैंने अपने भुजबल से नहीं जीता हो?

मम पुर बसि तपसिन पर प्रीती। शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।।
तुम पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजे हित होइ तुम्हारा।।

भा०- मेरे पुर में निवास करके तपस्वियों से प्रेम करता है, अरे दुष्ट! यहाँ से जाकर उन्हीं से मिल और उन्हीं को नीति सुना। इतना कहकर रावण ने विभीषण की छाती पर अपने वामचरण का प्रहार किया। विभीषण जी ने उसका बारम्बार चरण पकड़ा अथवा ऐसा कहकर रावण ने जब विभीषण जी की छाती पर चरण का प्रहार किया तब रावण को दण्ड देने के लिए उद्यत भगवान् श्रीराम जी के पदकमल को अनुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मण जी ने बार-बार पकड़ा और प्रभु को यह कहकर रोक लिया कि चौदह वर्षपर्यन्त पिता जी ने आपको नगर, पुर और ग्राम में जाने से निषेध किया है और फिर विभीषण जी ने आपको अभी स्मरण भी नहीं किया है। शिव जी, पार्वती जी से कहते हैं कि, हे उमा! सन्त की यही बड़ाई है, जो बुरा करने वालों की भी भलाई करते हैं। इधर विभीषण जी ने

रावण से कहा, हे राक्षसराज! आप बड़े भाई होने से मेरे पिता के समान हैं, आप ने भले ही मुझे मारा, परन्तु भगवान् श्रीराम जी को भजने से आपका हित ही होगा।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ।।

दो०- राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालबश तोरि।
मैं रघुबीर शरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि।।४१।।

भा०- इसके अनन्तर, अनल, पनस, सम्पाती और प्रमति इन चार मंत्रियों को साथ लेकर विभीषण जी आकाश मार्ग में गये और वहीं से सबको सुनाकर इस प्रकार कहने लगे, भगवान् श्रीराम सत्यसंकल्प, सर्वसमर्थ ईश्वर हैं। उनके संकल्प से ही तुम्हारा विनाश होगा, तुम्हारी यह सभा अब कालवश हो चुकी है। मैं अब रघुकुल के वीर श्रीराम जी के शरण में जा रहा हूँ अब मुझे दोष मत देना।

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भए निशिचर तबहीं।।
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी।।
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।

भा०- जिस समय विभीषण ऐसा कहकर श्रीराम की ओर चले, उसी समय रावण के सहित रावण पक्ष के राक्षस आयु से हीन हो गये। शिव जी ने कहा, हे पार्वती! साधुजनों का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याणों की हानि कर देता है। जिस समय रावण ने विभीषण जी का त्याग किया उसी समय वह अभागा रावण सम्पूर्ण विभवों से हीन हो गया।

विशेष- यहाँ तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त विभीषण शब्द का कर्त्ता के रूप में भी अन्वय होगा।

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।

दो०- जिन पायन की पादुका, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन नयननि अब जाइ।।४२।।

भा०- मन में बहुत से मनोरथ करते हुए विभीषण जी हर्षित होकर रघुनायक श्रीराम के पास चल पड़े वे मनोरथ कर रहे थे, अहो! मैं अत्यन्त शीघ्र प्रभु के पास जाकर श्रीराम जी के लाल कोमल, सेवकों को सुख देने वाले श्रीचरणकमलों के दर्शन करूँगा। जिन श्रीचरणों का स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या जी भवसागर से तर गईं, जो श्रीचरण दण्डक वन को पवित्र करने वाले हैं, जिन श्रीचरणों को जनकनन्दिनी श्रीसीता ने अपने हृदय में धारण करके अग्नि में निवास किया है और मायामयी श्रीसीता ने भी जिन श्रीचरणों को हृदय में धारण करके अशोक वाटिका में निवास किया है, जो श्रीचरण कपटमृग के साथ दण्डक वन की पृथ्वी पर दौड़े, जो श्रीचरण शिव जी के हृदयरूप तालाब के कमल हैं, आज मेरे अहोभाग्य हैं कि मैं उन्हीं श्रीचरणों को देखूँगा। जिन श्रीचरणों की पादुका में मन लगाकर श्रीभरत चौदह वर्षों से नन्दीग्राम में रह रहे हैं अब मैं जाकर उन्हीं श्रीचरणों को इन्हीं नेत्रों से देखूँगा।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा।।

भा०– इस प्रकार पूर्वोक्त छः मनोरथों के साथ छः प्रकार की शरणागतियों का निश्चय करके, प्रेमपूर्वक विचार करते हुए, विभीषण जी शीघ्र ही समुद्र के इस पार अर्थात् उत्तरी तट पर आ गये।

कपिन बिभीषन आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिशेषा।।
ताहि राखि कपि पति पहँ आए। समाचार सब ताहि सुनाए।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दशानन भाई।।
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीश सुनहु नरनाहा।।

भा०– वानरों ने विभीषण जी को आते देखा, तब उन्होंने जाना कि यह रावण का कोई एक विशिष्ट दूत है। विभीषण जी को शिविर–द्वार पर रखकर ही अथवा, आकाश मण्डल में ही रखकर उतरने के लिए मना करके वानर सुग्रीव जी के पास आये और उन्हें सब समाचार सुनाया। तब सुग्रीव जी ने भगवान् श्रीराम से कहा, हे रघुकुल के राजा प्रभु श्रीराम! दसमुख रावण का भाई आपसे मिलने आया है। प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव जी से कहा, मित्र! क्या करना चाहिये? अथवा, पूछिये वह कौन है? अथवा किस से पूछ रहे हैं, उसे ले आइये। सुग्रीव जी कहने लगे, हे मनुष्यों के नाथ श्रीरघुनाथ सुनिये।

जानि न जाइ निशाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
भेद हमार लेन शठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा।।

भा०– राक्षसों की माया जानी नहीं जाती, वे कामरूप होते हैं अर्थात् स्वेच्छाचारी होते हैं। यह किस कारण आया है? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह दुष्ट हमारा भेद लेने आया है, इसे बाँधकर रखना चाहिये।

सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन शरनागत भयहारी।।
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। शरनागत बच्छल भगवाना।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा, हे मित्र! तुमने अच्छी नीति विचारी है, परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरी प्रतिज्ञा है। प्रभु श्रीराम के वचन सुनकर, हनुमान जी प्रसन्न हुए और स्वगत कहने लगे कि भगवान् श्रीराम शरणागतों के वत्सल हैं अर्थात् शरणागतों के दोषों को भी समाप्त कर देते हैं।

दो०– शरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि।।४३।।

भा०– जो लोग अपने अहित का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य नीच और पापी होते हैं, उन्हें देखने में भी हानि होती है।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आए शरन तजउँ नहिं ताहू।।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

भा०– जिसको करोड़ों ब्राह्मण के वध का पाप लगा हो, उसको भी शरण में आने पर मैं नहीं छोड़ता। जिस समय जीव मेरे सन्मुख हो जाता है, उसी समय उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।।
जौ पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई।।

भा०– पापी व्यक्ति का यह जन्मजात स्वभाव होता है कि उसे कभी भी मेरा भजन नहीं भाता अर्थात् पापी मेरे नाम, रूप, लीला, धाम में रस की अनुभूति कर ही नहीं सकता। यदि वह (विभीषण) दुष्ट हृदय का होता तो वह क्यों मेरे सन्मुख आता?

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
भेद लेन पठवा दशशीशा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीशा।।
जग महँ सखा निशाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महँ तेते।।
जौ सभीत आवा शरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई।।

भा०- जिसका मन निर्मल होता है, वह मुझे प्राप्त कर लेता है, मुझे कपट, छल और छिद्र अर्थात् दोषों को छिपाना अथवा अवसरवादिता, ये सब नहीं भाते। हे सुग्रीव! यदि दस सिरवाले रावण ने विभीषण को भेद लेने भी भेजा हो तो भी हमें कुछ भी भय और हानि नहीं है। हे मित्र! संसार में जितने राक्षस हैं, उन सबको मेरे लक्ष्मण एक क्षण में मार सकते हैं। यदि विभीषण भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं तो मैं उन्हें प्राण के समान रखूँगा।

दो०- उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिधान।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान।।४४।।

भा०- कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम ने हँसकर कहा, विभीषण को दोनों प्रकार से ले आइये। अंगदादि, बन्दर, हनुमान जी को साथ लेकर "कृपालु श्रीराम की जय हो" इस प्रकार कहकर चल पड़े।

सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर।।
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता।।

भा०- सभी वानर आदरपूर्वक विभीषण जी को आगे करके जहाँ करुणा के खानिस्वरूप भगवान् श्रीराम थे वहाँ चल पड़े विभीषण जी ने नेत्रों को आनन्द-दान देने वाले दोनों भ्राता श्रीराम, लक्ष्मण जी को दूर से ही देखा।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।।

भा०- फिर छवि के निवासस्थान भगवान् श्रीराम को देखकर अपने पलकों का गिरना रोककर विभीषण जी टकटकी लगाकर स्तब्ध रह गये।

भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। श्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।।

भा०- भगवान् श्रीराम की लम्बी भुजायें, लालकमल के समान नेत्र, प्रणाम करने वालों के भय को नष्ट करने वाला श्यामल शरीर, सिंह के समान स्कन्ध एवं प्रभु का विशाल हृदय सुशोभित हो रहा था और उनका मुख अनन्त कामदेवों के मन को मोहित कर रहा था।

नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।।
नाथ दशानन कर मैं भ्राता। निशिचर बंश जनम सुरत्राता।।
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा।।

भा०- प्रभु के सौन्दर्य को देखकर विभीषण जी की आँखों में जल भर आया और शरीर रोमांचित हो गया। विभीषण जी ने मन में धैर्य धारण करके कोमल वचन कहे, हे नाथ! मैं रावण का छोटा भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस-वंश में हुआ है। हे श्रीराघवेन्द्र सरकार! जिसे स्वभाव से पाप प्रिय है, ऐसा मेरा तमोगुणी शरीर है, जैसे उल्लू को अंधकार पर स्नेह होता है, उसी प्रकार मुझे पाप पर स्नेह है।

दो०- स्त्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, शरन सुखद रघुबीर।।४५।।

भा०– मैं आपका सुयश कानों से सुनकर आपके शरण में आया हूँ। हे आर्ति, अर्थात् संकट को दूर करने वाले! हे संसार के भय को मिटाने वाले! हे शरणागतों को सुख देने वाले! हे रघुवीर सर्वसमर्थ प्रभु! आप मेरी रक्षा कीजिये...रक्षा कीजिये।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिशेषा।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिशाल गहि हृदय लगावा।।

भा०– इस प्रकार कहकर विभीषण जी को दण्डवत् करते हुए देखकर विशेष हर्ष के साथ प्रभु श्रीराम तुरन्त उठे। उनके दीन वचनों को सुनकर, विभीषण जी प्रभु के मन को भा गये और प्रभु श्रीराम ने आजानुबाहुओं से विभीषण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय हारी।।

भा०– छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ विभीषण जी से मिलकर भक्तों का भय हरण करने वाले प्रभु श्रीराम उन्हें (विभीषण जी को) अपने निकट बैठाकर यह वचन बोले–

कहु लंकेश सहित परिवारा। कुशल कुठाहर बास तुम्हारा।।
खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।
अब पद देखि कुशल रघुराया। जौ तुम कीन्ह जानि जन दाया।।

भा०– हे लंकेश! कहो, परिवार सहित कुशल से तो हो न। यद्यपि तुम्हारा निवास बहुत बुरे स्थान पर है। हे मित्र! तुम दिन–रात खलों की मण्डली में रह रहे हो, तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभ रहा है, मैं तुम्हारी सब पद्धति जानता हूँ। तुम नीति में निपुण हो और तुम्हे अनीति नहीं भाती है। हे तात! कदाचित् नरक में वास कर लेना श्रेष्ठ है, परन्तु विधाता दुष्ट का साथ न दें। तब विभीषण जी बोले, हे रघुकुल के राजा श्रीराम! अब आपके श्रीचरणों को देखकर कुशल ही है, जो आप ने मुझे अपना सेवक जानकर मुझ पर दया कर दी।

दो०– तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, शोक धाम तजि काम।।४६।।

भा०– जीव को तब तक न तो कुशल की प्राप्ति हो सकती है और न ही उसे स्वप्न में भी मानसिक विश्राम मिल सकता है, जब तक वह शोक के निवासस्थान, रूप, कामनायें छोड़कर आप श्रीराम का भजन नहीं करता।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।।
ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।।
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।।

भा०– तभी तक लोभ, मोह, मत्सर, मद, मान आदि नाना प्रकार के खल मनोविकार मन में बसते हैं, जब तक हाथ में धनुष–बाण धारण किये हुए और कटि प्रदेश में तरकस बाँधे हुए आपश्री रघुनाथ जी हृदय में नहीं बसते। राग–द्वेष रूप उल्लूओं को सुख देने वाली ममतामयी घनी अन्धेरी रात जीव के मन में तभी तक निवास करती है, जब तक आप प्रभु श्रीराम का प्रताप सूर्य वहाँ उदित नहीं हुआ रहता।

अब मैं कुशल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे।।
तुम कृपालु जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवशूला।।

भा०– हे श्रीराम! आपके श्रीचरणकमलों के दर्शन करके अब मैं कुशल हूँ। मेरे बहुत–बड़े भय समाप्त हो चुके हैं। तात्पर्य यह है कि, जो मैं रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के अनेक भयों से त्रस्त था वे सब अब नष्ट हो गये हैं। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल रहते हैं, उसे तीनों प्रकार के भय और तीनों प्रकार के ताप नहीं व्याप्त करते।

विशेष– देवता, मनुष्य और भूतों से होने वाला भय त्रिविध भय है, आधिदैविक, आधिदैहिक और आधिभौतिक ताप त्रिविध ताप है।

मैं निशिचर अति अधम सुभाऊ। शुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा।।

भा०– मैं अत्यन्त निकृष्ट स्वभाव वाला राक्षस हूँ, मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिन आप श्रीराम का रूप मुनियों के ध्यान में भी नहीं आता, उन्हीं सर्वसमर्थ आप भगवान् श्रीराम ने प्रसन्न होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

दो०– अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि शिव, सेब्य जुगल पद कंज।।४७।।

भा०– आज मेरा अत्यन्त असीम अहोभाग्य है कि कृपा और सुख के पुञ्जरूप आप भगवान् श्रीराम के ब्रह्मा जी और शिव जी के द्वारा भी सेवनीय युगल श्रीचरणकमलों को मैंने अपने नेत्रों से देखा।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुशुंडि शंभु गिरिजाऊ।।
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय शरन तकि मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउ सद्य तेहि साधु समाना।।

भा०– भगवान् श्रीराम बोले, हे मित्र विभीषण! मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, उसे काकभुशुण्डि जी, शिव जी तथा पार्वती जी जानते हैं। जो व्यक्ति चराचर अर्थात् जड़–चेतन का द्रोही हो, फिर भी मद, मोह, कपट, छल और मान को छोड़कर, भयभीत होकर, मुझको ही आश्रय मानकर, मेरी शरण में आये तो मैं उसे शीघ्र ही सन्तों के समान बना देता हूँ।

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी।।
समदरशी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धनु जैसे।।
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे।।

भा०– जो माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री, पत्नी–पति, शरीर, धन, घर, मित्र तथा परिवार इन सबकी ममतारूप तागों (धागों) को इकट्ठा करके उनकी डोरी अर्थात् रस्सी बटकर (बनाकर) उसी से अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है अर्थात् संसार की सभी ममताओं का आलम्बन मुझे बना लेता है। जो सर्वत्र समदर्शी होता है, जिसके मन में कोई इच्छा नहीं होती और जिसके मन में प्रसन्नता, शोक और भय नहीं होता। इस प्रकार का श्रीवैष्णवजन मेरे हृदय में किस प्रकार बसता है, जैसे लोभी एक क्षण के लिए भी धन को नहीं भूल पाता, उसी

प्रकार पूर्वोक्त श्रीवैष्णव को मैं मन से नहीं भूल पाता, आप जैसे सन्त मुझे प्रिय होते हैं। मैं किसी और के निहोरे अर्थात् कृतज्ञता के वश में होकर शरीर धारण नहीं करता अर्थात् मेरे अवतार में आप लोग ही निमित्त बनते हैं।

दो०- सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन के द्विज पद प्रेम।।४८।।

भा०- जो मुझ सगुणब्रह्म के उपासक होते हैं और जो परोपकार में निष्ठापूर्वक लगे रहते हैं, जिनका नियम दृढ़ होता है, जिन्हें ब्राह्मण के चरणों में प्रेम होता है, वे ही प्राणी मुझे मेरे प्राण के समान प्रिय होते हैं।

सुनु लंकेश सकल गुन तोरे। ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे।।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा।।
सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहि अघात श्रवणामृत जानी।।
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा।।

भा०- हे लंकापति विभीषण! तुम्हारे पास ये सभी गुण हैं, इसलिए तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। श्रीराम का यह वचन सुनकर सभी वानरों के समूह कहने लगे, कृपा समूह के आश्रय प्रभु श्रीराम की जय हो। प्रभु की वाणी सुनकर और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषण जी नहीं अघा रहे हैं और बारम्बार प्रभु के श्रीचरणकमलों को पकड़ लेते हैं। अपार प्रेम विभीषण जी के हृदय में नहीं समा रहा है, विभीषण जी बोले–

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपालु निज भगति पावनी। देहु सदा शिव मन भावनी।।

भा०- हे चर–अचर सहित इस संसार के स्वामी! हे प्रकृष्टता से प्रणाम करने वाले भक्तों के पालक! हे हृदय के अन्तर्यामी, आप से मिलने के प्रथम मेरे हृदय में कुछ वासना अर्थात् भोगों की इच्छा थी, वह भी आज आप प्रभु श्रीराम के श्रीचरण की प्रीति की सरिता अर्थात् नदी में बह गई। हे कृपालु! अब शिव जी के मन को निरन्तर भानेवाली अपनी पावनी भक्ति दे दीजिये।

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा।।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरस अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहिं सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।

भा०- युद्ध में धीर अर्थात् विभीषण जी को राजा बनाने के पश्चात् रावण की सम्भावित प्रतिक्रिया से न डरते हुए सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम ने "एवमस्तु" अर्थात् ऐसा ही हो, कहकर, लक्ष्मण जी से तुरन्त समुद्र का जल मँगवाया और बोले, हे मित्र! यद्यपि तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है, परन्तु संसार में मेरा दर्शन भी अमोघ है अर्थात् भक्त के न चाहने पर भी मैं उसके पूर्व की सांसारिक इच्छायें पूर्ण कर देता हूँ। इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीराम ने विभीषण जी को समुद्र के जल से तिलक कर दिया, उस समय आकाश से अपार पुष्पवृष्टि हुई।

दो०- रावन क्रोध अनल निज, श्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड।।४९(क)।।
जो संपति शिव रावनहिं, दीन्हि दिए दश माथ।
सोइ संपदा बिभीषण, सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।४९(ख)।।

भा०- अपने ही श्वास–रूपी वायु से उद्यत हुए, रावण की क्रोधाग्नि में जलते हुए विभीषण जी को प्रभु श्रीराम ने बचा लिया तथा उन्हें अखण्ड राज्य दे दिया। शिव जी ने जो सम्पत्ति दस मस्तकों के देने पर रावण को दी थी, रघुकुल के नाथ श्रीराम ने विभीषण जी को वही सम्पत्ति संकोचपूर्वक दे दी।

विशेष- शिव जी सबसे बड़े तपस्वी और भिखारी हैं, "***भीख माँगि भव खाहिं***" और श्रीराम राजा हैं। अतः भिखारी के ही समान सम्पत्ति देने में प्रभु को संकोच हो रहा है। शिव जी ने दस सिर देने पर लंका दी थी और वही लंका विभीषण जी को सर्वसमर्पण के पश्चात् भी दी जा रही है। अतः विभीषण को रावण की अपेक्षा कम दिया जा रहा है, यही प्रभु का संकोच है। शिव जी ने सजी हुई लंका रावण को दी थी और श्रीरघुनाथ, हनुमान जी द्वारा जलायी हुई लंका विभीषण जी को दे रहे हैं, यद्यपि प्रभु के संकल्प से वह पहले से भी सुन्दर हो जायेगी, किन्तु दान देते समय तो हनुमान जी द्वारा नष्टप्राय हैं ही, यही प्रभु का संकोच है।

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पशु बिनु पूँछ बिषाना।।
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु स्वभाव कपि कुल मन भावा।।

भा०- ऐसे श्रीराम को छोड़कर जो दूसरे स्वामियों का भजन करते हैं वे मनुष्य बिना सींग और पूँछ के पशु हैं। अपना सेवक जानकर प्रभु ने उन विभीषण जी को अपना लिया प्रभु का यह स्वभाव वानरकुल के मन को बहुत भाया।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी।।
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।

भा०- फिर सब कुछ जानने वाले, अन्तर्यामी रूप से सबके हृदय में निवास करने वाले, सर्वस्वरूप पूर्णरूप से सबसे रहित अर्थात् सभी से परे और समरूप होने से सभी से तटस्थ, नीति की रक्षा करने वाले, कारण विशेष से मनुष्य बने हुए, राक्षसों के समूह के नाशक भगवान् श्रीराम यह वचन बोले–

सुनु कपीश लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिय जलधि गंभीरा।।
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।

भा०- हे सुग्रीव और हे लंकापति विभीषण! सुनिये, यह गम्भीर सागर किस विधि से पार किया जाये, क्योंकि यह घड़ियालों जलसर्पों, और अनेक जाति की मछलियों से संकुल अर्थात् युक्त है। यह अत्यन्त अगाध और सब प्रकार से दुस्तर अर्थात् पार करने में बहुत कठिन है।

कह लंकेश सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक।।
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिय सागर सन जाई।।

भा०- लंकापति विभीषण जी ने कहा, हे रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम! सुनिये, यद्यपि आपके बाण करोड़ों सागर को सोखने में समर्थ हैं, फिर भी वेदों में ऐसी नीति गायी गई है कि सभी उपायों के समाप्त हो जाने के पश्चात् अंतिम उपाय के रूप में सागर को सोखने के लिए आग्नेयास्त्र का प्रयोग करना चाहिये, इसलिए प्रथम तो आप जाकर समुद्र से मार्ग देने के लिए प्रार्थना कीजिये।

दो०- प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपि धारि।।५०।।

भा०- हे प्रभु! सागर आप के कुलश्रेष्ठ हैं, क्योंकि आप के पूर्वज सगर के पुत्रों ने इसे उत्पन्न किया, इसलिए ये विचार करके उपाय कहेगा और बिना किसी प्रयास के ही सम्पूर्ण ऋच्छों और वानरों की सेना सागर पार कर जायेगी।

सखा कही तुम नीकि उपाई। करिय देव जौ होइ सहाई।।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा।।

भा०- हे मित्र! तुमने यह उपाय बहुत अच्छा कहा, यदि ईश्वर सहायक हों तो इसे करना चाहिये, परन्तु विभीषण जी की यह मंत्रणा लक्ष्मण जी के मन को नहीं भायी और श्रीराम का वचन सुनकर उन्होंने बहुत दु:ख पाया।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिय सिंधु करिय मन रोसा।।
कादर मन कहँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।

भा०- लक्ष्मण जी बोले, हे नाथ! दैव का क्या विश्वास, आप स्वयं देवों के भी देव हैं। मन में क्रोध कीजिये और सागर को सोख लीजिये। दैव तो अकर्मण्य कायरों के मन का एकमात्र आधार है। आलसी व्यक्ति ही दैव–दैव चिल्लाता है, कर्मठ व्यक्ति अपने कर्म की गुणवत्ता से भाग्य को भी बदल देता है, आप कायर नहीं हैं और न ही आलसी।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा।।
अस कहि प्रभु अनुजहिं समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिर नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।।

भा०- लक्ष्मण जी के वचन सुनकर रघुवीर श्रीराम हँसकर बोले, ऐसा ही करूँगा मन में धैर्य धारण करो। ऐसा कहकर छोटे भैया लक्ष्मण जी को समझाकर, समर्थ होकर भी रघुकुल के राजा श्रीराम रघुकुल के पूर्वज समुद्र को मनाने चले। प्रभु उस सागर के समीप गये, सर्वप्रथम मस्तक नवाकर प्रभु ने सागर को प्रणाम किया, फिर उसके तट पर कुश की चटायी बिछाकर बैठ गये अर्थात् अनशन व्रत प्रारम्भ किया।

विशेष : यहाँ ऐसेहिं शब्द कहकर भगवान् श्रीराम लक्ष्मण और विभीषण दोनों को संतुष्ट कर रहे हैं।

जबहिं बिभीषन प्रभु पहँ आए। पाछे रावन दूत पठाए।।
दो०- सकल चरित तिन देखे, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, शरनागत पर नेह।।५१।।
प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।।

भा०- जिस समय विभीषण जी प्रभु के पास आये थे, उसी समय रावण ने उनके पीछे–पीछे शुक और शारण नाम के दो दूत भेज दिये थे। उन लोगों ने कपटमय वानर का रूप धारण करके प्रभु के सम्पूर्ण चरित्र को देखा और विभीषण जी के राजतिलक के पश्चात् शरणागत पर स्नेहरूप प्रभु के गुण की हृदय में सराहना करने लगे। प्रभु के प्रति अत्यन्त प्रेम होने के कारण शुक–शारण को अपने रूप का छिपाव भूल गया और वे अपने राक्षस शरीर में ही आ गये तथा भगवान् की प्रशंसा और रावण की निन्दा करने लगे।

रिपु के दूत कपिन तब जाने। सकल बाँधि कपीश पहँ आने।।
कह सुग्रीव सुनहु सब बनचर। अंग भंग करि पठवहु निशिचर।।

भा०– तब वानरों ने उन्हें शत्रु का दूत जान लिया और सभी वानर ने शुक और शारण को बाँधकर वानरराज सुग्रीव जी के पास ले आये। सुग्रीव जी ने कहा, सभी वनचारी वानर–भालुओं! सुनो, अंग–भंग करके इन राक्षसों को रावण के यहाँ भेज दो।

विशेष– जैसे रावण की ओर से हनुमान जी के प्रति वर्तन हुआ था, रावण ने हनुमान जी महाराज के अंग–भंग की आज्ञा दी थी, यथा– ***अंग भंग करि पठिइय बंदर*** (मानस, ५.२४.९). सुग्रीव जी उसी इतिहास की पुनरावृत्ति करना चाहते हैं, यथा– ***अंग भंग करि पठवहु निशिचर*** (मानस, ५.५२.३).

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए।।
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे।।
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीश कै आना।।

भा०– सुग्रीव जी के वचन सुनकर वानर–भालु दौड़े और शुक–शारण को बाँधकर सेना के चारों ओर घसीटा, वानर बहुत प्रकार से उन्हें मारने लगे। वे दीनभाव से छोड़ने के लिए चिल्ला रहे थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा और उनके नाक–कान काटने का यत्न करने लगे। अन्त में शुक–शारण ने ब्रह्मास्त्र जैसा एक प्रयोग कर दिया और बोले, जो वानर हमारी नाक–कान काटे उसे अयोध्यापति श्रीराम की शपथ।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए।।
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती।।

दो०– कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम संदेश उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा काल तुम्हार।।५२।।

भा०– शुक–शारण के मुख से श्रीराम शपथ देने की बात सुनकर लक्ष्मण जी महाराज ने सभी वानरों को अपने निकट बुलाया उन्हें शुक–शारण पर दया लग आयी और लक्ष्मण जी ने हँसकर तुरन्त ही दोनों राक्षसों को बन्धन से और वानर–भालुओं के अधिकार से छुड़ा दिया और एक पत्र देते हुए कहा, शुक–शारण! यह पत्रिका रावण के हाथ में ही देना और कहना कि हे राक्षसकुल के नाशक रावण! पत्र में लिखे हुए लक्ष्मण जी के सन्देश का वाचन कर लो। उस मोहग्रस्त रावण से मेरा उदार सन्देश, मुखागर अर्थात् मौखिकरूप में कह देना (यह पत्र में नहीं लिख रहा हूँ।) हे रावण! श्रीसीता को समर्पित करके श्रीराम से मिलकर उनकी शरण में आ जाओ, नहीं तो तुम्हारा काल (श्रीरामरूप में) आ पहुँचा है।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा।।
कहत राम जस लंका आए। रावन चरन शीश तिन नाए।।

भा०– लक्ष्मण जी के चरणों में प्रणाम करके प्रभु की गुणगाथाओं का वर्णन करते हुए रावण के दूत शुक–शारण तुरन्त रावण के पास चल दिये। श्रीराम के गुणगणों को कहते हुए, वे लंका आये और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाया।

बिहँसि दशानन पूँछी बाता। कहसि न शुक आपनि कुशलाता।।
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।
करत राज लंका शठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।।
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई।।
जिन के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।।
कहु तपसिन कै बात बहोरी। जिन के हृदय त्रास अति मोरी।।

दो०- की भइ भेंट कि फिरि गए, स्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर।।५३।।

भा०- रावण ने हँसकर बाता (वार्त्ता) अर्थात् कुशल समाचार पूछा, अरे शुक! तू अपनी कुशलता क्यों नहीं कह रहा है? फिर विभीषण का कुशल कह, मृत्यु जिसके बहुत निकट आ गयी है। वह दुष्ट, राज्य करते हुए लंका को छोड़कर चला गया। वह भाग्यहीन, जौ का कीड़ा अर्थात् घुन बन जायेगा। तात्पर्यतः वानरी सेना के साथ वह भी मारा जायेगा। फिर भालु–वानरों की सेना के सम्बन्ध में बताओ, जो कठिन काल की प्रेरणा से लंका के पास तक चली आयी है। कोमलचित्त वाला बेचारा समुद्र ही जिनके जीवन का रक्षक बन गया है। फिर दोनों तपस्वियों का कुशल कहो, जिनके हृदय में मेरा बहुत–बड़ा डर है। क्या तुम्हारी उनसे भेंट हुई, क्या मेरा सुयश कानों से सुनकर वे दोनों भाई लौट गये? तू शत्रु दल के तेज और बल को नहीं कह रहा है, तेरा चित्त बहुत चकित (आश्चर्यचकित) हो रहा है।

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।
रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन बाँधि दीन्हे दुख नाना।।
स्रवन नासिका काटन लागे। राम शपथ दीन्हे हम त्यागे।।

भा०- (शारण चुप रहा और शुक ने कहा–) हे नाथ अर्थात् राक्षसों के ईश्वर और संसार के कष्टदाता तथा शिव जी से माँगकर वरदान प्राप्त करने वाले! आप कृपा करके जैसा पूछ रहे हैं, उसी प्रकार क्रोध छोड़कर मेरी बात मान लीजिये। जब आपके छोटे भाई विभीषण सागर–पार करके भगवान् श्रीराम से मिले, तो जाते ही श्रीराम ने उन्हें तिलक कर दिया अर्थात् आपके जीते जी विभीषण को लंका का राजा बना दिया। हम लोगों को कान से रावण का दूत सुनकर वानरों ने बाँधकर नाना दुःख दिये। हमारे नाक–कान काटने लगे, जब हम ने श्रीराम की शपथ दी, तब हम छोड़ दिए गए।

(**विशेष-** '*नाथृ याञ्चोपतापैश्वर्यशी :षु* यहाँ नाथृ धातु के तीनों अर्थों के अनुसार नाथ शब्द से रावण को सम्बोधित करके शुक ने कहा–)

पूँछेहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि शत बरनि न जाई।।
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिशाल भयकारी।।
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन महँ तेहि बल थोरा।।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिशाला।।

दो०- द्विबिद मयंद नील नल, अंगदादि बिकटासि।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जामवंत बलरासि।।५४।।

भा०- हे नाथ! आपने श्रीराम की सेना के बारे में पूछा तो उसके सम्बन्ध में हम दो लोग, दो मुखों से क्या कहेंगे? वह तौ सौ करोड़ मुखों से भी वर्णित नहीं की जा सकती। वानर–भालुओं की सेना में अनेक प्रकार के विकट, भयंकर मुखवाले, भयंकर ऋच्छ और वानर हैं। जिसने लंकापुर जलाया और आपके पुत्र अक्षकुमार को मारा सभी वानरों में उसका बल बहुत थोड़ा है। वहाँ के वीर तो असीम नाम वाले, कठिन और भयंकर हैं। बहुत से विशाल बन्दर अनेक हाथियों का बल धारण करते हैं। जिनमें द्विबिद, मयन्द, नील, नल, विकटासि, दधिमुख, केसरी, कुमुद, गव, जाम्बवान् तथा बल की राशि अंगद आदि वानर हैं।

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन सम कोटिन गनइ को नाना।।
राम कृपा अतुलित बल तिनहीं। तृन समान त्रैलोकहिं गिनहीं।।

भा०- ये सभी वानर सुग्रीव के समान हैं, इनके समान और भी नाना करोड़ वानर हैं, जिन्हें कौन गिने? अथवा "को" अर्थात् ब्रह्मा जी ही इनकी गणना चाहें तो कर लें। श्रीराम की कृपा से उन वानरों के पास अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकों को तिनके के समान गिनते हैं।

अस मैं सुना स्रवन दशकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।।
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुमहिं जीतै रन माहीं।।

भा०- हे रावण! मैंने ऐसा अपने कान से सुना है कि श्रीराम की सेना में अठारह पद्म यूथपति वानर हैं और एक–एक यूथ में कितने–कितने होंगे यह तो भगवान् ही जाने? हे नाथ! श्रीराम की सभा में वह वानर नहीं है, जो युद्ध में आपको नहीं जीत सके अर्थात् प्रत्येक वानर युद्ध में आपको जीतने की क्षमता रखता है।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा।।
शोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिशाला।।
मर्दि गर्द मिलवहिं दशशीशा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीशा।।
गर्जहि तर्जहि सहज अशंका। मानहुँ ग्रसन चहत हैं लंका।।

भा०- वानर वीर उत्कृष्ट क्रोध के कारण अपने हाथ मलते हैं, फिर भी श्रीरघुनाथ उन्हें लंका पर आक्रमण करने का आदेश नहीं दे रहे हैं। "हम मछलियों और सर्पों के सहित सागर को पीकर सोख लेंगे, नहीं तो विशाल पर्वत भरकर समुद्र को पाट देंगे, रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे" सभी वानर इसी प्रकार का वचन कहते हैं। वे स्वभाव से निर्भीक होकर गर्जना करते हैं और आपके पक्ष के राक्षस अर्थात् हम सबको तर्जना देते हैं, डराते हैं, मानो लंका को वे ग्रस लेना चाहते हैं।

दो०- सहज शूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहँ, जीति सकहिं संग्राम।।५५।।

भा०- वानर और भालु स्वभाव से शूरवीर हैं, पुनः उनके सिर पर प्रभु श्रीराम हैं अर्थात् सर्वशक्तिमान परमेश्वर श्रीराम उनके रक्षक हैं। हे रावण! वे युद्ध में करोड़ों कालों को भी जीत सकते हैं।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। शेष सहस शत सकहिं न गाई।।
सक सर एक शोषि शत सागर। तव भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर।।
तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पंथ कृपा मन माहीं।।

भा०- श्रीराम के तेज, बल और बुद्धि की अधिकता को तो लाखों शेष नहीं गा सकते। उनका एक बाण करोड़ों समुद्रों को सोख सकता है, फिर भी नीति–निपुण श्रीराम ने आप के भ्राता विभीषण से उपाय पूछा। फिर उनका वचन अर्थात् मंत्रणा सुनकर मन में कृपा को धारण करके समुद्र के पास प्रभु श्रीराम मार्ग की याचना कर रहे हैं। अपनी कृपा के कारण ही उसे सोखते नहीं।

सुनत बचन बिहँसा दशशीशा। जौ असि मति सहाय कृत कीशा।।
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।
सचिव सभीत बिभीषन जाके। बिजय बिभूति कहाँ जग ताके।।
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी।।

भा०– शुक का यह वचन सुनकर रावण ठहाके लगाकर हँसा, यदि राम के पास ऐसी बुद्धि है तभी तो वानरों को सहायक बनाया है। अरे मूर्ख! उनकी क्यों व्यर्थ की प्रशंसा कर रहा है? मैंने शत्रु के बल और बुद्धि की गम्भीरता की थाह पा ली है। जिसके पास विभीषण जैसा डरपोक मंत्री हो उसको संसार में विजय और विभूति अर्थात् ऐश्वर्यपूर्ण सम्पत्ति कहाँ से मिल सकती है? खल प्रकृति वाले रावण के वचन सुनकर दूत शुक के मन में क्रोध बढ़ आया, उसने समय का विचार करके लक्ष्मण जी द्वारा दी हुई पत्रिका निकाल ली।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि शठ लाग बचावन।।

भा०– शुक ने कहा, हे राक्षसराज! सभी को कष्ट देने वाले रावण! श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण जी ने यह पत्रिका दी है। इसका वाचन कराकर अपने हृदय को शीतल कर लीजिये। रावण ने बिहँसि अर्थात् विकृतभाव से तिरस्कारपूर्ण हँसी करके वह पत्रिका बायें हाथ से ले ली और वह दुष्ट मंत्री को बुलाकर उसी का वाचन कराने लगा।

दो०– बातनि मनहिं रिझाइ शठ, जनि घालसि कुल खीश।
राम बिरोध न उबरसि, शरन बिष्णु अज ईश।।५६(क)।।

भा०– हे दुष्ट! बातों में ही अपने मन को प्रसन्न करके अपने राक्षसकुल को तहस–नहस मत कर। श्रीराम का विरोध करके विष्णु जी, ब्रह्मा जी और शिव जी के शरण में जाकर भी तू नहीं बचेगा।

होहि मान तजि अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृंग।
होसि राम शर अनल खल, जनि कुल सहित पतंग।।५६(ख)।।

भा०– अरे दुष्ट! छोटे भाई विभीषण की भाँति अहंकार छोड़कर तू भी भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल का भ्रमर बन जा और श्रीराम के बाणरूप अग्नि का परिवार के सहित पतंगा मत बन।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दशानन सबहिं सुनाई।।
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा।।

भा०– पत्रिका सुनते ही मन में भयभीत होकर और ऊपर से मुस्कुराकर सबको सुनाकर दसमुखों वाला रावण कहने लगा, देखो तो भला छोटे तपस्वी का यह वाग्विलास अर्थात् वाणी का चातुर्य। यह पृथ्वी पर पड़ा हुआ भी हाथ से आकाश को छू रहा है।

कह शुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृत अभिमानी।।
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।

भा०– शुक ने कहा, हे नाथ! लक्ष्मण की सब वाणी सत्य है, आप अपने अहंकारी प्रकृति को छोड़कर समझिये। आप क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिये, हे नाथ! भगवान् श्रीराम से विरोध छोड़ दीजिये।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।
मिलत कृपा तुम पर प्रभु करिहैं। उर अपराध न एकउ धरिहैं।।
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै। इतना कहा मोर प्रभु कीजै।।
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह शठ तेही।।

भा०– रघुकुल के नाथ भगवान् श्रीराम का स्वभाव बहुत कोमल है, यद्यपि वे सम्पूर्ण संसार के राजा हैं। प्रभु श्रीराम मिलते ही तुम पर कृपा कर देंगे। तुम्हारे एक भी अपराध हृदय में धारण नहीं करेंगे। हे राक्षसी ईश्वर!

जनकनन्दिनी श्रीजानकी को श्रीरघुनाथ को दे दीजिये। हे नाथ! मेरा इतना कहा कर लीजिये। जब उसने रावण से श्रीसीता को देने की बात कही, तब दुष्ट रावण ने तेहिं, अर्थात् शुक के ऊपर भी चरण का प्रहार कर दिया अर्थात् लात मारकर राजसभा से निष्कासित कर दिया।

नाइ चरन सिर चला सो तहवाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहवाँ।।
करि प्रनाम निज कथा सुनाई। राम कृपा आपनि गति पाई।।

भा०– शुक, रावण के चरणों में प्रणाम करके और मन में ध्यान के माध्यम से पधारे हुए श्रीराघव के श्रीचरणों में प्रणाम करके वहाँ चला जहाँ कृपा के सागर रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम सागर के उत्तरी तट पर विराज रहे थे। प्रभु को प्रणाम करके अपनी कथा सुनायी। पहले वह शुक नाम का मुनि था, राक्षसों ने उससे बदला लेने के लिए उसके यहाँ आमंत्रित होकर भोजनार्थ अगस्त्य जी के उपस्थित होने पर उसी शुक मुनि की पत्नी के रूप में आकर भोजन में माँस परोस दिया था, जिससे अगस्त्य जी ने उसे राक्षस होने का शाप दिया और सत्य परिस्थिति जान लेने के पश्चात् उन्होंने श्रीराम के दर्शन करके ही उसे राक्षसभाव से मुक्त होने की आज्ञा दी। आज प्रभु को प्रणाम करके श्रीराम की कृपा से शुकजी ने अपनी गति पा ली।

ऋषि अगस्त्य के स्राप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ग्यानी।।
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहँ पगु धारा।।

भा०– हे पार्वती! महर्षि अगस्त्य जी के शाप के कारण यह राक्षस हो गया, पहले बहुत–बड़ा ज्ञानीमुनि था। श्रीराम जी के श्रीचरणों को बारम्बार वन्दन करके शुक मुनि अपने आश्रम को चले गये।

दो०– बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति।।५७।।

भा०– जड़बुद्धि का समुद्र प्रभु श्रीराम की प्रार्थना नहीं मान रहा है। अनशन करते–करते श्रीराम के तीन दिन बीत गये। तब भगवान् श्रीराम कुपित होकर बोले, भय के बिना प्रीति अर्थात् प्रेम नहीं हुआ करता।

लछिमन बान शरासन आनू। सोषौं बारिधि बिशिख कृशानू।।

भा०– हे लक्ष्मण! मेरा आग्नेय बाण और शारंग धनुष ले आओ, मैं आग्नेय बाण से ही यह सागर सुखा दूँ।

शठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती।।
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।
क्रोधिहि शम कामिहिं हरि कथा। ऊसर बीज बए फल जथा।।

भा०– दुष्ट के सामने विनय, कुटिल के सामने प्रेम, स्वभाव से कृपण के सामने सुन्दर नीति, ममता से लगे हुए संसारी जीव के सामने ज्ञान का कथन, अत्यन्त लोभी के सामने वैराग्य का व्याख्यान, क्रोधी के सामने शान्ति और कामी के सामने मुझ श्रीहरि की कथा, ये सब उसी प्रकार उद्देश्यहीन होते हैं, जैसे ऊसर में बीज–बोने से फल की प्राप्ति।

विशेष : यहाँ भगवान् श्रीराम ने समुद्र के सात दोषों की चर्चा की है अर्थात् समुद्र शठ है, इसलिए विनय नहीं सुन रहा है। यह कुटिल होने के कारण मेरी प्रीतिभरी वाणी का मूल्यांकन नहीं कर रहा है। यह कृपण है इसलिए मेरी सुन्दर नीति की अनदेखी करके मार्ग नहीं दे रहा है। इसे अपनी रत्न राशि पर ममता है अतएव यह मुझ परमात्मा का ज्ञान कथन नहीं सुनना चाहता। इसे रत्न और जल पर लोभ है, इसलिए यह मेरी विरति अर्थात् वैराग्य प्रकृति से नहीं परिचित हो रहा है, इसे आशंका है कि राम मेरे रत्नों को लूट ले जायेंगे। यह क्रोधी प्रकृति

का है इसीलिए मेरे शम अर्थात् शान्ति प्रस्ताव को ठुकरा रहा है। यह समुद्र कामी अर्थात् अपनी अनेक नदी पत्नियों के प्रति काम केल में अनुरक्त रहता है, इसलिए मुझ श्रीहरि की कथा नही सुनना चाहता और मेरे कथन पर ध्यान नहीं देता। अगले दोहे में समुद्र इन सातों दोषों की प्रतिक्रिया स्वरूप सात पंक्तियों में अपना मन्तव्य प्रस्तुत करेगा।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मन लछिमन के मन भावा।।
संधानेउ प्रभु बिशिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना।।

भा०– ऐसा कहकर सम्पूर्ण जीवों के स्वामी प्रभु श्रीराम ने शारंग धनुष को चढ़ाया। प्रभु का यह मत लक्ष्मण जी के मन में भा गया। प्रभु ने धनुष पर भयंकर आग्नेय बाण का सन्धान किया। तब समुद्र के हृदय के भीतर अर्थात् मध्य में ज्वाला उठी, घड़ियाल, सर्प और मछलियों के समूह अकुला गये। जब सागर ने अपने भीतर के जन्तुओं को जलते हुए जाना तब वह अहंकार छोड़कर स्वर्ण के थाल में अनेक मणियों को भरकर, उसी उपहार के साथ ब्राह्मण के रूप में प्रभु श्रीराम के समक्ष आया।

दो०– काटेहि पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न कान खगेश सुनु, डाटेहिं पै नव नीच।।५८।।

भा०– भुशुण्डि जी गरुड़देव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, हे पक्षियों के ईश्वर गरुड़ जी! कोई कितने भी यत्न से सींचे पर केला काटने पर ही फलता है, उसी प्रकार नीच प्रकृति का व्यक्ति प्रार्थना से नहीं मानता वह डाँटने पर ही झुकता है।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन कै नाथ सहज जड़ करनी।।
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।।

भा०– समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के श्रीचरण पकड़ लिए और बोला, हे नाथ! आप मेरे सभी सात अवगुणों को क्षमा कीजिये। हे भगवन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनकी करनी अर्थात् इनके कार्य, स्वभाव से जड़ होते हैं इसीलिए मैंने आपका विनय नहीं माना। आपकी प्रेरणा से इन्हें सृष्टि के लिए माया ने उत्पन्न किया है, इसीलिए मैं आपसे प्रीति नहीं कर पाया, क्योंकि माया मुझे कुटिलता नहीं छोड़ने देती। इस प्रकार सद्ग्रन्थ अर्थात् वेद के शिरोभाग उपनिषदों ने गाया है। जिसके लिए जिस प्रकार प्रभु की आज्ञा है, वह उसी प्रकार रहने में सुख प्राप्त करता है। मैंने अपनी आज्ञा का उल्लंघन किया क्योंकि मुझमें कार्पण्य रूप दोष था।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।।
ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।।

भा०– आपने बहुत अच्छा किया जो मुझे शिक्षा दी, क्योंकि मैं ममता ग्रस्त था फिर मेरी मर्यादा भी तो आपकी दी हुई है। यदि आप मुझे सूखा देंगे तो आपके द्वारा बनायी हुई मेरी अलंघ्य मर्यादा नष्ट हो जायेगी। ढोल अर्थात् ढोल से उपलक्षित घनवाद्य के जिज्ञासु, गवाँर अर्थात् विषयभोग में लिप्त प्राणी, शूद्र अर्थात् शोक से असंतुलित वर्णाश्रम के कर्म से हीन प्राणी, हाथी–घोड़े आदि पशु और नारी अर्थात् अशिक्षित महिला, ये सब ताड़न अर्थात्

शिक्षण के अधिकारी हैं। पूर्वपंक्ति में कही हुई सिख का समर्थन करते हैं कि मैं भी गवाँर हूँ, अतः शिक्षा अपेक्षित है। अब मेरी लोभ प्रवृत्ति समाप्त हो जाएगी।

विशेष– यहाँ की परिस्थिति न जानकर अनभिज्ञ लोग कुशंका करते हैं। कौटिल्य के अनुसार ताड़न का अर्थ शिक्षण है– ***"तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताड़येत न तु लालयेत्"*** गोस्वामी जी का मानना है कि ढोल आदि को बजाने वाले, गवाँर अर्थात् गवाँरू भोगों में लगे हुए, शूद्र अर्थात् अपने कर्त्तव्यों को छोड़कर चिन्ता में व्याकुल लोग, पशु अर्थात् उपयोग में आने वाले तोता, मैना, बन्दर, हाथी आदि और नारी अर्थात् महिला ये सभी ताड़न अर्थात् शिक्षण के अधिकारी हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई।।
प्रभु आग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुमहिं सोहाई।।

भा०– आपके प्रताप से मैं सूख जाऊँगा, सेना उतरेगी इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं है अर्थात् इसमें मेरी कोई मर्यादा का प्रश्न नहीं है। अब मैं क्रोध छोड़ रहा हूँ। वेद ने आपकी आज्ञा को अपेल अर्थात् अनुलंघ्य बताया है। वेदों के अनुसार कोई भी आपकी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। आपकी आज्ञा हो तो मैं सूख जाऊँ, परन्तु मेरी मर्यादा का भी आपको ध्यान रखना है। मैं शीघ्र वही करूँ, जो आपको अच्छा लगता हो अर्थात् यदि सुखाना चाहें तब आग्नेय बाण छोड़ दीजिये, यदि बचाना चाहते हों तब इसे किसी दूसरे लक्ष्य पर छोड़िए। अब मैं निष्काम होकर आप श्रीराम का शरणागत हो चुका हूँ।

दो०– सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटक, तात सो कहहु उपाइ।।५९।।

भा०– समुद्र के अत्यन्त विनम्र वचन सुनकर कृपालु श्रीराम ने मुस्करा कर कहा, हे मान्यवर! जिस प्रकार से वानरी सेना सागर–पार उतर सके, आप वही उपाय बताइये। मुझे आपको सुखाने में कोई आग्रह नहीं है, परन्तु वानरी सेना के पार उतरने का उपाय चाहते हैं। अतः आप वही उपाय बतायें जिससे आप अपने स्वरूप में भी बने रहें और मेरी वानरी सेना भी पार चली जाये।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं ऋषि आशिष पाई।।
तिन के परस किए गिरि भारे। तरिहैं जलधि प्रताप तुम्हारे।।

भा०– हे नाथ! नील–नल नामक दोनों वानर सगे भ्राताओं ने बाल्याकाल में ही महर्षि का आशीर्वाद पाया है। अथवा, नील और नल नामक दोनों वानर सहोदर भाई हैं, इन्होंने बाल्यकाल में ऋषि का आशीर्वाद पाया है। इनके स्पर्श करने मात्र से बड़े–बड़े पर्वत आपके प्रभाव से समुद्र में तैरेंगे आशय यह है कि नील–नल के स्पर्श से पर्वत सागर में नहीं डूबेंगे और आपके प्रताप से परस्पर जुड़ जायेंगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई।।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहिं यह सुजस लोक तिहुँ गाइय।।

भा०– पुनः मैं भी आप प्रभु श्रीराम की प्रभुता को हृदय में धारण करके अपने बल का अनुमान करके, अथवा वानरी सेना का अनुमान करके सहायता करूँगा। तब मेरी लहरें उद्धत नहीं होंगी। इस प्रकार से आप मुझ सागर में सेतु बाँध दीजिये, जिससे आपका यह सागर सेतुबन्ध सुयश तीनों लोकों के लोग गाते रहें। इस दोहे के तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त बल शब्द शक्ति और सेना इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। समुद्र का मन्तव्य है कि वह सामुद्रिक शक्ति और वानरी सेना इन दोनों का सन्तुलन रखते हुए प्रभु की सहायता करेगा।

एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ नर खल अघ रासी।।
सुनि कृपालु सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।

भा०– हे नाथ! अपने इस आग्नेय बाण से मेरे उत्तरी तट पर निवास करने वाले, मल के राशि, मनुष्यों की आकृति में खलप्रकृति के प्राणियों को आप मार डालिए। कृपालु, युद्ध में अविचल अर्थात् स्थिर रहने वाले भगवान् श्रीराम ने सागर की पीड़ा सुनकर उसे तुरन्त हर लिया अर्थात् आग्नेय बाण का उत्तरी तट पर प्रयोग करके सभी धर्म विरोधियों को मार डाला।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी।।
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा।।

भा०– भगवान् श्रीराम के बहुत–बड़े बल और पौरुष को देखकर समुद्र रोमांचित होकर सुखी हो गया। समुद्र ने प्रभु को सम्पूर्ण चरित्र सुनाया और प्रभु के श्रीचरणों की वन्दना करके अपने भवन को चला गया।

छं०– निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहिं यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ।।
सुख भवन संशय शमन दमन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत शठ मना।।

भा०– समुद्र अपने भवन को गया, रघुपति भगवान् श्रीराम को यह मत बहुत अच्छा लगा। कलियुग के पाप को हरने वाले इस चरित्र को मुझ से अभिन्न कवि तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया। हे मेरे शठ मन! संसार की सम्पूर्ण आशायें और सभी के प्रति किये हुए विश्वास को छोड़कर सुख के आश्रय, संशयों को नष्ट करनेवाले, रघुपति, रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के गुणगणों को निरन्तर गा और निरन्तर सुन।

दो०– सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जल यान।।६०।।

भा०– जो लोग आदरपूर्वक सम्पूर्ण शुभमंगलों को देने वाले रघुकुल के नायक परब्रह्म भगवान् श्रीराम के गुणगान को सुनते हैं तथा सुनेंगे वे लोग बिना जल के जहाज के ही भवसागर को पार करते हैं और पार करेंगे।

* नवाहपारायण, सातवाँ विश्राम *

* मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम *

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने जनरंजनं नाम पंचमं सोपानं सुन्दरकाण्डं सम्पूर्णम्।

।श्रीसीतारामापर्णमस्तु।

इस प्रकार सम्पूर्ण कलियुग के पाप को नष्ट करनेवाले गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी द्वारा विरचित् श्रीरामचरितमानस में जनरञ्जन नामक पाँचवाँ सोपान सुन्दरकाण्ड सम्पन्न हुआ। यह श्रीसीताराम जी को समर्पित हो।

श्री रामभद्राचार्येण कृता भावार्थबोधिनी मानसे सुन्दरकाण्डे भक्त्यार्थं राष्ट्रभाषया।

।।श्रीराघवःशन्तनोतु।।

सुन्दरकाण्ड समाप्त

।।श्री सीताराम।।

श्री गणेशाय नमः

श्रीसीतारामौ विजयेते

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

षष्ठ सोपान

युद्धकाण्ड

मंगलाचरण

श्रीः

भावार्थबोधिनी टीका

धुन्वन् धन्वं विधन्वं श्रितशरमुदधिं ह्रेपयन्नुग्रमर्चन्।
प्राच्र्छन्लंकां सपंकां प्रसभमपहरन् रावणावग्रहार्तिम्।
चिन्व्यंश्चम्वा कपीनां कुणपकुलरजो रंजयन्नार्षहारान्।
सीतातापं विमुष्णन् कमभिदिशतुयन् कोसलान् राममेघः।।१।।
धुनोतु धूर्जटिर्धूलिं जटापादाम्बुनामुना।
यद्दृशः सत्तृषो भान्ति रामचन्द्रचकोरिकाः।।२।।
नत्वा श्रीतुलसीदासं षष्ठे काण्डे मयोच्यते।
श्री रामभद्राचार्येण हिन्द्यां भावार्थबोधिनी।।३।।

भा०– गोस्वामी तुलसीदास जी सर्वप्रथम श्रीसीताराम जी का नाम स्मरण करते हैं और फिर श्री गणेशाय नमः अर्थात् श्रीगणपति को नमस्कार अथवा श्री जी के गणों के ईश्वर हनुमान जी को नमस्कार (*श्रीयः गणा श्री गणाः तेषां ईशः श्री गणेशः तस्मै श्री हनुमते नमः*)। भगवान् श्रीसीताराम जी सभी देवताओं से उत्कृष्ट हैं और निरन्तर विजयश्री के साथ विराजमान हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित् श्रीरामचरितमानस में छठे सोपान युद्धकाण्ड का प्रारम्भ होता है। इसमें भी तीन श्लोक में मंगलाचरण प्रस्तुत किया गया है। प्रथम श्लोक में स्रग्धरा वृत्त में भगवान् श्रीराम की स्तुति की गई है। द्वितीय श्लोक शार्दूल–विक्रीडित् वृत्त में भगवान् शिव जी की स्तुति के लिए लिखा गया है। तृतीय श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है इसमें गोस्वामी जी ने शिव जी से कल्याण की कामना की है।

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्।।१।।

भा०– काम के शत्रु शिव जी के सेव्य अर्थात् आराध्य, संसार के भय का हरण करने वाले, कालरूप मतवाले हाथी के लिए सिंहस्वरूप श्रेष्ठयोगियों के लिए ज्ञान में गम्य अर्थात् शुक, सनकादि श्रेष्ठयोगी जिन्हें ज्ञान से प्राप्त कर पाते हैं, सभी कल्याण गुणगणों के महासागर, कभी भी किसी के द्वारा न पराजित होने वाले, हेय गुणों से रहित

और जन्मादि विकारों से रहित तथा अपने भक्तों के विकारों को निरस्त करने वाले, माया से परे, देवताओं के ईश्वर, खल प्रकृतिवाले राक्षसों के वध में नित्य तत्पर, वेदज्ञ तथा तपस्या, शास्त्र और जन्म इन तीनों से सम्पन्न, स्वकर्मनिष्ठ ब्राह्मणसमूह को एकमात्र देवता माननेवाले, वर्षा के लिए उद्यत मेघ के समान श्याम शरीर, कमल नेत्र, सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा के रूप में वर्तमान, देवाधिदेव भगवान् श्रीराम को मैं वन्दन करता हूँ।

शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकपालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमिड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशङ्करं कामहम्।।२।।

भा०– शंख और चन्द्रमा के समान श्वेत और मधुर प्रकाशवाले तथा शंख और चन्द्रमा को भी जिनसे आभा प्राप्त हुई है, ऐसे अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याघ्र–चर्म को वस्त्ररूप में धारण करने वाले, गले में कालकूट विष, हृदय पर सर्प और कण्ठ में कपाल की माला को आभूषण के रूप में धारण करने वाले, जिन्हें गंगा जी और द्वितीया के चन्द्रमा प्रिय हैं अर्थात् प्रियता के कारण भगवती गंगा जी और द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले काशीपुरी के ईश्वर, कलियुग के दोष समूहों को नष्ट करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, स्तुति करने योग्य, श्रीपार्वती के पति, गुणों के सागर, काम को नष्ट करने वाले, भगवती श्रीसीता द्वारा अनुगृहीत शिव जी को मैं तुलसीदास नमन करता हूँ।

विशेष– भगवान् के श्रीचरणकमल के प्रक्षालन जल से प्रकट होने के कारण गंगा जी, शिव जी को प्रिय हैं और भगवान् के नाम से जुड़ने के कारण और भगवान् श्रीराघव सरकार के श्रीचरण नख के समान आकारवाले होने के कारण शिव जी को द्वितीया के चन्द्रमा प्रिय हैं।

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे।।३।।

भा०– जो कल्याणमय शिव जी, श्रीरामनाम परायण सन्तों को अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष भी दे देते हैं और जो खलों के लिए दण्ड का विधान करते हैं, वही भगवान् शङ्कर जी मेरे लिए कल्याण का विस्तार करें।

दो०– लव निमेष परमाणु जुग, बरष कलप शर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड।।

भा०– लव निमेष, परमाणु, कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चारों युग, वर्ष और कल्प ही जिन भगवान् श्रीराम के प्रचण्ड बाण हैं और अखण्डकाल जिनका धनुष है, अरे मन! ऐसे श्रीराम का तू क्यों नहीं भजन करता?

विशेष– काल, सखण्डकाल और अखण्डकाल की दृष्टि से अथवा विभाज्य और अभाज्य दृष्टि से दो प्रकार का है। प्रभु श्रीराम के बाण, परमाणु, लव–निमेष, वर्ष और कल्प के समान हैं और धनुष अविभाज्य और अखण्डकाल के समान है अर्थात् भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण समय के प्रेरक हैं।

सो०– सिंधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटक।।
सुनहु भानुकुल केतु, जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं।।

भा०- समुद्र का वचन सुनकर सर्वसमर्थ श्रीराम ने मंत्रियों को बुलाकर इस प्रकार कहा, अब किस कार्य से विलम्ब किया जा रहा है? समुद्र पर सेतु बनाओ और उसी से सेना सागर पार उतर चले। जाम्बवान जी ने हाथ जोड़कर कहा, हे सूर्यकुल की पताकास्वरूप सारे संसार के स्वामी भगवान् श्रीराम! सुनिये, आपके नामरूप सेतु पर चढ़कर, संसार के विषयों में न रमण करने वाले साधक-जीव भवसागर को पार कर जाते हैं।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा।।
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। शोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी।।
तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा।।
सुनि असि उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी।।

भा०- तो फिर यह छोटा-सा सागर पार करने में कितनी देर लगेगी? जाम्बवान जी का ऐसा वाक्य सुनकर, फिर पवनपुत्र हनुमान जी ने कहा, हे प्रभो! आपके प्रतापरूप विशाल बड़वानल प्रथम ही सागर का जल सोख लिया है, यह सागर आपके द्वारा मारे हुए शत्रुओं की विधवा पत्नियों के रुदन अश्रुधारा से फिर भर गया, इसी कारण यह खारा हो गया अर्थात् हे प्रभु! यह सागर तो आपके पराक्रम का ही सूचक है। इस बार भी आप राक्षसराज रावण का संहार करेंगे तो उसकी विधवाओं के अश्रु से दूसरा सागर बन सकता है। पवनपुत्र हनुमान जी की इस प्रकार की अतीत कालिक उक्ति सुनकर, भगवान् श्रीराम के शरीर की ओर देखकर सम्पूर्ण वानर प्रसन्न हुए।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहिं सब कथा सुनाई।।
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं।।
बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती इक मोरी।।
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू।।
धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन के जूथा।।

भा०- जाम्बवान जी ने दोनों भाई नल, नील को बुला लिया और उन्हें समुद्र द्वारा कही हुई सारी कथा सुना दी तथा बोले, हे नल-नील दोनों भाई! मन में प्रभु श्रीराम के प्रताप का स्मरण करके सागर में सेतु का निर्माण करो। तुम्हें कोई प्रयास नहीं करना है और न ही तुम्हें कोई प्रयास अर्थात् श्रम होगा। सब कुछ प्रभु श्रीराम करेंगे।, वे तो तुम्हें निमित्त मात्र बना रहे हैं। फिर जाम्बवान जी ने वानरसमूहों को बुला लिया और कहा, सभी लोग मेरी एक प्रार्थना सुनिये, हे वानर-भालुओं! हृदय में भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल को धारण करो और एक कौतुक करो। हे भयंकर वानरों के समूह! दौड़ो और वृक्षों और पर्वतों के समूह को ले आओ।

सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा।।

दो०- अति उतंग तरु शैलगन, लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नील कहँ, रचहिं ते सेतु बनाई।।१।।

भा०- जाम्बवान जी के वचन सुनकर, वानर-भालु "हू-हा" वानरों के शब्दों में गर्जन करके तथा रघुवीर श्रीराम के प्रताप समूहों की जय हो! ऐसा कहकर चल पड़े अथवा, जाम्बवान जी के वचन सुनकर, भगवान् श्रीराम के प्रताप समूह के मूर्तिमान विग्रह वानर लोग "हू-हा" करते हुए और भगवान् श्रीराम की जय कहते हुए चल पड़े वानर और भालु खेल-खेल में अत्यन्त विशाल वृक्षों तथा पर्वत समूहों को उखाड़ लेते हैं और लाकर नल-नील को दे देते हैं। उन्हीं अर्थात् वृक्षों और पर्वतों से बनाकर (नल-नील) सेतु की रचना कर रहे हैं।

शैल बिशाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं।।

भा०- वानर लोग ले आकर बड़े-बड़े पर्वत देते हैं, उन्हें नल और नील गेंद की भाँति ले लेते हैं और वे सेतुबन्धन में लगे हैं।

विशेष- वाल्मीकीय रामायण के अनुसार नल ने पाँच दिनों में बीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु बनाकर तैयार कर दिया। मानस जी के अनुसार नल-नील दोनों ने मिलकर सेतु बनाया। यह अन्तर कल्प-भेद से समाहित कर लेना चाहिये।

देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना।।
परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी।।
करिहउँ इहाँ शंभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना।।
सुनि कपीश बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए।।
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।

भा०- सेतु की अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कृपासिन्धु भगवान् श्रीराम हँसकर कोमल वचन बोले, यह द्रविड़ देश की पृथ्वी बहुत रमणीय और उत्तम है, इसकी महिमा असीम है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं यहाँ बारहवें रामेश्वर ज्योतिर्लिंग रूप में शिव जी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह श्रेष्ठसंकल्प उत्पन्न हुआ है अथवा यह मेरे हृदय का पूज्यसंकल्प है। श्रुतियाँ मुझे सत्यसंकल्प कहती हैं। प्रभु का यह संकल्प सुनकर वानरराज सुग्रीव जी ने बहुत से दूत भेजे और दक्षिणापथ में रहनेवाले सभी श्रेष्ठमुनियों को बुला ले आये। भगवान् श्रीराम ने बारहवें ज्योतिर्लिंग की स्थापना करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की और बोले, शिव जी के समान मुझे और कोई दूसरा प्रिय नहीं है।

शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
शङ्कर बिमुख भगति चह मोरी। सो नर मूढ़ मंद मति थोरी।।

भा०- जो शिव जी का द्रोही होकर मेरा दास कहलाता है, वह मनुष्य मुझे स्वप्न में भी नहीं भाता। जो शङ्कर जी से विमुख होकर मेरी भक्ति चाहता है, वह प्राणी मूर्ख, निकृष्ट और अल्पबुद्धिवाला है।

दो०- शङ्कर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महँ बास।।२।।

भा०- जो शिव जी के प्रिय और मेरे द्रोही हैं तथा जो शिव जी का द्रोह करके मेरा दास बनना चाहते हैं, वे दोनों प्रकार के प्राणी एक कल्पपर्यन्त घोर नरक में निवास करते हैं।

जे रामेश्वर दरशन करिहैं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहैं।।
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि।।

भा०- जो मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर ज्योतिर्लिंग का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक चले जायेंगे। जो गंगोत्री से गंगाजल ले आकर रामेश्वरम् में चढ़ायेगा, वह साधक सायुज्य मुक्ति पा जायेगा।

होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं। भगति मोरि तेहि शङ्कर देइहिं।।
मम कृत सेतु जे दरसन करिहैं। ते बिनु श्रम भवसागर तरिहैं।।
राम बचन सब के मन भाए। मुनिवर निज निज आश्रम आए।।

भा०- जो निष्काम होकर, छल छोड़कर श्रीरामेश्वरम् की सेवा-पूजा करेंगे उन्हें श्रीरामेश्वर शङ्कर जी मेरी भक्ति दे देंगे। मेरे द्वारा किये हुए अर्थात् बनाये हुए सेतु का जो दर्शन करेंगे वे बिना श्रम के भवसागर से पार हो जायेंगे।

भगवान् श्रीराम के वचन सभी के मन में भा गये और रामेश्वर–स्थापना के पश्चात् सभी श्रेष्ठ मुनि अपने–अपने आश्रम को आ गये।

विशेष- शिवलिंग की स्थापना के पश्चात् जब मुनियों ने इसका नाम पूछा तब भगवान् श्रीराम जी ने कहा, ये रामेश्वर नाम से प्रसिद्ध होंगे। जब मुनियों ने अर्थ पूछा तब भगवान् श्रीराम ने तत्पुरुष समास करते हुए कहा, "***रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः***"अर्थात मुझ राम के ईश्वर को ही रामेश्वर कहते हैं। तब तक शिवलिंग से स्वर निकला नहीं रामेश्वर नाम में बहुव्रीहि समास होगा–"***रामः ईश्वरः यस्य स रामेश्वरः***" अर्थात् श्रीराम जिसके ईश्वर हैं, वही मैं हूँ रामेश्वर शिव। मुनियों ने कहा, हम तो इस नाम में कर्मधारय समास करेंगे, "***राम एव ईश्वरः रामेश्वरः***" अर्थात् श्रीराम ही ईश्वर यानी शिव जी हैं। श्रीराम और शिव जी में कोई अन्तर नहीं है। "***रामस्तत्पुरुषं प्राहः बहुव्रीहिं महेश्वरः रामेश्वर समासे तु मुनयः कर्मधारयम्।***"

गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती।।
बाँधेउ सेतु नील नल नागर। राम कृपा जस भयउ उजागर।।
बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई।।
महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन कइ करनी।।

दो०- श्री रघुबीर प्रताप ते, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन।।३।।

भा०- शिव जी पार्वती जी को सावधान करते हुए कहते हैं कि, हे पर्वतपुत्री पार्वती! रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की यह रीति अर्थात् परम्परा है कि वे अपने चरणों में प्रणत् अर्थात् प्रणाम करने वालों पर यानी शरणागतों पर सदैव प्रीति करते हैं। श्रीराम की कृपा से चतुर नल–नील ने सेतु बाँधा, परन्तु उनका यश उजागर अर्थात् प्रसिद्ध हो गया। जो पर्वत स्वयं डूब जाते हैं और दूसरों को भी डुबो देते हैं, वे ही जहाज की भाँति बन गये। यह समुद्र की कोई वरणीय महिमा नहीं है न ही पत्थरों का गुण है, और न ही नल–नील नामक वानरों का कौशल है। भगवान् श्रीरघुवीर के प्रताप से बड़े–बड़े पाषाण भी तैरे, जो स्तम्भ आदि के नहीं होने पर भी सागर में नहीं डूबे। वे लोग मन्दबुद्धि हैं जो ऐसे अलौकिक, प्रभावशाली भगवान् श्रीराम को छोड़कर किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं।

विशेष- तात्पर्य यह है कि, भले ही ऋषि के आशीर्वाद से नल–नील के स्पर्श किये हुए पत्थर और वृक्ष जल में नहीं डूबे, परन्तु वे एक–दूसरे से जुड़े कैसे? क्या वहाँ कोई जोड़ने वाला पदार्थ सीमेन्ट आदि था? इसका समाधान नल–नील अथवा और किसी वानर के पास था क्या? इसका उपाय तो हनुमान जी महाराज ने सुझाया कि राम–राम कहते–कहते एक–दूसरे पत्थरों को परस्पर स्पर्श कराते जाओ यह ऐसे जुड़ेंगे की कभी अलग होंगे ही नहीं। यही यहाँ श्रीराम की कृपा थी।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा।।
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहि मर्कट भट समुदाई।।

भा०- सेतु बाँधकर उसे बहुत सुदृढ़ बनाया देखकर, वह सेतु कृपासिन्धु भगवान् श्रीराम के मन में बहुत अच्छा लगा और वानरी सेना चल पड़ी, उसका कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता, वीर वानरों के समूह गरजने लगे।

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपालु सिंधु बहुताई।।
देखन कहँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा।।
मकर नक्र नाना झष ब्याला। शत जोजन तन परम बिशाला।।
अइसेउ एक तिनहिं जे खाहीं। एकन के डर तेपि डेराहीं।।

प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे।।
तिन की ओट न देखिय बारी। मगन भए हरि रूप निहारी।।

भा०- कृपालु भगवान् श्रीराम सेतुबन्ध पर चढ़कर निकट से समुद्र की विशालता देखने लगे। करुणा के मेघ भगवान् श्रीराम को देखने के लिए सभी जलचरों के समूह प्रकट हो गये अर्थात् समुद्र के ऊपर आ गये। उनमें से सौ योजन शरीर वाले अत्यन्त विशाल घड़ियाल, नक्र, मछली और सर्प थे। उनमें से ऐसे भी कुछ जन्तु थे जो, सौ योजन शरीरवाले मकर आदि को खा सकते थे। वे भी किन्हीं एक जन्तुओं के डर से डरते थे, वे प्रभु को देख रहे थे, वानरों द्वारा धक्का लगाकर हटाये जाने पर भी नहीं हट रहे थे। सभी मन में प्रसन्न और सुखी हो गये। उन जन्तुओं के ओट अर्थात् व्यवधान में जल नहीं दिखाई पड़ रहा था। वे सभी श्रीहरि के रूप को देखकर मग्न हो गये।

चला कटक प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई।।

दो०- सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहि।
अपर जलचरन ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं।।४।।

भा०- प्रभु की आज्ञा पाकर वानरी सेना चल पड़ी। वानरदल की अधिकता (बहुलता) का वर्णन कौन कर सकता है? सेतुबन्ध पर बहुत भीड़ हो गई, वानरों के लिए बीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु पर्याप्त न हुआ। तब कुछ वानर आकाश के मार्ग से उड़कर जाने लगे। जब उनके लिए आकाश मार्ग भी पूरा न पड़ा तब और वानर प्रभु के दर्शनों के लिए समुद्र के ऊपर आये हुए जलचरों के ऊपर चढ़-चढ़कर पार जाने लगे।

अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपालु रघुराई।।
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा।।

भा०- इस प्रकार कौतुक देखकर, दोनों भाई श्रीराम एवं लक्ष्मण जी हँसे, फिर कृपालु श्रीराम जी चल पड़े और सेना के सहित रघुवीर श्रीराम जी सागर पार उतरे। वानर यूथपतियों की भीड़ कही नहीं जाती है।

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन कहँ आयसु दीन्हा।।
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए।।
सब तरु फरे राम हित लागी। ऋतु अनऋतुहिं काल गति त्यागी।।

भा०- प्रभु ने सागर पार होकर निवास स्थान निश्चित किया और सभी वानर-भालुओं को आज्ञा दी, जाकर सुहावने कन्द, मूल और फल खाओ। प्रभु का आदेश सुनते ही जहाँ-तहाँ फल खाने के लिए भालु-वानर दौड़ने लगे। सभी वृक्ष, ऋतु और ऋतु के विरुद्ध समय में काल की गति को त्याग कर, भगवान् श्रीराम के हित के लिए फल गये अर्थात् फल से युक्त हो गये, इसी में उन्होंने प्रभु की सेवा मानी।

खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख शिखर चलावहिं।।
जहँ कहुँ फिरत निशाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं।।
दशननि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजस देहिं तब जाना।।

भा०- वानर-भालु मीठे-मीठे फल खाते और वृक्षों को हिला देते हैं। लंका के सामने पर्वतों के शिखरों को फेंकते हैं। जहाँ-तहाँ घूमते हुए यदि राक्षसों को पा जाते हैं, तो सभी घेर कर उन्हें बहुत प्रकार से नाच-नचाते हैं। दाँतों से उनके नाक, कान काटकर तथा भगवान् श्रीराम का सुयश कहकर, फिर उन राक्षसों को जाने देते हैं।

जिन कर नासा कान निपाता। तिन रावनहिं कही सब बाता।।
सुनत स्रवन बारिधि बंधाना। दश मुख बोलि उठा अकुलाना।।

दो०- बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीश।
सत्य तोयनिधि अम्बुनिधि, उदधि पयोधि नदीश।।५।।

भा०– जिन राक्षसों के नाक–कान काटे गये थे उन्होंने रावण से सब बातें कहीं। अपने कान से समुद्र का बाँधा जाना सुनकर, रावण अकुला कर दसों मुख से समुद्र के दस नाम बोल पड़ा, अरे! बननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, अम्बुनिधि, उदधि, पयोधि, नदीश अर्थात् इन दस नामों से प्रसिद्ध सागर को श्रीराम ने सत्य ही एक ही साथ बाँध दिया?

व्याकुलता निज समुझि बहोरी। बिहँसि चला गृह करि भय भोरी।।
मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो।।

भा०– फिर रावण अपनी व्याकुलता समझकर, बाहर से हँसकर अपने भय को भुलाकर अपने भवन में चला गया। मंदोदरी ने यह समाचार सुन लिया कि प्रभु श्रीराम लंका पधार आये हैं और उन्होंने वानर–भालुओं के खेल–खेल में समुद्र को बाँध दिया अर्थात् समुद्र पर सेतु बँधा दिया है।

कर गहि पतिहिं भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी।।
चरन नाइ सिर अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा।।

भा०– अपने पति रावण का हाथ पकड़कर मन्दोदरी अपने भवन में ले आई फिर परमसुन्दर वाणी बोली। चरणों में मस्तक नवाकर, मन्दोदरी ने अपना आँचल फैला दिया और बोली, हे प्रेमास्पद रावण! क्रोध छोड़कर मेरे वचन सुनिये।

नाथ बैर कीजिय ताही सों। बुधि बल सकिय जीति जाही सों।।
तुमहिं रघुपतिहिं अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहिं जैसा।।

भा०– हे नाथ! वैर उसी से करना चाहिये, जिससे बुद्धि और बल द्वारा स्वयं जीत सके अर्थात् विजयी बन सकें। यह बात निश्चित है कि तुममें और रघुकुल के स्वामी श्रीराम में किस प्रकार का अन्तर है, जैसे जुगनू और खद्योत् के बीच होता है।

अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे।।
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा।।

भा०– जिन प्रभु श्रीराम की कृपा से वीर महान् हो जाते हैं, अथवा सामान्य लोग भी महान् वीर बन जाते हैं और जिन्होंने अपने अंश, भूमा विष्णु जी के माध्यम से अत्यन्त बलशाली मधु और कैटभ का संहार किया और अपने अंशावतार नृसिंह भगवान् तथा वराह भगवान् द्वारा दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का वध किया। जिन्होंने अपने ही अंशांश वामन जी के द्वारा दैत्यराज बलि को बाँधकर पुनः अपने निग्रहांश परशुराम जी के द्वारा सहस्र बाहुओंवाले हैहय नरेश कार्त्यवीर्य सहस्राार्जुन का वध किया, वे ही सर्वावतारी प्रभु श्रीराम भू–भार हरण करने के लिए साकेतलोक से श्रीअवध में अवतीर्ण हुए हैं।

विशेष– यहाँ सातवीं पंक्ति में प्रयुक्त महावीर शब्द भगवान् श्रीराम का विशेषण है, वह भी बहुव्रीहि समास से समस्त है, "*महान्तों वीराः येन् स महावीरः* "और हनुमान जी के लिए प्रयुक्त महावीर शब्द कर्मधारय में है, *माहान्श्चाशौ वीरः इति महावीरः।*

तासु बिरोध न कीजिय नाथा। काल करम जिव जाके हाथा।।

दो०- रामहिं सौंपहु जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहँ राज समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ।।६।।

भा०- हे नाथ! जिनके हाथ में जीव के काल और कर्म हैं, अथवा काल, कर्म और यह जीवात्मा भी जिनके हाथ में है, ऐसे परमात्मा श्रीराम का विरोध मत कीजिये। आप प्रभु के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाकर श्रीराम को श्रीसीता को सौंप दीजिये। बड़े पुत्र मेघनाद को राज्य सौंपकर वन में जाकर भगवान् श्रीरघुनाथ का भजन कीजिये।

नाथ दीनदयालु रघुराई। बाघउ सनमुख गए न खाई।।
चाहिय करन सो सब करि बीते। तुम सुर असुर चराचर जीते।।

भा०- हे नाथ! रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम तो दीनों पर दया करने वाले हैं, वह शरण में जाने पर आप को तो क्षमा करेंगे ही। सामान्य बाघ भी सन्मुख जाने पर अर्थात् आँख से आँख मिलाने पर नहीं खाता तो भगवान् श्रीराम सन्मुख होने पर क्यों दण्ड देंगे? जो करना चाहिये था आपने वह सब कुछ करके समाप्त कर लिया है और अपने शासनकाल में आपने देवता, दैत्य, चर, अचर सभी प्राणियों को जीता है।

बेद कहहिं असि नीति दशानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन।।
तासु भजन कीजिय तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता।।

भा०- हे दस मुखों वाले रावण! वेद ऐसी नीति कहते हैं कि राजा को चौथेपन अर्थात् वृद्धावस्था में वन चले जाना चाहिये। हे स्वामी! वन में उनका भजन करना चाहिये जो जगत के रचयिता, पालक और संहारकर्त्ता हैं अर्थात् जगत जन्मादि हेतु परब्रह्म परमात्मा का भजन करना चाहिये।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता मद त्यागी।।
मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राज तजि होहिं बिरागी।।
सोइ कोसलाधीश रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया।।
जौ पिय मानहु मोर सिखावन। सुजस होइ तिहुँ पुर अति पावन।।

भा०- हे नाथ! उन्हीं प्रणतों के अनुरागी रघुकुल के वीर श्रीराम को ममता और मद छोड़कर भजिये, जिनके लिए मुनिजन यत्न करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैराग्यवान बन जाते हैं। वे ही सम्पूर्ण जीवों के सर्वस्व रघुराज कोसल जनपद के स्वामी श्रीराम आप पर दया करने के लिए लंका पधार आये हैं। हे प्रिय! यदि आप मेरी शिक्षा मान लें तो आपका तीनों लोकों में अत्यन्त पवित्र यश हो जायेगा।

दो०- अस कहि लोचन बारि भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथ पद, मम न जाइ अहिवात।।७।।

भा०- इतना कहकर नेत्रों में जल भरकर काँपते हुए शरीरवाली मन्दोदरी ने रावण के चरण पकड़ लिए और बोली, हे नाथ! श्रीरघुनाथ के श्रीचरणों का भजन कीजिये, जिससे मेरा अहिवात अर्थात् अविधवात्व यानी सुहाग नहीं जाये।

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई।।
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना।।
बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला।।
देव दनुज नर सब बश मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे।।

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई।।
मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बिबश उपजा अभिमाना।।

भा०– तब दुष्ट रावण मय दानव की पुत्री मन्दोदरी को उठाकर अपनी प्रभुता कहने लगा, हे प्रिया! सुनो, तूने व्यर्थ ही भय मान लिया, संसार में मेरे समान योद्धा कौन है? मैंने अपनी भुजाओं के बल से वरुण अर्थात् जल के देवता, कुबेर अर्थात् देवताओं के धनाध्यक्ष, पवन अर्थात् वायु देवता, यम, काल तथा अन्य सभी दिग्पालों को भी जीता। सभी देवता, दैत्य और मनुष्य मेरे वश में हैं। तुम्हारे मन में किस कारण से भय उत्पन्न हो गया? इस प्रकार से रावण ने मन्दोदरी को अनेक प्रकार से समझाकर कहा, फिर वह सभा में जाकर बैठ गया। मन्दोदरी ने अपने हृदय में ऐसा जान लिया कि रावण काल के वश में है, इसी कारण इसके मन में अभिमान उत्पन्न हो गया है।

सभा जाइ मंत्रिन तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सन जूझा।।
कहहिं सचिव सुनु निशिचर नाहा। बार बार प्रभु पूँछहु काहा।।
कहहु कवन भय करिय बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।।

भा०– सभा में जाकर रावण ने अपने मंत्रियों से पूछा, अब हम लोग शत्रु से किस प्रकार युद्ध करेंगे, क्योंकि अब तो वानरी सेना सागर के इस पार आ गई है? मंत्री कहने लगे, हे राक्षसराज! सुनिये, हे प्रभु! आप बार–बार क्यों पूछ रहे हैं? बतायें अभी कौन–सा भय आ पड़ा है, जिस पर विचार किया जाये? मनुष्य वानर और भालु तो हमारे आहार ही हैं।

दो०– सब के बचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन मति अति थोरि।।८।।

भा०– सभी मंत्रियों के वचनों को अपने कानों से सुनकर प्रहस्त ने अपने हाथ जोड़कर कहा, हे स्वामी! नीति का विरोध मत कीजिये, आपके मंत्रियों की बुद्धि बहुत थोड़ी अर्थात् अल्प है।

कहहिं सचिव सब ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती।।
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा।।

भा०– ये दुष्ट मंत्री ठकुरसोहाति अर्थात् स्वामी को प्रिय लगने वाली किन्तु सत्य से बहुत दूर चाटुकारिता की बात कहते हैं, हे नाथ! इस प्रकार से तो पूरा नहीं पड़ेगा। समुद्र लाँघकर एक वानर आया था, जिसका चरित्र सभी ने मन में गाया अर्थात् हनुमान जी के चरित्र को आपके सहित सबने तो मन में प्रशंसा की ही।

छुधा न रही तुमहिं तब काहू। जारत नगर कस न धरि खाहू।।
सुनत नीक आगे दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहिं सुनावा।।

भा०– उस समय तुम में से किसी को क्या भूख नहीं थी? लंका जलाते समय उस वानर को पकड़कर क्यों नहीं खा गये? जो सुनने में अच्छा लगता है, पर परिणाम में उससे दुःख ही पाया जाता है आपके मंत्रियों ने राक्षसों के स्वामी आप रावण को उसी प्रकार का मत सुनाया है।

जेहि बारीश बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला।।
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई।।

भा०– जिन प्रभु ने खेल–खेल में सागर को बँधा दिया और सेना के सहित सुबेल पर्वत पर उतर आये, उन्हीं परमपराक्रमी प्रभु श्रीराम को आप मनुष्य कहते हैं और उन्हीं को सभी लोग गाल फुलाकर कहते हैं कि हम खा

जायेंगें अथवा, हे भाइयों! बताओ क्या वे मनुष्य हैं, जिनको तुम कहते हो कि हम खा जायेंगे? वस्तुतः सब लोग गाल फुलाकर निरर्थक बात कहते हैं।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर।।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं।।
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे।।
प्रथम बसीठि पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती।।

भा०– हे तात! अत्यन्त आदर के साथ मेरे वचन सुनिये, मुझे अपने मन में कायर करके मत समझियेगा। जो प्रियवाणी सुनते हैं और कहते हैं, ऐसे मनुष्यों के समूह संसार में बहुत हैं, किन्तु हे प्रभु! सुनने में कठोर परन्तु परिणाम में अत्यन्त हितकारी वचन जो लोग कहते और सुनते हैं, ऐसे लोग संसार में बहुत थोड़े हैं। आप नीति सुनिये, प्रथम श्रीराम के पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर दूत भेज दीजिये और उन्हें श्रीसीता को सौंप कर प्रीति अर्थात् मैत्री कर लीजिये।

दो०– नारि पाइ फिरि जाहिं जौ, तौ न बढ़ाइय रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि, तात करिय हठि मारि।।९।।

भा०– यदि पत्नी को पाकर वे लौट जायें तो कलह आगे से न बढ़ाया जाये, नहीं तो हे तात! रणभूमि में सामने से हठपूर्वक उन पर शस्त्र का प्रहार किया जाये।

यह मत जौ मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजस जग तोरा।।
सुत सन कह दशकंठ रिसाई। असि मति शठ केहिं तोहि सिखाई।।
अबहीं ते उर संशय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई।।

भा०– हे स्वामी! यदि आप मेरा यह मत मान लें तो जगत में आपका दोनों प्रकार से सुयश होगा। रावण ने पुत्र से क्रुद्ध होकर कहा, अरे शठ! ऐसी बुद्धि तुझे किसने सिखायी? अभी से हृदय में संशय हो रहा है अर्थात् युद्धारम्भ से पहले ही सन्धि की बात कर रहा है। हे बेटे! तू तो बाँस की जड़ में घमोई नामक रोग उत्पन्न हो गया अथवा, घमोई नामक वह घास, अथवा घमोई नामक बाँस का एक कल्ला बनकर उत्पन्न हुआ जो बाँस को बढ़ने से रोक देता है, उसी प्रकार तू मेरे वंश की उन्नति रोक रहा है।

सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा।।
हित मत तोहि न लागत कैसे। काल बिबश कहँ भेषज जैसे।।

भा०– पिता रावण की क्रोध से भयंकर वाणी सुनकर कठोर वचन कहता हुआ प्रहस्त अपने भवन के लिए चल पड़ा। वह बोला, हे रावण! तुझे हितैषी मंत्रणा किस प्रकार प्रिय नहीं लग रही है, जैसे काल के विवश मरणासन्न व्यक्ति को औषधि नहीं अच्छी लगती।

संध्या समय जानि दशशीशा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा।।
लंका शिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा।।
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन गावन।।
बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अप्सरा प्रबीना।।

भा०– सायंकाल का समय जानकर अपनी बीस भुजाओं को देखते हुए दस सिरोंवाला रावण राजभवन को चल पड़ा। लंका के कनक शिखर के ऊपर एक अत्यन्त विचित्र भवन था। वहाँ नाच–गान का अखाड़ा अर्थात् जमघट

हुआ करता था, रावण जाकर उसी भवन में बैठा। किन्नर उसके गुणसमूह गाने लगे, करताल, मृदंग और वीणा बजने लगी। नृत्य में कुशल स्वर्ग की अप्सरायें अर्थात् नृत्यांगनायें नृत्य करने लगीं।

दो०- सुनासीर शत सरिस सो, संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु शीष पर, तदपि न मन कछु त्रास।।१०।।

भा०- असंख्य इन्द्रों के समान रावण निरन्तर विलास करता था, यद्यपि रावण के सिर पर श्रीरामरूप, रावण से अनेक गुना प्रबल शत्रु उपस्थित है, फिर भी उसके मन में कुछ भी डर नहीं है।

विशेष- (क) संस्कृत में नासीर शब्द का आगे चलने वाला सेवक अर्थ होता है। इन्द्र के पास अग्रगामी देवता बड़े सुन्दर हैं, इसलिए उन्हें सुनासीर कहा जाता है– ***"शोभना नासीराः अग्रगामिनः सेवकाः यस्य स सुनासीरः।"***

(ख) संस्कृत में वायु को सुन तथा सूर्यनारायण को सीर कहते हैं तथा वायु और सूर्य इन्द्र के सहायक हैं, इसलिए सुन शब्द के आकार को "शरदीनाञ्च" (पा०अ०, ६.३.१२०) सूत्र से दीर्घ हुआ है, ***"सुनः वायुः सीरः सूर्यः तौस्तः अस्य इति सुनासीरः।"***

इहाँ सुबेल शैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा।।
शैल शृंग एक सुंदर देखी। अति उतंग सम शुभ्र बिशेषी।।
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए।।
तेहि पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला।।

भा०- यहाँ सुबेल पर्वत पर रघुवीर श्रीराम सेना के सहित उतरे, उस समय बहुत भीड़ हो रही थी। एक सुन्दर अत्यन्त विशाल समतल पर्वत का शिखर देखकर वहीं पर वृक्षों के पल्लव और सुहावने पुष्पों को रचकर लक्ष्मण जी ने अपने हाथों से विस्तर लगाया। उस पर कोमल और सुन्दर मारीच मृग की छाल बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्रीराम शयन की मुद्रा में आसीन हुए।

विशेष- यहाँ ध्यातव्य है कि श्रीलक्ष्मण जी ने सुबेल पर्वत पर प्रभु की शय्या के क्रम में जिस मृगचर्म का प्रयोग किया था, वह मारीच की ही मृगछाला थी। जैसे नल कूबर और मणिग्रीव के देव शरीर को प्राप्त करने पर भी यमलार्जुन वृक्ष यथावत थे, ठीक उसी प्रकार मरीच के असुर शरीर प्रकट कर लेने पर भी कनक मृगचर्म यथावत था। उसे श्री लक्ष्मणजी ने भगवान् श्रीराम से लेकर सेतुबन्ध लीला तक श्रीरामजी की दृष्टि से ओझल किये रखा और युद्ध की पूर्व संध्या पर प्रभु श्रीराम में कनक मृग के स्मरण के व्यास से वीररस को उद्दीपित करने के लिए प्रभु की शय्या पर विछा दिया। गीतावली अरण्यकाण्ड में यह संकेत भी है– **"हेम को हिरन हनि फिरे रघुकुल-मनि, लखन ललित कर लिए मृग छाल।।"** (तु०गी० ३.९.१) और श्रीमानस में श्रीगोस्वामी जी ने दोनों स्थानों पर एक ही शब्द को प्रयोग करके यही संकेत किया है यथा– **"सीता परम रुचिर मृग देखा।।"** मानस, ३.२६.४ पुनः **"तेहिपर रुचिर मृदुल मृग छाला।।"** मानस, ६.१२.४।। अभिप्राय यही है कि दोनों स्थानों पर मृगचर्म की सुन्दरता वही है, परन्तु मरने के पश्चात् निष्प्राण होने से मृदुलता अधिक आ गयी है।

प्रभु कृत शीष कपीश उछंगा। बाम दहिन दिशि चाप निषंगा।।
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेश मंत्र लगि काना।।
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चाँपत बिधि नाना।।
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान शरासन।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव जी की गोद में अपना सिर कर रखा है, भगवान् के बायीं ओर धनुष और दाहिनी ओर तरकस विराजमान है। प्रभु दोनों करकमलों से तरकस के बाण सुधार रहे हैं और भगवान् के कान के

पास जाकर लंकापति विभीषण जी गोपनीय मंत्रणा की बात कह रहे हैं। परमसौभाग्यशाली अंगद जी और हनुमान जी महाराज नाना प्रकार से भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों को प्रेम से दबा रहे हैं अर्थात् सेवा कर रहे हैं। प्रभु श्रीराम के पीछे लक्ष्मण जी कटि प्रदेश में तरकस और हाथ में धनुष–बाण लेकर वीरासन पर बैठे हैं।

दो०– एहि बिधि करुना रूप गुन, धाम राम आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे, रहत सदा लयलीन।।११(क)।।

भा०– इस प्रकार करुणारूप और गुणों के निवास स्थान श्रीरामशयन की मुद्रा में आसीन हैं। वे साधक धन्य हैं, जो इस ध्यान में अपनी चित्तवृत्तियों को लगाकर लीन रहते हैं।

पूरब दिशा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं देखहु शशिहिं, मृगपति सरिस अशंक।।११(ख)।।

भा०– पूर्व दिशा की ओर देखकर भगवान् श्रीराम ने उदित चन्द्रमा को देखा और सबसे कहने लगे, सिंह के समान नि:शंक चन्द्रमा को देखो।

पूरब दिशि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी।।
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। शशि केसरी गगन बन चारी।।

भा०– पूर्व दिशारूपी पर्वत की गुफा में निवास करने वाले श्रेष्ठ प्रताप, तेज और बल की राशिरूप, अंधकाररूप मतवाले हाथी के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाला यह चन्द्रमा रूप सिंह आकाशरूप वन में भ्रमण कर रहा है।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निशि सुंदरी केर श्रृंगारा।।
कह प्रभु शशि महँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।।

भा०– आकाश में मोतियों के समान तारे बिखरे हैं, मानो यह निशारूपी सुन्दरी के मस्तक पर विराजमान मोती के श्रृंगार हैं। प्रभु श्रीराम ने कहा, चन्द्रमा में मेचकता अर्थात् श्यामता क्या है? हे भाई! सभी लोग अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार कहिये।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। शशि महँ प्रगट भूमि कै झाँई।।
मारेउ राहु शशिहिं कह कोई। उर महँ परी श्यामता सोई।।
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग शशि कर हरि लीन्हा।।
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं।।

भा०– सुग्रीव जी ने कहा, हे रघुनाथ जी! सुनिये, चन्द्रमा में काली पृथ्वी की छाया प्रकट दिख रही है। किसी ने अर्थात् विभीषण जी ने कहा, चन्द्रमा को राहु ने मारा है, वही श्यामता चन्द्रमा में दिखायी पड़ रही है। इसके पश्चात् किसी ने अर्थात् अंगद जी ने कहा, जब विधाता ने रति का मुख बनाया तब चन्द्रमा का सार भाग उससे ले लिया, वही छिद्र चन्द्रमा की छाती में प्रकट दिख रहा है और उसी के मार्ग से इसमें आकाश की काली परछायीं दिखती है।

प्रभु कह गरल बंधु शशि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।।
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी।।

भा०– प्रभु श्रीराम जी ने कहा कि विष चन्द्रमा का अत्यन्त प्रिय भाई है, इसने उसको अपने हृदय में निवास दिया है। चन्द्रमा अपनी विष से भरी हुई किरणों को फैलाकर विरही नर–नारियों को जलाता रहता है।

दो०- कह मारुतसुत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ श्यामता भास।।१२(क)।।

भा०- अन्त में पवनपुत्र हनुमान जी ने कहा, हे प्रभु! सुनिये, चन्द्रमा आपका प्रिय दास है, आपकी श्यामल मूर्ति ही चन्द्रमा के हृदय में निवास करती है, वही यहाँ श्यामता प्रतीत हो रही है।

विशेष- वस्तुतः चन्द्रमा की कालिमा भगवान् श्रीराम और वानर-भालुओं के बीच एक प्रहेलिका बन गयी। इसलिए क्रमशः सुग्रीव जी, विभीषण जी तथा अंगद जी ने अपने-अपने प्रति घटाया। भगवान् श्रीराम ने भाई भरत के प्रति और हनुमान जी महाराज ने श्रीरामभक्त, भरत जी के प्रति। प्रभु ने कहा, जैसे विष को चन्द्रमा ने अपने हृदय में निवास दिया है, उसी प्रकार भरत ने मुझको अपने हृदय में निवास कराया। मैं विष के समान तीखा हूँ और भरत चन्द्रमा के समान मधुर हैं, परन्तु हनुमान जी ने चन्द्रमा और श्रीभरत के सम्बन्ध को दूसरे प्रकार से व्याख्यायित किया। हनुमान जी ने कहा, प्रभु चन्द्रमा आपका प्रिय दास है, चन्द्रमा में आपकी मूर्ति की श्यामता भासित हो रही है। अर्थात् श्रीभरत चन्द्र तो हैं, परन्तु उन्होंने आपको विषरूप में नहीं प्रत्युत परम आराध्य परमेश्वर के रूप में अपने हृदय में विराजमान कराया है।

पवन तनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिशि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान।।१२(ख)।।

भा०- पवनपुत्र हनुमान जी महाराज के वचन सुनकर, चतुर श्रीराम जी हँसे। फिर दक्षिण दिशा की ओर देखकर कृपानिधान श्रीराम विभीषण जी से बोले-

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा।।
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा।।

भा०- हे विभीषण! देखो, दक्षिण दिशा में मेघों की घटा और बिजली का विलास अर्थात् बार-बार चमकती हुई बिजली की शोभा अपूर्व है अर्थात् दक्षिण दिशा में मेघों की घटा और बिजली की चमक हो रही है। मधुर-मधुर घोर बादल गरज रहे हैं, मानो कठोर ओले की वृष्टि होना चाहती है।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला।।
लंका शिखर उपर आगारा। तहँ दशकंधर देख अखारा।।
छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी।।
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका।।
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव सरिस सुनहु सुरभूपा।।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना।।

भा०- विभीषण जी कहने लगे, हे कृपालु! सुनिये, यह बिजली और मेघ की घटा नहीं हो सकती। लंका के शिखर के ऊपर एक भवन है, वहाँ रावण अखाड़ा देखता है। रावण ने जो सिर पर मेघडंबर छत्र धारण किया है, वही बादल की काली घटा जैसी दिख रही है। मन्दोदरी के दोनों श्रवणों के कुण्डल चमक रहे हैं, वही मानो बिजली चमक रही है। हे सुरभूप! अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ महाविष्णु जी! जो अनुपम करताल और मृदंग आदि बाजे बज रहे हैं, आप वही मधुर मेघ-गर्जना सुन रहे हैं। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुस्कराये और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर एक बाण का सन्धान किया।

दो०- छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकही बान।
सब के देखत महि परे, मरम न कोऊ जान।।१३(क)।।

भा०- तब भगवान् श्रीराम ने रावण के छत्र, उसके दस मुकुट और दो मन्दोदरी के कुण्डल, इन सभी तेरहों को एक ही बाण से काट दिया। वे सबके देखते-देखते पृथ्वी पर पड़ गये किसी ने कोई मर्म नहीं जाना।

अस कौतुक करि राम शर, प्रबिशेउ आइ निषंग।
रावन सभा सशंक सब, देखि महा रसभंग।।१३(ख)।।

भा०- इस प्रकार का कौतुक करके भगवान् श्रीराम का बाण तरकस में आकर प्रविष्ट हो गया। यह महारसभंग अर्थात अनर्थ देखकर, सम्पूर्ण रावण की सभा सशंक अर्थात् आशंकाओं से भर गई।

विशेष- भगवान् श्रीराम ने अपने एक ही बाण से रावण का छत्र, उसके दस मुकुट, एवं मन्दोदरी के दो कर्णफूलों को काटकर मंदोदरी को यह संकेत दिया कि अब रावण की तेरहवीं (त्रयोदशा) अत्यन्त निकट है।

कंप न भूमि न मरुत बिशेषा। अस्त्र शस्त्र कछु नयन न देखा।।
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी।।

भा०- न तो पृथ्वी ही काँप रही थी, न ही विशेष वायु चल रहा था और न ही किसी ने कोई अस्त्र-शस्त्र अपने नेत्रों से देखा था। सब लोग हृदय में सोचने लगे यह तो बहुत भयंकर अपशकुन हो गया।

दशमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई।।
सिरउ गिरे संतत शुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही।।
शयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई।।

भा०- रावण ने देखा की सभा भयभीत हो गई है। उसने हँसकर एक युक्ति बनाकर यह वचन कहा, अरे जिसके लिए सिरों के गिरने पर निरन्तर शुभ होता रहा, उसके लिए मुकुटों के पड़ने पर कैसे अपशकुन हो सकता है? अर्थात् जिस रावण ने अपने सिरों को काट-काट कर शिव जी को आपूर्ति करके उन से सम्पूर्ण शुभ प्राप्त किया। उसी मुझ रावण के यदि मुकुट पृथ्वी पर पड़ ही गये तो कोई अपशकुन नहीं हुआ। सब लोग अपने-अपने घर जाकर शयन करो यह सुनकर रावण को प्रणाम करके सभी सभासद चले गये।

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते स्रवनपूर महि खसेऊ।।
सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी।।
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ उर धरहू।।

भा०- जब से कान के कुण्डल अकस्मात् कटकर पृथ्वी पर पड़े हैं, तब से मन्दोदरी के हृदय में चिन्ता बस गई है। वह अपने नेत्रों में आँसू भरकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी, हे प्राणपति रावण! मेरी विनती सुनिये, हे मेरे सुखों की अवधि प्रिय रावण! श्रीराम का विरोध छोड़ दीजिये, उन्हें मनुष्य जानकर अपने हृदय में हठ मत धारण कीजिये।

दो०- बिश्वरूप रघुबंश मनि, करहु बचन बिश्वासु।
लोक कल्पना बेद कह, अंग अंग प्रति जासु।।१४।।

भा०- रघुकुल के मणि भगवान् श्रीराम विश्वरूप हैं अर्थात् सम्पूर्ण विश्व भगवान् का रूप है, जिनके अंग-अंग में लोकों की रचना हुई है, ऐसा अपौरुषेय वेद कहते हैं।

विशेष– यहाँ कल्पना शब्द रचना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, मनमानी आरोप को भारतीय वाङ्मय में कल्पना नहीं कहा जाता।

पद पाताल शीष अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।।
जासु घ्राण अश्विनीकुमारा। निशि अरु दिवस निमेष अपारा।।
स्रवन दिशा दश बेद बखानी। मारुत श्वास निगम निज बानी।।
अधर लोभ जम दशन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।।
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।।
रोम राजि अष्टादश भारा। अस्थि शैल सरिता नस जारा।।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।।

भा०– पाताल भगवान् का श्रीचरण है, ब्रह्मलोक भगवान् का सिर है और भगवान् के अंग–अंग में अन्य लोकों का विश्राम है। भयंकर काल भगवान् का भृकुटि विलास है। सूर्य भगवान् के नेत्र हैं, बादल भगवान् के केश समूह हैं। जिनकी नासिका ही अश्विनीकुमार हैं, जिनके अपार निमेष अर्थात् पलकों का गिरना–उठना ही रात्रि–दिवस हैं, दसों दिशायें ही जिनके श्रवण हैं, ऐसा वेद कहते हैं। वायु प्रभु का श्वास है, वेद श्रीराम की निजी वाणी हैं, लोभ भगवान् श्रीराम का ओष्ठ है, यमराज भगवान् के कराल दाँत हैं, माया प्रभु राघव का हास और दिग्पाल भगवान् की भुजायें हैं, अग्नि प्रभु के मुख हैं और वरुण प्रभु की जीभ हैं। उत्पत्ति, पालन और प्रलय भगवान् श्रीराम की चेष्टायें हैं, अठारह भार वनस्पतियाँ भगवान् की रोमावली हैं, पर्वत भगवान् की हड्डियाँ और नदियाँ ही भगवान् के नसों के समूह हैं। समुद्र पेट और यातना अर्थात् नरक ही भगवान् की निचली इन्द्रियाँ हैं, इस प्रकार प्रभु जगत्स्वरूप हैं, बहुत ऊहापोह से क्या लाभ?

दो०– अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान।।१५(क)।।

अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैर बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद, मम अहिवात न जाइ।।१५(ख)।।

भा०– शिव जी भगवान् श्रीराम के अहंकार, ब्रह्मा जी प्रभु की बुद्धि, चन्द्रमा भगवान् का मन और विष्णु जी ही भगवान् श्रीराम के चित्त हैं। मनुष्य ही भगवान् श्रीराम का निवास स्थान है। इस प्रकार सम्पूर्ण चर और अचर (जड़–चेतन) सब कुछ जीव जगत् भगवान् श्रीराम का रूप ही है। हे प्राणपति रावण! ऐसा विचार करके अर्थात् भगवान् श्रीराम को जगत रूप जानकर, प्रभु से विरोध छोड़कर, रघुवीर श्रीराम की श्रीचरणों में प्रीति कर लीजिये, जिससे मेरा अहिवात (सौभाग्य) न जाये।

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना।।
नारि स्वभाव सत्य कबि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक अशौच अदाया।।

भा०– पत्नी मंदोदरी के वचन सुनकर रावण हँसा और बोला, अहो! मोह का महत्व कितना बलवान है? कवि लोग नारी के सम्बन्ध में सत्य ही कहते हैं कि, इनके हृदय में आठ दुर्गुण सदैव रहते हैं, वे हैं– साहस, असत्य भाषण, चपलता (चंचलता), माया (छल), भय, अविवेक, अपवित्रता और दयाहीनता।

विशेष- वस्तुतः यह रावण की मानसिक दुर्बलता का परिणाम है, क्योंकि रावण स्वयं मोहान्ध है, इसलिए उसका वाक्य प्रमाण नहीं है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपनी ही मान्यता के आधार पर दूसरे का आकलन करता है। काला चश्मा लगने पर सब कुछ काला ही दिखता है। वास्तव में तो माता, बहिन, पुत्री और पत्नी उक्त चार धारणाओं में अनुप्राणीत नारियों में रावण द्वारा आरोपित आठों अवगुण कभी नहीं रहते। जैसे- श्रीमानस में संकीर्तित श्रीसीता जी, श्री कौसल्या जी श्री सुमित्रा जी श्री अरुन्धती जी आदि में एक भी दुर्गुण नहीं प्रतीत होता। श्रीसीता आदि माननीय महिला रत्नों में कभी भी साहस असत्य भाषण, चंचलता, कपट भय, विवेक का आभाव, अपवित्रता एवं निर्दयता जैसे दुर्बल पक्ष किसी भी परिस्थिति में दृष्टिगोचर नहीं होता।

रिपु कर रूप सकल तै गावा। अति बिशाल भय मोहि सुनावा।।
सो सब प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे।।
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि मिष कहहु मोरि प्रभुताई।।

भा०- तुमने सम्पूर्ण संसार को मेरे शत्रु राम का रूप बताया है और मुझे अत्यन्त भय सुना दिया, वह सम्पूर्ण संसार बिना प्रयास के मेरे वश में है। अब तुम्हारे प्रसाद से यह भी समझ में आ गया कि, जब राम का रूप संसार मेरे वश में है तो राम भी मेरे वश में है। हे प्रिये! अब मैं तुम्हारी चतुराई समझ गया, इसी बहाने अर्थात् राम के विश्वरूप वर्णन के बहाने तुमने मेरी ही प्रभुता का वर्णन किया है।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि।।
मंदोदरि मन महँ अस ठयऊ। पियहिं काल बश मतिभ्रम भयऊ।।

भा०- हे मृगलोचनि मंदोदरी! तुम्हारी बतकही अर्थात् वार्त्तालाप की पद्धति बड़ी ही गूढ़ है, वह समझने में सुखद और सुनने में भवबन्धन से छुड़ाने वाली है। मन्दोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि, मेरे पति रावण को काल के वश में होने के कारण बुद्धि का भ्रम हो गया है।

दो०- बहुबिधि जल्पेसि सकल निशि, प्रात भये दशकंध।
सहज अशंक लंकपति, सभा गयउ मद अंध।।१६(क)।।

भा०- सम्पूर्ण रात्रि रावण बहुत प्रकार से अपलाप करता रहा। प्रातःकाल होते ही दस कन्धोंवाला स्वभाव से निर्भीक, बुद्धि से अन्धा, लंकापति रावण सभा में चला गया।

सो०- फूलइ फलइ न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम।।१६(ख)।।

भा०- यदि बादल अमृत की वर्षा कर दे फिर भी बेंत अर्थात् वियत यानी आकाश न तो फूलता है और न ही फलता है, उसी प्रकार यदि ब्रह्मा जी के समान भी गुरु मिल जायें तथापि मूर्ख के हृदय में चेतना नहीं आ सकती। अथवा, भले ही बादल अमृत की वर्षा करे, परन्तु जैसे बेंत का वृक्ष फूलता और फलता नहीं उसी प्रकार भले ही ब्रह्मा जी के समान गुरु मिल जायें फिर भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं आ सकता।

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूँछा मत सब सचिव बोलाई।।
कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवंत कह पद सिर नाई।।

भा०- यहाँ रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम जी प्रातःकाल जगे। स्नान, सन्ध्यावन्दन आदि करके सभी मंत्रियों को बुलाकर सभी का मत पूछा। आप लोग शीघ्र ही कहें, अब क्या उपाय करना चाहिये? सबकी ओर से प्रभु के श्रीचरणों में प्रणाम करके जाम्बवान जी ने कहा-

सुनु सर्बग्य सकल गुन रासी। सत्यसंध प्रभु सब उर बासी।।
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइय बालिकुमारा।।

भा०– हे सर्वज्ञ! हे सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों की राशि! हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभु! हे सबके हृदय में निवास करने वाले श्रीराम! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार मंत्र अर्थात् अपना मंतव्य कहता हूँ। श्रीसीता को लौटा देने का प्रस्ताव लेकर बालिपुत्र अंगद को दूत बनाकर लंका भेजा जाये।

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना।।
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा।।

भा०– यह मंत्र बहुत अच्छा है, यह कह कर सभी मंत्रियों ने जाम्बवान् के मंत्र का मन में सम्मान किया। तब कृपा के कोश भगवान् श्रीराम जी ने अंगद जी से कहा, हे बालिपुत्र अंगद! आप बुद्धि, बल और श्रेष्ठगुणों के निवास स्थान हैं, इसलिए हे तात! मेरे कार्य के लिए आप लंका जाइये।

बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।।
काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।।

भा०– मैं आपको बहुत समझाकर क्या कहूँ, क्योंकि मैं आपको अत्यन्त चतुर जानता ही हूँ, जिससे मेरा कार्य हो और रावण का हित भी हो, आप शत्रु से उसी प्रकार का वार्त्तालाप करें। व्यंग्यार्थ यह है कि रावण से उसी प्रकार से कठोरता के साथ, सिद्धान्तों से समझौता न करते हुए निःसंकोच वार्त्ता करें, जिससे राक्षस–वध रूप मेरा कार्य हो जाये और मेरे हाथों मरने से रावण का परमपद प्राप्तिरूप हित भी हो जाये।

सो०– प्रभु आग्या धरि शीष, चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईश, राम कृपा जा पर करहु।।१७(क)।।

स्वयंसिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दियउ।
अस बिचारि जुबराज, तन पुलकित हरषित हिये।।१७(ख)।।

भा०– प्रभु श्रीराम जी की आज्ञा को सिर पर धारण करके तथा श्रीचरणों की वन्दना करके अंगद जी उठे और बोले, हे परमेश्वर! हे भगवान् श्रीराम! आप जिस पर कृपा करते हैं, वही सम्पूर्ण गुणों का समुद्र बन जाता है। आपके कार्य स्वयंसिद्ध हैं, आपने मुझे दूत बनाकर आदर मात्र दिया है, ऐसा विचार करके युवराज अंगद जी के शरीर में रोमांच हो गया और उनका हृदय प्रसन्न हो गया।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहिं सिर नाई।।

भा०– श्रीचरणों की वन्दना करके और हृदय में प्रभु की प्रभुता को धारण करके, सभी वृद्ध वानरभटों को प्रणाम करके अंगद जी चले।

प्रभु प्रताप उर सहज अशंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका।।
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेटा।।
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई।।

भा०– श्रीअंगद के हृदय में प्रभु श्रीराम का प्रताप विराजमान था उसी के कारण रण में बाँकुरे अर्थात् अत्यन्त कुशल और अत्यन्त चतुर बालिपुत्र अंगद जी स्वभावतः निःशंक हो चुके थे। अर्थात् उन्हें न तो रावण से किसी प्रकार का भय था और न ही उन्हें रावण से पराजय की कोई आशंका थी। नगर में प्रवेश करते ही रावण के बेटे से

जो खेल रहा था, अंगद जी की भेंट हो गई। बात–बात में झगड़ा बढ़ गया, दोनों ही अंगद और रावण का पुत्र अतुलनीय बल वाले थे, फिर दोनों की युवावस्था भी थी।

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई।।
निशिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ भजे न सकहिं पुकारी।।

भा०– उस रावण के पुत्र ने अंगद जी को मारने के लिए लात उठाया। अंगद जी ने उसका पैर पकड़कर घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया, इतने में ही रावण का पुत्र मर गया। अन्य राक्षससमूह बहुत–बड़ा वीर आया हुआ देखकर जहाँ–तहाँ भग चले। वे पुकार भी नहीं कर सकते थे अर्थात् ऊँचे स्वर में किसी को बुला भी नहीं सकते थे।

एक एक सन मरम न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं।।
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी।।

भा०– एक–दूसरे से मर्म नहीं कह रहे हैं। रावण के पुत्र का वध समझकर चुप करके रह जाते हैं। लंका में कोलाहल मच गया, अरे! वही वानर फिर आ गया जिसने लंका जलायी थी।

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा।।
बिन पूँछे मग देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई।।

भा०– अब ईश्वर क्या करेंगे, राक्षस अत्यन्त भयभीत होकर विचार कर रहे हैं, बिना पूछे ही मार्ग दिखा देते हैं। जिसे अंगद जी देखते हैं, वह सूख जाता है।

विशेष– रावण के जिस पुत्र का अंगद जी ने वध किया उसका नाम प्रहस्त था, ऐसा पूर्व के रामायणी सन्त महानुभावों का मत है।

दो०– गयउ सभा दरबार तब, सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव, धीर बीर बल पुंज।।१८।।

भा०– तब श्रीराम के श्रीचरणकमलों का स्मरण करके अंगद जी रावण के सभा–द्वार पर गये। सिंह के समान ठवनि करके गम्भीर मुद्रा में चलने वाले, किसी प्रकार से नहीं विचलित होने वाले, बल के पुंज अंगद जी निर्भीक होकर इधर–उधर देखने लगे।

तुरत निशाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा।।
सुनत बिहँसि बोला दशशीशा। आनहु बोलि कहाँ कर कीशा।।
आयसु पाइ निशाचर धाए। कपिकुंजरहिं बोलि लै आए।।

भा०– तुरन्त अंगद जी ने एक राक्षस को भेजा, उसने जाकर रावण को अंगद जी के आने का समाचार सुनाया, सुनते ही रावण हँसकर बोला, जल्दी से ले आओ, वह वानर कहाँ का है? रावण की आज्ञा पाकर राक्षस दौड़े और वानरश्रेष्ठ अंगद जी को बुलाकर ले आये।

अंगद दीख दशानन बैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा।।
भुजा बिटप सिर श्रृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।

भा०– अंगद जी ने रावण को उसी प्रकार देखा, जैसे प्राणों के सहित साक्षात् कज्जल का पहाड़ हो। उस की भुजायें वृक्ष के समान, सिर पर्वत के शिखरों के समान ऊँचा था और उसकी रोमावलियाँ अनेक लताओं जैसी थीं। उस के मुख, नाक, आँख और कान पर्वत की कन्दराओं और खोह के समान अनुमानित होते थे।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा।।
उठे सभासद कपि कहँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिशेषी।।

भा०– अंगद जी रावण की सभा में चले गये। युद्ध में अत्यन्त कुशल बालिपुत्र अंगद जी का मन तनिक भी अपने लक्ष्य से नहीं मुड़ा अर्थात् वे रावण से तनिक भी नहीं डरे। अंगद जी को देखकर सभी सभासद उठ कर खड़े हो गये, रावण के हृदय में विशेष क्रोध हुआ।

दो०– जथा मत्त गज जूथ महँ, पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिर नाइ।।१९।।

भा०– जिस प्रकार मतवाले हाथियों के समूह में चार पंजे और पाँचवाँ मुख, इन सबको मुख के समान ही समझने वाला सिंह बिना किसी व्यवधान के निर्भीक भाव से चला जाता है, उसी प्रकार श्रीराम के प्रताप को मन में स्मरण करके और भगवान् श्रीराम को ही प्रणाम करके, अंगद जी रावण की सभा में जाकर बैठ गये।

कह दशकंध कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दशकंधर।।
मम जनकहिं तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई।।
उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती। शिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।।
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा।।
नृप अभिमान मोह बश किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा।।
अब शुभ कहा सुनहु तुम मोरा। सब अपराध छमिहिं प्रभु तोरा।।
दशन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे।।

दो०– प्रनतपाल रघुबंशमनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करहिंगे तोहि।।२०।।

भा०– दस गलेवाले अर्थात् पूर्व संध्या में प्रभु के द्वारा दसों मुकुट काट दिये जाने के कारण मात्र दस कण्ठों से अवशिष्ट रावण ने कहा अर्थात् पूछा, ऐ बन्दर! तू कौन है? अंगद जी ने कहा, हे दस कन्धवाले रावण! मैं भगवान् श्रीराम का दूत हूँ। हे भाई! मेरे पिता जी की तुमसे मित्रता थी, इसलिए मैं तुम्हारे हित के कारण से यहाँ आया हूँ। तुम उत्तमकुल में जन्मे और महर्षि पुलस्त्य जी के पौत्र हो अर्थात पुलस्त्य जी के पुत्र विश्रवा के तुम पुत्र हो। तुमने शिव जी एवं ब्रह्मा जी की बहुत प्रकार से पूजा की है तथा उनसे अनेक वरदान प्राप्त किये और सभी कार्य किये हैं। सभी लोकपालों और पृथ्वी के सभी राजाओं को तुमने जीता है। राजा के अभिमान से किंवा मोहवश होकर तुम जगत् की माता श्रीसीता को हर लाये। अब तुम मेरा शुभ कथन सुनो, प्रभु तुम्हारे सभी अपराध क्षमा कर देंगे, दाँत में तिनका दबाओ और गले पर कुल्हाड़ी रखो, सम्पूर्ण परिवार और सभी अपनी पत्नियों के साथ आदरपूर्वक श्रीसीता को आगे करके, इस प्रकार सभी लोग भय छोड़कर भगवान् श्रीराम जी के पास चलो और आर्तस्वर में बोलो कि, हे प्रणतपाल (शरणागतों के पालक)! हे रघुवंश के रत्न भगवान् श्रीराम! अब मेरी रक्षा कीजिये....रक्षा कीजिये। इस प्रकार आर्तवाणी सुनकर प्रभु तुमको अभय कर देंगे।

रे कपिपोत न बोल सँभारी। मूढ़ न जानेहि मोहिं सुरारी।।
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई।।

भा०– रावण बोला, अरे वानर का बच्चा! तू सम्भालकर नहीं बोलता, हे मूर्ख! तू मुझे देवताओं का शत्रु नहीं जानता। हे भाई! अपने पिता का नाम बता, किस नाते से अपने पिता से मेरी मित्रता मान रहा है?

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई तोहि भेटा।।
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना।।

भा०– अंगद जी बोले, मैं अंगद नाम का बालि का बेटा हूँ, उनसे तुम्हारी कभी भेंट हो चुकी थी, अंगद जी की वाणी सुनकर रावण सकुचा गया और बोला, हाँ ठीक है, बालि नाम का एक वानर था, मैं जान गया।

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंश अनल कुल घालक।।
गर्भ न खसेहु ब्यर्थ तुम जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु।।

भा०– अंगद तू ही बालि का बेटा है? अरे तू तो अपने कुल को नष्ट करने के लिए बाँस के वन में अग्नि के समान उत्पन्न हुआ। तू गर्भ में आते ही क्यों नहीं गिर गया ? तूने व्यर्थ ही जन्म लिया। अपने ही मुख से तपस्वी का दूत कहला रहा है।

अब कहु कुशल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई।।
दिन दस गए बालि पहिं जाई। बूझेहु कुशल सखा उर लाई।।
राम बिरोध कुशल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई।।
सुनु शठ भेद होइ मन ताके। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाके।।

भा०– अब कुशल समाचार कह, बालि कहाँ है? तब अंगद जी हँसकर वचन कहने लगे। दस दिनों के पश्चात् बालि के पास जाकर अपने मित्र को हृदय से लगाकर कुशल समाचार पूछ लेना। श्रीराम के विरोध से जिस प्रकार का कुशल होता है, वह सब तुझे बालि सुनायेंगे। हे दुष्ट! सुन, तेरी इस भेदनीति से कोई लाभ नहीं, क्योंकि भेदनीति उसके हृदय में प्रभावी होती है जिसके हृदय में अभेदस्वरूप श्रीसीता के सहित रघुवीर अर्थात् जीवमात्र के प्रेरक भगवान् श्रीराम नहीं रहते अर्थात् मेरे हृदय में तो भगवान् श्रीराम हैं।

दो०– हम कुल घालक सत्य तुम, कुल पालक दशशीश।
अंधउ बधिर न अस कहहिं, नयन कान तव बीस।।२१।।

भा०– सत्य ही हम तो कुल के घालक अर्थात् कुल के विनाशक हैं, परन्तु अपने कुल के विनाशक नहीं हैं, प्रत्युत् राक्षसकुल के विनाशक हैं और तुम दुष्ट राक्षसकुल के पालक हो। यह बात इस अंश में सत्य है, परन्तु मैं वानरकुल का नाशक हूँ, इस प्रकार की बातें तो अन्धे और बहरे भी नहीं कहते। तेरे पास तो दस सिर, बीस नेत्र और बीस कान हैं।

शिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई।।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहरन तोरा।।

भा०– शिव जी, ब्रह्मा जी, उपलक्षणतया विष्णु जी आदि सभी देवता और मुनिजन जिन भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों की सेवा चाहा करते हैं, उनका दूत होकर मैंने अपना कुल डुबो दिया? इस प्रकार की बुद्धि पर भी तेरा हृदय फट नहीं रहा है, यह एक विडम्बना है।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दशानन नयन तरेरी।।
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ।।

भा०- अंगद जी की कठोर वाणी सुनकर कड़ी दृष्टि करके दस मुखोंवाला रावण कहने लगा, अरे खल! तेरे सभी कठिन वचनों को मैं सह रहा हूँ, तेरा वध नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि मैं कुछ नीति-धर्म को जानता हूँ अर्थात् दूत वध्य नहीं होता इसी धर्म का पालन करते हुए कठोर वचन कहने पर भी मैं तेरा वध नहीं कर रहा हूँ।

कह कपि धर्मशीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी।।
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी।।
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम धर्म बिचारी।।
धर्मशीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़भागी।।

भा०- वानरश्रेष्ठ अंगद जी कहने लगे, हाँ हमने भी तेरी धर्मशीलता सुनी है उसी का पालन करके तो तूने परायी नारी की चोरी कर ली और दूत की रक्षा करते हुए तो तुझे मैंने अपने नेत्रों से भी देखा है। श्रीराम के दूत हनुमान जी के साथ तूने कैसा व्यवहार किया है यह तो जगत प्रसिद्ध है और जली हुई लंका के आधार पर हमनें भी देख लिया तथा अभी-अभी मेरे ही समक्ष तुमने कुबेर के दूत का वध करके उसे राक्षसों से खवा दिया, इस घटना से मैंने भी प्रत्यक्षतः दूत की रक्षा देख ली है। हे धर्मव्रत को धारण करने वाला! तू डूबकर क्यों नहीं मर जाता? कान और नाक के बिना अपनी बहन को देखकर धर्म का विचार करके ही तुमने लक्ष्मण जी को क्षमा कर दिया अर्थात् क्या तुमने शूर्पणखा की विरुपीकरण से उत्तेजित होकर सीता जी का हरण नहीं किया? यदि तुझे थोड़ा भी धर्म का ज्ञान होता तब तू शूर्पणखा को भी दण्ड देता। उसका विरुपीकरण श्रीराम धर्मसम्मत कार्य मानते हैं, क्योंकि धर्मशास्त्र कहते हैं कि यदि अपनी ही जाति में अवैध यौनसम्बन्ध का प्रस्ताव हो तब आर्थिक दण्ड देना चाहिये और इस प्रस्ताव में यदि अनुलोम्य हो अर्थात् स्त्री निम्नवर्ण की और पुरुष उत्तमवर्ण का हो तब मध्यम दण्ड देना चाहिये अर्थात् समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये। यदि प्रतिलोम्य अर्थात् उत्तमवर्ण की स्त्री और उससे हीनवर्ण के पुरुष के बीच अवैध यौनसम्बन्ध का प्रस्ताव हो तो उसमें दोषी पुरुष का वध कर देना चाहिये और दोषी स्त्री के कान-नाक काट लेना चाहिये। यथा-

सजातावोत्तमो दण्डः आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रातिलोम्ये वधः पुन्सो नारियाः कर्णादि कर्तनम्।।

यह प्रतिलोम्य था। भगवान् श्रीराम क्षत्रिय कुलभूषण थे और शूर्पणखा विश्रवा ब्राह्मण की पुत्री। दोष था शूर्पणखा का, अतः पूर्वोक्त सिद्धान्त से लक्ष्मण जी ने उसके नाक-कान काटे, पर तुमने कहाँ धर्मशास्त्र का विचार किया? तेरी धर्मशीलता जगत् में जागृत है, मैं भी बड़भागी हूँ कि तेरा दर्शन पा लिया।

दो०- जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, शठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल शशि, ग्रसन हेतु सब राहु।।२२(क)।।

भा०- रावण ने कहा, हे जड़! वानर जैसा छोटा जीव व्यर्थ की जल्पना मत कर। अरे दुष्ट! मेरे बीस भुजदण्डों को देख, ये सभी बीसों के बीस लोकपालों के बलरूप बहुत-बड़े चन्द्रमा को ग्रसने के लिए राहु हैं।

पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलनि पर करि बास।
शोभित भयउ मराल इव, शंभु सहित कैलास।।२२(ख)।।

भा०- पुनः आकाशरूप सरोवर में विराजमान मेरे हाथ समूहरूप कमलों पर निवास करते हुए कैलाश के सहित शिव जी हंस के समान सुशोभित हुए थे, अर्थात् जैसे सरोवर में कमल पर हंस सुशोभित होता है, उसी प्रकार मेरी बीसों हथेलियों पर कैलाश सहित शिव जी सुशोभित हुए।

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद।।
तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना।।
तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ।।
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा।।
शिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलशीला।।
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा। सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा।।

भा०– हे अंगद! बोलो, तुम्हारी वानरी सेना में मुझसे कौन योद्धा भिड़ेगा? तेरे प्रभु राम तो पत्नी के विरह से बलहीन हो गये हैं अर्थात् राम की शक्ति तो मैंने ले ली है, वे अशक्त हैं। उनके छोटे भाई लक्ष्मण उन्हीं के दु:ख से दु:खी और मलिन अर्थात् म्लान हो गये हैं, यानी उनके हर्ष का क्षय हो गया है। तुम और सुग्रीव दोनों नदी तट के वृक्ष के सामन हो अर्थात् तुम्हारी जड़ें हिल चुकी हैं, कभी भी ढह सकते हो। मेरा छोटा भाई विभीषण बहुत ही भीरु अर्थात् डरपोक स्वभाव का है। मंत्री जाम्बवान अत्यन्त वृद्ध हो चुके हैं। वे युद्ध में कैसे आरूढ़ हो सकते हैं अर्थात् वृद्धता के कारण जब वे अपना शरीर ही नहीं सम्भाल पाते तब युद्ध कैसे करेंगे? नल–नील केवल शिल्पकार्य जानते हैं अर्थात् भवन और सेतुओं का निर्माण कर सकते हैं। तुम्हारी सेना में एक वानर ऐसा है, जो महाबलशाली है, जिसका बल और चरित्र दोनों ही महान् है। जो प्रथम आया था और जिसने मेरा नगर जलाया था, वही बलवान है। रावण का वचन सुनकर बालिपुत्र अंगद जी हँस कर बोले–

सत्य बचन कहु निशिचर नाहा। साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा।।
रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई।।
जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन।।
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई।।

भा०– हे राक्षसराज! तू सत्य कह, क्या सत्य ही वानर ने लंका जलायी? त्रैलोक विजयी रावण का नगर छोटा–सा वानर जला दे, इस प्रकार का वचन सुनकर इसे कौन सत्य कहेगा ? अर्थात् कोई नहीं। तात्पर्य यह है कि तुझे यहाँ पूर्णतया भ्रम है, जो हनुमान जी को छोटा–सा वानर मान रहा है। आठ अंगुल के शरीरवाला वानर क्या देवताओं द्वारा भी दुर्भेद्य तुम्हारी पुरी को जला सकता है? अरे मूर्ख! तुम्हारा नगर जलाने के लिए तो वानर का रूप धारण करके तुम्हारे गुरुदेव शिव जी स्वयं पधारे थे। उन्होंने पहले त्रिपुर को जलाया आज तेरी लंका को भी जला दिया। हे रावण! जिसको तुमने अत्यन्त सुभट अर्थात् महावीर कह कर सराहा है, वह तो सुग्रीव जी का छोटा–सा शीघ्रगामी दूत है। जो बहुत चला करता है, वह वीर नहीं हुआ करता। हमने उसे सीता जी का समाचार लेने के लिए भेजा था अर्थात् हमलोग भी हनुमान जी के अतुलनीय पराक्रम से परिचित नहीं थे, उन्हें छोटा–सा वानर ही माना, जबकि ऐसा न था, न है। वानर के रूप में ते हनुमान जी, सुग्रीव जी के छोटे से दूत और हमारे द्वारा प्रेषित श्रीराम–सेना के एक छोटे–से सेवक हैं। सौ योजन समुद्र का लंघन, सुरसा, सिंहिका तथा लंकिनी का मानमर्दन, तुम्हारे द्वारा छिपाकर रखी हुई श्रीसीता का पता लगाना, वन विध्वंस, राक्षसवध और लंका–दहन, यह सब तो वानर के रूप में विराजमान तथा भगवान् श्रीराम के अनन्य सेवक तुम्हारे गुरु बाबा शिव जी महाराज के कार्य हैं।

दो०– सत्य नगर कपि जारेउ, बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहँ, तेहिं भय रहा लुकाइ।।२३(क)।।

भा०- हे रावण! क्या प्रभु की आज्ञा के बिना ही वानर ने सत्य ही नगर जला दिया? क्या वह सुग्रीव जी के पास नहीं गये, क्या हनुमान जी उसी भय से छिपे रहे? अर्थात् यह सब कुछ असत्य है।

विशेष- अंगद जी वक्रोक्ति अलंकार के माध्यम से कह रहे हैं कि वानर ने लंका जलाया तेरा यह कथन सत्य से कोसों दूर है। जबकि तेरे राक्षस ऐसा कह चुके हैं-"वानर रूप धरे सुर कोइ हनुमान" जी ने जो कुछ किया है वह सब प्रभु की आज्ञा से किया है। भले ही उन्हें हमने विलम्ब से पहचाना, परन्तु तुम अब भी नहीं पहचान रहे हो। श्रीराम के प्रत्येक योद्धा में एक प्रतिशत देवताओं का अंश है और निन्यानवे प्रतिशत भगवान् श्रीराम का प्रताप और उनकी कृपा। परन्तु हनुमान जी में तो शत-प्रतिशत शिवांश है स्वयं सदाशिव ही हनुमान बनकर तेरा सर्वनाश करने के लिए उद्यत हैं।

सत्य कहेसि दशकंठ सब, सुनि न मोहि कछु कोह।
कोउ न हमरे कटक अस, तो सन लरत जो सोह।।२३(ख)।।

भा०- हे दसकण्ठ रावण! तुमने सब कुछ सत्य कहा है। वह सुनकर मुझे कुछ भी क्रोध नहीं आ रहा है, क्योंकि हमारी सेना में ऐसा कोई नहीं है, जो तेरे साथ युद्ध करते हुए शोभा पाये, क्योंकि तू माँसाहारी है और हम सब फलाहारी। तू दुराचारी है और हम सब सदाचारी, इसलिए तुम्हारे साथ लड़नें में किसी भी हमारे सैनिक की शोभा नहीं है।

प्रीति बिरोध समान सन, करिय नीति असि आहि।
जौ मृगपति बध मेडुकनि, भल कि कहइ कोउ ताहि।।२३(ग)।।

भा०- ऐसी नीति है कि प्रेमपूर्ण मित्रता और विरोध समान कक्षावाले व्यक्ति के साथ करना चाहिये। यदि सिंह मेंढकों का वध करे तो क्या उसे कोई भला कहेगा, जो मेंढक छूने मात्र से लघुशंका कर देते हैं, उनके वध में सिंह की क्या वीरता? हमारा प्रत्येक सैनिक सिंह है और तुम सब मेंढक हो, तुम्हें तो श्रीराम के बाणरूप सर्प ही खायेंगे, जो तुम्हारी पत्नी मन्दोदरी कह चुकी हैं।

जद्यपि लघुता राम कहँ, तोहि बधे बड़ दोष।
तदपि कठिन दशकंठ सुनु, छत्रि जाति कर रोष।।२३(घ)।।

भा०- यद्यपि तुझे मारने में श्रीराम के लिए भी लघुता है इससे उनका छोटापन ही सिद्ध होगा और बहुत दोष भी होगा, क्योंकि प्रभु के साथ तुम्हारी कोई समकक्षता नहीं है। फिर भी हे रावण! सुन, क्षत्रिय जाति का क्रोध बहुत कठिन होता है। तुझ पर श्रीराम का क्रोध हो चुका है और प्रभु का क्रोध तुझे दण्ड देगा।

बक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीश।
प्रतिउत्तर सड़सिन मनहु, काढ़त भट दशशीश।।२३(ङ)।।

भा०- वक्रोक्ति रूप धनुष से छूटते हुए व्यंग्य वचनरूप बाणों द्वारा रावण के शत्रु श्रीराम के दूत वानरश्रेष्ठ अंगद जी ने वेध-वेधकर रावण के हृदय को जला डाला, मानो वीर दस सिरोंवाला रावण प्रत्युत्तर रूप सँड़सियों से उन व्यंग्य वचनरूप बाणों को अपने हृदय से निकालने लगा।

हँसि बोलेउ दशमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित, करइ उपाय अनेक।।२३(च)।।

भा०- तब दस सिरोंवाला रावण हँसकर बोला, वानर का एक यही सबसे बड़ा गुण है कि जो इसका पालन-पोषण करता है, उसके हित अर्थात् कल्याण के लिए वानर अनेक उपाय करता हैं। अंगद! तुम उसी परिस्थिति में हो।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा।।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित धरै धर्म निपुनाई।।
अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती।।
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना।।

भा०– अहो! धन्य है वानर जो अपने स्वामी के कार्य के लिए लज्जा छोड़कर जहाँ–तहाँ नाचता है। नाच–कूदकर लोगों को रिझाकर अपने स्वामी के लिए अपने धर्म की कुशलता धारण करता है, अर्थात् तू भी इस समय वानरधर्म का पालन कर रहा है और तेरे स्वामी ने जैसा कहा, उसी प्रकार नाच रहा है। हे अंगद! तेरी जाति ही स्वामीभक्त है, इसलिए अपने स्वामी के गुण तू इस प्रकार से क्यों नहीं कहेगा? मैं परमचतुर गुणों का ग्राहक हूँ, मैं तेरी कठोर रटन अपने कानों में नहीं ला रहा हूँ अर्थात् तेरी कटु उक्ति के अर्थ पर नहीं विचार कर रहा हूँ, क्योंकि उसका कुछ भी तात्पर्य नहीं है।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई।।
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा।।
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दशकंधर मैं कीन्हि ढिठाई।।
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाखा। तुम्हरे लाज न रोष न माखा।।

भा०– वानरश्रेष्ठ अंगद जी ने कहा कि, पवनपुत्र हनुमान जी ने मुझे तेरी वास्तविक गुणग्राहकता सुना दी है। तुम कितने बड़े गुणग्राही हो यह सब उन्होंने बता दिया है। हनुमान जी ने लंका आकर अशोकवन को तहस–नहस करके तेरे पुत्र अक्षकुमार को मारकर तेरा नगर जला दिया, फिर भी उन्होंने तेरा कुछ भी अपकार अर्थात् अहित नहीं किया है तुम यही तो सोच रहे हो। हे रावण! तुम्हारी उसी सुहावनी प्रकृति का विचार करके मैंने भी ढिठाई कर दी। जो कुछ हनुमान जी ने कहा था वह सब आकर मैंने देख लिया। तुम्हारे पास न तो लज्जा है, न ही क्रोध और न ही असहनशीलता।

विशेष– यहाँ अंगद जी सब कुछ व्यंग्य में कह रहे हैं। अंगद जी रावण को लज्जित करते हुए कहना चाहते हैं कि इसी प्रकार तुमने हनुमान जी के साथ भी गुणग्राहकता का परिचय दिया था। हनुमान् जी का अशोक वाटिका विध्वंस, अक्षकुमार का वध और लंका दहन तुम्हारी दृष्टि में कोई अपकार नहीं। क्या इसीलिए तुमने उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया ? क्या यह पक्ष सत्य से कोसों दूर नहीं है। हनुमान जी ने अशोक वाटिका उजाड़ी उसकी प्रतिक्रिया में तुमने अनेक सुभटों के साथ अक्षकुमार को भेजा। तुमने तो कोई संकोच नहीं किया। हनुमान जी ने अक्षकुमार को मार डाला यह तो श्रीसीताराम जी की कृपा है। तुमने तो अपनी दृष्टि से उन्हें मार डालने की व्यवस्था कर ही ली थी। युद्ध में धर्मात्मा की जीत और अधार्मिक की हार होती ही है, इसी तथ्य के कारण हनुमान् जी द्वारा अक्षकुमार का वध हुआ, पर तुमने क्या क्षमा किया ? हनुमान जी को बाँधने के लिए मेघनाद को भेज दिया। तुमने जो अपना दायित्व निभाया ही। हनुमान जी पर ब्रह्मास्त्र विफल हुआ यह प्रभु श्रीराम की कृपा है। तुमने एक अन्ताराष्ट्रीय राजदूत को प्राणदण्ड देने का भी निर्णय लिया **"बेगि न हरहू मूढ़ कर प्राना"**। मानस ५–२४–५ विभीषण के कहने पर उन्हें भ्रम में डालते हुए तुमने प्रकारान्तर से पूँछ जलाकर हनुमान जी को मार डालना चाहा। पूँछ नहीं जली उल्टे पूरी लंका ही जल गई। यही तुम्हारी गुण ग्राहकता हनुमान जी ने मुझे सुनाई, इसीलिए मैंने भी धृष्टता करते हुए दो कार्य किये तेरे पुत्र प्रहस्त का वध और तेरे प्रति कठोर वाणी का प्रयोग। आज वह सब कुछ देख रहा हूँ जो हनुमान जी ने कहा था। तुम लज्जा, क्रोध और आमर्ष से रहित हो। वस्तुतः

तुम तो हमें मारने के लिए सामान्य षड़्यंत्र नहीं कर रहे हो, परन्तु प्रभु हमें बचाते जा रहे हैं। अब तो तुम्हारी गुणग्राहकता स्पष्ट हो ही गई है।

जो असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दशशीसा।।
पितहिं खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही।।
बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी।।

भा०– रावण बोला, हे वानर! तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तभी तो तुमने अपने पिता को खा डाला। इस प्रकार का वचन कहकर दस सिरोंवाला रावण दसों मुखों से हँसा। अंगद जी ने कहा, पिता को खाने के पश्चात् मैं पिताश्री के मित्र तुमको भी खा लेता, पर मुझे अभी कुछ और समझ पड़ गया है। हे नीच अभिमानी! तुमको मैं पिताश्री बालि के निर्मल यश का पात्र जानकर नहीं मार डाल रहा हूँ।

कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु तेते।।
बलिहिं जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि शिशुन हयशाला।।
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई।।
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिशेषा।।
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्त्य मुनि जाइ छोड़ावा।।

दो०– एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
इन महँ रावन तैं कवन, सत्य बदहि तजि माख।।२४।।

भा०– हे रावण! बता, संसार में कितने रावण हैं? मैंने अपने कानों से जितने सुने हैं, उतनों को तू भी सुन ले। एक रावण तो बलि को जीतने के लिए पाताल गया था उसे बालकों ने बाँध कर घुड़शाल में रख दिया, उससे बालक खेलते थे और जाकर लातों और मुक्कों से मारते थे। बलि को दया लग गई तब उसे अर्थात् उस रावण को उन्होंने बालकों से छुड़ा दिया। फिर एक रावण को सहस्रबाहु कार्त्यवीर्य ने देखा और उसने विशेष जन्तु जानकर उसे दौड़कर पकड़ लिया। वह खेल के लिए रावण को अपने घर ले आया, उसे जाकर पुलस्त्य जी ने छुड़ा लिया। एक रावण को कहने में तो मुझे बहुत संकोच हो रहा है, क्योंकि वह बालि की काँख में छह मासपर्यन्त दबा रहा। इन रावणों में तू कौन–सा रावण है, क्रोध छोड़कर सत्य बोल?

सुनु शठ सोइ रावन बलशीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला।।
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई।।
सिर सरोज निज करनि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी।।
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। शठ अजहूँ जिन के उर साला।।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरियाई।।
जिन के दशन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे।।
जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी।।
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेसि न स्रवन अलीक प्रलापी।।

भा०– रावण ने उत्तर दिया, हे शठ! सुन, मैं वही स्वाभाविक बलवाला रावण हूँ, कैलाश पर्वत जिसकी भुजा की क्रीड़ा जानता है। पार्वती जी के पति शिव जी जिसकी वीरता को जानते हैं, जिसने सिररूप पुष्प चढ़ाकर जिनकी पूजा की, जिसने अपने ही हाथों से सिररूप कमलों को उतारकर त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी की अनेक बार पूजा की। जिसकी भुजा के पराक्रम को दसों दिग्पाल जानते हैं। हे दुष्ट! आज भी जिनके हृदय में शाल हो रहा है अर्थात्

स्मरण करने पर अपमान से उत्पन्न पीड़ा होती रहती है। मेरे हृदय की कठोरता, पूर्व आदि दिशाओं के हाथी जानते हैं, मैं जब–जब हठपूर्वक उनसे जाकर भिड़ता हूँ। जिन दिग्गजों के दाँत इन्द्र के वज्र से भी नहीं विदीर्ण होते वे ही मेरे हृदय की टक्कर लगते ही मूली की भाँति टूट जाते हैं अथवा, जिनके कठोर दाँत मेरे हृदय से लगते हुए स्वयं तो मेरी छाती को नहीं स्फुटित कर पाये अर्थात् नहीं फाड़ पाये प्रत्युत् स्वयं ही मूली की भाँति टूट गये। जिस रावण के चलते हुए पृथ्वी इस प्रकार हिलती है, जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने पर छोटी सी नाव इधर–उधर डगमगा जाती है, मैं वही जगत् में प्रसिद्ध रावण हूँ। हे असत्य प्रलाप करने वाले अंगद! तूने अपने कान से क्या मुझे नहीं सुना है?

दो०- तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ग्यान।।२५।।

भा०- तू मुझ रावण को छोटा कहता है और मनुष्य राम का बखान करता है। अरे असभ्य जंगली छोटा अथवा अपूर्ण दुष्ट वानर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया।

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी।।
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा।।
जासु परशु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा।।
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दशशीष अभागा।।

भा०- रावण का यह वचन सुनकर, अंगद जी क्रोधपूर्वक वचन बोले, हे नीच अहंकारी रावण! सम्भालकर बोल सहस्रबाहु के अपार भुजाओं के वन को भस्म करने के लिए, जिनका फरसा अग्नि के समान है और जिनके फरसे की तीव्रधारा में बहुत बार अगणित राजा डूब गये, उन परशुराम जी का गर्व भी जिन श्रीराम के दर्शन करते ही भग गया, हे भाग्यहीन रावण! वे श्रीराम किस प्रकार मनुष्य हैं?

राम मनुज कस रे शठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा।।
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान किमि रस पीयूषा।।
बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दशानन।।
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा।।

दो०- सैन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे शठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि।।२६।।

भा०- अरे मूर्ख रावण! श्रीराम कैसे मनुष्य हैं? क्या कामदेव सामान्य धनुर्धर हैं? क्या गंगा जी साधारण नदी हैं? क्या कामधेनु साधारण पशु है? क्या कल्पवृक्ष पेड़ है? क्या अन्न दान है? क्या अमृत साधारण पेय है? क्या गरुड़देव जी साधारण पक्षी हैं? क्या शेषनाग साधारण सर्प हैं? हे दसमुखों वाला रावण! क्या चिन्तामणि पत्थर है? हे मन्दबुद्धि रावण! क्या वैकुण्ठ अर्थात् संसार की कुण्ठाओं से रहित साकेतलोक सामान्य लोक है? क्या अकुण्ठित भगवान् की भक्ति साधारण लाभ है? अरे दुष्ट रावण! जो तेरी सेना के सहित तेरा अहंकार नष्ट करके, वन को उजाड़कर और तेरे पुत्र अक्षकुमार का वध करके गये, क्या वे हनुमान जी महाराज साधारण वानर हैं? अर्थात् यदि कामदेव, गंगा जी, कामधेनु, कल्पवृक्ष, अन्न, अमृत, गरुड़, शेष, चिन्तामणि, श्रीरामभक्ति एवं श्रीरामभक्त हनुमान जी साधारण नहीं हैं, इन्हें सीमाओं में बाँध देना अपराध है, तो फिर इन सबके नियामक श्रीराम को मनुष्य क्यों मानना चाहिए ?

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई।।
जौ खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।।
मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बैर अस होइहि हाला।।
तव सिर निकर कपिन के आगे। परिहैं धरनि राम शर लागे।।
ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहैं भालु कीस चौगाना।।
जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। छुटिहैं अति कराल बहु सायक।।
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा।।

भा०– हे रावण! सम्पूर्ण चतुरता छोड़कर, कृपा के सागर रघुकुल के राजा श्रीराम का भजन क्यों नही करता? हे दुष्ट रावण! यदि तू श्रीराम का द्रोही हो रहा है, तब ब्रह्मा जी, शिव जी और उपलक्षणतया विष्णु जी भी तुझे नहीं रख सकेंगे। हे मूर्ख! तू झूठ ही अपना गाल मत पीट, श्रीराम से वैर करने पर ऐसा ही परिणाम होगा जब श्रीराम के बाणों के लगने से तेरे सिरों के समूह पृथ्वी पर गिरेंगे तब उन्हीं तेरे सिरों को वानर और भालु चौगाना अर्थात् गेंद खेलने के मैदान में अनेक गेंदों की भाँति खेलेंगे। जब युद्ध में भगवान् श्रीराम क्रुद्ध होंगे और उनके अत्यन्त भयंकर बहुत से बाण छूटेंगे, तब क्या तुम्हारा इसी प्रकार से गाल चलेगा? अर्थात् तब क्या तुम इसी प्रकार तथ्यहीन बात बोल सकोगे? ऐसा विचार करके उदार श्रीराम का भजन करो।

सुनत बचन रावन परिजरा। जरत महानल जनु घृत परा।।

दो०– कुंभकरन सम बंधु मम, सुत प्रसिद्ध शक्रारि।
मोर पराक्रम सुनेसि नहिं, जितेउँ चराचर झारि।।२७।।

भा०– ऐसा सुनकर रावण इस प्रकार जल पड़ा मानो जलती हुई अग्नि में घी पड़ गया हो और बोला, हे दुष्ट! कुम्भकरण जैसा मेरा भ्राता है और इन्द्र का प्रसिद्ध शत्रु इन्द्रजीत मेरा पुत्र है। उस मुझ रावण का पराक्रम क्या तूने नहीं सुना है, जिसने सम्पूर्ण चर–अचर को जीत लिया है?

शठ शाखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई।।
नाघहिं खग अनेक बारीशा। सूर न होहिं ते सुनु शठ कीशा।।

भा०– अरे दुष्ट! वानरों की सहायता जोड़कर अर्थात् अपने सहायकों के रूप में शाखाओं पर चढ़नेवाले वानरों को इकट्ठा करके राम ने सागर को बाँध लिया क्या यही वीरता है? अनेक पक्षी भी सागर को लाँघ जाते हैं, अरे दुष्ट बन्दर! सुन, वे वीर नहीं होते।

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर शूरा।।
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।।

भा०– बलरूप जल से पूर्ण मेरी बीस भुजायें ही बीस सागर हैं, जहाँ बहुत से शूरवीर, देवता और मनुष्य डूब चुके हैं। संसार में ऐसा कौन योद्धा है, जो मेरे अगाध और अपारणीय बीस समुद्रों का पार पा सके?

दिगपालन मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा।।
जौ पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा।।
तौ बसीठि पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।।
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि शठ कपि निज प्रभुहिं सराहू।।

भा०– मैंने दिग्पालों से भी अपने घर का पानी भरवाया। अरे दुष्ट! तू सामान्य राजा का यश मेरे सामने सुना रहा है। जिनकी गुणगाथायें तू बार–बार सुना रहा है वे ही तेरे स्वामी राम यदि युद्ध में श्रेष्ठ वीर हैं तो वे सन्धि का

प्रस्ताव लेकर बारम्बार अपने दूत लंका में क्यों भेजते हैं? क्या उनको अपने स्वाभाविक शत्रु रावण से प्रीति का प्रस्ताव करते हुए लज्जा नहीं आती? रे दुष्ट वानर! प्रथम तो शिव जी के पर्वत कैलाश को भी उखाड़कर उठा लेने वाली मेरी बाहुओं को देख, फिर अपने प्रभु राम की सराहना कर।

दो०- शूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहिं शीश।
हुने अनल महँ बार बहु, हरषित साखि गिरीश।।२८।।

भा०- मुझ रावण के समान कौन शूरवीर है, जिसने प्रसन्न होकर अपने मस्तकों को काटकर अनेक बार अग्नि में हवन किया? इसके साक्षी भगवान् शङ्कर हैं।

जरत बिलोकेउ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला।।
नर के कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची।।
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे।।
आन बीर बल शठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे।।

भा०- जब मैंने अग्नि में जलते हुए अपने सिरों को देखा तब अपने मस्तकों पर ब्रह्मा जी के लिखे हुए अंकों (अक्षरों) में मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु पढ़कर ब्रह्मा जी की वाणी को असत्य जानकर हँस पड़ा। वह समझकर भी मेरे मन में डर नहीं है, क्योंकि यह तो बूढ़े ब्रह्मा ने अपनी बूढ़ी बुद्धि के धोखे से लिख दिया। रे शठ! मेरे समक्ष लज्जा और मर्यादा छोड़कर तू अन्य वीरों का बल कह रहा है।

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं।।
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ।।
सिर अरु शैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही।।
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।।
सुनु मतिमंद देहि अब पुरा। काटे शीष कि होइअ शूरा।।
ऐंद्रजालि कहिं कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल शरीरा।।

भा०- अंगद जी ने कहा, हे रावण! तुम्हारे समान संसार में कोई भी सलज्ज नहीं है। तेरा तो जन्म से ही लज्जावान स्वभाव है। तूने तो कभी भी अपने मुख से अपने गुण नहीं कहे। तेरे मन में शिव जी और पर्वत की कथा ही स्मरण रही है, इसलिए तुमने उसे बीसों बार दुहरायी। तूने भुजाओं के उस बल को तो अपने हृदय में छिपा रखा है जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था। हे मन्दबुद्धि रावण! अब पूरा पड़ने दे अर्थात् चुप रह। कोई सिर काट कर वीर नहीं बनता, ऐन्द्रजालिक (जादूगर) को कोई वीर नहीं कहता, जो अपने ही हाथ से सम्पूर्ण शरीर को काट डालता है।

दो०- जरहिं पतंग बिमोह बश, भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं शूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमंद।।२९।।

भा०- पतिंगा मोहवश होकर दीपक पर कूदकर जल जाता है और गधों के समूह बोझ ढोते हैं, वे वीर नहीं कहलाते। हे मन्दबुद्धि रावण! समझकर देख अर्थात् तू अपने सिरों को हवन करके डींग हाँकता है, जबकि ऐसा तो पतंगे भी करते हैं। अतः तू पतिंगा हो सकता है, वीर नहीं। तू कहता है कि अपनी भुजा पर तूने कैलाश उठा लिया इस प्रकार तो गधे भी बोझ ढोया करते हैं, अतः तू गधा है।

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही।।
दशमुख मैं न बसीठी आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ।।

बार बार अस कहेउ कृपाला। नहिं गजारि जस बधे श्रृगाला।।
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन शठ तेरे।।
नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहिं बरजोरा।।
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनिहि परनारी।।
तैं निशिचरपति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता।।
जौ न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ।।

भा०– हे दुष्ट! अब बतबढ़ाव मत कर अर्थात् बात मत बढ़ा। मेरे वचन सुनकर अपने अहंकार छोड़ दे। हे रावण! मैं दूत बनकर नहीं आया हूँ, ऐसा विचार करके रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम द्वारा मैं भेजा गया हूँ, कृपालु श्रीराम ने मुझ से इस प्रकार बार–बार कहा है कि गीदड़ का वध करने पर सिंह का यश नहीं होता अर्थात् रावण गीदड़ और वानर सैनिक सिंह हैं। हे रावण! प्रभु श्रीराम के वचनों को मन में समझकर मैंने तेरे कठोर वचन सह लिए, नहीं तो तेरे मुखों को तोड़कर मैं बलपूर्वक भगवती श्रीसीता को ले जाता। हे नीच देवशत्रु रावण! मैं तेरा बल जान चुका हूँ। तू सूने में ही परायी नारी का हरण कर ले आया। तू राक्षसों का स्वामी है, इसलिए तुझे बहुत गर्व है। मैं सम्पूर्ण जीवों के स्वामी भगवान् श्रीराम जी के सेवक का दूत हूँ। यदि मैं भगवान् श्रीराम के अपमान से नहीं डरता होता, तो तुझे देखते–देखते यह कौतुक कर देता।

दो०– तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
मन्दोदरी समेत शठ, जनकसुतहिं लै जाउँ।।३०।।

भा०– अरे शठ! तुझे पृथ्वी पर पछाड़कर, तेरी सेना को मारकर, तेरे गाँव अर्थात् लंका को तहस–नहस करके, मन्दोदरी (सेविका के रूप में) के साथ मैं जनकनन्दिनी भगवती श्रीसीता को ले जा सकता हूँ।

जौ अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहिं बधे नहिं कछु मनुसाई।।
कौल कामबश कृपन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।।
सदा रोगबश संतत क्रोधी। राम बिमुख श्रुति संत बिरोधी।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी।।
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही।।

भा०– यदि मैं ऐसा करूँ तो भी मेरी कोई बड़ाई नहीं है, क्योंकि मरे हुए को मारने में कोई मनस्विता नहीं होती। कौल (वाममार्गी, पंचमकार सेवी, कामी, कृपण, मोहग्रस्त), दरिद्र, अपयशयुक्त, अत्यन्त वृद्ध, निरन्तर रोगी, सदैव क्रोध करने वाले, श्रीराम से विमुख, वेदों और सन्तों का विरोध करने वाले, अपने शरीर का पोषक, निन्दक अर्थात् सबकी निन्दा करने वाले और पाप की खानि अर्थात् बहुत पाप करने वाले ये चौदह प्राणी जीवित होते हुए भी मृतक के समान होते हैं। अरे दुष्ट! तुझमें ये चौदहों दुर्गुण हैं, मैं ऐसा विचार करके तेरा वध नहीं कर रहा हूँ। अब मेरे मन में क्रोध उत्पन्न मत करा।

सुनि सकोप कह निशिचर नाथा। अधर दशन दसि मीजत हाथा।।
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी।।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके।।

भा०– अंगद जी के वचन सुनकर, दाँतों से ओष्ठ चबाकर, हाथ मलते हुए रावण क्रोधपूर्वक बोला, अरे अधम वानर! अब तू अपना मरण चाहता है, छोटे मुख से बड़ी–बड़ी बातें करता है। हे जड़ वानर! तू जिस अपने स्वामी के बल पर इस प्रकार कटु और अनर्गल बोल रहा है उसके पास बल, प्रताप, बुद्धि और तेज कुछ भी नहीं है।

विशेष- सरस्वती जी ने कहा, रावण तू ठीक कह रहा है, क्योंकि बल, प्रताप, बुद्धि और तेज यह भगवान् से अलग नहीं हैं, जिससे उनमें रहेगा अर्थात् गुणों के साथ भगवान् का आधाराधेयभाव सम्बन्ध नहीं है, प्रत्युत् गुण भगवत्स्वरूप हैं अर्थात् गुणों का भगवान् जी के साथ स्वरूप सम्बन्ध है।

दो०- अगुन अमान बिचारि तेहि, दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह, पुनि निशि दिन मम त्रास।।३१(क)।।

भा०- रावण ने कहा, तुम्हारे स्वामी राम को गुणरहित और मानरहित समझकर पिता ने वनवास दिया। एक तो उन्हें वह वनवास का दुःख है, फिर पत्नी का विरह है और फिर रात–दिन मेरा डर है।

विशेष- सरस्वती जी ने कहा कि भगवान् श्रीराम जी के पास सत्व, रजस, तमस ये तीनों मायिकगुण नहीं हैं और उनमें मान अर्थात् अहंकार भी नहीं है, इसलिए पिता जी ने इन्हें वनवास दिया, जिससे ये वनवासी मुनियों की सेवा कर सकें। इनके गुण भी अव्यक्त हैं, जिसे समान्य जीव नहीं देख सकता।

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि, ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निशाचर दिवस निशि, मूढ़ समुझु तजि टेक।।३१(ख)।।

भा०- रावण कहता है, हे मूर्ख! हठ छोड़कर समझ, जिन राम के बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेक मनुष्यों को राक्षस रात–दिन खाते रहते हैं।

जब तेहि कीन्ह राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा।।
हरि गुरु निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना।।

भा०- जब रावण ने भगवान् श्रीराम की निन्दा की तब वानरश्रेष्ठ अंगद जी बहुत क्रुद्ध हो गये। श्रीहरि और गुरु की निन्दा जो सुन लेता है, उस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, उसे गोवध के समान पाप लगता है।

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहुँ भुजदंड तमकि महि मारी।।
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे।।

भा०- अत्यन्त विशाल वानरश्रेष्ठ अंगद जी कटकटाये अर्थात् दाँतो को रगड़ा और क्रोध करके अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वी को मारा अर्थात् दोनों भुजाओं को पृथ्वी पर पटक दिया। पृथ्वी हिली सारे सभासद गिर पड़े और भयरूप वायु से ग्रस्त होकर भग चले।

गिरत दशानन उठेउ सँभारी। भूतल परेउ मुकुट षट चारी।।
कछु तेहिं लै निज सिरनि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे।।

भा०- रावण गिरते हुए सम्भालकर उठा और उसके षट्चारी अर्थात् छः और चार यानी दसों मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ मुकुटों को लेकर रावण ने अपने सिरों पर पहन लिया और कुछ मुकुटों को (चार को) लेकर अंगद जी ने प्रभु श्रीराम के पास भेज दिया।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे।।
की रावन करि कोप चलाए। कुलिश चारि आवत अति धाए।।
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न अशनि केतु नहिं राहू।।
ए किरीट दशकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे।।

भा०- मुकुटों को आते हुए देखकर वानर भगे और बोले, हे ब्रह्मा! दिन में ही उल्कापात होने लगा अथवा रावण ने ही क्रोध करके चार वज्र भेज दिये हैं, जो बहुत दौड़ते हुए आ रहे हैं। भगवान् श्रीराम ने हँसकर कहा, ये न तो उल्का हैं न तो वज्र, तुम लोग हृदय में मत डरो, यह न तो केतु है और न ही राहु, यह तो रावण के चार मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अंगद जी की प्रेरणा से चले आ रहे हैं। इन्हें अंगद जी ने हमारे पास फेंका है।

विशेष- विभीषण जी को राजतिलक देने के पश्चात् भगवान् श्रीराम को उनके मुकुट का संकट था। अतः प्रभु की लीलाशक्ति ने रावण के चार मुकुट अंगद से प्रभु के पास फिंकवा दिये।

दो०- तरकि पवनसुत कर गहे, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकास।।३२।।

भा०- पवनपुत्र हनुमान जी ने उछलकर उन मुकुटों को हाथ में पकड़ लिया और ले आकर प्रभु के पास रख दिया। सूर्य के समान प्रकाशवाले चारों मुकुटों को वानर लोग कौतुहल से देखने लगे।

उहाँ कहत दशकन्ध रिसाई। धरि मारउ कपि भाजि न जाई।।
एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु।।
महि अकीश करि फेरि दोहाई। जियत धरहु तापस द्वौ भाई।।

भा०- उधर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा, इस वानर को पकड़कर मार डालो, जिससे यह भाग न जाये। इसे मारकर सभी योद्धाओं चारों ओर दौड़ो और जहाँ-जहाँ पाओ वानर-भालुओं को खा जाओ। पृथ्वी को वानरों से हीन करके मेरी दुहाई फेर दो और जीते जी तपस्वी दोनों भाइयों को पकड़ लो।

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा।।
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती।।
रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल राशि मंद मति कामी।।
सन्निपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबश खल मनुजादा।।
याको फल पावहिगो आगे। बानर भालु चपेटनि लागे।।

भा०- फिर यह सुनकर युवराज अंगद जी क्रोध करके बोले कि गाल बजाने में तुझे लज्जा नहीं लगती। हे निर्लज्ज राक्षसकुल को नष्ट करने वाले रावण! तू गला काटकर मर जा। प्रभु के द्वारा दिये हुए मेरे बल को देखकर तेरी छाती नहीं फटती। हे स्त्री-चोर, बुरे मार्ग पर चलनेवाला, मलों की राशि, खल, मन्दमति और कामी! तू सन्निपात के कारण इस प्रकार के दुर्बाद बोल रहा है। हे नरभक्षी खल! अब तू काल के वश में हो गया है। इसका फल तू आगे पायेगा, जब वानरों और भालुओं के थप्पड़ लगेंगे।

राम मनुज बोलत असि बानी। गिरिहिं न तव रसना अभिमानी।।
गिरिहैं रसना संशय नाहीं। सिरन समेत समर महि माहीं।।

भा०- हे अभिमानी! श्रीराम मनुष्य हैं, ऐसी वाणी बोलते हुए तुम्हारी जीभ नहीं गिर पड़ती? तुम्हारी जीभ गिरेगी इसमें कोई सन्देह नहीं है, पर वह रणभूमि में सिरों के साथ गिरेगी।

सो०- सो नर क्यों दशकंध, बालि बध्यो जेहिं एक शर।
बीसहुँ लोचन अंध, धिग तव जन्म कुजाति जड़।।३३(क)

भा०- हे रावण! वे प्रभु श्रीराम कैसे मनुष्य हो सकते हैं, जिन्होंने एक ही बाण में बालि को मार दिया, तू तो बीसों नेत्रों से अन्धा है। हे कुजाति जड़! तेरे जन्म को धिक्कार है।

तव शोनित की प्यास, तृषित रामसायक निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निशिचर अधम।।३३(ख)

भा०– हे कटु बोलने वाले अधम राक्षस! भगवान् श्रीराम के बाणों के समूह तेरे रक्त की प्यास से प्यासे हैं, उन्हीं के डर से मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ।

मैं तव दशन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।।
असि रिसि होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं।।

भा०– मैं तेरे दाँतों को तोड़ने में समर्थ हूँ, परन्तु रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम ने आज्ञा नहीं दी है। मुझे ऐसा क्रोध हो रहा है कि तेरे दसों मुखों को तोड़ दूँ और लंका को पकड़कर सागर में डुबो दूँ।

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जंतु अशंका।।
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा।।

भा०– तुम्हारी लंका गूलर के फल के समान है, उसके मध्य तुम मच्छरों की भाँति निर्विघ्न रूप से रह रहे हो। मैं वानर हूँ मुझे फल खाने में देर नहीं लगेगी, परन्तु उदार श्रीराम ने मुझे आज्ञा नहीं दी है।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखेसि कहँ बहुत झुठाई।।
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन तैं भएसि लबारा।।

भा०– अंगद जी के मुख से ऐसी उक्ति सुनकर, रावण मुस्कुराने लगा और बोला, रे मूर्ख! तू बहुत झूठ बोलना कहाँ से सीख लिया? बालि ने कभी भी इस प्रकार का गाल नहीं पीटा, तपस्वियों से मिलकर तू बहुत लबार हो गया अर्थात् अत्यन्त असत्यवादी हो गया।

साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारेउँ तव दश जीहा।।
राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा।।

भा०– (अंगद जी बोले–) हे बीस भुजा वाले रावण! सत्य ही मैं लबार हो गया हूँ, जो भगवान् की निन्दा करने पर भी तुम्हारी बीसों जीभ नहीं उखाड़ी भगवान् श्रीराम के प्रताप का स्मरण करके वानरश्रेष्ठ अंगद जी क्रुद्ध हो गये और रावण की सभा के बीच में प्रतिज्ञा करके अपने चरण को जमा दिया।

जौ मम चरन सकसि शठ टारी। फिरिहिं रामसीता मैं हारी।।
सुनहु सुभट सब कह दशशीशा। पद गहि धरनि पछारहु कीशा।।

भा०– अंगद जी बोले, अरे दुष्ट रावण! यदि तू मेरे जमाये हुए चरण को टला सकेगा अर्थात् हटा देगा तब श्रीराम एवं भगवती श्रीसीता लौट जायेंगे और मैं हार जाऊँगा अर्थात् वानरी सेना का आक्रमण बन्द करा दूँगा अथवा, मुझे हारकर श्रीसीताराम जी स्वयं लौट जायेंगे। रावण ने कहा, हे वीरों! सुनो, चरण पकड़कर वानर को पृथ्वी पर पटक दो।

विशेष– यहाँ प्रारम्भ से अब तक के टीकाकार भ्रम में रहे हैं। सबने यही लिखा कि अंगद जी कहते हैं कि यदि रावण मेरे चरण हटा देगा तो श्रीराम लौट जायेंगे और श्रीसीता को मैं हार जाऊँगा, परन्तु क्या अंगद जी श्रीसीता को हार सकते हैं और क्या अंगद जी को इस प्रकार कहने का अधिकार है, कभी नहीं। अतः यहाँ दो वाक्य बनाकर ही अर्थ करना चाहिये। ''***फिरिहिं रामसीता मैं हारी***'', अर्थात् सीताराम जी लौट जायेंगे और मैं अपनी हार स्वीकार कर लूँगा।

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना।।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिर नाई।।
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती।।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहि उपारी।।

भा०– रावण की बात सुनकर, इन्द्रजीत आदि जहाँ–तहाँ अनेक वीर प्रसन्न होकर उठे। अनेक उपाय करके वीर राक्षस झपटते हैं, अंगद जी का चरण टलता नहीं और सिर झुकाकर बैठ जाते हैं। हे गरुड़ जी! सुनिये, फिर देवताओं के शत्रु राक्षस पैर उठाने के लिए झपटते हैं और वह अंगद जी का चरण इस प्रकार टस से मस नहीं होता, जैसे कुयोगी अर्थात् योग को भौतिक सिद्धियों का साधन बनाने वाला व्यक्ति मोह के वृक्ष को नहीं उखाड़ पाता।

दो०– कोटिन मेघनाद सम, सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन, पुनि बैठहिं सिर नाइ।।३४(क)।।

भा०–मेघनाद के समान करोड़ों राक्षस वीर प्रसन्न होकर उठे, वे वेग से दौड़ते हैं। अंगद जी का चरण नहीं टलता, फिर मस्तक नवाकर बैठ जाते हैं।

भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग।।३४(ख)।।

भा०– अंगद जी का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ रहा है और पृथ्वी अंगद जी के चरण को नहीं छोड़ रही है। यह देखकर शत्रु रावण का मद भग गया। अंगद जी के चरण की स्थिति यह है, जैसे करोड़ों विधियों से आहत हुआ सन्तों का मन नीति को नहीं छोड़ता उसी प्रकार अंगद जी का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ रहा है।

कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु जुबराज प्रचारे।।
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा।।
गहसि न राम चरन शठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।।
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि शशि सोहई।।

भा०– अंगद जी का बल देखकर सभी लोग हृदय में हार गये। युवराज अंगद जी के ललकारने पर स्वयं रावण उठा। रावण द्वारा अपना चरण पकड़े जाते हुए देखकर बालिपुत्र अंगद जी ने कहा, अरे रावण! मेरा पग पकड़ने से तेरा बचाव नहीं होगा। अरे दुष्ट! तू जाकर श्रीराम के श्रीचरण क्यों नहीं पकड़ लेता? यह सुनते ही मन में अत्यन्त संकुचित होते हुए रावण लौटा, उसका तेज समाप्त हो गया और सारी शोभा चली गयी, जैसे मध्याह्न में चन्द्रमा शोभित होता है।

सिंघासन बैठा सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई।।
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा।।
उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिश्व पुनि पावइ नासा।।
तृन ते कुलिश कुलिश तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई।।

भा०– शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे उमा! श्रीराम जगदात्मा हैं अर्थात् यह जगत् श्रीराम की आत्मा यानी शरीर है। वे प्राणों के भी पति हैं, उनसे विमुख होकर रावण कैसे विश्राम पा सकता है? हे पार्वती! भगवान् श्रीराम जी के भृकुटि के विलासमात्र से संसार होता है, फिर नाश को प्राप्त कर लेता है अर्थात्

नष्ट हो जाता है। भगवान् श्रीराम तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते हैं अर्थात् तिनके को वज्र और वज्र को तिनका बना डालते हैं। भला बताओ, उन प्रभु के दूत का प्रण कैसे टलेगा?

विशेष- जगदात्मा शब्द बहुव्रीहि समास से समस्त हुआ है। आत्मा पद का शरीर अर्थ है, यथा- आत्मा शरीरे जगत् आत्मा यस्य स जगदात्मा अर्थात् सम्पूर्ण संसार भगवान् श्रीरामजी का शरीर है ***"जगत् सर्वं शरीरं ते।"*** (वा०रा० ६/११७/२७.)

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि काल नियराना।।
रिपु मद मथि प्रभु सुजस सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो।।
हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई।।

भा०- फिर अंगद जी ने अनेक प्रकार की नीति कही, परन्तु रावण ने नहीं मानी, क्योंकि काल उसके निकट आ गया था। फिर शत्रु रावण के मद का मथन अर्थात् विनाश करके वानरराज बालिपुत्र अंगद जी ने रावण को प्रभु श्रीराम का सुयश सुनाया और यह कहकर चल पड़े कि तुमको रणभूमि में खेला-खेलाकर मैं अभी नहीं मार सक रहा हूँ, क्योंकि प्रभु की आज्ञा नहीं है तो फिर क्या बड़ाई करूँ? अथवा, जब तक मैं तुझे रणभूमि में खेल-खेल में न मारूँ तब तक क्या बड़ाई करूँ?

प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा।।
जातुधान अंगद बल देखी। भय ब्याकुल सब भए बिशेषी।।

भा०- सभा में प्रवेश करने के प्रथम ही अंगद जी ने रावण के पुत्र का वध किया था, वह सुनकर रावण बहुत दुःखी हुआ। अंगद जी की प्रतिज्ञा देखकर राक्षस लोग भय से विशेष व्याकुल हो उठे।

दो०- रिपु बल धरषि हरषि हिय, बालितनय बल पुंज।
सजल सुलोचन पुलक तन, गहे राम पद कंज।।३५(क)।।

भा०- शत्रु के बल का प्रदर्शन करके अर्थात् उसे रौंदकर, मन में प्रसन्न होकर बल के पुंज बालिपुत्र अंगद जी नेत्रों में आँसू और शरीर में रोमांचित होकर भगवान् श्रीराम जी के श्रीचरणों को पकड़ लिए।

साँझ जानि दशकंधर, भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरि तब रावनहिं, बहुरि कहा समुझाइ।।३५(ख)।।

भा०- सन्ध्या जानकर दस कन्धरों वाला रावण दुःखी होकर अपने भवन गया। तब मन्दोदरी ने फिर रावण को समझाकर कहा-

कंत समुझि मन तजहु कुमतिहीं। सोह न समर तुमहिं रघुपतिहीं।।
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई।।
पिय तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा।।
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी अशंका।।
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अक्ष तेहिं मारा।।
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा।।

भा०- हे पति! मन में समझकर कुबुद्धि छोड़ दो रघुकल के स्वामी भगवान् श्रीराम जी के साथ युद्ध तुम्हें शोभा नहीं देता। श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण जी ने जो छोटी-सी अपने धनुष से रेखा खींची थी उसको भी तुम नहीं लाँघ पाये और छल करके सीता जी को रेखा लांघने के लिए विवश कर दिया, यही तुम्हारा पुरुषार्थ है। हे

प्रेमास्पद! तुम उन श्रीराम को युद्ध में जीतोगे जिनके दूत का आज यह कर्म राजसभा में दिखा कि तुम सभी लोग अंगद के छोटे पैर को भी नहीं डिगा सके? खेल–खेल में सौ योजन का समुद्र लाँघकर कपि केशरी अर्थात् वानर सिंह हनुमान जी तुम्हारी लंका में निर्भीक होकर आये और तुम्हारे रक्षकों को मारकर वन उजाड़ डाला। तुम्हारे देखते–देखते अक्षकुमार का वध कर दिया। हनुमान जी ने सम्पूर्ण नगर जलाकर खाक कर दिया। उस समय आपका बल और गर्व कहाँ था?

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु।।
पति रघुपतिहिं नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु।।

भा०– हे पति रावण! अब झूठ का गाल मत पीटो अर्थात् निरर्थक मत बोलो। मेरे कथन पर कुछ हृदय में विचार कर लो। हे पतिदेव! श्रीराम को मनुष्य राजा मत समझो उन्हें जड़–चेतन सब का ईश्वर और अतुल बलवाला जानो।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहु नीचा।।
जनक सभा अगनित भूपाला। रहे तुमहु बल बिपुल बिशाला।।
भंजि धनुष जानकी बियाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।।
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा।।
सूपनखा कै गति तुम देखी। तदपि हृदय नहिं लाज बिशेषी।।

भा०– भगवान् श्रीराम के बाण का प्रभाव मारीच जानता था। अरे नीच! तुमने उसका भी कहा नहीं माना। जनक जी की सभा में सीता जी के स्वयंवर के निमित्त अनगिनत राजा आये थे उनमें अत्यन्त विशाल बल वाले तुम भी तो थे। श्रीराम ने शिवधनुष तोड़कर भगवती जानकी जी को ब्याहा तब उन्हें तुमने युद्ध में क्यों नहीं जीता? इन्द्र का पुत्र जयन्त भगवान् श्रीराम का थोड़ा–सा बल जानता है, उसे भगवान् ने जीवित रखा और उसे पकड़कर उसकी एक आँख फोड़ दी। तुमने शूर्पणखा की भी गति देखी फिर भी तुम्हारे हृदय में विशेष लज्जा नहीं आयी।

विशेष– इस चरित्र को मन्दोदरी सम्भाल कर नहीं गा पायी, क्योंकि भगवान् श्रीराम ने जयन्त की आँख नहीं फोड़ी, केवल उसकी दृष्टि संसार से हटाकर अपने श्रीचरणों में कर दिया, इस लिए मन्दोदरी को वैधव्य आदि देखना पड़ा।

दो०– बधि बिराध खर दूषनहिं, लीलहिं हत्यो कबंध।
बालि एक शर मारेउ, तेहि जानहु दशकंध।।३६।।

भा०– हे दस स्कन्धोंवाले रावण! जिन्होंने विराध, खर–दूषण–त्रिशिरा का वध करके खेल–खेल में कबन्ध का वध कर दिया और बालि को भी एक बाण से मार डाला, उन परमपराक्रमी परमात्मा श्रीराम को जान लो।

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला।।
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू।।

भा०– जिन्होंने खेल–खेल में समुद्र को बँधाया और सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर आये उन्हीं सर्वसमर्थ, नित्य करुणाधाम, सूर्यकुल के पताकास्वरूप भगवान् श्रीराम ने तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा।

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महँ मृगपति जथा।।
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके।।
तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू।।

अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबश मन उपज न बोधा।।
काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा।।
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहिं नाईं।।

भा०– जिस दूत ने तुम्हारी सभा के बीच तुम्हारे मद को उसी प्रकार समाप्त किया, जैसे हाथियों के बीच में सिंह जाकर उनके मद को चूर्ण कर देता है। हे प्रियतम! जिन श्रीराम के पास युद्ध में अत्यन्त कुशल और अत्यन्त अतुलित वीर अंगद और हनुमान जी सेवक हैं, उन्हीं को तुम बार–बार मनुष्य कह रहे हो और व्यर्थ ही ममता और मद की धारा में बह रहे हो। अरे खेद है! मेरे पति आप (रावण) ने श्रीराम से विरोध किया। काल के वश में होने के कारण आपके मन में ज्ञान ही नहीं उत्पन्न हो रहा है। काल किसी को डण्डे से नहीं मारता, वह तो धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हरण कर लेता है। हे इन्द्रियों के स्वामी रावण! काल जिसके भी निकट आ जाता है, उसी को आप जैसा बुद्धिभ्रम हो जाता है।

दो०– दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहूँ पर तिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि, नाथ बिमल जस लेहु।।३७।।

भा०– हे प्रियतम! दो पुत्र मार डाले गये, नगर जला दिया गया, अब भी परायी तिय अर्थात् सीता जी को अथवा, पर यानी परमेश्वर श्रीराम की तिय अर्थात् पत्नी सीता जी को दे दीजिये। हे नाथ! कृपा के सागर श्रीरघुनाथ का भजन करके आप निर्मल यश ले लीजिये।

नारि बचन सुनि बिशिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना।।
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली।।

भा०– नारी मन्दोदरी के बाण जैसे वचनों को सुनकर रावण प्रात:काल होते ही सभा में चला गया और जाकर अहंकार में फूला हुआ सिंहासन पर बैठ गया। अत्यन्त अभिमान के कारण प्रभु से होने वाला सम्पूर्ण भय भूल गया।

इहाँ राम अंगदहिं बोलावा। आइ चरन पंकज सिर नावा।।
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपालु खरारी।।

भा०– यहाँ सुबेल पर्वत पर भगवान् श्रीराम ने अंगद जी को बुलाया और अंगद जी ने आकर भगवान् के श्रीचरण कमलों को प्रणाम किया। कृपालु, खर राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम ने उन्हें अत्यन्त आदर से अपने निकट बैठाया और हँसकर बोले–

बालितनय कौतुक अति मोहीं। तात सत्य कहु पूछउँ तोहीं।।
रावन जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका।।
तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए।।

भा०– हे बालिपुत्र अंगद! मुझे यह जानने का अत्यन्त कौतूहल है, इसलिए आपसे मैं पूछता हूँ, हे तात! आप मुझे सत्य–सत्य बताइये। रावण सम्पूर्ण राक्षसों का तिलक स्वरूप है, जिसकी भुजा की मर्यादा सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध है, उसके चार मुकुट मेरे यहाँ फेंके, हे तात! आपने उसे किस प्रकार से प्राप्त किया?

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी।।
साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जिय जानि नाथ पहँ आए।।

भा०- अंगद जी बोले, हे सर्वज्ञ! हे प्रणाम करने वालों को सुख देने वाले प्रभु श्रीराघव! सुनिये ये मुकुट नहीं राजा के चार गुण हैं। हे नाथ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड, भेद ये चारों राजनीति धर्म के सुहावनें चरण, राजा के हृदय में निवास करते हैं। ये चारों हृदय में ऐसा जानकर, अपने आप ही आपश्री के श्रीचरणों में चले आये।

दो०- धर्महीन प्रभु पद बिमुख, काल बिबश दशशीश।
आए गुन तजि रावनहिं, सुनहु कोसलाधीश।।३८(क)।।

भा०- हे अयोध्यापति श्रीराम ! सुनिये, दस सिरोंवाले रावण को साम, दान, दण्ड और भेद ये चारों गुण, धर्म से हीन, आपके श्रीचरणों से विमुख और काल के वशीभूत जानकर उसे छोड़कर आपश्री के यहाँ आ गये।

परम चतुरता स्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार।
समाचार पुनि सब कहे, गढ़ के बालिकुमार।।३८(ख)।।

भा०- अंगद जी की परम चतुरता कानों से सुनकर उदार श्रीरामचन्द्र जी हँसे, फिर अंगद जी ने लंका-किले के सब समाचार कह सुनाये।

* मासपारायण, पच्चीसवाँ विश्राम *

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए।।
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय करहु बिचारा।।

भा०- जब श्रीराम ने अंगद जी से शत्रु रावण के सभी समाचार पा लिए, तब उन्होंने अपने सभी मंत्रियों को अपने पास बुला लिया और बोले, लंका के दुर्गम चारों द्वारों पर किस प्रकार लगा जाये अर्थात् किस विधि से आक्रमण किया जाये? इस पक्ष पर सब लोग विचार कीजिये।

तब कपीश ऋक्षेश बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन।।
करि बिचारि तिन मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटक बनावा।।

भा०-तब वानरों के राजा सुग्रीव जी, ऋक्षों के राजा जाम्बवान जी और प्रभु द्वारा शीघ्र ही मनोनीत किये हुए राक्षसों के राजा विभीषण इन तीनों मंत्रियों ने हृदय में भगवान् श्रीराम का स्मरण करके विचार करके मंत्रणा दृढ़ कर दी अर्थात् निश्चित कर दी और वानरी सेना की चार अनियाँ अर्थात् उपसेनायें यानी टुकड़ियाँ बना दी।

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे।।
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए।।

भा०- यथायोग्य अर्थात् वानरों और रावण की द्वारों की योग्यता के अनुसार सेनापति नियुक्त किये अर्थात् पूर्व द्वार पर नील को, दक्षिण द्वार पर अंगद जी को, उत्तर द्वार पर जाम्बवान जी को और पश्चिमी द्वार पर हनुमान जी को सेनापति नियुक्त किया। तब सम्पूर्ण यूथपतियों को बुला लिया और तीनों मंत्रियों ने सभी यूथपतियों को सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम का प्रताप कहकर समझाया। मंत्रियों का निर्देश सुनकर सभी वानर यूथपति सिंहनाद करके दौड़ पड़े।

हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि शिखर बीर सब धावहिं।।
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले अशंका।।

भा०– सभी वीर वानर प्रसन्नता के साथ भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में सिर नवाते हैं और पर्वतों के शिखर लेकर दौड़ते हैं। लंका किले को अत्यन्त श्रेष्ठ और दुर्गम जानते हुए भी प्रभु श्रीराम के प्रताप से वानर निर्भीक होकर चल पड़े।

घटाटोप करि चहुँ दिशि घेरी। मुखनि निसान बजावहिं भेरी।।
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीशा। जय रघुबीर कोसलाधीशा।।

भा०– वीर वानर घटाटोप अर्थात् बादलों के समूह की भाँति आटोप करके अर्थात् सेना का आकार बनाकर चारों दिशाओं से लंका के चारों द्वारों को घेरकर अपने मुखों से ही नगारे और भेरियाँ बजाने लगे। भालु और श्रेष्ठ वानर गरजने और राक्षसों को डराने और धमकाने लगे। कोसलाधीश अर्थात् अयोध्या के अधिपति महाराज श्रीराम की जय बोलकर भगवान् श्रीराम का जयकारा लगाने लगे।

दो०– जयति राम भ्राता सहित, जय कपीश सुग्रीव।
गर्जहिं केहरि नाद कपि, भालु महा बल सींव।।३९।।

भा०– भाई लक्ष्मण जी के साथ भगवान् श्रीराम की जय हो! वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जी की जय हो! इस प्रकार जयकारा लगाते हुए श्रेष्ठ बल की सीमा, वानर और भालु सिंहनाद करके गरजने लगे।

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दशानन अति अहँकारी।।
देखहु बनरन केरि ढिठाई। बिहँसि निशाचर सेन बोलाई।।

भा०– लंका में बहुत–बड़ा कोलाहल मच गया। इसे अत्यन्त अहंकारी दस मुख वाले रावण ने सुना, उसने परिहास में कहा, वानरों की ढिठाई अर्थात् धृष्टता तो देखो। इस प्रकार श्रीराम के सैनिकों का परिहास करके रावण ने राक्षसों की सेना बुला ली।

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निशिचर मेरे।।
अस कहि अट्टहास शठ कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा।।

भा०– वानर, काल से प्रेरित होकर लंका पर चढ़ आये हैं और मेरे राक्षस भूखे हैं। विधाता ने घर बैठे ही अहार दे दिया, मेरे राक्षसों को कोई श्रम नहीं करना पड़ा। ऐसा कहकर दुष्ट रावण ने अट्टहास किया अर्थात् ठहाके लगाकर ऊँचे स्वर में हँसा।

सुभट सकल चारिहुँ दिशि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू।।
उमा रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभि खग सूत उताना।।

भा०– हे वीरों! सभी लोग चारों दिशाओं में अर्थात् लंका के चारों द्वारों पर जाओ और पकड़–पकड़कर सभी वानर और भालुओं को खा जाओ। हे पार्वती! रावण को इस प्रकार का अहंकार है, जैसे जल के किनारे रहने वाला टिटिहरी नाम का पक्षी अपने चरणों पर आकाश को रोक लेने के लिए उत्तान अर्थात् ऊपर चरण करके सोता है।

विशेष– यहाँ गोस्वामी जी एक लोकोक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। ऐसा लोक में प्रचलित है कि टिटिहरी पैर ऊपर करके इसलिए सोता है क्योंकि उसे लगता है, कि यदि आकाश गिरने लगेगा तो मैं उसे अपने पैरों पर रोक लूँगा। इस लोकोक्ति का श्लोक इस प्रकार है–

अहंकारस्तु सर्वेषां क्षुद्राणां तू विशेषतः।
उत्तानं टिट्टिभिः शेते नभः पतनशंकया।।

चले निशाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी।।
तोमर मुद्गर परशु प्रचंडा। शूल कृपान परिघ गिरिखंडा।।

भा०– रावण से आदेश माँगकर हाथ में भिण्डिपाल (ढेलवास) अर्थात् गुलेल, श्रेष्ठ शक्ति (बर्छी), तोमर, मुद्गर, तीखा फरसा, त्रिशूल, तलवार, परिघ और पर्वतों का खण्ड लेकर राक्षस चल पड़े।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं शठ खग मांस अहारी।।
चोंच भंग दुख तिनहिं न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा।।

भा०– जिस प्रकार लाल पत्थरों के समूह को देखकर माँसाहारी दुष्ट पक्षी दौड़ते हैं और उन पर चोंच का प्रहार करते हैं। उन्हें चोंच के टूटने का दुःख नही समझ पड़ता, उसी प्रकार मूर्ख नरभक्षी राक्षस वानरों पर प्रत्याक्रमण करते हुए दौड़े अर्थात् उन्होंने वानरों को अपना भक्ष्य समझा, जबकि वे लाल पत्थर के समान उनके लिए अजेय थे।

दो०– नानायुध शर चाप धर, जातुधान बल बीर।
कोट कँगूरन चढ़ि गए, कोटि कोटि रनधीर।।४०।।

भा०– बलवीर अर्थात् अपने बल से विशिष्ट लोगों को भी कँपा देने वाले, युद्ध में स्थिर रहने वाले, करोड़ों-करोड़ों राक्षस अनेक अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण लिए हुए किले के कँगूरों पर चढ़ गये।

विशेष– *बलेन विशिष्टां इरयन्ति इति बलवीरा।*

कोट कँगूरन सोहहिं कैसे। मेरु के श्रृंगनि जनु घन बैसे।।
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटनि मन चाऊ।।
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा।।

भा०– किले के कँगूरों पर चढ़े हुए राक्षस किस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरु पर्वत के शिखरों पर बादल बैठे हों। युद्ध के ढोल नगारे बजने लगे। सुनकर वीर सैनिकों के मन में उत्साह हो रहा था। असंख्य भेरियाँ और नफीरि नामक युद्ध के पारम्परिक बाजे बज रहे थे, जिन्हें सुनकर कायरों के हृदय में दरार पड़ जाता था अर्थात् कायर भयभीत हो जाते थे।

देखेन जाइ कपिन के ठट्टा। अति बिशाल तनु भालु सुभट्टा।।
धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा।।
कटकटाहिं कोटिन भट गर्जहिं। दशन ओठ काटहिं अति तर्जहिं।।

भा०– राक्षस सैनिकों ने चारों द्वारों पर जाकर वानर समूहों को और अत्यन्त विशाल शरीरवाले श्रेष्ठवीर भालुओं को देखा। वानर-भालु दौड़ रहे हैं। ऊँची-नीची दुर्गम घाटियों को भी कुछ नहीं समझ रहे हैं और पर्वतों को पकड़-पकड़कर फोड़-फोड़कर मार्ग बना लेते हैं। करोड़ों वीर दाँतों को पीस कर कटकटा शब्द करते हैं। अपने दाँतों से ओष्ठ को काटते हैं और बहुत ही तर्जना करते हैं अर्थात् मारते, डराते-धमकाते और गरजते हैं।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई।।

भा०– उधर से रावण और इधर से श्रीराम की दुहाई करके जय-जयकार करके लड़ाई प्रारम्भ हुई, अथवा रावण और श्रीराम का युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह देखकर त्रिदेवों ने श्रीराम की जय हो! जय हो! जय हो! कहकर जय-जयकार किया। तीन बार जय शब्द से गोस्वामी जी ने सूचित किया कि देवता उस विजय मंत्र का संकीर्तन करने लगे जिसमें तीन बार जय शब्द का संकेत है, देवगण उत्साह से बोले, श्रीराम जय राम जय-जय राम।

निशिचर शिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं।।

भा०- राक्षस पहाड़ों के समूह ढहाते हैं अर्थात् उखाड़-उखाड़कर किले के ऊपर से फेंकते हैं, उन्हीं को वानर उछलकर पकड़ लेते हैं और उल्टे राक्षसों को लक्ष्य करके फेंकते हैं।

छं०- धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं।।
अति तरल तरुन प्रताप तरजहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन जहँ तहँ राम जस गावत भए।।

भा०- भयंकर वानर और भालु प्रचण्ड पर्वतखण्डों को पकड़कर रावण के किले पर फेंक देते हैं, वे राक्षसों पर शीघ्रता से झपट पड़ते हैं। उनके पैर पकड़ पृथ्वी पर पटक देते हैं और जब राक्षस भाग चलते हैं, फिर वानर उन्हें युद्ध के लिए ललकारते हैं। अत्यन्त हल्के युवक और भगवत् प्रताप से युक्त वानर, राक्षसों को डराते और मारते हैं। वे कुपित होकर रावण के किले पर चढ़-चढ़कर नगर के भीतर चले गये और जहाँ-तहाँ राक्षसों के भवनों के ऊपर चढ़-चढ़कर भालु और बन्दर भगवान् श्रीराम की "श्रीराम जय राम जय-जय राम" कीर्तन करते हुए दिव्य यश गाने लगे।

दो०- एक एक गहि रजनिचर, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुन हेठ भट, गिरहिं धरनि पर आइ।।४१।।

भा०- फिर वानर लंका के एक-एक राक्षस को पकड़कर भीतर से ऊपर दौड़कर आते हैं और किले से नीचे कूदते समय राक्षसों के ऊपर और राक्षसों को अपने नीचे करके पृथ्वी पर आकर गिरते हैं अर्थात् इस प्रयोग से वानरों का तो कुछ नहीं बिगड़ता उल्टे राक्षस हताहत् होते हैं।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निशिचर सुभट बरूथा।।
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर।।

भा०- भगवान् श्रीराम के प्रताप से प्रकृष्ट बल से सम्पन्न वानरों के यूथ, राक्षसों के श्रेष्ठवीर समूहों को मसल रहे हैं। फिर जहाँ-तहाँ लंका के दुर्ग पर चढ़े हुए वानर भगवान् श्रीराम के प्रताप सूर्य की जय हो! इस प्रकार जय-जयकार कर रहे हैं अथवा, भगवान् श्रीराम जी की विजय और प्रताप सूर्य के स्वरूप वानर जहाँ-तहाँ रावण के दुर्ग पर चढ़े हुए हैं।

चले निशाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई।।
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं आरत बालक नारी।।
सब मिलि देहिं रावनहिं गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी।।

भा०- जिस प्रकार प्रबल पवन के वेग से बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसों के समूह भग चले। लंका नगर में बहुत हाहाकार हो गया, बच्चे और महिलायें व्याकुल होकर रोने लगे। सभी लोग मिलकर रावण को गालियाँ देने लगे, इसने राज्य करते हुए मृत्यु को बुला लिया।

निज दल बिचल सुना तेहि काना। फेरि सुभट लंकेश रिसाना।।
जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।।
सर्बस खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना।।

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने।।
सन्मुख मरन बीर कै शोभा। तब तिन तजा प्रान कर लोभा।।

दो०- बहु आयुध धर सुभट सब, भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल कीन्हें भालु कपि, परिघ त्रिशूलनि मारि।।४२।।

भा०- रावण ने अपने दल को विचलित होते हुए स्वयं अपने कानों से सुना। वीरों को लौटाते हुए लंकापति रावण क्रुद्ध हो गया और बोला, जिस सैनिक को युद्ध से विमुख होते हुए मैंने अपने कानों से सुना तो उसे मैं अपने भयंकर कृपाण चन्द्रहास से मार डालूँगा। अरे कायरों! हमारा सर्वस्व खाकर, अनेक विषयों का भोग करके भी तुम लोगों के लिए युद्धभूमि में प्राण प्रिय हो गये। रावण के कठोर वचन सुनकर उसके सैनिक डर गये और लज्जित हुए राक्षसवीर क्रोध करके युद्ध के लिए चल पड़े। युद्ध में सन्मुख मरने में ही वीर की शोभा है, तब रावण के सैनिकों ने प्राण का लोभ छोड़ दिया। बहुत से अस्त्र धारण किये हुए सभी श्रेष्ठभट ललकार–ललकार कर वानरों से भिड़ने लगे। परिघ और त्रिशूलों से मार कर भालु और वानरों को व्याकुल कर दिया।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहैं आगे।।
कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील द्विबिद बलवंता।।

भा०- वानर और भालु व्याकुल हो गये तथा राक्षसों के अस्त्र–शस्त्र के मारे हताहत होकर वे रुग्ण हो गये और युद्धभूमि से भगने लगे। हे पार्वती! यद्यपि यही वानर–भालु आगे चलकर जीतेंगे अर्थात् विजयी होंगे। कोई बोला अंगद जी, हनुमान जी कहाँ हैं और बलवान नल–नील एवं द्विबिद कहाँ हैं?

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना।।
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई।।
पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रलय काल सम जोधा।।
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहँ धावा।।
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महँ मारेसि लाता।।
दूसर सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना।।

भा०- सेना की व्याकुलता हनुमान जी ने सुन ली अर्थात् वानरों का चिल्लाना उन्हें सुनायी पड़ गया। उस समय बलवान हनुमान जी लंका के पश्चिमी द्वार पर थे, जहाँ उन्हें सेनापति नियुक्त किया गया था। वहाँ हनुमान जी से मेघनाद युद्ध कर रहा था। द्वार टूट नहीं रहा था, हनुमान जी को भी द्वार तोड़ने में बहुत–बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। तब हनुमान जी के मन में अतिशय क्रोध हुआ और युद्ध करने में कुशल हनुमान जी महाप्रलय–समय के काल के समान गरजे। वे छलांग लगाकर लंका दुर्ग के ऊपर आये वहाँ से एक पर्वत लेकर मेघनाद को दण्डित करने के लिए दौड़े। पर्वत के प्रहार से हनुमान जी ने मेघनाद के रथ को तोड़कर उसके सारथी को मार डाला। उसके (मेघनाद को) हृदय में हनुमान जी ने लात मारी। दूसरे सारथी ने उस मेघनाद को जब व्याकुल जाना तब उसे रथ पर लेटाकर सारथी तुरन्त घर ले आया।

दो०- अंगद सुनेउ कि पवनसुत, गढ़ पर गयउ अकेल।
समर बाँकुरा बालिसुत, तरकि चढ़ेउ कपि खेल।।४३।।

भा०- अंगद जी ने सुना कि पवनपुत्र हनुमान जी लंका दुर्ग पर अकेले गये हैं, तब युद्ध में कुशल बालिपुत्र अंगद जी वानर के खेल–खेल में रावण के गढ़ पर चढ़ गये।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर।।
रावन भवन चढ़े तब धाई। करहिं कोसलाधीश दोहाई।।

भा०– तब युद्ध में श्रीराम से विरुद्ध राक्षसों पर क्रुद्ध हुए दोनों बन्दर अंगद और हनुमान जी अपने हृदय के भीतर श्रीराम के प्रताप का स्मरण करके दौड़कर रावण के भवन पर चढ़ गये तथा दोनों ही अयोध्याधिपति भगवान् श्रीराम की दुहाई कहने लगे।

कलश सहित गहि भवन ढहावा। देखि निशाचरपति भय पावा।।
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती।।

भा०– उन दोनों वानरश्रेष्ठ श्री अंगद–हनुमान जी ने कलश के सहित रावण के घर को पकड़कर ढहा दिया अर्थात् रावण का भवन गिराकर नष्ट कर दिया। उसे देखकर राक्षसराज रावण ने बहुत भय पाया अर्थात् भयभीत हो गया। रावण की पत्नियों के समूह हाथ से छाती पीटने लगीं और बोलीं, अब यह दोनों उत्पाती वानर आ गये हैं अर्थात् दोनों में से एक ने लंका जलायी थी और दूसरे ने राजसभा में रावण की छाती जलायी थी।

कपिलीला करि तिनहिं डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजस सुनावहिं।।
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेनि करिय उतपात अरंभा।।

भा०– दोनों वानर वानरोचित क्रीड़ा करके राक्षसपत्नियों को डराते हैं और उन्हें भगवान् श्रीराम का सुयश सुनाते हैं। फिर स्वर्ण के खम्भे को हाथ में पकड़कर उन दोनों अंगद–हनुमान जी ने परस्पर बात की अर्थात् एक–दूसरे से कहा कि अब उत्पात का आरम्भ करना चाहिये अथवा, अब हम दोनों उत्पात करें।

कूदि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दन भुज बल भारी।।
काहुहि लात चपेटनि केहू। भजेहु न रामहिं सो फल लेहू।।

भा०– इसके बाद अंगद–हनुमान जी सेना के बीच में कूद पड़े और अपनी भुजाओं से बड़े बलवान राक्षसों को मसलने लगे। किसी को लातों से और किसी को थप्पड़ से मारने लगे तथा बोले, राक्षसों! भगवान् श्रीराम जी का भजन नहीं किये हो तो यह फल लो।

दो०– एक एक सन मर्दहिं, तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधि कुंड।।४४।।

भा०– एक को एक के साथ मसलते हैं और उनके सिरों को तोड़कर किले में फेंक देते हैं। रावण के आगे टूटे हुए सिर पड़ते हैं, मानो दही के घड़े फूट रहे हों।

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं।।
कहइ बिभीषन तिन के नामा। देहिं राम तिन कहँ निज धामा।।

भा०– जो बहुत बड़े–बड़े मुख्य राक्षस को पा जाते हैं तो अंगद–हनुमान जी उनके चरण पकड़कर प्रभु श्रीराम के पास फेंक देते हैं। विभीषण जी प्रभु को उनके नाम बताते हैं और प्रभु श्रीराम, अंगद–हनुमान जी द्वारा मारे हुए उन दुष्ट राक्षसों को भी अपना धाम दे देते हैं।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी।।
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निशिचर।।
देहिं परम गति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।।
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी।।

भा०- जो राक्षस दुष्ट प्रकृति के हैं और ब्राह्मणों का माँस खाते हैं, वे भी प्रभु के पास से वह गति पाते हैं, जिसकी योगी लोग याचना करते हैं। शिव जी कहते हैं, हे पार्वती! भगवान् श्रीराम कोमलचित्त एवं करुणा की खानि हैं। राक्षस बैर भाव से भी मेरा स्मरण कर रहे हैं, हृदय में ऐसा जानकर पापी राक्षसों को भी भगवान् श्रीराम परमगति दे देते हैं। हे भवानी! बताइये, ऐसा कृपालु संसार में कौन है? ऐसे प्रभु को सुनकर भी जो भ्रम छोड़कर भगवान् श्रीराम को नहीं भजते, वे जीव मन्दबुद्धि तथा परम अभागी हैं।

अंगद अरु हनुमंत प्रबेशा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेशा।।
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे।।

भा०- अयोध्यापति भगवान् श्रीराम ने विभीषण जी से इस प्रकार कहा कि अंगद और हनुमान जी रावण के किले में प्रवेश कर लिए हैं तथा वहीं से बड़े-बड़े राक्षसों का वध करके मेरे पास भेज रहे हैं। लंका में दोनों वीर वानर किस प्रकार शोभित होते हैं, जैसे दो मंदराचल पर्वत सागर का मंथन कर रहे हों।

दो०- भुज बल रिपु दल दलिमलि, देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल प्रयास बिनु, आए जहँ भगवंत।।४५।।

भा०- इस प्रकार अपने भुजाओं के बल से शत्रु रावण की सेना को मार-मसलकर दिन का अन्त अर्थात् सन्ध्याकाल देखकर दोनों वानर अंगद जी और हनुमान जी बिना प्रयास के कूदे और जहाँ भगवान् श्रीराम जी विराज रहे थे, वहाँ आ गये।

प्रभु पद कमल शीष तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए।।
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे।।

भा०- उन दोनों अंगद एवं हनुमान जी ने प्रभु के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाया, सुन्दर योद्धा के रूप में देखकर वे दोनों श्री अंगद-हनुमान जी, रघुकुल के स्वामी श्रीराम के मन को भी भाये। कृपा करके भगवान् श्रीराम ने दोनों वीर वानरों को निहारा। अंगद-हनुमान जी तुरन्त ही श्रम से रहित और बहुत सुखी हो गये।

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना।।
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दशशीश दोहाई।।

भा०- श्रीअंगद-हनुमान जी को लौटे हुए जानकर, नाना प्रकार के भालु और बन्दर युद्ध से लौटे। उधर राक्षसगण सन्ध्या का बल पाकर दस सिरोंवाले रावण की दुहाई करके वानरों पर दौड़ पड़े।

निशिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे।।
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी।।
बीर तमीचर सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे।।
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा।।
प्राबिट शरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे।।

भा०- आती हुई राक्षसी सेना देखकर वानर लौटे और दाँतों को कटकटाते हुए जहाँ-तहाँ एक-दूसरे से भिड़ गये। दोनों दल अर्थात् श्रीरामदल और रावणदल बहुत प्रकृष्ट बलवाले हैं। सुन्दर भट ललकार-ललकार कर लड़ रहे हैं, हार नहीं मान रहे हैं। सभी राक्षस अत्यन्त काले और वीर हैं, नाना वर्णोंवाले वानर भी बहुत विशाल हैं। दोनों सेनायें सबल अर्थात् बल से युक्त हैं और उनके समान बल वाले योद्धा कौतुक कर रहे हैं और क्रोध करके लड़

रहे हैं, मानो वर्षाकाल और शरद्काल के बादल वायु से प्रेरित होकर अर्थात् वायु के झकोरों से टकरा कर लड़ रहे हैं।

अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्ह तिन माया।।
भयउ निमिषि महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा।।

दो०- देखि निबिड़ तम दसहुँ दिशि, कपिदल भयउ खभार।
एकहिं एक न देखहीं, जहँ तहँ करहिं पुकार।।४६।।

भा०- अपनी सेना को विचलित होती हुई अर्थात् भागती हुई देखकर जो, अकम्पन और अतिकाय नाम के रावण के सेनापति थे, उन्होंने माया कर दी। दिन में ही अन्धेरा हो गया और रक्त, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी। दसों दिशाओं में घना अन्धकार देखकर, वानरदल में खलबली मच गई। एक–दूसरे को नहीं देखते हैं और जहाँ–तहाँ पुकार करते हैं अर्थात् सैनिकों का नाम लेकर चिल्लाते हैं।

सकल मरम रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना।।
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए।।

भा०- रघुनाथ जी ने सम्पूर्ण मर्म जान लिया और फिर अंगद जी और हनुमान जी को बुला लिया। प्रभु ने अकम्पन और अतिकाय की माया का सम्पूर्ण समाचार कहकर समझाया, यह सुनते ही दोनों वानरश्रेष्ठ दौड़ पड़े।

पुनि कृपालु हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा।।
भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदय जिमि संशय जाहीं।।

भा०- फिर कृपालु श्रीराम ने हँसकर धनुष चढ़ाया और शीघ्र ही आग्नेय बाण चलाया अर्थात् आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर दिया। पूरी सेना में प्रकाश फैल गया। कहीं भी अन्धकार नहीं रहा, जैसे ज्ञान के उदय होते ही सभी संशय चले जाते हैं।

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा।।
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे।।
भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी।।
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं।।

भा०- भालु और वानर प्रभु के अग्नि–बाण से प्रकाश प्राप्त करके श्रम और भय से रहित होकर प्रसन्नतापूर्वक दौड़े। हनुमान जी और अंगद जी युद्धभूमि में गरजे। उनकी हाँक सुनकर राक्षस भागे। वीर वानर भागते हुए राक्षसों को पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं और भालु–वानर बहुत ही आश्चर्यजनक करतब करते हैं। राक्षसों के पैर पकड़ उन्हें सागर में फेंक देते हैं, जिन्हें पकड़–पकड़कर सागर के घड़ियाल, मगरमच्छ, सर्प और मछलियाँ खा जाती हैं।

विशेष- गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस में वानरों के लिए बहुशः बलीमुख शब्द का प्रयोग किया है इसका अर्थ होता है–***बलीनि मुखानि येषां ते बलीमुखाः*** अर्थात् जिनके मुख बली होते हैं, उन वानरों को बलीमुख कहते हैं। बहुव्रीहि समास होने पर बलिन् शब्द में नकार का लोप होने से बलीमुख शब्द बनता है, फिर “**शरादीनाञ्च**”, (पा० अ०, ६.३.१२०) सूत्र से लकारोत्तर इकार को दीर्घ हो जाने से बलीमुख निष्पन्न हो जाता है।

दो०- कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख, रिपु दल बल बिचलाइ।।४७।।

भा०- कुछ राक्षसों को मारा और कुछ को घायल कर दिया तथा कुछ राक्षस भागकर किले में घुस गये। शत्रु के दल और बल को विचलित करके भालु और वानर गरजने लगे।

निशा जानि कपि चारिउ अनी। आई जहाँ कोसला धनी।।
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगतश्रम बानर तबही।।

भा०- रात्रि जानकर वानरों की चार सेनायें जहाँ अयोध्यापति श्रीराम थे वहाँ आई। भगवान् श्रीराम ने सबको कृपा करके देखा और उसी समय सभी वानर श्रम से रहित हो गये।

उहाँ दशानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे।।
आधा कटक कपिन संघारा। कहहु बेगि का करिय बिचारा।।

भा०- वहाँ रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जो वीर राक्षस प्रथम दिन युद्ध में मारे गये, उनका समाचार सबसे कहा, हे मंत्रियों! वानरों ने आधी सेना का संहार कर दिया, तुम लोग शीघ्र बताओ अब क्या विचार किया जाये।

माल्यवंत अति जरठ निशाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर।।
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन।।

भा०- माल्यवान नाम का एक अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था, जो रावण की माता का पिता और श्रेष्ठ मंत्री भी था अथवा, अत्यन्त वृद्ध राक्षसश्रेष्ठ रावण की माँ का पिता अर्थात् रावण का नाना माल्यवान अत्यन्त पवित्र नीतिमय वचन बोला, हे वत्स रावण! कुछ मेरी भी सीख सुनो।

जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहि न जाहिं बखानी।।
बेद पुरान जासु जस गायो। राम बिमुख सुख काहु न पायो।।

भा०- जब से तुम भगवती श्रीसीता को हर कर ले आये हो, तब से इतने अपशकुन हो रहे हैं, जो कहे नहीं जा सकते। वेदों और पुराणों ने जिन प्रभु श्रीराम का यश गाया है, उन प्रभु श्रीराम से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया।

दो०- हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान।।४८(क)।।
कालरूप खल बन दहन, गुनागार घनबोध।
जेहिं सेवहिं शिव कमल भव, तासो कवन बिरोध।।४८(ख)।।

भा०- जिन प्रभु साकेताधीश भगवान् श्रीराम ने वराह और नृसिंह अवतार लेकर भ्राता हिरण्यकशिपु के सहित हिरण्याक्ष को तथा विष्णु अवतार लेकर बलवान मधु–कैटभ को मारा, वे ही कृपा के सागर भगवान् श्रीराम श्रीअवध में अवतीर्ण हुए हैं। वे राक्षस वन को भस्म करने के लिए कालाग्नि स्वरूप है। सभी श्रेष्ठगुणों के भवन तथा विज्ञान और ज्ञान के घनीभूत विग्रह हैं अथवा, उनका ज्ञान बहुत ही सघन है अथवा, वे ज्ञान के बादल हैं। जिन भगवान् श्रीराम को शिव जी और कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जी अपनी सेवा का विषय बनाते हैं अर्थात् जिनकी सेवा करते हैं, उनसे कौन–सा विरोध? अर्थात् तुम्हारे वरदानदाता शिव जी और ब्रह्मा जी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे तुम कौन–सा विरोध कर रहे हो?

परिहरि बैर देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही।।
ताके बचन बान सम लागे। करिया मुह करि जाहि अभागे।।
बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि बदन देखावसि मोही।।
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना।।

भा०– वैर छोड़कर विदेहनन्दिनी श्रीसीता को प्रभु श्रीराम के हाथ में सौंप दो और परमस्नेही अर्थात् पूज्य प्रेम के आश्रय, कृपासागर भगवान् श्रीराम का भजन करो। माल्यवान के वचन रावण को बाण के समान लगे और उसने कहा, अरे भाग्यहीन! अपना मुख काला करके चला जा। अब तू बूढ़ा हो गया नहीं तो तुझे मार डालता, अब मुझे मुख मत दिखलाना। उस माल्यवान ने अपने हृदय में विचार किया कि अब इस रावण को कृपा के निधान श्रीराम जी मार डालना चाहते हैं।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा।।
कौतुक प्रात देखियहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा।।

भा०– वह माल्यवान दुर्बाद अर्थात् अपशब्द कहता हुआ रावण के पास से उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला, कल प्रातःकाल मेरा कौतुक देख लीजियेगा। मैं करूँगा बहुत थोड़ा क्या कहूँ?

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा।।
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।।

भा०– पुत्र मेघनाद का वचन सुनकर रावण के मन में मेघनाद पर विश्वास हो आया। उसने प्रसन्नता के साथ मेघनाद को अपने गोद में बैठा लिया। विचार करते–करते प्रातःकाल हो गया। फिर बन्दर चारों द्वारों पर आ लगे अर्थात् युद्ध के लिए उपस्थित हो गये।

कोपि कपिन दुर्घट गढ़ घेरा। नगर कोलाहल भयउ घनेरा।।
बिबिधायुध धर निशिचर धाए। गढ़ ते पर्बत शिखर ढहाए।।

भा०– वानरों ने क्रुद्ध होकर न टूटने वाले अभेद्य किले को घेर लिया। लंका नगर में बहुत कोलाहल हुआ। अनेक अस्त्र–शस्त्र लेकर राक्षस दौड़े और उन्होंने किले से पर्वतशिखरों को गिराया अर्थात् फेंका।

छं०– ढाहे महीधर शिखर कोटिन बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले।।
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि शैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निशिचर हए।।

भा०– राक्षसों ने करोड़ों पर्वतों के शिखरों को ढहाया अर्थात् गिराया और अनेक प्रकार से तोपों द्वारा बरसाये हुए गोले चलते हुए इस प्रकार घहरा रहे थे मानो वज्रपात हो और राक्षस प्रलय के बादलों के समान गरज रहे थे। भयंकर वानर वीर इकट्ठे होते राक्षसों के अस्त्र–शस्त्रों से कटते फिर भी निर्बल नहीं हो रहे थे, जबकि उनके शरीर राक्षसों के शरीर से जर्जर अर्थात् क्षत–विक्षत हो चुके थे। वे पर्वत लेकर उसी किले पर फेंक देते थे, जिससे जहाँ के तहाँ राक्षस मारे गये।

दो०– मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतरि बीरवर दुर्ग ते, सन्मुख चल्यो बजाइ।।४९।।

भा०- मेघनाद ने ऐसा अपने कानों से सुना कि, वानरों ने फिर किले को घेर लिया, तब श्रेष्ठवीर किले से उतरकर नगारे बजाकर सामने से युद्ध करने के लिए चल पड़े।

कहँ कोसलाधीश द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।।
कहँ नल नील द्विबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा।।
कहाँ बिभीषन भ्राताद्रोही। आजु सबहिं हठि मारउँ ओही।।

भा०- मेघनाद ने ललकार कर कहा, सम्पूर्ण संसार में विख्यात धनुर्धर अयोध्याधिपति दोनों भ्राता राम–लक्ष्मण कहाँ हैं? नल–नील, द्विबिद, सुग्रीव, अंगद और बल की सीमा हनुमान कहाँ हैं? भ्रातृद्रोही विभीषण कहाँ है? आज सभी को रोक कर अर्थात् सभी के देखते–देखते उस विभीषण को मैं मार डालूँगा।

अस कहि कठिन बान संधाने। अतिशय क्रोध श्रवन लगि ताने।।
शर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।।

भा०- ऐसा कह कर मेघनाद ने कठिन बाण का सन्धान किया और अत्यन्त क्रोध के कारण धनुष को कान तक खींचा। वह बाणों के समूहों को छोड़ने लगा, मानो पंखों से युक्त बहुत से सर्प दौड़ रहे हों।

जहँ तहँ परत देखियहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर।।
भागे भय ब्याकुल कपि रिच्छा। बिसरी सबहिं जुद्ध की इच्छा।।
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवशेषा।।

भा०- जहाँ–तहाँ वानर पृथ्वी पर गिरते हुए दिखते थे। उस समय कोई भी मेघनाद के सामने नहीं हो सकता था। भय से व्याकुल सभी बन्दर और भालु भागे, सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। मानस के चारों वक्ता कह रहे हैं कि, युद्ध में वह वानर या भालु नहीं देखा गया, जिसे मेघनाद ने प्राणमात्र में अवशेष न कर दिया हो अर्थात् प्रत्येक वानर भालु के केवल प्राण बच गये थे।

दो०- मारेसि दश दश बिशिख उर, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद गर्जत भयेउ, मेघनाद रन धीर।।५०।।

भा०- सभी वानरों के हृदय में मेघनाद ने दस–दस बाण मारे, वीर वानर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और युद्ध में स्थिर रहनेवाला मेघनाद सिंहनाद करके गरजा।

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला।।
महा महीधर तमकि उपारा। अति रिसि मेघनाद पर डारा।।
आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई।।

भा०- पवनपुत्र हनुमान जी अपनी सेना को विकल देखकर, क्रुद्ध हुए काल के समान दौड़े। उन्होंने क्रोध करके एक विशाल पर्वत को उखाड़ा और अत्यन्त रोष के साथ मेघनाद पर फेंक दिया। पर्वत को अपनी ओर आते देख मेघनाद आकाश में चला गया, पर्वत के प्रहार से उसका रथ, सारथी और सभी घोड़े नष्ट हो गये अथवा, पर्वत को देखकर स्वयं ही पर्वत के प्रहार से मेघनाद अपने रथ, सारथी और सभी घोड़ों को खोकर अर्थात् नष्ट कराकर आकाश में चला गया।

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरम सो जाना।।
राम समीप गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा।।

भा०– हनुमान जी ने उसे बार–बार युद्ध के लिए ललकारा। वह हनुमान जी के समीप नहीं आ रहा है, क्योंकि वह उनका मर्म जानता है। मेघनाद भगवान् श्रीराम जी के समीप गया और नाना प्रकार के अपशब्द कहने लगा।

अस्त्र शस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे।।
देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना। करै लाग माया बिधि नाना।।
जिमि कोउ करै गरुड सन खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला।।

भा०– मेघनाद ने भगवान् श्रीराम पर अस्त्र अर्थात् दूर से फेंके जाने वाले बाण आदि और शस्त्र अर्थात् निकट से फेंके जाने वाले त्रिशूल आदि एवं आयुध अर्थात् दिव्यास्त्र, ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र आदि श्रीराम पर फेंके और प्रभु श्रीराम ने खेल–खेल में काटकर उन्हें समाप्त कर दिया। श्रीराम का प्रताप देखकर मोहग्रस्त मेघनाद बहुत चिढ़ा और वह नाना प्रकार की माया करने लगा, जैसे कोई साधारण व्यक्ति गरुड़ के साथ खेल कर रहा हो और वह छोटे से साँप के बच्चे को लेकर उसे डराये।

दो०– जासु प्रबल माया बिबश, शिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावइ रजनिचर, निज माया मति खोट।।५१।।

भा०– जिनकी प्रबल माया के वश में होने से शिव जी, ब्रह्मा जी बहुत छोटे हैं, उन्हीं प्रभु श्रीराम को अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राक्षस मेघनाद अपनी माया दिखा रहा है।

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा।।
नाना भाँति पिशाच पिशाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची।।

भा०– मेघनाद आकाश में बहुत ऊपर जाकर बहुत से अंगारों की वर्षा करने लगा। पृथ्वी से जल की धारायें प्रकट होने लगी अर्थात् वानर दोनों ओर से मार झेलने लगे। ऊपर से जलते और नीचे से डूबते, नाना प्रकार के पिशाच और पिशाचिनियाँ नाच–नाचकर "मारो–काटो" इस प्रकार की धुनि बोल रही हैं।

कीन्हेसि वृष्टि रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा।।
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा।।

भा०– मेघनाद ने कभी तो रक्त की वृष्टि की, कभी बालों और हड्डियों की वर्षा करता और कभी बहुत से पत्थर फेंके। उसने धूल की वर्षा करके अन्धेरा कर दिया। किसी को अपना फैलाया हुआ हाथ भी नहीं सूझ रहा था।

कपि अकुलाने माया देखे। सब कर मरन बना एहि लेखे।।
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने।।

भा०– मेघनाद की माया देखकर वानर अकुला गये। वे सोचने लगे कि, इस प्रकार से तो सभी का मरण उपस्थित होगा। मेघनाद का यह कौतुक देखकर भगवान् श्रीराम मुस्कराये और सभी वानरों को भयभीत हुआ जाना।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया।।
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने अपने एक ही बाण से सभी माया काट दी, जैसे सूर्यनारायण अपने एक ही किरण से अन्धकारों के समूह का हरण कर लेते हैं। प्रभु श्रीराम ने अपनी कृपा–दृष्टि से वानर–भालुओं को निहारा। वे प्रबल हो गये और अब तो युद्ध में रोकने से भी नहीं रुकते थे।

दो०– आयसु माँगि राम पहिं, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान शरासन हाथ।।५२।।

भा०- भगवान् श्रीराम से आज्ञा माँगकर, हाथ में धनुष-बाण लेकर अंगदादि वानरों के साथ लक्ष्मण जी क्रुद्ध होकर मेघनाद से युद्ध करने के लिए चल पड़े।

छतज नयन उर बाहु बिशाला। हिमगिरि निभ तन कछु एक लाला।।
उहाँ दशानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र शस्त्र गहि धाए।।

भा०- लक्ष्मण जी के नेत्र लाल कमल के समान अरुण थे। उनका हृदय और दोनों भुजायें विशाल थीं। उनका शरीर हिमाचल पर्वत के समान कुछेक लालिमा लिए हुए था। उधर रावण ने श्रेष्ठ योद्धा भेजे, वे सब नाना अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी।।
भिरे सकल जोरहिं सनजोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी।।

भा०- पर्वत, नख और विटप अर्थात् वृक्षरूप अस्त्र लेकर "श्रीराम की जय हो" इस प्रकार पुकार लगाते हुए वानर दौड़े। सभी लोग अपनी-अपनी जोड़ी-जोड़ियों से भिड़ गये। इधर-उधर (रामदल और रावणदल) में विजय की इच्छा थोड़ी न थी अर्थात् दोनों ही ओर के वीर पराजय नहीं चाह रहे थे।

मुठिकन लातन दातन काटहिं। कपि जयशील मारि पुनि डाटहिं।।
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। शीष तोरि गहि भुजा उपारू।।
अस रव पूरि रहेउ नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा।।
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा।।

भा०- विजयशील वानर मुक्कों और लातों से मारते हैं, दाँतों से काटते हैं और फिर राक्षसों को मारकर डाँटते भी हैं। "मारो-मारो! पकड़ो-पकड़ो! पकड़ो! मारो! सिर तोड़कर भुजा पकड़कर उखाड़ लो" यही शब्द नवों खण्डों में भर गया। जहाँ-तहाँ भयंकर धड़ दौड़ रहे थे। यह युद्ध का कौतुक आकाश में देवतागण देख रहे थे, उन्हें कभी आश्चर्य होता था और कभी आनन्द होता था।

दो०- जम्यो गाड़ भरि भरि रुधिर, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार राशिन पर, मृतक धूम रह्यो छाइ।।५३।।

भा०- गड्ढों में भर-भरकर रक्त जम गये हैं और ऊपर से धूल उड़ रही है, मानो अंगारों की राशियों पर मृतकों का धूम छा रहा हो।

विशेष- जो पूर्व के कुछ टीकाकारों ने 'मृतक धूम' शब्द का 'राख' अर्थ किया है वह सर्वथा अनुचित है।

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंशुक के तरु जैसे।।
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा।।

भा०- घायल हुए वीर खून से लथ-पथ किस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे फूले हुए टेसू के वृक्ष हों। लक्ष्मण जी और मेघनाद ये दोनों योद्धा अत्यन्त क्रोध करके परस्पर भिड़ गये।

एकहिं एक सकइ नहिं जीती। निशिचर छल बल करइ अनीती।।
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता।।
नानायुध प्रहार कर शेषा। राक्षस भयउ प्रान अवशेषा।।

भा०- एक-दूसरे को नहीं जीत सक रहे हैं, परन्तु राक्षस मेघनाद छल, बल और अनीति कर रहा है, तब अनन्त अर्थात् अन्त से रहित शेषनारायण के अवतारी लक्ष्मण जी क्रोध से युक्त हो गये और उन्होंने तुरन्त मेघनाद के रथ

और सारथी को नष्ट कर दिया। शेष अर्थात् अखण्ड भगवान् के परिकर शेषनारायण के भी कारण लक्ष्मण जी ने नाना शस्त्रों का प्रहार किया, जिससे राक्षस मेघनाद प्राणावशेष हो गया अर्थात् सब कुछ समाप्त हो गया केवल प्राण ही बचे रहे।

रावन सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहिं मम प्राना।।
बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेज पुंज लछिमन उर लागी।।
मुरछा भई शक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे।।

भा०–रावण पुत्र मेघनाद ने अपने मन में अनुमान किया, अरे अब तो संकट हो गया, लक्ष्मण अब तो मेरे प्राण ले लेंगे। तब मेघनाद ने वीरघातिनी शक्ति छोड़ी, वह सम्पूर्ण तेजों की पुञ्जस्वरूप शक्ति जाकर लक्ष्मण जी के हृदय में लग गई। शक्ति के लगने से लक्ष्मण जी को मूर्च्छा हो गई, फिर मेघनाद भय छोड़कर उनके निकट चला गया।

दो०– मेघनाद सम कोटि शत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनंत किमि, उठैं चले खिसिआइ।।५४।।

भा०– मेघनाद के समान अरबों योद्धा लक्ष्मण जी को उठा रहे थे, परन्तु जगत् के आधार अनन्त लक्ष्मण जी कैसे उठ सकते थे ? मेघनाद के सहित सभी योद्धा चिढ़कर अर्थात् असफलता से क्रुद्ध होकर लंका को चले गए।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू।।
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही।।
यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई।।

भा०– हे पार्वती ! सुनिये, जिन लक्ष्मण जी का क्रोधाग्नि प्रलयकाल में चौदहों भुवनों को शीघ्र ही जला डालता है और जिनकी देवता, मनुष्य, जड़–चेतन सभी सेवा करते हैं, उन लक्ष्मण जी को युद्ध में कौन जीत सकता है, परन्तु यह कौतूहल वही जानता है, जिस पर भगवान् श्रीराम की कृपा होती है।

विशेष : तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीराम के हृदयालिंगन का सुख प्राप्त करने के लिए श्री लक्ष्मण स्वेच्छा से मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति स्वीकार कर लिए थे। रावण द्वारा घायल किए हुए जटायु को प्रभु श्रीराम ने गोद में उठा लिया था–"**राघव गीध गोद कर लिन्हो**" (तु०गी० अरण्यकाण्ड ११) कदाचित् यही दृश्य देखकर श्री लक्ष्मण के मन में यह अवधारणा बनी कि प्रभु घायल को ही अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। इसीलिए यह कौतूहल कर दिया। स्वेच्छा से मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति से घायल होकर प्रभु के हृदय से लगने का अवसर प्राप्त कर लिया–"**राम उठाइ अनुज उर लायउ**" मानस (६.६१.२)।

संध्या भइ फिरि द्वौ बाहिनी। लगे सँभारन निज निज अनी।।
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर।।
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।।

भा०– सन्ध्या हुई दोनों अर्थात् वानरों और राक्षसों की वाहिनी यानी सेना फिरी। सब लोग अपनी–अपनी टुकड़ियाँ सम्भालने लगे। इधर सर्वव्यापक, परब्रह्म परमात्मा, अजेय, सारे संसार के ईश्वर, करुणा की खानि, श्रीराम ने पूछा, "लक्ष्मण कहाँ हैं?" तब तक उन्हें हनुमान जी ले आये। वीरघातिनी शक्ति से मूर्च्छित छोटे भैया लक्ष्मण जी को देखकर प्रभु श्रीराम ने अत्यन्त दु:ख माना।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रह कोउ पठइय लेना।।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।।

भा०– जाम्बवान जी ने कहा, "सुषेण नामक वैद्य लंका में रहता है, उन्हें लिवा लाने के लिए किसी को भेजा जाये?" तब छोटा–सा रूप धारण करके हनुमान जी गये और सुषेण को तुरन्त ही उसके भवन के सहित उठा ले आये।

दो०– रघुपति चरन सरोज सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि ओषधी, जाहु पवनसुत लेन।।५५।।

भा०– सुषेण ने आकर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में सिर नवाया और पर्वत तथा औषधि का नाम बताया अर्थात् सुषेण ने कहा कि, हिमाचल पर्वत के पास विराजमान द्रोणाचल पर्वत पर मृत संजीवनी नामक औषधि का वृक्ष है, हे पवनपुत्र हनुमान जी! उसे लेने जाइये।

रामचरन सरसिज उर राखी। चलेउ प्रभंजन सुत बल भाषी।।
उहाँ दूत एक मरम जनावा। रावन कालनेमि गृह आवा।।

भा०– भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल को अपने हृदय में रखकर, प्रभु के सामने प्रभु के ही बल की प्रशंसा करके, वायुपुत्र हनुमान जी महाराज चल पड़े। उधर एक दूत ने रावण को यह रहस्य बता दिया। यह सुनकर रावण कालनेमि के घर आया।

दशमुख कहा मरम तेहिं सुनेऊ। पुनि पुनि कालनेमि सिर धुनेऊ।।
देखत तुमहिं नगर जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा।।

भा०– रावण के द्वारा कहे हुए मर्म कालनेमि ने सुना और उसने बार–बार अपना सिर पीटा। कालनेमि बोला, तुम्हारे अर्थात् रावण के देखते–देखते जिसने लंका नगर जला दिया, उसके मार्ग को कौन रोक सकता है?

भजि रघुपतिहिं करहि हित अपना। छाडु नाथ अब बृथा जलपना।।
नील कंज तनु सुंदर श्यामा। हृदय राखु लोचनाभिरामा।।

भा०– हे नाथ! भगवान् श्रीराम का भजन करके अब अपना कल्याण कर दो और व्यर्थ का अनर्गल बोलना छोड़ दो। नील कमल के समान सुन्दर श्याम शरीरवाले, नेत्रों को आनन्द देने वाले प्रभु श्रीराम को अपने हृदय में रख लो।

अहंकार ममता मद त्यागू। महा मोह निशि सोवत जागू।।
काल ब्याल कर भक्षक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिय सोई।।

भा०– हे रावण! अहंकार, ममता और मद छोड़ दो और महामोहमयी रात्रि में सोते हुए अब जग जाओ। जो कालरूप सर्प को खाने के लिए गरुड़ के समान हैं, उन श्रीराम को क्या कोई स्वप्न में भी युद्ध में जीत सकता है?

दो०– सुनि दशकंठ रिसान अति, तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु, यह खल रत मल भार।।५६।।

भा०– कालनेमि की वाणी सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। कालनेमि ने मन में विचार किया कि श्रीराम दूत हनुमान जी के हाथों से मर जाऊँ तो ठीक है, यह तो मल के भार में लगा हुआ दुष्ट है। अर्थात् इस रावण के हाथ से मरना ठीक नहीं है।

अस कहि चला रचेसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया।।
मारुतसुत देखा शुभ आश्रम। मुनिहिं बूझि जल पियौं जाइ श्रम।।

भा०– ऐसा कहकर कालनेमि चला और हनुमान जी के मार्ग में ही माया का निर्माण किया। उसने अपनी माया के बल से सुन्दर तालाब, मन्दिर और श्रेष्ठ बगीचा बना दिया। वायुपुत्र हनुमान जी महाराज ने सुन्दर आश्रम देखा। मन में विचार किया कि मुनि से पूछकर जल पी लूँ, जिससे मेरा श्रम चला जाये।

राक्षस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहिं चह मोहा।।
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा।।

भा०– वहाँ पर कपट मुनिवेश धारण किये हुए राक्षस कालनेमि शोभित हो रहा था। वह माया के पति भगवान् श्रीराम के दूत को मोहित करना चाह रहा था। पवनपुत्र हनुमान जी ने जाकर कपटी मुनि को प्रणाम किया और वह अर्थात् कपटी मुनि कालनेमि, श्रीराम के गुणों की गाथायें कहने लगा।

होत महा रन रावन रामहिं। जितिहैं राम न शंसय या महिं।।
इहाँ भए मैं देखउँ भाई। ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई।।

भा०– कालनेमि ने कहा, हे भाई! रावण और श्रीराम का महनीय युद्ध हो रहा है, परन्तु श्रीराम ही जीतेंगे इसमें कोई संशय नहीं है। हे भाई! यहीं बैठा हुआ मैं देख रहा हूँ, क्योंकि मेरे पास ज्ञानदृष्टि बल की बहुत अधिकता है।

माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरे जल।।
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दीक्षा देउँ ग्यान जेहिं पावहु।।

भा०– हनुमान जी ने जल माँगा। मुनि ने कमण्डल दे दिया (जिसमें विष घुला हुआ था)। श्री बजरंगबली ने कहा, मैं थोड़े जल से तृप्त नहीं होऊँगा। मुनि ने कहा, जाओ तालाब में मज्जन करके शीघ्र आओ दीक्षा दे दूँ, जिससे ज्ञान पा जाओ।

दो०– सर पैठत कपि पद गहा, मकरी तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु, चली गगन चढ़ि यान।।५७।।

भा०– तालाब में प्रवेश करते ही मकरी (घड़ियालिन) ने हनुमान जी के चरण को पकड़ लिया, तब हनुमान जी ने अत्यन्त अकुलाकर उसे मार डाला अर्थात् उसका मुख फाड़ दिया, जिससे वह मर गयी। फिर वह मकराक्षी अप्सरा दिव्य शरीर धारण करके विमान पर चढ़कर आकाश में चली गयी।

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर श्रापा।।
मुनि न होई यह निशिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा।।

भा०– मकराक्षी अप्सरा बोली, हे वानरश्रेष्ठ हनुमान जी! आपके दर्शन से मैं निष्पाप हो गयी। हे तात! श्रेष्ठ मुनि का शाप समाप्त हो गया। यह मुनि नहीं है यह तो घोर राक्षस कालनेमि है, हे वानरश्रेष्ठ हनुमान जी! आप मेरे वचन सत्य मानिये।

अस कहि गई अप्सरा जबहीं। निशिचर निकट गयउ कपि तबहीं।।
कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहू। पाछे हमहिं मंत्र तुम देहू।।
सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा।।
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना।।

भा०– ऐसा कहकर जब मकराक्षी अप्सरा चली गयी उसी समय हनुमान जी महाराज कालनेमि राक्षस के पास गये। वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने कहा, हे मुनि! तुम पहले मुझसे गुरुदक्षिणा ले लो, फिर मुझे मंत्र देना। ऐसा कहकर कालनेमि के सिर को अपने लांगूल से लपेटकर हनुमान जी ने उठाकर पटक दिया। मरते समय कालनेमि ने अपने शरीर को प्रकट किया। 'राम–राम' कहकर उसने अपने प्राण छोड़े, सुनकर मन में प्रसन्न होकर हनुमान जी चल पड़े।

देखा शैल न ओषधि चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।।
गहि गिरि निशि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।।

भा०– हनुमान जी ने द्रोणाचल पर्वत को देखा, पर ओषधि नहीं पहचान पाये। वस्तुतः हनुमान जी ने पर्वत पर ओषधि का चिह्न भी नहीं देखा, क्योंकि वह पर्वत में छिप गयी। तब साहस करके हनुमान जी ने पर्वत को उखाड़ लिया, तथा पर्वत को हाथ में लेकर रात्रि में आकाश मार्ग से हनुमान जी दौड़े और अवधपुरी के ऊपर गये।

दो०– देखा भरत बिशाल अति, निशिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि तानि।।५८।।

भा०– श्रीभरत ने अत्यन्त विशालकाय जीव को अवधपुरी के ऊपर आकाश में देखा। मन में राक्षस का अनुमान करके धनुष को कान तक तानकर श्री भरतलाल ने हनुमान जी को बिना फल के बाण से मार दिया।

परेउ मुरछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।।
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए।।

भा०– श्रीभरत का बाण लगते ही (मस्तक में) 'राम–राम' कहकर रघुकुल के नायक प्रभु श्रीराम का स्मरण करते हुए हनुमान जी महाराज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब प्रिय हनुमान जी के मुख से निकले हुए प्रिय श्रीराम के स्मरणात्मक वचन सुनकर श्रीभरत दौड़े और अत्यन्त आतुर होकर हनुमान जी महाराज के समीप आ गये।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा।।
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी।।

भा०– वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को विकल अर्थात् व्याकुल देखकर अथवा, बाण के प्रभाव से विगत यानी गमन की कला से विगत निश्चेष्ट, शान्त और मूर्च्छित देखकर श्रीभरत ने हनुमान जी को हृदय से लगा लिया। उन्हें बहुत प्रकार से जगाया, किन्तु हनुमान जी महाराज नहीं जग रहे थे। श्रीभरत का मुख मलिन हो गया, वे मन में दुःखी हो गये और आँखों में जल भरकर कहने लगे–

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा।।
जौ मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।।
तौ कपि होउ बिगत श्रम शूला। जौ मो पर रघुपति अनुकूला।।

भा०– जिस विधाता ने मुझे श्रीराम से विमुख किया उसी ने यह असहनीय दुःख भी दे दिया कि मेरे हाथों श्रीराम का एक सेवक हताहत् हो गया। यदि मन, वाणी और शरीर से मेरे मन में श्रीरामचन्द्र जी के श्रीचरणकमलों में छल से रहित प्रीति है, यदि भगवान् श्रीराम मुझ पर अनुकूल हों तो, हे हनुमान जी! आप मार्ग के श्रम और मेरे बाण के कष्ट से रहित हो जायें।

सुनत बचन उठि बैठ कपीशा। कहि जय जयति कोसलाधीशा।।

दो०– लीन्ह कपिहिं उर लाइ, पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघुकुल तिलक।।५९।।

भा०– श्रीभरत के यह वचन सुनते ही कोसलाधीश की जय हो...जय हो! अर्थात् अयोध्याधिपति भगवान् श्रीराम की जय हो...जय हो! कहते हुए हनुमान जी महाराज उठकर बैठ गये। श्रीभरत ने शरीर से रोमांचित होकर नेत्रों में अश्रु भरकर रघुकुल के तिलक भगवान् श्रीराम का स्मरण करके हनुमान जी महाराज को छाती से लगा लिया, उनके हृदय में प्रीति नहीं समा रही थी।

विशेष– इस प्रसंग को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीअयोध्या की भूमि पर गिरते समय हनुमान जी के हाथ में द्रोणाचल पर्वत नहीं था, नहीं तो हनुमान जी को श्रीभरत कैसे हृदय से लगाते? वह पर्वत हनुमान जी ने श्रीभरत के बाण से मूर्च्छित होते समय अपने पिता पवनदेव को दे दिया था। यह बात गीतावली रामायण से भी प्रमाणित हो जाती है। यथा– "**पर्यो कहि राम पवन राख्यो गिरि**", (गी० रा० ६/१०)।

तात कुशल कहु सुख निधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी।।
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महँ पछिताने।।

भा०– श्रीभरत बोले, हे मेरे प्रिय हनुमान जी! लक्ष्मण एवं माताश्री जानकी जी के सहित सुख के निधान श्रीराम का कुशल समाचार कहो। हनुमान जी ने संक्षेप में सम्पूर्ण चरित्र कह सुनाया। सुनकर श्रीभरत बहुत दुःखी हुए और मन में पछताने लगे।

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ।।
जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बरबीरा।।

भा०– श्रीभरत ने कहा, अहह! खेद है, हे देव! मैं संसार में क्यों जन्मा, क्योंकि प्रभु श्रीराम के एक भी कार्य में न आ पाया। प्रतिकूल समय जानकर मन में धैर्य धारण करके श्रेष्ठवीर श्रीभरत फिर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी से बोले–

तात गहरु होइहिं तोहि जाता। काज नसाइहि होत प्रभाता।।
चढ़ु मम सायक शैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता।।

भा०– हे तात! तुम्हें जाने में विलम्ब होगा और प्रातःकाल होते ही संजीवनी के नहीं उपस्थित होने पर कार्य नष्ट हो जायेगा, क्योंकि सुषेण ने तुम्हें प्रातःकाल से पहले आने के लिए निर्देश दिया था, जबकि मैंने बाण से मारकर तुम्हें विलम्बित किया है। पर्वत के सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ, मैं तुम्हें वहीं भेज देता हूँ ,जहाँ कृपा के भवन श्रीराम हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना।।
राम प्रताप बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी।।

भा०– श्रीभरत का वचन सुनते ही हनुमान जी के मन में अभिमान अर्थात् संशय उत्पन्न हो गया। उन्होंने सन्देह प्रकट करते हुए कहा, अरे मेरे भार से भरत जी का बाण चलेगा कैसे? परन्तु फिर श्रीराम के प्रताप का विचार करके श्रीभरत के चरणों की वन्दना करके हाथ जोड़कर हनुमान जी कहने लगे–

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहों राम बान की नाईं।।
भरत हरषि तब आयसु दयऊ। पद सिर नाइ चलत कपि भयउ।।

भा०– हे गोसाईं! अर्थात् हे वैष्णवजगत् के स्वामी! आपके प्रताप को हृदय में धारण करके मैं श्रीराम के बाण के समान चला जाऊँगा। तब श्रीभरत ने प्रसन्न होकर हनुमान जी को आज्ञा दी और श्रीभरत के चरणों में सिर नवाकर हनुमान जी महाराज फिर चले।

दो०– भरत बाहुबल शील गुन, प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महँ जात सराहत, पुनि पुनि पवनकुमार।।६०।।

भा०– श्रीभरत की भुजाओं के बल, उनके शील, गुण तथा प्रभु के श्रीचरणों में अपार प्रीति की हनुमान जी महाराज मार्ग में जाते हुए मन में पुनः–पुनः सराहना कर रहे थे।

इहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी।।
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ।।

भा०– यहाँ भगवान् श्रीराम मूर्च्छित पड़े लक्ष्मण जी को निहारकर मनुष्य का अनुसरण करते हुए विलाप की भूमिका में बोले, अरे! आधी रात बीत गई संजीवनी बूटी लेकर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी नहीं आये। श्रीराम ने लक्ष्मण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेउ पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौ जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।

भा०– भगवान् श्रीराम बोले, हे भैया! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते हो, तुम्हारा स्वभाव बहुत कोमल है, तुमने मेरे कल्याण के लिए पिता–माता को छोड़ा। वन में शीत, धूप और बर्फीली तथा गर्म पवन का वेग सहा। हे भाई! इस समय तुम्हारा वह प्रेम कहाँ है, जो मेरे वचन की विकलता को सुनकर तुम नहीं उठ रहे हो। यदि मैं जानता कि वन में मेरा भाई लक्ष्मण से वियोग हो जायेगा तो मैं पिता का वचन मान लेता और उनकी अर्थात् सीता जी की बात नहीं मानता अर्थात् सुमंत्र जी के साथ भेजे हुए पिताजी के सन्देश को आदेश मानकर सीता जी को श्रृंगवेरपुर से ही अयोध्या भेज देता और "नहिं ओहू" अर्थात् उन सीता जी का वचन नहीं मानता, जिसमें उन्होंने कहा था कि शरीर को छोड़कर छाया किसकी होकर रहेगी, सूर्यनारायण को छोड़कर प्रभा कहाँ रहेगी और चन्द्रमा को छोड़कर चाँदनी को कहाँ स्थान है?

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।

भा०– संसार में पुत्र, धन, पत्नी, परिवार ये सब बारम्बार होते और जाते रहते हैं अर्थात् मिलते और बिछुड़ते रहते हैं। हे भैया! हृदय में ऐसा विचार करके जग जाओ कि बिछुड़े हुए सहोदर भ्राता फिर नहीं मिलते।

विशेष– एक ही खीर से चारों भ्राताओं का आविर्भाव हुआ था इसलिए लक्ष्मण जी श्रीराम के सहोदर भ्राता हैं। अथवा, श्रीराम के समान कौसल्या जी के द्वारा दी हुई खीर से (जिसे चक्रवर्ती जी ने सुमित्रा जी को दिलाया) लक्ष्मण जी का भी जन्म हुआ, इसलिए भी लक्ष्मण जी भगवान् श्रीराम के सहोदर भ्राता हैं।

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर कर हीना।।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौ जड़ दैव जियावै मोही।।

भा०– जैसे पंख के बिना पक्षी अत्यन्त दीन अर्थात् अभावग्रस्त हो जाता है, जैसे मणि के बिना सर्प और सूँढ़ के बिना हाथी असहाय हो जाता है, उसी प्रकार हे भैया! बिना तुम्हारे मेरा भी जीवन असहाय है। यदि जड़ हृदयवाला ईश्वर तुम्हारे बिना मुझे जीवित रखता है तो अर्थात् पहले तो मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकूँगा और यदि जीवित रहा भी तो पंख के बिना पक्षी, मणि के बिना सर्प और सूँढ़ के बिना हाथी के समान असहाय और निरुपाय होकर जिऊँगा।

जैहउँ अवध कवन मुह लाई। नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई।।
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिशेष छति नाहीं।।

भा०– अरे पत्नी के लिए प्यारे भाई को खोकर मैं कौन–सा मुँह लेकर अयोध्या जाऊँगा। सीता को खोकर संसार में अपयश सह लेता यह ठीक था, क्योंकि पत्नी की हानि कोई विशेष क्षति नहीं है।

अब अपलोक शोक सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।।
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम प्रान अधारा।।
सौंपेउ मोहि तुमहिं गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।।
उतर काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।।

भा०– हे पुत्र! अब यह मेरा निष्ठुर हृदय तुम्हारे शोक और तुम्हारे बिना जीने के अपयश को सहन करेगा। हे भैया! तुम अपनी माता सुमित्रा जी के प्रधान पुत्र हो और तुम उनके प्राण के आधार भी हो। सुमित्रा जी ने मुझे सब प्रकार से सुखदाता और परमहितैषी जानकर तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा है। मैं उन्हें जाकर क्या उत्तर दूँगा? अथवा, हे तात लक्ष्मण! तुम अपनी माता जनकनन्दिनी सीता जी के एकमात्र पुत्र हो। वनवास करते समय सीता जी को ही तुम्हारी माताश्री के रूप में नियुक्त किया था और तुम इकलौते पुत्र होने के कारण अपनी माता सीता जी के प्राण के आधार हो। सीता जी ने अग्नि में प्रवेश करते समय तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा, क्योंकि वे मुझे सब प्रकार से सुखद और परमहितैषी जानती हैं। अब मैं तुम्हारे बिना साकेत जाकर सीता जी को क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे क्यों नहीं सिखा रहे हो?

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन।।
उमा अखंड एक रघुराई। नर गति भगत कृपालु देखाई।।

भा०– इस प्रकार शोकों को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम बहुत प्रकार से सोच रहे हैं और उनके लाल कमलदल जैसे नेत्रों से अश्रुजल चू रहा है। शिव जी, पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! अखण्ड और एक होकर भी भक्तकृपालु श्रीरामचन्द्र जी ने मनुष्य की गति दिखाई है अर्थात् अखण्ड परमात्मा के यहाँ खण्ड का अभाव होने से वियोग सम्भव ही नहीं है और एक होने के कारण वे श्रीसीता जी से भी पृथक् नहीं हैं। यहाँ तो प्रभु केवल मानवीय दशा का दर्शन करा रहे हैं।

सो०– प्रभु विलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस।।६१।।

भा०– प्रभु श्रीराम का विलाप सुनकर सभी वानर समूह व्याकुल हो गये। इसी बीच द्रोणाचल पर्वत और मृत संजीवनी बूटी लेकर हनुमान जी महाराज इस प्रकार आये, मानो करुणरस में वीररस आ गया हो।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।।
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई।।
हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता।।
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा।।

भा०– अत्यन्त कृतज्ञ और परमचतुर श्रीराम ने हर्षित होकर हनुमान जी को भेंट लिया अर्थात् गले लगाया। इसके पश्चात् वैद्य सुषेण ने तुरन्त उपाय की अर्थात् मृतसन्धानी ओषधि से टुकड़े में बँटी हुई लक्ष्मण जी के हड्डियों को जोड़ दिया। विशल्यकरणी ओषधि से लक्ष्मण जी के सारे घाव भर दिये अर्थात् ठीक कर दिया। सुबल्यकरणी ओषधि से उनमें बल का संचार किया और मृतसंजीवनी जिसे हनुमान जी ले आये हैं से लक्ष्मण जी में जीवनशक्ति का सन्चार कर दिया और लक्ष्मण जी प्रसन्न होकर उठ कर बैठ गये। (**विशेष–** उठकर बैठते ही लक्ष्मण जी बोले, अहो! आज मैं बहुत सोया तुरन्त श्रीराम ने कहा, मैं भी आज बहुत रोया।) प्रभु श्रीराम मूर्च्छा से जगे हुए और मरणसंकट से उबरे हुए भ्राता लक्ष्मण जी को हृदय से लगाकर मिले और सम्पूर्ण वानर–भालुओं के समूह प्रसन्न हो गये। फिर हनुमान जी ने सुषेण वैद्य को वहाँ अर्थात् उनके स्थान पर पहुँचा दिया, जिस प्रकार से उस समय उन्हें ले आये थे और इसी पंक्ति से उपलक्षणा की विधि से गोस्वामी जी यह भी सूचित कर रहे हैं कि हनुमान जी संजीवनी ओषधि के प्रयोग के पश्चात् द्रोणाचल पर्वत को भी उसके स्थान पर छोड़कर शीघ्र श्रीराम के दल में लौट आये।

यह बृत्तान्त दशानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।।
ब्याकुल कुंभकरन पहँ गयऊ। करि बहु जतन जगावत भयऊ।।
जागा निशिचर देखिय कैसा। मानहुँ काल देह धरि बैसा।।
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।।

भा०– दसमुख रावण ने यह अर्थात् लक्ष्मण जी के जीवित होने का वृत्तान्त सुना तो अत्यन्त दुःख से व्याकुल होकर उसने बार–बार अपना सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत प्रयास करके उसे जगाया। जागा हुआ राक्षस किस प्रकार दिखता था, मानो काल ही शरीर धारण करके बैठा था। कुम्भकर्ण ने रावण से पूछा, कहो भैया! तुम्हारे दसों मुख सूख क्यों रहे हैं?

कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी।।
तात कपिन सब निशिचर मारे। महा महा जोधा संघारे।।

भा०– उस अभिमानी रावण ने वह सब कथा कह सुनायी, जिस प्रकार से वह श्रीसीता को चुराकर ले आया था। रावण बोला, हे भैया! वानरों ने सभी राक्षसों को मार डाला और महान्–महान् योद्धाओं का संहार कर दिया।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी।।
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा।।

भा०– दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक, परमवीर अतिकाय तथा भारी शरीरवाला अकम्पन इनके अतिरिक्त भी महोदर आदि सभी वीर और युद्ध में स्थिर रहने वाले राक्षस युद्धभूमि में पड़े हुए हैं अर्थात् मर गये।

दो०- सुनि दशकंधर बचन तब, कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब, शठ चाहसि कल्यान।।६२।।

भा०- तब दस कंधराओं वाले रावण के वचन सुनकर कुम्भकर्ण विलख उठा और बोला, अरे शठ! जगदम्बा श्रीसीता जी को हर ले आकर तू अपना कल्याण चाहता है।

भल न कीन्ह तैं निशिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएसि काहा।।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना।।

भा०- हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया, अब मुझे आकर क्यों जगा दिया अर्थात् जब सब कुछ नष्ट हो गया तो मुझे जगाने से क्या लाभ है? हे भैया! अब भी अभिमान छोड़कर भगवान् श्रीराम का भजन करिये। आपका कल्याण होगा।

हैं दशशीष मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक।।
अहह बंधु तैं कीन्ह खोटाई। प्रथमहिं मोहि न जगायउ आई।।

भा०- हे दसशीश रावण! जिनके स्वयं शिव जी स्वरूप हनुमान जी जैसे सेवक हों, वे रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम क्या मनुष्य हैं? अहह! मुझे खेद है, हे भाई! तूने बहुत खोटापन किया, जो युद्ध के प्रथम आकर मुझे नहीं जगाया।

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। शिव बिरंचि सुर जाके सेवक।।
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहेऊ। कहतेउँ तोहि समय नहिं रहेऊ।।

भा०- हे स्वामी! आपने उन देवता का विरोध किया है, जिन श्रीराम जी के शिवजी, ब्रह्मा जी एवं विष्णु जी आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझसे जो ज्ञान कहा था वह मैं तुमसे कहता, पर अब समय नहीं रहा।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।।
श्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन।।

भा०- हे भाई! अब भर अंक अर्थात् भुजाओं में भरकर मुझे एक बार भेंट लो अर्थात् मिल लो, मैं श्रीराम जी के पास जाकर नेत्रों को सफल करूँगा। श्यामल शरीर तथा कमल के समान नेत्रों वाले, तीनों प्रकार के तापों को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम जी के मैं दर्शन करूँगा।

दो०- रामरूप गुन सुमिरि मन, मगन भयउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक।।६३।।

भा०- भगवान् श्रीराम जी के रूप और गुणों का स्मरण करके कुम्भकर्ण का मन एक क्षण के लिए मग्न हो गया अर्थात् प्रभु के भक्तिमाधुर्य में डूब गया। इसके पश्चात् उसने रावण से करोड़ घड़ा मदिरा और अनेक भैंसे माँगे।

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना।।
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा।।

भा०- भैंसों को खाकर, मदिरापान करके कुम्भकर्ण वज्रपात के समान गरजा। रणभूमि में दुर्मद अर्थात् दुर्धर्ष मद से भरा हुआ। साथ में कोई सेना न लेकर अकेले ही कुम्भकर्ण किले को छोड़कर चल पड़ा।

देखि बिभीषन आगे आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ।।
अनुज उठाइ हृदय तेहि लायो। रघुपति भगत जानि मन भायो।।

भा०- उसे देखकर विभीषण जी आगे आये, कुम्भकर्ण के चरणों पर गिरे और अपना नाम सुनाया। उसने अर्थात् कुम्भकर्ण ने छोटे भाई विभीषण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया। रघुपति श्रीराम जी का भक्त जानकर विभीषण जी कुम्भकर्ण के मन को बहुत भाये।

तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा।।
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ।।

भा०- हे तात! रावण के ही पूछने पर श्रेष्ठ और कल्याणकारी मंत्रणा और विचार कहते हुए ही मुझे रावण ने लात से मार दिया। उसी ग्लानि से मैं रघुपति श्रीराम जी के पास आ गया। मेरी दीन दशा देखकर मैं प्रभु के मन को भा गया।

सुनु सुत भयउ कालबश रावन। सो कि मान अब परम सिखावन।।
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निशिचर कुल भूषन।।
बंधु बंश तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम शोभा सुख सागर।।

भा०- कुम्भकर्ण ने कहा, हे बेटे! रावण काल के वश हो गया है। वह अब श्रेष्ठ शिक्षा क्यों माने? हे विभीषण तू धन्य है...धन्य है...धन्य है। हे तात! तू राक्षसकुल का अलंकार हो गया। हे भाई! तुमने पुलस्त्य–वंश को उजागर अर्थात् प्रसिद्ध कर दिया और शोभा और सुख के समुद्र भगवान् श्रीराम का भजन किया।

दो०- बचन कर्म मन कपट तजि, भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि, भयउँ कालबश बीर।।६४।।

भा०- हे विभीषण! वचन, कर्म और मन से कपट छोड़कर युद्ध में कुशल और स्थिर परमवीर भगवान् श्रीराम का भजन करना। अब यहाँ से जल्दी चले जाओ, मुझे अपना–पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा है, क्योंकि मैं काल के वश में हो चुका हूँ।

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन।।
नाथ भूधराकार शरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।।

भा०- कुम्भकर्ण के वचन सुनकर विभीषण जी चले और जहाँ तीनों लोक के आभूषण भगवान् श्रीराम थे वहाँ आ गये और भगवान् श्रीराम से बोले, हे नाथ! युद्ध में अचल और पर्वताकार शरीरवाला कुम्भकर्ण आ गया है।

इतना कपिन सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना।।
लिए उपारि बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहि ता ऊपर।।
कोटि कोटि गिरि शिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।।
मुरै न मन तनु टरै न टारे। जिमि गज अर्क फलनि के मारे।।

भा०- जब इतना अपने कान से सुना तब किलकिला शब्द करके बलवान वानर–भालु दौड़े। उन्होंने वृक्ष और पर्वत उखाड़ लिए और कटकटा शब्द करके कुम्भकर्ण के ऊपर डालने लगे। वानर और भालु एक–एक बार में कुम्भकर्ण पर करोड़ों–करोडों पर्वत शिखरों का प्रहार करते हैं। उसका मन मुड़ता नहीं है और शरीर टालने पर भी टलता नहीं है, जैसे मदार के फलों से मारने पर हाथी को कोई अन्तर नहीं पड़ता।

तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ। पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुनेऊ।।
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता।।

भा०– तब पवनपुत्र हनुमान जी ने कुम्भकर्ण को एक मुक्का मारा। वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अपना सिर पीट लिया। फिर उठकर कुम्भकर्ण ने भी हनुमान जी को एक मुक्का मारा और हनुमान जी चक्कर खाकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़े।

विशेष : अपना ऐश्वर्य छिपाकर मूर्च्छित होने का अभिनय किया नहीं तो कुम्भकर्ण को हनुमान जी के ईश्वरीयस्वरूप का पता चल जाता। फिर तो श्रीराम के महाविष्णुस्वरूप का पता चल जाने से कुम्भकर्ण, रावण आदि सभी अवध्य हो जाते किसी का मरण नहीं होता।

पुनि नल नीलहिं अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि।।
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई।।

भा०– फिर उसने नल और नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया और जहाँ–तहाँ वानर वीरों को पटक–पटककर फेंक दिया। वानरी सेना भाग चली, सब लोग अत्यन्त भय से त्रस्त थे, कोई उसके सम्मुख नहीं आ रहा था।

दो०– अंगदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहँ, चला अमित बल सींव।।६५।।

भा०– सुग्रीव जी के सहित अंगद जी आदि वानरों को मूर्च्छित करके, मूर्च्छावस्था में ही सुग्रीव जी को काँख में दबाकर असीम बल की सीमा, अथवा अमित बलवाले श्रीराम ही जिसकी सीमा हैं, यानी श्रीराम के अतिरिक्त सभी पर विजय प्राप्त करने वाला कुम्भकर्ण चल पड़ा।

उमा करत रघुपति रनलीला। खेल गरुड जिमि अहिगन मीला।।
भृकुटि भंग जो कालहिं खाई। ताहि कि ऐसी सोह लराई।।

भा०– हे पार्वती ! भगवान् श्रीराम जी रणलीला कर रहे हैं अर्थात् इस लीला में मूर्च्छित होना, कभी पराजित होना यही स्वाभाविकता है। जिस प्रकार सर्पों से मिलकर गरुड़ जी खेलते हों, प्रभु इस समय उसी प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं। जो अपने भृकुटि के टेढ़े होने मात्र से काल को भी खा लेते हैं, क्या उन परमात्मा के लिए, इस प्रकार की लड़ाई शोभित होती है जिसमें कुम्भकर्ण सभी वानरी सेना को रौंदकर चला गया हो?

जग पावनि कीरति बिस्तरिहैं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहैं।।
मुरछा गइ मारुतसुत जागे। सुग्रीवहिं तब खोजन लागे।।
कपिराजहु कै मुरछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती।।

भा०– इसी विधि से भगवान् श्रीराम संसार को पवित्र करने वाली कीर्ति का विस्तार करेंगे।, उसे गा–गाकर लोग भवसागर से तर जायेंगे। मूर्च्छा समाप्त हुई हनुमान जी जगे और वे सुग्रीव जी को ढूँढ़ने लगे। सुग्रीव जी की भी मूर्च्छा समाप्त हुई। वे कुम्भकर्ण की काँख से छूट गये। कुम्भकर्ण ने समझा यह मर गया।

काटेसि दशन नासिका काना। गरजि अकाश चलेउ तेहिं जाना।।
गहेसि चरन धरि धरनि पछारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा।।
पुनि आयउ प्रभु पहँ बलवाना। जयति जयति कह कृपानिधाना।।

भा०– सुग्रीव जी ने दाँत से कुम्भकर्ण के नाक–कान काट लिया और गरज कर आकाश में चले गये। कुम्भकर्ण ने जान लिया। उसने सुग्रीव जी के चरण पकड़ा और पकड़कर पृथ्वी पर दे पटका, परन्तु अत्यन्त हल्का होने के कारण उठकर सुग्रीव जी ने फिर कुम्भकर्ण को मारा और फिर बलवान सुग्रीव जी प्रभु के पास 'कृपानिधान की जय हो...जय हो...जय हो!' इस प्रकार कहते हुए आ गये।

नाक कान काटे जिय जानी। फिरा क्रोध करि भई गलानी।।
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा।।

दो०- जय जय जय रघुबंश मनि, धाए कपि दै हूह।
एकहिं बार तासु पर, डारेनि गिरि तरु जूह।।६६।।

भा०- अपना नाक–कान कटा हुआ हृदय में समझकर कुम्भकर्ण क्रोधवश फिर युद्ध करने के लिए लौटा। वह स्वभाव से भयंकर था, फिर बिना कान–नाक के हो चुका था। उसे देखकर वानरी सेना में डर उत्पन्न हो गया। "रघुवंश के मणि श्रीराम की जय हो...जय हो...जय हो!" इस प्रकार जयकारा लगाकर हू..हू करते हुए वानर दौड़े और एक ही बार में कुम्भकर्ण पर पर्वतों और वृक्षों के समूह फेंके।

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा।।
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीडी गिरि गुहा समाई।।
कोटिन गहि शरीर सन मर्दा। कोटिन मीजि मिलाएसि गर्दा।।
मुख नासा स्रवननि की बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा।।
रन मद मत्त निशाचर दर्पा। बिश्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा।।
मुरे सुभट सब फिरिहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।।

भा०- समरभूमि में कुम्भकर्ण वानरों के प्रति विरुद्ध दृष्टि का हो चुका और काल के समान क्रुद्ध होकर उनके सामने चला। वह करोड़ों–करोड़ों वानरों को पकड़कर खा जाता, जैसे टिडी पक्षी पर्वत की गुफा में समा जाता है। करोड़ों को उसने शरीर से मसल दिया और करोड़ों को हाथ से मसलकर धूल में मिला दिया। उसके मुख, नाक और कान के मार्ग से निकल–निकल कर वानर–भालुओं के समूह भाग जाते थे। युद्ध के मद में पागल वह राक्षस इस प्रकार दर्पित हो रहा था, मानो वह संपूर्ण संसार को खा जाएगा जैसे विधाता ने इसे खाने के लिए सम्पूर्ण संसार को सौंप दिया हो। सभी वानर वीर मुड़ गये, वे लौटाने से भी नहीं लौटते थे, उन्हें आँख से दिखता नहीं था और बुलाने से वे सुनते नहीं थे।

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी।।
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई।।

दो०- सुनु सौमित्रि कपीश तुम, सकल संभारहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहिं, बोले राजिवनैन।।६७।।

भा०- कुम्भकर्ण ने वानरी सेना को तितर–बितर कर दिया, यह सुनकर राक्षसों की सेना दौड़ पड़ी। भगवान् श्रीराम ने अपनी सेना को विकल देखा तथा नाना प्रकार की शत्रु सेना को आई हुई भी देखा। लाल कमल के समान नेत्रवाले, राजीवनयन भगवान् श्रीराम बोले, हे लक्ष्मण! हे सुग्रीव! तुम दोनों सम्पूर्ण सेना को सम्भालना। अब मैं दुष्ट कुम्भकर्ण, उसका बल और उसकी सेना को अकेले देखूँगा।

कर सारंग बिशिख कटि भाथा। मृगपति ठवनि चले रघुनाथा।।
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टँकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा।।
सत्यसंध छाड़े शर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा।।

भा०- हाथ में शार्ङ्ग धनुष और बाण लेकर तथा कटि प्रदेश में तरकस बाँधकर सिंह के समान चाल से श्रीरघुनाथ जी चल पड़े। प्रभु ने प्रथम धनुष का टंकार किया, उसका शब्द सुनकर शत्रुदल बहरा हो गया।

सत्यप्रतिज्ञ एवं अमोघ सन्धान करने वाले प्रभु ने एक लाख बाण छोड़े, मानो पंखों से युक्त होकर कालसर्प ही चल पड़े हों।

अति जव चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिशाचा।।
कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं शत खंडा।।
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं।।
लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन शर भाजहिं।।
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु गुहरावहिं।।

भा०- अत्यन्त वेगशाली बहुत से बाण चल पड़े, उनसे भयंकर माँसाहारी राक्षस वीर कटने लगे। उनके चरण, हृदय, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीर सौ–सौ टुकड़े हो जाते हैं। वे चक्कर खाकर, घायल होकर, पृथ्वी पर पड़ जाते हैं। वे सम्भालकर उठकर फिर लड़ते हैं, बाण लगते ही बादलों की भाँति गरजते हैं और बहुत से वीर कठिन बाण देखकर भागते हैं। प्रचण्ड धड़ बिना सिरों के दौड़ते हैं तथा "मारो–मारो, पकड़ो–पकड़ो इस प्रकार गुहार लगाकर चिल्लाते हैं।"

दो०- छन महँ प्रभु के सायकनि, काटे बिकट पिशाच।
पुनि रघुबीर निषंग महँ, प्रबिसे सब नाराच।।६८।।

भा०- एक क्षण में प्रभु के बाणों ने माँसाहारी राक्षसों को काट डाला, फिर सभी एक लाख बाण प्रभु के तरकस में प्रवेश कर गये।

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हती निमिष महँ निशिचर धारी।।
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा।।

भा०- कुम्भकर्ण ने मन में विचारकर देखा कि राक्षसी सेना को श्रीराम ने एक क्षण में मार डाला। पूजनीय रण में कुशल कुम्भकर्ण बहुत कुपित हुआ और उसने गम्भीर सिंहनाद किया।

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी।।
आवत देखि शैल प्रभु भारे। शरनि काटि रज सम करि डारे।।

भा०- वह कुपित होकर पर्वतों को उखाड़ लेता और जहाँ विशाल वानरभट थे वहाँ फेंकता। प्रभु विशाल पर्वतों को आते देख, बाणों से काटकर उन्हें धूल के समान कर डालते थे।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक।।
तनु महँ प्रबिशि निसरि शर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं।।

भा०- फिर रघुकुल के नायक श्रीराम क्रुद्ध होकर अत्यन्त भयंकर बहुत से बाण छोड़े। भगवान् श्रीराम के बाण कुम्भकर्ण के शरीर में प्रवेश करके उसी प्रकार निकल जाते हैं, जैसे बिजलियाँ बादलों में समा कर निकल जाती हैं।

शोनित स्त्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे।।
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट चलि आए।।

भा०- कुम्भकर्ण के काले शरीर से गिरते हुए रक्त ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो कज्जल पर्वत पर गेरु नामक धातु के पनारे अर्थात् छोटे–छोटे प्रवाह हों। कुम्भकर्ण को व्याकुल देखकर वानर–भालु दौड़े। जब सब निकट चले आये तब कुम्भकर्ण हँसा।

दो०- गर्जत धायउ बेग अति, कोटि कोटि गहि कीश।
महि पटकइ गजराज इव, शपथ करइ दशशीश।।६९।।

भा०- कुम्भकर्ण गरजता हुआ अत्यन्त वेग से दौड़ा, वह करोड़ों-करोड़ों वानरों को पकड़कर श्रेष्ठ हाथी की भाँति पृथ्वी पर पटक देता और रावण की शपथ करता था।

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा।।
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी।।
यह निशिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देश परन अब चहई।।
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी।।

भा०- जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ों के समूह भाग जाते हैं, उसी प्रकार भालु और वानरों के यूथ भागने लगे। हे पार्वती! व्याकुल होकर आर्त अर्थात् भयपूर्ण वाणी में पुकारते हुए वानर-भालु भग चले। यह राक्षस दुष्काल के समान है, जो अब वानररूप देश में पड़ना ही चाहता है अर्थात् जैसे दुष्काल से देश का नाश हो जाता है, उसी प्रकार वानरी सेना का नाश हो जायेगा। हे कृपा के बादल! खर के शत्रु! प्रणाम करने वालों की आर्त अर्थात् भय का हरण करने वाले श्रीराम! आप हमारी रक्षा कीजिये...रक्षा कीजिये।

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि शरासन बाना।।
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलशाली।।
खैंचि धनुष शर शत संधाने। छूटे तीर शरीर समाने।।
लागत शर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा।।

भा०- अपनी सेना का करुणापूर्ण वचन सुनकर भगवान् श्रीराम धनुष-बाण सुधारकर आगे चले। वानरी सेना को अपने पीछे करके स्वयं महाबलशाली, महापराक्रमी श्रीराघव सरकार क्रोध के साथ चल पड़े। धनुष को खींचकर प्रभु ने सौ बाणों का सन्धान किया। वे बाण छूटे और कुम्भकर्ण के शरीर में समा गये। बाणों के लगते ही कुम्भकर्ण क्रोध में भरकर दौड़ा। पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी डोलने लगी अर्थात् चलने लगी।

लीन्ह एक तेहिं शैल उपाटी। रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी।।
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी।।
काटे भुजा सोह खल कैसा। पक्षहीन मंदर गिरि जैसा।।
उग्र बिलोकनि प्रभुहिं बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका।।

भा०- कुम्भकर्ण ने कुपित होकर एक पर्वत उखाड़ लिया, रघुकुल में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम ने वह भुजा काट दी। कुम्भकर्ण बायें हाथ में पर्वत रखकर दौड़ा, प्रभु ने वह भुजा भी काट कर पृथ्वी पर फेंक दी। भुजाओं के कट जाने पर दुष्ट कुम्भकर्ण किस प्रकार शोभित हो रहा था, जैसे पंखों से रहित मन्दराचल पर्वत हो। कुम्भकर्ण ने भयंकर दृष्टि से प्रभु को देखा, मानो वह तीनों लोकों को खाना चाहता था।

दो०- करि चिकार अति घोरतर, धावाबदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रसित सब, हा हा हेति पुकारि।।७०।।

भा०- तब कुम्भकर्ण घोर चित्कार करके मुख फैलाकर दौड़ा, आकाश के सभी सिद्ध और देवता हा!...हा!...हा! इस प्रकार पुकार कर अत्यन्त भयभीत हो गये।

सभय देव करुनानिधि जान्यो। स्रवन प्रजंत शरासन तान्यो।।
बिशिख निकर निशिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ।।

भा०– करुणानिधान भगवान् श्रीराम ने देवताओं को भयभीत जाना, तब अपने धनुष को कान तक खींचा और बाणों के समूहों से राक्षस कुम्भकर्ण का मुँह भर दिया, फिर भी महाबलशाली कुम्भकर्ण पृथ्वी पर नहीं पड़ा।

शरनि भरा मुख सन्मुख धावा। काल तून सजीव जनु आवा।।
तब प्रभु कोपि तीब्र शर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा।।

भा०– बाणों से भरे हुए मुखवाला कुम्भकर्ण भगवान् श्रीराम के सम्मुख दौड़ा, मानो जीव धारण करके काल का तरकस ही चला आया हो। तब प्रभु श्रीराम ने कुपित होकर तीव्र बाण लिया और उसी से कुम्भकर्ण का सिर, धड़ से अलग कर दिया।

सो सिर परेउ दशानन आगे। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागे।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा।।

भा०– कुम्भकर्ण का वह सिर रावण के आगे पड़ा, वह अर्थात् रावण किस प्रकार व्याकुल हो गया, जैसे मणि को छोड़कर सर्प व्याकुल हो जाता है। कुम्भकर्ण का भयंकर धड़ दौड़ने लगा और उससे पृथ्वी धँसने लगी, तब प्रभु ने उसे काटकर दो टुकड़ों में कर दिया।

परे भूमि जिमि नभ ते भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निशाचर।।
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना।।

भा०– कुम्भकर्ण आकाश से पर्वत की भाँति अपने नीचे वानर–भालु और राक्षसों को दबाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुम्भकर्ण का तेज प्रभु श्रीराम के मुख में समा गया, देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना।

सुर दुंदुभी बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं।।
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवऋषि आए।।

भा०– देवता नगारे बजाते हैं, प्रसन्न होते हैं, स्तुति करते हैं और बहुत से पुष्पों की वर्षा करते हैं। स्तुति करके सभी देवता चले गये, उसी समय वहाँ देवर्षि नारद जी आये।

गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए।।
बेगि हतहु खल कहि मुनि गयेऊ। राम समर महि शोभत भयेऊ।।

भा०– देवर्षि नारद जी ने आकाश के ऊपर रहकर ही वीररस से सुन्दर प्रभु के मन को भानेवाले श्रीहरि राघवेन्द्र सरकार के गुणगणों का गान किया। अब शीघ्र रावण को मारिये यह कहकर नारद जी पधार गये। भगवान् श्रीराम युद्धभूमि में शोभित हुए।

छं०– संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन रुचिर तन शोनित कनी।।
भुज जुगल फेरत शर शरासन भालु कपि चहुँ दिशि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि शेष जेहि आनन घने।।

भा०– अतुलनीय बलवाले अयोध्याधिपति भगवान् श्रीराम संग्रामभूमि में विराजमान हैं। उनके मुख पर पसीने की बूँदें हैं, उनके नेत्र लाल कमल के समान हैं और उनके सुन्दर शरीर पर रुधिर (रक्त) की कणिकाएँ हैं। प्रभु

श्रीराम दोनों हाथों से धनुष–बाण घुमा रहे हैं। उनके चारों ओर वानर–भालु सुन्दर बने हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु की वह युद्धस्थल की छवि शेष भी नहीं कह सकते, जिनके पास बहुत से मुख हैं।

दो०- निशिचर अधम मलायतन, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम।।७१।।

भा०- हे पार्वती! अधम तथा मलों के निवासगृह, ऐसे उस नीच राक्षस कुम्भकर्ण को भगवान् श्रीराम ने अपना धाम दे दिया। हे पार्वती! वे जीव अत्यन्त मन्दमति के हैं, जो श्रीसीता के रमण भगवान् श्रीराम को नहीं भजते।

दिन के अंत फिरी द्वौ अनी। समर भई सुभटन श्रम घनी।।
राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा।।
छीजहिं निशिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।।

भा०- दिन का अन्त होने पर दोनों सेनायें लौटी। युद्ध में दोनों दलों के वीरों को बहुत श्रम हुआ। भगवान् श्रीराम जी की कृपा से वानरों का बल उसी प्रकार से बढ़ा, जैसे सूखी घास पाकर अग्नि बहुत लगता है अर्थात् बहुत प्रज्जवलित हो उठता है। दिन और रात राक्षस उसी प्रकार नष्ट हो रहे हैं, जैसे अपने मुख से कहने पर पुण्य नष्ट हो जाता है।

बहु बिलाप दशकंधर करई। बंधु शीष पुनि पुनि उर धरई।।
रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी।।

भा०- रावण बहुत प्रकार से विलाप कर रहा था और बारम्बार अपने भाई कुम्भकर्ण का सिर छाती पर रख रहा था। सभी कुम्भकर्ण की नारियाँ हृदय को हाथ से पीटती हुई, कुम्भकर्ण के तेज और बहुत–बड़े बल का बखान करती हुई रो रही थीं।

मेघनाद तेहि अवसर आवा। कहि बहु कथा पिता समुझावा।।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई।।
इष्टदेव सन बर रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ।।
एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना।।

भा०- उसी समय वहाँ मेघनाद आया, उसने बहुत–सी कथायें कह कर अपने पिता रावण को समझाया और बोला, कल मेरा पुरुषार्थ देख लीजियेगा अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात! अपने इष्टदेव से मैंने वरदान रूप में जो रथ पाया है, वह बल मैंने आपको नहीं दिखाया, इस प्रकार निरर्थक वार्त्तालाप करते हुए प्रातःकाल हो गया और किले के चारों द्वारों पर अनेक वानर आकर लग गये अर्थात् उपस्थित हो गये।

इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा।।
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू।।

भा०- इधर वानर–भालु जो काल के समान वीर थे और उधर अत्यन्त रणधीर राक्षसगण थे। दोनों दलों के वीर अपने–अपने स्वामी के विजय के लिए युद्ध कर रहे थे। हे गरुड़ देव जी! युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता।

विशेष- भुशुण्डि जी गरुड़ जी को इसलिए सावधान कर रहे हैं, क्योंकि इसी प्रसंग की लीला से गरुड़ जी को मोह हुआ था।

दो०- मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि, भइ कपि कटकहिं त्रास।।७१।।

भा०- मायामय रथ पर चढ़कर मेघनाद आकाश में चला गया और वह प्रलयकालीन बादल के समान गरजा, जिससे सम्पूर्ण वानरी सेना को भय हो गया।

शक्ति शूल तरवारि कृपाना। अस्त्र शस्त्र कुलिशायुध नाना।।
डारइ परशु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना।।

भा०- शक्ति, त्रिशूल, तलवार, कृपाण अर्थात् तीव्र धारवाली कटार इस प्रकार के अनेक अस्त्र–शस्त्र और इन्द्र से छीने हुए नाना प्रकार के वज्र तथा फरसे, परिघ और पत्थर फेंका, फिर मेघनाद बाणों की वृष्टि करने लगा।

रहे दसों दिशि सायक छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई।।
धरु धरु मारु सुनहिं कपि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना।।
गहि गिरि तरु अकाश कपि धावहिं। देखहिं तेहिं न दुखित फिरि आवहिं।।
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि शर पंजर।।
जाहिं कहाँ ब्याकुल भये बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर।।

भा०- दसो दिशाओं में बाण ही बाण छा गये, मानो मघा नक्षत्र में वर्षाकालीन मेघ ने झड़ी लगा दी हो। वानर "पकड़ो–पकड़ो", "मारो–मारो" अपने कानों से सुनते हैं पर जो उन्हें मार रहा है उसे उनमें से कोई नहीं जान पा रहा है। हाथ में पर्वत और वृक्ष लेकर वानरभट आकाश में दौड़ते हैं, वहाँ भी मेघनाद को नहीं देखते, इससे दुःखी होकर लौट आते हैं। दुर्गम घाटियाँ, मार्ग, पर्वत की गुफायें सब कुछ मेघनाद ने मायामय बाणों के पिंजड़े से घेर दिया। अब कहाँ जायें वानरभट व्याकुल हो गये, मानो मन्दराचल इन्द्र के बन्दीगृह में पड़ गया हो।

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि विकल सकल बलशीला।।
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। शरनि मारि कीन्हेसि जर्जर तन।।

भा०- पवनपुत्र हनुमान जी, अंगद जी, नल–नील आदि सभी स्वाभाविक बलवान बन्दरों को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया। फिर लक्ष्मण जी, सुग्रीव जी एवं विभीषण जी के शरीरों को मेघनाद ने बाणों से मार–मारकर जर्जर कर दिया।

पुनि रघुपति सन जूझै लागा। शर छाँड़इ होइ लागहिं नागा।।
ब्याल पाश बश भए खरारी। स्वबश अनंत एक अबिकारी।।

भा०- फिर मेघनाद रघुकुल के स्वामी श्रीराम से युद्ध करने लगा। वह बाण छोड़ता वे नाग बनकर भगवान् श्रीराम के अंगों में लिपट जाते थे। परमस्वतंत्र, अद्वितीय, सभी विकारों से रहित खर के शत्रु भगवान् श्रीराम नागपाश के वश में हो गये।

नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र राम भगवाना।।
रन शोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपाश देवन भय पायो।।

भा०- निरन्तर स्वतंत्र होकर भी, ऐश्वर्यादि छह माहात्म्यों से युक्त होकर भी परमात्मा श्रीराम नट की भाँति अनेक कृत्रिम चरित्र करते रहते हैं। युद्ध की शोभा के लिए प्रभु सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीराम ने ही स्वयं को नागपाश में बँधा लिया। देवताओं ने भय पाया अर्थात् देवता डर गये, यद्यपि भगवान् श्रीराम युद्ध में रौद्र

के देवता रुद्र के रूप में अपने को प्रस्तुत कर रहे हैं, क्योंकि रुद्र नाग के बिना नहीं रहते अतः मेघनाद के नागपाश में बँधकर प्रभु ने स्वयं को अनेक नागों से युक्त करके अनेक रुद्रों के स्वरूप में प्रकट किया।

दो०- गिरिजा जाकर नाम जपि, मुनि काटहिं भव पास।
सो प्रभु आव कि बंध तर, ब्यापक बिश्व निवास।।७३।।

भा०- हे पार्वती! जिन प्रभु का नाम जपकर मुनिजन भवपाश को काट देते हैं, वे ही सर्वव्यापी, विश्व के निवास स्थान और विश्व जिनमें निवास करता है, ऐसे सर्वसमर्थ परमेश्वर श्रीराम क्या बन्धन के नीचे आ सकते हैं?

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि मन बानी।।
अस बिचारि जे परम बिरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी।।

भा०- शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे भवानी! श्रीराम की सगुण लीला के चरित्र बुद्धि, मन और वाणी से तर्क का विषय नहीं बनाये जा सकते, ऐसा विचार करके जो परम वैराग्यवान हैं, वे सभी तर्क छोड़कर श्रीराम को ही भजते हैं।

ब्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा।।
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा।।
बूढ़ जानि शठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही।।
अस कहि तरल त्रिशूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो।।
मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती।।
पुनि रिसाइ गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो।।
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा।।

भा०- मेघनाद ने वानरी सेना को व्याकुल कर दिया, फिर प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। जाम्बवान जी ने कहा, अरे दुष्ट! खड़ा रह, उनका वचन सुनकर उस मेघनाद के मन में बहुत क्रोध बढ़ गया। वह बोला, अरे दुष्ट! तुमको बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। अरे अधम! तू मुझको ललकारने लगा, इतना कहकर मेघनाद ने तीव्र त्रिशूल चला दिया अर्थात् जाम्बवान जी पर फेंक दिया। जाम्बवान जी उसी को हाथ में लेकर दौड़े और मेघनाद की छाती पर वही त्रिशूल मारा। देवताओं का हनन करने वाला मेघनाद चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर कुपित होकर मेघनाद का पैर पकड़कर जाम्बवान जी ने उसे बहुत बार घुमाया और पृथ्वी पर पछाड़कर उसे अपना बल दिखला दिया। ब्रह्मा जी के वर के प्रसाद से वह (मेघनाद) जाम्बवान जी के मारने से भी नहीं मर रहा था, फिर जाम्बवान जी ने मेघनाद का पैर पकड़कर लंका में फेंक दिया।

इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो।।

दो०- पन्नगारि खाए सकल, छन महँ ब्याल बरूथ।
भई बिगत माया तुरत, हरषे बानर जूथ।।७४(क)।।
गहि गिरि पादप उपल नख, धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ़ पर चढ़े पराइ।।७४(ख)।।

भा०- इधर नारद जी ने गरुड़ जी को भेजा और वे गरुड़ देव शीघ्र ही श्रीराम के समीप आ गये। सर्पों के शत्रु गरुड़ देव ने क्षण भर में ही सम्पूर्ण नागों के समूह को खा लिया। तुरन्त मेघनाद की माया समाप्त हो गई और

वानरों के यूथ प्रसन्न हो गये। वानर क्रुद्ध होकर पर्वत, वृक्ष और पत्थर तथा नख आदि शस्त्रों को लेकर दौड़े अत्यन्त व्याकुल होकर राक्षस लोग चले गये और किले पर चढ़कर भाग गये।

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहिं बिलोकि लाज अति लागी।।
तुरत गयउ गिरिवर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा।।

भा०– उधर मेघनाद की मूर्च्छा जगी और अपने सामने पिता अर्थात् रावण को देखकर मेघनाद को बहुत लज्जा लगी। वह तुरन्त पर्वत की श्रेष्ठ कन्दरा में चला गया और अब अजेय यज्ञ करूँगा ऐसा निश्चय किया।

सो सुधि पाइ विभीषन कहई। सुनु प्रभु समाचार अस अहई।।
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।
जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि।।

भा०– वह समाचार पाकर विभीषण जी कहने लगे, हे प्रभु! सुनिये, इस प्रकार का एक समाचार है कि दुष्ट प्रकृति का मायावी, देवताओं को सताने वाला मेघनाद एक अपवित्र यज्ञ कर रहा है। हे प्रभु! यदि वह सिद्ध हो जायेगा तो फिर मेघनाद शीघ्रता से नहीं जीता जा सकेगा।

सुनि रघुपति अतिशय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना।।
लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई।।
तुम लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही।।
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निशिचर सुनु भाई।।
जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनीउ जन।।

भा०– विभीषण जी के वचन सुनकर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने बहुत सुख माना तथा अंगद आदि नाना वानरों को बुला लिया और बोले, हे भाइयों! सभी लोग लक्ष्मण के साथ जाओ और जाकर यज्ञ का विध्वंस कर दो। हे लक्ष्मण! तुम उस मेघनाद को युद्ध में मार डालना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बहुत दुःख है। हे भाई! सुनो, उसी बल–बुद्धि के उपाय से उसे मारना, जिससे वह राक्षस समाप्त हो जाये। जाम्बवान जी, सुग्रीव जी और विभीषण जी आप तीनों लोग सेना के सहित भाई लक्ष्मण की सहायता में रहियेगा।

जब रघुबीर दीन्ह अनुशासन। कटि निषंग कसि साजि शरासन।।
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा।।
जौ तेहि आजु बधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं।।
जौ शत शङ्कर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई।।

भा०– जब रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने अनुशासन अर्थात् आज्ञा दी, तब कटि प्रदेश में तरकस कसकर धनुष को सजाकर हृदय में प्रभु श्रीराम के प्रताप को धारण करके युद्ध में धैर्यवान लक्ष्मण जी बादल के समान गम्भीर वाणी में बोले, यदि मैं आज मेघनाद का वध करके नहीं लौटता तब मैं स्वयं को श्रीरघुवीर का सेवक नहीं कहलाऊँगा। मैं रघुवीर श्रीराम की दुहाई करके कहता हूँ कि यदि सैकड़ों शङ्कर मेघनाद की सहायता करेंगे तो भी मैं उसे मार डालूँगा।

दो०– बंदि राम पद कमल जुग, चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल, संग सुभट हनुमंत।।७५।।

भा०– भगवान् श्रीराम के युगल श्रीचरणकमलों की वन्दना करके अंगद, नील, नल, मयन्द और श्रेष्ठभट हनुमान जी को साथ में लेकर लक्ष्मण जी तुरन्त चल पड़े।

जाइ कपिन देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।।
कीन्ह कपिन सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रशंसा।।
तदपि न उठइ धरेनि कच जाई। लातनि हति हति चले पराई।।
ले त्रिशूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे।।

भा०– जाकर वानरों ने देखा कि वह मेघनाद बैठा हुआ, रक्त और भैंसों की आहुति दे रहा है। वानरों ने सम्पूर्ण यज्ञ का विध्वंस कर दिया, फिर भी जब वह नहीं उठता, तो उसकी प्रशंसा करते हैं, अपनी प्रशंसा सुनकर भी मेघनाद नहीं उठ रहा है, तब जाकर वानरों ने उसके बाल पकड़ लिए और लातों से मार–मारकर भाग चले। फिर मेघनाद त्रिशूल लेकर दौड़ा, वानर भागे और जहाँ श्रीराम के छोटे भैया खड़े थे, वहीं आ गये।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा।।
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिशूल उर धरनि गिराए।।
प्रभु कहँ छाड़ेसि शूल प्रचंडा। शर हति कृत अनंत जुग खंडा।।
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा।।

भा०– मेघनाद आया और अत्यन्त क्रोध करके, घोर स्वर से बारम्बार गर्जना करके वानरों को मारा। कुपित होकर वायुपुत्र हनुमान जी और अंगद जी दौड़े, उन्हें भी हृदय में त्रिशूल मारकर मेघनाद ने पृथ्वी पर गिरा दिया। लक्ष्मण जी के लिए उसने प्रचण्ड त्रिशूल फेंका। अन्त से रहित लक्ष्मण जी ने बाण मारकर त्रिशूल के दो टुकड़े कर दिये। फिर पवनपुत्र हनुमान जी और अंगद जी उठकर क्रुद्ध होकर उसे मारने लगे, पर उसे घाव भी नहीं लगता था।

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा।।
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिशिख कराला।।
देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।।
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई।।

भा०– वीर लौट आये, क्योंकि शत्रु मारने पर भी नहीं मर रहा था, तब मेघनाद घोर चित्कार करके दौड़ा। क्रुद्धकाल के समान मेघनाद को आते देख, लक्ष्मण जी ने भयंकर बाण अर्थात् वज्रास्त्र को छोड़ा। वज्र के समान बाण को आते देखकर दुष्ट मेघनाद तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गया। वह अनेक वेश धरकर युद्ध करता, कभी प्रकट होता तो कभी छिप जाता था।

देखि अजय रिपु डरपे कीशा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीशा।।
एहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा। अब बध उचित कपिन भय पावा।।

भा०– शत्रु को अजेय देखकर वानर बहुत डर गये। तब सर्पों के भी शासक वैकुण्ठविहारी विष्णुस्वरूप लक्ष्मण जी कुपित हो गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि इस पापी को मैंने बहुत खेलाया अर्थात् खेलने का बहुत अवसर दिया। अब इसका वध ही उचित है, क्योंकि वानर भय पा चुके हैं अर्थात् बहुत भयभीत हो गये हैं।

सुमिरि कोसलाधीश प्रतापा। शर संधान कीन्ह करि दापा।।
छोड़ेउ बान माझ उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा।।

भा०– अयोध्यापति भगवान् श्रीराम के प्रताप का स्मरण करके और उसी श्रीराम की प्रताप का गर्व अनुभव करके लक्ष्मण जी ने इन्द्रास्त्र का अनुसन्धान करके बाण छोड़ा, वह मेघनाद के मध्य हृदय में लगा, मेघनाद मरा और मरती बार अर्थात् मरते समय उसने सम्पूर्ण कपट छोड़ दिया।

दो०- रामानुज कहँ राम कहँ, अस कहि छाड़ेसि प्रान।
धन्य शक्रजित मातु तव, कह अंगद हनुमान।।७६।।

भा०- श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण जी कहाँ हैं? श्रीराम जी कहाँ हैं? ऐसा कहकर मेघनाद ने अपने प्राण छोड़े। अंगद जी और हनुमान जी ने कहा, हे इन्द्रजीत! तुम्हारी माँ धन्य है, क्योंकि मरती बार तुमने लक्ष्मण जी एवं श्रीराम का स्मरण करके अपनी सारी बिगड़ी बात बना ली।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो।।
तासु मरन सुनि सुर गंधर्वा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा।।

भा०- प्रयास के बिना ही हनुमान जी ने मेघनाद का शव उठा लिया और उसे लंका के मुख्य द्वार पर रखकर, फिर लक्ष्मण जी के पास आ गये। उसका अर्थात् मेघनाद का मरण सुनकर सभी मुनि, गंधर्व और सभी वर्गों के देवता विमानों पर चढ़कर समरांगण के आकाश में आ गये।

बरसि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्रीरघुबीर बिमल जस गावहिं।।
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवनि निस्तारा।।

भा०- देवता पुष्पवर्षा कर नगारे बजाने लगे और श्रीसीता जी के सहित रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम का निर्मल यश तथा जिनसे श्रीरघुवीर का यश निर्मल होता है ऐसे लक्ष्मण जी के यश को भी गाने लगे। अथवा, जिन्हें रघुवीर श्रीराम से विजयश्री प्राप्त हुई ऐसे लक्ष्मण जी के निर्मल यश को गाने लगे। हे अनन्त! आपकी जय हो! हे जगदाधार लक्ष्मण जी! आप की जय हो! हे प्रभु! मेघनाद को मारकर आपने सभी देवताओं का निस्तार कर दिया।

विशेष- "*श्रीरघुबीर बिमल जस गावहिं,*" पद में एक तत्पुरुष और दो प्रकार से बहुव्रीहि समास हो गया।
(क) श्रीरघुवीरस्य विमलं यशः (ख) श्रीरघुवीरस्य विमलं यशः येन स। (ग) श्रीः रघुवीरात् यस्मिन् स श्रीरघुवीरः तस्य विमलं यशः।

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए।।
प्रभुहिं बिलोकि शीष पद नाए। उठि प्रभु अनुज हरषि उर लाए।।
मुख प्रसन्नता देखि पूँछ जब। रिपुबध कहा विभीषणहूँ तब।।

भा०- स्तुति करके देवता और सिद्ध चले गये। लक्ष्मण जी कृपा के सागर भगवान् श्रीराम जी के पास आये। प्रभु श्रीराम को देखकर लक्ष्मण जी ने उनके श्रीचरणों में शीश नवाया। प्रभु श्रीराम जी ने आसन से उठकर लक्ष्मण जी को हृदय से लगा लिया। जब श्रीराम जी ने सभी के मुख पर प्रसन्नता देखकर पूछा, तब विभीषण जी ने ही लक्ष्मण जी द्वारा किये हुए मेघनाद के वध का समाचार कह सुनाया।

सुत बध सुना दशानन जबहीं। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं।।
मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी।।
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दशकंधर पोचा।।

भा०- जिस समय रावण ने पुत्र मेघनाद का वध सुना उसी समय वह मूर्च्छित हो गया और पृथ्वी पर गिर पड़ा। मन्दोदरी बहुत रुदन करने लगी और अपनी छाती पीटकर बहुत प्रकार से चिल्लाने लगी। सभी नगर के लोग व्याकुल होकर शोक करने लगे, सभी कह रहे थे कि रावण बहुत नीच है।

दो०- तब दशकंठ बिबिध बिधि, समुझाई सब नारि।
नश्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय बिचारि।।७७।।

भा०- तब रावण ने अनेक प्रकार से सभी स्त्रियों को समझाया और कहा, हृदय में विचार करके देखो यह सम्पूर्ण जगत् नश्वररूप है अर्थात् इसका नाश तो निश्चित ही है।

तिनहिं ग्यान उपदेशा रावन। आपुन मंद कथा शुभ पावन।।
पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।।

भा०- रावण ने अपनी पत्नियों को ज्ञान का उपदेश दिया, वह स्वयं मन्द था और उसकी कथा शुभ और पवित्र थी अर्थात् रावण की कथनी और करणी में अन्तर था। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत से लोग कुशल होते हैं, परन्तु स्वयं जो लोग दूसरों को उपदेश देने के पूर्व उपदेश को आचरण में उतारते हैं, ऐसे प्राणी संसार में बहुत नहीं हैं।

निशा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा।।
सुभट बोलाइ दशानन बोला। रन सन्मुख जा कर मन डोला।।
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भए न भलाई।।
निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा। दैहउँ उतर जो रिपु चढ़ि आवा।।

भा०- रात बीती प्रातःकाल हुआ, भालु और बन्दर लंका के चारों द्वारों पर लग गये। वीरों को बुलाकर रावण बोला, युद्ध के सम्मुख आने पर जिसका मन डिगता हो वह भले ही अभी भग जाये, किन्तु युद्ध से विमुख होने में भलाई नहीं होगी। मैंने अपने बाहुबल के भरोसे वैर बढ़ाया है, यदि शत्रु चढ़कर आया है तो उसे मैं उत्तर दूँगा।

अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा।।
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली।।
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुजबल गर्ब बिशाला।।

भा०- ऐसा कहकर रावण ने वायु के समान वेगवाला रथ सजाया। युद्ध के सभी बाजे बजने लगे, सभी अतुलनीय बल से युक्त वीर सैनिक चल पड़े मानो काजल की आँधी चल पड़ी हो। उस समय अनेक अपशकुन हो रहे थे, परन्तु अपने बाहुबल का विशाल गर्व होने के कारण रावण के सैनिक उन अपशकुनों को नहीं गिन रहे थे अर्थात् उन पर ध्यान नहीं दे रहे थे।

छं०- अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्त्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते।।
गोमायु गीध करार खर रव श्वान रोवहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।।

भा०- अत्यन्त गर्व होने के कारण राक्षस शकुनों और अपशकुनों की चिन्ता नहीं कर रहे थे। राक्षसों के हाथों से आयुध गिर पड़ते थे। वीर रथ से गिर पड़ रहे थे। घोड़े और हाथी चित्कार करते हुए संग छोड़कर भाग रहे थे। गीदड़ गिद्ध, कौवे और गधे चिल्ला रहे थे। काल के दूत जैसे उल्लू अत्यन्त भयंकर वचन बोल रहे थे।

दो०- ताहि कि संपति सगुन शुभ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबश, राम बिमुख रत काम।।७८।।

भा०– जो प्राणिमात्र का द्रोही, मोह के वश में श्रीराम से विमुख और काम में रत है अर्थात् कामी है, क्या उसको स्वप्न में भी शकुन, सम्पत्ति, शुभ तथा मानसिक विश्राम मिल सकता है? अर्थात् भूतद्रोही को सुन्दर शकुन नहीं हो सकता, मोह के वश में हुआ व्यक्ति सम्पत्तिमान नहीं हो सकता, श्रीराम से विमुख प्राणी शुभी या कल्याणवान नहीं हो सकता और कामी को स्वप्न में भी मानसिक विश्राम नहीं मिल सकता। संयोग से रावण भूतद्रोही, मोहवश, श्रीराम जी से विमुख और कामी है। अतः यह चारों से वंचित हो गया।

चलेउ निशाचर कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा।।
बिबिध भाँति बाहन रथ याना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना।।

भा०– राक्षसों का अपार दल युद्ध के लिए चल पड़ा। रावण की चतुरंगिणी सेना में अनेक धार, अर्थात् टुकड़ियाँ थीं। उनके अनेक प्रकार के हाथी, घोड़े, रथ और विमान थे और अनेक प्रकार के अनेक पताकायें तथा ध्वज थे।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबृट जलद मरुत जनु प्रेरे।।

भा०– मतवाले हाथियों के समूह चल पड़े, मानो वायु से प्रेरित हुए अर्थात् पवन के झकोरों से उड़ाये गये वर्षाकाल के बादल जा रहे हों।

बरन बरन बिरुदैत निकाया। समर शूर जानहिं बहु माया।।
अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी।।

भा०– अनेक प्रकार की विरुदावलियों के समूह से युक्त, समर में वीर राक्षस युद्ध के लिए चल रहे थे, जो बहुत–सी माया जानते थे। रावण की अत्यन्त विचित्र सेना शोभित हो रही थी, मानो वीरों के वसन्त की सेना सजी हो।

चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं।।
उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई।।

भा०– रावण की सेना के चलते समय दिशा के हाथी चलायमान हो रहे थे, समुद्र क्षुभित हो रहा था और पर्वत डगमगा रहे थे। वहाँ ऐसी धूल उड़ी, जिसमें सूर्यनारायण छिप गये, वायु का बहना रुक गया, पृथ्वी अकुला गईं।

पनव निसान घोर रव बाजहिं। महाप्रलय के घन जनु गाजहिं।।
भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।।
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं।।

भा०– उस समय घोर स्वर में ढोल और नगारे, बजने लगे, मानो प्रलयकाल के बादल गरज रहे हों। भेरी, नफीरि तथा वीरों को सुख देने वाले मारु राग में शहनाई बजने लगी। सभी वीर सिंहनाद कर रहे थे और अपने–अपने बल पौरुष का उच्चारण कर रहे थे।

कहइ दशानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन के ठट्टा।।
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज चलाई।।
यह सुधि सकल कपिन जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई।।

भा०– रावण कहने लगा, हे वीरों! सुनो, तुम भालु और वानरों के जत्थों को मसल डालो, मैं दोनों भाई लक्ष्मण और राजाराम को मारूँगा। ऐसा कहकर रावण ने अपनी सेना सामने चला दी। यह समाचार जब सभी वानरों ने पाया तब श्रीराम के दुहाई करके दौड़े।

छं०- धाए बिशाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते।।
नख दशन शैल महाद्रुमायुध सबल शंक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजस बखानहीं।।

भा०- काल के समान वे विशाल वानर-भालु दौड़, मानो नाना प्रकार के पंखों से युक्त पर्वतों के समूह उड़ रहे थे। नख, दाँत, पर्वत और विशाल वृक्षों को शस्त्र बनाकर बलवान वानर किसी प्रकार की शंका नहीं मान रहे थे और श्रीराम जी की जय हो! इस प्रकार कहकर रावणरूप मतवाले हाथी के लिए सिंहरूप भगवान् श्रीराम जी का सुन्दर यश बखान रहे थे।

दो०- दुहुँ दिशि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहिं, उत रावनहिं बखानि।।७९।।

भा०- दोनों दिशाओं में जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जानकर इधर श्रीराम जी को और उधर रावण को बखानकर वानर-भालु और राक्षस परस्पर भिड़ गये।

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।
अधिक प्रीति उर भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।।
नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राना। केहि बिधि जीतब रिपु बलवाना।।

भा०- रावण को रथ पर चढ़े हुए और रघुवीर श्रीराम को बिना रथ का देखकर विभीषण जी अधीर हो गये। अत्यन्त प्रेम के कारण विभीषण जी के मन में सन्देह हो गया और वे प्रभु के श्रीचरणों की वन्दना करके स्नेह के साथ कहने लगे, हे नाथ! आपके पास न तो रथ है, न तो कवच है और न ही पदत्राण अर्थात् पनही तो फिर आप बलवान शत्रु को कैसे जीतेंगे?

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।

भा०- कृपानिधान भगवान् श्रीराम ने कहा, हे मित्र! सुनो, जिससे विजय होती है, वह दूसरा रथ होता है, उसे मैं लाया हूँ। सौरज और धैर्य अर्थात् शूरता और दुःख में भी नहीं विचलित होने का भाव यही दोनों शौर्य और धैर्य इस धर्म रथ के दो चक्के हैं। सत्य और शील इसके दृढ़ ध्वज और पताका हैं।

ईश भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दानपरशु बुधि शक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन तून समाना। शम जम नियम शिलीमुख नाना।।

भा०- बल, विवेक, इन्द्रियों का दमन और परहित की भावना ये ही चार इस धर्मरथ के घोड़े हैं, जो क्षमा, कृपा और समतारूप तीन रस्सियों से बँधे हैं। मुझ ईश्वर का भजन चतुर सारथी है, वैराग्य ढाल और संतोष कृपाण है। दान फरसा, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति तथा श्रेष्ठविज्ञान सुन्दर धनुष है। निर्मल और अडिग मन, यह तरकस के समान हैं। संयम और नियम नाना प्रकार के बाण हैं।

कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।।

भा०– ब्राह्मण और गुरुजनों की पूजा अर्थात् ब्राह्मणरूप गुरु की पूजा ही अभेद्य कवच है, इसके अतिरिक्त विजय का कोई दूसरा उपाय नहीं है। हे मित्र! इस प्रकार धर्ममय रथ जिस के पास होता है, उसको जीतने के लिए कहीं भी शत्रु नहीं रहता।

दो०– महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर।।८०(क)।।

भा०– हे धीरबुद्धि वाले सखा विभीषण! सुनो, जिस के पास इस प्रकार का दृढ़ रथ होता है, वह महाअजेय संसाररूप शत्रु को जीत लेता है।

सुनि प्रभु बचन बिभीषन, हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेशेहु, राम कृपा सुख पुंज।।८०(ख)।।

भा०– प्रभु के वचन सुनकर विभीषण जी ने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल पकड़ लिए। कृपा और सुख के पुंजिभूतस्वरूप भगवान् श्रीराम ने इस प्रकार मुझे उपदेश दिया है।

* मासपारायण, छब्बीसवाँ विश्राम *

उत पचार दशकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निशाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन।।८०(ग)।।

भा०– उधर रावण ने ललकारा और इधर अंगद जी और हनुमान जी ने और अपने-अपने स्वामी की शपथ करके राक्षस और भालु-बन्दर लड़ने लगे।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना।।
हमहूँ उमा रहे तेहि संगा। देखत राम चरित रन रंगा।।

भा०– ब्रह्मा जी आदि देवता, सिद्ध और अनेक मुनिगण विमान पर चढ़े हुए युद्ध देख रहे थे और हे पार्वती! मैं भी उन्हीं के साथ रहकर रणभूमि में श्रीरामचरित्र को देख रहा था।

सुभट समर रस दुहुँ दिशि माते। कपि जयशील राम बल ताते।।
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन एक मर्दि महि पारहिं।।

भा०– दोनों पक्षों के वीर युद्धरस में बावले हो रहे थे। वानर लोग इसलिए विजयशील हैं, क्योंकि उनके पास श्रीराम का बल है। एक-एक के साथ भिड़ते हैं और ललकारते हैं। एक को एक मसल कर पृथ्वी पर फेंक देते हैं।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। शीष तोरि शीषन सन मारहिं।।
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं।।

भा०– वे मारते हैं, काटते हैं, पकड़ते हैं, पटक देते हैं, सिर को तोड़कर सिरों से टकराते हैं, पेट फाड़ देते हैं, भुजा उखाड़ लेते हैं और चरण पकड़कर पृथ्वी पर पटक कर वीरों को फेंक देते हैं।

निशिचर भट महि गाड़हि भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू।।
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखियत बिपुल काल जनु क्रुद्धे।।

भा०– वीर ऋक्ष लोग राक्षस भटों को पृथ्वी में गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत बालू डाल देते हैं। वीर वानर युद्ध में शत्रुओं के प्रति विरुद्ध हो चुके हैं। वे ऐसे दिख रहे हैं, मानो अनेक काल ही क्रुद्ध हो गये हैं।

छं०- क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत शोनित राजहीं।
मर्दहिं निशाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं।।
मारहिं चपेटनि डाटि दातन काटि लातन मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहि खल छीजहीं।।

भा०- वानर काल के समान क्रुद्ध होकर शरीर से रक्त बहाते हुए सुशोभित हो रहे हैं। वे प्रशस्त बलवाले वानर बड़े-बड़े राक्षस सैनिकों को मार डालते हैं और बादल के समान गर्जन करते हैं। वे थप्पड़ों से मारते हैं, डाँटकर दाँतों से काटते हैं और लातों से मसलकर कुचल डालते हैं। वानर-भालु चित्कार करके उसी प्रकार का छल-बल करते हैं, जिस प्रकार राक्षस मर जायें।

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर आँगन खेलहीं।।
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिश कर कुलिश ते कर तृन सही।।

भा०- वे पकड़कर गाल को फाड़ देते हैं, पेट को विदीर्ण कर देते हैं, गले में अँतरावलियों (अंतड़ियों) को पहन लेते हैं, मानो प्रह्लादपति अर्थात् नृसिंहदेव ही अनेक शरीर धारण करके समरांगण में खेल रहे हैं। 'पकड़ो मारो, काटो, पछाड़ दो, इस प्रकार की घोर-वाणी आकाशमण्डल और पृथ्वी में भर गई। सब लोग कहने लगे, जो तृण को वज्र और वज्र को तृण कर देते हैं, उन सत्यसंकल्प प्रभु आपश्री राम की जय हो।

दो०- निज दल बिचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दशानन, फिरहु फिरहु करि दाप।।८१।।

भा०- इस प्रकार अपने दल को बीस भुजा और दस धनुषवाले रावण ने विचलित होते देखा, फिर गर्व प्रस्तुत करते हुए "लौटो-लौटो" कहकर रावण रथ पर चढ़ कर चला।

धायउ परम क्रुद्ध दशकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर।।
गहि कर पादप उपल प्रहारा। डारेनि ता पर एकहिं बारा।।

भा०- अत्यन्त क्रुद्ध होकर रावण दौड़ा और 'हू-हू' करके वीर वानर भी उसके सामने चले। प्रहार करने के लिए हाथ में वृक्ष और पत्थर लेकर रावण पर एक ही बार में सबने मिलकर फेंका।

लागहिं शैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू।।
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी।।

भा०- उसके वज्र जैसे शरीर में लगते ही पर्वत शीघ्र ही खण्ड-खण्ड होकर फूट जाते हैं। फिर भी रण में दुर्मद अर्थात् युद्ध के मद में उन्मत्त अत्यन्त कुपित रावण विचलित नहीं होता और अपने रथ को रोककर अर्थात् सभी शस्त्रों का प्रहार सम्भालते हुए रावण अचल रहा।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा।।
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना।।

भा०- इधर-उधर झपटकर और डाँटकर रावण वानर योद्धाओं को मसलने लगा, उसे अत्यन्त क्रोध हुआ। इसके पश्चात् अनेक भालु-बन्दर युद्ध से भाग चले और बोले, हे अंगद जी और हनुमान जी! अब हमारी रक्षा कीजिये...रक्षा कीजिये।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं।।
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने।।

भा०– हे इन्द्रियों के स्वामी रघुकुल के वीर श्रीराम! हमारी रक्षा कीजिये..रक्षा कीजिये, दुष्ट रावण हमें काल की भाँति खा रहा है। रावण ने देखा सभी वानर भाग गये। फिर अपने दसों धनुष पर बाण का संधान किया।

छं०– संधानि धनु शर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि शर धरनी गगन दिशि बिदिशि कहँ कपि भागहीं।।
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रक्षक हरे।।

भा०– धनुषों पर बाणों का सन्धान करके रावण ने असंख्य बाण छोड़े। वे सर्पों की भाँति उड़कर लगते थे। पृथ्वी तथा आकाश को रावण के बाणों ने भर दिया, वानर दिशाओं और विदिशाओं अर्थात् दिशाओं के मध्य–भाग में भाग रहे थे। उस समय अत्यन्त कोलाहल हुआ, सेना के भालु और वानर व्याकुल होकर बोलने लगे, हे रघुवीर! हे करुणासिन्धो! हे आर्त्तबन्धो! हे जनरक्षक! हे हरे! इस प्रकार पाँच सम्बोधन करके अपने पाँच भौतिक शरीर की रक्षा करने के लिए वानर सैनिकों ने प्रभु का स्मरण किया।

दो०– विचलित देखि अनीक निज, कटि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले सरोष तब, नाइ राम पद माथ।।८२।।

भा०– तब अपनी सेना को विचलित होते–हुए देखकर कटि में तरकस और हाथ में धनुष लेकर भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में मस्तक नवाकर कुपित होकर लक्ष्मण जी चले।

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू।।
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती।।

भा०– लक्ष्मण जी ने रावण से कहा, अरे खल! वानर–भालुओं को क्या मार रहा है? मुझे देख मैं तेरा काल हूँ। रावण ने कहा, अरे मेरे पुत्र का वध करने वाला लक्ष्मण! मैं तुझे ढूँढ़ रहा था, आज तुझे मारकर अपनी छाती शीतल करूँगा।

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल शत खंडा।।
कोटिन आयुध रावन डारे। तिल प्रमान करि काटि निवारे।।

भा०– ऐसा कहकर रावण ने प्रचण्ड बाणों को छोड़ा, लक्ष्मण जी ने उन सभी के सौ–सौ टुकड़े कर दिये। रावण ने करोड़ों अस्त्र छोड़े, जिन्हें लक्ष्मण जी ने तिल का प्रमाण करके अर्थात् तिल–तिल करके काटकर रोक दिया।

पुनि निज बानन कीन्ह प्रहारा। स्यंदन भंजि सारथी मारा।।
शत शत शर मारे दश भाला। गिरि श्रृंगनि जनु प्रबिसहिं ब्याला।।
पुनि शत शर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं।।

भा०– फिर लक्ष्मण जी ने अपने बाणों द्वारा प्रहार किया। रावण का रथ तोड़कर उसके सारथी को मार डाला। फिर लक्ष्मण जी ने रावण के दसों सिर में सौ–सौ बाण मारे, वे ऐसे चुभे जैसे पर्वत के शिखरों में सर्प घुस जाते हैं अर्थात् लक्ष्मण जी के बाण रावण के सिरों को नहीं काट पाये। उन्हें काटने का सामर्थ्य तो केवल भगवान् श्रीराम में है। फिर लक्ष्मण जी ने रावण के हृदय में सौ बाण मारा, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे कुछ भी सुधि नहीं रही।

उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाड़ेसि ब्रह्म दत्त जो साँगी।।

भा०– फिर प्रबल रावण उठा, उसकी मूर्च्छा समाप्त हुई, जो ब्रह्मा जी ने शक्ति दी थी, वही उसने लक्ष्मण जी के लिए छोड़ दी।

छं०– सो ब्रह्म दत्त प्रचंड शक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दशमुख अतुल बल महिमा रही।।
ब्रह्मांड भवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी।।

भा०– ब्रह्मा जी द्वारा दी हुई वह भयंकर वास्तविक शक्ति अन्त से रहित होने पर भी लक्ष्मण जी के हृदय में पूर्णता के साथ लगी। लक्ष्मण जी विकल अर्थात् सम्पूर्ण युद्ध की चेष्टाओं से रहित होकर निस्तब्ध भाव से पृथ्वी पर पड़ गये। दस मुखों वाला रावण उन्हें उठाने लगा। मूर्च्छित होने पर भी लक्ष्मण जी की अतुल बल की महिमा तो उनमें वर्तमान थी ही इसीलिए वे रावण से नहीं उठे, क्योंकि जिनके एक सिर पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डरूप भवन धूल की कणी के समान विराज रहा है, उन्हीं लक्ष्मण जी को यह मूर्ख रावण उठाना चाहता है। लक्ष्मण जी को यह तीनों लोक के स्वामी वैकुण्ठबिहारी विष्णु नहीं समझ रहा है।

दो०– देखि पवनसुत धायउ, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहिं हन्यो तेहिं, मुष्टि प्रहार प्रघोर।।८३।।

भा०– देखकर अर्थात् लक्ष्मण जी को मूर्च्छित अवस्था में रावण को उठाने का प्रयास करते हुए देखकर कठोर वचन बोलते हुए पवनपुत्र हनुमान जी महाराज दौड़े। रावण ने आते हुए हनुमान जी महाराज को अत्यन्त भयंकर मुष्टिका के प्रहार से मार दिया।

जानु टेकि कपि भूमि न परेऊ। उठा सँभारि बहुत रिस भरेऊ।।
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ शैल जनु बज्र प्रहारा।।

भा०– हनुमान जी घुटने टेककर सम्भले और पृथ्वी पर नहीं पड़े, अथवा रावण की मुष्टिका को हल्का–सा उछलकर अपने घुटने से रोककर मुष्टिका छाती पर नहीं लगने दी और हनुमान जी स्वयं पृथ्वी पर नहीं पड़े। फिर क्रोध से भरे हुए अंजनानन्दवर्द्धन प्रभु सम्भालकर उठे और वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने उसे अर्थात् रावण को एक हल्की मुक्का मारी, रावण उसी प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ा, जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिर पड़ता है।

मुरछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा।।
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तैं जियत रहेसि सुरद्रोही।।

भा०– रावण की मूर्च्छा समाप्त हुई, वह जगा और हनुमान जी के बहुत–बड़े बल की सराहना करने लगा। हनुमान जी ने कहा, मेरे पौरुष को धिक्कार है...धिक्कार है तथा मुझे धिक्कार है। हे देवद्रोही! यदि तू मेरी मुष्टिका के प्रहार के पश्चात् भी जीवित रहा। भगवान् श्रीराम ने तुझे मारने की प्रतिज्ञा की है, इसलिए मैंने भी हल्की मुष्टिका मारी।

अस कहि लछिमन कहँ कपि ल्यायो। देखि दशानन बिसमय पायो।।
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम कृतांत भक्षक सुर त्राता।।
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो शक्ति कराला।।

भा०– इतना कहकर हनुमान जी मूर्च्छा में पड़े लक्ष्मण जी को श्रीराम के पास ले आये। देखकर रावण ने बहुत विस्मय पाया अर्थात चकित हुआ कि, मैं लक्ष्मण जी को नहीं उठा पाया और हनुमान जी उन्हें सहज में ही उठा ले गये। अत: मेरी अपेक्षा हनुमान जी का अधिक बल स्वत:सिद्ध हो गया। रघुवीर श्रीराम ने कहा, हे भैया लक्ष्मण! तुम स्वयं को अपने हृदय में समझो। तुम तो काल को भी खाने वाले हो, देवताओं के रक्षक मुझ महाविष्णु के अन्तरंग अंश वैकुण्ठविहारी विष्णु हो। तुम्हें ब्रह्मा जी की शक्ति से क्यों मूर्च्छित होना चाहिये? प्रभु का यह वचन सुनकर ब्रह्मा जी पर कृपा करने वाले अर्थात् सर्वसमर्थ होते हुए भी ब्रह्मा जी पर कृपा करके उनकी शक्ति को स्वीकार कर मूर्च्छित होने वाले लक्ष्मण जी उठकर बैठ गये और वह भयंकर शक्ति आकाश को चली गई।

पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए।।

भा०– फिर लक्ष्मण जी धनुष–बाण लेकर दौड़े और अत्यन्त शीघ्रता से शत्रु रावण के पास आये।

छं०– आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दशकंधर बिकलतर बान शत बेध्यो हियो।।
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरननि नयो।।

भा०– शीघ्रता से रावण का रथ तोड़कर उसके सारथी को मारकर लक्ष्मण जी ने रावण को व्याकुल कर दिया। दस कन्धराओंवाला रावण बहुत विकल होकर पृथ्वी पर उल्टे गिरा और लक्ष्मण जी ने रावण के हृदय को सौ बाणों से वेध दिया। दूसरा सारथी उसे दूसरे रथ पर बिठाकर तुरन्त लंका ले गया और प्रताप के समूह रघुकुल के वीर श्रीराम के छोटे भैया लक्ष्मण जी फिर प्रभु के श्रीचरणों में नत हो गये अर्थात् प्रणाम की मुद्रा में पड़ गये।

दो०– उहाँ दशानन जागि करि, करै लाग कछु जग्य।
विजय चहत रघुपति बिमुख, शठ हठ बश अति अग्य।।८४।।

भा०– वहाँ लंका मे मूर्च्छा से जागकर रावण कुछ यज्ञ करने लगा। हठ के वश, दुष्ट, अज्ञानयुक्त, रावण श्रीराम से विमुख होकर विजय चाह रहा था।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहिं सुनाई।।
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरिहि अभागा।।
पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दशकंधर।।
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। अंगद हनुमदादि सब धाए।।

भा०– उधर विभीषण जी ने अपने मंत्रियों से सब समाचार पाया और शीघ्र जाकर रघुपति भगवान् श्रीराम से निवेदन किया। हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। यज्ञ के सिद्ध हो जाने पर वह भाग्यहीन मरेगा नहीं। हे नाथ! शीघ्र ही वीर वानरों को भेज दीजिये, वे यज्ञ का विध्वंस करें जिससे आज ही रावण युद्ध के लिए आ जाये। प्रात:काल होते ही प्रभु श्रीराम ने अंगद जी, हनुमान जी आदि श्रेष्ठवीरों को भेजा, सभी दौड़े।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन अशंका।।
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन भा क्रोध बिशेषा।।

भा०– खेल–खेल में ही वानर लोग कूदकर लंका पर चढ़ गये और निर्भीक होकर रावण के भवन में प्रवेश किया। जिस समय वह अर्थात् रावण यज्ञ करता हुआ वानरों द्वारा देखा गया त्यों ही सम्पूर्ण वानरों को विशिष्ट क्रोध हुआ।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा।।
अस कहि अंगद मारेउ लाता। चितव न शठ स्वारथ मन राता।।

भा०– अरे निर्लज्ज! युद्ध–स्थल से भागकर घर में आ गया और यहाँ आकर बगुले जैसा ध्यान लगा रहा है। ऐसा कहकर अंगद जी ने रावण को लात मारी फिर भी दुष्ट रावण अंगद जी पर दृष्टि नहीं डाल रहा था, क्योंकि उसका मन स्वार्थ में लगा था।

छं०– नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दशन लातन मारहीं।
धरि केश नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं।।
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन बिधंस कृत मख देखि मन महँ हारई।।

भा०– जब उसने वानरों को नहीं देखा, तब वानर क्रुद्ध होकर उसे दाँतों से पकड़कर लातों से मारने लगे और केश पकड़कर रावण की मन्दोदरी आदि पत्नियों को भवन से बाहर निकालने लगे, वे अत्यन्त दीन होकर चिल्लाने लगीं। तब काल के समान क्रुद्ध होकर रावण उठा और चरण पकड़–पकड़कर वानरों को फेंकने लगा। इसी बीच वानरों ने यज्ञ का विध्वंस अर्थात् तहस–नहस कर दिया। यह देखकर रावण अपने मन में हारने लगा।

दो०– जग्य बिधंसि कुशल कपि, आए रघुपति पास।
चलेउ लंकपति क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस।।८५।।

भा०– यज्ञ को नष्ट करके प्रभु की आज्ञापालन में कुशल वीर वानर रघुपति अर्थात् जीवमात्र के प्रतिपालक श्रीराम के पास आ गये। अपने जीवन की आशा छोड़कर कुपित होकर लंकापति रावण युद्ध के लिए चल पड़ा।

चलत होहिं अति अशुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाहिं सिरन पर।।
भयउ कालबश काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना।।

भा०– रावण के चलते समय भयंकर अपशकुन होने लगे, गृध्र पक्षी रावण के सिरों पर बैठकर उड़ जाते थे। वह काल के वश हो चुका था, उसने कुछ भी नहीं माना और कहा, युद्ध के नगारे बजाओ।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा।।
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसे। शलभ समूह अनल कहँ जैसे।।

भा०– राक्षसों की अपार सेना चल पड़ी, उसमें बहुत से हाथी, घोड़े, पैदल और गजारोही, अश्वारोही तथा रथारोही भी थे। श्रीराम जी के सम्मुख राक्षस किस प्रकार दौड़े, जैसे शलभ अर्थात् पक्षियों के समूह अग्नि पर टूट पड़ते हैं।

इहाँ देवतन अस्तुति कीन्हीं। दारुन बिपति हमहिं एहि दीन्ही।।
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिशय दुखित होति बैदेही।।

भा०– इधर देवताओं ने प्रभु की स्तुति की, इसने हमें भयंकर कष्ट दिया है। हे नाथ! अब इसे मत खेलाइये, क्योंकि श्रीसीता बहुत दु:खी हो रही हैं।

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना।।
जटा जूट दृढ़ बाँधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे।।

भा०– देवताओं का वचन सुनकर प्रभु श्रीराम जी मुस्कराये और रघुकुल के वीर श्रीराम जी ने उठ करके बाणों को सुधारा। मस्तक पर जटा के जूड़े को कसकर दृढ़ता से बाँधा। उसके बीच–बीच में गूँथे हुए पुष्प बहुत सुन्दर लग रहे थे।

अरुन नयन बारिद तनु श्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा।।
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा।।

भा०– भगवान् श्रीराम के नेत्र अरुण अर्थात् लाल हैं, उनका विग्रह वर्षाकालीन बादल के समान सुन्दर श्याम रंग का है। वे सम्पूर्ण लोकों के नेत्रों को आनन्द देने वाले हैं। प्रभु ने अपने कटि–तट पर फेटा और तरकस कस रखा था और उनके श्रीहस्त में शार्ङ्ग नाम का कठिन धनुष था।

छं०– सारंग कर सुंदर निषंग शिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो।।
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु शर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे।।

भा०– भगवान् श्रीराम जी के हाथ में शार्ङ्ग नाम का कठिन धनुष और कटिप्रदेश में बाणों की खानि स्वरूप, सुन्दर तरकस कसा हुआ है। उनके भुजदण्ड पीन अर्थात् मोटे हैं और सुन्दर विशाल हृदय पर ब्राह्मण–चरणचिन्ह शोभित हो रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि जब प्रभु श्रीराम जी अपने हाथों में शार्ङ्ग धनुष फेरने लगे उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, दिशाओं के चारों हाथी, कच्छप, शेषनाग, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत डगमगा उठे।

दो०– हरषे देव बिलोकि छबि, बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल, धाम हरन महिभार।।८६।।

भा०– प्रभु की यह वीर छवि देखकर देवता प्रसन्न हुए और अपार पुष्पों की वर्षा करने लगे तथा बोले, हे सर्वशक्तिमान! हे श्रेष्ठगुण, ज्ञान और बल के आश्रय! हे पृथ्वी का भारहरण करने वाले प्रभु श्रीराम! आप की जय हो....जय हो।

एही बीच निशाचर अनी। कसमसात आई अति घनी।।
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा।।

भा०– इसी बीच अत्यन्त घनी राक्षसों की सेना कसमसाती अर्थात् असमंजस में पड़ी हुई आ गई। अथवा, एक ही साथ समूहों के इकट्ठा होने से एक–दूसरे को छूती हुई वैचारिक टकराव के साथ चली आई। उसे देखकर वीर वानर युद्ध करने के लिए सम्मुख चले, मानो प्रलयकाल के बादलों की घटा ही छा गई हो।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दश दिशि दामिनी दमंकहिं।।

भा०– उस समय बहुत–सी कटारें और तलवारें चमक रही थीं, मानो दसों दिशाओं मे बिजलियाँ चमक रही हों।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए।।
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा।।
उठाइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भइ बृष्टि अपारा।।
दुहुँ दिशि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा।।

भा०- हाथी, रथ और घोड़ों के कठोर चिक्कार ऐसे लग रहे थे, मानो घोर बादल गरज रहे हों। वानरों के बहुत से लाँगूर (पूँछ) आकाश मे छाये हुए थे, मानो सुहावने इन्द्रधनुष उदित हो गये हों। उस समय धूल उड़ रही थी, मानो वही जल की धारा थी, बाणों की वर्षा ही बूँदों की वर्षा हो गई थी। दोनों ओर के सैनिक पर्वतों का प्रहार कर रहे थे, मानो बारम्बार वज्रपात हो रहा था।

रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निशिचर समुदाई।।
लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं।।
स्रवत शैल जनु निर्झर बारी। शोनित सरि कादर भयकारी।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने क्रुद्ध होकर बाणों की झड़ी लगा दी, उससे राक्षसों के समुदाय घायल हो गये। बाणों के लगने पर वीर चित्कार करते थे, वे घायल हुए वीर घूम–घूमकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। अपने शरीर से इस प्रकार खून बहा रहे थे, मानो पर्वतों के झरनों से जल की धारा प्रवाहित हो रही हो। उस समय कातरों को भयभीत करने वाली रक्त की नदी बह चली।

छं०- कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी।।
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
शर शक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने।।

भा०- कायरों को भयभीत करने वाली अत्यन्त अपवित्र अथवा अकार के वाच्य भगवान् श्रीराम द्वारा पवित्र की गई रक्त की नदी बह चली। दोनों श्रीराम दल और रावण दल उसके उत्तर–दक्षिण के तट थे, रथ ही उसकी रेत थी, चक्र उसके भँवर थे, वह बहुत भयंकर लग रही थी। हाथी, पैदल सैनिक, घोड़े, गधे, जिन्हें कौन गिने ऐसे अनगिनत वाहन उस नदी के जीव–जन्तु थे। बाण, बर्छी और तोमर ही उस नदी के सर्प थे, धनुष उसकी लहर थी और अनेक कछुवे उसके ढाल थे।

दो०- बीर परहिं जनु तीर तरु, मज्जा बह बहु फेन।
कादर देखत डरहिं तेहिं, सुभटन के मन चैन।।८७।।

भा०- वीर लोग नदी तट के वृक्ष के समान मरकर गिर रहे थे। मज्जा (चर्बी) फेन के समान बह रही थी, उसे देखकर कायर हृदय में डर रहे थे और वीरों के मन में प्रसन्नता हो रही थी।

मज्जहिं भूत पिशाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला।।
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं।।
एक कहहिं ऐसिउ सौंधाई। शठहु तुम्हार दरिद्र न जाई।।

भा०- उस नदी मे भूत, पिशाच, बेताल, प्रमथ और भयंकर बड़ी–बड़ी जटाओं के झोटियोंवाले भूत स्नान कर रहे थे, कौवे और चील भुजा लेकर उड़ रहे थे। एक से छीनकर दूसरा लेकर खा रहा था। एक कह रहा था कि अरे दुष्टों! ऐसी वस्तुओं की अधिकता में भी तुम्हारा दारिद्र नहीं जा रहा है।

कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्द्धजल परे।।
खैंचहि गीध आँत तट भए। जनु बनसी खेलत चित दए।।
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माही।।

भा०- जहाँ–तहाँ नदी–तट पर कराहते हुए वीर गिरे हुए थे, मानो वे घायल वीर अर्द्धजल में पड़े हुए थे। गृध्र तट पर अंतड़ियों को खींच रहे थे, मानो मन लगाकर खिलाड़ी बंशी अर्थात कटिया का खेल–खेल रहे थे। बहुत से वीर रक्त की नदी में बह रहे थे और पक्षी उन पर चढ़कर चले जा रहे थे, मानो नदी में नाव–नवरियाँ खेल रहे हों।

विशेष- "अर्द्धजल परे" शब्द खण्ड से गोस्वामी जी एक लोकरीति का संकेत कर रहे हैं। मरणासन्न व्यक्ति को लोग आधे जल और आधे स्थल में लेटा देते हैं, वही उत्प्रेक्षा यहाँ की गई है कि कराहते हुए वीर रक्त सरिता के तट पर उसी प्रकार दिख रहे हैं मानो मरण के अंतिम क्षण में उनके शरीर को आधे जल में लेटा दिया गया हो।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिशाच बधू नभ नंचहिं।।
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं।।
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं।।
कोटिन रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। शीष परे महि जय जय बोल्लहिं।।

भा०- योगिनियाँ खोपड़ियाँ भर–भरकर रक्त का संचय कर रही थीं, आकाश में भूत–पिशाच की बहुएँ नाच रही थीं, वे वीरों की खोपड़ियाँ का करताल बजा रही थीं। चामुण्डायें नाना प्रकार से गा रही थीं। गीदड़ों के समूह कट–कट करते काट कर खाते, हुआँ–हुआँ करते और एक दूसरे को डाँटते थे। करोड़ों धड़ सिर के बिना ही डोल रहे थे और पृथ्वी पर पड़े सिर जय–जयकार करके बोल रहे थे।

छं०- बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परनि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन ढहावहीं।।
बानर निशाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम आँगन सुभट सोवहिं राम सर निकरनि हए।।

भा०- जो सिर जय–जयकार बोल रहे थे, वे धड़ से हीन थे और अत्यन्त भयंकर धड़ बिना सिर के दौड़ रहे थे। खोपड़ियों में उलझकर पक्षी जूझते थे और श्रेष्ठवीर सामान्य वीरों को मार रहे थे। श्रीराम के बल से दर्पित हुए वानरसमूह, राक्षससमूहों को मार रहे थे और श्रीराम के बाणों के समूह से मारे हुए वीर समरांगण में सो जा रहे थे।

दो०- हृदय बिचारेउ दशबदन, भा निशिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार।।८८।।

भा०- दस मुखवाले रावण ने अपने हृदय में विचार किया कि राक्षसों का संहार हो गया। मैं अकेला हूँ और वानर–भालु बहुत हैं, अब तो अपार माया करूँ।

देवन प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिशेषा।।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा।।
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिधारी।।
तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। बिहँसि चढ़े कोसलपुर भूपा।।

भा०-देवताओं ने जब श्रीराम को युद्ध में पैदल चलते हुए देखा, तब उनके हृदय में बहुत कष्ट हुआ और तुरन्त ही इन्द्र ने अपना रथ भेज दिया तथा प्रसन्नता से मातलि सारथी वह रथ श्रीराम के पास ले आये। उस रथ में चंचल और बहुत सुन्दर चार घोड़े थे, जो अजर अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, अमर अर्थात् मरणधर्म से रहित और मन के

समान वेग धारण करते थे। ऐसे तेज के पुञ्ज, उपमारहित स्वर्गीय रथ पर कोसलपुर के राजा भगवान् श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक चढ़े।

रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाए कपि बल पाइ बिशेषी।।
सही न जाइ कपिन कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी।।

भा०– रघुनाथ जी को रथ पर आरुढ़ देखकर विशेष बल पाकर वानर दौड़े। जब वानरों की मार रावण को नहीं सही जाने लगी, तब उसने अपनी माया का विस्तार किया।

सो माया रघुबीरहि बाँची। सब काहू मानी करि साँची।।
देखी कपिन निशाचर अनी। बहु अंगद लछिमन कपि धनी।।

भा०– वह माया भगवान् श्रीराम को छोड़ गई अर्थात् उन्होंने उस माया का रहस्य समझा और प्रभावित नहीं हुए। प्रभु श्रीराम के अतिरिक्त और सभी लोगों ने उसे सत्य करके माना। वानरों ने राक्षसी सेना के बीच बहुत से अंगद जी, लक्ष्मण जी और सुग्रीव जी को देखा।

छं०– बहु बालिसुत लछिमन कपीश बिलोकि मरकट अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे।।
निज सैन चकित बिलोकि हँसि शर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल बानर अनी।।

भा०– राक्षसी सेना में बहुत से अंगद जी, लक्ष्मण जी और सुग्रीव जी को देखकर वानर बहुत डर गये और चित्र में लिखे हुए के समान लक्ष्मण जी के सहित सभी वानरभट जहाँ–तहाँ खड़े होकर देखने लगे। अपनी सेना को चकित देखकर, धनुष–बाण सजाकर हँसकर, अयोध्यापति श्रीहरि भगवान् श्रीराम ने एक क्षण में माया का हरण कर लिया। सम्पूर्ण वानरी सेना प्रसन्न हो गई।

दो०– बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल, श्रमित भए अति बीर।।८९।।

भा०– फिर भगवान् श्रीराम दोनों पक्षों के वीरों के शरीरों को देखकर, अत्यन्त गम्भीर वचन बोले, हे वीरों! तुम लोग अधिक श्रान्त हो गये हो अर्थात् थक गये हो, अब हम–दोनों अर्थात् राम–रावण का द्वन्द्वयुद्ध देखो।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिर नावा।।
तब लंकेश क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा।।

भा०– ऐसा कहकर श्रीरघुनाथ ने अपना रथ आगे चलाया और मन से ही वसिष्ठ जी आदि ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया अथवा, युद्ध देखने आये हुए आकाशमण्डल में उपस्थित अगस्त्य जी आदि ब्राह्मणों के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाया तथा अपने वक्षस्थल पर चिन्ह रूप में विराजमान ब्राह्मण के श्रीचरणकमल में शीश नवाया। तब लंकापति रावण के हृदय मे क्रोध छा गया अथवा तब लंका के 'ई' अर्थात् राज्यलक्ष्मी को 'श' अर्थात् नष्ट करने वाले तात्पर्यत: लंका की राज्यलक्ष्मी के नाशक रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गर्जते तथा तर्जते वानर वीरों को डराते–धमकाते हुए द्वन्द्वयुद्ध के लिए भगवान् श्रीराम के सन्मुख आ गया।

विशेष– *लंकाया: ईं लक्ष्मीं श्यति खण्डयति इति लंकेश:।*

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन सम नाहीं।।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना।।

खर दूषन बिराध तुम मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा।।
निशिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहिं मारेहु।।
आजु बैर सब लेउँ निबाही। जौ रन भूप भाजि नहिं जाहीं।।
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले।।

भा०– रावण बोला, हे तपस्वी! सुन, तुमने जिन वीरों को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ अर्थात् उन सबसे विलक्षण हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश जगत जानता है। लोकपाल भी जिसके बन्दीखाना अर्थात् कारागार में बन्द हैं। तुमने खर–दूषण–उपलक्षणतया त्रिशिरा और विराध को मारा है। निरीह बालि को व्याध (बहेलिया) की भाँति निर्दयता से मारा है। तुमने श्रेष्ठयोद्धा राक्षससमूहों का संहार कर दिया, तुमने ही स्वयं अपने बाण से कुम्भकर्ण को तथा लक्ष्मण को निमित्त बनाकर अपने प्रताप से मेघनाद को मारा है। हे पृथ्वीपालक राघव! यदि तुम युद्ध से भाग नहीं गये तो आज मैं सम्पूर्ण वैर तुमसे निभा लूँगा। निश्चित ही आज तुम्हें काल के हवाले कर दूँगा अर्थात् काल को सौंप दूँगा। वस्तुतः आज तुम्हारे हवाले काल को कर दूँगा, अथवा स्वयं को कालस्वरूप तुम्हारे हवाले कर दूँगा। तुम मुझे दण्डित करो या छोड़ो, क्योंकि आज तुम कठिन रावण के पाले पड़ गये हो। आज बाहर से तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी परन्तु भीतर से प्रतापी नाम का तुम्हारा सखा और सेवक हूँ। अब तक काल मेरे पाले पड़ा था उसे भी बन्धन से मुक्त करके तुम्हारे चरणों में सौंप रहा हूँ।

विशेष– रावण भगवान् श्रीराम के सन्मुख उपस्थित है और सुन्दकरण्ड में सुग्रीव जी के प्रति कहे हुए श्रीमुख के वचन के अनुसार प्रभु के सन्मुख हुए जीव के करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। यथा– ***सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।*** (–मानस, ५.४४.२). इस दृष्टि से प्रभु के सन्मुख होते ही रावण के समस्त पाप नष्ट हो गये हैं और वह भगवान् श्रीराम जी की कतिपय लीलाओं के कतिपय रहस्यों को भी जानने लगा है। अतः मेघनाद वध के रहस्य को भी रावण ने जान लिया, जिसमें लक्ष्मण जी ने श्रीराम के प्रताप के बल से मेघनाद का वध किया था। यथा–***सुमिरि कोसलाधीश प्रतापा। शर संधान कीन्ह करि दापा।।*** (–मानस, ६.७६.१५). इसलिए रावण ने श्रीराम से कहा कि लक्ष्मण तो निमित्त बने पर मेरे मेघनाद को मारा तुमने। इसीलिए उसने लक्ष्मण जी को भी सुतघाती कहा। यथा– ***खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।*** (–मानस, ६.८३.२). संस्कृत मे घाति शब्द का मरवाने वाला भी अर्थ होता है *(सुतं घातयति तच्छील:)* रावण कहता है, लक्ष्मण तुम मेघनाद को नहीं मार सकते थे, तुमने स्वयं निमित्त बनकर श्रीराम के प्रताप द्वारा मेरे पुत्र को मरवाया है। इसी प्रकार रावण ने कहा, जो अभी तक कठिन रावण के पाले पड़ा था अर्थात् मेरे बन्दीगृह में सड़ रहा था उस काल को भी मैं तुम्हारे हवाले कर दूँगा अर्थात् तुम्हें सौंप दूँगा।

सुनि दुर्बचन कालबश जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना।।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई।।

भा०– रावण के दुस्सह और सामान्य लोगों के लिए दुर्बोध वचन सुनकर, उसे काल के वश जानकर, कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम जी हँसकर बोले, हे रावण! तुम्हारी सब प्रभुता सत्य है....सत्य है, परन्तु बोल मत, मनस्विता अर्थात् पुरुषार्थ दिखा।

छं०– जनि जल्पना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिधि पाटल रसाल पनस समा।।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं।।

भा०– व्यर्थ का प्रलाप करके अपने सुयश को नष्ट मत कर। हे रावण! नीति सुन, क्षमा कर अर्थात् मेघनाद के वध में मेरी परोक्ष भूमिका पर मुझे क्षमा कर। संसार में गुलाब, आम और कटहल के समान तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। जैसे एक अर्थात् गुलाब में केवल पुष्प लगता है, पुनः आम में पुष्प और फल दोनों लगते हैं, पुनः अर्थात् आम से भी अन्य कटहल में केवल फल लगता है, उसी प्रकार एक अर्थात् गुलाब के समान लोग केवल कहते हैं, जैसे तुम। पुनः दूसरे आम के समान होते हैं जो कहते भी हैं और करते भी हैं जैसे कुम्भकर्ण और पुनः तीसरे कटहल के समान होते हैं जो, केवल करते हैं, कहते हुए इधर–उधर नहीं फिरते जैसे मैं अर्थात् राम।

दो०– राम बचन सुनि बिहँसि कह, मोहि सिखावत ग्यान।
बैर करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान।।९०।।

भा०– श्रीराम के वचन सुनकर ठहाके से हँसकर रावण ने कहा, अरे राजन्! मुझे ज्ञान सिखा रहे हो। तब अर्थात् वैर करते समय नहीं डरे और अब तुम्हें प्राण प्रिय लग रहे हैं।

विशेष– वस्तुतः उल्टा हुआ पहले रावण प्रभु का विरोध करने में नहीं डरा, अब युद्ध में मरे अथवा मरते हुए कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि उसे प्राण के समान प्रिय लग रहे हैं।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दशकंधर। कुलिश समान लाग छाड़ै सर।।
नानाकार शिलीमुख धाए। दिशि अरु बिदिशि गगन महि छाए।।

भा०– क्रुद्ध हुआ रावण वज्र के समान दुःस्सह वचन कहकर वज्र के ही समान बाण छोड़ने लगा। रावण द्वारा छोड़े हुए अनेक आकारों में विभक्त बाण दौड़े और वे दिशाओं, दिशाओं के कोणों, आकाश तथा पृथ्वी में छा गये।

पावक शर छाड़ेउ रघुबीरा। छन महँ जरे निशाचर तीरा।।
छाड़ेसि तीब्र शक्ति खिसियाई। बान संग प्रभु फेरि चलाई।।

भा०– रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम जी ने आग्नेय बाण छोड़ा, जिससे एक क्षण में राक्षस रावण के बाण जल गये। रावण ने चिढ़कर शक्ति छोड़ी प्रभु श्रीराम ने अपने बाण के साथ उसे लौटाकर रावण के लिए ही चला दिया।

कोटिन चक्र त्रिशूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै।।
निफल होहिं रावन शर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे।।

भा०– रावण करोड़ों चक्र और त्रिशूल फेंकता रहा और प्रभु श्रीराम उन्हें बिना प्रयास के ही काटकर बीच में ही रोकते रहे। रावण के बाण और उनसे उपलक्षित शक्ति, त्रिशूल आदि किस प्रकार निष्फल हो रहे हैं, जैसे दुष्ट प्रकृतिवाले प्राणी के सभी मनोरथ निष्फल हो जाते हैं।

विशेष– रावण पर विष्णु जी ने करोड़ों बार चक्र का प्रहार किया, परन्तु वैष्णव चक्र भी रावण के सिर और भुजाओं को नहीं काट पाया और शिव जी का त्रिशूल उसके सिर, भुजाओं को काट ही नहीं सकता था, क्योंकि शिव जी ने उसे स्वयं अपने से अवध्य कर दिया था। अतः जब–जब चक्र और त्रिशूल निष्फल होते थे तब–तब उन्हें रावण अपने पास रख लेता था। इस प्रकार उसके संग्रहालय में करोड़ों संख्या में चक्र और त्रिशूल हो गये थे, जिन्हें रावण ने द्वन्द्वयुद्ध के समय विधि, हरि, हर से भी विलक्षण भगवान् श्रीराम पर छोड़ा और उन्हें भगवान् श्रीराम ने काट डाले।

तब शत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि।।
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा।।

भा०– तब रावण ने पूर्व में इन्द्र के और द्वन्द्वयुद्ध में भगवान् श्रीराम के सारथी मातलि को सौ बाण मारे। वह अर्थात् मातलि रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा और 'जय श्रीराम' कहकर पुकार लगायी। भगवान् श्रीराम ने कृपा करके पृथ्वी पर गिरे हुए सारथी को उठाया अर्थात् मातलि को पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया। तब सर्वशक्तिमान प्रभु श्रीराम ने परमक्रोध को प्राप्त कर लिया अर्थात् बहुत क्रुद्ध हुए, मानो, क्रोध ने कहा आज आप मेरा प्रयोग कीजिये।

छं०– भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति तून सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दशन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे।।

भा०– युद्ध में रावण के प्रति विरुद्ध, जीवमात्र के स्वामी भगवान् श्रीराम क्रुद्ध हो गये। उनके तरकस के बाण कसमसाने लगे अर्थात् एक–दूसरे से ठेल–पेल करके बाहर निकलने की तैयारी में व्यस्त हो गये। शार्ङ्ग धनुष की अत्यन्त भयंकर ध्वनि सुनकर नरभक्षी राक्षस भयरूप वायु से ग्रस्त हो गये, मन्दोदरी का हृदय कंपित हो गया और कच्छप, पृथ्वी तथा पर्वत भयभीत होकर काँपने लगे। चारों दिग्गज दाँतों से पृथ्वी को पकड़कर चित्कार करने लगे और प्रभु का यह रण कौतुक देखकर देवता हँसने लगे।

दो०– तानेउ चाप स्रवन लगि, छाड़े बिशिख कराल।
राम मारगन गन चले, लहलहात जनु ब्याल।।९१।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने शार्ङ्ग धनुष को कानों तक खींचा और रावण के लिए भयंकर बाण छोड़े। श्रीराम के बाणों के समूह लहलहाते हुए सर्पों के समान चल पड़े।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहि हतेउ सारथी तुरगा।।
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका।।

भा०– भगवान् श्रीराम के बाण पंखों से युक्त सर्पों की भाँति चल पड़े। सर्वप्रथम उन्होंने रावण के सारथी और घोड़ों को मार डाला। उसके रथ को तोड़कर उसके ध्वज और पताका को भी काट दिया। रावण हृदय के भीतर अत्यन्त थका हुआ भी गर्जा।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसियाना। छाड़ेसि अस्त्र शस्त्र बिधि नाना।।
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के।।

भा०– फिर दूसरे रथ पर चढ़कर बौखलाया हुआ रावण नाना प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों को छोड़ने लगा, परन्तु उसके अर्थात् रावण के सभी प्रयास उसी प्रकार व्यर्थ होने लगे जैसे बिना कारण दूसरों के द्रोह में लगे हुए तथा पर अर्थात् सभी कारणों से परे परमेश्वर प्रभु श्रीराम के द्रोह में लगे हुए जीव के मन के सभी मनोरथ व्यर्थ हो जाते हैं।

तब रावन दश शूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा।।
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि शरासन छाड़े सायक।।

भा०– तब रावण ने दस त्रिशूल चलाये अर्थात् फेंके, जिनसे मारकर प्रभु श्रीराम के रथ में जुते हुए चारों घोड़ों को पृथ्वी पर गिरा दिया अर्थात् अजर और अमर घोड़ों को भी रावण ने मारकर धराशायी कर दिया। रघुकुल के

नायक तथा रघु यानी जीवमात्र के नायक स्वामी भगवान् श्रीराम ने घोड़ों को उठाकर अर्थात् जीवित और स्वस्थ करके, कुपित होकर धनुष को खींचकर बाण छोड़े।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर शिलीमुख धारी।।
दश दश बान भाल दश मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे।।

भा०– रावण के सिररूपी कमलवन में विचरण करने के लिए भगवान् श्रीराम के बाणों की सेना भ्रमरों की सेना की भाँति चल पड़ी। श्रीराम ने रावण के दसों मस्तक पर दस–दस बाण मारे। वे अर्थात् बाण आर–पार होकर निकलकर चल पड़े और उनसे रक्त के पनारे अर्थात् विशाल प्रवाह बह चले।

विशेष– यहाँ शिलीमुख शब्द श्लेष अलंकार के अनुसार बाण और भ्रमर इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् जैसे कमलवन में भ्रमर विचरण करते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम के बाण रावण के सिर समूहों में विचरण करने के लिए चल पड़े।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु शर संधाना।।
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजनि समेत शीष महि पारे।।

भा०– रक्त बहते हुए भी बलवान रावण प्रभु श्रीराम की ओर दौड़ा। पुनः प्रभु ने धनुष पर बाणों का सन्धान किया, फिर रघुवीर श्रीराम ने तीस बाण फेंके अर्थात छोड़े और रावण की बीस भुजाओं समेत दसों सिरे काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया।

काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने।।
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए।।

भा०– काटते ही रावण के सिर फिर नये हो गये, भगवान् श्रीराम ने फिर रावण की भुजाओं और सिरों को काट डाला। प्रभु श्रीराम ने अनेक बार भुजा और सिरों को काटा, फिर वे कटते ही शीघ्र नये हो गये।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज शीशा। अति कौतुकी कोसलाधीशा।।
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू।।

भा०– अत्यन्त कौतुकी अर्थात रणलीला में रस लेनेवाले कोसलाधीश अर्थात् अयोध्या के अधीश्वर आधिकारिक स्वामी परमात्मा श्रीराम बारम्बार रावण की भुजायें और सिर काटते रहे। पृथ्वी पर रावण के सिर और बाहु छा गये अर्थात् रावण के कटे हुए सिरों और भुजाओं से पूरी पृथ्वी ढँक गई, मानो असंख्य केतु और राहु आ गये हों।

छं०– जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्त्रवत शोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं।।
एक एक शर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं।।

भा०– मानो अनेक राहु और केतु रक्त का स्राव करते हुए आकाशमण्डल में दौड़ रहे हैं। भगवान् श्रीराम के प्रचण्ड बाणों के लगने से रावण की भुजा और सिर पृथ्वी पर नहीं गिरने पाते हैं। भगवान् श्रीराम के एक–एक बाण के लगने से छेदे हुए अर्थात् वेधे हुए रावण के सिर समूह आकाश में उड़ते हुए इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो सूर्यनारायण के किरण समूह कुपित होकर जहाँ–तहाँ चन्द्रशत्रु राहु को पिरो रहे हों अर्थात् अपने तेज से खण्ड–खण्ड कर रहे हों।

विशेष- "*विधुम् तुदति इति विधुंतुद,*" अर्थात् जो चन्द्रमा को क्लेश पहुँचाता है, उस राहु को विधुंतुद कहते हैं। यहाँ "*विध्वरुषोस्तुदः,*" (पा०अ० ३.२.३२.) सूत्र से मुम् का आगम हुआ है।

दो०- जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार।।९२।।

भा०- ज्यों–ज्यों प्रभु श्रीराम रावण के सिरों को काट रहे हैं, त्यों–त्यों वे अनगिनत संख्या में उसी प्रकार उत्पन्न हो जा रहे हैं, जैसे विषयों का सेवन करने से काम की आसक्ति नित्य–नये रूप में बढ़ती जाती है।

दशमुख देखि सिरन कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिसि गाढ़ी।।
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु शरासन तानी।।
समर भूमि दशकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो।।

भा०- रावण ने जब अपने सिरों की बढ़त देखी तब उसे मरण भूल गया और उसके मन में बहुत क्रोध हुआ। मोहग्रस्त महान् अभिमानी राक्षस गरजा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा। समरभूमि में रावण क्रुद्ध हुआ और बाणों की वर्षा करके भगवान् श्रीराम के रथ को ढँक दिया।

दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महँ दिनकर दुरेऊ।।
हाहाकार सुरन जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा।।
शर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिशि बिदिशि गगन महि पाटे।।
काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं।।
कहँ लछिमन हनुमान कपीशा। कहँ रघुबीर कोसलाधीशा।।

भा०- एक दण्ड तक रथ दिखाई ही नहीं पड़ा, मानो कोहरे में सूर्यनारायण छिप गये हों। जब देवताओं ने हाहाकार किया तब प्रभु ने क्रुद्ध होकर हाथ में धनुष लिया। रावण के बाणों को रोककर अर्थात् उन्हें नष्ट करके शत्रु के सिरों को काटने लगे। उनसे दिशाओं, दिशाओं के मध्यान्तरों, आकाश और पृथ्वी को ढँक दिया। कटे हुए सिर आकाश मार्ग में दौड़ते थे और जय–जयकार करके भय उत्पन्न करते थे। "लक्ष्मण कहाँ हैं, हनुमान कहाँ हैं, सुग्रीव कहाँ हैं और अयोध्यापति श्रीराम कहाँ हैं?" इस प्रकार रावण के कटे हुए सिरों से शब्द होते थे।

छं०- कहँ राम कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंशमनि हँसि शरनि सिर बेधे भले।।
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदनि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जन मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं।।

भा०- राम कहाँ हैं? ऐसा कहते हुए रावण के कटे हुए सिरसमूह दौड़े, देखकर वानर भाग चले। रघुवंश के मणि भगवान् श्रीराम ने हँसकर धनुष पर बाणों का सन्धान करके उनसे रावण के कटे हुए सिरों को फिर अच्छी प्रकार से वेध दिया। सिरों की मालिका हाथ में लेकर बहुत–सी कालिकायें झुण्ड की झुण्डों में आकर इकट्ठी हुईं मानो रक्त की नदी में स्नान करके वे संग्रामरूप वटवृक्ष की पूजा करने चली हों।

दो०- पुनि रावन अति कोप करि, छाड़ी शक्ति प्रचंड।
सन्मुख चली बिभीषनहिं, मनहुँ काल कर दंड।।९३।।

भा०- फिर रावण ने अत्यन्त क्रोध करके भयंकर शक्ति छोड़ी, वह विभीषण के सामने चली, मानो काल का दण्ड हो।

आवत देखि शक्ति खरधारा। प्रनतारति हर बिरद सँभारा।।
तुरत बिभीषन पाछे मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला।।
लागि शक्ति मुरछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन बिकलई।।

भा०– तीक्ष्ण धारवाली शक्ति को आते देखकर, प्रणाम करने वाले भक्तों की आर्ति अर्थात् संकट को हरण करने वाले प्रभु ने अपने विरद का स्मरण किया। तुरन्त विभीषण को अपने पीछे ढकेल दिया और सन्मुख होकर भगवान् श्रीराम ने उस शक्ति को सह लिया। शक्ति के लगने से भगवान् श्रीराघव सरकार को कुछ मूर्च्छा हो गई। प्रभु ने तो खेल किया, परन्तु देवता व्याकुल हो गये अथवा, प्रभु के द्वारा की हुई इस मूर्च्छा की पीड़ा ने देवताओं को व्याकुल कर दिया।

देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो।।
रे कुभाग्य शठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे।।
सादर शिव कहँ शीष चढ़ाए। एक एक के कोटिन पाए।।
तेहि कारन खल अब लगि बाँचा। अब तव काल शीष पर नाचा।।
राम बिमुख शठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा।।

भा०– भगवान् श्रीराम को शारीरिक श्रम प्राप्त किया हुआ अर्थात् कुछ मूर्च्छित देखकर, हाथ में गदा लेकर क्रुद्ध होकर विभीषण जी दौड़े और बोले, अरे कुत्सित भाग्यवाले! दुष्ट, मन्द अर्थात् निम्न प्रकृतिवाले! कुत्सित बुद्धिवाले रावण! तूने देवता, मनुष्य, मुनि और नागों से विरोध किया, आदरपूर्वक तुमने शिव जी को शीश चढ़ाये अर्थात् समर्पित किया एक–एक के विनिमय अर्थात् बदले में करोड़ों सिर प्राप्त किये। रे खल! इसी कारण तू अब तक बचता रहा, परन्तु काल अब तेरे सिर पर नाच पड़ा है। अरे शठ! श्रीराम से विमुख होकर तू सम्पत्ति चाहता है, ऐसा कहकर विभीषण जी ने रावण के मध्य हृदय में गदा मार दी।

छं०– उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महिं पर्यो।
दश बदन शोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिसि भर्यो।।
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एक एकहिं हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषन घालि नहिं ता कहँ गनै।।

भा०– हृदय के मध्य में भयंकर और कठोर गदा का प्रहार लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा और दसों मुख से रक्त बहाता हुआ, फिर स्वयं को सम्भालकर क्रोध से पूर्ण रावण विभीषण जी की ओर दौड़ा। दोनों अति बलशाली विभीषण और रावण मल्लयुद्ध में भिड़ गये और एक–दूसरे को विरुद्ध होकर मारने लगे। रघुवीर भगवान् श्रीराम के बल से गर्वित विभीषण जी उस रावण को घालि अर्थात् घलुआ यानी पसंगे के बराबर भी नहीं गिन रहे थे।

दो०– उमा बिभीषन रावनहिं, सन्मुख चितव कि काउ।
भिरत सो काल समान अब, श्रीरघुबीर प्रभाउ।।९४।।

भा०– शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि हे पार्वती! रावण को विभीषण क्या सन्मुख होकर कभी देख सकते थे। आज वही श्रीसीता के सहित रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के प्रभाव से काल के समान रावण से भिड़ गये।

देखा श्रमित बिभीषन भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी।।
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेउ लाता।।

भा०– जब विभीषण जी को बहुत श्रमित देखा तब हनुमान जी महाराज पर्वत लेकर दौड़े। उन्होंने पर्वत के प्रहार से रावण के रथ घोड़े और सारथी को नष्ट कर दिया और रावण के हृदय के मध्य में लात मारी।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषन जहँ जनत्राता।।
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी।।
गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना।।

भा०– लात के प्रहार से रावण के शरीर में कम्पन हुआ और युद्ध छोड़कर वह खड़ा रह गया, फिर विभीषण जी जहाँ भक्तों के रक्षक भगवान् श्रीराम थे वहाँ चले गये। फिर श्रीहनुमान जी ने रावण को ललकार करके मारा, अथवा रावण ने ललकार करके हनुमान जी को मारा और हनुमान जी अपनी पूँछ फैलाये हुए आकाश में चले गये। रावण ने हनुमान जी की पूँछ पकड़ ली और उन्हीं के सहित वह भी आकाश में उड़ा। पुनः लौटकर प्रकृष्ट बलवाले हनुमान जी रावण से भिड़ गये।

लरत अकाश जुगल सम जोधा। एकहिं एक हनत करि क्रोधा।।

भा०– दोनों समान युद्ध करने वाले हनुमान जी एवं रावण आकाश में ही लड़ने लगे और क्रोध करके एक–दूसरे को मारने लगे।

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं।।
बुधि बल निशिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुत सुत प्रभु संभार्‌यो।।

भा०– दोनों योद्धा छल–बल करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो कज्जल पर्वत और सुमेरु लड़ रहे हों अर्थात् कज्जल पर्वत के समान काला रावण छल करता था और सुमेरु पर्वत के सामन स्वर्ण शरीर हनुमान जी बल से युद्ध कर रहे थे। जब राक्षस रावण बुद्धि तथा बल से गिराने से भी नहीं गिरा, तब वायुपुत्र हनुमान जी ने भगवान् श्रीराम का स्मरण किया।

छं०– संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावन हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन जुगल कहँ जय जय भन्यो।।
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दल मले।।

भा०– श्री जी के सहित भगवान् श्रीराम का स्मरण करके धैर्यवान हनुमान जी ने ललकार कर रावण को मारा। फिर रावण पृथ्वी पर गिरता और फिर उठकर हनुमान जी से लड़ता था अर्थात् श्रीराम के स्मरण से हनुमान जी में इतनी शक्ति आ गई कि हनुमान जी बारम्बार रावण को पृथ्वी पर पछाड़ देते थे। देवताओं ने युगल अर्थात् दोनों ही स्वामी भगवान् श्रीराम एवं सेवक हनुमान जी महाराज के लिए 'जय–जय' का उच्चारण किया अर्थात् श्रीराम की इसलिए जयकार बोली कि आप ने आज अपने द्वारा वध्य रावण को अपने सेवक हनुमान जी द्वारा पराजित करा भक्त हनुमान जी की लाज रख ली और सेवक हनुमान जी की इसलिए जयकार लगाई कि आपने उचित समय पर प्रभु को स्मरण करके, रावण को बार–बार पृथ्वी पर पटक कर उसे धूल चटा दी। अतः देवताओं ने कीर्तन किया, 'जय श्रीराम जय–जय हनुमान' अब हनुमान जी पर रावण–वध का धर्मसंकट देखकर वानर और भालु क्रोधातुर होकर चले, जिससे हनुमान जी को छोड़कर रावण सामान्य वानर–भालुओं से युद्ध करने लग जाये और हनुमान जी भी प्रभु के वध्य रावण के प्राणहरणरूप धर्मसंकट से बच जायें। युद्ध के मद में मत्त रावण ने सभी वीर वानरों को अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से कुचल कर मसल दिया।

दो०- तब रघुबीर पचारे, धाए कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल बिलोकि तेहिं, कीन्ह प्रगट पाषंड।।९५।।

भा०- तब रघुवीर श्रीराम ने ललकारा और अत्यन्त क्रोध करके वानर दौड़े। रावण ने वानरी सेना को प्रबल देखकर पाखण्ड प्रकट कर दिया अर्थात् माया प्रकट कर दी।

अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका।।
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दशानन तेते।।
देखे कपिन अमित दशशीशा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीशा।।
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा।।
दस दिशि धावहिं कोटिन रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन।।

भा०- एक क्षण के लिए रावण अन्तर्धान हो गया, फिर खल प्रकृतिवाले रावण ने अपने अनेक रूप प्रकट कर दिए। रघुपति श्रीराम के कटक में जितनी संख्या में वानर और भालु थे जहाँ-तहाँ उतनी ही संख्या में रावण प्रकट हो गए। जब वानरों ने असीम रावणों को देखा तब जहाँ-तहाँ भालु और वानर भाग चले। भागे हुए वानर धैर्य धारण नहीं कर रहे थे और कह रहे थे, हे लक्ष्मण जी! हे रघुवीर श्रीराम! हमारी रक्षा कीजिये...रक्षा कीजिये। दसों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ रहे थे और घोर, कठोर तथा भयंकर गर्जन कर रहे थे।

डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई।।
सब सुर जिते एक दशकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर।।

भा०- सभी देवता डर गये और भाग चले तथा बोले, हे भाई! अब विजय की आशा छोड़ दो, क्योंकि पहले एक ही रावण ने सम्पूर्ण देवताओं को जीता था, अब बहुत हो चुके हैं। अब तो पर्वत की कन्दराओं को देखो अर्थात् सुमेरु पर्वत की गुफाओं में शरण ले लो।

रहे बिरंचि शंभु मुनि ग्यानी। जिन जिन प्रभु महिमा कछु जानी।।

भा०- ब्रह्मा जी, शिव जी, उपलक्षणतया विष्णु जी और ज्ञानीमुनि जिन-जिन लोगों ने भगवान् श्रीराम की कुछ महिमा जान ली थी वे स्थिर रहे, अर्थात् नहीं डरे।

छं०- जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे।।
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दशानन कोटि कोटिन कपट भू भट अंकुरे।।

भा०- जिन लोगों ने भगवान् श्रीराम का प्रताप जाना वे निर्भय रहे अर्थात् निर्भीक होकर अपने-अपने कार्य में लगे रहे। साधारण वानरों ने शत्रु रावण के रूपों को सत्य मान लिया और सभी वानर-भालु भय से आतुर होकर, हे कृपालु श्रीराम जी! रक्षा कीजिये कहते हुए भग चले, परन्तु हनुमान जी, अंगद जी तथा नल-नील जी ये चार अत्यन्त रणकुशल योद्धा लड़ते रहे भगे नहीं और रावण की मायामय भूमि में वीररूप में अंकुरित हुए करोड़ों-करोड़ों मायामय रावणों को मसलते रहे।

दो०- सुर बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीश।
सजि बिशिखासन एक शर, हते सकल दशशीश।।९६।।

भा०- देवताओं और वानरों को व्याकुल देखकर अयोध्यापति भगवान् श्रीराम हँसे और धनुष को सजाकर एक ही बाण से सभी मायामय रावणों को मार डाला।

प्रभु छन महँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहिं तम फाटी।।
रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे।।

भा०– प्रभु श्रीराम ने क्षण भर में रावण की सम्पूर्ण माया को काट दिया, जैसे सूर्यनारायण के प्रकट होने पर अनेक प्रकार के अन्धकार फट जाते हैं। रावण को एक देखकर देवता प्रसन्न हुए लौटे और प्रभु श्रीराम पर बहुत से पुष्प बरसे।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन तब टेरे।।
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए।।

भा०– तब रघुवंश के स्वामी भगवान् श्रीराम ने अपना हाथ उठाकर सभी वानरों को लौटाया, तब लौटते हुए वानरों ने एक–दूसरे को बुलाया। प्रभु श्रीराम का बल पाकर भालु और वानर दौड़े और वे क्रुद्ध होकर शीघ्रता से समरभूमि में आ गये।

अस्तुति करत देवतन देखे। भयउँ एक मैं इन के लेखे।।
शठहु सदा तुम मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पथ धायल।।

भा०– रावण ने देवताओं को श्रीराम की स्तुति करते देखा तो बोला कि मैं इनकी दृष्टि में अकेला हो गया। अरे दुष्टों! तुम तो निरन्तर मेरे द्वारा पिटे हो, ऐसा कहकर रावण कुपित होकर आकाश मार्ग में दौड़ा।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे।।
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो।।

भा०– हाहाकार करते हुए देवता भागे। रावण ने कहा कि, अरे दुष्टों! मेरे आगे से अब कहाँ जा रहे हो? देवताओं को व्याकुल देखकर अंगद जी दौड़े और कूदकर रावण का पैर पकड़कर उसे भूमि पर गिरा दिया।

छं०– गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दशकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो।।
करि दाप चाप चढ़ाइ दश संधानि शर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई।।

भा०– बालिपुत्र अंगद जी ने रावण को पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया और लात से मारा, फिर प्रभु श्रीराम के पास चले गये। दसमुख रावण सम्भालकर पृथ्वी पर से उठकर भयंकर और कठोर स्वर में गरजा। वह गर्व करके दसों धनुष चढ़ाकर उन पर सन्धान करके बहुत से बाणों की वर्षा करने लगा। उसने सम्पूर्ण वानर वीरों को हताहत और भय से व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर रावण मन में बहुत प्रसन्न हो रहा था।

दो०– तब रघुपति रावन के, शीष भुजा शर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि, जिमि तीरथ कर पाप।।९७।।

भा०– तब रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने रावण के बहुत से सिर, भुजा, बाण और धनुष काटे फिर वे बहुत बढ़ते गये, जैसे तीर्थों में किये हुए पाप बढ़ते जाते हैं।

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन रिसि भई घनेरी।।
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज शीशा। धाए कोपि भालु भट कीशा।।

भा०– शत्रु रावण के सिर–भुजाओं की बढ़त देखकर भालु और वानरों को बहुत क्रोध हुआ। यह मूर्ख भुजाओं और सिरों के कटने पर भी नहीं मर रहा है। ऐसा सोचकर कुपित हुए वीर भालु और वानर दौड़े।

बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज द्विबिद बलशीला।।
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन सो मारा।।

भा०– बालि के पुत्र अंगद जी, मारुत अर्थात् वायु के पुत्र हनुमान जी, नल–नील जी, वानरों के राजा सुग्रीव जी, स्वाभाविक बल से युक्त द्विबिद जी वृक्षों और पर्वतों से रावण पर प्रहार करने लगे और वही पर्वत और वृक्ष लेकर वह अर्थात् रावण वानरों को मारने लगा।

एक नखनि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन मारी।।
तब नल नील सिरनि चढ़ि गयऊ। नखनि लिलार बिदारत भयऊ।।

भा०– एक अर्थात् कुछ वानरों ने अपने नखों से शत्रु रावण के शरीर को विदीर्ण कर दिया और कुछ लोग उसे लातों से मार कर चल दिये। तब नल–नील, रावण के सिरों पर चढ़ गये और नखों से उसके मस्तक को फाड़ दिये, जिससे ब्रह्मा जी के लिखे हुए दीर्घायु के लेख को उन्होंने समाप्त कर दिया।

रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी। तिनहिं धरन कहँ भुजा पसारी।।
गहे न जाहिं करनि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं।।

भा०– मस्तकों पर रक्त देखकर देवताओं के शत्रु रावण ने क्रोध के साथ उन वानरों को पकड़ने के लिए अपनी बीस भुजायें फैला दी। नल–नील पकड़े नहीं जा रहे हैं। रावण के हाथों पर ही भ्रमण कर रहे हैं, मानो कमल के वन में दो भ्रमर विचरण कर रहे हैं।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरि। महि पटकत भजे भुजा मरोरी।।
पुनि सकोप दश धनु कर लीन्हें। शरनि मारि घायल कपि कीन्हें।।

भा०– क्रुद्ध होकर रावण ने फिर उछलकर दोनों वानरों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर पटकते ही नल–नील उसकी भुजाओं को मरोड़कर भग चले। फिर रावण ने क्रोधपूर्वक दसों धनुषों को हाथों में ले लिया और बाणों से मार–मारकर वानरों को घायल कर दिया।

हनुमदादि मुरछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दशकंधर।।
मुरछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा।।

भा०– हनुमान जी आदि वानरों को मूर्च्छित करके सन्ध्या समय को प्राप्त कर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। सभी वीर वानरों को मूर्च्छित देखकर युद्ध में धैर्यवान जाम्बवान जी दौड़े।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी।।
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना।।
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता।।

भा०– जाम्बवान जी के साथ पर्वतों और वृक्षों को लिए हुए भालु भी दौड़े और ललकार–ललकार कर रावण को मारने लगे। बलवान रावण क्रुद्ध हो गया तथा पैर पकड़–पकड़ अनेक वीरों को पछाड़ने लगा। जाम्बवान जी ने अपने दल का विनाश देखकर, क्रुद्ध होकर रावण के मध्य हृदय में लात मारी।

छं०– उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलनि बसे निशि मधुकरा।।
मुरछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निशि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतन करत भयो।।

भा०– हृदय में अत्यन्त प्रचण्ड लात का आघात लगते ही व्याकुल होकर रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथ से बीस भालुओं को मूर्च्छित अवस्था में पकड़ रखा, मानो रात्रि में कमलों में भौंरे निवास किये हों। रावण को मूर्च्छित देखकर फिर लात से मारकर जाम्बवान जी प्रभु श्रीराम के पास चले गये। तब रात्रि जानकर रावण को रथ पर लिटाकर सारथी ने यत्न किया अर्थात् विश्राम और उपचार की व्यवस्था की।

दो०- मुरछा बिगत भालु कपि, सब आए प्रभु पास।
सकल निशाचर रावनहिं, घेरि रहे अति त्रास।।९८।।

भा०– मूर्च्छा समाप्त होने पर सभी भालु–वानर भगवान् श्रीराम के पास आ गये। उधर सभी राक्षस अत्यन्त भय से युक्त होकर रावण को घेरकर सुरक्षा करते रहे।

तेही निशि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई।।
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी।।

भा०– उसी रात्रि में श्रीसीता के पास जाकर त्रिजटा ने सम्पूर्ण कथा कह सुनायी। शत्रु के सिरों और भुजाओं की बढ़त सुनकर श्रीसीता के मन में बहुत डर हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता।।
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिश्व दुखदाता।।
रघुपति शर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई।।
मोर अभाग जियावत ओही। जेहिं मोहिं हरि पद कमल बिछोही।।

भा०– श्रीसीता का मुख उदास हो गया, मन में चिन्ता उत्पन्न हो गयी, तब श्रीसीता, त्रिजटा से बोलीं, हे माता! क्या होगा तुम क्यों नहीं कुछ बोल रही हो? विश्व को दुःख देने वाला रावण किस प्रकार से मरेगा? रघुकुल के स्वामी भगवान् श्री राघव के बाणों से सिरों के कटने पर भी रावण नहीं मर रहा है, परमात्मा सभी विपरीत चरित्र कर रहे हैं। मेरा दुर्भाग्य उसे जिला रहा है, जिसने मुझे प्रभु के श्रीचरणकमलों से अलग कर दिया।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा।।
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए।।

भा०– जिसने असत्य कपटमय स्वर्णमृग बनाया, इस समय भी वही दैव मुझ पर रुठा है। जिस विधाता ने मुझे असहनीय दुःख सहाया और जिसने मुझसे लक्ष्मण जी के लिए कटुवचन कहलाये।

रघुपति बिरह सबिष शर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी।।
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जियाव न आना।।
बहु बिधि करत बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की।।

भा०– रघुकुल के पति श्रीराघव जी के विरह में प्रभु का स्मरणात्मक काम, बार–बार मुझे लक्ष्य बनाकर विरहरूप विष से युक्त भयंकर बाणों से मार रहा है। ऐसे दुःख में भी जो विधाता मेरे प्राण रख रहा है, वही उस रावण को जिला रहा है और कोई दूसरा नहीं। कृपानिधान श्रीराम का स्मरण करके श्रीसीता बहुत प्रकार से विलाप करने लगीं।

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर शर लागत मरइ सुरारी।।
प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदय बसति बैदेही।।

भा०- त्रिजटा ने कहा, हे राजकुमारी! सुनिये, हृदय में बाण लगते ही देवशत्रु रावण मर सकता है। प्रभु श्रीराम इसलिए रावण को हृदय में नहीं मार रहे हैं, क्योंकि रावण के हृदय में जनकनन्दिनी जी विराजती हैं अर्थात् रावण एक भी क्षण के लिए श्रीसीता को अपने चिन्तन से दूर नहीं करता।

छं०- एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बान सब कर नास है।।
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहिं रिपु एहि बिधि सुनहु सुंदरि तजहु संशय महा।।

भा०- प्रभु कहते हैं कि इस रावण के हृदय में जानकी जी रहती हैं और जानकी जी के हृदय में मेरा निवास है। मेरे उदर अर्थात् पेट में अनेक भुवन रहते हैं, बाण लगते ही सबका नाश हुआ ही समझो। यह सुनते ही श्रीसीता को हर्ष इस बात का हुआ कि मेरी बिम्बरूप श्रीसीता रावण के हृदय में रहती हैं और विषाद इस बात का कि इस परिस्थिति में रावण की मृत्यु कैसे होगी? इस प्रकार श्रीसीता को व्याकुल देखकर त्रिजटा ने फिर कहा, हे सुन्दरी! सुनिये, अब शत्रु इस प्रकार से मर जायेगा, आप बहुत–बड़ा संशय छोड़ दीजिये।

दो०- काटत सिर होइहिं बिकल, छुटि जाइहिं तव ध्यान।
तब रावनहिं हृदय महँ, मरिहिं राम सुजान।।९९।।

भा०- प्रभु श्रीराम द्वारा सिर को काटते–काटते रावण व्याकुल हो जायेगा और उससे आपका ध्यान छूट जायेगा, तब चतुर श्रीराम रावण के हृदय में बाण मार देंगे।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई।।
राम स्वभाव सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह ब्यथा अति तेही।।

भा०- इस प्रकार कहकर श्रीसीता को त्रिजटा ने बहुत प्रकार से समझाया और फिर वह अपने भवन को चली गई। श्रीराम के स्वभाव का स्मरण करके उन भगवती श्रीसीता को विरह की व्यथा उत्पन्न हो गई।

निशिहिं शशिहिं निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती।।
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी।।

भा०- रात्रि को और चन्द्रमा को श्रीसीता बहुत प्रकार से कोसने लगीं। रात्रि युग के समान हो गई वह बीत ही नहीं रही थी। श्रीसीता मन ही मन बहुत विलाप कर रही थीं और प्रभु श्रीराम के वियोग में दु:खी हो रहीं थीं।

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू।।
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहैं कृपालु रघुबीरा।।

भा०- जब भगवती श्रीसीता के हृदय में विरह का अत्यन्त ताप हुआ तब उनके वामनेत्र और वामबाहु फड़क उठे। शकुन विचारकर श्रीसीता ने मन में धैर्य धारण किया, अब कृपालु श्रीरघुवीर मुझे मिल जायेंगे।

इहाँ अर्धनिशि रावन जागा। निज सारथि सन खीझन लागा।।
शठ रनभूमि छुड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही।।

भा०- इधर अर्द्धरात्रि में रावण जगा और वह अपने सारथी से खीझने लगा अर्थात् सारथी को डाँटने लगा। अरे दुष्ट! तुमने मुझे रणभूमि छुड़वा दिया। अरे अधम, मन्दबुद्धि सारथी! तुझे धिक्कार है... धिक्कार है।

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोर भए रथ चढि पुनि धावा।।
सुनि आगमन दशानन केरा। कपिदल खरभर भयउ घनेरा।।
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी।।

भा०- उस सारथी ने चरण पकड़कर बहुत प्रकार से रावण को समझाया और प्रातःकाल रथ पर चढ़कर रावण ने फिर धावा बोला। रावण का अगमन सुनकर वानरदल में बहुत खलबली मच गई। जहाँ-तहाँ पर्वत और वृक्षों को उखाड़कर भारी वीर कटकटा कर दौड़े।

छं०- धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा।।
बिचलाइ दल बलवंत कीसन घेरि पुनि रावन लियो।
चहुँ दिशि चपेटनि मारि नखनि बिदारि तनु ब्याकुल कियो।।

भा०- जो विशाल बन्दर और भयंकर भालु थे वे सब हाथ में पर्वत लेकर दौड़े और क्रोध करके रावण पर प्रहार करने लगे, मारते ही राक्षस भाग चले। बलवान वानरों ने राक्षसदल को विचलित करके फिर रावण को घेर लिया। चारों ओर से थप्पड़ों से मार-मारकर और नखों से शरीर को विदीर्ण करके रावण को व्याकुल कर दिया।

दो०- देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महँ, कृत माया बिस्तार।।१००।।

भा०- वानरों को बहुत प्रबल देखकर रावण ने मन में विचार किया और अन्तर्धान होकर क्षणभर में माया का विस्तार कर दिया।

छं०- जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड।।
बेताल भूत पिशाच। कर धरें धनु नाराच।।१।।

भा०- जब रावण ने माया की रचना की तब भयंकर जन्तु प्रकट हो गये। वेताल, भूत, पिशाच हाथ में धनुष और बाण लिए हुए दृष्टिगोचर हुए।

जोगिनि गहे करबाल। एक हाथ मनुज कपाल।।
करि सद्य शोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान।।२।।

भा०- योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य का सिर लिए हुए सद्य : निकले हुए रक्त का पान करके नाचने और बहुत सा गान करने लगीं।

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर।।
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान।।३।।

भा०- धरो, मारो, इस प्रकार घोर शब्द बोलने लगीं और उनकी ध्वनि चारों दिशाओं में पूर्ण हो गई। जब वे मुख फैलाकर खाने को दौड़ने लगीं तब वानर भागने लगे।

जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि।।
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु।।४।।

भा०- जहाँ वानर भागकर जाते थे वहाँ अग्नि जलते देखते थे। वानर-भालु व्याकुल हो गये, तब रावण बालू की वर्षा करने लगा।

जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दशशीश।।
लछिमन कपीश समेत। भए सकल बीर अचेत।।५।।

भा०– इस प्रकार जहाँ–तहाँ वानर–भालुओं को स्थगित करके और श्रान्त करके फिर रावण गरजा। लक्ष्मण जी एवं सुग्रीव जी के सहित सम्पूर्ण वीर चेतनाशून्य हो गये।

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ।।
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेहि कीन्ह कपट बहोरि।।६।।

भा०– हा! श्रीराम, हा! श्रीरघुनाथ जी, कहकर सम्पूर्ण वीर हाथ मलने लगे। इस प्रकार सबका बल तोड़कर अर्थात् सभी को निर्बल बनाकर रावण ने फिर दूसरी माया की।

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान।।
तिन राम घेरे जाइ। चहुँ दिशि बरूथ बनाइ।।७।।

भा०– रावण ने अनेक हनुमान जी प्रकट कर दिये, वे पत्थर लेकर दौड़े और उन माया के हनुमानों ने भी चारों ओर से झुण्ड बनाकर सुरक्षा के लिए श्रीराम को घेर लिया।

मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ।।
दश दिशि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज।।८।।

भा०– 'मारो–पकड़ो' रावण भाग न जाये इस प्रकार माया के हनुमान जी भी पूँछ उठाकर दाँत कटकटा कर कह रहे थे अर्थात् मायारचित् हनुमान जी भी श्रीराम जी के विरुद्ध कुछ नहीं कह रहे थे। दसों दिशा में मायारचित् हनुमान जी के लँगूर शोभित हो रहे थे और उनके बीच में कोसल जनपद के राजा भगवान् श्रीराम जी विराज रहे थे।

छं०– तेहि मध्य कोसलराज सुंदर श्याम तन शोभा लही।
जनु इंद्र धनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही।।
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महँ माया हरी।।१।।

भा०– उन मायामय हनुमान जी के लँगूरों के बीच अयोध्यापति भगवान् श्रीराम के सुन्दर श्यामल शरीर ने इस प्रकार शोभा प्राप्त की जैसे अनेक इन्द्रधनुषों की वाटिका में सुन्दर और विशाल तमाल वृक्ष विराज रहा हो। प्रभु श्रीराम ने देखा की मायारचित हनुमान के श्रीरामानुकूल आचरण करने से हर्ष और रावण के जीवित रहने से उपस्थित हुए हार्दिक विषाद के साथ देवता "जय–जय–जय" ध्वनि करके बोल रहे थे। तब कुपित होकर रघुवीर श्रीराम ने एक क्षण में एक ही बाण से सारी माया हर ली।

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
शर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे।।
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
शत शेष शारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं।।२।।

भा०– रावण की माया समाप्त होने पर वानर–भालु प्रसन्न हुए और सभी, वृक्ष तथा पर्वत हाथ में लेकर लौटे। भगवान् श्रीराम फिर बाणों के समूह छोड़ने लगे और अनेक बार रावण के बाहु और सिर पृथ्वी पर गिरे। श्रीराम–रावण युद्धचरित्र को यदि अनेक शेष, अनेक शारदा, वेद तथा अनेक कविगण अनेक कल्पपर्यन्त गाते रहें, तब भी

वे पार नहीं पायेंगे अर्थात् मात्र दो दिनों के द्वन्द्वयुद्ध में भगवान् श्रीराम ने अनन्तकल्पी दिनों का समावेश कर दिया।

दो०- कहे तासु गुन गन कछुक, जड़मति तुलसीदास।
निज पौरुष अनुसार जिमि, मशक उड़ाहिं अकास।।१०१(क)।।

भा०- उस श्रीराम-रावण समरचरित्र के कुछ गुणगण जड़मति अर्थात् जड़बुद्धि वाले मुझ तुलसीदास ने उसी प्रकार कह दिया जैसे अपने पौरुष के अनुसार मच्छर भी आकाश में उड़ लेते हैं।

काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेश।
प्रभु क्रीडत सुर सिद्ध मुनि, ब्याकुल देखि कलेश।।१०१(ख)।।

भा०- बार-बार सिरों और भुजाओं के काटने पर भी वीर लंकापति रावण मर नहीं रहा है। प्रभु को रणक्रीड़ा करते हुए सामान्य दृष्टि से सम्भावित क्लेश को देखकर देवता, सिद्ध और मुनिजन व्याकुल होने लगे।

काटत बढ़हि शीष समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।।
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिशेषा। राम बिभीषन तनु तब देखा।।

भा०- प्रभु को काटते ही रावण के सिरसमूह उसी प्रकार बढ़ने लगे जैसे प्रत्येक लाभ के पश्चात् लोभ बढ़ता जाता है। शत्रु मर नहीं रहा था भगवान् श्रीराम को विशाल श्रम हो गया। तब भगवान् श्रीराम ने विभीषण जी की ओर देखा।

विशेष- रावण का श्रीसीताविषयक ध्यान अनन्त बार स्वयं के सिरों के काटे जाने पर भी एक क्षण के लिए भी नहीं डिगा। अतः श्रीसीता जी रावण के हृदय से क्षण भर के लिए भी दूर नहीं हो सकीं, इसलिए भगवान् श्रीराम, रावण के हृदय में बाण नहीं मार पाए। अतएव प्रभु ने उसे मारने का दूसरा विकल्प ढूँढा और विभीषण जी की ओर देखा।

उमा काल मर जाकी इच्छा। सो प्रभु कर जन प्रीति परिच्छा।।
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक।।
नाभीकुण्ड सुधा बस याके। नाथ जियत रावन बल ताके।।

भा०- शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे उमा! काल भी जिनकी इच्छा से मर जाता है, वे ही सर्वशक्तिमान परमात्मा श्रीराम कभी-कभी अपने भक्त के प्रेम की परीक्षा करने लगते हैं। अथवा, वे प्रभु श्रीराम अपने भक्त विभीषण जी के प्रेम की परीक्षा कर रहे थे। विभीषण जी ने कहा, हे सर्वज्ञ! हे चर-अचर के स्वामी! हे शरणागतों के पालक! हे देवता और मुनियों के सुखदाता श्रीराम! सुनिये, इस रावण के नाभिकुण्ड में अमृत निवास करता है, हे नाथ! उसी के बल से रावण जी रहा है, अतः पहले अमृत-शोषण का उपाय किया जाये।

सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला।।
अशुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर शृगाल बहु श्वाना।।
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू।।
दश दिशि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा।।
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्त्रवहिं नयन मग बारी।।

भा०– विभीषण जी के वचन सुनते ही कृपालु श्रीराम ने प्रसन्न होकर कराल अर्थात् भयंकर आग्नेय बाण ले लिया। तब अनेक अशुभ होने लगे, गधे, गीदड़ और कुत्ते रोने लगे। संसार में आर्ति के कारण बने हुए भयंकर पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ–तहाँ केतु अर्थात् पुच्छल तारे प्रकट हो गये। दसों दिशाओं में अत्यन्त ताप होने लगा। पर्व अर्थात् अमावस्या और प्रतिपदा की संधि के बिना ही सूर्यग्रहण होने लगा। मन्दोदरी हृदय में अत्यन्त काँपने लगी और प्रतिमायें नेत्रों के मार्ग से जलस्राव करने लगीं अर्थात् आँसू गिराने लगीं।

छं०– प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज अशुभ अति सक को कही।।
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपालु रघुपति चाप शर जोरत भए।।

भा०– प्रतिमायें रोने लगीं, आकाश में वज्रपात होने लगा, अत्यन्त वेग से वायु बहने लगा, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूलि की वर्षा करने लगे। उस समय इतना अशुभ हुआ, जिसे कोई कह भी नहीं सकता। लंका में हो रहे इस असीम उत्पात को देखकर देवता व्याकुल होकर 'जय–जयकार' करने लगे। देवताओं को भयभीत जानकर, कृपालु श्रीराम ने धनुष की डोरी से बाण को जोड़ लिया।

दो०– आकरषेउ धनु श्रवण लगि, छाँड़े शर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहुँ काल फनीस।।१०२।।

भा०– प्रभु ने धनुष को कान तक खींचा और रावण के लिए एक साथ इकतीस बाण छोड़े। भगवान् श्रीराम के बाण इस प्रकार चले, मानो वे साक्षात् कालसर्प ही थे।

सायक एक नाभि सर शोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा।।
ले सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा।।

भा०– प्रभु के एक अर्थात् आग्नेय बाण ने नाभिकुण्ड का अमृत सोख लिया और अपर अर्थात् शेष तीस बाण क्रोध करके रावण के दसों सिर और बीसों भुजाओं में लगे। रावण के दसों सिर और बीसों भुजाओं को काटकर भगवान् श्रीराम के बाण अपने साथ ले चले। दसों सिर और बीसों भुजा से हीन अर्थात् रहित रावण का धड़ पृथ्वी पर नाच उठा।

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब शर हति प्रभु कृत दुइ खंडा।।
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं पचारी।।

भा०– जब रावण का प्रचण्ड धड़ दौड़ने लगा और पृथ्वी धँसने लगी, तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। मरते समय रावण भयंकर घोर शब्द में गरजा, राम कहाँ हैं, मैं ललकार कर उन्हें युद्ध में समाप्त करूँगा? वस्तुतस्तु मैं ललकार कर युद्धभूमि में उन्हीं को शरण रूप में प्राप्त कर लूँगा अर्थात् उनकी शरण में जाऊँगा।

विशेष– हन् धातु से पाणिनी ने हिंसा और गति ये दो अर्थ कहे हैं, "*हन् हिंसागत्योः*"(पा०धा०पा० १०१२)। 'हतौं' शब्द में हन् धातु का गत्यर्थ स्वीकार करके कर्त्ता में भविष्यत्काल क्त प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है शरण में जाना अर्थात् युद्ध–स्थल में श्रीराम कहाँ हैं? आज मैं ललकार कर उन्हीं की शरण में जाऊँगा। इस दृष्टि से हतौं का अर्थ होगा जाऊँ अर्थात् गच्छेयम्।

डोली भूमि गिरत दशकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।।
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई।।

भा०– रावण के गिरते ही पृथ्वी डगमगा गई। समुद्र, तालाब, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण का धड़ दो टुकड़ों में श्रीराम के बाणों से दो टुकड़ो में कटकर तथा फैलकर भालु और वानरों को अपने नीचे दबाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मंदोदरि आगे भुज शीशा। धरि सर चले जहाँ जगदीशा।।
प्रबिशे सब निषंग महँ जाई। देखि सुरन दुंदुभी बजाई।।

भा०– भगवान् श्रीराम के बाण मन्दोदरी के आगे रावण की बीस भुजाओं और दसों सिर को रखकर, जहाँ जगत के ईश्वर भगवान् श्रीराम थे वहाँ के लिए चल पड़े। सभी प्रभु के तरकस में जाकर प्रविष्ट हो गये। देखकर देवताओं ने नगारे बजाये।

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि शंभु चतुरानन।।

भा०– रावण का तेज प्रभु श्रीराम के मुख में समा गया, यह देख शिव जी और ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए।

जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।।
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपालु जय जयति मुकुंदा।।

भा०–हे प्रबल भुजदण्डवाले प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो। इस प्रकार जय-जयकार की ध्वनि से ब्रह्माण्ड भर गया। देवता और मुनिवृन्द पुष्पों की वर्षा करने लगे तथा कहने लगे, हे कृपालु! आपकी जय हो। हे मोक्ष देनेवाले प्रभु श्रीराम! आप की जय हो...जय हो।

छं०– जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद्व हरन शरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो।।
सुर सिद्ध मुनि गंधर्व हरषे बाजि दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु शोभा लही।।१।।

भा०– हे कृपा के मेघ! हे मुकुन्द! हे द्वन्द्वों को हरने वाले! हे शरणागतों के सुखदाता! हे प्रभु! हे खल-दल को नष्ट करने वाले! हे परम कारण! हे सदैव कारुणिक! हे सर्वव्यापक भगवान् श्रीराम! आपकी जय हो। उस समय देवता, सिद्ध, मुनि, गन्धर्व प्रसन्न हुए। आकाश में गहगहे, नगारे बजने लगे और समरांगण में भगवान् श्रीराम के श्रीअंगों ने अनेक कामदेवों की शोभा प्राप्त की।

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं।।
भुजदंड शर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने।।२।।

भा०– भगवान् श्रीराम के सिर पर जटा का मुकुट और उसके बीच-बीच में अत्यन्त सुन्दर पुष्प ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो मरकत मणि के पर्वत पर बिजलियों के समूह के सहित अनेक तारागण शोभित हो रहे हों। अपनी सुन्दर भुजाओं पर भगवान् श्रीराम बाण और धनुष फेर रहे हैं, शरीर पर रक्त के कण (रावण के शरीर से निकले हुए) बहुत शोभित हो रहे हैं, मानो तमाल वृक्ष पर बहुत से रायमुनी नामक लाल पक्षी अपने आनन्द में बैठें हों।

दो०– कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु, अभय किए सुर बृंद।
हरषे बानर भालु सब, जय सुख धाम मुकुंद।।१०३।।

भा०- अपनी कृपादृष्टि की वर्षा करके प्रभु श्रीराम ने सभी देवसमूहों को निर्भीक कर दिया। सभी वानर-भालु प्रसन्न हो गये और बोलने लगे, सुख के धाम और मुक्ति, भुक्ति दाता भगवान् श्रीराम की जय।

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी।।
जुबती बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहँ आईं।।

भा०- पति रावण का कटा सिर देखते ही मन्दोदरी मूर्च्छित होकर व्याकुलता के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ी। रावण की युवति समूह रोती हुई उठकर दौड़ीं और मन्दोदरी को उठाकर रावण के पास आयीं।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे चिकुर न बपुष सँभारा।।
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना।।

भा०- पति रावण की गति देखकर वे रावण की पत्नियाँ पुकार करने लगीं। उनके बाल छूट गये और उन्होंने अपने शरीर को नहीं सम्भाला, अनेक प्रकार से छाती पीटने लगीं तथा रोती-रोती रावण के प्रतापों का बखान करने लगीं।

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक शशि तरनी।।
शेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा।।

भा०- हे नाथ! आपके बल से पृथ्वी निरन्तर डोलती थी और अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य तेजहीन हो चुके थे। शेष और कच्छप भगवान् भी आपका भार नहीं सह पाते थे। वही आपका शरीर राख से भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा हुआ है।

बरुन कुबेर सुरेश समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा।।
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं।।

भा०- वरुण, कुबेर, इन्द्र, वायु कभी भी युद्ध में आपके सामने धैर्य धारण नहीं कर सकते थे। आपने अपने भुजबल से काल और यम को भी जीत लिया था। आज आप अनाथ की भाँति पृथ्वी पर पड़े हैं।

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई।।
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।।

भा०- आपकी प्रभुता जगत् में विदित थी, आपके पुत्रों और परिजनों का वर्णन नहीं किया जा सकता, परन्तु श्रीराम के विमुख होने से आज आपकी ऐसी परिस्थिति हुई कि कुल में कोई रोनेवाला भी नहीं रह गया।

तव बश बिधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिशिप नित नावहिं माथा।।
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं।।

भा०- हे नाथ! यह सम्पूर्ण ब्रह्मा जी का प्रपंच आपके वश में था, दिग्पाल आपको भयभीत होकर निरन्तर मस्तक नवाते थे, अब आपके सिरों और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं। श्रीराम के विमुख होने से यह कुछ भी अनुचित नहीं है।

काल बिबश पति कहा न माना। अग जग नाथ मनुज करि जाना।।

भा०- हे पति! आप काल के विवश होने के कारण कुछ भी कहा नहीं माने और आपने जड़ अर्थात् चित्-अचित् वर्ग के स्वामी श्रीराम को मनुष्य करके समझा।

छं०- जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयम्।
जेहिं नमत शिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयम्।।
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयम्।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्।।

भा०- आपने राक्षस वन को जलाने के लिए अग्नि के समान स्वयं श्रीहरि को मनुष्य जाना। जिन्हें शिव जी, ब्रह्मा जी, विष्णु जी आदि देवता नमन करते हैं, ऐसे प्रचुर करुणा के स्थान प्रभु का आपने भजन नहीं किया। आपका यह शरीर जन्म के प्रारम्भ से ही परद्रोह में लगा हुआ और पाप के समूहों से युक्त था। आप जैसे सर्व साधनहीन राक्षस को भी भगवान् ने अपना धाम दे दिया, ऐसे भवरोगों से रहित परब्रह्म परमात्मा श्रीराम को मैं नमन करती हूँ।

दो०- अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान।।१०४।।

भा०- अहह! आश्चर्य है, हे नाथ! श्रीरघुनाथ के समान कोई और कृपासिन्धु नहीं है, क्योंकि भगवान् श्रीराम ने तुम्हें योगीवृन्दों के लिए भी दुर्लभ गति दे दी।

मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबनि सुख माना।।
अज महेश नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी।।
भरि लोचन रघुपतिहिं निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी।।

भा०- मन्दोदरी के वचनों को अपने कानों से सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुख का अनुभव किया। ब्रह्मा जी, शिव जी, नारद जी, सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार और भी जो परमार्थवादी अर्थात् मोक्षतत्त्व के ज्ञाता श्रेष्ठमुनि थे, वे सभी रघुपति श्रीराम को भर नेत्र निहारकर प्रेम में मग्न और सुखी हो गये।

रुदन करत बिलोकि सब नारी। गयउ बिभीषन मन दुख भारी।।
बंधु दशा देखत दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहिं आयसु दीन्हा।।

भा०- रोती हुई सभी रावणपत्नियों को देखकर मन में भारी दुःख के साथ विभीषण जी वहाँ गये। बड़े भाई रावण की क्षत–विक्षत दशा देखते ही विभीषण जी ने बहुत शोक किया। तब प्रभु श्रीराम ने जीव–जगत मात्र के गुरु छोटे भैया लक्ष्मण जी को आज्ञा दी कि तुम विभीषण जी को परमात्मज्ञान देकर सांसारिक शोक से मुक्त करो।

लछिमन जाइ ताहिं समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहँ आयो।।
कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब शोका।।
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देश काल जिय जानी।।

भा०- श्रीलक्ष्मण जी ने जाकर उन विभीषण जी को समझाया और फिर विभीषण जी प्रभु के पास आ गये। प्रभु श्रीराम जी ने कृपादृष्टि से विभीषण जी को निहारा और कहा कि, हे विभीषण! सब शोक छोड़ रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मानकर हृदय में देश और काल समझकर विभीषण जी ने रावण का विधिवत् द्विजाति संस्कार किया।

विशेष- भगवान् श्रीराम जी की आज्ञा वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है– ***मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्। क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।*** (वा० रा० ६/१११/१००) अर्थात् वैर मरणपर्यन्त ही

रहता है। मरने के पश्चात् किसी से विरोध नहीं किया जाता, वह देवतुल्य हो जाता है। हमारा प्रयोजन सम्पन्न हो गया। अब रावण का द्विजोचित् संस्कार करो, वह जैसा तुम्हारा है, वैसा मेरा भी है।

दो०- मयतनयादिक नारि सब, देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन, गन बरनत मन माहि।।१०५।।

भा०- मयपुत्री मन्दोदरी आदि सभी रावण की विधवा पत्नियाँ उसे तिलांजलि देकर भगवान् श्रीराम के गुणगणों को मन में वर्णन करते हुए लंका के राजभवन में चली गईं।

आइ बिभीषन पुनि सिर नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो।।
तुम कपीश अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयशीला।।
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेउ तिलक कहेउ रघुनाथा।।
पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ।।

भा०- फिर आकर विभीषण जी ने प्रभु को मस्तक नवाया अर्थात् यह सूचित किया कि मैंने आपकी आज्ञानुसार रावण का अन्तिम संस्कार सम्पन्न कर लिया, अब आगे क्या आज्ञा है? इसके पश्चात् कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने छोटे भैया लक्ष्मण जी को बुलाया और कहा, तुम अर्थात् लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, नल-नील, जाम्बवान और नीतिनिपुण हनुमान जी सभी मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। मैं पिताश्री के आदेश के कारण लंका नगर में नहीं आ रहा हूँ, परन्तु अपने ही समान अर्थात् अपने प्रतिनिधि के रूप में सुग्रीव आदि वानरों और छोटे भैया लक्ष्मण को भेज रहा हूँ। इस प्रकार श्रीरघुनाथ जी ने आज्ञा दी।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना।।
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।।
जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए।।

भा०- प्रभु का आदेश सुनकर तुरन्त लक्ष्मण जी और सभी वानर विभीषण जी के साथ लंका चले गये और जाकर राजतिलक की व्यवस्था की। विभीषण जी को आदरपूर्वक लंका के राजसिंहासन पर बैठाकर उन्हें राजतिलक करके स्तुति भी की। सब ने लंकेश को हाथ जोड़कर मस्तक नवाया और लंकापति विभीषण जी के साथ फिर प्रभु श्रीराम के पास आ गये।

तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे।।

छं०- किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जस तुम्हारो नित नयो।।
मोहि सहित शुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं।।

भा०- तब पाँचों वीरताओं से उपलक्षित रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने सभी वानर-भालुओं को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया। अमृत के समान वाणी कहकर प्रभु श्रीराम ने सभी वानर-भालुओं को सुखी किया और बोले, हे मित्रों! तुम्हारे बल से और तुम्हारी ही सेना की सहायता से मैंने रावण जैसे दुर्धर्ष शत्रु को मार डाला। आप लोगों के ही पराक्रम से विभीषण ने लंका का राज्य पा लिया। आप लोगों का यश तीनों लोकों में नित्य-नवीन होकर छा रहा है। जो लोग पूज्यभाव के साथ भक्ति से मेरे सहित आप लोगों की कल्याणमयी कीर्ति गायेंगे, वे जीव बिना ही प्रयास के अपार संसार-सागर का पार पा जायेंगे।

दो०- सुनत राम के वचन मृदु, नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बारहिं बार बिलोकि मुख, गहहिं सकल पद कंज।।१०६।।

भा०- भगवान् श्रीराम के कोमल वचन सुनकर वानरसमूह तृप्त नहीं हो रहे हैं। वे सभी बारम्बार श्रीराघव सरकार का श्रीमुख निहारकर प्रभु के श्रीचरणकमलों को पकड़ लेते हैं।

पुनि प्रभु बोलि लियो हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना।।
समाचार जानकिहिं सुनावहु। तासु कुशल लै तुम चलि आवहु।।

भा०- फिर सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम ने हनुमान जी को बुला लिया (उन्होंने कहा, तनि हेने आवऽऽ)। ऐश्वर्यादि छहों माहात्म्य से सम्पन्न भगवान् श्रीराम ने कहा, हे आन्जनेय! लंका जाओ, जनकनन्दिनी श्रीसीता को सब समाचार सुनाओ और उनका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ।

तब हनुमंत नगर महँ आए। सुनि निशिचरी निशाचर धाए।।
बहु प्रकार तिन पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही।।

भा०- तब हनुमान जी लंका नगर में आये, हनुमान जी का आगमन सुनकर राक्षसियाँ और राक्षस दौड़े उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान जी की पूजा की, फिर जनकनन्दिनी श्रीजानकी के दर्शन कराये।

दूरिहिं ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा।।
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुशल अनुज कपि सैन समेता।।

भा०- दूर से ही हनुमान जी ने श्रीसीता को प्रणाम किया। श्रीजानकी ने श्रीरघुपतिदूत, हनुमान जी को पहचान लिया और पूछने लगीं, कहो भैया हनुमान! छोटे भैया लक्ष्मण और वानरी सेना के साथ कृपा के भवन सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराघवेन्द्र सरकार कुशल से हैं अर्थात् स्वस्थ हैं, युद्ध में प्रभु घायल तो नहीं हुए।

सब बिधि कुशल कोसलाधीशा। मातु समर जीत्यो दशशीशा।।
अबिचल राज बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो।।

भा०- हनुमान जी ने उत्तर दिया, हे माताश्री! कोसलपुर के स्वामी श्रीरघुनाथ, सब प्रकार से कुशल हैं, उन्होंने युद्ध में दस सिरवाले रावण को जीत लिया है और विभीषण जी लंका का अचल राज्य पा गये हैं। हनुमान जी के वचन सुनकर भगवती श्रीसीता के हृदय में आनन्द छा गया।

छं०- अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा।।
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राज आजु न संशयम्।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पश्यामि राममनामयम्।।

भा०- भगवती जी के मन में अत्यन्त आनन्द हुआ, शरीर पुलकित हो गया, नेत्र आँसुओं से भर गये। रमा अर्थात् रकार के वाच्य श्रीराम की 'मा' अर्थात् शक्ति यानी भगवान् श्रीराम की परमशक्ति श्रीसीता ने बार-बार कहा कि हे हनुमान! इस शुभ समाचार के उपलक्ष्य में मैं तुम्हें क्या दूँ? तीनों लोकों में इस वाणी के समान कुछ भी नहीं है। हनुमान जी बोले, हे माताश्री! सुनिये, आज मैंने सम्पूर्ण संसार का राज्य पा लिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि मैं युद्ध में शत्रुदल को जीते हुए, छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ विराजमान, जिन्हें इतने बड़े संग्राम में कोई भी घाव नहीं लगा, ऐसे स्वस्थ श्रीराम जी के दर्शन कर रहा हूँ अर्थात् प्रभु की विजय प्राप्ति और उनकी स्वस्थता ही मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दो०- सुनु सुत सदगुन सकल तव, हृदय बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति, रहहुँ समेत अनंत।।१०७।।

भा०- फिर श्रीसीता जी बोलीं, हे पुत्र हनुमान! सुनो, सभी सद्‌गुण तुम्हारे हृदय में निवास करें और लक्ष्मण जी के सहित अयोध्यापति भगवान् श्रीराघव जी तुम पर सानुकूल रहें अर्थात् प्रभु तुमसे कभी प्रतिकूल न हों।

अब सोइ जतन करहु तुम ताता। देखौं नयन श्याम मृदु गाता।।
तब हनुमान राम पहिं आये। जनकसुता कै कुशल सुनाये।।

भा०- हे पुत्र! अब तुम वही यत्न करो, जिससे मैं श्यामल कोमल शरीरवाले प्रभु श्रीराघव सरकार के अपने नेत्रों से दर्शन कर लूँ। तब हनुमान जी भगवान् श्रीराम जी के पास आये और जनकनन्दिनी श्रीसीता का कुशल समाचार तथा उनकी प्रभु के श्रीदर्शनों की प्रबल उत्कंठा सुनायी।

सुनि बानी पतंग कुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन।।
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहिं लै आवहु।।

भा०- हनुमान जी की वाणी सुनकर, सूर्यकुल के अलंकार भगवान् श्रीराम ने वानरों के युवराज अंगद जी और लंकापति विभीषण जी को बुला लिया और आज्ञा दी, तुम दोनों वायुपुत्र हनुमान जी के साथ जाओ और आदरपूर्वक जनकराजपुत्री सीता जी को ले आओ।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निशिचरी बिनीता।।
बेगि बिभीषन तिनहिं सिखाये। सादर तिन सीतहिं अन्हवाये।।
बहु प्रकार भूषन पहिनाए। शिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए।।
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही।।

भा०- प्रभु की आज्ञा से सभी लोग जहाँ श्रीसीता विराज रही थीं, वहाँ तुरन्त गये। सभी राक्षसियाँ आदर भाव से श्रीसीता की सेवा कर रही थीं। विभीषण जी ने उन राक्षसियों को शिक्षा दी कि अब श्रीसीता बन्दी नहीं हैं। जब से लंका में पधारी हैं तभी से उन्होंने कोई नित्य–क्रिया नहीं की है अर्थात् स्नान, जलपान आदि कुछ भी नहीं किया है, इन्हें स्नान कराओ। यह सुनकर राक्षसियों ने शीघ्रता से आदरपूर्वक श्रीसीता को स्नान कराया और बहुत प्रकार के आभूषण धारण कराये। फिर विभीषण जी सुन्दर पालकी सजाकर ले आये। वैदेही अर्थात् श्रीसीता की परछायीं स्वरूपा माया की सीता जी हृदय में सुख के आश्रय, स्नेहास्पद श्रीराम का स्मरण करके उस पालकी पर प्रसन्न होकर चढीं अर्थात् विराजमान हुईं।

बेतपानि रक्षक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा।।
देखन भालु कीस सब आए। रक्षक कोपि निवारन धाए।।

भा०- श्रीसीता के चारों ओर हाथ में बेंत की छड़ी लिए हुए रक्षक चल पड़े। सभी के मन में परम उल्लास था। श्रीसीता के दर्शनों के लिए सभी भालु–वानर पास आ गये। रक्षक लोग क्रुद्ध होकर उन्हें रोकने के लिए दौड़े।

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहिं सखा पयादे आनहु।।
देखहुँ कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुबीर गोसाईं।।
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन सुमन बहु बरषे।।

भा०- रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने कहा, हे मित्र विभीषण! मेरी बात मान लीजिये, श्रीसीता को पालकी से उतारकर पैदल ले आइये। सभी वानर सीता जी को अपनी माँ के समान देखें अर्थात् सभी रक्षकों को हटा दो।

कोई भी भालु–वानरों को श्रीसीता जी के दर्शनों से वंचित नहीं करे। सभी जीवों के प्रेरक और अखण्ड पृथ्वी के स्वामी भगवान् श्रीराम ने इस प्रकार हँसकर कहा। प्रभु के वचन सुनकर भालु–बन्दर प्रसन्न हुए। देवताओं ने आकाश से बहुत से पुष्पों की वर्षा की।

सीता प्रथम अनल महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी।।

दो०- तेहि कारन करुनायतन, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब, लागीं करै बिषाद।।१०८।।

भा०- अन्तर्मन के साक्षी भगवान् श्रीराम मायामयी सीता जी के हरण के पूर्व अग्नि में निवास करायी हुई वास्तविक श्रीसीता जनकनन्दिनी जी को अब प्रकट करना चाहते हैं। इसी कारण करुणा के आयतन अर्थात् मंदिर भगवान् श्रीराम ने माया की सीता जी को कुछ दुर्बाद अर्थात् दुर्बोध वचन कहे, जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता। प्रभु के वचन सुनकर सभी राक्षसियाँ विषाद करने लगीं।

प्रभु के बचन शीष धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी।।

भा०- मन, वाणी, शरीर से पवित्र माया की श्रीसीता प्रभु का आदेश सिर पर धारण करके बोलीं, हे लक्ष्मण! आज आप धर्म के नेगी हो जाइये अर्थात् उपहार में धर्म ले लीजिये, आप शीघ्र अग्नि को प्रकट कीजिये।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम नय सानी।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए।।

भा०- विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई श्रीसीता की वाणी सुनकर लक्ष्मण जी हाथ जोड़कर सजल नेत्र हो गये। वे भी उस समय भगवान् श्रीराम के सन्मुख कुछ भी नहीं कह सक रहे थे। श्रीराम का इच्छासूचक संकेत देखकर लक्ष्मण जी दौड़े। वे अग्नि को प्रकट करके बहुत से काष्ठ अर्थात् लकड़ियों को ले आये।

प्रबल अनल बिलोकि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।।
जौ मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृशानु सब कै गति जाना। मो कहँ होउ श्रीखंड समाना।।

भा०- अग्नि को प्रबल देखकर माया की सीता जी हृदय में प्रसन्न हुईं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। जनकनन्दिनी श्रीसीता जी के आवेश से माया की सीता जी बोलीं, हे अग्निदेव! यदि मन, वाणी और कर्म से मेरे हृदय में रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम को छोड़कर कोई दूसरा पुरुष गति अर्थात् गन्तव्य या आश्रय नहीं है तो सभी की मनःस्थिति जाननेवाले अग्निदेव आप मेरे लिए श्रीखण्ड के समान हो जाइये अर्थात् मैं 'श्री' यानी जनकनन्दिनी जी का खण्ड यानी प्रतिबिम्ब हूँ, अतः उन्हीं के खण्ड के रूप में आप हो जाइये, अपना अग्निभाव छोड़कर चन्दन बन जाइये।

छं०- श्रीखंड सम पावक प्रबेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेश महेश बंदित चरन रति अति निर्मली।।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभु चरित काहुँन लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।।१।।

भा०- जिनके श्रीचरणारविन्द की भक्ति अत्यन्त निर्मल है, ऐसे शिव जी द्वारा वन्दित अयोध्यापति भगवान् श्रीराम की जय बोलकर, प्रभु श्रीराम और मिथिलेशनन्दिनी वास्तविक श्रीसीता को स्मरण करके, चन्दन के समान शीतल

अग्नि में माया की सीता जी ने प्रवेश किया। श्रीसीता जी का प्रतिबिम्ब और श्रीलक्ष्मण जी के प्रति कटुवचन कहने के कारण उन माया की श्रीसीता जी पर लगा हुआ लौकिक कलंक यह सब प्रचण्ड अग्नि में जरे अर्थात् जल अथवा जड़ हो गये। प्रभु श्रीराम जी के इस चरित्र को किसी ने नहीं लखा। यद्यपि आकाश में खड़े हुए देवता, सिद्ध, मुनि सभी देख रहे थे।

छं०- तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति बिदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अतिशोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।२।।

भा०- इसके अनन्तर अग्निदेव ने ब्राह्मण का रूप धारण करके, जो वास्तविक जनकनन्दिनी श्रीसीता श्रुति में विदित हैं अर्थात् ऋग्वेद के परिशिष्ट में वर्णित श्रीसूक्त में जिनका प्रसिद्ध गुणगान है, उन्हीं जनकनन्दिनी श्रीसीता का पुत्रीभाव से हाथ पकड़कर भगवान् श्रीराम को उसी प्रकार समर्पित कर दिया, जैसे क्षीरसागर ने नारायण के हाथों में लक्ष्मी जी का समर्पण किया था। वह अग्नि से तत्काल प्रकट हुईं, अत्यन्त सुन्दर, अतिशय शोभावाली, भली अर्थात् भद्रता की सीमा जनकनन्दिनी श्रीसीता भगवान् श्रीराम के सुन्दर विशिष्ट वामभाग में इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं, मानो नीले कमल के निकट स्वर्णकमल की कलिका शोभित हो रही हो।

विशेष- निकट का तात्पर्य यह है कि यहाँ भगवती श्रीसीता जी श्रीराम जी से मान कर बैठी हैं अर्थात् रूठ गई हैं, क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में प्रभु ने अपनी बगल में माया की सीता जी को क्यों बैठाया?

दो०- हरषि सुमन बरषहिं बिबुध, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू, नाचहिं चढ़ी बिमान।।१०९(क)।।

भा०- देवता प्रसन्न होकर पुष्प बरसा रहे हैं, आकाश में नगारे बज रहे हैं, किन्नर गा रहे हैं और विमानों पर चढ़ी हुई देववधुयें नाच रही हैं।

श्री जानकी समेत प्रभु, शोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुख सार।।१०९(ख)।।

भा०- श्रीरुपिणी जानकी जी अर्थात् साकेतलोक की श्रीसीता से अभिन्न जनकनन्दिनी के सहित प्रभु श्रीराम कि असीम और अपार शोभा को देखकर भालु-वानर प्रसन्न हुए और बोलने लगे, हे सुखों के परमतत्त्व रघुकुल के पति श्रीराम! आपकी जय हो।

विशेष- पूर्व दोहे की अंतिम पंक्ति से दोहा १०९, ख पर्यन्त कहे हुए विशेष सिद्धान्तों को जानने के लिए हमारे द्वारा निबद्ध "***तुम पावक महँ करहु निवासा***" नामक मानस निबन्ध ग्रन्थ अवश्य पढ़िये।

तब रघुपति अनुशासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिर नाई।।

भा०- तब रघुपति अर्थात् प्राणिमात्र के पालक भगवान् श्रीराम की आज्ञा पाकर इन्द्र का सारथी मातलि प्रभु की द्वन्द्वयुद्ध लीला में सारथी की भूमिका निभाकर प्रभु के श्रीचरणों में सिर नवाकर और इन्द्र का रथ लेकर इन्द्रलोक चला गया।

आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी।।

भा०– इसके बाद ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी, सूर्य, गणपति तथा कार्तिकेय इन छह भगवद्भक्त देवताओं को छोड़कर शेष, रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, सिद्ध, पितृदेवता, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, मरुत्, विश्वदेव, अश्विनी कुमार आदि सदैव अपने ही प्रयोजनों में लगे हुए तथा चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, अग्नि, वरुण, काल, यम, धर्म आदि सदैव स्वार्थसाधन में लगे हुए देवगण, स्वर्ग से उतरकर लंका के समरांगण में भगवान् श्रीराम के पास आये। वे इस प्रकार वचन कहने लगे, मानो परमार्थवादी मोक्ष के चिन्तक, वीतराग ज्ञानी हों। देवताओं ने प्रभु श्रीराम द्वारा दस मुखवाले रावण का वध किये जाने पर श्रीराघव के श्रीचरणों में दस पंक्तियों की स्तुति प्रस्तुत की। अथवा, दस इन्द्रियों के देवताओं ने, किंवा दस दिग्पालों ने दस चौपाईयों में भगवान् श्रीराम की स्तुति की, जो दिग्पाल पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्व के इन्द्र, पूर्व–दक्षिण कोण के अग्नि, दक्षिण के यम, दक्षिण–पश्चिम कोण के निर्ऋति, पश्चिम के वरुण, पश्चिम–उत्तर के वायु, उत्तर के कुबेर और उत्तर–पूर्व के ईशान, पाताल के शेष और आकाश के विष्णु नाम से जाने जाते हैं।

दीन बंधु दयालु रघुराया। देव कीन्ह देवन पर दाया।।
बिश्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी।।

भा०– देवता बोले, हे दीनबन्धु अर्थात् दीनजनों के बान्धव, कुटुम्बिक पारिवारिक सदस्य यानी दीनों की प्रत्येक विपत्ति में साथ देनेवाले, हे दयालु! हे रघुकुल के राजा तथा रघु शब्द के वाच्यार्थ जीवों के राया अर्थात् परमधन! हे देव श्रीरघुनाथ! आपने चारों वर्ण चारों वेद, चारों अश्व के द्रोही, जय, जलन्धर, रुद्रगण और प्रतापभानु की अवतारशक्ति से संयुक्त रावण को मारकर हम देवों पर बड़ी दया की है। हे भगवन्! विश्व का द्रोह करने वाला, खल–प्रकृतिवाला और निन्दित काम से युक्त कुमार्ग पर चलने वाला, यह दुष्ट रावण अपने ही पाप से चला गया। आप तो केवल निमित्त बने। रावण के पाप–परिणाम ने ही आपके बाण बनकर रावण का वध कर दिया।

तुम समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघशक्ति करुनामय।।

भा०– हे प्रभु! आप समरूप हैं अर्थात् आपका रूप सर्वत्र सामान्य रूप से विद्यमान है, अथवा, समता ही आपका स्वरूप है। आप ब्रह्म हैं अर्थात् आपसे बड़ा कोई है ही नहीं। आप अविनाशी तत्त्व हैं, कोई आपका विनाश नहीं कर सकता। आप सदैव सामान्य रूप से आनन्दस्वरूप हैं और आपका रस अर्थात् आनन्द एक यानी अद्वितीय है। आप स्वभाव से उदासीन अर्थात् शत्रु–मित्र, सुख–दुःख, प्रिय–अप्रिय, शीत–उष्ण आदि द्वन्द्वों से उदासीन अर्थात् दूर रहते हैं। अथवा, आप उपरिआस्त अर्थात् संसार की सभी मान्यताओं से ऊपर हैं। हे भगवन्! आप अकल अर्थात् समस्त कलाओं को अव्यक्त रखकर ही विराजते हैं। आप प्राकृत सत्व, रजस, तमस नामक मायागुणों से परे हैं। आप अज अर्थात् अजन्मा तथा 'अ' अर्थात् विष्णु के 'ज' अर्थात् जन्मदाता हैं। आप अनघ अर्थात् पाप से रहित हैं। आप अनामय अर्थात् संसार के आमयों यानी रोगों से रहित हैं तथा रावण के साथ संग्राम करने पर भी आप अनामय अर्थात् आमयों (घावों) से दूर ही रहे। आप अजित हैं अर्थात् किसी से भी नहीं जीते जा सकते हैं। आपकी शक्ति अमोघ है। आप करुणामय अर्थात् प्रचुर करुणा से युक्त हैं।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परशुराम बपु धरी।।
जब जब नाथ सुरन दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहिं नसायो।।

भा०– हे प्रभु! आपने ही मत्स्य, कच्छप, सूकर (वराह), नृसिंह, वामन तथा परशुराम जी का रूप धारण किया है। हे नाथ! जब–जब देवताओं ने असुरों से दुःख पाया तब–तब आपने ही नाना शरीर धारण करके देवताओं के दुःख दूर किये।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही।।
अधम शिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा।।

भा०– हे रघुनाथ जी! यह रावण, प्रकृति से खल, मलों से युक्त, सदैव देवद्रोही, काम, लोभ और मद में लगा हुआ और उनमें अनुराग करने वाला, अत्यन्त क्रोधी तथा अधम प्राणियों का भी शिरोमणि था, फिर भी आपका पद अर्थात् साकेतलोक पा गया। हमारे मन में यह बहुत–बड़ा आश्चर्य उत्पन्न हो आया है।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।।
भव प्रबाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि शरन अनुसरे।।

भा०– इसके ठीक विपरीत हम देवताओं अर्थात् देवयोनि में शरीर धारण करके भी, आपश्री की भक्ति के परम अधिकारी होकर भी, स्वार्थ में अनुराग करने के कारण, आप जैसे सर्वसमर्थ प्रभु की प्रेमलक्षणा भक्ति भूलकर सदैव भवसागर के प्रवाह में पड़े रहते हैं। हे प्रभु श्रीराघव! अब हमें भवशून्य में डूबने से बचा लीजिये। हमारी रक्षा कर लीजिये। अब हम आपके शरणागत हैं। आपकी शरणागति को अनुकूलता से स्वीकार कर रहे हैं। आपकी शरण में अनुसृत हैं अर्थात् आये हैं।

दो०– करि बिनती सुर सिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि, अस्तुति करत बहोरि।।११०।।

भा०– इस प्रकार से प्रभु श्रीराम की विनती अर्थात् स्तुति एवं प्रार्थना करके सभी देवता और सिद्ध जहाँ–तहाँ हाथ जोड़कर चुपचाप खड़े रहे। फिर अत्यन्त प्रेम से रोमांचित शरीर हुए ब्रह्मा जी भी भगवान् श्रीराम की स्तुति करने लगे।

छं०– जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।।
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो।।१।।

भा०– ब्रह्मा जी त्रोटक वृत्त में स्तुति करते हुए बोले, हे सुख के भवन! हे हरे! हे रघुकुल के स्वामी! हे बाण–धनुर्धारी! हे संसाररूप हाथी को विदीर्ण करने के लिए सिंहस्वरूप सर्वसमर्थ प्रभु! हे सद्गुणों के समुद्र! हे परम चतुर! हे नाथ! हे विभो अर्थात् व्यापक और सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ संयोग सम्बन्ध से विराजने वाले प्रभु श्रीराम! आप सदैव सर्वोत्कृष्ट रहें अर्थात् आपकी सदैव जय हो।

छं०– तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी।।
जस पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा।।२।।

भा०– हे भगवन्! आपके शरीर की अनेक कामदेवों के समान उपमारहित छवि है। सभी सिद्ध, श्रेष्ठमुनि तथा कवि अर्थात् मनीषी और साहित्य रचनाधर्मी लोग आपके गुणों को गाते रहते हैं। आपका यश पावन है अर्थात् सभी को पवित्र करता रहता है। आपने रावण रूप महासर्प को गरुड़ जी की भाँति क्रोध करके पकड़ लिया और मार डाला, ऐसे प्रभु श्रीराम! आपकी सदा ही जय हो।

छं०– जन रंजन भंजन शोक भयम्। गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयम्।।
अवतार उदार अपार गुनम्। महि भार बिभंजन ग्यानघनम्।।३।।
अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा।।
रघुबंश बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा।।४।।

भा०– हे भक्तों को आनन्द देने वाले! शोक और भय को दूर करने वाले, क्रोध से रहित, ज्ञान की प्रचुरता से युक्त और ज्ञानस्वरूप उदार अवतारों वाले! अपार गुणों वाले, पृथ्वी का भार नष्ट करने वाले, ज्ञान के घनीभूत

विग्रह तथा ज्ञान के मेघस्वरूप, अजन्मा और 'अ' अर्थात् विष्णु के भी जन्मदाता, सर्वव्यापक, एक अर्थात् अद्वितीय तथा 'ए' यानी विष्णु को भी 'क' अर्थात् सुख देनेवाले आदि से रहित, करुणा की खानि, ऐसे आप परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम को मैं ब्रह्मा प्रसन्नता के साथ सदा नमन करता हूँ। जो आप सूर्यकुल के विशिष्ट अलंकार हैं, जिन आपश्री ने दूषण अर्थात् दोषों के आकार स्वरूप खर–दूषणों को युद्ध में मारा है। जो प्रथम अत्यन्त दीन अर्थात् सभी अभावों से ग्रस्त थे उस विभीषण को जिन आपश्री ने लंका का राजा बना दिया, ऐसे आपश्री को मैं ब्रह्मा सदैव नमन करता हूँ।

छं०- गुन ग्यान निधान अमान अजम्। नित राम नमामि बिभुं बिरजम्।।
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलम्। खल बृंद निकंद महा कुशलम्।।५।।
बिनु कारन दीन दयाल हितम्। छबि धाम नमामि रमा सहितम्।।
भव तारन कारन काज परम्। मन संभव दारुन दोष हरम्।।६।।

भा०- गुणों और ज्ञान के कोश, मानरहित, अज अर्थात् सांसारिकों की भाँति न जन्म लेनेवाले, ऐसे 'वि' अर्थात् विष्णु को 'भू' अर्थात् जन्म देने वाले, विरज अर्थात् रजोगुण से रहित तथा माया की धूलि से रहित। प्रचण्ड भुजाओं से सम्पन्न तथा प्रचण्ड भुजाओं के प्रताप और बल से सम्पन्न, दुष्ट समूहों के विनाश में अत्यन्त कुशल आप श्रीराम को मैं निरन्तर नमन करता हूँ। बिना किसी कारण के दीनों पर दया करने वाले और सबके हितैषी रमा अर्थात् 'रकार' पद के वाच्य आपश्री की 'मा' अर्थात् परम आह्लादिनी शक्ति भगवती श्रीसीता के साथ वर्तमान, छवि के आश्रय। संसार–सागर से तारने वाले, जगत के जन्म, स्थिति और प्रलय के कारण स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर से परे एवं उनके भी कारण रूप संसार से परे अथवा, निमित्तोपादान कारणों से तथा उनके द्वारा सृष्ट संसार के कार्य से परे, मन से उत्पन्न भयंकर दोषों को हरनेवाले, ऐसे आप श्रीराम को मैं ब्रह्मा प्रणाम करता हूँ।

छं०- शर चाप मनोहर तून धरम्। जलजारुन लोचन भूपबरम्।।
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनम्। मद मार मुधा ममता शमनम्।।७।।

भा०- धनुष–बाण और सुन्दर तरकस को धारण करने वाले, कमल के सामन सुन्दर और लाल नेत्रों वाले, श्रेष्ठ राजा, सुखों के मन्दिर, अत्यन्त सुन्दर, श्री अर्थात् भगवती श्रीसीता को भी रमाने वाले तथा नित्य श्रीसीता में ही रमने वाले, मद, काम और झूठी सांसारिक ममता को नष्ट कर देने वाले, ऐसे आप भगवान् श्रीराम को मैं ब्रह्मा निरन्तर नमन करता हूँ।

छं०- अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न सो।।
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा।।८।।

भा०- हे प्रभु ! आप अनवद्य अर्थात् निन्दारहित हैं, आप अखण्ड हैं अर्थात् कोई आपका खण्डन नहीं कर सकता। आप न तो इन्द्रियों के विषय हैं और न इन्द्रिय हैं। आप सदैव सर्वरूप हैं, परन्तु वह सब आप नहीं हैं अर्थात् उससे भी आप विलक्षण हैं। तात्पर्य यह है कि विभूति की दृष्टि से पृथ्वी आदि पंचभूत, शब्दादि पंचतन्मात्रायें यह सब आप हैं, परन्तु परमार्थतः यह सब आपका अंश है। आपका शुद्धस्वरूप अपरिणामी है। आप जगत से सूर्य और सूर्य की किरण की भाँति भिन्न भी हैं और अभिन्न भी अर्थात् सूर्य और किरण को सम्बन्ध में बाँधना एकता है, पर किरण सूर्य नहीं हो सकता और सूर्य किरण नहीं हो सकता। यह वेद कहते हैं, कोई दन्तकथा अर्थात् दाँतों से गढ़ी हुई कपोल कल्पित कथा नहीं है।

छं०- कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर जे।।
धिग जीवन देव शरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।९।।
अब दीनदयाल दया करिये। मति मोरि बिभेदकरी हरिये।।
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिये। दुख सो सुख मानि सुखी चरिये।।१०।।

भा०- हे प्रभु! जो आदरपूर्वक आपका श्रीमुख निहार रहे हैं, ये वानर कृतकृत्य हैं अर्थात् इन्होंने अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्य पूरे कर लिए। हे हरे! हमारे देवशरीर को धिक्कार है, क्योंकि हम आपकी भक्ति के बिना ही संसार सागर में भूले पड़े हैं। हे दीनों पर दया करनेवाले प्रभु! मेरी विशिष्ट भेद उत्पन्न करने वाली और उसके कारण स्वरूप भ्रमबुद्धि को दूर कर दीजिये, जिस बुद्धि से विपरीत क्रिया की जा रही है और दु:ख को भी सुख मानकर अर्थात् दु:खरूप संसार को सुखरूप समझकर, दु:खी होकर भी सुख की आशा में हम भटक रहे हैं। तात्पर्य यह है कि भक्ति में हमें भेद स्वीकार है, पर बुद्धि में अभेद अर्थात् संसार को आप श्रीराम का रूप मानकर उसकी मैं भगवद्बुद्धि से सेवा कर सकूँ। भक्ति में सेवक–सेव्यभावमूलक स्वरूप से भेद हो और बुद्धि में सम्बन्ध निबन्धन अभेद हो।

छं०- खल खंडन मंडल रम्य छमा। पद पंकज सेवित शंभु उमा।।
नृप नायक दे बरदानमिदम्। चरनांबुज प्रेम सदा शुभदम्।।११।।

भा०- हे दुष्टों को नष्ट करने वाले! हे पृथ्वी के आभूषण! हे रमणीय! हे शिव जी तथा पार्वती जी द्वारा सेवित श्रीचरणकमल! हे राजाओं के भी राजा, राजाधिराज महाराज भगवान् श्रीराम! सदैव सभी शुभमंगलों को देने वाला आपके श्रीचरणकमलों का प्रेम मुझे निरन्तर प्राप्त होता रहे, मुझे यही वरदान दे दीजिये।

दो०- बिनय कीन्ह विधि भाँति बहु, प्रेम पुलक अति गात।
शोभासिंधु बिलोकत, लोचन नहीं अघात।।१११।।

भा०- प्रेम से अत्यन्त पुलकित शरीर वाले ब्रह्मा जी ने चारों मुख से भगवान् श्रीराम की अनेक प्रकार से स्तुति की। शोभा के सागर भगवान् श्रीराम को निहारते हुए ब्रह्मा जी के आठों नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आशिरबाद पिता तब दीन्हा।।

भा०- उसी समय समरांगण में इन्द्र के सहित महाराज दशरथ जी आ गये। अपने पुत्र श्रीराम, लक्ष्मण और पुत्रवधू श्रीसीता जी को देखकर महाराज के नेत्रों में अश्रु भर आये। छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित श्रीसीताराम जी ने पिता को वन्दन किया तब पिताश्री ने आशीर्वाद दिया।

विशेष- यहाँ प्रभु शब्द श्रीराम एवं श्रीसीता दोनों का वाचक है तथा *प्रभ्वि च प्रभुश्च इति प्रभु* इस प्रकार से विग्रह करके *"पुमान् स्त्रिया"*, (पा०अ० १.२.६७.) द्वारा प्रभ्वि शब्द का लोप होने से एकशेष की विधा से सीताराम दोनों का अर्थवाचक हो गया। अथवा, *"अग्नौअधीयत् इति हिता सीता तया सह वर्तमान इति सहित:"* अर्थात् जिन्हें प्रभु श्रीराम ने राक्षस–वध से पूर्व अग्नि में वास दिया और जो प्रभु की परमहितैषिणी हैं उन श्रीसीता जी को संस्कृत में हिता कहा जाता है, उन्हीं हिता यानी सीता जी के साथ वर्तमान भगवान् श्रीराम को यहाँ सहित कहा गया है। अत: प्रभु ने अनुज यानी छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ तथा सहित अर्थात् पूर्व में अग्नि में निवास करके अभी–अभी अग्नि से प्रकट हुईं नित्य हितैषिणी सीता जी के साथ पूज्य पिताजी को वन्दन किया।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यो अजय निशाचर राऊ।।
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा, हे पिताश्री! यह सब आपके पुण्य का प्रभाव है, जिससे मैंने अजेय राक्षसराज रावण को जीत लिया। पुत्र श्रीराम के वचन सुनकर चक्रवर्ती दशरथ जी के मन में अत्यन्त प्रीति बढ़ गयी। नेत्र सजल हो उठे और रोमावलियाँ खड़ी हो गईं।

रघुपति प्रथम प्रेम बश जाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।।
ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दशरथ भेद भगति मन लायो।।
सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भगति निज देहीं।।
बार बार करि प्रभुहिं प्रनामा। दशरथ हरषि गए सुरधामा।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने पिताश्री को प्रथम प्रेम अर्थात् श्रेष्ठ वात्सल्यभाव से युक्त प्रेम के वश में जाना और अपनी कृपामय दृष्टि से निहारकर पिताश्री को दृढ़ ज्ञान दे दिया। हे पार्वती! प्रभु के ज्ञान देने पर भी दशरथ जी इसलिए मोक्ष नहीं पाये, क्योंकि उन्होंने भेदभक्ति अर्थात् सेव्य–सेवकभाव सम्बन्धमूलक भगवद्भक्ति में मन लगा रखा था। सगुणब्रह्म के उपासक मोक्ष नहीं लेते, उन्हें भगवान् श्रीराम अपनी भक्ति दे देते हैं। भगवान् श्रीराम को बारम्बार प्रणाम करके महाराज दशरथ जी प्रसन्न होकर सुरधाम अर्थात् देवताओं को भी जिससे प्रकाश मिलता है, ऐसे साकेतधाम को चले गये।

विशेष– ''*सुराः देवाः तेभ्यो धाम प्रकाशः यस्मात् तत् सुरधाम*''अर्थात् देवताओं को भी जिससे प्रकाश मिलता है उस साकेत धाम को यहाँ सुरधाम कहा गया है।

दो०– अनुज जानकी सहित प्रभु, कुशल कोसलाधीश।
शोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईश।।११२।।

भा०– छोटे भाई लक्ष्मण जी और भगवती श्रीसीता के सहित सकुशल अयोध्यापति भगवान् श्रीराम की शोभा देखकर देवताओं के राजा इन्द्र मन में प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथ जी की स्तुति करने लगे।

विशेष– अयोध्या को संस्कृत में कोसला भी कहते हैं।

छं०– जय राम शोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम।।
धृत तूण बर शर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप।।१।।

भा०– हे शोभा के धाम! हे शरणागतों को विश्राम देने वाले! हे तरकस, श्रेष्ठ बाण और धनुष धारण करने वाले, प्रबल प्रताप से युक्त भुजदण्ड वाले प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो।

जय दूषनारि खरारि। मर्दन निशाचर धारि।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ।।२।।

भा०– हे दूषण के शत्रु! हे खर राक्षस के शत्रु! हे राक्षसी सेना को मारने वाले प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट रावण को मार डाला इससे सम्पूर्ण देव सनाथ हो गये।

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार।।
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल।।३।।
लंकेश अति बल गर्ब। किए बश्य सुर गंधर्ब।।
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब के लाग।।४।।

भा०– हे पृथ्वी का भार हरण करने वाले! हे उदार तथा अपार महिमा वाले! रावण के शत्रु कृपालु श्रीराम! आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बिहाल अर्थात् विह्वल कर दिया। लंकापति रावण अत्यन्त बल और गर्व से युक्त था, उसने देवता और गन्धर्वों को अपने वश में कर लिया था। मुनि, सिद्ध, देवता, पक्षी और नाग इन सबके मार्ग में हठपूर्वक लग जाता था अर्थात् रावण सबका मार्ग रोक लेता था।

विशेष– बिहाल शब्द विह्वल शब्द का अपभ्रंश है।

परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फल पापीष्ट।।
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिशाल।।५।।
मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान।।
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज।।६।।

भा०– परद्रोह में लगा हुआ और पापियों को ही इष्ट मानने वाला अत्यन्त पापी वह रावण भी परमपद को प्राप्त हो गया। हे विशाल लाल कमल के समान नेत्रवाले दीनों पर दयालु भगवान् श्रीराम! अब सुनिये, प्रथम मुझ इन्द्र को बहुत अभिमान था कि मेरे समान संसार में कोई नहीं है, परन्तु अब आप प्रभु श्रीराम के श्रीचरणकमलों को देखकर दु:ख समूहों को देने वाला मेरा अभिमान चला गया।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहिं श्रुति गाव।।
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।।७।।

भा०– भले कोई उस हेय गुणों से रहित अव्यक्त प्रभु का ध्यान करता हो, जिसे वेद इन्द्रियों से परे कहकर गाते हैं, परन्तु मुझे तो सगुण-साकार अयोध्यापति आप श्री राजा राम ही भाते हैं।

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहु निकेत।।
मोहि जानिये निज दास। दे भक्ति रमानिवास।।८।।

भा०– विदेहनन्दिनी श्रीसीता और लक्ष्मण जी के सहित आप श्रीराम मेरे हृदय में निवास कीजिये। मुझे अपना दास जान लीजिये और हे श्रीसीता के भी निवास स्थान प्रभु श्रीराम! मुझे अपनी भक्ति दे दीजिये।

छं०– दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन शरन सुखदायकम्।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकम्।।
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुज तनु अतुलितबलम्।
ब्रह्मादि शङ्कर सेब्य राम नमामि करुना कोमलम्।।

भा०– हे रमानिवास अर्थात् परमआह्लादिनी शक्ति श्रीसीता के निवास स्थान श्रीराम! आप अपनी भक्ति दीजिये। मैं त्रासों को हरण करने वाले, शरणागतों को सुख देने वाले, सुखों के धाम, अनेक कामों की छवि को धारण करने वाले रघुकुल के नायक आपश्री राम जी को नमन करता हूँ। देवतासमूहों को आनन्द देने वाले, द्वन्द्वों को नष्ट करने वाले, अतुलित बल वाले, ब्रह्मा जी और शिव जी के सेव्य, करुणा के कारण कोमल, ऐसे मानव शरीरधारी आप श्रीराम को मैं नमन करता हूँ।

दो०– अब करि कृपा बिलोकि मोहि, आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन, बोले दीनदयाल।।११३।।

भा०- इन्द्र ने कहा, हे प्रभु श्रीराम! अब कृपा करके, मुझे देखकर अर्थात् अपनी कृपादृष्टि से निहारकर आप आज्ञा दीजिये। मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? इस प्रकार इन्द्र के प्रिय वचन सुनकर दीनों पर दया करने वाले भगवान् श्रीराम बोले-

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निशिचरनि जे मारे।।
मम हित लागि तजे इन प्राना। सकल जियाउ सुरेश सुजाना।।

भा०- हे देवराज इन्द्र! सुनिये, जिन्हें राक्षसों ने मारा, ऐसे हमारे वानर और भालु पृथ्वी पर पड़ गये हैं। इन्होंने मेरे हित के लिए अपने प्राण छोड़ दिये हैं, हे चतुर इन्द्र! इन सबको जीवित कर दीजिये।

सुनु खगपति प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी।।
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई। केवल शक्रहिं दीन्ह बड़ाई।।

भा०- हे गरुड़ देव! सुनिये, भगवान् श्रीराम की यह वाणी अत्यन्त अगाध अर्थात् गम्भीर है। इसे ज्ञानीमुनि ही जान सकते हैं। प्रभु श्रीराम तीनों लोकों को मारकर जीवित कर सकते हैं। उनके लिए वानरों को जीवित करना कोई कठिन नहीं था, वे तो केवल इन्द्र को बड़प्पन देना चाह रहे थे।

सुधा बरषि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए।।
सुधाबृष्टि भै दुहुँ दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।

भा०- इन्द्र ने अमृत की वर्षा करके सभी रणभूमि में मरे हुए वानर-भालुओं को जीवित कर दिया। वे सब प्रसन्न होकर उठे और प्रभु श्रीराम के पास आ गये। दोनों अर्थात् श्रीराम-रावणदल के ऊपर अमृत की वर्षा हुई, परन्तु भालु-वानर तो जीवित हो उठे, किन्तु राक्षस नहीं जीवित हुए।

रामाकार भए तिन के मन। गए परमपद तजि शरीर रन।।
सुर अंशक सब कपि अरु ऋच्छा। जिए सकल रघुपति की इच्छा।।

भा०- राक्षसों के मन श्रीरामाकार हो गये थे अर्थात् श्रीराम का चिन्तन करते-करते राक्षसों के मन में श्रीराम का आकार यानी रूप आ गया था, इसलिए युद्ध में शरीर छोड़कर राक्षस परमपद को प्राप्त हो गये थे। इधर सभी वानर और भालु देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे, इसलिए भगवान् श्रीराम की इच्छा से ये सब जीवित हो उठे।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निशाचर झारी।।
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पाव न।।

भा०- श्रीराम के समान दीनों का हितकारी और कौन होगा, जिन्होंने सम्पूर्ण राक्षसों को मुक्त कर दिया? जो मलों के आश्रय, काम, भोग में लगा हुआ खल प्रकृति का था, वह रावण भी वह गति पा गया जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।

दो०- सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहिं, आयउ शंभु सुजान।।११४(क)।।
परम प्रीति कर जोरि जुग, नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिरा, बिनय करत त्रिपुरारि।।११४(ख)।।

भा०- सभी देवता पुष्पों की वर्षा करके सुन्दर विमानों पर चढ़कर अपने-अपने लोक चले गये। तब सुन्दर अवसर देखकर चतुर शिव जी भगवान् श्रीराम के पास आये। परमप्रेम के साथ दोनों हाथ जोड़कर कमल नेत्रों में

आँसू भरकर रोमांचित शरीर होकर गद्‌गद वाणी से त्रिपुरासुर के शत्रु भगवान् श्रीशङ्कर प्रभु श्रीराम से विनय करने लगे।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संशय बिपिन अनल सुर रंजन।।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन।।

भा०- श्री शिव जी बोले, हे रघुकुल के नायक! हे श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाणों को हाथ में धारण करने वाले! हे श्रीराघवेन्द्र सरकार! मेरी अभीष्ट तथा अभितः अर्थात् काम और क्रोध नामक दोनों शत्रुओं से रक्षा कीजिये। अथवा, हे रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम! हाथ में धारण किये हुए श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाणों द्वारा मेरी रक्षा कराइये। हे मोहरूप विशाल बादलसमूहों के वायु अर्थात् जिस प्रकार वायु बादलों को तितर-बितर कर देता है, उसी प्रकार महामोह समूहों को नष्ट करने वाले! हे संशयरूप वन के लिए अग्निस्वरूप! हे देवताओं को आनन्द देने वाले प्रभु श्रीराम! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे निर्गुण और सगुण सभी श्रेष्ठ गुणों के मन्दिर, स्वभाव से सुन्दर, भ्रमरूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए प्रबल प्रताप वाले सूर्य! हे काम, क्रोध, मद रूप हाथियों को नष्ट करने के लिए सिंह के समान श्रीराम! आप भक्तों के मनरूप वन में निरन्तर निवास कीजिये।

बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।।
भव बारिधि मंदर परमन्दर। बारय तारय संसृति दुस्तर।।

भा०- विषयों के मनोरथरूप कमल वन को नष्ट करने के लिए प्रबल हिमपात स्वरूप (पाला), मन से परे, भवसागर को मथने के लिए मन्दराचल के समान हे प्रभु श्रीराम! संसारभाव के कारण अतरनीय, इस बहुत-बड़े कष्ट से हमको तार दीजिये और बहुत-बड़े भय को समाप्त कर दीजिये।

श्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन।।
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।

भा०- हे श्यामल शरीर वाले! हे लाल कमल के समान विमल नेत्रों वाले! हे दीनबन्धु! हे प्रणतों का कष्ट दूर करने वाले! हे राजाराम! आप लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ मेरे हृदय में निरन्तर वास कीजिये।

मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसीदास प्रभु त्रास बिखंडन।।

दो०- नाथ जबहिं कोसलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार।।११५।।

भा०- हे मुनियों को आनन्दित करने वाले तथा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को अलंकृत करने वाले! हे प्रभु! हे मुझ तुलसीदास के त्रास को नष्ट करने वाले! आप मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार स्तुति करके शिवजी फिर बोले-हे कृपा के सागर श्रीरघुनाथ! जब आपका श्रीअयोध्या में राजतिलक होगा, तब मैं आपके उदार चरित्र को देखने आऊँगा।

करि बिनती जब शंभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषन आए।।
नाइ चरन सिर कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारंगपानी।।

भा०- जब प्रभु श्रीराम की स्तुति करके शिवजी कैलाश पधार गये तब विभीषण जी प्रभु श्रीराम के निकट आ गये और प्रभु के श्रीचरणों में मस्तक नवाकर कोमल वाणी में बोले, हे शार्ङ्गपाणे प्रभु! एक मेरी प्रार्थना सुनिये।

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जस त्रिभुवन बिस्तार्‌यो।।
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्ह बहु भाँती।।

भा०– हे प्रभु! आपने परिवार और दल के सहित रावण का वध किया और तीनों लोकों में अपने पवित्र यश का विस्तार किया। हे प्रभु! सभी साधनों से हीन, मल से युक्त और सब प्रकार से दीन और जाति से भी निकृष्ट मुझ विभीषण पर आपने सब प्रकार से कृपा की है।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जन करिय समर श्रम छीजे।।
देखि कोश मंदिर संपदा। देहु कृपालु कपिन कहँ मुदा।।

भा०– हे प्रभु श्रीराम! अब मुझ दास का घर पवित्र कीजिये, स्नान कर लीजिये जिससे युद्ध का श्रम समाप्त हो जाये। हे कृपालु! लंका के कोष, मन्दिर और सम्पत्ति का निरीक्षण करके आप प्रसन्नतापूर्वक वानरों को उपहार दीजिये।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।।
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिशाला।।

भा०– हे नाथ! मुझे सब प्रकार से स्वीकार कीजिये, फिर मेरे सहित अयोध्या प्रस्थान कीजिये। विभीषण जी के कोमल वचन सुनकर दीनदयाल श्रीराम के विशाल दोनों नेत्र आँसुओं से भर गये। प्रभु बोले–

दो०– तोर कोश गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात।
दशा भरत की सुमिरि मोहि, निमिष कलप सम जात।।११६(क)।।

भा०– हे विभीषण भैया! यह सत्य वचन सुनिये, आपका कोष और गृह यह सब मेरा ही है, परन्तु भरत की दशा का स्मरण करते हुए मुझे एक–एक क्षण कल्प के समान बीत रहा है।

तापस बेष शरीर कृश, जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतन करू, सखा निहोरउँ तोहि।।११६(ख)।।

भा०– भरत का वेश तपस्वियों जैसा है, उनका शरीर दुर्बल हो गया है, वे निरन्तर मेरा ही अर्थभावना के साथ स्मरण कर रहे हैं, मैं शीघ्र उन्हें देख सकूँ वही यत्न कीजिये। हे मित्र! मैं बार–बार आपसे निहोरा कर रहा हूँ।

बीते अवधि जाउँ जौ, जियत न पावउँ बीर।
प्रीति भरत की सुमिरि प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर।।११६(ग)।।

भा०– यदि मैं चौदह वर्ष बीतने पर अयोध्या जाता हूँ तब अपने भैया भरत को जीवित नहीं पाऊँगा। भरत की प्रीति का स्मरण करके प्रभु श्रीराम के शरीर में बारम्बार रोमांच हो रहा है।

करहु कलप भरि राज तुम, मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम सिधायिहहु, जहाँ संत सब जाहिं।।११६(घ)।।

भा०– हे विभीषण! तुम एक कल्पपर्यन्त राज्य करो। मन में मेरा स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे उसी धाम को जाओगे जहाँ सभी सन्त जाते हैं।

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के।।
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने।।

भा०– श्रीराम के वचन सुनकर विभीषण जी ने प्रसन्न होकर कृपा के भवन भगवान् श्रीराम के श्रीचरण पकड़ लिए और सभी वानर–भालु भी बहुत प्रसन्न हुए। पुनः प्रभु के श्रीचरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान किया।

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो।।
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाखा।।

भा०– फिर विभीषण जी लंका के राजभवन में गये और पुष्पक विमान में मणियों के समूह और वस्त्रों को भरवाया। पुष्पक विमान ले आकर प्रभु के आगे रख दिया, तब कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने हँसकर कहा–

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन।।
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं। बरषि दिए मनि अंबर सबहीं।।

भा०– हे मित्र विभीषण! सुनिये, विमान पर चढ़ आकाश में जाकर वस्त्रों और आभूषणों की वर्षा कीजिये। उसी समय आकाश में जाकर विभीषण जी ने सबके लिए मणियों और वस्त्रों की वर्षा कर दी अर्थात् ऊपर से फेंककर सभी वानर–भालुओं को वस्त्र दे दिये।

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं।।
हँसे राम श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता।।

भा०– जिसको–जिसको जो–जो मन भा रहा है, वानर–भालु वही वस्त्र और वही मणि ले रहे हैं। वानर मणियों को मुँह में भरकर फिर उगल देते हैं। परमकौतुकी अर्थात् खेल के रसिक कृपा के मन्दिर भगवान् श्रीराम, श्रीसीता एवं लक्ष्मण जी के साथ वानरों की यह लीला देखकर हँसने लगे।

दो०– मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन सन, करत अनेक बिनोद।।११७(क)।।

भा०– हे पार्वती! जिन्हें मुनि लोग ध्यान में भी नहीं प्राप्त कर पाते और वेद 'नेति–नेति' कहकर जिनका गुणगान करते हैं। वे ही कृपा के सागर भगवान् श्रीराम आज वानरों से अनेक विनोद कर रहे हैं।

उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम।।११७(ख)।।

भा०– हे पार्वती! योग, जप, दान, तप नाना प्रकार के यज्ञ, व्रत और नियमों से भी भगवान् श्रीराम वैसी कृपा नहीं करते जैसी कि, शुद्धप्रेम से कृपा कर देते हैं।

भालु कपिन पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए।।
नाना जिनिस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा।।

भा०– भालु और वानर विभीषण जी से प्राप्त किये हुए वस्त्र और आभूषण पहन–पहनकर रघुपति भगवान् श्रीराम के पास आ गये। नाना प्रकार के रंग–बिरंगे वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए सभी वानरों को देखकर अयोध्यापति भगवान् श्रीराम बारम्बार हँस रहे हैं।

चितइ सबनि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया।।
तुम्हरे बल मैं रावन मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो।।
निज निज गृह अब तुम सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू।।
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर।।

भा०– सभी लोगों को कृपादृष्टि से देखकर प्रभु ने दया की। फिर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम कोमल वाणी में बोले, हे वानर भाइयों! हमने तुम्हारे ही बल से रावण को मारा। पुनः विभीषण जी को लंका का राज्यतिलक दे दिया। अब तुम लोग अपने–अपने घर जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से भी मत डरना। प्रभु का यह वचन सुनकर प्रेम में अकुलाये हुए वानर–भालु हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले–

प्रभु जोइ कहहु तुमहिं सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा।।
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम त्रैलोक ईश रघुनाथा।।

भा०- हे प्रभु! आप जो कह रहे हैं, वह सब आपके लिए शोभित हो रहा है, पर आपका यह वचन सुनकर हमें तो मोह हो रहा है। हे प्रभु! हे तीनों लोकों के ईश्वर! हे रघुनाथ जी! हम वानरों को दीन जानकर आप ने सनाथ कर दिया अर्थात् स्वयं हमारे स्वामी बनकर हमें नष्ट होने से बचा लिया।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मशक कबहुँ खगपति हित करहीं।।
देखि राम रुख बानर ॠच्छा। प्रेम मगन नहिं गृह कै इच्छा।।

भा०- हम तो आपका वचन सुनकर लज्जा से मरे जा रहे हैं। कभी छोटे मच्छर पक्षियों के राजा गरुड़ जी का हित कर सकते हैं? भगवान् श्रीराम का रुख देखकर वानर और भालु प्रेम में मग्न हो गये। उन्हें घर जाने की इच्छा नहीं रही।

दो०- प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि।।११८(क)।।

भा०- प्रभु श्रीराम से प्रेरित होकर, हृदय में श्रीराम के रूप को स्थापित करके, अनेक प्रकार से प्रार्थना के शब्द बोलकर, प्रभु के कार्य से प्रसन्नता और प्रभु के वियोग से विषाद के साथ सभी वानर-भालु अपने-अपने घरों को चल पड़े।

कपिपति नील रीछपति, अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान।।११८(ख)।।
कहि न सकहिं कछु प्रेम बश, भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन, नयन निमेष निवारि।।११८(ग)।।

भा०- सुग्रीव, नील, जाम्बवान, अंगद, नल, हनुमान जी और भी विभीषण जी के सहित जो यूथपति बलवान बन्दर थे, वे नेत्रों में आँसू भर-भरकर प्रेम के वश में होने के कारण प्रभु से कुछ भी नहीं कह सक रहे थे और अपने नेत्रों के पलकों को रोककर सन्मुख होकर भगवान् श्रीराम के श्रीविग्रह को निहार रहे थे।

अतिशय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई।।
मन महँ बिप्र चरन सिर नायो। उत्तर दिशिहिं बिमान चलायो।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने वानरों की अतिशय प्रीति देखकर, सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन में ही ब्राह्मणों के चरणों को प्रणाम किया और प्रभु ने उत्तर दिशा की ओर विमान चलाने की आज्ञा दी।

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहैं सब कोई।।

भा०- विमान के चलते समय कोलाहल हो रहा है, सभी वानर-भालु 'जय रघुवीर...जय रघुवीर' कह रहे हैं।

सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर।।
राजत राम सहित बर भामिनि। मेरु शृंग पर जनु घन दामिनि।।

भा०- उस पुष्पक विमान में एक सुन्दर ऊँचा सिंहासन है, उस पर श्रीसीता के सहित भगवान् श्रीराम बैठ गये। श्रेष्ठपत्नी श्रीसीता जी के साथ भगवान् श्रीराम सिंहासन पर उसी प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरु पर्वत के शिखर पर बादल और बिजली विराजमान हो रहे हों।

रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर।।
परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी।।

भा०– सुन्दर पुष्पक विमान अत्यन्त शीघ्रता से चला। देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने पुष्पवृष्टि की, अथवा प्रसन्न हुए देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। अत्यन्त सुख देने वाली तीनों प्रकार की शीतल मन्द सुगन्ध बयार (वायु) चलने लगी। समुद्र, नदी और तालाबों के जल निर्मल हो गये। चारों ओर से सुन्दर शकुन होने लगे, सबका मन प्रसन्न हो उठा और आकाश दिशा अत्यन्त निर्मल हो गई।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता।।
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निशाचर भारे।।
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई।।

भा०– भगवान् श्रीराम ने कहा, हे सीते! युद्धस्थल देखो, लक्ष्मण ने यहाँ मेघनाद को मारा है और यह देखो वीर हनुमान और अंगद के द्वारा मारे हुए बड़े-बड़े राक्षस युद्धभूमि में पड़े हैं और यहाँ देवता और मुनियों को दुःख देने वाले कुम्भकर्ण और रावण मारे गये।

विशेष– इस प्रसंग में राजशेखरकृत *बालरामायणम्* का यह श्लोक बहुत ही रोचक और मननीय है–

अत्रासीत् फणिपाशबन्धनविधिः शक्त्या भवद्देवरे।
गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राहृतः।।
दिव्यैरिन्द्रजिदत्रलक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं प्रापितः।
केनाप्यत्र मृगाक्षि राक्षसपतेः कृत्ता च कंठाटवी।।

भगवान् श्रीराम कहते हैं कि हे सीते! यहीं पर मेघनाद ने मुझे नागपाश में बाँधा और यहीं पर तुम्हारे देवर लक्ष्मण को शक्ति लगी और यहाँ पर हनुमान द्रोणाचल पर्वत के साथ संजीवनी बूटी ले आए। यहाँ देखो, लक्ष्मण ने अपने दिव्य बाणों से मेघनाद को वीरगति प्राप्त करायी और यहाँ देखो, किसी के द्वारा राक्षसराज रावण के कण्ठों का समूह काटा गया।

दो०– इहाँ सेतु बाँध्यो अरु, थापेउँ शिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि, शंभुहिं कीन्ह प्रनाम।।११९(क)।।

भा०– यहाँ सेतुबन्ध हुआ और मैंने सुखों के भवन शिव जी की स्थापना की। कृपानिधि श्रीराम ने श्रीसीता के साथ भगवान् रामेश्वर को प्रणाम किया।

जहँ जहँ कृपासिंधु बन, कीन्ह बास बिश्राम।
सकल देखाए जानकिहिं, कहे सबनि के नाम।।११९(ख)।।

भा०– कृपासिन्धु भगवान् श्रीराम ने जहाँ-जहाँ वास और विश्राम किया था श्रीसीता को सब दिखाया और सब के नाम कहे।

सपदि बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा।।
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए राम सब के अस्थाना।।

भा०– पुष्पक विमान शीघ्र वहाँ चला आया जहाँ परम सुहावना दण्डक वन है। भगवान् श्रीराम, कुम्भज आदि नाना मुनियों तथा उन से अतिरिक्त और भी सभी महर्षियों के स्थान पर गये।

सकल ऋषिन सन पाइ अशीशा। चित्रकूट आए जगदीशा।।
तहँ करि मुनिन केर संतोषा। चला बिमान तहँ ते चोखा।।

भा०- सम्पूर्ण मुनियों से आशीर्वाद पाकर जगत के ईश्वर श्रीराम श्रीचित्रकूट आये। वहाँ सम्पूर्ण मुनियों को सन्तुष्ट करके वहाँ से भी सुन्दर विमान आगे चल पड़ा।

बहुरि राम जानकिहिं देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई।।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता।।

भा०- फिर भगवान् श्रीराम ने श्रीसीता को कलियुग को मल के नष्ट करने वाली सुहावनी यमुना जी के दर्शन कराये। फिर प्रभु श्रीसीताराम जी ने पवित्र गंगा जी के दर्शन किये। भगवान् श्रीराम ने कहा, हे सीते! गंगा जी को प्रणाम करो।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा।।
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि शोक हरि लोक निसेनी।।
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि।।

भा०- हे सीते! फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिसके दर्शन करते ही करोड़ों जन्म के पाप भाग जाते हैं। फिर शोक को नष्ट करने वाली हरि अर्थात् मुझ श्रीराम के लोक की सीढ़ी के समान परमपवित्र त्रिवेणी जी के दर्शन करो। फिर अत्यन्त पवित्र तीनों प्रकार के तापों और रोगों को नष्ट करने वाली श्रीअवधपुरी को निहारो।

दो०- तब रघुनायक श्री सहित, अवधहिं कीन्ह प्रनाम।
सजल बिलोचन पुलकि तनु, पुनि पुनि हरषित राम।।१२०(क)।।

भा०- तब भगवान् श्रीराम ने श्री जी के साथ श्रीअवध को प्रणाम किया। भगवान् श्रीराम के नेत्र बार–बार सजल हो रहे थे। उनके शरीर में पुलक था और वे पुनः–पुनः प्रसन्न हो रहे थे।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी, हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन सहित बिप्रन कहँ, दान बिबिध बिधि दीन्ह।।१२०(ख)।।

भा०- फिर प्रभु श्रीराम ने आकर प्रसन्न होकर त्रिवेणी में स्नान किया और वानरों के साथ तीर्थ पुरोहित ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये।

विशेष- वनवास से प्रत्यागमन के समय प्रभु श्रीराम के पास लीला की दृष्टि से कुछ भी नहीं बचा रहा होगा, फिर किस स्रोत से आये हुए धन का उन्होंने तीर्थ पुरोहितों को दान किया? इसका उत्तर यही है कि भगवान् श्रीराम को मनाने के लिए ब्राह्मणवेशधारी समुद्र, स्वर्ण के थाल में बहुत से मणिगण ले आया था, उसी का यहाँ भगवान् श्रीराम ने दान किया। यथा- "***कनक थार भरि मनि गन नाना। विप्र रूप आयउ तजि माना।।***"(मानस ५-८-५८)

प्रभु हनुमंतहिं कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई।।
भरतहिं कुशल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम चलि आएहु।।

भा०- प्रभु श्रीराम ने हनुमान जी को समझाकर कहा, हे आञ्जनेय! आप ब्राह्मण ब्रह्मचारी का वेश बनाकर श्रीअवधुपर जाइए, भरत को मेरा कुशल समाचार सुनाइए और उनका समाचार लेकर शीघ्र चले आइए।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहँ गयऊ।।
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आशिष दीन्ही।।

भा०– हनुमान जी तुरन्त चल पड़े। तब श्रीराम भरद्वाज जी के पास गये। महर्षि ने नाना प्रकार से पूजा की और स्तुति करके फिर आशीर्वाद दिया।

मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी।।
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहि लोग बोलाए।।

भा०– भरद्वाज जी के युगल चरणों की वन्दना करके, दोनों हाथ जोड़कर प्रभु ने अनुमति माँगी और विमान पर चढ़कर फिर चले। यहाँ निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गये हैं, उन्होंने 'नाव–नाव' अर्थात् नौका लाओ–नौका लाओ कहकर लोगों को बुला लिया।

सुरसरि नाँघि यान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो।।
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरननि परी।।
दीन्ह अशीष हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा।।

भा०– तब विमान गंगा को लाँघकर इस पार आ गया और प्रभु की आज्ञा पाकर विमान तट पर उतरा। फिर श्रीसीता ने पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार गंगा जी की पूजा की और पुनः बहुत प्रकार से उनके चरणों में पड़ीं। गंगा जी ने मन में प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, हे सुन्दरी! तुम्हारे सौभाग्य का कभी भंग न हो अर्थात् नाश न हो।

विशेष– सीता जी के पूजा करते समय गंगा जी सगुण साकार दिव्य–नारी के वेश में सीता जी के समक्ष उपस्थित हुईं तभी सीता जी का गंगा जी के चरणों पर पड़ना और गंगा जी का भी अपनी व्यक्त वाणी में भगवती मैथिली को अखण्ड सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद संभव हो सका। अन्यथा जलमय गंगा के चरणों पर सीता जी कैसे प्रणाम कर सकतीं।

सुनत गुहउ धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल।।
प्रभुहिं सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही।।

भा०– शृंगबेरपुर के गंगा तट पर प्रभु का आगमन सुनकर निषादराज गुह भी प्रेम से आकुल होकर दौड़े और परमसुख से युक्त होकर भगवान् श्रीराम के पास आ गये। प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण को सीता जी के सहित देखकर निषादराज पृथ्वी पर पड़ गये। उन्हें अपने शरीर की सुधि नहीं रही।

प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई।।

भा०– निषादराज की श्रेष्ठ प्रीति देखकर रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने उन्हें प्रसन्नता से उठा लिया और हृदय से लगा लिया।

छं०– लियो हृदय लाइ कृपा निधान सुजान राय रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुशल सो कर बीनती।।
अब कुशल पद पंकज बिलोकि बिरंचि शङ्कर सेब्य जे।
सुख धाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते।।१।।

भा०– कृपा के कोष और परमचतुरों के शिरोमणि भगवान् श्रीराम ने निषादराज को हृदय से लगा लिया। अत्यन्त समीप बिठाकर कुशल समाचार पूछा तब निषादराज ने प्रार्थना की। हे प्रभु! जो ब्रह्मा जी और शिव जी के भी सेव्य हैं, ऐसे आपश्री के श्रीचरणकमलों को देखकर अब सब कुछ कुशल है। हे सुख के भवन! हे पूर्णकाम! मैं आपश्री को अनुकूल करने के लिए बारम्बार नमन करता हूँ।

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बश बिसराइयो।।
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा।।२।।

भा०– सब प्रकार से निषाद जैसे अधम को जिन प्रभु श्रीराम जी ने श्रीभरत जी के समान हृदय से लगाया, मन्दबुद्धि मुझ तुलसीदास ने उन्हीं प्रभु को मोहवश होकर भुला दिया। यह रावणशत्रु भगवान् श्रीराम का परम पावन चरित्र सदैव श्रीराम के श्रीचरणकमल की भक्ति प्रदान करने वाला, कामादि विकारों का हरण करने वाला, विशिष्ट ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। रावण के शत्रु भगवान् श्रीराम जी का यह चरित्र प्रसन्नतापूर्वक देवता, मुनि और सिद्ध गा रहे हैं तथा गायेंगे।

दो०– समर बिजय रघुबीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान।।१२१(क)।।

भा०– इस प्रकार भगवान् श्रीराम जी के समर विजय अर्थात् श्रीराम–रावणयुद्ध विजय चरित्र को जो चतुर लोग सुनते हैं और सुनेंगे, उन्हें भगवान् श्रीराम निरन्तर विजय, विवेक और विभूति प्रदान करते रहेंगे।

यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि, नहिं कछु आन अधार।।१२१(ख)।।

भा०– अरे मन! विचार करके तो देख यह कलियुग का काल, दोषों का आयतन, अर्थात् गृह है, इसमें श्रीरघुनाथ के श्रीरामनाम को छोड़कर और कुछ भी दूसरा आधार नहीं है।

* नवाहपारायण, आठवाँ विश्राम *

* मासपारायण, सत्ताईसवाँ विश्राम *

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सज्जनप्रियं नाम षष्ठं सोपानं युद्धकाण्डं सम्पूर्णम्।

।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

इस प्रकार श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित् कलियुग के पाप को नष्ट करने वाला श्रीरामचरितमानस में सज्जनप्रिय नामक षष्ठ सोपान सम्पन्न हुआ। यह श्री सीताराम जी को समर्पित हो।

श्रीरामभद्राचार्येण कृता भावार्थबोधिनी। व्याख्येयं राष्ट्रभाषायां षष्ठे काण्डे मुदा मया।।

।।श्री राघवःशन्तनोतु।।

युद्धकाण्ड समाप्त

।।श्री सीताराम।।

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामौ विजयेते

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

श्रीरामचरितमानस

सप्तम सोपान

उत्तरकाण्ड

मंगलाचरण

श्रीः

भावार्थबोधिनी टीका

रामं रामाभिरामं प्रणतभयहरं कन्दनीलं सुशीलम्
साकेते धाम्नि सीतासहितमहितहं स्वर्णसिंहासनस्थं।
चापं चण्डप्रतापं शरमिषुधियुगं सावधानं दधानम्
याचे राजाधिराजं पवनसुतनतं भव्यभक्तिं वदान्यम्।।१।।

श्रीरामपादाम्बुजचंचरीकं समुल्लसन् मानसपुण्डरीकम्।
दोर्दण्डसंकम्पितकालकालम् वन्दामहे वानरवारणेन्द्रम्।।२।।

श्रीरामभद्राचार्योऽहं प्रणम्य तुलसीकविम्
सोपाने सप्तमे व्याख्यां भाषे भावार्थबोधिनीम्।।३।।

श्लोक

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्।।१।।

भा०– मयूर के कण्ठ को भी जिससे आभा अर्थात् शोभा मिली, ऐसे नील वर्ण वाले तथा जिनके सुन्दर हृदय पर ब्राह्मण के श्रीचरणकमल का चिन्ह सुशोभित है, शोभा रूप धन के धनी, पीताम्बर धारण किये हुए, कमलनेत्र, निरन्तर पूर्णरूपेण प्रसन्न रहने वाले, श्रीहस्त में धनुष–बाण धारण किये हुए, वानरसमूहों से युक्त, छोटे भाई लक्ष्मण जी द्वारा निरन्तर सेवित हो रहे, स्तुति करने योग्य, जनकनन्दिनी भगवती श्रीसीता जी के प्राणपति अथवा, जनकनन्दिनी सीता जी जिनकी 'ईशा' अर्थात् गृहस्वामिनी हैं, ऐसे रघुकुल में श्रेष्ठ, अज्ञान की निशा अर्थात् रात्रि से रहित, श्रीअवध गमन के लिए पुष्पक विमान पर विराजमान भगवान् श्रीराम को मैं, तुलसीदास दिन–रात नमन करता हूँ।

विशेष– "***सुरवर सर्वे शान्ताः अजन्ताः***" इस वैयाकरण नियम के अनुसार उर शब्द अजन्त भी है। अतः "***शोभनम् उरं सुरं,***" इस विग्रह से 'सु' शब्द का उर शब्द के साथ समास करने पर शकन्ध्वादि गण की आकृतगण व्यवस्था होने से 'सु' के उत्तरवर्ती उकार और उर के पूर्ववर्ती उकार के स्थान में पररूप संधि हो गई।

केकीकण्ठाभनीलं वाक्यांश में प्रयुक्त केकी शब्द में ***अन्येषामपि दृश्यते***, (पा०अ०, ७.३.१३७) सूत्र से दीर्घ हुआ है।

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ।।२।।

भा०– स्वभावत: कोमल तथा ब्रह्मा जी और शिव जी द्वारा वन्दित, जनकनन्दिनी भगवती सीता जी के कर कमलों द्वारा लालित, याने दुलराये हुए (वात्सल्यपूर्वक सेवा किये जाते हुए) चिन्तकजनों के मनरूप भ्रमर के संगी अथवा, चिन्तकों के मन रूप भ्रमरों का जिनमें संग अर्थात् आसक्ति बनी रहती है, ऐसे अयोध्यापति भगवान् श्रीराम के कमल के समान सुन्दर और मधुर श्रीचरणयुगल को मैं तुलसीदास नमन करता हूँ।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्।।३।।

भा०– चन्द्रमा और शंख के समान गौर एवं सुन्दर, अभीष्ट सिद्धियों को देने वाले, करुणापूर्ण, सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले, काम के आवेग से मुक्त करने वाले, ऐसे पार्वती जी के पति भूतभावन भगवान् श्रीशङ्कर को कुन्द बुद्धिवाला मैं तुलसीदास नमन करता हूँ।

विशेष– यहाँ प्रयुक्त कुन्द शब्द प्रथमा विभक्ति के एकवचन में है, जिसका अर्थ होता है, मन्दबुद्धिवाला। मंगलाचरण का प्रथम छन्द स्रग्धरावृत्त में तथा द्वितीय और तृतीय श्लोक में रथोद्धता छन्द है।

दो०– रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृश तन राम बियोग।।

भा०– अब प्रभु श्रीराम के वनवास के चौदह वर्ष की अवधि का एक दिन ही शेष रह गया है। श्रीअवधपुर के लोग प्रभु श्रीराम के दर्शनों के लिए अत्यन्त आर्त्त अर्थात् उतावले हो गये हैं। भगवान् श्रीराम के वियोग में दुर्बल हुए शरीर वाले महिला और पुरुष जहाँ–तहाँ शोक कर रहे हैं और विचार कर रहे हैं कि प्रभु कब आयेंगे?

सगुन होहिं सुंदर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर।।

भा०– सभी सुन्दर शकुन हो रहे हैं, सभी के मन प्रसन्न हैं, मानो चारों ओर सुन्दर नगर अथवा नगर की चतुर्दिक् रमणीयता ये दोनों ही प्रभु श्रीराम के आगमन को जना रहे हैं अर्थात् सूचित कर रहे हैं।

कौसल्यादिक मातु सब, मन आनँद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ।।

भा०–कौसल्या आदि सभी माताओं के मन में इस प्रकार का आनन्द हो रहा है, मानो श्रीसीता जी एवं श्रीलखन लाल के साथ प्रभु श्रीराम आ गए ऐसा अभी–अभी कोई कहना चाहता है।

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन बिचार।।

भा०– भरत जी का दाहिना नेत्र और दाहिनी भुजा ये दोनों बारम्बार फड़क रहे हैं। इसे शकुन जानकर भरत जी के मन में अत्यन्त हर्ष हो रहा है, वे विचार करने लगे–

रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।।

भा०– हमारी आधार रूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया है, यह समझते ही भरत जी के मन में अपार दुःख हुआ। वे मन में ही सोचने लगे, अरे! क्या कारण है, मेरे नाथ श्रीरघुनाथ जी अभी तक नहीं आये, क्या मुझे कुटिल जानकर प्रभु ने भुला दिया?

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा।।

भा०– अहह! हर्ष है! लक्ष्मण धन्य और बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि वे भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल में निरन्तर अनुराग रखते हैं। प्रभु ने मुझे कपटी और कुटिल करके पहचान लिया है, इसलिए मेरे स्वामी ने मुझे साथ नहीं लिया।

जौ करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप शत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।

भा०– यदि प्रभु मेरी करनी अर्थात् हनुमान जी को बाण से मारकर गिरा देने वाले कुकृत्य का स्मरण करें, तो मेरा अरबों कल्प तक निस्तार अर्थात् प्रायश्चितपूर्ण उद्धार नहीं हो सकता, परन्तु दीनों के बन्धु, सर्वसमर्थ मेरे प्रभु, सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते, क्योंकि प्रभु का स्वभाव बहुत ही कोमल है।

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहैं राम सगुन शुभ होई।।
बीते अवधि रहहिं जौ प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।

भा०– मेरे हृदय में वही दृढ़ विश्वास है, भगवान् श्रीराम मिलेंगे, सुन्दर शकुन हो रहा है। यदि चौदह वर्ष की अवधि बीत जाने पर प्रभु के दर्शन के बिना मेरे प्राण रहे तो संसार में मेरे समान कौन नीच हो सकता है?

दो०– राम बिरह बारीस महँ, भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत।।१(क)।।

भा०– भगवान् श्रीराम के विरहरूप विशाल सागर में भरत जी और उनका मन मग्न ही हो रहा था अर्थात् डूब ही रहा था कि उसी बीच ब्राह्मण का रूप धारण करके, पवनदेव के सांकल्पिक पुत्र हनुमान जी महाराज पोत अर्थात् समुद्री जहाज की भाँति श्रीअवध आ गये।

बैठे देखि कुशासन, जटा मुकुट कृश गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल जात।।१(ख)।।

भा०– सिर पर जटा का मुकुट धारण किये हुए, दुर्बल शरीर वाले, "राम–राम" शब्द का उच्चारण करते–करते रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम का अर्थभावना के साथ जप करते हुए, नेत्र कमलों से अश्रुपात करते हुए कुश के आसन पर बैठे हुए श्रीभरत जी को श्रीहनुमान जी महाराज ने देखा।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी।।

भा०– भरत जी को श्रीराम के प्रेम में तन्मय देखते ही हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए। उनका शरीर रोमांचित हो गया और उनके नेत्र अश्रुजल की वर्षा करने लगे अर्थात् हनुमान जी के नेत्रों से अश्रु की धारा चल पड़ी। अपने मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर हनुमान जी, भरत जी के श्रवण के पास जाकर श्रवण को प्रिय लगने वाली अमृत जैसी वाणी बोले–

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुशल देव मुनि त्राता।।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत।।

भा०– हनुमान जी बोले, हे भैया भरत! जिन प्रभु श्रीराम के वियोग में आप दिन–रात सोचते रहते हैं। जिन प्रभु के निरस्त समस्त हेय प्रत्यनीक कल्याणमय गुणगणों की पंक्तियों को आप निरन्तर रटते रहते हैं, वे ही सज्जनों को सुख देने वाले, देवताओं और मुनियों के रक्षक, रघुकुल के तिलक अर्थात् रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीराम (मेरे हृदय विमान द्वारा) सकुशल आ गये हैं। भगवान् श्रीराम ने शत्रु रावण को युद्ध में जीत लिया है। देवता उनका यश गा रहे हैं और प्रभु श्रीराम भगवती श्रीसीता तथा छोटे भैया लक्ष्मण जी के साथ आ रहे हैं।

विशेष– पूर्व पंक्ति में *आयउ* और पश्चात् पंक्ति में *आवत* क्रिया का प्रयोग करने के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी, हनुमान जी के एक चमत्कारपूर्ण मन्तव्य को सूचित कर रहे हैं। हनुमान जी महाराज का तात्पर्य यह है कि लंका से भगवान् श्रीराम आपसे मिलने के लिए दो विमानों से चले। प्रथम पुष्पक विमान से और पुनः मेरे हृदयरूप विमान से, परन्तु मेरे हृदयरूप विमान पर चढ़कर चलनेवाले प्रभु पहले आ पहुँचे और पुष्पक विमान पर चढ़कर चलनेवाले प्रभु अभी आ रहे हैं।

सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा।।
को तुम तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।।

भा०– हनुमान जी महाराज के वचन सुनते ही भरत जी सम्पूर्ण दुःख उसी प्रकार भूल गये, जैसे प्यासा अमृत पाकर पूर्व के सभी कष्ट भूल जाता है। भरत जी बोले, हे तात! जिसने मुझे परमप्रिय वचन अर्थात् प्रभु के आगमन सूचक श्रेष्ठ और प्रिय वचन सुनाये वह तुम कौन हो, कहाँ से आये हो?

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना।।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।

भा०– श्रीहनुमान जी बोले, हे कृपानिधान भरत जी अथवा श्रीराम की सम्पूर्ण कृपा जहाँ निरन्तर विराजमान है ऐसे भरत जी! सुनिये, मैं वायुदेवता का पुत्र वानर हूँ, मेरा नाम हनुमान है। दीनबन्धु, रघुवंश के स्वामी, भगवान् श्रीराम का एक छोटा–सा किंकर अर्थात् आज्ञाकारी दास हूँ। यह सुनकर अपने आसन से उठकर भरत जी ने आदरपूर्वक हनुमान जी को हृदय से लगा लिया (तब हनुमान जी ने भी अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया)।

विशेष– *रामस्य कृपा न्यधीयत् यस्मिन स कृपानिधानः* अर्थात् भगवान् श्रीराम की सम्पूर्ण कृपा श्री पादुका जी के माध्यम से भरत जी में ही निहित है इसलिए यहाँ प्रयुक्त कृपानिधान शब्द में उच्चरित निधान शब्द खण्ड नि पूर्वक 'धा' धातु से "***करणाधिकरण्योश्च***" (पा० अ०, ३.३.११७) सूत्र से अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय और अन् आदेश करके निष्पन्न हुआ है।

मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।।
बार बार बूझी कुशलाता। तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता।।
एहि संदेश सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।।
नाहिन तात उरिन मैं तोहीं। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।।

भा०- श्रीहनुमान जी से मिलते हुए श्रीभरत जी का प्रेम हृदय में नहीं समा रहा है। उनके नेत्र अश्रुपात कर रहे हैं और शरीर पुलकित है। भरत जी बोले, हे हनुमान जी! आपके दर्शन से मेरे सभी दु:ख समाप्त हो गये। आज मुझे मेरे प्रेमास्पद श्रीराम भी मिल गये अर्थात् आपको हृदय में लगाने से आपके हृदयविहारी श्रीराम के मुझे साक्षात् दर्शन हो गये। भरत जी बार–बार कुशल पूछने लगे और कहा, हे भाई! सुनो, मैं तुम्हें क्या दूँ मैंने मन में विचार करके देख लिया है कि इस सन्देश के समान संसार में कुछ भी नहीं है। हे तात! मैं तुमसे उऋण नही हूँ, अब मुझे श्रीराम जी के चरित्र सुनाओ।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।
कहु कपि कबहुँ कृपालु गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं।।

भा०- तब श्रीहनुमान जी ने श्रीभरत जी के चरणों में मस्तक नवाकर भगवान् श्रीराम के गुणों को प्रकट करने वाली सभी गाथायें कह सुनायी। भरत जी ने कहा, हे वानरश्रेष्ठ हनुमान जी! बताइये, इन्द्रियों, वाणी, बुद्धि तथा पृथ्वी के स्वामी भगवान् श्रीराम मुझे कभी अपने दास की भाँति स्मरण करते हैं?

छं०- निज दास ज्यों रघुबंशभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरननि पर्‌यो।।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो।।

भा०- रघुकुल के आभूषण प्रभु श्रीराम ने मेरा अपने दास की भाँति क्या कभी स्मरण किया है? भरत जी के अत्यन्त विनम्र वचन सुनकर शरीर से रोमांचित होकर हनुमान जी भरत जी के चरणों में पड़ गये और मन में सोचने लगे, जो सभी जड़–चेतनों के ईश्वर हैं, ऐसे रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम अपने मुख से जिनके गुणगण कहते रहते हैं, वे भरत जी विनम्र, परम पवित्र और सद्‌गुणों के सागर क्यों न हों?

दो०- राम प्रान प्रिय नाथ तुम, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात।।२(क)।।

भा०- हनुमान जी स्पष्ट बोले, हे नाथ! आप भगवान् श्रीराम को प्राण के समान प्रिय हैं और भगवान् श्रीराम आपको प्राण के समान प्रिय हैं। हे भैया भरत! मेरा यह वचन सत्य है। हनुमान जी की यह वाणी सुनकर भरत जी हनुमान जी महाराज को बार–बार मिल रहे हैं, उनके हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है।

सो०- भरत चरन सिर नाइ, तुरत गयउ कपि राम पहँ।
कही कुशल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु यान चढ़ि।।

भा०- भरत जी के चरणों में सिर नवाकर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी महाराज तुरन्त राम जी के पास चले गये और जाकर भरत जी की सम्पूर्ण कथा भगवान् श्रीराम को सुनायी। प्रभु भी विरहार्त सत्यप्रतिज्ञ अपने भैया से मिलने के लिए प्रसन्न होकर विमान पर चढ़कर चल पड़े।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरुहिं सुनाए।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुशल रघुराई।।
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं।।

भा०- भरत जी प्रसन्न होकर नन्दीग्राम से श्रीअयोध्या आये और गुरुदेव वसिष्ठ जी को सम्पूर्ण समाचार सुनाया। फिर यह वार्त्ता राजभवन में जनायी अर्थात् विशेष सेवक से कहलायी कि रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम

भगवती श्रीसीता एवं भाई लक्ष्मण के सहित श्रीअवधपुर में कुशलपूर्वक आ रहे हैं। यह सुनकर सभी मातायें उठकर दौड़ीं और भरत जी के पास आ गईं। भरत जी ने प्रभु श्रीराम का कुशल समाचार कहकर माताओं को समझाया।

समाचार पुरबासिन पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला।।
भरि भरि हेम थार लिय भामिनि। गावत चलिं सब सिंधुरगामिनि।।
जे जैसे तैसहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।।
एक एकन कहँ बूझहिं भाई। तुम देखे दयालु रघुराई।।

भा०– श्रीअवधपुरवासियों ने यह समाचार पाया, सभी नर–नारी प्रसन्न होकर दौड़े। दही, दूध, गोरोचन, फल, पुष्प, सभी मंगलों के मूल नवीन तुलसीदल स्वर्ण के थालों में भर–भरकर हाथों में लिए हुए, हथिनी के समान चलने वाली सभी सौभाग्यवती महिलायें प्रभु की अगवानी के लिए गाती हुई चल पड़ीं। जो जैसे हैं वे वैसे ही उठकर दौड़ रहे हैं। बालकों और वृद्धों को साथ नहीं ले रहे हैं। अथवा, बालक इतनी उत्सुकता से दौड़े जा रहे हैं कि वे धीरे चलने वाले वृद्धों को साथ नहीं ले रहे हैं। एक–दूसरे से पूछते हैं, हे भाई! क्या तुमने अभी–अभी परमदयालु भगवान् श्रीराम को आते हुए देखा है?

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल शोभा कै खानी।।
भइ सरजू अति निर्मल नीरा। बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा।।

भा०– प्रभु को आते हुए जानकर श्रीअवधपुरी सम्पूर्ण शोभाओं की खानि हो गई। भगवती सरयू अत्यन्त निर्मल जल से पूर्ण हो गईं और तीनों प्रकार की शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगा।

दो०– हरषित गुरु परिजन अनुज, भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सन्मुख कृपानिकेत।।३(क)।।

भा०– गुरुदेव, परिवार के लोग तथा निजी सेवक छोटे भैया शत्रुघ्न जी एवं ब्राह्मणसमूहों के साथ मन में अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रसन्न होकर भरत जी कृपा के भवन श्रीराम के सन्मुख चले।

बहुतक चढ़ीं अटारिन, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान।।३(ख)।।

भा०– बहुत–सी महिलायें तथा शीघ्र ही बहू बनकर आई हुईं महिलायें भी अट्टालिकाओं पर चढ़कर आकाश में विमान को देख रही हैं। विमान पर चढ़े प्रभु को देखकर प्रसन्न होकर मधुर स्वर में मंगलगान कर रही हैं।

विशेष– होनी होके रहती टाले नहीं टलती।

एक दिन हुआ था वनवास आज देखो राजतिलक है।
जिन के माथे जटा मुकुट का दृश्य सभी ने देखा।
उनके मस्तक पर विलसेगी राजतिलक की रेखा।

राका शशि रघुपति अवध, सिंधु देखि हरषान।
बढ्यो कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान।।३(ग)।।

भा०– रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीरामरूप शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर श्रीअवधरूप सागर प्रसन्न होकर बढा और उसमें कोलाहल करती हुई अर्थात् मंगलगीत गाती हुईं महिलायें, समुद्र की अनगिनत बढ़ी हुई तरंगों के समान सुशोभित हुईं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन देखावत नगर मनोहर।।
सुनु कपीश अंगद लंकेशा। पावनि पुरी रुचिर यह देशा।।

भा०– यहाँ अर्थात् पुष्पक से आते हुए, सूर्यकुलरूप कमल के सूर्य भगवान् श्रीराम वानरों को अपना सुन्दर अवध नगर दिखा रहे हैं। हे वानराज सुग्रीव! हे युवराज अंगद! हे लंकापति विभीषण! आदि सभी वानर बन्धुओं सुनो, यह भारत देश अत्यन्त सुन्दर तथा रुचिर यानी दीप्ति को बढ़ाने और प्रीति उत्पन्न करने वाला है। इस भारतवर्ष में विराजमान सातों पुरियों में प्रथम मेरी श्रीअवधपुरी अत्यन्त पवित्र और सब को पवित्र करने वाली है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना।।
अवध सरिस मोहि प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।

भा०– यद्यपि वेदों, पुराणों में विदित अर्थात् प्रसिद्ध वैकुण्ठ को संसार जानता भी है और बखानता भी है, परन्तु वह वैकुण्ठ भी (उसका पर्यायवाची साकेतलोक भी) मुझे अवध के समान प्रिय नहीं है, यह प्रसंग तो कोई–कोई जानते हैं।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि बह सरजू पावनि।।
जेहिं मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।

भा०– इसी सुहावनी श्रीअयोध्यापुरी में मेरी जन्मभूमि है, जिसके उत्तर दिशा में (तीन सौ धनुष की दूरी पर) पवित्र श्रीसरयू नदी बहती हैं, जिनमें स्नान करने से प्राणी बिना प्रयास के ही मेरे समीप निवास पा जाता है।

अति प्रिय मोहिं इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।

भा०– यहाँ के वासी मुझे बहुत प्रिय हैं, यह पुरी मेरे धाम अर्थात् दिव्य साकेत अथवा, मेरे दिव्य तेज को दे देती है और यह सम्पूर्ण सुखों की राशि है। सभी वानर प्रभु की यह वाणी सुनकर प्रसन्न हुए और बोले, यह श्रीअयोध्या धन्य है, भगवान् श्रीराम ने जिसकी प्रशंसा की है।

दो०– आवत देखे लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान।।४(क)।।

भा०– कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने अवधवासियों को अगवानी लेने के लिए अपने पास आते देखा, तब नगर के निकट आ जाने पर प्रभु ने मानसिक प्रेरणा दी और पुष्पक विमान भगवद्भूमि श्रीअवध के आँचल में उतर गया।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम कुबेर पहिं जाहु।
राघव प्रेरित सो चलेउ, हरष बिरह अति ताहु।।४(ख)।।

भा०– प्रभु श्रीराम ने उतर करके पुष्पक विमान से कहा, अब तुम कुबेर के पास चले जाओ। श्रीराघव के द्वारा आदिष्ट होकर वह विमान चल पड़ा। भगवान् श्रीराम उस पर आरूढ़ हुए इससे पुष्पक विमान को बहुत प्रसन्नता थी और भगवान् श्रीराम से वह अलग हुआ इससे प्रभु के वियोग का बहुत कष्ट भी हुआ।

आए भरत संग सब लोगा। कृशतन श्रीरघुबीर बियोगा।।
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
धाइ गहे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।

भा०– प्रभु श्रीराम ने भरत जी के संग आये हुए श्रीरघुवीर के वियोग में दुर्बल शरीर वाले सभी लोगों को एवं महर्षि वामदेव जी तथा मुनियों के ईश्वर वसिष्ठ जी को देखा, इसके अनन्तर छोटे भाई लक्ष्मण जी के सहित प्रभु श्रीराम ने पृथ्वी पर धनुष–बाण रखकर, अत्यन्त पुलकित रोमावलि के साथ दौड़कर गुरुदेव के चरण कमल पकड़ लिए।

भेंटि कुशल बूझी मुनिराया। हमरे कुशल तुम्हारिहिं दाया।।
सकल द्विजन कहँ नायउ माथा। धरम धुरंधर रघुकुल नाथा।।

भा०– प्रभु श्रीराम को गले से लगाकर मुनिराज वसिष्ठ जी ने कुशल पूछी। भगवान् श्रीराम ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, हे भगवन्! आपकी दया से हमारा सब कुशल है। इसी प्रकार धर्म के धुरन्धर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने सम्पूर्ण ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें प्रणाम किया।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिनहिं सुर मुनि शङ्कर अज।।
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बल करि कृपासिन्धु उर लाए।।
श्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।

भा०– भरत जी ने फिर प्रभु श्रीराम के उन श्रीचरणकमलों को पकड़ लिया, जिन्हें देवता, मुनि, उपलक्षण विधा से भगवान् विष्णु जी, शिव जी और ब्रह्मा जी जैसे देवाधिदेव नमन करते हैं। पृथ्वी पर पड़े हुए भरत जी प्रभु के उठाने पर भी नहीं उठ रहे हैं। अन्ततोगत्वा, कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने बल का प्रयोग करके भरत जी को हृदय से लगा लिया। प्रभु के श्यामल शरीर में रोम खड़े हो गये और नवीन लाल कमल जैसे नेत्रों में अश्रुजल की बाढ़ आ गई।

छं०– राजीव लोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिलत बर सुषमा लही।।१।।

भा०– प्रभु श्रीराम के राजीवनेत्रों से अश्रुपात हो रहा है। शरीर में अत्यन्त ललित खड़े हुए रोमों की पंक्ति शोभित हो रही है। तीनों लोकों के स्वामी भगवान् श्रीराम छोटे भाई भरत जी को अत्यन्त प्रेम के साथ हृदय से लगाकर मिले। छोटे भाई भरत जी को मिलते हुए प्रभु जिस प्रकार शोभित हो रहे हैं, वह उपमा मुझसे कही नहीं जा रही है, मानो प्रेम और शृंगार ही शरीर धारण करके परस्पर मिलते हुए श्रेष्ठ परमशोभा को प्राप्त कर लिए हैं।

बूझत कृपानिधि कुशल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु शिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।।
अब कुशल कोसलनाथ आरत जानि जन दरशन दियो।
बूड़त बिरह बारीश कृपानिधान मोहि कर गहि लियो।।२।।

भा०– कृपा के सागर भगवान् श्रीराम छोटे भाई भरत जी से कुशल पूछ रहे हैं। भरत जी के मुख से वचन कहते नहीं आ रहा है। हे पार्वती! सुनिये, श्रीराम–भरत मिलाप का सुख वचन और मन से परे है, उसे तो जो पाता है,

वही जानता है। भरत जी ने कहा, हे अयोध्यापति श्रीराम! अब तो कुशल ही कुशल है, क्योंकि मुझे आपने आर्त्त सेवक जानकर दर्शन दे दिया और हे कृपा के कोश! विरह सागर में डूबते हुए मुझे आपने अपने हाथ से पकड़ लिया अर्थात् डूबने नहीं दिया।

दो०- पुनि प्रभु हरषित शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भेंटे भरत पुनि, प्रेम न हृदय समाइ।।५।।

भा०- फिर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम ने हृदय से लगाकर शत्रुघ्न जी को भेंटा और फिर लक्ष्मण जी से भरत जी मिले, उनके हृदय में प्रेम नहीं समा रहा था।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे।।
सीता चरन भरत सिर नावा। अनुज समेत परम सुख पावा।।

भा०- फिर भरत जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी को लक्ष्मण जी ने गले से लगा लिया और शत्रुघ्न जी ने लक्ष्मण जी को प्रणाम किया। दोनों ने असहनीय विरह से उत्पन्न दुःख को मिटा दिया। शत्रुघ्न जी के साथ भरत जी ने भगवती श्रीसीता के श्रीचरणों में प्रणाम किया और परमश्रेष्ठ सुख पाया।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी।।
अमित रूप प्रगटे तेहिं काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिशोकी।।
छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।।

भा०- प्रभु श्रीराम को निहारकर सभी अवधपुरवासी प्रसन्न हुए। भगवान् श्रीराम के चौदह वर्ष के वियोग से उत्पन्न सम्पूर्ण विपत्ति नष्ट हो गई। सभी लोगों को प्रेम से व्याकुल देखकर, खर राक्षस के शत्रु कृपालु श्रीराम ने कौतुक किया। उस समय कृपालु प्रभु श्रीराम अनेक रूपों में प्रकट हो गये और योग्यतानुसार एक साथ सब को मिले अर्थात् बड़ों को मिलकर प्रणाम किया, समवयस्कों को हृदय से लगाया और छोटों को आशीर्वाद दिया। रघुकुल के वीर श्रीराम ने अपनी कृपा भरी चितवन से निहारकर सभी पुरुषों और महिलाओं को शोकरहित कर दिया। भगवान् श्रीराम एक ही क्षण में सभी लोगों से मिले, परन्तु हे पार्वती! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना अर्थात् सबको यही लगा कि भगवान् श्रीराम केवल मुझी को मिल रहे हैं।

एहि बिधि सबहिं सुखी करि रामा। आगे चले शील गुन धामा।।
कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं।।

भा०- इस प्रकार से स्वभाव चरित्र और गुणों के आश्रय भगवान् श्रीराम सभी अवधवासियों को सुखी करके आगे चले। प्रभु को निहारकर कौसल्या जी आदि सभी सात सौ मातायें उसी प्रकार दौड़ीं, जैसे तत्काल की जनीं हुई गौयें अपने छोटे बछड़े को देखकर दौड़ती हैं।

छं०- जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबश गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन हरष सुख अगनित लहे।।

भा०- मानो परवश अर्थात् ग्वाले के वश में होने के कारण नवजात बछड़े को घर में छोड़कर शीघ्र जनीं हुई गौयें घास चरने वन में चली गईं हों और दिन के अन्त में पुर अर्थात् गोपू (गो-शाला) की ओर मुख करके हुंकार

करती हुई अर्थात् हुंकरती हुई थनों से दूध बहाती हुई दौड़ पड़ी हों, उसी प्रकार सभी मातायें नवजात वत्स रूप भगवान् श्रीराम को श्रीचित्रकूट रूप घर में छोड़कर कैकेयी के समक्ष की हुई प्रभु श्रीराम की प्रतिज्ञा के वश में होकर अवधरूप वन में चौदह वर्षपर्यन्त चरने अर्थात् किसी प्रकार शरीर निर्वाह करने के लिए चली गईं थी और वियोग रूप दिन का अन्त होते ही, हा! राम, हा! राम कहती हुई, वात्सल्य का दूध चुआती हुई, प्रभु के पास आ गईं। प्रभु श्रीराम से प्रेमपूर्वक सभी मातायें मिलीं और प्रभु श्रीराम भी सभी माताओं को प्रणाम करके प्रेमपूर्वक मिले। उन्होंने बहुत प्रकार से कोमल वचन कहा और भयंकर वियोग से उत्पन्न विपत्ति चली गई। तिन अर्थात् सभी सात सौ मातायें और भगवान् श्रीराम, भगवती सीता जी एवं लक्ष्मण जी ने अनगिनत प्रसन्नता और सुख प्राप्त किया।

दो०- भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहिं मिलत कैकयी, हृदय बहुत सुकुचानि।।६(क)।।

भा०- अपने पुत्र को श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में भक्तिमान जानकर सुमित्रा जी ने गले से लगा लिया अर्थात् श्रीराम से मिलने के पश्चात् जब लक्ष्मण जी ने सुमित्रा जी को प्रणाम किया तब सुमित्रा जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया, क्योंकि लक्ष्मण जी ने सुमित्रा जी के प्रत्येक निर्देश का पालन किया था। श्रीराम को मिलती हुई कैकेयी जी हृदय में बहुत संकुचित हुईं।

लछिमन सब मातन मिलि, हरषे आशिष पाइ।
कैकयि कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभ न जाइ।।६(ख)।।

भा०- लक्ष्मण जी सभी माताओं को मिले और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए। कैकेयी को बार-बार मिले उनके मन का क्षोभ नहीं जा रहा था।

सासुन सबनि मिली बैदेही। चरननि लागि हरष अति तेही।।
देहिं अशीष बूझि कुशलाता। होउ अचल तुम्हार अहिवाता।।

भा०- सभी सासुओं से चरणों में लिपटकर सीता जी मिलीं। उनके मन में बड़ी प्रसन्नता थी। कुशल समाचार पूछकर कौसल्या जी आदि सासुयें सीता जी को आशीर्वाद दे रही हैं कि हे बड़ी बहुरानी सीते! आपका अहिवात अर्थात् सौभाग्य अचल रहे।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं।।
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं।।
नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं।।

भा०- सभी मातायें रघुपति श्रीराम जी के मुखकमल को देख रही हैं। मंगल जानकर अपने नेत्रों से उमड़ते हुए आँसूओं को रोक लेती हैं। स्वर्ण के थालों में प्रभु की आरती उतारती हैं। बारम्बार श्रीराम जी के कोमल शरीर को निहारती हैं कि कदाचित् असंख्य आरतियों की ज्योति से राघव को ताप न लग जाये। परमानन्द के साथ नाना प्रकार के न्यौछावर करती हैं। आशीर्वाद देती हैं और प्रसन्नता से अपने हृदयों को भर लेती हैं।

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिन्धु रनधीरहिं।।
हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंका पति मारा।।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निशिचर सुभट महाबल भारे।।

भा०– माता कौसल्या जी कृपा के सागर, युद्ध में धैर्यवान् अर्थात् किसी भी प्रकार से न विचलित होने वाले, रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम को पुनः–पुनः निहार रही हैं और हृदय में बारम्बार विचार कर रही हैं कि, मेरे राघव जी ने लंकापति रावण को किस प्रकार मारा होगा, क्योंकि मेरे दोनों बेटे बड़े ही सुकुमार हैं और वीर राक्षस बहुत बड़े महाबली थे।

दो०– लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहिं बिलोकत मातु।
परमानंद मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गातु।।७।।

भा०– माता कौसल्या जी लक्ष्मण जी और भगवती सीता जी के साथ भगवान् श्रीरामको देख रही हैं। उनका मन परमानन्द में मग्न हो गया। उनके शरीर में पुनः–पुनः रोमांच हो रहा है।

लंकापति कपीश नल नीला। जामवंत अंगद शुभशीला।।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज शरीरा।।

भा०– लंका के राजा विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल–नील, जाम्बवान और कल्याणमय स्वभाव वाले अंगद तथा हनुमान जी आदि सभी वानर वीरों ने सुन्दर मनुष्य शरीर धारण किया है।

भरत सनेह शील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा।।
देखि नगरबासिन कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती।।

भा०– सभी लोग भरत जी के स्नेह, शील, व्रत, नियम एवं उनके अच्छे प्रेम का आदरपूर्वक वर्णन करते हैं। नगरवासियों की रीति अर्थात् परम्परा देखकर तथा प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम देखकर, सभी उनकी सराहना करते हैं।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।।
गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे।।

भा०– फिर भगवान् श्रीराम ने सभी मित्रों को बुलाया और सबको यह शिक्षा दी कि महर्षि वसिष्ठ जी के चरणों में लिपट जाओ अर्थात् प्रणाम कर लो यह हमारे कुल के पूज्य और हम चारों भाइयों के गुरुदेव महर्षि वसिष्ठ जी हैं। इन्हीं की कृपा से हमनें युद्ध में दैत्य स्वभाववाले राक्षसों को मारा है।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन हारे। भरतहु ते मोहिं अधिक पियारे।।
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए।।

भा०– पुनः भगवान् श्रीराम वानरों का परिचय देते हुए वसिष्ठ जी से बोले, हे महर्षि! सुनिये, ये सभी मेरे मित्रगण युद्धसागर के लिए बेड़े के समान बन गये अर्थात् इन्हीं की सहायता से मैंने संग्राम–सागर को पार कर लिया। मेरे हित के लिए इन्होंने अपना जन्म भी हार दिया। अथवा, अपने जीवन को ही मुझे समर्पित कर दिया, ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं। यह सुनकर सभी वानर–भालु मग्न हो गये, क्षण–क्षण उनके मन में नवीन सुख उत्पन्न होते थे।

दो०– कौसल्या के चरननि, पुनि तिन नायउ माथ।
आशिष दीन्हे हरषि तुम, प्रिय मम जिमि रघुनाथ।।८(क)।।

भा०- सभी वानर–भालुओं ने वसिष्ठ जी को प्रणाम करने के पश्चात् कौसल्या माता जी के चरणों में मस्तक नवाया। कौसल्या जी ने प्रसन्न होकर वानर–भालुओं को आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम लोग मुझे रघुनाथ श्रीराम की भाँति ही प्रिय हो।

सुमन बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन देखहिं, नगर नारि बर बृन्द।।८(ख)।।

भा०- आकाश पुष्पवर्षा से भर गया और सुख के मेघ भगवान् श्रीराम अपने भवन को चले। श्रीअवधनगर की श्रेष्ठ नारीगण अट्टालिकाओं पर चढ़ीं हुई यह दृश्य देखने लगीं।

कंचन कलश बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।।
बंदनवार पताका केतू। सबनि बनाए मंगल हेतू।।

भा०- सभी लोगों ने विविध चित्रों से सँवारे हुए सोने के कलश सजा–सजाकर अपने–अपने द्वार पर स्थापित किया और सभी लोगों ने मंगल के लिए और मंगल के जन्मदाता तोरण, पताका और ध्वज सजाये।

बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।।
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं अशीष हरष उर भरहीं।।

भा०- सभी गलियाँ सुगन्धित द्रव्यों से सींची गई और गजमुक्ताओं से रच–रचकर चौकें पुराई गईं। नगरवासियों ने प्रसन्न होकर नाना प्रकार के सुन्दर मंगलों को सजाया तथा बहुत से नगारे बजने लगे। जहाँ–तहाँ महिलायें न्यौछावर करने लगीं, आशीर्वाद देने लगीं और अपने हृदय को प्रसन्नता से भरने लगीं।

कंचन थार आरती नाना। जुबती सजे करहिं शुभ गाना।।
करहिं आरती आरतिहर की। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर की।।

भा०- सभी अवध की युवतियाँ स्वर्ण के थालों में अनेक बत्तियाँ, अनेक आरतियाँ सजाती हैं और सुन्दर गान करती हैं तथा संसार की आर्ति हरनेवाले, रघुकुल रूप कमल को विकसित करने के लिए सूर्यस्वरूप भगवान् श्रीराम की आरती करती हैं।

पुर शोभा संपति कल्याना। निगम शेष शारदा बखाना।।
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।।

भा०- शिव जी कहते हैं कि नगर की शोभा, सम्पत्ति और कल्याण की, वेद, शेष और सरस्वती जी प्रशंसा करती हैं, परन्तु वे भी इस चरित्र को देखकर ठगे से रह जाते हैं। हे पार्वती! उन परमात्मा के गुणों को मनुष्य कैसे कह सकते हैं? अथवा, उस परमात्मामयी पुरी के गुणों का वर्णन मनुष्य कैसे कर सकता है?

दो०- नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेश।
अस्त भए बिकसत भईं, निरखि राम राकेश।।९(क)।।

भा०- रघुकुल के स्वामी श्रीराम के विरहरूप सूर्य के अस्त हो जाने पर अयोध्यारूप तालाब में महिलारूप कुमुदिनियाँ श्रीरामरूप शरद्चन्द्र को देखकर विकसित हो गईं।

होहिं सगुन शुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान।।९(ख)।।

भा०- नाना प्रकार के सुन्दर शकुन होने लगे, आकाश में नगारे बजने लगे। इस प्रकार से अवधपुर के नर–नारियों को सनाथ करके भगवान् श्रीराम अपने राजभवन को चल पड़े।

प्रभु जानी कैकयी लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गमन हरि कीन्हा।।
कृपा सिंधु जब मंदिर गयऊ। पुर नर नारि सुखी सब भयऊ।।

भा०- पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए शिव जी कहते हैं कि हे भवानी! प्रभु श्रीराम ने जान लिया की माता कैकेयी जी लज्जित हो गई हैं, इसलिए पहले उन्हीं के भवन में गये और उन्हें समझाकर बहुत सुख दिया। फिर भूमि का भार हरण करने वाले श्रीहरि जी ने अपने भवन में गमन किया। जब कृपा के सागर भगवान् श्रीराम अपने भवन को पधार गये तब अवध के सभी नर–नारी सुखी हो गये, क्योंकि अब सबको यह आशा हो गई कि श्रीराम का शीघ्र ही राज्याभिषेक होगा।

गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन शुभदाई।।
सब द्विज देहु हरषि अनुशासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन।।

भा०- गुरुदेव वसिष्ठ जी ने सभी ब्राह्मणों को बुला लिया और बोले, आज सुन्दर घड़ी है और आज ही शुभ देने वाला सुन्दर दिन है अर्थात् आज योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हैं। सभी ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक आदेश दें श्रीरामचन्द्र जी श्रीअवध के राजसिंहासन पर बैठें।

मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन अति भाए।।
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका।।
अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै।।

भा०- वसिष्ठ मुनि जी के सुहावने वचन सुनते ही सभी ब्राह्मणों को वे बहुत भाये और अनेक ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि भगवान् श्रीराम का राज्याभिषेक सम्पूर्ण संसार के लिए अभिराम अर्थात् सुखदायक है। हे मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ देव जी! अब विलम्ब मत कीजिये और महाराज श्रीराम को राजतिलक कर दीजिये।

दो०- तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाइ।।१०(क)।।
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रब्य मँगाइ।
हरष समेत बसिष्ठ पद, पुनि सिर नायउ आइ।।१०(ख)।।

भा०- तब अर्थात् सभी ब्राह्मणों का अनुमोदन प्राप्त करके वसिष्ठ मुनि जी ने सुमंत्र जी से कहा अर्थात् सुमंत्र जी को राजतिलक की तैयारी करने का आदेश दिया। गुरुदेव की आज्ञा सुनते ही वे प्रसन्न होकर चल पड़े और जाकर अनेक रथ, बहुत से हाथी, घोड़ों को शीघ्र सजाया। फिर जहाँ–तहाँ त्वरित गति से चलने वाले दूतों को भेजकर मांगलिक द्रव्यों को मँगाकर, फिर आकर सुमंत्र जी ने प्रसन्नता के सहित वसिष्ठ जी के चरणों में मस्तक नवाया अर्थात् आज्ञापालन की सूचना दे दी।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन सुमन बृष्टि झरि लाई।।
राम कहा सेवकन बुलाई। प्रथम सखन अन्हवावहु जाई।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए।।

भा०– अवधपुरी बहुत सुन्दर रीति से सजायी गई उसे देखकर, देवताओं ने पुष्प वर्षा की झड़ी लगा दी। भगवान् श्रीराम ने सेवकों को बुलाकर कहा कि जाकर मेरे स्नान से प्रथम सुग्रीव, विभीषण आदि मेरे मित्रों को स्नान कराओ। प्रभु श्रीराम के वचन सनुते ही सेवक जहाँ–तहाँ दौड़े और सुग्रीव जी आदि वानरों, जाम्बवान जी आदि भालुओं और विभीषण जी आदि भगवद्‌भक्त राक्षसों को तुरन्त स्नान कराया।

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। शेष कोटि शत सकहिं न गाई।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपालु रघुराई।।

भा०– फिर करुणा के सागर भगवान् श्रीराम ने भैया भरत को ऊँचे स्वर से बुलाया और प्रभु ने भरत जी की उलझी हुई जटायें धीर–धीरे अपने हाथों से खोली। श्रीभरत के सौभाग्य एवं प्रभु श्रीराम की कोमलता को अरबों शेष भी नहीं गा सकते। इस प्रकार भक्तवत्सल अर्थात् भक्तों के दोषों की उपेक्षा करके उन्हें समाप्त कर देने वाले कृपालु रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम ने भरत जी, लक्ष्मण जी एवं शत्रुघ्न जी तीनों भाइयों की जटा समाप्त करके अपने हाथों से स्नान कराया।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुरु अनुशासन माँगि नहाए।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग कोटि छबि लाजे।।

भा०– फिर प्रभु श्रीराम जी ने अपनी जटा खोली अर्थात् तीनों भाइयों को स्नान कराने के पश्चात् प्रभु श्रीराम ने अपनी उलझी जटायें बिबरायी अर्थात् विवृत की यानी खोल दी और वे चिन्मय होने से प्रभु की इच्छानुसार समाप्त होकर घुँघराले केशों के रूप में परिवर्तित हो गये। प्रभु ने गुरुदेव से आदेश माँगकर स्नान किया। सरयू जी में आशीर्ष स्नान करके प्रभु श्रीराम ने स्वयं को आभूषणों से सज्जित किया और अपनी स्वयं की शोभा से करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता को लज्जित कर दिया।

दो०– सासुन सादर जानकिहिं, मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ।।११(क)।।

भा०– कौसल्या आदि सासुओं ने सीता जी को शीघ्र स्नान करा उनके अंग–अंग में दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषणों को बना–बनाकर सजाया।

राम बाम दिशि शोभित, रमा रूप गुन खानि।
देखि सासु सब हरषीं, जन्म सुफल निज जानि।।११(ख)।।

भा०– भगवान् श्रीराम के वामभाग में रूप और गुणों की खानि 'र + मा' अर्थात् रेफ के वाच्य भगवान् श्रीराम की 'मा' यानी शक्ति तात्पर्यतः श्रीराम की परम आह्लादिनी शक्ति सीता जी को देखकर, श्रीसीताराम जी के युगल दर्शनों से अपना जन्म सफल जानकर सभी सासुयें प्रसन्न हुईं।

सुनु खगेश तेहि अवसर, ब्रह्मा शिव मुनिबृंद।
चढ़ि बिमान आए सकल, सुर देखन सुखकंद।।११(ग)।।

भा०– गरुड़ देव जी को सावधान करते हुए भुशुण्डि जी कहते हैं कि हे पक्षियों के ईश्वर गरुड़ जी! सुनिये, श्रीरामराज्याभिषेक के उस मंगलमय अवसर पर ब्रह्मा जी, शिव जी, मुनियों के समूह तथा अन्य सभी देवता विमानों पर चढ़कर सुख के मेघ भगवान् श्रीराम के दर्शन करने के लिए आकाशमण्डल में आ गये।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन माँगा।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।।
जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।
बेद मंत्र तब द्विजन उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।

भा०– प्रभु श्रीराम को राज्याभिषेक के लिए सुसज्जित देखकर, मुनि वसिष्ठ जी मन में बहुत अनुरक्त हो गये अर्थात् प्रभु के प्रेम से पूर्ण हो गये। उन्होंने तुरन्त साकेतलोक से दिव्यसिंहासन मँगवाया। सूर्य के समान तेजवाला वह दिव्यसिंहासन वर्णन नहीं किया जा सकता था। भगवान् श्रीराम ब्राह्मणों को मस्तक नवाकर उस दिव्यसिंहासन पर श्रीसीता के समेत विराजमान हुए। श्रीसीताराम जी को राजसिंहासनासीन देखकर मुनियों के समूह बहुत प्रसन्न हुए। तब श्रेष्ठ मुनियों ने राज्याभिषेक में विहित वेदमंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में वर्तमान देवता और मुनियों ने 'जय–जयति' अर्थात् आप सबसे उत्कृष्ट रहें, आप सबसे उत्कृष्ट हों और आप सबसे उत्कृष्ट हो रहे हैं। इस प्रकार के मंगल वचनों का उच्चारण किया।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन आयसु दीन्हा।।
सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी।।

भा०– सर्वप्रथम ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी ने भगवान् श्रीराम को राजतिलक किया, फिर सभी ब्राह्मणों को आज्ञा दी। अपने पुत्र श्रीराम को राज्याभिषिक्त देखकर सभी मातायें बहुत प्रसन्न हुईं और प्रभु श्रीराम की बार–बार आरती उतारीं।

बिप्रन दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन दुंदुभी बजाईं।।

भा०– भगवान् राजा राम जी ने ब्राह्मणों को बहुत प्रकार से दान दिया। सभी याचकों को अयाचक कर दिया अर्थात् किसी को भी किसी भी प्रकार से अभावग्रस्त नहीं रहने दिया। प्रभु राजा राम जी ने सभी को सब प्रकार से सम्पन्न कर दिया। श्रीअवध राजसिंहासन पर तीनों लोकों के स्वामी भगवान् श्रीराम को विराजमान देखकर देवताओं ने नगारे बजाये।

छं०– नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपसरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म शक्ति बिराजते।।१।।

भा०– आकाश में बहुत से नगारे बज रहे हैं। गन्धर्व और किंन्नर गा रहे हैं, अप्सरायें नाच रही हैं, देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत जी आदि छोटे भाई तथा विभीषण, अंगद और हनुमान जी आदि सभी वानर इकट्ठे होकर छत्र, चाँवर, ब्यजन (पंखा), धनुष, बाण, तलवार, ढाल और शक्ति को धारण करके राजा राम जी के चारों ओर विराजमान हो रहे हैं अर्थात् भरत जी श्रीराम का छत्र लेकर, लक्ष्मण जी दोनों चँवर लेकर, शत्रुघ्न जी ब्यजन लेकर, विभीषण जी प्रभु का धनुष लिए हुए, अंगद जी प्रभु की तलवार लिए हुए, हनुमान जी प्रभु की ढाल सम्भाले हुए और सुग्रीव जी प्रभु की शक्ति हाथ में लिए हुए प्रभु की सेवा में विराजमान हो रहे हैं।

श्री सहित दिनकर बंश भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अम्बुधर बर गात अम्बर पीत सुर मन मोहई।।

मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगनि प्रति सजे।
अम्भोज नयन बिशाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।।२।।

भा०– श्री अर्थात् प्रभु की आह्लादिनी शक्ति जनकनन्दिनी सीता जी के सहित सूर्यवंश के आभूषण भगवान् श्रीराम अनेक कामदेवों की सुन्दरता के साथ सुशोभित हो रहे हैं। भगवान् श्रीराम के नवीन वर्षा के लिए उद्यत सुन्दर मेघ जैसे शरीर पर विराजमान पीताम्बर देवताओं का मन मोह ले रहा है। प्रभु राजाराम के प्रत्येक अंग पर मुकुट, केयूर आदि आश्चर्यमय आभूषण सुसज्जित हुए विराजमान हैं। प्रभु के कमल जैसे नेत्र विशाल हृदय और विशाल भुजायें, इस प्रकार सम्पूर्ण वैभव के सहित अवध राजसिंहासन पर श्रीसीता के सहित विराजमान राजाधिराज भगवान् को जो निरन्तर अपने नेत्रों का विषय बनाकर निहारते रहते हैं अर्थात् निरखते रहते हैं, वे प्राणी धन्य हैं।

दो०– वह शोभा समाज सुख, कहत न बनइ खगेश।
बरनहिं शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश।।१२(क)।।

भा०– गरुड़ देव जी को सम्बोधित करते हुए भुशुण्डि जी कहते हैं कि श्रीअवध राज्यसिंहासन पर राज्याभिषिक्त हुए राजाधिराज भगवान् श्रीराम की वह शोभा, वह समाज और वह सुख कहते नही बनता। हे पक्षियों के ईश्वर गरुड़ देव जी! यद्यपि सरस्वती, शेष और चारों वेद उसका वर्णन करते ही रहते हैं, परन्तु उसका रस अर्थात् आनन्द अथवा सारतत्त्व, महेश अर्थात् महान ईश्वर भगवान् श्रीशङ्कर ही जानते हैं।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गए सुर निज निज धाम।
बंदि बेष धरि बेद तब, आए जहँ श्रीराम।।१२(ख)।।

भा०– भिन्न–भिन्न प्रकार की स्तुतियाँ करके सभी देवता अपने–अपने धाम, अर्थात् लोक को चले गये। तब बन्दियों का वेश धारण करके सभी वेद जहाँ श्रीराम राजाधिराज के रूप में श्रीअवध राजसभा में विराज रहे थे वहाँ आये।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति, आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहू मरम कछु, लगे करन गुन गान।।१२(ग)।।

भा०– सर्वज्ञ भगवान् श्रीराम ने बंदी वेश में आये हुए चारों वेदों का बहुत आदर किया। किसी ने कुछ भी मर्म नहीं देखा और वेद अपने षड़ंगों के साथ भगवान् श्रीराम का गुणगान करने लगे। सर्वप्रथम ऋग्वेद ने स्तुति की–

छं०– जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने।
दशकंधरादि प्रचंड निशिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयालु प्रभु संजुक्त शक्ति नमामहे।।१।।

भा०– हे सगुण और निर्गुण रूप! हे अनुपम! हे राजाओं के शिरोमणि प्रभु श्रीराजाराम जी! आपकी जय हो। आपने अपनी भुजाओं के बल से दस कन्धराओंवाले रावण आदि प्रकृष्ट बल वाले खलप्रकृति के भयंकर राक्षसों का नाश किया। हे मनुष्यावतार धारण करने वाले! आप ने मनुष्य अवतार लेकर, संसार का भार नष्ट करके, दारुण दु:खरूप वनों को दहे अर्थात् जला डाला। हे प्रणतपाल अर्थात् प्रकृष्टरूप से प्रणाम करने वाले जनों के पालक! हे दयालु राजाधिराज श्रीराम! आदिशक्ति श्रीसीता के सहित आपश्री को हम अर्थात् वेद नमन करते हैं।

तव बिषम माया बश सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निशि काल कर्म गुननि भरे।।

जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दक्ष हम कहँ रक्ष राम नमामहे।।२।।

भा०– हे हरे अर्थात् भक्तों का क्लेश हरण करने वाले प्रभु श्रीराम! आपकी विषम अर्थात् टेढ़ी चाल चलने वाली माया के वश में हुए देवता, असुर, नाग, मनुष्य आदि सभी जड़, चेतन, काल, कर्म और गुणों से भरे हुए असंख्य दिन–रात संसार के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ! जिनको आपने करुणा करके निहार लिया वे तीनों प्रकार के दुःख से छूट गये। ऐसे संसार के कष्ट को नष्ट करने में चतुर हे महाराज श्रीराम! आप हम वेदों को बचा लें, कोई विधर्मी हमें तहस–नहस करने की चेष्टा भी नहीं करे। हे श्रीराम! हम आपको नमन करते हैं, इस प्रकार कृष्णयजुर्वेद ने कहा।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।
बिश्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।।३।।

भा०– अब शुक्लयजुर्वेद ने कहा, हे प्रभु! जिन्होंने ज्ञान के अहंकार में पागल होकर आपकी संसार का कष्ट हरनेवाली भक्ति का आदर नहीं किया, उनको देवदुर्लभ पद पाकर भी उससे पतित होते हुए हम देख रहे हैं। जो लोग विश्वास करके सम्पूर्ण आशायें छोड़कर आपके दास होकर रह रहे हैं, वे आपका श्रीरामनाम जप करके बिना श्रम के ही भवसागर के पार हो जाते हैं। हे राजाधिराज! उन आपश्री को हम वेद स्मरण करते हैं।

जे चरन शिव अज पूज्य रज शुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिश अंकुश कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे।।४।।

भा०– अब सामवेद के उद्‌गीत भाग ने स्तुति की, हे श्रीसीतापते महाराज! आपके शिव जी और ब्रह्मा जी द्वारा पूजित तथा जिन श्रीचरणों की पवित्र धूलि का स्पर्श करके मुनि पत्नी अर्थात् महर्षि गौतम जी की पत्नी अहल्या जी तर गईं। मुनियों के द्वारा वन्दित तीनों लोक को पवित्र करने वाली देवनदी गंगा जी जिन श्रीचरणों के नख से निकलीं, जो आपके श्रीचरण ध्वजा, वज्र, अंकुश (बर्छी) तथा कमल की रेखाओं से युक्त होकर दण्डक वन के काँटों और उनसे बने हुए चिन्हों को स्वीकारे, हे मुकुन्द अर्थात् मुक्ति के भी आधारभूत भक्ति को देनेवाले तथा द्वन्द्वों से मुक्त कर देने वाले! आपके उन्हीं श्रीचरणकमल युगल को हम वेद नित्य भजते हैं।

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध शाखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।।५।।

भा०– अब वृहत् सामवेद ने स्तुति की, हे प्रभु श्रीराम! वेद और आगम इस प्रकार कहते हैं कि अव्यक्त अर्थात् आपकी माया जिसका मूल है, जो वृक्ष आदिरहित है और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थायें ही जिसकी चार छालें हैं। जन्म, स्थिति, परिवर्द्धन, परिवर्तन ह्रास और विनाश ये छः जिसकी डालियाँ हैं। पँचमहाभूत, पँचतन्मात्रायें, पँचज्ञानेन्द्रिय, पाँचकर्मेन्द्रिय और पाँच प्राण ये पच्चीस जिसकी शाखायें हैं। जिसके अनेक कर्मरूप अनेक पत्ते हैं और जीवों के अनेक मन जिसके असंख्य पुष्प हैं। कटु और मधुर अर्थात् शुभ और अशुभ यही जिसके फल हैं और जिस पर अविद्यारूप एकमात्र लता लटक रही है, ऐसा संसाररूप वृक्ष, जिन आपश्री परमात्मा

पर आश्रित रहकर निरन्तर पल्लवयुक्त, पुष्पित, फलयुक्त और नवीन बना रहता है, उन संसार रूप वृक्ष के आश्रयदाता आपश्री परब्रह्म परमात्मा को हम नित्य नमन करते हैं।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।६।।

भा०- अब अथर्ववेद ने स्तुति करते हुए कहा, जो लोग आपको ब्रह्म, अजन्मा, अद्वैत तथा सजातीय, विजातीय, स्वगत्, भेदशून्य, अनुभवगम्य और मन से परे ध्यान करते हैं अर्थात् जो लोग आपको निर्विशेष ब्रह्मरूप में देखते हैं वे कहें और जाने, किन्तु हे नाथ! हम चारों वेद तो निरन्तर आपके सगुण ब्रह्म का सगुण यश ही गाते हैं, क्योंकि निर्विशेषवाद अर्थात् निर्गुण ब्रह्मोपासना हम वेदों से सम्मत नहीं है। हे करुणा के आयतन अर्थात् भवन! हे सन्तोचित् श्रेष्ठ कल्याणगुणों के आकर अर्थात् खानि प्रभु श्रीराम! हे देव! हम तो आपसे यही वरदान माँगते हैं कि हम मन, वाणी और कर्म से सभी विकारों को छोड़कर आपके श्रीचरणों में प्रेम करते रहें।

दो०- सब के देखत बेदन, बिनती कीन्ह उदार।
अंतर्धान भए पुनि, गए ब्रह्म आगार।।१३(क)।।

भा०- सबके देखते-देखते बन्दी वेशधारी उदार वेदों ने भगवान् श्रीराम जी की उदार विनती की, फिर वे अन्तर्ध्यान हो गये और ब्रह्मलोक को चले गये।

बैनतेय सुनु शंभु तब, आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक शरीर।।१३(ख)।।

भा०- भुशुण्डि जी कहते हैं कि, हे विनता के पुत्र गरुड़ देव जी! सुनिये, वेदों के पधार जाने के पश्चात् जहाँ रघुवीर अर्थात् जीवों के विशेष प्रेरक राजाधिराज भगवान् श्रीराम थे, वहाँ शिव जी आये और शरीर में रोमांच से पूर्ण होकर गदगद वाणी से भगवान् श्रीराम की स्तुति करने लगे।

छं०- जय राम रमा रमणं शमनम्। भव ताप भयाकुल पाहि जनम्।
अवधेश सुरेश रमेश बिभो। शरणागत माँगत पाहि प्रभो।।१।।

भा०- हे श्रीराम! आपकी जय हो। मैं रमा अर्थात् श्रीसीता के रमण और संसार के कष्ट को नष्ट करने वाले आप श्रीराम को नमन करता हूँ। आप भय से आकुल मुझ सेवक की रक्षा कीजिये। हे अयोध्यापति! हे देवताओं के ईश्वर! हे रमेश अर्थात् हे अपनी रमा नामक आह्लादिनी शक्ति के ईश्वर! हे सर्वव्यापक! हे सर्वशक्तिमान प्रभु! मुझ शरणागत् को बचा लीजिये।

दशशीष बिनाशन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।
रजनीचर बृंद पतंग रहे। शर पावक तेज प्रचंड दहे।।२।।

भा०- हे बीस भुजाओं और दस सिरवाले रावण के नाशक! आप ने पृथ्वी के बहुत-बड़े भयंकर रोग को दूर कर दिया अर्थात् रावण सभ्य समाज के लिए भयंकर रोग था। जो राक्षस समूहरूप पतिंगे थे वे आप के प्रचण्ड तेजवाले बाण रूप अग्नि में जल गये।

महि मंडल मंडन चारुतरम्। धृत सायक चाप निषंग बरम्।
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी।।३।।

भा०– पृथ्वीमण्डल के आभूषण और सुन्दरों से भी बहुत सुन्दर, श्रेष्ठ बाण और धनुष को धारण करने वाले प्रभु! मैं आपको नमन करता हूँ। मद, मोह तथा बहुत बड़ी ममतारूपी रात्रि के अन्धकार समूहों को नष्ट करने के लिए तेज की सेना से युक्त आप सूर्य रूप हैं।

मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग शरेण हिए।
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पामर भूलि परे।।४।।

भा०– हे प्रभो! कामरूप भील ने हरिण रूप संसारी लोगो को कुभोग के बाण से मार डाला है। हे नाथ! इस कामरूप किरात को मारकर आप उन अनाथों की रक्षा कीजिये, जो नीच लोग आपको भुलकर विषयों के घोर वन में भटक रहे हैं।

बहु रोग बियोगनि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए।
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते।।५।।

भा०– हे प्रभो! बहुत से रोगों और वियोंगों अर्थात् विषयों के संयोगों ने लोगों को मार डाला है। आपश्री के श्रीचरणकमल के निरादर के ये ही फल मिलते हैं अर्थात् जो आपश्री के श्रीचरणकमल का सम्मान करते हुए भजन करते हैं, उन्हें संसार के रोग और वियोग कष्ट नहीं देते। वे मनुष्य अगाध भवसागर में पड़े रहते हैं, जो आपके श्रीचरणकमलों में प्रेम नहीं करते।

विशेष : "विषयाणां योग: वियोग: "विषयों" के संयोग ही यहाँ वियोग शब्द से विवक्षित है।

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन के पद पंकज प्रीति नहीं।
अवलंब भवंत कथा जिन के। प्रिय संत अनंत सदा तिन के।।६।।

भा०– वे लोग निरन्तर अत्यन्त दीन और उदास तथा दुःखी रहते हैं, जिनको आपश्री के श्रीचरणकमलों में प्रीति अर्थात् भक्ति नहीं होती। जिनको आपकी कथा का अवलम्ब होता है, उनको सदैव सन्त और आप श्रीरामरूप भगवन्त दोनों ही प्रिय होते हैं।

नहि राग न लोभ न मान मदा। तिनके सम बैभव वा बिपदा।
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा।।७।।
करि प्रेम निरंतर नेम लिए। पद पंकज सेवत शुद्ध हिए।
सम मानि निरादर आदरही। सब संत सुखी बिचरंति मही।।८।।

भा०– जिनके पास राग, लोभ, मान, मोह, मद नहीं होता उनके लिए सम्पत्ति और विपत्ति दोनों एक समान हो जाते हैं। इसी से अर्थात् इन्हीं गुणों के समुदाय से साधक आपके प्रसन्नतापूर्वक सदैव सेवक बन जाते हैं अर्थात् आपके नित्य परिकर हो जाते हैं। मुनि लोग योग का भरोसा छोड़ देते हैं। वे आपको प्रेम करके निरन्तर नियम स्वीकार करते हुए शुद्ध हृदय से आपके श्रीचरणकमल की सेवा करते हैं। आदर और निरादर अर्थात् मान और अपमान को समान मानकर सभी सन्त सुखपूर्वक पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे।
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी।।९।।

भा०– हे मुनियों के मनरूप कमल के भ्रमर! हे महारणधीर अर्थात् भयंकर युद्धों में भी अडिग रहनेवाले! अजेय अर्थात् किसी से भी न जीते जानेवाले रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम! मैं आपका भजन करता हूँ। हे हरे! हे मान

के शत्रु प्रभु श्रीराम! मैं आपको नमन करता हूँ और मैं अर्थात् शिव, संसाररोग की महौषधिरूप आपश्री के श्रीरामनाम का जप करता हूँ।

गुन शील कृपा परमायतनम्। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनम्।
रघुनंद निकन्दय द्वंद्वघनम्। महिपाल बिलोकय दीनजनम्।।१०।।

भा०–पतित पावनत्त्व आदि समस्त कल्याणगुण, लोकोत्तर स्वभाव और कृपा के परम आयतन अर्थात् श्रेष्ठ मन्दिर, श्रीसीता के रमण आप श्रीराम को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुवंश को आनन्दित करने वाले तथा जीवमात्र को आनन्द देनेवाले श्रीराघव! आप द्वन्द्वों के समूह को नष्ट कर दीजिये। हे पृथ्वी के पालक महाराज श्रीराम! मुझ दीनजन अर्थात् शिव को कृपादृष्टि से निहार लीजिये।

दो०– बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग।।१४(क)।।

भा०– मैं बार–बार वरदान माँग रहा हूँ कि हे श्रीसीता का रंजन करने वाले प्रभु! मुझे प्रसन्नता से अपने श्रीचरणकमलों की अनपायनी भक्ति तथा सदैव सत्संग दीजिये अर्थात् सत्संग में कभी व्यवधान न पड़े।

बरनि उमापति राम गुन, हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन दिवाए, सब बिधि सुखप्रद बास।।१४(ख)।।

भा०– उमा जी के पति शिव जी, श्रीराम के गुणों का वर्णन करके प्रसन्न होकर कैलाश चले गये। तब प्रभु श्रीराम ने साथ आये हुए वानरों को सब प्रकार से सुखप्रद निवास स्थान दिलाये।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव दाप दावनी।।
महाराज कर शुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका।।

भा०– भुशुण्डि जी गरुड़ देव जी से कहते हैं कि हे पक्षीराज! सुनिये, भगवान् श्रीराम के राज्याभिषेक की यह कथा तीनों ताप को और संसार के दर्प अर्थात् तीव्रता को समाप्त कर देती है। महाराज श्रीराम का मंगलमय अभिषेक सुनकर प्राणी वैराग्य और ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं।।
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नितई।।

भा०– जो जीव किसी कामना के सहित सकाम भावना से इस कथा को सुनते और गाते हैं तथा सुनेंगे तथा गायेंगे वे नाना प्रकार की सुख और सम्पत्ति पा रहे हैं और पाते रहेंगे। वे संसार में देवदुर्लभ भोग करके अन्तकाल में भगवान् श्रीराम के पुर साकेतलोक को चले जाते हैं और भविष्य में भी इस कथा के माध्यम से साकेतलोक जाते रहेंगे। जो भी मुक्त, विरक्त और विषयी इस कथा का नित्य श्रवण करेंगे अथवा करते हैं, उनमें से विमुक्तों को भक्ति, विरक्तों को गति और विषयी को सम्पत्ति प्राप्त होती रहेगी और वे इस कथा को सुनकर क्रमशः भक्ति, गति और सम्पत्ति प्राप्त करते रहेंगे।

खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी।।
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी।।

भा०– भुशुण्डि जी कहते हैं, हे गरुड़ देव! मैंने अपनी बुद्धि को विलसित करने वाली, भय और दु:ख को हरने वाली, वैराग्य, विवेक तथा भक्ति को दृढ़ करने वाली, मोहरूप नदी के लिए सुन्दर जहाजरूप श्रीराम की कथा का वर्णन किया।

नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी।।
नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब के जिनहिं नमत शिव मुनि अज।।
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन दान नाना बिधि पाए।।

भा०– कोसलपुरी अर्थात् श्रीअयोध्या में निरन्तर मंगल हो रहा है। सभी वर्णों के लोग प्रसन्न हो रहे हैं और जिन्हें ब्रह्मा जी, शिव जी और मुनिगण प्रणाम करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल में सभी को निरन्तर प्रीति हो रही है। मंगन अर्थात् भिक्षुकों को बहुत प्रकार से पहिराए अर्थात् वस्त्र दिया गया और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार से दान पाये।

दो०– ब्रह्मानंद मगन कपि, सब के प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गए मास षट बीति।।१५।।

भा०– आगन्तुक वानर–भालु ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये। सभी के मन में प्रभु श्रीराम जी के श्रीचरणों में प्रीति अर्थात् प्रेम था। उन्होंने दिनों को जाते नहीं जाना, परन्तु छ: महीने बीत गये और कोई जाने का नाम ही नहीं ले रहा था।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं।।
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबनि सादर सिर नाए।।
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे।।

भा०– वानर–भालु अपने घरों को भूल गये, उन्हें स्वप्न में भी उनका स्मरण नहीं होता था, जिस प्रकार सन्तों के मन में परद्रोह का स्मरण नहीं होता। तब भगवान् श्रीराम ने सभी वानर–भालु मित्रों को बुलाया और सब ने आकर आदरपूर्वक प्रणाम किया। पवित्र प्रेम के साथ प्रभु ने उन्हें निकट बिठाया और भक्तों के सुखदाता प्रभु श्रीराम कोमल वचन बोले–

तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई।।
ताते मोहि तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।।

भा०– हे मित्रों! तुमने हमारी बहुत सेवा की है। तुम्हारे ही मुख पर तुम्हारी ही बड़ाई किस प्रकार करूँ, इसलिए तुम मुझे बहुत प्रिय लगे हो, क्योंकि तुमने मेरे हित के लिए घर का सुख छोड़ दिया।

अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।
सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।।

भा०– तीनों छोटे भाई, अयोध्या का सार्वभौम राज्य, सम्पूर्ण राजपरिवार, संपत्ति, विदेहनन्दिनी श्रीसीता, शरीर, अवध राजभवन, सम्पूर्ण कुटुम्बीजन तथा अन्य भी स्नेह के पात्र, इष्ट–मित्र, मेरे सभी प्रेमास्पद, तुम्हारे समान प्रिय नहीं हैं। मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ, मेरा यह स्वभाव है। ऐसी नीति है कि सेवक सभी के प्रिय होते हैं, पर मुझे दास पर अधिक प्रेम रहता है।

दो०- अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित, जानि करेहु अति प्रेम।।१६।।

भा०- हे वानर–भालु सभी मित्रों! अब अपने–अपने घर चले जाओ। मुझे दृढ़नियम के साथ भजना, मुझे सदैव सर्वव्यापी और सबका हितैषी जानकर प्रेम करना।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए।।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।

भा०- प्रभु का वचन सुनकर सभी वानर–भालु मग्न हो गये अर्थात् प्रेम में डूब गये। हम कौन हैं और कहाँ हैं, इस प्रकार अपने शरीर को भी भूल गये। हाथ जोड़कर प्रभु के समक्ष टकटकी लगाये हुए देखते रहे। वे अनुराग में इतने विह्वल हुए कि प्रभु के समक्ष कुछ भी नहीं कह सक रहे थे।

परम प्रेम तिन कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिशेषा।।
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।।

भा०- प्रभु ने वानर भालुओं का पवित्र प्रेम देखा तो उन्हें समझाने के लिए अनेक प्रकार से ज्ञान का उपदेश दिया। वानर–भालु प्रभु के समक्ष कुछ भी नहीं कह पा रहे हैं और बारम्बार प्रभु के श्रीचरणकमलों को ही निहार अर्थात् देख रहे हैं।

तब प्रभु भूषन बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।

भा०- तब भगवान् श्रीराम ने नाना रंगों के उपमारहित सुन्दर वस्त्र और आभूषण मँगाये। सर्वप्रथम अपने हाथ से बनाये हुए वस्त्रों को भरत जी ने सुग्रीव जी को धारण कराया।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए।।
अंगद बैठि रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।।

भा०- प्रभु से प्रेरित होकर अर्थात् आदिष्ट होकर लक्ष्मण जी ने श्रीराम के मन को अच्छे लगने वाले लंकापति विभीषण जी को वस्त्र धारण कराये। अंगद जी बैठे रहे, नहीं डिगे और उनकी प्रीति देखकर प्रभु ने उन्हें नहीं बुलाया।

दो०- जामवंत नीलादि सब, पहिराए रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ।।१७(क)।।

भा०- जाम्बवान जी, नील–नल जी आदि को श्रीरघुनाथ ने वस्त्र धारण कराया और वे सब हृदय में श्रीराम के रूप को धारण करके प्रभु के श्रीचरणों में मस्तक नवाकर चल पड़े।

तब अंगद उठि नाइ सिर, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेम रस बोरि।।१७(ख)।।

भा०- तब अंगद जी उठकर प्रभु के श्रीचरणकमलों में मस्तक नवाकर, आँखों में आँसू भर कर, हाथ जोड़कर मानो प्रेमरस में भिंगोकर अत्यन्त विनीत अर्थात् विनम्र वाणी बोले–

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।।
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहिं कोंछे घाली।।

भा०– हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के सागर! हे दीनों पर दया करने वाले! हे आर्त्तों के बन्धु प्रभु श्रीराम! सुनिये, मरते समय बालि मुझे आपके ही कोंछे अर्थात् गोद में डाल गए थे।

अशरन शरन बिरद संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।
तुमहिं बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।

भा०– हे भक्तों के भयहारी! आप अशरण अर्थात् जिनका कोई रक्षक नहीं है, उनके रक्षक हैं, इस यश का स्मरण करके मुझे मत छोड़िये। हे प्रभु! आप मेरे गुरु, पिता–माता, स्वामी सब कुछ हैं। इन श्रीचरणकमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? हे मनुष्यों के राजा! आप ही विचारकर कहिये कि श्रीराम को छोड़कर भवन में मेरा क्या कार्य है?

बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु शरन नाथ जन दीना।।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।

भा०– हे प्रभु! ज्ञान, बुद्धि और बल से रहित अपने इस बालक को दीनजन जानकर अपनी शरण में रख लीजिये। हे प्रभु! मैं घर की छोटी से छोटी सेवा करूँगा और आपके श्रीचरणकमलों को देखकर भवसागर से पार हो जाऊँगा, इतना कहकर अंगद जी ने प्रभु के श्रीचरण पकड़ लिए और कहा, हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये और अब मुझे घर जाओ इस प्रकार मत कहिये।

दो०– अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना सीव।
प्रभु उठाइ उर लायउ, सजल नयन राजीव।।१८(क)।।

भा०– अंगद जी के विनम्र वचन सुनकर, करुणा की सीमा स्वरूप प्रभु ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया, उनके लाल कमल जैसे नेत्र सजल हो गये।

निज उर माला बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ।।१८(ख)।।

भा०– अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि पहनाकर बहुत प्रकार से समझा–बुझाकर भगवान् श्रीराम ने बालि पुत्र अंगद जी को विदा किया।

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा।।

भा०– भक्तों के किये हुए भजन पर अपना चित्त समर्पित करने वाले, भरत जी, छोटे भाई शत्रुघ्न जी और सुमित्रा जी के ज्येष्ठपुत्र लक्ष्मण जी के साथ वानर–भालुओं को पहुँचाने चले। श्रीअंगद जी के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं था। वह श्रीराम जी की ओर बारम्बार देख रहे थे।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।।
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद पंकज राखी।।

भा०– अंगद जी बारम्बार दण्ड प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा भाव आता है कि कदाचित् प्रभु श्रीराम मुझे यहाँ रहने के लिए कह दें। श्रीराम की चितवन, बोलना, चलना, हँसकर मिलना, यह सब कुछ अंगद जी हृदय में

विचार करके सोच रहे हैं। अन्ततोगत्वा प्रभु श्रीराम का रुख पाकर बहुत प्रकार से प्रार्थना करके हृदय में उनके श्रीचरणकमल को रखकर अंगद जी चल दिये।

अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन सहित भरत पुनि आए।।
तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा।।
पुन्य पुंज तुम पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।।

भा०- अत्यन्त आदरपूर्वक सभी वानरों को पहुँचाया अर्थात् विदा किया, फिर दोनों भाई लक्ष्मण जी एवं शत्रुघ्न जी के साथ भरत जी श्रीअवधपुर आ गये। तब सुग्रीव जी के चरण पकड़कर हनुमान जी ने नाना प्रकार से विनय किया और बोले, हे देव! दस दिन तक प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों की सेवा करके फिर आपके श्रीचरणों के दर्शन करुँगा। सुग्रीव जी आदि वानर बोले, हे पवनपुत्र हनुमान जी! आप पुण्य के समूह स्वरूप हैं, जाकर कृपा के भवन श्रीराम की निरन्तर सेवा करिए। इतना कहकर सभी वानर तुरन्त चल पड़े। अंगद जी ने कहा, हे हनुमान जी! सुनिये–

दो०- कहेहु दंडवत प्रभुहिं सन, तुमहिं कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति कराएहु मोरि।।१९(क)।।

भा०- आप प्रभु को मेरा दण्डवत कहियेगा। मैं आपसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि रघुकुल के नायक श्रीराम को मेरा बार–बार स्मरण कराते रहियेगा।

अस कहि चलेउ बालिसुत, फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भए भगवंत।।१९(ख)।।

भा०- इतना कहकर बालिपुत्र अंगद जी चल पड़े। हनुमान जी प्रभु की सेवा करने के लिए श्रीअवध लौट आये और अंगद जी की प्रीति प्रभु से कही, सुनकर भगवान् श्रीराम मग्न हो गये।

कुलिशहुँ चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहुँ चाहि।
चित खगेश अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि।।१९(ग)।।

भा०- भुशुण्डि जी गरुड़ देव को सावधान करते हुए कहते हैं कि हे पक्षीराज! श्रीरघुनाथ का चित्त वज्र से भी अत्यन्त कठोर है और पुष्प से भी अत्यन्त कोमल है। वह किसी को कैसे समझ पड़ सकता है?

पुनि कृपालु लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।

भा०- फिर कृपालु श्रीराम ने निषादराज गुह को बुला लिया और प्रसाद के रूप में आभूषण और वस्त्र दिये तथा बोले, हे मित्र! अपने भवन शृंगवेरपुर जाओ मेरा स्मरण करते रहना तथा मन, वाणी शरीर से धर्म का अनुसरण करते रहना।

तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।।

भा०– तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान छोटे भ्राता भी हो। सदैव श्रीअवधनगर में आते–जाते रहना। यह वचन सुनते ही निषाद जी के मन में बहुत सुख हुआ और आँखों में जल भरकर निषादराज भगवान् के श्रीचरणों में पड़ गये।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु स्वभाव परिजननि सुनावा।।
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।।

भा०– प्रभु के श्रीचरणकमलों को हृदय में धारण करके निषादराज घर आये और प्रभु श्रीराम का स्वभाव अपने परिजनों को सुनाया। प्रभु श्रीराम के चरित्र को देखकर अवधपुरवासी बार–बार कहते हैं कि हे सुखों की राशि श्रीराम! आप धन्य हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब शोका।।
बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।

भा०– भगवान् श्रीराम राजसिंहासन पर बैठे हैं। भूर्भुवः स्वः ये तीनों लोक प्रसन्न हो गये। सबके समस्त शोक समाप्त हो गये। कोई किसी से वैर नहीं करता है। श्रीराम के प्रताप ने सबके मन की विषमबुद्धि समाप्त कर दी।

दो०– बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग।।२०।।

भा०– निरन्तर सब लोग वर्ण और आश्रम के अनुसार अपने धर्म में लगे रहते हैं तथा सदैव वैदिक मार्ग पर चलते हैं, इसलिए सुख प्राप्त करते हैं। किसी को भी भय, शोक या रोग नहीं है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।।
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

भा०– श्रीराम के राज्य में किसी को भी दैहिक अर्थात् देह सम्बन्धी, दैविक अर्थात् देवता सम्बन्धी, भौतिक अर्थात् प्राणियों से सम्बद्ध ताप कुछ भी नहीं व्यापते। सभी लोग परस्पर प्रेम करते हैं और अपने धर्म में निरत होकर वैदिकनीति के अनुसार चलते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।

भा०– संसार में धर्म चारों चरण से अर्थात् तप, शौच, सत्य, दान से पूर्ण था, स्वप्न में भी पाप नहीं था। सभी नर–नारी श्रीराम की भक्ति में लगे थे और सभी परमगति सामीप्य के अधिकारी थे।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज शरीरा।।
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

भा०– उस समय किसी की भी अल्पमृत्यु नहीं होती थी और न ही किसी को किसी प्रकार की पीड़ा थी। सभी सुन्दर थे और सभी का शरीर रोगमुक्त था। न कोई दरिद्र था, न दुःखी था और न ही कोई दीन था। न कोई अबुध अर्थात् मूर्ख था और न ही कोई शुभलक्षणों से हीन ही था।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।

भा०– सभी अयोध्या के नर–नारी दम्भ से रहित, धर्म में लगे हुए तथा पवित्र थे, सभी चतुर तथा गुणज्ञ थे, सभी पण्डित थे, सभी ज्ञानी थे, सभी कृतज्ञ थे और किसी के मन में कपट की चतुरता नहीं थी।

दो०– रामराज नभगेश सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म स्वभाव गुन, कृत दुख काहुहिं नाहिं।।२१।।

भा०– हे पक्षियों के स्वामी ! सुनिये, श्रीरामराज्य में सम्पूर्ण चर–अचर (चेतन–जड़) सहित तथा संसार में काल, कर्म, स्वभाव और गुणों के द्वारा किया हुआ किसी भी प्रकार का दुःख नहीं था।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।

भा०– सातों समुद्र जिसकी मेखला अर्थात् करधनी हैं, ऐसी पृथ्वी पर कोसलपुरी अयोध्या में एकमात्र श्रीरघुनाथ ही राज्य करते थे अर्थात् समस्त संसार की एकमात्र राजधानी अयोध्या थी और एकमात्र राजा श्रीराम थे। जिनके प्रत्येक रोम में अनेक भुवन विराजते हों उन्हीं अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक भगवान् श्रीराम के लिए यह प्रभुता अर्थात् समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का एकमात्र शासन कुछ भी बहुत नहीं है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।।
सो महिमा खगेश जिन जानी। फिरि एहिं चरित तिनहुँ रति मानी।।

भा०– प्रभु श्रीराम की वह महिमा समझते हुए इस प्रकार का वर्णन करना कि श्रीरघुनाथ सम्पूर्ण पृथ्वी के एकमात्र राजा थे और हैं, यह बहुत ही हीनता है अर्थात् छोटापन है। हे गरुड़ देव जी ! उस महिमा को जिन महानुभाव ने जान लिया उन लोगों ने भी फिर से इसी सगुणलीला के चरित्र में प्रेम माना है।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दमशीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकहिं फनीश शारदा।।

भा०– उस महिमा को जानने का यही फल है कि इन्द्रियों का दमन करने वाले मुनिगण भी इस लीला को आदरपूर्वक सुनते हैं। श्रीरामराज्य के सुख और सम्पत्ति का वर्णन सर्पराज शेष जी और सरस्वती जी भी नहीं कर सकते।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी। तिय मन बच क्रम पति हितकारी।।

भा०– श्रीअयोध्या में सभी उदार थे, सभी परोपकारी थे और सभी नर–नारी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक थे। सभी पुरुष एक नारी व्रत थे अर्थात् श्रीरामराज्य में बहुपत्नी प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और स्त्रियाँ भी मन, वाणी, शरीर से पतियों का हित करने वाली थीं।

दो०– दंड जतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचंद्र के राज।।२२।।

भा०– श्रीराम जी के राज्य में दण्ड केवल त्रिदण्डि स्वामियों के हाथ में ही सुना जाता था अर्थात् प्रजा में किसी को भी दण्ड नहीं दिया जाता था। श्रीरामराज्य में भेद वहाँ था जहाँ नर्तकों और नृत्य का समाज था। प्रजा में कहीं भेद नहीं था, सब एक जैसे थे, अथवा, नर्तकों के यहाँ गायक, वादक, नर्तक इस प्रकार का भेद सुना जाता था। श्रीरामराज्य में केवल मन को जीतो यही बात सुनी जाती थी अर्थात् वहाँ कोई शत्रु नहीं था।

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बैर बिसराई। सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

भा०- वन में वृक्ष निरन्तर फूलते और फलते थे, हाथी और सिंह एक साथ रहा करते थे। पशु–पक्षियों ने स्वाभाविक वैर भुला दिया था और सभी ने एक–दूसरे से प्रेम बढ़ा लिया था।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
शीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।

भा०- नाना प्रकार के पक्षी और पशु बोल रहे हैं। वन में निर्भीक होकर चरते हैं और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द और सुगन्ध पवन बहता रहता है। पुष्पों का मकरन्द लेकर चलते हुए भ्रमर गुंजार करते हैं।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।।

भा०- लता और वृक्ष माँगने पर मधु चुआते हैं। गौयें मन की भावना के अनुसार दूध देती हैं। पृथ्वी सदैव ससि से अर्थात् खेती से सम्पन्न रहती है। त्रेता में भी कृतयुग की करनी हो गई अर्थात् कृतयुग जैसा वातावरण श्रीराम राजा की कृपा से त्रेता में भी हो गया।

प्रगटीं गिरिन बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। शीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

भा०- जगत ही जिसका शरीर है ऐसे भगवान् श्रीराम को इस संसार में राजा बनकर राज्य करते हुए जानकर पर्वतों में अनेक प्रकार की मणियों की खानियाँ प्रकट हो गईं। सभी नदियाँ शीतल, निर्मल, स्वादयुक्त और सुख देने वाला जल बहती थी।

सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटनि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिशा बिभागा।।

भा०- सागर अपनी मर्यादा में रहते थे, तटों में रत्न डाल देते थे, उन्हें लोग प्राप्त कर लेते थे। सम्पूर्ण सरोवर कमलों से युक्त रहते थे। दसों दिशाओं के विभाग अत्यन्त प्रसन्न थे।

दो०- बिधु महि पूर मयूखनि, रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज।।२३।।

भा०- चन्द्रमा अपनी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण किये रहते थे। सूर्य उतना ही तपते थे जितना कार्य होता था। श्रीराम जी के राज्य में बादल माँगने पर जल दिया करते थे।

कोटिन बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन कहँ दीन्हे।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अनेक दान दिये। भगवान् श्रीराम वेदपथ के पालक, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, तीनों मायिक गुणों से परे और भोग में साक्षात् इन्द्र ही हैं।

पति अनुकूल सदा रह सीता। शोभा खानि सुशील बिनीता।।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमलमन लाई।।

भा०- शोभा की खानि, सुन्दर शीलवाली, विनम्र सीता जी सदैव पति श्रीराम के अनुकूल रहती हैं। भगवती श्रीसीता जी कृपासिन्धु श्रीराम जी की प्रभुता जानती हैं, इसलिए मन लगाकर श्रीराम जी के श्रीचरण कमल की सेवा करती हैं।

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।

भा०– यद्यपि श्रीअवध राजभवन में अनेक सेवक और अनेक सेविकायें हैं वे सभी सेवाविधि में चतुर हैं, फिर भी भगवती श्रीसीता अपने हाथ से गृह की सेवा करती हैं और भगवान् श्रीराम की आज्ञा का अनुसरण करती हैं।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्रीसेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवत सबहिं मान मद नाहीं।।

भा०– कृपा के सागर श्रीराम जिस विधि से सुख मानते हैं अर्थात् प्रसन्न होते हैं श्री जी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि जानती हैं। कौसल्या आदि सासुयें गृह में विराजती हैं, उन सभी की सेवा श्रीसीता करती हैं, क्योंकि श्रीसीता के मन में मान और मद नहीं है।

उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता। जगदम्बा संततमनिंदिता।।

दो०– जासु कृपा कटाक्ष सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति, करति स्वभावहिं खोइ।।२४।।

भा०– भगवती श्रीसीता, उमा अर्थात् पार्वती जी, रमा अर्थात् लक्ष्मी जी और ब्रह्माणी जी द्वारा वन्दित हैं अर्थात् तीनों देवियाँ श्रीसीता के श्रीचरणों की वन्दना करती हैं। वे जगत की माता और निरन्तर अनिन्दित हैं अर्थात् श्रीसीता जी की कभी निन्दा नहीं होती। देवता लोग निरन्तर जिनकी कृपा–कटाक्ष की इच्छा करते हैं, परन्तु श्रीसीता उन्हें कभी भी नहीं देखती, वही साकेत की अधीश्वरी, आह्लादिनी आदिशक्ति श्रीसीता जी अपने ऐश्वर्य स्वभाव को छोड़कर सदैव भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल में प्रेम करती हैं।

विशेष– धोबी के द्वारा आरोप और श्रीसीता का श्रीराम द्वारा निर्वासन यह सब कपोल कल्पित और मनगढ़न्त कथा है। इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए मेरे द्वारा रचित “*सीता निर्वासन नहीं*” नामक ग्रन्थ पढ़िये।

सेवहिं सानुकूल सब भाई। रामचरन रति अति अधिकाई।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपालु हमहिं कछु कहहीं।।

भा०– सभी तीनों भाई आनुकूल्य भाव के साथ भगवान् श्रीराम की सेवा करते हैं, उनके मन में श्रीराम के श्रीचरण के प्रति अत्याधिक रति अर्थात् भक्ति है। वे सब प्रभु का मुख कमल निहारते रहते हैं कि कृपालु श्रीराम हमें कभी तो कुछ कहें।

राम करहिं भ्रातन पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।।
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा।।
अहनिशि बिधिहिं मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं।।

भा०– भगवान् श्रीराम भ्राताओं पर प्रेम करते हैं, उन्हें नाना प्रकार से नीति सिखाते हैं। श्रीअवधनगर के लोग प्रसन्न रहते हैं और सभी देवदुर्लभ सुख–भोग करते हैं। रात–दिन ब्रह्मा जी से प्रार्थना करते हैं और सभी अवधवासी श्री अर्थात् श्रीसीता जी एवं रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल में रति अर्थात् प्रेमलक्षणाभक्ति चाहते हैं अर्थात् प्रत्येक अवधवासी श्रीसीताराम जी का युगलोपासक है, इसलिए कोई भी श्रीसीता के प्रति अविश्वास कर ही नहीं सकता।

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुश बेद पुरानन गाए।।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे। भए रूप गुन शील घनेरे।।

भा०– श्रीसीता ने श्रीअवध राजभवन में ही दो सुन्दर पुत्रों को प्रकट किया, जिन्हें लव और कुश नाम से वेद सम्मत पुराणों ने गाया। दोनों भ्राता विजयी, विनयशील और श्रेष्ठ गुणों के मन्दिर थे, मानो वे श्रीराम के प्रतिबिम्ब रूप में अत्यन्त सुन्दर थे अर्थात् दोनों ही राजकुमार श्यामवर्ण के थे। इसी प्रकार सभी भ्राताओं के यहाँ दो–दो पुत्र जन्मे। भरत जी के यहाँ तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मण जी के यहाँ चन्द्रकेतु और अंगद, शत्रुघ्न जी के यहाँ सुबाहु और शत्रुघाती। इनमें रूप, शील तथा बहुत–से गुण विद्यमान थे।

दो०– ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार।।२५।।

भा०– जो ज्ञान, वाणी तथा इन्द्रियों से परे हैं, जो माया, मन और मायिक गुणों से भी बहुत दूर हैं, वे ही सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीराम जी उदार मनुष्य चरित्र कर रहे हैं।

प्रात काल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन।।
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।
अनुजन संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं।।

भा०– प्रात:काल श्रीसरयू नदी में मज्जन करके सन्ध्यावन्दन, स्वल्पाहार से निवृत होकर साथ में ब्राह्मणों और श्रीवैष्णवों को लेकर प्रभु श्रीराम श्रीअवध की राजसभा में विराज जाते हैं। वसिष्ठ जी वेदों तथा वेदसम्मत पुराणों का व्याख्यान करते हैं। उसे भगवान् श्रीराम सुनते हैं, यद्यपि वे सब कुछ जानते हैं। छोटे भाई श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी के साथ भगवान् श्रीराम प्रतिदिन मध्याह्न का राजभोग भोजन करते हैं, उसे देखकर सभी मातायें आनन्द में भर जाती हैं।

विशेष : इस प्रसंग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लव, कुश, तक्ष, पुष्कल चन्द्रकेतु, अंगद, सुबाहु, शत्रुघाती नामक आठ पौत्रों को भी कौसल्या आदि राज माताओं ने दुलारा और भगवान् श्रीराम अपने तीनों भाइयों सहित नित्य राज्यसभा में विराजते तथा साथ में भोजनादि करते थे। अर्थात् न तो सीता जी का निर्वासन हुआ था और न ही अयोध्या में किसी प्रकार का कष्ट था।

भरत शत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई।।
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा।।
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहि।।

भा०– दोनों भाई श्रीभरत एवं शत्रुघ्न जी, हनुमान जी के साथ उपवन में जाकर बैठकर हनुमान जी से वन में सम्पन्न हुई श्रीराम की गुणगाथायें पूछते हैं और अगाध सुन्दरबुद्धि वाले हनुमान जी महाराज श्रीरामकथा कहते हैं। प्रभु के निर्मल गुण सुनकर श्रीभरत–शत्रुघ्न जी बहुत सुख पाते हैं और बारम्बार विनय करके हनुमान जी से श्रीरामकथा कहलवाते हैं।

सब के गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना।।
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निशि जात न जानहिं।।

भा०– सभी के घर–घर में पुराण प्रसिद्ध परमपवित्र नाना प्रकारों के श्रीरामचरित्र होते हैं अर्थात् पुराणों के माध्यम से कहे जाते हैं। अथवा सभी अवधवासियों के घर–घर में श्रीरामचरित्र के कारण पवित्र श्रीरामकथाप्रधान नाना प्रकार के पौराणिक आख्यान कहे, सुने जाते हैं। श्रीअयोध्या के पुरुष और स्त्रियाँ श्रीराम का गुणगान करते रहते हैं, वे दिन–रात को बीतते हुए नहीं जान पाते हैं।

दो०– अवधपुरी बासिन कर, सुख संपदा समाज।
सहस शेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज।।२६।।

भा०– श्रीअवधपुरवासियों का सुख–सम्पत्ति और उनके समाज को सहस्रों शेष नहीं कह सकते, जहाँ पर स्वयं परब्रह्म परमात्मा श्रीराम राजा बनकर विराज रहे हैं।

नारदादि सनकादि मुनीशा। दरसन लागि कोसलाधीशा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।।

भा०– नारदादि भक्तिप्रधान मुनिगण और सनकादि ज्ञानप्रधान श्रेष्ठमुनि ये सभी अयोध्याधिपति भगवान् श्रीराम के दर्शन के लिए प्रतिदिन श्रीअयोध्या आते हैं और श्रीअयोध्या नगर को देखकर अपना वैराग्य भुला देते हैं।

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।
नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।

भा०– जातरूप अर्थात् स्वर्ण और मणियों से अट्टालिकायें बनाई गई हैं और फर्शें भी अनेक रंगवाली मणियों से सुन्दर प्रकार से ढाली हुई हैं। श्रीअवध के चारों ओर कोट अर्थात् परकोटे बहुत ही सुन्दर हैं, उनमें रंग–रंग के सुन्दर कँगूरे बनाये गये हैं, मानो रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नवग्रहों के समूहों ने अपनी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो।

विशेष– तात्पर्य यह है कि नगर के चारों ओर विशाल कोट हैं और उन पर बहुरंगे कँगूरे बनाये गये हैं, जिनमें नवों प्रकार के ग्रहवाले रत्नों का प्रयोग हुआ है। यथा– सूर्य का गुलाबी, चन्द्र का श्वेत, मंगल का लाल, बुध का हरा, गुरु का पीला, शुक्र का अत्यन्त श्वेत, शनि का श्याम, राहु का श्याम और केतु का श्याम इन्हीं वर्णों के अनुसार, क्रमशः सूर्य का रक्त मूँगा, चन्द्रमा का मोती, मंगल का मूँगा, बुध का पन्ना, गुरु का पुष्पराज (पोखराज), शुक्र का जरिकन (हीरा), शनि का नीलम राहु का गोमेद और केतु का वैदूर्य। कँगूरों पर ये नवों प्रकार के रत्न लगे हुए हैं। इसी दृष्टि से गोस्वामी जी ने इनकी नवग्रहों के साथ उत्त्प्रेक्षा की है। श्रीअवध के कोट की पूर्वोक्त नवों रत्न के ब्याज से रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु नाम वाले नवों ग्रह प्रभु के द्वारा नियुक्त किये हुए सुरक्षाधिकारी के रूप में श्रीअवध की रक्षा का दायित्व सम्भालते हैं। इसी प्रकार श्रीवैष्णव पूजापद्धति में भी सात दिनों के गुलाबी श्वेत, लाल, हरा, पीला, अत्यन्त श्वेत, और नील वस्त्रों के माध्यम से नवों ग्रह प्रभु श्रीराम के श्रीविग्रह पर सेवा की भावना से विराजमान होकर उनका अनुग्रह प्राप्त करते रहते हैं।

महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन राँचा।।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलश मनहुँ रबि शशि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।।

भा०– पृथ्वी पर अर्थात् श्रीअयोध्या के राजमार्गों की भूमि पर बहुत रंगवाले काँचमणि की गच अर्थात् फर्श बनाई गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठमुनियों का भी मन उस पर आकर्षित हो जाता है। अयोध्या के श्वेत रंग के प्रासाद–भवन

ऊपर आकाश को चूमते हैं और कलश मानो सूर्य–चन्द्र की निन्दा करते हैं। बहुत सी मणियों से रचे हुए झरोखे अर्थात् खिड़कियाँ सुशोभित होती हैं और प्रत्येक भवन में मणियों के दीपक प्रकाशमान रहते हैं।

छं०– मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रनि खचे।।

भा०– मणियों के दीप देदीप्यमान हो रहे हैं, उनसे श्रीअयोध्या के भवन शोभित होते हैं। देहलियाँ मूँगों से बनाई गई हैं, मणियों के खम्भे और दीवारें, मानो ब्रह्मा जी द्वारा बनाई गई हैं, जो स्वर्णमणि और मरकतमणि से जटित हैं। अथवा, भित्तियाँ साकेत के ब्रह्मा जी द्वारा बनाये हुए स्वर्ण मणि और मरकत मणि से जटित हैं। अयोध्या के भवन सुन्दर, मन को हरने वाले तथा विशाल हैं। वहाँ के आँगन सुन्दर स्फटिक मणियों से बनाये गये हैं। प्रत्येक द्वार पर स्वर्ण के बनाये हुए किवाड़ बहुत से हीरों से जटित हैं।

दो०– चारु चित्रशाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरखत, मुनि मन लेहिं चोराइ।।२७।।

भा०– श्रीअयोध्या के प्रत्येक भवन में बनी हुई सुन्दर चित्रशालाओं में श्रीरामचरित्र की अनेकानेक घटनायें सवाँर कर अंकित की गई है, जो श्रीरामचरित्र देखते ही नारदादि भक्तिप्रधान और सनकादि ज्ञानप्रधान मुनियों के मन को भी चुरा लेते हैं।

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसंत कि नाई।।
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर।।

भा०– सभी ने अपने–अपने भवनों के बाहर अनेक प्रकार से यत्न करके सुन्दर बनाकर पुष्पों की वाटिकायें बनाई हैं, जिनसे दैनिक देवपूजन में तुलसीदल और पुष्प का उपयोग हो सके। वहाँ बहुत–सी जातियों की सुन्दर लतायें हैं, जो सदैव वसन्तऋतु की ही भाँति पुष्पों से लदी हुई रहती हैं अर्थात् प्रत्येक ऋतु में वसन्त की ही भाँति विकसित होती रहती हैं। मन को हरने वाले स्वर से युक्त भौंरे गुंजार करते रहते हैं और सदैव सुन्दर अर्थात् धूल से रहित तीनों प्रकार का शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु धीरे–धीरे बहता रहता है।

नाना खग बालकन जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए।।
मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर शोभा अति पावत।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।
शुक सारिका पढ़ावहि बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।।

भा०– नगर के बालकों ने नाना प्रकार के पक्षी पाल रखे हैं, जो बहुत मधुर बोलते हैं और बहुत ही सुहावने प्रकार से उड़ते हैं। अयोध्या के भवनों पर मोर, हंस, सारस और कबूतर बहुत शोभा पाते हैं। जहाँ–तहाँ मणियों में अपनी परछाईं देखते हैं और बहुत प्रकार से बोलते हैं तथा नृत्य करते हैं। बालक लोग तोते और मैनों को पढ़ाते हैं। उनसे कहते हैं, कहो राम रघुपति जनपालक।

विशेष– आज भी तोते और मैंनों को सिखाते हुए श्रीअवध अंचल में कुछ शब्द बोले जाते हैं, जैसे *पढ़ पर्वते सीताराम, कहत राम सीता, जनम जात बीता।*

राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू।।

भा०– श्रीअवध का राजद्वार सब प्रकार से सुन्दर है। श्रीअयोध्या की गलियाँ, चौहट अर्थात् चतुष्पथ है और वहाँ के बाजार बहुत सुन्दर हैं।

छं०– बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर शिशु जरठ जे।।

भा०– श्रीअयोध्या के सुन्दर बाजार का वर्णन करते नहीं बनता, वहाँ सभी वस्तुयें बिना मोल–भाव के उपलब्ध रहती हैं अर्थात् मूल्य पूछे बिना ही लोग राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखकर उचित मूल्य दे देते हैं। अथवा, वहाँ कोई वस्तु बेचता ही नहीं। सभी के उपयोग की वस्तुयें उपभोक्ताओं के लिए बाजार में रखी रहती है। जिस अयोध्या के स्वयं पराशक्ति श्रीसीता के पति ही राजा हैं वहाँ की सम्पत्ति किस प्रकार गायी जाये। बाजारों में अनेक बजाज (वस्त्र विक्रेता) सर्राफ अर्थात् सोने–चाँदी के व्यापारी, बनिक अर्थात् अन्न, अनाज, बर्तन आदि के व्यापारी बैठे रहते हैं, मानो वे साक्षात् कुबेर ही हों। जो भी स्त्री पुरुष, बाल, वृद्ध हैं, वे सभी सुखी, सच्चरित्र अैर सुन्दर हैं अर्थात् श्रीरामराज्य में न कोई दु:खी है और न चरित्रहीन है और न ही कोई कुरूप है।

दो०– उत्तर दिशि सरजू बह, निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर।।२८।।

भा०– नगर के उत्तर दिशा में भगवती श्रीसरयू बहती हैं, उनका जल निर्मल है तथा वे गम्भीर हैं, अर्थात् गहरी हैं। उनके सुन्दर घाट बँधे हुए है, तटों पर थोड़ा भी कीचड़ नहीं रहता।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।

भा०– सरयू जी का वह घाट दूर और सबसे अलग हैं, जहाँ हाथी–घोड़ों के समूह, गौ आदि अन्यान्य पशु जल पीते हैं, उसे गो घाट कहते हैं। सरयू जी में अनेक सुन्दर पनघट बने हैं, वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते। पनघटों पर केवल महिलायें स्नान करती हैं और जल भरती हैं। राजघाट सब प्रकार से सुन्दर और अत्यन्त श्रेष्ठ है। वहाँ चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग के पुरुष स्नान करते हैं अर्थात् श्रीरामराज्य में वर्णाश्रम के अनुसार जातियाँ हैं पर जातिवाद नहीं है।

तीर तीर देवन के मंदिर। चहुँ दिशि तिन के उपबन सुंदर।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि सन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन लगाई।।

भा०– श्रीसरयू नदी के प्रत्येक तट पर देवताओं के मन्दिर हैं और उनके चारों ओर उपवन अर्थात् ठाकुर जी की बगीचियाँ लगी हैं। कहीं–कहीं सरयू जी के तट पर ज्ञान में लगे हुए, विषयों से उदासीन सन्यासीजन और मुनिजन छोटे–छोटे झोपड़े बनाकर निवास करते हैं। सरयू जी के सभी तटों पर मुनियों ने अर्थात् श्रीवैष्णवों ने अनेक समूहों में तुलसी जी के वृक्ष लगाये हैं।

पुर शोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तड़ागा।।

भा०- नगर की शोभा का तो कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता। नगर के बाहर अत्यन्त सुन्दरता दिखती है। श्रीअयोध्यापुरी को देखते ही और उसके वन–उपवन, बावलियाँ और सरोवरों के दर्शन करते ही, सभी पाप भग जाते हैं।

छं०- बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

भा०- बावलियाँ, तालाब, उपमा से रहित कुएँ बड़े ही सुन्दर तथा बड़े ही विशाल है और ये सुचारु रूप से निर्मित होने के कारण अद्भुत शोभा पाते हैं। जलाशयों की सीढ़ियाँ बड़ी ही सुन्दर हैं और जल बहुत ही निर्मल है, जिसे देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं। उनमें बहुरंगे कमल खिले हैं, वहाँ अनेक पक्षी बोलते हैं और भ्रमर गुंजार करते रहते हैं। श्रीअवध के बगीचे बड़े ही रमणीय हैं, उनमें कोयल आदि पक्षियों के कलरव इतने आकर्षक हैं, मानो वे राह चलते पथिकों को भी बुला लेते हैं।

दो०- रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रहीं अवध सब छाइ।।२९।।

भा०- जहाँ साक्षात् लक्ष्मी की भी लक्ष्मी भगवान् श्रीराम की पराशक्ति श्रीसीता के पति श्रीराम राजा हैं क्या उस पुर का वर्णन किया जा सकता है? अणिमादिक सिद्धियाँ और सभी सुख देनेवाली सम्पत्तियाँ श्रीअवध में छा रही हैं।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं। शोभा शील रूप गुन धामहिं।।

भा०- श्रीअयोध्या में जहाँ–तहाँ लोग रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के गुण गाते हैं और बैठकर परस्पर एक–दूसरे को यही शिक्षा देते हैं अर्थात् सभी बूढ़े अपने बालकों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि सभी लोग शरणागतों का पालन करने वाले, शोभा, स्वभाव, रूप एवं गुणों के मन्दिरस्वरूप भगवान् श्रीराम का भजन करो।

जलज बिलोचन श्यामल गातहिं। पलक नयन इव सेवक त्रातहिं।।
धृत शर रुचिर चाप तूनीरहिं। संत कंज बन रबि रनधीरहिं।।

भा०- कमल के समान नेत्रों वाले, श्यामल शरीर वाले और पुतली के पलक की भाँति अपने भक्तों की रक्षा करने वाले, श्रेष्ठ बाण और सुन्दर धनुष–तरकस धारण करने वाले, सन्तरूप कमल वन को विकसित करने के लिए सूर्य के समान, संग्राम में स्थिर रहने वाले भगवान् श्रीराम का भजन करो।

काल कराल ब्याल खगराजहिं। नमत राम अकाम ममता जहिं।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहिं। मनसिज करि हरि जन सुखदातहिं।।
संशय शोक निबिड़ तम भानुहिं। दनुज गहन घन दहन कृशानुहिं।।
जनकसुता समेत रघुबीरहिं। कस न भजहु भंजन भव भीरहिं।।

भा०- कालरूप सर्प का भक्षण करने के लिए साक्षात् गरुड़ स्वरूप, कामादि दोषों से रहित, मेरे अर्थात् श्रीअवध के वृद्धजनों के ताजस्वरूप प्रभु श्रीराम को तुम सब नमन करो। लोभ, मोहरूप मृगसमूह के लिए किरात अर्थात् आखेटक स्वरूप, कामरूप हाथी को नष्ट करने के लिए सिंह के समान, भक्तों को सुख देने वाले, संशय और शोकरूप अन्धकार के लिए सूर्य और दैत्यरूप घने वन को जलाने के लिए अग्नि के समान, भव–भय को नष्ट करने वाले ऐसे श्रीसीता के सहित विराजमान रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम को तुम लोग क्यों नहीं भजते?

विशेष- इस सोपान के पच्चीसवें दोहे में लव–कुश का जन्म कहकर तीसवें दोहे की आठवीं पंक्ति में जनकसुता समेत शब्द का प्रयोग करके गोस्वामी जी ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि श्रीसीता का द्वितीय वनवास कल्पित है। उनकी किसी ने कभी निन्दा नहीं की। लव–कुश का जन्म श्रीअवध के राजभवन में ही हुआ। उनकी कथा वाल्मीकि रामायण में नहीं है, परन्तु वेद से अनुमोदित पुराणों में है। "**लव कुश वेद पुरानन गाये**"। (मानस, ७.२५.६.) गोस्वामी जी ने यह नहीं कहा कि लव कुश वाल्मीकि मुनि गाये और इसलिए लव–कुश के जन्म के पश्चात् भी गोस्वामी जी श्रीअवधवासियों के मुख से कहलवाते हैं कि "**जनकसुता समेत रघुवीरहिं**" अर्थात् श्रीसीता के सहित श्रीरघुनाथ का भजन करो।

बहु बासना मशक हिम राशिहिं। सदा एक रस अज अबिनाशिहिं।।
मुनि रंजन भंजन महि भारहिं। तुलसिदास के प्रभुहिं उदारहिं।।

भा०- अनेक वासनारूप मच्छरों को नष्ट करने के लिए हिम की राशि (बर्फ के समूह) के समान, निरन्तर एकरस में रहने वाले, अजन्मा, अविनाशी, मुनियों को आनन्दित करने वाले, पृथ्वी का भार नष्ट करने वाले, कवि तुलसीदास के प्रभु, परम उदार भगवान् श्रीसीताराम का भजन करो।

दो०- एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपानिधान।।३०।।

भा०- इस प्रकार से श्रीअवधनगर के स्त्री–पुरुष भगवान् श्रीराम के गुणगान करते रहते हैं और कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम सभी पर निरन्तर सानुकूलता के साथ रहते हैं किसी के प्रति भी प्रतिकूल नहीं रहते।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेशा।।
पूरि प्रताप रहेउ तिहुँ लोका। बहुतन सुख बहुतन मन शोका।।

भा०- गरुड़ जी को सावधान करते हुए भुशुण्डि जी कहते हैं कि हे पक्षीराज! जब से श्रीराम प्रतापरूप अत्यन्त प्रबल सूर्यनारायण उदित हुए हैं, तभी से तीनों लोक प्रभु के प्रतापरूप सूर्य के प्रकाश से भर रहे हैं। इससे बहुत लोगों के मन में सुख होता है और बहुत लोगों के मन में शोक होता है।

जिनहिं शोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निशा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।

भा०- प्रभु के प्रतापरूप सूर्य से जिन्हें शोक है, उनका व्याख्यान करके कहता हूँ। सर्वप्रथम अविद्यारूप रात्रि नष्ट हो गई, पापरूप उल्लू जहाँ–तहाँ छिप गये। काम, क्रोध और कुमुद संकुचित हो गये। प्रभु के प्रतापरूप

सूर्यनारायण के उदित होने पर अनेक कर्म, तीनों गुण, काल, स्वभाव ये सब चकोर कहीं भी सुख नहीं प्राप्त कर रहे हैं। मत्सर, मान, मोह, मद आदि जो चोर हैं इनका किसी भी ओर हुनर अर्थात् कौशल नहीं दिख रहा है।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत शोक ए कोक अनेका।।

भा०– धर्मरूप सरोवर में ज्ञान और विज्ञानरूप ये नाना विधि के कमल विकसित हो रहे हैं। सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेकरूप ये अनेक चकवे शोक से रहित हो गये।

दो०– यह प्रताप रबि जाके, उर जब करइ प्रकाश।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे, कहे ते पावहिं नाश।।३१।।

भा०– यह श्रीराम प्रतापरूप सूर्य जब भी जिसके हृदय में प्रकाश करता है, तब पीछे अर्थात् सातवीं पंक्ति से कहे हुये सद्‌गुण बढ़ जाते हैं और इसके पूर्व जो तीसरी पंक्ति से छठी तक अविद्या, पाप, काम, क्रोध, मत्सर, कर्म, गुण, काल, स्वभाव, मान, मोह, मद कहे गए हैं, उनका नाश हो जाता है।

भ्रातन सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा।।
सुंदर उपवन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।

भा०– एक बार भगवान् श्रीराम भ्राताओं (श्रीभरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जी) के साथ तथा परमप्रिय पवनपुत्र हनुमान जी को भी साथ लेकर सुन्दर उपवन देखने के लिए गये, जिसमें सभी वृक्ष पुष्प से युक्त थे और उनमें नवीन–नवीन पल्लव आये हुए थे।

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन शील सुहाए।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।
रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरशी मुनि बिगत बिभेदा।।
आशा बसन ब्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।।

भा०– उचित अवसर जानकर वहाँ सनकादि अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार जी आ गये जो तेज के पुंज थे तथा गुणों और शील से सुहावने प्रतीत हो रहे थे, वे ब्रह्मानन्द में तन्मय रहते हैं, देखने में बालक लगते हैं, वस्तुतः बहुत काल के हैं, अर्थात् कल्प के प्रारम्भ में शिव जी से भी प्रथम ब्रह्मा जी के मनःसंकल्प से उनका जन्म हुआ है, मानो चारों वेद ने ही चार रूप धारण कर लिए हैं। वे मननशील, समदर्शी और भेद से रहित हैं अर्थात् सब में ब्रह्मदर्शन करते हैं और सबको आत्मतत्त्व ज्ञान से सम्पन्न देखते हैं। समस्त संसार को भगवान् का शरीर मानते हैं। चारों दिशायें ही उनके वस्त्र हैं और उन्हें एकमात्र यही व्यसन है कि जहाँ भगवान् श्रीराम का चरित्र होता है, वहाँ जा के सुनते हैं।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी।।
राम कथा मुनिवर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी।।

भा०– शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे भवानी! सनकादि श्रीराम के उपवन प्रवेश के समय वहाँ थे जहाँ घड़े से उत्पन्न होनेवाले मुनिश्रेष्ठ ज्ञानी अगस्त्य जी विराजमान थे। अगस्त्य जी ने उस श्रीरामकथा का सनकादि के समक्ष विस्तार से वर्णन किया, जो उसी प्रकार ज्ञान को जन्म देती है, जैसे अरणी लकड़ी अग्नि को उत्पन्न कर देती है।

दो०- देखि राम मुनि आवत, हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह।।३२।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने सनकादि मुनियों को आते देखकर प्रसन्न होकर दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे स्वागत पूछकर अर्थात् आप ठीक से तो पधारे, मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? इस प्रकार प्रश्न करके प्रभु श्रीराम ने उन्हें बैठने के लिए आसन रूप में अपना पीताम्बर उत्तरीय ही दे दिया।

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।।
श्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे शीष नवावहिं।।

भा०- पवनपुत्र हनुमान जी के साथ अत्यन्त सुखपूर्वक तीनों भ्राता, श्रीभरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जी ने सनकादि को दण्डवत् किया। भगवान् श्रीराम की अतुलनीय छवि देखकर मुनि मग्न हो गये, वे अपने मन को नहीं रोक सके। श्यामल शरीर, कमल जैसे नेत्र, स्वयं सुन्दरता के श्रेष्ठ भवन, भव-भय को नष्ट करने वाले प्रभु को देखते हुए मुनि एकटक रह गये अर्थात् टकटकी लगाकर प्रभु के देखते रह गये। वे अपनी पलकें नहीं बन्द कर रहे हैं और प्रभु श्रीराम हाथ जोड़े हुए महर्षियों को सिर नवा रहे हैं।

तिन की दशा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा।।
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।

भा०- रघुकुल के वीर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम ने नेत्रों से अश्रुपात करते हुए, रोमांचित शरीर वाले उन चारों मुनिवरों की दशा देखकर हाथ पकड़कर मुनिश्रेष्ठों को अपने पीताम्बर के आसन पर बिठाया तथा मन को हरने वाले वचन बोले-

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीशा। तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीशा।।
बड़े भाग पाइय सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।

दो०- संतसंग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, श्रुति पुरान सदग्रंथ।।३३।।

भा०- हे मुनीश्वरों! सुनिये, आज मैं (राम) अत्यन्त धन्य हो गया हूँ। आप लोगों के दर्शनों से प्राणिमात्र के पाप नष्ट हो जाते हैं, व्यक्ति को बड़े भाग्य से सत्संग प्राप्त होता है और बिना प्रयास के संसारभाव नष्ट हो जाते हैं। अथवा, प्रयास के बिना ही जन्मों का क्रम नष्ट हो जाता है। सन्तों का संग अपवर्ग अर्थात् मोक्ष का कारण है और कामी संसार के मार्ग का निर्माण करता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्कर में डालता है। यह सिद्धान्त सन्त, मनीषी, वेदज्ञ, वेद, पुराण और अन्य वेद से सम्मत श्रेष्ठ ग्रन्थ कहते हैं।

विशेष- ''नास्ति पवर्गः यस्मिन् स अपवर्गः'' जहाँ पवर्ग अर्थात् प, फ, ब, भ, म इन पाँच अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले प (पाप-पुण्य), फ (कर्म के फल), ब (कर्म के बन्धन) भ (भवमय) म (मरणं) नहीं होते उसी मोक्ष को संस्कृत में अपवर्ग कहते हैं।

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि शोभाकर।।

भा०- प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार प्रसन्न हो गये और उनका शरीर पुलकित हो गया, वे भगवान् श्रीराम की स्तुति करने लगे, "हे भगवान् अर्थात् ऐश्वर्यादि छहों माहात्म्यों से सम्पन्न! हे अनन्त अर्थात् अन्तरहित! हे अनामय अर्थात् आमय यानी संसार के रोगों से रहित! हे निष्पाप! हे अनेक जीवात्माओं के साथ अन्तर्यामी बनकर अनेक रूप में विद्यमान! हे एक अर्थात् अद्वितीय! हे करुणामय अर्थात् करुणा की प्रचुरता से युक्त प्रभु श्रीराम! आपकी जय हो। हे प्राकृतगुणों से रहित और मायिकगुणों का निषेध करने वाले, सम्पूर्ण गुणों को अपने में लीन किये हुए परमेश्वर! आपकी जय हो। हे सभी कल्याण गुणगणों के समुद्र! आपकी जय हो। हे सुख के मन्दिर, स्वभावतः सुन्दर, अत्यन्त चतुर परमात्मा! आपकी जय हो। हे 'इंदि' अर्थात् लक्ष्मी जी को 'रा' अर्थात् प्रकट करने वाली इंदिरा श्रीसीता के रमण! आपकी जय हो। हे वराह रूप में पृथ्वी को धारण करने वाले! आपकी जय हो। हे उपमारहित! हे अजन्मा तथा 'अ' अर्थात् विष्णु जी को भी 'ज' अर्थात् जन्म देने वाले! आपकी जय हो। हे आदिरहित, शोभा की खानि! आपकी जय हो।

विशेष- *इन्दिं लक्ष्मीं राति आविर्भावयति इति इन्दिरा सीता।*

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहँ परिपालय।।
द्वंद्व बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय।।

भा०- हे ज्ञान के कोश! हे मानरहित, सबको मान अर्थात् पूजा देने वाले प्रभु श्रीराम! आपका पावन सुयश पुराण और वेद कहते हैं। हे तत्त्वों को जानने वाले! हे सबके कृतों अर्थात् कर्मों को जानने वाले कृतज्ञ! अज्ञान को नष्ट करने वाले! हे अनेक नामों वाले और हे संसार के नाम रूपों से रहित! हे कर्मफल के लेपरूप अन्जन से रहित! हे सर्वस्वरूप! हे सर्वव्यापी! भगवान् श्रीराम! आप सभी के हृदय रूप भवनों में निवास करते हैं, इसलिए आप हम सबका चारों ओर से पालन कीजिये। हे श्रीराम! हमारे द्वन्द्वों की विपत्तियों और भव के बन्धन का नष्ट कीजिये और हमारे हृदय में निवास करके काम और मद को समाप्त कर दीजिये।

दो०- परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम।।३४।।

भा०- हे परमानन्द और कृपा के श्रेष्ठ भवन! हे मन की कामनाओं को पूर्ण करने वाले! हे भगवान् श्रीराम! हमको आप अनपायनी प्रेमाभक्ति दें।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध ताप भव दाप नसावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।।

भा०- हे रघुवंश के नाथ! मुझे अत्यन्त पवित्र तीनों दुःखों और संसार के गर्वों को नष्ट करने वाली अपनी भक्ति दीजिये। प्रणतों की कामनाओं के लिए कामधेनु और कल्पवृक्ष, सर्वसमर्थ प्रभु! हमें प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक।।
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।

भा०– हे भवसागर को सोखने के लिए अगस्त्य जी! हे रघुकुल के नायक, सेवा करने वालों के लिए सुलभ और सम्पूर्ण सुख देने वाले! हे दीनों के बन्धु! आप मन से उत्पन्न होने वाले भयंकर दु:खों को नष्ट कर दीजिये और समता का विस्तार कीजिये।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।

भा०– हे आशा, भय और ईर्ष्या आदि विकारों को नष्ट करने वाले! विराग, विवेक और विनय का विस्तार करने वाले! हे पृथ्वी के आभूषण और हे राजाओं के मुकुटमणि राजाधिराज भगवान् श्रीराम! हमें संसार सागर की नौकारूप भक्ति दे दीजिये।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज शङ्कर।।
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक। काल करम सुभाव गुन भक्षक।।
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।

भा०– हे मुनियों के मनरूप मानस सरोवर के निरन्तर राजहंस और हे ब्रह्मा जी और शिव जी द्वारा पूजित श्रीचरणकमल! हे रघुकुल के केतु! हे वैदिक सेतु के रक्षक! हे काल, कर्म, स्वभाव और गुण को भक्षण करने वाले! हे संसार सागर को तारने के लिए नौका के समान! हे सम्पूर्ण दोषों को हरनेवाले! हे तीनों लोकों के आभूषण तुलसीदास के प्रभु! आप हमें अपनी भक्ति दीजिये।

दो०– बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिर नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ।।३५।।

भा०– बार–बार स्तुति करके प्रेमपूर्वक प्रभु को प्रणाम करके, अत्यन्त अभीष्ट वरदान पाकर सनकादि ब्रह्मलोक को चले गये।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन राम चरन सिर नाए।।
पूँछत प्रभुहिं सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं।।
सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।।
अंतरजामी प्रभु सब जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना।।

भा०– सनकादि ब्रह्मा जी के लोक चले गये और भरत जी आदि भ्राताओं ने भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में मस्तक नवाये। प्रभु से पूछने में सभी संकोच कर रहे हैं और सब हनुमान जी की ओर देख रहे हैं। सभी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जो सुनकर समस्त भ्रमों की हानि हो जाती है अर्थात् सभी भ्रम नष्ट हो जाते हैं। सर्वान्तर्यामी प्रभु श्रीराम ने सब कुछ जान लिया और बोले, हे हनुमान! बोलो, क्या पूछना चाहते हो? अथवा, तुममें से कौन क्या पूछना चाहता है?

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयालु भगवंता।।
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं।।

भा०– तब हाथ जोड़कर हनुमान जी महाराज ने कहा, हे दीनों पर दया करने वाले भगवान् श्रीराघव! सुनिये, हे नाथ! भरत जी आपसे कुछ पूछना चाहते हैं, परन्तु प्रश्न करने में मन में संकुचित हो रहे हैं।

तुम जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अंतर काऊ।।
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।।

भा०– तब श्रीरघुनाथ ने कहा, हे वानरश्रेष्ठ हनुमान जी! तुम तो मेरा स्वभाव जानते हो। क्या कभी भरत और मेरे बीच कुछ अन्तर रहा है? अर्थात् उन्हें मुझसे कोई संकोच नहीं करना चाहिये। प्रभु का वचन सुनकर भरत जी ने श्रीरघुनाथ के श्रीचरण पकड़ लिए और बोले, हे नाथ! हे प्रणतजनों की आर्ति अर्थात् दुःखजनित विकलता को नष्ट करने वाले प्रभु! सुनिये–

दो०– नाथ न मोहि संदेह कछु, सपनेहुँ शोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहिं, चिदानंद संदोह।।३६।।

भा०– हे नाथ! हे चित् और आनन्द के सन्दोह अर्थात् घन! केवल आपकी कृपा से ही मुझे स्वप्न में भी न सन्देह है और न ही शोक तथा मोह है।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम जन सुखदाई।।
संतन के महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुराननि गाई।।
श्रीमुख तुम पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई।।
सुना चहउँ प्रभु तिन कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन।।
संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।

भा०– हे कृपानिधि! फिर भी एक धृष्टता कर रहा हूँ, मैं सेवक हूँ और आप सेवकों के सुखदाता हैं। हे रघुकुल के राजा प्रभु! सन्तों की महिमा वेद–पुराणों ने बहुत प्रकार से गायी है। हे श्रीमुख! आपने भी उनकी बहुत बड़ाई की है, क्योंकि, उन पर आपको बहुत प्रेम है। हे कृपा के सागर! हे सभी गुणों की ज्ञान में कुशल श्री रघुनाथ जी! मैं उन सन्तों के लक्षण सुनना चाहता हूँ। हे प्रणतपाल! मुझे सन्त और असन्त का भेद अलग–अलग करके समझाकर कहिये।

संतन के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।
संत असंतन कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परशु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई।।

दो०– ताते सुर शीषनि चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु बदन यह दंड।।३७।।

भा०– भगवान् श्रीराम बोले, हे भ्राता! सुनो, सन्तों के अगणित लक्षण सभी वेदों एवं पुराणों में विख्यात हैं। सन्तों और असन्तों की उसी प्रकार की कृति होती है, जैसे चन्दन और कुल्हाड़ी का आचरण होता है अर्थात् सन्त चन्दन के समान होते हैं और असन्त कुल्हाड़ी के समान होते हैं। हे भैया भरत! सुनिये, परशु अर्थात् कुल्हाड़ी चन्दन को काट देती है, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में चन्दन अपने सुगन्ध गुण से अपने को काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित कर देता है। इसलिए सारे संसार को प्रिय श्री जी के खण्ड के समान यह चन्दन देवताओं के सिर पर चढ़ता है और कुल्हाड़ी के मुख को अग्नि में जलाकर घन से पीटा जाता है यही उसका दण्ड है अर्थात् जैसे चन्दन का प्रारम्भिक जीवन कष्टमय, परन्तु परिणाम मंगलमय होता है, उसी प्रकार सन्तों का प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय और परिणाम हर्षमय होता है। इधर दुष्ट प्रारम्भ में सुखी होता है और अन्त में दुःख पाता है।

बिषय अलंपट शील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।
कोमलचित दीनन पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।

भा०- जो विषयों के लम्पट नहीं होते अर्थात् विषयभोगों में जो निस्पृह रहते हैं, जो शील और गुणों की खानि होते हैं। जिन्हें दूसरों के दु:ख में दु:ख और दूसरों का सुख देखकर सुख होता है, वे सर्वत्र समभाव रखते हैं। जो किसी भी प्राणी के शत्रु नहीं हैं अथवा कोई प्राणी जिनका शत्रु नहीं है, जो मदहीन और राग से रहित होते हैं, जो लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग कर चुके हैं, जिनका चित्त कोमल होता है और जो दीनों पर दया करते हैं, जिनमें मन, वाणी, शरीर से कपटरहित मेरी भक्ति होती है, जो सभी को सम्मान देते हैं और स्वयं सम्मान की अपेक्षा नहीं रखते, हे भरत! वे चौदह प्रकार के प्राणी मुझे प्राण के समान प्रिय होते हैं।

बिगत काम मम नाम परायन। शांति बिरति बिनती मुदितायन।।
शीतलता सरलता मयित्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयित्री।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।

दो०- निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज।।३८।।

भा०- जो संसार की कामनाओं से रहित और मेरे श्रीरामनाम के उपासक होते हैं, जो शान्ति, वैराग्य, विनम्रता तथा मेरे भजन से उत्पन्न प्रसन्नता के निवास स्थान बन जाते हैं, शीतलता, सरलता, मित्रता, धर्म को उत्पन्न करने वाली ब्राह्मण चरणों में प्रीति ये सब लक्षण जिसके हृदय में निवास करते हैं, हे तात! उसी को निरन्तर सत्य सन्त जानो। जो शम अर्थात् मन का शमन, दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन तथा तप, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान रूप नियमों से कभी नहीं डिगते और कभी भी कठोर वचन नहीं बोलते हैं। जिनके लिए निन्दा और स्तुति दोनों ही समान होते हैं और जिन्हें मेरे श्रीचरणकमलों में ही ममता होती है, ऐसे श्रेष्ठ गुणों के मन्दिर और मेरे भजन सुख के पुञ्जस्वरूप वे सज्जन मुझे प्राण के समान प्रिय होते हैं।

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिय न काऊ।।
तिन कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई।।
खलन हृदय अति ताप बिशेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।

भा०- हे भरत! अब असन्तों अर्थात् दुष्टों का स्वभाव सुनो। भूल में भी कभी इनकी संगति नहीं करनी चाहिये। इन दुष्टों का संग उसी प्रकार दु:ख देता है जैसे कपिला अर्थात् सीधी गाय को हरहाई अर्थात् दुष्ट गाय नष्ट कर देती है। दुष्टों के हृदय में अत्यन्त विशिष्ट ताप होता है अर्थात् उनके हृदय में ईर्ष्या की आग दहकती रहती है। वे सदैव दूसरों की सम्पत्ति देखकर जलते हैं। अत: जहाँ कहीं दुष्ट लोग दूसरों की निन्दा सुनते हैं, तब वे इतने प्रसन्न होते हैं, मानो उन्होंने पड़ी हुई निधि पा ली हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बैर अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।

भा०- वे काम, क्रोध, मद, लोभ के ही उपासक होते हैं। वे दयारहित, कपटी, कुटिल और मलों के भवन होते हैं। दुष्ट बिना कारण सभी से वैर करते हैं, जो हित करता है उससे भी और जो अहित करते हैं उससे भी। अथवा, दुष्ट लोग जो हित करता है उसके साथ भी अहित करते हैं अर्थात् कृतज्ञ होते ही नहीं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

भा०– दुष्ट लोगों का लेना भी झूठा, देना भी झूठा, भोजन भी झूठा और चबेना भी झूठा अर्थात् दुष्ट प्रत्येक व्यवहार में झूठ ही बोलते हैं। तात्पर्य यह है कि झूठ बोलकर लेन–देन करते हैं। भोजन और चबेने में भी झूठ बोलते हैं अर्थात् झूठ बोलकर संगृहीत धन से अपनी जीविका चलाते हैं। वे मोर के समान मधुर वचन बोलते हैं, जो बोलता तो बहुत मीठा है, पर इतने कठोर हृदय का होता है कि विषैले सर्प को भी खा जाता है, उसी प्रकार दुष्टगण मीठा–मीठा बोलकर भयंकर हानि पहुँचा देते हैं।

दो०– पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपबाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद।।३९।।

भा०– जो दूसरों का द्रोह करते हैं, दूसरों की पत्नी पर प्रेम करते हैं, दूसरों के धन को अपना धन मानते हैं और दूसरों की निन्दा करते रहते हैं। वे मनुष्य का शरीर धारण करके नीच, पापी और नरभक्षी राक्षस ही होते हैं अर्थात् जो कर्म से परद्रोही हैं, मन से परपत्नी और पराये धन में आसक्त रहते हैं और वचन से परनिन्दा करते हैं, वे मनुष्य शरीर धारण करने पर भी परद्रोह के कारण पामर, परपत्नी और पराये धन में प्रेम करने के कारण पापी और परापवाद के कारण नरभक्षी राक्षस के समान होते हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। शिश्नोदर पर जमपुर त्रास न।।
काहू की जौ सुनहिं बड़ाई। साँस लेहिं जनु जूड़ी आई।।

भा०– उनका लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिस्तर होता है। वे शिश्न और पेट की तृप्ति में ही लगे रहते हैं। उन्हें यमपुर का भय भी नहीं लगता। यदि किसी की प्रशंसा सुन लेते हैं, तो ऐसे श्वास लेते हैं, मानो ठंड लगकर ज्वर आ गया हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।

भा०– जब किसी की विपत्ति देखते हैं तो इतने सुखी होते हैं, मानो संसार के राजा हो गये। वे अपने स्वार्थ में तत्पर, परिवार के विरोधी, अनेक स्त्रियों के प्रति आसक्त, काम और लोभ में अनुरक्त तथा अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहिं मोह बश द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।

भा०– दुष्ट लोग माता–पिता, गुरु, ब्राह्मण को नहीं मानते हैं, स्वयं तो नष्ट ही हो गये अपने साथ दूसरों को भी नष्ट कर देते हैं। मोह के कारण दूसरों का द्रोह करते हैं, उन्हें सन्तों का संग और भगवत्कथा कभी नहीं अच्छी लगती।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिशेषा। दंभ कपट जिय धरे सुबेषा।।

भा०– जो अवगुणों के सागर, मन्दबुद्धि वाले और निरन्तर निन्दित काम से युक्त रहते हैं, जो वेदों की हँसी उड़ाने वाले और दूसरों के धन के स्वामी होते हैं, उनमें विशेषकर ब्राह्मणद्रोह और परद्रोह होता है, हृदय में तो होता है दम्भ तथा कपट, और धारण किये रहते हैं, सुन्दर वेश।

दो०- ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहैं कलिजुग माहिं।।४०।।

भा०- हे भैया भरत! ऐसे खलप्रकृति वाले नीच मनुष्य कृतयुग और त्रेता में तो जन्म लेते ही नहीं। द्वापर में कुछ होंगे, परन्तु कलयुग में इनके बहुत से समूह उत्पन्न होंगे।

विशेष- यहाँ खलप्रकृति वाले अधम मनुष्यों की चर्चा है, अतः रावण आदि सम्बन्ध में यह नियम प्रभावी नहीं हुआ।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।

भा०- हे भाई! दूसरों का हित करने के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के समान कोई अधर्म नहीं है। हे तात! यह मैंने सम्पूर्ण वेदों और पुराणों का निर्णय कहा, इसे वेदों को जानने वाले मनुष्य ही जानते हैं।

विशेष- ''*अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।* परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्।।''

नर शरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बश नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।

भा०- जो लोग मनुष्य का शरीर धारण करके दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे संसार में बहुत भयंकर विपत्ति सहते हैं। मनुष्य मोह के कारण स्वार्थरत होकर अनेक पाप करता है और इससे उसका परलोक भी नष्ट हो जाता है।

कालरूप तिन कहँ मैं भ्राता। शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने।।

भा०- हे भैया भरत! शुभ और अशुभ सम्पूर्ण फलों को देने वाला मैं परमेश्वर श्रीराम दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वालों के लिए कालरूप हो जाता हूँ। ऐसा विचार करके जो परमचतुर लोग हैं, वे संसार का दुःख समझकर मुझे ही भजते हैं।

त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
संत असंतन के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन लखि राखे।।

भा०- वे शुभ–अशुभ फल देने वाले कर्मों को छोड़ देते हैं अर्थात् मुझे समर्पित कर देते हैं और देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी मुझ परमात्मा राम का ही भजन करते हैं। मैंने सन्तों और असन्तों के गुण अर्थात् लक्षण कहे, जो सूक्ष्मता से देखकर इसको हृदय में रख लेते हैं, वे भवसागर में नहीं पड़ते।

दो०- सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखियहिं, देखिय सो अबिबेक।।४१।।

भा०- हे तात! सुनो, जीवों के अनेक गुण और दोष माया द्वारा ही किये हुए होते हैं। गुण अर्थात् विवेक यही है कि दोनों संसार के गुण और दोष न देखे जायें, इनका देखना ही सबसे बड़ा अविवेक है अर्थात् संसार के गुण और दोष यथार्थ नहीं हैं, अतः इन्हें न देखकर, अपने दोष देखने चाहिये और मुझ प्रभु राम के गुण देखने चाहिये।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई।।
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हिय हरष अपारा।।

भा०– श्रीमुख के वचन सुनकर सभी अर्थात् श्रीभरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जी ये तीनों भाई बड़े प्रसन्न हुए। उनके हृदय में प्रीति नहीं समा रही थी। सब लोग बारम्बार अत्यन्त विनय कर रहे थे। हनुमान जी महाराज के मन में अपार हर्ष था।

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए।।
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं।।
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
सुनि बिरंचि अतिशय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं।।
सनकादिक नारदहिं सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं।।
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।।

दो०– जीवनमुकुतहुँ ब्रह्मपर, चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे न करहिं रति हरिकथा, तिन के हिय पाषान।।४२।।

भा०– फिर भगवान् श्रीराम अपने भवन को पधार गये। इस प्रकार प्रभु नित्य–नवीन चरित्र करते रहते हैं। नारद मुनि बार–बार श्रीअयोध्या आते हैं और भगवान् श्रीराम के पवित्र चरित्र गाते हैं। देवर्षि नारद जी श्रीअयोध्या में प्रभु श्रीराम द्वारा किये जा रहे नवीन–नवीन चरित्रों को देखकर निरन्तर ब्रह्मलोक जाते हैं और ब्रह्मा जी की सभा में उन्हीं नवीन चरित्रों की कथा कहते हैं। उन्हें सुनकर ब्रह्मा जी अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं एवं बार–बार कहते हैं, हे नारद! भगवान् के गुणगान करो अर्थात् प्रभु के नये–नये चरित्र सुनाओ। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद जी की सराहना करते हैं, यद्यपि वे स्वयं ब्रह्म में निरत रहते हैं। भगवान् के गुणगान सुनकर समाधि को भुलाकर परमअधिकारीजन आदरपूर्वक कथा सुनते हैं। जीवन मुक्त, ब्रह्म के परायण महापुरुष भी परमात्मा का ध्यान छोड़कर प्रभु के दिव्य चरित्र सुनते हैं। जो लोग भगवान् की कथा में प्रेम नहीं करते, उनका हृदय पत्थर ही है अर्थात् वे पत्थर हृदय के हैं, वहाँ संवेदना नहीं है।

* मासपारायण, अट्ठाईसवाँ विश्राम *

चौ०– एक बार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे सदसि अनुज मुनि सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।

भा०– एक बार श्रीरघुनाथ ने सम्पूर्ण राजसभा बुलाई। प्रभु का आवाहन सुनकर गुरुदेव वसिष्ठ जी, ब्राह्मणगण और सभी पुरवासी आये। राजसभा में छोटे भाई श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न जी, वसिष्ठ जी आदि मुनिजन और सभी सज्जन बैठे। तब भक्तों के भय को दूर करने वाले प्रभु श्रीराम बोले–

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुमहिं सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जोई।।
जौ अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।

भा०– हे सभी श्रीअवधपुरवासियों! मेरी वाणी सुनिये, मैं हृदय में किसी भी प्रकार की ममता लाकर नहीं कह रहा हूँ। न तो यह मेरी कुछ अनीति है और न ही किसी प्रकार की प्रभुता का प्रयोग है। पहले आप लोग सुनिये, फिर वही कीजिये जो आप सबको अच्छा लगे। वही मेरा सेवक है और वही मुझे अत्यन्त प्रिय है, जो मेरी आज्ञा मानता है। हे भाइयों! यदि मैं कुछ भी अनीति बोलूँ तो मुझे राजकीय भय भुलाकर तुरन्त रोक दीजियेगा।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथनि गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।

दो०- सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ।।४३।।

भा०- श्रेष्ठ ग्रन्थों ने यह गाया है कि देवदुर्लभ यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से प्राप्त होता है, यह सभी साधनों का गृह और मोक्ष का द्वार है। ऐसे मनुष्य शरीर को पाकर जिस साधिका या साधक ने अपना परलोक नहीं बना लिया वह काल, कर्म और ईश्वर को झूठा दोष लगाकर परलोक में भी दुःख ही पाता है अर्थात् शरीर त्याग करने पर उसे स्वर्ग न मिलकर नर्क ही मिलता है और वह सिर पीट–पीटकर पछताता है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते शठ बिष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।

भा०- हे भाइयों! इस मनुष्य शरीर का फल विषय–भोग नहीं है, क्योंकि स्वर्ग भी थोड़े समय के लिए सुखद होता है, अन्ततोगत्वा वह भी दुःखद हो जाता है। पुण्य के क्षीण होने पर स्वर्ग से भी पतन होता ही है। अतः मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी जो लोग विषय में मन लगाते हैं, वे दुष्ट पाये हुए अमृत को लौटाकर उसके विनिमय में विष ले लेते हैं। उस व्यक्ति को कभी कोई भी भला नहीं कहता, क्योंकि वह पारसमणि को नष्ट करके वन की साधारण गुन्जा को ग्रहण कर लेता है।

आकर चारि लक्ष चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईश बिनु हेतु सनेही।।

भा०- यह अविनाशी जीव चार खानों, अण्डज, उद्भिज, श्वेदज और जरायुज वर्ग में विभक्त होकर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है। यह काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से घिरा हुआ सदैव माया से प्रेरित होकर भटकता रहता है। बिना कारण स्नेह करने वाले प्रभु कभी–कभार अपनी अहैतुकी करुणा करके जीव को मनुष्य शरीर देते हैं।

नर तनु भव बारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

भा०- यह मानव शरीर भवसागर के लिए बेड़ा है, मेरा अनुग्रह ही सन्मुख अर्थात् अनुकूलता की वायु है, सद्गुरु देव ही उस नौका के दृढ़ कर्णधार हैं। इस प्रकार इस दुर्लभ साज को भी जीव ने सुलभ करके पा लिया।

विशेष- सन्मुख शब्द अनुकूलता के अर्थ में प्रयोग हुआ है अर्थात् जिस दिशा में नाव जा रही हो उसी दिशा में वायु का बहना उसकी सन्मुखता है। वह तब सम्भव है, जब वायु पीछे से सहारा दे रही हो। प्रतिकूल वायु तब होगी जब नौका की उल्टी दिशा से वायु बह रही हो।

दो०- जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।।४४।।

भा०- जो मनुष्य इस प्रकार का सुन्दर समाज पाकर भी सागर को नहीं पार कर पाता वह ईश्वर के द्वारा किये हुए उपकार का निन्दक, मन्दबुद्धि मनुष्य, आत्महत्यारे की गति को प्राप्त करता है।

विशेष– "*कृतानां ईश्वरकृतोपकाराणां निन्दकः कृत निन्दकः*" अर्थात् ईश्वर के किये हुए उपकारों की निन्दा करने वाला। यहाँ पीयूषकार आदि ने कृतनिन्दक शब्द का जो कृतघ्न अर्थ किया है, वह संस्कृत की अनभिज्ञता के कारण हो गई होगी।

जो परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।

भा०– यदि आप लोग परलोक और यहाँ, दोनों लोक में सुख चाहते हैं तो मेरा वचन सुनकर दृढ़तापूर्वक धारण कर लीजिये। हे भाई! पुराणों और श्रुतियों में गाई हुई मेरी भक्ति का ही यह मार्ग सुलभ और सुखदायक है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।

भा०– ज्ञान मार्ग बहुत ही अगम्य है, उसमें अनेक प्रत्यूह अर्थात् विघ्न है, साधन में वह बहुत कठिन है। उसमें मन को भी कोई टेका अर्थात् अवलम्बन नहीं है। अनेक प्रकार से कष्ट करके कोई जीव उसे पा जाता है, परन्तु भक्ति से रहित होने के कारण मुझे वह भी प्रिय नहीं है।

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।
पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विज सेवा।।

भा०– भक्ति स्वतंत्र और समस्त सुखों की खानि है, पर उसे सत्संग के बिना कोई प्राणी नहीं पा सकता। पुण्यसमूहों के बिना सन्त नहीं मिला करते और सन्तों की संगति से संसृति अर्थात् संसारभाव का अन्त हो जाता है। अथवा, सत् संगति संसारभाव का अन्त कर देती है अर्थात् सत्संग के प्रभाव से जगत् में रहते हुए भी व्यक्ति सर्वत्र जगदीश के ही दर्शन करता रहता है। संसार में एक ही पुण्य है, कोई दूसरा नहीं। मन, कर्म और वाणी से तपस्या, जन्म और शास्त्र सम्पन्न, उपनयनादि संस्कारों से यथासमय संस्कृत, अपनी शाखा में प्राप्त सम्पूर्ण वैदिक मंत्रों के पाठ में दक्ष ब्राह्मण के श्रीचरणों की पूजा ही सबसे बड़ा पुण्य है। उस पर सम्पूर्ण मुनि और देवता सानुकूल रहते हैं, जो सभी संस्कारों से सम्पन्न जन्मना ब्राह्मण की सेवा कपट छोड़कर करता है।

दो०– औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
शङ्कर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि।।४५।।

भा०– और भी एक गोपनीय मत है, जिसे मैं हाथ जोड़कर सबसे कहता हूँ, शङ्कर जी के समान भजन के बिना साधक मेरी भक्ति नहीं पाता।

विशेष– शिव जी का भजन है, भगवान् श्रीराम के श्रीरामनाम का अर्थचिन्तन सहित जप। ***शङ्कर समान भजनं शङ्कर भजनम्।*** *मध्यम पद लोप समासः।*

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिश्वासा।।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बश्य मैं भाई।।

भा०- भला आप लोग बतायें भक्ति के मार्ग में कौन–सा प्रयास करणीय है? वहाँ योग, यज्ञ, जप, तप और उपवास इन में से किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं है। भक्ति के मार्ग में इतना ही अपेक्षित है कि साधक का स्वभाव सरल हो, मन में किसी भी प्रकार की कुटिलता न हो, जितना लाभ हो उसमें सदैव संतुष्ट रहना। यदि मेरा दास कहलाकर साधारण मनुष्य की आशा करता हो तो बताओ, उसका कौन–सा विश्वास? अर्थात् मेरा सेवक कहलाकर एकमात्र मुझ पर ही आशा और विश्वास करना भक्ति का मुख्य लक्षण है। हे भाइयों! मैं बहुत कथा बढ़ा कर क्या कहूँ? मैं इसी आचरण से वश में हो जाता हूँ अर्थात् मुझमें साधक की अनन्यता ही मुझे उसके वश में कर लेती है।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष बिग्यानी।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा।।
भगति पक्ष हठ नहिं शठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।

दो०- मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह।।४६।।

भा०- जिसके मन में न तो किसी के साथ वैर है और न ही कलह, जो आशाओं और भय से रहित हैं, उसके लिए सदैव सभी दिशायें सुखमय हैं। जो कर्मों के फल से रहित है, जिसे गृह में आसक्ति नहीं है, जो स्वयं अमानी अर्थात् अहंकार से रहित है, जो पापरहित और क्रोधरहित है, जो भक्तिमार्ग में कुशल और विशिष्टाद्वैतज्ञान सम्पन्न है, जिसे सज्जन अर्थात् श्रीवैष्णव महानुभावों के संसर्ग में प्रीति है और जिसके लिए स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही तिनके के समान महत्वहीन हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ तो करता है, परन्तु गुरुजनों के सिद्धान्त खण्डन की धृष्टता नहीं करता, जिसने सभी दुष्ट तर्कों को दूर फेंक दिया है, जो मेरे गुणसमूहों के श्रवण और मेरे नाम जप में अनुरक्त रहता है, जो ममता, मद और मोह से रहित है, उस साधक का सुख वही जानता है, जिसे परमेश्वर के आनन्द का सन्दोह अर्थात् प्रवाह प्राप्त है।

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के।।
जननि जनक गुरु बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे।।
तनु धन धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम प्रनतारति हारी।।
असि सिख तुम बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।।

भा०- भगवान् श्रीराम के अमृत के समान वचन सुनते ही, सभी ने कृपा के आश्रय और कृपा के निवासस्थान स्वरूप भगवान् श्रीराम के श्रीचरण पकड़ लिए और बोले, हे प्रणतों के संकट हरने वाले! हे कृपानिधान! हे हमारे प्राणों से भी प्रिय श्रीराम! आप हमारे माता–पिता, गुरु और बान्धव हैं। आप ही सब प्रकार से हमारे शरीर, धन, भवन और हितैषी हैं। तात्पर्यतः हम ने शरीर आदि की सम्पूर्ण ममता आप पर ही समर्पित कर दी है। आपके बिना इस प्रकार की शिक्षा कोई नहीं दे सकता। जो माता–पिता हैं, वे भी स्वार्थ में लगे रहते हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।

भा०-हे देवविरोधी राक्षस आदि के शत्रु प्रभु श्रीराम! संसार में आप और आपके सेवक ये दोनों ही स्वार्थरहित उपकारी होते हैं। हे प्रभु! इस संसार में सभी लोग स्वार्थ के मित्र होते हैं, यहाँ स्वप्न में भी परमार्थ नहीं है।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने।।
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।।

भा०– सभी के प्रेमरस में सने हुए वचन सुनकर श्रीरघुनाथ हृदय में प्रसन्न हुए। प्रभु की सुहावनी बतकही अर्थात् परिचर्चा का वर्णन करते हुए, आज्ञा पाकर सभी सभासद अपने–अपने घर चले गये।

दो०– उमा अवधबासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप।।४७।।

भा०– शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती ! श्रीअयोध्या में निवास करने वाले सभी पुरुष और स्त्री कृतार्थरूप हैं, जहाँ सच्चिदानन्दघन परब्रह्म रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम ही राजा हैं।

एक बार बसिष्ठ मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि चरनोदक लीन्हा।।

भा०– एक बार जहाँ सुहावने सुख के धाम भगवान् श्रीराम विराजमान थे, वहाँ ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी आये। रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम ने वसिष्ठ देव जी का बहुत आदर किया। उनके श्रीचरणों का प्रक्षालन करके उनका श्रीचरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी।।
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा।।
महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।

भा०– मुनि वसिष्ठ जी ने हाथ जोड़कर कहा, हे कृपा के सागर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम ! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये, आपका आचरण देख–देखकर मेरे हृदय में अपार मोह हो जाता है अर्थात् जब आप मुझे प्रणाम करते हैं, मेरे चरण का जल पीते हैं, मुझसे धर्मशास्त्र सुनते हैं और शास्त्रों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं। तब मेरे हृदय में आपके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में सन्देह हो जाता है। हे भगवन् ! आपकी असीम महिमा को वेद भी नहीं जानते, तो फिर मैं किस प्रकार से कहूँ?

उपरोहिती कर्म अति मंदा। बेद पुरान समृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहिं रघुकुल भूषन भूपा।।

दो०– तब मैं हृदय बिचारेउँ, जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहँ करिय सो पाइहउँ, धर्म न एहि सम आन।।४८।।

भा०– पौरोहित कर्म बहुत निकृष्ट होता है, इसकी वेद और उनसे अनुमोदित पुराण और स्मृतियाँ भी निन्दा करती हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में जब यह कर्म मैं नहीं ले रहा था तब मुझे ब्रह्मा जी ने कहा कि, बेटे ! तुम्हें आगे इसका लाभ मिलेगा, क्योंकि परमात्मा परब्रह्म साकेताधिपति भगवान् श्रीराम मनुष्यरूप धारण करके रघुकुल के आभूषण श्रीराम के रूप में प्रकट होकर राजा बनेंगे और उस ऐतिहासिक और अलौकिक श्रीरामराज्याभिषेक में तुम्हें प्रथम तिलक का सौभाग्य मिलेगा, तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिन प्रभु को प्राप्त करने के लिए योग, यज्ञ, व्रत, दान किया जाता है, उनको मैं अपने पौरोहित्य कर्म से ही प्राप्त कर लूँगा, इसलिए अब इससे बड़ा मेरे लिए कोई दूसरा धर्म नहीं होगा।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।

भा०– जप, तप, नियम, योग, निजधर्म अर्थात् वर्णाश्रम में विहित अपने धर्म और वेद से बोधित अनेक प्रकार के शुभकर्म ज्ञान, दया, दम, तीर्थ–स्नान और भी वेद एवं श्रीवैष्णव सन्तजन जहाँ तक धर्म की व्याख्या करते हैं। तंत्र, निगम अथवा आगम अर्थात् वेदों के षडंग चारों वेद एवं अनेक पुराणों के पढ़ने और सुनने का एकमात्र यही फल है और यही सम्पूर्ण साधनों का सुन्दर फल है कि, आपश्री के श्रीचरणकमलों में निरन्तर प्रीति बनी रहे।

छूटइ मल कि मलहिं के धोए। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोए।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। आभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई।।

भा०– क्या मल से धोने पर मल छूट जाता है, क्या जल का मंथन करके कोई घी पा लेता है? इसी प्रकार हे रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम! सुनिये, प्रेमाभक्ति के बिना प्राणी के भीतर का मल कभी नहीं जाता।

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दक्ष सकल लच्छन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई।।

भा०– वही सर्वग्य है, वही तत्त्ववेत्ता है, वही पण्डित है, वही श्रेष्ठ गुणों का भवन और अखण्डविज्ञान सम्पन्न है, वही चतुर और सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त है, जिसके हृदय में आप श्रीराघवेन्द्र सरकार के श्रीचरणकमलों के प्रति प्रेमलक्षणाभक्ति है।

दो०– नाथ एक बर मागउँ, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु।।४९।।

भा०– हे नाथ! मैं एक वरदान माँगता हूँ, हे भगवान् श्रीराम! उसे कृपा करके दे दीजिये, अनन्त जन्मों में भी आप के श्रीचरणकमलों का प्रेम कभी नहीं घटे।

अस कहि मुनि बसिष्ठ गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए।।
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता।।
पुनि कृपालु पुर बाहेर गयऊ। गज रथ तुरग मँगावत भयऊ।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन जिन तेइ चाहे।।
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ शीतल अवँराई।।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई।।

भा०– इतना कहकर महर्षि वसिष्ठ जी अपने घर आ गये और कृपासिन्धु भगवान् श्रीराम के मन में वे बहुत भाये। इसके पश्चात् हनुमान जी, भरत जी आदि भ्रातागण और सेवकों को सुख देने वाले जगद्जननी श्रीसीता को साथ लेकर फिर कृपालु श्रीराम नगर के बाहर गये तथा हाथी, रथ और घोड़े मँगाये। कृपादृष्टि से देखकर प्रभु ने उन सबकी सराहना की। जिन्होंने जो चाहा उन सबको यथोचित दान दिया। सम्पूर्ण श्रम को हरने वाले प्रभु श्रीराम श्रम प्राप्त करके विश्राम करने के लिए, जहाँ शीतल अँवराई अर्थात् आमों का बगीचा था उसी आम्रपाली में चले गये। भरत जी ने अपना वस्त्र बिछा दिया, उसी पर प्रभु बैठ गये अर्थात् विराजमान हो गये, सभी भ्राता उनकी सेवा कर रहे थे।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई।।
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।।

भा०– तब वायु के पुत्र हनुमान जी महाराज वायु कर रहे हैं अर्थात् पंखा झलते हुए वायु की सेवा कर रहे हैं। उनके शरीर में रोमांच है और उनके नेत्र जल से भर गये हैं। शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पर्वतराज पुत्री गिरिजे! हनुमान जी के समान कोई बड़ा भाग्यशाली नहीं है और न ही कोई उतना बड़ा श्रीराम चरणों का अनुरागी है, जिनकी प्रीति एवं सेवा की प्रभु श्रीराम ने अपने मुख से बार–बार प्रशंसा की है।

दो०– तेहिं अवसर मुनि नारद, आए करतल बीन।
गावन लागे राम कल, कीरति सदा नवीन।।५०।।

भा०– उसी अवसर पर हाथ में वीणा लेकर नारद मुनि प्रभु श्रीराम के पास प्रमोद वन की विश्राम वाटिका में आये और भगवान् श्रीराम की सदैव नवीन मधुर कीर्ति का गान करने लगे।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन।।
नील तामरस श्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि।।
जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन।।
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। अशरन शरन दीन जन गाहक।।
भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित।।
रावनारि सुख रूप भूपबर। जय दशरथ कुल कुमुद सुधाकर।।

भा०– हे कमललोचन! हे शोकों को नष्ट करने वाले प्रभु श्रीराम! अपनी कृपादृष्टि से मुझे निहार लीजिये। हे नीले कमल के समान श्यामल! हे काम के शत्रु भगवान् शङ्कर जी के हृदय कमल के प्रेम मकरन्द का पान करने वाले भ्रमर! हे भू–भारहारी श्रीहरे! मेरा अवलोकन कीजिये। हे राक्षसों की सेना के बल को नष्ट करने वाले! हे मुनियों और श्रीवैष्णवों को आनन्द देने वाले! हे पाप को नष्ट करने वाले! हे ब्राह्मणरूप नवीन खेती के लिए वर्षाकालीन बादल! हे अशरणों को शरण देनेवाले! हे दीनजनों को ग्रहण करने वाले प्रभु! अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी के विशाल भार का खण्डन करने वाले! हे खर–दूषण और विराध के वध में पाण्डित्य दिखाने वाले! हे रावण के शत्रु! हे सुखद् स्वरूप राजाओं में श्रेष्ठ, हे श्रीदशरथ कुलरूप कुमुद को विकसित करने के लिए चन्द्रमा, श्रीरामचन्द्र जी! आपकी जय हो।

सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम।।
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुशल कोसला मंडन।।
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन।।

भा०– आपका सुयश पुराणों, वेदों और आगमों में विदित है तथा उसे देवता और मुनि सन्तों की सभा में गाते हैं। हे करुणा सम्पन्न! हे ब्यलीक अर्थात् कपट और मद के नाशक! हे सब प्रकार से कुशल! हे कोसलपुरी श्रीअयोध्या के अलंकार! हे कलियुग के मलों को नष्ट करने वाले! हे ममता को नष्ट करने में समर्थ श्रीराम नाम से विख्यात अथवा हे ममता के नाशक श्रीराम नामवाले प्रभु श्रीराघव! हे तुलसीदास के ईश्वर राजाधिराज श्रीराम! मुझ शरण में आये हुए, प्रणाम कर रहे भक्त की रक्षा कीजिये।

दो०– प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
शोभासिंधु हृदय धरि, गए जहाँ बिधि धाम।।५१।।

भा०- इस प्रकार से देवर्षि नारद जी प्रेम के सहित भगवान् श्रीराम के गुणसमूहों का वर्णन करके शोभा के सागर श्रीसीताराम जी को हृदय में धारण करके जहाँ ब्रह्मलोक है वहाँ पधार गये।

गिरिजा सुनहु बिशद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा।।
रामचरित शत कोटि अपारा। श्रुति शारदा न बरनै पारा।।

भा०- हे पर्वतराजपुत्री! सुनिये, जिस प्रकार मेरी बुद्धि थी, उसी के अनुसार मैंने यह सम्पूर्ण निर्मल कथा सुना दी। श्रीरामचरित्र सौ करोड़ रामायणों में गाये जाने पर भी अपार है। वेद और सरस्वती जी भी उनका वर्णन नहीं कर सकते।

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।।
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं।।

भा०- भगवान् श्रीराम अनन्त हैं, उनके गुणों का भी अन्त नहीं है। उनके जन्म, कर्म और नाम अनन्त हैं। कदाचित् जल के आश्रय सागर की बूँद एवं पृथ्वी के धूलि के कण गिने जा सकते हैं, परन्तु रघुपति अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के पालक भगवान् श्रीराम के चरित्र वर्णन करते–करते भी समाप्त नहीं हो सकते।

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी।।
उमा कहेउँ सब कथा सुहाई। जो भुशुंडि खगपतिहिं सुनाई।।
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी।।

भा०- यह निर्मल कथा भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों को प्रदान कर देती है। इसे सुनकर प्रभु के श्रीचरणों में अनपायनी भक्ति हो जाती है। हे पार्वती! मैंने वह सुहावनी कथा कही जो काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ देव जी को सुनायी थी। मैंने श्रीराम के कुछ ही गुणों को बखान कर कहा है अर्थात् न तो श्रीराम की कथा समाप्त हुई है और न ही श्रीअयोध्या छोड़कर भगवान् श्रीराम कहीं गये हैं। वे सदैव श्रीअयोध्या के प्रमोदवन की अँवराई में विश्राम कर रहे हैं। उनके अर्थात् भगवान् श्रीराम के और भी अनगिनत चरित्र हैं उन सबको कहने का न हम जीवों में सामर्थ्य है और न ही समय, इसलिए मैंने भगवान् श्रीराम के कुछ ही गुणों का बखान किया है। हे भवानी! अब आगे क्या कहूँ वह तुम बताओ?

सुनि शुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी।।
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी।।

भा०- शिवजी से यह शुभ कथा सुनकर पार्वती जी बहुत प्रसन्न हुईं और वे अत्यन्त विनीत कोमल वाणी में बोलीं, हे त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी! मैं धन्य हूँ...धन्य हूँ.....धन्य हूँ, क्योंकि मैंने भवभय को हरने वाले भगवान् श्रीराम के ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य परक तीनों प्रकार के गुण आपश्री से सुने।

दो०- तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु, चिदानंद संदोह।।५२(क)।।

भा०- हे कृपा के आयतन अर्थात् विशाल भवन भूतभावन शिव जी! आपकी कृपा से अब मैं कृतकृत्य हो गई, मुझे किसी प्रकार का मोह नहीं है। हे प्रभु श्रीराम के श्रेष्ठज्ञान और आनन्दप्रवाह से युक्त शिव जी! अब मैं भगवान् श्रीराम के प्रभाव को जान गई हूँ।

नाथ तवानन शशि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटनि मन पान करि, नहिं अघात मतिधीर।।५२(ख)।।

भा०- हे नाथ, हे मतिधीर! आपके मुखरूप चन्द्र से निर्झरित होती हुई रघुवीर श्रीराम की कथासुधा को करोड़ों कानरूप दोनों से पान करके मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है।

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिशेष जाना तिन नाहीं।।

भा०– हे भूतभावन! जो लोग श्रीरामचरित्र सुनने से तृप्त हो जाते हैं, उन्होंने इसके विशेष रसों को नहीं जाना है, अथवा उन्होंने विशेष आनन्द की अनुभूति नहीं की है, अथवा, उन्होंने इसके सारतत्त्व को नहीं जाना है, अथवा, उन्होंने श्रीरामचरितमानस में आदि, मध्य और अन्त में प्रतिपाद्य रसरूप आनन्दकन्द, सच्चिदानन्दघन, परमानन्दसन्दोह परमेश्वर श्रीराम को नहीं जाना है।

विशेष– श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी जी ने सामान्य और विशेष भेद से रस के दो विभाग किये हैं। जिनमें सामान्य रसों के क्रम में उन्होंने (क) शृंगार, (ख) करुण, (ग) वीर, (घ) शान्त, (ङ) रौद्र, (च) भयानक, (छ) वीभत्स, (ज) हास्य तथा (ञ) अद्‌भुत, रसों की चर्चा की है। इनमें से शृंगार, वीर, करुण, और शान्त ये चार रस अंगीरस के रूप में माने गये हैं। जिनमें कोई न कोई प्रत्येक महाकाव्य का अंगीरस होता है। इन नौ रसों की चर्चा मानस १.३७.१०. में उपलब्ध है। यथा– नव रस जप तप जोग विरागा'यहाँ नव शब्द का श्लेष करने से संख्या ९ और नव अर्थात् नवीन अर्थ का भी बोध होता है। इन्हीं नवीन रसों को गोस्वामी जी ने यहाँ पार्वती जी के मुख से विशेष अर्थ कहलवाया। ये तीन हैं– (क) वत्सल रस, (ख) प्रेयो रस तथा (ग) भक्ति रस, कुल मिलाकर बारह रसों की संयोजना श्रीरामचरितमानस में की गई है। गोस्वामी जी ने मानस १.२४१.४. से मानस १.२४२.५. तक का उल्लेख अलंकार के माध्यम से करके अपने द्वारा स्वीकृत बारह रसों का संकेत कर दिया है। विशेष रसों में से भी भक्तिरस को गोस्वामी जी ने महाकाव्य का अंगीरस माना है और उसी को अपने महामहाकाव्य "श्रीरामचरितमानस" में अंगीरस रूप में प्रस्तुत किया है। इन बारह रसों का संस्कृत साहित्य के क्रान्तिकारी लक्षण का उल्लेख श्रीशीलरूप गोस्वामी पाद ने अपने सुप्रसिद्ध लक्षणग्रन्थ भक्तिरसामृत सिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि में किया है। हिन्दी साहित्य में इनका विशेष उल्लेख नहीं है, क्योंकि हिन्दी साहित्य में कोई स्वस्थ शास्त्रीय लक्षणग्रन्थ उपलब्ध ही नहीं है। किसी प्रकार से आचार्य कवि केशव दास जी ने कविप्रिया और रसिकप्रिया नामक दो लक्षणग्रन्थ उपस्थित किये हैं, वह भी संस्कृत लक्षणग्रन्थ के जूठन मात्र हैं। यद्यपि इस प्रयास को अपर्याप्त ही कहा जा सकता है। रस सिद्धान्त पर विशेष जानने के लिए मेरे द्वारा निर्देशित मेरी अग्रजा डॉ० (कुमारी) गीता देवी मिश्रा द्वारा तुलसी साहित्य में वत्सल रस की समीक्षा विषय पर जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट–(उ.प्र.) में सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध (पीएच.डी.) प्रस्तुत किया गया जिसके आधार पर डॉ० (कुमारी) गीता देवी मिश्रा को ४ अगस्त २००३ को प्रथम दीक्षान्त समारोह में जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई, द्रष्टव्य है।

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ।।
भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा।।
बिषइन कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।।
स्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं।।
ते जड़ जीव निजातम घाती। जिनहिं न रघुपति कथा सोहाती।।

भा०– जो जीवनमुक्त शुक, सनकादि, नारदादि जैसे महामुनि हैं, वे भी निरन्तर प्रभु श्रीराम के गुणगणों को सुनते हैं। जो भवसागर का पार पाना चाहते हैं उनके लिए भी श्रीरामकथा सुदृढ़ नौका है, जो न तो कभी संसार सागर में डूब सकती है और न ही उसके भयंकर तरंगों के झकोरों से उलट सकती है तथा न ही यात्री को अपने गन्तव्य से भटका सकती है। किसी भी समय माया के चक्रवाती, बवंडर श्रीरामकथारूप नौका का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। फिर विषयीजनों के लिए भी भगवान् श्रीराम के गुणग्राम श्रवणों को आनन्द देने वाले और मन को अभीष्ट परमेश्वर श्रीराम के श्रीचरणों में रमाने वाले हैं अर्थात् संसारियों के अशान्त मनों को परमशान्ति देने वाले हैं।

संसार में ऐसा कौन श्रवणेन्द्रिय से सम्पन्न होगा, जिसे भगवान् श्रीराम के चरित्र नहीं भाते अर्थात् जिसे श्रीराम के चरित्र नहीं अच्छे लगते। श्रीरामकथा सुनते–सुनते जिसे नींद आ जाती है उसके श्रवणेन्द्रिय में कोई न कोई दोष समझ लेना चाहिये। जिन्हें रघुपति श्रीराम की कथा नहीं भाती वे जड़ अर्थात् अज्ञानी जीव अपने ही आत्मा का हनन कर रहे हैं अर्थात् आत्महत्यारे हैं।

विशेष– यहाँ तीन पंक्तियों में क्रमशः विमुक्त, विरक्त और विषयीजनों के लिए श्रीरामकथा की उपादेयता का वर्णन है। भुशुण्डि जी भी मानस, ७.१५.५. में इसकी चर्चा कर चुके हैं। यथा– ***सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नितई।***

राम चरित मानस तुम गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा।।
तुम जो कही यह कथा सुहाई। कागभुशुंडि गरुड प्रति गाई।।

दो०– बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़, राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह।।५३।।

भा०– पार्वती जी कहती हैं, हे नाथ शशांकशेखर शिव जी! आपने श्रीरामचरितमानस का गान किया, उसे सुनकर मैंने असीम सुख प्राप्त किया, परन्तु आपश्री ने जो यह कहा कि यह सुहावनी कथा आपश्री से भी प्रथम गरुड़ जी के प्रति भुशुण्डि जी ने गायी थी और भुशुण्डि जी के मन में वैराग्य ज्ञान अर्थात् भगवद्‌तत्त्व ज्ञान–विज्ञान अर्थात् संसार की विनश्वरता का ज्ञान दृढ़ है। कौवे का शरीर प्राप्त करने पर भी श्रीभुशुण्डि जी को भगवान् श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में अत्यन्त स्नेह है और भुशुण्डि जी के हृदय में रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की अविरल भक्ति भी है। आपके इन पाँचों परस्पर विरोधाभासी वक्तव्यों पर मुझे बहुत–बड़ा सन्देह है, क्योंकि स्वभाव से मांसाहारी कौवा विषयों से विरक्त कैसे हो सकता है? चंचल प्रकृतिवाले कौवे में ज्ञान–विज्ञान की दृढ़ता कैसे आ सकती है? जन्म से कुटिल कौवे में श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम कैसे सम्भव है और अत्यन्त कामी कौवा श्रीराम का भक्त कैसे हो सकता है ?

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।।
धर्मशील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई।।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।।
तिन सहस्त्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।।
धर्मशील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।।
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।।

भा०– भगवती पार्वती जी सात पंक्तियों में श्रीरामभक्ति की दुर्लभता और उसकी उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि, हे त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी! सुनिये, सहस्रों मनुष्यों में कोई एक मनुष्य धर्मव्रत को धारण करने वाला होता है। ऐसे करोड़ों स्वभाव से धर्मात्मा मनुष्य में कोई एक साधक संसार के विषयों से विमुख और वैराग्य में तत्पर होता है। भगवती श्रुति कहती हैं कि ऐसे करोड़ों विरक्तों के बीच कोई एक साधक सम्यक् ज्ञान अर्थात् संसार की क्षणभंगुरता के साथ भगवद्‌तत्त्व का बोध प्राप्त करता है। ऐसे करोड़ों सम्यक् ज्ञानवान साधकों में से संसार में वह कोई एक ही भाग्यशाली होता है, जो जीवन मुक्त अर्थात् इस शरीर के रहते–रहते ही मुक्त हो जाता है, यानी मुक्ति में उसके शरीर का प्रारब्ध बाधक नहीं होता। ऐसे उन सहस्रों जीवनमुक्तों में परब्रह्म प्रभु श्रीराम के ध्यान में लीन विज्ञानी अर्थात् विशिष्टाद्वैत परम्परा से चिद्‌वर्ग, अचिद्‌वर्ग तथा इन दोनों से विशिष्ट परमात्मा के

विशेष ज्ञान से सम्पन्न साधक तो बहुत दुर्लभ हैं अर्थात् कोई एक मिल जाता है। जहाँ इस प्रकार हे देवताओं के ईश्वर भूतभावन शिव जी! धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवनमुक्त तथा परब्रह्मपरायण प्राणी इन सभी (पाँच) से वह साधक बहुत दुर्लभ है, जो कि श्रीरामभक्ति में रत हो अर्थात् जो मद, माया (कपट) छोड़कर श्रीराम की भक्ति में तत्पर हो। पाँच तो खोजने पर किसी प्रकार मिल जायेंगे, पर श्रीरामभक्त तो खोजने से भी नहीं मिलता।

सो हरिभगति काग किमि पाई। बिश्वनाथ मोहि कहहु बझाई।।

दो०- राम परायन ग्यान रत, गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायउ काग शरीर।।५४।।

भा०- हे विश्वनाथ जी! वह सर्वदुर्लभ श्रीरामभक्ति कौवे ने कैसे प्राप्त कर ली ? यह मुझे समझाकर कहिये। हे नाथ! श्रीराम के परमउपासक, ज्ञान के घनीभूत विग्रह, सम्पूर्ण श्रीवैष्णवगुणों के भवनस्वरूप, धीरबुद्धि वाले भुशुण्डि जी ने किस कारण से कौवे का शरीर प्राप्त किया? प्रभु मेरी इस जिज्ञासा को शान्त कीजिये और कहिये।

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपालु काग कहँ पावा।।
तुम केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी।।

भा०- हे कृपालु! कृपा करके कहिये कि यह परमपवित्र सुहावना श्रीरामचरितमानस कौवे ने कैसे प्राप्त कर ली? क्योंकि कौवा मानससरोवर के पास नहीं जा सकता, यहाँ तो गया भी पाया भी और उसके एक घाट का रक्षक वक्ता भी बन बैठा? यह सब कैसे सम्भव हुआ, और हे मदन अर्थात् काम के शत्रु शिव जी आपने किस प्रकार से काकभुशुण्डि जी से मानस सुना? मुझे इस प्रश्न का उत्तर दीजिये। इसका उत्तर जानने के लिए मेरे मन में बहुत-बड़ा कौतूहल अर्थात् उत्सुकता है।

गरुड महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।।
तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई।।
कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा।।

भा०- हे भूतभावन शिव जी! गरुड़ जी स्वयं बहुत-बड़े ज्ञानी हैं, श्रेष्ठ गुणों की राशिरूप भगवान् श्रीहरि विष्णु जी के सेवक और उनके बहुत निकट निवास करने वाले हैं अर्थात् श्रीमन्नारायण के विख्यात सोलह सेवकों में अन्यतम हैं। उन्होंने किस कारण से मननशील ऋषियों के समूह को छोड़कर श्रीरामकथा कौवे से जाकर सुनी। भगवन्! आप कृपा करके बतायें कि काक-गरुड़ संवाद किस विधि से सम्पन्न हुआ, क्योंकि काकभुशुण्डि जी और सर्पों के शत्रु गरुड़ दोनों ही श्रीहरि के भक्त हैं अर्थात् समान कक्षा वाले दो महानुभावों के बीच उपदेश और उपदेशक का निर्णय कैसे हुआ होगा?

गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले शिव सादर सुख पाई।।
धन्य सती पावनि मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।।
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल शोक भ्रम नासा।।
उपजइ राम चरन बिश्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा।।

दो०- ऐसेइ प्रश्न बिहंगपति, कीन्ह काग सन जाइ।
सो सब सादर कहउँ मैं, सुनहु उमा मन लाइ।।५५।।

भा०- भगवती पार्वती जी की पाँच प्रश्नों से युक्त सरल और सुहावनी वाणी सुनकर सुख प्राप्त करके शिव जी आदरपूर्वक बोले, हे सती! पतिव्रता शिरोमणि! आप धन्य हैं। आपकी बुद्धि स्वयं पवित्र है और अन्यों को भी पवित्र करने वाली है। आपको रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों के प्रति थोड़ा प्रेम नहीं है अर्थात् बहुत प्रेम है। हे पार्वती! अब आप वह परमपवित्र इतिहास सुनिये, जिसे सुनकर सम्पूर्ण शोक और भ्रम का नाश हो जाता है। साधक के मन में श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है और साधक बिना प्रयास के ही भवसागर से पार हो जाता है। इसी प्रकार का प्रश्न गरुड़ देव ने जाकर भुशुण्डि जी से किया था। मैं वह सब आदरपूर्वक कह रहा हूँ। हे पार्वती! मन लगाकर सुनिये।

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि।।
प्रथम दक्ष गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।।
दक्ष जग्य तव भा अपमाना। तुम अति क्रोध तजे तब प्राना।।
मम अनुचरन कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम सो सकल प्रसंगा।।

भा०- हे सुन्दर मुख वाली और हे सुन्दर नेत्रों वाली पार्वती! आप श्रीरामनाम का जप करती हैं, इसलिए आपका मुख सुमुख है, आप इन नेत्रों से राजीवलोचन श्रीराम को निहारती हैं, इसलिए आप सुलोचनि हैं। मैंने यह भवबन्धन से छुड़ाने वाली कथा काकभुशुण्डि जी से जाकर जिस प्रकार सुनी, वह प्रसंग आप सुनिये। प्रथम मन्वन्तर में दक्ष के गृह में आपका अवतार हुआ था, तब आपका सती नाम था। दक्ष के यज्ञ में आपका अपमान हुआ था। तब आपने अत्यन्त क्रोध के कारण अपने प्राणों का त्याग कर दिया था। मेरे अनुचर वीरभद्र आदि ने दक्ष–यज्ञ का भंग किया था, वह सब प्रसंग आप जानती हैं।

विशेष- यहाँ शिव जी ने पार्वती जी को सती–परित्याग और दक्ष–वध की घटना नहीं सुनायी कि जिससे पार्वती जी दुःखी न हो जायें।

तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरे।।
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बिरागा।।

भा०- तब मेरे मन में बहुत शोक हो गया और हे प्रिया पार्वती! आपके वियोग में मैं दुःखी हो गया। मैं राग से रहित होकर सुन्दर पर्वतों, वनों, नदियों और तालाबों को कौतूहलवशात् देखता भ्रमण करता था, क्योंकि घर में आप नहीं थीं और भूतगण अपने तरंग में रह रहे थे। अतः मेरा कोई उत्तरदायित्व नहीं था।

गिरि सुमेरु उत्तर दिशि दूरी। नील शैल एक सुंदर भूरी।।
तासु कनकमय शिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए।।

भा०- इस कैलाश पर्वत से उत्तर दिशा में सुदूर एक सुमेरु नामक स्वर्ण का पर्वत है, जिसका उपयोग प्रायशः देवता लोग ही करते हैं। वहीं पर बहुत सुन्दर नीलाचल नाम का पर्वत है, जो सुमेरु पर्वत का ही अंश जैसा कहा जा सकता है। उस नील पर्वत के स्वर्णमय चार सुन्दर शिखर हैं जो देखते ही मेरे मन में बहुत भा गये।

तिन पर एक एक बिटप बिशाला। बट पीपर पाकरी रसाला।।
शैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा।।

दो०- शीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन, गुंजत मंजुल भृंग।।५६।।

भा०- उन चारों शिखरों पर क्रमशः बर (वरगद), पीपल, पाकड़ी और आम्र नाम के एक–एक विशाल वृक्ष हैं अर्थात् एक पर वटवृक्ष, दूसरे पर पीपल, तीसरे पर पाकड़ी और चौथे स्वर्ण शिखर पर आम्र का वृक्ष है। नील

पर्वत के ऊपर ही सुन्दर सरोवर सुशोभित है। उसकी सीढ़ियाँ मणियों से बनी हुई हैं उसे देखते ही मेरा मन मोहित हो गया अर्थात् उसकी शोभा पर आसक्त हो गया। उस सरोवर का जल शीतल, निर्मल और मधुर है। वहाँ बहुरंगे बहुत से कमल हैं और सुन्दर स्वरवाले हंसगण बोलते हैं तथा मधुर स्वर में भ्रमर गुंजार करते रहते हैं।

तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नाश कल्पांत न होई।।
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका।।
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं।।

भा०– उस सुन्दर नील पर्वत पर वह पक्षी अर्थात् काकभुशुण्डि जी निवास करते हैं। कल्प के अन्त में भी उनका नाश नहीं होता। जो माया के द्वारा उत्पन्न किये हुए अनेक गुण, अनेक दोष, मोह और काम आदि, अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, विकार तथा अविवेक, अर्थात् विवेक का विरोधीभाव अज्ञान है, यह सब यद्यपि समस्त संसार में व्याप्त हैं, फिर भी ये सब उस नील पर्वत के निकट कभी जाते ही नहीं।

तहँ बसि हरिहिं भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा।।
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई।।
आम छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।

भा०– हे पार्वती! उस नील पर्वत पर निवास करके काकभुशुण्डि जी जिस प्रकार प्रेमपूर्वक श्रीहरि भगवान् श्रीराम का भजन करते हैं, वह आप सावधान होकर सुनिये। पीपल वृक्ष के नीचे वे अर्थात् भुशुण्डि जी भगवान् श्रीराम का ध्यान धारण करते हैं, क्योंकि पीपल भगवान् की विभूति है। श्रीरामनाम का जपरूप यज्ञ पाकड़ी वृक्ष के नीचे करते हैं, क्योंकि उसका फल शीघ्र पकता है। अतः काकभुशुण्डि जी की धारणा के अनुसार पाकड़ी के नीचे बैठकर जप करने से जप का फल भी शीघ्र परिपक्व होगा। काकभुशुण्डि जी आम्र की छाया में बैठकर भगवान् श्रीराम की मानस पूजा करते हैं, क्योंकि काक शरीर के कारण हाथ–चरण के अभाव में वे शरीर द्वारा भगवान् की पूजा नहीं कर सकते। भगवद्भजन के बिना काकभुशुण्डि जी का कोई दूसरा कार्य ही नहीं है। चूँकि आम्र का फल मधुर होता है, और पूजा में माधुर्य की अनुभूति होनी चाहिये, इसी अभिप्राय से मानसी पूजा के लिए काकभुशुण्डि जी ने आम्र वृक्ष की छाया का ही चुनाव किया। वटवृक्ष के नीचे काकभुशुण्डि जी महाराज श्रीहरि की कथाओं के प्रसंग कहते हैं। भगवत्कथा सुनने के लिए अनेक पक्षी आते हैं और सुनते हैं।

विशेष– मन के भवन में श्रीराम के आवाहन से लेकर पुष्पाञ्जलिपर्यन्त उपचारों का चिन्तन करना मानसी पूजा है। विवशता में यदि शरीर से प्रभु श्रीराम की पूजा न हो सके तो मन से ही भगवान् की पूजा कर लेनी चाहिये। यूँ ही प्रत्येक श्रीरामभक्त को प्रातःकाल एकान्त में बैठकर स्थिर मन से भावना करते हुए, मानसी पूजा करनी चाहिये।

रामचरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना।।
सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहि ताला।।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिशेषा।।

दो०– तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति चरित, पुनि आयउँ कैलास।।५७।।

भा०– काकभुशुण्डि जी प्रेमपूर्वक आदर के साथ अपनी विचित्र और नाना प्रकार की शैली में नाना प्रकार के विविध आश्चर्यों से युक्त श्रीरामचरित का गान करते हैं। जो उस सरोवर में निवास करते हैं, वे सभी निर्मल बुद्धि वाले हंस, भुशुण्डि जी की कथा निरन्तर सुनते हैं। जब मैंने जाकर के वह कौतुक देखा तो मेरे हृदय में विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ। तब मैंने हंस का शरीर धारण करके कुछ समय उस नील पर्वत पर निवास किया और आदरपूर्वक चौरासी प्रसंगों में कहे हुए इस श्रीरामचरित्र को सुनकर, जो तुम्हें भी सुनाया फिर मैं कैलाश आ गया।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा।।
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहँ खग कुल केतू।।

भा०– हे पार्वती! मैंने वह सब इतिहास आप से कह दिया कि जिस समय मैं स्वयं भुशुण्डि जी के पास गया था। अब वह कथा सुनिये, जिसके कारण पक्षीकुल के पताकास्वरूप गरुड़ जी काकभुशुण्डि जी के पास गये।

जब रघुनाथ कीन्ह रन क्रीडा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीडा।।
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड पठायो।।
बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा।।
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती।।

भा०– जब रघुकुल के स्वामी श्रीराम ने रणक्रीड़ा अर्थात् युद्ध का खेल किया था, उस चरित्र को समझते हुए मुझे बहुत लज्जा हो रही है। उस युद्ध के कौतुक में स्वयं परमात्मा श्रीराम इन्द्र के विजेता मेघनाद के हाथों स्वयं को बँधा लिए थे अर्थात् प्रभु की इच्छा से मेघनाद ने उन्हें नागपाश में बाँधा था। तब नारद मुनि ने प्रभु को छुड़ाने के लिए गरुडदेव को भेजा था। सर्पों के भक्षक गरुड़ जी भगवान् श्रीराम का नागपाश काटकर वैकुण्ठ लौट गये, परन्तु उनके हृदय में अत्यन्त दुःख उत्पन्न हो गया। प्रभु श्रीराम का नागपाश बन्धन समझते ही सर्पों के शत्रु गरुड़ जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे। गरुड़ जी सोचने लगे–

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीशा। मायामोह पार परमीशा।।
सो अवतरेउ सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।।

भा०– जो सर्वव्यापक, सबसे बड़े अर्थात् अतिशय बृहत, रजोगुण से रहित, वाणी के ईश्वर, माया और मोह से परे, परमेश्वर श्रीराम हैं, वे ही विष्णु के भी विष्णु, ब्रह्मा के भी ब्रह्मा, शिव के भी शिव, पुराण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम इस संसार में अवतीर्ण हुए हैं। ऐसा मैंने भी वेदों और पुराणों में सुना है, परन्तु वह कुछ भी प्रभाव मैं नहीं देख रहा हूँ अर्थात् व्यापक व्याप्य कैसे बन गये? सबसे बड़े ब्रह्म क्यों इतने छोटे हुए जिसे मेघनाद ने नागपाश में बाँधा? रजोगुण से रहित परमात्मा राजस भाव में आकर युद्ध करने लगे। वाणी के भी ईश्वर परमात्मा नारद जी के श्राप वाणी का अनुगमन करते हुए वानरों की सहायता की अपेक्षा किये। माया और मोह से परे भगवान् आज मेघनाद के माया सर्पों के पाश में बँध गये और मूढ़ जीव की भाँति बन्धन नहीं काट सके। परम ईश्वर अर्थात् सर्वसमर्थ होकर भी श्रीराम इतने असमर्थ हुए कि उन्हीं प्रभु के अन्तरंग अंश भगवान् विष्णु जी के वाहन और छोटे से मुझ सेवक को अपने स्वामी विष्णु जी के भी अंशी महाविष्णु भगवान् श्रीराम का नागपाश काटने आना पड़ा। अतः सर्वावतारी परमात्मा श्रीराम का इस समय कुछ भी प्रभाव नहीं दिख रहा है।

दो०– भव बंधन ते छूटहिं, नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निशाचर बाँधेउ, नागपाश सोइ राम।।५८।।

भा०– जिनका नाम जपकर साधक जीव संसार के बन्धनों से छूट जाता है, उन्हीं भगवान् श्रीराम को छोटे–से राक्षस ने नागपाश में बाँध दिया।

नाना भाँति मनहिं समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदय भ्रम छावा।।
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाइ। भयउ मोह बश तुम्हरिहिं नाई।।

भा०– गरुड़ जी ने अपने मन को नाना प्रकार से समझाया, फिर भी जीव होने के कारण अज्ञान से ढँका हुआ गरुड़ जी का ज्ञान प्रकट नहीं हुआ। उनके हृदय में भ्रम छा गया। प्रभु की लीला का समाधान न पाने से उत्पन्न खेद के कारण दु:खी और क्षीण मन में अनेक तर्क बढ़ाकर सती शरीर में आप अर्थात् पार्वती जी की ही भाँति गरुड़ जी मोह के वश हो गये।

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संशय निज मन माहीं।।
सुनि नारदहिं लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया।।
जो ग्यानिन कर चित अपहरई। बरियाईं बिमोह मन करई।।
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही।।

भा०– गरुड़ जी व्याकुल होकर देवर्षि नारद जी के पास गये और उनके मन में जो संशय था वह नारद जी से कहा। गरुड़ जी का संशय सुनकर नारद जी को बड़ी दया लगी और देवर्षि बोले, अरे खग! अर्थात् निराधार आकाश में उड़नेवाले पक्षी ज्ञान शिरोमणि गरुड़! सुनो, श्रीराम की माया प्रकृष्ट बलवाली है, जो ज्ञानियों के भी चित्त का अपहरण कर लेती है और हठपूर्वक उन्हें विकृत मोह के वश में कर देती है। जिसने मुझे अर्थात् नारद को भी बहुत बार नचाया। हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! वही भगवान् श्रीराम की माया तुम्हें व्याप्त हो गई है।

महा मोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे।।
चतुरानन पहिं जाहु खगेशा। सोइ करेहु जोइ देहिं निदेशा।।

भा०– हे पक्षी! तेरे मन में महामोह उत्पन्न हो गया है। वह मेरे कहने से शीघ्र नहीं मिटेगा, क्योंकि मेरे पास अधिक समय नहीं है और तुम्हें शीघ्रता से किया हुआ उपदेश समझ में आयेगा नहीं, इसलिए हे पक्षियों के ईश्वर गरुड़। तुम चतुर्मुख ब्रह्मा जी के पास जाओ और वही करो जो ब्रह्मा जी आदेश दें।

दो०– अस कहि चले देवरिषि, करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान।।५९।।

भा०– इस प्रकार कहकर श्रीराम का गुणगान करते हुए बारम्बार भगवान् श्रीराम की माया के बल का वर्णन करते हुए, परम चतुर देवर्षि नारद जी चल पड़े।

तब खगपति बिरंचि पहँ गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ।।
सुनि बिरंचि रामहिं सिर नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा।।

भा०– तब पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी ब्रह्मा जी के पास गये और उन्हें अपना सन्देह सुनाया। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने भगवान् श्रीराम को सिर नवाया। प्रभु का प्रताप समझकर ब्रह्मा जी के हृदय में अत्यन्त प्रेम छा गया।

मन महँ करइ बिचार बिधाता। माया बश कबि कोबिद ग्याता।।
हरि माया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा।।

भा०– ब्रह्मा जी मन में विचार करने लगे कि सभी मनीषी वेदज्ञतत्त्वों के ज्ञाता भगवान् श्रीराम की माया के वश में हैं। प्रभु की माया का प्रभाव असीम है, जिसने अनेक बार मुझे भी नचा डाला।

अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा।।
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेश राम प्रभुताई।।

बैनतेय शङ्कर पहँ जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू।।
तहँ होइहिं तव संशय हानी। चले बिहंग सुनत बिधि बानी।।

भा०– जबकि जड़–चेतन रूप यह संसार मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है, और मैं स्वयं अनेक बार इस माया से मोहित हुआ तब फिर हे गरुड़ जी! आपके लिए यह मोह–माया का चक्कर कोई आश्चर्य नहीं है। तब ब्रह्मा जी सुन्दर वाणी बोले, महान ईश्वर शिव जी, श्रीराम की प्रभुता जानते हैं। हे विनता के पुत्र गरुड़। तुम शिव जी के पास जाओ और हे वत्स! अन्यत्र किसी से कुछ भी नहीं पूछना। वहाँ अर्थात् शिव जी के यहाँ तुम्हारे संशय की हानि हो जायेगी अर्थात् तुम्हारा संशय नष्ट हो जायेगा। ब्रह्मा जी की वाणी सुनते ही पक्षीराज गरुड़ जी आकाश मार्ग से चल पड़े।

दो०– परमातुर बिहंगपति, आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह, रहिहु उमा कैलास।।६०।।

भा०– ब्रह्मा जी के निर्देश के पश्चात् परम आतुर अर्थात् संशय के समाधान के लिए परम व्याकुल और मोहरूप रोग से अत्यन्त आतुर अर्थात् विकल पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी तब मेरे पास आये। मैं कुबेर के घर जा रहा था। हे पार्वती! उस समय तक आपका अवतार हो चुका था तथा आपका मेरे साथ विवाह भी हो चुका था, परन्तु गरुड़ जी के आने के समय आप कार्तिकेय और गणपति की व्यवस्था में कैलाश पर ही रह गई थीं। मैं अकेले कुबेर के घर जा रहा था।

तेहिं मम पद सादर सिर नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा।।
सुनि ता करि बिनीत मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी।।

भा०– उन गरुड़ जी ने आदरपूर्वक मेरे चरणों पर मस्तक नवाया, फिर अपना सन्देह सुनाया। हे भवानी! उन गरुड़ जी की विनम्र कोमल वाणी सुनकर मैं अर्थात् मुझसे अभिन्न शिव ने, किंबा मुझ रूप शिव ने प्रेमपूर्वक कहा।

मिलेहु गरुड मारग महँ मोही। कवनि भाँति समुझावौं तोही।।
तबहिं होइ सब संशय भंगा। जब बहु काल करिय सतसंगा।।

भा०– हे गरुड़! तुम मुझे मार्ग में जाते समय मिले हो, मैं तुम्हें किस प्रकार से समझाऊँ ? क्योंकि अभी मैं कुछ आवश्यक कार्य से कुबेर के पास जा रहा हूँ। यात्रा तोड़ नहीं सकता तथा रूकने का समय नहीं है। तुम्हारे सभी संशय का नाश तो तब हो सकता है जब तुम बहुत कालपर्यन्त सत्संग करोगे।

सुनिय तहाँ हरि कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन जो गाई।।
जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

भा०– वहाँ अर्थात् सत्संग में भगवान् की वह सुहावनी कथा सुनो, जिसे मुनियों ने नाना प्रकार से गाया है। जिस श्रीरामकथा के आदि, मध्य और अन्त में भगवान् के रूप में ही प्रभु श्रीराम प्रतिपाद्य हैं अर्थात् प्रतिपादन विषय हैं। तात्पर्य यह है कि हमें वह कथा सुननी चाहिये, जो आदि से लेकर अन्त तक श्रीराम को भगवान् के रूप में ही प्रतिपाद्य करती हो।

नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम जाई।।
जाइहिं सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहिं अति नेहा।।

भा०– हे भैया गरुड़! जिस स्थान पर श्रीहरि भगवान् श्रीराम की कथा निरन्तर होती है, मैं तुम्हें वहीं भेजता हूँ। तुम वहीं जाकर श्रीरामकथा सुनो। उस कथा को सुनते ही तुम्हारे सम्पूर्ण सन्देह चले जायेंगे और भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में अत्यन्त प्रेम उत्पन्न होगा।

दो०– बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग।।६१।।
मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किए जोग जप ग्यान बिरागा।।

भा०– बिना सत्संग के श्रीहरिकथा सम्भव नहीं है और भगवान् की कथा के बिना मोह भागता ही नहीं। मोह के बिना गये श्रीराम के श्रीचरणों में दृढ़ अनुराग नहीं होता। योग, जप, ज्ञान और वैराग्य आदि साधन करने पर भी अनुराग के बिना रघुपति भगवान् श्रीराम नहीं मिलते। जप, योग, ज्ञान, वैराग्य, अनुराग के बिना व्यर्थ है और वह अनुराग मोह के रहते सम्भव नहीं है। मोह का विनाश श्रीरामकथा श्रवण के बिना हो ही नहीं सकता तथा श्रीरामकथा सत्संग के बिना सम्भव ही नहीं है।

उत्तर दिशि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह कागभुशुंडि सुशीला।।
राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना।।

भा०– उत्तर दिशा में एक सुन्दर नीलगिरि नाम का पर्वत है, वहाँ सुन्दर स्वभाववाले, श्रीरामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीण, भगवद् तत्त्वज्ञान से सम्पन्न, सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों के भवन और बहुत काल से चिरन्जीवी काकभुशुण्डि जी रहते हैं।

राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर।।
जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी।।

भा०– वे भुशुण्डि जी निरन्तर श्रीरामकथा कहते हैं, और उसे अनेक श्रेष्ठ पक्षी आदरपूर्वक सुनते हैं। हे गरुड़ वहाँ जाकर श्रीहरि भगवान् श्रीराम के बहुत से गुणों को सुनो, इससे मोह से उत्पन्न तुम्हारे दुःख दूर हो जायेंगे।

मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिर नाई।।
ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरम मैं पावा।।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना।।
कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा।।

भा०– जब मैंने गरुड़ जी को सब कुछ समझाकर कहा, तब वे प्रसन्न होकर मेरे चरणों में सिर नवाकर चल पड़े। हे पार्वती! इसलिए मैंने गरुड़ जी को नहीं समझाया, क्योंकि भगवान् श्रीराम की कृपा से मैंने प्रभु की लीला का रहस्य प्राप्त कर लिया था अर्थात् जान गया था। मैं समझ गया था कि कभी–कभार गरुड़ जी ने अभिमान किया होगा तथा कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम, गरुड़ जी का वह अभिमान नष्ट करना चाहते हैं, इसलिए फिर मैंने कुछ भी क्षण गरुड़ जी को अपने पास नहीं रखा और तुरन्त भुशुण्डि जी के पास भेजा, क्योंकि पक्षी, पक्षी की ही भाषा समझता है।

प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी।।

भा०– हे भवानी! भगवान् की माया बहुत बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है जिसको यह नहीं मोहित कर लेती ?

दो०– ग्यानी भगत शिरोमनि, त्रिभुवनपति कर यान।
ताहि मोह माया प्रबल, पामर करहिं गुमान।।६२(क)।।

शिव बिरंचि कहँ मोहइ, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, माया पति भगवान।।६२(ख)।।

भा०– जो गरुड़ जी ज्ञानी भक्तों के शिरोमणि और तीनों लोकों के पति भगवान् विष्णु के वाहन हैं, जब उनको भी उस महाबलशालिनी माया ने मोहित कर लिया, फिर साधारण पामर लोग अभिमान करते हैं यह उचित नहीं है। भगवान् श्रीराम की यह माया तो शिव, ब्रह्मा को भी मोहित कर लेती है, फिर और साधारण जीव कौन है अर्थात् वह तो क्षण भर में ही मोहित हो जायेगा। ऐसा हृदय में जानकर मननशील मुनिगण माया के पति भगवान् श्रीराम का भजन करते हैं।

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुशुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी।।
देखि शैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ।।
करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना।।
बृंद बृंद बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए।।

भा०– तब गरुड़ जी वहाँ गये जहाँ भशुण्डि जी निवास करते हैं, जिनकी बुद्धि संसार की कुण्ठाओं से रहित है तथा जिनमें श्रीराम की अखण्ड भक्ति है। नीलाचल पर्वत देखकर गरुड़ जी का मन प्रसन्न हो गया और उनका माया, मोह और सम्पूर्ण सोच चला गया। नील पर्वत पर वर्तमान सरोवर में स्नान, सन्ध्या और जलपान करके हृदय में हर्षित हुए गरुड़ जी वटवृक्ष के नीचे गये जो भुशुण्डि जी का कथा वाचन स्थल है। श्रीराम की सुहावनी चरित्र सुनने के लिए वहाँ पर अनेक समूहों में झुण्ड–झुण्ड बनाकर पक्षीगण आये थे।

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा।।
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा।।
अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूँछि सुआसन दीन्हा।।
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा।।

भा०– भुशुण्डि जी कथा का आरम्भ ही करना चाहते थे कि उसी समय वहाँ पक्षियों के राजा गरुड़ जी पहुँचे अर्थात् न तो गरुड़ जी कथा के बीच में पहुँचे जिससे कथा में विक्षेप पड़े और न ही कथा क्रम के बीच में पहुँचे जिससे गरुड़ जी को समझाने के लिए भुशुण्डि जी को बीच का क्रम तोड़कर बालकाण्ड से फिर कथा का प्रारम्भ करना पड़े। वस्तुतः वह संयोग ऐसा ही था कि गरुड़ जी के गमन के पूर्वदिन उत्तरकाण्ड की सम्पूर्णता हो गई थी। अब अगले दिन बालकाण्ड का प्रारम्भ होना था और भुशुण्डि जी मंगलाचरण करने ही जा रहे थे कि गरुड़ वहाँ पहुँच गये। सम्पूर्ण पक्षियों के राजा गरुड़ को आते हुए देखते ही पक्षी श्रोतासमाज के सहित काकभुशुण्डि जी बहुत प्रसन्न हो उठे। उन्होंने पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी का अत्यन्त आदर किया। स्वागत पूछकर अर्थात् आपको आने में कोई कष्ट तो नहीं हुआ, इस प्रकार पूछकर भुशुण्डि जी ने गरुड़ जी को सुन्दर आसन दिया। प्रेम के साथ गरुड़ जी की पूजा करके फिर काकभुशुण्डि जी मधुर स्वर में बोले–

दो०– नाथ कृतारथ भयउँ मैं, तव दरशन खगराज।
आयसु देहू सो करौं अब, प्रभु आयहु केहि काज।।६३(क)।।

भा०– हे पक्षियों के राजा गरुड़ जी आपके दर्शनों से मैं कृतार्थ हो गया हूँ, अब मुझे आप जो आज्ञा दें वह करूँ। हे प्रभु! आप किस कार्य से आये हैं?

सदा कृतारथ रूप तुम, कह मृदु बचन खगेश।
जेहि कै अस्तुति सादर, निज मुख कीन्ह महेश।।६३(ख)।।

भा०– पक्षियों के राजा गरुड़ जी ने कोमल वचन में कहा कि हे भुशुण्डि जी! आप सदैव कृतार्थस्वरूप हैं, जिन आपश्री की स्तुति स्वयं महादेव जी ने अपने मुख से की।

सुनहु तात जेहि कारज आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ।।
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संशय नाना भ्रम।।

भा०– हे तात! मैं जिस कार्य के लिए आया हूँ, वह सब सम्पन्न हो गया। मैंने आपके दर्शन पा ली। आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरे मोह, संशय और नाना प्रकार के भ्रम चले गये।

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नशावनि।।
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही।।

भा०– अब अत्यन्त पवित्र सदैव सुख देनेवाली, दु:ख के समूहों को नष्ट करनेवाली श्रीरामकथा आप मुझे सुनायें। हे मेरे प्रेमास्पद! हे सर्वसमर्थ मेरे गुरुतुल्य स्वामी भुशुण्डि जी! मैं बार–बार आदरपूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता।।
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा।।

भा०– गरुड़ जी की विनम्र, सरल, प्रेमपूर्ण, सुखदायक और पवित्र वाणी सुनते ही उन भुशुण्डि जी के मन में परम उत्साह हुआ और वे अर्थात् भुशुण्डि जी रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम जी की गुणगाथायें चौरासी प्रसंगों में कहने लगे।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी।।
पुनि नारद कर मोह अपारा। बहुरि कहेसि रावन अवतारा।।
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब शिशु चरित कहेसि मन लाई।।

दो०- बालचरित कहि बिबिध बिधि, मन महँ परम उछाह।
रिषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह।।६४।।

भा०– शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! भुशुण्डि जी ने सर्वप्रथम अत्यन्त अनुराग के साथ श्रीरामचरितमानस को व्याख्यान के साथ समझाकर कहा अर्थात् बालकाण्ड के ३५ दोहों में भूमिका कहकर ३६वें दोहे से १२४वें दोहे तक पहला प्रसंग सुनाया। फिर अपार नारद का मोह १/१२५/१ से १/१३७/१ तक सुनाया। फिर भुशुण्डि जी ने १/१३८/१ से १/१४०/१ तक रावण के अवतार की कथा कही। फिर १/१४१/१ से १/१९२ तक प्रभु श्रीराम के अवतार की कथा भुशुण्डि जी ने गाकर सुनायी। इसके पश्चात् भुशुण्डि जी ने मन लगा कर १/१९३/१ से १/२०२ तक भगवान् श्रीराम का शिशुचरित्र कहा। फिर मन में परम उत्साह के साथ १/२०३/१ से १/२०५ तक अनेक प्रकार से प्रभु का बालचरित्र कहकर पुन: १/२०६/१ से १/२११/८ तक ऋषि आगमन अर्थात् विश्वामित्र जी का आगमन कहा। फिर १/२११/९ से १/३६१ तक भगवान् श्रीसीतारामजी के विवाह का वर्णन किया, इस प्रकार बालकाण्ड में आठ प्रसंग कहे गये।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा।।
पुरबासिन कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा।।

भा०– फिर भुशुण्डि जी ने मानस दो में प्रारम्भ से २/११/५ तक श्रीरामराज्याभिषेक प्रसंग का वर्णन किया। पुन: २/११/६ से २/४६/५ तक महाराज दशरथ जी के द्वारा कैकेयी को दिये हुए वचन के कारण श्रीरामराज्याभिषेक में हुए रसभंग अर्थात् विघ्न की चर्चा की। पुन: २/४६/६ से २/६९ तक भुशुण्डि जी ने श्रीसीता, कौसल्या जी के

सहित श्रीअवधपुरवासियों के विरह एवं विषाद की चर्चा की। फिर २/७० से २/७५ तक श्रीराम–लक्ष्मण संवाद का वर्णन किया।

बिपिन गमन केवट अनुरागा। सुर सरि उतरि निवास प्रयागा।।
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना।।

भा०– फिर भुशुण्डि जी ने २/७६/१ से २/८७ तक भगवान् श्रीराम के वनगमन की चर्चा की तथा २/८८/१ से २/१०२ तक केवट के अनुराग का वर्णन किया। फिर भुशुण्डि जी ने प्रभु के द्वारा गंगा पार करके प्रयाग में निवास किये जाने का वर्णन २/१०३ से २/१०८ तक किया। २/१०९/१ से २/१३२ तक भुशुण्डि जी ने वाल्मीकि जी से प्रभु श्रीराम के मिलन का वर्णन किया। जिस प्रकार श्रीचित्रकूट में भगवान् श्रीराम ने निवास किया वह वर्णन २/१३३/१ से २/१४२/३ तक प्रस्तुत किया।

सचिवागमन नगर नृप मरना। भरतागमन प्रेम बहु बरना।।
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी।।

भा०– श्रीभुशुण्डि जी ने २/१४२/४ से २/१४८ तक श्रीअवध में सुमंत्र जी के आगमन का वर्णन किया। फिर २/१४९/१ से २/१५६ तक भुशुण्डि जी ने महाराज चक्रवर्ती जी के मरण का वर्णन किया। फिर २/१५७/१ से २/१५९/३ तक भुशुण्डि जी ने ननिहाल से भरत जी के आगमन का वर्णन किया। फिर २/१५९/४ से दोहा २/१६९ तक भरत जी के विपुल प्रेम का वर्णन किया। पुनः २/१७०/१ से २/१७१/१ तक दशरथ जी के अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन हुआ। इस प्रकार महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया करके पुरवासियों को अपने साथ लेकर भरत जी जहाँ सुख की राशि प्रभु श्रीराम विराज रहे हैं, उस श्रीचित्रकूटवन में गये इसका वर्णन २/१७१/२ से २/२५२/७ तक है।

पुनि रघुपति बहुबिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए।।
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंटि पुनि बरनी।।

भा०– फिर रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम ने भरत जी को बहुत प्रकार से समझाया यह प्रसंग २/२५२/८ से २/३१६/१ तक वर्णित है। अनन्तर श्रीभरत प्रभु की दोनों पादुकायें लेकर श्रीअवधपुर लौट आये इस प्रसंग को भुशुण्डि जी ने २/३१६/२ से २/३२२/५ तक कहा। फिर भुशुण्डि जी ने भरत जी की रहनि का २/३२२/६ से २/३२६ अर्थात् अयोध्याकाण्ड के विश्रामपर्यन्त तक वर्णन किया। इस प्रकार अयोध्याकाण्ड में अठारह प्रसंग कहे गये। पुनः भुशुण्डि जी ने अरण्यकाण्ड के प्रारम्भ से दोहा क्रमांक २ तक इन्द्र पुत्र जयन्त की करतूति तथा प्रभु की कृपा का वर्णन किया। फिर भुशुण्डि जी ने ३/३/१ से ३/६ख दोहे तक प्रभु श्रीराम की महर्षि अत्रि से भेंट का वर्णन किया।

दो०– कहि बिराध बध जेहि बिधि, देह तजी सरभंग।
बरनि सुतिच्छन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्त्यकर संग।।६५।।

भा०– फिर भुशुण्डि जी ने ३/७/१ से ३/७/७ तक प्रभु द्वारा विराध राक्षस के वध का वर्णन करके ३/७/८ से ३/९/४ तक उस प्रसंग की चर्चा कि जिस विधि से महर्षि शरभंग जी ने अपने शरीर का त्याग किया था। पुनः ३/९/५ से ३/११ तक सुतीक्ष्ण जी के प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन करके ३/१२/१ से ३/१३/१४ तक प्रभु श्रीराम जी एवं अगस्त्य जी के संग का वर्णन किया।

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मयित्री पुनि तेहिं गाई।।
पुनि प्रभु पंचबटी कृत बासा। भंजी सकल मुनिन की त्रासा।।

भा०- फिर भुशुण्डि जी ने ३/१३/१५ से ३/१३/२१ तक श्रीराम द्वारा सम्पन्न की गई दण्डकवन की पवित्रता का वर्णन करके पुनः उन्होंने ३/१३ तक अर्थात् मात्र एक दोहे में गृध्रराज के साथ प्रभु के मैत्री अर्थात् विश्वास का गान किया। फिर भगवान् श्रीराम जी ने पंचवटी में निवास करते हुए सभी मुनियों के भय को समाप्त कर दिया, यह वर्णन ३/१४/१ से ३/१४/४ तक मात्र चार चौपाईयों में भुशुण्डि जी द्वारा किया गया।

विशेष- यहाँ मैत्री शब्द विश्वासवाचक है, जैसे कौटिल्य जी कहते हैं *"तन् मित्रं यत्र विश्वासः"।*

पुनि लछिमन उपदेश अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा।।
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरम दशानन जाना।।

भा०- फिर भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी को अनुपम उपदेश दिया इस प्रसंग को भुशुण्डि जी ३/१४/५ से ३/१७/२ तक कहते हैं। जिस प्रकार भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी को निमित्त बनाकर शूर्पणखा को विरूपित किया अर्थात् उसके नाक–कान काटे यह प्रसंग ३/१७/३ से ३/१७ दोहे तक कहा गया। फिर भुशुण्डि जी ने ३/१८/१ से ३/२१/४ तक खर–दूषण–त्रिशिरा के वध का वर्णन किया। जिस प्रकार से रावण ने सम्पूर्ण मर्मों को जाना यह प्रसंग ३/२१/५ से ३/२४/५ तक कहा गया।

दशकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही।।
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना।।

भा०- जिस प्रकार से रावण और मारीच की बातचीत हुई, वह सब भुशुण्डि जी ने ३/२४/६ से दोहा क्रमांक ३/२६ तक कही। फिर भुशुण्डि जी ने ३/२७/१ से दोहा क्रमांक ३/३१ख तक माया की सीता जी के हरण का वर्णन किया और पुनः ३/३२/१ से ३/३२/१९ तक भुशण्डि जी ने श्रीरघुवीर के विरह का कुछ वर्णन किया।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध शबरिहिं गति दीन्ही।।
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा।।

भा०- फिर प्रभु श्रीराम ने जिस प्रकार गृध्रराज जटायु जी की अन्त्येष्टि क्रिया की, वह वर्णन भुशुण्डि जी ने ३/३२/२० से ३/३५/३ तक किया है। प्रभु ने कबन्ध को मार कर जिस प्रकार शबरी माता को गति दी, यह प्रसंग ३/३५/४ से ३/३८ तक सम्पन्न किया गया। पुनः विरह का वर्णन करते हुए रघुवीर श्रीराम जिस प्रकार से पम्पासरोवर को गये, यह प्रसंग भुशुण्डि जी ने ३/३९/१ से ३/४३/४ तक कहा।

दो०- प्रभु नारद संबाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई, बालि प्रान कर भंग।।६६(क)।।

भा०- भुशुण्डि जी ने अरण्यकाण्ड के अन्त में ३/४३/५ से ३/४८ अर्थात् विश्राम तक प्रभु श्रीराम और नारद जी के संवाद करके २० प्रसंगों मे अरण्यकाण्ड को विश्राम देकर पुनः किष्किन्धाकाण्ड के प्रारम्भ से उसके चतुर्थ दोहे की प्रथम पंक्ति तक श्रीराम जी के साथ हनुमान जी के मिलन प्रसंग का वर्णन किया। फिर ४/४/२ से ४/५/८ तक प्रभु के साथ सुग्रीव जी की मित्रता का वर्णन करके दोहा क्रमांक ४/५ से ४/११/१० तक वालि के प्राणत्याग का वर्णन किया।

कपिहिं तिलक करि प्रभु कृत, शैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा शरद अरु, राम रोष कपि त्रास।।६६(ख)।।

भा०- फिर भगवान् श्रीराम ने वानर सुग्रीव जी को लक्ष्मण जी को निमित्त बनाते हुए राजतिलक करके भ्राता लक्ष्मण जी के साथ प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया भुशुण्डि जी ने इस प्रसंग को ४/११/११ से ४/१३/७ तक

कहा। पुनः वर्षा और शरद का वर्णन ४/१३/८ से दोहा क्रमांक ४/१७ तक सुग्रीव जी पर भगवान् श्रीराम का रोष ४/१८/१ से ४/१८ तक तथा वानरों का भय, अर्थात् त्रास ४/१९/१ से ४/२१/८ तक वर्णित हुआ।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिशि धाए।।
बिबर प्रबेश कीन्ह जेहि भाँती। कपिन बहोरि मिला संपाती।।

भा०– जिस प्रकार से वानरराज श्रीसुग्रीव जी ने चारों दिशाओं में वानर भालुओं को भेजा यह प्रसंग दोहा क्रमांक ४/२१ से ४/२३/७ तक कहा गया। पुनः जिस प्रकार से वानर और भालु, भगवती सीता जी की खोज के लिए सम्पूर्ण दिशाओं में दौड़कर गए, भुशुण्डि जी ने यह प्रसंग ४/२३/८ से ४/२४/२ तक कहा। जिस प्रकार वानर भालुओं ने पृथ्वी की गुफा में प्रवेश किया भुशुण्डि जी ने इस प्रसंग का ४/२४/३ से दोहा क्रमांक ४/२५ तक वर्णन किया। फिर वानरों से सम्पाती गृध्र मिले यह प्रसंग ४/२६/१ से ४/२८/११ तक कहा गया।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा।।
लंका कपि प्रबेश जिमि कीन्हा। पुनि सीतहिं धीरज जिमि दीन्हा।।

भा०– पुनः सम्पाती से सम्पूर्ण कथा सुनकर वायुपुत्र हनुमान जी ने अपार सागर को लाँघा। सम्पाती से कथा सुनने के प्रसंग को भुशुण्डि जी ने ४/२८/१२ से किष्किन्धाकाण्ड के विश्राम अर्थात् ४/३०ख तक कहा। इस प्रकार बारह प्रसंगों में किष्किन्धाकाण्ड सम्पन्न हुआ। वायुपुत्र हनुमान जी ने अपार सागर को लाँघा भुशुण्डि जी ने सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ से ५/३/५ तक यह प्रसंग प्रस्तुत किया। जिस प्रकार हनुमान जी ने लंका नगर में प्रवेश किया भुशुण्डि जी ने गरुड़ जी को वह प्रसंग ५/३/६ से ५/८/२ तक कहा। फिर हनुमान जी ने जिस प्रकार श्रीसीता को धैर्य दिया अर्थात् धैर्य धारण कराया भुशुण्डि जी द्वारा यह प्रसंग ५/८/३ से ५/१७/७ तक कहा गया।

बन उजारि रावनहिं प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी।।
आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुशल सुनाई।।

भा०– हनुमान जी ने वन को उजाड़कर रावण को समझाया। लंका नगर को जलाकर फिर सागर लाँघ गये यहाँ एक साथ तीन प्रसंग कहे गये हैं। जिनमें वनविध्वंस प्रसंग ५/१७/८ से ५/२०/४ तक, रावण प्रबोध प्रसंग ५/२०/५ से ५/२४/४ तक नगरदहन तथा पुनः समुद्र लंघन प्रसंग ५/२४/५ से ५/२८/५ तक तक कहा गया है। सभी वानर जहाँ श्रीराम थे वहाँ आये यह प्रसंग ५/२८/६ से ५/२९ दोहा तक कहा गया है। हनुमान जी ने श्रीराम को श्रीसीता का कुशल समाचार सुनाया यह प्रसंग ५/३०/१ से ५/३४/८ तक कहा गया है।

सेन समेत जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा।।
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई।।

भा०– जिस प्रकार सेना के सहित भगवान् श्रीराम जी जाकर सागर के तट पर उतरे और जिस प्रकार से लंका से आकर विभीषण जी भगवान् श्रीराम जी को मिले तथा जिस प्रकार भगवान् श्रीराम ने समुद्र का निग्रह किया भुशुण्डि जी ने वह सब कथा गरुड़ जी को सुनायी। यहाँ भगवान् श्रीराम का सागर तीर पर अवतरण प्रसंग ५/३४/९ से ५/३५ दोहे तक, पुनः विभीषण मिलन प्रसंग ५/३६/१ से ५/५०/२ तक और सागर निग्रह प्रसंग ५/५०/३ से ५/६० तक अर्थात् सुन्दरकाण्ड के विश्राम तक कहा गया, इस प्रकार ग्यारह प्रसंगों में सुन्दरकाण्ड सम्पन्न हुआ।

दो०– सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर, जेहि बिधि बालिकुमार।।६७(क)।।

भा०– जिस प्रकार वानरी सेना प्रभु के द्वारा बाँधे हुए सेतुबन्ध से सागर पर उतरी और जिस प्रकार वीरों में श्रेष्ठ वालिपुत्र अंगद जी, भगवान् श्रीराम के दूत बनकर लंका गये भुशुण्डि जी ने सेतुबन्ध प्रसंग को युद्धकाण्ड के प्रारम्भ से १६वें दोहे तक और अंगद–रावण संवाद प्रसंग को युद्धकाण्ड के १७वें दोहे से दोहा ३८,ख. तक कहा।

निशिचर कीस लराई, बरनसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर, बल पौरुष संघार।।६७(ख)।।

भा०– भुशुण्डि जी ने अनेक प्रकार से सम्पन्न हुए राक्षसों और वानरों की लड़ाई का वर्णन किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल, पराक्रम और क्रमशः श्रीराम तथा लक्ष्मण जी द्वारा इन दोनों के वध का भी वर्णन किया। यहाँ ६/३९/१ से ६/६२/४ तक राक्षस–वानर युद्ध का वर्णन किया गया। कुम्भकर्ण वध प्रसंग ६/६२/५ से ६/७२/५ तक कहा गया तथा ६/७२/६ से ६/७८/२ तक मेघनाद वध प्रसंग कहा गया।

निशिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना।।
रावन बध मंदोदरि शोका। राज बिभीषन देव अशोका।।

भा०– अनेक प्रकार के राक्षसों का मरण तथा श्रीराम–रावण के युद्ध का भुशुण्डि जी ने विस्तृत वर्णन किया। रावण वध, मन्दोदरी का शोक, विभीषण जी का राजतिलक और देवताओं के शोक का अभाव इन सबका भी भुशुण्डि जी ने वर्णन किया। राक्षससमूह का मरणप्रसंग ६/७८/१ से ६/८९/९ तक, श्रीराम–रावण युद्ध ६/८९ से ६/९८ तक तथा रावण वध, मन्दोदरी शोकप्रसंग ६/९९/१ से ६/१०५ तक, विभीषण जी का राजतिलक और देवताओं का शोकाभाव प्रसंग दोहा क्रमांक ६/१०६/१ से ६/१०७ तक किया गया।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन कीन्ह अस्तुति कर जोरी।।
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता।।

भा०– फिर भुशुण्डि ने श्रीसीता–राम मिलनप्रसंग को ६/१०७/१ से ६/१०९ख तक कहा। देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की यह प्रसंग ६/११०/१ से ६/११५ तक कहा गया। फिर कृपा के भवन भगवान् श्रीराम वानरों के सहित पुष्पक विमान पर आरुढ़ होकर श्रीअवध के लिए प्रस्थान किये भुशुण्डि जी ने यह प्रसंग ६/११६/१ से ६/१२१ख अर्थात् युद्धकाण्ड के विश्राम तक कहा। इस प्रकार बारह प्रसंगों में युद्धकाण्ड सम्पन्न हुआ।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिशद चरित सब गाए।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका।।

भा०– भगवान् श्रीराम जी जिस प्रकार से अपने नगर आये भुशुण्डि जी ने सम्पूर्ण चरित्र उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ से ७/१०/३ तक विस्तार से गाया। फिर भुशुण्डि जी ने ७/१०/४ से ७/३१ तक भगवान् श्रीराम जी के राज्याभिषेक का वर्णन किया और पुनः अयोध्यापुर में विराजमान होकर प्रभु द्वारा अनेक प्रकार के राजनीति वर्णन का प्रसंग ७/३२/१ से ७/५१ तक सम्पन्न किया। इस प्रकार जीव को चौरासी लाख योनियों से मुक्त करने के लिए भुशुण्डि जी के माध्यम से गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस में श्रीरामकथा के चौरासी प्रसंग कहे।

कथा समस्त भुशुंडि बखानी। जो मैं तुम सन कही भवानी।।
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा।।

भा०– हे पार्वती! भुशुण्डि जी ने वह समस्त कथा गरुड़ जी को व्याख्यान के साथ सुनायी जो मैंने अभी–अभी तुमसे कही है। इस प्रकार भुशुण्डि जी द्वारा चौरासी प्रसंगों मे निबद्ध समस्त श्रीरामकथा सुनकर, पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी मन में परम उत्साह के साथ यह वचन कहने लगे–

सो०- गयउ मोर संदेह, सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह, तव प्रसाद बायस तिलक।।६८(क)।।

भा०- हे काक कुल के तिलक भुशुण्डि जी! आपके प्रसाद से मेरा सन्देह समाप्त हो गया। मैंने आपसे मेरे लिए उपयोगी सम्पूर्ण श्रीरामचरित सुन लिया और आपके ही प्रसाद से मेरे ह्दय में श्रीराम के श्रीचरणों के प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया।

मोहि भयउ अति मोह, प्रभु बंधन रन महँ निरखि।
चिदानन्द संदोह, राम बिकल कारन कवन।।६८(ख)।।

भा०- प्रभु श्रीराम का समरभूमि में नागपाशमय बन्धन देखकर मुझे मोह हो गया। मैं सोचने लगा कि सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीराम किस कारण से मेघनाद के नागपाश में बँधकर व्याकुल और कलाहीन हो रहे हैं।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ ह्दय मम संशय भारी।।
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।।

भा०- मानव का अत्यन्त अनुशरण करने वाले अर्थात् साधारण मनुष्य जैसे श्रीराम का चरित्र देखकर मेरे ह्दय में बहुत-बड़ा संशय हो गया था। मैंने उस भ्रम को अब अत्यन्त हितकर मान लिया है। कृपा के कोशस्वरूप भगवान् श्रीराम ने मुझ पर बहुत अनुग्रह किया है।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई।।
जो नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही।।
सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम गाई।।

भा०- जो तीक्ष्ण धूप से अत्यन्त व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया का आनन्द समझ पाता है। हे प्रभु! यदि मुझे अत्यन्त मोह न हुआ होता तो, हे तात! मैं आपको किस प्रकार से मिलता और किस प्रकार से वह सुहावनी श्रीरामकथा सुनता जो अत्यन्त विचित्र है तथा जिसे आपने बहुत प्रकार से गाया।

निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा।।
संत बिशुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।।
राम कृपा तव दरशन भयऊ। तव प्रसाद सब संशय गयऊ।।

भा०- चारों वेद तथा संहितायें, आगम ग्रन्थ और पुराणों का यही मत है, सिद्ध मुनि भी यही कहते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिसको भगवान् श्रीराम कृपा करके देख लेते हैं, उसी को विशुद्ध सन्त स्वयं परिचय के साथ दर्शन देते हैं। श्रीराम की कृपा से ही आपके दर्शन हुए हैं और आपके प्रसाद से मेरा सम्पूर्ण संशय चला गया।

दो०- सुनि बिहंगपति बानी, सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग।।६९(क)।।

भा०- इस प्रकार से विनम्रता और प्रेम के सहित पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी की वाणी सुनकर भुशुण्डि जी का शरीर रोमांचित हो गया। उनके नेत्र सजल हो गये और मन में वे बहुत प्रसन्न हुए।

श्रोता सुमति सुशील शुचि, कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमत, सज्जन करहिं प्रकास।।६९(ख)।।

भा०- हे पार्वती! सुन्दर बुद्धिवाले, सुन्दर स्वभाववाले, बाहर और भीतर से पवित्र भगवद्भक्त श्रोता को पाकर श्रीराम के अनन्य सेवक श्रीवैष्णवजन अत्यन्त गोपनीय मंत्र का भी प्रकाशन कर देते हैं।

बोलेउ कागभुशुंडि बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी।।
सब बिधि नाथ पूज्य तुम मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे।।

भाः– फिर काकभुशुण्डि जी बोले, उन्हें पक्षीराज गरुड़ पर अत्यन्त प्रेम था। हे नाथ! आप सब प्रकार से मेरे पूजनीय हैं, क्योंकि रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम के आप कृपापात्र हैं।

तुमहिं न संशय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्ह तुम दाया।।
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही।।
तुम निज मोह कहा खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं।।

भा०– हे नाथ! आपको न संशय है, न मोह है और न माया है, आपने मुझ पर दया की है। हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! मोह के बहाने से यहाँ आपको भेजकर रघुपति श्रीराम ने मुझे बड़प्पन दिया है। हे पक्षियों के स्वामी! आपने अपना मोह कहा, हे वेदवाणी के ईश्वर गरुड़ जी! वह कुछ भी आश्चर्य नहीं है अर्थात् वह तो स्वाभाविक है।

नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।

भा०– देवर्षि नारद जी, भूतभावन शिवजी, सनकादि बाल ब्रह्मचारीगण और भी जो आत्मवादी मुनीश्वर गण हैं, किसको–किसको मोह ने अन्धा नहीं बनाया। संसार में ऐसा कौन है जिसे काम ने नहीं नचाया? तृष्णा अर्थात् लालच ने किसे बावला नहीं बनाया और क्रोध ने किसके हृदय को नहीं जला दिया।

दो०- ग्यानी तापस शूर कबि, कोबिद गुन आगार।
केहि के लोभ बिडंबना, कीन्ह न एहिं संसार।।७०(क)।।

भा०– इस संसार में ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, मनीषी, वेदज्ञ और गुणों का भवन स्वरूप ऐसा कौन है, जिसको लोभ ने विडम्बनाओं से युक्त नहीं कर दिया हो अर्थात् अपमानित नहीं कर दिया हो ?

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन शर, को अस लाग न जाहि।।७०(ख)।।

भा०– लक्ष्मी के मद ने किसे टेढ़ा नहीं बनाया, प्रभुता ने किसे बहरा नहीं कर दिया? संसार में ऐसा कौन है, जिसे हरिण के समान नेत्रोंवाली युवती का नेत्र बाण नहीं लगा हो?

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही।।
जौबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा।।

भा०– गुणों ने किसको सन्निपात नहीं कर दिया। मान और मद ने किसे नष्ट करके नहीं छोड़ा? युवावस्था के ज्वर ने किसको नहीं बलकाया अर्थात् किसको नहीं विक्षिप्त किया और ममता ने किसका ज्ञान नहीं नष्ट कर दिया?

मत्सर काहि कलंक न लावा। काहि न शोक समीर डोलावा।।
चिंता साँपिन को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।
कीट मनोरथ दारु शरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन कृत न मलीनी।।

भा०- मत्सर ने किसे कलंक नहीं लगाया और शोक के वायु ने किसे नहीं डिगा दिया? चिन्ता रूपिणि सर्पिणीं ने किसे नहीं खाया? संसार में ऐसा कौन है, जिसे माया नहीं ब्यापी? मनोरथ कीड़ा है और शरीर लकड़ी है, जिसके शरीर रूप लकड़ी में यह घुन नहीं लगे अर्थात् मनोरथों ने जिसके शरीर को नहीं नष्ट कर दिया ऐसा कौन धैर्यवान है? पुत्र, धन और लोभ की ईषणाओं ने किसकी बुद्धि को मलीन नहीं बना दिया?

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा।।
शिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।

भा०- यह सब अत्यन्त प्रबल और असीम माया का ही परिवार है। इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिव जी तथा ब्रह्मा जी भी जिससे डरते हैं, तो फिर और जीव किस गिनती में आता है?

दो०- ब्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाषंड।।७१(क)।।

भा०- इस संसार में अत्यन्त भयंकर माया की सेना व्याप्त हो रही है। कामादि अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, कपट और पाखण्ड इसके वीर सेनापति हैं।

सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।७१(ख)।।

भा०- वह माया रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम की दासी है। यद्यपि समझने में वह भी मिथ्या है, फिर भी माया के बन्धन में पड़ा हुआ कोई भी जीव भगवान् श्रीराम की कृपा के बिना नहीं छूट सकता है। हे नाथ! यह बात मैं अपने चरण जमाकर, अथवा आपके चरणों को पकड़कर प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ।

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

भा०- जो माया सारे संसार को नचाती है, जिसका चरित्र कोई भी नहीं देख पाता है, हे पक्षिराज! वही माया भगवान् के भृकुटि के विलासमात्र से अपनी सम्पूर्ण समाज के सहित नर्तकी की भाँति नाचती है अर्थात् सारे संसार को नचानेवाली माया भगवान् श्रीराम के संकेत मात्र से नाचती है। यही परमात्मा की विशेषता है।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप गुन धामा।।
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघशक्ति भगवंता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तप कबहुँ कि जाहीं।।

भा०- वे ही भगवान् श्रीराम सच्चिदानन्द के घन हैं, अजन्मा हैं, विशिष्ट ज्ञान ही उनका स्वरूप है, वे समस्त सद्गुणों के धाम अर्थात् भवन हैं, वे ज्ञानियों के लिए व्यापक और भक्त के लिए व्याप्य अर्थात् अल्प देशवृत्ति होते हैं। अथवा वे चिद्–अचिद् वर्गरूप व्याप्य जीवजगत् के व्यापक हैं। वे खण्डरहित और अन्तरहित हैं, वे सर्वरूप हैं, उनकी शक्ति अमोघ है, वे प्रभु ऐश्वर्यादि छः माहात्म्यों से युक्त भगवान् हैं। प्रभु श्रीराम के गुण सामान्य इन्द्रियों से व्यक्त नहीं होते। उनमें दभ्र अर्थात् किसी प्रकार का दोष नहीं है, इसलिए वे अदभ्र है। वे वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। भगवान् श्रीराम समदर्शी, अनवद्य अर्थात् पापरहित और अजीत अर्थात् किसी से

पराजित नहीं हुए, वे ममतारहित और निराकार अर्थात् निरूपम आकार वाले हैं। अथवा निःशेष अर्थात् सम्पूर्ण आकार उन्हीं परमात्मा के हैं तथा सभी आकार उन्हीं के संकल्प से निश्चित हैं। संसार के सभी आकार उन्हीं से निस्सृत हैं तथा विश्व के सभी आकार उन्हीं से निष्क्रान्त हैं। जीवों के सम्पूर्ण आकार जीवों के कर्मफल के भोग के रूप में उन्हीं परमात्मा से निर्मित है। सृष्टि के विश्राम में संसार के सभी आकार उन्हीं परमात्मा श्रीराम में निर्लीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम का आकार निर्मल है तथा भगवान् श्रीराम के लोकोत्तर आकार श्याम शरीर निर्दोष है। भगवान् श्रीराम का आकार कर्म बन्धनों से निर्लिप्त है, इसलिए उन्हें निराकार कहते हैं। प्रभु मोह से परे हैं, वे नित्य और निरन्जन अर्थात् कर्म के लेपों से रहित एवं सुख के सन्दोह अर्थात् घनीभूत तत्त्व हैं। प्रभु श्रीराम जी प्रकृति से परे सबके हृदय में निवास करने वाले, चेष्टारहित, निरीह, ब्रह्म, रजोगुण से रहित, नाशरहित परमात्मा हैं। यहाँ मोह का कोई कारण नहीं है। क्या सूर्य के सम्मुख कभी अन्धकार जा सकता है?

दो०- भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।७२(क)।।

भा०- भक्तों के लिए ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीराम ने राजा का रूप धारण किया और प्राकृत मनुष्यों के अनुरूप ही परम पावन चरित्र किये।

जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।७२(ख)।।

भा०- जिस प्रकार अनेक वेश धारण करके कोई नट नृत्य करता है और वह वही–वही अर्थात् अपने वेश के अनुरूप भाव दिखाता है, परन्तु वह स्वयं वह व्यक्ति नहीं बन पाता अर्थात् जैसे किसी नट ने राजा का वेश बनाया तो वह राजा की चेष्टाओं का दर्शन कराता है, परन्तु स्वयं वह न तो राजा है और न ही राजा वह है, उसी प्रकार श्रीराम मनुष्य का वेश धारण करके भी न तो मनुष्य हो सकते हैं और न मनुष्य भगवान् श्रीराम हो सकता है।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।।
जे मति मलिन बिषयबश कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी।।

भा०- हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! भगवान् श्रीराम की यह लीला इसी प्रकार की है, जो दैत्यप्रकृति के लोगों को मोहित करती है और भगवद्भक्तों के लिए सुखकर होती है। हे स्वामी! जो लोग मलीन बुद्धिवाले, विषयों के वश में रहनेवाले और कामी होते हैं, वे ही प्रभु श्रीराम पर इस प्रकार का मोह आरोपित करते हैं।

नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन शशि कहँ कह सोई।।
जब जेहि दिशि भ्रम होइ खगेशा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा।।
नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोहबश आपुहिं लेखा।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी।।
हरि बिषयक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा।।

भा०- जिसको जब नेत्र दोष अर्थात् पीलिया होता है तब वह श्वेत चन्द्रमा को भी पीले वर्ण का कहता है, जबकि चन्द्रमा पीला नहीं होता, वह तो उसके नेत्र में आये हुए कँवल आदि दोष का परिणाम है। हे पक्षीराज गरुड़ जब जिसे दिशाभ्रम हो जाता है, तब वह कहता है कि सूर्यनारायण पश्चिम दिशा में उदित हुए हैं, जबकि सूर्यनारायण तो पूर्व में ही उदित होते हैं। इस प्रकार नौका पर चढ़ा हुआ व्यक्ति इस संसार को चलते हुए देखता है, परन्तु मोह के वश में होने से स्वयं को अचल अर्थात् स्थिर समझ बैठता है। जब बच्चे चक्राकार घुमते हैं, तब वे ही तो घुमते हैं और उन्हीं को चक्कर आते हैं, गृह आदि तो नहीं घुमते, पर झूठ बोलेनेवाले वे बच्चे परस्पर यही कहते हैं कि घर घुम रहा है, पेड़ घुम रहे हैं, आकाश घुम रहा है आदि। हे पक्षीराज गरुड़ भगवान् श्रीराम के विषय में

भी इसी प्रकार का मोह होता है। प्राणी अपने ही निर्बल पक्षों को आप पर आरोपित कर देता है। व्यक्ति स्वयं होता है कामी, क्रोधी तथा लोभी और कह देता है भगवान् को, जैसे मुख की आकृति दर्पण में भाषित होती है, उसी प्रकार मोहान्ध लोगों को उन्हीं के निर्बल पक्ष भगवान् में प्रतीत होता है, जबकि भगवान् के विषय में स्वप्न में भी अज्ञान अर्थात् ज्ञान विरोधी भाव का संग आ ही नहीं सकता।

मायाबश मतिमंद अभागी। हृदय जमनिका बहुबिधि लागी।।
ते शठ हठ बश संशय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं।।

भा०– जो लोग अविद्या माया के वश में होते हैं तथा मन्दबुद्धि और भाग्यहीन होते हैं, जिनके हृदय में बहुत प्रकार अज्ञान का पर्दा लगा हुआ होता है, वे ही दुष्ट हठ के वश होकर भगवान् श्रीराम के विषय में संशय करते हैं और अपना अज्ञान योगियों के भी आनन्द के आश्रय भगवान् श्रीराम पर आरोपित कर देते हैं।

दो०– काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप।।७३(क)।।

भा०– जो काम, क्रोध, मद और लोभ में ही रमते रहते हैं, जो गृह में आसक्त और दुःखरूप हैं अथवा, दुःखस्वरूप गृह में आसक्त रहते हैं, जो मोहग्रस्त हैं तथा संसाररूप कूप में पड़े हैं, वे मोहान्ध लोग रघु अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के पालन करने वाले रघुपति श्रीराम को कैसे जान सकते हैं?

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।७३(ख)।।

भा०– भगवान् का निर्गुणरूप अत्यन्त सुलभ है, क्योंकि वहाँ गुणों को जानना नहीं है। एकमात्र नित्य, मुक्त, बुद्ध, शुद्धस्वरूप परमेश्वर को अनुभव में ले आता है, इसलिए वहाँ भ्रम का भय नहीं है, परन्तु भगवान् के सगुणस्वरूप को पूर्णरूपेण कोई भी नहीं जानता, क्योंकि भगवान् श्रीराम के समान उनके गुण भी अनन्त हैं। अतः अन्तरहित गुणों को शान्त शरीरोंवाला यह जीव कैसे जान सकता है? भगवान् के ऐश्वर्यपरक अनेक चरित्र जैसे सुगम हैं, उसी प्रकार विवाह, विलाप अदि चरित्र अगम्य हैं, क्योंकि इनमें माधुर्य की अधिकता है, जैसे श्रीमिथिला की महिलाओं द्वारा प्रभु से धान कुटवाना, पत्थर के खण्ड से परमेश्वर श्रीराम के गाल सेंकवाना, पुनः श्रीसीताहरण तथा लक्ष्मण–शक्ति प्रसंग में अज्ञ मनुष्य की भाँति विलाप करना। ऐसे परस्पर विरोधी और विरोधाभासी चरित्र सुनकर मुनियों के मन को भी भ्रम हो जाता हैं तो औरों की क्या बात?

सुनु खगेश रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई।।
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावउँ तोही।।
राम कृपा भाजन तुम ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता।।
ताते नहिं कछु तुमहिं दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ।।

भा०– हे गरुड़ जी ! अब रघुपति भगवान् श्रीराम की प्रभुता सुनिये, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभु! जिस प्रकार मुझे मोह हुआ था वह सम्पूर्ण कथा मैं आपको सुनाता हूँ। हे तात! आप भगवान् श्रीराम के कृपापात्र हैं और आपको भगवान् के गुणों में प्रेम है, इसलिए आप मुझे भी सुख दे रहे हैं। इसी कारण से मैं आपसे कुछ छिपाव नहीं कर रहा हूँ और पूजनीय तथा मन को हरनेवाला रहस्य गा रहा हूँ।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।
संसृत मूल शूलप्रद नाना। सकल शोक दायक अभिमाना।।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी।।
जिमि शिशु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं।।

भा०– हे गरुड़ जी! श्रीराम का, उन्हीं के साथ प्रकट हुए स्वभाव को सुनिये, भगवान् भक्तों का अभिमान कभी नहीं रखते, क्योंकि यह अभिमान संसार का मूल कारण, नाना प्रकार के कष्ट को देनेवाला और सम्पूर्ण शोकों को भी देनेवाला है। कृपा के सागर भगवान् भक्त से अभिमान को दूर कर देते हैं, क्योंकि उन्हें अपने सेवक पर बहुत ममता होती है। हे हम सब पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! जैसे छोटे बच्चे के शरीर में जब फोड़ा होता है तब उसे माता कठोर जैसी होकर शल्यचिकित्सा की विधि से चिरवा देती है।

दो०– जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नाश हित जननी, गनति न सो शिशु पीर।।७४(क)।।

भा०– यद्यपि बालक प्रथम अर्थात् फोड़ा को चिरवाते समय बहुत दुःख पाता है और वह बालक अधीर अर्थात् धैर्य छोड़कर रोता है, फिर भी जन्म देनेवाली माता बालक की ब्याधि को नष्ट करने के लिए उस छोटे बच्चे की कुछ क्षण की पीड़ा को नहीं गिनती अर्थात् उस पर कोई ध्यान नहीं देती, पीड़ा होने ही देती है।

तिमि रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि।।७४(ख)।।

भा०– उसी प्रकार रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम कल्याण के लिए ही अपने दास का अभिमान हर लेते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि अरे प्राणी! ऐसे कृपालु श्रीराम को भ्रम छोड़कर क्यों नहीं भजता है?

राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेश सुनहु मन लाई।।
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।।
तब तब अवधपुरी मै जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ।।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई।।

भा०– हे पक्षीराज गरुड़ जी! अब मैं भगवान् श्रीराम की कृपा और उस कृपा की उपेक्षा करानेवाली अपनी जड़ता दोनों कह रहा हूँ, तुम मन लगाकर सुनो। जब–जब भक्तों के लिए भगवान् श्रीराम श्रीअवध में मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के ही हेतु अर्थात् प्रेमवश होकर अनेक बाललीलायें करते हैं, तब–तब मैं नीलपर्वत पर से श्रीअवधपुरी जाता हूँ और भगवान् के बालचरित्र को देखकर बहुत प्रसन्न होता हूँ। जाकर भगवान् श्रीराम का श्रीअवध में जन्ममहोत्सव देखता हूँ और वहाँ पाँच वर्षपर्यन्त लुभाकर रह जाता हूँ अर्थात् प्रत्येक कल्प के सातवें मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता में पाँच वर्षों के लिए नील पर्वत की कथा को विश्राम दे देता हूँ।

इष्टदेव मम बालक रामा। शोभा बपुष कोटि शत कामा।।
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी।।

भा०– बालकरूप भगवान् श्रीराम ही मेरे इष्टदेव हैं। उनके शरीर की शोभा अरबों कामदेवों के समान है। अथवा, मेरे इष्टदेव बालकरूप भगवान् श्रीराम की शरीर के शोभा से ही अनन्त कामदेवों को शोभा मिली है अर्थात् मेरे राघव कामदेवों के उपमेय नहीं हैं, प्रत्युत् कथन्चित् कामदेव उनका उपमान है। हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! मैं अपने प्रभु बालरूप भगवान् श्रीराम के मुख को बार–बार निहारकर अपने नेत्रों को सफल कर लेता हूँ।

लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहुरंगा।।

दो०- लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठन परइ जो अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ।।७५(क)।।

भा०- उन दिनों मैं छोटे से कौवे का रूप धारण करके अर्थात् कौवा का बच्चा बनकर प्रभु के साथ रहकर उनके बहुत रंगोंवाले बालचरित्र को देखा करता हूँ। वे अपनी लड़िकाई अर्थात् बाल्यकाल में जहाँ–जहाँ भ्रमण करते हैं वहाँ–वहाँ उनके संग उड़ता जाता हूँ। चक्रवर्ती महाराज जी के आँगन में बालरूप श्रीराघवसरकार के श्रीमुख से जो दही–भात तथा दूध–भात का जूठन कण गिर जाता है, वही चोंच से उठाकर खा लेता हूँ अर्थात् प्रभु के हाथ से ग्रास कभी नहीं छिनता हूँ। पहली बात तो वे उदार हैं, मेरे खाने भर के लिए अपने मुख से जूठन गिरा देते हैं और दूसरी बात यह भी है कि मुझे डर लगता है, कदाचित् छिनने जाऊँ तो मेरे चोंच प्रभु के श्रीकरकमल में चुभ न जायें।

एक बार अतिशय सुखद, चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ शरीर।।७५(ख)।।

भा०- एक बार रघु अर्थात् जीवमात्र के विशेष प्रेरक रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम ने अत्यन्त सुखद चरित्र किया। शिव जी कहते हैं कि प्रभु की इस लीला का स्मरण करते ही भुशुण्डि जी का शरीर पुलकित हो गया और कुछ क्षणों के लिए वाणी रूक गई।

कहइ भुशुंडि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक।।
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती।।
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई।।
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई।।

भा०- फिर भुशुण्डि जी ने कथा कहना प्रारम्भ किया और गरुड़ जी को सम्बोधित करके बोले, हे पक्षियों के नायक गरुड़ जी! अब सेवकों को सुख देनेवाले प्रभु श्रीराम के बालचरित्र सुनिये। महाराज दशरथ जी का राजमन्दिर सब प्रकार से सुन्दर है। वहाँ नाना जातियों के मणि खचित अर्थात् जड़े हुए हैं। महाराज के सुन्दर अँगनाई अर्थात राजभवन के सुन्दर आँगन का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। जहाँ नित्य ही चारों भाई श्रीराम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जी, खेला करते हैं। रघुवंशियों के राजा तथा रघुवंशियों में परम प्रकाशमान् भगवान् बालक राम जी बाल विनोद करते हुए कौसल्या जी, कैकयी जी एवं सुमित्रा जी आदि सभी माताओं को सुख देने के लिए आँगन में भ्रमण करते हैं।

मरकत मृदुल कलेवर श्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा।।
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख शशि दुति हरना।।
ललित अंक कुलिशादिक चारी। नूपूर चारु मधुर रवकारी।।
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई।।

भा०- (अब गोस्वामी तुलसीदास जी भुशुण्डि जी के माध्यम से भगवान् बालक श्रीराम का नख–शिख वर्णन कर रहे हैं।) भगवान् श्रीराम का शरीर कोमल तथा मरकत अर्थात् इन्द्र नीलमणि के समान श्यामल और सुन्दर है। उनके प्रत्येक अंग–अंग की करोड़ों कामदेवों के सामन शोभा है। श्रीराघवसरकार के श्रीचरण नवीन लाल कमल के समान लाल और कोमल हैं। प्रभु के श्रीचरणों की अंगुलियाँ बहुत सुन्दर और श्रीचरणों के दसो नखों की शोभा चन्द्रमा की भी शोभा को हरण कर लेती हैं। प्रभु के श्रीचरणों में बड़े ही सुन्दर वज्र, अंकुश, ध्वज और कमल के चिन्ह हैं। मधुर ध्वनि करनेवाले नूपुर भी श्रीचरणों में बहुत सुन्दर लग रहे हैं। प्रभु के कटि प्रदेश में

विराजमान किंकिणी सुन्दर स्वर्ण और मणियों से बनाकर रची गई है अर्थात् सँवार–सँवारकर बनाई गई है, उसके स्वर बहुत ही सुहावने और मधुर हैं।

दो०– रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल बिभूषन चीर।।७६।।

भा०– श्रीराघवसरकार के उदर पर सुन्दर तीन रेखायें हैं, उनकी नाभी बहुत ही सुन्दर और गम्भीर है। श्रीमुन्नासरकार के विशाल हृदय पर अनेक विधावाले बालोचित अलंकार और सुन्दर रंग–बिरंगे वस्त्र देदीप्यमान हो रहे हैं।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिशाल बिभूषन सुंदर।।
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा।।

भा०– प्रभु श्रीराम के श्रीहस्त लाल हैं, उनकी अंगुलियों के नख मनोहर अर्थात् मन को ही चुरा लेते हैं। प्रभु के विशाल भुजाओं में विशिष्ट अलंकार बहुत सुन्दर लग रहे हैं। बाल सिंह के कन्धे के समान प्रभु के दोनों कन्धे हैं। शंख के समान चिक्कन और सुन्दर प्रभु का गला है। चिबुक अर्थात् ठोढ़ी बहुत सुन्दर है और बालक श्रीराम का श्रीमुख तो छवि की सीमा ही है।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दशन बिशद बर बारे।।
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद शशि कर सम हासा।।

भा०– भगवान् के तोतले वचन बड़े अव्यक्त और मधुर हैं, उनके ओष्ठ लाल तथा छोटी–छोटी दो दँतुलियाँ बाल्यकालीन होने से बड़ी ही श्रेष्ठ और श्वेत हैं। प्रभु का कपोल बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक है। उनकी नासिका मनोहर अर्थात् मन को ही हर लेती है। चन्द्रमा की किरणों के समान श्रीराघव का स्मित अर्थात् मन्दहास सभी प्राणियों के लिए सुखद है।

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।।
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए।।

भा०– संसार के भय को नष्ट करने वाले प्रभु के नेत्र नीले कमल के समान हैं, अर्थात् कज्जल लगाने के कारण राजीवनेत्र भी नीले कमल जैसे हो गये हैं। प्रभु के भाल पर गोरोचन का तिलक प्रकाशित हो रहा है। श्रीराघव की टेढ़ी भौंहें, समान आकारवाले सुन्दर दोनों श्रवण तथा घुँघराले और काले बालों पर सम्पूर्ण छवि छाई हुई है, मानों सम्पूर्ण छवि भ्रमर का रूप धारण करके प्रभु के घुँघराले केशों पर मँडरा रही है।

पीत झीनि झिगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही।।
रूप राशि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी।।

भा०– प्रभु के श्यामल शरीर पर पीली और झीने वस्त्रों से बनी हुई झिंगुली बहुत सुन्दर लगती है। शिशु श्रीराघव की किलकनी तथा बाल सुलभ चितवन अर्थात् देखना मुझे बहुत भाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण रूपों के इकट्ठे हुए पुञ्जस्वरूप भगवान् श्रीराम महाराज दशरथ जी के आँगन में विहार कर रहे हैं और मणियों के खम्भों में अपनी ही प्रतिबिम्ब देखकर नाच उठते हैं।

मोहिं सन करहिं बिबिध बिधि क्रीडा। बरनत मोहि होति अति ब्रीडा।।
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं।।

भा०- मुझसे अनेक प्रकार की क्रीड़ायें अर्थात् खेल करते हैं, उसका वर्णन करते हुए मुझे स्वयं में बहुत संकोच होता है। प्रभु किलकारी करते हुए जब मुझे पकड़ने दौड़ते हैं और मैं भग चलता हूँ तब अपने हाथ में लिए हुए मालपुआ को मुझे दिखाते हैं।

दो०- आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिं।।७७(क)।।

भा०- जब मैं निकट आता तब प्रभु हँसते कि, अब भुशुण्डि का कल्याण हो जायेगा तथा जब मैं भागता तब श्रीराघव रोने लगते, उन्हें लगता मुझसे दूर होकर भुशुण्डि को कष्ट होगा, क्योंकि सारा सुख मुझ परमात्मा के पास ही है और मुझसे दूर होने पर दुःख ही दुःख तो है। प्रभु बालक श्रीराम के श्रीचरणों को पकड़ने के लिए समीप जाता तब मुझे मुड़-मुड़कर देखकर भाग जाते प्रभु को लगता है कि भले शरीर से भुशुण्डि कौवा हैं, पर जन्म से तो ये ब्राह्मण ही हैं। अतः जन्मना ब्राह्मण को भी मुझ क्षत्रिय का पैर नहीं छूना चाहिये, इसलिए भुशण्डि जी को अपने श्रीचरणों का स्पर्श नहीं करने देते।

प्राकृत शिशु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह।।७७(ख)।।

भा०- इस प्रकार साधारण बालक जैसी लीला देखकर मुझे मोह हो गया, मैंने सोचा की चित्त और आनन्द के घनस्वरूप प्रभु यह कौन-सा चरित्र कर रहे हैं जो कि मुझ जैसे सेवक को एक मालपुआ भी नहीं दे रहे हैं।

इतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया।।
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृति नाहीं।।

भा०-हे पक्षीराज गरुड़ जी! इतना विचार मन में लाते ही प्रभु श्रीराम से प्रेरित माया मुझे व्याप्त हो गई, परन्तु वह माया अन्य जीवों की भाँति न ही मेरे लिए दुःखद थी और न ही मेरे मन पर मायाकृत संसार का कोई प्रभाव था।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरियाना।।
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बश्य जीव सचराचर।।

भा०- हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे प्रभु के वाहन! उसे आप सावधान होकर सुनिये। एकमात्र श्रीसीता जी के वर भगवान् श्रीराम का ज्ञान अखण्ड है अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कभी अज्ञान से आवृत नहीं होता। अन्य जड़-चेतन से युक्त जीववर्ग माया के वश में है अर्थात् ज्ञान सखण्ड है और माया से ढँक जाता है।

जौ सब के रह ग्यान एकरस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।
माया बश्य जीव अभिमानी। ईश बश्य माया गुन खानी।।
परबश जीव स्वबश भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।

भा०- यह जीव पराधीन है और ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य से नित्य सम्पन्न भगवान् श्रीराम स्ववश अर्थात् स्वाधीन हैं तथा "स्व" अर्थात् अपने भक्तों के भी वश में हो जाते हैं। जीव अनेक होते हैं और श्री जी के कन्त अर्थात् श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम एक हैं। यद्यपि जीव और ब्रह्म के बीच सम्बन्धतः भेद झूठा है इसे माया ने किया है अर्थात् जीव और ब्रह्म का स्वरूपतः भेद शास्त्रतः सिद्ध है, परन्तु सम्बन्ध की दृष्टि से जीव परमात्मा से अभिन्न है अर्थात् जीव सेवक है और भगवान् सेव्य हैं। दोनों सेवक-सेव्यभाव सम्बन्ध की दृष्टि से अभिन्न हैं,

परन्तु जब जीव भगवान् को अपना सम्बन्धी न मानकर जगत् को माता, पिता, बहन, भाई, पत्नी, पति आदि सम्बन्धी दृष्टि से देखने लगता है, तब वह परमात्मा से अलग होकर दुःख पाता है। यह सम्पूर्ण भेद माया के द्वारा किया हुआ और झूठा है, फिर भी करोड़ों उपाय करने पर भी यह सम्बन्ध निबन्धन भेद भगवान् के भजन बिना नहीं जाता।

दो०- रामचंद्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पशुबिनु पूँछ बिषान।।७८(क)।।

भा०- जो प्राणी भगवान् श्रीरामचन्द्र के भजन के बिना मोक्ष चाहता है, तो वह ज्ञानवान होने पर भी बिना सींग-पूँछ का पशु ही है, क्योंकि बिना भजन के मोक्ष हो ही नहीं सकता।

राकापति षोडश उअहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइय, बिनु रबि राति न जाइ।।७८(ख)।।

भा०- जैसे भले ही अपने सोलहों कलाओं से सम्पन्न सोलह रूप धारण करके शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा उदित हो जायें, भले ही तारागणों के समूह एक साथ प्रकाशित हो उठें और उनके साथ सुमेरु मंदराचल आदि सभी पर्वतों में दावाग्नि लगा दी जाये, फिर भी बिना सूर्य के रात्रि नहीं जाती अर्थात् जैसे सोलहों चन्द्रमा, सभी तारागण और सम्पूर्ण पर्वतों में लगी अग्नि रात्रि के उस अन्धकार को नहीं मिटा पाते जिसे अकेले सूर्य क्षणभर में समाप्त कर देते हैं।

ऐसेहिं बिनु हरि भजन खगेशा। मिटइ न जीवन केर कलेशा।।
हरि सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहिं बिद्या।।
ताते नाश न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर।।

भा०- हे गरुड़ जी! इसी प्रकार से भगवान् श्रीराम के भजन के बिना जीव के क्लेश नहीं मिटते हैं। भूभारहारी श्रीहरि राघवेन्द्र श्रीराम के सेवक को अविद्या व्याप्त नहीं होती। प्रभु से प्रेरित विद्या ही उसे व्याप्ति है, इसलिए हे पक्षीश्रेष्ठ गरुड़ जी! भक्त अर्थात् भगवान् के दास का कभी नाश नहीं होता। उसमें भेदभक्ति अर्थात् सेवक-सेव्यभाव लक्षणाभक्ति बढ़ती रहती है।

भ्रम ते चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिशेषा।।
तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू।।
जानु पानि धाए मोहि धरना। श्यामल गात अरुन कर चरना।।
तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी।।
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा।।

भा०- भगवान् श्रीराम ने मुझ भुशुण्डि को भ्रम से चकित देखा और हँस पड़े। हे गरुड़ जी! वह विशेष चरित्र सुनिये, प्रभु के उस कौतुक का मर्म भरत अदि तीनों छोटे भाई, कौसल्या जी आदि मातायें, पिताश्री चक्रवर्ती दशरथ जी, इनमें से किसी ने नहीं जाना अर्थात् प्रभु श्रीराम का मुझ भुशुण्डि के साथ किया हुआ कौतुक सर्वथा गोपनीय रहा। श्यामल शरीर तथा लाल श्रीहस्त और चरणोंवाले प्रभु श्रीराम मुझे पकड़ने के लिए दोनों घुटनों एवं दोनों हाथों से दौड़े। हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! तब मैं भाग चला और प्रभु श्रीराम ने मुझे पकड़नें के लिए अपनी भुजायें फैला दीं। मैं आकाश में ज्यों-ज्यों दूर उड़ता जाता वहाँ प्रभु की भुजाओं और प्रभु को भी अपने पास देखता था।

दो०- ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितवत पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहिं मोहि तात।।७९(क)।।

भा०- हे भैया गरुड़ जी! इस प्रकार पीछे मुड़कर देखता-देखता, उड़ता-उड़ता मैं ब्रह्मलोकपर्यन्त गया। श्रीराम की भुजाओं और मुझमें मात्र दो अंगुल का अन्तर था, क्योंकि मेरे मन में माया और मोह था। यथा- "जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही" मानस ७/७४/२. "रघुपति प्रेरित ब्यापी माया" मानस ७/७८/१. मुझमें अज्ञान और अभिमान था उन्होंने मेरे और प्रभु के बीच दो अंगुल का अन्तर रख लिया था। मैं द्वैतवाद की भावना से जीव और ईश्वर की पृथक्-पृथक् सत्ता मानने लगा था, वही दो अंगुल का बीच था। "नरो वा परमेश्वारो वा" अर्थात् श्रीराम मनुष्य हैं या ईश्वर इसी भेद ने दोनों के बीच दो अंगुल का भेद रख दिया था। मैं अवतारी और अवतार में अन्तर समझता था यही दो अंगुल का अन्तर था।

सप्ताबरन भेद करि, जहँ लगि रहि गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, ब्याकुल भयउँ बहोरि।।७९(ख)।।

भा०- मैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, प्रकृति और महत् तत्त्व के सातों आवरणों का भेद करके जहाँ तक मेरी गति रही वहाँ तक प्रभु श्रीराम और उनकी भुजाओं को देखते-देखते गया फिर व्याकुल हो गया।

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ।।
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।।

भा०- हे गरुड़ जी! जब मैं अर्थात् काकभुशुण्डि अत्यन्त भयभीत हो गया और अपनी आँखें मूँद ली तब देखते ही देखते फिर मैं श्रीअयोध्या में चला गया, मुझे देखते ही प्रभु श्रीराम मुस्कुराने लगे और उनके हँसते ही मैं तुरन्त उनके मुख में चला गया।

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका।।

भा०- हे पक्षियों के राजा! सुनिये, मैं भगवान् श्रीराम के पेट के बीच अनेक ब्रह्माण्डों के समूह देखता था। वहाँ अत्यन्त विचित्र अनेक लोक थे और उनमें एक से एक अत्यन्त सुन्दर रचना अर्थात् सृष्टि थी।

कोटिन चतुरानन गौरीशा। अगनित उडुगन रबि रजनीशा।।
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिशाला।।

भा०- वहाँ करोड़ों ब्रह्मा जी, करोड़ों शिव जी और उपलक्षणतया करोड़ों विष्णु जी, अनगिनत तारागण, अनगिनत सूर्य तथा अनगिनत चन्द्रमा दिखते थे। वहाँ अनगिनत लोकपाल, यम तथा काल थे। वहाँ अनेक पर्वत और अनेक प्रकार की विशाल पृथ्वीयाँ थीं।

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर।।

भा०- भगवान् श्रीराम के पेट में अनेक सागर, अनेक नदियाँ, अनेक तालाब तथा अनेक वन थे। वहाँ अनेक प्रकार की सृष्टियों का विस्तार था। वहाँ देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य और किन्नर दिख रहे थे। चर-अचर सहित अण्डज, श्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज ये चारों प्रकार के जीव भी वहाँ दिख रहे थे।

दो०- जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ।।८०(क)।।

भा०- जो न कभी देखा था, न कभी सुना था, जो कल्पना करके मन में भी नहीं समाता वह सब कुछ मैं आश्चर्यमय देख रहा था। वह किस प्रकार से वर्णन किया जा सकता है?

एक एक ब्रह्मांड महँ, रहउँ बरष शत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मै, अंड कटाह अनेक।।८०(ख)।।

भा०- एक-एक ब्रह्माण्ड में मैं सौ वर्ष तक रहता था, इस प्रकार मैं अनेक ब्रह्माण्डों को देखता फिर रहा था।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु शिव मनु दिशित्राता।।
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निशिचर पशु खग ब्याला।।
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाँती।।
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना।।

भा०- वहाँ प्रत्येक लोक में ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी, मनु जी और दिशाओं के रक्षक दिग्पाल ये सब अलग-अलग दिखते थे। वहाँ मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प, देवता और दैत्यों के समूह ये सब दिखते थे। वहाँ सम्पूर्ण जीव दूसरे प्रकार के थे। वहाँ अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब और अनेक पर्वत, सम्पूर्ण प्रपन्च दूसरा ही दूसरा था।

अंडकोश प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।।
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।।
दशरथ कौसल्या सब माता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउँ बालबिनोद अपारा।।

भा०- प्रत्येक ब्रह्माण्डों में मैं अपना रूप अर्थात् काकभुशुण्डि को भी देखता था। इस प्रकार मैंने अनुपम अनेक वस्तुयें देखी। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीअवधपुरी को अलग-अलग रूप में देखा। वहाँ अलग-अलग स्वरूप में श्रीसरयू तथा अलग-अलग स्वरूप में श्रीअवध के नर-नारी दिखे। मैंने अनेक रूपों में महाराज दशरथ जी को तथा भिन्न-भिन्न रूपों में कौसल्या आदि सभी माताओं को और श्रीभरत, लक्ष्मण एवं श्रीशत्रुघ्न जी इन तीनों भ्राताओं को भी अनेक रूपों में देखा। मैंने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीराम का अवतार और उनके अपार बालविनोद अर्थात् बाललीला के दृश्य भी देखे।

दो०- भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति बिचित्र हरियान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन।।८१(क)।।
सोइ शिशुपन सोइ शोभा, सोइ कृपालु रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ, प्रेरित मोह समीर।।८१(ख)।।

भा०- हे श्रीविष्णु के वाहन गरुड़ जी! भगवान् श्रीराम के उदर में रहकर मैंने सब कुछ अलग-अलग और अत्यन्त आश्चर्यमय देखा। हे स्वामी! मैं अनगिनत ब्रह्माण्डों में फिरा, परन्तु भगवान् श्रीराम का दूसरा रूप नहीं देखा अर्थात् प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भगवान् श्रीराम एक से ही दिखे। प्रभु श्रीराम का वही शिशुपन अर्थात् बालभाव, वही बाललीला, और वही कृपालु रघुवीर भगवान् श्रीराम मुझे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में दिखे। इस प्रकार मोहरूप वायु से प्रेरित हुआ मैं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में देखता-देखता फिरता रहा।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कलप शत एका।।
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ।।
निज प्रभु जनम अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ।।
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई।।

भा०– हे गरुड़ जी! मुझे अनेक ब्रह्माण्डों में भ्रमण करते हुए, मानो एक सौ कल्प बीत गये। मैं भ्रमण करते–करते अपने आश्रम आ गया। वहाँ रहकर कुछ समय बिताया। अपने प्रभु श्रीराम का जन्म जब श्रीअवध में सुन पाया, तब निर्भर प्रेम से युक्त हुआ मैं प्रसन्न होकर उठकर दौड़ा और जाकर भगवान् श्रीराम का जन्ममहोत्सव देखा तथा वहीं पाँच वर्षपर्यन्त आनन्द लिया, जिस विधि से मैंने प्रथम ही तुम्हें गाकर सुनाया है।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना।।
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपालु भगवाना।।
करउँ बिचार बहोरि बहोरि। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी।।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिशेषा।।

भा०– हे गरुड़ जी! मैंने श्रीराम के उदर में अनेक संसार देखे, जो देखते तो बनता है, परन्तु कहा नहीं जा सकता। फिर वहाँ मैंने अर्थात् भगवान् श्रीराम के उदर में ही मायापति कृपालु भगवान, परम चतुर श्रीराम को देखा। मैं बारम्बार अपने मन में विचार करता था कि, अरे! मेरी बुद्धि मोहरूप कीचड़ से व्याप्त हो गई है। अथवा, मोहरूप कीचड़ में फँस गई है। मैंने मात्र दो घड़ी में सब कुछ देख लिया, मैं भ्रम में पड़ गया, मेरे मन में विशेष मोह हुआ।

दो०– देखि कृपालु बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर।।८२(क)।।
सोइ लरिकाइ मोहिं सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझायउँ, मन न लहेउ बिश्राम।।८२(ख)।।

भा०– इस प्रकार से कृपामय रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम मुझे व्याकुल देखकर फिर ठहाका लगाकर हँसे और हे धीर बुद्धिवाले गरुड़ जी! सुनिये, उनके उन्मुक्त रूप से हँसते ही मैं उनके मुख से बाहर आ गया। भगवान् श्रीराम मुझसे फिर उसी प्रकार का लड़कपन करने लगे। मैंने करोड़ों प्रकार से समझाया, परन्तु मेरे मन ने विश्राम नहीं पाया।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दशा बिसराई।।
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता।।

भा०– प्रभु का यह ऐश्वर्य और माधुर्य से मिला हुआ चरित्र देखकर और अभी–अभी घटी हुई श्रीराम के मुख में प्रविष्ट होकर स्वयं ही देखी हुई प्रभु श्रीराम की प्रभुता को समझते ही मैंने अपनी शरीर की दशा को भुला दिया। मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरे मुख से वचन नहीं निकल पा रहा था, मैंने केवल इतना ही कहा कि दुःख से आतुर भक्तों की रक्षा करने वाले प्रभु श्रीराम! मेरी रक्षा कीजिये...रक्षा कीजिये।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी।।
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ।।
कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा।।

भा०– प्रभु ने मुझे अपने प्रेम में व्याकुल देखकर, फिर अपनी माया की प्रभुता को रोक लिया। प्रभु श्रीराम ने मेरे सिर पर अपने श्रीकरकमल को रखा और दीनदयाल श्रीराम ने मेरे सारे दुःख हर लिए। सेवकों को सुख देनेवाले कृपा के समूह स्वरूप भगवान् श्रीराम ने मुझे मोह से रहित कर दिया।

प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी।।
भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिशेषी।।
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हेउँ बहुबिधि बिनय बहोरी।।

भा०– भगवान् श्रीराम की प्रथम देखी हुई प्रभुता को बार–बार विचारकर मेरे हृदय में बहुत प्रसन्नता हो रही थी। भगवान् श्रीराम की भक्तवत्सलता को देखकर मेरे हृदय में विशेष प्रीति हुई और मेरे नेत्र सजल हो गये, शरीर रोमांचित हो गया। मैंने हाथ जोड़कर भगवान् की बहुत विनती की।

विशेष– भुशुण्डि जी को कामरूप धारण करने का वरदान प्राप्त था। यथा– "**कामरूप इच्छा मरन, ग्यान बिराग निधान**" मानस ७/११३ख. इसलिए शिव जी के साथ भुशुण्डि जी मनुष्य रूप धारण करके श्रीअवध में आये थे। "**मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ**" मानस १/१९६/४. उसी कामरूपता का इस समय प्रयोग किया और मनुष्य बनकर दोनों हाथ जोड़ लिया और स्तुति की, अन्यथा कौवे के शरीर में यह सम्भव नहीं था।

दो०– सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु, बोले रमानिवास।।८३(क)।।
कागभुशुंडी माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर ऋधि, मोक्ष सकल सुख खानि।।८३(ख)।।

भा०– मेरी प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर मुझे अपना दीन सेवक जानकर श्रीरमानिवास अर्थात् श्रीराम की आह्लादिनी शक्ति श्रीसीता के हृदय में निवास करने वाले प्रभु श्रीराम सुखदायक, गम्भीर और कोमल वचन बोले, हे काकभुशुण्डि! अब मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर अणीमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व नामक सिद्धियाँ और अन्य महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व नामक नौ निधियाँ आदि सम्पूर्ण सुखों की खानि आनन्दस्वरूप मोक्ष इनमें से जो चाहो वह वरदान माँग लो।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना।।
आज देउँ सब संशय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं।।

भा०– हे भुशुण्डि! ज्ञान अर्थात् संसार की नश्वरता का बोध, विवेक अर्थात् सत्य–असत्य की पहचान का सामर्थ्य, विरति अर्थात् वैराग्य, विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान यानी चिद्–अचिद् वर्ग से विशिष्ट परमात्मतत्त्व का ज्ञान और भी जो संसार में मुनि दुर्लभ अनेक गुण हैं उन सबको आज मैं तुम्हें दे दूँगा इसमें कोई सन्देह नहीं है, तुम्हें जो मन में अच्छा लगे वही माँग लो।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।।
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही।।
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु ब्यंजन जैसे।।
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा।।

भा०– प्रभु श्रीराम का वचन सुनकर मैं अनुराग से अधिक भर गया। तब मैं अपने मन में अनुमान करने लगा प्रभु ने मुझे वास्तव में सभी सुखों को देने के लिए कह दिया है, परन्तु अपनी भक्ति देने के लिए नहीं कही। भक्ति से हीन गुण और सभी सुख इसी प्रकार स्वादहीन हैं, जैसे लवण अर्थात् नमक के बिना बहुत से व्यन्जन स्वादहीन हो जाते हैं।

विशेष : भक्ति नमक है, वही रामरस है इसलिए नमक को भी श्रीवैष्णवजन रामरस कहते हैं। भजन के बिना सुख किस काम का। हे पक्षीराज, गरुड़ जी! ऐसा विचार करके मैं फिर बोला–

जौ प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू।।
मन भावत बर माँगउँ स्वामी। तुम उदार उर अंतरजामी।।

भा०– हे प्रभु श्रीरघुनाथ! यदि आप प्रसन्न होकर वरदान दे रहे हैं तथा यदि आप मुझ पर कृपा और स्नेह दोनों एक साथ कर रहे हैं तो, हे स्वामी! मैं आज अपने मन का भाता हुआ वरदान माँग रहा हूँ, क्योंकि आप उदार हैं और हृदय अर्थात् मन के अर्न्तयामी हैं।

दो०– अबिरल भगति बिशुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।८४(क)।।
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपासिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम।।८४(ख)।।

भा०– आपकी जिस पवित्र अविरला भक्ति को वेद और पुराण गाते हैं और जिसे योगीश्वर और मुनिजन ढूँढ़ते रहते हैं, आपके प्रसाद से कोई एक पा जाता है। हे भक्तों के कल्पवृक्ष! हे प्रणतों अर्थात् विधिपूर्वक प्रणाम करनेवालों के हितैषी! हे कृपा के सागर! हे सुखों के भवन और सुखमय तेजवाले भगवान् श्रीराम! अपनी वही भक्ति मुझे दया करके दे दीजिये।

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक।।
सुनु बायस तैं परम सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना।।
सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़ भागी।।
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तनु दहहीं।।
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई।।

भा०– रघुकुल के स्वामी और परमसुख अर्थात् आध्यात्मिक सुख देनेवाले भगवान् श्रीराम, भुशुण्डि जी से परम सुखद वचन बोले, हे बायस काकभुशुण्डि! तू बहुत चतुर है, तू भला ऐसा वरदान क्यों नहीं माँगेगा? तुमने समस्त सुखों की खानि मेरी अविरल भक्ति ही वरदान में माँग ली। तेरे समान जगत् में कोई बड़भागी नहीं है, जो जप और योग की अग्नि में अपने शरीर को जला डालते हैं, ऐसे मुनि भी जिस भक्ति को करोड़ों यत्नों से नहीं प्राप्त कर पाते, ऐसी भक्ति तुमने माँगी, जो मुझे बहुत भाती है। मैं तेरी चतुरता देखकर रीझ गया हूँ अर्थात् प्रसन्न हो गया हूँ।

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब शुभ गुन बसिहैं उर तोरे।।
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा।।
जानब तैं सबहीं कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।।

दो०– माया संभव भ्रम सब, अब न ब्यापिहैं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि।।८५(क)।।
मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग।।८५(ख)।।

भा०– हे पक्षी भुशुण्डि! सुनो, अब मेरे प्रसाद से सभी कल्याणकारी गुण तुम्हारे हृदय में निवास करेंगे। भक्ति, भगवद्विषयक ज्ञान, विकृति का ज्ञान अर्थात् संसार की नश्वरता का बोध, वैराग्य, यौगिक साधना के चरित्र और भगवदीय साधना के रहस्यों के विभाग इन सभी के भेदों को तुम जान जाओगे। मेरे प्रसाद से तुम्हें साधनकाल में कष्ट भी नहीं होगा। अब सभी माया से उत्पन्न भ्रम तुम्हें नहीं व्याप्त होंगे अर्थात् तुम्हें नहीं प्रभावित करेंगे। तुम मुझ दाशरथी राम को ही ब्रह्म अर्थात् सबसे बड़ा, अनादि अर्थात् आदि से रहित, अजन्मा, अव्यक्त गुणवाला तथा

सभी कल्याणगुणगणों की खानि समझना। हे काकभुशुण्डि! सुनो, मुझ राम को भक्त निरन्तर प्रिय हैं, ऐसा विचार करके मेरी प्रियता प्राप्त करने के लिए तुम शरीर, वाणी, मन से मेरे चरणों में ही निश्चल प्रेम करो।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी।।
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही।।

भा०– हे भुशुण्डि! अब तुम अत्यन्त निर्मल सत्य अर्थात् सन्तों के लिए हितैषिणी साधन में सुगम, निगम, आगम और संहिताओं द्वारा व्याख्यायित मुझ परमेश्वर श्रीराम की वाणी सुनो, तुम्हें अपने सिद्धांत सुना रहा हूँ। इसे सुनकर मन में धारण करो और सब कुछ छोड़कर मेरा भजन करो।

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।

भा०– यद्यपि इस संसार में जो भी चर–अचर अनेक प्रकार के जीव हैं यह मेरी माया से ही सम्भव अर्थात् शरीर धारण किये हैं, सभी मेरे प्रिय हैं और सभी मेरे द्वारा उत्पन्न किये हुए हैं, किन्तु मनुष्य मुझे सबसे अधिक भाते हैं, क्योंकि वे साधना कर सकते हैं।

तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन महँ निगम धरम अनुसारी।।
तिन महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी।।

भा०– उन मनुष्यों में भी ब्राह्मण प्रिय हैं, ब्राह्मणों में भी सम्पूर्ण वेदों को न हो सके तो अपनी शाखा प्राप्त वेद को कण्ठस्थ करने वाले ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं। उनमें भी वेदोक्त धर्म का अनुसरण करने वाले ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं, उनमें भी विरक्त ब्राह्मण प्रिय हैं। उनमें भी भगवद्‌तत्त्ववेत्ता ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं, उनमें भी विज्ञानी अर्थात् चिद्–अचिद् विशिष्ट परमात्मतत्त्व को जाननेवाले मुझे प्रिय हैं।

तिन ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही।।

भा०– फिर उन सबसे मुझे अपने दास प्रिय हैं, जिसे मेरा ही आधार या मेरा ही आश्रय है, जिसे और किसी की आशा नहीं है। हे भुशुण्डि! मैं तुम्हारे पास बारम्बार सत्य बोल रहा हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान कोई प्रिय नहीं है, चाहे वह किसी भी योनि में हो, किसी भी वर्ण में हो और किसी भी लिंग में हो।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।।

भा०– भक्ति से हीन ब्रह्मा भी क्यों न हों वह भी सभी जीवों के समान प्रिय हैं अर्थात् ब्रह्मा का पद मेरी प्रियता में कारण नहीं है, परन्तु भक्ति से युक्त अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे प्राण के समान प्रिय हैं, ऐसा मेरा स्वभाव है।

दो०– शुचि सुशील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग।।८६।।

भा०– हे भुशुण्डि! बोलो, पवित्र, सुन्दर स्वभाववाला और सात्विक बुद्धिवाला सेवक किसे प्रिय नहीं लगता। हे काकभुशुण्डि! सावधान होकर सुनो, वेद और पुराण ऐसी नीति कहते हैं।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन शील अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत शूर कोउ दाता।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहिं प्रीति सम होई।।

भा०- एक ही पिता के भिन्न–भिन्न गुणों, भिन्न स्वभाव तथा भिन्न आचरणोंवाले बहुत से पुत्र होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी होता है, कोई ज्ञानी होता है, कोई धनवान, कोई शूरवीर, ओर कोई दानी होता है। कोई सब कुछ जाननेवाला हो जाता है, कोई धर्मपारायण होता है, इन विविध विशेषताओं वाले पुत्रों पर पिता को समान प्रीति होती है।

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।

भा०- इन सबके अतिरिक्त कोई पुत्र वचन, मन और कर्म से पिता का भक्त होता है। जो स्वप्न में भी पिता की सेवा के अतिरिक्त दूसरा धर्म नहीं जानता, वही पुत्र पिता को प्राण के समान प्रिय होता है। यद्यपि वह सब प्रकार से ज्ञानशून्य होता है अर्थात् पिता को किसी के ज्ञान से कोई लेना–देना नहीं होता, वह तो अपनी भक्ति से ही पुत्र पर अधिक प्रेम करता है।

एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देवनर असुर समेते।।
अखिल बिश्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।
तिन महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया।।

दो०- पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।८७(क)।।

सो०- सत्य कहउँ खग तोहि, शुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब।।८७(ख)।।
कबहूँ काल नहि ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही।।

भा०- इस प्रकार से इस संसार में जो भी पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और राक्षसों के समेत चराचर अर्थात् चेतन और जड़ वर्ग के जीव हैं उनसे युक्त यह सारा संसार मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है तथा सभी पर मुझे समान रूप से दया है। इसमें से जो मद और माया अर्थात् कपट और दम्भ छोड़कर मन, वाणी, शरीर से मेरा भजन करता है, वह पुरुष हो या नपुंसक हो अथवा, स्त्री वर्ग का हो। चर–अचर जीवों में कोई भी यदि सर्वभाव से अर्थात् अपनी सम्पूर्ण प्रियता के साथ कपट छोड़कर यदि मुझे भजता है तो वही मुझे परम प्रिय हो जाता है। हे भुशुण्डि पक्षी! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि पवित्र सेवक मुझे प्राण के समान प्रिय होते हैं, ऐसा विचार करके संसार की सभी आशा और विश्वास छोड़कर तुम मुझे भजो। तुम्हें कभी काल नहीं ब्यापेगा अर्थात् काल तुम पर कभी भी मृत्यु व्यवहार का प्रयोग नहीं करेगा। तुम निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करते रहना।

प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ।।
सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।।
प्रभु शोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिनहिं नहिं बयना।।

भा०- मैं अमृत के समान मधुर भगवान् के वचन सुनकर तृप्त नहीं हो रहा था, मेरा शरीर पुलकित था और मैं मन में बहुत प्रसन्न होता था। वह सुख तो मेरे मन और मेरे कान जानते हैं। वह जीभ के द्वारा कहा नहीं जा सकता। बालरूप भगवान् श्रीराघव की शोभा का सुख तो मेरे नेत्र ही जानते हैं, पर वे कैसे कह सकते हैं, क्योंकि उनके पास कोई वाणी नहीं है।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन शिशु कौतुक तेई।।
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा।।
देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई।।
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना।।

भा०– मुझे बहुत प्रकार से समझाकर और सुख देकर बालक श्रीराम, राघव जी फिर वही बाल कौतुक करने लगे। उन्होंने नेत्रों में आँसू भरकर मुख को कुछ रूक्ष करके माता कौसल्या जी की ओर देखा, अब प्रभु श्रीराघव को बहुत भूख लग गई थी। प्रभु के नेत्रों में आँसू और उनका मुख रूखा देखकर माता कौसल्या जी आतुरता के साथ उठकर दौड़ीं। माता जी ने कोमल वचन कहकर प्रभु श्रीराम को हृदय से लगा लिया। श्रीरामलला को गोद में रखकर दुग्धपान कराने लगीं और ललित स्वर में रघुपति श्रीराम जी के ललीत चरित्रों का गान करने लगीं।

सो०– जेहि सुख लागि पुरारि, अशुभ बेष कृत शिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुख महँ संतत मगन।।८८(क)।।

सोइ सुख कर लवलेश, जिन बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेश, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति।।८८(ख)।।

भा०– जिस बालरूप श्रीराघव के दर्शन सुख के लिए, सबको सुख देनेवाले त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी ने अशुभ वेश धारण किया अर्थात् मुण्डमाला, बाघाम्बर, विभूति, सर्पकोपिन आदि अशुभ वेश बनाया, उसी प्रभु श्रीराम की बाललीला के आनन्द में श्रीअवधपुरी के पुरुष–स्त्री निरन्तर मग्न रहते हैं अर्थात् उन्हें अशुभ वेश बनाये बिना शिशु राघव के दर्शन, स्पर्श, दुलार, गोद में लेकर खेलाना आदि का सौभाग्य सुख प्राप्त हो रहा है। हे पक्षीराज गरुड़! उसी श्रीराघव के बालरूप दर्शन सुख का लवलेश मात्र भी जिन्होंने एक बार भी स्वप्न में भी प्राप्त कर लिया, वे सुन्दर बुद्धिवाले श्रीवैष्णव महानुभाव, ब्रह्मसुख को भी नहीं गिनते।

मैं पुनि रहेउँ अवध कछु काला। देखउँ बालबिनोद रसाला।।
राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ।।

भा०– फिर मैं कुछ काल तक श्रीअवधपुरी में रहा और मैंने प्रभु श्रीराम के रसमय बालविनोद अर्थात् रसमयी बाललीलाओं के दर्शन किये। भगवान् श्रीराम के प्रसाद से मैंने भक्ति वरदान प्राप्त किया। फिर प्रभु के श्रीचरणों की वन्दना करके अपने आश्रम नीलपर्वत पर लौट आया।

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया।।
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि माया जिमि मोहि नचावा।।

भा०– जब से रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम ने मुझे अपना लिया और जब से मैंने रघुनायक श्रीराम को अपना बना लिया तब से मुझे भगवान् की माया नहीं व्यापी। मैंने यह सब गुप्त चरित्र गाया, जिस प्रकार श्रीहरि की माया ने मुझे नचाया था।

निज अनुभव अब कहउँ खगेशा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेशा।।
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।

भा०– हे पक्षीराज गरुड़ देव! अब मैं अपना अनुभव कह रहा हूँ, बिना श्रीहरि भगवान् श्रीराम का भजन किये जीव के क्लेश नहीं समाप्त होते। हे खग अर्थात् आकाशचारी पक्षियों के राजा गरुड़ जी! सुनिये, भगवान् श्रीराम

की कृपा के बिना प्रभु श्रीराम की प्रभुता जानी नहीं जा सकती और भगवान् श्रीराम का प्रभुत्व जाने बिना श्रीराघवेन्द्रसरकार पर जीव का विश्वास नहीं होता तथा प्रभु की प्रतीती के बिना श्रीराघवसरकार पर साधक को प्रीति अर्थात् प्रेम नहीं होता। हे पक्षीराज! जैसे जल का चिकनापन दृढ़ नहीं होता, उसी प्रकार भगवत् प्रेम बिना भगवान् की भक्ति भी दृढ़ नहीं होती।

विशेष- प्रीति और भक्ति इन दो शब्दों का प्रयोग करके गोस्वामी जी ने एक सूक्ष्म अंतर की ओर संकेत किया है। उनके मन में प्रीतिपूर्वक भगवत् स्मरण को भक्ति कहते हैं, जबकि नारद परमप्रेम को ही भक्ति मानते हैं – "**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा**" (ना०भ० सू० १.१.२), शाण्डिल्य भी ईश्वर में परअनुरक्ति को ही भक्ति मानते हैं – सा तु परानुरक्तिरीश्वरे (शा०सू० १.१.२) किन्तु गोस्वामी जी प्रीतिपूर्वक भगवत् स्मरण को भक्ति मानते हैं और भक्ति की दृढ़ता में प्रीति को कारण मानते हैं।

सो०- बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।।८९(क)।
कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय।।८९(ख)।।

भा०- क्या बिना गुरु के ज्ञान हो सकता है, क्या वह ज्ञान विराग के बिना स्थिर रह सकता है? इसी प्रकार वेद, पुराण कहते हैं कि, क्या भगवान् की भक्ति के बिना कोई सुख पा सकता है? हे तात! क्या स्वाभाविक सन्तोष के बिना कोई शान्तिरूप विश्राम पा सकता है? भले ही कोई करोड़ों यत्न कर–करके मर जाये फिर भी क्या जल के बिना नाव चल सकती है ?

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।।

भा०- बिना सन्तोष के कामनायें नष्ट नहीं होतीं और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। श्रीराम के भजन के बिना क्या कामनायें मिट सकती हैं अर्थात् समूल नष्ट हो सकती हैं? क्या थाले अर्थात् पृथ्वी के बिना कभी भी वृक्ष जम सकता है?

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावइ।।
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।।

भा०- चिद्–अचिद् विशिष्ट ब्रह्मज्ञान बिना क्या समत्व बुद्धि आ सकती है अर्थात् जब तक जगत् से जगदीश का शरीर–शरीरीभाव सम्बन्ध हृदय में नहीं बैठ जाता तब तक जगत् में समत्व बुद्धि कैसे हो सकती है? क्या कोई भी आकाश के बिना अवकाश अर्थात् स्वयं समाहित होने का स्थान पा सकता है? श्रद्धा अर्थात् आस्तिक बुद्धि के बिना धर्माचरण नहीं हो सकता। क्या कोई पृथ्वी के बिना गन्ध प्राप्त कर सकता है? अर्थात् जैसे गन्ध पृथ्वी से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार धर्म, श्रद्धा से उत्पन्न होता है।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।।
शील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई।।

भा०- क्या कोई तपस्या के बिना तेज का विस्तार कर सकता है? क्या संसार में बिना जल के रस उत्पन्न हो सकता है? विद्वानों की सेवा के बिना क्या शील, अर्थात् चरित्र मिल सकता है? हे गोसाईं गरुड़ जी! जैसे बिना तेज के रूप की प्राप्ति नहीं होती।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिश्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा।।

भा०– निज सुख अर्थात् अपने द्वारा अनुभव किये हुये परमात्मसुख के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? क्या वायु के बिना कभी स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है? इसी प्रकार भगवद्भजन के बिना भवभय का नाश नहीं हो सकता अर्थात् संसार के भय का नाश करने के लिए भगवान् का भजन अत्यन्त अनिवार्य है।

दो०– बिनु बिश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्राम।।९०(क)।।

सो०– अस बिचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संशय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुंदर सुखद।।९०(ख)।।

भा०– बिना विश्वास के भगवान् की भक्ति नहीं हो सकती है, भक्ति के बिना भगवान् श्रीराम द्रवित नहीं होते अर्थात् कृपा करने का मन नहीं बनाते और श्रीरामकृपा के बिना जीव स्वप्न में भी विश्राम नहीं प्राप्त कर सकता। हे धीर बुद्धिवाले गरुड़ जी! ऐसा विचार करके सभी कुतर्कों और संशयों को छोड़कर करुणा की खानि, सुन्दर, सुख देनेवाले, रघुकुल के वीर, दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम का भजन कीजिये।

निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई।।
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिशेषी। यह सब मैं निज नयननि देखी।।
महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा।।
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम शेष शिव पार न पावहिं।।

भा०– हे स्वामी! हे पक्षियों के राजा गरुड़ जी! मैंने अपनी बुद्धि के ही समान भगवान् श्रीराम के प्रताप और महिमा का गान किया। मैंने कुछ विशेष युक्ति बनाकर नहीं कहा है, यह सब मैंने अपनी आँखों से देखा है। श्रीरघुनाथ की महिमा, प्रभु का रूप, उनके नाम और भगवान् श्रीराम के गुणों की गाथायें ये सभी असीम और अनन्त हैं अर्थात् न तो इनकी सीमा है और न ही अन्त। मुनिगण अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुणगण गाते हैं। वेद, शेष एवं शिव जी भी इनका पार नहीं पाते।

तुमहिं आदि खग मशक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता।।
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा।।

भा०– हे तात गरुड़ जी! जैसे आप से लेकर मच्छर पर्यन्त पक्षी आकाश में उड़ते हैं, परन्तु उसका (आकाश का) अन्त नहीं पाते, उसी प्रकार रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की महिमा अगाध है। हे तात! क्या कोई उसका थाह पा सकता है?

विशेष– अवगाह शब्द अविगाध शब्द का तद्भव है।

राम काम शत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।
शक्र कोटि शत सरिस बिलासा। नभ शत कोटि अमित अवकासा।।

भा०– भगवान् श्रीराम करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर शरीरवाले हैं और प्रभु श्रीराम अनन्त करोड़ श्रीदुर्गाओं के समान अकेले शत्रुओं के नाशक हैं अर्थात् अनन्त करोड़ दुर्गायें मिलकर शत्रुनाश में जो उग्रता और सामर्थ्य प्रस्तुत

कर सकती हैं वह एकमात्र भगवान् श्रीराम में सम्भव है। भगवान् श्रीराम का अरबों इन्द्र के समान विलास वैभव है। भगवान् श्रीराम में अरबों आकाशों के समान अवकाश है अर्थात् स्थान आदि का सामर्थ्य है।

दो०- मरुत कोटि शत बिपुल बल, रबि शत कोटि प्रकास।
शशि शत कोटि सुशीतल, शमन सकल भव त्रास।।९१(ख)।।

भा०- भगवान् श्रीराम में करोड़ों मरुतों अर्थात् वायुओं के समान अथवा उनसे भी अधिक बल है और प्रभु श्रीराम में करोड़ों सूर्य से भी अधिक प्रकाश है। श्रीरघुनाथ अरबों चन्द्रमा के समान सुन्दर और शीतल हैं और वे संसार के त्रास को समाप्त करते हैं।

काल कोटि शत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु शत कोटि सम, दुराधर्ष भगवंत।।९१(ख)।।

भा०- भगवान् अरबों काल के समान अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुरन्त अर्थात् सर्वथा अविनाशीतत्त्व हैं, किसी के भी द्वारा उनका अन्त किया ही नहीं जा सकता। भगवान् श्रीराम अरबों अग्नि के समान दुर्धर्ष हैं। उनका किसी भी काल में प्रधर्षण नही किया जा सकता अर्थात् उन्हें दबाया नहीं जा सकता।

प्रभु अगाध शत कोटि पताला। शमन कोटि शत सरिस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।

भा०- भगवान् श्रीराम अरबों पातालों के समान अगाध अर्थात् गम्भीर हैं। प्रभु श्रीराम अरबों यमराजों के समान दूसरों के लिए भयंकर हैं। श्रीरघुनाथ अनन्त कोटि तीर्थों के समान सबको पवित्र करने वाले हैं। प्रभु श्रीराम का श्रीरामनाम अनन्त पापसमूहों का नाशक है।

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि शत सम गंभीरा।।
कामधेनु शत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।

भा०- रघु अर्थात् जीवमात्र के विशेष प्रेरक रघुवीर श्रीराम करोड़ों हिमाचल पर्वतों के समान अचल अर्थात् स्थिर हैं। प्रभु श्रीराघव अरबों समुद्रों के समान गम्भीर हैं। भगवान् श्रीराम अरबों कामधेनुओं के समान समस्त कामनाओं को देनेवाले हैं।

शारद कोटि अमित चतुराई। बिधि शत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
बिष्णु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि शत सम संहर्ता।।

भा०- भगवान् श्रीराम में अनेक करोड़ शारदाओं के समान चतुरता है और उनमें अर्थात् प्रभु श्रीराम में अरबों ब्रह्माओं जैसी सृष्टि रचना कि निपुणता है। भगवान् श्रीराम करोड़ों विष्णुओं के समान जगत् का पालन करते हैं और अरबों रुद्रों के समान जगत् का संहार करने में समर्थ हैं।

धनद कोटि शत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन शत कोटि अहीशा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीशा।।

भा०- भगवान् श्रीराम अरबों कुबेरों के समान धनवान हैं और करोड़ों मायाओं के समान जगत् प्रपंच के निधान अर्थात् कोश हैं। अरबों शेषनागों के समान भगवान् श्रीराम जगत् का भार धारण कर सकते हैं। प्रभु अवधिरहित और उपमारहित हैं तथा एकममात्र भगवान् श्रीराम ही सर्वशक्तिमान और जीव जगत् के ईश्वर हैं।

छं०- निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि शत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै।।
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीश हरिहिं बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपालु सप्रेम सुनि सुख मानहीं।।

भा०- वेद कहते हैं कि भगवान् श्रीराम निरुपम हैं अर्थात् सभी उपमायें उनमें निर्लीन हैं और उनके द्वारा निरस्त कर दी गई हैं। श्रीराम की कोई दूसरी उपमा ही नहीं है। श्रीराम के समान श्रीराम ही हैं, जैसे सूर्य करोड़ों जुगनूओं के समान हैं इस प्रकार कहने वाला और कहा जाने वाला दोनों ही बहुत लघुता को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् छोटे हो जाते हैं, उसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के विलास के अनुसार श्रेष्ठमुनिगण भगवान् श्रीराम का बखान करते हैं और भाव के ग्राहक प्रभु कृपालु श्रीराम भी उनकी प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर सुख का अनुभव कर लेते हैं अर्थात् अपनी लघुता का विचार नहीं करते।

दो०- राम अमित गुन सागर, थाह कि पावइ कोइ।
संतन सन जस कछु सुनेउँ, तुमहिं सुनायउँ सोइ।।९२(क)।।

भा०- श्रीराम असीम गुणों के सागर हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? मैंने सन्तों से जैसा कुछ सुना था वही आपको सुना दिया।

सो०- भाव बश्य भगवान, सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीता रवन।।९२(ख)।।

भा०- भगवान् श्रीराम भाव के वश में हैं, वे सुख के कोश और करुणा के भवन हैं। अतएव, ममता, मद और अहंकार छोड़कर उन्हीं श्रीसीतारमण भगवान् श्रीराम का सदैव भजन करना चाहिये।

* मासपारायण, उन्तीसवाँ विश्राम *

सुनि भुशुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए।।
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना।।

भा०- इस प्रकार काकभुशुण्डि जी के सुहावने वचन सुनकर पक्षियों के राजा गरुड़ जी प्रसन्न होकर अपनी पंखों को फुला लिए। उनके नेत्रों में आँसू आ गये। गरुड़ जी मन में बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने अपने हृदय में भगवान् श्रीराम के प्रताप को लाकर स्थापित कर लिया।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।।
पुनि पुनि काग चरन सिर नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा।।

भा०- गरुड़ देव जी पिछला मोह समझकर पछताये, क्योंकि उन्होंने आदिरहित परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम को मनुष्य करके मान लिया था। गरुड़ जी ने बारम्बार काकभुशुण्डि जी के चरणों में सिर नवाया। उन्हें भगवान् श्रीराम के समान जानकर उनके प्रति अपना प्रेम बढ़ाया।

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौ बिरंचि शङ्कर सम होई।।
संशय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।।
तव सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जियायउ जन सुखदायक।।
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना।।

भा०– कोई भी बिना गुरुदेव के संसार सागर को नहीं पार कर सकता। यदि वह ब्रह्मा जी और शङ्कर जी के समान ही क्यों न हो। हे मेरे श्रद्धास्पद भुशुण्डि जी! मुझे संशयरूप सर्प ने काट खाया था, उसके कारण अनेक कुत्सित तर्करूप लहरों के समूह मुझे कष्ट देते रहते थे अर्थात् जैसे साँप के काटने पर लहर आती है और व्यक्ति अनाप-शनाप बकने लगता है, उसी प्रकार कुतर्कों के समूह के कारण मैं बहुत अनर्गल और मर्यादाहीन बोल रहा था। मैं मरणासन्न हो गया था, परन्तु भक्तों को सुख देनेवाले रघुवंश के नायक भगवान् श्रीराम ने आप अर्थात् काकभुशुण्डि स्वरूप गारुडि अर्थात् सर्प का विष उतारनेवाले मांत्रिक द्वारा मुझे जिला दिया अर्थात् रघुनाथ जी ने आपसे गारुडि की भूमिका निभवा दी। आपके प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने अनुपम श्रीराम रहस्य को जान लिया।

दो०– ताहि प्रशंसेउ बिबिध बिधि, शीष नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड बहोरि।।९३(क)।।

भा०– गरुड़ जी ने उन भुशुण्डि जी की बहुत प्रकार से प्रशंसा की, फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर गरुड़ जी प्रेम पूर्वक विनम्र और कोमल वाणी में बोले–

प्रभु अपने अबिबेक ते, बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि।।९३(ख)।।

भा०– हे सर्वसमर्थ! हे स्वामी! मैं अपने ही अविवेक के कारण आपसे आदरपूर्वक पूछ रहा हूँ। हे कृपा के सागर भुशुण्डि देव जी! आप मुझे अपना दास जान करके मेरे प्रश्न के उत्तर कहें।

तुम सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुशील सरल आचारा।।
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम प्रिय दासा।।
कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई।।

भा०– आप सर्वज्ञ, तत्त्व को जाननेवाले, मोह के अन्धकार से परे, सुन्दर बुद्धिवाले, सुन्दर शील अर्थात् चरित्र से सम्पन्न, सरल आचरणवाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के निवास स्थान हैं तथा आप रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम के प्रिय भक्त भी हैं। आपने किस कारण से यह कौवे का शरीर पाया ? हे तात! मुझे सब समझाकर कहिये।

राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी।।
नाथ सुना मै अस शिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नाश तव नाहीं।।
मृषा बचन नहिं ईश्वर कहई। सोउ मोरे मन संशय अहई।।
अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा।।
अंड कटाह अमित लय कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।।

दो०– तुमहि न ब्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ग्यान प्रभाव कि जोग बल।।९४(क)।।

प्रभु तव आश्रम आए, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग।।९४(ख)।।

भा०– हे नाथ! हे आकाशगामी पक्षीश्रेष्ठ भुशुण्डि जी कहिये! यह सुन्दर श्रीरामचरितमानस आपने कहाँ से पाया? हे नाथ! मैंने शिव जी के पास से ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता। ईश्वर असत्य वचन

नहीं कह सकते। वह भी मेरे मन में संशय है, क्योंकि हे नाथ! जड़-चेतन वर्ग में बँटे हुए सभी जीव, नाग, मनुष्य और देवता, किं बहुना सम्पूर्ण संसार ही काल का कलेवा अर्थात् प्रातःकालीन स्वल्पाहार है। यह काल अनेक ब्रह्माण्डरूप कड़ाहों का प्रलय करनेवाला तथा सदैव दुरतिक्रम अर्थात् अतिक्रमण करने में कठिन और बहुत-बड़ा अनिवार्य तत्त्व है। वह कराल काल आपको क्यों नहीं व्यापता? हे कृपालु! वह आप मुझे बतायें कि आप पर काल के नहीं व्याप्त होने में ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल। हे प्रभु! आपके आश्रम में आने से ही मेरे मोह और भ्रम भाग गये इसमें कौन-सा कारण है? हे नाथ! यह सब आप मुझसे अनुराग के साथ कहिये।

गरुड गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा सहित अनुरागा।।
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रश्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी।।
सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई।।
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई।।

भा०- गरुड़ जी की वाणी सुनकर काकभुशुण्डि जी बहुत प्रसन्न हो गये और हे पार्वती! वे अर्थात् कागभुशुण्डि जी अनुराग के सहित बोले, हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! आपकी बुद्धि धन्य है...धन्य है। आपकी प्रश्नावली मुझे बहुत प्रिय लगी। आपकी प्रेमपूर्ण सुहावनी प्रश्नावली सुनकर मुझे बहुत जन्मों की सुधि अर्थात् स्मृति आ गई। मैं अपनी सम्पूर्ण कथा गाकर कह रहा हूँ। हे तात! आप मन लगाकर आदरपूर्वक सुनिये।

जप तप मख शम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा।।

भा०- जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत और दान, वैराग्य, विवेक, योग और विज्ञान इन सभी साधनों का फल है भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम, उसके बिना कोई छेम अर्थात् कल्याण नहीं पा सकता।

एहि तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई।।
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई।।

सो०- पन्नगारि असि नीति, श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परम हित।।९५(क)।।
पाट कीट ते होइ, तेहि ते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सब कोइ, परम अपावन प्रान सम।।९५(ख)।।

भा०- इस शरीर में मैंने श्रीरामभक्ति पायी, इसलिए इस शरीर पर मुझे बहुत अधिक ममता है, जिससे कुछ भी अपना स्वार्थ सिद्ध होता है, उस पर सभी लोग ममता करते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! इसी प्रकार की नीति श्रुति के द्वारा सम्मत है और सज्जन भी कहते हैं कि, अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीच से प्रेम किया जाता है अथवा, करना चाहिये। रेशम का तागा रेशम के कीड़े के मल से प्राप्त होता है और उसी तागे से सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। ऐसे परम अपवित्र कीड़े को सभी रेशम के व्यापारी प्राण के समान पालते हैं।

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।।
सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा। जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा।।

भा०- मन, कर्म और वचन से श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम जीव के लिए यही एकमात्र स्वार्थ है। वही पवित्र है और वही शरीर सुन्दर है, जो शरीर पाकर प्राणी भगवान् का भजन कर सके।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रशंसहिं तेही।।
राम भगति एहि तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी।।

भा०– जो ब्रह्मा जी के समान शरीर प्राप्त करके भी श्रीराम से विमुख हो जाता है, तो उस शरीर की मनीषी और वेदज्ञ प्रशंसा नहीं करते। हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! मेरे इसी शरीर के हृदय में श्रीरामभक्ति उत्पन्न हुई और जम गई, अर्थात् प्रगाढ़ हो गई, इसलिए यह शरीर मुझे अत्यन्त प्रिय है।

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।।
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा।।

भा०– यद्यपि मेरी मृत्यु मेरी इच्छा पर निर्भर है अर्थात् मुझे इच्छामरण का वरदान प्राप्त है, फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता हूँ, क्योंकि वेद ने बिना शरीर के भजन का वर्णन नहीं किया है अर्थात् भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम के आस्वादन के लिए कोई न कोई शरीर चाहिये। पहले मुझे मोह ने बहुत नष्ट किया, मेरी बहुत दुर्दशा की। मैं श्रीराम से विमुख होकर कभी भी सुख से नहीं सो सका।

नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना।।
कवन जोनि जनमेउँ जग नाहीं। मैं खगेश भ्रमि भ्रमि जग माहीं।।

भा०– मैंने अनेक जन्मों में पुनः–पुनः अनेक कर्म, अनेक योग, जप, तप, यज्ञ तथा दान किया। हे गरुड़ जी! इस संसार में भटक–भटककर चौरासी लाख योनियों में ऐसी कौन योनि है, जहाँ मैं नहीं जन्मा।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।
सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। शिव प्रसाद मति मोह न घेरी।।

भा०– हे वेदवाणी के स्वामी गरुड़ जी! मैंने सब कर्म करके देख लिए, पर अभी की भाँति पहले सुखी नहीं हुआ। हे नाथ! मुझे बहुत जन्मों का स्मरण है। शिव जी के प्रसाद से मेरी बुद्धि मोह द्वारा नहीं ढँकी गई।

दो०– प्रथम जन्म के चरित अब, कहउँ सुनहु बिहगेश।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ, जाते मिटहिं कलेश।।९६(क)।।

भा०– हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कह रहा हूँ उसे सुनिये, उसे सुनकर प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम उत्पन्न होगा, जिस भक्ति से जीव के क्लेश मिट जाते हैं।

पूरब कलप एक प्रभु, जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्मरत, सकल निगम प्रतिकूल।।९६(ख)।।

भा०– हे प्रभु! एक कल्प में मल के आश्रय कलियुग का समय था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्म में अनुरक्त थे और सब वेदों के प्रतिकूल चलते थे।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ शूद्र तनु पाई।।
शिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी।।
धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिशाला।।

भा०– उस कलियुग में कोसलपुर अर्थात् श्रीअयोध्या में जाकर मैं शूद्र का शरीर प्राप्त करके जन्मा। मैं मन, कर्म और वाणी से शिव जी का सेवक था तथा अन्य देवों की निन्दा करनेवाला और अहंकारी था। मैं धन के मद से मत्त, अत्यन्त वाचाल, कठोर बुद्धिवाला और हृदय में विशाल दम्भ से युक्त था।

जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी।।
अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा।।
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई।।
अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनु पानी।।

भा०- यद्यपि मैं रघुवंश के नाथ भगवान् श्रीराम की राजधानी में रह रहा था, फिर भी उस समय मैंने श्रीअवध की कुछ भी महिमा नहीं जानी थी। अब मैंने श्रीअवध का प्रभाव जान लिया है। वेदों और आगम ग्रन्थों में तथा पुराणों ने ऐसा गाया है कि यदि किसी भी जन्म में जो कोई श्रीअवध में निवास कर ले, तो वह श्रीराम का उपासक हो ही जाता है। श्रीअवध के प्रभाव को प्राणी तभी जान पाता है, जब उसके हृदय में धनुषपाणी भगवान् श्रीराम निवास करते हैं।

सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी।।

दो०- कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन निज मति कल्पि करि, प्रगट किए बहु पंथ।।९७(क)।।
भए लोग सब मोहबश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनु हरियान ग्यान निधि, कहउँ कछुक कलिधर्म।।९७(क)।।

भा०- हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! वह कलिकाल बहुत कठिन था। उसमें सभी पुरुष–स्त्री पाप के परायण हो चुके थे अर्थात् सदैव पाप ही करते रहते थे। कलियुग के मलों ने सम्पूर्ण धर्मों को खा लिया था, सद्ग्रन्थ लुप्त हो चुके थे और दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पित करके बहुत से पन्थों को प्रकट कर दिया था। सभी लोग मोह के वश हो चुके थे। लोभ ने कल्याणकारी कर्मों को ग्रस लिया था। हे ज्ञान के निधान भगवान् नारायण के विमान गरुड़ जी! सुनिये, मैं कलियुग के कुछ धर्मों अर्थात् वृत्तियों का वर्णन कर रहा हूँ।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।

भा०- कलियुग में चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चारों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास नहीं रहते हैं। सभी स्त्री, पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेद बेचते हैं और राजा प्रजा को ही अशन अर्थात् भोजन बनाकर खा डालते हैं, कोई भी वेद का अनुशासन नहीं मानता।

मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहँ संत कहइ सब कोई।।

भा०- कलियुग में जिसको जो अच्छा लगे वही मार्ग है, जो गाल बजाये अर्थात् अपलाप करे वही पण्डित है। जो असत्य के साथ कार्य का आरम्भ करे और पाखण्ड में लगा हुआ हो, उसी को सब लोग सन्त कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।।

भा०- जो दूसरों के धन को हड़पे वही चतुर है, जो दम्भ करे वही बहुत बड़ा आचरणशील है, जो असत्य और मसखरी अर्थात् अश्लील हास–परिहास करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान के रूप में बखाना जाता है।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।।
जाके नख अरु जटा बिशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।

भा०- जो आचरणहीन और वैदिक मार्ग का त्यागी होता है, कलियुग में वही ज्ञानी और वही वैराग्यशाली है। जिसके पास बड़े-बड़े नख और विशाल जटायें हों, वही कलिकाल में प्रसिद्ध तपस्वी है।

दो०- अशुभ बेष भूषन धरे, भक्षाभक्ष जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं।।९८(क)।।

सो०- जे अपकारी चार, तिन कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल महँ।।९८(ख)।।

भा०- जो लोग अशुभ वेश और अशुभ आभूषण अर्थात् खोपड़ी, त्रिशूल आदि और भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ खाते हैं, कलियुग में वही लोग योगी और सिद्ध कहे जाते हैं। वे ही कलिकाल में पूज्य हो जाते हैं, जो छिपकर दूसरों का भेद लेते हैं और जो दूसरों का अपकार करते हैं। कलियुग में उन्हीं की बड़ाई होती है और वही सम्मानित हो जाते हैं, जो मन, वाणी, शरीर से लबार अर्थात् झूठे होते हैं, वे ही कलिकाल में सबसे बड़े वक्ता माने जाते हैं।

नारि बिबश नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।
शूद्र द्विजन उपदेशहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! सभी पुरुष, नारियों के वश में होकर नट के बन्दर की भाँति नाचते हैं। शूद्र अर्थात् आचरणहीन लोग ब्राह्मणों को ज्ञान का उपदेश करते हैं तथा अपने कन्धे में यज्ञोपवीत डाल कर कुत्सित दान लेते हैं।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।।
गुन मंदिर सुंदरपति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन के श्रृंगार नबीना।।

भा०- सभी लोग काम और लोभ में अनुरक्त होते हैं और अत्यन्त क्रोधी होते हैं। वे देवता, ब्राह्मण, वेद और सन्तों का विरोध करते हैं। प्रायः भाग्यहीन नारियाँ गुणों के भवन सुन्दर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करती हैं। कलियुग में सुहागिनियाँ अलंकारों से रहित होती हैं और विधवाओं के लिए नये-नये श्रृंगार उपलब्ध हो जाते हैं।

गुरु शिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई।।

भा०- गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो अन्धे और बहरे के जैसा रहता है। एक सुनता नहीं और एक देखता नहीं अर्थात् शिष्य, गुरु का उपदेश सुनना नहीं चाहता और गुरु, शिष्य की परिस्थिति देखना नहीं चाहता। जो गुरु, शिष्य के धन को हरता है अर्थात् लेता है और उसके शोक को नहीं दूर कर पाता, वह गुरु घोर नरक में पड़ता है।

मातु पिता बालकनि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।

दो०- ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बश, करहिं बिप्र गुरु घात।।९९(क)।।
बादहिं शूद्र द्विजन सन, हम तुम ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि।।९९(ख)।।

भा०- माता-पिता बालकों को बुलाते हैं, जिससे पेट भरे वही धर्म बालकों को सिखाते हैं। कलियुग में स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के बिना कोई दूसरी बात नहीं कहते अर्थात् सबके सब दिखावे के लिए वेदान्ती बने रहते हैं, परन्तु अन्दर

से इतना क्षुद्र होते हैं कि एक कौड़ी पाने के लिए अर्थात् बहुत थोड़े से लाभ के लिए ब्राह्मणों और गुरुओं की हत्या कर डालते हैं। शूद्र अर्थात् शोक से असन्तुलित, आचरण से हीन लोग जन्म और संस्कार इन दोनों क्रियाओं से विशुद्धता के साथ जन्म लिए हुए ब्राह्मण से विवाद करते हैं। वे कहते हैं कि क्या तुम से हम किसी भी पक्ष में कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है अर्थात् कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं हो सकता, इस प्रकार कहकर आँख दिखाकर डाँटते हैं।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।
आपु गए अरु तिनहूँ घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।।
कलप कलप भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।

भा०- जो परनारी में आसक्त, कपट में चतुर, मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही कलिकाल में अभेदवादी अर्थात् अद्वैतवादी ज्ञानी पुरुष हैं। मैंने कलियुग का चरित्र देखा है। स्वयं तो नष्ट ही होते हैं और जो लोग कुछ श्रेष्ठमार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उन्हें भी नष्ट कर डालते हैं। जो लोग तर्क करके श्रुतियों को दूषित करते हैं, वे एक-एक कल्प तक एक-एक नरक में पड़े रहते हैं।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।।
ते बिप्रन सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार शठ बृषली स्वामी।।

भा०- जो वर्णों में अधम, तेल बेचने वाले, कुम्हार, कुत्ता पकाकर खानेवाले चाण्डाल, किरात, कोल, कलवार आदि जैसे संस्कारहीन हैं, वे पत्नी की मृत्यु होने पर, घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ाकर सन्यासी हो जाते हैं अर्थात् पेट भरने के लिए बाबा बनते हैं। वे वेदज्ञ ब्राह्मणों से अपने पैर पुजवाते हैं और अपने हाथों से लोक-परलोक दोनों को नष्ट कर देते हैं। कलियुग में ब्राह्मण भी निरक्षर अर्थात् अशिक्षित, विषयों के लोलुप, कामांध, आचरणहीन और वृषली अर्थात् दुराचारिणीं शूद्र, चरित्रहीन स्त्री के स्वामी बन जाते हैं।

शूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।

भा०- आचरणहीन लोग अपना दुराचरण छिपाने के लिए जप, तप और नाना प्रकार के व्रत करते हैं तथा सबसे ऊँचे आसन पर बैठकर पुराण कहते हैं। सभी लोग मनमानी आचरण करते हैं, उस अपार अनीति का वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

दो०- भए बरन शङ्कर कलि, भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज शोक बियोग।।१००(क)।।
श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बश, कल्पहिं पंथ अनेक।।१००(ख)।।

भा०- कलियुग में सभी लोग वर्णसङ्कर और वैदिक सेतु को तोड़ने वाले हो चुके हैं। वे पाप करते हैं तथा दुःख भय, रोग, शोक और वियोग को प्राप्त करते हैं। जो वेदों से सम्मत ज्ञान और वैराग्य से युक्त श्रीरामभक्ति का पथ है, लोग मोहवश में होने के कारण उस पर नहीं चलते और नये-नये अनेक पंथों की कल्पना कर लेते हैं।

छं०- बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्ह गई बिरती।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।१।।

भा०- सन्यासी लोग अपने घरों को बहुत धनों से सजाते हैं। विषयों ने उनका वैराग्य हर लिया, अत: उनमें विरक्ति की भावना चली गई रहती है। हे गरुड़ देव जी! कलियुग में तपस्वी कहे जानेवाले लोग धनवान और गृहस्थ लोग दरिद्र रहते हैं। कलिकाल का कौतुक कहा नहीं जा सकता।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं।।२।।

भा०- लोग कुलीन और सती पत्नी को घर से निकाल देते हैं और अपने घर में सब प्रकार की गतियों से निवृत्त प्रतिष्ठाहीन कुलटा दासी को ले आते हैं। पुत्र तब तक माता–पिता को मानते हैं, जब तक आध्यात्मिक बल से हीन भोगप्रधान नारी का मुख नहीं देख लेते हैं।

ससुरारि पियारि लगी जब ते। रिपुरूप कुटुंब भए तब ते।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।३।।

भा०- जब से ससुराल प्रिय लगने लगी, तब से परिवार भी शत्रु रूप हो गया। कलियुग के राजा पाप परायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे नित्य ही प्रजा को दण्डित करके उसे बिडम्बित अर्थात् अपमानित करते रहते हैं।

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी।।
नहिं मान पुरान न बेदहिं जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।।४।।

भा०- मलीन अर्थात् निम्न श्रेणी के होने पर भी कलियुग के धनवान लोग ही ऊँचे कुल के माने जाते हैं अर्थात् कलियुग के व्यक्ति की सारी बुराईयों को धन ढँक लेता है। ब्राह्मण का जनेऊ मात्र चिन्ह रह गया है और नंगा रहना तपस्वियों का चिन्ह रह गया है। जो न पुराण मानता है और न वेद मानता है, कलियुग में वही भगवान् का वास्तविक सेवक सन्त है।

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी।।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।५।।

भा०- कलियुग में कवियों के वृन्द बहुत हैं, पर कवियों के आश्रयदाता उदार दानी जगत् में सुने ही नहीं जाते। गुणों को दूषित करनेवालों के ब्रात अर्थात् समूह दिखाई पड़ते हैं, परन्तु कोई गुणी नहीं दिखता। कलियुग में बारम्बार दुष्काल पड़ता है और सभी लोग बिना अन्न के दु:खी होकर मर जाते हैं।

विशेष- *"गुणानां दूषका: गुणदूषका: तेषां ब्रात: समूह।"*

दो०- सुनु खगेश कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मंड।।१०१(क)।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! सुनिये, इस कलिकाल में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, मारादि अर्थात् काम, मत्सर और मद यह सब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहते हैं।

तामस धर्म करहिं नर, जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बए न जामहिं धान।।१०१।(ख)।।

भा०- लोग धर्म, जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान सब कुछ तामसी श्रद्धा से करते हैं, अर्थात् तामस धर्म, तामस जप, तामस तप, तामस यज्ञ, तामस व्रत और तामस दान करते हैं। पृथ्वी पर इन्द्र वर्षा नहीं करते और धान बोने पर भी नहीं जमता।

छं०- अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा।।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।।१।।

भा०- कलियुग में महिलायें निर्बल और केश मात्र को आभूषण के रूप में स्वीकारती हैं अर्थात् और कोई आभूषण उनके पास नहीं होता। उनमें बहुत क्षुधा होती है अर्थात् कलियुगी नारियाँ भोगों से तृप्त नहीं होती। वे धन से हीन होकर दु:खी रहती हैं और उनमें बहुत प्रकार से ममता होती है। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्मपरायण नहीं होती। उनमें बुद्धि थोड़ी होती है, उनका स्वभाव कठोर होता है और उनमें कोमलता नहीं होती।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं।।
लघु जीवन संबत पंच दसा। कलपांत न नाश गुमान असा।।२।।

भा०- पुरुष रोग से पीड़ित रहते हैं, कहीं भी सुख-भोग नहीं होता। बिना कारण के उनमें अभिमान और अन्योन्य के प्रति विरोध रहता है। उनका जीवन मात्र पन्द्रह वर्षों का होता है, परन्तु अहंकार इतना होता है कि जैसे कल्पान्त में भी उनका नाश नहीं होगा।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।।
नहिं तोष बिचार न शीतलता। सब जाति कुजाति भए मँगता।।३।।

भा०- कलिकाल ने सभी मनुष्यों को विकल कर दिया है, इसमें कोई बहन या बेटी नहीं देखता है सभी में पुरुष की भोगबुद्धि हो जाती है। न तो किसी में सन्तोष है, न अध्यात्म विचार है और न ही शीतलता है। सभी जाति और कुजाति भिक्षुक हो गये हैं। अथवा, सभी जातियाँ कुत्सित हो गई और सभी भीख माँगनेवाले हो गये हैं। कोई कर्म नहीं करता और सभी अधिकार की भीख माँगते हैं।

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता।।
सब लोग बियोग बिशोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए।।४।।

भा०- ईर्ष्या, कठोर अक्षरोंवाले वाक्य तथा विषयों की लोलुपता सर्वत्र समता से रहित होकर व्याप्त हो रहती है। सभी लोग वियोग और विकृत शोक के द्वारा नष्ट कर दिये गये हैं तथा वर्णाश्रमों के धर्म और आचार नष्ट हो गये हैं।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी।।
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।।५।।

भा०- कलियुग में न इन्द्रियों का दमन रह गया, न दया और न ही किसी को किसी भी विषय का ज्ञान रह गया। सर्वत्र जड़ता और परबन्चनता अर्थात् दूसरों को ठगने की प्रवृति बहुत अधिक हो चुकी है। सभी नारी-नर अपने शरीर के पोषक हो गये जो कि दूसरों की निन्दा करते-करते इस संसार में सर्वत्र फैल रहे हैं। अथवा, जो दूसरों के निन्दक हैं, वे संसार में बगरे अर्थात् फैल रहे हैं।

दो०- सुनु ब्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार।
गुनउँ बहुत कलिजुग कर, बिनु प्रयास निस्तार।।१०२(क)।।

भा०– हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! यह कराल कलिकाल मलों और गुणों का भाण्डागार है, परन्तु कलियुग का गुण भी बहुत है, यहाँ बिना प्रयास के निस्तार हो जाता है।

कृतजुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग।।१०२(ख)।।

भा०– कृतयुग, त्रेता और द्वापर में योग, यज्ञ और पूजा से जो गति प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में भगवान् श्रीराम के श्रीराम नाम से लोग पा लेते हैं।

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।
त्रेता बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं।।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।

भा०– कृतयुग में सभी योगी और चिद्–अचिद् विशिष्ट ब्रह्मज्ञानी होते हैं, वहाँ तो भगवान् का ध्यान करके ही लोग भवसागर से पार हो जाते हैं। त्रेता में लोग अनेक यज्ञ करते हैं और सम्पूर्ण कर्मों को प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में समर्पित करके भवसागर को पार कर लेते हैं। द्वापर में भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों की पूजा करके जीव भवसागर को पार कर लेते हैं और कोई उपाय नहीं है, परन्तु कलियुग में तो केवल श्रीहरि भगवान् श्रीराम की गुणगाथाओं को गाते हुए साधक लोग भवसागर की थाह पा जाते हैं।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं।।
सोइ भव तर कछु संशय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा।।

भा०– कलियुग में न तो योग सम्भव है और न ही यज्ञ और न ही ज्ञान सम्भव है। वहाँ तो एकमात्र भगवान् श्रीराम का गुणगान ही आधार है। जो सम्पूर्ण विश्वासों को छोड़कर एकमात्र भगवान् को भजता है और प्रेम के सहित प्रभु के गुणग्रामों को गाता है, वह भवसागर तर जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है। कलियुग में श्रीरामनाम का प्रताप ही प्रकट है। कलियुग का एक बड़ा ही पवित्र प्रताप है कि, इसमें मन से संकल्पित पुण्य तो हो जाते हैं, परन्तु मन से संकल्प करने पर भी शरीर से किये बिना पाप नहीं होते।

दो०– कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौ नर कर बिश्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास।।१०३ (क)।।

भा०– यदि मनुष्य विश्वास कर ले तो कलियुग के समान कोई युग नहीं है, इसमें निर्मल मन से भगवान् श्रीराम के गुणगण गाकर बिना प्रयास के भवसागर को तर जाता है।

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान।।१०३(ख)।।

भा०– धर्म के चार चरण तप, सत्य, क्षमा, दान प्रसिद्ध हैं। उनमें से कलियुग में एक ही अर्थात् दान प्रधान है, क्योंकि कलियुग में धर्म का दान नामक एक ही चरण रह गया है। जिस किसी विधि से किया हुआ दान भी कलियुग में कल्याण कर देता है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे।।
शुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस।।
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।

भा०- भगवान् श्रीराम की माया से प्रेरित होकर सभी युगधर्म सबके हृदय में न्यूनाधिक मात्रा में निरन्तर रहते है। शुद्ध सत्वगुण, समत्वबुद्धि, विशिष्टज्ञान और मन की प्रसन्नता यही कृतयुग का प्रभाव जानना चाहिये। सत्व की मात्रा बहुत, रजोगुण की मात्रा थोड़ी, कर्मों में प्रेम इस प्रकार त्रेता का धर्म सब प्रकार से सुखमूलक होता है। रजोगुण की मात्रा बहुत, सत्वगुण थोड़ा और तमोगुण भी कुछ, इस प्रकार तीनों गुण से मिला हुआ द्वापर का धर्म, मन में हर्ष और भय दोनों को उत्पन्न करता है। तमोगुण की बहुलता और थोड़ा सा रजोगुण चारों ओर विरोध यही कलियुग का धर्म है। इस प्रकार, जहाँ शुद्ध सत्वगुण, समता, विशिष्ट ज्ञान और मन की प्रसन्नता प्रतीत हो उस समय कृतयुग का प्रभाव जानकर तदनुरूप कार्य करना चाहिये। जब सत्व की बहुलता, रजोगुण की अल्पता, कर्म में प्रेम तथा सब प्रकार से सुख हो उस समय मन में त्रेता समझकर भगवान् का चिन्तन करना चाहिये। जब रजोगुण की बहुलता, सत्वगुण की स्वल्पता और तमोगुण के थोड़े से अंश के साथ मन में हर्ष और भय दोनों हों तब द्वापर का प्रभाव जानकर तदनुरूप कार्य करना चाहिये। जब तमोगुण की बहुलता, रजोगुण की अल्पता और चतुर्दिक् विरोध का वातावरण हो, उस समय केवल श्रीराम नाम का जप करना चाहिये।

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।
काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही।।
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न ब्यापइ माया।।

भा०- विद्वान् लोग युग-धर्म को मन में समझकर अधर्म पर प्रेम छोड़कर धर्म करते हैं। जिसके मन में भगवान् के श्रीचरणों के प्रति अत्यन्त प्रीति होती है, उसे काल-धर्म नहीं प्रभावित करता अर्थात् वह किसी भी युग में रहकर युगातीत रहता है। हे गरुड़ देव जी! नट के द्वारा किये हुए अत्यन्त टेढ़े कपट चरित्र दर्शकों के लिए अत्यन्त भयंकर होते हैं, परन्तु नट के सेवक को उसकी माया नहीं व्याप्ति। उसी प्रकार भगवान् के द्वारा किये हुए, यह संसार भगवत् विमुखों को कठिन लगता है, परन्तु भगवान् के भक्तों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दो०- हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिं।।१०४(क)।।

भा०- भगवान् श्रीराम की माया के द्वारा किये हुए दोष-गुण भगवान् के भजन के बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचार करके सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़कर भगवान् श्रीराम का भजन करना चाहिये।

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेश।
परेउ दुकाल बिपति बश, तब मैं गयउँ बिदेश।।१०४(ख)।।

भा०- हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! उसी कलिकाल में मैं बहुत वर्षों तक श्रीअवध में निवास करता रहा। जब दुष्काल पड़ा तब विपत्ति के वश होकर मैं श्रीअवध को छोड़कर विविध देशों में गया।

विशेष- *"विविधा देशा विदेशा"* यहाँ विदेश शब्द विविध देश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।
गए काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ शंभु सेवकाई।।

भा०– हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! सुनिये, मैं दीन, उदास, दरिद्र और दु:खी होकर, अन्ततोगत्वा विविध देशों के भ्रमण के पश्चात् उज्जैनी गया। वहाँ कुछ समय बीतने के पश्चात् मैंने सम्पत्ति पा ली और फिर उज्जैनी नगर के देवता महाकाल शिव जी की सेवा करने लगा।

बिप्र एक बैदिक शिव पूजा। करइ सदा तेहि काज न दूजा।।
परम साधु परमारथ बिंदक। शंभु उपासक नहिं हरि निंदक।।

भा०– एक ब्राह्मणदेव वैदिक पद्धति से अर्थात् रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों द्वारा नमक–चमक विधि से महाकाल शिव जी की पूजा करते थे। उनके लिए और कोई कार्य नहीं था। वे ब्राह्मणदेव श्रेष्ठ साधु थे और उन्होंने परमार्थतत्त्व को प्राप्त कर लिया था। वे शिव जी के उपासक थे, परन्तु श्रीहरि विष्णु जी के निन्दक भी नहीं थे। वस्तुत: वे ब्राह्मणदेव भगवान् श्रीराम जी की भक्ति में शिवभक्ति को साधन मानते थे।

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयालु अति नीति निकेता।।
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं।।

भा०– उन्हीं शिव जी के उपासक ब्राह्मणदेव की मैं कपट के साथ सेवा करता था। ब्राह्मण देवता बहुत दयालु थे और वे नीति के तो भवन ही थे। हे स्वामी! यद्यपि ब्राह्मण देवता यह जानते थे कि उनका सेवक मैं अन्दर से विनम्र नहीं हूँ, फिर भी मुझे बाहर से नम्र देखकर, पुत्र की ही भाँति ब्राह्मणदेव पढ़ाते थे अर्थात् शिवमहिम्न, शिवताण्डव, पंचाक्षरस्तोत्रम् आदि पौराणिक स्तुतियाँ मुझे शुद्ध उच्चारण के साथ सिखाते और कण्ठस्थ कराते थे।

शंभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। शुभ उपदेश बिबिध बिधि कीन्हा।।
जपउँ मंत्र शिव मंदिर जाई। हृदय दंभ अहमिति अधिकाई।।

भा०– श्रेष्ठ ब्राह्मणदेव ने मुझे "शिवाय नम:" यह पंचाक्षर शिव मंत्र दिया और अनेक प्रकार से मेरे लिए कल्याणप्रद उपदेश किये। मैं हृदय में दम्भ अर्थात् प्रदर्शन की भावना और अहंकार की अधिकता के साथ महाकाल शिव जी के मन्दिर में जाकर "शिवाय नम:" मंत्र जपा करता था।

दो०– मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बश मोह।
हरि जन द्विज देखे जरउँ, करउँ बिष्णु कर द्रोह।।१०५(क)।।

भा०– मैं स्वभाव से खल प्रकृतिवाला और मलों से युक्त बुद्धि वाला, संस्कारों से निम्न जाति में जन्मा हुआ, मोह के वश में हुआ दम्भी शिवभक्त, श्रीवैष्णव ब्राह्मणों को देखकर जल–भुन जाता और भगवान् श्रीराम के अंतरंग अंश सत्वगुणप्रधान चतुर्भुज भगवान् विष्णु का द्रोह किया करता था तथा साथ ही विष्णुपद के मुख्य वाच्य सर्वव्यापक साकेताधिपति भगवान् श्रीराम का भी द्रोह करता था, क्योंकि मुझे रामाभिधान श्रीहरि के जन अर्थात् सेवक ब्राह्मण नहीं भाते थे।

सो०– गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहिं नीति कि भावई।।१०५(ख)।।

भा०– गुरुदेव मुझे निरन्तर समझाते थे। वे मेरा आचरण देखकर दु:खी रहते थे। उनके वचन सुनकर मुझे अत्यन्त क्रोध होता था। क्या दंभी अर्थात् ढोंगी को कभी नीति भाती है?

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई।।
शिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।

रामहिं भजहिं तात शिव धाता। नर पामर कै केतिक बाता।।
जासु चरन अज शिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी।।

भा०– एक बार गुरुदेव ने मुझे अपने पास बुला लिया और मुझे बहुत प्रकार से नीति अर्थात् धर्मानुकूल मार्ग पर चलने की पद्धति सिखाई और बोले, हे बेटे! शिव जी की सेवा का वही फल है, जिससे भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में अविरल भक्ति हो जाये अर्थात् तुम्हारे मन में भगवान् श्रीराम की अविरल भक्ति नहीं आ रही है। इसी से यह प्रतीत होता है कि तुम महाकाल भगवान् की प्रेमपूर्वक सेवा नहीं कर रहे हो। हे वत्स! महाकाल शिव जी विष्णु जी एवं ब्रह्मा जी भी भगवान् श्रीराम का भजन करते हैं, तो उनकी अपेक्षा निकृष्ट मनुष्य की कितनी बात? अरे अभागी! जिन प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों में ब्रह्मा जी और महाकाल शिव जी भी अनुराग करते हैं, उन्हीं प्रभु श्रीराम का द्रोह करके तू सुख चाहता है, यह कैसे सम्भव है?

हर कहँ हरि सेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।।
अधम जाति मैं बिद्या पाए। भयउँ जथा अहि दूध पियाए।।
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरु कर द्रोह करउँ दिन राती।।
अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।।

भा०– हे गरुड़ देव जी! मेरे गुरुदेव ने महाकाल शिव जी को श्रीहरि भगवान् श्रीराम का सेवक कहा, यह सुनकर मेरा हृदय क्रोध से अत्यन्त जल गया। संस्कारहीन निकृष्ट जाति में जन्मा हुआ, मैं गुरुदेव से पंचाक्षरी मंत्र और पौराणिक स्तोत्रों की शुद्ध पाठ की विद्या पाकर दूध पिलाये हुए सर्प की भाँति पूर्व की अपेक्षा और भी क्रुद्ध हो गया। अहंकार से युक्त, कुटिल हृदयवाला, भाग्यहीन तथा कुत्सित कर्म करने वाले परिवार में जन्मा हुआ मैं, अपने गुरुदेव का दिन–रात द्रोह करने लगा। मेरे गुरुदेव बहुत ही दयालु थे, उन्हें थोड़ा भी क्रोध नहीं था। विद्रोह करने पर भी गुरुदेव मुझे बारम्बार सुन्दर ज्ञान के सिद्धान्त सिखाते थे।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा।।
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई।।
रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई।।
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटनि परई।।

भा०– नीच प्रकृति का व्यक्ति जिससे बड़प्पन पाता है, वह बड़ा होकर सर्वप्रथम उसी बड़ाई देनेवाले को मार कर नष्ट कर देता है। हे भैया गरुड़ जी! सुनिये, धुँआ अग्नि से ही उत्पन्न होता है और वही स्वयं बादल की पदवी पाकर, अर्थात् जल, अग्नि और वायु की सहायता से मेघ बनकर पहले अपने जन्मदाता अग्नि को ही बुझा देता है। इसी प्रकार धूल मार्ग में पड़ी हुई निरादर के साथ रहती है। निरन्तर सभी के चरणों का प्रहार सहती है। वायु उसे उड़ाकर ऊपर ले जाता है, अर्थात् लोगों के प्रहार से बचाना चाहता है, तो प्रथम वह धूलि अपने ऊपर ले जानेवाले वायु को ही भर देती है, अर्थात् दूषित और मलीन बना देती है, फिर राजाओं के भी नेत्रों और मुकुटों पर पड़ जाती है।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा।।
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती।।
उदासीन नित रहिय गोसाईं। खल परिहरिय श्वान की नाईं।।

भा०– हे पक्षीराज गरुड़ जी! इस प्रकार का दुष्टजनों का स्वाभाविक रहस्य समझकर पण्डित लोग खलों का संग नहीं करते। मनीषी और वेदज्ञजन इस प्रकार की नीति गाते हैं कि खल के साथ न तो कलह अर्थात् झगड़ा अच्छा

है और न ही उनके साथ बहुत प्रेम करना उचित है अर्थात् दुष्टों के साथ वैर और प्रेम दोनों में ही हानि है। हे गोसाईं अर्थात् हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ देव जी! दुष्टों से उदासीन अर्थात् तटस्थ रहना श्रेष्ठ है। खल प्रकृति के व्यक्ति को कुत्ते की भाँति छोड़ देना चाहिये, जैसे कुत्ता वैर करने पर काट खाकर मरणान्तक कष्ट देता है और प्रेम करने पर शरीर को चाट कर उसे दूषित कर देता है, उसी प्रकार खल भी वैर करने पर शरीर की क्षति करता है और प्रेम करने पर अपने दूषित सम्पर्क से भगवद्विमुख कर देता है।

मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरु हित कहइ न मोहि सोहाई।।

भा०- मैं प्रकृति से खल था, मेरे हृदय में कपट और कुटिलता थी, इसलिए गुरुदेव तो हित की बात कहते थे, पर वह मुझे नहीं भाती थी।

दो०- एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ शिव नाम।
गुरु आयउ अभिमान ते, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।१०६(क)।।

भा०- एक बार श्रीहर अर्थात् जगत् के संहारक महाकाल के मन्दिर में बैठकर मैं शिव जी का नाम मंत्र "शिवाय नमः" का जप कर रहा था, इसी बीच गुरुदेव महाकाल मन्दिर में आये और मैंने अभिमान के कारण अपने आसन से उठकर गुरुदेव को प्रणाम नहीं किया।

सो दयालु नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेश।
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सके महेश।।१०६(ख)।।

भा०- वे मेरे गुरुदेव अत्यन्त दयालु थे, उनके हृदय में क्रोध का लवलेश भी नहीं था, अर्थात् थोड़ा अंश भी नहीं था, उन्होंने मुझे कुछ भी नहीं कहा, परन्तु गुरु के अपमान रूप बहुत-बड़े पाप को महेश्वर महाकाल शिव जी भी नहीं सह सके।

मंदिर माझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुरु के नहिं क्रोधा। अति कृपालु चित सम्यक बोधा।।
तदपि श्राप शठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही।।
जौ नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।

भा०- महाकाल मन्दिर के बीच में ही अर्थात् महाकाल ज्योतिर्लिंग के पिण्डि से ही आकाशवाणी हुई। अरे हत्भाग्य! अग्य, अभिमानी अर्थात् बने हुए भाग्य को तुमने अपने हाथों से नष्ट कर दिया। तू भगवत्रहस्य नहीं जानता और तू अहंकार से युक्त है, इस कारण तुमने तीन पाप किये हैं। श्रीराम का द्रोह करके भाग्य को नष्ट किया, गुरुदेव की बात न सुनकर स्वयं को अज्ञानी बना लिया और उनकी आज्ञा की अवहेलना की तथा अहंकार के कारण समीप आये हुए गुरुदेव को उठकर प्रणाम नहीं किया। यद्यपि तुम्हारे गुरुदेव के मन में क्रोध नहीं है, क्योंकि वे अत्यन्त दयालु हैं और उनके चित्त में महाकाल भूतभावन शिव जी और भगवान् श्रीराम के मध्य सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान है। अतः वे तुझे दण्ड नहीं देंगे, परन्तु अरे दुष्ट! मैं तुझे श्राप दूँगा, क्योंकि मुझे नीति का विरोध नहीं भाता। अरे खल! यदि मैं तेरे लिए दण्ड का विधान नहीं करूँगा तब तो मेरा वेदसम्मत मार्ग ही भ्रष्ट हो जायेगा। अथवा, मेरा वैदिक मार्ग तेरे प्रति की हुई क्षमा से उत्पन्न पापाग्नि में जल-भुन जायेगा।

विशेष-भ्रष्ट शब्द "**भ्रंशु अवश्रंशने**" (पा०धा०पा० ७५६) तथा "**भ्रश्ज पाके**" (पा०धा०पा० १२८४) धातुओं से क्त प्रत्यय से निष्पन्न होता है। "भ्रंशते इति भ्रष्टः", "अभृज्यत् इति भ्रष्टः" प्रधम धातु के आधार पर जो ऊपर से गिर जाता है उसे भ्रष्ट कहते हैं और द्वितीय धातु के अर्थानुरोध से जले-भुने को भ्रष्ट कहते हैं। शिवजी यहाँ भ्रष्ट शब्द का उच्चारण करके दोनों अर्थों के अनुसार अपना अभिप्राय प्रकट कर रहे हैं कि यदि गुरुदेव का अपमान

करने वाले शूद्र साधक को दण्ड नहीं देता हूँ तो मेरा वैदिक मार्ग ही भ्रष्ट अर्थात् गिर जायेगा, मर्यादा से च्युत होकर लक्ष्यहीन हो जायेगा तथा भ्रष्ट यानी इस भयंकर पापाग्नि में जल–भुन कर नष्ट हो जायेगा।

जे शठ गुरु सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं शरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।

भा०– जो दुष्ट लोग अपने गुरुदेव से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं और उसके पश्चात् पशु–पक्षियों के योनि में वे शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मपर्यन्त बहुत पीड़ा पाते हैं।

बैठ रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।
महा बिटप कोटर महँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।।

भा०– अरे पापी, खल, मलों से व्याप्त बुद्धिवाला, दुष्ट साधक! तू अजगर की भाँति बैठा रहा, अतएव जा अधम से अधम सर्प बनकर अधोगति प्राप्त करके महान अर्थात् बहुत पुराने जीर्ण–शीर्ण वृक्षों की कोटरों अर्थात् जीर्णता के कारण बने हुए छिद्रों में जाकर रह।

दो०– हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि शिव श्राप।
कंपित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप।।१०७(क)।।

भा०– शिव जी का भयंकर श्राप सुनकर गुरुदेव ने हाहाकार किया अर्थात् हा!हा! इस प्रकार कहा। मुझे काँपता हुआ देखकर, उनके मन में अत्यन्त ताप अर्थात् दुःख उत्पन्न हुआ, जिससे उनके हृदय में जलन होने लगी।

करि दंडवत सप्रेम द्विज, शिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद गिरा, समुझि घोर गति मोरि।।१०७(ख)।।

भा०– मेरी घोरगति समझकर प्रेमपूर्वक दण्डवत् करके महाकाल शिव जी के सन्मुख हाथ जोड़कर ब्राह्मणश्रेष्ठ गुरुदेव गदगद वाणी में मुझे सर्पयोनि से छुड़ाने के लिए आठ भुजंग प्रयात् छन्दों में स्तुति करने लगे।

छं०– नमामीशमीशान निर्वाणरूपम्। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्।।

भा०– हे ईश्वर! हे ईशान अर्थात् सबके शासक महाकाल! मैं मोक्षरूप, परमसमर्थ, व्यापक, वेदस्वरूप अथवा वेद में जिनका स्वरूप वर्णित है, ऐसे वेदान्तवेद्यब्रह्म आपश्री को नमन करता हूँ। मैं, निज, अर्थात् अपने आत्मीय, सत्व, रजस और तमस, इन तीनों गुणों से रहित, सभी विकल्पों से शून्य तथा निर्विकल्प समाधि में रहने वाले, निरीह, अर्थात् सभी चेष्टाओं से रहित, निश्चेष्ट होकर भगवान् श्रीराम का ध्यान करने वाले, चेतन और आकाशस्वरूप, अथवा चेतनशक्ति के कारण आकाशवत् निर्लिप्त अथवा अपनी चेतना से सर्वत्र प्रकाशमान एवं आकाशरूप परब्रह्म श्रीराम को अपने हृदय में बसाने वाले, ऐसे आपश्री महाकाल को मैं भजता हूँ।

विशेष– "**आकाशस्तल्लिंगात्**", (ब्र० सू० १.१.२४). "**आकाशं वासयति इति आकाशवासः तं आकाशवासं**" **:** सूत्र के अनुसार परब्रह्म श्रीराम को ही आकाश कहा गया है और उन आकाशस्वरूप श्रीराम को शिव जी ने अपने हृदय में बसाया है। यथा– "**हर उर सर सरोज पद जेई।**" (मानस, ५.४२.८) "**ए दोउ बंधु शंभु उर बासी**" (मानस, १.२४६.४) इसलिए शिव जी को आकाशवास कहा गया है।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयम्। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशम्।।
करालं महाकाल कालं कृपालम्। गुणागार संसारपारं नतोऽहम्।।

भा०– सांसारिक आकारों से रहित और शिवलिंग के रूप में सभी विकारों के आकारों को निरस्त करने वाले ओंकार के आश्रय अथवा, ओंकार के वाच्य श्रीराम को आश्रय बनानेवाले अथवा ओंकार के भी कारण श्रीरामनाम को अपना जप मंत्र माननेवाले, ऐसे निरन्तर तुरीय अवस्था में रहने वाले अथवा तुरीय श्रीराम भगवान् के चतुर्थ यानी ज्ञानीभक्त, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से अतीत, ऐसे "इ" अर्थात् काम की "ई" अर्थात् सौन्दर्य लक्ष्मी को "श" अर्थात् नष्ट करने वाले, तात्पर्यतः कामदेव की भी शोभा को भस्मसात् करने वाले, कैलाशपर्वत पर शयन करने वाले और उसके ईश्वर, अत्यन्त कराल अर्थात् भयंकर महाकाल के भी काल, परम कृपालु, गुणों के भवन, संसार सागर से पार हुए तथा भक्तों को संसार सागर से पार ले जानेवाले, ऐसे शिव जी को मैं नमन करता हूँ।

विशेष– "अकारः वासुदेवः तस्यापत्यम् पुमान् इः कामः तस्य ईः लक्ष्मीः ताम् श्यति नाशयति इति ईशः तम् ईशम्।।"

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरम्। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरम्।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।
चलत्कुंडलं भ्रू त्रिनेत्रं विशालम्। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालम्।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालम्। प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि।।

भा०– तुषाराद्रि अर्थात् बर्फ के पर्वत हिमालय के समान गौरवर्णवाले, अत्यन्त गम्भीर, करोड़ों कामदेव की प्रभाव शोभा से युक्त शरीरवाले, भगवान् शिव जी को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके मस्तक पर उत्तम तरंगों से खेलती हुई, लहराती हुई सुन्दर गंगा जी विराजमान हैं, जिनके भाल पर बालेन्दु अर्थात् शुक्लपक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा विराजमान हैं, जिनके कण्ठ में भुजंगराज शेष जी विराजते हैं, ऐसे हिलते हुए कुण्डलोंवाले, सुन्दर भृकुटि से सुशोभित, विशाल, सूर्य, चन्द्र, अग्नि रूप तीन नेत्रोंवाले, प्रसन्न मुखवाले, नीलकण्ठ, परमदयालु, मृगाधीश अर्थात् व्याघ्र का चर्म ही जिनका वस्त्र है, ऐसे मुण्डों की माला धारण किये हुए परम प्रेमास्पद, सभी के नाथ भगवान् श्रीशङ्कर को मैं भजता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम्। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशम्।।
त्रयःशूल निर्मूलनं शूलपाणिम्। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम्।।

भा०– प्रकृष्ट क्रोधवाले, सबसे श्रेष्ठ शास्त्रों में प्रगल्भ अर्थात् अद्भुत प्रतिभावाले, सभी से परे तथा सबके शासक अथवा परब्रह्म श्रीराम को ही ईश्वर माननेवाले, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःखों को नष्ट करने वाले, हाथ में त्रिशूल लिए हुए, भावना से प्राप्त होनेवाले, ऐसे भवानी जी के पति भगवान् शिव जी को मैं अपने आनन्द के लिए भजता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।।
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।

भा०– सभी कलाओं से अतीत, भक्तों का कल्याण करने वाले तथा स्थूल प्रपंच के कल्प का अन्त करने वाले, सज्जन अर्थात् सत्वरूप श्रीराम के जन याने सेवक श्रीरामभक्तों को आनन्द देनेवाले, चिदानन्द के सन्दोह अर्थात् धारा प्रवाह स्वरूप, मोह का अपहरण करने वाले, ऐसे कामदेव के शत्रु समर्थ शिव जी आप सदैव प्रसन्न रहें... आप सदैव प्रसन्न रहें।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दम्। भजंतीह लोके परे वा नराणाम।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशम्। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्।।

भा०– जब तक प्राणी उमा अर्थात् श्रीपार्वती के पति भूतभावन शिव जी के श्रीचरणकमलों की सेवा नहीं करते हैं, तब तक इस लोक और परलोक में भी जीवों को न तो सुख मिलता है, न शान्ति होती है और न ही उनके सन्तापों का नाश होता है। हे प्रभु! आप प्रसन्न हो जाइये। सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में आत्मतत्त्व के रूप से निवास करने वाले आपको मैं नमन करता हूँ।

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यम्।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानम्। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।

भा०– हे प्रभु, सर्वसमर्थ ईश्वर महाकाल! मैं योग, जप नहीं जानता हूँ और पूजा भी नहीं जानता हूँ, मैं आपको अनुकूल करने के लिए सब कुछ प्रदान कर देनेवाली, पार्वती जी और शिव जी इन दोनों समाहित तत्वों को सदैव नमन करता हूँ। हे कल्याणकारी शिव जी! जरा अर्थात् बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु के दुःख तथा अन्य दुःखों के समूह द्वारा बार–बार तप्त किये जा रहे आपकी शरण में आये हुए मुझ साधक को बचा लीजिये अर्थात् मेरी रक्षा कीजिये।

श्लोक– रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति।।९।।

भा०– इस प्रकार महाकाल भूतभावन शिव जी की सन्तुष्टि के लिए मुझ ब्राह्मण द्वारा प्रकृष्टता के साथ कहा हुआ यह रुद्राष्टक जो प्राणी भक्ति के साथ पढ़ते हैं, उन पर शिव जी प्रसन्न होंगे।

दो०– सुनि बिनती सर्बग्य शिव, देखि बिप्र अनुराग।
पुनि मंदिर नभबानि भइ, अब द्विजबर बर माँगु।।१०८(क)।।

भा०– ब्राह्मणदेव की विनती सुनकर और ब्राह्मण का अपने ऊपर अनुराग देखकर, फिर सर्वज्ञाता शिव जी द्वारा महाकाल मन्दिर के ही बीच आकाशवाणी हुई, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अब वरदान माँगो।

जौ प्रसन्न प्रभु मो पर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर बर देहु।।१०८(ख)।।

भा०– (ब्राह्मणदेव बोले–) हे नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और आपश्री का मुझ दीन पर स्नेह है तो प्रथम अपने श्रीचरणों की भक्ति दीजिये, फिर मुझे दूसरा वरदान दीजिये।

तव माया बश जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिंधु भगवान।।१०८(ग)।।

भा०– हे प्रभु! आपके माया के वश में होकर यह जड़ बुद्धिवाला जीव अपने स्वरूप को निरन्तर भूला हुआ भटकता है। हे कृपा के सागर भगवान् सर्वसमर्थ प्रभु! उस पर क्रोध मत कीजिये अर्थात् आपको उस पर क्रोध नहीं करना चाहिये।

शङ्कर दीनदयाल अब, एहि पर होहु कृपाल।
श्राप अनुग्रह होइ जेहिं, नाथ थोरेहीं काल।।१०८(घ)।।

भा०– हे दीनदयाल! हे कल्याण करने वाले शिव जी! अब मेरे इस शिष्य पर कृपालु हो जाइये, जिससे हे नाथ! थोड़े ही समय में इसके श्राप का अनुग्रह हो जाये।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी।।

भा०– हे कृपा के कोश शिव जी! जिससे इस आचरणहीन जीव का परम कल्याण हो जाये अब आप वही कीजिये। इस प्रकार परोपकार से सनी हुई ब्राह्मणदेव की वाणी सुनकर, "एवमस्तु" अर्थात् ऐसा ही हो इस प्रकार से फिर आकाशवाणी हुई। शिव जी बोले–

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह कोप करि श्रापा।।
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिशेषी।।

भा०– यद्यपि इसने बहुत–बड़ा भयंकर पाप किया है, फिर मैंने क्रोध करके इसे श्राप दिया, फिर भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इस अपराधी पर विशेष कृपा करूँगा।

छमाशील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी।।
मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवश्य यह पाइहि।।

भा०– जो ब्राह्मण क्षमाशील और दूसरों का उपकार करनेवाला होता है, वह ब्राह्मण मुझे खर राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम के समान ही प्रिय होता है। हे ब्राह्मणदेव! मेरा श्राप व्यर्थ नहीं जायेगा, यह अपराधी अवश्य ही एक सहस्र जन्म पायेगा।

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई।।
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि शूद्र मम बचन प्रमाना।।

भा०– जन्म लेने और मरने में जो असहनीय दुःख होता है, वह इसे थोड़ा भी नहीं व्याप्त होगा अर्थात् भले ही इसे एक सहस्र जन्म मिलेंगे, परन्तु इसे जन्म–मरण का तनिक भी क्लेश नहीं होगा और किसी भी जन्म में इस का ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र अर्थात् शोक से असन्तुलित आचरणहीन साधक! अब मेरे प्रामाणिक वचन सुन अर्थात् मेरा यह वाक्य प्रमाणरूप है।

रघुपति पुरी जन्म तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ।।
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। राम भगति उपजिहि उर तोरे।।

भा०– रघुपति भगवान् श्रीराम की श्रीअयोध्यापुरी में तेरा जन्म हुआ फिर तूने मेरी सेवा में अपना मन लगा दिया, इसलिए श्रीअवधपुरी में जन्म लेने के कारण उस भगवत् पुरी के प्रभाव से और मेरी कृपा से तेरे हृदय में श्रीराम की भक्ति उत्पन्न हो जायेगी।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई।।
अब जनि करेहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना।।

भा०– हे भाई! अब मेरे सत्य वचन सुन, ब्राह्मण सेवा ही हरितोषण व्रत है। ब्राह्मण की सेवा से ही श्रीहरि भगवान् श्रीराम सन्तुष्ट होते हैं। जिसने प्रभु को सन्तुष्ट करने का व्रत लिया हो, उसे ब्राह्मण सेवा करनी ही होगी। अब कभी ब्राह्मणों का अपमान मत करना और सन्तों को भगवान् के समान जानना।

इंद्र कुलिश मम शूल बिशाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।।

भा०– इन्द्र का वज्र, मेरा विशाल त्रिशूल, काल का दण्ड और भगवान् श्रीनारायण का चक्र, यह चारों अत्यन्त भयंकर हैं। इन चारों के मारने से भी जो नहीं मरता वह भी ब्राह्मण के द्रोहरूप अग्नि में जल जाता है, जैसे रावण का वंश।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
औरउ एक आशिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।।

भा०– इस प्रकार का विवेक मन में रखना, तुम्हारे लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा और भी मेरी एक आशीषा (आशीर्वाद) है, तुम्हारी गति अप्रतिहत होगी अर्थात् कहीं भी नहीं रूकेगी, तुम ब्रह्मा जी की सृष्टि में कहीं भी जा सकोगे।

दो०– सुनि शिव बचन हरषि गुरु, एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह, शंभु चरन उर राखि।।१०९(क)।।

भा०– शिव जी का वचन सुनकर प्रसन्न होकर "एवमस्तु" ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर, हृदय में शिव जी के श्रीचरणों को विराजमान कराकर और मुझे ज्ञान देकर गुरुदेव अपने घर पधार गये।

प्रेरित काल बिन्ध्य गिरि, जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गए कछु काल।।१०९(ख)।।

भा०– काल की प्रेरणा से प्रेरित होकर मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ, फिर कुछ काल बीतने के पश्चात् मैंने प्रयास के बिना ही वह सर्प शरीर छोड़ दिया।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरियान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान।।१०९(ग)।।

भा०– हे भगवान् श्रीनारायण के वाहन गरुड़ जी! मैं जो भी शरीर धारण करता फिर उसे अनायास ही उसी प्रकार छोड़ देता था, जैसे मनुष्य नये वस्त्र को धारण करता है और पुराना होने पर उसे छोड़ देता है।

शिव राखी श्रुति नीति अरु, मैं नहिं पाव कलेश।
एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु, ग्यान न गयउ खगेश।।१०९(घ)।।

भा०– शिव जी ने वैदिक मर्यादा की रक्षा की और मैंने भी क्लेश नहीं पाया, दोनों का काम बन गया। हे गरुड़ जी! इस प्रकार से मैंने अनेक शरीर धारण किया, पर मेरा ज्ञान नहीं गया और सर्प योनि के मेरे एक सहस्र जन्म पूरे हो गये। अब उन्होंने अर्थात् शिव जी ने जो पशु–पक्षी योनि में दस सहस्र जन्म लेने की बात कही थी वहाँ भी मेरे लिए आनन्द ही रहा।

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरउँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरउँ।।
एक शूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल शील सुभाऊ।।

भा०– पशु–पक्षी, देवता और मनुष्य, इन तीनों प्रकार के योनियों में, मैं जो भी शरीर धारण करता था, वहाँ–वहाँ अर्थात् उस–उस योनि में मैं, श्रीराम भजन अनुकूलतापूर्वक करता रहा अर्थात् श्रीराम भजन मुझसे कभी नहीं छूटा, परन्तु एक ही शूल अर्थात् दु:ख मेरे मन में सदैव बना रहा। मुझे गुरुदेव का कोमल शील और स्वभाव कभी

नहीं भूलता अर्थात् गुरुदेव के स्वभाव का स्मरण करके और अपने द्वारा किये हुए गुरुदेव के अपमान का स्मरण करके मैं दु:खी होता रहा।

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।।
खेलउँ तहउँ बालकनि मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला।।

भा०– मैंने पुराणों और श्रुतियों द्वारा गायी हुई देवदुर्लभ अन्तिम जन्म के रूप में ब्राह्मण शरीर पाया। वहाँ भी मैं बालकों से मिलकर जब खेलता था, तब खेल में भी सभी श्रीरामजी की लीलायें ही करता था।

प्रौढ़ भए मोहि पिता पढ़ावा। समुझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा।।
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।
कहु खगेश अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी।।

भा०– मेरे प्रौढ़ होने पर मेरे पिता जी मुझे पढ़ाते थे। मैं समझता भी था, सुनता भी था, विचार भी करता था, पर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सारी वासनायें भाग गई थीं, केवल मेरी लय अर्थात् चित्तवृत्तियाँ श्रीराम के श्रीचरणों में लग गई थीं। हे पक्षीराज! बताइये, ऐसा कौन भाग्यहीन होगा जो कामधेनु को छोड़कर गधी की सेवा करेगा?

प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।।
भए कालबश जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता।।

भा०– प्रेम में मग्न होने के कारण मुझ भुशुण्डि को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। पिताश्री मुझे पढ़ा-पढ़ाकर हार गये, फिर तो मूर्ख होने के कारण वैवाहिक कार्य भी सम्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि उन दिनों मूर्ख ब्राह्मण को कन्या नहीं दी जाती थी। जब मेरे पिता-माता कालवश हो गये अर्थात् मर गये, तब मैं अपना घर छोड़कर भक्तों के रक्षक भगवान् श्रीराम का भजन करने के लिए वन में चला गया।

विशेष– लगभग उन्नीसवीं शती तक ब्राह्मण परिवारों में यह परम्परा थी कि मूर्ख ब्राह्मण बालक अविवाहित ही रहता था। जैसे कि यह श्लोक प्रचलित था–

अचीकमत् यो न जानाति नैव जानात्यवर्वरी:।
अजर्घा: यो न जानाति तस्मै कन्या न दीयताम्।।

अर्थात् वृद्धजन अपने बेटों को कहते थे कि, जो ब्राह्मण कुमार "अचीकमत्" शब्द की सिद्धि नहीं जानता, पुनः जो अवर्वरी: शब्द को साधना नहीं जानता, पुनः जिसे "अजर्घा:" शब्द का साधना ज्ञान नहीं है, उस मूर्ख ब्राह्मण को कन्या मत दो।

जहँ जहँ बिपिन मुनीश्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिर नावउँ।।
बूझउँ तिनहिं राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा।।
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति शंभु प्रसादा।।

भा०– हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! वन में मैं जहाँ-जहाँ श्रेष्ठ मुनियों को जान पाता था, वहाँ-वहाँ आश्रमों में जा-जाकर उन्हें मस्तक नवाता था और उनसे भगवान् श्रीराम की गुणगाथायें पूछता था। वे कहते थे और मैं हर्षित होकर सुना करता था, इस प्रकार शिव जी के प्रसाद से मैं अब्याहत गति होने के कारण अर्थात् गति के न रुकने के कारण बिना रोक-टोक के सर्वत्र जा-जाकर भगवान् श्रीराम के गुणानुवाद सुनता फिरता था।

छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।।
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं।।

भा०– मेरे मन से पुत्र, धन और सम्मान, तीनों प्रकार की दृढ़ ईषनायें (इच्छायें) छूट गईं। हृदय में एक ही लालसा अत्यन्त बढ़ी, मैं सोचा करता था कि जब मैं श्रीराम के श्रीचरणकमलों के दर्शन करूँगा तभी अपना जन्म सफल समझूँगा।

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईश्वर सर्ब भूतमय अहई।।
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई।।

भा०– मैं जिससे पूछता वही मुनि इस प्रकार कहते थे कि, ईश्वर सर्वभूतमय हैं अर्थात् सारा संसार ब्रह्मरूप है। मुझे निर्गुण मत नहीं अच्छा लगता था, मेरे हृदय में सगुणब्रह्म के प्रति अधिक प्रेम था।

दो०– गुरु के बचन सुरति करि, राम चरन मन लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ, छन छन नव अनुराग।।११०(क)।।

भा०– सर्वप्रथम उस उज्जैनीपुरी के गुरुदेव का वह वचन कि, शिव जी की सेवा का फल श्रीरामभक्ति है, भगवान् श्रीराम, शिव जी और ब्रह्मा जी के भी भजनीय हैं, श्रीराम विमुख को सुख नहीं मिलता, बार–बार स्मरण करके मेरा मन श्रीराम के श्रीचरणों में लग गया। मैं रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम के यशों को गाता फिरता था। मेरे मन में श्रीराम विषयक अनुराग क्षण–क्षण नया हो रहा था।

मेरु शिखर बट छाया, मुनि लोमश आसीन।
देखि चरन सिर नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन।।११०(ख)।।

भा०– सुमेरू पर्वत के शिखर पर वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए लोमश मुनि को देखकर, मैंने उनके चरणों में मस्तक नवाया और बहुत दैन्यपूर्ण वचन कहे।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए, द्विज आयहु केहि काज।।११०(ग)।।

भा०– हे पक्षीराज गरुड़ जी! मेरे कोमल और विनम्र वचन सुनकर, कृपालु मुनि लोमश जी मुझसे आदरपूर्वक पूछने लगे, कहो ब्राह्मण् किस कार्य से यहाँ आये हो?

तब मैं कहा कृपानिधि, तुम सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन, मोहिं कहहु भगवान।।११०(घ)।।

भा०– तब मैंने कहा, हे भगवन्! आप कृपा के सागर, सब कुछ जाननेवाले और चतुर हैं, इसलिए मुझे सगुणब्रह्म की आराधना समझाकर कहिये।

तब मुनीश रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा।।

भा०– तब हे गरुड़ देव जी! मुनिश्रेष्ठ लोमश जी ने आदरपूर्वक भगवान् श्रीराम की कुछ गुणगाथायें कहीं।

ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी।।
लागे करन ब्रह्म उपदेशा। अज अद्वैत अगुन हृदयेशा।।
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।।

मन गोतीत अमल अबिनाशी। निर्बिकार निरवधि सुख राशी।।
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा।।

भा०– ब्रह्मज्ञान में निरत, विकृति के ज्ञानवाले, मुनि लोमश मुझे ब्राह्मण शरीरावच्छिन्न, ब्रह्मज्ञान का परम अधिकारी जानकर, निर्गुणब्रह्म का उपदेश करने लगे और बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्म अजन्मा है, वह अद्वैत अर्थात् माता–पिता के सम्पर्क से यहाँ नहीं आया है, वह अगुण अर्थात् सभी धर्मों से रहित और हेय गुणों से भी रहित है तथा वह सबके हृदय का ईश्वर है। वह सभी कलाओं से रहित, सभी चेष्टाओं से रहित संसार के नामों से दूर और प्राकृतरूप से भी रहित है। वह अनुभवगम्य, खण्डरहित और उपमारहित है। वह ब्रह्म मन और इन्द्रियों से परे निर्मल, नाशरहित, विकाररहित और असीम सुखों की राशि है, वह ब्रह्म तुम्हीं हो, उसमें तथा तुममें जल और तरंग की भाँति कोई भेद नहीं है, इस प्रकार से वेद गाते हैं।

विशेष– **"द्वाभ्यां माता पितृभ्यां इतं संसारे प्राप्तं द्वीतं तदेव द्वैतं न द्वैतं अद्वैतं।"** तात्पर्यतः ब्रह्म द्वैतमूलक संसार से विलक्षण है और उपनिषद प्रसिद्ध अद्वैत शब्द स्वार्थ अण् प्रययान्त होकर संज्ञा वाचक है अर्थात् ब्रह्म का ही पर्यायवाची है। इसे भाववाचक कैसे समझा गया यह तो वेदान्त सम्प्रदायों के भाष्यकार पूर्वाचार्य लोग ही जानें। उपनिषद ने तो अद्वैत शब्द ब्रह्म का पर्यायवाची संज्ञा शब्द ही माना है न कि भाववाचक।

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा।।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद शीशा। सगुन उपासन कहहु मुनीशा।।

भा०– लोमश मुनि जी ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं आया, फिर मैंने मुनि के चरणों में मस्तक नवाकर कहा, हे मुनिश्रेष्ठ लोमश जी! अब सगुण उपासना कहिये।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीश प्रबीना।।
सोइ उपदेश कहहु करि दाया। निज नयननि देखौं रघुराया।।

भा०– हे श्रेष्ठ मुनियों में चतुर लोमश जी! मेरा मनरूप मछली श्रीरामभक्तिरूप जल से कैसे अलग किया जा सकता है? हे मुनीश्वर! आप दया करके वही उपदेश समझाकर कहिये, जिससे मैं रघुकुल के राजा और रघु के वाच्यार्थ जीवों के सर्वस्व, अर्थात् सगुण साकार, अतीसी (अलसी), कुसुम, सुकुमार कौसल्याकुमार श्रीराम के दर्शन कर सकूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेशा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेशा।।
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा।।

भा०– मैं अयोध्यापति भगवान् श्रीराम को आँख भर निहारकर, फिर आपके मुख से निर्गुणब्रह्म का उपदेश सुनूँगा। फिर लोमश मुनि ने भगवान् श्रीराम की अनुपम कथा कहकर, सगुण पक्ष का खण्डन करके निर्गुण मत का निरूपण किया।

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।।
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा।।

भा०– तब मैं भी निर्गुण मत को दूर करके अर्थात् उसका खण्डन करके, बहुत हठ करके सगुण पक्ष का निरूपण करने लगा। जब मैंने लोमश जी के उत्तरों का प्रतिकूल उत्तर प्रस्तुत किया, तब मुनि के शरीर में क्रोध के चिन्ह प्रकट हो गये।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या कियहूँ। उपज क्रोध ग्यानिन के हियहू।।
अति संघरषन जौ कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।।

भा०– हे गरुड़ देव जी ! सुनिये, बहुत अवज्ञा अर्थात् वाक्यों की अवहेलना करने पर ज्ञानियों के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई बहुत संघर्षण करे अर्थात् रगड़े तो चन्दन से भी अग्नि प्रकट हो जाता है।

दो०– बारंबार सकोप मुनि, करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठि तब, करउँ बिबिध अनुमान।।१११(क)।।

भा०– बार–बार महर्षि क्रोध करके ज्ञान का निरूपण कर रहे थे। इधर मैं बैठा हुआ, अपने मन में अनेक अनुमान कर रहा था।

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबश परिछिन्न जड़, जीव कि ईश समान।।१११(ख)।।

भा०– अरे ! लोमश जी अद्वैतवाद का निरूपण कर रहे हैं, जबकि इनमें स्वयं द्वैत भरा हुआ है, क्योंकि द्वैत बुद्धि के बिना क्रोध हो ही नहीं सकता। क्या द्वैत बिना अज्ञान के हो सकता है? अर्थात् यह माया के वश में हुआ तीनों शरीरों से परिछिन्न जड़जीव ईश्वर के समान हो ही नहीं सकता। जब जीव ईश्वर के समान भी नहीं हो सकता तो फिर महर्षि जी ने किस आधार पर **"सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा।"** (मानस, ७.१११.६.) में अद्वैतवाद प्रतिपादित किया? किस वेद में किंबा, चारों वेद के किस मंत्र में अद्वैत का समर्थन किया गया है? यदि लोमश जी सब कुछ ब्रह्ममय मानते हैं तो फिर मेरे द्वारा किये हुए निर्गुण मत के खण्डन से डरे क्यों? उन्हें ज्ञान–निरूपण के समय क्यों क्रोध आया? अत: अद्वैतावाद न तो व्यावहारिक है और न ही पारमार्थिक है, यह पूर्णरूपेण वेद विरुद्ध है।

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके।।
परद्रोही की होहि निशंका। कामी पुनि कि रहइ अकलंका।।

भा०– भला बताओ, सभी का हित देखने से उस सर्वहितदर्शी को क्या कभी दु:ख हो सकता है? जिसके पास स्पार्शमणि हो क्या वह दरिद्र बन सकता है ? क्या दूसरों का द्रोही शंकारहित हो सकता है? फिर क्या कामी कलंकरहित हो सकता है? अर्थात् कभी न कभी कामियों को कलंक लगता ही है।

बंश कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हे।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी। शुभ गति पाव कि परत्रिय गामी।।

भा०– क्या ब्राह्मणों का अहित करने पर किसी का वंश रह सकता है? क्या अपना स्वरूप पहचान लेने पर बन्धनात्मक कर्म हो सकता है? क्या खलों के संग रहने पर किसी में भी सुन्दर बुद्धि उत्पन्न हो सकती है? क्या परस्त्री गामी शुभगति पाता है?

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहि कबहुँ हरि निंदक।।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने।।

भा०– क्या परमात्मा को प्राप्त कर लेनेवाले भवसागर में पड़ते हैं? क्या भगवान् श्रीराम का निन्दक कभी भी सुखी होता है? क्या नीति के बिना राज्य स्थिर रहता है? क्या निष्काम भावना से श्रीहरि भगवान् श्रीराम का चरित्र–व्याख्यान के साथ कहने पर पाप रह सकते हैं?

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।।
लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।।

भा०- क्या बिना पुण्य के पवित्र यश होता है? क्या बिना पाप के कोई अपयश पाता है? क्या उस भगवद्भक्ति के समान कोई लाभ है, जिसे वेद और वेदज्ञ सन्त जन गाते हैं?

हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहिं नर तनु पाई।।
अघ कि पिशुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरियाना।।

भा०- हे भाई! क्या संसार में इससे बड़ी कोई हानि है, जो कि मनुष्य शरीर पाकर भी भगवान् श्रीराम का भजन न किया जाये ? क्या पिशुनता अर्थात् एक की बात दूसरे तक पहुँचाने के समान कोई दूसरा पाप है? हे गरुड़ जी! क्या दया के समान कोई धर्म है? अर्थात् यदि ये अठारह असंभव संभव नहीं हो सकते तो फिर ईश्वर और जीव में अभेदमूलक अद्वैतवाद न तो 'शास्त्रत: सम्भव है और न ही युक्तित:।

एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेश न सादर सुनऊँ।।
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा।।

भा०- इस प्रकार मैं मन में अनेक पूर्वपक्ष को काटने वाली युक्तियों पर विचार कर रहा था और लोमश मुनि जी का उपदेश आदरपूर्वक नहीं सुन रहा था। जब मैंने निर्गुण मत का खण्डन करके बार-बार सगुण पक्ष को ही प्रस्तुत किया, तब निरुत्तर होने के कारण महर्षि लोमश जी क्रोधपूर्वक बोले-

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि।।
सत्य बचन बिश्वास न करही। बायस इव सबहीं ते डरही।।
शठ स्वपच्छ तव हृदय बिशाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला।।

भा०- हे मोहग्रस्त ब्राह्मण! मैं श्रेष्ठ शिक्षा दे रहा हूँ, उसे तू नहीं मान रहा है। मेरे बहुत से उत्तरों के प्रतिपक्षी उत्तर प्रस्तुत कर रहा है। सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता है, तू कौवे की भाँति सभी से डरता है। अरे दुष्ट! तेरे हृदय में अपना ही विशाल पक्ष है अर्थात् तू अपने पक्ष का आग्रही है, इसलिए जा शीघ्र ही पक्षियों में चाण्डाल पक्षी कौवा हो जा।

लीन्ह श्राप मैं शीष चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।

भा०- मैंने लोमश मुनि के शाप को मस्तक पर चढ़ा लिया। मेरे मन में किसी भी प्रकार का न तो भय आया और न ही दीनता हुई अर्थात् इतना बड़ा शाप पाकर भी मैं तटस्थ रहा।

दो०- तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिर नाइ।
सुमिरि राम रघुबंश मनि, हरषित चलेउँ उड़ाइ।।११२ (क)।।

भा०- उसी समय मैं तुरन्त कौवा हो गया, फिर लोमश मुनि के चरणों में मस्तक नवाकर रघुवंश के मणि भगवान् श्रीराम जी को मन में स्मरण करके प्रसन्न होते हुए मैं उड़कर चला।

उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध।।११२(ख)।।

भा०- शिव जी पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे उमा! जो महानुभाव काम, मद और क्रोध से रहित होकर एकमात्र भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में ही रमते रहते हैं, वे सम्पूर्ण जगत् को अपने स्वामी श्रीराम के

रूप में देखते हैं अर्थात् उनका यह निश्चय हो जाता है कि सम्पूर्ण जीव-जगत् हमारे प्रभु श्रीराम का शरीर है, इसलिए वे किससे विरोध करें अर्थात् यदि उन्हें कोई श्रीराम जी से अतिरिक्त दिखे तब तो विरोध करें।

सुनु खगेश नहिं कछु ऋषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंश बिभूषन।।
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी।।
मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना।।

भा०- हे पक्षीराज गरुड़ जी! सुनिये, इस घटना में महर्षि लोमश जी का कोई दोष नहीं था, क्योंकि भक्तों के हृदय के प्रेरक तो रघुवंश के अलंकार भगवान् श्रीराम ही हैं। कृपा के सागर भगवान् श्रीराम ने मुनि लोमश जी की बुद्धि को बावली बनाकर मेरी प्रेमपरीक्षा ली। जब उन्होंने मुझे मन, वचन, कर्म से अपना सेवक जाना अर्थात् लोगों को जना दिया, फिर भगवान् श्रीराम ने लोमश मुनि जी की बुद्धि को फेर दिया। तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीराम स्वयं सर्वज्ञ हैं, उन्हें मेरे प्रेम के प्रति कोई सन्देह नहीं था। वे सम्पूर्ण जगत् को इस घटना से मेरे प्रेम का परिचय कराना चाहते थे।

ऋषि मम सहन शीलता देखी। राम चरन बिश्वास बिशेषी।।
अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।।
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा।।

भा०- लोमश ऋषि ने मेरी सहनशीलता और मेरा श्रीराम के श्रीचरणों में विशेष विश्वास इन दोनों विशेषताओं को देखा, तब अत्यन्त आश्चर्य के साथ बार-बार पश्चात्-ताप करते हुए महर्षि ने मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। अनेक प्रकार से मेरा परितोष किया अर्थात् मुझे समझा-बुझाकर सन्तुष्ट किया और तब मुझे प्रसन्न होकर श्रीराम का षड़क्षर मंत्र दिया।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।
सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुमहिं सुनावा।।

भा०- कृपा के कोश मुनि लोमश जी ने मुझे बालकरूप श्रीराम का ध्यान कहकर सुनाया, जो बहुत सुन्दर और सुख देनेवाला था। वह मुझे बहुत भाया, उसे मैं पहले ही तुम्हें सुना चुका हूँ।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाखा।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।।

भा०- लोमश मुनि ने मुझे वहाँ अर्थात् अपने आश्रम में कुछ दिन रखा। तब श्रीरामचरितमानस जिसे शिवजी से प्राप्त किया था सुनाया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर महर्षि लोमश जी सुहावनी वाणी बोले-

रामचरित सर गुप्त सुहावा। शंभु प्रसाद तात मैं पावा।।
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी।।

भा०- हे वत्स! ये गोपनीय सुन्दर श्रीरामचरितमानस मैंने शिवजी के प्रसाद से पाया है। तुम्हें अपना सेवक और भगवान् श्रीराम का भक्त जानकर, यह समस्त कथा मैंने व्याख्यान के साथ कही।

राम भगति जिन के उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिय तिन पाहीं।।
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिर नावा।।

भा०- जिनके हृदय में श्रीराम की भक्ति न हो, हे तात! उनके पास इसे कभी मत कहना। लोमश मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया और मैंने भी प्रेम के साथ मुनि लोमश जी के चरणों में मस्तक नवाया।

निज कर कमल परसि मम शीशा। हरषित आशिष दीन्ह मुनीशा।।
राम भगति अबिरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे।।

भा०– मेरे मस्तक पर अपने करकमलों से स्पर्श करते हुए, मुनियों में श्रेष्ठ लोमश जी ने प्रसन्न होते हुए अशीर्वाद दिया, हे वत्स! अब मेरे प्रसाद से अविरला श्रीरामभक्ति तुम्हारे हृदय में निरन्तर निवास करेगी।

दो०– सदा राम प्रिय होहु तुम, शुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ग्यान बिराग निधान।।११३(क)।।

भा०– तुम सदैव श्रीराम के प्रिय, श्रेष्ठ गुणों के निवास स्थान अर्थात् भवन, अहंकार से रहित, स्वेच्छारूप धारण की शक्ति से सम्पन्न और अपने ही इच्छा से मृत्यु को स्वीकार करने वाले तथा ज्ञान और वैराग्य के कोशस्वरूप हो जाओ।

जेहिं आश्रम तुम बसब पुनि, सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहिं तहँ न अबिद्या, जोजन एक प्रजंत।।११३(ख)।।

भा०– फिर तुम भगवान् श्रीसीतारामजी का स्मरण करते हुए जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ चारों ओर एक योजनपर्यन्त अविद्या नहीं व्यापृत होगी अर्थात् अपना व्यपार नहीं कर सकेगी।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुमहिं न ब्यापिहि काऊ।।
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना।।
बिनु श्रम तुम जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ।।
जो इच्छा करिहउ मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।

भा०– काल, कर्म, गुण, दोष और प्रकृति, इनके कुछ भी दुःख तुम्हें नहीं व्याप्त होंगे। अनेक प्रकार से लालित्यपूर्ण गोपनीय और प्रकट श्रीराम के रहस्य, जो इतिहासों और पुराणों में अधिकारियों के भेद से कहीं छिपे हुए हैं और कहीं प्रकट हैं, तुम उन सबको बिना श्रम के जान लोगे। तुम्हारे हृदय में श्रीराम के श्रीचरणों के प्रति नित्य नया प्रेम हो। तुम मन में जो भी इच्छा करोगे भगवान् श्रीराम के प्रसाद से तुम्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा।

सुनि मुनि आशिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा।।
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी।।
सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संशय गयऊ।।

भा०– हे धीर बुद्धिवाले गरुड़ जी! सुनिये, मुनि लोमश जी का आशीर्वाद सुनकर आकाशमय परब्रह्म श्रीराम की आकाशवाणी हुई। भगवान् श्रीराम ने कहा, हे ज्ञानी मुनि! तुम्हारा वचन ऐसा ही हो, क्योंकि यह भुशुण्डि कर्म, मन और वाणी से मेरा भक्त है। प्रभु की आकशवाणी सुनकर मुझे हर्ष हुआ और मैं प्रेम में मग्न हो गया, मेरा सम्पूर्ण संशय चला गया।

करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिर नाई।।
हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ।।

भा०– प्रार्थना करके मुनि की आज्ञा पाकर, उनके चरणों में बार–बार सिर नवाकर, प्रसन्नता के सहित मैं इस आश्रम में आ गया। प्रभु के प्रसाद से मैंने दुर्लभ वरदान पा लिया।

इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईशा। बीते कलप सात अरु बीसा।।
करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना।।

भा०- हे पक्षियों के ईश्वर! सुनिये, मुझे यहाँ निवास करते हुए सत्ताईस कल्प बीत गये अर्थात् मेरे सामने सत्ताईस बार ब्रह्माजी की भी मृत्यु हो चुकी है। मैं सदैव रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम का गुणगान करता हूँ और चतुर पक्षी आदरपूर्वक सुनते हैं।

जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज शरीरा।।
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। शिशुलीला बिलोकि सुख लहऊँ।।
पुनि उर राखि राम शिशुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा।।

भा०- हे पक्षियों के राजा गरुड़ जी! जब–जब भक्तों का हित करने के लिए भगवान् श्रीराम श्रीअयोध्यापुरी में मनुष्य शरीर धारण करते हैं, तब–तब मैं पाँच–पाँच वर्षों के लिए कथा को विश्राम देकर, इस आश्रम से जाकर श्रीराम के पुर श्रीअयोध्या में रहता हूँ और प्रभु की शिशुलीला को देखकर बहुत सुख प्राप्त करता हूँ। पाँच वर्षों के पश्चात् फिर भगवान् श्रीराम के बालरूप को हृदय में धारण करके अपने आश्रम में आ जाता हूँ।

कथा सकल मैं तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई।।
कहेउँ तात सब प्रश्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! जिस कारण से मैंने कौवे का शरीर प्राप्त किया, वह सम्पूर्ण कथा मैंने आपको सुना दी। हे तात! आपकी सम्पूर्ण प्रश्नावली का उत्तर मैंने दे दिया, वास्तव में भगवान् श्रीराम की भक्ति की महिमा बहुत बड़ी है।

दो०- ताते यह तन मोहि प्रिय, भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरशन पायउँ, गए सकल संदेह।।११४(क)।।

भा०- इसलिए यह शरीर मुझे प्रिय है, क्योंकि इसी शरीर में मुझे भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम हुआ। इसी कौवे के शरीर में मैंने अपने प्रभु श्रीराम के दर्शन प्राप्त किये और इसी काक शरीर में मेरे सम्पूर्ण सन्देह समाप्त हो गये।

भगति पक्ष हठ करि रहेउँ, दीन्ह महाऋषि श्राप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ, देखहु भजन प्रताप।।११४(ख)।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! मैं भक्तिपथ पर हठ किये रहा लोमश जी से कोई समझौता नहीं किया, उस पर कुपित होकर महर्षि लोमश जी ने मुझे कौवा बनने का भयंकर शाप दिया, उसके विनिमय में मैंने मुनियों के लिए भी दुर्लभ वरदान प्राप्त कर लिये। भगवान् श्रीराम के भजन का प्रताप तो देखो, अन्त में जीत मेरी ही हुई।

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं।।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी।।

भा०- काकभुशुण्डि जी कहते हैं कि, हे गरुड़ देव जी! जो लोग इस प्रकार की भक्ति जानकर छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं, वे जड़बुद्धि के लोग अपने घर में आई हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार के फल को ढूँढ़ते फिरते हैं।

सुनु खगेश हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।।
ते शठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।

भा०- हे पक्षीराज गरुड़ जी! सुनिये, भगवान् श्रीराम की भक्ति को छोड़कर जो लोग अन्य उपाय से सुख चाहते हैं, वे जड़ करनीवाले लोग बिना नाव के महासागर को चरणों से तैर कर पार करना चाहते हैं।

सुनि भुशुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी।।
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संशय शोक मोह भ्रम नाहीं।।
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिश्रामा।।
एक बात प्रभु पूँछउँ तोहीं। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोहीं।।

भा०- पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए शिवजी कहते हैं कि हे भवानी! काकभुशुण्डि के वचन सुनकर, प्रसन्न होकर गरुड़ जी कोमल वाणी में बोले, हे प्रभु काकभुशुण्डि जी! आपके प्रसाद से मेरे हृदय में संशय, शोक, मोह और भ्रम कुछ भी नहीं है। आपकी कृपा से मैंने परम पवित्र भगवान् श्रीराम के गुणों के समूह सुने और आपकी कृपा से ही मैंने विश्राम प्राप्त कर लिया अर्थात् मुझे परम शान्ति मिल गई। हे प्रभु! मैं एक बात आपसे पूछ रहा हूँ, हे कृपा के सागर काकभुशुण्डि जी! आप मुझे समझाकर कहिये।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।
सोइ मुनि तुम सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं।।
ग्यानहिं भगतिहिं अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।।
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना।।

भा०- सन्त, मुनि, वेद और पुराण सभी कहते हैं कि ज्ञान के समान कुछ भी दुर्लभ नहीं है अर्थात् ज्ञान सबसे अधिक दुर्लभ वस्तु है। हे पक्षीलोक के स्वामी भुशुण्डि जी! वही ज्ञान तो महर्षि लोमश जी ने आपसे कहा था, जिसे आपने भक्ति की भाँति सम्मानित नहीं किया, तो फिर ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है? हे कृपा के धाम भुशुण्डि जी! सब कुछ समझाकर कहिये। गरुड़ जी के वचन सुनकर भुशुण्डि जी ने बहुत सुख माना और चतुर काकभुशुण्डि जी आदरपूर्वक बोले–

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।
नाथ मुनीश कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरियाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती।।

भा०- हे नाथ! परमार्थ में भक्ति और ज्ञान के बीच कुछ भेद नहीं है, दोनों ही संसार से उत्पन्न दु:ख को नष्ट कर देते हैं, परन्तु साधनकाल में श्रेष्ठ मुनि लोग भक्ति और ज्ञान में कुछ अन्तर कहते हैं। हे पक्षीश्रेष्ठ! वह आप सावधान होकर सुनिये। हे श्रीहरि के विमान गरुड़ जी! सुनिये, ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान ये सब पुरुष हैं अर्थात् साधन में भी इन में पुरुषार्थ है। पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है और अबला, निर्बल तथा स्वभावत: जड़जाति की होती है अर्थात् शरीर की दृष्टि से भी नारी में पुरुष की अपेक्षा कम शक्ति होती है, परन्तु यह सिद्धान्त श्रीसीता, श्रीदुर्गा आदि देवियों के लिए नहीं है।

दो०- पुरुष त्यागि सक नारिहि, जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबश, बिमुख जो पद रघुबीर।।११५(क)।।

भा०- जो विरक्त और धीर बुद्धि के पुरुष हैं, वे नारी को त्याग सकते हैं, किन्तु जो भगवान् श्रीराम से विमुख, कामी और विषयों के परतंत्र हैं वे नारी का त्याग नहीं कर सकते।

सो०- सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबश होइ हरियान, नारि बिष्णु माया प्रगट।।११५(ख)।।

भा०– वह ज्ञान का कोशस्वरूप मुनि भी हरिण के समान नेत्रोंवाली नारी का चन्द्र जैसा मुख देखकर उसके विवश हो जाता है। हे गरुड़ जी नारियों में श्रीविष्णु की माया प्रकट रहती है। उपलक्षण की दृष्टि से नारी के लिए नर में भगवान् की माया प्रकट रहती है। भगवद्भजन न करनेवाली नारी भी सुन्दर पुरुष को देखकर उसके वश में हो जाती है।

इहा न पक्षपात कछु राखउँ। बेद पुरान सन्त मत भाषउँ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

भा०– यहाँ मैं किसी प्रकार का पक्षपात नहीं रख रहा हूँ, मैं तो वेद, पुराण और सन्तों का मत स्पष्ट करके कह रहा हूँ। हे पन्नगारि अर्थात् सर्पों के शत्रु गरुड़ जी! यह अनुपम परम्परा ही है कि नारी–नारी के रूप पर नहीं मोहित होती।

माया भगति सुनहु तम दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।

भा०– हे गरुड़ जी! आप गम्भीरता से सुनिये, यह तथ्य सभी लोग जानते हैं कि माया और भक्ति दोनों ही नारी वर्ग में आते हैं। अत: माया को देखकर पुरुष वर्ग में आनेवाले ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान मोहित हो सकते हैं, परन्तु भक्ति नारी वर्ग में आनेवाली माया पर नहीं मोहित हो सकती, क्योंकि भक्ति भी माया की भाँति नारी वर्ग की है और नारी–नारी पर मोहित नहीं होती। फिर रघुकुल के वीर भगवान् श्रीराम को भक्ति प्रिय है अर्थात् वही याने भक्ति ही श्रीसीता के रूप में परम पुरुष श्रीरघुवीर की धर्मपत्नी, गृहलक्ष्मी हैं। निश्चयत: माया असहाय और नर्तकी अर्थात् नृत्यांगना है।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी।।
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।

भा०– भक्ति के प्रति रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम जी सानुकूल रहते हैं, इसलिए भक्ति से यह माया बहुत डरती है, क्योंकि भक्ति रानी है और माया नौकरानी है। भक्ति वीरांगना है और माया नृत्यांगना है, इसलिए उपमारहित और कपटरहित श्रीरामभक्ति जिसके हृदय में अबाध रूप से सदैव निवास करती है, उसे देखकर माया सकुचा जाती है और अपनी कुछ भी प्रभुता का प्रयोग नहीं कर सकती। ऐसा विचार करके जो विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न मुनिजन हैं, वे सम्पूर्ण सुखों की खानि भक्ति को ही माँग लेते हैं, ज्ञान को नहीं माँगते, क्योंकि पुरुष प्रकृति होने के कारण ज्ञान की नारी माया पर मोहित होने की सम्भावना रहती है, परन्तु भक्तिरूप नारी मायारूप नारी पर नहीं मोहित हो सकती, क्योंकि नारी–नारी के रूप पर नहीं मोहित हो सकती।

दो०– यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहुँ मोह न होइ।।११६(क)।।

भा०–रघुनाथ जी का यह रहस्य कोई शीघ्र नहीं जान पाता। रघुपति भगवान् श्रीराम की कृपा से जो जान जाता है उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता।

औरउ ग्यान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अबिछीन।।११६(ख)।।

भा०- हे परम कुशल गरुड़ जी ! ज्ञान और भक्ति का और भी अन्तर सुनिये, जिसे सुनकर श्रीराम के श्रीचरणों में सदैव अविच्छिन्न रहनेवाली अर्थात् न टूटने वाली प्रीति हो जाती है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।।
ईश्वर अंश जीव अबिनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी।।
सो मायाबश भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

भा०- हे तात गरुड़ जी ! सुनिये, यह कहानी बहुत ही अकथनीय है। यह समझते तो बनती है, परन्तु बखानी नहीं जा सकती। हे गोसाईं अर्थात् पक्षियों के राजा गरुड़ जी ! जो परमेश्वर का अंश अर्थात् पुत्र है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो चेतन और निर्मल तथा स्वाभाविक सुख की राशि है, ऐसा जीवात्मा भी माया के वश में हो गया और तोते तथा बन्दर की भाँति बँध गया अर्थात् जैसे तोता बाँस की पोपली पर बैठते ही उलटता है और पोपली को पंजे से पकड़ लेता है, उसे लगता है कि पोपली ने ही उसे पकड़ा हुआ है, उसी प्रकार जीव ने स्वयं मायिक प्रपंच को पकड़ रखा है, जबकि उसे लगता है कि प्रपंच ने जीव को पकड़ रखा है। पुनः बन्दर सँकरे मुखवाले घड़े में हाथ डालकर चने से मुट्ठी भर लेता है, फिर घड़े के मुख से अपने हाथ को नहीं निकाल पाता, फिर मदारी उसे पकड़ लेता है। उसी प्रकार यह जीव संसाररूप घड़े में हाथ डालकर भोगरूप चने से पाँचों ज्ञानेन्द्रिय वाली मुट्ठी भर लेता है, न तो इन्द्रियों से भोगों को छोड़ता है और न ही मुक्त होता है। जड़ माया और चेतन जीव के बीच बन्धन की गाँठ पड़ गई है, यद्यपि वह झूठी है फिर भी उसके छूटने में बहुत कठिनता है।

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।
जीव हृदय तम मोह बिशेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।।
अस संजोग ईश जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।।

भा०- तब से यह जीव सरकारी न होकर संसारी हो गया तब से इसकी ग्रन्थी न तो छूटती है और न ही यह सुखी हो पाता है। वेदों और पुराणों ने बहुत से उपाय कहे, परन्तु यह गाँठ छूटती ही नहीं, उल्टे अधिकाधिक उलझती जाती है। जीव के हृदय में विशेष मोहरूप अन्धकार अर्थात् बहुत–बड़ा अन्धेरा है, उसको कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता, तो वह गाँठ कैसे छूटे? यदि ईश्वर ऐसा संयोग बना दें तो कदाचित् वह गाँठ किसी प्रकार छूट जाये। यद्यपि इस पक्ष में भी कोई निश्चय नहीं है, परन्तु गाँठ के छूटने की सम्भावना है।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा।।
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ शिशु पाइ पेन्हाई।।

भा०- यदि ईश्वर की कृपा से सात्विक श्रद्धा रूप गौ जीव के हृदय में आकर बसे और वेद ने जिन अपार जप, तप, व्रत यम, नियम, शुभ धर्म और आचरणों का वर्णन किया है, उन्हीं हरे–हरे तृणों को यदि यह सात्विक श्रद्धा रूप गौ चरे अर्थात् यदि जप, तप आदि का प्रयोग केवल सात्विक श्रद्धा के पोषण के लिए हो और वह सुन्दर भावरूप नवजात बछड़े को पाकर सात्विक श्रद्धारूप गौ अपने आप दुध देने के लिए पेन्हा जाये अर्थात् उत्सुक हो जाये।

नोइ निबृत्ति पात्र बिश्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।

तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै।।
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।

भा०– फिर निवृत्ति रूप नोई अर्थात् गौ के चरण के बन्धन से उस सात्विक श्रद्धारूप गौ को बाँधकर निज दास अर्थात् भक्तों के लिए नियत रूप से जन्म लेने वाले परमात्मा का भक्त, निर्मल मनरूप ग्वाला, विश्वासरूप पात्र में परमधर्म रूप दूध दुहकर, हे भाई! उसे निष्कामभाव रूप अग्नि में बना–बनाकर औटे अर्थात् उबाले, फिर क्षमा नामक महिला उसे सन्तोषरूप वायु से शीतल करे, फिर धृति अर्थात् धैर्यवृत्ति और शम अर्थात् मन का शमन, प्रवृत्तिरूप जामन देकर उसकी दही जमाये। पुन: मुदिता अर्थात् साधन की प्रसन्नतारूप महिला इन्द्रिय दमनरूप आधार अर्थात् पात्र में सत्यवाणीरूप रस्सी से बाँधकर, विचाररूप मथानी द्वारा उसका मंथन करे अथवा, यह सब कार्य निर्मल मनरूप ग्वाले को ही करना होगा। वह स्वयं सन्तोषरूप वायु और क्षमारूप शीतलता से निष्काम भावनारूप अग्नि में उबले हुए परमधर्म रूप दूध को ठंडा करे, फिर वही धैर्य और श्रमरूप जामन देकर जमाये और उसी को यह मनरूप ग्वाला साधन की प्रसन्नतारूप मुदिता कमौरी या उसके समान अन्य किसी पात्र में इन्द्रिय दमनरूप खम्भे आश्रय में सत्यवाणीरूप रस्सी से बाँधकर विचाररूप मथनी से स्वयं मथे और तब मथकर सुन्दर, अत्यन्त पवित्र निर्मल वैराग्यरूप नवनीत उससे निकाल ले, क्योंकि धर्म से ही वैराग्य होता है।

दो०– जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ।।११७(क)।।

भा०– जब बुद्धिरूपिणी ग्वालिन शुभाशुभ कर्मों का ईंधन लगाकर, योगरूप अग्नि को प्रकट करके ज्ञानरूप घी सिराये अर्थात् बनाये, उसमें से ममतारूप मक्खन का मल अर्थात् मठेऊ जल जाये।

तब बिग्यानरूपिनी, बुद्धि बिशद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ।।११७(ख)।।

भा०– तब विज्ञानस्वरूपिणी बुद्धि स्वच्छ ज्ञानरूप घी को पाकर समता रूप दिवट, अर्थात् दीपक के ठहरने वाला स्थान बनाकर उसी पर चित्तरूप दीपक में ज्ञानरूप घी भरकर, उस समतारूप दीपक के स्थल पर रख दे।

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि।।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि।।११७(ग)।।

भा०– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति नामक तीन अवस्थायें और सत्व, रजस, तमस नामक तीनों गुणरूप कपासों से निकाल कर तुरीयतत्त्व रूप रुई से सुन्दर मोटी बत्ती बनाये।

सो०– एहि बिधि लेसै दीप, तेज राशि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक शलभ सब।।११७(घ)।।

भा०– इस प्रकार से तेजों की राशि और विज्ञानमय दीपक को लेसे अर्थात् प्रकट करे, जलाये जिसके समीप जाते ही मद आदि सभी पतंगे जल जायें।

सोहऽमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप शिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।

भा०– 'सोऽहमस्मि' अर्थात् वह भगवद्भक्त जीवात्मा मैं हूँ, मैं संसार के कल्पित नाम रूपवाला नहीं हूँ इस प्रकार की अखण्डवृत्ति ही उस दीपक का परम प्रचण्ड लौ बन जाये। आत्मा के अनुभव का सुख ही उस ज्ञान

दीपक का सुन्दर प्रकाश हो, जिससे भव अर्थात् संसार का कारणरूप भेद, भ्रम नष्ट हो जाये और प्रबल अविद्या के परिवाररूप मोह आदि का अपार अन्धकार मिट जाये।

तब सोइ बुद्धि पाइ उजिआरा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा।।
छोड़न ग्रंथि पाव जो सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।।

भा०– तब वह बुद्धि, ज्ञान दीपक का उजाला पाकर हृदयरूप घर में बैठकर धीरे–धीरे चेतन–जीव में पड़ी जड़ग्रन्थि को छोड़े यदि वह बुद्धि जीव की जड़ग्रन्थि छोड़ने पाये तब यह जीव कृतार्थ हो जाये, परन्तु इतने पर भी विघ्नों का आना बन्द नहीं होता।

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।
ऋद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।

भा०– हे पक्षीराज गरुड़ जी! जीव को जड़ग्रन्थि खोलते हुए जानकर, तब यह माया अनेक विघ्न करती है। हे भाई! यह माया बहुत से ऋिद्धियों और सिद्धियों को प्रेरित करती है। ये सभी जाकर बुद्धि को लोभ दिखाती हैं और यह कल, बल, अर्थात् कपटपूर्ण मधुर छल करके आठों सिद्धियाँ, नवों ऋद्धियाँ बुद्धि के समीप चली जाती हैं और अपने आँचल के पवन से इतने श्रम से जलाये हुए दीपक को बुझा देती हैं, अर्थात् अपने आकर्षण से जीव को फँसाकर ज्ञान समाप्त कर देती हैं।

होइ बुद्धि जौ परम सयानी। तिन तन चितव न अनहित जानी।।
जौ तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।
इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

भा०– यदि बुद्धि परम चतुर हो और अपना शत्रु जानकर उन ऋद्धि, सिद्धियों की ओर नहीं देखे अर्थात् दीपक के प्रति सजग रहे, दीपक को बुझने न दे और यदि माया के इस विघ्न से बुद्धि बाधित नही होती तब फिर देवता बहुत विघ्न करते हैं। ये देवता दसों इन्द्रियों के द्वारों और शरीर के नाना झरोखों अर्थात् खिड़की में अपना–अपना स्थान बनाकर बैठे हैं। जब विषयरूप वायु को आते देखते हैं, तब वह हठपूर्वक किवाड़ को खोल देते हैं अर्थात् इन्द्रियों को विषय भोग के लिए बाध्य कर देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई।।
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा।।

भा०– जब वह वायु हृदयरूप घर में जाता है, उसी समय वह ज्ञान दीपक को बुझा देता है। ग्रन्थी भी नहीं छूटी और सुन्दर प्रकाश भी मिट गया, इस विषयरूप झंझावात् से बुद्धि व्याकुल हो गई।

इंद्रिय सुरन न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई।।
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीपक बार बहोरी।।

भा०– इन्द्रियों के देवताओं को ज्ञान नहीं भाता, उन्हें सदैव विषय–भोगों पर प्रीति रहती है। विषयरूप वायु बुद्धि को बावली बना देता है। फिर मन और बुद्धि मिलकर उसी प्रकार से दीपक को जलाते हैं, जिसमें वर्षों का समय समाप्त हो जाता है।

दो०- तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेश।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेश।।११८(क)।।

भा०- इसके पश्चात् फिर यह जीव अनेक प्रकार से संसार का क्लेश पाता है। हे गरुड़ जी! श्रीहरि की माया अत्यन्त दुस्तर है, वह जल्दी पार नहीं की जा सकती।

कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक।।११८(ख)।।

भा०- हे गरुड़ जी! यह विवेक अर्थात् ज्ञान कहने में भी कठिन है, सुनने में भी कठिन है और साधन करने में भी कठिन है। यदि घुनाक्षर न्याय से संयोगवशात् सिद्ध हो भी जाये, फिर भी इस में बहुत प्रत्यूह अर्थात् विघ्न पड़ता है। तात्पर्य यह है कि घुन नामक कीड़े को श्रीरामनाम लिखने का तो ज्ञान नहीं है, परन्तु कभी-कभी लकड़ी काटते-काटते उससे श्रीरामनाम अक्षर का आकार बन जाता है, तो उसमें उसकी बुद्धिमत्ता नहीं प्रत्युत् ईश्वरीय संयोग समझना चाहिये। उसी प्रकार जीव तो ज्ञान सिद्ध कर नहीं सकता और यदि कभी सिद्ध हो भी जाये तो उसे एक ईश्वरीय विधान समझना चाहिये।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेश होइ नहिं बारा।।
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।।

भा०- हे गरुड़ जी! ज्ञान का मार्ग कृपाण की धारा है, इस पर चलकर गिरने में विलम्ब नहीं लगता। जो निर्विघ्न रूप से इस मार्ग का निर्वाह कर लेता है, वह मोक्षरूप परम पद को प्राप्त कर लेता है।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरियाईं।।

भा०- वह मोक्षरूप परमपद अत्यन्त दुर्लभ है, यह बात सन्त, पुराण, वेद और आगम भी कहते हैं। हे स्वामी! श्रीराम का भजन करते ही वही मुक्ति इच्छा न करने पर भी हठपूर्वक साधक के पास चली आती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।

भा०- जिस प्रकार कोई करोड़ों प्रकार से उपाय करे, फिर भी बिना स्थल के जल नहीं रह सकता। हे पक्षीराज गरुड़ जी! सुनिये, उसी प्रकार भगवान् श्रीराम की भक्ति को छोड़कर मोक्ष का सुख रह ही नहीं सकता।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लुभाने।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा।।

भा०- ऐसा विचार करके चतुर श्रीरामभक्त, मुक्ति का निरादर करके भक्ति में ही लुब्ध होते रहते हैं। भगवद्भक्ति की साधना करते ही, बिना उपाय और बिना श्रम के संसार की मूल कारण अविद्या का स्वयं नाश हो जाता है।

भोजन करिय तृपिति हित लागी। जिमि सो अशन पचवै जठरागी।।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।

भा०- जैसे तृप्ति अर्थात् क्षुधा की निवृत्ति और शरीर को शक्ति देने के लिए भोजन किया जाता है, पर उस भोजन को जाठराग्नि स्वयं पचा डालता है, उसी प्रकार भक्ति दोनों भूमिकायें निभाती है, साधना में स्वाद की अनुभूति

कराती है, सन्तोष देती है और संसार के भोगों को पचाकर व्यक्ति को सवस्थ कर देती है। ऐसी साधनाकाल में सुगम और परिणाम काल में सुख देनेवाली श्रीराम की भक्ति कौन ऐसा मूर्ख है जिसे नहीं भाती?

दो०- सेवक सेब्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत बिचारि।।११९(क)।।

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य।।११९(ख)।।

भा०- हे गरुड़ जी! हे सर्पशत्रु! सुनिये, सेवक-सेव्यभाव के बिना संसार सागर को पार नहीं किया जा सकता। इस सिद्धान्त का विचार कर भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों का भजन कीजिये अर्थात् पीठ पर बैठाइये श्रीनारायण जी को और हृदयकमल में विराजमान कराइये भगवान् श्रीराम को। जो चेतन को जड़ कर देते हैं और जड़ को चेतन कर देते हैं, ऐसे समर्थ, राजीवलोचन, धनुर्बाणधारी, रघुकुल के नायक, भक्त भयहारी, अवधविहारी श्रीसीताभिराम श्रीरामजी को जो जीव भजते हैं वे जीव धन्य हैं।

कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड जाके उर अंतर।।
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती।।

भा०- हे गरुड़ जी! मैंने ज्ञान सिद्धान्त को ज्ञान दीपक रूपक के माध्यम से समझाकर कहा, अब चिन्तामणि दीपक के रूपक के माध्यम से भक्तिमणि की प्रभुता सुनिये। हे गरुड़ जी! श्रीरामभक्तिरूप सुन्दर चिन्तामणि जिसके हृदय में निरन्तर निवास करती है, वहाँ दिन-रात परम प्रकाशरूप हो जाता है। ज्ञान दीपक में एक ओर जहाँ घी, दीपक बत्ती की बिडम्बना थी, ठीक उसके विपरीत यहाँ इन तीनों की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि चिन्तामणिरूप दीपक, घी दीपक और बत्ती के बिना अनादिकाल से जगमगा रहा है और अनन्त काल तक जलता रहेगा, कभी बुझेगा ही नहीं।

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल शलभ समुदाई।।

भा०- मोहरूप दारिद्र उसके निकट नहीं आता, लोभरूप वायु इस भक्तिमणि दीपक को बुझा नहीं पाता। प्रबल अविद्यारूप अंधकार स्वयं मिट जाता है, सभी मदादि पतिंगों के समुदाय हार जाते हैं यहाँ आते ही नहीं।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।

भा०- कामादि दुष्ट इसके निकट ही नहीं जाते जो इसको बुझा सकें। यह भक्तिरूप मणि दीपक जिसके हृदय में निवास करता है, उसके लिए विष भी अमृत के समान हो जाता है और शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। इस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता।

ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन के बश सब जीव दुखारी।।
राम भगति मनि उर बश जाके। दुख लवलेश न सपनेहुँ ताके।।

भा०- जिनके वश में होकर सारे जीव दुःखी हो रहे हैं, ऐसे बड़े मानस रोग उस व्यक्ति को नहीं व्यापते, जिसके हृदय में श्रीरामभक्तिमणि का निवास होता है, स्वप्न में भी उसे दुःख का लव का लेश भी नहीं होता अर्थात् सम्बन्ध भी नहीं होता।

चतुर शिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे।।

भा०– वे ही चतुरों के शिरोमणि हैं अर्थात् श्रेष्ठ चतुर हैं, जो उस मणि के लिए सुन्दर प्रयास करते हैं। यद्यपि वह मणि संसार में प्रकट है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है, फिर भी भगवान् श्रीराम की कृपा के बिना उसे कोई नहीं पाता। उसके अर्थात् मणि के पाने के उपाय बड़े सुगम हैं, परन्तु भाग्य के मारे हुए मनुष्य उसे ठुकरा कर दूर कर देते हैं।

पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी।।

भा०– वेद, पुराण पवित्र पर्वत हैं उनमें छिपी हुई भगवान् श्रीराम की कथायें भक्तिमणि की अनेक सुन्दर खानियाँ हैं। सत्व अर्थात् परमात्मा श्रीराम के जन अर्थात् भक्त श्रीरामपारायण श्रीवैष्णवजन ही मर्मी हैं, जिन्हें श्रीरामभक्तिमणि का पता चल जाता है। सुन्दर बुद्धि ही कुदाल है, जो उन कथारूप खानियों को खोद–खोदकर श्रीरामभक्तिरूप मणि निकालती है। हे गरुड़ जी! ज्ञान और वैराग्य ही नेत्र हैं, जिनसे उन श्रीरामकथा खानियों में यह मणि दिख जाती है। जो प्राणी भाव के सहित खोजता है, वह सम्पूर्ण सुखों की खानि भक्तिमणि को पा जाता है।

मोरे मन प्रभु अस बिश्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा।।

भा०– हे प्रभु! मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि भगवान् श्रीराम के दास भगवान् श्रीराम से भी अधिक हैं अर्थात् बड़े हैं, क्योंकि श्रीराम को सुलभ कराने के लिए वही माध्यम हैं। भगवान् श्रीराम समुद्र हैं और धीर भगवद्भक्त बादल हैं अर्थात् जैसे समुद्र का जल साक्षात् नहीं किया जा सकता उसी जल को लाकर मधुर बनाकर बादल सबको पिला देता है, उसी प्रकार सन्त, श्रीरामतत्त्व सबको सुलभ करा देते हैं। श्रीहरि, चन्दन के वृक्ष हैं और उस चन्दन की महक को जन–जन तक पहुँचाने वाले समीर अर्थात् वायु हैं, सन्तजन। भगवान् श्रीराम की सुहावनी भक्ति सभी साधनों का फल है और वह सन्त के बिना कोई भी नहीं पा सका, न तो पा सकता है और न ही पा सकेगा। ऐसा विचार करके जो सन्तों का संग करता है, हे गरुड़ जी! उसे श्रीरामभक्ति सुलभ हो जाती है।

दो०– ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं।।१२०(क)।।

भा०– वेद क्षीरसागर है, ज्ञान मन्दराचल पर्वत है, सन्तजन देवता हैं। वे सन्तरूप देवता ज्ञानरूप मन्दराचल से वेदरूप क्षीरसागर को मथकर उसमें से कथारूप अमृत निकाल लेते हैं, जिसमें भक्तिरूप मधुरता है।

बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेश बिचारि।।१२०(ख)।।

भा०– वैराग्यरूप ढाल और ज्ञानरूप तलवार से मद, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को मारकर जिस शक्ति से साधक विजय पा लेता है, वह है भगवान् श्रीराम की भक्ति। हे पक्षीराज! विचार करके देखिये अर्थात् जैसे शस्त्रों के रहने पर भी उन्हें चलाने की शक्ति और कला न हो तो शस्त्र रहकर ही क्या कर लेंगे, उसी प्रकार वैराग्य और ज्ञान के प्रयोग की शक्ति केवल भगवान् की भक्ति में है।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौ कृपालु मोहि ऊपर भाऊ।।
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी।।
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन शरीरा।।
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी।।
संत असंत मरम तुम जानहु। तिन कर सहज स्वभाव बखानहु।।
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिशाला। कहहु कवन अघ परम कराला।।
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम सर्बग्य कृपा अधिकाई।।

भा०– फिर पक्षियों के राजा गरुड़ जी प्रेमपूर्वक बोले, हे कृपालु भुशुण्डि जी! यदि आपका मुझ पर वात्सल्य भाव है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर व्याख्यान के साथ कहिये। हे स्वामी! हे धीर बुद्धिवाले भुशुण्डि जी! सर्वप्रथम यह बताइये कि, सबसे दुर्लभ कौन–सा शरीर है? कौन सबसे बड़ा दुःख है तथा कौन सबसे बड़ा सुख है, वह भी विचार करके संक्षेप में कहिये। आप सन्तों और असन्तों का मर्म जानते हैं, अतः उनके जन्मजात स्वभाव का व्याख्यान कीजिये। वेद में विदित सबसे बड़ा पुण्य कौन है और सबसे भयंकर पाप कौन है यह भी बताइये? आप मुझे मानस रोग भी समझाकर कहिये। आप सब कुछ जानते हैं और आप में कृपा की अधिकता भी है।

तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती।।
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति शुभ देनी।।
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर।।
काँच किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं।।

भा०– भुशुण्डि जी बोले, हे तात गरुड़ जी! आप आदरपूर्वक और अत्यन्त प्रेम से सुनिये, यह नीति मैं संक्षेप में कहता हूँ। मनुष्य शरीर के समान कोई भी शरीर नहीं है। चेतन–जड़ जीव उसी मानव शरीर को ईश्वर से माँगते रहते हैं। यह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है। यह ज्ञान, वैराग्य और शुभ भक्ति को देनेवाला है। उस मनुष्य शरीर को धारण करके जो अत्यन्त नीच से भी नीच प्राणी भगवान् का भजन नहीं करते और निकृष्टतम विषय भोग में अनुरक्त हो जाते हैं, वे बदले में काँच का टुकड़ा ले लेते हैं और हाथ में आई हुई स्पार्शमणि को अपने हाथ से फेंक देते हैं।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज स्वभाव खगराया।।
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूरज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिशाला।।

भा०– दारिद्र के समान संसार में दुःख नहीं है और सन्त के मिलन के समान जगत् में कुछ सुख भी नहीं है अर्थात् द्रव्य दारिद्र को समाप्त नहीं कर पाता, क्योंकि दारिद्र का अर्थ है दुर्गति और उसे सन्त ही समाप्त करते हैं।

हे पक्षीराज गरुड़ जी! वचन, मन, शरीर से दूसरों का उपकार करना ही सन्तों का सहज स्वभाव है। सन्त दूसरों के हित के लिए दु:ख सहते हैं और भाग्यहीन असन्त दूसरों के दु:ख के लिए दु:ख सहते हैं। कृपालु सन्त भुर्जपत्र अर्थात् भोजपत्र के समान होते हैं जो दूसरों के हित के निमित्त विशाल विपत्ति सह लेते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।
संत उदय संतत सुखकारी। बिश्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।

भा०- दुष्ट, सन की रस्सी के समान दूसरों का बन्धन करता है भले अपना खाल निकलवाकर विपत्ति सहकर मर जाता है अर्थात् जैसे सन अपनी खाल निकलवाकर रस्सी बनकर दूसरों को बाँधता है, उसी प्रकार दुष्ट स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को कष्ट देते हैं। हे गरुड़ जी! सुनिये, दुष्ट अपने स्वार्थ के बिना भी सर्प और चूहे की भाँति दूसरों का अपकार अर्थात् हानि करता है। दुष्ट लोग दूसरों की सम्पत्ति नष्ट करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार खेती को समाप्त करके बर्फ और ओले स्वयं समाप्त हो जाते हैं। दुष्टों का उदय संसार के कष्ट के लिए ही होता है, जैसे सबसे अधम ग्रह केतु का उदय प्रसिद्ध ही है। सन्तों का उदय निरन्तर सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्य सारे संसार को सुख देते हैं अर्थात् उनका उदय दूसरों के लिए सुखप्रद होता है।

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरिंसा।।
हर गुरु निंदक दादुर होई। जन्म सहस्त्र पाव तन सोई।।
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस शरीर धरि।।
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।।
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निशा प्रिय ग्यान भानु गत।।
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं।।

भा०- अहिंसा ही वेद विदित परमधर्म है और दूसरों की निन्दा के समान कोई वरिष्ठ पाप नहीं है। शिवजी और गुरु की निन्दा करने वाले मेढ़क होता है और वह एक सहस्र जन्मों में वही शरीर पाता है। ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला बहुत से नरकों का भोग करके संसार में कौवा का शरीर धारण करके जन्म लेता है। जो अहंकारी, देवता और वेदों की निन्दा करते हैं वे प्राणी रौरव नरक में पड़ते हैं। जो सन्तों की निन्दा में निरत रहते हैं, वे उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूप रात्रि प्रिय है और जो ज्ञानरूप सूर्य से बहुत दूर हैं। जो लोग सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगादड़ होकर अवतार लेते हैं।

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन ते दुख पावहिं सब लोगा।।
मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तिन ते पुनि उपजहिं बहु शूला।।

भा०- हे तात! अब मानस रोग सुनिये, जिनसे सभी लोग दु:ख पा रहे हैं। मोह सम्पूर्ण व्याधियों का मूल है, फिर उसी से बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं।

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई।।

भा०- काम ही वात है, अपार लोभ कफ है, निरन्तर छाती को जलानेवाला क्रोध ही पित्त है। ये तीनों भ्राता जब प्रेम कर लेते हैं, तब दु:ख देनेवाला सन्निपात उत्पन्न हो जाता है अर्थात् जैसे वात, कफ और पित्त के मिल जाने पर शारीरिक सन्निपात होता है, उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ के इकट्ठे होने पर मानसिक सन्निपात हो जाता है।

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब शूल नाम को जाना।।
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।

भा०- अनेक प्रकार के दुर्गम जो विषय सम्बन्धी मनोरथ होते हैं, वे ही बहुत से शूल अर्थात् दु:ख हैं उनके नाम कौन जाने? ममता ही दादु है, ईर्ष्या ही कण्डु अर्थात् खुजलाहट है, हर्ष और विशाद ही नाना ग्रहों की बहुलता है।

पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।

भा०- दूसरों का सुख देखकर जलन, वह मन का क्षय रोग है। दुष्टता और मन की कुटिलता ये ही मन के दोनों प्रकार के श्वेत और गलित कोढ़ हैं। अहंकार ही अत्यन्त दु:खद डमरूआ नाम का रोग है, जो शरीर को टेढ़ा बना देता है। दम्भ, कपट, मद और मान नेहरुआ नाम का रोग है, जो नसों को निर्बल कर देता है।

तृष्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी।।
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।

भा०- तृष्णा ही अत्यन्त–बड़ा उदर वृद्धि नाम का रोग है। तीनों प्रकार की ईषना अर्थात् पुत्र, धन और लोक सम्मान की इच्छायें ही अत्यन्त तीव्र तिजारी अर्थात् त्रिज्वरी नाम का रोग है, जो तीसरे दिन आता है और तीन दिन तक रहता है। मत्सर और अविवेक ये दोनों प्रकार के जीर्ण और अजीर्ण ज्वर हैं, ऐसे अनेक कुरोग हैं जिन्हें कहाँ तक कहूँ?

दो०- एक ब्याधि बश नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहै समाधि।।१२१(क)।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! एक ही मानस व्याधि के वश में होकर प्राणी मर जाता है, यह तो बहुत से ऐसे मानस रोग हैं जो असाध्य हैं। ये सब मिलकर निरन्तर जीव को पीड़ित करते रहते हैं। फिर वह कैसे समाधि अर्थात् शान्ति प्राप्त कर सकता है।

नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन नहिं, रोग जाहिं हरियान।।१२१(ख)।।

भा०- हे भगवान् श्रीविष्णु के वाहन गरुड़ देव जी! फिर नियम, धर्म, आचरण, व्रत, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि करोड़ों ओषधियों से भी यह रोग नहीं जाते।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। शोक हरष भय प्रीति बियोगी।।
मानस रोग कछुक मैं गाए। हैं सब के लखि बिरलेन पाए।।

भा०- इस प्रकार हर्ष, शोक, भय, प्रेम तथा वियोग से युक्त संसार के सभी जीव मानस रोगों से पीड़ित ही हैं। मैंने कुछ मानस रोग कहे हैं, ये सबके पास हैं, पर इन्हें बहुत कम लोगों ने देखा है। बहुत से ऐसे रोग होते हैं, जो व्यक्ति को नष्ट करते रहते हैं, पर वह उन्हें पहचान नहीं पाता।

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नाश न पावहिं जन परितापी।।
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे।।

भा०– ये पापी मानस रोग, जानने पर कुछ क्षीण होते हैं, परन्तु प्राणियों को कष्ट देनेवाले ये नष्ट नहीं होते। ये मुनियों के भी हृदय में विषयरूप कुपथ्य पाकर अंकुरित हो जाते हैं, साधारण बेचारे मनुष्यों की क्या बात?

राम कृपा नासहिं सब रोगा। जौ एहि भाँति बनै संयोगा।।
सदगुरु बैद बचन बिश्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।

भा०– भगवान् श्रीराम की कृपा से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यदि इस प्रकार का संयोग बन जाये, जिसमें सद्‌गुरु रूप वैद्य के वचन पर विश्वास हो और विषय की आशा न करना यही संयम हो।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो कुरोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।

भा०– रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की भक्ति संजीविनी मूली अर्थात् रसायनिक ओषधि है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि इसका अनुपान अर्थात् मुख्य ओषधि के साथ लिया जानेवाला तुलसीरस, मधु आदि अनुपान का प्रयोग है, इस प्रकार ये रोग भले ही नष्ट हो सकते हैं, नहीं तो अन्य करोड़ों उपायों से भी नहीं जा सकते।

जानिय तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाइ।।
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई।।
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई।।

भा०– हे स्वामी! मन को तभी रोग से रहित जानना चाहिये, जब वैराग्यरूप हृदय का बल अधिक हो जाये। जब सात्विकबुद्धि रूपी क्षुधा निरन्तर नये रूप में बढ़ने लगे। जब विषयों की आशारूप दुर्बलता चली गई हो। जब वह निर्मल सेवक–सेव्यभाव के ज्ञानरूप अथवा स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप और विरोधीस्वरूप के अर्थपंचकरूप ज्ञान के निर्मल जल में स्नान कर ले, तब हृदय में श्रीरामभक्ति छाई रहती है अर्थात् तब वह मानस रोगों से पूर्णतया छूट जाता है।

शिव अज शुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिशारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा।।

भा०– हे गरुड़ देव जी! शिव जी, ब्रह्मा जी, शुकाचार्य, सनकादि, नारद और जो भी ब्रह्मविचार में चतुर मुनिगण हैं, उन सबका एकमात्र यही निश्चित मत है कि, भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में स्नेह करना चाहिये, अन्यत्र का स्नेह दुःखद होगा।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा।।
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला।।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं शश शीष बिषाना।।
अंधकार बरु रबिहिं नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै।।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई।।

भा०– वेद, पुराण और सभी ग्रन्थ यही कहते हैं कि, रघुपति अर्थात् जीवमात्र के पालक भगवान् श्रीराम की भक्ति के बिना सुख है ही नहीं। भले कछुवे के पीठ पर बाल जम जायें, चाहे बन्ध्या का पुत्र किसी को मार सके, भले ही आधारहीन आकाश में बहुत प्रकार से फूल विकसित हो जायें, फिर भी श्रीहरि के प्रतिकूल रहकर जीव

सुख नहीं पा सकता। भले ही मृगजल के पान से प्यास बुझ जाये, चाहे खरगोश के सिर पर सींग जम जाये, चाहे अन्धकार सूर्यनारायण को छिपा दे, परन्तु श्रीराम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता। चाहे बर्फ से अग्नि प्रकट हो जाये, परन्तु श्रीराम से विमुख होकर कोई सुख नहीं पाता।

दो०- बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल।।१२२(क)।।

भा०- भले जल के मथने से घी निकल आये, चाहे बालू से तेल निकल आये, परन्तु भगवान् के भजन के बिना जीव भवसागर से नहीं पार हो सकता, यह सिद्धान्त अकाट्य है।

मशकहिं करइ बिरंचि प्रभु, अजहिं मशक ते हीन।
अस बिचारि तजि संशय, रामहिं भजहिं प्रबीन।।१२२(ख)।।

भा०- प्रभु श्रीराम जी मच्छर को ब्रह्मा बना देते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से छोटा कर देते हैं। ऐसा विचार करके संशय छोड़कर चतुर लोग भगवान् श्रीराम का भजन करते हैं।

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।१२२(ग)।।

भा०- हे गरुड़ जी! अब मैं प्रमाणिका वृत्त में विवेचनपूर्वक निश्चय करके आप से कहता हूँ, मेरे वचन अन्यथा नहीं हो सकते। जो श्रीहरि भगवान् श्रीराम को भजते हैं, वे ही अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार होते हैं।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा।।
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी।।
प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मोहि से शठ पर ममता जाही।।

भा०- हे नाथ! मैंने कहीं विस्तार और कहीं संक्षेप में अपनी बुद्धि के अनुसार अनुपम श्रीरामचरित कहा। हे सर्प शत्रु गरुड़ जी! वेदों का यही सिद्धान्त है कि सम्पूर्ण कामनाओं को भुलकर भगवान् श्रीराम का भजन करना चाहिये। रघुकुल के स्वामी और रघु शब्द के वाच्य समस्त जीवों के पालक श्रीराम जैसे प्रभु को छोड़कर और किसकी सेवा की जाये जिन्हें मुझ जैसे शठ पर भी ममता है?

तुम बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्ह मो पर अति छोहा।।
पूछेहु राम कथा अति पावनि। शुक सनकादि शंभु मन भावनि।।

भा०- हे गरुड़ देव जी! आप स्वयं विज्ञान अर्थात् विशिष्टाद्वैत ज्ञानरूप हैं, आप को कोई मोह नहीं है। हे नाथ! आपने मुझ पर अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण स्नेह किया है। आपने शुकाचार्य, सनकादि, शङ्करजी के मन को भी भानेवाली अत्यन्त पवित्र श्रीरामकथा मुझसे पूछी।

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा।।
देखु गरुड निज हृदय बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी।।
शकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन।।

भा०- संसार में एक भी बार एक क्षण के लिए या एक दण्डपर्यन्त की हुई सत्संगति बहुत दुर्लभ है। हे गरुड़ देव जी! अपने हृदय में विचार करके देखिये, मैं भी भगवान् श्रीराम के भजन का अधिकारी हो गया। पक्षियों में सबसे अधम, सब प्रकार से अपवित्र मुझ कौवे को भी प्रभु श्रीराम ने संसार में प्रसिद्ध और पवित्र करनेवाला बना दिया।

दो०- आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, संत समागम दीन।।१२३(क)।।

नाथ जथामति भाषेउँ, राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावइ कोइ।।१२३(ख)।।

भा०– आज मैं धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ, यद्यपि मैं सभी विधियों से हीन हूँ, फिर भी भगवान् श्रीराम ने अपना सेवक जानकर मुझे सन्त का समागम दे दिया। हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सब कुछ कहा। आपसे कुछ भी छिपाकर नहीं रखा, परन्तु मैंने भी पूर्ण कथा नहीं कही, क्योंकि रघुकुल के नायक भगवान् श्रीराम के चरित्रसागर की क्या कोई थाह पा सकता है?

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुशुंडि सुजाना।।
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई।।
शिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई।।
अस स्वभाव कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेश रघुपति सम लेखउँ।।

भा०– भगवान् श्रीराम के अनेक गुणगणों का स्मरण करके चतुर भुशुण्डि जी बारम्बार प्रसन्न और रोमांचित हो रहे हैं। भगवान् श्रीराम की महिमा, अतुलनीय बल, प्रताप और प्रभुता को वेदों ने 'नेति-नेति' कहकर गाया। रघुकुल के राजा भगवान् श्रीराम के श्रीचरण शिव जी और ब्रह्मा जी के भी पूज्य हैं, फिर भी वे मुझ जैसे सामान्य पक्षी पर इतनी बड़ी कृपा कर रहे हैं। यही मेरे प्रभु की परम कोमलता है। हे पक्षीराज गरुड़ देव जी! जैसे मेरे प्रभु श्रीराम का स्वभाव है, ऐसा स्वभाव न तो मैं कहीं सुनता हूँ और न कहीं देखता हूँ। मैं श्रीराम के समान किसको समझूँ।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद विरक्त सन्यासी।।
जोगी शूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी।।
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामि।।
शरन गए मो से अघ राशी। होहिं शुद्ध नमामि अबिनाशी।।

भा०– साधक, सिद्ध, विमुक्त, उदासीन अर्थात् दु:ख-सुख में तटस्थ मनीषी, वेदज्ञ, विरक्त, सन्यासी, योगी, शूरवीर, सुन्दर तपस्वी, ज्ञानी, धर्म परायण, शास्त्रों में कुशल पण्डित और संसार की विकृति अर्थात् विशेषताओं का ज्ञान रखनेवाले, ऐसे विज्ञानी भी मेरे स्वामी प्रभु श्रीराम की सेवा के बिना संसार-सागर से नहीं तर सकते। ऐसे ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य सम्पन्न भगवान् श्रीराम को मैं तुलसीदास जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में नमन करता हूँ... नमन करता हूँ... नमन करता हूँ, जिनकी शरण में जाने पर मुझ जैसे पापराशि जीव भी शुद्ध हो जाते हैं, ऐसे अविनाशी तत्त्व श्रीराम! मैं आपको नमन करता हूँ।

दो०– जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय शूल।
सो कृपालु मोहि तो पर, सदा रहउ अनुकूल।।१२४(क)।।

भा०– जिन प्रभु का श्रीरामनाम भवरोग के लिए ओषधि है और अत्यन्त घोर तीनों प्रकार के दु:ख को नष्ट करनेवाला है, वे कृपालु श्रीराम मुझ भुशुण्डि पर और तुम अर्थात् गरुड़ जी पर सदैव अनुकूल रहें।

सुनि भुशुंडि के बचन शुभ, देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड बिगत संदेह।।१२४(ख)।।

भा०– काकभुशुण्डि जी के शुभवचन सुनकर तथा उनका श्रीराम के श्रीचरणों में प्रेम देखकर सभी सन्देहों से रहित होकर गरुड़ देव जी प्रेमपूर्वक बोले–

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी।।
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई।।
मोह जलधि बोहित तुम भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए।।
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा।।

भा०– श्रीरघुकुल के वीर तथा रघु के वाच्य जीवों को विशेष प्रेरणा देनेवाले भगवान् श्रीराम की भक्तिरस से सनी हुई, आपकी वाणी सुनकर मैं अर्थात् गरुड़ कृतकृत्य हो गया। श्रीसीताराम के श्रीचरणों में नित्य नूतन भक्ति हो गई तथा माया से उत्पन्न सम्पूर्ण विपत्ति चली गई। हे नाथ! मोह सागर में डूबते हुए मुझ गरुड़ के लिए आप जल के जहाज हो गये। हे नाथ! आपने मुझे अनेक प्रकार के भगवत् सुख दिये अर्थात् रसों के तारतम्य से मुझे बारह प्रकार के सुख प्रदान किये। मुझसे आपका प्रति उपकार नहीं हो सकता। मैं आपके श्रीचरणों की बारम्बार वन्दना करता हूँ।

विशेष– **"रघुवीर भगति रस"** का प्रयोग करके गोस्वामी जी ने यह संकेत किया कि, इस श्रीरामचरितमानस महाकाव्य में भक्तिरस ही अंगीरस है शेष ग्यारह गौणरस हैं।

पूरन काम राम अनुरागी। तुम सम तात न कोउ बड़भागी।।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन कै करनी।।
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।
जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संशय सब गयऊ।।
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर।।

भा०– हे तात! आप पूर्णकाम हैं, आप श्रीराम के अनुरागी हैं, आपके समान कोई भी बड़ा भाग्यशाली नहीं है। सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी इन सभी के क्रियाकलाप दूसरों के हित के लिए होते हैं। सन्त का हृदय मक्खन के समान है, इस प्रकार कवियों ने तो कहा, पर कहना नहीं जाना अर्थात् उनसे कहते नहीं बना, क्योंकि मक्खन अपने ताप से पिघलता है और परमपवित्र सन्त दूसरों के दुःख से द्रवित होते हैं। (**विशेष–** यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार की स्पष्ट छटा है।) मेरा जीवन और मेरा जन्म लेना दोनों सफल हो गया। आपके प्रसाद से मेरे सम्पूर्ण संशय चले गये। हे नाथ! आप मुझे सदैव अपना सेवक समझते रहियेगा। हे पार्वती! इस प्रकार पक्षीश्रेष्ठ गरुड़ बार–बार कहते रहे।

दो०– तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर।।१२५(क)।।

भा०– इस प्रकार प्रेमपूर्वक काकभुशुण्डि जी के चरणों में मस्तक नवाकर, अपने हृदय में रघुवंश के वीर भगवान् श्रीराम को स्थापित करके, अनन्तर धीर बुद्धिवाले गरुड़ जी वैकुण्ठ चले गये।

विशेष– गरुड़ जी ने अपनी पीठ पर श्रीमन्नारायण को विराजमान करा रखा था, परन्तु उनका हृदय अब तक रिक्त था, आज उस हृदय में श्रीमन्नारयण के भी मूल कारण महानारायण, महाविष्णु भगवान् श्रीराम को विराजमान कराकर गरुड़ जी धन्य–धन्य होकर वैकुण्ठ पधारे।

गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं बेद पुरान।।१२५(ख)।।

भा०– पार्वती जी को सम्बोधित करते हुए शिवजी कहते हैं कि हे पर्वतराजपुत्री! सन्त समागम जैसा संसार में कोई दूसरा लाभ नहीं है, परन्तु वह भगवान् श्रीराम जी की कृपा के बिना नहीं प्राप्त होता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।।
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा।।
मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई।।

भा०– हे पार्वती जी! मैंने वह परम पवित्र इतिहास कहा है, जिसे श्रवणेन्द्रियों को लगाकर सुनने से संसार के बन्धन छूट जाते हैं और प्रणाम करने वालों के लिए कल्पवृक्ष, करुणा के पुञ्जस्वरूप भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों में प्रीति उत्पन्न हो जाती है। जो लोग श्रवण और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं या, सुनेंगे उनके मन, कर्म और वचन से उत्पन्न पाप चले जाते हैं और चले जायेंगे।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपा काहू एक पाई।।

भा०– तीर्थाटन, साधनों का समूह, योग, वैराग्य तथा ज्ञान की कुशलता, अनेक कर्म, धर्माचरण, व्रत, दान, संयम अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि का एकीकरण इन्द्रियों का दमन, जप, तप और अनेक यज्ञ, जीवों पर दया, ब्राह्मणों और गुरुजनों की सेवा, विद्या, विनम्रता और विवेक की गुरुता इस प्रकार वेदों ने जहाँ तक अध्यात्म-साधनों की चर्चा की है, हे पार्वती! उन सभी साधनों का फल केवल भगवान् की भक्ति है। वेद कहते हैं कि श्रीराम की भक्ति भी भगवान् श्रीराम जी की कृपा से कोई एक पा जाता है।

दो०– मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि बिश्वास।।१२६।।

भा०– जो लोग इस कथा को विश्वास मानकर निरन्तर सुनते हैं, और सुनेंगे वे मनुष्य बिना परिश्रम के ही मुनियों के लिए भी दुर्लभ श्रीरामभक्ति को पा जाते हैं और भविष्य में भी पाते रहेंगे।

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

भा०– वही सर्वज्ञ है, वही गुणवान है, वही ज्ञाता है, वही पृथ्वी का अलंकार है, वही पण्डित है, वही दानी है, वही धर्मपरायण है और वही अपने कुल का रक्षक है, जिसका मन भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में अनुरक्त हो गया। वही नीति में निपुण और वही परम चतुर है, उसी ने भली प्रकार से वेद का सिद्धान्त जाना है, वही मनीषी और वेदज्ञ है, वही संसार के संघर्षात्मक युद्ध में स्थिर है, जो छल छोड़कर रघुवीर श्रीराम जी का भजन करता है।

धन्य देश सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी।।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई।।
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा।।

दो०- सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत।।१२७।।

भा०- वही देश धन्य है, जहाँ देवनदी गंगाजी विराजती हैं, वह स्त्री धन्य है जो पतिव्रत धर्म का पालन करती है, वह राजा धन्य है, जो नीति का अनुसरण करता है, वह ब्राह्मण धन्य है, जो अपने धर्म से विचलित नहीं होता, वह धन धन्य है, जिसकी प्रथम गति होती है अर्थात् जो दान में प्रयुक्त होता है, वही बुद्धि धन्य है, जो परिपक्व है, जो पुण्य में निरत रहती है, वह घड़ी धन्य है, जब सत्संग होता है। वह जन्म धन्य है, जिसमें ब्राह्मणों के प्रति अविनाशिनी भक्ति होती है। हे पार्वती! सुनिये, वह जगत् में पवित्र, पूज्य और वही पवित्रकुल धन्य है, जिसमें श्रीसीतारामोपासक विनम्र प्राणी उत्पन्न होते हैं।

मति अनुरूप कथा मैं भाखी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी।।
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई।।

भा०- हे पार्वती! मैंने अपनी बुद्धि के अनुरूप भुशुण्डि गीता नामक यह कथा कही, यद्यपि प्रथम इसे मैंने छिपाकर ही रखी थी, परन्तु तुम्हारे मन में प्रीति की अधिकता देखकर ही मैंने इस श्रीरामकथा को सुनायी।

यह न कहिय शठहीं हठशीलहिं। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहिं।।
कहिय न लोभिहिं क्रोधिहिं कामिहिं। जो न भजइ सचराचर स्वामिहिं।।
द्विज द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ।।

भा०- हे पार्वती! दुष्ट के सामने, हठी स्वभाववाले के सामने और जो मन लगाकर भगवान् की लीला नहीं सुनता उसके सामने, यह कथा कभी नहीं कहनी चाहिये। लोभी, क्रोधी, कामी के सामने और जो चाराचर के स्वामी भगवान् श्रीराम को नहीं भजता उसके समक्ष यह कथा नहीं कहनी चाहिये। ब्राह्मण द्रोही को तो यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिये, भले ही वह इन्द्र के समान राजा हो।

राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन के सतसंगति अति प्यारी।।
गुरु पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।।
ता कहँ यह बिशेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।

भा०- श्री रामकथा के वे ही अधिकारी हैं जिन्हें सत्संगति अत्यंत प्रिय है, जिन्हें गुरु के चरणों में प्रेम है, जो नीति में निष्ठा रखते हैं, जो श्रीवैष्णव ब्राह्मणसेवी हैं, वे ही इस श्रीरामकथा के अधिकारी हैं। उस व्यक्ति को यह श्रीरामचरितमानस विशेष सुखदायक होगा, जिसे श्रीसीतारामजी प्राण के समान प्रिय हैं।

दो०- राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवन पुट पान।।१२८।।

भा०- जो श्रीराम के श्रीचरणों की भक्ति चाहते हैं, अथवा जो मोक्ष पद चाहता हो, वह अपने-अपने भाव के अनुसार इस कथामृत को अपने श्रवणरूप दोने में पान करे।

राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल शमनि मनोमल हरनी।।
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी।।

भा०– हे पार्वती! इस कलिकाल मल को शान्त करनेवाली, मन के मल को हर लेनेवाली श्रीरामकथा मैंने वर्णन करके कही, वेद और विद्वान गा–गाकर कहते हैं कि यह श्रीरामकथा संसाररूप रोगों को नष्ट करने के लिए संजीविनी बूटी है।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।।
अति हरि कृपा जाहिं पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।

भा०– इस श्री रामकथा में भगवान् श्रीराम जी की भक्ति के मार्ग स्वरूप सात सोपान हैं, जिन्हें, बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड के नाम से जाना जाता है, जिस पर भगवान् श्रीराम की अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्ग पर चरण देता है, अन्यथा धर्मनिरपेक्षता के नाम पर लोग दूर चले जाते हैं।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।।

भा०– जो मनुष्य इस कथा को कपट छोड़कर गाते हैं, वे अपने मनःकामनाओं की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। जो इसे कहते–सुनते हैं और अनुमोदन करते हैं, वे इस भवसागर को गोष्पद अर्थात् गौ के खुर के समान पार कर लेते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।
नाथ कृपा मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।

भा०– सम्पूर्ण कथा सुनकर पार्वती जी के हृदय में यह बहुत भायी और पर्वतराजपुत्री पार्वती जी सुहावनी वाणी में बोलीं, हे नाथ विश्वनाथ प्रभु! आपकी कृपा से मेरा सन्देह चला गया और भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया।

दो०– मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिश्वेश।
उपजी राम भगति दृढ़, बीते सकल कलेश।।१२९।।

भा०– हे विश्वनाथ, शशांकशेखर शिवजी! अब मैं आपके प्रसाद से कृतकृत्य हो गई। मेरे हृदय में भगवान् श्रीराम की भक्ति दृढ़ता के साथ उत्पन्न हो गई। मेरे सभी क्लेश समाप्त हो गये, यह कहकर पार्वती जी चुप हो गईं।

यह शुभ शंभु उमा संबादा। सुख संपादन शमन बिषादा।।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।।
राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन के कछु नाहीं।।
रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।

भा०– अब याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज जी से बोले, यह कल्याणप्रद शिव–पार्वती संवाद सुख को उत्पन्न करनेवाला, कष्टों को शान्त करनेवाला, संसार भय को नष्ट करनेवाला, सन्देह को समाप्त करनेवाला, भक्तों को आनन्द देनेवाला तथा यह सज्जनों को प्रिय है। जो संसार में श्रीसीतारामजी के उपासक हैं, उनको इस श्रीरामचरितमानस के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। हे महर्षि भरद्वाज जी! रघुकुल के स्वामी भगवान् श्रीराम की कृपा से अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने यह सुहावना पवित्र श्रीरामचरित गाया, इतना कहकर याज्ञवल्क्यजी ने विश्राम लिया।

विशेष– गोस्वामी जी ने सात विशेषणों द्वारा मानस जी के सात सोपानों के नाम का संकेत किया है। बालकाण्ड सुखसम्पादन, अयोध्याकाण्ड–विषादशमन, अरण्यकाण्ड–भवभंजन, किष्किन्धाकाण्ड–सन्देहगंजन, सुन्दरकाण्ड–जनरंजन, युद्धकाण्ड–सज्जनप्रिय और उत्तरकाण्ड–श्रीरामोपासक प्रिय।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय राम गुन ग्रामहिं।।

भा०– अब गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं, इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा आदि कोई दूसरा साधन नहीं है, इस समय तो केवल भगवान् श्रीराम का स्मरण करना चाहिये, उन्हीं भगवान् श्रीराम को गाना चाहिये और उन्हीं श्रीसीताराम के गुणसमूहों को निरन्तर सुनते रहना चाहिये, कलिकाल का यही मुख्य साधन है।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना।।
ताहि भजिय मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहिं पाई।।

भा०– गोस्वामी जी सन्तों के सम्बोधन के पश्चात् अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अरे मेरे मन! जिन के पतित पावनरूप बहुत–बड़े विरुद को, मनीषी कविजन, वेद, सन्त और पुराण गाते हैं, अपनी कुटिलता छोड़कर उन्हीं प्रभु श्रीसीताराम जी का भजन कर। भगवान् श्रीराम का भजन करके किसने गति नहीं पाई।

छं०– पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु शठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस श्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।।१।।

भा०– अरे दुष्ट मन! सुन, पतित पावन भगवान् श्रीराम का भजन करके किसने गति नहीं पाई। गणिका, अजामिल, व्याध, गृध्र, गज आदि अनेक दुष्टों को प्रभु ने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच, आदि जो अत्यन्त पापरूप प्राणी हैं, वे भी एक बार ही "श्रीराम" इस प्रकार उच्चारण करके पवित्र और पवित्र करने वाले हो जाते हैं, ऐसे भगवान् श्रीराम! मैं आपको प्रसन्न करने के लिए आपको ही नमन करता हूँ।

रघुबंश भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै।।२।।

भा०– जो प्राणी रघुवंश के अलंकार भगवान् श्रीराम के चरित्र को कहेंगे, सुनेंगे और गायेंगे वे कलियुग के मल और मन के मलों को भी धोकर श्रम के बिना ही श्रीराम के धाम अर्थात् साकेतलोक चले जायेंगे। जो प्रत्येक चौपाई को सतपंच, निर्विवादपंच याने निर्णायक और सुन्दर जानकर हृदय में किसी एक को भी धारण कर लेंगे, अथवा, जो सतपंच अर्थात् पैंतीस चौपाईयों को जो उत्तरकाण्ड के चौसठवें दोहे की सातवीं पंक्ति से उसी काण्ड अर्थात् उत्तरकाण्ड के ही अड़सठवें दोहे तक कही गई है जिन्हें भुशुण्डि रामायण या मूलमानस कहा जाता है, उन्हें ही सुन्दर जानकर जो हृदय में धारण कर लेंगे उनके पंचपर्वा, अविद्या से उत्पन्न सभी विकारों को श्रीसीतारामजी हर लेंगे।

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।

जाकी कृपा लवलेश ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।३।।

भा०– जो अत्यन्त सुन्दर, चतुर कृपा के कोश हैं और जो अनाथों पर प्रीति करते हैं, ऐसे एकमात्र निष्काम लोगों के हितैषी उन भगवान् श्रीराम के समान मोक्षदाता और कौन है, जिनके कृपा के लव–मात्र के सम्बन्ध से मुझ मतिमन्द तुलसीदास ने भी परम विश्राम प्राप्त कर लिया? ऐसे श्रीराम के समान कोई दूसरा स्वामी नहीं है।

दो०– मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुबीर।
असं बिचारि रघुबंश मनि, हरहु बिषम भव भीर।।१३०(क)।।

भा०– हे रघुकुल के वीर श्रीराघव सरकार श्रीराम जी! न तो मेरे समान कोई दीन है और न ही आपके समान कोई दीनों का हितैषी। हे रघुवंश के मणि प्रभु श्रीराम! ऐसा विचार करके मेरे भयंकर संसार की पीड़ा और भीति को हर लीजिये।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।।१३०(ख)।।

भा०– हे श्रीसीताभिराम श्रीराम! जिस प्रकार कामी को युवती नारी प्रिय लगती है और जिस प्रकार लोभी को धन प्रिय लगता है, उसी प्रकार आप मुझे निरन्तर प्रिय लगते रहें अर्थात् कामी की भाँति आपके रूप में आसक्त रहूँ और लोभी की भाँति मैं आपके नामरूप धन का जप के माध्यम से संचय करता रहूँ।

श्लोक– यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।१।।

भा०– सर्वश्रेष्ठ कवि भूतभावन शङ्करजी के द्वारा श्रीमद्सीतारामजी के श्रीचरणकमलों की भक्ति की प्राप्ति के लिए अज्ञानरूप रात्रि को नष्ट करनेवाला दुर्बोध जो सर्वप्रथम मानस रामायण संस्कृत भाषा में रचा गया था, उसी इस मानस रामायण को दुर्गम समझकर और श्रीरघुनाथ के श्रीरामनाम में निष्ठापूर्वक रत समझकर अपने अन्तःकरण के अन्धकार की शान्ति के लिए मैं अर्थात् तुलसीदास ने अवधी भाषा में बद्ध कर दिया।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।२।।

भा०– परम पवित्र और पुण्यों से युक्त पाप को हरने वाले, निरन्तर कल्याणकारी, विशिष्टाद्वैत ज्ञान और भक्ति को देने वाले, माया, मोह और तत्सम्बन्धी मलों को समाप्त करने वाले, सुन्दर और निर्मल श्रीराम प्रेम रूप जल से पूर्ण, कल्याणमय इस श्रीरामचरितमानस रूप सरोवर में जो भक्तिपूर्वक अवगाहन करेंगे, अर्थात् डूबकर इसके सिद्धान्तों का चिन्तन करेंगे, वे मनुष्य संसार रूप सूर्य की भयंकर किरणों से नहीं जलेंगे...नहीं जलेंगे...नहीं जलेंगे।

*** नवाहपारायण नवाँ विश्राम ***
*** मासपारायण तीसवाँ विश्राम ***

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासविरचिते श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने श्रीरामोपासक प्रियं नाम सप्तमं सोपानं उत्तरकाण्डं सम्पूर्णम्।
।।श्रीसीतारामार्पणमस्तु।।

इस प्रकार श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित् कलियुग के पाप को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस में श्रीरामोपासकप्रिय नामक सप्तम सोपान पर भावार्थबोधिनी नामक व्याख्या सम्पन्न हुई और उत्तरकाण्ड भी सम्पन्न हुआ। यह श्री सीताराम जी को समर्पित हो।

श्रीरामभद्राचार्येण सोपाने सप्तमे कृत्ता। मानसे राष्ट्रभाषायां व्याख्या भावार्थबोधिनी।।

।।श्रीराघव:शन्तनोतु।।

आरती

आरती श्री रामायण जी की। कीरति कलित ललित सिय पी की।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीकि बिग्यान बिसारद।।
शुक सनकादि शेष अरु शारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी।।१।।
आरति श्री रामायण जी की...।।

गावत बेद पुरान अष्टदस। छओं शास्त्र सब ग्रंथन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस। सार अंश सम्मत सब ही की।।२।।
आरति श्री रामायण जी की...।।

गावत संतत शंभु भवानी। अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी। कागभुशुंडि गरुड के ही की।।३।।
आरति श्री रामायण जी की...।।

कलिमल हरनि बिषय रस फीकी। सुभग सिंगार भगति जुबती की।।
दलनि रोग भव मूरि अमी की। तात मातु सब बिधि तुलसी की।।४।।
आरति श्री रामायण जी की...।।

गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस की आरती लिखते हुए कहा कि, यह उन श्रीरामचरितमानसरूप रामायण जी की आरती है, जो श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम जी की सुन्दर और मधुर कीर्ति है। जिसे ब्रह्मा आदि देवता, देवर्षि नारद, विज्ञान में निपुण महर्षि वाल्मीकि, शुकाचार्य, सनकादि शेष और सरस्वती जी गाते हैं, जिसकी सुन्दर कीर्ति को पवनपुत्र हनुमान जी ने वर्णन किया। जिसे चारों वेद और अठारहों पुराण गाते हैं। जो छहों दर्शनों, अर्थात् सांख्य योग, वैशेषिक न्याय, मीमांसा और वेदान्त तथा अन्य करोड़ों श्रेष्ठ ग्रन्थों के रस, अर्थात् सार है। जो मुनिजनों का धन और सन्तों का सर्वस्व है। जो सबका सारांश और सबका सम्मत है। जिसे निरन्तर शिवजी और पार्वती जी गाते हैं और घड़े से उत्पन्न ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी तथा व्यास आदि श्रेष्ठ कवियों ने जिसका व्याख्यान किया। जो काकभुशुण्डि जी और गरुड़ जी के हृदय की वस्तु है। जो कलिमल को नष्ट करनेवाली और विषय रस को फीका करनेवाली है। जो भक्तिरूप युवती का सुन्दर श्रृंगार है। जो भवरोग को नष्ट करने के लिए अमृत की बूटी है। जो मुझ तुलसीदास के लिए सब प्रकार से पिता और माता के समान हितैषिणी है। ऐसे श्री मानस रामायण जी की मैं आरती गा रहा हूँ।

पुष्पिका

सीताराम पदारविन्द हनुमत पद हिय धरि।
अवधीभाषा रीति प्रीति रस सकल एक करि।।
रामचरितमानस टीका भावार्थबोधिनी।
रामभद्रआचार्य रची निज चित्त सोधिनी।।
चित्रकूट बसि हुलसि सुत पदपंकज भावांजली।
करहु पाठ सादर सुजन रामचन्द्र ममता भली।।

सीतारामयशः पयः सुविमलम् श्रीरामनामामृतम्,
सोपानैर्मुनिभिर्युतं सुमतिभिर्घट्टैश्चतुर्भियुतम्।
श्रीमच्छंकरसंभवं भवभवं प्रेमोद्भवं भावतः,
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं जागाह्यितां हंसकैः।।
।।श्री राघवःशंतनोतु।।
उत्तरकाण्ड समाप्त
''नमोराघवाय''

धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर कविकुलरत्न जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस जी की आरती।

आरति श्रीमन्मानस की, रामसिय कीर्ति सुधा रस की।

जो शङ्कर हिय में प्रगटानी।
भुशुण्डि मन में हुलसानी।
लसी मुनि याज्ञवल्क्य बानी।

श्रीतुलसीदास, कहें सहुलास, सुकवित विलास।

नदी रघुनाथ विमल जस की। आरती
बिरति बर भक्ति ज्ञान दाता।
सुखद पर लोक लोक त्राता।
पढ़त मन मधुकर हरषाता।
सप्त सोपान, भक्ति पन्थान, सुवेद पुरान।
शास्त्र इतिहास समंजस की। आरती..................

सोरठा दोहा चौपाई।
छन्द रचना अति मन भाई।
विरंचि वर तुलसिदास गाई।
गायें नर नारि, होत भवपार, मिटे दुःख भार।
हरे मन कटुता कर्कश की। आरती.......................
ललित यह राम कथा गंगा।
सुनत भव भीति होत भंगा।
बसहु हिय हनुमत श्रीरंगा
राम को रूप, ग्रन्थ को भूप, हरै तम कूप।
जिवन धन "गिरिधर" सर्बस की। आरती.....................

श्रीरामचरितमानस

प्रकाशक

अन्ताराष्ट्रीय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र

जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,

चित्रकूट (उ०प्र०), भारत